🌣 पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णाद् पूर्णमुद्रक्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



निखिलभुवननार्वं शास्त्रतं सुप्रसत्रं त्वतिविधस्तविशुद्धं निर्मुणं भावपुष्पैः। सुखमुदितसमस्तं पूजवाम्यात्मभावं विज्ञतु इदयपथे सर्वसाक्षी चिदात्मा॥



गोरखपुर, सीर माथ, विठ सं० २०५६, औकृष्ण-सं० ५२२५, जनवरी २०००ई०



गरुडवाहन भगवान् विष्णुसे दर्शनकी प्रार्थना

यस्मादिदं जगद्देति चतुर्षुखाद्यं यस्मित्रवस्थितमशोषमशोषमृते। यज्ञोपयाति विलयं च समस्तमन्ते दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥ चक्रं सहस्वकरचारु करारविन्दे गुवी गटा दरवरश्च विभाति यस्य। पश्चीन्त्रपृष्ठपरिरोपितपादपद्यां दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥ यस्थाददृष्टिकशतस्तु सुराः समृद्धि कोपेश्चणेत्र दनुजा विलयं क्रजन्ति। भीताश्चरन्ति च यतोऽकंयमानिसाद्या दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥

जिन परमात्मासे यह ब्रह्म आदिरूप जगत् प्रकट होता है और सम्पूर्ण जगत्के कारणभूत जिन परमेश्वरमें यह समस्त संसार स्थित है तथा अन्तकालमें यह समस्त जगद् जिनमें लीन हो जाता है, वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रोंके समक्ष दर्शन दें। जिनके करकमलमें मूर्यके समान प्रकाशमान चक्र, भारी गदा और ब्रेष्ठ शांख शोधित हो रहा है, जो पश्चिराज (गरुड)-की पीठपर अपने चरणकमल रखे हुए हैं, वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रोंके समक्ष दर्शन दें। जिनकी स्नेहदृष्टिसे देखे जानेके कारण देवता लोग ऐश्वर्य पाते हैं और कोपदृष्टिके द्वारा देखे जानेसे दानव लोग नष्ट हो जाते हैं तथा सूर्य, यम और चायु आदि जिनके भयसे भीत होकर अपने-अपने कार्योंमें प्रवृत्त होते हैं, वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रोंके समक्ष दर्शन दें।

कल्याणकारी संकल्प

यजाग्रतो दूरमुदैति देवं तदु सुमस्य तथैवैति। दुरङ्कमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्ये घरः शिवसङ्ख्यमस्तु।।

जो जागते हुए पुरुषका दूर चला जाता है और सोते हुए पुरुषका वैसे ही निकट आ जाता है, जो परमात्माके साक्षात्कारका प्रधान साधन है, जो भूत, भविष्य, वर्तमान, सॅनिक्ट और व्यवहित पदार्थीका एकपात्र ज्ञाता है और जो विषयोंका ज्ञान प्राप्त करनेवाले श्रोत्र आदि इन्द्रियोंका एकमात्र प्रकासक और प्रवर्तक है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे वृक्त हो।

> येन कर्माण्यपसो मनीविणो बड्रे कुण्यन्ति विद्वेषु धीराः। यदपूर्व यक्षमनः प्रजानां तन्ये मनः शिवसङ्करपमस्तु॥

कर्मनिष्ठ एवं श्रीर विद्वान् जिसके द्वारा यक्षिय पदार्थीका ज्ञान प्राप्त करके यक्षमें कर्मीका विस्तार करते हैं, जो इन्द्रियोंका पूर्वज अथवा आत्पस्वरूप है. जो पूज्य है और समस्त प्रजाके हृदयमें निवास करता है, मेरा वह मन कल्यानकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

> वलाजानमृत चेतो धृतिहा वञ्न्योतिरनापृतं प्रजास्। यागात्र ऋते कि छन कर्म कियते तसे मनः शिवसङ्करपमस्तु॥

जो विशेष प्रकारके ज्ञानका कारण है, जो सामान्य ज्ञानका कारण है, जो मैर्बरूप है, जो समस्त प्रजाके हदयमें रहकर उनकी समस्त इन्द्रियोंको प्रकाशित करता है, जो स्वृत शरीरकी मृत्यु होनेपर भी असर रहता है और जिसके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पमे युक्त हो।

येनेदं भूतं भूवनं भविष्यन् परिगृहीतममृतेन सर्वप्। येन यहस्तावते साहोता तन्मे यनः शिवसङ्कल्पपात्।।

जिस अमृतस्वरूप मनके द्वारा भृत, वर्तमान और भविष्यत्सम्बन्धी सभी वस्तुएँ ग्रहण की जाती हैं और जिसके द्वारा सात होताओंबाला अग्रिष्टोम यज्ञ सम्बन्न होता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

> यरिमञ्जनः साम यजुरशिष यरिमन् प्रतिद्विता रचनाधाविकाराः। यस्मिश्चित्रकं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे यनः शिवसङ्करपमस्तु।।

जिस मनमें रथचक्रकी नाधिमें लगे अर्रोके समान ऋखेद और सामबेद प्रतिष्ठित हैं तथा जिसमें यजुर्वेद प्रतिष्ठित है, जिसमें प्रजाका सब पदायाँसे सम्बन्ध रखनेवाला सम्पूर्ण ज्ञान ओतप्रोत है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

> सुषारविरद्यानिव यन्यनुष्याधेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। इत्प्रतिष्ठं यदिवरं जविष्ठं तन्ये मनः शिवसङ्करपमस्तु॥

श्रेष्ठ सारथि जैसे घोडोंका संचालन और रासके द्वारा घोडोंका नियन्त्रण करता है, वैसे ही जो प्राणियोंका संचालन तथा नियन्त्रण करनेवाला है, जो इदयमें रहता है, जो कभी बढ़ा नहीं होता और जो अत्यन्त वेगवान् है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

'ॐ असतो मा सद गमय'

विद्याकीर्तिप्रभालक्ष्मीजयारोग्यादिकारकम् । यः पठेच्हृणुयाद्वद्र सर्ववित् स दिवं स्रजेत्। [भगवान् हरिने कहा —] हे रुद्र! यह गरुडमहापुराण विद्या, यह, सौन्दर्य, लक्ष्यो, विजय और आरोग्यादिका कारक है। जो मनुष्य इसका पाठ करता है या सुनता है, वह सब कुछ जान जाता है और अन्तमें उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। यः पठेच्हृणुयाद्वापि भावचेद्वा समाहितः॥

संलिखेल्लेखयेद्वापि धारयेत् पुस्तकं नन् । धर्माची प्राप्नुवाद्धमंपद्यांची चार्धमाप्नुवात् । जो मनुष्य एकाग्रचित होकर इस महापुराणका पाट करता है, सुनता है अथवा सुनाता है, जो इसको लिखता है, लिखाता है या पुस्तकके ही रूपमें इसे अपने पास रखता है, वह बाद धर्माची है तो उसे धर्मकी प्राप्ति होती है, बदि वह अर्थका अभिलाभी है तो अर्थ प्राप्त करता है।

गारु दे यस्य हस्ते तु तस्य हस्तगती नयः। यः पठेक्कृणुयादेतद्भक्तिं मुक्तिं समाजुयात्। जिस मनुष्यके हाथमें यह गरुडमहापुराण विद्यमान है. उसके हाथमें ही नीतियोंका कोश है। जो प्राणी इस पुराणका पाठ करता है या इसकी सुगता है, यह भीग और मोक्ष दोनोंको प्राप्त कर लेता है।

धर्मार्थकाममोक्षांश प्राज्याव्हवणादितः । पुत्राधी लभते पुत्रान् कामार्थी काममाज्यात् ॥ इस महापुराणको पदने एवं सुननेसे मनुष्यकं धर्म, अर्थ, काम और मोक्स—इन चारों पुरुषाधीकी सिद्धि हो जाती है। इस महापुराणका पाट करके या इसको सुन करके पुत्र वाहनेवाला पुत्र प्राप्त करता है तथा कामनाका इस्तुक अपनी कामना-प्राप्तिमें सफलता प्राप्त कर लेता है।

विद्यार्थी लभते विद्यां जयार्थी लभते जयम्। ब्रह्महत्यादिना पाणी पापसुद्धिमवाणुणात्॥ विद्यार्थीको विद्या, विजिगीयुको विजय, ब्रह्महत्यादिसे युक्त पाणी पापसे विद्युद्धिको प्राप्त होता है। वन्ध्यापि लभते पुत्रं कत्या विन्दति सत्यतिम्। क्षेत्राची लभते क्षेत्रं भौगार्ची भौगमाणुणात्॥ वन्ध्या स्त्री पुत्र, कत्या सजन पति, क्षेत्राची क्षेत्र तथा भौग चाहनेकला भौग प्राप्त करता है।

मङ्गलाची मङ्गलानि गुणाची गुणमाजुवात्। काव्याची च कवित्वं च साराकी सारमाजुवात्। मङ्गलकी कामनावाला व्यक्ति अपना सङ्गल, गुणोका इच्छुक व्यक्ति गुण, काच्य करनेका अधिलाची मनुष्य कवित्यत्रकि और जीवनका सारतत्व चाहनेवाला व्यक्ति सारतत्व प्राप्त करता है।

ज्ञानाधीं लभते जानं सर्वसंसारपर्दनम्। इदं स्वस्त्ययनं धन्यं गारुडं गरुडेरितम्। ज्ञानाधीं सम्पूर्ण संसारका मर्दन करनेवाला ज्ञान प्राप्त करता है। [हे स्ट्रा] प्रक्षिकेट गरुडके द्वारा कहा गया यह गारुडमहापुराण धन्य है। यह तो समका करूपाल करनेवाला है।

नाकाले मरणं तस्य श्रनोकमेकं तु यः पठेन्। श्रनोकार्धपटनादस्य दुष्टशङ्कार्थो धूलम्। जो मनुष्य इस महापुराणके एक भी रलोकका पाठ करता है, उसकी अकाल-मृत्यु नहीं होतो। इसके मात्र आधे श्लोकका पाठ करनेसे निश्चत ही दुष्ट शतुका अय हो जाता है।

अतो हि गारु है पुख्यं पुराणं शास्त्रसम्मतम् । गारु हैन सम्म नास्ति विक्युधर्मप्रदर्शने ॥ इसलिये यह गरु हपुराण मुख्य और शास्त्रसम्मत पुराण है। विक्युधर्मके प्रदर्शनमें गरु हपुराणके समान दूसरा कोई भी पुराण नहीं है।

यद्या सुराणां प्रवरो जनार्दनी यद्यायुधानां प्रवरः सुदर्शनम् । तका पुराणेषु च गारु इ स मुख्यं तदाहुईरितस्वदर्शने ॥ जैसे देवोमें जनार्दन ब्रेड हैं और आयुधीमें सुदर्शन ब्रेड हैं, वैसे ही पुराणीमें वह गरुडपुराण हरिके तत्वनिरूपणमें मुख्य कहा गया है।

गारुडाख्यपुराणे तु प्रतिपाद्यो हरि: स्मृत:। अतो हरिनैमस्कार्यो गम्यो योग्यो हरि: स्मृत:।। इस गरुडपुराणमें हरि ही प्रतिपाद्य हैं, इसलिये हरि हो नमस्कार करने योग्य हैं, हरि ही करण्य हैं और वे हरि ही सब प्रकारसे सेवा करने योग्य हैं।

पुराणं गारुडं पुण्यं पवित्रं पापनाज्ञनम् । भूण्वतां कामनापूरं श्रोतव्यं सर्वदेव हि॥ यहचेदं शृणुवान्मत्यां यहचापि परिकीतेयेत् । विहास यातनां पोरां धूनपापो दिवं द्वजेत्॥

यह गरुडमहापुराण बढ़ा ही पवित्र और पुण्यदायक है। यह सभी पापोंका विनाशक एवं सुननेवालोंकी समस्त कामनाओंका पूरक है। इसका सदैव अवण करना चाहिये। जो मनुष्य इस महापुराणको सुनता या इसका पाठ करता है, वह निष्पाप होकर यमराजको भयंकर यातनाओंको तोडकर स्वर्गको प्राप्त करता है।

1

गरुडपुराण—सिहावलोकन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देखीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयपुदीरयेत्॥ नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीनर-नारायण और भगवती सरस्वती तथा व्यासदेवको नमन करके पुराणकी चर्चा करनी चाहिये।

पुराण बाङ्मयमें गरुडपुराणका महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि सर्वप्रथम परब्रह्म परमात्मप्रभु साक्षात् भगवान् विष्णुने ब्रह्मादि देवताओंसहित देवदेवेधर भगवान् स्ट्रदेवको सभी शास्त्रोंमें सारभूत तथा महान् अर्थ बतानेवाले इस 'गरुडमहापुराज'को सुनाया था।

एक बार तीर्थयात्राके प्रसंगमें सर्वशास्त्रपारंगत शानाचित महात्मा सृतजी नैमिबारण्यमें पथारे, वहाँ शौनकादि ऋषि-मुनियोंने उनकी पूजा की और जिज्ञासारूपमें कुछ प्रश्न भी किये। प्रश्नोंके समाधानमें स्ताबीने गरुडमहापुराणकी कथा उन ऋषि-महर्षियोंको सुनायी। सुतजीने यह कथा भगवान् व्यासजीसे सुनी थी, व्यासजीको यह कथा पितामह ब्रह्मासे प्राप्त हुई। वास्तवमें पूलरूपसे इस महापुराणको गरुहजीने कश्यप ऋषिको सुनाया था।

प्राचीनकालमें पृथ्वीपर पश्चिराज गरुडने तपस्याके द्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना की, जिससे संतुष्ट होकर प्रभुने अभीष्ट वर माँगनेके लिये कहा। गरुडने भगवान्से निवेदन किया कि नागोंने मेरी माता विनताको दासी बना लिया है। हे देव! आप प्रसन्न होकर मुझे यह वरदान प्रदान करें कि मैं उनको जीतकर अमृत प्राप्त करनेमें समर्थ हो सक्नै और वैसा ही करनेकी कृपा करें।

प्रदान किये तथा कहा कि आप अत्यन्त शक्तिसम्पन होकर मेरे वाहन बनेंगे। विषोंके विनाशकी शक्ति भी आपको प्राप्त होगी, मेरी कृपासे आप मेरे ही माहात्म्यको कहनेवाली है, वैसा ही आपमें भी प्रकट होगा। आपके द्वारा प्रजीत यह पुराणसंहिता, आपके 'गरुड' नामसे लोकमें प्रसिद्ध होगी। और श्रीरूपमें विख्यात हैं, उसी प्रकार हे गरुड! सभी पुराणोंमें यह गरुडमहापुराण भी ख्याति अर्जित करेगा। जैसे विश्वमें मेरा कीर्तन होता है, वैसे ही गरुड नामसे आपका भी संकीर्तन होगा। हे पश्चित्रेष्ठ। आप मेरा ध्यान करके उस पुराणका प्रणयन करें '-

यचार्ड देवदेवामां औः ख्यातो विनतास्त। नद्या डवार्ति पुराणेषु गारु है गरु हैयाति॥ वचाई कीर्तनीयोऽच तथा त्वं गरुडात्मना। यां ब्याच्या पश्चिमुख्येदं पुराणां यद गारु हम्। (\$1 2146-40)

भगवान्के द्वारा यह वरदान दिये जानेके बाद, इसी सम्बन्धमें करवप ऋषिके द्वारा पूछे जानेपर गरुहने इसी पुराणको उन्हें सुनाया। कश्यपने इस गरुडमहापुराणका हवन करके 'गारुटी विद्या' के बलसे एक जले हुए वृक्षको भी जीवित कर दिया था। गरुडने स्वयं भी इसी विद्याके द्वारा अनेक प्राणियोंको जीवित किया था।

इस गरुद्रमहापुराणके प्रारम्भमें सर्ग-वर्णन किया गया है। तदननार देवार्चनको विधियाँ प्रस्तुत की गयी हैं. 'विष्णुपद्भरस्तोत्र' कहा गया है, जो जीबोंके लिये अत्यन्त कल्यानकारी है। इसके बाद भोग और मोक्षको प्रदान करनेवाले ध्यानयोगका वर्णन हुआ है-

'मैं जगतुका साक्षी, जगतुका नियन्ता और परमानन्दस्थरूप हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुबुधि—इन सभी अवस्थाओं में जगत्का साक्षी होते हुए भी मैं इन अवस्थाओंसे रहित मौंको नागोंको माता कडूको दासतासे मुक्त करा सकुँ। मैं हूँ मैं हो तुरीय ब्रह्म और विधाता हूँ। मैं दुररूप अर्थात् आपका बाहन बर्ने और नागोंको बिदोर्ण करनेमें समर्थ हो समस्त प्रपत्रका द्रष्टा, दृश्य एवं दृष्टि हैं। मैं ही निर्गुण, मुक्त, सकै तथा जिस प्रकार प्राणसंहिताका रचनाकार हो सकै, बुद्ध, शुद्ध-प्रबुद्ध, अजर, सर्वव्यापी, सत्यस्यरूप एवं शिवस्वरूप परमात्मा हैं। इस प्रकार जो विद्वान् इन भगवान् श्रीहरिने पश्चिराज गरुडको ये अभीष्ट वरदान परमपट परमेश्वरका ध्यान करते हैं, वे निश्चय ही ईश्वरका सारूप्य प्राप्त कर लेते हैं। यह स्वयं ब्रीहरि भूतभावन भगवान् शहूरसे कहते हैं कि है सुव्रत शहूर! आपसे ही इस ध्यानयोगकी चर्चा मैंने की है। जो व्यक्ति सदैव इस पुराणसंहिताका प्रणयन करेंगे। मेरा जैसा स्वरूप कहा गया ध्यानयोगका पाठ (मनन-चिन्तन) करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीरुद्र पूछते हैं — हे प्रभो! मनुष्य किस 'हे विनतासुत! जिस प्रकार देवदेवोंके मध्यमें मैं ऐश्वर्ष मन्त्रका जप करके इस अधाह संसार-सागरसे पार हो सकता है ? इसपर श्रीहरिने उत्तर दिया कि परब्रह्म परमातमा, जुद्ध, ऐश्वर्यसम्पन्न, सत्य, परमानन्दस्बरूप, आत्यस्वरूप, नित्य परमेश्वर भगवान् विष्णुकी सहस्रनामसे स्तृति करनेपर परब्रह्म तथा मरमञ्योति स्वरूप हैं, ऐसे वे परमेश्वर मनुष्य भवसागरको पार कर सकता है। इस क्रममें समस्त पापोंको विनष्ट करनेवाले 'विष्णुसहस्रनामस्तोत्र' को भगवानुने उन्हें सुनाया। यह विष्णुसहस्रनाम इस पुराणमें प्रस्तुत है, जो अन्य विष्णुसहस्रनामोंसे भिन्न है।

भगवान् विष्णुकी आराधनाके बाद भगवान् सूर्यकी करनेवाली पुण्यप्रदायिनी सर्वदेश्वमय मृत्युञ्जयपूजाका निरूपन करे तो मुक्ति प्राप्त हो जाती है। हुआ है तथा मृत्युक्षयजपकी महिमा भी प्रस्तुत की गयी है। यह मन्त्र मृत्यु और दरिद्रताका मर्दन करनेवाला है तथा वास्तुमण्डल-पूजाकी विधि तथा प्रासाद-लक्षण (वास्तुकी उसके कष्ट दूर हो जाते हैं।

उनके एक हाथमें अभयमुद्रा है और एक हाथमें वरदमुद्रा। पृथक् रूपसे ही उनके धर्मीका वर्णन किया गया है। दो हाथोंमें अमृतकलश है। इस रूपमें अमृतेश्वरका ध्यान करनेके साथ ही भगवान्के वामाङ्गमें स्थित अमृतभाषित्री अमृतादेवीका भी ध्यान करना चाहिये। देवीके दायें हाधमें कलश और बायें हाथमें कमल सुशोधित रहता है।

इस महापुराणमें प्राणेश्वरी विद्याका निरूपण हुआ है। सपौंके विष हरनेके उपाय तथा दृष्ट उपद्रवाँको दूर करनेके मन्त्र दिये गये हैं। पञ्चसक्त्रपूजन, हितार्सन-विधि, भगवती त्रिपुरा तथा गणेश आदि देवोंकी पूजाविधि प्रस्तुत की गयी है। भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली ब्रोगोपासकी तथा भगवान् श्रीधरविष्णुकी पूजाका वर्णन भी किया गया है। इसके साथ ही श्रीधरविष्णुका ध्यान तथा उनकी स्तृति प्रस्तृत की गयी है। पञ्चतत्त्वाचेन-विधि, सुदशंनचक्र-पूजाविधि, भगवान हयग्रीवके पुजनकी विधि, देवी दुर्गाका स्वरूप, सूर्यध्यान तथा माहेश्वरीपुजन-विधि प्रस्तुत की गयी है।

तदनन्तर ब्रह्ममूर्तिके ध्यानका निरूपण किया गया है। 'हृदयकमलको कर्णिकाके मध्य विराजमान रहनेवाले. शंख, चक्र, गदा और कमलसे सुशोधित तथा श्रीवत्स, कौस्तुभर्माण, बनमाला एवं लक्ष्मीसं विभूषित नित्य-

व्यानके योग्य हैं तथा पूजनीय हैं।' मैं भी वही हैं-ऐसा समझना चाहिये।

इस प्रकार आत्मस्वरूप नारायणका यम-नियम इत्यादि योगके साधनोंसे एकाग्रचित्त होकर जो ध्यान करता है, वह मनोऽभिलयित इच्छाओंको प्राप्तकर देवस्वरूप हो जाता है। पूजाका भी वर्णन मिलता है। तदनन्तर जीवाँका उद्धार यदि निष्काम होकर उन हरिकी मूर्तिका ध्यान और स्तवन

इसके बाद विविध शालग्राम शिलाओंके लक्षण, शिव, विष्णु, सूर्य आदि सभी देवोंका कारणभूत है 'ॐ दृष्टिसे) प्रस्तुत किये गये हैं। देवप्रतिष्ठाकी भी सामान्य जुं सः '- यह महामन्त्र 'अमृतेत' के नामसे कहा जाता है। विधि बतायी गयी है। वर्ण एवं आह्रय-धर्मीका निरूपण इस मन्त्रका जप करनेसे प्राणी सम्पूर्ण पापीसे छूट जाता किया गया है। इसके साथ ही सदाचार एवं शीखाबारकी और मृत्युरहित हो जाता है। अर्थात् मृत्युके समान होनेवाले महत्ता बतायी गयी है। वर्णाश्रम-धर्मका निरूपण करते हुए ब्रह्मानीने ज्यासत्रीसे कहा कि परमात्पप्रभु परमेश्वरकी पूजा भगवान् मृत्युक्तय क्षेतकमलके कपर बैठे हुए करदहस्त बाहान, श्रीष्ठय, बैश्य और शुद्द- इन चारी वर्णीको अपने-तथा अभयमुद्रा धारण किये रहते हैं। तात्पर्य यह है कि अपने धर्मके अनुसार करनी चाहिये। उनके द्वारा पृथक्-

> यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह, अध्ययन और अध्यापन-ये छ: कर्म ब्राह्मणके धर्म बताये गये। दान, अध्ययन तथा यळ- ये क्षत्रिय तथा वैश्वके साधारण धर्म है। शस्त्रोपजीवी होना तथा प्राणियोंको रक्षा करना क्षत्रियोंका विशेष धर्म है। पहुपालन, कृषिकर्म तथा व्यापार—ये वैश्यवर्णकी बुत्ति कही गयो है। द्विजातिको सेवा शुद्रका कर्तव्य माना गया है। जिल्पकारी उनकी आजीविका कही गयी है।

इसी प्रकार आव्रम-धर्मका भी वर्णन हुआ है। भिक्षाचरण, गुरुशुबुषा, स्वाध्याय तथा अग्निकार्य-ये बह्यवारियोंके धर्म बताये गये है।

अग्निहोत्र-धर्मका पालन तथा कहे गये अपने विहित कमॉके अनुसार जीविकोपार्जन, पर्वरात्रिको छोडकर अन्य गाँउचोंमें धर्मपत्रोका सहवास, देवता, पितर तथा अतिधिगणोंकी विधिवत् पूजामें संलग्न रहना और ब्रुतियों एवं स्मृतियों में कहे गर्व धर्मोंके अनुसार अर्थोपार्जन करना - ये गृहस्थेंकि धर्म कहे गये हैं। इसके साथ ही संस्कारोंका भी वर्णन किया गया है, जिसके अनुसार गर्भाधानसे लेकर मृत्युपर्यन्तके संस्कार बताये गये हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालकोंके लिये उपनयन-संस्कारकी अनिवार्यताका दिग्दर्शन कराया

गृहस्थाश्रमके धर्ममें स्वियोंके कर्तव्यका भी विवेचन हुआ है। स्त्रियोंको अपने पतिकी आज्ञाका पालन करना चाहिये, यही उनका परम धर्म है। जिस घरमें पति-पत्नीके मध्य किसी प्रकारका विरोध नहीं होता. उस घरमें धर्म. अर्थ और काम - इस त्रिवर्गको अधिवृद्धि होती है। जो स्त्री पतिकी मृत्युके पश्चात अथवा उसके बौवित रहते हुए अन्य पुरुषका आश्रय नहीं लेती, वह इस लोकमें वह प्राप्त करती है और अपने पातिवृत्यके प्रभावसे परलोकमें जाकर पार्वतीके साहचर्यमें आनन्द प्राप्त करतो है।

अग्निहोत्रका पालन, पृथ्वीपर शयन, मृगचर्मका धारण, वनमें निवास, दूध, मूल, फल तथा निवारका पक्षण, निविद्ध कर्मका परित्याग, त्रिकाल-संध्या, ब्रह्मचर्यका पालन और देवता तथा अतिथिको पुत्रा - यह वानप्रस्थोका धर्म है।

सभी प्रकारके आरम्भोंका परित्याग, भिश्वासे प्राप्त अनका भोजन, वक्षको छायामें निवास, अपरिग्रह, अद्रोह, सभी प्राणियोमें समानभाव, प्रिय तथा अग्रियको प्राप्तिमें एवं सख और द:खर्में समान स्थिति, रारीरको बाह्य और आन्तरिक मुद्धता, वाणीमें संयम, परमात्माका ध्यान, सभी इन्द्रियोंका निग्रह, धारणा तथा ध्यानमें तत्परता और भाव-जिंद- ये सभी परिवाजक या संन्यासीके धर्म कहे गये हैं।

'इसके साथ ही ऑहंसा, प्रिय और सत्य बचन पवित्रता, क्षमा तथा दया-सभी आन्नमों और वर्जीका सामान्य धर्म कहा गया है'-

> अहिंसा सुनता वाणी सत्वशीचे क्षमा दवा। वर्णिनां सिंगिनां चैय सामान्यो धर्म उच्यते॥

> > (\$1 353133)

सदाचार और शौचाचारका निरूपण करते हुए सुतजी शौनकादि ऋषियोंसे कहते हैं कि ब्रति (बेद) और स्मृति (धर्मशास्त्र)-का भली प्रकारसे अध्ययन करके ब्रति-प्रतिपादित धर्मका पालन करना चाहिये, क्योंकि ब्रति ही सब कमौंका मुल है। ब्रतिमें कहा गया धर्म परम धर्म है। स्मृति और शास्त्रसे प्रतिपादित धर्म अपर धर्म है। यदि प्रमाण माने जाते हैं। कर्ममार्गका दर्शन करानेके लिये इति

और स्मृति ये नेत्रस्वरूप हैं। यदि इन दोनोंसे दिशा-निर्देश नहीं मिल पाता है तो सदाचार (शिष्टाचार)-धर्मका पालन करना चाहिये। इस प्रकार श्रृति, स्मृति और शिष्टाचारसे प्राप्त धर्म - ये तीन प्रकारके सनातन धर्म हैं।

सत्य, दान, दया, निलॉभता, विद्या, यह, पूजा और इन्द्रिय-दमन - ये आठ शिष्टाचारके पवित्र लक्षण कहे गये है। यहाँ प्रात:काल जगनेसे लेकर रात्रिमें सोनेतक पालन करने योग्य गृहस्थके धर्मका वर्णन भी हुआ है। गृहस्थको ब्राह्ममृहतंमें निदाका परित्याग करके धर्म और अर्थका भलीभौति चिन्तन करना चाहिये। शौचादि क्रियाओंसे निवृत्त होकर दन्तधावन, स्नान करके समाहितचित्त होकर संध्योपासन, तर्पण, देवाचेन आदि नित्यक्रिया सम्पन्त करनी चाहिये। शौचादि क्रियाओंकी शुद्धिका विस्तृत वर्णन यहाँ हुआ है।

सुद्धि दो प्रकारको है - पहली बाह्य तथा दूसरी आध्यन्तरिक। मिट्टी तथा जलसे की जानेवाली बाह्य शुद्धि और भावोंको सुद्धि हो आभ्यन्तरिक शुद्धि मानी गयी है। आवमनको शुद्धिका प्रमुख अङ्ग माना गया है।

दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकारका हित सम्पादन होनेके कारण प्रात:कालके स्नानको अत्यधिक प्रशंसा की गयी है। जरीर अत्यन्त मलिन है। उसमें स्थित नव छिट्रोंसे सदैव यल निकलता ही रहता है। अतः प्रात:कालका स्नान करीरकी कृद्धिका हेत्. मनको प्रसन्न रखनेवाला तथा रूप और सौभाग्यको बुद्धि करनेवाला है। यह शोक और इ.खका विनाशक है। गङ्कारनानकी विशेष परिमा है। गङ्गास्नानसे सर्वविध पापीका नाश होता है।

शास्त्रोंमें तीन करोड़ मंदेह नामक राक्षस माने गये हैं। वे इरात्मा राक्षस सदैव प्रात:काल उदित हो रहे सूर्यदेवको खा जानेकी इच्छा करते हैं। अत: सूर्योदयसे पूर्व स्नान करके संध्योपासनकर्म नहीं करना सर्यदेखका ही घातक है। जो लोग वथाविधि स्नानकर यथाधिकार संध्योपासन करते हैं, वे मन्त्रसे पवित्र किये गये अनलरूपी अर्घ्य (जल)-से उन मंदेह नामक राक्षसोंको जला देते हैं। दिन और रातका जो संधिकाल है, वहीं संध्याकाल (४८ मिनट) उपलब्ध श्रुतियोंमें कोई कर्म जात नहीं हो रहा है तो उसको होता है। यह संध्याकाल सूर्योदयसे पूर्व दो घडीपर्यन्त रहता स्मृतिशास्त्रके अनुसार जानकर करना चाहिये। क्योंकि है, जो उपासक प्रात:काल नित्य 'गायत्रीमन्त्र'का जप स्मृतिशास्त्र भी श्रुतिमुलक होनेके कारण ही मर्मके बोधमें करता है, वह कमलपत्रकी भौति पापसे संलिप्त नहीं होता। इस संसारमें आठ महल हैं-- ब्राह्मण, गौ, अग्नि,

हिरण्य (सोना), घृत, सूर्य, जल और राजा। सदैव इनका दर्शन और पूजन करना चाहिये तथा प्रधासाध्य अपने दाहिने करके ही चलना चाहिये।

'माता, पिता, गुरु, भाता, प्रजा, दोन, दु:खी, आजितजन, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि — ये पोष्यवर्ग कहे गये हैं। पोष्यवर्गका भरण-पोषण करना स्वगंका प्रशस्त साधन है। अत: मनुष्यको पोष्यवर्गका पालन-पोषण प्रयवपूर्वक करना चाहिये। इस संसारमें उसी व्यक्तिका जीवन बेह हैं. जो बहुतोंके जीवनका साधक बनता है अर्थात् बहुतोंका पालन-पोषण करता है। जो मात्र अपने भरण-पोषणमें लगे. रहते हैं, वे जीवित रहते हुए भी मरे हुएके समान हैं; क्योंकि अपना पेट कुता भी पालता है'—

> माता पिता गुरुश्रांता प्रजा दीनाः समाक्षितः ॥ अभ्यायतोऽतिथिक्षारिनः पोष्पवर्गा उदाइताः । भरणं पोष्पवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् ॥ भरणं पोष्पवर्गस्य तस्याद् यसेन कारयेत् । स जीवति वाद्येको बहुभियाँपजीव्यति ॥ जीवनो पृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरम्भराः । स्वकीयोदरपूर्तिश्च कुक्कुरस्यापि विक्रते॥

> > (41341)04-63)

व्यवहारमें अर्थका आत्यधिक महत्त्व है। अर्थ उन्हें हो कहते हैं जो हमारे सभी कार्योंको सम्यन्तवमें अनिवार्य रूपसे उपयोगी हों। इसी दृष्टिसे सभी रत्नोंको निधि पृथ्वो. धान्य, पशु, स्त्रियाँ आदि अर्थ माने जाते हैं। इस तरह अर्थका महत्त्व होनेपर भी इसके उपार्जनमें संयम आवश्यक है। शास्त्रसम्मत विधिसे अर्जित धनके लाभांशसे सभी लोगोंको पितृगण, देवगण तथा ब्राह्मणोंको पूजा करनी चाहिये। ये संतुष्ट होकर धनोपार्जनमें अज्ञानवत हुए दोषको नि:संदेह शान्त कर देते हैं।

विद्या, शिल्प, वेतन, सेवा, गोरक्षा, व्यापार, कृषि, वृति, भिक्षा और व्याज — ये इस जीवनयापनके साधन हैं।

नित्य, नैमितिक, काम्य, क्रियाङ्ग, मलापकर्षण, मार्जन, आसमन और अवगाहन — ये आठ प्रकारके स्नान बताये गये हैं। प्रात:काल पूजा-पाठ आदि धार्मिक कृत्यके लिये जो स्नान किया जाता है उसीको नित्य स्नान कहा गया है। साण्डाल, शव, विष्ठा तथा रजस्यला आदिके स्पर्शक बाद जो स्नान किया जाता है, वह नैमितिक कहलाता है। पुष्य आदि नक्षत्रोंमें जो स्नान किया जाता है, उसे काम्य स्नान कहते हैं। इन स्नानोंको तोर्चका अभाव होनेपर उच्च जल अथवा किसी प्रकार प्राप्त कृत्रिम जलसे सम्पन्न कर लेना चाहिये।

भूमिसे निकला जल पवित्र होता है, इस जलकी अपेक्षा पर्वतसे निकलनेवाले इरनेका जल पवित्र होता है। इससे भी बढ़कर पवित्र जल सरोवरका है। उसकी अपेक्षा नदीका जल पवित्र है, नदोंके जलसे तीर्थजल श्रेष्ठ है। 'इन सभी जलोंकी अपेक्षा गङ्गाका जल परम पवित्र है। गङ्गाके श्रेष्ठतम जलसे जोवनपर्यन किये गये पापोंका विनास सीग्र हो जाता है'—

तीर्थतीर्थं ततः पुष्यं गाई पुष्यं तु सर्वतः॥ गाई पयः पुनात्वाशु पापमामरणान्तिकम्।

(\$1 2031 20-226)

मनुष्य आचार (सदाचार-श्रीचाचार)-से ही सब कुछ प्राप्त कर लेता है। संध्या, स्तान, जप, होम, देव और अतिधिपूजन — इन पदकर्मोंको प्रतिदिन करना कर्तव्य है। पहनहायश्रीमें — अध्ययन और अध्यापन ग्रहायश्र, तर्पण पितृपञ्ज, होम देवपञ्ज, बलिवैश्वदेव भृतयञ्ज तथा अतिधिका पूजन मनुष्ययञ्ज है। गृहस्थको दिनका यथायोग्य पाँच विभाग करके पितृगण, देवगणकी अर्चा और मानवोधित कर्म्य करका चाहिये। जो मनुष्य अन्नदान करके मर्वप्रथम बाह्यणको भोजन कराकर अपने मित्रगणीके साथ स्वयं भोजन करता है, वह देहत्यागके बाद स्वर्गलोकके मुखका अधिकारी बन जाता है।

अभव्यभक्षण (शास्त्रनिषद्ध भोजन), योरी और अगम्बागमन करनेसे व्यक्तिका पतन हो जाता है। सदाचार एवं धर्मका पालन करनेवाला अधिकारी मनुष्य साक्षात् केतव (विष्णु) हो माना गया है।

कितपुगमें दानधर्मका विशेष महत्त्व है। सत्पात्रमें ब्रह्मपूर्वक किये गये अर्थ (भोग्य वस्तु)-का प्रतिपादन (विनियोग) दान कहलाता है। इस लोकमें यह दान भोग तथा परलोकमें मोध प्रदान करनेवाला है। मनुष्यको चाहिये कि वह न्यायपूर्वक अर्थका उपार्जन करे; क्योंकि न्यायपूर्वक उपार्जित अर्थका ही दान-भोग सफल होता है।

जलदानसे तृष्ति, अन्तदानसे अक्षय सुख, विलदानसे अभोष्ट संतान, दीपदानसे उत्तमनेत्र, भूमिदानसे समस्त अभिलियत पदार्थ, सुवर्णदानसे दीघं आयु, गृहदानसे उत्तम भवन तथा रजतदानसे उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है। वस्त्र प्रदान करनेसे चन्द्रलोक तथा अक्षदान करनेसे अभिनीकुमारके लोककी प्राप्ति होती है। वृष्यभका दान देनेसे विपुल सम्पत्ति और गोदानसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

यान और शय्याका दान करनेपर भावां, भवभोतको अभय प्रदान करनेसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। धान्यदानसे शाश्चत अविनाशी सुख तथा वेदाध्यापन (वेदके दान)-से ब्रह्मका सांविध्य-लाभ होता है। गायको पास देनेसे पापीसे मृक्ति हो जाती है। ईंधनके लिये काष्ट्र आदिका दान करनेसे व्यक्ति प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी हो जाता है। रोगियोंके रोग-शान्तिके लिये औषधि, तेल आदि पदार्थ एवं भीजन देनेवाला मनुष्य रोगरहि॥, सुखी और दोर्घाप् हो जाता है। जो मनुष्य परलोकमें अक्षय सुखकी अभिलाधा रखता है, उसे अपने लिये संसार वा पामें जो वस्तु सर्वाधिक प्रिय है, उस वस्तुका दान गुमवान् ब्राह्मणको करना चाहिये।

दानधर्मसे बढकर क्षेष्ठ धर्म इस संसारमें प्राणियोंके लिये कोई दूसरा नहीं है। गी, ब्राह्मण, अग्नि तथा देवोंको दिये जानेवाले दानसे जो मनुष्य मोहवज दूसरोंको रोकत है, वह पापी तिर्यक् (पक्षी)-की योनिको प्राप्त करता है।

दानधर्मके बाद प्रायश्चितका निरूपण किया गया है। ब्रह्महत्या, मंदिरापान, स्वर्णको चोरी, और गुरुपत्रोगमन – ये चार महापाप कहे गये हैं। इन सभीका साथ करनेवाला पाँचवाँ महापातको होता है। गोहत्या आदि जो अन्य पाप हैं, वे उपपातकर्म माने गये हैं । इन सभी पापीका प्रायक्षित-विधान यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

इसके अनन्तर भारतवर्षका वर्णन, तीवाँका वर्णन और उनकी महिमा प्रस्तुत की गयी है। ज्योतिश्चक्रमें वर्जित नक्षत्र, उनके देवता एवं कतिएय सूध-असूध योगों तथा मुहुतौंका वर्णन, ग्रहदशा, यात्रा, शकुन, छोंकका फल, ग्रहोंके शुभ एवं अशुभ स्थान तथा उनके अनुसार शुभाशुभ फलका विवेचन यहाँ प्रस्तुत है। इसो प्रकार लग्न-फल राशियोंके चर-स्थिर आदि भेद, ग्रहोंका स्वभाव तथा सात वारोंमें किये जाने योग्य प्रशस्त कार्यका भी निरूपण किया गया है। सामृद्रिक शास्त्रके अनुसार स्वी-पुरुषके शुभाशुभ लक्षण, मस्तक एवं हस्तरेखासे आयुका परिज्ञान भी यहाँ कराया गया है। स्वरोदय विज्ञानका निरूपण भी हुआ है। तिथि, नक्षत्र आदि व्रतोंका निरूपण, चातुर्मास्यव्रतका निरूपण, शिवरात्रिवत-कथा तथा व्रत-विधान, एकादशी माहात्म्य आदि प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त सुर्यवंश-चन्द्रवंशका वर्णन, भविष्यके राजवंशका वर्णन

किया गया है। रज़ोंके प्रादर्भावका आख्यान, वज्र (हीरे)-को परीक्षा, पद्मराग, मरकतमणि, इन्द्रनीलमणि, वैदुर्यमणि, पुष्परागमणि, विद्रममणि, स्फटिक, रुधिराक्षरत, पुलक, कर्केतनमणि, भीष्मकर्माण तथा मुका आदि खोंके विदिध भेद, लक्षण और परीक्षण-विधि बतायी गयी है।

गङ्गा आदि विविध तीथौं- प्रयाग, वाराणसी, कुरुक्षेत्र, द्वारका, केदार, बदरिकाश्रम, श्वेतद्वीप, मायापुरी (हरिद्वार), नैमिपारण्य, पुष्कर, अयोध्या, चित्रकृट, काञ्चीपुरी, तुंगभद्रा, ब्रोतील, सेतुबन्ध-एमेश्वर, अमरकण्टक, उञ्जयिनी, मधुरापुरी आदि स्थानोंको महातीर्थ कहा गया है। इन पवित्र तीर्थस्थलोंमें किया गया स्नान, दान, जप, पूजा, बाद तथा पिण्डदान आदि अक्षय होता है।

गवातीर्घका माहात्म्य तथा गयाक्षेत्रमें श्राद्धादि करनेका फल सविस्तार समारोहपूर्वक वहाँ प्रस्तुत हुआ है। गय नामक असुरकी उल्कट तपस्यासे संतप्त देवगणोंकी प्रार्थनायर भगवान् विष्णुकी गदासे वह असूर मारा गया। उस गयासूरके नामपर हो गयातीर्थ प्रसिद्ध हुआ। यहाँ गदाभर भगवान् विष्णु मुख्यदेवके रूपमें अवस्थित है।

गयामें बाद करनेसे पञ्चमहापापोंकी निवृत्ति तो होती हो है, इसके साथ हो अन्य सम्पूर्ण पापोंका भी विनाश होता है। जिनको संस्काररहित दशामें मृत्यु हो जाती है अथवा जो मनुष्य पशु या चोरद्वारा मारे जाते हैं। जिनकी मृत्यु सर्पेक काटनेसे होती है, वे सभी गयाश्राद्धके पुण्यसे उन्पूक्त होकर स्वर्ग चले जाते हैं। गयामें पिण्डेदान करनेमात्रसे पितरोंको परम गति प्राप्त होती है।

गयातीर्थमें पितरोंके लिये पिण्डदान करनेसे मनुष्यकी वो फल प्राप्त होता है, सौ करोड़ वर्षीमें भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। यहाँतक कहा गया है कि गयागमनमात्रमे ही व्यक्ति पितृऋणसे मुक्त हो जाता है-'ययागमनमात्रेण पितृणामनृणं भवेत्।' कहते हैं गयाक्षेत्रमें भगवान् विष्णु पितृदेवताके रूपमें विराजमान रहते हैं। पुण्डरीकाक्ष उन भगवान् जनार्दनका दर्शन करनेपर मनुष्य अपने तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है।

गयाक्षेत्रमें कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँपर तीर्थ नहीं है। पाँच कोशके क्षेत्रफलमें स्थित गयाक्षेत्रमें जहाँ-तहाँ भी पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अक्षयफलको प्राप्तकर अपने पितृगणोंको ब्रह्मलोक प्रदान करता है।

प्राचीनकालमें रुचि नामक प्रजापति संसारके माया-

मोहको छोड़कर गृहस्थादिक आश्रमोंके नियमोंसे रहित हो इधर-उधर निरहंकार भावसे अकेले हो विचरण करने लगे। यह देखकर उनके पितुजनींने उन्हें गृहस्थान्नमकी महिमा बताते हुए पाणिग्रहण-संस्कारको स्वर्ग एवं मोखप्राधिका हेतु बताया। क्योंकि गृहस्थ समस्त देवताओं, पितरों, प्रवियों और याचकोंकी पूजा करके उत्तम लोकको प्राप्त करता है। रुचिने भी पितरोंसे अपनी शंकाएँ प्रस्तुत कीं। इसका पितरोंने समुचित उत्तर देते हुए गृहस्वाश्रमके धर्मपालनके लिये रुचिसे आग्रह किया। रुचि भी दुविधामें आ गये और उन्होंने तपस्याद्वारा ब्रह्माको प्रसन्न किया। ब्रह्माके निर्देशसे ऋषि रुचिने नदीके एकाना तटपर पितरोंका तर्पणकर उन्हें संतुप्त किया और पितरोंको स्तुतियोंसे आराधना की। पितृजनोंने संतुष्ट हो प्रकट होकर रुचिको मनोरमा पत्नी तथा पुत्रदिकी प्राप्ति करनेका वरदान दिया और यह भी कहा कि जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस स्तुतिसे हम पितरींको संतुष्ट करेगा, उससे प्रसन्न होकर हम लोग उसे उत्तम भोग, आत्मविषयक उत्तम ज्ञान, आयु, आरोग्य तथा पुत्र-पौत्रादि प्रदान करेंगे। जत: कामनाओंकी पूर्ति चाहनेवाले बद्धालुओंको निरन्तर इस स्तोजेसे पितरोंकी स्तृति करनी चाहिये।

तदनन्तर द्रव्यशुद्धि एवं कर्मविपाक, प्रायक्षित-विधान-सांतपन, कृष्णु, पराक तथा चान्द्रायणादि व्रतंकि विविध स्वरूपोंको दशाया गया है।

इसके साथ ही ऋषि-महर्षि तथा देवताओंद्वार प्रतिपादित नीतिशास्त्रका विवेचन किया गया है, जो सभीके लिये हितकर तथा पुण्य, आयु एवं स्वर्गादिको प्रदान करनेवाला है।

जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोस-इस पुरुषार्थ-चतुष्टयकी सिद्धि चाहता है, उसे सदैव सञ्जनोंकी ही संगति करनी चाहिये। दुर्जनोंके साथ रहनेसे इस लोक तथा परलोकमें हित सम्भव नहीं है।

दूसरेकी निन्दा, दूसरेका धनग्रहण, परायो स्त्रीके साथ परिहास तथा पराये घरमें निवास कभी नहीं करना चाहिये।

'मनुष्यको दुर्जनीके संगका परित्यागकर साधुजनीको संगति करनी चाहिये और दिन-रात पुण्यका संचय करते हुए नित्य अपनी अनित्यताको स्मरण रखना चाहिये'-

> त्यज दर्जनसंमर्ग भज साधसमागमम्। कृठ पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्॥

वरं हि नरके वासी न तु दुश्चरिते गृहे। नरकात् श्रीयते यापं कुगृहान्त निवर्तते॥

विनष्ट नहीं होते'-

जो बाल्यावस्थामें विद्याध्ययन नहीं करते हैं, फिर दुवावस्थामें कामातुर होकर यौवन तथा धनको नष्ट कर देते हैं. वे वृद्धावस्थामें चिन्तासे जलते हुए शिशिरकालमें कुडासेसे झुलसनेवाले कमलके समान संतप्त जीवन व्यतीत

'नरकमें निवास करना अच्छा है, किंतु दुश्चरित्रके घरमें

वास करना उचित नहीं है। नरकवासके कारण पाप विनष्ट

हो जाते हैं, किंतु दक्षरित्रके घरमें निवास करनेसे पाप

इसके बाद राजनीतिका वर्णन किया गया है। राजाको सत्यपरायण तथा धर्मपरायण होना चाहिये। जो धार्मिक राजा गी-ब्राह्मणके हितमें रत रहता है, वही जितेन्द्रिय राजा प्रजाके पालनमें समर्थ हो सकता है। 'जो राजा शास्त्रसम्मत तथा युक्तियुक्त सिद्धान्तोंका उल्लंघन करता है, यह निश्चित ही इस लोक तथा परलोक दोनीमें नष्ट हो जाता है'-

> लंबयेक्सस्वयुक्तानि हेत्युक्तानि वानि च। स हि नत्यति वै राजा इह लोके परत्र छ॥

> > (41444199)

'सत्यके पालनसे धर्मकी रक्षा होती है, सदा अभ्यास करनेसे विद्याकी रखा होती है, मार्जनके द्वारा पात्रकी रक्षा होती है और शीलके द्वारा कुलको रक्षा होती है'-सत्येन रह्यते धर्मी विद्या योगेन रक्ष्यते।

मुख्या रहयते पार्च कुल शीलेन रहयते॥

(41277170)

'सत्यपालनरूपी शुचिता, मनःशुद्धि, इन्द्रियनिग्रह, सभी प्राणियों में दया और जलसे प्रकालन — ये पाँच प्रकारके श्रीच माने गये हैं। जिसमें सत्वपालनकी शृचिता है, उसके लिये स्वर्गको प्राप्ति दुर्लभ नहीं है। जो मनुष्य सत्य-सम्भाषण हो करता है, वह अश्रमेधयज्ञ करनेवाले व्यक्तिसे वदकर है '--

> सत्पन्नीचं यतःशीचं शौचिमिन्द्रियनिग्रहः। सर्वभूते दयाशीचं जलशीचं च पञ्चपप्।। यस्य सत्यं च शीचं च तस्य स्थगों न दुर्लभः। सत्यं हि वचनं यस्य सोऽश्वमेधाद्विशिष्यते॥

> > (1 1 (23 | 36 - 39)

जिस व्यक्तिने एक बार भी 'हरि' इन दो अक्षरोंसे युक्त शब्दका उच्चारण कर लिया है, वह अपने कटिप्रदेशमें परिकर (फेंटा) बौधकर मुक्ति प्राप्त करनेके लिये तैयार रहता है। ऐसा मनुष्य मोक्षका अधिकारी होता है।

इस प्रकार मनुष्यको उन्ततिके प्रथपर ले जानेवाले नीतिसे युक्त कल्याणकारी वचनोंका संग्रह इस महापुराणमें प्राप्त होता है, जिसे ग्रहणकर मानव शाक्षत सुखानुभृतिसे लाभान्यत हो सकता है।

तदननार भगवान्के विभिन्न अवतारोंकी कथा तथा परिवता-माहात्म्यमें ब्राह्मणपत्नो, अनस्या एवं भगवतो सीताके पातिव्रतका आख्यान मिलता है। रामचरितवर्णन (रामायणकथा), हरिवंजयर्जन (श्रीकृष्यकथा) तथा महाभारतको कथा और बुद्ध आदि अवतारोंकी कथाका वर्णन भी यहाँ प्राप्त होता है।

इसके बाद आयुर्वेदका प्रकरण प्रारम्भ होता है। भगवान् धन्यनारिप्रोक्त सम्पूर्ण आयुर्वेदको अष्टाङ्ग आयुर्वेद कहा गया है। यह अधर्ववेदका उपवेद है। शारीरिक, मानसिक तथा आगन्तुक — इस प्रकारसे व्याधियाँ तीन प्रकारको कही गयी है।

प्रस्तुत गरुडपुराणमें मुख्यरूपसे निदान-स्थान, चिकित्सा-स्थान, कल्प-स्थान [विधीषधिज्ञान तथा विकित्सा] और उत्तरतन्त्रमें कौमायंतन्त्र एवं भूतविद्या आदि विषयोंका ही निरूपण हुआ है। साथ ही गवायुर्वेद, अश्व-चिकित्सा, गज-चिकित्सा आदिका भी संक्षेपमें निर्देश हुआ है।

गरुडपुराणके आयुर्वेद-प्रकरणके प्रथम बौस अध्यायोंमें निदान-स्थानके विषय वर्णित है। किस कारणसे रोग उत्पन्न लिये अनेक औपधिक योगोंको भी बताया गया है।

आयुर्वेदकी औषधियों और वनस्पतियोंका वर्णन जो भगवान् श्रीहरिने शिवजीसे किया था, उसे सुनानेके बाद सूतजीने शौनकादि ऋषियोंको कुमार अर्थात् भगवान् स्कन्दके द्वारा कात्यायनसे कहे गये व्याकरणशास्त्रको सुनाया। यह व्याकरण सिद्ध शब्दोंके ज्ञान एवं बालकोंकी व्युत्पत्ति प्रक्रियाको बढ़ानेमें सहायक है। इसके अननार सृतजोने अल्प बुद्धिवालोंके लिये विशिष्ट बुद्धिकी प्राप्ति-हेतु मात्र और वर्णके भेदके अनुसार छन्द-विधानको प्रस्तुत किया है।

कर्मविपाकका वर्णन

जगल्लृष्टि और प्रलय आदिकी चक्रगतिको जाननेवाले बिद्वान् यदि आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक-इन तीन सांसारिक तापोंको जानकर ज्ञान और वैराग्यका मार्ग स्वीकार कर लेते हैं तो आत्यन्तिक लय (मोक्ष)-को प्राप्त करते हैं।

सूदजी कर्मविपाकका वर्णन करते हुए कहते हैं- जीव पापकर्म करनेके कारण नरक-लोकमें जाता है और पुण्यकर्मके कारण स्वर्ग। अपने उन पाप-पुण्योंके प्रभावसे नरक तथा स्वर्गर्मे गया प्राणी पुन: नरक और स्वर्गसे लीटकर स्थियोंके गर्भमें जाता है। गर्भमें विकस्तित होता हुआ यह जोब नौ मासतक अधोमुख स्थित रहकर दसवें मासमें जन्म लेता है। यह जीव बाल्यावस्था, कीमारावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्थाको प्राप्त करता है। इसके बाद पुन: यह मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यह जीव इस संसारचक्रमें घटायन्त्रके समान घूमता रहता है। जीव हुआ है, रोगके लक्षण क्या हैं ? जिससे रोगका निर्णय हो सके नरक-भोग करनेके पक्षात् पापयोनियोंमें जन्म लेता है। यहाँ इत्यादि विषय निदान शब्दसे अभिप्रेत है। इसमें प्रारम्भमें पापयोनियोंका वर्णन सविस्तार किया गया है—मित्रका ज्यर, रक्त, पित्त, श्वास, राजयक्ष्मा, मदात्यय, अर्ज, अतिसार, अपमान करनेवाला गधेकी योनिमें जन्म लेता है। माता-मूत्रायात, प्रमेह, गुल्म, पाण्डु, कुष्ट, वातदोष आदि रोगोंके पिताको कष्ट पहुँचानेवाले प्राणीको कलुवेकी योनिमें जाना उत्पत्तिजनक कारणों तथा उनके लक्षणोंका वर्णन हुआ है। यहता है। जो मनुष्य अपने स्वामीका विश्वसनीय बनकर गरुडपुराणका यह वर्णन आचार्य वाग्भट्टके अष्टाङ्गहृदयसे उसको छलकर जीवन-यापन करता है वह व्यामोहमें फैसे बहुत अंशोंमें साम्य रखता है। इसके बाद लगभग चालीस बंदरको योनिमें जाता है। धरीहर रूपमें अपने पास रखे हुए अध्यायोंमें विभिन्न रोगोंकी चिकित्साहेतु औषधियोंका पराये धनका अपहरण करनेवाला व्यक्ति नरकगामी होता निरूपण हुआ है। अमुक रोग होनेपर अमुक-अमुक हैं, नरकसे निकलनेके बाद वह कृमियोनिमें जन्म लेता है। औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये। इनके निर्माणकी तथा जो मनुष्य विश्वासघाती होता है, वह मस्ययोनिमें उत्पन्न अनुपान आदिको विधि बतायी गयी है। एक ही रोगके होता है। यह, दान तथा विवाहादिमें विध्न डालनेवाले

मन्ष्यको कुमियोनि प्राप्त होती है।

देवता, पितर और ब्राह्मणोंको बिना भोजन आदि दिये जो मनुष्य अन्न ग्रहण कर लेता है, यह नरकको जाता है। वहाँसे मुक्त होकर वह काकयोनिको प्राप्त करता है। कृतच्न व्यक्ति कृमि, कीट, पतंग तथा बिच्चुको योनियोंमें भ्रमण करता है।

दूसरेकी निन्दा करना, कृतघनता, दूसरेकी मर्यादाको न्छ करना, निष्ठरता, अत्यन्त युषित व्यवहारमें अधिरुचि, परस्त्रीके साथ सहवास करना, पराये धनका अपहरण करना, अपवित्र रहना, देवोंकी निन्दा, मर्यादाके बन्धनको तोडकर अशिष्ट व्यवहार करना, कृपणता तथा धनुष्योंका हनन - यह सब नरक भोगकर जन्म लिये हुए मनुष्योंका लक्षण कहा गया है।

प्राणियोंके प्रति दया, सद्भावपूर्ण वार्तालाप, परलोकके लिये सार्त्तिक अनुष्ठान, सत्कायौँका निष्पादन, सत्यधर्मका पालन, दूसरेका हितचिन्तन, मुक्तिको साधना, वेदोमें प्रामाण्य-बुद्धि, गुरु-देवर्षि और सिद्धर्षियोंको सेवा. साधुजनोंद्वारा बताये गये नियमोंका पालन, सिक्कयाओंका अनुष्टान तथा प्राणियोंके साथ मैत्रीभाव-ये स्वर्गमे आये मनुष्योंके लक्षण है।

जो मनुष्य योगशास्त्रद्वारा बताये गये यम-नियम आदि अष्टाङ्कयोगके साधनसे सत् ज्ञानको प्राप्त करता है, वह आत्यन्तिक फल-मोधका अधिकारी बन जाता है। महायोगका वर्णन

श्रीसृतजीने यहाँ समस्त अङ्ग्रोसहित महत्योगका वर्णन किया है। यह महायोग मनुष्योंको भोग और मोश्र प्रदान करनेका श्रेष्ठतम साधन है।

महामति भगवान् दतात्रेयने राजा अलकसे कहा था-हे राजन्। ममता ही दु:खका मूल है और ममताका परित्याग ही द:खसे नियुक्तिका उपाय है। अहंकार अज्ञानरूपी महातरुका अंकुर है। पापमूलक आपातरमणीय सख-शान्तिके लिये यह अज्ञानरूपी महातरु पैदा हुआ है। जो लोग ज्ञानरूपी कुल्हाडीसे अज्ञानरूप महावृक्षको काट गिराते हैं, वे परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। तदनन्तर ब्रह्मरसको प्राप्त कर उसका भलोभौति पान करके प्राजपुरुष नित्य सख एवं परम शान्तिको प्राप्त करते हैं। जो लोग मायापाशसे आबद्ध हैं. वे सभी जिल्य-नैमितिक हो कार्य करते हैं और उसीमें अन्ततक लगे रहते हैं। इस कारण उन्हें परमात्माका ऐक्य प्राप्त नहीं होता। जो पुन: इस संसारमें जन्म लेते हैं, जो अज्ञानसे मोहित हैं, वे ज्ञानयोग प्राप्त करके अज्ञानसे मुक्त हो जाते हैं। उसके बाद वह जीवन्युक योगी न कभी मरता है, न दु:खी होता है, न रोगी होता है और न संसारके किसी बन्धनसे आबद्ध होता है। न वह पापोंसे युक्त होता है, न तो उसे नरकयातनाका हो दृःख भोगना पड़ता है और न उसे गर्भवासमें जाना यहता है। वह स्वयं अव्यय नारायणस्वरूप हो जाता है। इस प्रकारको अनन्य भक्तिसे वह योगी भाग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् नारायणको प्राप्त कर लेता है।

ध्यान, पूजा, जप, स्तोत्र, व्रत, यज्ञ और दानके नियमोंका पालन करनेसे मनुष्यके चित्तकी शुद्धि होती है। चित्रशुद्धिसे ज्ञान प्राप्त होता है तथा इससे जन्म-मरणके बन्धनमें मुक्ति मिलती है।

भगवद्धक्तिका निरूपण

सुतजो भगवद्भितका निरूपण करते हुए कहते हैं कि प्रभु भक्तिसे जितना संतुष्ट होते हैं, उतना किसी अन्य साधनसे नहीं। भगवान् हरिका निरन्तर स्मरण करना मनुष्योंके लिये महान् श्रेयका मूल है। यह पुण्योंकी उत्पत्तिका साधन है और जीवनका मधुर फल है। इसलिये विद्वानीने प्रभूकी सेवाको भक्तिका बहुत बढा साथन कहा है। भगवान् त्रिलोकीनाथ विष्णुके नाम तथा गुणोंक कीर्तनमें तन्मय होकर जो प्रसन्तताके औस बहाते हैं, रीमाखित होकर गद्गद हो उठते हैं, वे ही उनके भक्त हैं। इस संसारमें वहीं ब्रेष्ट हैं, वहीं ऐश्वर्यसे सन्यन्त है और यही मोसको प्राप्त करता है, जो भगवान हरिकी भक्तिमें तन्मय रहता है। यदि कोई भगवद्भक्त चाण्डाल जातिका है तो वह भी अपनी पवित्र भक्तिकी महिमासे सबको पवित्र कर देता

'हे नाथ! आप मुझपर दया करो, मैं आपकी शरणमें हुँ—ऐसा जो प्राणी कहता है, उसको भगवान हरि अभय कर देते हैं। किसीसे भी उसको भय नहीं होता, यह भगवानकी प्रतिज्ञा है'-

द्यां कुरु प्रपन्ताय तवास्मीति च यो वदेत्। अधर्य सर्वभूतेश्यो दद्यादेतद् वर्त हरे:॥

(11270141)

जिन मनुष्योंका मन हरिभक्तिमें रमा हुआ है, उनके सभी प्रकारके पापोंका विनाश निश्चित है।

हाथमें पाश लेकर खडे हुए अपने दतको देखकर यमराज उसके कानमें कहते हैं कि हे दूत! तुम उन सोगोंको छोड देना, जो मध्सदन विष्णुके भक्त हैं। मैं तो

क्योंकि उसने यह निश्चय कर लिया है कि भगवानुकी पक्तिके समान अन्य कुछ भी नहीं है। भगवान हरिमें जिस पनुष्यको भक्ति रहती है, उसके लिये धर्म, अर्थ और काम-इस त्रिवर्गका कोई महत्त्व नहीं है; क्योंकि परम मुखरूप मुक्ति उसके हाथमें ही सदा रहती है।

'इस संसाररूपी विषवृक्षके अमृतके समान दो फल हैं। एक फल है भगवान केशवकी भक्ति और दसरा फल है उनके भक्तोंका सत्सङ्ग'-

> संसारविषवृक्षस्य द्वे फले ग्रमृतीयमे। कदाचित् केशवे भक्तिस्तद्भक्तवां समागमः॥

> > (41350.95)

नाम-संकोर्तनकी महिमाका वर्णन करते हुए सूतजी कहते हैं कि मुक्तिके कारणभूत अनादि, अनन्त, अज, नित्य अध्यय और अक्षय भगवान् विष्णुको जो व्यक्ति नमन करता है, वह समस्त संसारके लिये नमस्कारके योग्य हो जाता है।

स्वप्नमें भी भगवान् नारायणका नाम लेनेवाला मनुष्य अपनी अक्षय पापराशिको विनष्ट कर देता है। यदि कोई मनुष्य जाग्रत् अवस्थामें परात्पर प्रभुका नाम लेता है हो फिर उसके विषयमें कहना ही क्या ? 'हे कृष्ण ! हे अच्यूत ! हे अनन्त ! हे वासदेव ! आपको नमस्कार है ।' ऐसा कहकर जो अक्तिभावसे विष्णुको प्रणाम करते हैं, वे यमपुरी नहीं आते। सर्वके उदित हो जानेपर जैसे अन्धकार विनष्ट हो जाता है, वैसे ही हरिका नाम-संकोर्तन करनेसे प्राणियोंके पापसमुहका विनाश हो जाता है।

सत्वी कहते हैं कि सभी शास्त्रोंका अवलोकन करके तथा पुन:-पुन: विचार करनेपर एक ही निष्कर्ष निकलता है कि मन्च्यको सदैव नारायणका ध्यान करना चाहिये। इस लोक और परलोकमें प्राचीके लिये जो कुछ दुर्लभ है, जो अपने मनसे भी सोचा नहीं जा सकता, वह बिना माँगे ही ध्यानमात्र करनेसे भगवान मधुसुदन प्रदान कर देते हैं। पाएकमं करनेवालोंकी शुद्धिका ध्यानके समान अन्य कोई साधन नहीं है। यह ध्यान पुनर्जन्म देनेवाले कारणोंको भस्म करनेवाली योगाग्नि है। भगवान्का भक्त अनासक भावसे यदि अपने सभी कर्मोंको विष्णुके चरणोंमें समर्पित करता है तो उसके कर्म साध हों या असाध बन्धनकारक नहीं होते।

अन्य दुराचारी पापियोंका स्वामी हूँ भक्तोंक स्वामी स्वयं इसके अनतर ब्रोसुतजी भगवान् ज्ञिवहारा कही गयी हरि है। श्रीविष्णुने सर्वदा कहा है-यदि दुराचारो मनुष्य नारसिंहस्तृति (नृसिंहस्तोत्र)-का वर्णन करते हैं। इसके भी मुझमें अनन्य भक्ति रखता है तो वह साधु हो है: साथ हो 'कुलामृतस्तोत्र' का वर्णन किया गया है, जो देवर्षि नारदक पृष्टनेपर शिवजीने कहा था। तदनन्तर मार्कण्डेय मुनिके द्वारा कहे गये मृत्युको निवारण करनेवाले 'मृत्यष्टकातोत्र' को कहा गया है। इसके बाद प्राणियोंको सब कुछ प्रदान करनेवाले 'अच्युतस्तोत्र'का वर्णन किया गया है। यह स्तोत्र देवर्षि नारदके पुछनेपर ब्रह्मजीने कहा था। सतजीने इस स्तोजकी अत्यधिक महिमाका वर्णन किया है।

आचारकाण्डके अन्तमें ब्रह्मज्ञान और चडक्रयोग, आत्मज्ञन तथा गीतासारका निरूपण किया है।

जीवका अन्तिम लक्ष्य मुक्ति है। यह मुक्ति जीवको तभी प्राप्त होती है, जब यह पुर्याटक तथा त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका परित्याग कर देता है। जीवको मुक्ति प्राप्त करनेके लिये प्रकृतिसे स्वयंको अलग करना अनिवार्य है। इसके लिये रुद्ध आदि विषयोंके प्रति अनासक होना आवश्यक है।

प्राणायाम्, जप, प्रत्याहार, धारणा, समाधि और ध्यान-ये छ: योगके साधन है।

इन्द्रियसंयममे चापक्षय और पापक्षयसे देवप्रीति सुलभ होती है। देवप्रीति भुक्ति एवं मुकि-साधनकी ओर उन्मुख होनेके लिये प्रथम एवं अनिवार्य साधन है।

आत्पज्ञान

भगवान् नारदजीसे कहते हैं--कमॉसे भववन्धन और ज्ञान होनेसे जोवको संसारसे मुक्ति हो जाती है। इसलिये आत्पदायका आश्रय करना चाहिये। जो आत्मज्ञानसे भिन्न जान है, उसे अजान कहा जाता है। 'जब हदयमें स्थित सभी कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं, तब जीव निस्संदेह जीवनकालमें ही अमृत प्राप्त कर लेता है'-

यदा सर्वे विमुख्यने कामा येऽस्य हृदि स्थिताः। तदाऽमृतत्वमाणीति जीवनेव

वस्तुमात्रका सार ब्रह्म ही है। रोओरूप ब्रह्मको एक अखण्ड परम पुण्यरूप समझना चाहिये। जैसे अपनी आत्मा सबको प्रिय है, वैसे ही ब्रह्म सबको प्रिय है; क्वोंकि आत्मा ही बहा है। सभी तत्त्वज जानको सर्वोच्च मानते हैं। इसलिये चितका आलम्बन बोधस्वरूप आत्मा हो है। यह आत्मविज्ञान है। यह पूर्ण है। शाश्चत है। जागते-सोते तथा सुप्रतावस्थामें प्राप्त होनेवाला सुख, पूर्ण सुखरूप ब्रह्मका ही एक शुद्र अंश समझना चाहिये।

हे नारद! मैं अनना हूँ, हमारा ज्ञान भी अनना है। मैं अपनेमें पूर्ण हूँ। आत्माके द्वारा अनुभूत अन्तःसुख मैं ही हूँ। सात्त्विक, राजस और तामस गुणसे सम्बन्धित भाजोंसे मैं नित्य परे रहता हूँ। मैं शुद्ध हूँ। अमृतस्थरूप हूँ। मैं हो ब्रह्म हूँ। मैं प्राणियोंके इदयमें प्रज्यक्तित वह ज्योति हूँ, जो दीपकके समान उनके अज्ञानरूपी अन्यकारको विनष्ट करती रहती है। यही आत्मज्ञानको स्थिति है।

गीतासार

गीतासारका वर्णन करते हुए भगवान् नारदजीसे कहते हैं— हे नारद! आत्मकरूपाण ही परम करूपान है। उस आत्मज्ञानसे उत्कृष्ट और कुछ भी नहीं है। आत्मा देहरहित, रूप आदिसे हीन, इन्द्रियोंसे अतीत है। मैं आत्मा है। संसार आदि सम्बन्धके कारण मुझे किसी प्रकारका दु:ख नहीं है। जैसे आकाशमें विद्युत् अग्निका प्रकार होता है, वैसे ही हृदयमें आत्मा(आत्मज्ञन)—के द्वारा आत्मा प्रकारित होता है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारण और समाधि—यह अष्टाङ्गयोग मुक्तिके लिये कहा गया है। सरीर, मन और वाणीको सदा सभी प्राणियोंको हिससे निवृत्त रखना चाहिये; क्योंकि 'अहिंसा ही परम धर्म है और उसीरो परम सुख मिलता है'—

'हिंसाविरामको धर्मे हाहिसा परमं सुखम्'

(4149619)

सदा सत्य और प्रिय वचन बोलना चाहिये। कभी भी अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये। प्रिय मिश्या वचन भी नहीं बोलना चाहिये। चोरीसे या बलपूर्वक दूसरेके इव्यक्त अपहरण करना स्तेय हैं। स्तेय कार्य (बोरी) कभी भी नहीं करना चाहिये; क्योंकि अस्तेय (बोरी न करना) ही धर्मका साधन है। आपत्तिकालमें भी इच्छापूर्वक इव्यका ग्रहण न करना ही अपरिग्रह है। यदुक्छालाभ तथा अनायास-प्राप्तिसं संतुष्ट होना ही संतोष है। यह संतोष हो सभी प्रकारके सुखका साधन है। मन और इन्द्रियोंको जो एकाग्रता है, बही परम तप है।

कर्म, मन और वाणीसे हरिकी स्तुति, नाम-स्मरण, पूजा आदि कार्य और हरिके प्रति निश्चला भक्तिको ही ईश्वरका चिन्तन कहा जाता है। अपने शरीरगत वायुका नाम प्राण है। उस वायुके निरोधको प्राणायाम कहा जाता है। इन्द्रियों असत् विषयोंमें विचरण करती हैं। उनको विषयोंसे निवृत्त करना चाहिये। मूर्त और अमूर्त ब्रह्मचिन्तनको ध्यान कहा जाता है। योगारम्भके समय मूर्तिमान् और अमूर्तरूपमें हरिका ध्यान करना चाहिये। तेजोमण्डलके मध्यमें शहु, वक्र, गदा तथा पद्मध्यरी चतुर्भुज, कौस्तुभिचहसे विभूषित, वनसाली, वायुस्वरूप जो ब्रह्म अधिष्ठत है, 'मैं वही हूँ'। इस प्रकार मनका लय करके परमात्मप्रभुको धारण करना ही धारणा है। 'मैं हो ब्रह्म हूँ' और 'ब्रह्म हो मैं हूँ'—इस प्रकार अर्ड और ब्रह्म पदार्थका तादालय रूप ही समाधि है।

ब्रह्मगीताका सारतत्त्व वर्णन करते हुए भगवान् कहते है—यह सिद्ध है कि परमात्मा है। उसी परमात्मासे आकारा, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल तथा जलसं पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई है। जो इस जगतप्रपञ्चकी भी जन्मदात्री है।

जाउत, स्वप्न तथा मुपुष्तिकी अवस्थाओंसे परे वह बहा अपने निर्मुण स्वभावमें हो रहता है। उस क्रियाशील शरोरके साथ रहने तथा न रहनेकी स्थितिमें भी वह नित्य बुद्ध स्वभाववाला ही है। उसमें कोई विकृति नहीं आती है। मुमुखुके अन्तः करणमें कैवल्य अर्थात् उस परमारमाके साक्षात्कारको अवस्था आ जाती है। अतः मोधार्थीको उस स्थितिमें जीवात्माके विषयमें विचारकर उसको शरीरसे पृथक् समझन चाहिये; क्योंकि आत्मतत्त्वको शरीरसे अतिरिक्त न माननेपर बहुत्तत्वसे साक्षात्कार करनेमें अनेक बाधाएँ होती है। अतः उन बाधाओंको दूर करना अपेक्षित है।

बहाको नित्य शुद्ध सुद्ध सत्य तथा अहैत कहा जाता है। यह आत्यतत्त्व परम ज्योतिःस्वरूप है। यह चिदानन्द है। यह सत्य, जान और अनन्त है। यही तत्त्रमसि है— ऐसा वैदोंका भी कथन है। मैं बहा हूँ, सांसारिक विषयोंसे जो परे रहता है, मैं वही निर्लिख देव हूँ। मैं तो वही अनादि देवदेवेश्वर परब्रह्म ही हूँ, जिसके आदि और अन्तका जान किसीको भी नहीं है, यही गीताका सार है। इसको सुनकर मनुष्य बहामें लीन हो सकता है। अर्थात् उसे जीवन्युक्ति प्राप्त हो सकती है।

गरुइपुराणका माहात्स्य

आचारकाण्डके अन्तिम अध्यायमें गरुडपुराणका माहात्म्य वर्षित है। भगवान् श्रीहरि भूतभावन रुद्रसे कहते हैं कि मैंने गरुडपुराणका वह सारभाग आपको सुना दिया, जो भौग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। यह विद्या, यश, सीन्दर्य, लक्ष्मी और आरोग्य आदिका कारक है। जो मनुष्य इसका पाठ करता है या सुनता है, वह सब कुछ जान लेता है और अन्तमें उसका परम कल्याण हो जाता है। इसी जन्ममें सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

इस महापुराणको पढ्ने एवं सुननेसे मनुष्यको धर्म, अर्थ, काम और मोश-इन चारों पुरुषायाँकी सिद्धि हो

धर्मकाण्ड-प्रेतकल्प

धर्मकाण्ड (प्रेतकल्प)-में सर्वप्रथम भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार किया गया है। तदनन्तर देवक्षेत्र नैमियारण्यमें शौनकादि श्रेष्ठ मुनिगण सुतजी महाराजसे प्रश्न करते हैं कि कुछ लोगोंका कहना है कि शरीरधारी जोव एक शरीरके बाद दूसरे शरीरका आश्रय ग्रहण करता है, जबकि दूसरे विद्वानोंका कहना है कि प्राणीको मृत्युके पश्चात् यमराजकी यातनाओंका भोग करनेके बाद दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है-इन दोनोंमें क्या सत्य है, यह बतानेकी कृपा करें। सूतजी पहाराज प्रश्नको सुनकर प्रसन्न होते हैं और इस प्रकार कथाका वर्णन करते हैं-

एक बार विनतापुत्र गरुडके इदयमें इस बहुएजडके सभी लोकोंको देखनेकी इच्छा हुई। अतः हरिनामका उच्चारण करते हुए उन्होंने पाताल, पृथ्वी तथा स्वर्ग आदि सभी लोकोंका भ्रमण किया।

पृथ्वीलोकके दु:खसे अत्यन्त द:खित एवं अज्ञानाचित होकर वे पुन: वैकुण्डलोक वापस आ गर्ये। वैकुण्डलोकमें मृत्युलोकके समान रजोगुण तथा तमोगुण आदिको प्रवृत्ति नहीं है। केवल शुद्ध सत्त्वगुणको ही प्रवृत्ति है। वहीं राग-द्वेषादि पद्विकार भी नहीं हैं। किसीका वहाँ विनात नहीं हीता। वहाँ भगवानुके मनोहारी सुन्दर पार्षद उपस्थित है। गरुडजीने देखा कि हरि झुलेपर विराजमान है। भगवान् हरिका दर्शन करनेसे विनतासुत गरुडका हृदय आनन्दविधीर हो उठा। आनन्दमन्न होकर उन्होंने प्रभुको प्रणाम करते हुए कहा- भगवन्। आपकी कृपासे त्रिलोकका परिश्रमण मैंने कर लिया है। यमलोकको छोड्कर पृथ्वीलोकसे सत्य-लोकतक सब कुछ मेरे द्वारा देखा जा चुका है। सभी लोकोंकी अपेक्षा पृथ्वीलोक प्राणियोंसे अधिक परिपूर्ण है। सभी योनियोंमें मानवयोनि ही भोग और मोक्षका शुभ आहय है। अत: सुकृतियोंके लिये ऐसा लोक न तो अभीतक बना है और न भविष्यमें बनेगा। 'देवता लोग भी इस लोककी प्रशंसामें गीत गाते हुए कहते हैं कि जो लोग पवित्र भारतभूमिमें जन्म लेकर निवास करते हैं, वे धन्य हैं। सुरगण भी स्वर्ग एवं अपवर्गरूप फलकी प्राप्तिके लिये पुन: भारतभूमिमें मनुष्यरूपमें जन्म लेनेकी इच्छा करते हैं --

जिस व्यक्तिके घरमें यह महापुराण रहता है, उसको जाती है। जो मनुष्य इस पुराणके एक भी श्लोकका पाठ करता है, उसको अकालमृत्य नहीं होती है। पश्चित्रेष्ठ गरुडजीके द्वारा कहा गया यह महापुराण धन्य है। यह सबका कल्याण करनेवाला है।

> गायनि देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे। स्वर्गापवर्गस्य फलाजेनाय भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

गरुड पूछते हैं-हे प्रभो ! आप यह बतानेकी कृपा करें कि मरणासन व्यक्तिको किस कारण पृथ्वीपर सुलाया जाता है ? उसके मुखमें पक्करत क्यों हाला जाता है ? उसके नीचे कुत्र और तिल क्यों बिछाये जाते हैं? हे केशव! मृत्युके समय विविध वस्तुओंके दान एवं गोदान, अष्ट महादान किसलिये दिया जाता है? प्राणी कैसे मरता है और मरनेके बाद कहाँ जाता है? उस समय प्राणी आतिवाहिक शरीर कैसे प्राप्त करता है? अग्नि देनेवाले पुत्र-पीत्र उसे कन्धेपर क्यों ले जाते हैं? शवमें घृतका लेप क्यों किया जाता है ? शबके उत्तर दिशामें 'यममुक्त' का पाठ क्यों होता 🕏 7 मरे हुए व्यक्तिको पीनेके लिये जल एक ही वस्त्र धारण करके क्यों दिया जाता है ? शवका दाह-संस्कार करनेक प्रधात उस व्यक्तिको अपने परिजनोंके साथ बैठकर भोजन आदि क्यों नहीं करना चाहिये? मृत व्यक्तिके पुत्र दसवें दिनके पहले किसलिये नी पिण्डोंका दान देते हैं? शबका दाह-संस्कार तथा उसके अनन्तर जलतपंजको किया क्यों की जाती है? किस विधानसे पितरोंको पिण्डदान देना चाहिये? उस पिण्डको स्वीकार करनेके लिये उनका आवाहन कैसे किया जाता है? दाह-संस्कारके बाद अस्थि-संचयन और घट फोड़नेका विधान क्यों है? इसवें दिन सभी परिजनोंके साथ शुद्धिके लिये स्त्रन तथा पिण्डदान क्यों करना चाहिये? एकादशाहको वृषोत्सर्ग आदिके सहित पिण्डदान करनेका क्या प्रयोजन है? तेरहवें दिन पददान आदि क्यों किया जाता है? वर्षपर्यन्त सोलह ब्राह्म क्यों किये जाते हैं?

हे प्रभो। मनुष्यका यह शरीर अनित्य है और समय आनेपर ही वह मरता है, किंतु मैं उस छिद्रको नहीं देख पाता है, जिससे जीव निकल जाता है?

प्राणी अपने जीवनकालमें पुण्य और पाप जो भी करता है, नाना प्रकारके दान देता है, वे सब शरीरके नष्ट हो जानेपर उसके साथ कैसे चले जाते हैं? मरे हुए प्राणीके

लिये सपिण्डीकरण क्यों होता है? इस कृत्यमें प्रेतपिण्डका है? चितामें शबको जलानेकी क्या विधि है? तत्काल मिलन किसके साथ किस विधिसे होना चाहिये? इसे आप बतानेकी कृपा करें।

जो मनुष्य पापी, दराचारी अथवा हतबुद्धि हैं, मरनेके बाद वे किस स्थितिको प्राप्त करते हैं? जो पुरुष आत्मधाती, ब्रह्महत्यारा, स्वर्ण आदिकी चोरो करनेवाला, मित्रदिके साथ विश्वासमात करनेवाला है, उस महापाठकीका क्या होता है?

हे माधव! यदि शुद्र प्रणव महामन्त्रका जप करता है तथा ब्रह्मसूत्र अर्थात् यज्ञोपवीतको धारण करता है तो मृत्यके बाद उसकी क्या गति डोती है?

गरुडजी कहते हैं कि हे विश्वात्पन्! मैंने कौत्हरतवश सम्पूर्ण जगतका भ्रमण किया है, उसमें रहनेवाले लोगोंको मैंने देखा है कि से सभी द:खमें ही दुवे रहते हैं। उनके अत्यन्त कष्टोंको देखकर मेरा अन्त:करण पीडासे भर गया. स्वर्गमें दैत्योंकी राज्ञतासे भय है, पृथ्वीलोकमें मृत्यु और रोगादिसे तथा अभीष्ट वस्तुके वियोगसे लोग द:खी है। पाताललोकमें रहनेवाले प्राणियों (नाग आदि)-को मेरे भयसे दृख्य बना रहता है। हे प्रभी! आपके इस वैकण्ठधामके अतिरिक्त अन्यत्र किसी भी लोकमें ऐसी निर्भयता नहीं दिखायी देती। कालके बशोधन इस जगनकी स्थिति स्वप्नकी मायाके समान असत्य है। उसमें भी इस भारतवर्षमें रहनेवाले लोग बहत-से दु:खोंको भाग रहे हैं। मैंने देखा है कि उस देशके मन्च्य राग-देव तथा मोह आदिमें आकण्ठ हुने हुए हैं। उस देशमें कुछ लोग अन्धे हैं, कुछ टेढ़ी दृष्टिवाले हैं, कुछ दृष्ट वाणीवाले हैं, कुछ लूले हैं, कुछ लैंगडे हैं, कुछ काने हैं, कुछ बहरे हैं, कुछ गूँने है, कुछ कोढ़ी है, कुछ अधिक रोमवाले हैं, कुछ नाना रोगसे घिरे हैं और कुछ आकाश-कुसुसकी तरह नितान्त मिथ्याभिमानसे चुर हैं। उनके विचित्र दोषोंको तथा उनकी मृत्युको देखकर मेरे मनमें जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी है कि यह मृत्यु क्या है? इस भारतवर्षमें यह कैसी विचित्रता है? ऋषियोंसे मैंने पहले ही इस विषयमें सामान्यत: यह सन रखा है कि जिसकी विधिपूर्वक वार्षिक क्रियाएँ नहीं होती हैं, उसकी दुर्गति होती है। फिर भी प्रभो! इसकी विशेष जानकारीके लिये मैं आपसे पूछ रहा है।

हे उपेन्द्र! मनुष्यकी मृत्युके समय उसके कल्याणके लिये क्या करना चाहिये? कैसा दान देना चाहिये? मृत्यु और श्मशानभूमितक पहुँचनेकी कौन-सी विधि अपेक्षित अथवा विलम्बसे उस जीवको कैसे दूसरी देह प्राप्त होती इ. यमलोक (संयमनी नगरी)-को जानेवालेक लिये वर्षपर्वना कौन-सो क्रियाएँ करनी चाहिये? दुर्वेद्ध अर्थात् दराचारी व्यक्तिकी मृत्य होनेपर उसका प्रायक्षित क्या है? पञ्चकादिमें मृत्य होनेपर पञ्चकशान्तिके लिये क्या करना चाहिये? हे देव! आप मेरे ऊवर प्रसन्न हों। आप मेरे इस सम्पूर्ण भूमको विनष्ट करनेमें समर्थ है। मैंने आपसे यह सब लोकमङ्गलको कामनासे पूछा है, मुझे बतानेकी कृपा करें। मरणामन व्यक्तिके कल्याणके लिये किये जानेवाले कर्म

श्रीकृष्णजी गरुडसे कहते हैं-आपने मनुष्यंकि हितमें बहुत हो महत्त्वपूर्ण बात पूछी है। जिसको देवतागण, योगीजन नहीं देख सके, जो गुद्धातिगृद्ध है, उसे मैं बता रहा है।

पुत्रको महिमा बताते हुए भगवान कहते हैं-यदि मनुष्यको मोश्च नहीं मिलता है तो पुत्र नरकसे उसका उद्घार कर देता है। पुत्र और पौत्रको मरे हुए प्राणीको कन्धा देना चाहिये तथा उसका यथाविधान अग्निदाह करना चाहिये।

सबसे पहले गोबरसे भूमिको लीपना चाहिये। तदनन्तर जलको रेखासे मण्डल बनाना चाहिये। इसके बाद उस स्थानपर तिल और करा बिछाकर मरणासन व्यक्तिको क्कासनपर सला देना चाहिये तथा उसके मुखमें स्वर्ण आदि पद्धरत डालना चाहिये। यह सब कार्य करनेसे यह प्राणी अपने समस्त पापाँको जलाकर पापमुक्त हो जाता है। भूमिपर मण्डल बनानेका अत्यधिक महत्व बताया गया है। भूमिपर बनाये गये ऐसे मण्डलमें ब्रह्म, तिष्णु, रुद्र, लक्ष्मी तथा अग्नि आदि देवता विराजमान हो जाते हैं, अत: मण्डलका निर्माण अवस्य करना चाहिये। मण्डलविहीन भूमिपर प्राणत्याग करनेपर उसे अन्य योनि नहीं प्राप्त होती. उसकी जीवात्मा वायुके साथ भटकती रहती है। विल और कुशकी महत्ता बताते हुए भगवान कहते हैं कि हे गरुड! तिल मेरे पसीनेसे उत्पन्न हुए हैं, अत: तिल बहुत ही पवित्र हैं। तिलका प्रयोग करनेपर असुर, दानव और दैत्य भाग जाते हैं। एक ही तिलका दान स्वर्णके बसीस सेर तिलके बराबर है। तर्पण, दान एवं होममें दिया गया तिलका दान अक्षय होता है। कुश मेरे शरीरके रोमोंसे उत्पन्न हुए हैं। कुलके मूलमें बहा, मध्यमें विष्णु तथा अग्रभागमें शिवको जानना चाहिये। ये तीनों देव कुशमें प्रतिष्ठित माने गये है। इसलिये देवताओंकी तृप्तिके लिये मुख्यरूपमे

कुशको और पितरोंको तृप्तिके लिये तिलको आवश्यकता होती है। देवताओं और पितरोंकी तृप्ति ही विश्वकी तृप्तिमें हेतु है। अतः ब्राद्धकों जो विधियों बतायी गयो हैं, उन्होंके अनुसार मनुष्यको ब्रह्मा, देवदेवेश्वर तथा पितृजनोंको संतुप्त करना चाहिये। ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि और तुलसी-ये बार-बार प्रयुक्त होनेपर भी बासी नहीं होते।

'हे पश्चित्रेष्ठ! विष्णु, एकादशोवत, गीता, तुलसी, बाह्मण और गी- ये छ: दुर्गम असार-संसारमें लोगोंको मुक्ति प्रदान करनेके साधन है'-

विष्णुरेकादशी गीता तुलसी विप्रधेनवः असारे दुर्गसंसारे षद्पदी मुक्तिदाधिनी। (313138-34)

मृत्युकालमें मरणासन्तके दोनों हाथोंमें कुश स्थान चाहिये। इससे प्राणी विष्णुलोकको प्राप्त करता है।

लवणस्म पितरोंको प्रिय होता है और स्वर्गको प्रदान करता है। यह लक्ष्णरस भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन हुआ है। इसलिये अनादिके साथ लवणका दान करना जाहिये। इस पृथ्वांपर यदि किसी आतुर व्यक्तिके प्राप्त न निकलते हों तो उसके लिये स्वर्गका द्वार खोलनेके लिये लवणका दान करना चाहिये।

उसके समीप तुलसीका वृक्ष एवं शालग्रामकी शिलाको भी लाकर रखे। तत्पक्षात् यथाविधान विभिन्न सुन्होंका पाट करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्यको मृत्यु मुक्तिदायक होती है। उसके बाद मरे हुए प्राणीके जरीरगत विभिन्न स्थानोंमें सोनेकी शलाकाओंको रखनेका विधान है, जिसके अनुसार क्रमश: एक शलाका मुख, एक-एक शलाका नाकके दोनों छिद्र, दो-दो शलाकाएँ नेत्र और कान, एक शलाका लिङ्ग तथा एक शलाका उसके ब्रह्माण्डमें रखनी चाहिये। उसके दोनीं हाथ एवं कण्डभागमें तुलसी रखे। उसके शवको दो वस्त्रोंसे आच्छादित करके कुंकुम और अक्षतसे पूजन करना चाहिये। तदनना पुष्पोंको मालासे विभूषित करके उसे बन्धु-बान्धवों तथा कन्धेपर रखकर स्वयं ले जाना चाहिये।

जली न हो। उस चितामें चन्दन, तुलसी और पलाशादिको पहुँचाया जाता है। [शेष पृष्ठ-संख्या ५१५ से]

लकड़ीका प्रयोग करना चाहिये।

जब मरणासन्त व्यक्तिको इन्द्रियोंका समृह व्याकुल हो उठता है, चेतन शरीर जडीभृत हो जाता है, उस समय प्राण शरोरको छोड़कर यमराजके दूरोंकि साथ चल देते हैं।

उस समय जो प्राणी दुरात्मा होते हैं, उन्हें यमदूत अपने पालबन्धनोंसे जकड़कर मारते हैं। जो सुकृती हैं, उनको स्वर्गक पार्षद सुखपूर्वक अपने लोकको ले जाते हैं। यमलोकके दुर्गम मार्गमें पापियोंको दु:ख झेलते हुए जाना पड़ता है।

यमराज अपने लोकमें शङ्क, चक्र तथा गदा आदिसे विभूषित चतुर्भुज रूप धारणकर पुण्यकर्म करनेवाले साधु पुरुषोंके साथ मित्रवत् आचरण करते हैं और पापियोंको संनिकट बुलाकर उन्हें अपने दण्डसे तर्जना देते हैं। वे प्रलयकालीन मेघके समान गर्जना करनेवाले हैं। अञ्चनगिरिके सद्दर उनका कृष्णवर्ण है। तथा एक बहुत बढ़े भैंसेपर सवार होते हैं। वे महाक्रोधी एवं अत्यन्त भयंकर है। भीमकाय दुराकृति यमराज अपने हाथोंमें लोहेका दण्ड और पात धारण करते हैं। उनके मुख तथा नेत्रोंको देखनेसे ही पापियोंके मनमें भय उत्पन्न हो उठता है। इस प्रकारका महाभयानक यमराज जब पापियोंको दिखायी पहते हैं, उस समय हाहाकार करता हुआ अङ्ग्रहमात्रका मृत पुरुष अपने घरकी ओर देखता हुआ यमद्तीके द्वारा ले जाया जाता है।

प्राचोंसे मुक्त-शरीर-चेष्टाहीन हो जाता है। उसको देखनेसे मनमें पूजा उत्पन्न होने लगती है। वह तुरंत अस्पृश्य तथा दुर्गन्धयुक्त और सभी प्रकारसे निन्दित हो जाता है। यह ऋरीर अन्तमें कीट, विष्ठा या राखमें परिवर्तित हो जाता है। हे तास्यें। क्षणभरमें विश्वंस होनेवाले इस क्ररीरपर कौन ऐसा होगा जो गर्व करेगा। इस असत्-हरीरसे होनेवाले वित्तका दान, आदरपूर्वक वाणी, कीर्ति, धर्म, आयु और परिपकार ही सारभूत है। यमलोक ले जाते हुए यमदृत प्राणीको बार-बार नरकका तीव्र भय दिखाते हुए पुत्र एवं पुरवासियोंके साथ अन्य द्वारसे ले जाय। उस समय डॉटकर यह कहते हैं कि हे दुष्टात्यन्! तू शीम्र चल। तुझे अपने बान्धवोंके साथ पुत्रको मरे हुए पिताके शबको यमराजके घर जाना है। श्रीघ्र ही हम सब तुझे 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें से चलेंगे। उस समय इस प्रकारकी वाणी और श्मशान देशमें पहुँचकर पुत्र पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बन्धु-बान्धवॉका रुदन सुनकर कैंचे स्वरमें हा-हा करके वहाँकी उस भूमिपर चिताका निर्माण करवाये, जो पहलेसे विलाप करता हुआ वह मृतक यमदूर्तीक द्वारा यमलोक ॐ श्रीपरमात्मने नमः श्रीगणेशाय नमः ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

संक्षिप्त गरुडपुराण

आचारकाण्ड

भगवान् विष्णुकी महिमा तथा उनके अवतारोंका वर्णन

नारायणं नमस्कृत्य तरं सैव नरोत्तयम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ 'नरप्रेष्ठ भगवान् जीनरनारायण और भगवती सरस्वती तथा व्यासदेवको नमन करके पुराणका प्रवचन करना चाहिये।'

जो जन्म और जग्नसे रहित कल्याणस्वरूप—अजन्मा तथा अजर हैं, अनन्त एवं ज्ञानस्वरूप हैं, महान् हैं, विजुद्ध (मलरहित), अनादि एवं पाञ्चभीतिक शरीरसे होन हैं, समस्त इन्द्रियोंसे रहित और सभी प्राणियोंमें स्थित हैं, साथासे परे हैं, उन सर्वेष्यापक, परम पवित्र, मङ्गलमय, अद्ध्य भगवान् श्रीहरिकों मैं बन्दना करता हैं। मैं मन-वाणों और कमंसे विष्णु, शिव, ब्रह्मा, गणेश तथा देवी सरस्वतीको सर्वदा नमस्कार करता हैं।

एक बार सर्वज्ञास्त्रपारङ्गत, पुरागिवद्याकुज्ञल, ज्ञान्तिक महातमा सूतजी तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें नैमियारण्य आये और एक पवित्र आसनपर स्थित होकर भगवान् विष्णुका स्थान करने लगे। ऐसे उन क्रान्तदर्शी तपस्योका दर्शन करके नैमियारण्यवासी शौनकादि मुनियोंने उनकी पूजा की और स्तुति करते हुए उनसे यह निवेदन किया—

ऋषियोंने कहा— हे स्तजो! आप तो सब कुछ जानते हैं, इसलिये हम सब आपसे पूछते हैं कि देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ देव कौन हैं, ईश्वर कौन हैं और कौन पूज्य हैं? ध्यान करनेके योग्य कौन हैं? इस जगत्के स्ट्रा, पालनकर्ता और संहर्ता कौन हैं? किनके द्वारा यह (सनातन) धर्म प्रवर्तित हो रहा है और दुष्टोंके विनातक कौन हैं? उन देवका कैसा स्वरूप हैं? किस प्रकार इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि हुई हैं? किन वर्तोंका पालन करनेसे वे देव संतुष्ट होते हैं? फिस योगके द्वारा उनको प्राप्त किया जा सकता है? उनके कितने अवतार है? उनकी वंश-परम्परा कैसी है? वर्णांखमादि भर्मोंके प्रवर्तक एवं रक्षक कीन हैं? हे सहामते औस्तुतजी। इन सबको और अन्य विषयोंको हमें बतायें तथा भगवान् नारायणको सभी उत्तम कथाओंका वर्णन करें।



सूतजी कोले — हे ऋषियो! मैं उस गरुडमहापुराणका वर्णन करता है, जो सारभूत है और भगवान विष्णुकी कथाओंसे परिपूर्ण है। प्राचीन कालमें इस पुराणको श्रीगरुडजीने करमप ऋषिको सुनाया था और मैंने इसे व्यासजीसे सुना था। हे ऋषियो! भगवान नारायण ही सब देवोंमें ब्रेष्ठ देव हैं। वे ही परमात्मा एवं परब्रह्म है। उन्होंसे इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारको क्रियाएँ होती है। वे बरा-मरणसे रहित हैं। वे भगवान वासुदेव अजना

अवसवरमक्तं ज्ञानकपं महान् शिवममलमनारि भूवदेशदिशेवन्।
सक्तकरण्डीतं सर्वभूतिकातं तं हरियमलममायं सर्वतं बन्द एकम्।
नमस्यामि हरि तदं ब्रह्मणं च गणाधियम्। देवी सरस्वती चैव मनोवाककर्योधः सदा। (१। १-२)

होते हुए भी जगतुकी रक्षाके लिये सनत्कुमार आदि अनेक धारण किया। उन्होंने बारहवें अवतारमें 'धन्यन्तरि' तथा रूपोंमें अवतार ग्रहण करते हैं।

हे ब्रह्मन्! उन भगवान् श्रीहरिने सर्वप्रथम कीमार-सर्गर्मे (सनत्कुमारादिके रूपमें) अवतार धारण करके कठीर तथा अखण्ड ब्रह्मचर्यवतका पालन किया। इसरे अवतारमें उन्हीं यतेश्वर श्रीहरिने जगत्की स्थितिके लिये (हिरण्याधके द्वारा) रसातलमें ले जायी गयी पृथियीका उद्घार करते हुए 'बराह' -शरीरको धारण किया। तीसरे ऋषि-सर्गमें देवर्षि (नारद)-के रूपमें अवतरित होकर उन्होंने 'सात्वत तन्त्र' (नारदपाञ्चरात्र)-का विस्तार किया, जिससे निष्काम कर्मका प्रवर्तन हुआ। चौथे 'नरनारायण'-अवतारमें भगवान् श्रीहरिने धर्मकी रक्षाके लिये कठोर तपस्या की और ये देवताओं तथा असरोंद्रारा पुजित हुए। पाँचवं अवतारमें भगवान बोहरि 'कपिल'-नामसे अवतरित हुए, जो सिद्धीमें सर्वश्रेष्ठ हैं और जिन्होंने कालके प्रभावसे लुख हो चुके सांख्यरास्वकी शिक्षा दी। छठे अवतारमें भगवान नारायणने महर्षि अजिकी पत्नो अनस्याके गर्भसे 'दत्तात्रेय' के रूपमें अवतोणं होका राजा अलके और प्रहाद आदिको आन्बीक्षिको (ब्रह्म) विद्याका उपदेश दिया। सातवें अवतारमें बीनारायणने इन्द्रादि देवगणोंके साथ यजका अनुहान किया और इसी स्वायम्भुव मन्त्रनारमें वे आकृतिके गर्पसे रुचि प्रजापिके पुत्ररूपमें 'यहदेव' नामसे अवतीर्ण हुए। आठवें अवतारमें वे ही भगवान विष्णु नाभि एवं मेरुदेवीके पुत्ररूपमें 'ऋपभदेव' नामसे प्रादुर्शन हुए। इस अवतारमें इन्होंने नारियोंके उस आदर्श मार्ग (गृहस्थात्रम)-का निदर्शन किया, जो सभी आत्रमोद्वारा तमस्कृत है। ऋषियोंकी प्रार्थनासे भगवान श्रीहरिने नयें अकतानमें पार्थिक शरीर अर्थात् 'पृथ'का रूप धारण किया और (गोरूपा पृथिवीसे) दुग्धरूपमें (अन्तादिक) महौपधियोंका दोहन किया, विससे प्रजाओंके जीवनकी रक्षा हुई। दसवें अवतारमें 'मलयायतार' ग्रहणकर इन्होंने चाक्षप मन्यनारके बाद आनेवाले प्रलयकालमें (निराष्ट्रित) वेवस्थत मनुको पृथ्वीरूपी नीकामें बैठाकर सुरक्षा प्रदान की। ग्यारहवें अवतारमें देवों और दानवोंने समुद्र-मन्थन किया तो उस समय भगवान् नारावणने 'कर्म' रूप ग्रहण करके मन्दराचल पर्वाको अपना पौठपर

तेरहवें अवतारमें 'मोहिनी' का रूप ग्रहण किया और इसी स्त्रीरूपमें उन्होंने (अपने सौन्दर्यसे) दैल्योंको मुग्ध करते हुए देवताओंको अमृतपान कराया। चौदहवें अवतारमें भगवान् विष्णुने 'नृसिंह'का रूप धारणकर अपने तेज नखायों मे पराक्रमी दैल्यराज हिरण्यकशिपुके हृदयको उसी प्रकार विदोर्ण किया, जिस प्रकार चटाई बनानेवाला व्यक्ति तिनकेको चौर डालता है। पंद्रहवें अवतारमें 'वामन'रूप धारणकर वे राजा बालके यहमें गये और देवोंको तीनों लोक प्रदान करनेकी इच्छासे उनसे तीन पग भूमिकी याचना को । सोलहर्वे (परशुराम नामक) अवतारमें ब्राह्मण्डोही श्रतिपाँक आत्पाचारोंको देखकर उनको क्रोध आ गया और उसी भावावेशमें उन्होंने इक्कीस बार पृथिवीको क्षत्रियोंसे रहित कर दिया। तदननार सबहवें अवतारमें ये पराशरद्वारा सत्यवतीसे (व्यास-नामसे) अवतरित हुए और मनुष्योंकी अल्पज्ञताको जानकर इन्होंने वेदरूपी वृक्षको अनेक शाखाओंमें विभक्त किया। ब्रीहरिने देवताओंके कार्योंको करनेकी इच्छासे राजाके रूपमें 'बीराम'-नामसे अट्ठारहर्वा अवतार लेकर समुद्रबन्धन आदि अनेक पराक्रमपूर्ण कार्य किया। उन्होसवें तथा बीसवें अवतारमें बीहरिने वृष्णवंशमें 'कुळा' एवं 'बलराम'का रूप धारण करके पृथ्वीके भारका हरण किया। इक्हीसवें अवतारमें भगवान् कलियुगकी सन्धिक अन्तमें देवद्रोहियोंको मीहित करनेके लिये कीकट देशमें जिनपुत्र 'बुद्ध' के नामसे अवशीर्ण होंगे और इसके पक्षात् कलियुगको आठवाँ सन्ध्यामें अधिकांश राजवर्गके समाप्त होनेपर वे ही ब्रीहरि विष्णुयशा नामक ब्राह्मणके धरमें 'कल्कि' नामसे अवतार ग्रहण करेंगे।

हे दिजो। (मैंने वहाँपर भगवान नारायणके कुछ ही अवतारोंकी कथाका वर्णन किया है। सत्य तो यह है कि) सत्त्वगुणके अधिष्ठान भगवान विष्णुके असंख्य अवतार है। यन, बंदवंता तथा सृष्टिप्रवर्तक सभी ऋषि उन्हीं विष्णुकी विभृतियाँ कही गयी हैं। उन्हीं मनु आदि श्रेष्ठ ऋषियोंसे इस जगत्की सृष्टि आदि होती है, इसीलिये वृत आदिके द्वारा इनकी पूजा करनी चाहिये। प्राचीन कालमें भगवान् बेदव्यासने इसो 'गरहमहापूराण'को मुझे सनाया था। (अध्याय १)

गरुडपुराणकी वक्त-श्रोत्-परम्परा, भगवान् विष्णुद्वारा अपने स्वरूपका वर्णन तथा गरुडजीको पुराणसंहिताके प्रणयनका वरदान

महात्मा व्यासजीने विष्णुकथासे आश्रित इस श्रेष्ठ पूछा — हे सदाशिव । आप किस देवका ध्यान कर रहे हैं ? गरुडमहापुराणको किस प्रकार सुनाया दा? वह सब आप मैं तो आपसे अतिरिक्त अन्य किसी देवताको नहीं जानता हमें विधिवत सुनानेकी कृपा करें।

सुतजी बोले-एक बार मुनियोंके साथ मैं बदरिकाश्रम गया था। वहाँपर परमेश्वरके ध्यानमें निमग्न भगवान् व्यासका मुझे दर्शन हुआ। उन्हें प्रणाम करके मैं वहींपर बैठ गवा और उन मुनीश्वरसे मैंने पूछा—हे व्यासजी। आप परमेश्वर भगवान् श्रीहरिके स्वरूप और जगत्की सृष्टि आदिको मुझे सुनायें, क्योंकि मैं जानता है कि आप उन्हीं परम पुरुषका ध्यान कर रहे हैं और उन सर्वज़के स्वरूपका परिज्ञान भी आपको है। हे विप्रवृन्द। मैंने व्यासदेवके सामने जब ऐसी जिज्ञासा की तो उन्होंने मुझसे जो कुछ कहा था, वह सब मैं आप सभीसे कह रहा हूँ सुने।

व्यासजीने कहा-हे स्तजी। ब्रह्माचीने जिस प्रकार नारद एवं प्रजापति दक्ष आदिसे तथा मुझसे इस पुराजकी कथा कही थी, उसी प्रकार मैं गरुडमहापुराणको सुनाता हूँ। आप सब (उसे) सुने।

सुतजीने पूछा-(हे भगवन्!) बहाजीने देवर्षि नारद और प्रजापति दक्षसहित आपसे किस प्रकारके पवित्र एवं सारतत्व बतानेवाले पुराणको कहा शा?

व्यासजीने कहा-एक बार नारद, दक्ष तथा भृगु आदि ऋषियोंके साथ में ब्रह्मलोकमें विद्यमान बीब्रह्माजीके पास गया और उन्हें प्रणामकर मैंने प्रार्थना की कि हे प्रभी! आप हमें सारतत्त्व बतानेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले-यह गरुडमहापुराण अन्य सभी हास्त्रींका सारभूत है। प्राचीन कालमें भगवान् विष्णुने अन्य देवताओंसहित रुद्रदेव (शिव) और मुझसे जिस प्रकार इसे कहा था, उसी प्रकार मैं भी इसका वर्णन आपसे कर रहा हैं।

व्यासजीने कहा-भगवान श्रीहरिने अन्य देवींके साथ रुद्रदेवको किस प्रकारसे सारभूत और महान् अर्ध बतलानेवाले इस गरुडमहापुराणको सुनाया था? हे ब्रह्मन्। उसे आप सुनायें।

ब्रह्माजी बोले-एक बार इन्द्रादि देवताओंके साथ मैं कैलासपर्वतपर पहुँच गया। वहाँ मैंने देखा कि स्द्रदेव शहुर

प्रशियोंने पुन: कहा—(हे स्तजो महाराज!) आपको परम तत्वके ध्यानमें निमग्न हैं। मैंने प्रणाम करके उनसे हैं। इन सभी देवताओं के साथ उस परम सारतत्त्वको जाननेकी मेरी इच्छा है। अत: आप उसका वर्णन करें।

> श्रीसद्दर्जीने ब्रह्माजीसे कहा — मैं तो सर्वफलदायक, सर्वव्यापी, सर्वरूप, सभी प्राणियोंके हृदयमें अवस्थित परमात्मा तथा सर्वेश्वर उन भगवान् विष्णुका ध्यान करता हैं। हे पितामह ! उन्हों विष्णुको आराधना करनेके लिये मैं सरीरमें भस्म तथा सिरपर जटाजूट धारण करके वताचरणमें निरत रहता है। जो सर्वव्यापक, जयशील, अद्वेत, निराकार एवं पद्मनाभ हैं, जो निर्मल (शुद्ध) तथा पवित्र हंसस्वरूप हैं, मैं उन्हों परमपद परमेक्षर भगवान् श्रोहरिका ध्यान करता हैं। इस सारतस्य (ब्रीविष्णु)-के विषयमें उन्होंके पास वलका हम सभीको पूछना चाहिये।

जिनमें सम्पूर्ण जगत्का वास है। प्रलयकालमें जिनमें सम्पूर्ण जगत् प्रविष्ट हो जाता है, सब प्रकारसे अपनेको उन्होंको जरणमें करके में उन्होंका चिन्तन करता हूँ। जिन सर्वभूतेश्वरमें सत्वयुण, रजोगुण एवं तमोगुण एक सुत्रमें अवगुम्फित मणियोंके समान विद्यमान रहते हैं, जो हजार नेत्र, हजार चरण, हजार जंधा तथा श्रेष्ट मुखसे युक्त हैं, जो स्ह्यसे भी सूक्ष्म, स्थूलसे भी स्थूल, गुरुसे गुरुतम और पूज्योंने पूज्यतम तथा श्रेहोंमें भी श्रेष्टतम है, जो सत्योंके परम सत्य और सत्यकर्मा कहे गये हैं, जो (पुराणोंमें) पुराणपुरुष और द्विजातियों में बाह्मण हैं, जो प्रलयकालमें सङ्घर्षण कहलाते हैं: मैं उन्हीं परम उपास्यको उपासना करता है।

जिन सत्-असत्से परे, ऋत (सत्यस्वरूप), एकाक्षर (प्रणवस्वरूप) परब्रहाको देव, यक्ष, राक्षस और नागगण अर्चना करते हैं, जिनमें सभी लोक उसी प्रकार स्फुरित होते हैं, जिस प्रकार जलमें छोटो-छोटो मछलियाँ स्फुरित होती हैं, जिनका मुख अग्नि, मस्तक चुलोक, नाभि आकार, चरणयुग्म पृथ्वी और नेत्र सूर्व तथा चन्द्र हैं; ऐसे उन (विष्णु) देवका मैं ध्यान करता है।

जिनके उदरमें स्वर्ग, मर्ल्य एवं पाताल - ये तीनों लोक

विद्यमान हैं। समस्त दिशाएँ जिनको भूजाएँ हैं, पवन अन्य देवोंके साथ आप उसका श्रयण करें-जिनका उच्छवास है, मेधमालाओंका समूह जिनका केश- मैं ही सभी देवोंका देव हैं। मैं हो सभी लोकोंका पुत्र है, नदियाँ हो जिनके सभी अङ्गोंको सन्धियाँ हैं और स्वामी हैं। देवोंका मैं ही ध्येय, पुरुष और स्तुतियोंसे स्तुति चारों समुद्र जिनकी कृष्टि हैं, जो कालातीत हैं, यह एवं करने योग्य हैं। हे रुद्र ! मैं ही मनुष्योंसे पूजित होकर उन्हें सत्-असत्से परे हैं, जो जगत्के आदि कारण तथा स्वयं परम गति प्रदान करता है तथा वृत, नियम और सदाचरणसे अनादि हैं, ऐसे उन नारायणका मैं चिनान करता है। मंतुष्ट होकर हे शिष! मैं ही इस संसारकी स्थितिका मूल

उत्पन्न हैं, जिनके चरणोंसे पृथिवीकी, कानोंसे दिशाओंकी मैं ही दृष्टींका निग्रह और धर्मकी रक्षा करता हैं। मैं ही और मस्तकसे स्वर्गको सृष्टि हुई है, जिन परमेश्वरमे सर्ग, मान्य आदिके रूपमें अवतीर्ण होकर अखिल भूमण्डलका प्रतिसर्ग, यंश, मन्यन्तर तथा यंशानुचरित प्रवर्तित हुआ है: पालन करता है। मैं हो मन्त्र हैं। मैं हो मन्त्रका अर्थ हैं और उन देवको मैं आराधना करता है। परम सारतत्वका जन प्राप्त मैं ही पूजा तथा ध्यानके द्वारा प्राप्त होनेवाला परम तस्व करनेके लिये हम सभीको उन्हींकी शरणमें जाना चाहिये।

ब्रह्माजीने कहा-हे व्यासजी! प्राचीन कालमें रुद्रके द्वारा ऐसा कहे जानेपर श्रेतद्वीपमें निवास करनेवाले भगवान विष्णुको प्रणाम करके उनको स्तुतिकर उस परम तत्त्वके मारको सननेको इच्छासे देवगर्लोके साथ मैं भी वहाँपर स्थित हो गया। तदनन्तर हमारे यध्य अवस्थित रुद्रने उन परम सारतत्त्वस्वरूप विष्णुको प्रणाम करके (चंह) जिज्ञास करते हुए कहा- हे देवेश्वर। हे हरे। आप हम सबको यह बतायें कि कौन देवाधिदेव हैं और कौन ईंधर हैं? कौन ध्येय तथा कौन पुत्र्य हैं ? किन वतींसे वे परम तस्त संतृष्ट होते हैं ? किन धर्मोंके द्वारा, किन निपमोंसे अधवा किस वार्मिक प्रजासे और किस आचरणमें वे प्रसन्न होते हैं? उन ईश्ररका वह स्वरूप कैसा है? किन देवके द्वारा इस जगतको साँए हुई है और कीन इस जगतका पालन करते हैं ? वे किन-किन अवतारोंको धारण करते हैं ? प्रलयकालमें यह विश्व किन देवमें लीन होता है 7 सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश तथा मन्यन्तर किन देवसे प्रवर्तित होते हैं और यह सब (दश्यमान जगत) किन देवमें प्रतिष्ठित है? हे हो। इन सभी विषयोंके साथ अन्य जो भी सारतन्त हैं, उन्हें बतायें और इसके साथ ही परमेश्वरके पाहात्म्य तथा ध्यानयोगके विषयमें भी बतानेकी कृपा करें।

तदननार भगवान विष्णुने रुद्रको उस परमेश्वरके माहातम्य एवं (उसकी प्राप्तिके साधनभूत) ध्यान और योगाटिक नियमों तथा अग्रदश विद्याओंका ज्ञान (इस प्रकारसे) दिया-

श्रीहरिने कहा - हे रुद्र! में बताता है, बहा। और

जिनके मनसे चन्द्रमा, नेत्रोंसे सूर्य और मुख्यसे अग्नि कारण है। मैं हो जगतको रचना करनेवाला है। हे सङ्कर! हैं। मैंने हो स्वर्ग आदिको सृष्टि को है और मैं ही स्वर्गादि भी हैं। में ही योगी, आद्य योग और पुराण हैं। जाता, श्रोता तचा मननकर्ता में हो हैं। बक्ता और सम्भाषणका विषय भी में हो हैं। इस जगतुके समस्त पदार्थ मेरे ही स्वरूप हैं और मैं हो सब कुछ है। मैं ही भोग और मोक्षका प्रदायक परम देव हैं। हे रुद्र। ध्यान, पुत्राके उपचार और (सर्वतंभद्र) मण्डल आदि सब कुछ मैं ही हैं। हे शिव। मैं ही सम्पूर्ण तेद हैं। मैं ही इतिहासस्वरूप हैं। मैं ही सर्वज्ञानमय है। मैं ही बहा और सर्वात्मा है, मैं ही ब्रह्मा हैं. मैं हो सर्वालोकमय हैं तथा मैं ही सभी देवींका आत्मस्वरूप है। मैं हो सावात सदाचार है। मैं हो धर्म है। मैं हो बैष्पव है। वै ही वर्णांत्रम है। मैं ही सभी वर्णों और आश्रमोंका सनातन धर्म है। हे रुद्र में हो चम-नियम और विविध प्रकारका व्रत है। में ही सर्व चन्द्र एवं मंगल आदि यह है।

प्राचीन कालमें पृथिबीपर पश्चिराज गरुडने तपस्याके द्वारा मेरी ही आराधना की थी। उनकी तपस्यासे संतुष्ट होकर मैंने उनसे कहा था कि आप मुझसे अभीष्ट बर माँग लें।

उस समय गरुडने कहा - हे हरि! नागोंने मेरी माता विनताको दासी बना लिया है। हे देव! आप प्रसन्न होकर मुझे यह वर प्रदान करें कि मैं उनको जीतकर अमृत प्राप्त करनेमें समर्थ हो सक्कें और माँको (नागोंकी माता) कद्रकी दासतासे मुक्त करा सकें, में आपका बाहन बन सकें, महान् वली, महान शकिशाली, सर्वज्ञ और नागोंको विदीर्ण करनेमें समर्थ हो सक्नै तथा जिस प्रकार प्राण-संहिताका रचनाकार हो सके बैसा हो करनेकी कृपा करें।

श्रीविष्ण बोले-हे पश्चिराज गरुड! आपने जैसा वर

माँगा है, वैसा ही सब कुछ होगा। आप नागोंकी दासतासे



अपनी माता विनताको मुक्त करवा सकेंगे। सभी देवताओंको जीतकर अपृत ग्रष्टण करनेमें आपको सफलता प्राप्त होगी। अत्यन्त शक्तिसम्यन्न होकर आप मेरे वाहन होंगे। विचोके विनाशको शक्ति भी आपको प्राप्त होगी। मेरी कृपासे आप

मेरे ही माहात्म्यको कहनेवाली पुराण-संहिताका प्रणयन करेंगे। मेरा जैसा स्वरूप कहा गया है, वैसा ही आपमें भी प्रकट होगा। आपके द्वारा प्रणीत यह पुराणसंहिता आपके 'गरुड' नामसे लोकमें प्रसिद्ध होगी।

हे विनतासूत। जिस प्रकार देव-देवोंके मध्य में ऐश्वर्य और ब्रोरूपमें विख्यात हैं, उसी प्रकार हे गरुड! सभी पुराणोंमें यह गरुडमहापुराण भी ख्याति अर्जित करेगा। जैसे विश्वमें मेरा कोर्तन होता है, वैसे हो गरुड़के नामसे आपका भी संकीर्तन होगा। हे पक्षित्रेष्ठ ! अब आप मेरा ध्यान करके उस प्राणका प्रणयन करें।

हे रुद्र। मेरे द्वारा यह बरदान दिये जानेके बाद इसी सम्बन्धमें कश्यप ऋषिके द्वारा पूछे जानेपर गरुडने इसी पुराणको उन्हें सुनाचा। कश्यपने इस गरुडमहापुराणका श्रवण करके गारुडीविद्याके बलसे एक जले हुए वृक्षको भी जीवित कर दिया था। गरुडने स्वयं (भी) इसी विद्याके द्वारा अनेक प्राणियोंको जीवित किया था। 'यद्वि ॐ डे स्वाहा'यह जप करने योग्य गारुडी पराविद्या है। हे रहा मेरे स्वरूपसे परिपूर्ण गरुडद्वारा कहे गये इस गरुडमहापुराणको आप सुने।

गरुडपुराणके प्रतिपाद्य विषयोंका निरूपण

ब्रह्मा और शिवने भगवान् विष्णुसे, मुनिबंध ब्यासने ब्रह्मासे करनेमें भी उन्होंने सफलता प्राप्त की। मायामय एवं सहज लीलाओंको विस्तारपूर्वक कहा गया किया था। स्थिति तथा प्रलयके कारण भी बन गये। देवोंको जीतकर उसको सुनें। (अध्याय ३)

सुतजीने कहा - हे शौनक । जिस गरुडमहापुराणको (अपनी माताको दासतासे मुक्त करानेके लिये) अमृत प्राप्त

और मैंने व्याससे सुना था, उसे ही इस नैमिधारण्यमें आप जिन भगवान् विष्णुके उदरमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विद्यमान संबंको में सुना रहा है। इस गरुडमहापुराणके प्रारम्भमें है, उनकी खुधाको भी उन्होंने (अपनी भक्तिसे) शान्त सर्गवर्णन तदनन्तर देवार्चन, तीर्थमाहात्म्य, भ्यत्युतान्त, किया। जिनके दर्शन या स्मरणमात्ररी सपौका विनाश मन्वन्तर, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, दानधर्म, राजधर्म, व्यवहार, हो जाता है, जिस गारुडमन्त्रके बलसे कश्यप ऋषिने वत, वंशानुचरित, निदानपूर्वक अष्टाङ्क आयुर्वेद, प्रलय, जले हुए वृक्षको भी जीवित कर दिया था, उन्हीं धर्म, काम, अर्थ, उत्तम ज्ञान और भगवान विष्णुको डरिस्टप गरुडने इस गरुडमहापुराणका वर्णन श्रीकश्यपसे

है। भगवान् वासुदेवके अनुग्रहसे इस गरुडमहापुराणके हे शीनक! यह श्रोमद्गरुडमहापुराण अत्यन्त पवित्र तथा उपदेष्टारूपमें श्रीगरुड सब प्रकारसे अत्यन्त सामर्थ्यवान् हो। पाट करनेपर सब कुछ प्रदान करनेवाला है। व्यासजीको गये और उसीके प्रभावसे उन्होंके वाहन बनकर वे सृष्टि, नमस्कार करके मैं यथावत उसे कह रहा है। आप सब

सच्टि-वर्णन

मन्त्रन्तर एवं वंशानुचरित - इन सबका विस्तारपूर्वक वर्णन करे।

श्रीहरिने कहा-हे रुद्र! सर्ग आदिके साथ हो पापोंका नाश करनेवाली सृष्टि-स्थिति एवं प्रलयक्ष्य भगवान् विष्णुकी सनातन क्रीडाका अब मैं वर्णन करूँगा, उसकी आप सर्ने।

नरनारायण-रूपमें उपास्य वे वास्ट्रेव प्रकाशस्वरूप परमात्मा परब्रह्म और देवाधिदेव हैं तथा इस जगतुकी सृष्टि-स्थिति एवं प्रलयके कर्ता हैं। यह सब जो कुछ दृष्ट-अदृष्ट है, उन भगवानुका हो व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप है। से हो पुरुष एवं कालरूपमें बिद्यमान है। जिस प्रकार बालक क्रीडा करता है, उसी प्रकार व्यक्तवर्में भगवान विष्णु और अध्यक्तरूपमें काल एवं पुरुष (निराकार ग्रहा) की जोड़ा होती है। उन्हों लीलाओंको आप भी सनें।

उन परमात्या परमेश्वरका आदि और अन्त नहीं है, वे ही जगतको धारण करनेवाले अनन प्रधोत्तम है। उन्हीं परमेश्वरसं अल्यकको उत्पत्ति होती है और उन्होंसे आत्मा (पुरुष) भी उत्पन्न होता है। इस अध्यक्त प्रकृतिसे बुद्धि चुँदिसे मन, मनसे आकार, आकारासे वायु, वायुसे तेज, तेजसे जल और जलसे पृथियोको उत्पत्ति हुई है।

हे रुद्र । इसके पश्चात् हिरण्यय अण्ड उत्पन्न हुआ। उस अण्डमें वे प्रभू स्वयं प्रविष्ट होकर जगतुकी सृष्टिके लिये सर्वप्रथम अरीर धारण करते हैं। तदनन्तर चतुर्मुख ब्रह्माके रूपमें शरीर धारणकर रज्ञोगुणके आश्रयसे उन्हों देवने इस चराचर विश्वकी सृष्टि की।

देव, असुर एवं मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् उसी अण्डमें विद्यमान है। वे हो परमात्मा स्वयं सप्टा (ब्रह्मा)-के रूपमें जगतुको संरचना करते हैं, विष्णुरूपमें जगतुको रक्षा करते हैं और अन्तमें संहर्ता शिवके रूपमें वे हो देव संहार करते हैं। इस प्रकार एकमात्र वे ही परमेश्वर ब्रह्मांके

सद्रजी बोले - हे जनार्दन! आप सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, स्टब्के रूपमें सम्पूर्ण जगतुको विनष्ट करते हैं। सृष्टिके समय वे ही बराहका रूप धारणकर अपने दाँतोंसे जलमग्र पृथियोका उद्घार करते हैं। हे शङ्कर! संक्षेपमें ही मैं देवादिको सृष्टिका वर्णन कर रहा है; आप उसको सुने।

सबसे पहले उन परमेश्वरसे महत्तत्वकी सृष्टि होती है। वह महत्तत्त्व उन्हीं ब्रह्मका विकार है। पश्च तन्मात्राओं (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द)-की उत्पविसे युक्त द्वितीय सर्ग है। उसे भूत-सर्ग कहा जाता है। (इन पश्च तन्याकऑसे पृथिवी, जल, तेज, वायु तथा आकाश-रूपमें महाभूतोंकी सृष्टि होती है।) तीसरा वैकारिक सर्ग है, (इसमें कमैन्द्रिय एवं जानेन्द्रियोंकी सृष्टि आती है इसलिये) इसे ऐन्द्रिक भी कहा जाता है। इसकी उत्पत्ति बुद्धिपूर्वक होती है, यह प्राकृत-सर्ग है। चौथा सर्ग मुख्य-सर्ग है। पर्वत और वृक्षादि स्थावरोंको मुख्य माना गया है। पौचवाँ सर्ग वियंक सर्ग कहा जाता है, इसमें वियंककोता (पश्-पश्ची आदि) आते हैं। इसके पक्षात कथ्यिकोतोंको सृष्टि होती है। इस छंडे सर्गको देव-सर्ग भी कहा गया है। तदनन्तर सातवाँ सर्ग अवांकरुपेतींका होता है। यही मानुष-सर्ग है।

आठवाँ अनुग्रह नामक सर्ग है। वह सात्त्विक और तामसिक गुणोंसे संयुक्त है। इन आढ सगौमें पाँच वैकृत-सर्ग और तीन प्राकृत-सर्ग कहे गये हैं। कीमार नामक सर्ग नवीं सर्ग है। इसमें प्राकृत और बैकुत दोनों सृष्टियाँ विद्यमान रहती है।

हे रुद्र! देवोंसे लेकर स्वायरपर्यन्त चार प्रकारकी सृष्टि कही गयी है। सृष्टि करते समय ब्रह्मासे (सबसे पहले) मानसपुत्र उत्पन्न हुए। तदननार देव, असूर, पितु और मन्ष्य-इस सर्गचतृष्टयका प्रादर्भाव हुआ।

इसके बाद जल-सृष्टिको इच्छासे उन्होंने अपने मनको स्रष्टि-कार्यमें संलग्न किया। स्रष्टि-कार्यमें प्रवृत्त होनेपर प्रजापति ब्रह्मामे तमागुणका प्राद्भाव हुआ। अतः सृष्टिकी अभिलापा रखनेवालं ब्रह्मको जङ्कासं सर्वप्रथम असुर उत्पन्न हुए। हे शहर! तदननार ब्रह्मने उस तमीगुणसे युक्त शरीरका परित्याग रूपमें सृष्टि, विष्णुके रूपमें पालन और कल्पानाके समय किया तो उस शरीरसे निकली हुई तमोगुणकी मात्राने स्वयं

[्]र जिनका स्रोत (आहार-संचार) विर्वक (कक्र) होता है उन्हें 'तिक्करनेता' कहते हैं, इसोरिनवे पश्-पश्चियोंको तिर्वक्रमोता कहा जाता है। इनके द्वारा खाये गये अध-जल आदिका इनके उदर (पेट)-में वह (टेडी-तिरखी) गतिसे संचरण होता है।

^{: &}quot;अध्यक्षिता" सन्द देवताओंका वाचक है, क्योंकि इनका आहम-संबाद क्याको और होता है।

 ^{&#}x27;अर्थाकसोता' ग्रव्ट मनुष्योका वाचक है, क्योंकि इनका आहार-संख्या अर्थाक (वीचेकी ओर) होता है।

रात्रिका रूप धारण कर लिया। उस रात्रिरूप सृष्टिको देखकर यक्ष और राक्षस बहुत ही प्रसन्न हुए।

हे शिव! उसके बाद सत्त्वगुणको मात्राके उत्पन्न होनेपर प्रजापति ब्रह्मके मुखसे देवता उत्पन्न हुए। तदनन्तर जब उन्होंने सत्त्वगुण-समन्त्रित अपने उस शरीरका परित्याग किया तो उससे दिनका प्रादुर्भाव हुआ, इसीलिये रात्रिमें असूर और दिनमें देवता अधिक शक्तिशाली होते हैं। उसके पश्चात् ब्रह्माके उस सास्त्रिक शरीरसे पितृगणीको उत्पत्ति हुई।

इसके बाद ब्रह्माके द्वारा उस साल्विक शरीरका परित्याग करनेपर संध्याकी उत्पत्ति हुई जो दिन और रात्रिके मध्य अवस्थित रहतो है। तदनन्तर ब्रह्माके रजांभय शरीरसे मनुष्योंका प्रादुर्भाव हुआ। जब ब्रह्माने उसका परित्याग किया तो उससे ज्योतना (प्रभातकाल) उत्पन हुई, जो प्रावसक्याके नामसे जानी जाती है। ज्योत्सना, रात्रि, दिन और सक्या – ये चारों उस ब्रह्मके ही शरीर हैं।

तत्पश्चात् ब्रह्माके रजोगुणमय शरीरके आजवसे सूधा और क्रोधका जन्म हुआ। उसके बाद बहातरे ही भूख-प्याससे आतुर एवं रक्त-मांस पीने-खानेवाले राक्षसी तथा यक्षीकी उत्पत्ति हुई। राक्षसीसे रक्षणके कारण राक्षस कहा गया और भक्षणके कारण वर्धोंको वर्ध-नामकी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। तदननार ब्रह्मके केशोंसे सर्व उत्पन्न हुए। ब्रह्माक केश उनके सिरसे नीचे गिरकर पून: उनके सिरपर आरूत हो गये-यही सर्पण है। इसी सर्पण (गतिविरोध)-के कारण उन्हें सर्प कहा गया। उसके बाद ब्रह्माके क्रोधसे भूतोंका जन्म हुआ। (इसीलिये इन प्राजियोंमें

क्रोधकी मात्र अधिक होती है।) तदनन्तर ब्रह्मासे गन्धवींकी उत्पत्ति हुई। गायन करते हुए इन सभीका जन्म हुआ था, इसलिये इन्हें गन्धर्व और अप्सराकी ख्याति प्राप्त हुई।

उसके बाद प्रजापति ब्रह्मके वश्व:स्थलसे स्वर्ग और झुलोबा उत्पन्न हुआ। उनके मुखसे अज, उदर-भागसे तथा पार्च-भागमे गी, पर-भागमे हाथीसहित अध, महिप, ऊँट और भेड़को उत्पत्ति हुई। उनके रोमोंसे फल-फुल एवं औषधियोंका प्रादुर्भाव हुआ।

गौ, अज, पुरुष-ये मेध्य (पवित्र) हैं। घोड़े, खचर और गदहे ग्राप्य पशु कहे जाते हैं। अब मुझसे वन्य पतुओंको सुनो—इन बन्य जन्तुओंमें पहले श्रापद (हिंसक ब्याद्यादि) पशु, दूसरे दो खुरोंनाले, तीसरे हाथी, चौथे बंदर, पाँचवें पक्षी, छठे कच्छपादि जलचर और सातवें मरीसुप जीव (उत्पन हुए) है।

उन ब्रह्मके पूर्वादि चारों मुखोंसे ऋक्, यजुप, साम तका अधर्व-इन चार वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ। उन्हेंकि मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे धार्तिय, करु भागसे वैश्य तथा पैरोसे शुद्र उत्पन्न हुए। उसके बाद उन्होंने बाह्यणीके लिये बहालोक, धतियोंके लिये इन्द्रलोक, वैश्योंके लिये वायुलोक और शुद्रोंके लिये गन्धर्वलोकका निर्धारण किया। उन्होंने ही ब्रह्मचारियंकि लिये ब्रह्मलोक, स्वधर्मनिरत गृहस्थाश्रमका पालन करनेवाले लोगोंके लिये प्राजापत्यलोक वानप्रस्थात्रमियोके लिये सप्तर्षिलोक और संन्यासी तथा इच्छानुकूल सदैव विचरण करनेवाले परम तपोनिधियोंके लिये अक्षयलोकका निर्धारण किया। (अध्याय ४)

मानस-सृष्टि-वर्णन, दक्ष प्रजापतिद्वारा मिथुनधर्मसे सृष्टिका विस्तार

रहनेवाली मानस-प्रजाओंको सृष्टिके अनन्तर सृष्टि-विस्तार पितृगण) उत्यन्त हुए। इन बहिंचदादि सप्त पितृगणींमें प्रथम करनेवाले मानस-पुत्रोंकी सृष्टि को । उनसे धर्म, रुद्र, मनु, तीन पितृगण अमुर्तरूप और शेष चार पृतिमान् हैं। सनक, सनातन, भृगु, सनत्कुमार, रुचि, श्रद्धा, मरीचि,

श्रीहरिने पुन: कहा - हे रह। प्रजापति ब्रह्मने परलोकमें आञ्चप, सुकातिन, उपहृत एवं दीप्य नामक (सात

कमलयोनि ब्रह्मके दक्षिण अँगृहेसे ऐश्वर्यसम्पन दक्ष अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु वसिष्ठ और नारदका प्रजापति और जाम अँगुटेसे उनकी भार्याका जन्म हुआ। प्रादुर्भाव हुआ। साथ ही बर्डियद्, अग्निप्यात्त, क्रव्याद, प्रतापतिने अपनी उस पत्नीके गर्भसे अनेक शुध लक्षणीयाली

१. जिससे सब लोग अपनी रक्षा कीं, वह रक्षाम है। इसी दृष्टिये रक्षणका अवस्य यह है—किनमे अपना रक्षण—बबाब आवश्यक है, वे राक्षस है।

२. यक्ष घरके देवता हैं। ये धरके तिर्व पृत्य होते हैं। धक्षण पृत्राका एक भाग है। यक्ष धन प्रदान करनेके लिये धनकी कामना करनेवार्लीमें भक्षणको अपेक्षा रखते हैं, इसी दृष्टिसे भक्षणके आधारक यक्ष बाम समझना चाहिये। यक्षका अर्थ पृत्रा भी हो सकता है। इसके रिस्पे प्राप्तेद (७।६१।५)-का सायतभाग्य भी द्रष्टव्य है।

कन्याओंको उत्पन्न किया और उन्हें ब्रह्माके मानस पुत्रोंको 🛮 दक्षकन्या स्वधाने पितरोंसे मेना तथा वैतरणी नामवाली पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई।

नामक पुत्री भृगुको समर्पित की, जिससे भृगुके धाता और विधाता नामक दो पुत्र हुए। उसी ख्यातिसे भगवान् नारायणकी जो श्रो नामक पत्नी हैं, उनको भी उत्पत्ति हुई। उन श्रीके गर्भसे हरिने 'बल' और 'उन्माद' नामके दो पुत्रोंको उत्पन किया है।

महात्मा मनुके आयति और नियति नामवाली दो कन्याएँ हुई, जिनका विवाह भृगुपुत्र धाता और विधातके साथ हुआ। उन दोनोंसे एक-एक पुत्रका जन्म हुआ। आयतिके गर्भमे धाताने प्राण और नियतिके गर्भमे विधाताने 'मुकण्डु' को उत्पन किया। उन्हों नृकण्डुसे महामुनि मार्कण्डेयको उत्पत्ति हुई।

मरीचिकी पत्नी सम्भृतिने पौर्णमास नामक एक पुत्रको जन्म दिया। उस महात्मा पौर्णमासके दो पुत्र हुए, जिनका नाम विरुवा और सर्वग है।

अङ्गिराने दक्षकन्या स्मृतिसे अनेक पुत्र और सिनीवाली. कुर्, राका तथा अनुमति नामक चार कन्यओंको जन्म दिया।

अनसूयाने अत्रिसे चन्द्रमा, दुर्वासा एवं योगी दतात्रेय नामक तीन पुत्रोंको उत्पन्न किया। पुलस्त्यको पत्नी प्रोतिसे दत्तीली नामक पुत्र हुआ। प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमासे क्रमंश, अर्थवीर तथा सहिष्णु नामक तोन पुत्र उत्पन्न हुए। क्रतुको पत्नी सुमतिसे साठ हजार बालखिल्य ऋषियोको उत्पत्ति हुई। ये सभी कथ्बीता, अङ्गुष्ठपर्व परिमाणवाले तथा देदीप्यमान सूर्यके समान तेजस्की हैं।

अनघ, सुतपा और शुक्र—ये सात पुत्र हुए। ये सभी पितृगर्पोके साथ हुआ। सप्तर्षि थे।

समर्पित कर दिया। उन्होंने सती नामक पुत्रीका विवाह दो पुत्रियोंको जन्म दिया। वे दोनों कन्याएँ 'ब्रह्मवादिनी' रुद्रके साथ किया, उनसे रुद्रके असंख्य महापराक्रमशाली थीं। मेनाका विवाह हिमाचलके साथ हुआ। हिमाचलने मेनासे मैनाक नामक पुत्र उत्पन्न किया था तथा गौरी दशने असाधारण रूपवती सुन्दर लक्षणींवाली ख्याति (पार्वती)-नामसे प्रसिद्ध पुत्रीको उत्पन्न किया, जो पूर्वजन्ममें सती थीं।

> है शिव! तदननार भगवान् ब्रह्माने अपने ही समान गुणवाले स्वायम्भुव मनुको जन्म दिया और उन्हें प्रजापालनके कार्यमें नियुक्त किया। उन्हीं ब्रह्मासे देवी शतरूपाका आविर्धाव हुआ। सर्ववैभवसम्यन्न महाराज स्वायम्भुव मनुने तपस्याके प्रभावसे परम शुद्ध तपस्विनी उस शतरूपा नामक कन्याको पत्रीरूपमें ग्रहण किया, जिससे प्रियव्रत और उतानपाद नामक दो पुत्र तथा प्रसृति, आकृति और देवहृति नामको तीन पुत्रियोंका जन्म हुआ। उनमेंसे मनुने आकृति नामक कन्याका विवाह प्रजापति 'रुचि' के साथ किया। प्रसृति तथा देवहूर्ति क्रमशः दक्ष एवं कर्रममुनिको प्रदान को गर्यो।

> रचिसे यह और दक्षिणाका जन्म हुआ। यहसे दक्षिणके बारह पुत्र हुए, जो महाबलशाली 'माम' (देवगण विशेष)-के नामसे प्रसिद्ध हैं।

दश प्रजापतिने (प्रसृतिसे) चौबीस श्रेष्ट कन्याओंकी उत्पत्ति की। उन कन्याओंमें श्रद्धा, लक्ष्मी, पृति, तुष्टि, पृष्टि, मेथा, क्रिया, बुद्धि, लग्जा, यपु, शान्ति, ऋदि और कीर्ति चमकी जो तेरह कन्याएँ थीं, उनको पत्नीके रूपमें दक्षिणाके पुत्र धर्मने स्वीकार किया। इसके बाद शेष जो क्यांति, सती, सम्भृति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्ति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नामक ग्यारह कन्याएँ थाँ, उनका विकाह क्रमश: मुनिश्रेष्ट भृगु, महादेव, मरीचि, वसिष्ठकी पत्नी ऊर्जासे रज, गात्र, ऊर्ध्यवाहु, शरण, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रुनु, अत्रि, वसिष्ठ, अग्नि और

ब्रद्धाने काम, लक्ष्मीने दर्प, धृतिने नियम, तुष्टिने संतोष हे हर। उस दक्ष प्रजापतिने शरीरधारी अग्निको स्वाहा तथा पृष्टिने लोभको उत्पन्न किया। मैधासे बुतका तथा नामक पुत्रों प्रदान की थी। उस स्वाहादेवीने अग्निदेवसे पावक, क्रियासे दण्ड, लय और विनय नामक तीन पुत्रोंका जन्म पवमान तथा शुचि नामक ओजस्वी तीन पुत्रीको प्रान्त किया। हुआ। बुद्धिने बोधको, लज्जाने विनयको, वपुने व्यवसाय

१, पावक, परामान और शुर्चि नामक तीन अग्नियाँ कही गयो है। इनमें विद्युष्-सम्बन्धी अग्नियो 'पावक' तथा मन्यनसे उत्पन्न अग्निको 'पवमान' कहा जात है और जो यह सूर्य वमकता है वहीं 'जुन्नि' (त्त्रयक) अग्नि कडलाता है—

भावकः पर्यमानश्च शुचिरग्निश्च ते त्रयः। निर्मय्यः पर्यमानः स्याद् वैद्युतः भावकः स्मृतः।

यक्षामी तपते सूर्यः शुचिराग्निस्तामी स्पृतः। (कृमंपुराण, पूर्वविभाग १२ (१५-१६)

एवं शान्तिने क्षेमको उत्पन्न किया। ऋद्भिसे सुख और तिरस्कारपूर्ण व्यवहारको देखकर उनसे न रहा गया और कीर्तिसे यश उत्पन्न हुए। ये सभी धर्मके पुत्र हैं। उन्होंने वहींपर अपने प्राणींका परिल्याग कर दिया। वे ही धर्मके पुत्र कामकी पत्नीका नाम रति है, उसके पुत्रको सती पुन: हिमालयसे मेनाके गर्भमें उत्पन्न हुई और हर्ष कहा गया है।

किया। उस यज्ञमें रुद्र और सतीके अतिरिक्त निमन्त्रित अत्यन्त क्रुद्ध महातेजस्वी भृद्गीश्वर पिनाकपाणि भगवान् दक्षके सभी जामाता अपनी पत्रियोंके साथ उपस्थित हुए। जङ्करने यज्ञका विध्वंस करके उस दक्षको यह शाप ऐसा देखकर बिना बुलाये ही सती भी उस यजमें जा दिया कि तुम धुवके बंशमें मनुष्य होकर जन्म ग्रहण पहुँचीं, किंतु वहाँ अपने पिता दक्षके द्वारा किये गये करोगे। (अध्याय ५)

गौरीके नामसे प्रसिद्ध होकर शम्भुको पत्नी वर्नी। तदननार दक्ष प्रजापतिने किसी समय अक्षमेध-यज्ञका अनुहान उनसे गणेश और कार्तिकेय हुए। (सतीके देहत्यागसे)

धुववंश तथा दक्ष प्रजापतिको साठ कन्याओंको सन्ततियोंका वर्णन

श्रीहरिने (रुद्रसे) कहा — उत्तानपादको मुरुचि नामक पत्नीसे उत्तम और सुनीति नामवाली भाषांसे धुव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उनमें धूवने देविषे नारदकी कृपासे प्राप्त उपदेशके द्वारा देवाधिदेव भगवान् जनार्दनको आराधना करके श्रेष्ट स्थान प्राप्त किया।

धुवके महाबलशाली एवं पराक्रमशील ज्ञिल्छ नामका पुत्र हुआ। उससे प्राचीनवर्षि नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उससे उदारधी नामक पुत्रने जन्म लिया। उसके दिवजय नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र रिपु हुआ। रिपुसे चाश्रुष नामक पुत्रने जन्म लिया। उसीने चाश्रुष मनुकी ख्याति प्राप्त की थी। उस चाश्रुष मनुसे रुरु उत्पन हुआ। तदनन्तर उसके भी ऐश्वर्यसम्पन अङ्ग नामवाला एक पुत्र हुआ। उस पुत्रसे बेण (चेन)-ने जन्म लिया, जो नास्तिक एवं धर्मच्युत था। मुनियोंके द्वारा किये गये कुशामातसे उस साथ विवाह किया। इस असिवनीके गर्थसे उन दक्षके अधर्मी चेनकी मृत्यु हुई। उसके बाद पुत्र प्राप्त करनेके हजार पुत्र उत्पन्न हुए। नारदके उपदेशसे वे सभी पृथिवीकी लिये तपस्थियोंने उसके ऊरु-भागका मन्थन किया, जिससे अन्तिम सीमाको जाननेके लिये निकल पड़े, किंतु पुन: एक पुत्र हुआ, जो अत्यना छोटा और कृष्णवर्णका था। वापस नहीं आये। मुनियोंने उससे कहा 'त्वं निर्वाद' अर्थात् तुम बैठो। इसी शब्दके कथनसे उसको निवाद नामकी प्रसिद्धि प्राप्त हुई दक्षने पुन: हजार पुत्रोंको जन्म दिया। वे सभी 'शबलाक्ष' और वह विन्ध्याचलमें निवास करनेके लिये चला गया। नामसे प्रसिद्ध हुए। उन लोगोंने भी अपने बड़े भाइयोंके

जीवन-रक्षाके लिये पृथिवीका दोहन किया। उस पृथुराजका पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। संवगवपुरुअंव २-

जो पृथ्विको एकच्छप सम्राट् था। उसने लयण समुद्रकी पुत्रो सामुद्रोके साथ विवाह किया। उस प्राचीनवर्हिसे सामुद्रीने दस पुत्रोंको जन्म दिया। ये सभी प्राचेतस नामवाले धनुबेंदमें निष्णात हुए। धर्माचरणमें निरत रहते हुए इन लोगोंने दस हजार बर्षोतक जलमें निमान होकर अल्पना कठिन तपस्या को। (तपस्याके प्रभावसे) प्रजापतिका पद प्राप्त करनेवाले उन तपस्वियोंका विवाह मारिया नामक कन्यासे हुआ।

शिवके शापसे ग्रस्त दक्षने इसी मारिपाके गर्भसे पुन: जन्म ग्रहण किया। दक्षने सबसे पहले चार प्रकारकी मानस प्रजाओंको सृष्टि को, किंतु महादेवके शापसे उन मानस संतानोंको अभिवृद्धि नहीं हुई। अत: उन प्रजापतिने 'स्वी-पुरुष'के संयोगसे होनेवाली मैथुनी सृष्टिकी इच्छा की।

इसके बाद दक्षने प्रजापति बीरणकी पुत्री असिक्नीके

हे हर। इस प्रकार उन हजार पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर तदननार उन मुनियोंने पुन: उस बेनके दाहिने हाथका मार्गका हो अनुसरण किया। पुत्रोंके ऐसे बिनाशको देखकर मन्थन किया। उस मन्थन-कर्मसे बेनको विष्णुका मानसरूप (क्रुड) दक्षने नारदको ज्ञाप दे दिया कि 'तुम्हें भी धारण करनेवाला पृथु नामका पुत्र हुआ। राजा पृथुने प्रजाकी ('पृथ्वीपर) जन्म लेना होगा।' अत: नारद कश्यपमुनिके

अन्तर्धान नामक एक पुत्र था। उससे हविर्धान नामक इसके बाद दक्ष प्रजापतिने असिक्नीसे साठ रूपवर्ती पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उस हविधानका पुत्र प्राचीनबर्हि हुआ, कन्याओंको जन्म दिया, जिनमेंसे उन्होंने दो कन्याओंका

विवाह अङ्गिराके साथ किया। उनके द्वारा दो कन्याएँ ये तीनों लोकोंके स्वामी हैं। कुशाश्च, दस कन्याएँ धर्म, चौदह कन्याएँ कश्यप तथा कश्यपको पत्नी अदितिसे द्वादश सूर्योको उत्पत्ति हुई अट्ठाईस कन्याएँ चन्द्रमाको दो गयों। हे महादेव! इसके हैं। उन्हें विष्णु, शक्र, अर्थमा, धाता, त्यष्टा, पूषा, विवस्वान्, पक्षात् दक्षने मनोरमा, भानुमती, विशाला तथा बहुदा नामक सविता, मित्र वरुण, अंशुमान् तथा भग कहा गया है। ये चार कन्याओंका विवाह अरिष्टनेमिक साथ किया। ही द्वादर आदित्य कहे जाते हैं।

दिति, दन्, काला, अनायु, सिंहिका, मुनि, कद्, साध्या, इस, क्रोधा, विनता, सुरभि और खगा।

साध्यगणीकी उत्पत्ति हुई है। मरुत्वतीसे मरुत्वान् तथा वसुसे (आठ) वसुगणोंका आविश्रवि हुआ। हे शङ्कर! भानुसे (द्वादश) भानु और मुह्तांसे मुहूतंगणोकी उत्पत्ति हुई। लम्बासे थोष तथा यामीसे नागबीधिका जन्म हुआ और सङ्करपासे सर्वात्मक सङ्करपका प्रादुर्भाव हुआ।

आप, धुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास — ये आठ वसु माने गये हैं। आपके वेतुण्डि, क्षम, श्रान्त और ध्वनि नामक चार पुत्र हुए। धुवके पुत्ररूपमें भगवान् कालका जन्म हुआ, जो लोकके मंहारक हैं। सोमसे पुत्ररूपमें भगवान् वर्षां हुए, जिनकी कृपासे ही मनुष्य वर्षस्थी होता है। मनोहरासे धरके दुष्टिण, हुत हरुपबह, शिशिर, प्राण और रमण नामवाले पुत्र उत्पन्न हुए। अनिलकी पत्रीका नाम जिला है। अनिल और जिलासे पुलोमज तथा अविज्ञातगति नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। अनल (अग्नि)-के पुत्र कुमार हैं, जिनको उत्पत्ति शरकाननपर हुई थी। कृत्तिकाओंके पालित पुत्र होनेसे इन्हें कार्तिकेय भी कहा जाता है। इनके शास्त्र, विशास और पॉलोम और कालकन्न कहा गया है। नैगमेय नामक तीन अन्य छोटे भाई भी हैं।

महर्षि देवलको प्रत्यूष नामक वसुका पुत्र माना गया है। प्रभासवसुसे विख्यात देवशिल्पो विश्वकर्माका जन्म हुआ। विश्वकर्माके महावलवान् अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्र्यम्बक, अपराजित, वृथाकपि, शम्भु, कपदाँ, रैवत, अुकीसे तुक, उल्कृक एवं उल्कृकि प्रतिपक्षी काकादि मृगव्याधः शर्वं और कपाली—ये ग्वारह स्द्र कहै गये हैं। उत्पन्न हुए।श्येनीसे श्येन (बाज), भासीसे भास, गृधिकासे

दक्ष प्रजापतिने कृशाधको सुप्रजा और जया नामक रोहिणी आदि जो प्रसिद्ध सत्ताईस नक्षत्र हैं, से सब कन्याओंको प्रदान किया। अरुन्थती, वसु, पामी, लम्बा. सोम (चन्द्रमा)-की पत्रियाँ हैं। दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु भानुमती, महत्वती, सङ्करूपा, मुहूर्ता, साध्या तथा विश्वा— और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए तथा सिंहिका ये धर्मको दस पत्रियाँ कही गयो हैं। अब मैं कश्यपको कमको एक कन्या भी हुई, जिसका विवाह विप्रचित्तिके पत्रियोंके नामोंको भी कहता हूँ, उनके नाम हैं- आदिति, साथ हुआ। हिरण्यकत्रिपुके महापराक्रमशाली चार पुत्र हुए। उनके नाम अनुहाद (अनुहाद), हाद (हाद), प्रहाद (प्रहाद) तथा संहाद (संहाद) है। उनमें प्रहाद विष्णुपरायण भक्तके हे हद! (धर्मकी पत्नी) विश्वासे विश्वेदेव और साध्यासं रूपमें प्रसिद्ध हुए। संह्वादेक आयुष्मान्, शिवि और वाष्कल नामक तीन पुत्र हुए। प्रहादके पुत्र विरोचन हुए। विरोचनसे बलिको उत्पत्ति हुई। हे वृषभध्वज! बलिके सी पुत्र हुए, जिनमें चाण सबसे ज्याह है।

> हिरण्याक्षके सभी पुत्र महाबलवान् थे। उनके नाम उत्कृर, ऋकृति, भूतसन्तापन, महानाभ, महाबाहु तथा कालनाभ है।

> दनुके द्विपूर्धा, शङ्कर, अयोमुख, शङ्कशिरा, कपिल, तन्दर, एकचक्र, महाबाहु, तारक, महाबल, स्वर्भानु, वृषपवां, पुलोमा, महामुर और पराक्रमी विप्रचिति नामक पुत्र विस्त्रवात हुए।

रवर्भानुको कन्या सुप्रभा तथा वृषपवांकी पुत्री शर्मिष्टा थी। इसके अतिरिक्त उसे उपदानवी और हयशिस नामकी दो अन्य ग्रेष्ठ कन्याएँ हुई।

वैद्यानरको दो पुत्रियाँ थाँ। उनका नाम पुलोमा तथा कालका था। उन दोनों परम सौभाग्यशालिनी कन्याओंका विवाह मरोचिक पुत्र कश्यपके साथ हुआ था। उन दोनोंसे साट हजार ब्रेष्ट दानव उत्पन्न हुए। कश्यपके इन पुत्रीको

विप्रचित्तिके पुत्रोंका जन्म सिंहिकासे हुआ। उनके नाम व्यंश, शल्य, बलवान्, नभ, महाबल, बातापि, नमुचि, इत्दल, खसुमान्, अंजक, नरक तथा कालनाभ है।

प्रकृदके कुलमें निवातकवाच नामक देत्योंको उत्पत्ति हुई। त्वच्या तथा पराक्रमी रुद्र—ये चर पुत्र हुए। त्वच्यके तामासे सत्त्वगुणसम्पन्न छ: कन्याओंका जन्म हुआ। उनके थिश्ररूप नामक एक महातपस्वी पुत्र हुआ। हर, वहुरूप, नाम जुकी, ज्येनी, भासी, सुग्रीवी, जुचि और गृधिका हैं।

गृध्र (गीध), शुचिसे जलचर पंधिगण तथा सुग्रीबीसे अध, कैंट और गर्थोंका जन्म हुआ। इसको ताम्रावंश कहा गया है।

विनताके गर्भसे गरुड और अरुण नामक दो विख्यात पुत्र हुए। सुरसाके गर्भसे अपिरिमत तेजसम्पन सहस्रों सपौंकी उत्पत्ति हुई। कदूसे भी अत्यधिक तेजस्वी सहस्रों सपं हुए। इन सभी सपौंमें प्रधान सर्प शेष, वासुकि, तक्षक, शङ्ख, श्रेत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापत्र, नाग, ककौंटक और धनझय हैं। इस सर्पसमूहको क्रोधसे परिपूर्ण जानें। इन सभीके बहे-बहे दाँत हैं।

क्रोधाने महाचली पिशाचोंको उत्पन किया। सुरिधसे गायों और भैंसींका जन्म हुआ। इरासे समस्त वृक्ष, लता-बल्लरी और तृणोंकी उत्पत्ति हुई।

खगासे यश्च-राक्षस, मुनिसे (नृत्य-मान करनेवाली) अप्सराएँ तथा अरिष्टासे परम सत्वसम्पन गन्धवं उत्पन्न हुए। दितिसे मरुत् नामक उनचास देवींका जन्म हुआ।

उन मस्ट्राणींमें एकञ्चोति, दिञ्चोति, त्रिज्योति, चतुञ्चोति, एकसुक्र, द्विशुक्र तथा महाबलशाली त्रिशुक्र—इन सातोंका एक गण है। ईट्क्, सट्क्, अन्याद्क्, प्रतिसद्क्, मित, समित, सुमित नामवाले मस्तोंका परम शक्किसप्यल दूसरा गण है। ऋतजित, सत्यजित, सुपेण, सेनजित, अतिमित्र, आमित्र तथा दूरमित्र नामक मस्तोंका तोसरा अजेय गण है। ऋत, ऋतधर्म, विहर्ता, वरुण, धूब, विधारण और दुर्मेधा नामवाले मस्तोंका चौधा गण है। ईद्द्रश, सद्ध, एताद्ध, मितात्रन, एतेन, प्रसद्ध और सुरत नामक महातपस्वी मस्तोंका पाँचवाँ गण है। हेतुमान, प्रसव, सुरभ, नादिस्य, ध्वानिधांस, विक्षिप तथा सह नामवाला मस्तोंका छठा गण है। द्वित, वसु, अनाधृष्य, लाभ, काम, जयी विराद् तथा उद्वेषण नामका सातवाँ वायु-गण (स्कन्ध) है।

ये सभी उनवास महद्गण भगवान् विष्णुके ही रूप है। राजा, दानव, देव, सूर्यांदि ग्रह तथा मनु आदि इन्हीं बीहरिका मृजन करते हैं। (अध्याय ६)

देवपूजा-विधान, विष्णुपूजोपयोगी वजनाभमण्डल, विष्णुदीक्षा तथा लक्ष्मी-पूजा

श्रीहरिने कहा—हे स्द! धर्म, अर्थ, काम और मोध प्रदान करनेवाली सूर्यादि देवोंकी पूजाका मैं वर्णन करता हूँ। हे वृषभभ्यज! ग्रहदेवताओंके आसनकी पूजाकर निम्न मन्त्रों—

उठं नयः सूर्यमृतंथे। ॐ हां हों सः सूर्याय नयः। ॐ सोयाय नयः। ॐ सङ्गलाय नयः। ॐ सुधाय नयः। ॐ वृहस्पतये नयः। ॐ सुकाय नयः। ॐ सर्वश्चराय नयः। ॐ राहवे नयः। ॐ केतवे नयः। ॐ तेजश्चरहाय नयः—सं आसन, आवाहन, पाद्य, अर्घ्यं, आचमन, स्नान, वस्त्र, यहोपसीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नमस्कार, प्रदक्षिण और विसर्जन आदि उपचारोंको प्रदान करके सूर्यादि प्रहोंको पूजा करनी चाहिये।

35 हां शिवाय नमः - मन्त्रसे आसनको पूजाकर 35 हां नयः। 35 वं लं से ही शिवपूर्तिये शिवाय नयः - मन्त्रसे नमस्कार करे और साथक नमः। 35 में दें वं से शिवपूर्णामें सर्वप्रथम — 35 हां हृदयाय नमः। 35 हीं शितसे नमः। 35 से दें लं और स्वाहा। 35 हूं शिखाये ववद्। 35 हैं कवव्याय हूं। 35 हीं नमः। 35 गुरुभ्यो नमः नेत्रत्रयाय वीवद्। 35 हुं अस्वाय नयः — इन मन्त्रोंसे पडक्रन्यस नमः — इन मन्त्रोंसे भ करे। तत्पश्चात् — 35 हां सखोजाताय नमः। 35 हीं वामदेवाय वाहन आदिको नमस्व नमः। 35 हूं अधोराय नयः। 35 हैं तत्पुरुषाय नमः। 35 हीं प्रदान करने चाहिये।

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र। धर्म, अर्थ, काम और इंज्ञानाय नमः—इन मन्त्रोंसे शिवके पौची मुखोंको नमस्कार प्रदान करनेवाली सूर्यादि देवोंको पूजाका मैं वर्णन करना चाहिये।

> इसी प्रकार विष्णुपुजामें 🕉 बासुदेवासनाय नम:- मन्त्रसे भगवान् विष्णुके आसनकी पूजा करे और - ॐ वासुरेवमूर्तये नम:। ॐ अं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नय:। ॐ आं ॐ नयो भगवते सङ्घर्षणाय नयः। 🕉 अं 🕉 नमो भगवते प्रमुख्याय नमः । ॐ अः ॐ नमो भगवते अनिरुद्धाय नमः-इन मन्त्रोंके द्वारा साधक हरिके चतुर्व्यहको नमन करे। उसके बाद- ॐ नारायणाय नयः। ॐ तत्सद्ब्रहाणे नयः। ॐ हूं विकाले नम: । ॐ श्री नमी भगवते नरसिंहाय नम: । ॐ भू: ॐ नमी भगवते बराहाय नम:। ॐ के दे पे शे बैनतेयाप नमः। ॐ जं खं रै सुदर्शनाय नमः। ॐ खं ठं फं पं गदायै नय:। ॐ वं लं मं क्षं पाञ्चलन्याय नम:। ॐ घं वं भं हं शिये नम:। ३० में ई वें से पूर्ण नम:। ३० धे वें वें से बनमालाये नमः। ॐ सं दं लं श्रीवत्साय नमः। ॐ ठं चं भं यं कौस्तुभाग नय: । ॐ गुरुभ्यो नम: । ॐ इन्हादिभ्यो नम: । ॐ विष्यवसोनाय नम:- इन मन्त्रोंसे भगवान् श्रीहरिके अवतारों, आयुधीं एवं वाहन आदिको नमस्कार करते हुए उन्हें आसनादि उपचार

हे वषध्वज्ञ! भगवान विष्णको शक्ति देवी सरस्वतीको (ॐ अग्वये नम: मन्त्रसे) अग्नि, दक्षिण दिशामें (ॐ करना चाहिये-

अस्याय नमः।

तथा मति — ये जो सरस्वतीदेवीको आठ शक्तियाँ हैं, इनका प्राप्त हो जाता है। पुजन निम्न नाममन्त्रींसे करे-

नमः। ॐ हीं प्रभाये नमः। ॐ हीं मत्ये नमः।

और परम गुरुका 🕉 क्षेत्रपालाय नमः। 🕉 गुरुष्यो मोक्ष-प्राप्तिकी कामनासे देशिक (उपदेश आनार्य)-को पाहिये।

चाहिये।

समान कोष्टकॉसे संयुक्त हो।

दक्षिणमें प्रदा्यन, पश्चिममें अनिरुद्ध और उत्तरमें ब्रह्मकी उसीमें संयुक्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। स्थापना करे। तदननार ईज्ञानकोणमें श्रोधर तथा पूर्वादि मण्डलादिके निर्माणमें जो लोग असमर्थ हैं, वे मात्र दिशाओंमें इन्द्रादि देखोंकी स्थापन करनी चाहिये। यथा- मानसमण्डलको कल्पना करके भगवान् श्रीहरिका पूजन पूर्व दिशामें (ॐ इन्ह्राय नमः मन्त्रसे) इन्ह्र, अग्निकोणमें करें। [श्ररोरमें बहातीर्थादिकी कल्पना की गयी है।

मङ्गलकारिणी पुजामें ॐ हीं सरस्वत्ये नयः – इस मन्त्रसे यमाध नयः मन्त्रसे) यम, नैर्ऋत्यकोणमें (ॐ निर्ऋतये नमः देवी सरस्वतीको नमस्कारकर निम्न मन्त्रींसे यडङ्गन्यास मन्त्रसे) निर्ऋति, पश्चिम दिशामें (ॐ वहणाय नम: मन्त्रसे) वरुण, बायुकोणमें (ॐ वायवे नमः मन्त्रसे) वायु, उत्तर ॐ ह्रां हृदयाय नय:।ॐ ह्रीं शिरसे नय:।ॐ ह्रं शिखार्थ दिशार्में (ॐ कुबेराय नम: मन्त्रसे) कुबेर और ईशानकोणमें नमः। ॐ हैं कवचाय नयः। ॐ हीं नेप्रतयाय नयः। ॐ हः (ॐ इंशानाय नयः मन्त्रसे) ईशान नामक दिक्यालकी स्थापना करे। उसके बाद उन सभी देवोंकी गन्धादि इसी प्रकार त्रद्धा, ऋदि, कला, मेधा, तुष्टि, पुष्टि, प्रभा उपचारीके द्वारा पूजा करनी चाहिये। इससे साधक परमपदको

श्रीहरिने पुन: कहा — हे हद! दीक्षत शिष्यको 30 ही अद्वारी नम: 1 30 ही ऋद्वर्ध नम: 1 30 ही कलार्ध वस्त्रसे अपने दोनों नेत्र बंद करके आग्नमें देवताके नमः। ॐ हीं मेधायै नमः। ॐ हीं तुष्ट्यै नमः। ॐ हीं पुष्टयै मूलमन्त्रसे एक सौ आठ आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। हे रुद्र। पुत्र-लाभके लिये द्विगुण (दो सी सोलह), (इन शक्तियोंकी पूजा करनेके पश्चात्) क्षेत्रपाल, गुरु साधनासिद्धिके निमित्त त्रिगुण (तीन सी जीवीस) और नमः। ॐ परमगुरुभ्यो नमः-इन मन्त्रोंसे नमस्कार करना चाहिचे कि वह चतुर्गुण (चार सौ वत्तीस) आहृतियाँ उसी विष्णु-मन्त्रसे प्रदान करे।

तदनतर कमलवासिनी सरस्वतीदेवीको आसनदि उपचार विद्वान् देशिकको सबसे पहले भगवानुका ध्यान करना प्रदान करने चाहिये। पूजनके अनन्तर सूर्यादि देवताओंके चाहिये। तदनन्तर वे वायवी कला (ये बोज-मन्त्र)-से लिये प्रयुक्त होनेवाले मन्त्रोंसे उनका पविज्ञरोहण करना शिष्योंकी स्थिति, आरनेय कला (१ बीज-मन्त्रके)-हारा उनको मनस्ताप-वेदना तथा बारूण कला (वं बीज-मन्त्र)-अहिरिने कहा—हे शिव! भगवान् विष्णुकी विशेष से हृदयको स्थिति (धर्मको अभिरुचि)-का विचार करें। पुजाके लिये पाँच प्रकारके रंगोंसे बने हुए चुर्णके द्वारा इसके बाद देशिकको उस परम तेजमें आत्मतेजका निक्षेप बजनाभ-मण्डलका निर्माण करना चाहिये, जो सोलह करके जीवात्मा और परमात्माके ऐक्य अर्थात् अभेद-ज्ञानका चिन्तन करना चाहिये। तदनन्तर वे आकाश-तत्वमें वजनाभ-मण्डल बनाकर सबसे पहले त्यास करे और 'ॐकार'का ध्यानकर शरीरमें स्थित अन्य कारणभूत वायु उसके बाद भगवान् श्रीहरिकी पूजा करे। इदयके मध्यमें ऑग्न, जल तथा पृथियी-तत्वका चिन्तन करें। इस प्रकार भगवान् विष्णु, कण्ठमें सङ्घर्षण, सिरपर प्रदान, जिला- प्रणव (ॐकार)-मन्त्रका चिनान करते हुए प्रत्येक कारणभूत भागमें अनिरुद्ध, सम्पूर्ण शरीरमें ब्रह्मा तथा दोनों हाथोंमें तत्त्वींपर जो साधक विजय प्राप्त करता है, वह शरीरधारी श्रीधरका न्यास करे। तत्पश्चात् 'अहं विष्णुः' (मैं ही विष्णुः होनेके कारण उस पञ्चमहाभूतके ज्ञानरूपी तरीरको ग्रहण कर हैं)—ऐसा ध्यान करते हुए पदाके कर्णिका-भागमें भगवान लेता है। अत: हे वृषभध्वज! अपने अन्त:करणमें उस सुक्ष्म ब्रीहरिकी स्थापना करे। इसी प्रकार मण्डलके पूर्वमें सङ्घर्षण, शरीरधारी (क्षेत्रज्ञ) जनको उत्पन्न करके प्रत्येक महाभूतको

अतएव] उसी क्रमसे वह (मानस-मण्डल भी) चार द्वारोंसे युक्त है। हाथको पद्म तथा अँगुलियोंको पद्मपत्र कहा गया है। हथेली उस पदाकी कर्णिका है और नख उसके केशर हैं, इसलिये साधकको उस हाथरूपी कमलमें सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, अग्नि तथा यमसहित त्रीहरिका ध्यान करके उनकी पूजा करनी चाहिये।

उसके बाद वह देशिक सावधान होकर अपने उस हाथको शिष्यके सिरपर रखे, (क्योंकि हाधमें विष्णु विद्यमान रहते हैं. अत:] यह हाथ स्वयं विष्णु-स्वरूप है। उस हाथके स्पर्शमात्रसं शिष्यके समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर पुरु शिष्यकी विधिवत् पूजा करे और उस शिष्यका नामकरण करे।

शीहरिने (रुद्रसे) कहा-[अब मैं] सिद्धि प्राप्त करनेके लिये स्थिण्डल आदिमें को जानेवाली बोलध्योंकी पूजाके सम्बन्धमें कह रहा हैं। सबसे पहले - 🕉 ब्री ही महालक्ष्मी नमः — यह कहका साधक— ' श्रा श्री श्री श्री श:'- इन बीजमन्त्रीसे क्रमतः हृदय, सिर, तिखा, कवच नेत्र और अस्त्रमें इस प्रकारसे चडड्रान्यास करे-

'ॐ क्षां हृद्याय नम:। ॐ क्षीं शिरसे स्वाहा। ॐ श्रृं जिल्हार्थे क्यर्। ॐ भ्रें कवचाय हुम्। ॐ भ्री नेत्रत्रयाय वीषद्। ॐ श्रः अस्त्राय फट्।'

साधनारत भकको अङ्गन्यास करके आसनसहित श्रीमहालक्ष्मोकी पूजा करनी चाहिये।

इसके बाद चार प्रकारके वर्णोंसे अनुरक्षित पदागर्भ चार द्वार और चौंसट प्रकोडोंसे युक्त मण्डलके मध्य लक्ष्मी और उनके अङ्गोंका तथा एक कोणमें दुर्गा, गण एवं गुरका, तदनन्तर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करनेके लिये तत्पर साधक अग्नि आदि कोणोंमें क्षेत्रपाल देवोंको पूजा करके हवन करे। तत्पक्षात् वह—'ॐ घं दं हं श्रीमहालक्ष्यी नमः - इस महामन्त्रमे पूर्व उल्लिखित परिवारके सहित श्रीमहालक्ष्मीदेवीका पूजन करे।

तदनन्तर उस साधकको '३० सी सरस्वत्य नमः।' '३० हीं मीं मत्स्वत्ये नयः ।' 'ॐ हीं बद बद बाम्बादिनि स्वाहा।', 🏂 🐒 सरस्वाचे नयः '— इन मन्त्रोंको कहकर सरस्वतीको

(अध्याय ७-१०)

नवव्यूहार्चनविधि, पूजानुक्रम-निरूपण

जो नवल्यूहकी पूजाका वर्णन सुनाया था, उसको (अब) मैं कह रहा है, आप सुने।

मस्तक, नाभि और [इदयरूपी] आकाश नामक तत्त्वमें प्रविष्ट करे। तदनन्तर यह 'रं' (इस अग्निबीज) मन्त्रसे पाञ्चभीतिक शंरीरका शोधन करे। उसके बाद वह 'बं' (इस वायु) बीजमन्त्रसे उस सम्पूर्ण शरीरके लक्को भावना करे। तत्पश्चात् वह 'लं' इस बोजमन्त्रसं चराचा होनेकी भावना करे। उसके बाद वह 'बं' इस बीजमन्त्रसे दोनों जानू और दोनों पैरोंमें भी न्यास करना चाहिये। पुन: स्वयंमें अमरत्वकी भावना करे। तदननार [अमृतके] तदननार अपने दोनों हाथोंको कमलवत् आकृति प्रदान बुद्बुदोंके बीच 'मैं ही पीताम्बरधारी चतुर्भुज भगवान् त्रीहरि करके उसके मध्य-भागमें दोनों अङ्गद्वीको सनिविष्ट करे।

श्रीहरिने (सदसे) कहा — (गरुडने) कश्यप ऋषिको हैं ' ऐसा मानकर आत्मतत्त्वके ध्यानमें निमान हो जाय।

इसके बाद शरीर तथा डाथमें तीन प्रकारका मन्त्र-न्यास करना चाहिये। पहले द्वादशाक्षर बीजमन्त्रसे, तदनन्तर फहे साधक सबसे पहले [योग-क्रियाके द्वारा] जीवात्माको गये बीजगन्त्रसे नगस और बादमें पहजून्यास करे। इससे साधक साक्षात् नारायणस्वरूप हो जाता है। साधक दक्षिण अङ्ग्रहमे प्रारम्भकर मध्यमा अङ्ग्रलिपर्यन्त न्यास करे। उसके बाद वह पुन: मध्य अङ्गुलिया ही दो बीजमन्त्रसे न्यास करके पुन: शरीरके विभिन्न अङ्ग्रीपर न्यास करे। कमतः इदय, सिर, शिखा, कवच, मुख, नेत्र, उदर और जगत्-(के साथ उस विलीन हुए शरीर)-के सम्प्लावित पीठ-भागसे अङ्गन्यास करते हुए दोनों बाहु, दोनों हाथ,

१. समस्त शरीरको एक्षक आवरक शक्ति 'अस्त्र'को करपना दोनों हाथोंमें को जारी है।

तत्पक्षात् उसी मुद्राकृतिमें परमतत्त्वस्वरूप, अनामय, सर्वेश्वर भगवान् नारायणका चिन्तन करे।

इसके बाद इन्हीं बीजमन्त्रोंसे क्रमशः तर्जनी आदि अङ्गलियोंमें त्यास करके यथाक्रम सिर, नेत्र, मुख, कण्ड, इदय, नाभि, गुहा, जानुद्वय तथा पादद्वयमें भी न्यास करना चाहिये।

बीजमन्त्रोंसे दोनों हाथोंमें न्यास तथा यह हुन्यास करके सम्पूर्ण शरीरमें न्यास करना चाहिये। वह अङ्गुष्टसे कनिष्टा अङ्गलितक पाँच बोजमन्त्रोंसे न्यास करे। उसके बाद हाथके मध्य-भागमें नेत्रके बीजमन्त्रसे न्यास करनेका विधान है। अङ्गन्यासमें भी इसी क्रमसे हृदय-भागमें हृदय, मस्तकमें मस्तक, शिखामें शिखा, दोनों स्तन-प्रदेशमें कवच, नेप्रद्ववमें नेप तथा दोनों हाथोमें अस्य-बोजमन्त्रको अयस्थित करना चाहिये।

तदनन्तर उन्हीं बीजपन्त्रींसे दिशाओंको प्रतिबद्ध करके साधक पूजनकी क्रिया प्रारम्भ करे। सबसे पहले एकाग्रवित होकर उसको अपने हृदयमें योगपीतका ध्यान करना चाहिये। उसके बाद वह आग्नेयादिसे पूर्व दिशाओं में यथाक्रम धर्म, जान, वैराग्य और ऐश्वर्यको जिन्दाल करके पूर्वादि दिशाओं में अधर्मादिका न्यास करे। यथा -- अग्निकोजमें 'ॐ धर्माय नमः', नैत्रंहरकोणमें 'ॐ ज्ञानाय नमः', वायुकोजमे 'ॐ वैराज्याय नमः' और ईशानकोणमें 'ॐ ऐश्वर्याय नमः', पूर्व दिशामें 'ॐ अधर्माय मधः', दक्षिण दिशामें 'ॐ अज्ञानाय नमः', पश्चिम दिलामें 'ॐ अर्थनाच्याय नमः' तथा उत्तर दिशामें 'ॐ अनैश्वयांच नमः' कहका न्यास करे।

साधक इस प्रकार इन न्यास-विधियोंसे आच्छादित अपने शरीरको आराध्यका पीठ और स्वयंको उस्रोक स्वरूप समझकर पूर्वाभिमुख उन्तत अवस्थामें स्थिर होकर अनल भगवान् विष्णुको अपनेमें प्रतिष्ठित करे। तदनन्तर ज्ञानरूपी सरीवरमें उत्पन्न ऊपरकी ओर उठी हुई कर्षिकामें युक्त शतपत्रबाले आडों दिशाओंमें प्रसरित हेत अष्टदल-कमलका ध्यान करे।

तत्पक्षात् साधकको ऋग्वेदादिके मन्त्रोंसे सूर्व, चन्द्र तथा अग्निस्वरूप मण्डलींका क्रमशः एकके ऊपा एकका ध्यान करना चाहियं। उसके बाद वह पूर्वादि दिशाओंमें भगवान् केजवके पास ही अवस्थित विमलादि शक्तियोंको अष्टरल-क्रमलपर विन्यस्त करके नवीं शक्तिको कर्णिकार्मे

इस प्रकार ध्यान करके उस साधकको योगपीठकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। तत्पक्षात् वह पुन: मनसे भगवान् विष्णुका अङ्गसहित आवाहनकर [उस योगपीठमें उन्हें] प्रतिष्ठित करे। तदनन्तर पूर्वादि चारों दिशाओं में अवस्थित चतुर्दल-कमलपर हृदयादिन्यास करना चाहिये। कमलके मध्यभागमें तथा कोणॉपर अस्त्रमन्त्रका न्यास करे। अर्थात् उसके पूर्व दलमें 'हृदवाय नमः', दक्षिण दलमें 'जिस्से स्वाहा' पश्चिम दलमें 'जिखाये वयद', उत्तर दलमें 'कवचाय हुम्' मध्यमें 'नेत्रत्रयाय सौबद्' तथा कोणमें 'आजाय फट्' कहकर न्यास करना चाहिये।

तत्पक्षत् पूर्वीदं दिशाओं में यथाक्रम सङ्कर्षण आदिके योजमन्त्रोंको जिन्यस्त करनेका विधान है। तदनन्तर छह पूर्व और पश्चिम दिशाके द्वारपर 'अठ वैनलेवाय नमः' कहकर वैनतेयको प्रतिष्ठित करें। उसके बाद दक्षिण द्वारपर sb सुदर्शनाय नमः', 'sb सहस्रागय नमः' का उच्चारण करके हजार अरोबाले सुदर्शन चक्रको वह स्थापना करे। तदननार दक्षिण द्वारपर 'ॐ क्रिये नय:' मन्त्रसे श्रीका न्यास करके उत्तर द्वारपर 'ॐ लक्ष्मी नमः' मन्त्रसे लक्ष्मीको प्रतिष्ठित करे।

साधकको इसके बाद उत्तर दिशामें 'ॐ गदायै नमः' मन्त्रसे गदा, कोणोमें 'ॐ शहाबै नमः' मन्त्रसे शहुका न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् उन विष्णुदेवके दोनों ओर आयुर्धोका न्यास करना चाहिये। विद्वान साधक दक्षिणकी ओर शार्ड्स (धनुष) तथा देवके वायों ओर इपू (बाणों)-का न्यास करे। इसी प्रकार दोनों भागोंमें खड्ग और चर्मका न्यास करे।

तदननार वह साधक मण्डलके मध्य दिशाभेदके अनुसार पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि लोकपालोंको प्रतिष्ठित करे और उनके आयुर्धीको भी स्थापित करे। उसके बाद विद्वान् साधकको अपरकी ओर 'ॐ क्ह्नूणे नमः' मन्त्रसे ब्रह्मा तथा नीचेकी और 'ॐ अनन्ताय नयः' मन्त्रसे अननादेवका न्यास करना चाहिये।

प्रदर्शन करे। अञ्जलिबद्ध होना प्रथम मुद्रा है। इसके नमः' मन्त्रसे आदिवराहका पूजन करे। प्रदर्शनसे शीघ्र ही देवसिद्धि हो जाती है। दूसरी यन्दिनी मुद्रा है और तीसरी मुद्रा हृदयासका है। इस मुद्रामें बार्ये हाथकी मुद्रीसे दाहिने हाथके औगुठेको बाँधकर बावें हाथके औगूठेको ऊपर उठावे हुए इदयभागसे संलग्न रखना चाहिये। व्यूह-पूजामें मूर्तिभेदसे इन तीन मुद्राओंको साधारण मुद्रा माना गया है। दोनों हाथोंमें अँगुठेसे कनिद्यापर्यन्त तीन अँगुलियोंको नवाकर क्रमतः उन्हें मुक करनेसे आउ मुद्राएँ बनती हैं।

दोनों हाथोंके अँगुठोंसे अपने-अपने डाचको मध्यमा अनामिका तथा कनिष्ठा अँगुलियोंको नीचेकी और युकाकर जो मुद्रा बनायी जाती है, उसको 'नरसिंह-मुद्रा' कहते हैं। दाहिने हाथके ऊपर बायें हाथको उत्तान स्थितिमें रखकर प्रतिमाके ऊपर धीरे-धीरे युमानेको 'बाराही मुद्रा' कहते हैं। भगवान् वाराहको सदा हो यह प्रिय है। दोनी मुद्धियोंको उतान रखकर क्रमश: एक-एक अँगुलो सीधे खोलते हुए सभीको छोल दे। तदननार उन सभी अँगुलियोंकी पुन: पुट्टी बाँध ले। यह 'अङ्कमुद्रा' कहलातो है। साधकको इन मुद्राओंका प्रदर्शन ऋमशः दसी दिक्यालीके लिये करना चाहिये।

मन्त्रसे भगवान् नारायण, 'ॐ तत्सद् बह्मणे नमः' मन्त्रसे करने चाहिये। (अध्याय ११)

इस प्रकार साधक सभी देवोंका न्यास एवं ध्यान करके पदायोनि ब्रह्मा, 'ॐ हूं विष्णवे नय:'मन्त्रसे विष्णु, 'ॐ क्षी उनको पूजा करे और उनके सामने उनको हो मुद्राका नरसिंहाच नमः' मन्त्रसे नरसिंह तथा 'ॐ भू: महावराहाय

> उपर्युक्त इन नौ देवताओं (वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नरसिंह तथा महावराह) (नवब्युह)-का वर्ण क्रमण्ञ: श्रेत, अरुण, हरिद्रावत् पीत, नील, श्वामल, लोहित, मेघवत् श्याम, अग्निवत् पीत एवं मधु पिक्रल है। अर्थात् बासुदेव श्रेत, बलदेव अरुग, प्रद्युप्न हरिद्रावत् पीत्, अनिरुद्ध नील, नारायण श्याम, सद्धा रक्टाभ, विष्णु मेघवन् श्याम, नरसिंह अग्निवत् पीत तथा बराहदेव मधु पिङ्काल वर्णको तेजस्वी आभासे सुशोधित रहते हैं।

> '(ॐ) के टंपंज्ञ' बीजमन्त्रसे गरुड, '(ॐ) अंखं वं' बोजमन्त्रसे सुदर्शन , '(🕉) वं चं कं वं' बीजमन्त्रसे गदादेवी, '(३%) वं स्वं में भ्रं' बीजमन्त्रसे शहु, '(३%) धं हे भे हैं' बीजमन्त्रसे श्रीलक्ष्मी, '(ड्रांश) गं जं से शं' बोजमन्त्रसे पुष्टि, '(३६) चं वं' बोजमन्त्रसे वनमाला, '(ॐ) दं सं' बीजमन्त्रसे बीवत्स और '(ॐ) छ इं पं यं' बीजमन्त्रसे कॉस्तुधमणि युक्त हैं। [इसके अतिरिक्त] मैं स्वयं अनन्त (विष्णु) हैं। ये सभी उस देवाधिदेव विष्णुके अब है।

गरुड कमलके समान स्वास, गदा कृष्णवर्ण, पृष्टि शिरीप-भगवान् वासुदेव, बलराम, प्रयुक्त तथा अतिरुद्ध पुष्परंगके समान आधासे समन्वित तथा लक्ष्मी सुवर्ण-क्रमश: प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ देव स्वानके कान्तिसे सुजोधित हैं। जहु पूर्व चन्द्रकी कान्तिके समान क्षेत अधिकारी देव हैं। साधकको – 'ॐ अ बासुदेवाय नमः' और कौस्तुभर्माण नवीदित अरुणके सदृश वर्णवाला है। क्रक्र मन्त्रसे वासुदेव, 'ॐ आं बलाय नमः' मन्त्रसे बसराम, 'ॐ सहस्र सूर्योको कान्तिके सदश और बीवरस कुन्द पुष्पके अं प्रसुप्नाय नमः' मन्त्रसे प्रसुप्न तथा 'ॐ अ: अनिरुद्धाय समान श्वेत है। वनमाला पाँच वर्णीसे युक्त पञ्चवणी और नमः' मन्त्रसे अनिरुद्धको पूजा करनी चाहिये। अनन्त भगवानु मेचको भौति श्याम वर्णका है। जिन अस्त्रोंके ॐकार, तत्सत, हुं, औं तथा भू:-ये पाँच ऋमता: रंगोंका वर्णन यहाँ नहीं किया गया है, वे सभी विद्युत्-नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नरसिंह और महावराह भगवानके कान्तिके समान हैं। (भगवान विष्णुके इन समस्त अङ्गोंको) बीजमन्त्र हैं, इसलिये साधक — 'ॐ नारायणाय नम:' 'पुण्डरीकाक्ष' नामक विद्यासे अर्घ्य और पाद्यादि समर्पित

पूजानुक्रम-निरूपण

श्रीहरिने कहा — हे स्ट्र! देवक पूजनका जो क्रम है, उसके ज्ञानके लिये पूजाविधिक क्रमको कहा जा रहा है। सर्वप्रथम साधकको 'ॐ नमः' मन्त्रसे परमात्माका स्मरण करना चाहिये। तदनन्तर वह 'यं रं वं लम्' इन बीजमन्त्रोंके द्वारा शरीरकी शुद्धि करके 'ॐ नमः' इस मन्त्रसे चतुर्भुंज भगवान विष्णुके रूपमें हो अपनेको मान ले।

तत्पश्चात् करन्यास तथा देहन्यास करे। तदनन्तर हृदयमें योगपीठकी पूजाका विधान है। जिसको इन मन्त्रोंसे करे—

'ॐ अनन्ताय नयः। ॐ धर्माय नयः। ॐ ज्ञानाय नयः। ॐ वैराग्याय नयः। ॐ ऐश्वर्याय नयः। ॐ अध्याय नयः। ॐ अत्रानाय नयः। ॐ क्रत्यपद्यनाय नयः। ॐ क्रत्यपद्यनाय नयः। ॐ क्रियाय नयः। ॐ क्रत्यपद्यनाय नयः। ॐ क्रियाय नयः। ॐ ज्ञानाय नयः। ॐ क्रियाय नयः। ॐ ग्रंगाय नयः। ॐ क्रियाय नयः। ॐ ग्रंगाय नयः। ॐ क्रियाय नयः। ॐ ग्रंगाय नयः। ॐ क्रियाय नयः।

इसके बाद साधक कर्णिकाके मध्यमें 'अं बास्टेबाय नमः' कहकर भगवान वास्टेवको नमस्कार करके निय्न मन्त्रीसे इदयादिन्यास करे—

'आं हृदयाय नयः। ई शिरसे नयः। के शिखायै नयः। ऐं कववाय नयः। भी नेत्रत्रयाय नयः। अः फद् अस्त्राय नयः।'

तदनन्तर— 'आं सङ्कर्षणाय नयः। अं प्रयुक्तय नयः। अः अनिरुद्धाय नयः। ॐ अः नारायणाय नयः। ॐ तत्सद्धाणं नयः। ॐ हुं विष्णवे नयः। श्ली नरसिंद्धाय नयः। भूवंतद्वाय नयः।— इन मन्त्रोंसे संकर्षण आदि व्यृहदेवोंको नयस्कार करे।

तत्पक्षात् साधक निम्न मन्त्रीसे भगवान् विष्णुके वाहन एवं आयुधादिको नमस्कार करे—

'कं टं जं शं वैनतेयाय (नमः)। जं खं वं सुदर्शनाय (नमः)। खं चं फं वं गदायै (नमः)। वं लं मं क्षं पाछजन्याय (नमः)। पं दं भं दं श्रियै (नमः)। गं डं वं शं पुष्ट्यै (नमः)। धं वं वनमालायै (नमः)। दं शं श्रीयत्साय (नमः)। छं डं चं कौस्तुभाय (नमः)। शं शाङ्गाय (नमः)। इं इपृथिभ्यां (नमः)। चं चर्मणे (नमः)। खं खड्गाय (नमः)।

तत्पश्चात् इन बीजमन्त्रोंसे इन्द्रादि दिक्यालोंको नमस्कार करना चाहिये— (ॐ) लं इन्ह्राय सुराधिपतये (नमः)। (ॐ) रं अग्नये तेजोऽधिपतये (नमः)। (ॐ) यमाय धर्माधिपतये (नमः)। (ॐ) श्रं नैर्ज्ञताय रक्षोऽधिपतये (नमः)। (ॐ) यं वरुणाय जलाधिपतये (नमः)। (ॐ) यां वायवे प्राणाधिपतये (नमः)। (ॐ) श्रां धनदाय धनाधिपतये (नमः)। (ॐ) हां ईशानाय विद्याधिपतये (नमः)।

इसके बाद क्रमशः पूर्वोक्त इन्द्र आदि दिक्याल देवताओंके निम्न आयुर्धोको प्रणाम करनेका विधान है— (ॐ) बदाय (नमः)।(ॐ) शक्य (नमः)।(ॐ) दण्डाय (नमः)।(ॐ) खद्दगाथ (नमः)।(ॐ) पाशाय (नमः)।(ॐ) खजाय (नमः)।(ॐ) गदाय (नमः)। (ॐ) त्रिशृलाय (नमः)।

इसके बाद भगवान् अनन्त तथा ब्रहादेवको इस मन्त्रसं प्रणाम करे—

(ॐ) लं अनन्ताय पातालाधिपतये (नमः)। (ॐ) खं ब्रह्मणे सर्वलोकाधिपतये (नमः)।

अब इसके बाद माधक भगवान् वासुदेवको नमस्कार करनेके लिये द्वादशक्तर-मन्त्रका प्रयोग करे, साथ ही द्वादशाक्तर-मन्त्रके बीजमन्त्रों और दशाक्तर-मन्त्रके बीज-मन्त्रोंको इस प्रकार नमस्कार करे—

' 🕉 नमे धगवने वासुदेवाय नमः।'

30 30 नय: 1 30 में नय: 1 30 मों नय: 1 30 30 भी नय: 1 30 में नय: 1 30 में नय: 1 30 में नय: 1 30 मां नय: 1 30 में नय: 1 30 दें नय: 1 30 मों नय: 1 30 में नय: 1 30 में नय: 1 30 में नय: 1 30 मों नय: 1 30 मों नय: 1 30 मों नय: 1 30 में नय: 1 30 मों नय: 1 30 मां नय: 1 30 में नय: 1

हादशाक्षर-मन्त्र— ३० नमी भगवते वासुदेवाय, दशाक्षर-मन्त्र— ३० नमी नारायणाय नम: तथा अप्टाक्षर-मन्त्र— ३० पुरुषोत्तमाय नम:— इन मन्त्रोंका यथाशक्ति जप करके निम्न मन्त्रसे भगवान् पुण्डरीकाक्षको नमस्कार करे—

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन। सुबद्धाच्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज॥

हे पुण्डरीकाक्ष! (कमलनयन) आपको नमस्कार है। हे विश्वके कारणभूत! आपको मेरा प्रणाम है। हे ब्रह्मण्यदेव! आपको नमस्कार है। हे महापुरुष! हे पूर्वज! आपको मेरा प्रणाम है। इस प्रकार भगवान् विष्णुको स्तुति करके साधकको हवन करना चाहिये। तदनन्तर साधक (महापुरुपविद्या नामक) मन्त्रका विधिपूर्वक एक सौ आठ बार जप करके अर्घ्य प्रदान करे और 'जितं तेन'(यह स्तोत्र ही महापुरुयविद्या है) इसी स्तोत्रसे उन भगवान् नारायणको बारम्बार प्रणाम करना चाहिये।

तत्पश्चात् [अग्निकी स्थापना करके] साधक उस अग्निदेवको पूजा करनेके बाद हवन करे। अपने (बबाविहित) बीजमन्त्रसे देवाधिदेव भगवान् विष्णु तथा अङ्गमन्त्रोंके द्वारा अञ्युतादि आङ्गिक देवताओंको आहुति प्रदान करे। सबसे पहले मन्त्रविद् साधकको कुण्डमें ॐकारके द्वारा [तीन रेखाओंका] उल्लेखन करना चाहिये और उसके बाद यहकुण्डका अभ्युक्षण^६ करना चाहिये। तदनन्तर यचाविधि धामणपूर्वक हवनकुण्डमें अग्नि स्थापित करके उत्तम फल आदिसे सर्विध उसको पूजा करनी चाहिये।

पहले साङ्गोपाङ्ग देव ब्रह्मका मनसे ध्यानकर मण्डलमें उन सभीको स्थापित करे। तदनन्तर वह साधक वासुदेव-मन्त्रसे एक सौ आट बार आहुति दे। तत्पश्चात् वह सङ्कर्षण आदि देवोंके बीजमन्त्रसे उन छ: देवोंको भी पूजा करके अङ्ग देवताओंको तीन-तीन और दिक्यालाँको एक-एक आहुति प्रदान करे। उसके बाद हवन पूर्ण होनेपर साधकको पुनः एकाग्रचित स्थित होकर पूर्णहित देनी चाहिये।

तदनन्तर वह साधक 'वाणीसे अतीत उस परमात्मा'में अपने आत्पाको लीन करे और निम्नलिखित यन्त्रसे

वामुदेव और उन सभी देवोंका विसर्जन करे-'गच्छ गच्छ परं स्थानं यत्र देवो निरहानः॥ गच्छन् देवताः सर्वाः स्वस्थानस्थितिहेतवे।' 'हे देवाधिदेव भगवान् वासुदेव! अब आप उस अपने परम स्थानको प्राप्त करें, जहाँपर निर्मल (प्रकाशस्यरूप) परम ब्रह्मका निवास है। अङ्गदेव, सङ्कर्पणादि और इन्द्रादि दिक्याल! आप सभी देव अपने-अपने स्थानमें निवास

करनेके लिये प्रस्थान करें!' सुदर्शन, ब्रीहरि, अञ्युत, जिविक्रम, चतुर्भुज, वासुदेव, प्रदुप्त, सङ्कर्षण और पुरुषसे युक्त देवोंका (एक जो समूह हैं उसे) नवव्युह माना गया है। इसमें दसवें परम तत्त्वका योग होनेसे यह दशात्मक कहा जाता है। इसी नवल्यूहमें अनिरुद्ध तथा अनन्तका संनिवेश होनेसे यह एकादश व्यूह द्धदशात्मक कहलाता है।

अङ्कित चक्रोंमें इस प्रधान देवकी पूजा करनेपर वह (साधकके) घर आदिकी रक्षा करता है। अत: निम्न मन्त्रोंसे बकादिकी पूजा करनी चाहिये-

🌣 बकाय स्वाहा । ३५ विवकाय स्वाहा । ३५ सुबकाय स्वाहा । ॐ महाचकाय स्वाहा । ॐ असुरान्तकृत् हुं फट् । ॐ हें सहस्वार हे फद।

उपर्युक्त मन्त्रीसे की गयी पूजा द्वारकाचक्रको पूजा कड़ी जाती है। इस प्रकार सम्पन्न की गयी चक्रको पूजा 'घरमें' सब प्रकारमें रक्षा करनेवाली तथा मङ्गलदायिनी है। (अध्याय १२)

विष्णुपञ्चरस्तीत्र

श्रीहरिने पुनः कहा—हे रुद्र ! अब मैं विष्णुपञ्जर नामक स्तोत्र कहता हूँ। यह स्तोत्र (बड़ा ही) कल्वाणकारी है। उसे सुने—

प्रवक्ष्याम्यधुना होतद्वैष्णवं पञ्चरं शुभम्। नमो नमस्ते गोविन्द चर्क गृह्य सुदर्शनम्॥ प्राच्यां रक्षस्व मां विष्णी त्वामहं शरणं यतः। यदां कौमोदकी गृह्य पद्मनाभ नपोस्तु ते॥ याप्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामइं शरणं यतः। सीनद नमस्त पुरुषोत्तम ॥

प्रतीस्थां रक्ष मां विष्णो त्वामहं शरण गतः। मुसलं ज्ञातनं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष उत्तरस्यां जगनाध भवन शरण गतः। खाङ्गमादाय चर्माथ अस्त्रशस्त्रादिकं नमस्ते रक्ष रक्षीप्त ऐशान्यां शरण महाशङ्ख्यनुघोष्यं च प्रमुद्ध रक्ष मां विच्यो आग्नेय्यां यत्रशुकर'। समागृह्य खड्गं चान्द्रमसं तथा॥ नैजीत्यां मां च रक्षस्व दिव्यपूर्ते नुकेसरिन्।

१. 'अध्युक्षण' जलके द्वारा पवित्र करनेको एक जारजीय विधि है।

२. 'पञ्चर'का अर्थ है— रक्षक। यह विष्णुका स्तोत्र हम रायका रक्षक है, इसलिये 'विष्णुपञ्चरस्तोत्र' कहा जाता है।

वामनपुराण अध्याय १७ के अनुमार 'यज्ञण्कर' पाठ उचित है।

वेजयनी सम्प्रगृह्य श्रीवलां कण्ठभूवणम्॥ वायव्यां रक्ष मां देव हयग्रीव नमोऽस्त् ते। वैनतेयं समारुद्ध त्वन्तरिक्षे जनादंन॥ भा रक्षस्वाजित सदा नमस्तेऽस्त्वपराजित। विशालाक्षे समावद्य रक्ष मां त्वं रसातले॥ अकृपार नमस्तुभ्यं महामीन नमोज्ञतु ते। करशीर्षाद्यङ्गलीयु सत्य त्वं बाहुपञ्चरम्॥ कृत्वा रक्षस्य मां विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम। एतदक्तं प्रदूराय वैष्णवं पञ्चरं महत्॥ पुरा रक्षार्थमीज्ञान्याः कात्पायन्या वृषध्यञ्ज। नाशयायास सा येन चापरे पहिवासुरम्॥ दानमं रक्तमीतं च अत्यांश सुरकण्टकान्। एतग्जपनरी भक्त्या शत्रुन् विजयते सदा।।

(t?!!-tx) हे गोबिन्द! आपको नमस्कार है। आप सुदर्शनयक लेकर पूर्व दिशामें मेरी रक्षा करें। हे विष्णो। मैं आपकी शरणमें हैं। हं परानाभ! आपको मेरा नमन है। आप अपनी आदि अस्त्र-शस्त्र प्रहणकर ईशानकोणमें मेरी रक्षा करें। हे सफल होता है। (अध्याय १३)

दैत्यविनाशक ! मैं आपकी शरणमें हैं। हे यजवराह (महावराह)! आप पाञ्चतन्य नामक महाशङ्ख और अनुघोष (अनुबोध) नामक पद्म ग्रहणकर अग्निकोणमें मेरी रक्षा करें। है विच्नो ! मैं आपकी शरणमें हैं। आप मेरी रक्षा करें। हे दिख-शरीर धगवान् नुसिंह ! आप सूर्यके समान देदीप्यमान और चन्द्रके समान चमत्कृत खड्गको धारणकर नैर्ऋत्यकोणमें मेरी रक्षा करें। हे भगवान् हयग्रीव ! आपको प्रणाम है। आप वैजयन्ती माला तथा कण्डमें सुशोधित होनेवाले बोक्त नामक आभूषणसे विभूषित होकर वायुकोणमें मेरी रक्षा करें। हे जनार्दन! आप वैनतेय गरुडपर आरूड होकर अन्तरिक्षमें मेरी रक्षा करें। हे अजित। हे अपरासित। आफ्को सदैव मेरा प्रणाम है। हे कुर्मराज! आपको नमस्कार है। हे महामीन! आपको नमस्कार है। हे सत्यस्वरूप महाविष्णो । आप अपनी बाहुको पञ्चर (रक्षक)- जैसा स्वीकार करके हाथ, सिर, अङ्गली आदि समस्त अङ्ग-उपाङ्करो युक्त मेरे शरीरकी रक्षा करें। हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है।

कौमोदकी गदा धारणकर दक्षिण दिशामें मेरी रक्षा करें । हे 📑 हे चृषध्वज । मैंने प्राचीन कालमें सर्वप्रथम भगवती विष्णों! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे पुरुषोत्तम! आपको मेरा इंशानी काल्यायनीको रक्षाके लिये इस विष्णुपञ्जर नामक प्रणाम है। आप सीनन्द नामक हल लेकर पश्चिम दिलामें स्तोत्रको कहा था। इसी स्तोत्रके प्रभावसे उस कल्यायनीने मेरी रक्षा करें। हे विष्णो। मैं आपको ऋरणमें हैं। हे स्वयंको अपर समझनेवाले महिषासुर, राहबीज और देवताओंके पुण्डरीकाक्ष! आप शातन नामक मुसल हायमें लेकर उत्तर लिये कप्टक बने हुए अन्यान्य दानवींका विनाश किया था। दिशामें मेरी रक्षा करें। हे जगनाथ! मैं आपको सरणमें हूँ। इस विष्णुपक्कर नामक स्तुतिका जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जप हें हरे! आपको मेरा नमस्कार है। आप खड्ग, चर्म (ढाल) करता है, वह सदा अपने ऋतुऑपर विजय प्राप्त करनेमें

ध्यान-योगका वर्णन

श्रीहरिने पुन: कहा— अब मैं भोग तबा मोक्ष प्रदान करनेवाले योगको कह रहा है। योगियँकि द्वारा ध्यानगम्य जो देख हैं, उन्हें ही ईश्वर कहा जाता है। हे महेश्वर! उनके लिये किये जानेवाले योगको सुनें। यह योग समस्त पार्चोका विनाशक है। योगीको आत्मस्त्ररूप परमात्माकी स्वयंमें इस प्रकार भावना करनी चाहिये-

में ही विष्णु हूँ मैं ही सभीका ईश्वर हूँ मैं ही अनना हैं और मैं ही छ: ऊर्मियों (श्लोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा एवं पिपासा) - से रहित हैं। मैं डी वासुदेव हैं, मैं डी जगनाथ और ब्रह्मरूप हैं। मैं ही समस्त प्राणियोंके शरीरमें स्थित रहनेवाला अल्मा और सर्वदेहविमुक्त परमात्मा हैं। मैं ही शरीरधर्मसे र्गहत, खर (समस्त प्रपञ्च), अक्षर (कुटस्थ चेतन भोत्त्र)-सं

१. विज्ञालाक्ष- गरुडवंशविशेष (शब्दकल्पद्रम) ।

अकृषार- कृमंसज (मेदिनीकोश)।

 ^{&#}x27;शोकमोही जरामृत्यु शृतिपासं प्रदुर्मवः' (शब्दकत्पद्म)।

^{&#}x27;धर: सर्वाणि भृतानि कृटस्थोऽधर उथ्यते' (गीता १५ । १७)-के अनुसार समस्त प्रपष्ट क्षर है । 'अक्षर'का अर्थ कृटस्थ है । बीधरसरस्थतीने 'कुरस्थ'का अर्थ चेतन भीता किया है।

अतीत, मनके साथ पाँच इन्द्रियोंमें मूल शक्तिरुपसे स्थित मैं रहित हूँ और अहंकारजन्य विकारोंसे भी मैं रहित हूँ। स्वयं अतीन्द्रिय (इन्द्रियोंसे अग्राह्म) होता हुआ द्रष्ट, त्रोता एवं प्राता (गन्ध ग्रहण करनेवाला) है।

में इन्द्रियधर्मसे रहित, जगत्का स्तष्टा, नाम और गोत्रसे शुन्य, मननश्रील सबके मनमें स्थित देवता हूँ, किंतु मुझमें मन नहीं है और न तो उसका धर्म ही है। मैं हो विज्ञान तथ ज्ञानस्वरूप^र हैं। मैं ही समस्त ज्ञानका आश्रय, बुद्धिरूप गुहामें स्थित प्राणिमात्रका साक्षी (तटस्थ द्रष्टा) तथा सर्वंड और बुद्धिकी अधीनतासे मुक्त हूँ। मैं ही बुद्धिके धर्मोंसे भी शून्य हैं, मैं ही सर्वस्वरूप, सर्वगतमनस्स्वरूप और प्राणिमात्रके किसो भी प्रकारके बन्धनसे सर्वधा विनिर्मृत तथा प्राणधर्म (बुभुक्षा एवं पिपासा)-से विमुक्त हूँ। मैं ही प्राणियोंका प्राणस्वरूप हूँ, मैं ही महाशान्त, भयशृन्य तथा अहंकारादिसे

में जगत्का साक्षी, जगत्का नियन्ता और परमानन्दस्वरूप है। जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुष्ति—इन सभी अवस्थाओंमे जगत्का साक्षी होते हुए भी मैं इन अवस्थाओंसे रहित हैं। मैं हो तुरोय बहा और विधाता हूँ। मैं ही दुग्रूप' हूँ। में ही निर्पुण, मुक्त, बुद्ध, शुद्ध-प्रबुद्ध, अजर, सर्थव्यापी, सत्यस्वरूप एवं शिवस्वरूप परमात्मा है।

इस प्रकार जो विद्वान् इन परमपद-परमेश्वरका ध्यान करते हैं, ये निश्चय ही ईश्वरका सारूप्य प्राप्त कर लेते हैं, इसमें संदेह नहीं है। हे सुव्रत शहूर! आपसे ही इस ध्यानयोगको चर्चा मैंने को है। जो व्यक्ति सदैव इस ध्वानयोगका पाठ (चिन्तन-मनन) करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १४)

विष्णुसहस्रनाम

श्रीरुद्रने पूछा—हे ग्रभो! मनुष्य किस मन्त्रका जप करके इस अधाह संसार-सागरसे पार हो सकता है? आप जप करने-योग्य उस श्रेष्ट मन्त्रको मुझे बताये। **औहरिने कहा — हे** रुद्र ! परम ब्रह्म, परमात्मा, नित्प,

परमेश्वर भगवान् विष्णुकी सहस्रनामसे स्तुति करनेपर मनुष्य भवसागरको पार कर सकता है। हे वृषभध्वज! मैं उस पवित्र, श्रेष्ठतम और जप करने-योग्य (विष्णु) 'सहस्रनाम' को कहता हूँ। वह समस्त पार्योको विनष्ट करनेवाला स्तोत्र है। आप उसे सावधान होकर सुनें —

🕉 वासुदेवो महाविष्णुर्वापनी वासवो वसुः। बालचन्द्रनिभी बालो बलभद्रो बलाधिपः॥ बलिबन्धनकृद्वेधा वरेण्यो वेदवित् कवि:। वेदकर्ता वेदरूपो वेद्यो वंदपरिप्लुतः ॥ वेदाङ्गवेता वेदेशो बलाधारी अविकारो वरेशञ्च वरुणी वरुणाधिप: ॥ बुहद्वीरो वन्दितः परमेश्वर: । आत्मा च परमात्मा च प्रत्यगात्मा वियत्परः॥

पचनाभः पर्वानिधः पचहस्तो गदाधरः (धराधरः)। पुरुषोत्तम इंग्ररः॥ परम: **परभूतश** पचत्रहः पुण्डरीकः पर्यमालाधरः प्रियः। पद्मार्थक्ष पर्जन्यः पद्मार्गस्थितः॥ परमार्थश पराणां स परः पण्डितेह्यश्च पवित्रः पापमर्देकः॥ प्रकाशक्रपश पवित्रः परिरक्षकः। पिपासावनितः पाद्यः प्रकृतिस्तवा ॥ पुरुष: प्रधानं पृथितीयशं पश्चनाभः प्रियप्रदः (प्रियंबदः)। सर्वेशः सर्वयः सर्वः सर्ववित् सर्वदः सुरः (परः)॥ सर्वस्य जगतो धाम सर्वदशी च सर्वभृत्। सर्वानुप्रहक्देव: सर्वभूतद्वदि रिशत: ॥ सर्वपुन्यश् सर्वाद्यः सर्वदेवनमस्कृतः। सर्वस्य जगतो यूलं सकलो निष्कलोऽनलः॥ सर्वगोप्ता सर्वनिष्ठः सर्वकारणकारणम्। सर्वध्येय: सर्वमित्र: सर्वदेवस्वरूपधृक् ॥ सर्वाध्यक्षः सुराध्यक्षः सुरासुरनमस्कृतः।

१, 'विज्ञान'— परमार्थज्ञान । २, 'ज्ञान'— व्यावहारिक ज्ञान । ३ बुभुक्षा च चित्रस्य च प्रावस्य ''(शब्दकस्पहुम) ।

४. 'दुग्रूरूप'का तत्पर्य यह है— समस्त प्रयष्ट दटा, दृश्य एवं दृष्टि— इन तोनोंमें अन्तर्हित है। प्रामेश्वर विष्णु ही द्रष्टा हैं, वे ही दृश्य हैं, दृष्टि भी वे हों हैं। यह दृष्टि ही 'दुग्' शब्दमें कहाँ जाती हैं।

दुष्टानां चासुराणां च सर्वदा यातकोऽन्तकः ॥ सत्वपालश्च सनाभः सिद्धेतः सिद्धवन्तिः। सिद्धसाध्यः सिद्धसिद्धः साध्यसिद्धो (सिद्धसिद्धः) हर्देश्वरः ॥ शरणं जगतश्चैव क्षेयः क्षेमस्तर्थेव च। शुभकृच्छोभनः सौम्यः सत्यः सत्यपराक्रमः॥ सत्यस्थः सत्यसङ्कृत्यः सत्यवित् सत्य(त्रः)दस्तवा। धर्मी धर्मी व कर्मी च सर्वकर्मविवर्जितः।। कर्मकर्ता च कमैव क्रिया कार्य तथैव च। श्रीपतिनुपतिः श्रीयान् सर्वस्य पतिकर्जितः॥ सदेवानां पतिश्चेव वृष्णीनां पतिरीडितः। पतिर्हिरण्यगर्भस्य त्रिपुरानापतिस्तवा () पशूनों च पति: प्रायो वसूनां प्रतिवेक च। पतिराखण्डलस्यैव वरुणस्य पतिस्तवा ॥ वनस्पतीर्भा च पतिरनित्नस्य पतिस्तवा। अनलस्य पतिश्चेव यमस्य पतिरेव श्वः॥ कुबेरस्य पतिश्चैव नक्षत्राणां पतिस्तवा । ओषधीनां पतिक्षेत्र वृक्षाणां च पतिस्त्रधाः। नागानां पतिरर्कस्य दक्षस्य पतिरेव छ। सुहदां च पतिक्षेव नृपाणां च पतिस्तवा॥ गन्धर्वाणां पतिश्चेव असूनां पतिरुत्तमः। पर्वतानां प्रतिश्चेव निष्नगानां प्रतिस्तवा॥ सुराणां च पतिः श्रेष्ठः कपिलस्य पतिस्तथा। लतानां च पतिक्षेत्र बीरुधां च पतिस्तवा।। मुनीनां च पतिक्षेत्र सूर्यस्य पतिरुत्तमः। पतिश्चन्त्रमसः श्रेष्ठः शुकस्य पतिरेव च॥ ग्रहाणां च पतिश्चेत सक्षमानां पतिस्तवा। किन्तराणां पतिश्चेव द्विजानां पतिरुक्तमः॥ सरितां च पतिश्चेय समुद्राणां प्रतिस्तया। सरसां च (रसानां च) पतिश्चेय भूतानां च पतिस्तवा॥ वेतालानां पतिश्चेव कृष्माण्डानां पतिस्तद्या। पक्षिणां च पतिः श्रेष्ठः पशूनां पतिरेव च॥ महात्मा मङ्गलो मेवो मन्दरो मन्दरेश्वरः। मेरुमांता प्रमाणं च माधवो मलवजितः।। यालाधरो महादेवो महादेवेन पृत्रितः।

महाशान्तो महाभागो मधुसूदन एव छ॥ महाबीयौँ महाप्राणी मार्कण्डेयर्षिवन्दितः। मायात्मा मायया बद्धो मायया तु विवर्जितः॥ मुनिस्तुतो मुनिर्मेत्रो महाना (रा) सो महाहनुः। महाबाहुर्महादान्तो (महादन्तो) मरणेन विवर्जित:॥ यहावक्त्री महात्मा च महाकायी महोदर:। महापादो महाग्रीको महामानी महामनाः॥ महागतिर्महाकोर्तिर्महासयो महासुरः। मधुश्च माधवश्चैव महादेवो महेश्वरः॥ मखेन्यो मखकयी च माननीयो मखेशरः (महेशरः)। महायाती महाभागी महेशोऽतीतमानुषः॥ मानवहर मनुशैव मानवानां प्रियङ्करः। युग्ह मृगपुरवह मृताणां च पतिस्तथा। बुधस्य च पतिक्षेत्र पतिक्षेत्र वृहस्पते।। पतिः जनेश्वरस्येव राहोः केतोः पतिस्तशा। लक्ष्मणो लक्षणक्षेत्र लम्बोद्यो लोलतस्त्रधा। नानालङ्कारसंयुको नानासन्दनवर्षितः॥ नानारसोज्ञ्यलङ्क्यो नानापुर्णापशोधितः। रमापतिक्षेत्र सभावः परमेश्वरः॥ रत्नदो स्त्वहर्ता स ऋषी ऋषविवर्तितः। पहारूपोग्रहपक्ष सौम्यलपस्तवेव च नीलमेपनिभः शुद्धः कालमेपनिभलया। धूमवर्णः पीतवर्णो नानारूपो (नानावर्णो) हावर्णकः ॥ विक्रपो रूपदक्षित शुक्तवर्णस्तवेव च। सर्ववर्णी महायोगी यहो (यान्यो) यहकृदेव सः॥ मुवर्णवर्णवाश्चेष सुवर्णाख्यस्त्रथेव सुवर्णावयवक्षेत्र सुवर्णः स्वर्णमेखलः॥ मुक्जीस्य प्रदाता च मुक्जिमराधैव (मुक्जिमराधैव च) स। मुवर्णस्य प्रियक्षेव सुवर्णाकास्तवेव च॥ मुपणी स महापणी सुपर्णस्य स कारणम्। वैनतेयस्तवादित्य आदिरादिकरः शिवः॥ कारणं महत्रश्चेव प्रधानस्य च कारणम्। बुद्धीनां कारणं चैय कारणं पनसरतथा॥ कारणं चेतसश्चेष अहङ्कारस्य कारणम्।

भूतानां कारणं तद्वत् कारणं च विभावसोः॥ आकाशकारणं तद्वत् पृथिव्याः कारणं परम्। अण्डस्य कारणं चैव प्रकृतेः कारणं तद्या। देहस्य कारणं चैव चक्षुवश्चेव कारणम्। श्रोत्रस्य कारणं तद्वत् कारणं च त्वचस्तचा। जिह्नायाः कारणं चैव प्राणस्यैव च कारणम्। हस्तयोः कारणं तद्वत् पादयोः कारणं तथा।। वाचश्च कारणं तद्वत् पायोश्चैव तु कारणम्। इन्ह्रस्य कारणं चैव कुबेरस्य च कारणम्॥ यमस्य कारणं चैव शिगानस्य च कारणम्। यक्षाणां कारणं चैव रक्षसां कारणं परम्॥ नुपाणां कारणं श्रेष्ठं धर्मस्यव तु कारणम्। जन्तूनां कारणं चैव वसूनां कारणं परम्॥ मनूनों कारणं चैव पश्चिमां कारणं परम्। मुनीनां कारणं श्रेष्ठं योगिनां कारणं परम् सिद्धानी कारणं चैव यक्षाणां कारणं परम्। कारणं किन्तराणां च गन्धवाणां च कारणम्॥ नदानां कारणं चैव नदीनां कारणम् परम्। कारणं च समुद्राणां वृक्षाणां कारणं तथा। कारणं बीरुधां चैव लोकानां कारणं तथा। पातालकारणं चैव देवानां कारणं तथा। सर्पाणां कारणं चैव श्रेयसां कारणं तथा। पशूनों कारणे चैव सर्वेषों कारणे तथा।। रेहात्मा चेन्द्रियात्मा च आत्मा बुद्धिस्तर्धेव च। चात्पाहडूगरचेतसः ।। मनसञ्च तथेवात्या जाग्रतः स्वपतश्चात्मा महदात्मा परम्तवा । प्रधानस्य परात्मा च आकाशात्मा द्वर्ण तथा॥ पृथिक्याः परमात्या च रसस्यात्मा तथैव च। गन्धस्य पंत्रपात्मा च रूपस्यात्मा परस्तवा। शब्दातमा चैव वागातमा स्वशातमा पुरुषातका। श्रोत्रात्मा च त्वगात्मा च जिह्नात्मा परमस्तधा। घाणात्मा चैव हस्तात्मा पादात्मा परमस्तवा। उपस्थस्य तथेवात्मा पाच्यात्मा परमस्त्रधा () इन्हात्मा चैव ब्रह्मात्मा रुद्रा (शान्ता) त्या च मनोस्तथा। दक्षप्रजापतेरात्मा सत्या (स्तष्टा)त्या परवस्तश्चा ॥

इंशात्मा परमात्मा च रौडात्मा मोक्षविद्यतिः। यलवांड तबा यलक्षमी खड्गी मुरानकः (असुरानकः)॥ हीप्रवर्तनशीलश्च यतीनां च हिते रतः। यतिकपी च योगी च योगिध्येयो हरि: शिति:।। संविन्धेश च कालह ऊच्या वर्ष म (न) तिस्तवा। संवत्सरी मोझकरो मोहप्रध्यंसकस्तवा॥ मोहकर्ता च दुष्टानां माण्डव्यो वहवामुखः। संवर्तः कालकर्ता च गीतमो भृगुरङ्गिराः॥ अत्रिवेस्तिः पुलहः पुलस्त्यः कुत्स एव च। वाज्ञवत्क्यो देवलश्च व्यासश्चेत पराशरः॥ शर्मदक्षेच गाङ्गे धी हवीकेशी बृहत्त्व्याः। केशवः क्लेशहना च सुकर्णः कर्णवर्षितः॥ प्राणस्य पतिरेव छ। नारायणा महाभागः पतिश्रेव व्यानस्य पतिरेव च॥ अपानस्य उदानस्य पतिः भेष्ठः समानस्य पतिस्तधाः। शब्दस्य च पतिः श्रेष्ठः स्पर्शस्य पतिरेव च॥ कवाचा च पतिश्रायः खर्गपाणिहेलायुधः। सक्रपाणिः कुण्डली च श्रीवलाङ्करतथेव च॥ कौस्तुभग्रीवः पीताम्बरधरस्त्या। प्रकृति: सुमुखो दुर्मुखाईव मुखेन तु विवर्जितः॥ सुनख: अननोऽननसपश्च सुरमन्दरः । विभृजिष्णुश्रीजिष्णुक्षेषुशीलक्षा॥ सुकपोली हिरण्यकशियोई-ता हिरण्याभविमदेकः। निहन्ता पुतनायाद्य भास्करान्तविनागानः॥ केलिनो दलनश्रव मुष्टिकस्य विमर्दकः। कंसदानवभेत्ता च चाणूरस्य (धेनुकस्य) प्रगर्दकः॥ अरिष्टस्य निहना च अकूरप्रिय एव च। क्रस्यम् अक्राप्रियवन्दितः॥ भगहा भगवान् भानुस्तद्या भागवतः स्तराय्। उद्धवश्चोद्धवस्येशो ह्युद्धवेन विचिन्तितः॥ चञ्चलक्षेत्र चक्रधृक् चलाचलविवजितः। अहङ्कारोपमश्चितं गगनं पृथिवी वायुश्चश्चलया क्षेत्रं जिल्ला व प्राणमेव च। पायूपस्थस्तधैव वाक्याणिपादजवनः र गङ्गरक्षेव सर्वश्च क्षान्तिदः क्षान्तिकृतरः।

भक्तप्रियस्तथा भर्ता भक्तिमान् भक्तिवर्धनः॥ भक्तस्तुतो भक्तपरः कीर्तिदः कीर्तिवर्धनः। कीर्तिदीप्तिः क्षमाकान्तिर्भक्तश्चेव दया परा।। दानं दाता च कर्ता च देवदेवप्रियः मुचिः। शुचिमान् सुखदो मोक्षः कामक्षार्थः सहस्रपात्॥ सहस्त्रशीर्था वैद्यक्ष मोक्षद्वारं तथेव च। प्रजाद्वारं सहस्वाक्षः सहस्रका एव च॥ शुक्रश (सुभुः) सुकिरीटी च सुग्रीवः कौस्तुभस्तवा। प्रयुप्नशानिरुद्धश्च हयग्रीवश्च मुकरः॥ मत्त्रयः परगुरामश्च प्रद्वादो बलिरेव सः। शरण्यश्रेव नित्यश्च बुद्धो मुक्तः शरीरभृत्॥ च रावणस्य प्रमर्दनः। खरदूषणहन्ता सीतापतिश्च वर्धिष्णुभंरतश्च तथेव कुम्भेन्द्रजिन्तिहत्ता च कुम्भकर्णप्रमर्दनः। नरानकान्तकश्रेष देवानकविनाशनः॥ देवानकविनाशनः॥ नरानकानकश्चेव दुष्टासुरनिहन्ता च शब्बरारिस्तवैव च। नरकस्य निहना च त्रिशीर्थस्य विनाशनः॥ यमलार्जुनभेता स तपोहिनकरस्तवा। वादित्रं जैव वाद्यं च युद्धक्षेत्र वरप्रदः॥ सारः सारप्रियः सीरः कालहन्तृनिकृतनः। अगस्त्यो देवलश्चेय नारदी नारदप्रियः ॥ प्राणोऽपानस्तथा व्यानो रजः सत्त्वं तयः ऋरत्। उदानक्ष समानक्ष भेषत्रं च भिषक् तथा।। कृदस्थः स्वच्छसपश्च सर्वदेहविवर्जितः। चक्षुरिन्द्रियहीनश्च वागिन्द्रियविवर्जितः॥ हस्तेन्द्रिपविहीनश्च पादाभ्यां च विवर्जितः। पायूपस्थविज्ञीनश महानापविविज्ञितः॥ प्रबोधेन विहीनश्च बुद्ध्या चैव विवर्जितः। चेतसा विगतश्चेत प्राणीन च विवर्गितः । अपानेन बिहीनश्च व्यानेन च विवर्जितः। विहीमश्च उदानेन समानेन विवाजत:॥ आकाशेन विहीनश्च वायुना परिवर्जित:। अग्निना च विहीनश्च उदकेन विवर्जितः। पृथिक्या च विहीनश्च शब्देन च विवर्जितः। स्पर्शेन च विहीनश्च सर्वरूपविवर्जितः॥

रागेण विगतश्चैव अधेन परिवर्जितः। रहितक्षेव वचसा परिवर्जितः॥ शोकेन रजोविवर्जितश्चेव विकार: षड्भिरेव च। कापेन वर्जितश्चेय कोधेन परिवर्जित: ॥ लोभेन विगतश्चेय दम्भेन स विवर्णितः। मृद्दमश्चेष सुमृद्दमञ्च स्थूलातस्थूलतरस्तवा॥ विज्ञारदो बलाध्यक्षः सर्वस्य क्षोभकस्तथा। प्रकृते: श्रीभकश्रैव महत: श्रीभकस्तवा॥ भूतानां क्षेभकक्षेत्र बुद्धेश क्षेभकस्त्रथा। इन्द्रियाणां झोभकञ्च विषयशोभकस्तथा॥ ब्रह्मणः शोभकश्चेष रुद्रस्य शोभकस्तथा। अगम्यश्रभुरादेश श्रोत्रागम्यस्तरीय त्वचा न गम्यः कूर्मश्च जिह्नाऽग्राह्मसम्बेव च। प्राणेन्द्रियागम्य एव वासाऽग्राष्ट्रास्तर्थेव घः॥ अगम्बद्धिव पाणिभ्यां यदागम्यस्तवैव च। अवाह्यो पनसक्षेव मृद्ध्याऽव्राह्यो हरिस्तवा।। अहं बुद्धा तथा प्राह्मशेतसा प्राह्म एव च। महुपाणिश्चाव्यवश्च गदापाणिस्तर्थेव सः॥ शाङ्कषणिश्च कृष्णश्च ज्ञानमृतिः परनापः। तपस्वी ज्ञानगम्बो हि ज्ञानी ज्ञानविदेव स्र॥ ज्ञेयहीनश्च ज्ञप्तिश्चीतन्यरूपकः। त्रेयश भावो भाव्यो भवकरो भावनो भवनाशनः॥ गोपतिर्गोपः सर्वगोपीसुखप्रदः। गोविन्दो गोपाली गोगतिक्षेत्र गोमतिर्गोधरस्तथा॥ उपेन्द्र नृसिंहम शीरिशेष जनार्दनः। आरणेयो वृहद्भानुर्वृहद्दीध्तिस्तर्वेव स्र॥ दामोदरस्त्रिकालश्च कालज्ञः कालवर्जितः। त्रिसन्द्यो द्वापरं त्रेना प्रजाहारं त्रिविक्रमः॥ विक्रमी दण्ड (र)हस्तश्च ह्येकदण्डी त्रिदण्डधृक्। सामभेदातधोषायः सामस्यी च सामगः॥ राधर्वश्च सुकृतः सुतरूपणः। सामवदी अधर्ववेदविच्येव हाथबांबार्य एव घा। ऋगुपी जैव ऋग्वेद ऋग्वेदेषु प्रतिष्ठित:। यजुर्वेदविदेकपात्॥ यजुर्वेदो बहुपाच्च मुपाच्चैव तथैव च सहस्रपात्।

चतुष्पाच्च द्विपाच्यैव स्मृतिन्यायो यमो वली॥ संन्यासी चैव संन्यासञ्जतुराक्षम एव च। बराचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शृद्रो वर्णस्तवैव च। शीलदः शीलसम्पनो दुःशीलपरिवर्जितः॥ मोक्षोऽस्थात्मसमाविष्टः स्तुतिः स्तोता च पूजकः। पूर्रयो वाक्करणं चैव वाच्यं चैव तु वाचकः॥ वेत्ता व्याकरणं चैव वाक्यं चैव च वाक्यवित्। वाक्यगम्यस्तीर्थवासी तीर्थस्तीर्थी च तीर्ववित्॥ तीर्थादिभूतः साङ्ख्यक्ष निरुक्तं त्वधिदेवतम्। प्रणावः प्रणावेशस प्रणावेन प्रवन्तिः॥ प्रणवेन च लक्ष्यों वे गायत्री च गदाधरः। शालग्रामनिवासी च शालग्रामस्तर्वेव च॥ जलशायी योगशायी शेषशायी कुशेशय:। महीभर्ता च कार्य च कारणं पृथिवीधरः॥ प्रजापतिः शाश्रतश्च काम्यः कामयिना विराट्। सम्राद् पूर्वा तथा स्वर्गी रक्षस्थः सारधिवेलप् धनी धनप्रदो धन्यो यादवानां हिते रतः। अर्जुनस्य प्रियक्षेत्र हार्जुनो भीम एव छ॥ पराक्रमो दुविषहः सर्वशास्त्रविशास्यः । सारस्वतो महाभीष्मः पारिजासहरस्त्रकाः। अमृतस्य प्रदाता च क्षीरोदः क्षीरमेव च। इन्द्रात्मजस्तस्य गोप्ता गोवर्धनशरस्तवा॥ कंसस्य नाशनस्तद्वद्धस्तियो हस्तिनाशनः। शिपिविष्टः प्रसन्धः सर्वलोकार्तिनाशनः ॥ मुझे मुझ करक्षेव सर्वभुदाविवर्जितः। देही देहस्थितश्चैव देहस्य च नियामकः॥ श्रोता श्रोतृतियन्ता च श्रोतव्यः श्रवणं तथा। त्विक्सिश्चतश्च स्पर्शियत्वा स्पृत्रयं च स्पर्शनं नद्या॥ रूपद्रच्टा च चशुःस्थो नियन्ता चञ्चुपस्तधा। दृश्यं चैव तु जिह्नास्थो रसज्ञश्च नियामकः॥ प्राणस्थो प्राणकृद् प्राता प्राणेन्द्रियनियामकः। वाक्स्थो वक्ता च वक्तव्यो वचनं वाङ्नियामकः॥ प्राणिस्थः शिरपकृष्टिरयो हस्तयोश नियापकः। पद्व्यश्चेष गना च गन्तव्यं गमनं तथा। नियना पादयोशैव पाद्यभाक् च विसर्गकृत्।

विसर्गस्य नियन्ता च ह्यूपस्थस्थः सुखं तथा। उपस्वस्य नियना च तदान-दकरश्च ह। शत्रुपनः कार्तवीर्यश्च दत्तात्रेयस्तश्चेत्र च॥ अलकस्य हितश्चेव कार्तवीर्यनिकृतनः। कालनेमिर्महानेमिर्मेची मेघपतिस्तथा॥ अनप्रदोऽनरूपी च हानादोऽनप्रवर्तकः। धूमकृद्धमरूपश्च देवकीपुत्र उत्तमः॥ देवक्यानन्त्री नन्ते रोहिण्याः प्रिय एव छ। वसुदेवप्रियञ्जेव वसुदेवसुनस्तथा। दुन्दुभिर्हासरूपश्च पूष्पहासस्तथेव छ। भट्टहासप्रियक्षेत्र सर्वाध्यक्षः क्षरोऽक्षरः॥ अध्युतश्चेव सत्येशः सत्यायाश्च प्रियो यरः। कविमच्याद्य पतिश्चेष कविमच्या वल्लभस्तथा।। गोपीनां वल्लधश्चेव पुण्यश्लोकश्च विश्वतः। वृषाकपिर्यमो गुद्धो मकुलक्ष^र बुधलका॥ राष्ट्रः केनुर्रहो ग्राहो गजेन्द्रमुखमेलकः । ग्रहस्य विनिद्धना च ग्रामणी स्थकस्तचा।। किनाश्चेव सिद्धश्च छन्दः स्वच्छन्द एव छ। विश्वकर्ण विशालाक्षो देखमूदन एव सः। भूतस्थी देवदानवसंस्थितः। अननसर्पा सुष्रिकाः सुष्रिक्ष स्वानं स्थानाना एव च॥ जयस्थक्षेत जागर्ता स्थानं जागरितं तथा। स्वणस्यः स्वणवित् स्वणस्थानं स्वणस्तवेष सः॥ नाग्रतवप्नमुष्पेश विहीनो वै चतुर्थकः। विज्ञानं बेद्रारूपं च जीवो जीवयिता तथा।। भुवनाधिपतिश्चेष भुवनानां नियामकः। पातालवासी पातालं सर्वन्वरविनाशनः॥ परमान-इसपी च धर्माणां च प्रवर्तकः। मुलभो दुर्लभश्चेव प्राणायामपरस्तवा।। प्रत्याहारो धारकश्च प्रत्याहारकरस्त्रथा। प्रभा कानिस्तवा हार्चिः शुद्धः स्फटिकसंनिभः॥ अग्रहश्चेव गौरश्च सर्वः शुचिरभिष्टुतः। वषद्कारो वषड् वीषद् स्वधा स्वाहा रतिस्तथा।। पका नदविता भोका बोद्धा भावविता तथा। ज्ञानात्मा चैव देहात्मा भू (**ड) मा सर्वेश्वरेश्वरः**॥ नदी नदी च नदीशो भारतस्तरुनाशनः।

चक्रप: श्रीपतिश्चेव नुपाणां चक्रवतिनाम्॥ द्वारकासंस्थितस्तवा। ईशश्च सर्वदेवानां पुष्करास्यक्षः पुष्करद्वीप पुष्कर: भरतो निसकारो निर्निमिनो **निरातंको** नामसहस्त्रं ते वृषभावा इति विष्णोरीशस्य सर्वपापविनाज्ञनम् ॥ देवस्य

पठन् द्विजञ्ज विष्णुत्वं क्षत्रियो जयमाजुयात्। वैश्यो धनं सुखं शूत्रो विष्णुभक्तिसमन्वितः॥ हे वृषभध्वज! मैंने सर्वपापविनाशक, जगदीश्वर, देवाधिदेव, विष्णुके इस सहस्रनामका जो कीर्तन किया है, इसका पाठ करनेसे ब्राह्मण विष्णुत्व अर्थात् विष्णुस्वरूप, धत्रिय विजय, वैश्य धन तथा सुख और शुद्र विष्णुकी भक्ति प्राप्त करता है। (अध्याय १५)

भगवान् विष्णुका ध्यान एवं सूर्यार्चन-निरूपण

रुद्रने कहा - हे शंख-चक्र और गटाको धारप करनेवाले भगवान् हरि! आप पुनः देवदेवेश्वर शुद्धरूप परमात्मा विष्णुके ध्यानका वर्णन करें।

हरिने कहा-हे रद्र! संसारसपी युशका विचारा करनेवाल वे हरि ज्ञानरूप, अनन्त, सर्वख्यास, अजन्मा और अञ्चय 🕏। वे अविनाशी, सर्वत्रगामी, नित्य, महान् अद्वितीय ब्रह्म है। सम्पूर्ण संसारके मूल कारण तथा समस्त चराचरमें गतिमान् परमेश्वर है। वे समस्त प्राणियोंके हृदयमें निवास करनेवाले तथा सभीके ईश्वर हैं, सम्पूर्ण जगतुका आधार होते हुए भी वे स्वयं निराधार है। सभी कारणोंके कारण है।

सांसारिक विषयोंकी आसक्तिसे परे उनकी स्थिति है. वे निर्मुक्त हैं। मुक्त योगियोंके ध्येय हैं। वे स्थूल जरीरसे रहित, नेत्र, पाणि, पाद, पायु, उपस्थादि समस्त इन्दियोंसे विहोन हैं। वे हरि मन एवं मनके धर्म सङ्ख्य-विकल्प आदिसे रहित हैं। वे बुद्धि (भौतिक इन्द्रियविशेष)-से रहित, बुद्धि-धर्म-विवर्जित, अहंकारसे शुन्य, चित्तसे अग्राह्य, प्राण-अपान-ख्यानादि वायुसे रहित है।

हरिने कहा - अब मैं सूर्यको पूजाका पुन: वर्णन करता है, जो प्राचीन कालमें भूगु ऋषिको सुनायी गयी थी। 'ॐ खखोलकाय नयः'- यह भगवान् सूर्यदेवका मूल मन्त्र है, जो साधकको भोग और मोध प्रदान करता है। (निम्न मन्त्रसे अङ्गन्यास करके साधकको सूर्यदेवको पूजा करनी चाहिये।) यथा-

'ॐ खखोल्काय त्रिदशाय नमः।' ॐ विचि ठठ शिरसे नमः।'' ॐ ज्ञानिने ठठ शिखायै नमः।'' ॐ सहस्ररहपये ठठ कवचाय नमः।' 'ॐ सर्वतेजोऽधिपतये ठठ अस्वाय नमः।' 'ॐ जाल जाल प्रजाल प्रजाल ठठ नमः।'

सूर्यका यह यन्त्र साधकके समस्त पापोंका विनाश करनेवाला है। इसे अग्नि-प्राकार मन्त्र भी कहते हैं।

भगवान् सूर्यको प्रसन्न करनेवाला मन्त्र इस प्रकार है, यह सूर्य-गायबी-मन्त्र कहलाता है- इस मन्त्र-जपके पक्षात् साधकको सुर्व एवं गावश्रीका सकलोकरण करना चाहिये-'ॐ आदित्याय विचहे, विश्वभावाय धीमहि, तप्रः सूर्यः प्रकोदयात्।'

साधकको प्रत्येक दिशा-प्रदिशामें निप्रसिखित दिक्पाल देवोंके लिये प्रणाम निवेदन करना चाहिये-

'ॐ धर्मात्वने नमः' पूर्वमें, 'ॐ समाय नमः' दक्षिणमें, 'ॐ दण्डनायकाय नमः' पश्चिममें, 'ॐ दैवताय नमः' इसामें, 'ॐ प्रवामधिंगलाय नमः' ईशानमें, 'ॐ दीक्षिताय नय: ' अग्निकोणमें, 'ॐ बडपाणये नम:' नैर्ऋत्यकोणमें, ' 🌣 भूभंब: स्व: नम:' वायुकोजमें।

हे वृषध्यव साधकको चाहिये कि वह निम्नाङ्कित मन्त्रींसे पूर्वादि दिशाओंसे प्रारम्भ करके ईशानकोणतक चन्द्रादि ग्रहोंकी भी पूजा करे-

'ॐ चन्हाय नक्षत्राधियतये नमः।' 'ॐ अङ्गारकाय क्षितिसुताय नमः ।'' ॐ बृधाय सोमसुताय नमः ।'' ॐवागीश्चगय सर्वविद्याधिपतये नमः।" ॐ शुक्राय महर्षये भूगुसुताय नमः।' 'ॐ जनश्चराय सूर्यात्यजाय नम:।' 'ॐ राहवे नम:।' 'ॐ केतवे नमः।'

निम्न तीन मन्त्रोंसे सुर्यदेवको प्रणाम करके उन देवको अर्घ्यादि प्रदान करनेके लिये आवाहित करना चाहिये-'ॐ अनुरुकाय नमः।' 'ॐ प्रमधनाधाय नमः।' 'ॐ बुधाय नम:।'

समाधवाहन चतुर्भुज परमसिद्धिप्रद विस्कुलिङ्गपिङ्गल तत् करके नैर्ऋत्यकोणमें शिखाका विन्यास करे। वह पुन: एदोहि इदमध्ये मम शिरांसि गतं गृह गृह तेजोग्ररूपम् अनग्र एकाग्रचित होकर पूर्व दिशामें उनके धर्म, वायुकोणमें ज्वल ज्वल ठठ नमः।'

उपर्युक्त मन्त्रसे आवाहित इन अभीष्ट देवका निम्न मन्त्रसे विसर्जन करे-

पुनरागमनाय।'

हे सहस्राश्म भगवान् आदित्य! आपके लिये मेरा प्रणाम है। हे कृपालु ! आप पुन: आगमनके लिये मुखपूर्वक पधारे।

हरिने कहा—हे रुद्र! मैं पुन: सूर्य-पूजाको विधिका वर्णन करूँगा, जिसे मैंने पहले कुबेरसे कहा था।

[सूर्यपूजा प्रारम्भ करनेसे पूर्व] एकाग्रविच होकर पवित्र स्थानपर कर्णिकायुत्ता अष्टदलकमल बनाये। तदनन्तर सूर्यदेकका आवाहन करे। तत्पकात् भूनिपर निर्मित कमलदलके मध्यमें यन्त्ररूपी खखोल्क भगवान् सूर्यको उनके परिकर्तके साथ स्थापना करे तथा उन्हें स्नान कराये।

हे शिव! इसके बाद साथक अग्निकोणमें (अभीष्ट) भगवप्रपरिमितमयुख्यमस्तिन् सकलजगन्यते देवके इदयको स्थापना करे। ईशानकोणमें सिरको स्थापना उनके नेत्र और पश्चिम दिशामें उनके अस्त्रका विन्यास करे।

इसी प्रकार अष्टदलकमलके ईशानकोणमें चन्द्र, पूर्व दिशामें मंगल, अग्निकीणमें बुध, दक्षिण दिशामें वृहस्पति, 'ॐ नमो भगवते आदित्याय सहस्रकिरणाय गच्छ सुखं नैर्ऋत्यकोणमें शुक्र, पश्चिम दिशामें शनि, वायुकोणमें केतु एवं उत्तर दिशामें सहुके पूजनका विधान है। अतः (साथकको इन सभी ग्रहोंकी पूजा करके) द्वितीय कक्षामें साथ ही द्वादश सूर्योंको पूजा भी करनी चाहिये।

भग, सूर्य, अर्थमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु—ये द्वादश सूर्य कहे गये हैं।

हादरा सूर्योंको पूजा करनेक बाद पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि देवोंको अर्थना करे तथा जया-विजया-जयन्ती एवं अपराजिता राक्तियोंकी और शेष, वासुकि आदि नागोंकी पूजा करे। (अध्याय १६-१७)

मृत्युञ्जय-मन्त्र-जपकी महिमा

करूँगा, जिसको गरुडने कश्यप ऋषिसे कहा था। वह से-कठिन विष्न-वाधाओंको पार कर जाता है, शत्रुऑपर साधकका उद्धार करनेवाली, पुण्यप्रदायिनी एवं सर्वदेवमय विजय प्राप्त कर लेता है। पूजा है, ऐसा सभीका अभिमत है।

अमृतेशके नामसे कहा जाता है। इस मन्त्रका जप करनेसे कमल सुशोधित रहता है। प्राणी सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है और मृत्युरहित हो जाता 📑 जिला! यदि एक मासतक अमृतादेवीके साथ है अर्थात् मृत्युके समान होनेवालं उसके कष्ट दूर हो अमृतेश्वर भगवान्का ध्यान करते हुए मानव 'ॐ जुं सः' जाते हैं।

फल प्राप्त होता है। तीनों संध्याओंमें एक सौ आठ बार इस प्रदान करनेवाला है।

सूतजीने कहा—अब मैं मृत्युक्तय-पृजाका वर्णन मन्त्रका जप करनेसे मनुष्य मृत्युको जीत लेता है। कठिन-

भगवान् मृत्युक्षय श्रेत कमलके ऊपर भैठे हुए वरद-सूतजीने कहा-- मृत्युक्रय-मन्त्र 'ॐ जूं सः' तीन हस्त तथा अभय-मुद्रा धारण किये रहते हैं। तात्पर्य यह अक्षरींबाला है। पहले ॐकारका उच्चारण करके जुं कि उनके एक हाथमें अभय-मुद्रा है और एक हाथमें (है)-का उच्चारण करे। तदनन्तर विसर्गके साथ 'स' वरद-मुद्रा। दो हाथोंमें अमृत-कलश है। इस रूपमें (सः)-का उच्चारण करना चाहिये। यह मन्त्र मृत्यु और अमृतेश्वरका ध्यान करनेके साथ ही अमृतेश्वर भगवान्के दरिद्रताका मर्दने करनेवाला है तथा जिब, विष्णु, सूर्य, वामाङ्गमें रहनेवाली अमृतभाषिणी अमृतादेवीका भी ध्यान आदि सभी देवोंका कारणभूत है। 'ॐ जूं सः'यह महामन्त्र करना चाहिये। देवीके दायें हाथमें कलश और वायें हाथमें

इस मन्त्रका तीनों सन्ध्याओंमें आठ हजार जप करे तो वह इस मन्त्रका सौ बार जप करनेसे वेदाध्ययनजनित जग्र, मृत्यु तथा महाव्याधियोंसे मुक्त हो जाता है और पुण्यफल तथा यहकृत फल एवं तीर्थ-स्नान-दान-पुण्यादिका अञ्जापर विजय प्राप्त कर लेता है। यह मन्त्र महान् शान्ति

अमृतेश्वर भगवान्की पूजामें आवाहन, स्थापन, रोधन (प्रतिष्ठा), संनिधान, निवेशन करनेके बाद पाद्य, आचमन, स्नान, अर्ध्य, माला, अनुलेपन, दीप, वस्त्र, आभूषण, नैवेद्य, पान, आचमन, सीजन (पंखेसे हवन करना), मुद्रा-प्रदर्शन, मन्त्र-जप, ध्यान, दक्षिणा, आहुति, स्तुति, वाद्य और गीत तथा नृत्य, न्यासयोग और प्रदक्षिणा, साष्ट्राङ्ग प्रणति, मन्त्रज्ञय्या, वन्दन आदि उपचारोंको निवेदित करके उनका विसर्जन करना चाहिये।

षडक्क प्रकारका पूजन जिसे परमेश परमात्याने अपने मुखसे स्वयं कहा है, वह क्रमसे बतलाया गया है, उसे जो जानता है वही पूजक है। यडक्ल-पूजा इस प्रकार है-

साधकको प्रारम्भमें अर्घ्य प्रदान करनेके लिये प्रयुक्त पाप्रकी पूजा करके अस्त्र अर्थात् फट् मन्त्रसे हस्तताहन (दाहिने हाथके द्वास बायें हाधपर ध्यनि) करना चाहिये। उसके बाद कवच (हुं) मन्त्रमे शोधनकर अमृतकरणकी क्रियाको पूर्ण करे। तत्पक्षात् आधारशक्ति आदिकी पूजा प्राणायाम, आसनोपवेशन तथा देहजुद्धि करके भगतान् अमृतेशका ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर अपनी आल्पाको देवस्वरूपमें स्वीकारकर अङ्गन्यास, करन्यास करके साधक हृदयकमलमें स्थित ज्योतिर्मय आत्पदेवका पूजन करे।

उसके बाद मूर्तिपर अथवा यज्ञके लिये बनी हुई बेदीपर चित्रित देवके ऊपर सुन्दर पुष्प अर्पित करे। द्वारपर अवस्थित रहनेवाले देवोंका आवाहन और पूजन करनेके लिये पहले आधारशक्तिकी पूजा करे। तदनन्तर देवताकी प्रतिष्ठा करके उनके (देव) परिवारका पूजन करना चाहिये; क्योंकि विद्वानीने बतलाया है कि मुख्य देवके पूजाके साथ उसके अङ्ग-परिवार आदिकी भी पूजा करनेका विधान है। आयुधीं एवं परिवारीके साथ धर्म आदिकी तथा इन्द्र आदिकी, युगों, बेदों और मुहुर्तीकी भी मुख्य देवके रूपमें पूजा करनी चाहिये। यह पूजा भुक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाली है। अत: साधक विद्वानोंको उनको यडक्न-पूजा करनी चाहिये।

देवमण्डलको पूजा करनेके पूर्व मातृका, गणदेवता, नन्दी और गङ्गाकी पूजा करके देवस्थानके देहली-भागपर महाकाल तथा यमुनाको पूजा करनी चाहिये। इस पूजामें 'ॐ अमृतेश्वर भैत्याय नमः ।'तथा 'ॐ जुं हं सः सूर्याय नमः' कहना चाहिये। इसी प्रकार प्रारम्भमें प्रणव मन्त्र ॐकारको जोड़कर नामोच्चार करते हुए अन्तमें 'नम:' शब्दका प्रयोग करके जिब, कृष्ण, ब्रह्मा, गण, चण्डिका, सरस्यती और महालक्ष्मी आदिकी पूजा करनी चाहिये। (अध्याय १८)

सर्पोंके विष हरनेके उपाय तथा दुष्ट उपद्रवोंको दूर करनेके मन्त्र (प्राणेश्वरी विद्या)

श्रीसूतजी बोले—हे ऋषियो। अब मैं शिवद्वारा पक्षिराज गरुडको सुनाये गये प्राणेश्वर महामन्त्रका वर्णन करता है, किंतु उसके पूर्व उन स्थानोंका वर्णन करूँगा, जहाँ सर्पके काटनेसे प्राणी जीवित नहीं रह सकता।

श्मशान, वल्मीक (बाँबी), पर्वत, कुओं और वृक्षके कोटर-इन स्थानोंमें स्थित सर्पके द्वारा काट लेनेपर यदि उस दाँत-लगे स्थानपर तीन प्रच्छन्न रेखाएँ वन जाती हैं तो वह प्राणी जीवित नहीं रहता है। यही तिथिमें, कर्क और मेष राशिमें आनेवाले नक्षत्रों तथा मूल, अल्लेषा, मचा आदि क्रूर नक्षत्रोंमें सर्पदंश होनेसे प्राणीका जीवन समाप्त हो जाता है तथा काँख, कटि, गला, सन्धि-स्थान, मस्तक या कनपटीके अस्थिभाग और उदरादिमें काटनेपर प्राणी जीवित नहीं रहता है।

यदि सर्परशके समय दण्डी, शस्त्रधारी, भिक्षु तथा नग्न प्राणीका दर्शन होता है तो उसे कालका ही दूत समझना चाहिये। हाथ, मुख, गर्दन और पीठमें सर्पके काटनेसे प्राणी जीवित नहीं यचता है।

दिनके प्रथम भागके पूर्व अर्ध यामका भोग सूर्य करता है। उस दिवाकर-धोगके पक्षात् गणनाक्रममें जो ग्रह आते हैं, उन प्रहोंके द्वारा यथाक्रम शेष यामोंका भोग होता है। इस कालगतिमें प्रत्येक दिन छ: परिवर्तनोंके साथ अन्य श्रेष ग्रहोंका भोग माना गया है। यथा - ज्योतिषियोंने काल-चक्रके आधारपर रात्रिकालमें शेषनाग 'सूर्य', वासुकि नाग 'चन्द्र', तक्षक नाग 'मङ्गल', कर्कोटक नाग 'बुध', पद्म नाग 'गुरु', महापच नाग 'जुक्र', शंख नाग 'शनि' और कुलिक नाग 'राहु' को स्वीकार किया।

रात या दिनमें बृहस्पतिका भोगकाल आनेपर सर्प, देवोंका भी अन्त करनेवाला हो जाता है। अत: इस कालमें सर्पद्वारा काटा गया प्राणी बच नहीं सकता है। दिनमें शनि-ग्रहकी बेलाके आनेपर राहु अशुभ धर्मसे संयुक्त रहता है अत: वह अपने यामार्थ भोग और सन्धिकालकी अवस्थितिमें काल अर्थात् यमराजकी गतिके समान गतिमान् रहता है।

रात्रि और दिनका मान लगभग तीस-तीस घटीका होता है। इस मानके अनुसार निर्मित कालचक्रमें चन्द्रमा प्रतिपदा तिथिको पादाङ्गष्ट, द्वितीयाको पैरसे ऊपर, नृतीयाको गुल्फ, चतुर्थीको जानु, पञ्चमीको लिङ्ग, पष्टीको नाधि, सप्तमीको हृदय, अष्टमीको स्तन, नवमीको कण्ठ, दशमीको नासिका, एकादशीको नेत्र, द्वादशीको कान, त्रयोदशीको भींह, चतुर्दशीको शंख अर्थात् कनपटी तथा पूर्णिमा एवं अमावस्थाको मस्तकपर निवास करता है। पुरुषके दक्षिणाङ्गमें तथा स्त्रीके वामभागमें चन्द्रको स्थिति होती है। चन्द्रको स्थिति जिस अञ्जूमें होती है, उस अञ्जूमें सर्वके इसनेपर प्राणी जीवित बच सकता है। यदापि सर्पर्दशमे शरीरमें उत्पन्न हुई मुच्छां शीघ्र समान होनेवाली नहीं है, किर भी शरीर-मर्दनसे वह दूर हो सकती है।

स्फटिकके समान निर्मल 'ॐ हंस:' नामक बीजमन्त्र, साधकका परम मन्त्र है। विषक्तपी पापको नष्ट करनेमें समर्थ इस बीज-मन्त्रका प्रयोग सर्परंत्रसे मुख्ति प्राजीपर करना चाहिये। इसके चार प्रकार है। प्रथम मात्रा बीज बिन्दुसे पुक्त है। दूसरा पाँच स्वरोंसे संयुक्त है। तीसरा छ: स्वरीवाला और चौथा विसर्गयुक्त है। प्राचीन समयमें पश्चिग्रज गरुडने तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये 'ॐ कुरु कुले स्वाहा' इस महामन्त्रको आत्मसात् किया घा। अतः सर्प एवं सर्पिणियोंके विषको शान्त करनेके लिये उच्छक व्यक्तिको मुखमें 'ॐ', कण्डमें 'कुरु', दोनों गुल्फोंमें 'कुले' तथा दोनों पैरोंमें 'स्वाहा' मन्त्रका न्यास करना चाहिये। जिस घरमें उपर्युक्त मन्त्र भली प्रकारसे लिखा रहता है, सर्प उस घरको छोड़कर चले जाते हैं। जो मनुष्य एक हजार बार इस मन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित सुत्रको कानपर धारण करता है, उसको सर्प-भय नहीं रहता। जिस घरमें इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित सर्कराखण्ड फेंक दिये जाते हैं, उस घरको भी सर्प छोड़ देते हैं। देवताओं और असुरोंने इस मन्त्रका सात

लाख जप करके सिद्धि प्राप्त की थी।

इसी प्रकार एक अष्टदल पद्मका रेखाङ्कनकर उसके प्रत्येक दलपर इस-'ॐ सुवर्णरेखे कुक्कटविग्रहरूपिणि स्वाहा'- मन्त्रके दो-दो वर्ण लिखे तथा 'ॐ पक्षि स्वाहा'-इस मन्त्रसे अधिमन्त्रित जलके द्वारा स्नान करानेसे विषयिद्वल प्राणीका विष दूर हो जाता है।

'ॐ पश्चि स्वाहर' इस मन्त्रके द्वारा अङ्गष्ट-भागसे लेकर कनिष्ठापर्यन्त करन्यास तथा मुख-इदय-लिङ्ग और पैतोंमें अङ्गन्यास करे तो विषधर नाग ऐसे मनुष्यकी क्रवाको स्वप्रमें भी लाँच नहीं सकता। जो मनुष्य इस मन्त्रका एक लाख जप करके सिद्धि प्राप्त कर लेता है, वह अपनी दृष्टिमात्रसे व्यक्षित व्यक्तिके शरीरमें व्यास विपकी नष्ट कर देता है।

'ॐ हीं हीं हीं भि (भी) रुण्डाये स्वाहा – इस मन्त्रका जप सर्पर्रेशित व्यक्तिके कानमें करनेपर विपका प्रभाव श्रीण हो जाता है।

यदि दोनों पैरके आवभागमें 'अ आ', गुल्फमें 'इ इं' जानुमें 'उ ऊ', कटिमें 'ए ऐ', नाधिमें 'ओ', इदयमें 'औ', मुखर्म 'ओ' तथा मस्तकमें 'आ:' वर्णका स्थापनका 'ॐ हंस:' बीजमनके सहित न्यास करके साधक इस बीजमन्त्रका ध्यान-पूजन और जप को तो वह सर्प-विषको दूर कर सकता है।

'मैं (स्वयं) गरुड हैं' यह ध्यान (भावना) करके साधकको विष-त्रयनका कार्यं करना चाहिये। 'हं'बीजमन्त्रका शरीरमें विन्यास विषादिका हरण करनेवाला कहा गया है। वाम हाथमें 'हंस:' यन्त्रका न्यास करके जो साधक इस मन्त्रका ध्यान-पूजन और जप करता है, वह सर्प-विषको दूर करनेमें समर्थ होता है; क्योंकि यह मन्त्र विषधर नागोंके नासिकाभाग और मुँहको श्रास-नलिकाको भी रोकनेमें पूर्ण समर्थ है। यह मन्त्र शरीरको त्वचा-मांस आदिमें व्याप सर्प-विषको भी विनष्ट कर देता है।

सर्पर्देशसे मुस्कित प्राणीके शरीरमें 'ॐ इंसः' मन्त्रका न्यास करके भगवान नीलकण्ठ आदि देवोंका भी भ्यान करना बाहिये। ऐसा करनेसे यह मन्त्र अपनी वायु शक्तिके द्वारा उस सम्पूर्ण विषका हरण कर लेता है।

प्रत्यिङ्गराकी जड़को चावलके जलके साथ पीसकर पीनेसे विषका प्रभाव दूर हो जाता है। पुनर्नवा, प्रियंगु,

वक्त्रज (ब्राह्मी), श्रेत, बृहती, कृष्माण्ड, अपराजिताकी जड़, गेरू तथा कमलगट्टेके फलको जलमें पीसकर घृतके साथ लेप तैयार करना चाहिये, इस प्रकार बना हुआ लेप भी शरीरमें लगानेसे विषको शाना कर देता है। सर्पके काटनेपर जो मनुष्य उष्ण (गरम) घृतका पान कर लेता है, उसके शरीरमें विषका अधिक प्रभाव नहीं बढ़ता। सर्पदंश होनेपर शिरीय नामक वृक्षके पश्चाङ्ग (पत्र, पुष्प, फल, मूल एवं छाल)-के सहित गाजरके बीजोंको पीसकर सर्वाङ्गमें लेप करनेसे अथवा पीनेसे भी विषका प्रभाव समाप्त हो जाता है।

'ॐ ह्वीं' बीजमन्त्र, गोनस (गोडुअन) आदि विपैले सर्पोके विषको दूर करनेमें समर्थ है। इस मन्त्रके साथ 'अ: '-का प्रयोगकर अर्थात् 'ॐ ह्री अ: 'का उच्चारण करते हुए हृदय, ललाट आदिमें विन्यास करके उसका ध्यान करनेमात्रसे ही सर्पादिका बज्ञीकरण हो जाता है। इसका पंद्रह हजार जप करके साधक गरुडके समान सर्वगामी कवि – विद्वान, वेदविद् हो जाता है तथा दोचं आयुको प्राप्त करता है।

सूतजीने पुन: कहा—ऋषियो! अब मैं आप संधीको शियके द्वारा कथित अत्यन्त गोपनीय मन्त्रोंको बताऊँगाः जिनसे अधिमन्त्रित पाश, धनुष, चक्र, मुद्रर, जूल और पट्टिश नामक आयुथोंको धारण करके राजा समुओंपर भी विजय प्राप्त कर लेता है।

मन्त्रोद्धारके लिये कमल-पत्रपर अष्टवर्ग बनाकर पूर्व (दिशा)-से शुरू करके क्रमश: ईशान-कोणतक बीजमन्त्र (ॐ हीं हीं)-को लिखना चाहिये। 'ॐ'कार बहाबोज है, 'हीं कार विष्णुचीन है और 'हीं कार शिवनीन है। त्रिशुलके तीनों शीर्षपर 'ह्रां' लिखकर क्रमानुसार न्यास करे। मन्त्र 'ॐ हीं हीं' है।

साधक हाथमें शूल ग्रहण करे। तत्पक्षात् उसको सकता है। आकाशमें घुमाये, जिसे देखते ही दुष्ट ग्रह और सर्व नष्ट करनेमें समर्थ है, मृत्युलोकके विषयमें कहना ही क्या है? उपद्रवकारी तत्त्व भयभीत हो उठते हैं।

'ॐ जूं सूं हूं फद्' यह दूसरा मन्त्र है। साधक खैरकी

आठ लकहियोंको इसी मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर उन्हें आठ दिकाओंमें गाढ़ दे तो उस कीलाङ्कित क्षेत्रमें वज्रपात (विद्युत्-निपात) तथा इसको गर्जनाका उपद्रव नहीं होता। गरुडद्वारा कहे गये इस मन्त्रसे आठ कीलोंको इक्कीस बार अभिमन्त्रितकर रात्रिके समय अपने अभीष्ट क्षेत्रकी चारों दिशाओं और बिदिशाओंमें गाड़ देना चाहिये। इससे भी वहाँ विद्युत्-निपात, वज्रपतन तथा चूहा, टिड्डी आदिसे होनेवाले उपद्रवोंका भय नहीं रहता।

'ॐ ह्रां सदाशियाय नमः' ऐसा कहकर साधक तर्जनी अंगुलिके द्वारा अनार-पुष्पके सदश कान्तिमान् एक पिण्डका निर्माण करे। उस पिण्डके प्रदर्शनमात्रसे ही दुष्ट जन, मेघ, विद्युत, विष, राक्षस, भूत और डाकिनी आदि दसों दिशाओंको छोड़कर भाग जाते हैं।

'ॐ ह्री गयोशाय नमः।' 'ॐ ह्री स्तम्भनादिचकाय नमः।' 'ॐ ऐं ब्राह्म्ये प्रैलोक्यडायराय नमः।'- इस मन्त्र-संग्रहको भैरव-पिण्ड कहा जाता है। यह भैरव-पिण्ड विष तथा पापप्रहोंके कुप्रभावको समाप्त करनेमें समर्थ है। यह साधकके कार्यक्षेत्रकी रक्षा और भूत-राक्षसादिकी उपद्रवी शक्तियोंको नष्ट करता है।

'ॐ नमः' यह कहकर साधक अपने हाथमें इन्द्रवन्नका ध्यान करे। इस वजमुद्रासे विष, शत्रु और भृतगण विनष्ट हो जाते हैं। 'ॐ र्क्ष् (क्ष) नम: 'इस मन्त्रसे बार्थे हाथमें पक्रका स्मरण करे, जिससे विष तथा भूतादिका विनाश होता है। इसी प्रकार 'ॐ हां (हो) नम:' इस मन्त्रके उच्चारणसे उपदक्कारी मंघ और पापग्रहोंके प्रभाव नष्ट हो जाते हैं। कृतान्त — यमराजका ध्यान करके साधक छेदक अस्त्र (भाले)-से तत्रु-समूहका विनाश करे। 'ॐ क्ष्म (६म) नमः' इस मन्त्रोच्चारके साथ कालभैरवका ध्यान करके मनुष्य पापग्रह, भूत, विषके प्रभावका शमन कर

ॐ लमद्द्विजिह्नाक्ष स्वाहा इस मन्त्रका ध्यान करके हो जाते हैं। साधक धूम्रवर्णके धनुषको हाचमें लेकर मनुष्य खेती-वाडीमें विद्र डालनेवाले ग्रह, भूत, विष और आकाशकी और भुजा उठाकर इस मन्त्रका चिन्तन करे। पश्चियोंका निवारण कर सकता है। 'ॐ क्ष्य (क्ष्णं) मय:' ऐसा करनेसे दुष्ट बिपैले सर्प, कुरिसत ग्रह, विनाशकारी मेघ इस मन्त्रको रक्त-वर्णको स्थाहीसे नगाडेपर लिखकर उसे और राक्षस नष्ट होते हैं। यह मन्त्र तो जिलोककी रक्षा बजाना चाहिये। उसके शब्दोंको सुनकर पापग्रह आदि सभी

(अध्याय १९-२०)

पञ्चवका-पूजन तथा शिवार्चन-विधि

सूतजीने कहा — हे ऋषियों! अब मैं पश्चमुख शिवकों पूजाका वर्णन करूँगा, जो साधकको भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करती है। साधकको सबसे पहले निम्न मन्त्रसे उन देवका आवाहन करना चाहिये—

'ॐ भूषिव्यावे आदिभूताय सर्वाधाराय मृतंबे स्वाहा।"

पुनः 'ॐ हां सद्योजाताय नमः।' कहकर साधक सद्योजातका आवाहन करे। इन सद्योजातको आठ कलाएँ कही गयी हैं। उनका नाम सिद्धि, ऋदि, धृति, लक्ष्मी, मेथा, कान्ति, स्वथा और स्थिति है। सद्योजातको पूजा करनेके पक्षात् 'ॐ सिद्ध्या नमः' इत्यादि मन्त्रोंसे उन सभी आठ कलाओंकी पूजा करनेका विधान है। उदनन्तर 'ॐ हीं वामदेवाय नमः' इस मन्त्रसे साधक वामदेवकी पूजा करे। वामदेवकी तेरह कलाएँ हैं, विन्हें रजा, रक्षा, रति, पाल्या, कान्ति, तृष्णा, मित, क्रिया, कामा, बुद्धि, राष्टि, जासनी तथा मोहिनी कला कहा गया है। इन कलाओंके अतिरिक्त मनोन्मनी, अधौरा, मोहा, धुधा, निद्धा, मृत्यु, माया तथा भयंकरा नामकी आठ कलाएँ (अधोरकों) है।

उक्त समस्त कलाओंका पूजन करनेके बाद साधककी
'ॐ हैं तत्पुक्षाय नय:' इस मन्त्रसे तत्पुरूपदेवकी पूजा
करनी चाहिये। उनकी निवृति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और
सम्पूर्णा—ये पाँच कलाएँ हैं। साधक कलाओंकी पूजा
करके 'ॐ हीँ ईशानाय नय:' इस मन्त्रसे ईशानदेवको पूजा
करे। तत्पश्चात् ईशानदेवकी निश्चला, निरज्जना, शश्चिती,
अंगना, मरीचि और ज्यालिनी नामकी जो छ: कलाएँ है,
उनकी पूजा करके पूजन पूर्ण करे।

सूतजीने पुनः कहा — हे ऋषियो ! अब मैं शिवकी अर्थनाका वर्णन करूँगा, जो भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करनेवाली हैं । बारह अंगुलके मापमें बिन्दुद्वारा (किसी पात्रमें) भगवान् शिवकी मूर्ति बनानी चाहिये । उसमें शान्त, सर्वगत और निराकारका चिन्तन करना चाहिये । बिन्दुद्वारा बनायी गयी मूर्तिमें ऊपरकी और पाँच बिन्दु लगाने चाहिये, जो शिवका मुख हैं । वह छोटे आकारमें होना चाहिये और नीचेकी और मूर्तिके अनुसार बिन्दु लगाकर बड़े-बड़े अङ्ग बनाने चाहिये । मूर्तिके अधोभागमें छठा बिन्दु विसर्गक साय होना चाहिये, जो अस्व है। इसके साथ 'हाँ' लिख देन चाहिये — यह महामन्त्र है और सम्पूर्ण अधींको देनेवाला है। साधक मूर्तिके ऊर्ध्वभागसे लेकर मूर्तिके चरणपर्यन्त अपने दोनों हाथोंसे स्पन्नं करे और महामुद्रा दिखाये; इसके बाद सम्पूर्ण अङ्गोंमें न्यास-करन्यास आदि करे।

तदनन्तर वह अस्त्रमन्त्र 'ॐ फट्ट्'का उच्चारण करता हुआ दहिनी हथेलीसे स्पर्श करके शोधन करे। उसके बाद कनिडा अँगुलीसे लेकर महामन्त्रसे ही तर्जनी अँगुलीतक न्यास करना चाहिये।

अब मैं इदय-कमलको कर्णिकामें पुजनको विधि बतलाडेंगा। उसमें धर्म, जान, वैराग्य, ऐश्वयीदिकी अर्चना करे। सर्वप्रथम आवाहन, स्थापन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान अर्पित करे तथा अन्य विविध मानस उपचारोंको करके तदाकार हो जाय। उसके बाद अग्रिमें आहति देनेकी विधि कह रहा है। साधकको पूजा-स्थलपर अग्नि प्रश्वलित फरनेफे लिये 'ॐ फद् 'अस्त्रमन्त्रसे एक कुण्डका निर्माण करना चाहिये। तत्पश्चान 'अर्थ हं' इस कवचमनासे उस कुण्डका अध्युक्षण करके मानसिकरूपसे उसमें शास्त्रका विन्यास करे। उसके बाद साधकको इदय अथवा शक्तिकुण्डमें क्रमश: जानरूपी तेज तथा अग्रिका विन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् अग्रिके निष्कृति-संस्कारको छोडकर गर्भाधानादि समस्त संस्कार करनेका विधान है। निष्कृति या मोक्ष-संस्कार आहतिके पश्चात किया जाता है। [इसलिये आइतिके पूर्व उस संस्कारका निषेध है।] समस्त संस्कारोंके बाद साधकको उस प्रव्यलित अग्रिमें समस्त आहिकदेवींके साथ मानसिकरूपसे शिवको आहुति देनी चाहिये।

तदनन्तर कमलाङ्कित गर्भवाले उस मण्डलमें नीलकण्ड शिवका पूजन करना चाहिये। इस मण्डलके अग्निकोणमें अर्थचन्द्राकार कल्याणकारी एक अग्निकुण्ड बनाना चाहिये।

तदननार अग्निदेवताके अस्त्रोंसे युक्त इदयादिमें न्यास करनेका विधान है। उसके बाद मण्डलके अन्तर्गत बने हुए कमलको कर्षिकापर सदाशिवकी तथा दिशाओंमें अस्त्रकी पूजा करे।

अब श्रेष्ठ पञ्चतत्त्वोंमें स्थित पृथ्वी, जल आदि तत्त्वोंकी

१-यहाँ बाह्यपूजन तथा मानसपूजन दोनोंका एक सन्द वर्नन है।

दीक्षा बतलायी जाती है। इन दोनों शान्तियोंके लिये पुथक्-पृथक् रूपसे सौ-सौ आहुतियाँ पाँच बार देनी चाहिये। तत्पश्चात् साधक पूर्णाहुति देकर प्रसन्नतापूर्वक त्रिजुली भगवान् शिवका ध्यान करे।

उसके बाद प्रायक्षित-तुद्धिके लिये आठ बार आहुति देनी चाहिये। यह आहुति अस्य-बीज 'हुं फट्' मन्त्रसे प्रदान करनेका विधान है। इस प्रकार संस्कारसे शुद्ध हुआ वह साधक नि:संदेह शिव-स्वरूप हो जाता है।

शिवकी विशेष पूजामें साधकको चाहिये कि वह प्रथम — 'ॐ हां आत्मतत्त्वाय स्वाहा', 'ॐ हीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा' तथा 'ॐ हूं शिवतस्वाय स्वाहा'— ऐसा उच्चारण करके आचमन करे। तत्पक्षात् उसे मानसिक रूपसे कर्णेन्द्रियोंका स्पर्श करना चाहिये। उसके बाद भस्म-धारण और तर्पण आदि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिये। 'ॐ हां प्रपितामहेश्यः स्वधा', 'ॐ हां मातामहेश्यः स्वधा' और 'ॐ हां नमः सर्वमातुष्यः स्वधा' इन पन्तीसे तर्पन करे। इसी रीतिसे पिता, पितामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह आदिका भी तर्पण करे और फिर प्राणयाम करना चाहिये।

इसके बाद आचमन तथा मार्जन करके साधकको शिवके गायत्रीमन्त्रका जप करना चाडिये। वह मन्त्र इस प्रकार है-

'के हां तन्महेशाय विश्वहे, वाग्विशुद्धाय धीमहि, तडो रुतः प्रचोदवात्।'

अर्थात् प्रणवसे युक्त 'हां' बीजशक्तिसे सम्पन उन महेश्वरका हम सभी चिन्तन करते हैं। वाणीकी पवित्रताके लिये उनका हम ध्यान करते हैं। वे रुद्र हम सभीको सन्मार्गपर चलनेके लिये प्रेरणा प्रदान करें।

जिब-गायत्रीमन्त्र-जपके पैक्षात् सूर्योपस्थान करके सूर्य-मन्त्रोंसे सूर्यरूप शिवकी पूजा करनी चाहिये। उन मन्त्रोंका वीच्द्, ॐ हैं कवचाय हुम्, ॐ हीं नेप्रत्रवाय बीच्द्, ॐ हः स्वरूप इस प्रकार है-

क्रमत्तः विमला और ईशानादि शक्तियोंकी स्थापना करके पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे उपासकको परम सुखकी प्राप्ति होती है। [इन शक्तियोंकी पूजाके लिये पृथक्-पृथक् बोजमन्त्र निर्दिष्ट हैं।] यथा-

'ॐ रा पदार्थ नमः'(अग्निकोणमें), 'री दीध्तार्थ नमः' (नैर्ऋत्यकोणमें), 'कं सुक्ष्मार्थ नमः' (वायव्यकोणमें), रि जवायै नमः' (ईशानकोणमें), 'रे भद्रायै नमः' (पूर्व दिशामें), 'सें विभूत्ये नमः'(दक्षिण दिशामें), 'सें विमलाये नमः' (पश्चिम दिशामें), 'रं अमोधिकायै नमः', विद्युतायै नमः' (उत्तर दिशामें) और 'रं सर्वतोमुख्यै नमः' (मण्डलके मध्यमें)। इसके बाद शिवस्वरूप सूर्यप्रतिमाको मुर्वासन प्रदान करके 'हां हूं (हीं) सः'इस मन्त्रसे भगवान् मूर्वकी अर्चना करे और फिर निम्न मन्त्रोंसे न्यास करे— 'ॐ आं इदकांच नमः', 'ॐ भूभृंतः स्वः शिरसे स्वाहा', 'ॐ भूर्भुवः स्वः शिखायै बीवर्', 'ॐ हं न्वालिनी

साधकको अङ्गन्यासके पश्चात् निम्न मन्त्रोंसे सूर्यादि सभी नवग्रहोंकी मानसी पूजा करनी चाहिये-

नयः ', 'ॐ हुं कवचाय हुम्', 'ॐ हुं अस्वाय फर्', 'ॐ हुं

फद् राज्ये नमः', 'ॐ हं फद् दीक्षिताये नमः।'

'ॐ सः सूर्याय नयः, ॐ सौं सोमाय नमः, ॐ पं मंगरकाय नमः, ॐ बं बुधाय नमः, ॐ वं बृहस्पतये नमः, 🌣 धं धार्गवाय नयः, 🕉 शं शर्नश्रराय नयः, 🏂 रे राहते नमः, 🕉 के केतले नमः, 🕉 तेजक्षण्डाय नमः।'

इस प्रकार सुर्यदेव आदिको पूजा करके साधकको आचमन करना चाहिये। उसके बाद वह कनिष्ठिका आदि अंगुलियोंमें करन्यास तथा पुन: निम्नाक्ट्रित मन्त्रोंसे अङ्गन्यास को-

ें ॐ हां हृदयाय नमः, ॐ हीं शिरसे स्वाहा, ॐ हूं शिखाये अस्त्राय फर्।'

'ॐ हां हीं हूं हैं हैं ह: शिवसूर्याप नमः।' 'ॐ हं तदनतार भूतशुद्धि करे तथा पुन: न्यास करे। अर्ध्यस्थापन खखोल्काय सूर्यमूर्तये नमः।' 'ॐ ह्रां ह्राँ सः सूर्याय नमः।' करके उसी जलसे अपने शरीरका प्रोक्षण करना चाहिये। इस पूजाके बाद क्रमत: नामके आदि और अनामें उसके बाद वह साधक शिवसहित नन्दी आदिकी पूजा 'ॐ नमः' शब्दका प्रयोग करके दण्डी तथा पिङ्गल आदि करे। 'ॐ हाँ शिखाय नमः' मन्त्रसे पदामें स्थित शिवकी पूजा भूतनायकोंका स्मरण करे। तदनन्तर अग्रि आदि कोणोंमें करके नन्दी, महाकाल, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, श्रीयत्स, 'ॐ विमलायै नमः, ॐ ईशानायै नमः'—आदि मन्त्रोंसे वास्तुदेवता, ब्रह्मा, गणपति तथा गुरुकी पूजा करे।

तत्पश्चात् साधकको पदाके मध्यमें शक्ति एवं अनन्त देवकी पूजा करके पूर्व दिशामें धर्म, दक्षिणमें ज्ञान, पश्चिममें वैराग्य, उत्तरमें ऐधर्य, अग्रिकोणमें अधर्म, नैऋत्यमें अजन, वायव्यमें अवैराग्य, ईशानमें अनैश्वर्य, पद्यकी कर्णिकामें वामा और ज्येष्ठा उसके बाद पूर्व आदि दिशाओं में रौडी, कालो,

शिवा तथा असिता आदि शक्तियोंको पूजा करनी चाहिये। तदननार साधकको शिवके आगे स्थित पीठके मध्यमें 'ॐ हीं कलविकरिण्ये नम:, ॐ हीं चलविकरिण्ये नम:, ॐ हाँ बलग्रमधिन्यै नमः, ॐ सर्वभूतदयन्यै नमः, ॐ मनोन्मन्यै नमः '- इन मन्त्रोंसे कलविकरिणी एवं वलविकरिणी आदि त्रक्तियोंको पूजा करनी चाहिये। साधक भगवान् शिवके लिये आसन प्रदानकर महामृतिकी स्वापना करे। तदनन्तर मूर्तिके मध्यमें शिवको उदिष्ट करके आवाहन-स्थापन-सन्निधान-सन्निरोध-सकलोकरण आदि मुद्रा दिखापे और अध्यें, पाच, आचमन, अध्यक्ष, उद्वर्तन तथा स्नानीय जल समर्पित करे एवं अर्राण-मन्थन करके पुन्पदेवको वस्त्र, गन्ध, पुष्प, द्वीप और नैवेद्यमें चरु समर्पित करे। नैवेद्यके अनन्तर आचमन दे करके मुखशुद्धिके लिये ताम्बूल, करोइर्तन, छत्र, चामर, पश्चित्रक (यहोपबीत) प्रदानकर परमीकरण (अर्चनीय देवमें सर्वोत्कृष्टताका भाव) करे। तदनन्तर साधक आराध्यके साथ तदाकार होकर उनका जप करे तथा विनम्रभावसे स्तृतिकर उन्हें प्रचाम करे। इसी हृदयादिन्यास आदिके साथ पूर्ण की गयी पूजाको 'यहक्रपुजा' यह नाम दिया गया है।

इस प्रकार जिवपूजन पूर्ण करनेके पक्षात् साधकको अग्नि आदि चतुर्दिक् कोणों, मध्यभाग तथा पूर्वादि दिजाओंमें अग्नि आदि दिग्देवताओं तथा इन्हादि दिक्पालोंकी पूजा करनी चाहिये। तदननार उसको उन देवींके मध्य स्थित चण्डेश्वरकी पूजाकर उनके लिये निर्माल्य समर्पित करना चाहिये। उसके बाद वह निम्नाङ्कित स्तृतिसे क्षमापन (क्षमा-याचना) करके उनका विसर्जन करे-

गुह्यातिगुह्यगोसा त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्। सिद्धिभवतु में देव त्वत्प्रसादात् त्विय स्थितिः॥ यरिकचित् क्रियते कर्प सदा सुकृतदृष्कृतम्। तन्मे शिवपदस्थस्य रुद्र क्षपय जङ्गर॥ शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत्।

शिवो जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च॥ यत्कृतं यत् करिष्यामि तत् सर्वं स्कृतं तव। त्वं त्राता विश्वनेता च नान्यो नाथोऽस्ति मे शिव। (99-39188)

हे प्रभो । आप गुद्ध-से-गुद्ध तत्त्वींके संरक्षक हैं। आप मेरे किये हुए जपको स्वीकार करें। हे देव! मुझे सिद्धि प्राप्त हो। आपकी कृपासे आपमें मेरी निष्ठा बनी रहे। हे ठद्र! हे भगवान् शङ्कर! मेरे द्वारा सर्वेदा पाप-पुण्यरूप जो कर्म किया जाता है, उसे आप नष्ट करें। मैं आपके इन कल्बानकारी चरवॉमें पड़ा है। हे शिव! आप अपने भक्तोंको सर्वस्व देनेवाले हैं। आप ही भोका हैं, हे शिव! यह दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् भी तो आप ही हैं। हे शहूर! आपको विजय हो। सर्वत्र जब क्रिय ही हैं तो मैं भी वहीं हैं। जो कुछ मैंने किया है और जो कुछ भविष्यमें कहैगा, वह सब आपके द्वारा ही किया हुआ है। आप रक्षक हैं। आप विश्वनायक हैं। है जिब ! आपके अतिरिक्त मेरा कोई स्वामी नहीं है। (हरिने पुन: कहा -हे रुद्र!) इसके बाद में

क्षियपुजाको इसरी विधि कह रहा है-इस विधिके अनुसार गणेश-सरस्वती-नन्दी-महाकाल-गङ्गा-यम्ना, अस्त्र तथा वास्तुपतिदेवको पूजा मण्डलके द्वारपर करनी चाहिये और साधक पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि सभी दिक्यालोंको पूजा करे। उसके बाद कारणभूत समस्त तस्वोंकी पूजा करे।

उन बल्बोंमें 'पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश'-ये पञ्चमहाभूत है। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द- ये उनको पाँच तन्मात्राएँ हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु एवं उपस्थ- ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ और श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्ना तथा प्राण-ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनके अतिरिक्त मन, बृद्धि, चित्त और अहंकार-ये अन्त:करणचतुष्ट्य हैं। इनसे ऊपर 'पुरुष' की स्थिति है। इन्हीं (पुरुष)-को शिव कहा जाता है।

इन तत्त्वोंके साथ राग (गानशास्त्रीय रागविशेष), बुद्धि, विद्या, कला, काल, नियति, माया, शुद्धविद्या, ईश्वर और सदाजिय जो सबके मूल हैं, उनकी भी पूजा होनी चाहिये। इन समस्त तत्वोंमें जो शिव और शक्ति अर्थात् पुरुष एवं प्रकृतिका तत्त्व अनुस्यत है, उसको जानकर जानी

साधक जीवन्युक्त होकर जिवरूप हो जाता है। इन तत्त्वोंमें श्रेष्ट बीजपूरक (बिजौरा नीबू) स्थित रहता है। इच्छा, ज्ञान जो शिवतत्त्व हैं, वही विष्णु हैं, वहीं ब्रह्म है और वहीं और क्रिया नामक तीन शक्तियाँ उनके तीन नेत्र हैं। ऐसे ब्रह्मतत्त्व है।

भगवान् सदाशिवका मङ्गलमय ध्यानस्वरूप इस प्रकार इसीलिये इन्हें सदाशिव कहा गया है। ओर अभयमुद्रा, प्रसादमुद्रा, शक्ति, जूल तथा खट्वाङ्ग और जप्पादि कारणोंसे हो उसकी मृत्यु होती है। वामभागकी और सर्प, अक्षमाला, डमरू, नोलकमल तथा

वे देव सर्वदा कल्याणकी भावनामें अवस्थित रहते हैं,

है—ये देव प्रदासनपर विराजमान रहते हैं। उनका वर्ण ऐसे मूर्डिमान् देवका चिन्तन करनेवाला साधक सदैव शुक्ल है। सदैव सोलह वर्षकी आयुर्गे स्थित रहते हैं। वे कालभवसे रहित रहता है। इस प्रकार शिवोपासना करनेवाले पाँच मुखाँवाले हैं। उनके दसों हाथोंमें क्रमरा: दक्षिणभागकों साधककी न तो अकालमृत्यु होती है और न शीत तथा

(अध्याय २१—२३)

भगवती त्रिपुरा तथा गणेश आदि देवोंकी पूजा-विधि

त्रिपुरादेवीकी पुजाको कहँगा, जो अपने भक्तोंको सर्वदा नमस्कार करे। अभीष्ट प्रदान करनेवाली तथा श्रेष्ठ है। साधकको सबसे पहले गणपतिदेवके आसन एवं उनके मूर्तस्वरूपका पूजन करके. और हृदयादि अङ्गाँको प्रणाम करे। तत्पक्षात् उस पद्मपीठपर न्यासपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। साथक 'मां' आदि बहराजो, माहेश्वरी, कौमारी, बैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, बीजमन्त्रीसे निम्न रीतिसे हृदयादिन्यास करे-

शिखायै तबद, ॐ मैं कवसाय हुम, ॐ मीं नेवत्रवाय बीवट, ३० गः अस्त्राय फद्।

इस न्यासके पश्चात् साधकको—' ॐ दुर्गायाः पादुकाञ्यां नमः', 'ॐ गुरुपादुकाध्यां नमः'- मन्त्रसे माता दुर्गा और गुरुकी पादुकाओंको नमस्कार करके देवी त्रिपुराके आसन और मूर्तिको प्रणाम करना चाहिये। तत्पक्षात् वह (स्वधक) फिर इसी मन्त्रसे 'स्ट्रचण्डा, प्रचण्डदुर्गा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, नमः 'कहकर प्रणाम करे। तत्पक्षात् 'ॐ ऐं क्लीं (हीं) सी भी करना चाहिये। (अध्याय २४--२६)

सुतजीने कहा-अब मैं गणेज आदि देवोंकी तथा जियुगर्य नमः'यह मन्त्रीच्यार करते हुए उस त्रिपुराशक्तिको

साधक उसके बाद भगवती त्रिपुराके पद्मासन, मृति चामुण्डा और चण्डिका—इन आठ देवियोंकी पूजा करे। 🅉 मां हृदयाय नव:, ॐ मीं शिरसे स्वाहा, ॐ मूं इन देवियोंकी पूजाके बाद 'भैरव' नामक देवींकी पूजाका विधान है। असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत, कपाली, भीषण तथा संहार नामवाले—ये आठ भैरव है।

> पैरव-पूजाके पश्चात् रति, प्रीति, कामदेव, पञ्चवाण, योगिनी, बटुक, दुर्गा, विष्रराज, गुरु और क्षेत्रपाल-देवोंका भी पूजन करे।

साधकको पद्मगर्थ-मण्डल या त्रिकोणपीठ बनाकर 'ॐ हीं हुगें रक्षिणि'—इस मन्त्रसे इदयादिन्यास करे और उसपर और इदयमें शुक्ल वर्णवाली, वरदायिनी, अक्षमाला, पुस्तक एवं अभय-मुद्रासे सुशोधित भगवती सरस्वतीका चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा, ऋण्डिका तथा दुर्गा 🗕 इन नौ 🕒 ध्यान करना चाहिये। एक लाख मन्त्रका जप और हवन शक्तियोंका पूजन करे। तदनन्तर वज, खड्न आदि मुद्राओंका करनेसे भगवती त्रिपुरेश्वरी साधकके लिये सिद्धिदात्री हो प्रदर्शनकर उसके अग्निकोणमें सदाशिव आदि देवोंकी पूजा जाती हैं। पूजामें देवोंके आसन तथा पादुकाकी पूजाका भी करे। अतः साधक पहले 'ॐ सदाशिवमहाप्रेतपदासनाय विधान है। विशेष पूजनमें मन्त्रन्यास तथा मण्डलादि-पूजन

१-बद्धपद्यासनासीनः सितः पोडशकर्विकः।

पञ्चवकाः कराग्रेः सर्वर्दत्तभिक्वेव धारयन्। अभयं प्रसादं क्षतिः जूलं खट्वाड्यमीक्षरः 🛭 दक्षे: करैवांमकेश्व भुजंगं चाक्षसूत्रकम्। डमस्कं नोलोरपलं बोजपूरकमुत्तमम्॥ (२३।५४–५६)

सर्पों एवं अन्य विषैले जीव-जन्तुओंके विषको दूर करनेका मन्त्र

जनुओंके काटनेसे कष्ट पहुँचानेवाले विषको दूर करनेमें है तथा तुम शुक्रमुण्डा हो और कानोंमें शहकु पहनी हुई

फणिविधिणि विरधनारायणि उमे दह दह हस्ते चण्डे का हतन कर। सब प्रकारके विधाका नाश करनेवाली हे रीद्रे माहेश्वरि महामुखि ज्वालामुखि शङ्कुकर्णि शुक्रमुण्डे देवि। मेरे सर्वाङ्गमें फैले हुए विषको प्रभावहीन कर शत्रुं हन हन सर्वनाशिति स्वेदय सर्वाङ्गरोणितं त्रिपोक्षसि दे। उस विषको तुम देख रही हो। [उस काटनेवालं जन्तुको] मनसा देवि सम्मोहय सम्मोहय रुद्रस्य हृदये जाता रुद्रस्य सम्मोहित करो. सम्मोहित करो। हे देवि! तुम मेरी रक्षा करो, हृदये स्थिता। कड़ी रीड्रेण क्रपेण त्वं देवि रक्ष रक्ष मां रक्ष करो। इस प्रकार प्रार्थना एवं चिन्तन करके 'हे मां हं हं मां हुं फफफ ठठ स्कन्दमेखनावालग्रहशबुविषहारी ॐ शाले माले हर हर वियोक्काररहिविषवेगे हां हां शवरि हूं शवरि आकौलवेगेशे सर्वे विवयेषमाले सर्वनागादिविषहरणम्।'

इस मन्त्रका प्रयोग करते समय माहेश्वरी उपादेवीसे प्रार्थना करे कि है उमे! तुम रुद्रके हृदयमें उत्पन्न हुई हो और उसीमें रहती हो। तुम्हारा रीड़ रूप है। तुम्हें रौद्रो भी कहा जाता है। तुम्हारा मुख ज्वालाके समान जाम्बल्बमान है तथा तुमने अपने कटिप्रदेतमें श्रुद घण्टिका लगी करधनी पहन रखी है। तुम भूतोंकी प्रिय हो.

सुतजीने कहा-अब मैं सर्पादि विभिन्न विषेले जीव- सर्पोंके लिये विषरूपिणी हो, तुम्हारा नाम विरथनारायणी समर्थ मन्त्रको कह रहा है, जो इस प्रकार है— हो। हे विशाल मुखवाली, भयंकर एवं प्रचण्ड स्वभाववाली '३६ कणिधिकीणिकक्वाणी चर्वाणी भूतहारिणि चण्डादेवी! हार्योमें ज्वलन-राक्ति पैदा कर, रातुका हनन फफफ ठठ इसका उच्चारण करे तथा 'स्कन्दकी मेखलारूपी बालग्रहों, लघुओं और विषोंका हरण करनेवाली हे शाला-माला ! नाना प्रकारके विधाक वेगका हरण कर, हरण कर ।" ऐसा उच्चारण करे और 'हां हां शक्ति हूं' शवरि कहकर वेगपूर्ण गतिशीलोंमें अतिगतिशील सर्वत्र व्यापिनी मेपमालारूपिणो देवि। मेरे सभी नागादि वियजनुओंसे उत्पन्न विषका हरण करो।

इस प्रकार चिन्तन और प्रार्थना करते हुए रोगीके प्रति स्पर्शादि करते हुए मन्त्रपाठ करे।]

(अध्याय २७)

श्रीगोपालजीकी पूजा, त्रैलोक्यमोहन-मन्त्र तथा श्रीधर-पूजनविधि

प्रदान करनेवाली श्रीगोपालजी तथा भगवान श्रीधर विष्णुको जान तथा वैराग्यकी अग्नि आदि कोणोंमें पूजा करे। पुजाका वर्णन कर रहा है इसे सुनें। पूजा प्रारम्भ करनेशे वायव्य-कोणके साथ उत्तर दिशामें प्रकाशात्मक एवं पहले पूजा-मण्डलके द्वारदेशमें गङ्गा और यमुनाके साथ ऐश्वयंकी पूजा करे। 'गोपीजनबल्लभाय स्वाहा'-यह धाता और विधाताकी, श्रीके साथ शङ्क, पद्मनिधि एवं शार्क्रधनुष और शरभकी पूजा करनी चाहिये तथा पूर्व दिशामें भद्र और सुभद्रकी, दक्षिण दिशामें चण्ड और प्रचण्डकी, पश्चिम दिशामें बल और प्रबलकी, उत्तर दिशामें जय और विजयको तथा चारों दरवाजोंपर श्री, गण, दुर्गा और सरस्वतीको पूजा करनी चाहिये।

मण्डलके अग्नि आदि कोणोंमें और दिशाओंमें परम करे। पूर्व दिशामें विष्णु, विष्णुतपा तथा विष्णुतकिकी अर्चना करे। इसके बाद विष्णुके परिवारकी अर्चना करे।

श्रीसूतजीने कहा —हे ऋषियो। मैं भोग और मोध मण्डलके मध्यमें शक्तिकी और कूर्म, अनन्त, पृथ्वी, धर्म, गोपालमन्त्र है। मण्डलको पूर्व दिशासे आरम्भ करके क्रमण्ञ: आठों दिशाओंमें जाम्बवती और सुशीलाके साथ रुक्तियां, सरुवभागा, सुनन्दा, नाग्रजिती, लक्ष्मणा और मित्रविन्दाकी पूजा करनी चाहिये।

साथ ही बीगोपालके शहु, चक्र, गदा, पदा, मुसल, खङ्क, पारा, अङ्करा, श्रीवत्स, कौस्तुभ, मुकुट, वनमाला, इन्हादि ध्वजवाहक दिक्याल, कुमुदादिगण और विष्यक्सेनका भागवत नारद, सिद्ध तथा गुरुका एवं नल-कूबरका पूजन पूजन करके श्रीलक्ष्मोसहित कृष्णकी भी अर्चना करनी चाहिये।

गोपीजनवल्लभके मन्त्र जपनेसे तथा उनका ध्यान

करनेसे एवं उनकी (साङ्गोपाङ्ग) पूजा करनेसे साधक सभी कामनाओंको पूर्ण कर लेता है।

त्रैलोक्यमोहन श्रीधरके मन्त्र इस प्रकार है-

'ॐ श्री (श्री:) श्रीधराय त्रैलोक्यमोइनाय नम:। क्ली पुरुषोत्तमाय प्रैलोक्यमोहनाय नमः। ॐ विष्णवे त्रैलोक्यमोहनाय नमः। ॐ श्री द्वीं क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय विकासे नमः।

—ये मन्त्र समस्त प्रयोजनीको पूर्ण करनेवाले हैं। श्रीसृतजी पुनः खोले—अब मैं श्रीधर भगवान् (विच्यु)-की मङ्गलमयी पूजाका वर्जन करता है।

साधकको सर्वप्रथम 'ॐ आं हदयाय नमः, ॐ औ शिरसे स्वाहा, ॐ धूं शिखाये वषद, ॐ झें कवचाय हुम, ॐ भ्री नेत्रप्रयाय वीषट्, ॐ भ्रः अस्वाय फट्'—इन मन्त्रीसे अङ्गन्यास और करन्यास करना चाहिये। तदनन्तर भगवान्को शङ्ख, चक्र, गदास्वरूपिणी मुद्रा प्रदर्शितकर शङ्ख, चक्र तथा गदा-पदासे सुशोभित आत्पस्यरूप बीधर भगवान् पुरुषोत्तमका ध्यान करना चाहिये। तत्पक्षात् स्वस्तिक या सर्वतोभद्र-मण्डलमें श्रीधरदेवकी पूजा करनी चाहिये।

सर्वप्रथम शाङ्गधनुष धारण करनेवाले देवाधिदेव धगवान् विष्णुके आसनको पूजा करनी चाहिये।

'ॐ श्रीधरासनदेवता आगच्छत' इस मन्त्रसे आवाहन करके 'ॐ समस्तपरिवारायास्युतासनाय नमः', 'ॐ धाप्रे नमः', 'ॐ विधाने नमः', 'ॐ गङ्गायै नमः', 'ॐ यमुनायै नमः', 'ॐ आधारशक्तये नमः', 'ॐ कूर्माय नमः', ' ॐ अनन्ताय नमः ', 'ॐ पृथिव्यं नमः', 'ॐ धर्माय नमः', 'ॐ ज्ञानाय नमः', 'ॐ वैराग्याय नमः', 'ॐ ऐश्वर्याय नमः', '३० अधर्माय नमः', '३० अज्ञानाय नमः', 'ॐ अवैराग्याय नमः', 'ॐ अनैश्वर्याय नमः', 'ॐ कन्दाय नमः,''ॐ नालाय नमः', 'ॐ पद्माय नमः', 'ॐ विमलार्थ नमः,' 'ॐ उत्कर्षिण्ये नमः', 'ॐ ज्ञानायै नमः', 'ॐ क्रियाये नपः', 'ॐ योगाये नयः', 'ॐ प्रदूर्व नयः', 'ॐ सत्याये नमः', 'ॐ ईशानाये नमः', 'ॐ अनुग्रहाये नमः - इन मन्त्रोंसे ब्रीधरके आसनका पूजन करके (हे रुद्र!) पूर्वोक्त धाता, विधाता, गङ्गा आदि देवोंकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर हरिका आवाहन करके पूजन करे। उसके बाद 'ॐ हीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नय:

आगच्छ।'- इस मन्त्रसे श्रीधरदेवका आवाहन तथा पूजन करना चाहिये।

इस पूजाके पक्षात् 'ॐ क्रियै नमः'-इस मन्त्रसे लक्ष्मीका पूजन करना चाहिये। 'ॐ झां हृदयाय नमः' 'ॐ ऑ ज़िस्से नम:', 'ॐ ध्रं ज़िखाये नम:,' 'ॐ औ कवचाय नम: ', 'ॐ औं नेत्रत्रयाय नम:', 'ॐ अ: अस्त्राय नमः', 'ॐ शङ्काय नमः', 'ॐ पद्माय नमः', 'ॐ चकाय नमः ', 'ॐ यदायै नमः ', 'ॐ श्रीवत्साय नमः ', 'ॐ कीस्तुश्रय नयः', 'ॐ वनमालाये नमः', 'ॐ पीताम्बराय नमः,' 'ॐ इहाणे नयः', 'ॐ नारदाय नयः', 'ॐ गुरुश्यो नमः', 'ॐ इन्हाय नमः', 'ॐ आनये नमः', 'ॐ यमाय नमः', 'ॐ निर्कृतये नमः', 'ॐ वरुणाय नमः', 'ॐ वायवे नमः', 'ॐ सोमाय नमः', 'ॐ ईशानाय नमः', 'ॐ अनन्ताय नमः', 'ॐ ब्रह्मणे नमः', 'ॐ सत्त्वाय नमः', 'ॐ रजसे नमः ', 'ॐ तयसे नषः', 'ॐ विष्यवसेनाय नमः '—इत्यादि मन्त्रोसे चडङ्ग-पास, अस्त्र-पूजा तथा उक्त देव-परिवारकी पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर सपरिकर भगवान् विष्णुका अभिषेक करके वस्व, वज्ञोपलीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैबेद्य निवेदित करके प्रदक्षिणा करें। मूल मन्त्रका जप १०८ बार करे और किया हुआ जप अभीष्ट देव भगवान् श्रीधरको समर्पित

तत्पक्षात् विद्वान् साधकको चाहिये कि मुहूर्तभर अपने इटयदेशमें स्थित विशुद्ध स्फटिक मणिके समान कान्तिमान्, करोड़ों सूर्यके सदश प्रभावाले, प्रसन्नमुख, सौम्य मुद्रावाले, चमबमाते हुए धबल-मकराकृति-कुण्डलॉसे मुत्रोभित, सिरपर मुक्टको धारण किये हुए, शुभलक्षणसम्पन्न अङ्गाँवाले तथा वनमालासे अलंकृत परब्रह्मस्वरूप श्रीधरदेवका ध्यान करे।

उसके बाद इन स्तोत्रोंसे भगवान्की स्तुति करनी वाहिये—

श्रीनिवासाय देवाय नमः श्रीपतये नमः। श्रीप्रदाय श्रीधराय संशाङ्गीय नमः ॥ श्रीवल्लभाय शान्ताय श्रीमते नमः। श्रीपर्वतनिवासाय

श्रेयसां यतये चैव द्वाश्रयाय नपो नमः। नमः श्रेयःस्वलपाय श्रीकराय नमो नमः॥ शरण्याय वरेण्याय नमो भूयो नमो नमः। स्तोत्रं कृत्वा नमस्कृत्य देवदेवं विसर्जयेत्॥ इति रुद्र समाख्याता पुत्रा विष्णोर्महात्पनः। यः करोति महाभक्त्या स याति परमं पदम्॥ (\$01 14-14)

हे देव। आप लक्ष्मीनिवास और श्रीपति हैं, आपको मेरा नमस्कार है। आप ब्रीधर हैं, शार्द्रपाणि हैं एवं साधकको लक्ष्मी प्रदान करनेवाले हैं. आपको मेरा नमस्कार है। आप ही बीवल्लभ, शान्तिस्वरूप तथा ऐश्वर्यसम्पन्न देव हैं, आपको मेरा प्रणाम है।

आप श्रीपर्वतपर निवास करनेवाले हैं, समस्त मङ्गलेकि स्वामी, सर्वकल्याणकर्ता तथा सर्वमङ्गलाधार है, उतपको मेरा बार-बार नमस्कार है। आप कल्याण और ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले हैं, आपको भेरा नमन है। आप जारव देनेवाले तथा सर्वश्रेष्ठ हैं, आपको बारम्बार प्रणाम है।

इस प्रकार देवाधिदेव त्रोधर भगवान विष्णुका स्तवन और नमन करके उनका विसर्जन करना चाहिये। भक्तिपूर्वक इस पुजाको करनेवाला परमपदको प्राप्त करता है। जो विष्णुपुजाको प्रकाशित करनेवाले इस अध्यायका गठ करता है, वह इस लोकमें समस्त पापोंसे मुक्त होका अन्तमें विष्णुके परमपदको प्राप्त करता है।

रुद्रने कहा-हे प्रभो। हे जगत्के स्वामी! पुन: उस प्रकारकी पूजा-विधिको बतानेकी कृपा करें, जिसके द्वारा इस अत्यन्त दुस्तर भवसागरको पार किया जा सकता है।

श्रीहरि बोले-हे वृषभध्वज। मैं विष्णुदेवके पूजन-विधानको कह रहा हैं। हे महाभाग! उस भोग और मोश्रको देनेवाले कल्याणकारी पूजनके विषयमें सुने।

हे रुद्र! सर्वप्रथम मनुष्यको स्नान करना चाहिये। तदनन्तर संध्यासे निवृत्त होकर यज्ञमण्डपमें प्रवेश करना चाहिये। हाथ-पैरका प्रश्नालनकर विधिवत् आचमन करके न्यासविधिके अनुसार दोनों हाधेंकि द्वारा व्यापक रूपमें मुलमन्त्रका करन्यास करना चाहिये। हे हद्र! उन विष्णु-देवके मूलमन्त्रको कह रहा है, आप सुने-

'ॐ श्री ही श्रीधराय विकासे नमः।'

- वह मन्त्र देवाधिदेव परमेश्वर विष्णुका वाचक है। यह समस्त रोगोंको हरण करनेवाला तथा सभी ग्रहोंका तमनकर्ता है। यह सर्वपापविनाशक और भूकि-मुक्ति प्रदायक है।

साधकको इन मन्त्रोंके द्वारा अङ्गन्यास करना चाहिये-'ॐ हां इदवाच नमः, ॐ हीं जिरसे स्वाहा, ॐ हुं जिलाचे वबट्, ॐ हैं कवचाय हुम्, ॐ हीं नेप्रप्रयाय वीपट्, क्षेत्र अस्ताय फद्।'

आत्मसंयमी साधकको चाहिये कि वह अङ्गन्यास करके आत्ममुद्रा प्रदर्शित करे। तदनन्तर हृदयगुहामें विराजमान तङ्क-चक्रसे युक्त, कुन्द-पुष्प और चन्द्रमाके समान शुध कान्तिवाले, बीवत्स और कौस्तुभमणिसे समन्वित, वनमाला तथा रकहार धारण किये हुए परमेश्वर भगवान विष्णुका ध्यान करे।

तदनन्तर 'विष्णुमण्डलमें अवस्थित होनेवाले आप सभी देवगणों, पार्षदों तथा शक्तियोंका मैं आवाहन करता हैं, यहाँपर आप सब पधारें - ऐसा कहकर-

'ॐ सपस्तपरिवारायाच्युताय नमः, ॐ धात्रे नमः, के विचाने नय:, उर्क गहाये नय:, उर्क वयुनाये नय:, 🕉 श्रह्मनिधये नमः, 🕉 यद्यनिधये नमः, 🕉 चण्डाय नमः, ॐ प्रसण्डाय नमः, ॐ हारश्रिये नमः, ॐ आधारशसस्यै नम:, ॐ कुर्माय नम:, ॐ अननाय नम:, ॐ श्रिये नम:, डें धर्मांच नमः, डें ज्ञानाच नमः, डें वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वयांच नमः, ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अवैराग्याय नयः, ॐ अनैश्वर्याय नमः, ॐ सं सत्त्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः, ॐ कं कन्दाय नमः, ॐ नं नालाय नमः, ॐ लां पद्माय नमः, ॐ अं अर्कमण्डलाय नमः, ॐ सों सोयमण्डलाय नमः, ॐ वं बह्रिमण्डलाय नमः, ॐ विपलायै नमः, ॐ उत्कर्षिण्यै नमः, ॐ ब्रानायै नयः, ॐ क्रियायै नयः, ॐ योगायै नयः, ॐ प्रदूरी नमः, ॐ सत्यायै नमः, ॐ ईशानायै नमः, 🕉 अनुप्रहायै नम:-- इन नाममन्त्रोंसे गन्ध-पृष्पादि उपचारोंके द्वारा धाता, विधाता, गङ्गा, यमुना आदि देवताओंका नमस्कारपूर्वक पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर हे रुद्र! सृष्टि तथा संहार करनेवाले, सभी पापोंको दूर करनेवाले परमेश्वर भगवान् विष्णुका मण्डलमें आवाहन करके इस विधिसे उनका पूजन करना चाहिये।

जिस प्रकार सर्वप्रथम अपने शरीरमें न्यास किया जाता है, उसी प्रकार प्रतिमामें भी सर्वप्रथम न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् मुद्राका प्रदर्शनकर अर्घ्य-पाद्यादि उपचारीको अर्पण करना चाहिये। उसके बाद स्नान, वस्त्र, आचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्यरूपमें चरु अर्पित करके उन देवकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। तदनन्तर उनके मन्त्रका जप करके इस जप-पूजनको उन्हें ही समर्पित कर देना चाहिये।

हे वृषभध्यज! उन श्रीधरदेवकी पूजा उनके पूल मन्त्रसे करनी चाहिये। है त्रिनेत्र। इस समय मैं उन मन्त्रोंको भी कह रहा है, जिनसे न्यास तथा विष्णुके परिवार, टिग्टेवता और आयुध आदिकी पूजा करनी चाहिये। उन्हें आप सुर्ने—

30 हां हृदयाय नमः, 30 हीं शिरसे नमः, 30 हूं शिखाये नयः, ३० हैं कराशाय नमः, ३० ही नेत्रत्रयाय नमः, ३० हः अस्त्राय नमः, ॐ क्रिये नमः, ॐ झड्डाय नमः, ॐ प्रचाय नमः, ३७ सकाय नमः, ३७ गदायै नमः, ॐ श्रीवत्साय नमः, ॐ कौरतुभाव नयः, ॐ वनवालाचै नयः, ॐ पीताम्बराव नमः, ॐ खङ्गाय नमः, ॐ मुसलाय नमः, ॐ पालाय नमः, ॐ अङ्कराय नमः, ॐ शाङ्गीय नमः, ॐ शराय नमः. ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ नारदाय नमः, ॐ पूर्वसिद्धेभ्यो नमः, ॐ भागवतेभ्यो नमः, ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ इन्हाय सुराधिपतये सवाहनपरिवासय नमः, 🕉 अग्रये तेजोऽधिपतये सवाहनपरिवाराच नमः, 🌤 चमाच प्रेताधिपतये सवाहनपरिवाराय नयः, ॐ निर्म्हतये रक्षोऽधिपतये 🕉 वरुणाय जलाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, वायवे प्राणाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, सवाहनपरिवाराय नमः, सोपाय नश्चत्रधिपतये ईशानाय विद्याधिपतये सवाहनपरिवाराय अननाय नागाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ब्रह्मणे लोकाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ वजाय हुं फट् नमः, ॐ ज्ञक्ती हूं फद नमः, ॐ दण्डाय हूं फट् नमः, ॐ खड्डाय हुं फर् नम:, ॐ पाशाय हुं फद् नम:, ॐ व्यजाय हुं फट् नम:, ॐ गदाये हुं फर् नमः, ॐ त्रिशृलाय हुं फर् नमः, ॐ चक्राय हुं फट् नमः, ॐ पराय हुं फट् नमः, तथा ॐ वाँ विष्वक्सेनाय

हे महादेव! इस प्रकार इन मन्त्रोंसे अधिकारी मनुष्योंको चाहिये कि वे विष्णुके विधिन्न अङ्गोंको पूजा करें, तदननार ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका पूजन करके इस स्तुतिसे उन अविनाती परमात्म प्रभुका स्तवन करें-

विष्यवे देवदेवाय नमो वै प्रथविष्यवे॥ विष्णवे वासुदेवाय नमः स्थितिकराय सः। ग्रसिकावे नमश्चेव नमः प्रलबशायिने॥ देवानां प्रभवे चैव यज्ञानां प्रभवे नमः। मुनीनां प्रभवे नित्यं यक्षाणां प्रभविष्णवे॥ जियावे सर्वदेवानां सर्वगाय महात्मने। बहोन्हरूबन्द्राय सर्वेशाय नमी नमः॥ सर्वलोकहिनार्थाय लोकाध्यक्षाय वै नमः। सर्वगोध्वे सर्वकरें सर्वदृष्टविनाशिने॥ करप्रदाय ज्ञान्ताय करेण्याय नमी नयः। क्राज्याच मुक्तवाय धर्मकामार्थदायिने॥

(34158-56)

देवाधिदेव, तेबोमृति भगवान् विष्णुदेवके लिये नमस्कार है। संसारको स्थिति (पालन) करनेवाले वासुदेव विष्णुके लियं नमन है। प्रलयके समय संसारको अपने मूल कारण प्रकृतिमें लॉन करके आत्मसात्कर शयन करनेवाले विष्णुको प्रणाम है। देवोंके अधिपति तथा यहाँके अधिपति विष्णुको नमन है। मुनियों तथा यक्षोंक प्रभु और समस्त देवोंपर विजय प्राप्त करनेवाले, सबमें व्याप्त रहनेवाले, महात्मा, ब्रह्मा, इन्द्र-स्टादिके बन्दनीय सर्वेश्वर भगवान् विष्णुके निये नमस्कार है।

समस्त लोकोंका कल्याण करनेवाले. लोकाध्यक्ष, सर्वणीता, सर्वकर्ता तथा समस्त दुष्टोंके विनाशक भगवान् विष्णुके लिये नमन है। वर प्रदान करनेवाले, परम शान्त, सर्वे ब्रेष्ट, जरणागतकी रक्षा करनेवाले, सुन्दर रूपवाले, धर्म-काम तथा अर्थ—इस त्रिवर्गके प्रदाता भगवान् विष्णुके लिये बार-बार प्रणाम है।

हे शङ्कर। इस प्रकार ब्रह्मस्वरूप, अव्यय, परात्पर भगवान् विष्णुको स्तुति करके अपने हृदयमें उनका ध्यान करना चाहिये। तत्पक्षात् मूल मन्त्रसे उन विष्णुकी पूजा करनी चाहिये और मूल मन्त्रका जप करना चाहिये। जो पूजाविधिको कहा है। हे शहूर! जो विद्वान पुरुष इसका अधिकारी व्यक्ति ऐसा करता है, वह भगवान विष्णुको पाठ करता है, वह विष्णुभक्त हो जाता है। इसे जो सुनता प्राप्त कर लेता है। हे रुद्र! इस प्रकार मैंने आपसे इस है अथवा सुनाता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। रहस्यपुर्ण, परम गृह्य, भृक्ति-मृक्तिप्रद और उत्तम विष्णुकी

(अध्याय २८-३१)

पञ्चतत्त्वार्चन-विधि

महेश्वरने कहा-हे शङ्क-चक्र-गदाधा! आप पञ्चतत्त्वोंकी उस पूजा-विधिको मुझे बतानेकी कपा करें, जिसका जान प्राप्त कर लेनेमात्रसे ही मनुष्य परमध्दको प्राप्त कर लेता है।

श्रीहरिने कहां —हे सुवत शिव! मैं आपसे पञ्चतत्व-पुजा-विधिको कह रहा है, यह दिख्य, मङ्गलस्वरूप, कल्याणकारी, रहस्यपूर्ण, श्रेष्ठ तथा अभीच्टोंकी सिद्धि करनेवाली है। हे महादेव! ऐसे उस परम पवित्र कलिदोध-विनाशक पुजन-विधिका आप त्रवण करें।

हे सदाशिव। एक ही परमात्या जो वास्टेव बीहरि हैं, ये ही अविनाशी, शान्त, सनातन, सत्-स्वरूप है। ये धूच (नित्य, अचल), शुद्ध, सर्वव्याप्त तथा निरञ्जन हैं। ये हां विष्णुदेव अपनी मायाके प्रभावसे पाँच प्रकारमे अवस्थित है। से जगतका कल्याण करनेवाले हैं। ये ही अद्वितीय विष्ण् वासदेव, संकर्षण (बलराम), प्रदाप, अनिरुद्ध रुख नारायणस्वरूपसे पाँच रूपों (तत्वों)-में स्थित हैं।

हे व्यथ्यज। जनार्दन विष्णुके उक्त प्रक्रश्रोंके वाचक मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ अं वास्ट्रेवाय नमः, ॐ आं संकर्षणाय नमः, ॐ अं प्रमुखाय नम:, ३० अ: अनिरुद्धाय नम:, ३० ३० नारायणाय नमः।

- ये पाँच मन्त्र उक्त पाँच देवताओंके वाचक हैं, जो सभी पातक, महापातकीके विनाशक, पुण्यजनक तथा समस्त रोगोंको दूर करनेवाले हैं। अब मैं आपसे मङ्गलमय पञ्चतत्त्वार्चन-विधिको कह रहा है। हे शिव। उसको जिस विधिसे और जिन मन्त्रोंके द्वारा सम्पन्न करना चाहिये. तसका आप श्रवण करें।

— इन पाँच देवोंकी पुजामें सर्वप्रथम स्नान करके विधिवत संध्या करनी चाहिये। तदनन्तर हाथ-पैर धोकर पुजा-गृहमें प्रवेश करके विद्वान साधकको चाहिये कि वह आचमन करके मनोऽनुकुल आसन लगाकर बैठ जाय और-'अं श्रॉ रम्'-इन मन्त्रोंसे जोषणादि क्रिया करे।

वे वासुरेव कृष्ण जगत्के स्वामी, पीतवर्णके कौशेय (रेशमी) बस्त्रोंसे विभूषित, सहस्रों सूर्यकी किरणोंके समान तेज:स्वरूप तथा देदीध्यमान मकराकृति-कृण्डलॉसे मुलोभित हैं, ऐसे उन भगवान कृष्णका अपने हृदय-कमलमें ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर भगवान् संकर्पणका ध्यान करे। उसके बाद यथाक्रम प्रदास, अनिरुद्ध तथा श्रीमत्रारायमके स्वरूपका ध्यान करके उन देवाधिदेवसे प्रदर्भत इन्हादि देवाँका ध्यान करके मूल मन्त्रके हारा दोनों हाचौंसे व्यापक रूपमें करन्यास करे, तत्पक्षात् अङ्गन्यासके मन्त्रोंसे अङ्गन्यास करे। हे महादेव! सुवत! उन न्यास एवं पुजाके मन्त्र इस प्रकार है-

'ॐ आं हट्याय नमः, ॐ ई शिरसे नमः, ॐ ऊं शिखाये नव:, ॐ ऍ कवचाय नव:, ॐ औ नेपत्रवाय नम:, ॐ अ: अस्त्राय फट्, ॐ समस्तपरिवारायाच्युताय नमः, डेंक धाडे नय:, डेंक विधाने नम:, डेंक आधारशक्ती नम:, ॐ कुर्माय नमः, ॐ अननाय नमः, ॐ पृथिकी नमः, ३० धर्माय नमः, ३० ज्ञानाय नमः, ३० वैशाखाय नमः, ॐ प्रेक्षपाय नमः, ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अनेश्वयांच नमः, ॐ अं अर्कमण्डलाच नमः, ॐ सों सोमपण्डलाय नमः, ॐ वं वद्विषण्डलाय नमः, ॐ वं दासदेवाय पाषद्वाणे जिवाय तेजोरूपाय स्पापिने मर्वदेवाधिदेवाय नमः, ॐ पाञ्चजन्याय नमः, ॐ सुदर्शनाय नय:, ॐ गटायै नम:, ॐ पद्याय नम:, ॐ ब्रियै नम:, ॐ द्विषे नमः, ॐ पृष्टी नमः, ॐ गीत्मै नमः, ॐ शक्तये नमः, ॐ प्रीत्ये नय:, ॐ इन्हाय नय:, ॐ अग्रये नय:, ॐ यमाय नमः, ॐ निर्म्नतये नमः, ॐ वहणाय नमः, ॐ वायवे नमः, ॐ सोमाय नमः, ॐ ईंशानाय नमः, ॐ अननाय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ विष्यवसेनाय नमः।'

तत्परचात् 'ॐ पद्माय नमः' ऐसा कहकर स्वस्तिक और सर्वतोभद्रादि मण्डलॉका निर्माण करके उस मण्डलमें इन्हों मन्त्रोंसे देवोंका पूजन करना चाहिये।

मुल मन्त्रसे पाद्य आदिका निवेदन करके स्नान, वस्त्र,

आचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य प्रदान करके. आदि तथा अन्तसे रहित सनातन प्रभुको बारम्बार नमस्कार नमस्कार तथा प्रदक्षिणा करनी चाहिये। हे शक्रूर! उसके है। सृष्टि और संहारकर्ता, ब्रह्मांके भी स्वामी तथा शक्क, चक्र, बाद यथाशक्ति मूल मन्त्रका जपकर उसे प्रभुको समर्पित कर दे।

तदननार भगवान् वासुदेवका स्मरणकर इस स्तोत्रका पाठ करे-

🕉 नमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय प्रयुष्नायादिदेवायानिरुद्धाय नमः । नमो नारायणायैव नराणां पतये नमः ॥ नापुन्वाय कीत्यांय स्तुत्याय वादाय व। अनादिनिधनायैव पुराणाय नय: ॥ सृष्टिसंहारकर्त्र बह्यणः नमः। वेदवंदाय शहुचक्रमराय नपो सरशाय नमः । संसारवृक्षकात्रेत्रे च मायाचेत्रे नयो तमः ॥ बहुरूपाय तीर्वाय त्रिगुणावागुणाय ब्रह्मविव्यवीशरूपाय मोश्रदाय नमी मोक्षद्वाराय धर्माय निर्वाणाय नमो परब्रह्मसम्बद्धपिणे ॥ सर्वकामप्रदायेव संसारसागरे धोरे नियानं यां समुद्धर। त्वदन्यों नास्ति देवेश नास्ति पाता जगत्वभी।। न्तामेस सर्वमं विष्णुं गतोऽहं शरणं ततः। तमामुक ज्ञानदीयप्रदानेन (32130-36)

'हे तास्देव! हे संकर्षण (बलराम)! आपको नमस्कार है। हे प्रद्मप्, आदिदेव, अनिरुद्ध! आपके लिये नमस्कार है। हे नारायण । नराधिपति ! आपको नमन है, कॉर्तन करने योग्य, मनुष्योंसे पूजनीय, स्तुति करने योग्य, वर देनेवाले, होता है। (अध्याय ३२)

सुदर्शनचक्र-पूजा-विधि

विषयमें मुझे बतार्थ, जिसे करनेसे ग्रहदांव और रोगादि— भगवान् विष्णुदेवका आवाहन करके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप सभी कष्ट विनष्ट हो जाते हैं।

करे। हं महादेव! उसके बाद मण्डलमें शङ्क, चक्र, गदा करनेवाले इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये-

गदाभारी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। नमस्कार है।'

कलिकालके दोषोंको नष्ट करनेवाले, देवोंके ईश। आपको बारम्बार प्रणाम है। सम्पूर्ण जगत्-रूपी मूल वृक्षका छेदन करनेवाले, मायाका भेदन करनेवाले, बहुत-से रूपोंको धारण करनेवाले, तीर्थस्वरूप, सत्त्व, रजस् तथा तमीरूप एवं वस्तुत: निर्मुण तथा ब्रह्म, विष्णु और शिव-- इन तीन रूपोंमें अवस्थित रहनेवाले मोधदायक भगवान् विष्णु परमेश्वरको नयस्कार है। मोखके द्वारभूत, धर्मस्करूप, निर्वाणरूप, समस्त अभीष्टोंको प्रदान करनेवाले परब्रह्मस्वरूप आपके लिये बार-बार नमस्कार है। इस गहन संसारसागरमें मैं डूब रहा हैं, आप मेरा उद्धार करें। हे देवदेवेश्वर! हे जगत्के स्वामी! आपके अतिरिक्त मेरा कोई भी रक्षक नहीं है। सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले हे भगवान् विष्णु । मैं आपको शरणमें है। हे भगवन्। ज्ञानरूपी दोपकको प्रन्यलितकर मेरे (अज्ञानरूपी) अन्धकारको दूर करके मुझे प्रकाशित कर दें।

इस प्रकार समस्त कच्टोंको दूर करनेवाले देवेश भगवान् वासुदेवको स्तुति करके हे नीललोहित ज्ञिव। अन्य वैदिक स्तोत्र-पाठोंसे भी स्तृति करके पश्चतत्त्वीसे युक्त उन धगवान् विष्णुका अपने हृदयमें ध्यान करे। इसके माद विसर्जन करना चाहिये। इस प्रकार हे शङ्कर। सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाली वासुदेवकी श्रेष्ठ पूजा कहो गर्बो। इस पूजाके करनेमात्रसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।

हे रुद्र। जो व्यक्ति इस पष्टतत्त्वार्चनको पदता है, सुनता है अचवा दूसरोंको सुनाता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त

रुद्रने कहा —हे शङ्क-गदाधर ! उस सुदर्शनको पूजाके तथा पद्य धारण करनेवाले, सौम्य आकृतिवाले, किरीटी आदि विविध उपचारोंसे पूजा करे।

श्रीहरिने कहा —हे वृषभध्यज ! सुदर्शनचक्रकी पूजा- पूजाके अन्तमें मूल मन्त्रका १०८ बार जप करे। विधिको मैं कह रहा हैं, आप सुने। सर्वप्रथम स्नान करके हे रुद्र! जो इस प्रकार सुदर्शनचक्रका उत्तम पूजन करता हरिका पूजन करे। साधकको चाहिये कि अपने निर्मल एवं है, वह इस लोकमें समस्त रोगोंसे विमुक्त होकर विष्णुलोकको गुभ हृदय-कमलमें भगवान् सुदर्शनदेव विष्णुका ध्यान प्राप्त करता है। मन्त्र-जपके पक्षात् सभी व्याधियोंको विनष्ट

सुदर्शनायैव सहस्रादित्यवर्वसे ॥ ञ्चालामालाप्रदीप्ताय सहस्राराय बश्चुचे। सर्वदुष्टविनाशाय सर्वपातकमर्दिने ॥ विचकाय सर्वमन्त्रविभेदिने। सुचकाय प्रसिवत्रे जगद्धात्रे जगद्विध्वंसिने नमः॥ पालनार्थाय लोकानां दुष्टासुर्ववनाशिने। उग्राय चैव सीम्याय चण्डाय च नमी नम: ॥ नमश्चस्यक्षपाय संसारभयभेदिने। मायापञ्चरभेत्रे च शिवाय च नमो नमः॥ ग्रहातिग्रहरूपाय ग्रहाणां पत्रये नमः। कालाय मृत्यवे चैंब भीमाय च नमो नमः॥ भक्तानुग्रहदात्रे च भक्तगोष्ये नमो नमः। विष्णुरूपाय शान्ताय खायुधानां धराय ज॥ विष्णुशस्त्राय चकाय नमो भूयो नमो नमः। इति स्तोत्रं महत्पुण्यं चक्रम्य तव कीर्तितम्॥ षः पठेत् परमा भक्तमा विष्णुलोकं स गन्छति। चक्रपुनाविधि यश्च पठेद्रह जिलेन्द्रियः। स पापं भस्मसात्कृत्वा विष्णुलोकाय कल्पते॥

अरे (चक्रके अवयव)-वाले, नेत्रस्वरूप, सर्वदुष्टविनाशक तथा सभी प्रकारके पापोंको नष्ट करनेवाले आपको नमन है। सुचक्र तथा विचक्र नामधारी, सम्पूर्ण मन्त्रका भेदन करनेवाले, जगत्को सृष्टि करनेवाले, पालन-पोपण करनेवाले एवं जगत्का संहार करनेवाले हे सुदर्शनचक्र! आपको ननस्कार है। (संस्मरको रक्षा करनेके लिये) देवताओंका कल्याण करनेवाले, दुष्ट राक्षसोंका विनाश करनेवाले, दुष्टोंका संहार करनेके लिये उग्र-स्वरूप एवं प्रचण्ड-स्वरूप और सज्जनोंके लिये सौम्य-स्वरूप धारण करनेवाले आपको बारम्बार नमस्कार है। जगत्के लिये नेत्रस्वरूप संसारभयको काटनेवाले माबारूपी पिंजडेका भेदन करनेवाले, कल्याणकारी सुदर्शनचक्रको नमस्कार है। ग्रह एवं अतिग्रहस्वरूप, ग्रहपति, कालस्वरूप, मृत्युस्वरूप, पापात्माओंक लिये महाभयंकर आपके लिये बार-बार नमन है। भक्तींपर कृपा करनेवाले, उनके अधिरक्षक, विष्णुस्वरूप, शानस्वधाय, सनस्त आयुर्धोकी शक्तिको अपनेमें धारणकर स्थित रहनेवाले विष्णुके तस्वभूत हे सुदर्शनचक्र। आपके लिये बारम्बार नमस्कार है।

(\$\$ 10-16) सहसीं सूर्यके समान तेत्र:सन्पन्न सुदर्शनवक्रके लिये नमस्कार है। तेजस्वी किरणोंकी मालाओंसे प्रदीत हजारी

हे शहूर। सुदर्शनचक्रके इस महत्युण्यशाली स्तोत्रका जो मनुष्य परम भतिसे पाठ करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय ३३)

भगवान् हयग्रीवके पूजनकी विधि

रुद्रने कहा-हे हपीकेश। हे गदाधर! आप पुन: देवार्चनविधिको बतायें। आपके द्वारा बार-बार देव-पुजनविधिको सुनकर भी मुझे तुप्ति नहीं हो रही है। श्रीहरिने कहा है हद्र! अब मैं हवग्रीय नामके देवके पूजनविधानको कहता है, आप सुने। उसके करनेसे जगत्के स्वामी भगवान् विष्णु अत्यना संतुष्ट हो जायेँगे। हे शङ्कर! उस पूजनका मूल मन्त्र हयग्रीवदेवका ही वाचक है। वह परम पुण्यशाली मन्त्र इस प्रकार है— 'ॐ सीं क्षीं शिरसे नमः' यह प्रणव-युक्त मन्त्र सभी

प्रकारकी विद्याओंको प्रदान करनेवाला है।

कान्यास करना चाहिये।

हे शङ्कर। वे हयग्रीव देव शङ्क, कुन्दपुष्प, चन्द्रके सदृत श्रेववर्ण, कमलनालतन्तु और रजतथातुको कान्तिके समान देहकान्तिको धारण करनेवाले, गौके दुग्धकी भाँति और करोड़ों सूर्योंके सदृश प्रतिभासित होनेवाले, शहु, चक्र, गदा तथा पद्मको धारण किये हुए चार भुजावाले हैं। वे सर्वव्यापी देवता मुकुट, कुण्डल, वनमालासे सुशोधित, सुदर्शनवक्रसे युक्त, सुन्दर-सुन्दर कपोलोंवाले, पीताम्बरको धारण किये हुए हैं। सभी देवोंसे युक्त उन विराट्देवकी अपनेमें भावना करके अङ्गमन्त्रोंसे तथा मूल मन्त्रसे न्यास 'ॐ क्षां हृदयाय नमः, ॐ क्षीं शिरसे स्वाहा, ॐ क्ष्रं करना चाहिये। इसके पक्षात् मूल मन्त्रसे ही शङ्क, पदादिकी शिखायै वषद, ॐ क्षें कववाय हुम्, ॐ क्षें नेत्रत्रयाय मङ्गलमयी मुद्राएँ प्रदर्शित करनी चाहिये। हे शङ्कर! इस बौषद्, ॐ हः अस्त्राय फर्— इन मन्त्रोंसे अङ्गन्यास और प्रकार मुद्राएँ दिखा करके मूल मन्त्रसे विष्णुका ध्यान करके अर्चा करनी चाहिये।

हे रद! इसके बाद हयग्रीवके आसनके सॅनिकट अवस्थित रहनेवाले जो अन्य देव हैं, उनका आवाहन करना चाहिये। यथा-

'ॐ हयग्रीवासनस्य आगच्छतः च देवताः।'

 इस प्रकार आवाहन करके स्वस्तिक या सर्वतोभद्र-मण्डलके अन्तर्गत उन देवोंका पूजन करके द्वारपर धाता और विधाताकी पूजा सम्पन्न करनी चाहिये।

हे वृषध्यज्ञ! 'समस्तपरिवाराय अच्युताय नमः'-इस मन्त्रसे मण्डलके मध्यमें भगवान् विष्णुका पूजन करके द्वारपर गङ्गा, महादेवी तथा शङ्ख एवं पद नामक निधिकी पूजा करके अग्रभागमें गरुड तथा मध्यभागमें आधार नामवाली शक्तिकी पूजा करनी चाहिये।

हे महादेव। तदननार कूर्म, अनन्त एवं पृथ्वीका पूजन करे और अग्निकोणमें धर्म, नैर्जनयकोणमें ज्ञान, वायुकोणमें वैराग्य तथा ईशानकोणमें ऐश्वर्यका पूजन करना चाहिये। इसके बाद पूर्व दिशामें अधर्म, दक्षिण दिशामें अज्ञान, पश्चिम दिशामें अवैराग्य तथा उत्तर दिशामें अनैश्चर्यका भी पूजन करना चाहिये। इसके बाद मण्डलके मध्यमें सस्य, रजस् तथा तमस्- इन तीन गुणोंको पूजा करके मध्यधागमें ही कन्द्र नाल और पद्मकी विधियत् पूजा करे। तदननार मध्यदेशमें अर्क, स्रोम और अग्निमण्डलका पूजन करना चाहिये।

हे वृषध्यज! विमला, उत्कर्षिणी, जाना, क्रिया, योगा, प्रह्मी, सत्या, ईशाना तथा अनुग्रहा नामक ये शक्तियाँ हैं पूर्वादि दिशाओंमें - पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तरमें अवस्थित पदापत्रोंपर यथाक्रम, 'ॐ विमलायै नमः', 'ॐ उल्कर्षिणयै नमः', 'ॐ ज्ञानायै नमः', 'ॐ क्रियायै नमः', 'ॐ योगायै नमः' इत्यादि मन्त्रोंसे विमलादि शक्तियोंका पूजन करना चाहिये। कल्याणकामी व्यक्तिको चाहिये कि वे अनुग्रहा नामक शक्तिको पूजा पद्मको कर्णिकामें 'ॐ अनुग्रहायै नमः' इस मन्त्रसे करें।

इस विधिसे स्नान, गान्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य समर्पण करके देवके आसनका मङ्गलमय पूजन करना चाहिये। इस पूजाके पश्चात् देवाधिदेव भगवान् हयग्रीवदेवका मण्डलमें आवाहन करना चाहिये। आवाहन करके समाहित होकर

उनका न्यास भी करना चाहिये। न्यास करनेके पक्षात् देवों और असुरोंसे नमस्कृत देवाधिदेव परमेश्वर भगवान् हयग्रीवका पुन: ध्यान करना चाहिये और ज्ञाङ्घ-चक्रादि मङ्गलमयी मुद्राएँ प्रदर्शित करनी चाहिये। उसके बाद पाद्य, अर्घ्य, आचमन तथा स्तान प्रदान करे। है वृषध्वज! उन्हें वस्त्र प्रदान करनेके बाद आवमन प्रदानकर उनको सुन्दर यज्ञोपबीत समर्पित करना चाहिये और उन्हें पाद्य, अर्घ्य आदि प्रदान करना चाहिये। अनन्तर मृल मन्त्रसे भैरवदेवको पाद्यादि प्रदान करते हुए उनका विधिवत् पूजन करना वाहिये।

है किव! इसके बाद शुभदायिनी तथा ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली परमादेवी लक्ष्मीकी पूजा करे। पूर्व दिशार्म 'ॐ लङ्काय नमः' कहकर शङ्कका, दक्षिण दिशामें 'ॐ वदाव दमः' कहकर पद्मका, पश्चिम दिशामें 'ॐ ककाय नमः 'से चक्रका तथा उत्तर दिशामें 'ॐ गदायै नमः' से गदाका यथाक्रम पूजन करे।

इसी प्रकार पुन: पूर्व दिशामें 'ॐ खड़ाय नम:' से खड़, दक्षिण दिशामें 'ॐ मुसलाच नव:'से मुसल, पश्चिम दिशामें 'ॐ पाशाय नयः' से पाश, उत्तर दिशामें 🌣 अंकुशाय नमः' से अंकुश तथा मध्यमें 'ॐ सशराय धनुषे नमः' कहकर शरयुक्त धनुषकी पूजा करनी चाहिये।

है रद्र! पुन: पूर्व आदि चार दिशाओं में श्रीवत्स, कीस्तुभ, बनमाला और मङ्गलमय पीताम्बरको पूजा करके पुन: शहु: चक्र, गदाधारी धगवान् हयग्रीवकी पूजा करे। तदनना 'ॐ ब्रह्मणे नमः' से ब्रह्मा, 'ॐ नारदाय

नमः 'से नारद, 'ॐ सिद्धाय नमः' से सिद्ध, 'ॐ गुरुभ्यो त्रयः' से गुरु, 'ॐ घरयुरुभ्यो नयः' से परगुरु और 'ॐ गुरुपादुकाध्यां नमः' से गुरुपादुकाकी पूजा करे।

तत्पक्षात् 'ॐ सवाहनाय सपरिवासय इन्द्राय नमः', 'ॐ सवाहनाय सपरिवाराय अग्रये नमः', 'ॐ यमाय नमः', 'ॐ निर्ऋतये नमः', 'ॐ वरुणाय नमः', 'ॐ वायवे नमः', 'ॐ सोघाय नयः', 'ॐ ईशानाय नमः', 'ॐ अननाय नमः', 'ॐ बह्मणे नमः'— इन मन्त्रोंसे पूर्व आदि दिशाओंसे कर्विदिशाययंना इन्द्र, अग्रि आदि सभी दिग्-देवताओंकी पूजा करनी चाहिये।

इसके बाद 'ॐ वडाय नमः', 'ॐ शक्तये नमः', 'ॐ दण्डाय नमः', 'ॐ खडाय नमः', 'ॐ खडाय नमः', 'ॐ पाशाय नमः', 'ॐ खजाय नमः', 'ॐ वकाय नमः', 'ॐ पदाय नमः'—इन मन्त्रोंसे वड. शक्ति आदि आय्धाँको पूजा करे।

तत्पश्चात् ईशानकोणमें 'ॐ विश्वक्सेनाय नमः' इस मन्त्रसे विष्यवसेनकी पूजा करे। इसी प्रकार अनन्तको भी पूजा करे। हे वृषभध्यज! भगवान् हयग्रोकके मूल मन्त्रसे गन्ध, पुष्प, भूण, दीप तथा नैवेशके द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् उन (देव हयग्रीव)-की प्रदक्षिणा करके नमस्कार करे और यथाशकि मूल मन्त्रका जपकर उन्हें समर्पित कर दे। तदनन्तर देवेश्वर भगवान् हयग्रीवकी इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये—

३० तमो हयशिरसे विद्याध्यक्षाय वै तमः॥
तमो विद्यास्यरूपाय विद्यादात्रे तमो तमः॥
तमः शान्ताय देवाय त्रिगुणायात्वने तमः॥
सुरस्पुरतिहन्त्रे च सर्वदृष्टवित्रालिते।
सर्वलोकाधिपतये ब्रह्मक्रयाय वै तमः॥
तमक्षेत्रस्यत्वाय शङ्क्ष्यक्रथाय व।
तम आद्याय दान्ताय सर्वसन्त्वहिताय च॥

त्रिगुणायागुणायैव सहाविष्णुस्वरूपिणे। कर्त्रे हर्त्रे सुरेशाय सर्वगाय नमो नमः॥ (३४।५०–५४)

'सर्वविद्याधिपति, अश्वशिर भगवान्को नमस्कार है। विद्यास्वरूप, विद्याप्रदायक उन देवके लिये बार-बार नमन है। शान्तस्वरूप, त्रिगुणात्मक, सुर तथा असुरींका निग्नह करनेवाले, सभी दुष्टोंका विनाश करनेवाले, सर्वलोकाधिपति ब्रह्मस्वरूप उन देव हरग्रीवके लिये नमस्कार है। महेश्वरके लिये भी वन्दनीय, शङ्क-चक्रधारी, जगत्के आदि कारण, परम उदार तथा सभी प्राणियोंका हित करनेवाले देवके लिये नमस्कार है। त्रिगुणात्मक, त्रिगुणातीत, ब्रह्म-विष्णुस्वरूप, जगत्की सृष्टिके कर्ता, संहर्ता, देवेश्वर तथा सर्वव्यापक उन भगवान् हय्यीवको बारम्बार नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुति करके अपने हृदयकमलके मध्य राह्न, चक्र और गदाको धारण करनेवाले, करोड़ों सूर्योके समान कान्तिमान, सर्वाङ्गसुन्दर, अविनाशी महेश्वरके भी ईश, देवाधिदेव, परमाल्या हमग्रीवका ध्यान करना चाहिये।

हे जङ्कर। इस प्रकार मैंने भगवान् हयग्रीवकी पूजा-विधिका वर्णन किया। परम भक्तिपूर्वक जो इसका पाउ करता है, वह परमण्डको प्राप्त होता है। (अध्याप ३४)

गायत्रीन्यास तथा संध्या-विधि

श्रीहरिने कहा—है शहूर! अब मैं गायशेदेवोंके [पूजनमें] न्यासादिका वर्णन करूँगा, आप इसका क्षण करें। इस (गायजी-मन्त्र)-के ऋषि विश्वामित्र, देवता सर्विता, मस्तक ब्रह्मा और शिखा रह हैं। ये विष्णुके इदयमें रहनेवाली हैं। ये विनियोग-कालमें एकनेत्रा हैं। इनका प्रादुर्भाव कारपायन-गोत्रमें हुआ है, तीनों लोक इनके चरण हैं तथा ये पृथ्वीकी कोखमें स्थित रहती हैं। गायजीदेवींके स्वरूपको इस प्रकार जानकर [गायत्री-मन्त्रका] बारह लाख जप करना चाहिये।

इस मन्त्रके त्रिपाद तथा चतुष्पाद अर्थात् तीन चरण तथा चार चरण होते हैं। त्रिपादके प्रत्येक चरणमें आठ अक्षर तथा चतुष्पादके प्रत्येक चरणमें छ: अक्षर होते हैं। जपमें त्रिपदा और पूजनमें चतुष्पदा गायत्रीके मन्त्रका प्रयोग करनेके लिये कहा गया है⁵।

जप, ध्यान, यज्ञादि कृत्य एवं पूजनके कार्योमें नित्य इस सर्वपापविनाशिनी गायत्रीदेवीका विधिवत् अपने अङ्गोमें न्यास करना चाहिये।

रैरके अंगुष्ट-भागमें, गुल्फेके मध्यमें, दोनों जंघाओं, दोनों जानुंओं, ऊर्क-भाग, गुद्धास्थान, अण्डकोष, नाडी, नाभि हारीरके उदरभाग, दोनों स्तन, हृदय, कण्ठ, ओष्ठ, मुख, तालु, दोनों स्कन्धप्रदेश, दोनों नेत्र और भींहों तथा

१-जिस गायत्री-मन्त्रका जप किया जाता है, वह जिस्दा गायत्री कहसाती है। "प्रतिरजसेऽसावदोम्०" यह गायत्रीका चतुर्थ पाद है। इस चतुष्पदा गायत्रीका प्रयोग सूर्योपस्थान, पूजन आदिमें होता है। २-गुल्फ (पैरको चुट्टी) चौंबोंकी चौंठें। ३- जानु (मुरना)। ४- करू—पुरनेके जपरका भाग।

सं ग० प० अं० ३-

मस्तकमें इस (गायत्रो)-मन्त्रका न्यास करके क्रमश पूर्व, दक्षिण, उत्तर तथा पश्चिम दिशामें इनका न्यास करना चाहिये।

हे रुद्र! इन गायत्रीदेवीके मन्त्रके वर्णी (संगी)-को कह रहा हूँ। क्रमश: इसके (चीबीस) अक्षर इन्द्रनोलमणि, अग्निसद्श, पीत, श्याम, कपिलवर्ण, श्रेत, जिपुत्प्रभ, मौक्तिकवर्ण, कृष्ण, रक्त, स्थाम, शुक्ल, पाँत, श्रेत, पदारागतुल्य, शङ्खवर्ण, पाण्डुर, रक्त, आसवके समान रक्तकृष्णमित्रित, सूर्यसदृश, सौम्य, श्वेत, शङ्ककी आधाके समान तथा श्रेत है।

गायत्रोदेवीके मन्त्रका जप करके मनुष्य जिन-जिन चस्तुओंका हाथसे स्पर्श करता है और नेत्रोंसे जिनका-जिनका अवलोकन करता है, ये सभी पवित्र हो जाते हैं। गायत्रोसे श्रेष्ठ कोई दूसरा मन्त्र नहीं है, ऐसा समझना चाहिये—

> यद्यस्पृशति हस्तेन यच्य पश्यति घशुणा। पूर्त भवति तत् सर्वं गायत्र्या न परं विदुः ।

> > (341 12)

श्रीहरिने पुनः कहा—हे रुद्र! अस पार्पायनाशिना संध्याकी विधिका वर्णन कर रहा है। उसे आप सुनें। तीन बार प्राणायाम करके संध्या कानका उपक्रम करे। प्राणवायुको संयतकर प्रणयमन्त्र (ॐकार) तथा सन्त व्याइतिसे युक्त गायत्री-मन्त्रका (आपो न्योतीरसोऽमृतं भूभूव: स्वरोम्) इस

गायत्रो सिरके साथ तीन बार उच्चारण करनेको प्राणायाम कहते हैं। द्विज प्राणायामोंके द्वारा मानसिक, वाचिक तथा कायिक दोषोंको भस्म कर लेता है। इसीलिये यथाविधि यथानियत सभी कालोंमें प्राणायामपरायण होना चाहिये।

प्रात: 'सूर्यक्षo' इस मन्त्रके द्वारा, मध्याहर्षे 'आप: पुननु॰ इस मन्त्रसे तथा सार्यकाल 'अग्रिश मा मन्युश्र॰' इस मन्त्रके द्वारा यथाविधि आचमन करके प्रणव-मन्त्रसे युक्त 'आयौ हि॰'इस ऋचासे कुशोदकके द्वारा मार्जन करते हुए प्रत्येक पद्यर जल सिरपर खिड्के।

रजोगुणसे उत्पन्न होनेवाले पाप, तमोगुण और अज्ञानवन्य पाप, जाग्रत्, स्वप्न और सुयुजिकी स्थितिमें होनेवाले पाप तचा कायिक, वाचिक एवं मानसिक- ये नवीं पाप इन नौ मन्त्रीसे (मार्जनद्वारा) भस्म हो जाते हैं-

रजस्तम:स्वमोहोत्वान् जाग्रतस्यजसुष्टिजान्। वाइमनःकर्मजान् दोषान् नवैतान् नवभिदेहेत्॥ (2176)

दाहिने हाथमें जल लेकर उसे 'हुपदा०' मन्त्रके द्वारा अधिमन्त्रितकर सिरपर छोड़ दे। अधमर्पण मन्त्रकी तीन, छ:, आड अथवा बारह आवृत्ति करके अध्मर्पण करे।

तत्पक्षात् 'उद् त्यं०'तथा 'चित्रं'- इन मन्त्रोसे सूर्योपस्थान करना चाहिये। इससे दिन तथा रात्रिमें किये गये समस्त पाप उसी धन नष्ट हो जाते हैं।

१-संध्यासे संध्यकाल लेना है। यह काल प्रात: स्वयं एवं मध्याहमें आता है।

३-सूर्यक्ष मा मन्युक्ष सन्युक्तपक्ष सन्युकुतेभ्यः पायेभ्यो सक्ष्तन्त्रम् । यदान्या पायमकार्यं सनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यापुदीण शिश्ना राष्ट्रिस्तदवसुष्यतु । विकास दुरितं मधि इदमहमापीऽमृतकोनी सूर्वे ज्योतिष जुडोमि स्वादाः (तै०का० प्र० १०, अ० २५)

४-३० आपः पुरस्तु पृथिवी पृथ्यो पूता पुरस्तु माम्। पुरस्तु ब्रहानस्पतिब्रह्मपूता पुरस्तु माम्। बदुव्विष्टमधीत्र्यं च यहा दुशरितं मध। सर्व पुरानु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहः स्वाहा। (तै०आ० प्र० १०, ४० २३)

५-५५ अधिक्ष मा मन्द्रक मन्युक्तरक मन्युकृतेष्यः पारेश्यो रक्षत्राच् । यदहा पारयकार्य मनमा बाचा हस्ताध्यां पद्श्यापुदरेण जिल्ला अहस्तदयसुम्पतु। यतिकञ्च दुरितं यथि इदयहमायोऽमृतयोगी सत्यं न्यांतिषि जुहोति स्वाहा (तै०आ० ४० १०, अ० २४)

६-आपो हि प्रा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दश्यतन। यहे राणाय यक्षमे ॥ यो ष: शिवतयो रसस्तस्य भावयतेह न:। उशतीरिक मातर:॥ तस्मा आरं गमाम तो यस्य क्षयाय जिन्तक। आयो जनग्रका च न: ० (यजु० ११ । ५०-५२)

७-४३ द्रपदादिय मुमुचानः त्रिकाः स्राप्ते मलादियः। पूर्व पवित्रेषेत्रान्यसायः शुन्धनु पैनसः॥ (यनु० २०। २०)

८-ऋतं च सस्यं चाभोद्धात्तपमांऽध्यनायतः।ततो राष्ट्रकायतः।ततः समुद्रो आर्थवः। समुद्राद्वर्णवादधि संवरसरो अजायतः।आहोराजणि विदर्धद्विसस्य मियतो वज्ञी। सूर्याचन्द्रमसी धाना यथापूर्वमकल्पयम्। दिवं च पृथिवी कान्तरिक्षमधो स्व:। (क्रावेद १०। १९०। १)

९-४% डदु त्यं जातचेदमं देशं वहन्ति केतव:। दुशे विश्वाय मुर्पर म्वाहा ((यकु० ७१ ४१)

१०-३५ चित्रं देवानामुदगादनोकं वशुमित्रस्य वस्त्रास्थाने:। आजः व्याकपृथिको अन्तरिश्वः सूर्य आत्या जगतस्तरशुपश्च स्वाहा॥

१-यहाँ संध्याका प्रकारण प्राणायाससे प्रारम्भ किया गया है. याँनु प्राणायाससे पूर्व संध्योपासनमें यालाधारण, पवित्रोकरण, क्रिसाबन्धन, भागभारण आदि करनेका विधान है। तत्थक्षत् आचमन, मार्जन, भूमिहोधनके जननार संकरण करके '**ऋतञ्च०**' इस मन्त्रसे आचमन करना चाहिये। तदननार गायत्री-मन्त्रसे दिग्रशण करनेके परचात् विनिधोगपूर्वक प्राणावाम कानेको विधि है। यूरी संध्वीचामनविधि जाननेके लिये गीताप्रेसरे प्रकाशित 'नित्यकर्म-पुजापकाक' ग्रन्थ देखना चाहिये।

प्रात:कालकी संध्या खड़ा होकर तथा मध्याह एवं सायंकालको संध्या बैठकर करनी चाहिये। प्रणव (ॐकार) और महाव्याइतियों अर्थात् 'भू:, भूव:, स्व:' से संयुक्त करके गायत्री-मन्त्रका दस बार जप करनेसे इस जन्मके पाप, सौ बार जप करनेपर पूर्वजन्मके पाप तथा हजार बार गायत्रीका जप करनेसे तीन युगोंके पाप नष्ट हो जाते हैं-

दशिधर्जन्मजनितं शतेन तु पुरा कृतम्। त्रियुगं तु सहस्त्रेण गायत्री हन्ति दुष्कृतम्॥ (35.1 1+)

प्रात:कालमें गायत्री रक्तवर्णा, मध्याइकालमें सावित्री शुक्लवर्णा और सायंकालमें सरस्वती कृष्णवर्णा कही गयो हैं।' गायत्री-मन्त्रकी प्रथम व्याहति 'भू:'का 'ॐ भू हदयाय नमः'से हदयमें, द्वितीय व्याइति 'भूवः'का 'ॐ भुव: शिरसे स्वाहा'से सिरमें तथा तृतीय व्याहति 'स्व:'का 'ॐ स्व: शिखायै वषट्'से शिखायें न्यास करे। गायत्री-मन्त्रके प्रथम पाद (तत्सवितुर्वरेण्यं) का कवचमें, द्वितीय पाद (भर्गी देवस्य धीमहि) का नेत्रोंमें तथा तृतीय पाद (धियो यो नः प्रचोदयात्)-का आलमें और चतुर्व पाट (परोरजसेऽसावदोम्)-का सर्वाङ्गमें न्यास करे । संध्याओंके समय इस कथित विधिसे न्यास करके बेदमाता गायत्रीका जप करनेवालेका सब प्रकारसे कल्याण होता है। प्राणायामके अनन्तर सभी अङ्गॉमें न्यास करे।

त्रिपदा गायत्री ब्रह्मा-विष्णु और शिवस्वरूपा है। इसके ऋषि, छन्द और विनियोगको भलीभौति जानकर जप करना चाहिये। ऐसा करनेसे साधक सभी पापोंसे विमुक्त होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है।

'परोरजसेऽसाबदोप्' यह गायत्रीका तुरीय पाद कहा जाता है। जो व्यक्ति संध्योपासन नहीं करता है, उसको सुर्यदेव विनष्ट कर देते हैं। तुरीय पादके ऋषि निर्मल तथा छन्द गायत्री एवं देवता परमात्मा है।

जो मनुष्य योग और मोधको प्रदान करनेवाली परमञ्जेष्टा देवी गापचीका जप करता है, उसके महान्-से-महान् पाप नष्ट हो जाते हैं।

प्रात: मध्याङ एवं सार्थ—इन तीनों संध्याओंमें १००८ या १०८ बार गायडी-मन्त्रका जप करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मलोक वानेका अधिकारी हो जाता है।

(अध्याय ३५—३७)

देवी दुर्गाका स्वरूप, सूर्य-ध्यान तथा माहेश्वरीपूजन-विधि

श्रीहरिने कहा —हे रुद्र। नवमी आदि तिधियोंमें 'ॐ हीं दुगें रक्षिणि ं—इस मन्त्रसं देखी दुर्गाका पूजन करना चाहिये। मार्गशीर्थ (अगहन)-मासकी तृतीया तिथिसे आरम्भ करके नामक्रमके अनुसार गौरी, काली, उमा, दुर्गा, भद्रा, कान्ति, सरस्वती, मङ्गला, विजया, लक्ष्मी, जिया और नारायणी-रूपमें उन देवीका पूजन करनेवाले अधिकृत मनुष्यका इष्ट (प्रियजनों या प्रिय वस्तुओं)-से वियोग नहीं होता।

दुर्गादेवीके अद्वारह हाथ हैं। उन हाथोंमें खंटक', यण्टा, दर्पण, तर्जनी-मुद्रा, धनुष, ध्वज, डमरू, परतु, पात, शन्हि, मुद्रर, शूल, कपाल, शरक (बाण), अंकुश, यत्र, चक्र और शलाका—ये सभी सुशोधित रहते हैं। इनसे सुसाँजत दन अष्टादशभुजा देवीका स्मरण करना चाहिये।

अट्टाईस भुजावाली या अट्टारह भुजावाली अथवा बारह

भुजावाली या आठ भुजा अथवा चार भुजावाली दुर्गादेवीका भी भ्यान करना चाहिये। बहिषासुरका वध करनेवाली वे देवी सिंहपर विराजमान रहती हैं।

वासुदेवने कहा —हे रुद्र! सूर्याचनमें भगवान् सूर्यका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये-

वे भगवान् सूर्यं तेज:स्वरूप, रक्त वर्णवाले, श्रेत पद्मपर विराजमान, एक चक्रवाले रथपर समासीन, दो भुजाओंसे युक्त तथा कमल धारण करनेवाले हैं। इस रूपमें उनका सदैव ध्यान करना चाहिये।

ब्रीहरिने पुन: कहा —हे वृषध्वज! (अब) में माहेश्वरी-पुजाका वर्णन कर रहा है, उसे सुनो-पहले सान तथा आचमन कर ले। इसके बाद आसनपर बैठकर न्यास करके मण्डलमें महेश्वरकी पूजा करे। हे महेशान! हरकी

१-गायमी, सावित्री एवं सरस्वती—ये गायमीके हो तीन स्वकर हैं।

२-खेटक—'खेटति भयमुत्पादयति अनेन इति खेटक:' इस ब्युत्पत्तिके अनुसार भय उत्पन्न करनेवाली यष्टि (दण्ड विशेष)-को खेटक या खेट कहते हैं। यह देवीके हाथमें रहता है-

गारिक्षेण खेर लगरिसंहास्कारकः। देवीहरूनीस्वती नित्यं सन रक्षां कुरुख च । (शारदीव दुर्गापूजापद्वति, अस्त्र-पूजा-प्रकाण)

पूजा परिवारके साथ करे। हे रुद्र! 'ॐ हां ज़िलासनदेवता आगच्छत-इस मन्त्रसे आसनके देवताओंका आवाहन करे। मण्डलके मुख्य द्वारपर स्नान, गन्ध आदिद्वारा 'ॐ हां गणपतये नमः ' मन्त्रसे गणपतिकी, 'ॐ हां सरस्वत्यै नमः' मन्त्रसे सरस्वतीको, 'ॐ हां चन्दिने चयः' मन्त्रसे नन्दीको, 'ॐ हां पहाकालाय नमः' मन्त्रसे महाकालको, 'ॐ हां गङ्खार्थं नमः ' मन्त्रसे गङ्खाकी, 'ॐ हां लक्ष्म्यं नमः' मन्त्रसे लक्ष्मोकी, 'ॐ हां महाकलाये नमः' मन्त्रसे महाकलाकी तथा 'ॐ हां अस्वाय नय:' मन्त्रसे अस्वकी पूजा करे।

इसी प्रकार 'ॐ हो ब्रह्मणे बासवधिपतये नयः' से वास्त्वधिपतिकी, 'ॐ हां बुकभ्यो नमः' से गुरुकी, 'ॐ हां आधारशक्त्यै नमः ' से आधारत्रक्तिकी, 'ॐ हां अननाय नम: ' से अनन्तकी, 'ॐ हां धर्माय नम:' से धर्मकी, 'ॐ हां ज्ञानाय नमः' से ज्ञानकी, 'ॐ हां वैशान्वाय नमः' से वैराग्यकी, 'ॐ हां ऐश्वयांय नमः' से ऐश्वर्यकी, 'ॐ हां अधर्माच नमः' से अधर्मकी, 'ॐ हां अज्ञानाय नमः' से अज्ञानकी, 'अंक हां अवैशाखाय नय:' से अवैशायकी, 'ॐ हां अनेश्वर्याय नयः'से अनेश्वर्यकी, 'ॐ हां उद्याज्यान्द्राय नमः' से ऊद्ध्यंच्छन्दको, 'ॐ हां अध्ययन्यय नयः' से अधरहन्दकी, 'ॐ हां पदाय नमः' से पपकी, 'ॐ हां कर्णिकापै नम:' से कणिकाको, 'ॐ हां वामायै नम:' से वामाको, 'ॐ हां ज्येष्टाचै चय:'से ज्येष्टाको, 'ॐ हां रीहरी नमः ' से रौद्रोकी, 'ॐ हां काल्पै नमः' से कालीकी, 'ॐ हां कलविकरण्यै नमः' से कलविकाणीकी, 'ॐ हां बलप्रपश्चिन्यै नमः 'से बलप्रमधिनीकी, 'ॐ हां सर्वभृतदयन्यै नमः' से सर्वभूतदमनीकी, 'ॐ हां पनोन्यन्य नमः' से मनोन्मनीकी, 'ॐ हां मण्डलडितपाय नयः'से मण्डलडितयकी, 'ॐ हां हाँ हं शिवपूर्तये नम:' से शिवपूर्तिको, 'ॐ हां विद्याधिपतये नमः' से विद्याधिपतिको और 'ॐ हां ही ही शिवाय नमः' से शिवकी पूजा करे।

अननार 'ॐ हां हृदयाय नमः' से हृदयकी, 'ॐ हीं शिरसे नम: 'से सिरकी, 'ॐ हं शिखाये नम: 'से शिखाकी, '30 हैं कवचाय नय:' से कवचकी, '30 ही नेत्रत्रवाय नमः' से नेत्रत्रयको, 'ॐ हः अस्वाय नमः' से अस्वकी और 'ॐ हां सद्योजाताय नमः' से सद्योजातको पूजा करे।

सद्योजातको आठ कलाएँ जाननी चाहिए, जो पूर्व आदि दिशाओंमें स्थित हैं। उनकी पूजा [गन्ध आदिसे] इस प्रकार करनी चाहिये- 'ॐ हां सिद्ध्ये नम:' से सिद्धिकी, 'ॐ हां ऋड्ये नमः' से ऋदिकी, 'ॐ हां विद्युताये नयः' -से विद्युताकी, 'ॐ हां लक्ष्म्ये नमः'से लक्ष्मीकी, 'ॐ हां बोधार्य नमः' से बोधाकी, 'ॐ हां काल्य नमः' से कालोको, 'ॐ हां स्वधायै नम:' से स्वधाको और 'ॐ हां प्रभाषे नवः' से प्रभाकी अर्थना करनी चाहिये।

हे वृषध्यज । बामदेवकी तेरह कलाएँ जाननी चाहिये, उनको भी पूजा गन्ध-पूष्प आदिसे करनी चाहिये। उनकी प्जामें पहले 'ॐ हां वामदेवाय नमः' कहकर वामदेवकी पुजा करनेके बाद उनकी कलाओंका पुजन करना चाहिये। जैसे- 'डें हां रजसे नय:' से रजसकी, 'डें हां रक्षाये वय: ' में रक्षाकों, 'ॐ हां रखें वम: ' से रतिकों, 'ॐ हां कत्याचे नयः' से कत्याकी, 'ॐ हां कामार्थ नयः' से कापाको, 'ॐ हां जननी नमः' से जननीकी, 'ॐ हां कियार्थ नमः 'से क्रियाको, ' ३० हा बुद्धरे नमः 'से बुद्धिकी, 'अं हां कार्यांचे नमः' से कार्यांकी, 'ॐ हां रा (धा)-प्र्य नमः 'से रा (था)-ति (त्री)-की, 'ॐ हां भाषण्ये नमः 'से धामणीकी, 'ॐ हां मोहिन्दै नमः' से मोहिनीकी और 'ॐ इर्ष क्ष (ला) सर्व नमः' से क्ष (ला)-सकी अर्चना करनी चाहिये।

हे बुबच्चज ! तत्पुरुपकी चार कलाएँ हैं। पहले 'ॐ हां तापुरुषाच नमः 'इस मन्त्रद्वार ततपुरुषको पूजा करे। तदनन्तर 'ॐ हां निवृत्ये नय: 'से निवत्तिकी, 'ॐ हां प्रतिष्ठाये नय: 'से प्रतिहाकी, 'ॐ हां विद्यापै नय:' से विद्याकी और 'ॐ हां हान्ये नमः' से ज्ञान्तिकी पूजा करनी चाहिये।

अधोरकी चैरव-सम्बन्धी छ: कलाएँ जाननी चाहिये। इनकी पुजामें पहले '30 हां अधोराय नमः' मन्त्रहारा अधोरकी पूजा करनेके पक्षात 'ॐ हां उमार्थ नमः' से उमाकी, 'ॐ हां समायै नम:' से क्षमाकी, 'ॐ हां निहायै नवः' से निद्राकी, 'ॐ हां ख्याध्ये नमः' से व्याधिकी, 'ॐ हां शुधाचे तम: 'से शुधाकी तथा 'ॐ हां तृष्णायै नम:'-से तृष्णाको पुजा करनी चाहिये।

हे वृषभध्वज! ईशानदेवको पाँच कलाएँ हैं, इनकी

पुजामें 'ॐ हां इंशानाय नमः' इस मन्त्रसे ईशानकी पुजा करनेके पश्चात 'ॐ हां समित्ये नमः' से समितिको 'ॐ हां अड़राये नमः' से अड़दाकी, 'ॐ हां कच्चाये नमः'से कृष्णाकी, 'ॐ हां मरीच्ये नमः'से मरीचिकी और 'ॐ हां ज्वालाये नयः' से ज्वालाकी पूजा करे।

तदनन्तर हे शङ्कर! 'ॐ हां शिवधरिवारेश्यो नमः' से शिवपरिवारका, 'ॐ हां इन्तरच सुराधिपतचे नमः'से सुराधिपति इन्द्रका, 'ॐ हां अग्नये तेजोऽधिपतये नमः' से तेजोऽधिपति अग्निका, 'ॐ हां यमाय प्रेताधिपतये नमः' से प्रेताधिपति यमका, '३५ हां निर्मातये रक्षोऽधियनये नमः' से रखोऽधियति निर्ऋतिका, 'ॐ हां चरुणाय जलाधियतये तमः' से जलाधियति वरुणका, 'ॐ हां वायवे प्राणाधिपतये नयः' से प्रानाधिपति वायका, 'ॐ हां सोमाय नेत्राधिपतये नमः' से नेत्राधिपति सोमका, 'ॐ हां ईशानाय सर्वविद्याधियतये नयः' से सर्वविद्याधिपति ईशानका, 'ॐ हां अननाय नागाधियतये नमः 'से नागाधिपति अनन्तकः, ' ३६० हां स्वरूपो सर्वालेक्याधिपनपे नमः 'से सर्वलोकाधिपति ब्रह्मका और 'ॐ हां धृतिचण्डेश्वराय नमः' से धृतिचण्डेश्वरका आवाहन, स्थापन, संनिधान, सॅनिरोध तथा सकलीकरण करना चाहिये।

तदननार तत्त्व-न्यास करके महा दिखानी चाहिये तथा ध्यान करना चाहिये। इसके बाद पादा, आचमन, अध्यं, पृष्य, अध्यक्ष, उद्गर्तन और स्नान तथा स्गन्धानुलेपन, वस्व, अलंकार, भोग, अङ्गन्यास, भूप, दीप, नैवेद्य-अर्पन, करोटुर्तन, पाद, अर्घ्य, आचमन, गन्ध एवं ताम्ब्रल निवंदन करनेके बाद गीत, वाद्य, नृत्यसे महेश्वरको संतुष्टकर छत्र आदि समर्पित करना चाहिये। मुद्राका प्रदर्शन करके आवाहित देखके रूपका ध्यान, जप तथा तादारूय-भावसे मूलमन्त्रद्वारा जप और पूजाको समर्पित करे।

इस प्रकार विविध कामनाओंको सिद्धिके लिये विश्वावस् गुन्धर्व तदा देवो कालरात्रि आदिको उपासना करनी वाहिये। (अध्याय ३८-४१)

शिवके पवित्रारोपणकी विधि

भगवान् जिसके पवित्रारोपणके पूजा-विधानको कह रहा पत्रास अधका पत्रीस तन्तु होने चाहिये। ये क्रमशः उत्तम, हैं। यह पूजा आचार, श्रावण, माथ या भाइपद मासमें होती है। पवित्रारोपणकी इस पुजामें पवित्रक (जनेक) बनानेके लिये सत्पपुग आदिके भेदसे सूत्र-भारणका नियम है। जैसे- सत्पयुगमें सुवर्णके, त्रेतामें रजतके, द्वापरमें तासके और कलियुगमें कन्याके हाथसे बनाये गये कपासके सुप्र (स्त)-को ग्रहण करना चाहिये। सूत्रको लेकर पहले उसे तिगुना करके पुन: उसका तिगुना करना चाहिये। इस प्रकार नवगुणित सुत्रसे पवित्रकका निर्माण करके वापटेवमन्त्रसे उसमें ग्रन्थ देनी चाहिये। तदनन्तर हे शिव! सद्योजातमन्त्रसे उसका प्रशासन करके अधोरमन्त्रसे उसका शोधन करना चाहिये। तत्पुरुषमन्त्रसे उसमें बन्धन तथा ईज्ञानमन्त्रसे तन्तुदेवताओंको सुगन्धित धूप दिखाना चाहिये।

तन्तुओंमें क्रमशः- ॐकार, चन्द्र, अग्नि, ब्रह्मा, नाग, शिखिध्यज, सूर्य, विष्णु और शिवका वास है-ये नी

श्रीहरिने कहा—हे महादेव। अमङ्गलका नाज करनेवाले तन्तुके देवता है। हे रूद् ! उस पवित्रकमें एक सौ आठ या मध्यम तथा कनिष्ठ हैं। यवित्रकमें दस ग्रन्थिका मान है। अतएव प्रत्येक चार अंगुल या दो अंगुल अथवा एक अंगुलका अन्तर देकर एक-एक ग्रन्थिका बन्धन देना चाहिये। हे सदाहिया। उन ग्रन्थियोंके नाम इस प्रकार हैं-प्रकृति, पौरुषी, बीरा, अपराजिता, जया, विजया, रुद्रा, अजिता, मनोन्मनी तथा सर्वमुखी।

> हे जित्र। ग्रन्थिबन्धनके पश्चात् उस पवित्रकको कुंक्म, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थीसे रिक्रत करना चाहिये। उस गन्धान्यञ्चल पवित्रकको देवको समर्पित कर देना चाहिये। तदनन्तर यथाविधि सभी क्रियाओंको करके 'हे देवेज! हे महेश्वर। आप अपने गणींके साथ यहाँपर आमन्त्रित है। प्रात:काल यहींपर आपका पूजन करूँगा अत: आप यहाँपर उपस्थित रहें।'-इस प्रकार देवताको निमन्त्रित करे और गोत-वाद्यादिके द्वारा रात्रि-जागरण करे।

प्रात: उन आमन्त्रित पवित्रकोंको भगवान् महेश्वरके पास विद्यातत्त्वको पूजा करके आत्मतत्त्व और देवतत्त्वका पूजन स्थापित करके चतुर्दशी तिथिमें स्नान करे और सबसे पहले सूर्य तथा रुद्रको पूजा करे, तदनन्तर ललाटस्थ विश्वरूपका ध्यानकर अपने आत्मस्वरूपको पूजा करे।

तत्पशात् अस्त्रमन्त्रसे प्रोक्षित और इदयमन्त्रके द्वारा अर्पित तथा संहितामन्त्रोंसे धृपित पवित्रकोंको भगवानुको समर्पित करना चाहिये। सबसे पहले किवतत्त्व और स्वयं भी धारण करना चाहिये। (अध्याय ४२)

इन निर्धारित मन्त्रींसे करे-

'ॐ ही ही शिवनस्वाय नमः, ॐ हीं (ही:) विद्यातस्वाय नम:, अर्थ हां (ही:) आत्यतत्त्वाय नम:, अर्थ हां ही हूं भी

भगवान् महेश्वरको पवित्रक विधिपूर्वक निवेदितकर

विष्णुके पवित्रारोपणकी विधि

विष्णुके पवितारोपणका वर्णन करूँगा, जो भीग तथा मोख दोनोंको देनेवाला है। प्राचीन समयमें हो रहे देवासुर-संग्राममें [अपनी विजय न होते देखकर] ब्रह्मादि देवगण विष्णुकी शरणमें गये। उन सबकी प्रार्थना सुन करके विष्णुने विजय-प्राप्तिके लिये उन्हें अपने गलेका हार, पवित्र नामक ग्रैवेयक तथा एक ध्वज प्रदान किया और कहा कि इनों देखते ही दानव नष्ट हो जायैंगे। तभीसे उन पविश्वकोंकी पूजा आरम्भ हुई।

हे हर। प्रतिपदासे लेकर पौर्णमासीतक जिस देवताकी जो तिथि कही गयी है, उसके अनुसार हो उस तिथिये उन देवताओंका पवित्रारोपण करना चाहिये। हे शिव! सुक्त-पक्ष हो अथवा कृष्णपक्ष, द्वादशो तिथिमें विष्णुके लिये पवित्रारोपणका विधान है। व्यतीपातयोग, उत्तरायण, दक्षिणायन, चन्द्र तथा सूर्यप्रहण, विवाहादि मङ्गल एवं वृद्धि-कार्यो तथा गुरुजनके आगमन इत्यादि अवसरींपर यह पूजा करनी चाहिये। पवित्रकके उद्देश्यसे भी नित्य पूजन हो सकता है: किंतु वर्षाकालमें इसका पूजन आवश्यक है।

हे रुद्र! इन पश्चित्रकोंका निर्माण बर्णानुसार होना चाहिये, जैसे-- ब्राह्मणोंका पवित्रक कौशेय[े], कपास, क्षीम^{ें} अथवा कुशसूत्रसे निर्मित होना चाहिये। क्षत्रियोंका पनित्रक काशेयसूत्रसे, वैश्योंका श्रीमसूत्र तथा बल्कलसूत्रसे और

श्रीहरिने कहा — हे वृष्धध्वज ! अब मैं आपसे मुद्रोंका सनसे बना हुआ पवित्रक प्रशस्त माना गया है। कपास या पदाज (कमल)-से निर्मित पवित्रक समस्त वर्णीके लिये प्रशस्त है।

> ॐकार, शिव, चन्द्रमा, अग्नि, ब्रह्मा, शेष, सूर्य, गणेश और विष्णु — इन नौ देवताओंका इस पवित्रक्षके तन्तुओंमें निवास है।

> बह्म, विच्यु और रुद्र—ये पवित्रकके तीन सूत्रीके देवता है। जो उनमें अधिष्टित रहते हैं। इन सूत्रोंको सुवर्ण, रवत, ताम्, बाँस या मिट्टीके बने हुए पाप्रमें रखना चाहिये। एक सौ आठ तन्तुओंका सुत्र उत्तम, चीवन तन्तुओंका सूत्र मध्यम तथा संचाईस तन्तुओंका पवित्रक कनिष्ठ होता है।

> इन पवित्रकाँके प्रत्येक ग्रन्थि-पर्वोको कुंकुम, हल्दी या चन्दनसे चर्चितकर उपवास रखते हुए उन्हें शास्त्रसम्मत पात्रमें रखकर अधिवासित करे।

> पवित्रकको पृथक्-पृथक् अभिमन्त्रित करके उसका सम्यक् दर्शन तथा पुन: पुजन करना चाहिये और यसपूर्वक उसका बस्त्राच्छादन करके उसे मण्डलस्थ देवप्रतिमाके समक्ष यत्रपूर्वक स्थापित कर देना चाहिये।

> बहादि अन्य देवोंको स्थापना करके कलशकी पूजा करे। मण्डलका निर्माण करके नैवेद्य समर्पित करे। पवित्रकको पुन: अधिवासित" करके तीन या नौ बार सुत्र युगाकर बेदीको बेध्रित करे। तदननार अपनेको तथा

१-कौशेय-विशेष कोडेके कोशसे बननेवाला वस्त्र (रेहामी वस्त्र)।

२-धीम-तीसी, केलेकी छाल या अन्य लताविशेषसे मने वस्त्र।

३-वल्कल-भीजपत्र नामके वृक्षविशेष अथवा अन्य मुलायम डालकाले वृक्षकी डालसे बना वस्त्र (बल्कल बस्त्र)।

४-अधिवासन-संस्कार-विशेष।

कलश, घी, अग्रिकुण्ड, विमान, मण्डप और गृहको सुबसे चाहिये-वेष्टित करके एक सूत्र देवताके मस्तकपर अर्पित करे। इस प्रकार सम्पूर्ण सामग्री निवेदितकर महेश्वर विष्णुकी पूजा करके इस मन्त्रका पाठ करना चाहिये-

आवाहितोऽसि देवेश पुजार्थ परमेश्वर॥ तत्प्रभातेऽर्चविष्यामि सामप्रयाः संनिधौ भव। (75-351 EX)

हे परमेश्वर! देवदेवेश्वर। आप यहाँपर पूजाके लिये आवाहित हैं। इस समस्त सामग्रीसे प्रभातकालमें मैं आपका पुजन करूँगा। आपकी संनिधि यहाँ बनो रहे।

एक रात्रि या तीन रात्रितक पवित्रकको अधिवासित-कर स्वयं रात्रिमें जागरण करके प्रात:काल भगवान् केशवका पूजन करे और निर्मित पवित्रकोंको उन देवको अर्पित करे। पवित्रकको धूपसे धूपित करके मन्त्रके द्वारा अधिमन्त्रित भी करना चाहिये।

गायत्री-मन्त्रसे पुजित इस पवित्रकके द्वारा देव-पूजन करके उसे मन्त्र पदकर देवताके समक्ष स्थापित कर दे-विश्वद्वयन्थिकं स्थां यहापातकनाशनम्। सर्वपापक्षयं देव तवाचे धारयाम्यहम्॥ (*\$1.59)

हे देव। यह पवित्रक विजुद्ध रूपसे प्रथित, सुन्दर तथा महापातकोंको नष्ट करनेवाला और सम्पूर्ण पापाँका क्षय करनेवाला है। इसे मैं आपके समक्ष स्थापित करता हैं। तदननार इस मन्त्रका पाठकर स्वयं भी धारण करना

पवित्रं वैष्णव सर्वपातकनाशनम्॥ धर्मकामाधीसद्ध्यर्थ स्वकण्ठे

[हे देव!] यह विच्यु-तेज:स्वरूप, सर्वपाप-विनाशक पवित्रक है। मैं धर्म, काम तथा अर्थ-इस त्रिवर्गको सिद्धिके लिये इसे अपने कण्डमें धारण करता हूँ। अनन्तर इस प्रकार प्रार्थना करे-

वनमाला यथा देव कौस्तुभं सततं हरि। तद्वत् पवित्रं तन्तुनां मालां त्वं इत्ये धरः।।

(821 85)

हे देव! आपके इदयपर जिस प्रकार वनमाला और कौरतुभ विराजते हैं, उसी प्रकार तन्तुओंको बनी दुई यह माला और पवित्रक आप अपने हृदयपर धारण करें।

इस प्रकार प्रार्थना करके बाह्यणोंको भीजन कराकर और उन्हें दक्षिणा देकर उसी दिन सार्थकाल या दूसरे दिन पुन: उसी प्रकार पूजा सम्पन्न करके निम्न मन्त्र पढते हुए विसर्जन को-

सांबत्सरीयियां पूजां सम्पारा विधिवन्मया। क्रज पवित्रकेहानी विष्णुलोके विसर्जित: ॥

(431.43)

हे पवित्रकः। मैंने इस सांवत्सरी पूजाको विधिवत् सम्पादित किया है। इस समय मेरे द्वारा विसर्जित आप विष्णुलोकको पधारै। (अध्याय ४३)

ब्रह्ममूर्तिके ध्यानका निरूपण

पुजाकर ब्रह्मका ध्यान करके साधक हरि बन जाता है (मेरा परब्रह्म)-में ज्ञानको भावना (ब्रह्म एवं निर्विषय-नित्य-स्यरूप हो जाता है)। अब मैं मायाजालको नष्ट करनेवालं जानमें अभेदभाव) करनी चाहिये। ब्रह्मके ध्यानका वर्णन करता है। आप सुने-

ब्रह्मके ध्यानके लिये प्रवृत्त प्राञ्ज (विजेष साधक) अपनी वाणी एवं मनको नियन्त्रितकर अपनी आत्मामें ही ज्ञानस्वरूप ब्रह्मका यजन करे और जिस प्राज्ञको यह उत्कट इच्छा हो कि मैं अपनी आत्मामें ब्रह्मका दर्शन (जीव-

श्रीहरिने कहा— हे रुद्र ! भगवानुको पवित्रक आदिसे ब्रह्मका अभेददर्शन) करूँ, उसे महद्ब्रहा (प्रत्यक्-चैतन्याभित्र

ब्रह्मका ध्यान ही समाधि है। 'मैं ब्रह्म हैं' इस रूपमें सदा स्वयंको अवस्थिति ही ब्रह्मका ध्यान है। स्वयंसे अभित्र बहा देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण, अहङ्कार, पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश), पञ्चतन्यात्र (गन्धतन्यात्र, रसतन्यात्र, रूपतन्यात्र, स्पर्शतन्यात्र,

एवं शब्दतन्मात्र) विविध गुण, जन्म और भोजन, शयन प्राणायाम है। इन्द्रियोंपर विजय प्रत्याहार और ईश्वरका आदि भोगसे सर्वथा रहित, स्वप्रकाश, निराकार, सदा चिन्तन करना ध्यानावस्था है। मनको नियन्त्रित करना ही निरतिशय, नित्य आनन्दस्त्ररूप, अनादि, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, सर्वतः परिपूर्ण, सत्यस्वरूप, परमसुखस्वरूप, परमपद एवं तुरीय (कुटस्थ निरञ्जन परब्रहा)-के रूपमें बेदोंमें वर्णित है।

हे वृपभध्वज ! अपनी आत्माको रथी और शरीरको रथ समझना चाहिये। बुद्धि उसमें सारिय तथा मन लगाम है। इन्द्रियोंको उस रथमें जुते हुए अश्वकं रूपमें स्वीकार किया गया है। ये इन्द्रियों हो रूप, रस, गन्ध आदि विषयका अनुभव करती हैं।

इन्द्रिय और मनसे युक्त आत्माको ही मनीपियाँन भोका कहा है। जो मनुष्य विज्ञानरूपी सार्वधिसे युद्ध है, मनरूपी लगामको अपने वशर्मे रखता है, वही उस परमपदको प्राप्त करता है, फिर वह उत्पन्न नहीं होता। जो विज्ञानरूपी सार्राधिसे नियन्त्रित मनरूपी लगामवाला यनुष्य है, वह स्वर्धुनो (अज्ञान)-से पार हो जाता है और वही विष्णुका परमपद है ।

इस योगको परम साधनामें अहिंसादि धर्मोंको बम तथा शौचादिक कर्मोंको नियम कहा गया है। पद्मादि आसन हैं। प्राण, अपानादिक वायुपर विजय प्राप्त करना धारणा है और ब्रह्ममें मनको केन्द्रित करनेकी जो स्थिति होती है, वह समाधि है। यदि पहले इस योगके द्वारा चञ्चल चित्त स्थिर नहीं होता तो उस मूर्ति (परमेश्वर)-का इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये-

जो हृदयकमलको कर्णिकाके मध्य विराजमान रहनेवाले हैं तथा शङ्क, चक्र, गदा और कमलसे सुशोभित हैं, जो ब्रोबत्स तथा कौरतुभगणि, वनमाला एवं लक्ष्मीसे विभृषित हैं. जो नित्य-शुद्ध, ऐश्वर्यसम्पन्न, सत्य, परमानन्दस्वरूप, आत्मस्वरूप, परमब्रह्म तथा परम ज्योति:स्वरूप हैं—ऐसे वे चीबीस स्वरूप (अवतार)-वाले, शालग्रामकी शिलामें विराजम्बन, द्वारकादि^{के} जिलाओंपर अवस्थित रहनेवाले परमेश्वर ध्यानके योग्य हैं और पूजनीय हैं। मैं भी वही हैं—ऐसा समझना चाहिये।

इस प्रकार आत्यस्वरूप नारायणका यम-नियम इत्यादिक योगक साधनींसे एकाग्रचित होकर जो ध्यान करता है, वह मनोऽभिलपित इच्छाओंको प्राप्तकर वैमानिक देव हो जाता है। यदि निष्काम होकर उन हरिको मूर्तिका ध्यान और स्तवन करे तो मुक्ति प्राप्त हो जाती है। (अध्याय ४४)

and the state of

१-शब्दकत्पदुमके — 'धूनवति कम्पयति सङ्ग्'— इस म्युत्पधिके अनुसार 'धुनी' शब्द कम्पित कर देनेवालेके लिये प्रयुक्त होता है। इसलिये वहीं प्रसंपानुसार 'स्व:' लब्दका मोश अर्थ मानकर मोशको कम्पित (प्रतिपन्धित) करनेवाले अञ्चनको 'स्वर्धुनी' कह सकते हैं। इस तरह अञ्चलको पार कर लेगा हो 'स्वर्धुनी' को पार करना समझना चाहिये।

२-आत्मानं रिधनं विदि शरीरं १४मेव तु। बुद्धिं व सार्विधं विदि सनः प्रग्रहमेव च। इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोपराः॥ आत्येन्द्रियमनोयुको भोकेल्याहुर्मनीविनः। यस्तु विज्ञानकानामा युक्तेन मनसा सदा ॥

स तु तत्पदमानोति स हि भूयो न जायते।विज्ञानसारिधर्यस्तु स्तर्भुन्याः परमाप्नीति तदिष्योः परमं पदम् । (४४ / ६—९)

३-शब्दकल्पद्रमके अनुसार द्वारकामें होनेवाली तक्षणिला भी भगवान विष्णुको मूर्ति मानी जाती है। इसीलिये जैसे गण्डकी नदीमें होनेवाली चक्रयुक्त शिला (शालग्रामहिला)-में विष्णुका सदा संनिधान है, वैसे हो द्वारकाकी किलामें भी विष्णुका संनिधान है।

४-वैमानिक देव- शब्दकल्पदुमके - 'विगर्त मानम् उपमा यस्य'- इस स्युत्पतिके अनुसार निरुपमेयको विमान कहा ना सकता है।'विमान एव वैमानिक:' इस व्युत्पत्तिके अनुसार वैमानिक शब्द भी निरुपयेप (उपपारिकत)-का बोधक हो सकता है। इसलिये प्रकृतमें 'वैमानिक देव'का अर्थ निरुपमेय – रूपमारहित – सर्वोत्कृष्ट देव महाविज्यु किया जा सकता है।

विविध शालग्रामशिलाओंके लक्षण

शालग्रामका लक्षण कहता है। शालग्रामशिलाओंके स्पर्तमात्रसे करोडों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। केशव, नारायण, गांविन्द तथा मधसदन आदि नामीवाली विभिन्न शालग्रामशिलाएँ होती हैं, जो शंख, चक्र आदि चिह्नोंसे सुशोधित रहती हैं। इन शिलाओंके लक्षण इस प्रकार है-

शंख, चक्र, गदा तथा पचके चिक्रमें मुत्रोभित जिला 'केशव' परा, कीमोदकी' गदा, चक्र तथा शंखके चिह्नसे स्शोभित शिला 'नारायण' चक्र शंख, पदा तथा गदाके जिह्नसे विभूषित शिला 'माधव' और गदा, पदा, संख तथा चक्रके चित्रसे शोभायमान शिला 'गोविन्द' नामसे जानी जाती है।

पद, शंख, चक्र, गदासे युक्त 'किच्च् 'नामको, शंख, पदा, गदा तथा चक्रसे युक्त 'मध्यसूदन' जमकी, गदा, चक्र शंख, परासे संयुक्त 'त्रिविक्रम' नामको, चक्र, गटा, परा शंखसे विद्वित 'बामन' नामकी, चक्र, पद, शंख एवं गदासे समन्वित 'श्रीधर' नामको और पद्म, गदा, शंख, चक्रसे अंकित 'हपीकेल' नामकी सालग्राम-मूर्ति कही गयी है। इन देवमूर्तियोंको बार-बार नमन है।

पच, चक्र, गदा, शंख-चिह्नपरित जालग्रामतिला 'परानाभ', शंख, चक्र, गदा, परायुक्त शालवामशिला 'दामोदर', चक्र, शंख, गदा तथा पद्ममें संयुक्त जालग्रामशिल 'बामदेव' शंख, परा, चक्र, गदा-चित्रमे समन्वित शालाग्रमशिला 'संकर्षण' शंख, गदा, पच, चक्रसे सुशोधित शालग्रामशिला 'प्रद्यम्न' तथा गदा, शंख, पच और चक्रमे सोधित शालग्रामशिला 'अनिरुद्ध'नामसे अभिहित है। इन्हें बारम्बार प्रणाम है।

परा, शंख, गदा, चक्रके चिह्नसे विभूषित 'प्रवोत्तम नामकी, गदा, शंख, चक्र, पदा-चिक्रसे विभूषित 'अधीक्षज' नामकी, पदा, गदा, शंख, चक्रसे विभूषित 'नुसिंह' नामकी, परा, चक्र, शंख, गदासे अंकित 'अच्यत' नामकी और शंख, चक्र, पदा, गदासे सयुक्त 'जनार्दन'की शालग्राम-मृति है-इन देवनामोंसे अभिहित मुर्तियोंको नमस्कार है।

गदा. चक्र. पदा. शंखसे अंकित शालपाम 'उपेन्द्र'

श्रीहरिने कहा-हे वृषभध्वज । अब मैं प्रसंगवल चक्र, पद, गदा, शंखसे वुक्त शालग्राम 'हरि', गदा, पदा, चक्र, शंख-चिड्रसे शोभित शालग्राम 'श्रीकृष्ण' नामसे प्रसिद्ध हैं और शालग्रामशिलाके द्वारदेशपर चिक्रित दो चक्र धारण करनेवाले. शुक्लवर्णवाले भगवान वास्ट्रेय हैं। इन सभी रूपों एवं नामोंको धारण करनेवाले हे गदाधर भगवान विष्ण ! हम सबकी आप रक्षा करें।

> दो चक्रोंसे युक्त, रक्त आधावाली और पूर्वधागमें परा-चिडमे ऑकत शालग्रामशिला 'संकर्षण'की मृति होती है. किंतु छोटे-छोटे चक्रोंबाली तथा पीतवर्णकी होनेपर वह शिला 'प्रद्रम्न' कही जाती है। यदि शालग्रामशिला बडी तथा छिद्रसे संयुक्त शिरोभागवाली और वर्तुलाकार हो तो उसे 'अनिरुद्ध' नामक कालग्राम-मृति कहते हैं। जो हारमुखपर नीलवर्णको तीन रेखाओंसे युक्त होती है और जिसका होप सम्पूर्ण भाग कृष्णवर्णसे सुशोभित रहता है, वह शालग्रामशिला 'नारायण' शिलाके नामसे जानी बातों है।

> जिस शिलाके यध्यमें गदाके समान रेखा हो, यथास्थान नाभिषक उपत हो तथा बश्च:स्थल विस्तृत हो, यह 'नुसिंह' नामकाली जालग्रामशिला है और इन चिक्रोंके साथ ही इसमें तीन विन्द अथवा पाँच जिन्द हों तो वह 'कांपल' नामक ज़िला है, वह ज़िला हम संबंधी रक्षा करे। उसका पजन ब्रह्मचारियोंको करना चाहिये। विषय परिमाणवाले दो वकोंसे चिडित शकि-चिडसे यक शिलाको 'बाराह' शिला कहते हैं। वह हम सबकी रक्षा करे। नीलवर्णवाली, तीन रेखाओंसे चक, स्थल तथा विन्द्रपुक्त शिला 'कुर्मपूर्ति' है और वहीं अगर वर्तुलाकार है तथा उसका पीछेका भाग झका हुआ हो तो वह जिला 'कच्चा' कही गयी है, वह इम सबकी रक्षा करे। पाँच रेखावाली शिला 'श्रीधर' नामकी कही जातो है। गदासे अंकित शिला 'वनमाली' है- दे हम सबकी रक्षा करें। गोलाकार तथा छोटी शिला 'बामन' जिला है, चार्ये भागमें बक्राङ्कित शिला 'स्रेश्वर'की मृति है। विभिन्न रंगोंबाली, अनेक रूपोंबाली, नागके समान फणोंसे यक शिला 'अननक' है। स्थल हो, नोलवर्णकी हो और मध्यमें नीलवर्णका चक्र हो तो वह 'टामोदर'-

१-श्रीविष्णको गदाका नाम 'कौमोदको' है।

छिद्रयुक्त, एक चक्र तथा एक कमलवाली विस्तोर्ण शिला एक्षा करे। 'ब्रह्मशिला' है, ये सब हम सबकी रक्षा करें। विस्तृत एक चक्रवाले शालग्रामको 'सुदर्शन' कहते हैं, छिद्रवाली तथा स्थूल चक्रवाली शिला 'कृष्णशिला' तथा उनके रूपमें वे गदाधारी श्रीविष्णु हम सबकी रक्षा करें। बिल्वाकार शिला 'विष्णुजिला' है। अंकुजके आकारवाली, दो चक्र होनेसे शालग्रामशिलाको 'लक्ष्मीनारायण' संज्ञ पाँच रेखाओंवाली तथा कौस्तुभ-चिहसे युक्त शिला 'हवळेव' होता है। जिसमें तीन चक्र हैं, वह (शिला) 'त्रिविक्रम'की शिला है। एक चक्र तथा एक कमलसे अंकित, मणि तथा भूति है, चार चक्रवाली चतुर्व्यूह, पाँच चक्रवाली 'वासुदेव', रबोंकी आभासे युक्त कृष्णवर्णको किला 'बैकुण्ड' किला छ: चक्रकली शालग्रामशिला 'प्रदुष्न'. सात चक्रवाली और द्वारपर रेखावाली, विस्तृत कमलसदुश शिला 'मल्यशिला' शिला 'संकर्षण' आठ चक्रवाली 'पुरुषोत्तम', नव चक्रवाली है—ये हम सबको रक्षा करें। दाहिनो ओर रेखायुक, जिला 'नवब्युह', दस चक्रवालो 'दशावतार' तथा ग्यारह रयामवर्णसे समन्तित, रामचक्रसे अंकित 'त्रिविकम'नाभवाली चक्रवाली जिला 'अनिरुद्ध' कहलाती है- ये हम सबकी शिला हम सबकी रक्षा करे। द्वारकामें स्थित, शासग्राममें रक्षा करें। बारह चक्रोंसे युक्त शिला 'द्वादशात्मा' है। निवास करनेवाले गदाधारी भगवान्को नमस्कार है। एक बारहसे अधिक चक्रकी शिला 'अनन्त' नामवाली है। द्वारवाली, चार बक्रोंसे युक्त, वनमालासे विभूषित, जो मनुष्य इस विव्युमृतिमय स्तोत्रका पाठ करता है, स्वर्णरेखासमन्वित, गोपदसे सुशोधित तथा कदम्बके पुष्पकी उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। (अध्याय ४५)

त्रिला है। संकृतित द्वारवाली, रक्तवर्णवाली, लम्बी रेखाओंवाली, आकृतिवाली 'लक्ष्मीनारायण' नामवाली त्रिला हम सबकी

वास्तुमण्डल-पूजाविधि

समस्त विघन नष्ट हो जाते हैं। संक्षेपमें उस वास्तुपूजाको विधिः चाहिये कि वह ईशानादि चारों कोणीपर स्थित देवताओंकी कहता है, यह पूजा ईशानकोणसे प्रारम्भ होकर इक्यासी पूजा करे। यथा—ईशानकोणमें आप (जल), अग्निकोणमें पदवाले मण्डपके अन्तर्गत पूर्ण की जानो चाहिये। सावित्री, नैर्ऋत्यकोणमें जय और वायुकोणमें रुद्रदेवकी

आदि, नगर, ग्राम, व्यापारिकपथ, प्रासाद, उद्यान, दुर्ग, प्रकार 🐔 देवता अन्त:भागमें अवस्थित रहते हैं।

यथा- ईश, शिखी, पर्जन्य, जयन्त, कृतिशायुध, स्यं, सत्य, भृगु, आकाश, वायु, पूषा, वितथ, ग्रहक्षेत्र, यम, गन्धर्व, भुगुराज, मृग, पितृगण, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, गणाधिष, असूर, श्रेष, पाप, रोग, अहिम्ख, बाह्य देव हैं।

भी**हरिने कहा —** गृहनिर्माणके प्रारम्भमें जिसके करनेसे — इन बाह्य देवोंका पूजन करके बुद्धिमान् व्यक्तिको इस मण्डलके ईज्ञानकोणमें वास्तुदेवताका मस्तक पूजा करे। नवपद परिमापके मध्यमें ब्रह्माकी पूजा करनी होता है। नैर्श्रहस्यकोणमें उनके दोनों पाद तथा अग्नि और बाहिये और उनके समीप ही अन्य आउ देखताओंका भी बायुकोणमें दोनों हाथ होते हैं। आबास अर्थात् भवन, गृह पूजन करे। पूर्वादिक क्रमसे उन पूजनीय देवोंके नाम इस

देवालय तथा मठ आदिके निर्माणमें वास्तुदेवताको स्थापनापूर्वक अर्थमा, सकिता, विवस्वान्, विवुधाधिप, मित्र, राजयक्ष्मा, पूजा करनी चाहिये। बाईस' देवता बाह्यभागमें तथा तेरहः पृथ्वोधर और अपवत्स—ये आठ देव हैं, जो ब्रह्मके चारों ओर मण्डलाकार स्थित हैं।

दुर्गनिर्माणमें ईशानकोणसे नैऋत्यकोणपर्यना सुत्रद्वारा किया गया रेखाङ्कन वंश कहा जाता है और अग्निकोणसे उच वायुकोणपर्यन्त दूसरी रेखा खीची जाती है तो वह वंश-रेखा, दुर्धर-रेखा कहलाती है। वंश-रेखापर ईशानकोणमें भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति तथा दिति—ये वास्तुमण्डलके अदिति, दुर्धरयोग विन्दुपर हिमवन्त, नैर्ऋत्यकोण अर्थात् वास्तुमण्डलके अन्तिम नैर्ऋत्य विन्दुपर जयन्तके पूजनका

१-म्लपाउमें 'द्वाविंशति' पाउ है, वास्त्वमें द्वाविंशत् पाउ होना चाहिये।

विधान है। तत्पश्चात् दुर्धर-रेखाके प्रारम्भमें अग्निकोणपर नायिका तथा अन्तिम छोर वायुकोणपर कालिकादेवीको राशिको वसुओंको संख्या अर्थात् आठसे पहले भाग दे, पूजा करनी चाहिये। तदननार शुक्र अर्थात् इन्द्रसे लेकर गन्धर्वपर्यन्त उक्त वास्तुदेवींकी पूजा करके भवन-निर्माणका कार्य प्रारम्भ करना चाहिये।

वास्तु (भवन) - के सम्मुख-भागमें देवालय, अग्निकोणमें पाकशाला, पूर्व दिशामें यत्र-मण्डप, ईशानकोजमें काह या प्रस्तरसे बनी पट्टिकाओंके द्वारा थिरा हुआ सुगन्धित पटाधी तथा पुष्पोंको रखनेका स्थान, उत्तर दिशामें भाण्डाराचार, वायुकोणमें गोशाला, पश्चिम दिशामें खिडको तथा जलाशय नैर्फ़्ट्यकोणमें समिधा, कुश, ईंधन तथा अस्व-शस्त्रका कक्ष, दक्षिण दिशामें सुन्दर शय्या, आसन, पादका, जल, अग्नि, दोप और सज्जन भृत्योंसे युक्त अतिचिगृहका निर्माण करना चाहिये।

गृहके बीच समस्त रिक्तभागमें कृप, जलसिंचित कदलीगृह और पाँच प्रकारके पुष्पपादपाँको सुनियोजित करे। भवनके बाह्य भागमें चारों ओर पाँच हाथ ऊँची दीवाल बनाकर वन और उपवनमें आच्छादित भगवान् विष्णुका मन्दिर बनाना चाहिये।

इस मन्दिरके निर्माणकार्यके प्रारम्भमें चौसट पदका अतः इसमें गृह-निर्माण नहीं करना चाहिये। वास्तुमण्डल बनाकर जास्तुदेवताकी विधियत् पूजा करे।

ईशानादि कोणींपर क्रमश: चरकी, विदारी, पूतना और पापराश्वसी नामक देवलक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद बाह्य भागमें हैतुकादि देवोंका पूजन करे। इनके नाम हेतुक, त्रिप्रान्तक, अग्नि, वैताल, यम, अग्निजिह्ना, कालक, कराल और एकपाद हैं। उनकी पूजा करनेके पक्षात् ईशानकोणमें भीमरूप, पातालमें प्रेतनायक, आकाशमें गन्धमाली तथा उसके बाद क्षेत्रपाल देवोंकी पूजा करनी चाहिये।

यथासाध्य वास्तु संकृषित या विस्तृत क्षेत्रफलकी उसके बचे हुए शेष भागको यम माने। पुन: उक्त वास्तुराशिको आहसे गुणा करे, जो गुणनफल हो उसको इक्स भाग अर्थात् सताईससे भाग दे, जो शेष हो उसे ऋश या तक्षत्रराशि कहते हैं और जो भागफल है, वह अव्यय कहलाता है।

उस ऋक्षराशिको चारसे गुणा करके गुणनफलमें नीसे भाग दे, जो शेषांश हो उसका नाम स्थिति है। इसी स्थिति अङ्कपर वास्तुमण्डलका निर्धारण करना चाहिये। ऐसा देवल ऋषिका अभिमत है।

उन्ड बास्तुराशिको आठसे गुणा करके जो गुणनफल हो उसे पिण्ड कहते हैं। उस पिण्डको साउसे भाग देना वाहिये, जो शेषांक हो उसके द्वारा गृहस्वामीके जीवन-मरण और परिजनोंके विनासका निर्धारण होता है।

मनुष्यको चाहिये कि वास्तुमण्डलके मध्यमें ही सदा गृहका निर्माण करे। उसके पृष्ठभागमें न करे। इसी प्रकार वास्तुमण्डलके वामपार्श्वमें भी गृह-निर्माण करना उचित नहीं होता है, क्योंकि वामपार्श्वमें कास्तुदेव सीये रहते हैं।

सिंह, कन्या तथा तुला राशि रहनेपर उत्तर दिशाके उक्त रीतिके अनुसार वास्तुमण्डलके मध्य भागमें चार द्वारका शोधन करे और उसी प्रकार वृश्विकादि अन्य पदके मण्डलान्तर्गत ब्रह्मा तथा उनके समीपस्य प्रत्येक दो रातियोंके रहनेपर पूर्व-दक्षिण तथा पश्चिम द्वारका स्रोधन पदपर अर्थमादि आठ देवोंको पूजा करनी चाहिये। करना चाहिये (क्योंकि भाइपद, आधिन तथा कार्तिकमासमें तदनन्तर कर्णभागपर कार्तिकेय आदिका पूजन करके, पूर्व दिशामें मस्तक, उत्तर दिशामें पुण्ठ, दक्षिण दिशामें दोनों ओर पार्श्व विन्दुओंपर दो-दो पटोंकी दुरीसे स्थित कोड और पश्चिम दिशामें चरण फैलाकर वास्तुनाग सोये अन्य पार्श्व देवींका पूजन करे। तत्पक्षात् वास्तुमण्डलके रहते हैं। अत: उत्तर दिशाका द्वार इस कालमें प्रशस्त होता है। वृक्षिक, धनु एवं मकर राति अर्थात् मार्गशीर्य, पीप और मापमें वास्तुनागका सिर दक्षिण, पृष्ठ पूर्व, क्रोड पश्चिम और पैर उत्तर दिशामें रहता है। जिससे उस समय पूर्व दिशाका द्वार-शोधन उचित है। कुम्भ, मीन और मेष राशि अर्थात् फाल्पुन, चैत्र तथा वैशाखमासमें वास्तुनागका मस्तक पश्चिम, पृष्ठ दक्षिण तथा पैर उत्तर-पूर्व दिशामें रहता है। अत: दक्षिण दिशाके द्वारका शोधन इस कालमें श्रेयस्कर है। इसी प्रकार वृष, मिथुन और कर्कराशि अर्थात् ज्येष्ट,

आषाद तथा श्रावणमासमें वास्तुनागका सिर उत्तर, पृष्ट होता है तो हानि होती है। पश्चिम, क्रोड पूर्व और पैर दक्षिण दिशामें रहता है। उस अत: उपर्युक्त विधिसे प्रासाद या भवनका निर्माण समय पश्चिम द्वारका शोधन करना उचित होता है)। करके उसके पूर्वमें पीपल, दक्षिणमें पाकड़, पश्चिममें

करना चाहिये। इस प्रकार आड दिशाओंमें आड द्वार कहें लगाना चाहिये, जो चरके लिये शुध-फलदायी होते हैं। इस गये हैं।

यदि उपर्युक्त शास्त्र-सम्मत विधिसे द्वार-शोधन नहीं करनेवाला होता है। (अध्याय ४६)

वास्तुके विस्तारके अनुसार आधे भागमें द्वारका निर्माण बरगद, उत्तरमें गुलर तथा ईशानकोणमें सेमलका वृक्ष प्रकार पुनित बास्तु प्रासाद और घरके विष्नोंका नाश

प्रासाद-लक्षण

श्रीसृतजीने पुनः कहा—हे शीनक! अब मैं प्रासाद- चतुर्धीत होना चाहिये। निर्माण एवं उसके लक्षणेकि विषयमें कह रहा है। आप सुने।

सर्वप्रथम कुशल वास्तुविद्की देख-रेखमें करों दिशाओं में चौंसठ-चौंसठ पद परिमापका एक चतुष्कोण भूखन्य तैयार करना चाहिये। जिसमें अङ्तालीस पद-परिमाज-भूमिमें दीवालका निर्माण करे। साथ ही चर्रो दिकाओंमें कुल बारह द्वार (वारादरी) बनाये जाये।

प्रासादको कैचाईके परिमाणको अर्थात् पृथ्वीतलपर प्रासादका बनाया गया कैचा जो धरातल है, उसको प्रासादिक-जंघा (कुर्सी) कहते हैं। भवनकी यह जंबा मानव जंघाकी अपेक्षा वार्ड मृना अधिक होनी चाहिये। उसके ऊपर निर्मित होनेवाले गर्भभागके विस्तार-परिमापको शुक्रांध्रि कहते हैं। गर्भभागको पुन: तीन अथवा पाँच भागांमें विभक्त करना चाहिये और सुक्रांप्रिके द्वारको ऊँचाई शिखर भागको आधी करनी चाहिये। चार शिखर बनाकर उसके तीसरे भागपर वेदि-बन्धन करे। उसके चतुर्थ अथवा भवनका निर्माण करनेके लिये भूमिखण्डको समान सोलह भागोंमें विभक्त करके उस सोलहवें भागके चतुर्थ-कैचाईके अनुसार ही अन्य भित्तियोंकी कैचाईका परिमाण स्वेच्छानुसार इसका दुगुना विस्तार हो सकता है। निश्चित करना चाहिये। भित्तिकी कैंचाईके मानकी अपेक्षा शिखरकी ऊँचाई दो गुनी हो। मन्दिरके चारों ओर बननेवाले प्रदक्षिणा-भागका विस्तार शिखर भागकी ऊँचाईके मानका

बृद्धिमानोंको चाहिये कि वे उस देवप्रासादमें चारों दिज्ञाओं में निर्गम (बाहर निकलनेक) द्वार रखें। गर्भगृहकी चतुर्दिक भितियोंमें प्रत्येक भितिका पाँच भाग करके उसके मध्यके पाँचवें भागमें द्वार लगाना चाहिये। ऐसा ही गर्भगृहके प्रत्येक द्वारका मान वास्तुविद विद्वानीने निर्धारित किया है। गर्भगृहके समान ही उसके अग्रभागमें मुखमण्डप बनाना चाहिये। यह प्रसादका सामान्य लक्षण कहा गया है। अब मैं लिङ्गनिर्माणके परिमाणको कह रहा है।

हे जीनक। लिङ्गके परिमाणके अनुसार उसकी पीठका निर्माण होना चाहिये। पीठभागका दुगुना चारी और पीठका गर्भभाग हो। पीठगर्भके अनुसार ही उसकी भिति तथा उसके विस्तारके अर्धपरिमाणमें उस लिक्सपीठका जंबा-भाग निर्मित करे।

हे जीनक। जंधा-भागके परिमाणकी अपेक्षा हिगुणित कैचा शिखर होना चाहिये। पीठ और गर्भभागके मध्य जो भागपर पुन: प्रासादके कण्ठ-भागका निर्माण करना चाहिये। परिमाण हो, उस परिमाणके अनुसार शुक्रांग्रिभाग निर्मित होता है। द्वारिनमांत्रके समय पहले जैसा कहा जा चुका है, शेष कार्य वैसे ही होगा। लिङ्गका परिमाण बताया जा चुका भागके मध्यमें गर्भगृहका निर्माण करवाये। बचे हुए बारह है। अब द्वारका परिमाण कहते हैं। चार हाथ (छ: फुट)-भागमें भित्त (दोवाल)-का निर्माण करे। चतुर्थभागको का द्वार बनाया जाय, जो वास्तुसे आठवीं हिस्सा होता है।

> द्वारके सदश पीठके मध्यभागको छिद्रयुक्त ही रखना चाहिये। पादिक, शेषिक तथा भित्तिहार परिमाणके अनुसार हो उसके अर्ध-अर्ध परिमाणको दुरीपर निर्मित करे। उस

t- बारों शिखरोंके पध्यमें ऊपरके हिस्सेको कण्ठचान कहते हैं।

गर्भभागके विस्तारके समान ही मण्डपके जंघाभागका निर्माण करके उस जंबाधागके द्विगुणके परिमाणमें ऊँचे शिखरभागको निर्मित करे। शुक्रांध्रिभागको पहलेको हो भौति बनवाकर निर्गम अर्थात् द्वारभागको ऊँचा हो बनवार्वे— ऐसा मण्डपनिर्माणका मान है। इसके अतिरिक्त शेष प्रासाद-भागके स्वरूपको कह रहा है, सुनें-

प्रासाद-मण्हपके अग्रभागमें त्रेवेद अर्थात् त्रिहारीका निर्माण करवाना चाहिये, जिसके क्षेत्रभागमें देवगण विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार प्रासादके मानका अवधारण करके बाह्र भागका निर्माण करे।

इस निर्माणकार्यमें प्रासादके चारों और एक पाद परिमाणवाली नेमि या नींबका निर्माण करना चाहिये। वैसे संसारमें गर्भगृहके परिमाणके अनुसार नेमिका मान उसका हिगुण है। भित्तिकी चौड़ाईसे दो गुणा ऊँचा उसका शिखर-भाग होना चाहिये।

लक्षणों एवं स्वरूपको भिन्नताके कारण प्रासाद अनेक प्रकारके होते हैं। यथा—वैराज, पुण्यक, कैलास, मालिका (माणिक) तथा त्रिविष्टप-ये पाँच प्रकारके प्रास्तद है। इनमें प्रथम प्रकारका वैराज नामक प्रासाद सब प्रकारसे चौकोर और समतल होता है। द्वितीय प्रकारका पुष्पक प्रासाद आयताकार होता है। तृतीय प्रकारका कैलास नामक प्रासाद वृत्ताकार, चौथा मालिका नामक प्रासाद वृत्तायत और पाँचवाँ त्रिविष्टप नामक प्रासाद अष्टकोणाकार होता है। इस प्रकारसे बने हुए ये प्रासाद बड़े ही मनोहारी होते हैं। इन प्रासादोंसे ही अन्य प्रकारके प्रासादोंका स्वरूप निर्मित हुआ है।

यथा— मेरु, मन्दर, विमान, भद्रक, ,सर्वतोभड़, रुचक, नन्दन, नन्दिवर्धन और श्रीवत्स-ये नौ प्रकारके चौकीर प्रासाद बैराज नामक प्रासाद निर्माणको कलासे हो उत्का हुए हैं।

वलभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विभान, ब्रह्ममन्दिर, भवन, उत्तम्भ और शिविकावेश्म—ये नौ प्रासाद पुष्पक नामक प्रासादकलासे उत्पन्न हुए हैं।

वलय, दुन्दुभि, परा, महापरा, मुकुली, उष्णीपी, शंख, कलश, गुवायुक्ष तथा अन्य वृताकार प्रासाद कैलास प्रासादसे निकले हैं। गज, वृषभ, हंस, गरुड, सिंह, सम्मुख, भूमुख, भूधर, बीजय तथा पृथिबीधर—इन प्रासादोंका उद्भव 'मालिका' (मणिक) नामक वृत्तायत प्रासादसे हुआ है।

वत्र, चक्र, मुष्टिकवधु, वक्रस्वस्तिक, खड्ड, गदा, श्रीवृक्ष, विजय तथा केत—इन नी प्रासादोंका प्रादुर्भाव त्रिविष्टप नामक प्रासादसे हुआ है।

इसके अतिरिक्त त्रिकोण, पद्माकार, अर्धचन्द्राकार, चतुष्कोण तचा चोडलकोणीय प्रकारसे भी मण्डपके संस्थानका निर्माण जहाँ-तहाँ किया जा सकता है, जो क्रमश:-राज्य, ऐश्वर्य, आयुवर्धन, पुत्रलाभ और स्त्रोप्राप्ति करानेवाले होते हैं।

मुख्यद्वारके स्थानमें ही ध्याजा आदि तथा गर्भगृहका निर्माण कराना चाहिये। सुत्रके द्वारा सम संख्याओंसे गुणित मण्डपका निर्माण करके उस मण्डपके चतुर्थांश अर्थात् चौचाई परिमाणका एक भद्रगृह निर्मित करवाये। भद्रगृहको समानान्तर बाठायन (रोजनदान)-से अथवा वातायनसे रहित बनाना चाहिये। कहीं मण्डपकी दीवालके नरानर अथवा कहीं उससे डेढ़ गुना अथवा कहीं दुगुने मापके मण्डप बनाये जाने चाहिये। प्रासादके लतामण्डपकी भूमि विषम तथा चित्र-विचित्र (रंग-बिरंगी) वर्णकी बनानी वाहिये। परिमाण-विरोध रहनेपर उसे विषम रेखाओंसे अलंकृत किया जा सकता है।

प्रासादकी आधारभूमि प्रत्येक दिशाओंमें अवस्थित चार द्वार्वे और चार मण्डपोंसे सुशोधित होनी चाहिये। जो प्रासाद सी शृंगोंकाला अर्थात् सी मीनारोंसे युक्त रहता है, उसे मेर-संज्ञासे अधिहित किया जाता है। यह अन्य प्रासादोंकी अपेक्षा उत्तम कोटिका होता है। इस प्रकारके प्रासादमें प्रत्येक मण्डप क्षीन-तीन भद्रगृहोंसे अलंकृत होने चाहिये।

निर्माणपद्धति, आकार और परिमाणके वैभिन्यके कारण वे प्रासाद भिन्न-भिन्न प्रकारके हो जाते हैं। जिनमें कुछ प्रासादोंका आधार होता है, किंतु कुछ आधारसे रहित होते हैं। वे प्रासाद अपने छन्दक अर्थात् छत-निर्माणके भेदसे भी भिन्न-भिन्न प्रकारके हो जाते हैं। रचना-पद्धति तथा नामके भेदसे परस्पर सांकर्यके कारण भी भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रासाद हो जाते हैं।

देवताओंकी विशेषताके कारण बहुत प्रकारके प्रासाद

बताये गये हैं। यद्यपि स्वयंभू (स्वत: प्रादुर्भृत देवमृति) चाहिये। प्रासादके विभिन्न दिशाओंके मुख्य द्वारोंपर अलग-देवताओंके लिये निर्मित होनेवाले प्रासादके निमित्त कोई नियम नहीं हैं, तथापि देवोंके लिये उक्त मानके अनुसार हो। देवालयमें रहनेवाले सेवकवर्गके लिये आवास बनवाना उन प्रासादोंका निर्माण करवाना चाहिये, जो चतुरस्र अर्थात् चौरस भूमिपर समान चार कोजोंसे समन्तित हों। वे प्रासाद चन्द्रशालाओं (बारादरी)-से युक्त तथा भेरीशिखर चाहिये। ऐसे प्रासादोंमें देवताओंको स्थापित करके उनकी (नौबतखानों)-से संयुक्त होने चाहिये। उनके सामनेके अध्यादिक विविध प्रकारके उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये। भागमें वाहनोंके लिये लघु मण्डप भी निर्मित हों। जासुदेव तो सर्वमय हैं, उनके भवनका निर्माण करनेवाला

अलग द्वारपाल बनाने चाहिये। उस देवप्रासादसे कुछ दूर चाहिये।

देवप्रासादकी भूमि फल, पुष्प और जलसे परिपूर्ण होनी देवप्रासादके द्वारदेशकी सित्रिधिमें नाट्यशाला बनानी व्यक्ति सभी फलोंको प्राप्त करता है। (अध्याय ४७)

देव-प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि

विधिको संक्षेपमें कह रहा है। प्रशस्त तिथि-नक्षत्रादिमें या स्वच्छ मिट्टीसे लीपकर उसमें होम करते हैं। प्रतिष्ठा करवानी चाहिये।

अनुसार या प्रणव-मन्त्र (ॐकार)-का उजारण करके न्ययोध (वट), उदुम्बर (गुलर), अक्षत्य (पीपल), पाँच या उससे अधिक ऋत्विजोंके साथ मध्य स्थानमें स्थितः बिस्न, पलाज, खदिर (खैर) काष्ट्रसे निर्मित होने चाहिये। आचार्यका बरण करे। तदनन्तर पाद्य, अर्घ्य और मुद्रिका, प्रत्येक तीरणस्तम्भका परिमाप पाँच हाथ होना चाहिये और वस्त्र-गन्ध-माल्य एवं अनुलेपनीय द्रव्योंसे उनका पूजन प्रत्येक स्तम्भको वस्त्र-पुष्पादिसे अलंकृत करना चाहिये करे। गुरुको चाहिये कि वे मन्त्रन्यासपूर्वक प्रतिष्टाकर्मका तथा उसके निचले भागको एक हाथ नापकर पृथ्वीमें गाड समारम्भ करें।

थर्गीकार सोलह खाम्भीवाला मण्डप तैयार करके उसमें करवाना चाहिये। पूर्व दिशामें वर्गाकार, दक्षिणमें धनुषाकार, पश्चिममें वर्तुलाकार उत्तर द्वारकी दिशामें देवशार्दूलका न्यास करना चाहिये।

सुतजीने कहा — अब मैं सभी देवताओंकी प्रतिष्टा- कुछ लोग मण्डपके ईशानकोणकी भूमिको गायके गीयर

मण्डपर्में लगे तोरणीके समीप ही पूर्वादिक दिशाओंमें सर्वप्रथम अपनी वैदिक शाखामें कहे गये विधानके चार द्वारोंका निर्माण करवाना चाहिये। मण्डपके तौरणस्तम्भ देना चाहिये। तेष चार हाथ परिमाणका भाग कपर रखें। प्रासादके अग्रभागमें दस अथवा बारह हाचका एक इसी प्रकार उन्हें मण्डपके चारों ओरकी दिशाओंमें स्थापित

(पूर्वादिक चारों दिशाओं और ईशानादिक चार विदिशाओंमें मण्डपके पूर्वी द्वारपर मृगेन्द्र, दक्षिणी द्वारपर हयराज, एक-एक ध्वजा—इस तरह) कुल आठ ध्वजोंको प्रतिष्टित पश्चिमी द्वारपर गोपति तथा उत्तरी द्वारपर देवशार्दुलका न्यास करना चाहिये। तदनन्तर मण्डपके मध्यभागमें चार हाथ करे। पहले 'अग्निमीळे०' इस मन्त्रसे पूर्व द्वारकी दिशामें परिमाणकी एक बेदीका निर्माण कराये। उस बेदीके मृगेन्द्रका न्यास करे। तदनन्तर 'ईवेस्वेति छ०' इस मन्त्रसे ऊपरी भागमें नदियोंके संगम-स्थलके किनारेसे लाबी गयो दक्षित्र द्वारकी दिशामें हयराजका, 'अन्न आचाहि॰' इस मन्त्रसे बालुका बिछाये। प्रधान कुण्डका निर्माण करवाकर उसके पश्चिम द्वरकी दिशामें गोपतिका और 'शं तो देवीo' मन्त्रसे

और उत्तरमें पद्माकार—इस प्रकार पाँच कुण्डोंका निर्माण मण्डपकी पूर्व दिशामें मेघवर्णके समान श्याम, करवाना चाहिये अथवा सभी कुण्ड चौकोर रखे जा सकते हैं। अग्निकोणमें भूपवर्ण, दक्षिण दिशामें कृष्णवर्ण, नैर्ऋत्यकोणमें कुण्ड-निर्माणके पश्चात् समस्त कामनाओंकी सिद्धिके धृसरवर्णः, पश्चिम दिशामें पाण्ड्रकर्ण, बायुकोणमें पीतवर्ण, लिये आचार्य, शान्तिकर्मके लिये विहित विधिसे हवन करे। उत्तर दिशामें रक्तवर्ण, ईशानकोणमें शुक्लवर्ण तथा मण्डपके

१-पीलापनके साथ शुक्लवर्ण पाण्डुस्तर्ग है और बोड़ा कम पाण्डुस्वर्ण धूकावर्ग है।

मध्यभागमें अनेक वर्णवाली पताकाको स्थापित करे।

'इन्द्रविद्येतिo'इस मन्त्रसे पूर्व दिशामें इन्द्र, 'संसुप्तिo' इस मन्त्रसे अग्निकोणमें अग्नि, 'यमोनाग०' इस मन्त्रसे दक्षिणमें यम, 'रक्षोहणावेति०' मन्त्रसे (नैर्ऋत्यमें निर्ऋति) पश्चिममें वरुण तथा 'ॐ बातेतिः 'मन्त्रसे वायव्यमें वायुदेवका अभिषेक करके उत्तरमें 'ॐ आप्यायस्वेति॰' मन्त्रसे कुबेरकी पूजा करे। 'ॐ तपीशाय॰' इस मन्त्रसे ईशान दिशामें ईशान और मण्डपके मध्यधागर्मे 'ॐ विकालोंकेति०' मन्त्रसे विष्णुका पूजन करना चाहिये।

प्रत्येक तोरणके समीप दो-दो कलक स्थापित करनेके पक्षात् वस्त्र तथा उपवस्त्रसे आच्छादित, चन्दनादि सुगन्धित पदार्थीसे अलंकत, पुष्प, विकान एवं अन्यान्य पुजा-उपचारोंसे सुशोधित दिक्यालींकी पूजा करनी चाहिये।

'ॐ त्रातार्यमन्द्रo' मन्त्रसे इन्द्र, 'ॐ अग्निर्मूर्याo' मन्त्रसे अग्नि, 'ॐ ऑस्मिन्युक्ष०' मन्त्रसे निकंति, 'ॐ कि से दधातुः 'मन्त्रसे वरुण, 'ॐ आचल्याः 'मन्त्रसे कुनेर, 'ॐ इमा क्रोतिक' मन्त्रसे रुद्र आदि दिक्यालीको पूजा करके विद्वान् आचार्यको चाहिये कि वह वायव्यकोणमें होमद्रव्य एवं अन्य पूजामें प्रयुक्त वस्तुओंको स्थापित करे।

तदनन्तर वह गृरु वहाँ रखी गयी धेत संखादिक सास-विहित समस्त वस्तुओंपर एक बार र्राष्ट्रपात कर ले, ऐसा करनेसे निश्चित द्रव्योंकी शुद्धि हो जाती है।

तत्पश्चात् हृदयादि षडङ्कोंका न्यास व्याहति और प्रणवमन्त्रसे संयुक्त करके क्रमश:-(ॐ इदकाय नय:, ॐ भू: शिरसे स्वाहा, ॐ भूव: शिखायै वषट, ॐ स्व: कतवाय हुए, ॐ भूर्भृत: स्य: नेत्रत्रवाय वीषट्, ॐ भूर्भृत: स्यः करतलकरपृष्टाभ्यां फट् मन्त्रका उच्चारण करते हुए) हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र, करतल और करपृष्ठका रपर्श करे। तदेनन्तर 'ॐ अस्त्राय फट्' मन्त्रसे अस्त्रका न्यास भी करना चाहिये, क्योंकि यह न्यास-कर्म समस्त इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला होता है।

अस्त्र-मन्त्रके द्वारा अक्षत और विष्टरको अभिमन्त्रित करके उसी विष्टरके द्वारा यज्ञमण्डपमें एकत्रित समस्त द्रव्योंका स्पर्श करे। तत्पश्चात् अस्त्र-पन्त्रसे पवित्र किये गये दिशासे लेकर अग्निकोण, दक्षिण, नैर्फ़ल्यकोण, पश्चिम, बायुकोण, उत्तर और ईशानकोणपर्यन्त मण्डपमें अभिमन्त्रित अक्षतोंका निक्षेप करके सम्पूर्ण यज्ञ-मण्डपका लेपन करवाना चाहिये।

तदननार याजिक गुरुको चाहिये कि वह अर्घ्यपात्रमें गन्धादिसे युक्त जलको पूर्णकर मन्त्रसमूहोंसे उसे अभिमन्त्रित करे । उसी अधिमन्त्रित जलसे यज्ञमण्डपका प्रोक्षण करना चाहिये। उसके बाद जिस देवकी प्रतिष्ठा करनी है, उसी देखके नामसे मण्डपके ईशानकोणमें कलश स्थापितकर उसके दक्षिण भागमें अस्य-मन्त्रसे अभिमन्त्रित वर्द्धिनीकी स्थापना करे। उसके बाद कलश, वर्द्धिनी, ग्रह और वास्तोष्पति देवको यथाविहित आसनपर प्रतिष्ठाके साथ पूजा करके आवार्य प्रणय-मन्त्रका जप करे। तदननार सूत्रसे बेहित, प्रकारबीसे युक्त दो वस्त्रीसे आच्छादित सब प्रकारको औषधियाँ तथा चन्दनादि सुगन्धित पदार्थीसे अनुलिप्त उस कलशकी पुनः पूजा करे, साथ ही उस कलतमें प्रतिष्ठित देवताकी भी पूजा करनी चाहिये।

तदननार उत्तम वस्त्रसे वद्धिनीको आच्छादित करके उसके साथ कलशको भुगाये। वर्द्धिनोकी जलधारासे उस कुष्भको सिक्ति करके उसके आगे ही बर्द्धनीको स्थापित करे। वर्दिनोकं साथ दस कुम्भका पूजन करके स्थण्डिलमें मूल देवताकी पूजा करे।

उसके बाद वायञ्चकोणमें एक घटकी स्थापना करनी चाहिये। उसमें गलपतिका आवाहनकर 'ॐ गणानां त्वेति०' मन्त्रमे उनको पुजा करके ईशानकोणमें दूसरा घट स्थापित करे। उसमें वास्तुदोष-परिहारके लिये 'ॐ वास्तोष्पते०' इस मन्त्रसे कास्तुदेवकी पूजा करनी चाहिये। कुम्भके पूर्वभागमें भूत और गणदेवको बलि प्रदानकर बेदीका आलम्भन करे। तदननार 'ॐ योगेयोगेति०' मन्त्रसे हरे कुशीका आस्तरण करे और ऋत्विजोंके साथ आचार्य तथा यहदीक्षित वह श्रेष्ठ यजमान स्नान-पीठपर उस देवमूर्तिको प्रतिष्ठित करे। उस समय विविध वैदिक मन्त्रीच्चारके साथ जय-जयकारकी मङ्गल 'ध्वनि करनी चाहिये।

स्नान करवानेके लिये पीठसहित उस देवपूर्तिको उन अक्षतींको अपने चारों और बिखेर दे। उसके बाद पूर्व ब्रह्मरबपर बैठाकर ईशानकोणमें अवस्थित मण्डपपीठमें

स्थापित करे। तदनन्तर 'ॐ भद्रं कर्णेति०' मन्त्रसे स्नान कराकर यज्ञीय सूत्र या वल्कल वस्त्रसे पोंछकर मूर्विको स्वच्छ करके तूर्यादिक बाद्य-यन्त्रोंका वादन करते हुए लक्षणोद्धार (मूर्तिका नामकरण) करे।

उसके बाद कांस्य या ताग्र-पात्रमें स्थित यूत और मधुसे मिश्रित अञ्चनको सोनेकी जलाकासे लेकर उस प्रतिमाकी आँखोंमें अञ्चन करे। अञ्चन लगानेके लिये 'ॐ अग्निज्योंतीतिo' मन्त्रसे देवके नेत्रोंको उद्घाटित करना चाहिये।

अञ्जनादिसे सुर्शोभित उस देवप्रतिमान्य नामकरण स्वापना करनेवाला व्यक्ति करे। तदनन्तर 'ॐ इमं में माङ्गेति०' मन्त्रसे प्रतिमाके नेत्रीमें शीतल-क्रिया (शीतलीकरण)-का सम्पादनकर 'ॐ अग्निम्द्रिति॰' मन्त्रसे बाँबी अर्घात् दीमकादिके द्वारा एकत्रित की गयी मिट्टी उस देवमूर्तिको समर्पित करे और बिल्ब, गूलर, पीपल, वट, पलाशद्वारा निर्मित पश्चकपायको लेकर 'ॐ यज्ञायज्ञीति०' मन्त्रसे प्रतिमाको स्नान कराये। तत्पश्चात् पञ्चगव्यसे स्नान कराकर सहदेवी, बला, शतमूली, शतायरी, भृतकुमारी, गृङ्क्ची, सिंही तथा व्याप्री—इन और्याधर्योसे युक्त जलसे 'ॐ या ओक्सीतिव' मन्त्रद्वारा स्नान कराये। तदनन्तर 'ॐ याः फलिनीति०' मन्तके द्वारा फल-स्नान करानेका विधान है।

तत्पश्चात् 'ॐ द्रुपदादिखेतिव'मन्त्रसे विद्वानीको उद्वर्तन-कृत्य करना चाहिये। अनन्तर तत्तर आदि दिशाओंने क्रमत: चार कलज़ॉका स्थापन करना चाहिये और उन कलज़ॉमें विविध रत्न, सप्तधान्य श्रीर शतपुष्पिका नामक औषधिका निक्षेप करना चाहिये। इसके अतिरिक्त उन चारों कलहाँमें नारों समुद्र एवं चारों दिशाओंके अधिष्ठाता देवोंका आबाहन करना चाहिये। साथ ही दूध, दही, क्षीरोदक एवं यृतोदकसे चारों कलश्रोंको पृथक्-पृथक् परिपूर्ण करके 'आप्यादान्व०' इस मन्त्रसे दुग्धकुम्भ, 'दिधकाळगो०' मन्त्रसे दिधकुम्भ, 'या ओषधी०' इस मन्त्रसे क्षीरोदककुम्भ तथा 'तेजोसि०' मन्त्रसे पृतकुम्भको अभिमन्त्रित करना चाहिये। अभिमन्त्रित इन चारों कलशोंको चार समुद्रोंका प्रतिनिधि समझते हुए इनके द्वारा देवप्रतिमाको स्नान कराना चाहिये।

इस प्रकार स्नान-सम्पन्न उस देवप्रतिमाको सुन्दर वेश-भूयासे अलंकृत करके गुग्गुलका धूप प्रदान करे। तत्पश्चात् पुन: कुम्भोंमें पृथ्वीपर विद्यमान सभी तीथाँ, नदियों तथा सागरोंका विन्यास करना चाहिये। उन कुम्भोंको 'ॐ या ओषधीति॰' मन्त्रसे अधिमन्त्रित करके उनसे पुनः उस देवप्रतिमाका अभिषेक करे। जो व्यक्ति अभिषेकके अवशिष्ट

जलसे स्नान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। समुद्रके प्रतिनिधिकय उन कुम्भोंसे उस देवमूर्तिका आभिषेक-कृत्य सम्पन्न होनेके पक्षात् अर्घ्य प्रदान करके 'ॐ यख्द्वारेति०' मन्त्रसे सुगन्धित चन्दनादि पदार्थीद्वारा अनुलेप करे। साथ ही शास्त्रोंमें विविध वेदमन्त्रोंसे देवमूर्ति-न्यासकी प्रक्रिया भी सम्यन्न करे। तत्पक्षात् 'ॐ इमं बस्बेति॰ मन्त्रके द्वारा वस्त्रोंसे मूर्तिको आच्छादित करे। उसके बाद 'ॐ कबिहाबितिo' मन्त्रका उच्चारण करते हुए उस प्रतिमाको सुन्दर मण्डपमें ला करके 'ॐ शम्भवायेति०' मन्त्रसे जञ्बापर स्थापित करे। तदनन्तर '३७ विश्वतशक्ष्यः' मन्त्रका उच्चारणकर समस्त पूजाविधिको सब प्रकारसे परिपूर्ण करे। तत्पक्षात् वहाँपर बैठकर परमतत्त्वका ध्यान करते हुए आचार्यको शास्त्रीय विधानके अनुसार मन्त्रन्यास करना चाहिये। मन्त्रन्यासको प्रक्रिया मन्त्रशास्त्रोमें बतायी गयी है। इस न्यासके बाद मण्डपमें प्रतिष्ठापित देवप्रतिमाको वस्त्रमे आच्छादित करना चाहिये और उसकी यथाविधि पुन: पुजा भी करनी चाहिये। शास्त्रीय विधिक अनुसार जो देवताको समर्पित करना है, वह उनके पादमूलमें समर्पित कर देना चाहिये। इसके अतिरिक्त देवताके तिरोधागमें दो वस्त्रोंसे वेष्टित, स्वर्णसे युक्त एवं प्रणवसे ऑकत कलत्र स्थापित करना चाहिये।

तदनतर कुम्भके सन्निकट बैठकर आचार्य बेदमन्त्रोत्चारके साथ अग्निकी स्थापना करे। तदनन्तर पूर्वदिशामें ऋग्वेदवेता ऋषिक कुण्डके समीप बैठकर श्रीसुक्त तथा पवमान आदि स्टोंका पाठ करे।

कुण्डके दक्षिण दिशामें स्थित अध्वर्यु अर्थात् यजुर्वेदवेता आचार्य रुद्रसुक्त तथा पुरुषसुक्तका पारायण करे। कुण्डके पश्चिममें बैठा हुआ उट्टाता सामवेदीय आचार्य वेदबत,

१-जी, धान, तिल, कैंगनी, मूँग, चना, साँवा—इन धान्यांका समृह सख्यान्य कहलाता है।

२-शतपुष्पिका सींफ या वनसींफको कहते हैं।

वामदेव्य, ज्येष्टसाम, रथन्तर एवं भेरुण्डसामका पाठ करे। यजमानको अभिलापा पूर्ण हो जाती है। ऐसे ही कण्डके उत्तरमें स्थित अधवंवेदवेता अधवंशित्स् कुम्भस्क, नीलरुद्रस्क एवं मैत्रस्कका पारायण करे।

तदनन्तर आचार्य अस्त-मन्त्रके द्वारा भलोभौति कण्डका प्रोक्षण करके स्वसामध्यके अनुसार प्राप्त ताम या अन्य किसी धातुसे निर्मित पात्रमें अग्नि ग्रहणकर उस मूर्तिके आगे स्थापित करे । तत्पश्चात् उस अग्निको अस्त्र-मन्त्रसे प्रन्वसित करके कवच-मन्त्रके द्वारा वेष्टित कर देना चाहिये (इसे अग्निका अमृतीकरण-कृत्य कहते हैं)।

इस प्रकार अमृतीकत अग्निको गुरु वेदमन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके पात्रसहित कुण्डके चारों और युमाये और वैष्णवयोगसे उसे प्रज्वलितकर वहीं कुण्डके मध्य स्थापित करे। अग्निके दक्षिणमें ब्रह्मा और उत्तरमें प्रणीताको स्थापितकर कण्डकी प्रत्येक दिशाओं एवं विदिशाओं में कुशके विष्टरों से परिधिका निर्माण करे।

तदनन्तर गुरु ब्रह्मा, विष्णु, हर और ईशानकी पूजा करके दशींके ऊपर आनिको रखकर दर्शने ही बेहित करके दर्भजलसे ही प्रोक्षण करे, क्योंकि कुशाद्वारा प्रदत्त जलका प्रोक्षण करनेसे बिना मन्त्रके भी शुद्धि हो जाती है और पूर्वाग्, उत्तराग्र एवं पश्चिमाग्र अखण्डित तथा विस्तृत कुशाओंसे बेष्टित बहिमें देवताका सांनिष्य स्वयं ही ही जाता है।

अग्निकी रक्षाके लिये मन्त्रज्ञोंने जो उपर्युक्त नियम कहे है, उनके विषयमें कुछ आचार्योंका विचार है कि उन सभी कत्योंको जातकर्म-संस्कारके पक्षात् करना चाहिये।

अग्निका पवित्रीकरण करके आचार्यको आन्य-संस्कार करना चाहिये। अनन्तर आज्य (युत्त)-को आहुतियोग्य बनानेके लिये उसका अवेक्षण, निरोक्षण, नीराजन एवं अभिमन्त्रण करके उसके द्वारा मुख्य हवनके पूर्व करणीय आज्यभाग एवं अभिघार' नामका कृत्यविशेष सम्पन्न करना

इन वेद-विहित नियमोंसे उत्पन्न हुई अग्नि सभी कार्योमें सिद्धि प्रदान करनेवाली होती है। अतएव पुन: उसकी पूजा करके अन्य सभी कुण्डोंमें उसे प्रतिष्ठित करना चाहिये। वहाँ प्रत्येक आचार्य अपने शाखामन्त्रोंसे इन्द्रादि सभी देवोंको सौ-सौ आहुतियाँ प्रदान करे। सौ आड्रतियोंके पश्चात् पूर्णाहृति समर्पित करके सभी देवोंको एक-एक आहुति पुन: प्रदान करनी चाहिये।

होता अपने द्वारा अनुष्टित आज्याहृतियोंके शेष भागको यचाविधान कलरूमें समर्पित करे। इसके बाद आचार्य देवता, मन्त्र एवं आग्निके साथ अपने तादातम्बकी भावना करते हुए पूर्णाहृति सम्बन्न कराये।

यडमण्डपसे बाहर आकर आचार्य दिक्पालोंको योल प्रदान करे। इस बलिक्ट्यके साथ भूतों, देवताओं और नागोंको बलि देनी चाहिये। तिल और समिधा-यही दो होम पदार्थ विक्रित है। आरूप तो उन दोनोंका सहयोगी है, क्योंकि धृतके बिना इक्तीय द्रव्य अक्षय (परिपूर्ण) नहीं होता।

इस इक्नकृत्यमें प्रथसक, स्द्रसक, ज्येष्ठसाम तथा 'तप्रवामि' इस मन्त्रसे युक्त भारण्डसुक्त, महामन्त्रके रूपमें प्रसिद्ध नीलरद्रसुक एवं अचर्तके कुम्भसुकका पारायण यधाक्रम पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम आदि दिशाओं में आसीन करिवजासे करवाना चाहिये। इस हवन-कर्ममें एक-एक सहस्र आहुतिका विधान है और इन आहुतियोंमें बेदोंके आदि मन्त्रों, देवताके नाम-मन्त्रों, अपनी शाखाके विहित मन्त्रों, गायत्री-मन्त्रके साथ यथानिधान व्याहति एवं प्रणवका प्रयोग करना चाहिये। साथ हो यह भावना करनी चाहिये कि इस इन आइतियोंको देवताके शिरोभाग, मध्यभाग तथा पादभाग आदिमें समर्पित कर रहे हैं और स्वयंको देवमय समझना चाहिये।

इस प्रकार होम-विधिको सम्पन्न करके देशिक (आचार्य)-चाहिये। तदननार उस आव्यसे पौंच-पाँच आइतियाँ देनी को चाहिये कि वह देव-विग्रहमें मन्त्रोंका न्यास करे। चाहिये। उसके बाद गर्भाधान-संस्कारसे लेकर गोदान-संस्कारपर्यन यथा— 'ॐ अग्निमीळे०' मन्त्रका देवके दोनों चरणों में, अग्निका संस्कार करके आवार्यको अपनी शाखाके अनुसार 'ॐ इचेत्वेति०'सन्त्रका दोनों गुल्फोंमें, 'ॐ अग्न आयाहि०' विहित मन्त्रोंसे अथवा प्रणवसे आहुति प्रदान करनी चाहिये। मन्त्रसे देवकी दीनों जंघाओंमें, 'ॐ शं नो देवी०' मन्त्रका आचार्य अन्तमें पूर्णाहृति प्रदान करे, क्योंकि पूर्णाहृति देनेसे दोनों जानुओंमें, 'ॐ बृहद्रखन्तर०' मन्त्रका दोनों करुओंमें

१-अभिषार (आधार) एवं आञ्चभाग आहुतिविशेयका नाम है। यह कुशकण्डिका नामके विशेष कृत्यके सम्पादन-कालमें मुख्य आहुतियोंके पूर्व अवश्य करणीय है।

न्यास विहित है। देवके उदर भागमें भी इसी प्रकार न्यास वश्वाविधि विन्यास एवं अभिमन्त्रण करे। साथ ही सप्रतिष्ठित करना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ दीर्घायुष्टाव०' मन्त्रका देवके हृदयमें, 'ॐ श्रीश्रते०' मन्त्रका गलेमें, 'ॐ प्रातारमिन्द०' मन्त्रका वक्ष:स्थलमें, 'ॐ ऋम्बकः 'मन्त्रका दोनों नेत्रोंमें तथा 'ॐ मुद्धां भवः 'मन्त्रका मस्त्रकमें न्यास करके विहित लानमृहतंमें हवन करे।

इसके पश्चात् ' 🕉 उत्तिष्ट ब्रह्मणस्पतेः ' मन्त्रसे देवमूर्तिका उत्थापन करके मन्त्रयेला आचार्य 'देवस्य त्वा०' मन्त्रसे मृर्तिका स्पर्श करते हुए वेदोक पुण्याहवाचनके साथ देवप्रासादको प्रदक्षिणा करे। इसके अनन्तर विविध रव विविध धात् लौहद्रव्य एवं विधानके अनुसार अनेक प्रकारके सिद्धबीजोंके साथ दिक्पाल आदि देवताओंकी प्रदक्षिणा बिहित है। इसके अनन्तर यथास्थान प्रधान देवप्रतिमाकी प्रतिष्ठा होनी चाहिये।

देवमृतिको मन्दिरके मुख्य गर्भभागमें स्थापित नहीं करना चाहिये और न उस गर्भका परित्याग करके अन्यत ही उसकी स्थापना होनी चाहिये, अपितु गर्भभागका कुछ मध्यभाग छोडकर उसे स्थापित करनेसे दोषका परिहार हो जाता है। अत: तिलके कणमात्र परिमाणमें मूर्तिको उचरको ओर कुछ बढ़ा लेना चाडिये।

'देवस्य त्वा सवितु:o' आदि मन्त्रोंसे गुरु देवमृर्तिका प्राप्त हो जाती है। (अध्याय ४८)

देवप्रतिमाको यथाविधान सम्पातकलशके जलसे ही स्नान

तदननार धूप-दीप, अन्य सुगन्धित पदार्थ तथा नैवेद्यसे उस देक्प्रतिमाको विधिवत पूजा करके अध्यं प्रदान करे और प्रणाम निवेदन करके क्षमा-प्रार्थना करे।

उसके बाद अपनी शक्तिके अनुसार यजमान ऋत्विजोंको पात्र, बस्त्र एवं उपबस्त्र, छत्र, सुन्दर बहुमूल्य अँगृठी तथा दक्षिणा देकर संतुष्ट करे। तदनन्तर सावधान होकर यजमान चतुर्धी होम करे। सौ आहुतियोंको देकर अन्तमें वह पूर्णाहति प्रदान करे।

इसके बाद आचार्य मण्डपसे बाहर आकर दिक्पालींको बलि प्रदान करके पुष्प लेकर 'क्षमस्व' इस वाक्यसे उन देवाँका विसर्जन कर दे।

इस प्रकार यह पूर्ण होनेके पक्षात् आचार्यको कपिला धेनु, वामर, मुकुट, कुण्डल, छत्र, केयुर, कटिसूत्र, व्यजन (पंखा), वस्त्रादि वस्तुएँ, ग्राम तथा साज-सज्जापूर्ण सुन्दर भवन प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर आचार्य तथा अन्य सहयोगीजनोंके लिये सुन्दर विशाल भीजका आयोजन कराकर सबको संतुष्ट करना चाहिये। ऐसा करनेसे यजमान 'ॐ स्थिरो भव', 'ग्रिको भव', 'ग्रजाभ्यक्ष नमी नमः', कृतार्थ हो जाता है और वास्तुदेवकी ग्रसन्नतासे उसे मुक्ति

वर्ण एवं आश्रमधर्मोंका निरूपण

ब्रह्माजीने कहा - हे व्यासजी महाराज! स्वायम्भूव मन आदि शास्त्रकारीके द्वारा पुज्य तथा सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेवाले भगवान् हरिको पूजा ब्राह्मणादि चारों वर्ण अपने-अपने धर्मके अनुसार करते हैं। मैं पृथक्-पृथक रूपसे उनके धर्मोंको कह रहा है। आप उसे सुनें।

हे ब्राह्मणश्रेष्ट! यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह, अध्ययन और अध्यापन-ये छ: कर्म ब्राह्मणके धर्म है। दान् अध्ययन तथा यज्ञ-ये क्षत्रिय एवं वैश्यके साधारण धर्म हैं। इसके अतिरिक्त दण्ड क्षत्रियके लिये और कृषि करना वैश्यके लिये विशेष धर्म स्वीकार किया गया है।

धर्मानुसार वे पाकपज्ञ-संस्थाका निर्वहन भी कर सकते हैं। भिक्षाचरण, गुरु-शृक्ष्या, स्वाध्याय, संध्या तथा अग्नि-कार्य-ये ब्रह्मचारियोंके धर्म है।

चारों आन्नमोंके दो भेद माने गये हैं। इसके अनुसार ब्रह्मचारीके उपकर्वाण तथा नैष्टिक-ये दो भेद हैं। जो द्विज विधिवत वेटारिका अध्ययन करके गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट हो जाता है वह उपकुर्वाण है। जो मृत्युपर्यन्त गुरुकुलमें निवास करते हुए बेदाध्ययन करते रहते हैं - ब्रह्मतत्पर होते हैं. उन्हें नैष्टिक ब्रह्मचारीके नामसे जानना चाहिये।

हे दिजब्रेष्ट! अग्निकार्य, अतिथिसेवा, यह-दान और ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-इन तीनीं द्विजातियोंकी देवार्चन-ये सभी गृहस्थोंके संक्षिप्त धर्म हैं। गृहस्थके सेवा करना शुद्रोंका धर्म है। शिल्पकारी उनकी आवीविका है। साधक और उदासीन दो प्रकार हैं। जो गृहस्थ परिवारके

भरण-पोषणमें लगा रहता है, वह साधक है। जो गृहस्य पितुऋण, देवऋण और ऋषिऋण-इन तीनोंसे मुक्त होकर पत्री-धनादिका भी त्याग करके एकाको धर्माचरण करता हुआ विचरण करता रहता है, वह उदासीन गृहस्य है। उसीको मौक्षिक भी कहते हैं।

भूमिशयन, फल-मूलका आहार, वेदाध्ययन, तप और अपनी सम्पत्तिका यधाधिकार यधोचित विभाग- ये सभी वानप्रस्थके धर्म हैं। जो वानप्रस्थ अरण्यमें तपश्चरण करता है, देवार्चन और उन्हें आहति प्रदान करता है तथा स्थाध्यायमें सदैव अनुरक्त रहता है, वह वानप्रस्थ वापसोत्तम कहा जाता है। ऐसे ही जो वानप्रस्थ तपके द्वारा शरीरको अत्यन्त श्रीण करके ईश्वरके ध्यानमें सदा निमन्त्र रहता है. वह वानप्रस्थात्रममें रहता हुआ भी संन्याओं के कपमें जाना जाता है।

जो भिक्षु (संन्यासात्रमी) नित्य योगाध्यासमें अनुरक्त होकर ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये प्रयासस्त एवं जितेन्द्रिय बना रहता है, उसको पारमेष्टिक संन्यासी कहते हैं। जो सदैव आत्मतत्त्वानुसंधानमें प्रेम रखनेवाले हैं, नित्य तृप्त हैं, जो संयम-नियमसे रहते हैं, ऐसे महामुनि योगी भिक्षु कहे जाते है। भिक्षाचरण, बेदाध्ययन, मौनावलम्बन, तप, ध्यान, सम्यक ज्ञान और वैराग्य-ये शिक्षक (संन्यासानमी)-के सामान्य धर्म माने गये हैं।

पारमेष्ठिक संन्यासी तीन प्रकारके हैं- ज्ञानसंन्यासी, वेदसंन्यासी एवं कर्मसंन्यामी। योगीके भी तौन प्रकार है-जिन्हें भौतिक, (क्षत्र) एवं अन्याश्रमी योगी कहते हैं। ये

प्रथम प्रकारकी ब्रह्मभावना भौतिक योगीमें रहती है। इसरी पारमेश्वरी भावनाके नामसे भी जानी जाती है!।

मनुष्यको धर्मसे हो मोक्षको प्राप्ति होती है, अर्थसे काम-पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है। वेदमें प्रवृत्ति और निवृत्तिके भेदसे दो प्रकारके कर्म कहे गये हैं। वेदशास्त्रानुसार अग्नि आदि देव एवं गुरु-विप्रादिको प्रसन्न करनेके लिये जो कमं विहित हैं, वे प्रवृत्तिकर्म हैं तथा सर्विधि कर्मानुद्धानसे चित्ततृद्धिके अनन्तर आत्मज्ञानमात्रमें सदा रत रहना निवृत्तिकर्म है।

क्षमा, दम, दबा, टान, निर्लोधता, स्वाध्याय, सरलता, अनस्या, तीर्थका^र अनुसरण, सत्य, संतोष, आस्तिक्य, इन्द्रियनियह, देवार्चन -- विशेषकर ब्राह्मणोंका पुजन, अहिंसा, प्रियवादिता, अरूशता और अपैशुन्य (चुगली न करना)-इन सभीको चारों आक्षमोंका सामान्य धर्म स्वीकार किया नया है?।

इसके बाद अब मैं चारों वर्णीको प्राप्त होनेवाले स्थानके विषयमें कह रहा है।

उपर्वेक बेद-विहित कर्मीको करनेवाले ब्राह्मणीक निमित्त प्राज्ञाधत्य नामका स्थान है (अर्थात् ब्राह्मण ऐसे धर्मीका पालन करता हुआ अन्त समयमें प्राजापत्य लोक प्राप्त करता है)। युद्धमें न भागनेवाले धर्मरत धत्रियोंको स्वर्गमें इन्द्रका स्थान प्राप्त होता है। सदैव अपने धर्ममें अनुरक्त रहनेवाले वैश्य अन्तमें मरुद्र देवके स्थानको प्राप्त करते हैं। बाह्मणादि द्विजोंकी सेवामें तत्पर रहनेसे शुद्रोंकी गन्धवंशोक प्राप्त होता है।

कथ्वीतस् ब्रह्मनिष्ट अट्टासी सहस्र ऋषियोने तपस्याके द्वारा जिस स्थानको प्राप्त किया था, वही स्थान गुरुकुलमें तीनों योगमृतिस्वरूप परमात्माका आश्रयकर स्थित रहते हैं। निवास करनेवाले ब्रह्मचारीको प्राप्त होता है। जो स्थान इन योगियोंकी पृथक-पृथक ब्रह्मभावनाएँ होती हैं। मरीचि, अपि आदि सप्तर्पियोंको प्राप्त है, वह स्थान वानप्रस्थात्रमी प्राप्त करते हैं। संयमित चित्तवाले, कध्वरितस् (मोक्ष) भावना क्षत्र योगीमें रहती हैं, इसीको अक्षर भावना संन्यासियोंको वह आनन्दरूप परब्रह्मपद प्राप्त होता है। कहते हैं। तीसरी भावनाको अन्तिम भावना कहते हैं, जो जहाँसे पुन: आगमनको सम्भावना नहीं होती। यह परब्रह्मपद व्योग नामके अक्षरतस्वके रूपमें, योगियोंके अमृतस्थानके

१-बद्यभावनाके ये तीन भेट बद्यानुसंधानकी प्राथमिक, माध्यमिक और अन्तिम स्थितिको दृष्टिमें रखकर किये गये हैं।

२-'तोर्थ' जस्द केप्रताका याचक है।

३-क्षमा दमी दया दानमलोधा (भी) भ्यास एव व ॥ आर्थवं चानस्या च तीर्धानुसरणं तथा । सर्थं संतोच आस्तिक्यं तथा चेन्द्रियनिग्रहः व देवताभ्यर्वनं पूजा ब्राह्मणानां विजेषत:। आहिंसा प्रियवादित्वमपैश-यमस्थता ॥ एते आधर्मिका धर्माशाकृतंत्र्यं प्रयोग्यतः। (४९ । २१--२४)

रूपमें एवं ईश्वरसम्बन्धी परम आनन्दके रूपमें प्रसिद्ध है। इस स्थानको प्राप्त करनेवाला मुक्त आत्मा पुन: संसारमें नहीं आता है। अभी जिस मुकात्माकी चर्चा की गयी है, उसको प्राप्त होनेवाली मुक्ति अष्टाङ्ग-मार्गका सम्यक्-ज्ञान रखनेसे प्राप्त होती है। अत: मैं संक्षेपमें उसे भी कह रहा हैं। आप सुनें।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह—ये पाँच यम हैं। प्राणीको हिंसा न करना अहिंसा है। प्राणियोंके हितमें बोलना सत्य है। दूसरेकी वस्तु अपहरण न करना अस्तेय है। अमैथुनका पालन करना ब्रह्मचर्य है और सब कुछ त्याग देना अपरिग्रह है।

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तचा प्रणिधान—ये पाँच नियम है। बाह्य और आध्यन्तर रूपसे श्रीचके दो भेद हैं। इसी प्रकार संतोषको तुष्टि, इन्द्रिय-निराहको तप, मन्त्र-जपको स्वाध्याय और भगवत्पृतनादिको प्रणिधान कडते हैं?।

साधकके द्वारा पदादि प्रकारमें स्थित होना आसन कहा जाता है। वायुका निरोध करना प्राणायाम है। यह दो प्रकारका होता है। मन्त्रोच्यर करते हुए देवका ध्यान करना सगर्थ-प्राणायाम है। उसके विपरीत (अमन्त्रक, प्राणायाम) अगर्थ-प्राणायाम है। यह दो प्रकारका प्राणायाम प्रकारान्तरसे तीन प्रकारका कहा गया है। यथा- वायु अंदर खोंचकर अवस्थित होना पूरक नामक प्राणायाम है। वायुको रोककर देहेन्द्रियोंको स्थिर करना कुम्भक और उस वायुको धीरे-धीरे बाहर निकालना रेचक नामक प्राणायाम है।

बारह मात्रांवाला प्राणायाम 'लघु' है। चौबीस मात्राका प्राणायाम 'मध्यम' तथा छत्तीस मात्रावाला प्राणायाम 'उत्तम' है।

अपने-अपने विषयोंसे असम्बद्ध इन्द्रियोंके द्वारा चित्तके स्वरूपमात्रका अनुकरण करना एक विशेष प्रकारका निरोध है और इसी निरोधको प्रत्याहार कहते हैं। ब्रह्मके साथ आत्माका अभेद चिन्तन करना (ब्रह्मकास्वृत्तिका अखण्ड प्रवाह) ध्यान है। उस कालमें मनके द्वारा धैर्यका अवलम्बन करना (ध्येयमें चित्रको निश्चलरूपमें स्थिति) धारणा है।

'अहं बहा' इस प्रकार अभेद ज्ञानके साथ ब्रह्मरूपमें अवस्थिति हो समाधि है। मैं आत्या हो परमात्या— परब्रह्म है। वह परश्रहा सत्यस्वरूप, ज्ञानरूप और अनन्त है। वही ब्रह्म है। उसीको विज्ञान कहते हैं। वही आनन्दस्वरूप है, उसीका 'तत्त्वपरित' इस श्रुतिसे बोध करावा गया है। 'मैं ब्रह्म हूँ ; 'मैं अज्ञरोरो, इन्द्रियातीत हूँ, मन, बुद्धि, महत्तत्त्व, अहङ्कारादिसे रहित, जाग्रतु, स्वप्न, सुपुष्ति आदि अवस्थाओंसे मुक्त जो ब्रह्मका तेज:स्वरूप है, मैं वही हूँ। नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, साथ, आनन्दस्वरूप, अद्वय कहा जानेवाला जो वह आदित्व पुरुष है, वही मैं पूर्ण पुरुष हूँ।' इस प्रकार ब्रह्मका ध्यान करता हुआ ब्राह्मण भववन्धनसे पुक्त हो जाता है। (अध्याय ४९)

संध्योपासन, तर्पण, देवाराधन आदि नित्य कर्मों तथा आशौचका निरूपण

क्रियाओंको करता है, उसको दिख्य ज्ञानको प्राप्ति होती है। श्रीचादि आवश्यक क्रियाओंसे निवृत्त होकर पवित्र नदियोंमें अतः ब्राह्म-मुहुर्तमें उडकर मनुष्यको धर्म और अर्थका स्नान करे। प्रातःकाल स्नान करनेसे पापकर्म करनेवाले चिन्तन करना चाहिये।

इदयकमलमें विराजमान आनन्दधन, अजर, अमर, सनातन की है, क्योंकि यह स्नान लौकिक और पारलीकिक

ब्रह्माजीने कहा—जो मनुष्य प्रतिदिन शास्त्रविहित पुरुष भगवान् हरिका ध्यान करे। तदनन्तर यथाविधि मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं। इसलिये यत्रपूर्वक प्रात:काल उप:काल होनेपर विद्वान् व्यक्ति सर्वप्रथम अपने स्नान करना चाहिये। प्रात:कालके स्नानकी लोगोंने प्रशंसा

१ - यमा: पञ्च त्यहिंसाच्य अहिंसा प्राप्यहिंसनम् ॥

सायं भूतहितं वाक्यमस्तेयं स्वाग्रहं परम्। अमैधूनं ब्रह्मचर्यं सर्वत्यागोऽपरिग्रहः॥

नियमाः पञ्च सत्याद्या बाह्यमाभ्यन्तरं द्विधा ।शौवं तुष्टिश्च संतीपस्तपक्षेन्द्रियनिग्रहः॥

स्वाध्यायः स्यान्यन्त्रमयः प्रविधानं हरेर्योजः। (४९ । ३०— ३३)

२-प्रणवके जपको प्रक्रियामें 'मात्रा'का विशेष महत्त्व है। उस मात्रके अनुसार काह कर प्रणय-वपके साथ सम्पन्न प्राणायामको 'द्वादरागाप्रिक', चीबीस बार प्रणव-जपके साथ सम्पन्न प्राणाजमको ' कर्नुविज्ञतिन्याधिक' और छत्तीस बार प्रापव-जपके साथ सम्पन्न प्राणाजमको ' पर्टिजेश-मात्रिक' कहा जाता है। यहाँ प्रणवके स्थानपर बीजपन्य भी दिया जा सकता है।

फलोंको प्रदान करनेमें समर्थ होता है।

रात्रिमें सुखपूर्वक सोये हुए व्यक्तिके मुखसे निरन्तर लार आदि अपवित्र मल गिरते रहते हैं। (अत: सम्पूर्ण त्तरीर अपवित्र हो जाता है।) इसलिये प्रथमत: स्नान करके ही संध्या-वन्दनादिके धार्मिक कृत्य करने चाहिये (बिना प्रात:काल स्नान-कृत्य किये संध्या-वन्दनादि करना उचित नहीं है)।

प्रात:स्नान करनेसे अलक्ष्मी, कालकर्णी अर्थात् विध्न डालनेवाली अनिष्टकारी शक्तियाँ, दुःख्यन एवं दुर्विचारसे होनेवाले चिन्तनके पाप धुल जाते हैं, इसमें संशय नहीं। यह स्मरणीय है कि बिना स्नानके किये गये कार्य प्रशस्त नहीं होते। अतएव होम और जपादिके कार्योमें विशेषरूपसे सबसे पहले विधिवत् स्नान काना चाहिये।

अशक होनेपर बिना सिरपर जल डाले ही स्नान करनेका विधान है। आई वस्त्रसे भी शरीरको पाँछा जा सकता है। इसको कायिक स्नान कहते हैं।

ब्राह्म, आग्नेय, बायव्य, दिव्य, वारुण और यौगिक-ये छ: प्रकारके रनान हैं, यथाधिकार मनुष्यको रनान करना चाहिये। मन्त्रोंसहित कुशके द्वारा जल-विन्दुऑसे मार्जन करना साहा-स्नान है। सिरसे लेकर पैरतक यथाविधान भस्मके द्वारा अङ्गोंका लेपन आग्नेय-स्नान है। गोधृतिसे शरीरको पवित्र करना वायव्य-स्नान कहा गया है। यह उत्तम स्नान माना जाता है। धूपके साथ होनेवाली बृष्टिमें किये गये स्नानको दिव्य-स्नान कहते हैं। जलमें अचगाइन करना बारुण-स्नान है। योगद्वारा हरिका चिन्तन यौगिक स्नान है। इसीको मानस-आत्मवेदन (ब्रह्मकार अखण्ड चिसवृत्ति) कहते हैं। यह यीगिक स्नान बहावादियोंके द्वारा सेवित है, इसे ही आत्पतीर्थ भी कहते हैं।

(स्नानके पूर्व) दुग्धधारी वृक्षींसे उत्पन्न काष्ट्र, मालती, अपामार्ग, बिल्व अथवा करवीर अर्थात् कनेरको दातीन लेकर उत्तर या पूर्व दिशाकी ओर पवित्र स्थानमें बैठकर दौतोंको स्वच्छ करना चाहिये और उसे धोकर उसका

पवित्र स्थानमें त्याग करना चाहिये।

तदननार स्नान करके देवताओं, ऋषियों और पितृगणोंका विधिवत् तर्पण करना चाहिये। यहाँ यथाशास्त्र स्नानका अङ्गभुत आचमन एवं संध्योपासनके अङ्गभुत आचमनका विधान है। संध्योपासनके अङ्गरूपमें ही कशोदक विन्दुओंसे 'आपो हि हा॰ 'आदि वारूपमन्त्र एवं यथाविधान सावित्रीमन्त्रके द्वारा मार्जन करना चिहित है। इसी क्रममें ॐकार और 'भ: भुकः स्वः' इन व्याहतियोंसे युक्त वेदमाता गायत्रीका जप करके अनन्यभावसे भगवान् सूर्यके प्रति जलाञ्चलि समर्पित करे (सूर्यांच्यं प्रदान करे)।

इसी क्रममें पूर्वकी ओर अग्रभागवाले कुशोंके आसनपर समाहित्रचित्तसे बैठकर प्राणायाम करके संध्या-ध्यान करनेका बुतिमें विधान है। यह जो संध्या है, वही जगतुकी सृष्टि करनेवाली है, मावासे परे हैं, निष्कला, ऐश्वरी, केवला जिल तथा तीन तत्वोंसे समुद्धत है। अत: अधिकारी व्यक्ति (प्रात:काल) रक्तवर्ण, (मध्याह्रकाल) शवलवर्ण एवं (सार्यकाल) कृष्णवर्ण गायत्रीका ध्यान करके गायत्रीमन्त्रका जय करे।

द्विजको सदैव पूर्वाभिमुख होकर संध्योपासन करना चाहिये। संध्या-कृत्यसे रहित बाह्मण सदा अपवित्र रहता है, वह सभी कार्योंके लिये अयोग्य होता है। वह जो भी अन्य कोई कार्य करता है, उसका कुछ भी फल उसे प्राप्त नहीं होता। अनन्यचित होकर बेदपारङ्गत ब्राह्मणीने विधिवत् संध्योपासन करके अपने पूर्वजीके द्वारा प्राप्त उत्तम गतिको प्राप्त किया है। संध्योपासनका त्यागकर जो द्विजोत्तम अन्य किसी धर्म-कार्यके लिये प्रयत्न करता है, उसे दस हजार वर्षोतक नरक भोग करना पडता है। अत: सभी प्रकारका प्रयत्न करके संध्योपासन अचरण करना चाहिये.

उस संध्योपासनकर्मसे योगमृति परमात्मा भगवान नारायण पुजित हो जाते हैं। अत: अधिकारीको चाहिये कि वह पवित्र होकर पूर्वाभिमुख बैठ करके नित्य संयत-भावसे एक सहस्र या एक सौ अथवा दस बार गायत्रीका

१-प्राङ्गमुखः सततं विप्रः संध्योपासनमाचरेत्। संध्याहीनोऽज्ञाचिनित्यवनर्तः सर्वकर्यस्यः यदन्यत्कृरते किञ्चित्र तस्य फलभाग्भवेत् । अनन्यर्थेतमः संते बाद्यमा वेदपारसाः ॥ उपस्य विधिवतसंभ्यां प्राप्ताः पूर्वपरां गतिम् । योऽन्यत्र कृतते यहं धर्मकार्वे द्विजोत्तमः ॥ विहाय संध्याप्रणति स याति नरकायुवम् । तस्मात् सर्वप्रयतेन संध्योजसनमायोत् ॥ उपासितो भवेतेन देवो योगतनुः प्यः। (५०। २१- २५)

जप (अवश्य) करे। गायत्रीका एक सहस्र जप उत्तम, एक सौ जप मध्यम तथा दस बार किया गया जप कनिष्ठ जप कहलाता है।

एकाग्रचित होकर उदय होते हुए भगवान् भास्करका उपस्थान करे। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदमें आये हुए विविध सौर मन्त्रोंसे देवाधिदेव महायोगेश्वर भगवान् दिवाकरका उपस्थान करके पृथिवीपर मस्तक टेककर इस मन्त्रसे प्रणाम करे-

> 3% खखोल्काय शानाय कारणत्रवहेतवे॥ निवेदयापि चात्यानं नमस्ते ब्रानरूपियो। त्वमेव ब्रह्म परममापो ज्योती रसोऽमृतम्॥ भूर्भुषः स्वस्त्वमोङ्कारः सर्वो ४दः सनातनः।

> > (40176-30)

शान्तस्वरूप भगवान् भास्कर आप सृष्टि, स्थिति और संहार-इन तीनों कारणीके कारण हैं, आप ज्ञानस्थरूप है। में आपको आत्मनिवेदन करता हूँ, आप ही परबद्ध हैं, आप ही ज्योति:स्वरूप, अप्-स्वरूप, रसरूप तथा अमृतस्वरूप हैं। भू:, भुव:, स्व:—ये तीनों आप ही हैं और आप ही **अभ्रकाररूप, सर्वस्वरूप स्ट्र तथा अविनारी हैं, आपको** नमस्कार है।

इस उत्तम आदित्यहृदय-स्तोत्रका जप करके भगवान् दिवाकरको प्रात: और मध्याइ (तथा सायंकाल)-में नमस्कार करना चाहिये।

आचमन करे।

अग्निदेवको आहुति प्रदान करनी चाहिये। मुख्य अधिकारीको अशक्तावस्थामें उसकी आज्ञा प्राप्त करके ऋत्विक् पुत्र अथवा पत्नी, शिष्य या सहोदर भाता भी हवन करे। मन्त्रविहीन एवं विधिकी उपेक्षा करके किया गया कोई भी कर्म इस लोक या स्नानाङ्ग आचमन करके नीचे लिखे मन्त्रसे आचमन करे— परलोकमें फल देनेवाला नहीं होता।

तदनन्तर देवताओंको नमस्कार करके (अर्घ्य, पाद्य, चन्दन, सुगन्धित पदार्थका अनुलेपन, वस्त्र तथा नैवेद्यादि) पूजाके उपचारोंको निवेदनकर गुरुका पूजन करे और उनके हित-साधनमें लग जाय। तत्पश्चात् प्रयत्नपूर्वक ययास्तरिक द्विजको वेदाभ्यास करना चाहिये और उसके बाद इष्ट मन्त्रोंका जप (वेदपारायण) करके शिष्योंके अध्यापन-

कार्यमें प्रवृत होना चाहिये। वह शिष्योंको वेदार्थ धारण कराये और दत्तचित होकर वेदार्थका विचार करे। द्विजोत्तम धर्मज्ञास्त्र आदि विविध ज्ञास्त्रोंका अवलोकन करे और बेदादि निगनशास्त्रों (उपनिषदों) तथा व्याकरणादि वेदाङ्गोंका अच्छा प्रकार अवलोकन करे। इसके बाद वह पुन: योग-क्षेमके लिये राजा या श्रीमान्के पास जाय और अपने परिवारके लिये विविध प्रकारके अधौका उपार्जन करे।

इसके पश्चात् मध्याह कालके आनेपर स्नान करनेके लिये शुद्ध मिट्टी, पुष्प, अक्षत, तिल, कुश और गोमय (गायके गोबर) आदि पदार्थीको एकत्र करना चाहिये। उसके बाद नदी, देव, पोखर, तडाग या सरोवरमें जाकर स्नान करे। प्रत्येक दिन तहाग, सरोवर या नदी आदिसे पाँच मृतिकापिण्ड बिना निकाले स्नान करना दोषयुक्त होता है। (अत: पाँच पिण्ड मिट्टी निकाल करके ही स्नान करना चाहिये।) स्नानके समय (स्नानके लिये लायी गयी) मिट्टीके एक भागसे सिर धोना चाहिये, दूसरे भागसे नाभिके ऊपरी धागको और तीसरे भागसे नाधिसे नीचेके धागका वदा मृतिकाके छउँ भागसे पैरोंका प्रश्नालन करना चाहिये। इन मृतिकापिण्डोंको परिमाणमें पके हुए औंबलेके फलके समान होना चाहिये। मृतिकाके समान ही गोमय स्नान भी होना चाहिये। तदनन्तर शरीरके अङ्गोको विधिवत् धोकर आचमन करके स्नान करना चाहिये।

जरपहरूके तीरपर स्थित होकर ही मृतिका, गोमय आदिका इसके पक्षात् घर आ करके बाहाण पुन: विधिवत् अपने अब्रोमें लेपन करना चाहिये और इस लेपनके अब्रुभूत स्नानके अनन्तर पुन: वारुष (वरुपदेवताके)-मन्त्रीसे जलाशयके तदननार उसे अग्निको प्रञ्यलित करके विधिवत् भगवान् जलका आभिमन्त्रण करके पुनः जल-स्नान करना चाहियै: क्वोंकि जल भगवान् विष्णुका ही रूप है। यह स्नानकी प्रक्रिया प्रजवस्वरूप भगवान् सूर्यका दर्शनकर जलाशयमें तीन बार निमञ्जन (डुबकी लगाना)-से पूरी होती है। तदननार

> अन्तक्षरीय भूतेषु गुहायां विश्वतोषुखः॥ त्वं यहस्त्वं वषट्कार आयो न्योती रसोऽमृतम्।

> > (40184-88)

हे जलदेव! आप समस्त प्राणियोंके अन्त:करणरूपी गुहामें विचरण करते हैं। आप सर्वत्र मुखवाले हैं। आप ही यज्ञ हैं। आप हो वषट्कार हैं। आप ही ज्योति:स्वरूप तेज और आप ही अमृतमय रसस्वरूप हैं।

'द्रपटादिवo' इस मन्त्रका तीन बार उच्चारण अथवा प्रणय एवं व्याहृतियोंसहित सावित्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। विद्वान अधमर्पण-मन्त्रका जप करे। तदनन्तर 'ॐ आपो हि हा मयोधवः' 'इदमापः प्रवहत' तथा व्याहतियोंसे मार्जन करना चाहिये। अनन्तर 'आपी हि प्रा॰' इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा अभिमन्त्रित जलसे अधमर्पण-मन्त्रका तीन बार जप करते हुए अधमर्थण सम्पन्न करना चाहिये। अधमर्थणके अनन्तर 'ब्रपदादिवo' आदि मन्त्र अथवा गायत्री-मन्त्र जा 'सद्विष्णो: परमं पदम्' आदि मन्त्र अथवा प्रणवको आवृत्ति करनी चाहिये और देवाधिदेव बीडरिका स्मरण करन चाहिये। जिस जलको हाथमें लेकर अधमर्पण-क्रिया एवं मार्जन-क्रिया सम्पन्न की जाती है, उस जलको अपने सिरपर धारण करनेसे सभी प्रकारके पातकोंसे मुक्ति मिलती है। संध्योपासनके अनन्तर आचमन करके सदा परमेश्वरका स्मरण करना चाहिये। पुष्पसे यक अञ्चलिको शिरोभागसे लगाकर सूर्यका उपस्थान करना चाहिये और उपस्थानके बाद अपनी अञ्चलिक पृथ्योंको भगवान सूर्यके चरणोंमें अर्पित करना चाहिये। उदित होते हुए सूर्यको नहीं देखना चाहिये, अतः विशेष मुद्राद्वारा ही उनका दर्शन करना चाहिये। 'ॐ उद्त्यं०', 'विषं०', 'तब्धक्ष्0'- इन मन्त्रीसे तथा 'ॐ हरसः शुचिषद्व' इस मन्त्रसे और सावित्रीके विशेष मन्त्रसे एवं अन्य सुर्यसे सम्बन्धित वैदिक मन्त्रीसे सूर्यका उपस्थान करना चाहिये। तदनन्तर पूर्वाग्र कुशाओंके आसनपर बैठकर सूर्यका दर्शन करते हुए समाहितचित्रसे गायत्री-मन्त्र एवं अन्य विहित मन्त्रोंका जप करना चाहिये। मन्त्र-जपके लिये स्फटिक, स्त्राब अथवा प्रजीव (जीवन्तिका) या अब्जाक्षसे निर्मित मालाका प्रयोग करना चाहिये।

यदि आई वस्त्रीवाला हो तो जलके मध्य खडे होकर जप करना चाहिये। अन्यथा (सुखे वस्त्रोंको स्थितिमें) पवित्र भूमिमें कुशासनपर बैठकर एकाग्रवित होकर जप करना चाहिये। जपके पक्षात प्रदक्षिणाकर भूमिपर दण्डवत नमस्कार करना चाहिये। तदनन्तर आचमन करके यथाशकि अपनी ज्ञाखाके अनुसार स्वाध्याय करे। उसके बाद देवों, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। मन्त्रोंके

तर्पण अक्षत और जलके साथ करना चाहिये। पितृगणों, देवों और मनियोंके लिये अपने शाखासूत्रके विधानसे भक्तिपूर्वक तर्पण करे। तर्पण जलाञ्चलियोंके द्वारा करे। देवताओंका तर्पण यज्ञोपबीती अर्थात सच्य होकर देवतीर्थसे करे और निवीती होकर (कण्डमें यजीपवीत कर) ऋषिदोंका ऋषितीर्थसे तथा प्राचीनावीती अर्थात् अपसय्य होकर पितृतीर्थसे पितरोंका तर्पण करे।

तदननार हे हर! स्नानमें प्रयुक्त वस्त्रको निचोडकर मीन होकर आचमन करके मन्त्रोंसे पृष्य, पत्र तथा जलसे ब्रह्म, शिव, सूर्व एवं मध्सूदन विष्णुदेवका पूजन करे। क्रोधरहित होकर भक्तिपूर्वक अन्य अभीष्ट देवोंको भी पूजा करनी चाहिये। 'पुरुपसुक्त'के द्वारा पृथ्यादि समर्पित करे। जल सर्वपय देव है अर्थात समस्त देवता जलमें व्याप्त रहते हैं। अत: उस जलमात्रसे भी वे सभी देवता पुजित होते हैं। इस पुजामें पुजकको समाहितचित होना चाहिये तथा प्रणवके साथ देवताका ध्यान करना वाहिये। उसके बाद प्रणाम करते हुए समस्त देवोंको पुथक्-पुथक् पुष्पाञ्जलि समर्पित करे।

देवताओंकी आराधनाके बिना कोई भी वैदिक कर्म प्रथम नहीं होता है। अतएव समस्त कार्योंके आदि, मध्य और अन्तमें इदयसे भगवान् हरिका ध्यान करना चाहिये। 'ॐ वडिक्योरिति॰' मन्त्र तथा पुरुषसुकके मन्त्रोंका जप करते इए उस निर्मल विष्णुके परमतेजके सामने आत्पनिवेदन करे अर्थात करणागत हो जाय।

उसके बाद विष्णुमें अनुरक्तित, शान्तस्यभाव वह भक 'तदिष्यो:o' इस मन्त्रसे और 'अप्रेतेसप्रिय:o' इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित पुष्पासनपर विराजमान हरिको पुन: पुजा करके देवयह, भृतयह, पितृयज्ञ, मानुषयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ नामक पञ्चयज्ञोंको करे। तर्पणसे पूर्व ब्रह्मयज्ञ कैसे हो सकता है? अत: मानुषयज्ञ करके स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) करना चाहिये।

वैश्वदेव ही देवयज्ञ है। काक आदि प्राणियोंके लिये जो बलि प्रदान की जाती है, वह भूतयत्र है। हे द्विजीतम। चाण्डाल एवं पतित आदिको घरके बाहर अन्न देना चाहिये प्रारम्भमें ॐकारका और अन्तमें 'नम:'का प्रयोगकर और कृता आदि पशुओं तथा पश्चियोंको घरके बाहर प्रत्येक देव, ऋषि और पितृका तर्पण कर रहा हूँ-ऐसा भूमिपर अन्न देना चाहिये। पितरोंके उद्देश्यसे प्रतिदिन एक कहकर तर्पण करे। देवताओं और मरीच्यादि ब्रह्मार्थियोंका ब्राह्मणको भोजन कराये। पितरोंके निमित्त जो नित्य ब्राह्म

किया जाता है, उसीको पितृयत्र कहते हैं। यह उत्तम गति ग्रहण करना पढता है। प्रदान करनेवाला है।

अथवा समाहितचित होकर यथात्रकि कुछ कच्चा अन्न निकालकर वैदिक तत्त्ववेता विद्वान ब्राह्मणको प्रदान करे। प्रतिदिन अतिथि-सत्कार करना चाहिये। घरपर आये हुए शान्तस्यभाव द्विज (ब्राह्मण)-को मन्, और वचनसे स्वागतपूर्वक नमस्कार करे तथा उनका अर्थन करे।

एक ग्रास परिमाणमात्र अत्रको 'भिक्षा' कहा गया है। उसका जो चार गुना अन्न है उसको 'पुष्कल' तथा उस पुष्कलके चार गुना अलको 'इन्तकार भिक्षा' कहते हैं।

गोदोहनमात्र कालतक अतिथिक आगमनको प्रतीक्षा स्वयं करनी चाहिये। आये हुए अभ्यागत (अतिथि)-का सत्कार यथाशकि करना चाहिये।

ब्रह्मचारी भिक्षुकको विधिवत् भिक्षा देनी चाहिये। लोभसे रहित होकर याचकोंको अत्र प्रदान करे। तत्पक्षाव अपने चन्ध्रवनंकि साथ मौन होका अनको निन्दा न करते हए भोजन करे।

हे दिजशेष्ट! जो देवयज्ञादि पञ्चयज्ञोंको चिना किये भोजन करते हैं. वे मुद्धात्मा विर्यक-योनि (पश्चियोंकी योनि)-में जाते हैं। यथाष्ट्रकि प्रतिदिन किये जानेवाले वेदाध्यासके साथ पष्टपहायत एवं देवतार्चन तीच्र ही सभी पापोंको नष्ट कर देते हैं। जो मोहबस अथवा आलस्यके कारण विना देवार्चन किये ही भोजन करता है, उसे नाना प्रकारके कष्टदायक नरकोंमें आकर सुकरकी योनिमें जन्म

अब मैं अशौचका सम्यक् प्रकारसे वर्णन करता हूँ। जो अपवित्र है, वह सदा पातको है। अपवित्र व्यक्तियोंके संसर्गसे अशौव होता है और उनके संसर्गका परित्याग कर देनेसे ऋग्रेर पवित्र हो जाता है। हे द्विजीत्तम! सभी विद्वान ब्राह्मण दस दिनोंका अशीच मानते हैं। यह अशौच मृत्यु अथवा जन्म दोनोंमें होता है। दाँत निकलनेके पूर्वतक बालकको मृत्य होनेपर सद्य: स्नान करनेसे अशीचको निवृत्ति हो जाती है। उसके बाद चुडा (मुण्डन)-संस्कारपर्यन्त जालकको मृत्यु होनेपर एक रात्रिका अशीच होता है।

उपनयन-संस्कारके पूर्वतक बालककी मृत्यु होनेपर तीन एत्रियोंका अशीच होता है। उपनयन-संस्कारके बाद किसीका मरण होनेपर यथाविधान दस रात्रिका अशीच बाह्यणोंको होता है।

श्रविय बारह दिनोंमें, वैश्य पंद्रह दिनोंमें तथा शुद्र एक मासमें शुद्ध होता है। क्योंकि इनको यथाक्रम सारह दिनका, पंद्रह दिनका एवं एक मासका अशीच होता है। संन्यासियोंको अशीच नहीं लगता है। गर्भस्राव होनेपर गर्भम्बसके अनुसार जितने मासका गर्भ हो, उतनी राप्तिका अशीन होता है। (अर्थात् एक मासका गर्भसान होनेपर एक गत्रि, दो मासका गर्भलाव होनेपर दो गत्रिका अशीच होता है। इसी क्रममें अन्य मासोंको गणना करके अशीचकी गुजिवोंका निश्चय करना चाहिये।) (अध्याय ५०)

दानधर्मका निरूपण एवं विभिन्न देवताओंकी उपासना

कह रहा है-

प्रतिपादन (विनियोग) दान कहलाता है-ऐसा दानधर्मविद्- नित्य, नैमिक्तिक, काम्य और विमल-चार प्रकारका कहा जनोंका कहना है। यह दान इस लोकमें भोग और गया है। परलोकमें मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मनुष्यको चाहिये कि उपार्जित अर्थका ही दान-भोग सफल होता है।

ब्रह्माजीने कहा-अब मैं सर्वोत्तम दानधर्मके विषयमें कृषिकर्म तथा वाणिक्य अध्या धत्रियवृत्ति (युद्धादि कृत्य) त्याच्य है। उक्त सद्वृत्तिसे प्राप्त हुआ धन यदि सुयोग्य सरपात्रमें ब्रह्मपूर्वक किये गये अर्थ (भोग्यवस्तु)-का पात्रोंको दिया जाता है तो उसीको दान कहा जाता है। यह

फलकी अधिलापा न रखकर प्रत्युपकारकी धावनासे वह न्यायपूर्वक ही अर्थका उपार्जन करे, क्योंकि न्यायसे रहित होकर ब्राह्मणको प्रतिदिन जो दान दिया जाता है, वह नित्यदान है। अपने पापोंकी शान्तिके लिये विद्वान ब्राह्मणोंके अध्यापन, याजन तथा प्रतिग्रह-- ये तीनों ब्राह्मजोंकी वृत्ति हाधीपर जो धन दिया जाता है, सत्पुरुषोंके द्वारा अनुष्टित (आजीविका) हैं। उनके लिये कसीट अर्थात सदखोरी, ऐसा दान नैमितिक दान है। संतान, विजय, ऐश्वर्य और स्वर्ग-प्राप्तिकी इच्छासे जो दान किया जाता है, उसको धर्मवेता ऋषिगण काम्य दान कहते हैं। ईश्वरकी प्रसन्नताको प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मवित्-जनोंको सत्ववृत्तिसे युक्त चित्तवाले मनुष्यके द्वारा जो दान दिया जाता है, वह विमल दान है। यह दान कल्याणकारो है।

इंखकी हरी-भरी फसलसे यक्त या यव-गेहैंकी फसलसे सम्पन्न (शस्य-श्यामल) भूमिका दान वेदविद ब्राह्मणोंको जो देता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। भृगिदानसे श्रेष्ठ दान न हुआ है और न होगा हो।

ब्राह्मणको विद्या प्रदान करनेसे ब्रह्मलोकको प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति प्रतिदिन ब्रह्मचारीको ब्रद्धापूर्वक विचा प्रदान करता है, वह सभी पापोंसे विमृक्त होकर ब्रह्मलोकके परमपदको प्राप्त करता है।

वैशाखमासकी पूर्णिमा तिथिको उपवास रखकर जो व्यक्ति पाँच या सात ब्राह्मणोंकी विधिवत पूजा करके उन्हें मध्, तिल और घृतसे संतुष्ट करता है तथा उनकी गन्धादिसे थली प्रकार पूजा करके उनसे यह कहलवाता है या स्वयं कहता है-

> प्रीयतां धर्मराजेति यता मनीर वर्तते॥ (42123)

(हे धर्मराज। मेरे मनमें जैसा भाव है, उसीके अनुकृष्ट आप प्रसन्न हों।)

— ऐसा कहनेपर उसके जन्मभर किये गये समस्त पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं।

जो व्यक्ति स्वर्ण, मधु एवं मीके साथ तिलाँको कृष्ण-मृगचर्ममें रखकर ब्राह्मणको देता है, वह सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है।

वैशाखमासमें घृत, अत्र और जलका दान करनेसे विशेष फल प्राप्त होता है। अत: उस मासमें धर्मराजको

नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य जिस देवताकी पूजा करनेके लिये इच्छा करता है, उसकी पूजा वह अपने इष्टको प्राप्त करनेके लिये करे और उसको उस देवको प्रतिमृति मानकर प्रयत्रपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें भोजन भी कराये। साथ ही सीभाग्यवती स्त्रियों तथा अन्य देवोंको भी पुजन-भोजनादिके द्वारा संतृष्ट करे।

संतान-प्राप्तिके इच्छक व्यक्तिको इन्द्रदेवका पूजन करना चाहिये। ब्रह्मवर्चसुको कामना करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मरूपमें ब्राह्मणोंको स्वीकार करके उनकी पूजा करे। आरोप्यको इच्छावाला मनुष्य सूर्यको तथा धन चाहनेवाला मनुष्य अग्निको पूजा करे। कार्योमें सिद्धि प्राप्त करनेकी अभिलाषा करनेवाला व्यक्ति विनायक (गणेश)-का पूजन करे। भोगकी कामना होनेपर चन्द्रमाकी तथा बल-प्राप्तिकी इच्छा होनेपर वायुको पूजा करे। संसारसं मुक्त होनेकी अधिलाका होनेपर प्रयत्नपूर्वक भगवान् हरिको आराधना करनी चाहिये। निष्काम तथा सकाम सभी मनुष्योंको भगवान गटाधर हरिको पूजा करनी चाहिये।

जलदानसे तुप्ति, अप्रदानसे अक्षय सुख, तिलदानसे अभीष्ट संतान, दीपदानसे उत्तम नेत्र, भूमिदानसे समस्त अधिलिंबत पटार्थ, स्वर्णदानसे दीर्थ आयु, गृहदानसे उत्तम भवन तथा रजतदानसे उत्तम रूपको प्राप्ति होती है।

वस्य प्रदान करनेसे चन्द्रलोक तथा अश्रदान करनेसे अधिनीकमारके खोककी प्राप्ति होती है। अनहह (बैल)-का दान देनेसे विपुल सम्पत्तिका लाभ और गोदानसे सूर्यलोक प्राप्त होता है।

यान और शब्याका दान करनेपर भायां तथा भवार्त (भयभीत)-को अभय प्रदान करनेसे ऐश्वर्यको प्राप्ति होती है। धान्य-दानसे शाश्वत (अविनाशी) सुख तथा बंदके (वेदाध्यापन) दानसे ब्रह्मका सॉनिध्य लाभ होता है। उद्देश्य करके घुत, अन्न और जलका दान ब्राह्मणोंके वेदविद ब्राह्मणको ज्ञानीपदेश करनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति लिये अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेसे सभी प्रकारके तथा गायको पास देनेसे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है। भयसे मुक्ति हो जाती है। द्वादशी तिथिमें स्वयं उपवास ईंधन (अग्निको प्रञ्चलित करने)-के लिये काष्ट्र आदिका रखकर पापोंका विनाश करनेवाले भगवान विष्णुकी पूजा दान करनेपर व्यक्ति प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी हो करनी चाहिये। ऐसा करनेसे निश्चित ही मनुष्यके सभी पाप जाता है। रोगियोंके रोगशान्तिके लिये औपधि, तेल आदि

१-वारिदस्तुतिमाप्रोति सुखमक्षयमत्रदः। तिलप्रदः प्रकानिष्टां दीपदश्चक्षरतमन् ॥ भूमिद : सर्वमाप्रीति दीर्घमायुर्हिरण्यद:। गृहदोऽज्ञ्याणि वेरमानि रूप्यदो रूपमुण्यम् ॥ (५१।२२-२३)

पदार्थ एवं भोजन देनेवाला मनुष्य रोगरहित होकर सुखी देनेवाला होता है। इस प्रकारके दानका महत्त्व प्रयागादि और दीर्घाय हो जाता है।

छत्र और जूतेका दान करनेवाला मनुष्य प्रचण्ड महत्त्व रखता है। धूपके कारण तीक्ष्ण तापवाले तथा तलवारके समान तीक्ष्ण दान-धर्मसे बढ़कर श्रेष्ठ धर्म इस संसारमें प्राणियोंके

आनेपर ब्राह्मणोंको दिया गया दान परलोकमें अक्षय सुख अति निन्दित है। (अध्याय ५१)

तीर्थोंमें बहुत है, गया-क्षेत्रके तीर्थोंमें किया गया दान विशेष

भारवाली नुकीली पत्तियोंसे परिव्याप्त असिपप्रवन नामके लिये कोई इसरा नहीं है। दान स्वर्ग, आयु तथा ऐक्षर्यको नारकीय मार्गोंको पार कर जाता है। जो मनुष्य परलोकमें प्राप्त करनेको इच्छासे और अपने पापोंकी उपशान्तिके अक्षय सुखकी अभिलापा रखता है, उसे अपने लिये संसार लिये भी किया जाता है। गी, ब्राह्मण, अग्नि तथा देवोंको या घरमें जो वस्तु अभोष्टतम है तथा प्रिय है, उस वस्तुका दिये जानेवाले दानसे जो मनुष्य मोहवश दूसरोंको रोकता दान गुणवान् ब्राह्मणको करना चाहिये। 🔭 🕏 वह चापी तिर्वंक् (पक्षीकी)-योनिको प्राप्त करता है। उत्तरायण³, दक्षिणायन³, महाविषुवत्काल⁴, सूर्य तथा जो व्यक्ति दुर्धिक्षकालमें और मरणासन्न ब्राह्मणको अन्नादिका चन्द्रग्रहणमें एवं कर्क-मेच-मकरादिकी संक्रान्तियोंके दान नहीं करता है, वह ब्रह्महत्या करनेवालेके समान तथा

प्रायश्चित्त-निरूपण

करनेमें निरत मद्यपी, चोरी करनेवाला स्तेयी तथा गुरुकी रखाके लिये प्राण-परित्याग भी ब्रह्महत्या-दोषके निवारक पत्नीके साथ गमन करनेवाला गुरुतल्पगामी (गुरुपत्नीगामी)— होते हैं। इतना अवस्य ध्यानमें रखना है कि बहाहत्याके ये चार महापातको है। इन सभीका संसर्ग (साच) दोष-निवारणके लिये प्राण-परित्यागके जो साधन बताये करनेवाला प्रौचर्वो महापातको है। गोहत्यादि जो अन्य गर्थ हैं, उनको करनेके पहले यथाशकि विद्वान बाह्मणको पाप होते हैं- थे उपपातक हैं, ऐसा देवताओंका कहना है। अलटान करना ऑनवार्य है।

ब्रह्माजीने कहा-हे ब्राह्मणो। अब इसके बाद में बोचमें रुकनेकी सम्भावना न हो और मरण निश्चत हो। प्रायश्चित्त-विधिको भली प्रकार कह रहा हूँ— इसके अतिरिक्त जलती हुई अग्निमें प्रवेशकर प्राण-परित्याग, ब्राह्मणको हत्या करनेवाला ब्रह्महत्ता, मंदिरा-पान अगाध जलमें प्रवेशकर प्राण-परित्याग, ब्राह्मण या गौकी

जिसने ब्रह्महत्या को है, उसे वनमें स्वयं पर्णकृटी अश्वमेश-यज्ञके अन्तमें होनेवाले अवश्रध-स्नानसे बनाकर उसीमें उपवास करते हुए बारह वर्षोतक रहना ब्रह्महत्यांके पापसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। वेदविद चाहिये अथवा पर्वतके उस ऊँचे भागसे गिरकर अपने बाह्मणको सर्वस्य दान करनेसे ब्रह्महत्याजनित पापका नाश प्राणोंका परित्याग करना चाहिये, जिस भागसे गिरनेपर कहीं हो जाता है। सरस्वतीजी, गङ्गा तथा यमुना—इन नदियोंके

१ - वासोदश्वन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्चद्र: । अनद्भद्द: वियं पृष्टी गोटी प्रश्नस्य विष्टपम् ॥ यानमध्याप्रदो भागाँमैधर्यमध्यप्रदः। धान्यदः मधां मीकां कद्यते इत्य मध्यम् ॥ वेदवितस् ददन्तानं स्वर्गलोके महीयते । गर्वा धासप्रदानेन सर्वकरै : प्रमुख्यते ॥ इन्धनानां प्रदानेन दीशाग्रिजांयते नर:। औषधं खेहमाहारं रोगिरीपक्रकानाये ॥ रदानं रोगरहित: सन्त्री दीर्घागरेत च : अस्थितकतं सार्गं सरकाससम्बद्धान्तरम् । तीक्ष्यातम् च तरितच्छत्रोपानस्प्रदो तर:। यद्यदिकृतमं लोके यच्चास्य द्वितं गृहे ॥ तत्तदग्णवते देवं तदेवाक्षयीमच्छतः अयने विष्वं वैव प्रहणे चटम्बंयी: व संकारपादिष कालेष दर्न भवति चाधवम्। (५१। २४-३०)

२- मकर- राशिसे मिथुन राशितक सूर्यके रहनेके कालको उत्तरायण कहते हैं। यह माथ माससे आयाद मासलकका काल है।

३-कर्क राशिसे धन् राष्ट्रितक सूर्यके रहनेके कालको दक्षिणायन कहते हैं। यह प्राचन माससे पीच मासराकका काल है।

४-जिस कालमें दिन-रात दोनों बराबर होते हैं, वह विकृषकात कहा कता है। यह काल तला और मेचकी सुर्व-संक्रानिका होता है।

५-प्रयागादिए तीर्थेष गयायां च विजेयत: ३ (५१) ३१)

पापसे मुक्त हो जाता है। सेतुबन्ध रामेश्वरम् (कपालमोचन) जाता है। तीर्थ या वाराणसीके पवित्र तीर्थ)-में स्नान करके ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति हो जाती है।

जला देनेवाली) खौलती हुई मदिरा अचवा दूध, यृत या गोमूत्रका पान करके तज्जनित पापसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है। सुवर्णकी चोरी करनेवाला राजाओंके द्वारा दण्डरूपमें मुसलप्रहारसे पापमुक्त हो जाता है अथवा जीर्थ-शीर्ण वस्त्र धारण करके वनमें ब्रह्महत्यानाशक प्रायक्षित-व्रतको करनेसे पापमुक्त हो जाता है।

कामसे मोहित ब्राह्मण यदि अपने गुरुको पश्लीके पास जाता है तो उसे इस गुरुपत्नीगमनरूप पापसे मुक्त होनेके लिये जलती हुई-तपती हुई लौह-निर्मित स्थीका सर्वाह आलिङ्गन करना चाहिये। अथवा बहाहत्याके पापसे मुक्तिके लिये जो वत बिहित है, उस वतका अनुष्ठान करना चाहिये। चार या पाँच चान्द्रायणस्त करनेसे भी गुरुपत्रीगमनजनित पापसे मुक्ति हो सकती है।

अथवा वह आलस्यसे रहित होकर एक संकत्सरपर्यना दृष्टित भी अपने पतिका उद्घार कर देती है। दूर करनेवाला होता है।

पापोंका विनाश हो जाता है। अमावास्या तिथिमें जो ग्रक्षसग्रज रावणपर विजय प्राप्त की। हो जाता है।

युक्त यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल तथा फल भी प्राप्त करता है। (अध्याय ५२)

पवित्र संगमपर तीन रात्रियाँतक उपवास रख करके सर्वभूतक्षय—इन नामाँका उच्चारणकर तिलसे संयुक्त सात प्रतिदिन तीनों कालोंमें स्नान करके भी द्विज ब्रह्महत्याके जलाञ्चलियोंसे तर्पण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो

इन ब्रतोंके पालन करते समय शान्त रहकर तथा मनका निग्रहकर, ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए भूमिपर मद्यपी द्विज अग्निवर्णके सद्ज (अन्त:करणको सोना चाहिये और उपवास रखकर ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। (कार्तिक) शुक्लपक्षको पष्टी तिथिमें उपवास रखकर सप्तमी विधिको सूर्यदेवकी पूजा करनेसे भी सभी प्रकारके पापोंसे मुक्ति हो जाती है।

> जुक्लपक्षकी एकादशी तिथिमें निराहार रहकर जो द्वादतो तिचिमें जनार्दन भगवान् विष्णुकी पूजा करता है. वह समस्त महापापोंसे मुक्त हो जाता है।

> सूर्य-चन्द्र-ग्रहण आदि समयोंमें मन्त्रका जप, तपस्या, तीर्थसेवन, देवार्चन तथा ब्राह्मण-पूजन- ये सभी कृत्य भी महापातकोंको नष्ट करनेवाले होते हैं। समस्त पाचोंसे युक्त मनुष्य भी पुण्य-तीथौंमें जाकर नियमपूर्वक अपने प्राणींका परित्यागकर समस्त पापोंसे मुक हो जाता है।

पतिवता नारी पतिके देहाबसानके बाद पतिका वियोग जो द्विज पविवजनीका संसर्ग करता है, उसे विभिन्न असद्ध होनेके कारण पवि-धर्मके अनुसार पविके शरीरके संसर्गींसे होनेवाले पापोंको दूर करनेके लिये उन-उन साथ शास्त्रीय विधिका पालन करते हुए अग्निमें प्रवेश पापोंके निमित्त कहे गये वर्तोंका पालन करना चाहिये। करती है तो ब्रह्महत्या, कृतप्नता आदि बड़े-बड़े पातकोंसे

तप्तकृष्युवतका अनुपालन करे। विधिवत् किया गया जो स्त्री पतिश्वता है, अपने पतिकी सेवा-शृश्र्वामें सर्वस्वदान सभी पापोंको दूर करनेवाला होता है। अथवा दत्तचित रहती है, उसको इस लोक तथा परलोकमें कोई विधियत् चान्द्रायणयतः तथा अतिकृष्णकृतः भी सभी पापोको पाप नहीं लगता। वह वैसे ही निर्दोष रहती है, जैसे दशरथपुत्र बीरामकी पत्नी जगद्विख्यात भगवती सीतादेवी लड्डामें रहकर गया आदि पुण्यक्षेत्रीकी यात्रा करनेसे भी ऐसे भी निर्दोष रही तथा (अपने पातिव्रतके प्रभावसे) उन्होंने

महादेव भगवान् शङ्करको सम्यक्-रूपसे आराधना करके हे यतवत! संयतचित्त होकर विविध शास्त्रीय व्रतका ब्राह्मणोंको भोजन प्रदान कराता है, वह सभी पापोंसे मुक्त अनुहान करनेवाले! भगवान् विष्णुने मुझसे बहुत पहले ही यह बताया था कि गयामें स्थित फर्ग् (नदी) आदि तीथोंमें जो मनुष्य कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें उपवास यथाविधि ब्रह्मके साथ स्नान करनेवाला व्यक्ति सभी रखकर संयतचित्तसे पवित्र नदीमें स्नान करके ॐकारसे प्रकारके पातकोंसे मुक्त हो जाता है और समस्त सदाचरणका

नवनिधियोंके लक्षणोंसे युक्त पुरुषके ऐश्वर्य एवं स्वभावका वर्णन

सूतजीने कहा-भगवान् विष्णुसे अष्टनिधियोकि विषयमें सुनकर ब्रह्माजीने उनका वर्णन इस प्रकार किया था कि 'परा, महापरा, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द (नन्द), नील और शह्व नामकी अष्टनिधियाँ' हैं। नवाँ निधि मित्र कहलाती है। अब मैं उनके स्वरूपका वर्णन करता हैं।

पदानिधिके लक्षणोंसे सम्पन्न मनुष्य सारियक और दाक्षिण्य गुणसे सम्पन्न होता है। वह मुवर्ग-चाँदी आदि मूल्यवान् धातुओंका संग्रह करके यतियों, देवताओं और याहिकोंको दान करता है। महापद्य चिहसे लक्षित व्यक्ति भी अपने संग्रहीत धन आदिका दान धार्मिक जनोंको करता रहता है। पद्म तथा महापद्मनिधिसम्पन्न पुरुष साल्विक स्वभाववाले कहे गये हैं।

मकरनिधिके चिह्नसे चिह्नित मनुष्य खड्ग. बाण एवं कुन्त (भाला) आदि अस्त्रीका संग्रह करनेवाला होता है। वह नित्य श्रोत्रिय ब्राह्मजोंको दान देख है और कच्छपनिधि-लक्षित व्यक्ति तामस गुणवाले होते हैं। है (जिसका कोई उपयोग नहीं होता)। कच्छप-चित्रसे युक्त व्यक्ति किसीपर विश्वास नहीं करता है। वह न अपनी सम्पतिका स्वयं उपभोग करता है और भनुष्यके स्वभागमें मिश्रित फल दिखलायी देते हैं। न तो उसमेंसे वह किसीकों कुछ देता ही है। वह एकानामें देता है। उसकी सम्पत्ति एक पीढ़ीतक रहती है।

मुकुन्दनिधिके चिह्नसे अंकित पुरुष रजोगुणसप्पन होता

है। यह राज्य-संग्रहमें लगा रहता है, वह भोगोंका उपभोग करते हुए गायक और वेश्या आदिको धन देता है।

नन्दनिधिसे युक्त व्यक्ति राजस और तामस गुणीवाला होता है। वही कुलका आधार बनता है। वह स्तुति करनेपर प्रसन्न होता है तथा बहुत-सी स्त्रियोंका पति होता है। पूर्वकालके मित्रोंमें उसको प्रोति शिथिल होती है और वह जन्य नये मित्रोंके साथ प्रेम करने लगता है।

नोलनिधिके चिह्नसे सुशोधित मानव सात्विक तेजसे संयुक्त होता है। वह चस्त्र-धान्यादिका संग्रह तथा तडागादिका निर्माण करता है। उसके द्वारा (जनहितमें) आग्रादिके उद्यान भी लगवाये जाते हैं। उसकी सम्पत्ति तीन पीड़ीतक रहती है।

रह्मनिध एक ही पुरुष (पीदी)-के लिये होती है। इससे समन्वित मनुष्य धनादिका स्थयं तो उपभोग करता है, किंतु उसके परिजन कुरिसत अन्नका भोजन तथा अच्छे राजाओंके साथ उसकी सदैव पित्रता बनी रहती न लगनेवाले मैले-कुचेले वस्त्रोंसे जीवनवापन करते हैं। है। द्रव्यादिका आहरण करनेके लिये वह शबुओंका वह स्वयंके भरण-पोषणमें सदैव तत्पर रहता है। यदि यह विनाश करता है और युद्धके लिये सदा तत्पर रहता है। किसीको कुछ वस्तु देता भी है तो वह ज्यर्थकी वस्तु होती

मित्र (मिली-जुली)-निधिके चिह्नसे युक्त होनेपर

भगवान विष्णुने भी निधियोंके ऐसे ही स्वरूपका वर्णन जाकर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिको पृथिवोमें गाड्कर छिपा जिल आदि देवोसे किया था (उसको मैंने आप सभीको सुना दिया)। अब इरिने भूवनकोशादिका जैसा वर्णन किया धा, वैमा ही मैं कह रहा हूँ। (अध्याय ५३)

भुवनकोशवर्णनमें राजा प्रियव्रतके वंशका निरूपण

श्रीहरिने कहा—राजा प्रियवतके आग्नीध, अग्निबाह, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भठव, ज्ञावल, पुत्र और न्योतिष्मान् नामके दस पुत्र हुए थे।

इन पुत्रीमेंसे मेधा, अग्निबाहु तथा पुत्र नामक तीन पुत्र योगपरायण (योगी), जातिस्मर (इन्हें पूर्वजन्मका वृत्तानः विस्मृत नहीं हुआ था) तथा महासौभाग्यशाली थे। इन लोगोंने राज्यके प्रति अपनी कोई अभिरुचि प्रकट नहीं को. अत: राजाने सप्तद्वीपा पृथिवीको अपने अन्य सात पुत्रीमें

विभक्त कर दिया।

पदास करोड़ योजनमें विस्तृत सम्पूर्ण पृथियी नदीकी जलराशियें तैरती हुई नौकाके समान चारों ओर अवस्थित अधाह जलके ऊपर स्थित है।

है शिव! जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, फ्रीझ, शाक तया पुष्कर नामक ये सात द्वीप हैं, जो सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। उन सात समुद्रोंके नाम लवण, इक्षु, सुरा, घृत, द्धि, दुग्ध और जलके सागररूपमें प्रसिद्ध हैं। हे वृषभध्वज! ये सभी द्वीप तथा समुद्र उक्त क्रममें एक-दूसरेसे द्विगुण परिमाणमें अवस्थित है।

जम्बद्धीपमें मेरु नामक पर्वत है, जो एक लाख योजनके परिमाणमें फैला हुआ है। इसको ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। इसका अधोभाग पृथिवीमें सोलह हजार योजन धैंसा हुआ है और शिखरदेश बतीस हजार योजन विस्तृत है। इसका अधोधाग जो पृथिवीके ऊपर सित्रहित है. वह भी सोलह हजार योजनके विस्तारमें कर्णिकाके रूपमें अवस्थित है। इसके दक्षिणमें हिमालय, हेमकुट तथा निषध, उत्तरमें नील, धेत और शुंगी नामक वर्षपर्वत है।

हे रुद्र! प्लक्ष आदि द्वीपेंक निवासी मरणादिसे मुक्त है। उनमें पुग या अवस्थाके आधारपर कोई विचमता नहीं है।

जम्बद्वीपके राजा आग्नीधके नौ पुत्र उत्पन्न हुए। उन संधीका नाम क्रमश:- नाधि, किम्पुरुव, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्मय, कुरु, भद्राध और केतुमाल या। राजाने

उन सभी पुत्रोंको उनके नामसे ही अभिहित (प्रसिद्ध) एक-एक भृखण्ड प्रदान किया। हे हर! राजा नाभि और उनकी पत्नी मेरुदेवीसे ऋषभ नामक पुत्र हुए थे, उनसे भरत नामके पुत्र हुए, जो ज्ञालग्रामतीर्थमें स्थित रहकर विभिन्न बतोंके पालनमें ही निरत रहते थे। उन भरतसे सुमति नामक पुत्र हुआ और उसका पुत्र तैजस हुआ।

वैजसके इन्द्रचम्न, इन्द्रचम्नसे परमेष्टी, परमेष्टीके प्रतीहार तथा प्रतीहारसे प्रतिहर्ता नामक पुत्र कहे गये हैं।

प्रतिहर्तीके पुत्र प्रस्तार, प्रस्तारके पुत्र विभू, विभूके पुत्र नक और नकके एव गय नामके राजा हुए।

गयका पुत्र नर हुआ। नरसे विराट, विराट्से महातेजस्त्री धीमान् धीमान्से भीवन नामके पुत्रको उत्पत्ति हुई। भीवनके त्वष्टा, त्वष्टाके विरजा, विरजाके रज, रजके रातनित् तथा रातनित्के विष्यान्योति नामक पुत्र हुआ था। (अध्याय ५४)

भारतवर्षका वर्णन

इलावृत नामक वर्ष है। उसके पूर्वमें अद्भुत भद्राश्वयषं तथा नर्मदा, बरदा, सुरसा, शिवा, तापी, पयोष्णी, सरयू, काबेरी, उसके पूर्व-दक्षिण (अग्निकोण)-में हिरण्यान् नामक गोमतो, गोदाबरो, भीमरथी, कृष्णवेणी, महानदी, केतुमाला, वर्ष है।

दक्षिणभागमें भारतवर्ष कहा गया है। मेरके दक्षिण-पश्चिमनें तथा पार्यावनाशिनी नदियाँ हैं, जिनके जलका पान हरिवर्ष, पश्चिममें केतुमालवर्ष, पश्चिमोत्तरमें रम्यक और मध्यदेशादिके निवासीजन करते हैं। उत्तरमें कुरुवर्ष स्थित हैं, जिनके भू-भाग कल्पवृक्षींसे आच्छादित है।

समुद्रसे थिरा हुआ है।

देश हैं। इस भारतवर्षमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र- निवासी हैं। वर्णके लोग रहते हैं।

श्रीहरिने कहा—हे यूपभध्वज! जम्बुद्वीपके मध्यभागमें पारियात्र—ये सात कुलपर्वत हैं। इस वर्षमें वेद, स्मृति, तासपर्गी, चन्द्रभागा, सरस्वती, ऋषिकुल्या, कावेरी, मतगङ्गा, मेरुके दक्षिणभागमें किम्पुरुषवर्ष कहा गया है। उसके पयस्विनी, विदर्भा, जतद् नामक मङ्गल प्रदान करनेवाली

पाकाल, कुरु, मतस्य, यीधेय, पटच्चर, कुन्त तथा जुरसेन देशके निवासी मध्यदेशीय है। पादा, सुत, मागध, हे स्द्र। भारतवर्षको छोड़कर अन्य सभी वर्षोमें सिद्धि चेदि, काशेय तथा विदेह पूर्वमें स्थित हैं। कोशल, कलिंग, स्वभावसे ही प्राप्त हो जाती है। यहाँ इन्द्रद्वीप, कशेरुमान, वंग, पुण्ड, अंग और विदर्भ-मूलकजनोंके देश और तामवर्ण, गर्भास्तमान्, नागद्वीप, कटाह, सिंहल और वारूण विन्ध्यपर्वतके अन्तर्गत विद्यमान देश पूर्व तथा दक्षिणके नामक आठ वर्ष हैं। नवाँ वर्ष भारतवर्ष है, जो चतुर्दिक तटवर्ती भूभागमें स्थित हैं। पुलिन्द, अश्मक, जीमृत, नय राष्ट्रमें निवास करनेवाले, कर्णाटक, कम्बोज तथा घण-इस (भारतवर्ष)-के पूर्वमें किरात तथा पश्चिममें यवन ये दक्षिणापथ भूभागके निवासी हैं। अम्बष्ट, द्रविड, लाट, देश स्थित हैं। हे हद्र ! दक्षिणमें आन्ध्र, उत्तरमें तुरुष्का आदि कम्भोज, स्त्रीमुख, शक और आनर्तवासी दक्षिण-पश्चिमके

स्त्रीराज्य, सैन्धव, म्लेच्छ, नास्तिक, यवन, मधुरा तथा यहाँ महेन्द्र, मलय, सहा, ज़ुक्तिमान्, ऋथ, विन्ध्य और निषधके रहनेवाले लोगोंके देश पश्चिमी भूभाग है। माण्डव्य, उत्तर-पश्चिमभागमें स्थित हैं।

तुपार, मृलिका, अश्रमुख, खज्ञ, महाकेज, महानास देश म्लेच्छ देश हिमाचलके उत्तरतटवर्ती भूभागमें स्थित हैं। त्रिगर्त, नील, कोलात, ब्रह्मपुत्र, सटङ्कुण, अभीषाह और कश्मीर देश लम्बक, स्तननाग, माद, गान्धार, बाह्रिक तथा उत्तर-पूर्व-दिशामें अवस्थित कहे गये हैं। (अध्याय ५५)

प्लक्ष तथा पुष्कर आदि द्वीपों एवं पाताल आदिका निरूपण

पुत्र थे। उन सबमें शान्तभव नामक पुत्र ज्येष्ट था। उससे पुण्डरीका—ये सात नदियाँ (प्रवाहित होती रहती) हैं। छोटा शिशिर था। तदनन्तर सुखोदय, नन्द, शिव और शाकद्वीपके राजा भव्यके भी सात पुत्र उत्पन्न हुए। ये क्षेमक हुए। उनका जो सातवाँ भाई था, वह धुव नामसे जलद, कुमार, सुकुमार, अरुणीयक, कुसुमोद, समोदार्कि प्रसिद्ध हुआ—ये सभी प्लक्षद्वीपके राजा बने। तथा महादुम नामसे ख्याति प्राप्त थे। यहाँ सुकुमारी, कुमारी,

सुमनस और वैभाज नामक सात पर्वत है। यहाँ अनुतप्ता, सात नांदयाँ है। शिखी, विपाश, प्रिदिवा, क्रमु, अमृता तथा सुकृता नामको पुष्करद्वीपके स्वामी महाराज शबलके महावीर तथा

और सप्रथ हैं।

ये पापाँका प्रशमन करनेवाली है।

मात पुत्र उत्पन्न हुए थे। ये उद्भिद, बेणुमान्, द्वैरथ, भी अण्डकटाइसे आवृत है। तथा मन्दराचल नामक सात वर्षपर्वत है। यहाँ धृतपापा, शिया, पवित्रा, सन्पति, विद्युदभ्र, मही और काशा नामकी ये सात नदियाँ हैं, जो सब प्रकारके पापोंको विनष्ट करनेवाली हैं।

हे शिय! क्रीब्रद्वीपके अधीश्वर महात्मा द्युतिमान्के भी सात पुत्र हुए। कुशल, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि - ये उनके नाम हैं।

यहाँ क्रीष्ठ, वामन, अन्धकारक, दिवावृत्, महाशैल, दुन्दुधि तथा पुण्डरीकवान् नामके सात वर्षपर्वत है। यहाँपर

श्रीहरिने कहा—प्लक्षद्वीपके स्वामी मेधाविधिके सात गाँरो, कुमुद्रती, संध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति और

इस द्वीपमें गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, नलिनी, धेनुका, इक्षु, वेणुका और गभरित नामसे प्रसिद्ध

सात नदियाँ प्रवाहित होती रहती हैं। शातिक नामक दो पुत्र हुए। उन्होंके नामसे यहाँपर दो वर्ष वपुष्पान् शाल्मकद्वीपके स्वामी थे। उस द्वीपमें 📳 इन दोनोंके मध्य एक ही मानसोत्तर नामक वर्षपर्वत अवस्थित सात वर्षीके नामसे ही प्रसिद्ध उनके सात पुत्र है। यह प्रचास सहस्र योजनमें विस्तृत तथा इतना ही ऊँचा थे, जिनके नाम क्षेत, हरित, जीमूत, रोहित, बैद्धत, मानस 🕏। यह चतुर्दिक् विस्तारमें भी उसी परिमाणको प्राप्तकर मण्डलाकार अवस्थित है। इस पुष्करद्वीपको स्वादिष्ट यहाँ कुमुद, उन्नत, द्रोण, महिष, बलाहक, क्रीश्व तथा जलवाला समुद्र चारों ओरसे घेरकर स्थित है। उस स्वादिष्ट ककुदान् नामक सात पर्वत हैं। योनि, तोया, वितृष्णा, जलवाले समुद्रके सामने उससे द्विगुण जनजीवनसे रहित चन्द्रा, शुक्ला, विमोचनी और विधृति—ये सात नदियाँ हैं। स्वर्णमधी भूमिवाली जगत्की स्थिति दिखायी देती है। बडाँपर दस हजार योजनमें फैला हुआ लोकालोक नामक कुजद्वीपमें ज्योतिष्मानुका स्वामित्व या। उनके भी पर्वत है। वह अन्धकारमे आन्द्रप्रदित है और वह अन्धकार

लम्बन, धृति, प्रधाकर और कपिल नामसे प्रसिद्ध थे। श्रीहरिने कहा—हे वृष्पध्यज! इस धृषिकी कैचाई उन्होंके नामसे इस द्वीपके जी सात वर्ष थे, वे प्रसिद्ध सत्तर हजार योजन है। इसमें दस-दस सहस्र योजनकी हुए। यहाँ विद्रुम, हेमशैल, सुमान, पुष्पवान, कुशेशय, हरि दुरीपर एक-एक पाताललोक स्थित हैं, जिन्हें अतल, वितल, नितल, गर्भस्तिमान, महातल, सुतल तथा पाताल कहा जाता है।

> इन लोकोंको भूमि कृष्ण, शुक्ल, अरुण, पीत, शर्करा-सदश, शैलमयो तथा स्वर्णमयी है। वहाँपर दैत्य तथा नागोंका निवास है। हे रुद्र! दारुण पुष्करद्वीपमें जो नरक स्थिति हैं, उनके विषयमें आप सुनें। वहाँ रौरव, सुकर, रोध, ताल, विशसन, महान्वाल, तसकुम्भ, लवण, विमोहित, रुधिर, वैतरणो, कृमिश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, नानाथस (लालाथस), दारुण, पूरबह, पाप, वहिज्वाल,

अधःशिरा, संदंश, कृष्णसूत्र, तमस्, अवीचि, श्रधोजन, है। उन लोकोंको क्रमशः—जल, अग्नि, वायु तथा आकाश अप्रतिष्ठ तथा उष्णवीचि नामक नरक है। उनमें विष धेरे हुए है। इस प्रकार अवस्थित ब्रह्माण्ड प्रधान तस्त्रसे देनेवाले, सस्त्रसे हत्या करनेवाले तथा अग्निसे जलाकर आवेष्टित है। वह ब्रह्माण्ड अन्य ब्रह्माण्डोंकी अपेक्षा मारनेवाले पापीजन अपने-अपने पापका फलभोग करते हैं। इस गुना अधिक है। इसे परिव्याप्तकर स्वयं नारायण

हे रुद्र! यथाक्रम उनके ऊपर अन्य लोकोंको स्थिति अवस्थित रहते हैं। (अध्याय ५६-५७)

भुवनकोश-वर्णनमें सूर्य तथा चन्द्र आदि नौ ग्रहोंके रथोंका विवरण

स्थिति एवं उनके परिमाणसे सम्बन्धित विषयका वर्णन कर रहा है।

सुर्यदेवके रथका विस्तार नौ हजार योजन है। उसका ईपादण्ड अर्थात् जुआ तथा रथके बोचका जो भाग है, वह उस रथ-विस्तारका दुगुना है। उसको धुरो एक करोड़ सतायन लाख योजन लम्बी है तथा उसमें चक्र लगा हुआ है। उस चक्रकी (पूर्वाह, मध्याह तथा अपराहरूप) तींन नाभियाँ हैं, (परिवल्सरादिक) पाँच ओर हैं, (वसनादि षद्भतुरूपी) छ: नेमियाँ हैं तथा अक्षयस्वरूपवाले संबत्सासे युक्त उस चक्रमें सम्पूर्ण कालवक समितित है। सूर्यक रथकी दूसरी धुरी चालीस हजार योजन लन्सी है।

हे वृषभध्यज्ञ! रथके जो पहियोंके अक्ष हैं, वे सादे पाँच हजार योजन लम्बे हैं। रचके कहे गये प्रधान दोनों अक्षोंके परिमाणके समान जुएके दोनों अद्धोंकी लम्बाई है। सबसे छोटा अक्ष जुएके अर्द्धभाग-परिमाजवाला है, जो रथके ध्रवाधारपर अवस्थित है। रथके दूसरे अक्षमें बक्र लगा हुआ है, जो मानसीत्तर पर्वतपर स्थित है।

गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् तथा पंक्ति नामक--ये सात छन्द ही सूर्यके सात घोड़े कहे गये हैं।

चैत्रमासमें सूर्यके इस रथपर धाता नामक आदित्य, क्रतुस्थला नामको अप्सरा, पुलस्त्य ऋषि, वासुकि नाग, रथकृत् ग्रामणी, हेति नामका राक्षस और तुम्बुरु गन्धवं स्थित रहते हैं। वैशाखमासमें इस रथपर अर्थमा नामवाले आदित्य, पुलह ऋषि, रधीजा यक्ष, पुत्रिकस्थला अप्सरा, प्रहेति राक्षस, कच्छनीर सर्प तथा नारद नामक गन्धर्व आसीन रहते हैं। ज्येष्ठमासमें सूर्यक इस रथमें भित्र नामक आदित्य, अत्रि ऋषि, तक्षक नाग, पौरुपेय ग्रखस,

भीहरिने कहा —हे वृषभध्वज! अब मैं सूर्यादि यहाँकी मेनका अप्सत, हाहा नामक गन्धर्य और रथस्वन यसका वास रहता है।

आबादमासमें इस रथके ऊपर वरुण नामसे प्रसिद्ध आदित्य, वसिष्ट ऋषि, रम्भा तथा सहजन्या नामक अपसरा, हुहू गन्धर्व, रवचित्र नामक यक्ष एवं राक्षसगुरु शुक्र निवास करते हैं। आवजमासमें इस रथपर इन्द्र नामसे विख्यात आदित्य, विश्वावसु गन्धर्व, स्रोत नामक यक्ष, एलापत्र सर्प, अङ्गिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्तरा और सर्प नामक राक्षसोंका निवास रहता है। भाइपदमासमें विवस्वान् नामक आदित्य, उद्यसेन गन्धवं, भृगु ऋषि, आपूरण नामक यक्ष, अनुम्लोचा नामक अप्सरा, शंखपाल नामक सर्प तथा व्याप्र राक्षसका सूर्य-रथमें निवास रहता है।

आश्चितमासमें इस रथपर पूषा नामक आदित्य, सुरुचि नामक गन्धर्व, धाता एवं गीतम ऋषि, धनक्रय नाग, सुषेण तथा पृताची अप्सराका बास होता है। कार्तिकमासमें पर्जन्य नामके आदित्य, विश्वावसु गन्धर्व, भरद्वाज ऋषि, ऐरायत मर्प, विश्वाची अपराय, सेनजित् यक्ष एवं आप नामक राक्षसका निवास उस रचपर रहता है। मार्गशीर्यमासमें अंश् नामक आदित्य, कश्यप ऋषि, तार्स्य, महापदा नाग, उर्वशी अप्सरा, चित्रसेन गन्धर्व और विद्युत् नामक राक्षसः उस रथमें संचरण करते हैं।

पौषमासमें भर्ग नामके आदित्य, ऋतु ऋषि, उर्णायु गन्धर्व, स्फूर्ज राक्षस, कर्कोटक नाग, अरिष्टनेमि यक्ष तथा पूर्वीचिति नामक अप्सरा सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। माधमासमें त्वष्टा नामक आदित्य, जमदिन ऋषि, कम्बल सर्प, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मपेत राक्षस, ऋतजित् यक्ष और धृतराष्ट्र नामक गन्धवं सूर्यमण्डलमें रहते हैं। फाल्गुनमासमें विष्णु नामक आदित्य, अश्वतर सर्प, रम्भा अपसरा, मुर्वचर्चा गन्धवं, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और यज्ञापेत राक्षसका उस रथमें वास रहता है।

हे ब्रह्मन्! भगवान् विष्णुकी शक्तिसे तेजोपय बने मुनिगण सूर्यमण्डलके सामने उपस्थित रहकर उनकी स्तुति करते हैं, गन्धवंजन यशोगान करते हैं। अप्सराएँ नृत्य करती हैं। ग्रक्षस उस रथके पीछे-पीछे चलते हैं। सर्प उस रथको वहन करते हैं और यक्षणण उसको बागडोर सैंधालनेका कार्य करते हैं। बाल्यखिल्य नामक ऋषिगण उस रधको सब ओरसे घेरकर स्थित रहते हैं।

चन्द्रमाका रथ तीन पहियोंवाला है। उसके धोहे कुन्द-पृथ्यके समान क्षेतवर्णवाले हैं। वे रचके जुएमें बापें और दाहिने दोनों ओर जुतकर उसे खींचते हैं। उनकी संख्या दस है।

चन्द्रमाके पुत्र बुधका रथ जल तथा अग्निसे मिश्रित द्रव्यका बना हुआ है। उसमें वायुके समान वेगशाली पिशंग (भूरे) वर्णके आद घोड़े जुते रहते हैं।

शुक्रका महान् रथ सैन्यबलसे युक्त, अनुकर्ष (रशको सदद बनानेके लिये सम्पन्न रचके नीचे लगा काष्टविशेष). ऊँचे शिखरवाला, पृथिबीपर उत्पन्न होनेवाले घोडोंसे संयुक्त उपासङ्ग (तरकरू) तथा ऊँची पताकासे विभूषित है।

भूमिपुत्र मंगलका महान् रथ तपाये गये स्वर्णके सदृश

काञ्चन वर्णवाला है। उसमें आठ घोडे लगे रहते हैं, जो अग्निसे प्रादुर्भूत हैं तथा पदारागमणिके समान अरुण वर्णके हैं।

आठ पाण्ड्र (कुछ पीलापन लिये हुए सफेद) वर्णके घोडोंसे युक्त स्वर्णके रथपर विद्यमान बृहस्पति एक-एक राशिमें एक-एक वर्ष स्थित रहते हैं।

शनिका रथ आकाशसे उत्पन्न हुए चितकवरे घोडोंसे युक्त है। वे उसमें चढ़कर धीरे-धीरे चलते हैं। उनका मन्दगामी भी नाम है।

स्वर्भान् अर्थात् राहुके (रथमें) आठ घोडे हैं, जो भ्रमरके सद्दत काले हैं। उसका रथ भूसर वर्णका है। हे भूतेज शिष! उन घोड़ोंको एक बार रथमें जीत दिये जानेपर वे निरन्तर चलते रहते हैं। इसी प्रकार केत्के रथमें भी वायुके समान वेगवाले आठ घोडे हैं। उनके वर्णीकी जाभा पुवालसे निकलनेवाले धुएँके सदश तथा लाक्षारसकी भौति अरुण रंगकी है।

[हे शिव] इस प्रकार सूर्व-चन्द्रादि उपर्युक्त ग्रहोंसे युक्त] द्वीप, नदी, पर्वत, समुद्र आदिसे समन्त्रित समस्त भुवन-मण्डल भगवान् विष्णुका विराद् शरीर ही है।

(अध्याय ५८)

ज्योतिश्चक्रमें वर्जित नक्षत्र, उनके देवता एवं कतिपय श्भ-अश्भ योगों तथा महताँका वर्णन

श्रीसतजीने कहा-(ऋषियो !) केशवने भगवान शिवसे पृथिबीका परिमाण बताकर कहा कि हे हद! ज्योतिष-शास्त्रको गणना चार लाखमें है, पर उनमेंसे मैं अब ज्योतिश्रक अर्थात् नक्षत्रोंसे युक्त राशिचक्रका संक्षेपसे वर्णन करूँगा, जो सब कुछ देनेवाला है।

श्रीहरिने कहा - हे शिव ! कृतिका नक्षत्रके देवता अग्नि हैं। रोहिणों नक्षत्रके देवता ब्रह्म हैं। मुगतिराके चन्द्रमा तथा आद्रिक रुद्र देवता कहे गये हैं। इसी प्रकार पुनर्वसुके आदित्य तथा तिच्य पुष्यके गुरु है। आरलेपा नक्षत्रके सर्प तथा मधा नक्षत्रके देवता पितृगण हैं। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके देवता भाग्य (भग), उत्तराफाल्गुनीके अर्यमा, हस्तके सविता और चित्राके देवता त्वष्टा हैं। स्वाती नक्षत्रके देवता बायु और विशाखा नक्षत्रके देवता इन्हारिन

हैं। अनुराधा नक्षत्रके देवता मित्र और ज्येष्ठाके शक्र (इन्द्र) देवता कहे गये हैं। नक्षत्रज्ञ विद्वानीने मूल नक्षत्रका देवता निर्ऋतिको बताया है। पूर्वाचाढ नक्षत्रके देवता आप तथा उत्तराषादके विश्वेदेव हैं। अभिजितके देवता ब्रह्मा और ज़बणके विष्णु कहे गये हैं। धनिष्ठा नक्षत्रके देवता वसु तथा शतिभयाके वरुण कहे गये हैं। पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रके देवता अजपाद, उत्तराभाद्रपदके अहिर्बुध्न्य, रेवतीके पूषा, अश्विनीके अधिनीकमार और भरणीके यम देवता कहे गये हैं।

प्रतिपदा तथा नवमी तिथिमें ब्रह्माणी नामकी योगिनी पूर्व दिशामें अवस्थित रहती है। द्वितीया और दशमी तिथिमें माहे बरी नामक योगिनी उत्तर दिशामें रहती है। पश्चमी तथा त्रयोदशो तिथिमें वाराही नामक योगिनी दक्षिण दिशामें स्थित रहती है।

१-थोरे पाएड वर्णको धूसर और कुछ पोलापन लिये सफेट वर्णको पाण्डरवर्ण कहते हैं।

षष्ठी और चतुर्दशी तिथिमें इन्द्राणी नामकी योगिनीका वास पश्चिममें होता है। सप्तमी और पौणंमासी तिथिमें चामुण्डा नामसे अभिहित योगिनीका निवास वायुगोचर अर्थात् वायव्यकोणमें रहता है। अष्टमी तथा अमावास्यामें महालक्ष्मी नामकी योगिनी इंशानकोणमें रहती है। एकादशी एवं तृतीया तिथिमें वैष्णवी नामकी योगिनी अग्निकोणमें वास करती है। द्वादशी और चतुर्थी तिथिमें कौमारी नामवाली योगिनीका निवास नैईल्यकोणमें रहता है। योगिनीके सम्मुख रहनेपर यात्रा नहीं करनी चाहिये।

अश्विनी, अनुराधा, रेवती, मृगशिरा, मूल, पुनर्वमु, पुष्य, इस्त और ज्येष्ठा नक्षत्र प्रस्थान (यात्रा)-के लिये प्रशस्त कहे गये हैं।

हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा— ये पाँच नक्षत्र तथा उत्तराफाल्गुनी, उत्तराचाढ, उत्तराभाइपद, अस्विनी, रोहिणी, पुष्य, धनिष्ठा और पुनर्वसु नक्षत्र नबीन वस्त्र धारण करनेके लिये श्रेष्ठ हैं।

कृतिका, भरणी, अरलेण, मधा, मूल, विज्ञाखा तथा पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाधाद और पूर्वाध्यल्युनी—इन नक्षत्रीको अधोमुखी कहा गण है। इन अधोमुखी नक्षत्रीमें वापी, तडाग, सरोवर, कृप, भूमि, तृण आदिका खनन, देवालयके लिये नींवादिके खननका सुभारम्भ, भूमि आदिमें गड़ी हुई धन-सम्पत्तिकी खुदाई, ज्योतिरचक्रका गणनारम्भ और सुवर्ण, रजत, पत्रा तथा अन्य धानुआँको प्राप्त करनेके लिये भू-खदानोंमें प्रविष्ट होना आदि अन्य अधोमुखी कार्य इन अधीमुखी नक्षत्रोंमें करने चाहिये। रेवती, अधिनी, चित्रा स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अनुग्रथा, मृगशिय एवं ज्येष्ठा नक्षत्र पार्श्वमुखी हैं। इन पार्श्वमुखी नक्षत्रोंमें हाथी, जैट, अस, कैस तथा भैसेको वज्ञामें करनेका उपाय करना चाहिये। (अर्थात् इनके नाक आदिमें छेद करके छल्ला या रस्सी डालनेका कार्य करना चाहिये।)

खेतोंमें बीज बोना, गमनागमन, चक्रयन्त्र (बरखी, चरसा, रहट आदि यन्त्र) अथवा रच एवं नीकादिका क्रय और निर्माण उक्त पार्श्वमुखी नक्षत्रोंमें करना चाहिये और अन्य पार्श्व कार्योंको भी इन पार्श्व नक्षत्रोंमें करना चाहिये।

रोहिणी, आर्द्रा, पुष्प, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराखाद, उत्तराभाद्रपद, शतभिष (वारुण) तथा श्रवण— ये नी नक्षत्र कर्भ्वमुखी कहे गये हैं। इन नक्षत्रोंमें राज्याभिषेक और संक्रमक्ष्म ४पट्टबन्ध आदि शुभ कार्य करवाने चाहिये। ऊर्ध्वमुखी अर्थात् अभ्युदय प्रदान करनेवाले अन्य विशिष्ट कार्योको भौ इन नक्षत्रोंमें कराना प्रशस्त होता है।

चतुर्वी, बही, अष्टमी, नवमी, द्वादशी, चतुर्दशी, अमावास्य तथा पूर्णिमा तिथि अशुभ होती है। इन तिथियों में शुभ कार्य नहीं करने चाहिये। कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तथा सुधवारसे पुक दितीया तिथि शुभ होती है। यदि भूमिपुत्र मंगलसे पुक तृतीया हो, ननेक्षरको चतुर्थी हो, गुरुवारको पश्चमी पड़ रही हो, बडीको मंगल या सुक्रवार हो तो वे तिथियों भी शुभ होती है। सुधवारको सप्तमी, मंगल तथा रविवारको अष्टमी, सोमवारको नवमी और गुरुवारको पड़नेवाली दशमी तिथि शुभ होती है। एकादशी तिथिम गुरु तथा सुक्र होनेपर, सुधवारको द्वादशी तिथि पड़नेपर, सुक्र तथा संगलवारको त्रयोदशी और सनिवारको चतुर्दशी तिथि शुभ होती है। इस्ती प्रकार सुहस्पतिको पूर्णिमा या अमावास्या तिथिका होना भी शुभ होता है।

द्वादशो तिथि रविवार, एकादशो सोमवार, दशमी मंगलवार, नवमी बुधवार, अच्टमी गुरुवार, सप्तमी गुक्रवार और यही तिथि शनिवारसे दग्ध होती है। ऐसे विथि-दग्ध-योगमें यात्रादिका शुधारम्थ नहीं करना चाहिये। प्रतिपदा, नवमी, चतुर्दशी और अष्टमी विधियोंमें यदि बुधवारका संयोग हो तो उस विधिमें प्रस्थानके विचारका दूरसे ही परित्याग करना चाहिये। मेप और कर्क-संक्रान्तिकी यही, कन्या और मिथुन-संक्रान्तिकी अष्टमी, वृष तथा कुम्ध-संक्रान्तिकी चतुर्धी, मकर और दशमी तथा धनु और मीन-संक्रान्तिकी चतुर्धी, मकर और दशमी तथा धनु और मीन-संक्रान्तिकी चतुर्धी, मे दग्ध विधियाँ हैं। इन विधियोंमें यात्रादि नहीं करनी चाहिये। ये कष्टदायक होती हैं।

है जिय! रविवारको विशास्त्रा, अनुराधा और ज्येष्ठाका योग, सोमवारके दिन पूर्वाचाद, उत्तराबाद तथा श्रवण नश्चका योग, मंगलवारको धनिष्ठ, सतिभय और पूर्वाधादपदका योग, बुधवारमें रेवती, अधिनी तथा धरणीका योग, बृहस्पतिवारको रोहिणी, मृगशिश और आर्द्राका योग, सुक्रवारमें पुष्य, अस्लेषा एवं मधाका योग, सनिवारको उत्तराफाल्युनी, इस्त तथा चित्रा नश्चत्रका योग होनेपर औत्यातिक योग होता है। इन योगोंमें गमनादि कार्य करनेसे उत्पात, मृत्यू और रोगको उत्पत्ति होती है।

उत्तराभाद्रपद, बुधवारको कृतिका, बृहस्पतिके दिन है। ये सिद्धि योग सभी प्रकारके दोषोंका विनाश करनेवाले पुनर्वस्, शुक्रवारको पूर्वाफाल्गुनी तथा शनिवारको स्वाती नक्षत्र हो तो अमृत योग होता है। ये सभी कार्योंको सिंड करनेवाले हैं।

विष्कुम्भ योगकी पाँच घटी, जुल योगकी सात घटो, गण्ड तथा अतिगण्ड योगकी छ:-छ: यटी, व्यायात और वज योगकी नी-नी घटी एवं व्यतीपात, परिष और वैधृति परित्यागं करना चाहिये।

रविवारको हस्त, गुरुवारको पुष्प, बुधवारको अनुराधा नक्षत्र— ये शुध होते हैं। ऋनियारको रोहिणी उत्तम सम्बा, आर्द्धा, भरणी, अश्लेषा और कृतिका नक्षत्रमें यात्रा और सीमवारको मृगश्चिरा नक्षत्र शुभ है। उसी प्रकार

जुक्रवारको रेवतो तथा मंगलवारको अश्विनी नक्षत्र शुभ हे रुद्र ! रविवारको मूल, सोमवारको बवण, मंगलवारको फल देता है। इस प्रकारका योग होनेपर सिद्धि योग बनता

हे वृष्पध्वज! शुक्रवारको भरणी, सोमवारको चित्रा, मंगलवारको उत्तरायाह, बुधवारको धनिष्ठा, बृहस्पतिको ज्ञातिषष, जुक्रकारको रोहिणी और शनिवारको रेवती नक्षत्र होनेपर विषयोग होता है।

पुष्य, पुनर्वस्, रेवती, चिन्ना, ब्रवण, धनिष्ठा, हस्त, योग- ये मृत्युत्त्य कष्टदायी होते हैं, इनमें सभी कर्मीका अधिनी, मुराशिश एवं शतभिय नक्षत्र होनेपर जातकर्प आदि संस्कार करनेके लिये उत्तम माने गये हैं।

> हे शिव ! विशाखा, उत्तराफालानी, उत्तराबाढ, उत्तराभाद्रपद, करनेपर मृत्युका भय रहता है। (अध्याय ५९)

ग्रहदशा, यात्राशकृत, छींकका फल तथा सूर्यचक्र आदिका निरूपण

वर्णन कर रहा हैं। सूर्यको दशा छ: वर्ष, चन्द्रको दशा पंद्रह करातो है और दु:ख पैदा करतो है। शुक्रको दशामें हाथो, वर्ष, मंगलको दशा आठ वर्ष, बुधको दशा सब्द वर्ष, घोडा, राज्य तथा स्त्रोका लाभ होता है। शनिको दशा दस वर्ष, युहस्पतिको दशा उजीस वर्ष, राहुकी दशा बारह वर्ष तथा शुक्रकी दशा इक्कीस वर्ष कर्क चन्द्रमाका क्षेत्र कहा गया है। सूर्यका क्षेत्र सिंह एवं रहती है ।

सुर्यकी दशा द:ख देनेवाली होती है और उद्वेगको पैदा करती है तथा राजाका नाश करती है। चन्द्रकी दशा ऐश्वर्य देनेबाली, सुख पैदा करनेबाली तथा (इष्ट) मनोउनुकूल अन देनेवाली होती है।

मंगलकी दशा दु:ख देनेवाली तथा राज्यादिका विनाश करनेवाली है। बुधकी दशा दिव्य स्त्रीका लाभ, राज्य-प्राप्ति एवं कोपवृद्धि करनेवाली है। शनिकी दशा राज्यका नाश और यन्धु-बान्धबींको कष्ट-प्रदान करनेवाली है। बुहम्पतिको सुअर, पक्षी (नोलकण्ठ आदि), नेवला तथा चूहा दिखायी दशा राज्य-लाभ और सुख-समृद्धि तथा धर्म देनेवालो है। दें तो यात्रा मङ्गलकारी होती है। यात्रामें ब्राह्मणको कन्याका

श्रीहरिने कहा—[हे शिव! अब मैं प्रहोंकी महादशका राहुकी दशा राज्यका नाश करती है, व्याधियोंकी प्राप्ति

मेर मंगलका, वृष शुक्रका, मिधुन बुधका और बुधका क्षेत्र कन्याराशि है। तुलाराशि शुक्रका क्षेत्र है और वृश्चिक मंगलका क्षेत्र है। बृहस्पतिका क्षेत्र धनु, शनिका क्षेत्र सकर एवं कुम्भ और मीन बृहस्पतिका क्षेत्र कहा गया है।

कर्कग्रशिमें सूर्व आ जानेपर भगवान् विष्णु शयन करते हैं।

अधिनो, रेवतो, चित्रा, धनिष्ठा-ये नक्षत्र आभूषण धारण करनेमें उत्तम माने गये हैं।

यात्रामें यदि दाहिने हरिण, साँप, बन्दर, बिलाब, कुत्ता,

१--यहाँका ग्रहाँकी महादशाओंका जो योग्य समय तथा उनका कम दिया तथा है, वह महाँवे परावर आदि द्वारा निर्दिष्ट विशोत्तरी महादशासे भित्र है। इसमें केलकी दशा भी नहीं दिखलायी गयी है। महाँचै परागरके अनुसार छहाँका क्रम तथा उनकी भोग्यवर्ध-संख्या इस प्रकार है-सर्वको महादशा छ: वर्ष रहती है, बन्द्रदशा दस वर्ष रहती है। इसी प्रकार नेपाल सत वर्ष, राह अठारह वर्ष, बुहस्पति सोलह वर्ष, शनि वश्रीस वर्ष, बुध संत्रह वर्ष, केतु सात वर्ष तथा गुज बीस वर्षतक धीन करता है। इनका योग एक सौ बीस वर्ष होता है, जो महर्षि परासरद्वारा मानव-आयका परिभाग है, इसीलिये यह विशोनरी महादशा कहत्त्वती है, इसो प्रकार दूसरा अध्येतरी महादशा क्रम भी है, किंतु गरुदपुराणमें निर्दिष्ट क्रम तथा दशा-वर्ष सर्वथा भित्र है।

दर्शन हो जाना मङ्गल होनेका सुचक है तथा शङ्क और मुदंगकी आवाज सुनना एवं सदाचारी त्रीमन्त व्यक्तिका दर्शन हो जाना, वेणु, स्त्री, जलसे भरा कलश दिखायी देना कल्याण-प्राप्तिका स्चक है।

यात्रामें बार्यों ओर भुगाल, ऊँट और गदहा आदिका दिखायी देना मङ्गलकारो होता है। यात्रामें कपास, ओषधि, तेल, दहकते अंगारे, सर्प, बाल बिखेरे, लाल माला पहने और नग्न अवस्थामें यदि कोई व्यक्ति दिखायी दे तो अञ्चभ होता है।

अब में हिक्का (खींक)-के शुध-अशुध फलींका वर्णन कर रहा है। पूर्व दिशामें खींक होनेपर बहुत बड़ा फल प्राप्त होता है। अग्निकोणमें छोंक होनेपर शोक और संताप तथा दक्षिणमें छोंक होनेपर हानि उठानी पहती है। नैऋत्यकोणमें लॉक होनेपर शोक और मंताप तथा पश्चिममें र्णीक होनेपर मिप्टालको प्राप्ति होती है। सायस्पकोणमें छींक होनेपर धनकी प्राप्ति और उत्तरमें छींक होनेपर कलह होता है। ईशानकोणमें छीक होनेपर मरणके सम्बन कच्ट प्राप्त होना बतलाया गया है।

मनुष्यके आकारमें भगवान सूर्यकी प्रतिमाका चित्रण करे। सूर्यको प्रतिमा बनानेके दिन सूर्य जिस तक्षत्रपर हाँ,

उस नक्षत्रसे तीन नक्षत्र उस प्रतिमाके मस्तकपर अंकित वस्त्रधारी होता है। (अध्याय ६०)

ग्रहोंके शुभ एवं अशुभ स्थान तथा उनके अनुसार शुभाशुभ फलका संक्षिप्त विवेचन

स्थित चन्द्रमा सर्वत्र मङ्गलकारी होता है। मुक्लपक्षको चन्द्रके जन्मलग्नमें होनेपर तृष्टि, द्वितीय भावमें द्वितीया तिथि तथा पञ्चम और तथम भावमें स्थित चन्द्रमा रहनेपर मुख-हानि, तृतीय भावमें रहनेपर राजसम्मान, गुरुके सदश पुज्य है।

विषयमें भी सुने। अश्विनी आदि तीन-तीन नक्षत्रींसे एक- धन-धान्यकी प्राप्ति, सप्तम भावमें रहनेपर प्रेम तथा एक अवस्था बनती है। अत: उन अधिनी आदि तान- सम्मानको प्राप्ति होती है। चन्द्रमाके अष्टम भाव (स्थान)-तोन नक्षत्रोंके क्रमसे 'प्रवासावस्था, दृष्टावस्था, मृतावस्था, में रहनेपर मनुष्यके प्राणीको संकट बना रहता है। नवम जयावस्था, हास्यावस्था, नतावस्था, प्रमोदावस्था, विषादावस्था, भावमें उसकी स्थिति रहनेपर कोपमें धनको युद्धि होतो है। भोगायस्था, ज्यरायस्था, कम्पायस्था तथा सुखावस्था'—वे दशम भावमें चन्द्रके रहनेपर कार्यासिद्धि और एकादश चन्द्रकी बारह अवस्थाएँ होती है।

क्रमश:- प्रवास, हानि, मृत्यु, जय, हास, रति, सुख, नहीं है।

करे। मुखके मध्यमें अंकित सूर्यनक्षत्रसे आगे तीन नक्षत्र लिखे और उससे आगे एक-एक नक्षत्र दोनों कन्धोंपर लिखे। फिर उससे आगे एक-एक नक्षत्र दोनों भुजाओंपर लिखे और उससे आगेके एक-एक नक्षत्र दोनों हाथोंपर लिखे। उससे आगे पाँच नक्षत्र हृदय-प्रदेशपर लिखे तथा उससे आगे एक नक्षत्र नाभिमण्डलमें लिखे। उससे आगे गृह्यस्थानमें एक नक्षत्र लिखे। उससे आगे एक-एक नक्षत्र दोनों मुटनॉपर लिखे। शेष नक्षत्र सूर्यके चरणींपर लिखे।

सूर्वचक्रके चरणींमें जातकका जन्मनक्षत्र पहला हो तो जातक अल्पाय होता है। वहीं नक्षत्र यदि घुटनोंपर पहता है तो जातक विदेश यात्रावाला होता है और यदि गुद्धस्थानपर पढे तो पर-स्त्रीगामी होता है। नाधिरथानमें पहनेपर बोहेमें ही प्रसन्न हो जानेवाला होता है। यदि इटयस्थानमें पडता है तो महं शर होता है। यदि पाणिस्थानमें पड़ता है तो चोर होता है। वहीं यदि भूजाओंपर पहता है तो उसका कहीं निश्चित स्थान नहीं रहता। यदि कन्थांपर पड जाय तो वह धनपति-कुचेर होता है। यदि मुखपर यह जाय तो मिप्टाप्र प्राप्त करता रहता है और यदि मस्तकपर जातक नक्षत्र यह जाय तो जातक रेशम-

श्रीहरिने कहा—लग्नसे सप्तम भाव तथा उपचयमें जोक, भोग, ज्वर, कम्प तथा सुख—ये फल प्राप्त होते हैं। चतुर्व भावमें कलह और पष्टम भावमें रहनेपर स्त्रीका हे शिव। चन्द्रमाकी बारह अवस्थाएँ हैं। आप उनके लाभ होता है। यदि चन्द्र यह (स्थान) भावमें रहता है तो भावमें होनेपर विजय निश्चित है। जब वह द्वादश भावमें इन्हीं अवस्थाओंके क्रममें चन्द्रकी स्थिति होनेपर रहता है तो जातककी निश्चित ही मृत्यु होती है। इसमें संदेह

कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेपा-इन सात नक्षत्रोंमें पूर्व दिशाकी यात्रा करनी चाहिये। मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त. चित्रा, स्वाती तथा विशाखा- इन सात नक्षत्रोंमें दक्षिणको यात्रा करनी चाहिये। अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वापाद, उत्तरापाद, श्रवण और धनिष्ठा-इन सात नक्षत्रोंमें पश्चिमको यात्र करनी चाहिये। धनिष्ठा, जतिषय, पूर्वाभादपद, उत्तराभादपद, रेवती, अश्विनी और भरणी—इन सात नक्षत्रोंमें उत्तरको यात्रा प्रशस्त होती है।

अश्विनी, रेवती, चित्रा तथा धनिष्ठा नक्षत्र नवीन अलंकारोंको धारण करनेके लिये श्रेष्ट है। पुगक्तिरा, अधिनी, चित्रा, पुष्प, मूल और हस्त नक्षत्र कन्यादान, यात्रा तथा प्रतिष्ठादि कार्योमें शुभप्रद होते हैं।

जन्मलानमें शुक्र और चन्द्रके रहनेपर शुभ फलको प्राप्ति होती है। उसी प्रकार ये दोनों ग्रह द्वितीय भावमें रहनेपर भी

शुभ फल प्रदान करते हैं। तृतीय भावमें स्थित चन्द्र, बुध, शुक्र और बृहस्यति, चतुर्थ भावमें मंगल, शनि, चन्द्र, सूर्य और बुध श्रेष्ट होते हैं। पञ्चम भावमें शुक्र, बृहस्पति, चन्द्रमा और केतुके रहनेपर शुभ होता है। यह भावमें शनि, सूर्य और मंगल, सबम भावमें बृहस्पति तथा चन्द्रमा शुभ है। इसो प्रकार अष्टम भावमें बुध और शुक्र तथा नवम भावमें स्थित गुरु ज्ञुभ फल देनेवाला है। जन्मके दशम भावमें स्थित सूर्य, जनि एवं चन्द्रमा तथा एकादश भावमें सभी ग्रह शुभ कल देते हैं। ऐसे ही जन्मके द्वादश भावमें स्थित सुध और शुक्र सब प्रकारक सुर्खाको प्रदान करते हैं।

सिंहके साथ मकर, कन्याके साथ मेप, तुलाके साथ मीन, कुम्भके साथ ककं, धनुके साथ वृष और मिथुनके साथ वृक्षिकराशिका योग श्रष्ठ होता है। यह यदष्टक योग है। यह योग प्रीतिकारक होता है', इसमें संप्रय नहीं है। (अध्याय ६१)

लग्न-फल, राशियोंके चर-स्थिर आदि भेद, ग्रहोंका स्वभाव तथा सात वारोंमें किये जाने योग्य प्रशस्त कार्य

श्रीहरिने कहा—है शिव। सूर्य उदयकालसे मेपारि राशियोंपर अवस्थित रहते हैं। वे दिनमें क्रमश: छ: राशियोंको पारकर रात्रिमें शेष छ: राशियोंको पार करते हैं।

मेषलग्नमें कन्याका जन्म होनेपर वह वन्ध्या होती है। वृपलग्नमें उत्पन्न हुई कन्या कामिनी होती है, मियुन-लग्नवाली सौधाग्यशालिनी तथा ककंलग्नमें उत्पन्न हुई कन्या वेश्या होती है। सिंहलानमें तन्म-प्राप्त कन्या अस्पपुत्रीवाली, कन्यालग्नवाली रूपमे मामात्र, तुलालग्नवाली रूप और ऐश्वर्यसे युक्त तथा वृक्षिकलम्नवाली कर्कत्र स्वभावकी होती है। धनुलग्नमें उत्पन्न हुई कन्या सौभाग्यवती तथा मकरलग्नवाली निम्न पुरुषोंके साथ गमन करनेवाली होती है। कुम्भलग्नमें जन्म-प्राप्त कन्या अल्पपुत्रों तथा मीनलग्नवाली वैराग्ययुक्त होती हैं।

तुला, कर्क, मेप और मकर—ये चर राशियों हैं, इनमें यात्रादि चर कार्य करने चाहिये। सिंह, वृप, कुम्भ और वृक्षिक स्थिर राशि है। इनमें स्थिर कार्य करने चाहिये। कन्या, धनु, मीन एवं मिधुनराशि द्विस्वभावकी होती है। विद्वान् व्यक्तिको इन राशियोंमें द्विस्वभावसे युक्त कर्प करने चाहिये। यात्रा चरलग्नमें तथा गृह-प्रवेशादिका कार्य स्थिरलम्बमें करना चाहिये। देवताओंकी स्वापना और वैवाहिक संस्कारको द्विस्वभावके लग्नमें कान श्रेयाका है।

हे वृषधध्वज। प्रतिपदा, यष्टी तथा एकादशी तिथियाँ नन्दा मानी जाती हैं। द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथियाँ भद्रा कही गयी हैं। तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी तिथियाँ जया कही गयो हैं। चतुर्थी, नवमी तथा चतुर्दशी- ये तीन

१-यहाँ षडप्टक योगको शुभ बताया गया है, किंतु मतान्तरसे वर-कथुके मेलायक यक्रमें यह यहप्टक योग अशुभ सारा गया है। वर या वधुकी परस्पर जन्म-ग्रांश एक-दूसरेसे छठी या आदर्थों होना हो पाष्ट्रक योग है। अर्थात् चंदि एकको सिंह ग्रांश हो और दूसरेको मकरराशि तो ये राशियों गणना करनेपर एक-दूसरेसे छठी या आठवों चढ़ेगी, ऐसे हो संघ-कन्य, वृध-तुला, मिधुन-वृक्षिक, ककं-धनु आदिके विषयमें समझना चाहिये। प्राय: ऐसेमें विवाहादि नहीं किया जाता। पडटकके समान ही दिर्द्धारत योग तथा नवम-पञ्चम योगपर भी विवार किया जाता है।

२-ज्योतिष जारत्रके अनुसार अन्य सभी योग एवं रह-स्थितियोको ध्यानमें स्वक्त हो इस परतपर विचार करना चाहिये। यहाँ दिग्दर्शनमात्र है।

रिक्ता तिथि हैं। ये शुभ कार्यके लिये वर्जित हैं।

सौम्य स्वभाववाला बुध ग्रह चर स्वभाव है। गुरु क्षिप्र, शुक्र मृदु और रवि धुव स्वभावका है। शनि दारुण, मंगल उग्र तथा चन्द्रको समस्वभावका जानना चाहिये।

चर और क्षिप्र स्वभाववाले (अर्थात् वृथ एवं वृहस्पति) वारमें यात्रा करनी चाहिये तथा मृदु और धूव स्वभावसे संयुक्त शुक्र अथवा रविवारको गृह-प्रवेशादिका कार्य करना चाहिये। दारुण और उग्र स्वभाववाले शनि तथा मंगलवास्को विजय प्राप्त करनेकी अभिलायासे भवियादि वीरोंको युद्धके लिये प्रस्थान करना चाहिये।

राज्याभियेक और अग्निकार्य सोमवारको प्रशस्त

माना गया है। सोमवारमें लिपाईका कार्य एवं गृहका शुभारम्भ करना श्रेयस्कर है। मंगलवारको सेनापतिका पद-भार वहन करना, शौर्य, पराक्रमका कार्य तथा शस्त्राभ्यासका प्रारम्भ करना शुभ है। बुधके दिन किसी कार्यकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करना, मन्त्रणा करना और यात्रा करना सफलतादायक माना गया है। बुहस्पतिवारको वेदपाठ, देवपूजा, वस्त्र तथा अलंकारादि धारणके कार्य करने चाहिये। शुक्रवारको कन्यादान, गजारोहण तथा स्वीसहवास उचित है। शनिवारको गृहारम्भ, गृहप्रवेश और गजबन्धनके कार्य शुभ माने गये हैं।

(अध्याय ६२)

सामुद्रिकशास्त्रके अनुसार स्वी-पुरुषके शुभाशुभ लक्षण, मस्तक एवं हस्तरेखासे आयुका परिज्ञान

भीतरी भागकी तरह मृदु एवं रक्त हों, अँगुलियाँ सटी हुई - जीवित रहता है। मस्तकपर दो रेखाओंके दृष्टिगोचर होनेपर हों, नायून तौंबेके वर्णके समान थोड़े रक्त हों. पाँव सुन्दर अनुष्यकी आयु चालीस वर्षको होती है। एक रेखाके गुल्फवाले, नसींसे रहित और कुर्मके समान उन्नत हों, उन्हें होनेपर उस मनुष्यका जीवन बीस वर्ष मानना चाहिये, किंतु नुपश्रेष्ट समझना चाहिये।

चरणींबाले मनुष्य दु:खो एवं दरिद्र होते हैं।

पण्डित होता है। तीन-तीन रोमोंसे व्याप्त रोमकूप दरिदोंके होती है। होते हैं।

मांसरहित, अत्यन्त कृश जानुपुगलवाला मनुष्य रोगी होता है। समान उदरभागसे सुशोधित मनुष्य अतिशय भोगसे समृद्ध और कुम्भके सदश उन्नत या सर्पके समान उदरभागवाले लोग अत्यन्त दस्द्रि होते हैं।

श्रीहरिने कहा — हे शिव! अब मैं स्त्री-पुरुषके रेखाओं के द्वारा आयुका निर्णय किया जाता है। जिसके लक्षणोंका वर्णन संक्षेपमें कर रहा हूँ आप सुनें। ललाटपर समान आकारवाली तीन रेखाएँ स्पष्ट दिखायी जिनके हाथ-पाँचके तल पसीनेसे रहित हीं, कमलके देती हैं, वह पुत्रादिसे सम्पन्न रहकर सुखपूर्वक साठ वर्षतक कर्णपर्यन्त एक रेखाके होनपर वह शतायु होता है।

कक्ष एवं धोड़ा पीलापन लिये, क्षेत नखवाले, वक्र. ललाटपर कानतक विस्तृत दो रेखाओंके होनेसे तथा नसींसे भरे हुए और विरल अँगुलियोंसे युक्त नुर्पाकार अनुष्यको आयु सत्तर वर्ष तथा वैसी ही तीन रेखाओंके रहनेपर उसकी आयु साठ वर्ष होती है। ललाटपर अल्परोमसे युक्त, गलशुण्डके समान सुन्दर जंबा- रेखाओंकी व्यक्त (प्रकट)-अव्यक्त (अप्रकट) स्थिति प्रदेश तथा एक-एक रोमसे भरे हुए रोमकूपोंवाला होनेपर मनुष्य बीस वर्षकी अल्पायुको ही प्राप्त करता है। शरीर राजाओं और महात्याओंका माना गया है। प्रत्येक रेखाविकीन ललाटके होनेपर मनुष्य चालीस वर्षतक जीवित रोमकृपमें दो-दो रोम होनेपर मनुष्य श्रीत्रिय या रहता है। रेखाओंके क्रिन्न-भिन्न रहनेपर मनुष्यको अकालमृत्यु

जिसके मस्तकपर त्रिशुल अथवा फरसेके समान चिह्न दिखावों देता है, वह धन-पुत्रादिसे परिपूर्ण होकर सौ वर्षतक जीवित रहता है।

हे हद ! तर्जनी और मध्यमा अंगुलीके मध्यभागतक आयरेखाके पहेंचनेपर मनुष्य शताय होता है। अंगुष्ठके

मूलभागसे निकलनेवाली प्रथम रेखा जानरेखा है। मध्यमा है रूट्र! जिसके हाथमें यह आयुरेखा स्पष्ट दिखायी अंगुलीके मुलसे जो रेखा जातो है, वह आयुरेखा है। यह देती है। उसकी आयु सी वर्ष अवश्य होती है, इसमें रेखा कनिष्ठा अंगुलीके मूलसे निकलकर मध्यपाके मूल संदेह नहीं। जो रेखा कनिष्ठा अंगुलीके मूलसे होकर भागको पार करती है। यदि यह रेखा विच्छित्र या किसी मध्यमा अंगुलोके मुलतक विस्तारको प्राप्त करती है, वह अन्य रेखासे विभक्त नहीं होती है तो ऐसे व्यक्तिको आयु रेखा मनुष्यको साउ वर्ष आयु प्रदान करनेमें सक्षम सौ वर्ष होती है।

होती हैं (अध्याय ६३)

स्त्रियोंके शुभाशुभ लक्षण

श्रीहरिने कहा-जिस कन्याके केश पुँपराले, पुख मण्डलाकार अर्थात् गोल एवं नाभि दक्षिणावर्त होती है, वह कुलकी वृद्धि करनेवाली होती है। जो स्वर्णसद्दश आधावाली होती है, जिसके हाथ लाल कमलके समान सुन्दर होते हैं, वह हजारों स्त्रियोंमें अद्भितीय तथा पतिवृता होती है।

जो कन्या वक केशीयाली और गोल नेक्वाली होती है, वह निश्चित ही दु:ख भोगनेवाली होती है तथा उमका पति शीध ही मर जाता है।

पूर्णबन्द्रके सदश मुखमण्डलसे सुत्रोधित, बालसूर्वके समान लाल-लाल कान्तिवाली, विज्ञाल नेबोसे युक्त बिम्बाफलको भौति ओप्रवाली कन्या चिरकालनक सञ्चका उपभोग करती है। इस्ततलमें बहुत-सी रेखाओंके होनेपर कष्ट तथा अल्प रेखाओंके होनेपर वह धनहीनताका दुःख भोगती है। हाथमें रक्तवर्णको रेखाओंके होनेसे वह सुखी जीवन व्यतीत करती है, किंतु कृष्णवर्णकी रेखाओं के होनेपर वह दास्यवृत्तिवाली दुर्तीका जीवन व्यतीत करती है।

अच्छी स्त्री वह है, जो पतिके कार्योंमें मन्त्रीके समान परामर्श देनेबाली होती है। सहयोगमें मित्रके सम्पन वर्ताव करती है। स्नेहके व्ययहारमें भायां अथवा माता तथा ऋयन-कालमें वेश्याके समान सुख प्रदान करती है।

जिस कन्याके हाथमें अंकुज, कुण्डल और चक्रके चिह्न विद्यमान रहते हैं, वह पुत्रसे सम्पन्न होती है और राजाको पतिके रूपमें बरण करती है।

जिस स्त्रीके दोनों पार्श और स्तन-प्रदेश रोमसमन्त्रित होते हैं तथा अधरोष्ट-भाग ऊँचा दठा हुआ होता है, वह

निधित हो शोध पतिका नाश करनेवाली होती है। जिसके हाथमें प्राकार और तोरणको रेखाएँ दिखायी देतो है, वह इसकलमें भी उत्पन्न होकर रातीके पदको प्राप्त करती है। जिस कन्याको नाभि ऊपरको और उठी हुई, मण्डलाकार एवं कपिलवर्णको रोमावलियोंसे आवृत रहती है, वह कत्वा राजकुलमें उत्पन्न होकर दासीकी वृतिसे जीवनवापन करती है।

जिस स्वीके चलनेपर दोनों पैरको अनामिका तथा अंगुष्ट पृथिकोतलका स्पर्श नहीं करते हैं, वह शीघ ही पतिका नाश करतो है तथा स्वयं स्थेच्छाचारपूर्वक जोयन बिजनेकाली होती है। जिस स्वीके चलनेसे पृथिवीमें कम्पन हो उठता है, वह सोध हो पतिका नाश करके स्थेच्छाचारिणी

सुन्दर मनोहारी नेत्रोंके होनेसे स्त्री सीभाग्यशालिनी, उज्जल चमकते हुए दौतींक होनेपर उत्तम भोजन प्रापा करनेवाली, शरीरकी त्वचा सुन्दर एवं कोमल होनेसे उत्तम प्रकारको शब्या तथा कोमल स्निग्ध चरणोंके होनेपर वह ब्रेष्ट बाहनका सुख प्राप्त करती है।

चिकने, ऊँचे उठे हुए ताम्रवर्णके समान लाल-लाल नर्खांसे युक्त, मरस्य, अंकुश, पद, चक्र तथा लाङ्कल (इल)-चिद्धसे सुशोधित एवं पसीनेसे रहित और कोमल तलवाले स्त्रीके चरण सौभाग्यशाली होते हैं।

सुन्दर रोमविहीन जंपा, गजशुण्डके सदश ऊरु, पीपलपत्रके समान विशाल उत्तम गुद्धभाग, दक्षिणावर्त गम्भीर नाभि, रोमरहित त्रिवली और इदयपर सुशोधित रोमरहित स्तन-प्रदेश-ये उत्तम स्त्रीके श्रथ लक्षण हैं। (अध्याय ६४)

स्त्री एवं पुरुषोंके शुभाशुभ लक्षण

श्रीहरिने कहा —अब मैं सामुद्रिकशास्त्रमें कहे गये स्त्री और पुरुषके शुभाजुभ लक्षणोंका वर्णन करता हैं, जिन्हें जान लेनेसे भूत तथा भविष्यका जान हो जाता है।

मार्गमें गमन करनेपर विषय रूपसे पहनेवाले, कथाय वर्णसे युक्त विचित्र प्रकारके बने हुए चरण वंशका नाश करते हैं। शह्कवाकार चरणोंसे युक्त मनुष्य ब्रहाहत्या करता है तथा अगम्या स्वीके साथ रमण करनेको इच्छा रखता है।

विरल रोमभागयुक्त जंधा तथा हाधीके सूँडके समान सन्दर कर भागोंवाले अंग ग्रजाके शरीरमें सुशोभित होते हैं।

दरिद्रकी जंधाएँ सियारकी जंधाओंक समान होती है। कुंचित केशराशिवाले मनुष्यकी मृत्यु विदेशमें होती है।

मांसरहित जानु-प्रदेशवाला व्यक्ति सौभाग्यताली होता है। अरूप और छोटी-छोटी जानुओंके होनेसे मनुष्य स्थो-प्रेमी तथा विशाल विकटाकार होनेपर दरिद्र होता है। मांससे भरपूर जानुओंके होनेपर मनुष्यको गाञ्यको प्राप्ति होती है। बढ़ी जानुओंके होनेपर मनुष्य दीघांपु होता है।

मांसल स्फिक् (कूल्हा)-प्रदेशवाला व्यक्ति मुखो तथा सिंहके समान स्फिक् होनेपर वह राजपुरुष माना गया है। इसी प्रकार सिंहके सदृज कठिप्रदेशके होनेपर वह राजा होता है, किंतु कपिके समान कठिभागवाला व्यक्ति निर्धन होता है।

समान कक्ष (काँख)-प्रदेशवाले अत्यधिक भोग-विलासी होते हैं। निम्न कक्षाओंवाले धनहीन तथा उजत एवं विषम कक्षाओंवाले कुटिल होते हैं।

मत्स्यके समान उदस्वाले प्रचुर धनवान् होते हैं। विस्तीणं नाभिप्रदेशसे सुशोभित जन सुखो एवं अत्यभिक गहरी नाभिके होनेपर कष्ट भोगनेवाले होते हैं।

त्रिवलीके मध्यभागमें नाभिके अवस्थित होनेपर प्राणी शूलरोगसे प्रसित होते हैं। वामावर्त नाभिके होनेपर अक्तिसम्पन्न और दक्षिणावर्त होनेपर मेधावी होते हैं। पार्श्वदेशमें नाभिके विस्तृत होनेसे मनुष्य चिरंजीवी, उन्नत होनेपर ऐश्ववंशाली, अभोमुख होनेपर गोधनसे सम्पन्न एवं पराकर्णिकाके सदृश सुन्दर होनेपर वे राजत्वको प्राप्त करते हैं।

उदरभागपर एक वलिके रहनेपर मनुष्य शतायु होता है। दो बलियोंके होनेसे वह ऐश्वर्यका भोग करनेवाला तथा त्रिवालयोंके होनेपर राजा या आचार्यकी पदवीको प्राप्त करता है। सरल वलियोंबाला मनुष्य सुखी होता है। वक्र वलिवाला व्यक्ति अगम्यागामी होता है।

जिसके दोनों पार्श्वभाग मांसल होते हैं, वह राजा होता है। मृदु, कोमल, सुन्दर और समभागकी दूरियोंपर अवस्थित दक्षिणायतीय रोमराशियोंसे सुशोभित व्यक्ति भी तजा होते हैं। यदि उदर-प्रदेशपर इन लक्षणोंके निपरीत रोम-राशियों होती है तो ऐसे मनुष्य दूत-कर्म करनेवाले, निर्धन तथा सुखसे रहित होते हैं।

समुश्रत, मांसल तथा कम्पनरहित विशाल वक्ष:स्थल राजाओंका होता है। अधम जनोंका वक्ष:स्थल तो गर्दभोंको रोमग्राहिके समान, कर्कश तथा रोमावलियोंसे युक्त स्पष्ट परिलक्षित होनेवाली नसोंसे व्याप्त रहता है।

समतल वक्षःस्थलवालं मनुष्य धन-सम्पन्न होते हैं। पीन (मांसल) वक्षःस्थलोंसे युक्त प्राणी शक्तिसम्पन्न होता है। विषम वक्षःस्थलके होनेपर मनुष्य निर्धन होता है और उसको मृत्यु शस्त्राधातसे होती है।

स्कन्ध-प्रदेशके सन्धिस्थान (पालुए)-में विषमता तथा आस्थि-संतरनताके होनेपर भी मनुष्य निर्धन होते हैं। उन्नत स्कन्ध-प्रदेशके रहनेसे व्यक्ति भोगी, निम्न होनेपर धनहीन तथा स्थल होनेपर धनी होते हैं।

चिपटाकार कण्डसे युक्त मनुष्य निर्धन, शुष्क एवं उसन शियओंसे व्याप्त गलेवाला सुखी होता है। महिपके मद्दल ग्रीवावाला बीर तथा मृगके समान कण्डवाला शास्त्रीमें पारंगत होता है। शंखके समान ग्रीवावाला मनुष्य ग्रजा और लम्बे कण्डवाला बहुत भोजन करनेवाला होता है।

रोमरहित एवं मुद्दा हुआ पृष्ट-प्रदेश शुभ तथा उसके विषरीत रहनेपर अशुभ माना गया है।

पीयल-पत्रके सदृश, सुगन्धित तथा मृगके सदृश रोमाविलयोंवाली कक्षाएँ उत्तम होती हैं। इसके विपरीत कक्षाओंके वो लक्षण होते हैं, वे निर्धनोंको दरिइताके कारण है।

मांसल, क्लिष्ट, विकाल, बलिष्ट, वृत्ताकार तथा जानुपर्यनः लम्बी सुन्दर भुजाएँ राजाको होती हैं। प्रचुर रोमावलियोंसे युक्त छोटे-छोटे हाथ निर्धनके होते हैं। डायीकी शुण्डकें समान सुन्दर भुजाएँ श्रेष्ट मानी गयी हैं।

भवनमें वायु-प्रवेशके लिये बने द्वारके समान बनी हुई अंगुलियाँ शुभ होती हैं। मेधावी जनोंकी अंगुलियाँ छोटी होती हैं। चिपटाकार अंगुलियाँ भृत्योंमें पायो जाती हैं। स्यूल अंगुलियोंके होनेपर मनुष्य निर्धन होते हैं। जब मनुष्यकी अंगुलियाँ कृश होती हैं तो वे विनयी होते हैं। बन्दरके सदृश हाथके होनेपर मनुष्य निर्धन और बायके समान हाथ होनेपर बलवान होते हैं।

करतल भागके निम्न होनेसे मनुष्य पिताके द्वारा संधित धनको नष्ट करनेवाले होते हैं। मणिबन्धके सुगठित, रिलष्ट तथा सुगन्धयुक्त होनेपर व्यक्तियोंको राजपदको प्राप्ति होती है। कटे-फटे कर-भागसे युक्त, शब्द करनेवाले मणिबन्धोंके रहनेसे मनुष्य धनहीन और नीच प्रकृतिके माने जाते हैं।

संवृत्त अर्थात् गोलाकार एवं गहरे करतलोंके होनेसे मनुष्योंको धनवान् कहा गया है। उन्नत करतलोंके होनेपर व्यक्ति दानी और विषम भागवाले व्यक्ति कटोर होते हैं। लाक्षारसके समान करतलोंके होनेसे प्राणी राजा होते हैं। पीतवर्णवाले करतलोंसे युक्त व्यक्ति परस्वीके साथ रमण करनेवाले होते हैं। जिनके हाथ और तल-प्रदेश रूखे हैं, वे मनुष्य निर्धन होते हैं।

तुष (भूसी)-के समान रंगसे युक्त नखणाले लोग नपुंसक, कुटिल तथा फटे हुए नखवाले धनहीन होते हैं। विवर्ण नखवाले दूसरेके साथ तर्क करनेवाले होते हैं।

ताप्रवर्णके सदृश रक्ताभ नखवाले मनुष्य राजा होते हैं। यव-चिद्धसे युक्त अंगुष्ठवाले व्यक्ति अत्यध्वि धन-वैभवसे युक्त होते हैं। अंगुष्ठके मूलभागमें यव-चिद्धके होनेसे व्यक्ति युजवान् होता है। लम्बे पर्वोसे युक्त अंगुलियोंके होनेपर दोर्घायु तथा युज-पौजादिसे परिपूर्ण होता है, किंतु किरल अंगुलियोंबाला व्यक्ति निर्धन होता है। सचन अंगुलियोंके होनेसे मनुष्य धन-सम्पन्न होता है। मणिबन्धसे निकलकर तीन रेखाएँ जिसके करतल भागको पार कर जातो है, वह राजा होता है।

दो मत्स्याङ्कित करतलभागवाला पुरुष यहकर्ता एवं दानी होता है। यदाकार चिह्नवाले करतल धनीजनोंके होते हैं। विद्वान्का करतलभाग मोन-पुच्छकं चिह्नसे अङ्कित होता है। राजांके करतत्वमें शहु, छत्र, शिविका (डोली), गज और पद्माकार चिह्न रहते हैं। अतुलनीय ऐश्वर्यसम्पन्न राजांके करतलमें कुम्भ, अङ्कुश, पताका तथा मृणालके समान चिह्न रहते हैं। गोधनके स्वामीजनींके करतलोंमें रस्सीके चिह्न होते हैं। जिसके हायमें स्वस्तिकका चिह्न होता है, वह सम्राट् होता है। राजांके हायमें चक्र, कृपाण, तोमर, धनुष और भालेके आकारके चिह्न होते हैं।

ओखलीके चिद्वसे युक्त व्यक्ति यज्ञादिक कर्मकाण्डीमें निष्णात होता है। जिनके हाथीमें वेदिकाकार रेखा होती है, वे अग्निहोत्री होते हैं। वापी, देवकुल्या तथा त्रिकीण रेखाओंके रहनेपर मनुष्य धार्मिक होता है।

अंगुष्ठ-मृलतक रेखाके होनेसे व्यक्ति पुत्रवान् होते हैं। यदि वे रेखाएँ सृक्ष्म होती हैं तो उन्हें कन्याएँ होती हैं। कानिष्ठिकाके मृलसे निकलकर तर्जनीके मृलतक रेखाका विस्तार होनेपर मनुष्य हतायु होता है, किंतु किसी स्थानपर उसके विकाल होनेपर प्राणीको वृक्षसे गिरकर मृत्युका भय बना रहता है। बहुत-सी रेखाओं के होनेसे मनुष्य दरिद्र होते हैं। विवुक्त (दुड्डी)-के कृश होनेपर भी मनुष्योंको धनहीन समझना चाहिये, किंतु जिनकी दुड्डियाँ मांसल होती हैं, ये धन-सम्पदाओं से परिपूर्ण होते हैं। अरुणाभ, विम्बाफलके समान मृत्यर अधरोंसे सुत्रोभित मुख राजाओंका माना गया है; किंतु जिसके ओष्ठ रूखे, खण्डित, फटे हुए तथा विषम होते हैं, वे निर्धन होते हैं।

स्निग्ध (विकने), चमकते हुए, सचन एवं समान भागवाले सुन्दर तीक्षण दौर्योका होना हुभ है। रक्तवर्णकी समतल, चिकनो एवं दीर्घ जिह्ना ब्रेष्ठ होती है। राजाओंका मुख कठोर, सम, सौम्य, गोल, मलरहित तथा स्निग्ध होता है। दु:ख भोगनेवाले लोगोंमें इन लक्षणोंके विपरीत लक्षण होते हैं। कुत्सित एवं भाग्यहीनोंको स्त्रीमुखी पुत्र प्राप्त होता है। धनो लोगोंका मुख गोलाकार तथा निर्धनोंका मुख लम्बा होता है। पापकर्माका मुख भयाकान्त होता है। धृतोंके मुख चौकार, पुत्रहीनोंके निम्न एवं कंजूसोंके छोटे मुख होते हैं। भोगीजनोंका मुख सुन्दर, आधामय, मूँछोंसे युक्त, स्निग्ध, तुभ तथा कोमल होता है।

चौर-वृतिवाले व्यक्ति निस्तेज, मुरङ्गायी हुई लालवर्णकी दाड़ों और मूँछोंबालें होते हैं। रक्तवर्णके थोड़े तथा कड़ें बालयुक्त दादोबाले और छोटे-छोटे कानोंबाले मनुष्योंकी मृत्यु पापकर्म करनेसे होती है। मांसरहित, चिपटे कानोंवाले इसरेसे संयुक्त, बालचन्द्रके सदश पतले, वक्र एवं उत्रत लोग भोगो और अत्यन्त छोटे-छोटे कानोंसे युक्त मनुष्य कंज्स होते हैं। शहक्वाकार कानोंके होनेपर मनुष्य राजा होता है तथा रोमपशिसे भरे होनेपर उसे श्रीण आयुक्ती प्राप्ति होती है। बडे कानोंवाले धनी अथवा राजा माने जाते हैं। स्निग्ध, विस्तृत, मांसल तथा दीर्घ कानोंवाले राजा होते हैं। निम्न गण्डस्थलवाला भोगों और पूर्व सुडील एवं सुन्दर पुरुषोमें निर्धनता और अर्द्धचन्द्राकार ललाटके होनेपर वे होनेपर मनुष्य मन्त्री होता है।

विपटी होनेपर मनुष्यकी अकालमृत्यु होती है। भाग्यवानुकी राजा होते हैं। और नासिकाके बक्र होनेपर मनुष्योंमें कुर-स्वधाव होता है। करता हुआ रूखा रुदन सुखकारी होता है।

मनुष्य पापातमा तथा मधु-पिगलवर्णवाले नेत्रीके होनेपर वह उत्मत्तकी हैंसी अनेक प्रकारकी होती है। दुरात्मा होता है। केकड़ेके नेत्रोंकी भौति नेत्र होनेसे व्यक्ति भौ वर्षतक जीवन प्राप्त करनेवाले लोगोंके मस्तकपर नेत्रवाले सौभाग्यशाली होते हैं। कृष्णवर्णके तारक विन्दुओंसे युक्त नेत्रॉवाले पुरुषोंमें उत्पादन-क्षमता होती है। मण्डलाकार नेत्रोंके होनेपर व्यक्ति पापी तथा दैन्यभावयुक्त नेत्रवाले विभिन्न प्रकारके सुखाँका उपभोग करते हैं। जिनके नेत्र अधिक उन्नत अर्थात् ऊपरकी ओर अधिक उठे होते हैं, वे अल्पाय होते हैं। विज्ञाल और उन्नत नेप्रोंके होनेपर मनुष्य अल्पायु होता है। मन्ष्य सखी होते हैं।

सन्दर भौंडोंसे सुशोधित प्राणो धन-वैभवसे सम्पन्न होते हैं। मध्यधागमें कटी हुई भौहोंके होनेपर मनुष्य निर्धन तथा झुको हुई भौहोंके होनेसे अगम्या स्वियोंमें रह रहनेवाले और पुत्रसे रहित होते हैं।

उन्नत, विशाल, शङ्खाकार एवं विषम मस्तक होनेपर धनसम्बद्धतासे परिपूर्ण रहते हैं। सीपके समान आभावाले मुगोकी नासिकाके समान सुन्दर नासिकावाला व्यक्ति तथा विशाल मस्तकवाले आचार्यके पदको सुशोभित करते सुखी और शुष्क नासिकावाला दीर्घजीवी होता है। हैं, जिनके मस्तकोंपर शिराएँ स्पष्ट प्रतीत होती रहती हैं, नासिकाका अग्रभाग छित्र तथा कृपके समान नासिकाके वे पापकर्ममें लगे रहते हैं। उन्नत जिस्ओंसे युक्त स्वस्तिकाकार, होनेपर मनुष्य अगम्या स्त्रीके साथ सहवास करता है। दीर्घ सुन्दर लाताटके होनेपर मनुष्य धनवान् तथा निम्न ललाटके नासिकाके रहनेपर सौभाग्यवान् एवं आकृत्वित अर्घात् टेढी होनेपर बन्दी बनाये जानेथोग्य होते हैं और कृर कर्मीको नासिका होनेसे व्यक्ति चौरकार्यमें प्रवृत्त होता है। नासिकाके करते हैं। गोल ललाटवाले कृपण और उन्नत भालवाले

नासिका छोटी होती है। चक्रवर्ती सम्राटको नासिकामें लोगोंका अनुरहित, दीनतारहित, स्निम्ध रूदन मङ्गलकारी छोटे-छोटे गोल और सीधे छिद्र होते हैं। दक्षिणभागको होता है तथा अविशत अनुधारवाला, दैन्यभावको प्रकट

वक्र उपान्तभागोंसे युक्त तथा पद्य-पत्रके समान सुन्दर कम्पनरहित हैसी ब्रेष्ट होती है। औख मुँदकर हैंसनेवाला नेत्र सुखी लोगोंके होते हैं। बिल्लीके सदत नेवींके होनेपर व्यक्ति पापी होता है। बार-बार हैसनेवाला दुष्ट होता है और

कर और हरितवर्णके नेत्रवाले पापकर्ममें अनुरक्त होते हैं। तीन रेखाएँ होती हैं। मस्तकपर चार रेखाओंके होनेपर वक्र नेत्र बलवान पुरुषोंका लक्षण है। हाधीके समान मनुष्य राजा होता है और उसकी आयु पंचानके वर्षतक नेत्रोंबाले मनुष्य सेनानी होते हैं। गम्भीर नेत्रोंबाला पुरुष होतो है। रेखारहित ललाटवाला व्यक्ति नब्बे वर्ष जीवित राजा तथा स्थूल नेत्रीबाला मन्त्री होता है। नीलकमलके रहता है। विच्छित्र रेखाओंसे व्याप्त मस्तकवाले पुरुष सदश नेत्रोंके होनेपर व्यक्ति विद्वान् तथा स्थामवर्णके लम्पट होते हैं। मस्तकपर केशपर्यन्त रेखाओंके होनेसे मनुष्यको आयु अस्सो वर्षको होती है। पाँच, छ: अथवा सात रेखाओंके होनेसे प्राणीकी आयु पचास वर्ष तथा सातसे अधिक रेखाओंके होनेपर चालीस वर्षकी आयु माननी मनुष्य दरिद्र होते हैं। सन्दर एवं विज्ञाल नेत्रीयाले संसारमें चाहिये। मस्तकपर रेखाओंको वक्रता एवं भींहपर्यन्त स्थिति होनेसे पुरुष तीस वर्ष तथा बाँची ओर वक्र होनेपर बीस वर्षको अल्पायको प्राप्त करते हैं। रेखाओंके क्षुद्र होनेपर

छत्रकार सिरवाले मनुष्य राजा और निम्न सिरवाले धनी विषय भौंहोंवाले दरिद होते हैं तथा दीर्घ, सचन, एक- होते हैं। चिपटे सिरसे युक्त पुरुषोंके पिताकी मृत्यु शीघ्र होती है। मण्डलाकार सिर होनेपर व्यक्ति गौ आदि प्राणियोंसे सम्पन्न होते हैं। घटाकार मूर्द्धाभागके होनेपर मनुष्य पापमें अभिरुचि रखनेवाला तथा धनहीन होता है।

काले-काले घुँघराले, स्निम्ध, एक छिद्रमें एक-एक उत्पन्न, अभिन्न अग्रभागवाले, अत्यधिक, न छोटे न बडे. सुन्दर केशोंबाले राजा होते हैं। एक छिद्रमें अनेक बालवाले, विषम, स्यूलाग्र तथा कपिलवर्णके केशोंसे युक्त पुरुष निर्धन होते हैं। अत्यन्त कृटिल, सधन एवं काले बालवाले भी निर्धन होते हैं।

मनुष्यके जो अङ्ग अतिज्ञय रूस, शिराओंसे व्याप्त तथा मांसरहित होते हैं, वे सभी अञ्चभ हैं। यदि वे अङ्ग इसके विपरीत होते हैं तो उन्हें सुभ मानना चाहिये।

मानव-शरीरमें तीन अङ्ग विशाल और तीन अङ्ग गम्भीर, पाँच अङ्ग दीर्घ तथा सूक्ष्म, छ: अङ्ग उन्नत, चार हस्य एवं सात अङ्ग रक्तवर्णके होनेपर वह राजा होता है।

नापि, रसर तथा सत्त (स्वभाव) - ये तीन गम्भीर होने चाहिये। ललाट, मुख तबा वक्ष:स्थल विज्ञाल, नेत्र, कश्चा (काँख), नासिका तथा कुकाटिका अर्थात् गरदनका उठा हुआ भाग, सिर और गरदनका जोड़-इन छ:को उन्नत होना चाहिये, ऐसा होनेपर मनुष्य राजा होता है। जंपा, ग्रीया, लिङ्ग तथा पृष्ठभाग-ये चार अङ्ग इस्त होने चाहिये। करतल, ताल, अधर और नख-ये चार रकाभ होने चाहिये। नेत्रान्तभाग चरणतल, जिह्ना और दोनों ओष्ट- ये पाँच सूक्ष्म होने चाहिये। दाँत, अँगुली, पर्व, नख, केश और त्वचा-ये पाँच अङ्ग दीर्घ होनेपर सुभकारी है। दोनों स्तनॉका मध्यभाग, दोनॉ भुजाएँ, दाँत, नेप्र और नासिकाका भी दीर्थ होना शुभ है।

इस प्रकार मनुष्योंका लक्षण कहकर अब स्त्रियोंका लक्षण कह रहा है।

रानीके दोनों चरण स्निग्ध, समान पदतलवाले, तासवर्षकी आभासे सुशोभित नखाँसे युक्त, सघन अंगुलियाँवाले तथा उन्नत अग्रभागवाले होते हैं। ऐसी स्त्रीको प्राप्तकर मनुष्य चिह्नवाली स्त्रियाँ राजवल्लभा होती है। राजा बन जाता है।

गृह गुरूफ-प्रदेशसे युक्त पद्मपत्रके समान चरणतल तुभ होते हैं। जिसके चरणतलों में पसीना नहीं छुटता है और वे कोमल होते हैं, उनमें मत्स्य, अंकुश, ध्यज, यत्र, पद्म तथा हलका चिड़ हो तो वह रानी होती है। इन लक्षणोंसे रहित चरणवाली स्त्री दासी होती है। स्त्रियोंकी रोमरहित, सुन्दर, शिराविहीन, गोल-गोल जंघाएँ शुभ हैं। सन्धिस्वान तथा दोनों जानू समान होने चाहिये, ऐसा शुभ होता है। गजजुण्डके सदृश, रोमरहित तथा समान भागवाले दोनों कर बेष्ट माने जाते हैं।

विस्तीर्ण, मांसल, गम्भीर, विशाल तथा दक्षिणावर्त नाभि तथा मध्यभागमें त्रिवलियों ब्रेष्ट होती हैं। स्त्रियोंके रोमरहित, विशाल, भरे हुए, सधन एवं समान भागवाले कठोर स्तन-प्रदेश शुभ है। रोमरहित, सङ्क्षके आकारवाली सुन्दर ग्रीका प्रशस्त होती है। अरुणाभ अभरोष्ठवाला तथा वर्तुलाकार मांसल भग हुआ मुख श्रेष्ठ होता है। कुन्द-पुष्पके समान दन्तपीक तथा कोमलकी भौति वाणी सुभ होती है, जो सदैव दाक्षिण्य भावसे परिपूर्ण रहती है, उसमें राठता नहीं होती, अपितु इंसीके समान मधुर शब्दोंका प्रयोग करके यह दूसरोंको सुख प्रदान करती है, वही स्त्री बेष्ट होती है। स्वियोंकी नासिका और नासिका-छिद्र समान होना मनोहर और मङ्गलदायी होता है।

स्वियोंके नीलकमलके समान नेत्र अच्छे होते हैं। वालचन्द्रके सदक भौडोंका होना शुध है, किंतु उनका मीटा होना अच्छा नहीं है। उनका मस्तक अर्द्धचन्द्रके समान सुन्दर, समतल तथा रोमविहीन होना शुभ है।

सुन्दर, समान, मांसल एवं कोमल कान श्रेष्ठ होते हैं। स्त्रियोंके चिकने, नीलवर्णवाले, मृदु और **पुँ**पराले केश प्रशस्त माने गये हैं। उनका सम आकारवाला सिर शुभ होता है। चरणतल अथवा करतलमें अश्व, हस्ति, श्री, वृक्ष, यूप, वाण यय तोमर, ध्यज, चामर, माला, पर्वत, कुण्डल, वेदी, शहु, छत्र, पद्म, स्वस्तिक, रथ तथा अङ्कुश आदि

स्वियोंके मांसल मणिबन्धवाले तथा कमलदलके समान

१-किरातार्जुनीय १२। १९ के अनुसार 'सत्त्व' का अर्थ स्वभाव भी होता है।

, upriligues aux principus de l'experience de l'experience de l'experience de l'experience de l'experience de l

हाथोंको शुभ माना जाता है। स्त्रियोंके करतलोंका न तां पुरुषको आयु सौ वर्षकी होती है। यदि इन अँगुलियोंके शुभ रेखाओंसे व्याप्त करतलवाली स्त्रियों आजीवन सथवा हो तो उसी अनुपातमें मनुष्यकी आयु भी कम होती है। रहकर विभिन्न प्रकारके सुखोंका उपभोग करती हैं। हाथमें जो रेखा मणिबन्धसे निकलकर मध्यमा अँगुलीतक जाती है, वह ऊथ्वरेखा कही जाती है। ऐसी रेखा यदि स्त्री या पुरुषके करतल अथवा चरणतलमें अवस्थित रहती है तो वे स्वी च। वह रेखा दीर्च एवं अविच्छित्र हो तो उस पुरुष अपना पुरुष राज्य अथवा अन्य प्रकारके मुर्खोंका उपभोग करते हैं। स्त्रीको दीर्घायु माना जाता है। स्त्रियोंके विषयमें कड़े गये

अधिक निम्न और न अधिक उन्नत होना अच्छा होता है। बीचतक आनेवाली रेखाका परिमाण उसकी अपेक्षा कम

अङ्गृहमूलक रेखाओंके रहनेपर स्त्री या पुरुष बहुत-से पुत्रों या कन्याओंजाले होते हैं। स्थान-स्थानपर आयुरेखाके छित्र-भित्र होनेसे मनुष्यकी आयु अल्प हो जाती है। यदि कनिष्ठिका अँगुलीके मुलसे निकलकर तर्जनी और ये सभी लक्षण जुभ हैं। इनके विपरीत लक्षणीक होनेपर मध्यमा अँगुलियोंके मध्यभागतक रेखाके पहुँचनेपर स्त्री या उन्हें अञ्चथ मानना चाहिये। (अध्याय ६५)

चक्राङ्कित शालग्रामशिलाओंके विविध नाम, तीर्थमाहात्म्य तथा साठ संवत्सरींके नाम

श्रीहरिने कहा—हे शिव! चक्रांड्रित शालग्राम-शिलाको पूजा सब प्रकारके कल्याण-मञ्जल प्रदान करती है।

प्रथम जालग्राम-जिलाका नाम सुदर्शन है। (इसमें एक चक्रका चिह्न अङ्कित होता है।) दूसरी शिल्हाका नाम लक्ष्मीनारायण है। (इसमें दो फर्क़िक चिह्न होते हैं।) तीन चक्रोंवाली शिलाको अच्युत तथा चार चक्रोंवाली शिलाको चतुर्पंज कहा जाता है। इस प्रकार चक्रसमन्तित अन्य जालाउम-शिलाओंको क्रमञ:--चासुदेव, प्रदान, संकर्षण तथा पुरुषोत्तयके नामसे अभिहित किया गया है। नौ चक्रॉवाली जिलाको नवव्युह और दस चक्रोंबाली जिलाको दजात्मक कहते हैं। एकादश चक्रोंसे युक्त जिलाको अनिरुद्ध एवं द्वादश चक्रोंसे समन्वित शिलाका नाम द्वादशात्मक है। उसके ऊपर चक्रोंकी चाहे जितनी संख्या हो, उनसे लक्षित शिलापूर्तिका नाम भगवान् अनन्त कहा गया है। जो शिलामृति सबसे सुन्दर हो, उसका पूजन करना चाहिये, ऐसी सुदर्शन पूर्तियाँ पूजिल होनेपर सभी कामनाओंको पूर्ण करती है।

जहाँ शालग्राम और द्वारका-शिला रहतो हैं और इन दोनों शिलाओंका जहीं संगम है, वहीं मुक्ति रहती है, इसमें संशय नहीं है-

शालग्रामशिला यत्र देवो द्वारवर्ताभवः। डभयोः संगयो यत्र तत्र मुक्तिन संशयः॥

हे शंकर। शालग्राम, द्वारका, नैमिय, पुष्कर, गया, वाराणसी, प्रयाग, कुरक्षेत्र, सुकरक्षेत्र, गङ्गा, नर्मदा, चन्द्रभागा, सरस्वतो, पुरुषोत्तमक्षेत्र तथा महाबालका अधिवान उज्जयिनी-ये सभी तीर्थ सब प्रकारके पापींका विनाश करनेवाले एवं पुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं।⁵

प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगिरा, डोम्ख, भाग, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाधी, विक्रम, विषु चित्रभान्, स्वभान्, तारण, पार्थिव, व्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृति, खर, नन्दन, विजय, जय, मन्मच, दुर्मुख, हेमलम्ब, विलम्ब, विकार, शर्वरी, प्लव, शुभकृत्, शोभन्, क्रोधी, विश्वावस्, पराभव, प्लवंग, कीलक, सीम्य, साधारण, विरोधकृत्, परिधावी, प्रमादी, जानन्द, राक्षस, नल, पिंगल, काल, सिद्धार्थ, रौद्रि, दुर्पति, दुन्दुधि, रुधिरोदारी, रक्ताक्ष, क्रोधन एवं अक्षय-ये साठ संवासर अपने नामके अनुसार शुभ और अशुभ फल प्रदान करनेवाले हैं। (अध्याय ६६)

शालप्रामी द्वारका च नैमियं पुष्करं गया। वाराणसी प्रयागक्ष कुरक्षेत्रं च सुकरम् । गक्का च नर्मदा चैव चन्द्रभागा सरस्वती। पुरुषोत्तमी महाकालस्तीर्धान्येतानि शहुर ॥ सर्वपापहराज्येव भृक्तिमृत्तिप्रदानि वै। (६६।६-८)

स्वरोदय-विज्ञान

स्वरके उदयसे कार्योंके शुभ और अनुभका ज्ञान होता उत्तम होता है। है। शरीरमें बहुत प्रकारकी नाडियोंका विस्तार है। नाभि- मैथुन, संग्राम और भोजन करते समय राजाओंको प्रदेशके नीचे जो कन्दस्थान अर्थात् मूलाधार है, वहींसे उन पिंगला नाडीके श्वास-प्रवाहपर ध्यान रखना चाहिये। नाडियोंका अङ्करण होकर सम्पूर्ण शरीरमें विस्तार होता है। शुभ कार्योंके सम्पादनमें, यात्रामें, विषापनोदनमें तथा शान्ति बहत्तर हजार नाडियाँ नाभिके मध्यमें चक्राकार अवस्थित एवं मुक्तिकी सिद्धिमें राजाओंको इहा नाडीकी गतिपर रहती हैं। उन नाहियोंमें वामा, दक्षिणा और मध्यमा नामक विचार करना चाहिये। तीन श्रेष्ठ नाडियों है। (उन्हींको क्रमश:--इडा, पिंगला और पिंगला एवं इडा नामक दोनों नाडियों चल रही हों तो सुष्णा कहा जाता है।) इनमें वामा सोमात्मिका, दक्षिणा कर तथा सौम्य दोनों प्रकारका कार्य न करे। विद्वानुको यह सुर्यके समान तथा मध्यमा नाडी अग्निके समान फलदायिनी समय विषके समान मानना चाहिये। एवं कालरूपिणी है।

विनाश करनेवाली मृत्यु आ पहुँचती है।

प्राणवायुके प्रवाहित होनेके समय सूर्यके समान तेजस्वी इसी प्रकार प्रश्नकर्ताके स्वरमें उदय तथा प्रश्नकर्ताकी क्रूर कार्य करना चाहिये। यात्रामें, सभी कार्योमें तथा अवस्थित आदिपर विचार करनेसे भी कार्यकी सिद्धि-विषको दूर करनेमें इडा नाडीका चलना अच्छा होता है। असिद्धिका निर्णय तथा शुभ-अशुभ-कालका ज्ञान किया है। उच्चाटनादि अभिचार कर्मीमें भी पिंगला नाडीका चलना होती है । (अध्याय ६७)

सौम्यादि सुभ कार्योमें, लाभादिके कर्मोमें, विजयके वामा नाडी अमृतरूपा है, वह जगत्को आध्यापित लिये, जीवनके लिये तथा गमनगमनके लिये वामा नाडी करती रहती है। दक्षिणा नाडी अपने रीद्रगुणसे सदैव सर्वत्र प्रशस्त मानी जाती है। बात-प्रतिमात, युद्धादिके कुर जगत्का शोषण करती रहती है। जब तरीरमें इन दोनोंका कार्य, धोजन और स्वी-सहवासमें दक्षिणा नाडी प्रशस्त एक साथ प्रवाह होता है, उस समय समस्त कार्योंका होती है। प्रवेश तथा क्षुद्र-कार्योंमें भी दक्षिणा नाडी ब्रेष्ट

यात्रादिके लिये प्रस्थानकालमें वामा तथा प्रवेशके शुभ-अशुभ, लाभ-हानि, जय-पराजय तथा जीवन अवसरपर दक्षिणा नाडीप्रवाहको तुभ माना गया है। और मृत्युके विषयमें प्रश्न करनेपर यदि प्रश्नकर्ताकी उस इडा अर्थात् वामाके श्वास-प्रवाह-कालमें ऐसा सौम्य समय मध्यमा नाडी चल रही हो तो सिद्धि प्राप्त नहीं होती शुभकारी कार्य करना चाहिये, जो चन्द्रके समान जगतुके और यदि वामा तथा दक्षिणा नाडीके चलते समय प्रश्न हो लिये भी शुभकारी हो तथा पिंगला अर्थात् दक्षिणा नाडीमें तो निक्षित ही सिद्धि प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है।

भोजन, मैथून, युद्धरम्भमें, पिंगला नाडी सिद्धिदायक होती जाता है। इसके लिये स्वरोदय-विज्ञानकी जानकारी अपेक्षित

रत्नोंके प्रादर्भावका आख्यान तथा वज्र (हीरे)-की परीक्षा

प्राचीनकालमें बल नामक एक असुर था। उसने इन्हादि बाग्यज्ञसे वह पशुवतु मारा गया। सभी देवोंको पराजित कर दिया था। उसको जोउनेमें वचनपर अंडिंग, पशु-शरीरवाले उस असुरने संसारके देवगण समर्थ नहीं थे। अत: असमर्थ देवोंने एक यह कल्याणार्थ एवं देवताओंकी हितकामनाके कारण यज्ञमें करनेका विचार किया और उस असुरके सन्निकट पहुँचकर 'जरोरका परित्याग किया था, उस विशुद्ध कर्मको करनेसे उससे यज्ञपशु बननेकी अध्यर्धना की। वचनबद्ध बलासुरने उसका शरीर भी विशुद्ध सत्वपुण सम्पन्न हो उटा था।

सूतजीने कहा-अब में रत्नपरीक्षाका वर्णन करता हूँ। अपना शरीर उन देवींको दानमें दे दिया। अत: अपने

१-यहाँ स्वरोदय-विज्ञानका दिग्दर्शनमात्र किया गया है। विस्तृत जानकारी, प्रमाण एवं तथ्यातथ्यके स्पष्टीकरणके लिये तद्विषयक ग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिये।

परिणत हो गये।

इस प्रकार रहाँकी उत्पत्ति होनेपर देवता, यक्ष, सिद्ध तथा नागोंका उस समय बहुत बड़ा उपकार हुआ। जब वे सभी विमानके द्वारा उसके शरीरको आकाशमानीसे ले जाने लगे तो यात्रावेगके कारण उसका शरीर स्वत: खण्ड-खण्ड होकर पृथिबीपर इधर-उधर गिरने लगा।

बलासरके शरीरके अङ्ग खण्ड-खण्ड होकर समूद्र नदी, पर्वत, यन अथवा जहाँ-कहीं रंचमात्र भी गिरं, यहाँ रबोंको खान बन गयी और उन स्थानोंको प्रसिद्धि उन्हीं रलोंके नामपर हो गयी। पृथिबीकी उन खानोंमें विविध प्रकारके रत उत्पन्न होने लगे: जो राक्षम, विष, सर्प, व्याधि तथा विविध प्रकारके पापींको नष्ट करनेमें समर्थ थे।

रलेकि विविध प्रकारोंको यन (होत), मुकार्माण, पराराग, मरकत, इन्द्रनील, बेट्चं, प्रथाग, ककेंतन, पुलक, रुधिर, स्फटिक तथा प्रवालादि कहा गया है। पारदर्शी विद्वजनोंने उनका यह नामकरण तथा संग्रह यथायोग्य गुणोंको दृष्टिमें राजकर किया है।

वर्ण, गुण, दोष, फल, परीक्षा तथा मृत्य आदिका ज्ञान ताम्रवर्णके हीरे स्वधावत: सुन्दर होते हैं। उन हीरोंमें तरसम्बन्धित सभी ज्ञास्त्रोंके द्वारा विधिवत प्राप्त करना कमानुसार विष्णु, वरुण, इन्द्र, अनि, यम और मरुत्-देव चाहिये, क्योंकि कुल्सित लग्न या अनेक क्योगोंसे व्यक्ति प्रतिष्ठित रहते हैं। अशुभ दिनोंमें जिन रबीकी उत्पत्ति होती है, वे सभी

उनका संग्रह करे।

मात्राको जाननेवाले कहा गया है। वड़ (हीरा)-को हीरा प्रशस्त है। महाप्रभावशाली कहा गया है, इसलिये सर्वप्रथम उसीकी परीक्षाको बतायेंगे।

अत: उसके शरीरके सभी अङ्ग रजीके बीजके रूपमें स्थानीमें गिरे, वे हीरे बनकर उन स्थानीमें नाना प्रकारकी आकृतिवाले हो गये।

हिमाञ्चल, मातंग, सौराष्ट्र, पौण्ड्र, कलिंग, कोसल, वेण्यातट तथा सौबीर नामक आठ भूभाग हीरोंके क्षेत्र हैं। हिमालयसं उत्पन्न हीरे ताम्रवर्ण, वेणुकाके तटसे प्राप्त चन्द्रमाके समान श्रेत, सौबीर देशवाले नीलकमल तथा कृष्णपेचके समान, सौराष्ट्रप्रान्तीय ताप्रवर्ण एवं कलिंगदेशीय सोनेक समान आधावाले होते हैं। इसी प्रकार कोसल देशके हीरोंका वर्ण पीत, पुण्ड्रदेशीय श्याम तथा मतंग-क्षेत्रवाले हलके पीतवर्णके होते हैं।

यदि इस संसारमें कहींपर भी अत्यन्त सुद्र वर्ण, पार्श्वपागोंमें भली प्रकारसे परिलक्षित होनेवाली रेखा, विन्दु कालिया, काकपदक अर्थर त्रास दोषसे रहित, परमाणुकी भौति अत्यन्त लयु तथा तीरूण भारसे युक्त जो भी वज अर्थात् हीरा दिखायी देता है, उसमें निश्चित ही देवताका वास समझना चाहिये।

रंगके अनुसार हीरकोंमें देवताओंके विग्रहोंका निश्चय क्रिया गया है। वर्णको ध्यानमें रखकर ही हीरोंका विभाजन अतः रजपारखो विदानोको सर्वप्रधम रजोके आकार, करना चाहिये। हरित, धेत, पीत, पिंगल, श्याम तथा

बाह्यणके लिये जङ्क, कुमुद अथवा स्फटिकके समान दोषपूर्ण होकर अपनी गुण-क्षमताको नष्ट करते हैं। नुध्वर्णका होरा प्रशस्त होता है। श्रव्रियके लिये सह ऐश्वर्यंकी इच्छा करनेवाले राजाको चाहिये कि वह (चन्द्रालाञ्चनके समान वर्णवाला), बभू (पिंगल-भूरे परीक्षांसे किये गये अत्यना सुद्ध रहोंको धारण करे अचक वर्णके धात विशेषके समान वर्णवाला), विलोचन (आँखकी ताराके समान वर्णवाला), वैश्यवर्णके निमित्त कान्त (कुंकुम) जो रजशास्त्रीके ज्ञाता, कुशल, रजसंग्रही तथा अथवा कदलोदलके समान आभावाला तथा शहरार्णके परीक्षण-कार्यमें दक्ष होते हैं, उन्होंको रज़ोंके मूल्य और लिये थीत (चौदी)-के समान अथवा तलवारके सदश

विद्वानोंने राजाओंके योग्य दो प्रकारके हीरोंको उत्तम माना है, जो अन्य लोगोंके लिये प्रशस्त नहीं होते हैं। जो बजायुध इन्द्रपर विजयको अभिलामा रखनेवाले उस होए जवावर्ण तथा प्रवालके समान रक्तवर्ण अथवा हल्दी-यल नामक असूरके अस्थिभाग पृथिवीके जिन-जिन रसके सदृष्ठ पीतवर्णका होता है, वह राजाओंके लिये

१-काकके पदके समान आधारविशेषसे यक्त।

२-त्रास-- मणिके दोषविशेषको ज्ञस कहते हैं।

३-विलोचन (औंख) प्रसंतके अनुसार आँखकी तारा।

लाभप्रद है। सभी वर्णोंका स्वामी होनेके कारण अथवा समस्त वर्णीके गुणोंको अपनेमें समाविष्ट करनेके उद्देश्यसे राजाओंको सभीके कल्याणकी इच्छासे उक्त दो प्रकारके होरोंको धारण करना चाहिये। ऐसे हीरोंको धारण करनेका अधिकार अन्यके लिये किसी भी प्रकारसे नहीं है।

जिस प्रकार लोकमें निम्न और उच्च वर्णका वर्णसांकर्य दोषाबह एवं दु:खदायी होता है, रब्नोंका वर्णसांकर्य उससे भी अधिक द:खदायी होता है।

केवल वर्णमात्रको देखकर ही विद्वानोंको स्तका संचय नहीं करना चाहिये, क्योंकि जो गुणवान रत होता है, वही गुण और सम्पत्तिकी विभूति होता है, इसके विपरीत गुणहीन रत कष्टका हेत् होता है। जिस हरिका एक भी शृंग ट्टा हुआ अथवा छिल-भिन्न दिखायी दे तो गुणवान होनेपर भी धनार्थी जनोंको उसे अपने घरमें नहीं रखना चाहिये।

अग्निके समान स्कृटित, विशीर्ण शृंगभागसे बुक, मलिन वर्णवाले तथा मध्यमें विन्दुओंसे चिडित डॉरकको धारण करनेपर इन्द्र भी श्रीहोन हो जाते हैं। ऐसे हरिके संग्रह करनेकी लालसा नहीं करनी चाहिये। जिस हरिका एक भाग अस्त्र-शस्त्रादिसे विदीर्ण शत-विश्वत शरीरकी आभाको प्राप्त हो तथा वह रक्तवर्णसे चित्रित हो हो वैस्त हीरा इच्छा-मृत्युसे सम्पन्न शक्तिज्ञाली व्यक्तिकी भी शीध मृत्युको रोक नहीं सकता है। ऐसे हरिकी धारण नहीं करना चाहिये।

यटकोण, अष्टकोण, द्वादशकोण, पटपार्ध, अष्टपार्ध, द्वादरुपार्थ, यहभारा, अष्टभारा, द्वादरुभारा, उत्तुंग, सम एवं तीक्ष्णाग्र भाग हीरेके खानिक अर्थात् प्रकृतिगत गुण है।

जो हीरा पदकोण, विशुद्ध, निर्मल, तीवल धारवाला लघ, सन्दर पार्श्वभागसे युक्त और निर्दोष है तथा इन्हायुध वज्रके समान स्फरित अपनी प्रभाको विकीर्ण करनेमें समर्थ हो तो अन्तरिक्ष भागमें स्थित वह हीरा इस पृथिबीलोकमें सुलभ नहीं है।

जो मनुष्य तीक्ष्णाग्र, निर्मल तथा दोषशुन्य हरिको धारण करता है, वह जीवनपर्यन्त प्रतिदिन स्त्री, सम्पत्ति, पुत्र, धन-धान्य और गवादिक पशुओंकी श्रीवृद्धिको प्राप्त करता है। सर्प, खिष, व्याधि, अग्नि, जल तथा तस्करादिक

सिकट आनेके पूर्व दूरसे ही प्रत्यागमित हो जाते हैं।

यदि होरा सभी दोषोंसे रहित तथा भारमें बीस तण्डलके बराबर हो तो मणिशास्त्रके पण्डितोंने उसका मूल्य अन्य हरिको अपेक्षा द्विगुण अधिक कहा है। पूर्वोक्त परिमाणमें तीन भाग, अद्धंभाग, चतुर्थाश, त्रयोदशांश और तोसवाँ अंश, साठवाँ अंश, अस्सीवाँ अंश, शतांश तथा सहस्रांत भाग न्यूनाधिक होनेपर मूल्यका निर्धारण भी उसके समान ही न्यूनाधिक होता है।

आठ गौर सरसंकि दानोंके भारके बराबर एक तण्डलका धार होता है।

जो होरा सभी गुणीसे सम्पन्न होता है और जलमें हालनेपर तैरता है, वह सभी रत्नोंमें सर्वश्रेष्ट होता है। दसीको धारण करना दवित है।

जिस हीरेमें अल्पमात्र भी स्पष्ट अथवा अस्पष्ट दोष होता है तो स्वाभाविक मृत्यकी अपेक्षा उस हरिको मनुष्य दर्शात कम मृत्यमें ही प्राप्त कर लेता है। जिस हरिमें छोटे अथवा बड़े अनेक दोष प्रकट रहते हैं, उस हरिका मुख्य स्वाभाविक मृत्यकी अपेक्षा शतांश हो माना गया है।

अलंकारके रूपमें प्रयुक्त हीरेमें यदि किसी भी प्रकारका दोष परिलक्षित होता है तो अपेक्षाकृत उसका मुल्य बहुत हो कम हो जाता है। यदा-कदा जो हीरा सबसे पहले गुण-सम्पत्तियोंसे परिपुष्ट माना जाता है, वही बादमें दोषयुक्त हो जाता है। राजाको ऐसे दोषपूर्ण हरिसे बने आध्यणको धारण नहीं करना चाहिये। गुणहीन होनेपर तो मिन भी आभूषणके योग्य नहीं होती है।

पत्र-प्राप्तिकी अभिलापा रखनेवाली स्वीके लिये सर्वगुण-सम्पन्न होनेपर भी हीस प्रशस्त नहीं होता है। दीर्घ, चिपटा, इस्य तथा अन्यान्य गुणोंसे रहित हरिके विषयमें कुछ कहना ही नहीं, वह तो दोषपूर्ण होता ही है।

हरिके कुशल विशेषज्ञ लौह, पुष्पराग, गोमेद, वैदुर्य, स्फटिक एवं विविध प्रकारके काँचोंसे हीरकके प्रतिरूपोंका निर्माण कर लेते हैं। अत: विद्वानोंको कुशल परीक्षकोंसे उनकी परीक्षा करवा लेनी चाहिये।

श्वार-द्रव्यके द्वारा, उल्लेखन-विधिसे एवं शाण-प्रयोगसे भय एवं अभिचार-मन्त्रोंके उच्चाटनादिक प्रयोग उसके होरोंका परीक्षण करना चाहिये। पृथिवीमें जितने भी रत्न हैं चिह्नाङ्कन कर सकता है; किंतु अन्य कोई भी रह या धातु जयरकी ओर जाती है। हीरेमें चिक्क करनेमें समर्थ नहीं है।

रक्षशास्त्रज्ञ हीरेके विषयमें इस निर्देशके विपरीत ही कहते हैं। इन्द्रायुध-चिह्नसे अङ्कित होनेपर वह मनुष्यको धन-धान्य

पुष्परागादि जातिविशेषके रत दूसरी जातिके रतको एवं पुत्रादिसे परिपूर्ण करता है। काट सकते हैं, किंतु हीरक एवं कुरुवृन्द अपनी हों जो राजा विद्युत्-तुल्य, समुज्यल एवं चमकते हुए जातिके रजको काटनेमें सक्षम होते हैं। हरिसे हीरा ही कट होभा-सम्पन हरिको धारण करता है, यह अपने पराक्रमसे सकता है, अन्य रहोंसे वह हीरा काटा नहीं जा सकता है। इसरेके प्रतापको आक्रान्त करनेमें समर्थ होता है तथा अपने

प्रकारके रत्न हैं, उनमें किसी भी रतकों प्रभा ऊर्ध्वगामिनों करता है। (अध्याय ६८)

अथवा लीहादिक जितनी अन्य थातुएँ हैं, हीरा उन सबमें नहीं होती है। मात्र हीरा ही ऐसा रत्न हैं, जिसकी प्रभा

यदि होरा ट्रटे हुए किनारोंसे दोषयुक्त हो या विन्दु तथा गुरुता समस्त रत्नोंके महत्त्वका कारण है, फिर भी रेखासे समन्वित हो अधवा विशेष वर्णसे रहित हो तो भी

स्वाभाविक हरिके अतिरिक्त हीरक तथा मुक्तादि जितने समस्त सामनोंको वशमें रखकर वह पुधिवीका उपभोग

मुक्ताके विविध भेद, लक्षण और परीक्षण-विधि

शहू, मतस्य, सर्प, शुक्ति तथा चौसमें उत्पन्न मुकाफलोंको अधिक्रित किया गया है। इनसे प्राप्त मुका पूर्णतया संसारमें प्रसिद्धि है। किंतु इनमें तुन्ति (सीप)-में प्रादुर्भत पोतवर्णसे युक्त एवं प्रभाविहीन होती है। मुकाएँ ही अधिक उपलब्ध है।

मुक्ताशास्त्री कहते हैं कि इन मुक्ताओंमें मात्र एक हो ऐसी मुक्ता होती है, जिसको रतपदपर अधिष्टित किया जा सकता है। वह शुक्तिसे उत्पन्न होनेवाली मुक्ता है। यह सुचिकादि यन्त्रोंसे बंध्य होती है, रोध मुकाएँ अबेध्य हैं।

प्राय: बाँस, शाथी, मतस्य, शङ्क एवं वराहसे उत्पन्न मुकाएँ प्रभाविहीन होती हैं; फिर भी माङ्गलिक होनेसे वे प्रशस्त मानी जाती है।

रत्निर्णायक विद्वानीने मुकाओंकि जिन आठ प्रकारीका वर्णन किया है, उनमें शहुसे उत्पन्न और हान्वीसे प्राप्त होनेवाली मुकाको अधम कहा है।

शङ्क्रसे उत्पन्न मुक्ता, अपने मूल कारणके मध्यभागमे अवस्थित वर्णके समान वर्णवाली तथा परिमाणमें बृहल्लील फलके सदश होती है। जो मुक्ता हाथीके कुम्भस्थलसे निकलती है, वह पीतवर्णवाली एवं प्रभाविहीन होती है। जो शङ्कोद्धव मुकाएँ हैं, ये जार्ड्रथनुषके तृत्य वर्णको प्राप्त पीतशङ्क्षोंके श्रेष्ट गोत्रमें ही उत्पन्न होती हैं। जो गजमुकाएँ हैं, उनका भी जन्म विशुद्ध वंशवाले मदमन गजराजोंमें

सुतजीने कहा-बेष्ठ हाथी, जीयुत (मेघ), बराह, होता है, उन्हें मौक्तिकप्रथव अर्थात् राजमुक्ता नामसे

मस्यमे उत्पन्न मुक्ता पाठीन मतस्यके पीठके समान वर्जवाली, अत्यन्त सुन्दर, वृत्ताकार, लघु एवं अत्यधिक सुक्ष्म होती है। यह जलवर प्राणियोंके मुखोंमें प्राप्त होती है, उनमें भी जो महस्य अधाह समुद्रको जलराशिमें विचरण करते हैं, वे इसके जनक होते हैं।

वराहके दाँतसे उत्पन्न मुका उसके ही दलाङ्करोंके सदृष्ट वर्णवासी होती है, किंतु ऐसी मुक्ता प्रदान करनेवाले विजिष्ट वराहराज कहीं किसी विशेष भूप्रदेशमें ही पाये जाते हैं।

वाँसके पवाँसे उत्पन्न मुक्ताएँ वर्षोपल (ओले)-के समान समुख्यल वर्णकी सुन्दर शोधासे सुशोधित रहती है। ऐसी मुकाओंके जनक बाँसोंके वंश दिव्यजनोंके लिये उपभीरय विशेष स्थानमें अङ्करित होते हैं। वे सार्वजनिक स्वानीमें नहीं पाये जाते।

सर्पमुक्ता मत्स्यमुक्ताके सदश विशुद्ध तथा वृत्ताकार होती है। स्थान-विशेषके कारण उसकी आत्पना उज्ज्वल शोभा होतों है। इसकी कान्ति शाणपर खढायी गयी तलवारको धारके समान अत्यन्त स्वच्छ होती है। सपर्कि

१-क्रविन्द-- माणिका अथवा क्रवित्त नामका खित्रोप।

सिरसे प्राप्त होनेवाली इस मुकाको अर्जित करनेवाले अनर्योंको आने नहीं देती। मनुष्य अतिशय प्रभासम्पन्न, राज्यलक्ष्मीसे युक्क तथा दु:साध्य महान् ऐश्वर्यसम्पन्न, तेजस्वी एवं पुण्यवान् होते हैं।

रबोंके गुण एवं अवगुणोंको जाननेकी इच्छासे यदि मुहूर्तमें प्रयत्नपूर्वक समस्त रक्षा-विधिसे सम्पन्न भवनके ऊपर उस मुकाको स्थापित करा दिया जाय तो उस समय आकाशमें देव-दुन्द्धियोंकी ध्वनि परिज्याप्त हो उठती है। इन्द्रधनुषको टंकार, विद्युल्लताओंके संघर्षण एवं सघन पयोधरोंको पारस्परिक टकराहटसे अन्तरिक्ष आच्छादित हो उठता है।

जिसके कोशागारमें यह सर्पमुक्ता रहती है, उसकी मृत्यु सर्प, राक्षस, व्याधि या जन्य आधिचारिक दोपके कारण नहीं होती।

मेधसे उत्पन्न होनेवाली मुक्ता पुरवीतक आ ही नहीं पाती। देवगण आकाशमें ही उसका हरण कर लेते हैं। उस मेपमुकाके तेजको दिव्य कान्तिसे अनायुत समस्त दिशाएँ आलोकित हो उउती है। सुर्यके समान देदीप्यमान उसका परिमण्डल देखनेमें कष्टसाध्य होता है। अग्नि, चन्द्र, नक्षत्र तथा ताराओंके तेजको तिरस्कृत करके जैसे सूर्यके कारण दिन प्रतिभासित होता है, उसी प्रकार गहन अन्धकारसे भरी हुई रात्रियोंमें भी उस मेधमुक्ताका तेज दिनको प्रभाके समान ही प्रभाको विकोणं करता है। विचित्र रहकान्तिको प्राप्त सुन्दर आभूषणको प्रशस्त बनानेके लिये जलराजिवाले चारों समुद्रोंसे इस मुक्ताका जन्म हुआ है। मेरा पूर्व विश्वास है कि इसका कोई मूल्य निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह जिसके पास रहती है, वह राजा होता है। उसके राज्यकी सम्पूर्ण भूमि सोनेसे परिपूर्ण होती है। कदाचित् ज्ञभ तथा महान कर्मविपाकसे यदि कोई दरिद्र भी इस मेधमुकाको प्राप्त कर लेता है तो उस व्यक्तिके पास जबतक यह रहती है, तबतक वह शत्रुओंसे रहित सन्पूर्ण पृथियीका उपभोग करता है।

यह मेधमणि मात्र राजाके लिये ही शुधप्रद है, ऐसा नहीं है, अपित प्रजाओं के भाग्यसे भी इसका जन्म होता है। यह अपने चारों ओर सहस्र योजनपर्यना क्षेत्रमें

दैत्यराज बलासुरके मुखसे विशीर्ण हुई दन्तपंक्ति आकाशमें फैली हुई नक्षत्रमालाके समान प्रतीत होती थी। विचित्र वर्णोंमें भी अपना विशुद्ध स्थान रखनेवाली वह रत-विधियोंमें पूर्ण अधिकार रखनेवाले विद्वानीके द्वारा जुभ दन्ताविल आकाशसे उस समुद्रकी जलराशिमें गिरी, जो पूर्णियाके चन्द्रकी समस्त चोडशकलाओंको तिरस्कृत करनेमें समर्थं महागुजसम्पन्न मणिस्तका निधान है। समुद्रके जलमें उसे शक्तिमें स्थान प्राप्त हुआ। अत: वह सामृद्रिक मुकाका प्राचीन बीज बन गया, जिससे अन्य मुक्ताओंका उद्धव हुआ। समुद्रके जिस जल-प्रदेशमें सुन्दर रत्न मुकामणिके बीज गिरे, उसी प्रदेशमें वे बीज फैलकर शुक्तियोंमें स्थित होनेके कारण मुखामणि (मोती) हो गये। अतएव सिंहल, परलोक, सौराष्ट्र, तासपर्ण, पारशव, कुबेर, पाण्ड्य, हाटक और हेमक-ये मुकाओंके खजाने हैं।

वर्धन, पाराबीक, पाताल, लोकान्तर तथा सिंहलादिकी शक्ति-मकार्ये प्रमाण, स्थान, गुण और कान्तिको दृष्टिसे अन्य क्षेत्रोंमें प्राप्त होनेवाली मुकाओंकी तुलनामें अत्यधिक होन वर्णको नहीं होती हैं। अतः बिह्नन् व्यक्तिको उनके मूल उत्पत्ति-स्थानको लेकर चिन्तन नहीं करना चाहिये, बॉल्क उनके रूप एवं प्रमाणपर ही विशेष ध्यान देनेकी आवस्पकता होती है। इस प्रकारकी मुकासे सम्बन्धित गुण-अवगुणको कोई व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। ये सर्वत्र सब प्रकारको आकृतियोमें पायी जाती है।

शुक्तिसे उत्पन्न एक मुकाफलका मुख्य एक हजार तीन सौ पाँच मुद्रा होता है। आधे तोले भारवाली मुक्ताका मूल्य उक्त मृत्यको अपेक्षा २/५ भाग कम होता है। जिस मुखाका भार तीन माशा अधिक हो, उसका मूल्य दो हजार मुद्रा कहा गया है।

ढाई माशा परिमाणवाली मुकाका मूल्य तेरह सी मुद्रा होता है। जो मुक्ता दो माशा परिमाणको होती है, उसका मुल्य आठ सौ मुद्रा है। जिसका परिमाण आधा माशा है, उसका मूल्य तीन सौ बीस मुद्रा है। जो मुक्ता भारमें छ: गुंजाके बराबर है, पण्डितोंने उसका मूल्य दो सौ मुद्रा स्वीकार किया है। जिसका परिमाण तीन गुंजा है, वह एक सौ मुझको होतो है। जो मुक्ता उक्त परिमाणमें सोलहर्वा एक सौ दस मुद्रा होता है।

जिस मुक्ताका कथित परिमाणकी तुलनामें भार १/२० भाग होता है, उसको विद्वानीने भवककी संज्ञा प्रदान की है। यदि वह मुक्ता गुणहीन न हो तो उसका मृल्य सत्तानवे मुद्रा होता है। जो मुक्ता उक्त स्वाभाविक परिमालमें १/३० भागकी होती है, उसको शिक्य कहा जाता है। उसका मृत्य चालीस मुद्रा होता है। जिसका परिमाण कहे गये परिमाणकी अपेक्षा १/४० वाँ अंत हो तो उसका मृत्य वीस मुद्रा है। जो मुक्ता १/५० वाँ अंश परिभित्त होती है, उसे सोम कहा जाता है। उसका मूल्य बीस मुद्रा है। जो मुद्रा १/६० अंतर्क बराबर होती है, उसको निकाशीर्थ कहा जाता है। वह चीदह मुद्रा मृल्यकी होती है। १/८० तचा १/९० अंत परिमित मुकाको कृप्य नामसे अभिहित किया गया है। उनका मूल्य क्रमश: न्यारह और नी मुद्रा है।

विश्वद्धताके लिये मुकाओंको अलपात्र (अर्घात् अल रखनेवाले मटके)-में भरे हुए जम्बीर-रसमें डालकर पकाना चाहिये। तत्पक्षात् उनको मूल आकृतियोंको धिसकर चिककण एवं समुज्यल आकार प्रदान करके उनमें यथाशीय छेद भी कर देना चाहिये।

सर्वप्रथम पूर्णतया आई मिट्टीसे लिप्त मलय पुरपाक और फिर बिडाल पुरपाकमें मुकाओंका पाचन करे। उसके बाद उन्हें चिकना और उज्जल बनानेके लिये उसमेंसे निकालकर दूध अथवा जल या सुधारसमें प्रकामा जाता है। तदननार स्वच्छ वस्त्रसे थिस-विसकार उन्हें उज्जल और चमकदार रूप प्रदान किया जाता है। ऐसा करनेसे वह

भाग है, विद्वानोंने उसको दार्थिका कहा है। उसका मूल्य मौक्तिक अत्यधिक गुणवान तथा कान्तिसे युक्त हो जाता है। महाप्रभावशाली, सिद्ध एवं संतप्तजनीके हितमें लगे रहनेवारो, दयावान् आचार्य व्याडिने ऐसा ही कहा है।

रसविशेपमें शोधित वही मुक्ता शरीरका अलङ्कार होती है-जो क्षेत काँचके समान हो, स्वर्ण-जटित हो तथा रत्नज्ञास्त्रके अनुसार सुपरीक्षित होनेके कारण (तार) कष्टका निवारण करनेवाली हो। सिंहल-देशके कशलजन ऐसा ही (शोधनादि कार्य) करते हैं।

यदि किसी मुकाके कृत्रिम होनेका संदेह हो तो उसको लवर्णामङ्गत उष्ण, स्नेह द्रव्यमें एक रात रखकर सुखे वस्त्रमें वेष्टित करके यथायोग्य धान्यके साथ उसका मर्दन करे। ऐसा करनेसे यदि उसमें विवर्ण भाव नहीं आता है तो उसको स्वाधाविक मुक्ता ही मानना चाहिये।

वधोक प्रमाणवाली गुरु, क्षेत्र, स्निग्ध, स्वच्छ, निर्मल एवं डेजसम्पन्न, सुन्दर एवं वृत्ताकार मुक्ता गुणसम्पन्न मानी गयों है। प्रमाणमें बड़ी-बड़ी, सुन्दर, रश्मि-कान्तिसे परिपूर्ण, धेत, सुबुताकार, समान एवं सूक्ष्म छिद्रसे युक्त जो मुक्ता होती है, वह क्रय न करनेवाले व्यक्तिको भी आनन्दित करती हैं। अतः ऐसी मुकाको प्रशस्त मानना चाहिये।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रत्नशास्त्रीय परीक्षा-विधिके अनुसार जिस मुकामें सभी गुणोंका उदय हो गया है, यदि वह मुक्ता किसी पुरुषका योग (संयोग) प्राप्त कर होती है तो वह अपने स्वामीको किसी भी प्रकारके एक भी अनुधौत्यादक दोषके सम्पकंमें नहीं आने देती।

पद्मरागके विविध लक्षण एवं उसकी परीक्षा-विधि

दैत्यराज बलासुरके उस श्रेष्ट स्त्रवीजरूप शरीरके रकको चलासुरके स्त्रवीजरूपी रक्तको लंका देशकी एक श्रेष्ट लेकर स्वच्छ नीले आकाश-मार्गसे देवलोकको जा रहे थे, नदीके जलमें छोड़ दिया, जो उस देशको सुन्दर रमणियोंके उसी समय निरन्तर देवोंपर विजय प्राप्त करनेसे अहंकारमें कान्तिमय नितम्बोंकी प्रतिच्छायासे ज्ञिलमिलाते भरे हुए लंकाधिपति रावणने आकर बलात् उनको शत्रुके अगाधजलसे परिपूर्ण तथा सुपारीकी वृक्ष-पौक्तयोंसे आच्छादित

सूतजीने कहा-भगवान् भास्कर जब महामहिम समान आधे मार्गमें ही रोक लिया। भयवश सूर्यने

१-उत्तम मुकाका क्रय (मुका विक्रय) करनेसे रुपये मिलते हैं, उससे आनन्द्रानुभूति होती है। क्रय किये बिना भी अपनी उत्तमताके कारण यथाविधि यदि मुता धारणको जाय तो वह स्वयं विविध ऐधर्य देती हो है। इसलिये आनन्दानुधृति दोनों दशा (क्रय करने, न करने)-में समान है।

अपने दोनों तटोंसे सुत्रोभित हो रही थी। गङ्गाके समान स्फटिकसे उद्भुत पदाराग मणियोंमें रहती है। अधिकांश पवित्र एवं उत्तम फलोंको प्रदान करनेमें सक्षम उस नदीका अणियोंमें प्रधा अन्तर्निहित होती है। फिर भी वे अपनी नाम रायणगङ्गा प्रसिद्ध हो गया।

यलासुरके स्त्रबीजरूपी रक्तके गिरनेसे उस नदोके प्रभाव डालती है। तटपर उसी समयसे राजिमें स्त्रराजियाँ स्वयं आकर एकड होने लगों। अतएव नदीका अन्त:भाग एवं बाह्यभाग सैकड़ों वे सभी सचन, रक्ताभवर्ण तथा स्फटिक प्रभावाले होते हैं। रवर्ण-बाणोंके समान अपनी प्रभाको विखेरनेमें समर्थ रत्नांसे प्रतिभासित होने लगा। उस रावणगङ्काके दोनों तट सदैव रत्नीकी उज्ज्वल प्रभासे सुशोधित रहते हैं। उसके जलमें उत्पन्न पद्मराग नामक रत्न सौगन्धिक (शापमाल-विकसित होनेवाला श्रेतमाल), कुरुविन्दज्ञ (स्त्रविजेष) तथा स्फटिक खोंके प्रधान गुणोंको धारण करते हैं। उनका स्वरूप चन्द्रकपुष्प, गुआफल, बीरबहुटी कोट तथा जवाकुसुम और अष्टक (कुंकुम)-के वर्णीको कान्तियोंसे सुशोधित रहता है। कुछ पदाराग दाहिम-बोजको आभासे सम्पन्न तथा कुछ किंतुक (पलाश)-पुष्पके समान रत्ववर्णकी कान्तिसे युक्त रहते हैं। सिन्द्रर, रक्तकमल, नीलोत्पल, कुंकुम और लाक्षारसके समान रंगवाले भी पद्मराग होते हैं। गहरा वर्ण होनेपर भी उन पदारामाओं में स्कृतित होभासम्बन्न कान्तियाँ सुन्दर आधाको फैलाती रहती है।

स्फटिकसे उद्भत पद्मराग सूर्यकी किरणोंसे सम्पृक होकर अपनी रश्मियोंके द्वारा दूर रहते हुए भी पार्श्वभागीको अनुरक्षित करते हैं। कुछ रत्न कुसुम्भवर्ण एवं नोलबर्णकी मिश्रित आभासे सम्पन्न रहते हैं तो कुछ रजीका वर्ण नये विकसित कमलके सदश शोभाको धारण करता है। कुछ रत भल्लानक तथा कण्टकारी-पृथ्यके समान कान्ति प्राप्त करनेवाले हैं और कुछ रत्न हिंगुल अर्थात् हींग-वृक्तके पुष्पींकी शोभासे सुशोभित रहते हैं। कतिपय रहोंका वर्ण चकोर, प्रेंस्कोकिल तथा सारस पश्चियोंके नेत्रोंके समान होता है। कुछ रत्न कुमुद-पुष्पके सदश होते हैं। प्राय: गुण-प्रभाव, शारीरिक काठिन्य एवं गुरुत्वमें स्कटिकोद्धत पदारागमणियाँ समान होती हैं।

सौगन्धिक मणियोंसे प्रादुर्भृत परास्य मणिका वर्ण नीले और लाल कमलके समान होता है। कुरुविन्दकसे उत्पन्न पराराग माणयोंमें वैसी आभा नहीं होती है, वैसी आभा समस्त पुड़ीभृत रिश्म-प्रभाओं से लोगोंपर अपना अत्पधिक

उस रावणगङ्गामें जो भी कुरुविन्दक रत्न पाये जाते हैं. उन रबोंको वर्ण-समानताको प्राप्त करनेवाले अन्य रब आन्ध्रादिक किसी दूसरे देशमें दुर्लभ हैं। उन स्थानोंमें जो भी कुरुविन्दक रत्न प्राप्त होते हैं, उनका मूल्य इस रावणगङ्गा नदीसे प्राप्त रबोंकी अपेक्षा बहुत ही कम होता है। उसी प्रकार यहाँपर उत्पन्न स्फटिक मणियोंसे प्रादुर्भुत पद्मरागकी समानतामें तुम्बुरु देशसे प्राप्त होनेवाली मणियाँका भी मूल्य कम ही माना गया है।

वर्णाधक्य, गुरुता, स्निग्धता, समता, निर्मलता, पारदर्शिता, तेजस्विता एवं महत्ता श्रेष्ट मणियोंका गुण है। जिन मणियोंमें करकराहर, छिड, मल, प्रभाहीनता, परुपता तथा वर्ण-विहोनता होती है, वे सभी जातीय गुणोंके रहनेपर प्रशस्त नहीं मानी जातीं।

यदि अज्ञानतावश कोई मनुष्य ऐसी दोषपुक्त मणियोंको धारण कर लेता है तो उनके कुप्रभावसे उत्पन्न शोक, चिना, रोग, मृत्यु तथा धननाशादि आपदाएँ उसको घेर लेती हैं।

पूर्वकथित श्रेष्ठ पणियोंकी तुलनामें अत्यधिक सीन्दर्य-सम्पन्न एवं उनके प्रतिरूप होनेपर भी पाँच जातियोंकी मणियोंको विजातीय माना गया है। जिनका परीक्षण विद्वान् पुरुषको प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। कलशपुर, सिंहल, तुम्बरः, मुक्तपाणि तथा श्रीपूर्णकमें उत्पन्न पदारागका रावणगङ्गासे प्राप्त शुभप्रद पद्मराग माणियोंसे सादृश्य होनेपर भी वे विवातीय ही माने गये हैं।

तुषका-सदश (मलिन वर्णका) होनेसे कलशपुर, अस्य ताप्रवर्णके कारण तुम्बुरु देश, कृष्णवर्णके रहनेसे सिंहल, नीलवर्णके होनेसे मुक्त तथा कान्तिविहीन होनेसे श्रीपूर्णककी मणियोंमें (ग्रवणगङ्गाकी मणियोंकी अपेक्षा) विजातीय रूप होनेसे ही भेद स्पष्ट होता है।

जो पद्माग तामिका (गुझा)-के वर्णको धारण करता

है, तुष (बहेड़ा)-के समान मध्यमें पूर्णतासे युक्त (गोलाकार) होता है तथा स्नेहसे प्रदिग्ध (स्वभावत: स्नेहिल) होता है और अत्यन्त भिसनेके कारण कान्तिविद्वीन हो जाता है, मस्तक-संघर्षण अथवा हाथोंको अँगुलियोंके स्पर्शसं जिसके पार्श्वभाग काले हो जाते हैं, हाथमें लेकर बार-बार ऊपरकी ओर उछालनेपर जो मणि प्रत्येक बार एक हो वर्णको धारण करती है, वह सभी गुणोंसे युक्त होती है। समान प्रमाण, समान जाति अथवा गुरुत्व धर्मसे दो वस्तुऑमें तुलना होती है। अतः विशेष रबाकरसे प्राप्त रबोंकी स्वजातिका निर्धारण गुरस्य और गुण-धर्मके अनुसार विद्वान व्यक्तिको करना चाहिये। यदि उनमें संदेह उत्पन्न हो जाय हो उनको जानपर चढाकर खरादना चाहिये। यत्र या क्रविन्दक रतको छोडकर अन्य किसी भी रतके द्वारा पद्मराग एवं इन्द्रनीलमणिमें चिह्न-विशेष टेकित नहीं किया जा सकता है।

जातिविशेषमें उत्पात सभी मणियाँ विजातीय नहीं होती हैं। उनका वर्ण समान होता है, फिर भी उनके पुचक्करणके लिये उनमें विभिन्न भेद बताये गये हैं। गुणयुक्त मणिके साथ गुणरहित मणिको धारण नहीं करना चाहिये। विद्वान् जाता है। (अध्याय ७०)

पुरुषको कौस्तुभ मणिके साथ विजातीय मणिको धारण नहीं करना चाहिये; क्योंकि अनेक गुणोंसे सम्पन्न मणियोंको एक हो विजातीय मणि नष्ट करनेमें समर्थ होती है।

शत्रुओंके बीच निवास करने तथा प्रमाद-वृत्तिमें आसक्त रहनेपर भी विशुद्ध महागुणसम्पन्न पदाराग मणिका स्वामी होनेसे किसी भी व्यक्तिको आपदाएँ स्परांतक नहीं कर सकती। जो गुणोंसे परिपूर्ण तेजस्वी सुन्दर वर्णवाले पद्मरागर्मणिको धारण करता है, उसके समीपमें उपस्थित होकर दोष-संसर्गजनित उपद्रव कोई कष्ट देनेमें अपनेको सक्षम नहीं कर पाते हैं।

जिस प्रकार तण्डल-परिमाणके अनुसार हरिका मृत्य निर्धारित होता है, उसी प्रकार महागुणसम्पन्न पदाराग गणिके मुल्यका निर्धारण उडदके परिमाणका आकलन करके करना चाहिये।

जो मणि या रत उत्तम वर्ण एवं बेष्ट कान्तिवींसे सम्पन्न रहते हैं, उन्होंको प्रशस्त माना जाता है। यदि उनमें तनिक भी दोषके कारण भ्रष्टता आ जाती है तो उनका मूल्य घट

मरकतमणिका लक्षण तथा उसकी परीक्षा-विधि

बलासुरके पित्तको लेकर अत्यन्त वेगसे मानो आकाशमार्गको बहता हुआ वह पित्त भगवती महालक्ष्मीके समोपमें स्थित दो भागोंमें विभक्त करते हुए देवलोकको जा रहे थे। उस समय वे अपने ही सिरपर अवस्थित मणिकी प्रशासे देदीच्यमान होनेके कारण आकाशरूपो समुद्रपर बने हुए एक अद्वितीय रजतसेतुके समान सुशोभित हो रहे थे। उसी समय अपने पंख-निपातसे पृथिको एवं आकाशको आतंकित करते हुए पक्षिराज गरुडने सर्पदेव वासुकिपर प्रहार करनेका प्रयत्न किया।

भयभीत बासुकिने सहसा उस खबीजरूप पितको मधुर-सुस्वादु जलसे परिपूर्ण सरिता एवं वृक्षोंसे सुशोधित तथा पुष्पोंकी नव-कलिकाओंकी साद्र गन्धसे सुवासित तुरुष्कदेशकी एक श्रेष्ट माणिक्योंसे परिपूर्ण पर्वतकी उपत्यकामें छोड दिया। वह पित उस पर्वतसे निकलनेवाले जल-

सुतजीने कहा-नागराज बास्कि उस असुरपति प्रपातके समान ही था। अत: उसीकी जलधाराके साथ उनके ब्रेष्ट भवन अर्थात् समुद्रको प्राप्त करके उसकी तटवर्ती भूमिके समीप मरकतमणियोंका खजाना वन गया।

> फणिराज वासुकिने जिस समय उस पित्तका परित्याग किया था, उसी समय गरुडने गिरते हुए उस पितक। कुछ अंश ग्रहण (पान)-कर लिया। जिससे वे मृच्छित हो गये और सहसा उन्होंने अपने दोनों नासाछिद्रोंसे उस पित्तको बाहर कर दिया। उस स्थानपर प्राप्त होनेवाली मरकत-मणियाँ कोमल शुकपक्षीके कण्ड, शिरीपपुष्प, खद्योतके पृष्ठप्रदेश, हरित तुणक्षेत्र, शैवाल, कल्हारपुण, (श्रेतकमल) नयी निकली हुई घास, सर्पभक्षिणी मयूरी तथा हरितपत्रकी कान्तिसे मुशोभित होकर लोगोंको कल्याण देनेवाली होती हैं।

देशोंकी मणियोंसे उत्तम कही गयी हैं। जो मणि अल्पना द्वारा ही उसमें अवस्थित विजातीय भावनाको पहचाना जा स्थानविशेषके गुणोंसे समन्वित, समान कान्तिवाली, उत्तम हाब्द-ध्वनिसे विपरीत वर्णको प्राप्त हो जाती है। जो हीरे-तथा सूर्यको किरणोंके स्पर्शसे अपनी प्रभाके द्वारा सभी भोतो विजातीय होते हैं, यदि वे किसी रबीपधि विशेषके जिसके मध्यभागमें एक समुज्वल कान्ति विद्यमान रहती होती है। है और जो अपनी नवनबोदित प्रभारात्रिसे तबीन ऋजुताके कारण किन्हों मणियोंमें उर्ध्वगामिनी प्रभा निकले हुए हरित तुणको कान्तिको तिरस्कृत करती है दोख सकतो है, किंतु विर्यक् दृष्टिसे उनका अयलोकन तथा जो देखनेमात्रसे ही लोगोंके मनको अत्यधिक करनेसे उनको वह प्रथा शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। आह्रादित करनेमें समर्थ होती है, यह मरकतमणि बहुत स्नान, आखमन, जप तथा रक्षामन्त्रकी क्रियाविधिमें, गुणवती मानी जाती है। ऐसा स्वविद्या-विशारद विद्वजनीका गौ-सुवर्णका दान देते हुए और अन्यान्य प्रकारकी साधना विचार है।

रिनम्ध, विश्वद्ध, कोमल, मयूरकप्टकी आधाके समान शोधाको जाना चाहिये।

कड़े पत्थरके समान एवं खुरदुरी तथा ज़िलाजीतके समान जाती है। (अध्याय ७६)

वहाँपर नागभक्षी गरुडके द्वारा पान किया गया जो दग्ध होती है, ऐसी मरकतमणि गुणरहित होती है। जो दैत्याधिपति बलासुरका पित्त गिरा था, वह स्थान मरकत- मरकतर्माण सन्धि-प्रदेशमें शुष्क हो तथा उससे अन्य मणियोंका आकर अर्थात् खजाना बन गया। वह देश रजका प्रादुर्भाव होता हो तो कल्याण चाहनेवाले व्यक्तिके सामान्य जनींके लिये दुर्लभ और गुणयुक्त हो गया। उस लिये वह रत्न धारण करने अथवा खरीदनेयोग्य नहीं होता मरकतमिपयोंके देशमें जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह है। भल्लातकी (शैलविशेष) और पुत्रिका (शैलविशेष)-सब विष-व्याधियोंको ज्ञान्त करनेवाला कहा गया है। सभी वर्ण अथवा उन दोनों वर्णीका एक ही मणिमें संयोग हो मन्त्रों एवं औपधियोंसे जिस नागके महाविषके उपचारमें तो उसे भी मरकतमणिका विजातीय लक्षण ही समझना सफलता नहीं प्राप्त हो सकती है, उस प्रभावको वहाँपर चाहिये। श्वीम-क्लबके द्वारा मार्जन करनेपर पुत्रिका लक्षणवाली उत्पन्न वस्तुओंसे शान्त किया जा सकता है। परकतमणि अपनी कान्तिका परित्याग कर देती है। जिस वहाँ जो भरकतमणियाँ उत्पन्न होती हैं. वे अन्यान्य प्रकार काँचमें लघुता होती है, उसी प्रकार उसकी लघुताके हरितवर्णवाली, कोमल कान्तिवाली, जटिल, मध्यभागमें सकता है। अनेक प्रकारके रूप या गुण अथवा वर्णके द्वारा सुवर्ण-चूर्णसे परिपूर्ण-सी दिखायी देती है, जो अपने मरकत-मणिका अनुगमन करनेवाली मणियाँ भल्लातकीकी स्थानोंको आलोकित करती है, हरितभावको छोडकर लेप्य पदार्थसे रहित है तो उनके वर्णोकी प्रभा कर्ध्वगामिनी

करते समय, देव, पितु, अतिथि तथा गुरुकी पूजाके समय, वर्णकी अत्यधिक व्यापकताके कारण जिस मरकतः विषसे उत्पन्न विविध दोषोंसे पीडित होनेपर, संग्राममें मणिके अनार्थांगको निर्मल स्वच्छ किरणें यरिधानके रूपमें विचरण करते हुए दोषोंसे होन और गुणोंसे युक्त, सोनेके परिलक्षित होती हैं, जिसको उज्जल कान्ति घनाभूत, सूत्रमें पिरोये उस मरकतको विद्वानीके द्वारा धारण किया

प्राप्त करती है तथा अपने वर्णको उज्जल क्रान्तिको सामान्यतः पद्मरागमणिका तीलके अनुसार जो मूल्य सान्द्रतासे एकाकार होकर सुशोधित रहती है। ऐसी होता है, उस मूल्यको अपेक्षा सर्वगुणसम्पत्र मरकतमणिका मरकतमणि भी उसी गुणसम्पन्न मणिकी संज्ञाको प्राप्त मृत्य अधिक होता है। जिस प्रकार दोष रहनेपर पद्मराग-करती है, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। मणियोंका मूल्य न्यून हो जाता है, उसी प्रकार दोषसम्पन्न जो मरकतमणि चित्र वर्णवाली, कठीर, मलिन, रूथ, होनेपर मरकतमणियोंके मृत्यमें अत्यधिक न्यूनता आ

इन्द्रनीलमणिका लक्षण तथा उसकी परीक्षा-विधि

रमणियाँ अपने करपल्लवके अग्रभागसे नवीन लवली कुसूम तथा प्रवालका चयन कर रही थीं, वहाँपर उस बलासुरके विकसित कमलसदृश शोभासम्पन्न दोनों नेत्र आकर गिर पड़े। समुद्रको वह कछारभूमि, रजके समान चमकनेवाले नेत्रीकी प्रभातरंगींसे सुरोभित होकर एक विशाल क्षेत्रमें फैली हुई है। वहींपर विकसित केतकी नामक पृथ्वीके वनींकी शोभाको फैलानेमें प्रतिक्रण लगी रहनेवाली इन्द्रनीलमणियोंकी एक भूमि है। उस वनस्थलीपर अवस्थित पर्वतको जो कर्णिकाभूमि है, उसमें प्रार्भुत होनेवाली वे मरकतर्माणयाँ नौलकमलसदूत कृष्ण एवं हलधर बलरामके द्वारा धारण किये जानेवाले पांत और नील वर्णोंकी आभासे सम्पन्न हैं। काले धमरके समान हैं, साईधनुषसे सुशोधित स्कन्ध-प्रदेशवाले भएवान् विष्णुकी कान्तिसे यक्त है तथा भगवान जिल्के कण्डक समान (नीलवर्ण) और नवीन कपाय पृथ्वीके समान आभावाली है।

उन मणियोंमें कोई स्वच्छ तरङ्गाधित जलके समान, कोई मथ्रके समान, कोई नीलीरसके समान, कोई जल-मुद्युदके समान और कोई मणि मदमस्त कोकिल पक्षीके कण्ठकी प्रभासे आभासित रहती है। उन सभी मणियोंमें एक प्रकारकी ही निर्मलता तथा प्रभाराक्तिको भाम्बाता विद्यमान रहती है, उस पर्वतके रज्ञगर्भसे प्राप्त होनेवाली मणियोंमें इन्द्रनीलमणि नामके रज्ञ अत्यधिक गुणजाली होते हैं।

जिन मणियों में मिट्टी, पत्थर, छिद्र और करकराहटकी ध्वनि तथा नीलगगनपर आच्छादित समन मेथच्छायाकी आभा रहती हैं, वे वर्णदोषसे दूषित मानो जाती हैं। किंतु वहाँपर वे ही इन्द्रनीलमणियाँ अत्यधिक उत्पन्न होती हैं। जिनकी प्रशंसा रवशास्त्रके सुविज्ञजनोंके द्वारा की जाती है।

धारण करनेयोग्य पद्मरागमणिमें जो गुण दिखायी देते हैं: मनुष्य इन्द्रनोलमणिको धारण करके उसमें उन सभी

सूतजीने पुन: कहा — जिस स्थानपर सिंहल देशकों गुणोंको प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार पदारागमणियोंकी ार्यों अपने करपल्लवके अग्रधागसे नवीन लवलों तीन जातियों हैं, उसी प्रकार सामान्य रूपसे इन्द्रनोक्षमणियों में म तथा प्रवालका चयन कर रही थीं, वहाँपर उस भी तीन जातियों देखी जा सकती हैं। जिन उपायोंके हारा सुरके विकसित कमलसदृश शोभासम्पन्न दोनों नेत्र पदारागमणिका परीक्षण किया जाता है, उन्हों उपायोंसे र गिर पड़े। समुद्रको वह कछारभूमि, रुक्के समान इन्द्रनोलमणिका भी परीक्षण होता है।

> पदरागमणिको उपयोगयोग्य यनानेके लिये जितनी अस्तिके साथ उसका मिन्नधान अपेक्षित है, उसकी अपेक्षा श्रीषक अस्तिका सिन्नधान इन्द्रतीलमणिके साथ होता चाहिये। तब भी परोक्षण अधवा गुणोंकी अभिवृद्धिके लिये किसी भी प्रकारको मणिको अस्तिमें डालकर संतप्त नहीं करना चाहिये। अज्ञानतावक भी यदि कोई ऐसा करता है वो अस्तिकी सम्यक् माचाके परिजानसे रहित प्रदाहमें करानेके कारण उत्पन्न दोषोंसे प्रदूषित वह मणि ऐसा कृत्य करनेवाले कर्ता एवं कार्ययता (करवानेवाला) दोनोंके लिये अनिष्टकारी होती है।

> काँच उत्पल, करवीर, स्फटिक एवं वैदूर्य आदि मणियाँ इन्द्रनीलमणिक सदश होनेपर भी रब्रविशेपर्रोके अनुसार विजातीय हो मानी जाती है। अतएव इन उक्त सभी मणिवाँके नुस्तव एवं काठिन्य धर्मकी अवश्य परीक्षा लेनी चाहिए। जिस प्रकार कोई इन्द्रनीलमणि ताम्रवर्णको भारण कर लेती है, उसी प्रकार ताम्रवर्णवाले करवीर तथा उत्पल नामक दोनों मणियोंको भी रक्षा करनी चाहिये। जिस इन्द्रनीलमणिक मध्य इन्द्रायुधकी प्रभा अवभासित होती रहती है, उस इन्द्रनीलमणिको पृथ्वीपर अत्यन्त दुलंभ एवं अत्यधिक मुल्यवाली कहा गया है।

> सौगुना अधिक परिमाणवाले दूधमें रखनेपर भी जिसकी सान्द्रवर्गकी कान्तिसे यह दूध स्वयं नीलवर्णका हो जाता है, उसीको महानीलमणि कहते हैं।

जिस प्रकार माशादिसे की गयी तौलके द्वारा महागुणशाली पद्मरागमणिका मूल्य निर्धारित किया जाता है, उसी प्रकार सुवर्ण परिमाण (अस्सो रती)-को तौलसे महागुणशाली इन्द्रनोलमणिका मूल्य निर्धारित होता है। (अध्याय ७२)

वेद्र्यमणिकी परीक्षा-विधि

सूतजीने कहा-हे द्विजश्रेष्ठ! अब मैं ब्रह्माके द्वारा बतायी हुई तथा व्यासजीद्वारा कही हुई बैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन तथा भीष्यकमणियोंकी परीक्षा-विधिको पृथक्-पृथक् कहता है।

कल्पान्तकालमें धुका अगाध समुद्रको जलराशिके गम्भीर महानादके समान दिति-पुत्र बलासुरके नादसे विभिन्न वर्णोबाली, अत्यन्त सौन्दर्य-सम्पन्न वैदूर्यपणियोंका बीज उत्पन्न हुआ था।

उत्तंग शिखरोंबाले बिदूर नामक पर्वतके सम्निकट स्थित कामभूतिक सीमासे मिले हुए क्षेत्रमें उस वैदूर्वबीजका अवधान होनेसे एक रत्नगर्थकी उत्पत्ति हुई।

बलासुरके नादसे उत्पन्न यह रताकर महागुणसम्पन तथा तीनों लोकोंका श्रेष्ठतम आभूषणस्वरूप है। उस रबाकरमें दैत्यराजके महानादका अनुकरण करनेवाली, वर्षाकालीन श्रेष्ट मेघोंकी आभावाली बड़ी ही सुन्दर विचित्र प्रकारकी मणियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनसे प्रभाके स्कुलिक्रॉका समृह निकलता रहता है।

पृथिवीयर पद्मरागमणियोंक जो वर्ण हैं, उन सभी वर्णोंकी शोधाका अनुगमन वैदूर्यमणि करती है। उन जोधित मणियाँ यदि दोवरहित होती हैं तो उनका सामान्य मणियोंमें जो मणि मसूरकण्डके सद्दत अचवा बंतपक्रके मूल्यको अपेक्षा छ:गुना अधिक मूल्य होता है। समुद्रके समान वर्णवाली होती है, उसको ब्रेष्ट माना गया है। जिन हीरकी समिधिमें स्थित आकरसे प्राप्त हुई मणियोंका जो मणियोंका वर्ण चषक नामक पक्षीके सद्दश होता है, उन मूल्य होता है, पृथिबीपर सर्वत्र मणियोंका वही मूल्य नहीं वैदूर्यमणियोंको मणिशास्त्रवेताओंने प्रशस्त नहीं कहा है।

गुणयुक्त बैद्र्यमणि अपने स्वामीको परम सौभाग्यसे करनी चाहिये।

स्फटिक- ये चार विजातीय मणियाँ हैं, जो वैदूर्यके समान हो आधा फैलातो हैं। किंतु लेखनकी सामध्यंसे रहित होनेक कारण काँच, गुरुत्वभावसे हीन होनेके कारण तिशुपाल, कान्तिपुक्त होनेसे गिरिकॉंच एवं अपने समुख्यल वर्णके कारण स्कटिकमणिसे इस मणिमें भेद होता है। महागुणसम्पन्न इन्द्रनीलगणिका सुवर्ण (अस्सी रत्ती मात्रा) परिमाणके अनुसार जो मृल्य निर्धारित किया गया है, वही मूल्य दो पल भारयुक्त वैदुर्यमणिका कहा गया है।

एक विजातीय मणिमें वे सभी वर्ण समान होते हैं, जो वर्ण मणियोंमें पाये जाते हैं; फिर भी उनमें महान् भेद माना गया है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वे विशेष भेदक तत्त्वपर विचार करें। स्तेह, लघुता और मृदुताके द्वारा संजातीय और विजातीय मणियोंके चिहाँका भेद सार्वजनीन है।

मणिशोधनमें कुशल या अकुशलजनोंके द्वारा प्रयुक्त उचित एवं अनुचित उपायोंके कारण भी विभिन्न प्रकारकी याँजयोंमें उत्पन्न हुए गुज-दोषके अनुसार उनके मूल्यमें न्युनाधिक्य हो जाता है।

मणिबन्धक अर्थात् मणिवेताके द्वारा भली प्रकारसे रहता ।

मनुने सोलह माहोका एक 'सुवर्ण' (भार) बताया है'। सम्पन्न बनाती है और दोषयुक्त मणि अपने स्थामीको उसका सातवी हिस्सा संज्ञारूप प्राप्त करता है। चार माशेका दोयोंसे संयुक्त कर देती है। अतएव प्रयत्रपूर्वक परीक्षा एक 'शाण', पाँच कृष्णलका एक 'माशा' और एक पलका इसम भाग 'धरण' कहलाता है। इस प्रकार रत्नोंके मूल्य वैदूर्यमणिके अतिरिक्त गिरिकॉंच, त्रिशुपाल, काँच तथा निक्यके लिये यह मणिविधि कही गयी है। (अध्याय ७३)

पुष्परागमणिकी परीक्षा-विधि

सूतजीने पुनः कहा—देवशतु बलासुरके शरीरकी नाम 'पद्मराग' है। यदि वह लोहित और पीतवर्णकी आभासे त्वचा हिमालय पर्वतपर गिरी थी, जिनसे महागुणसम्बद्ध युक्त है तो उसको 'कौकण्टक' नामसे जानना चाहिये। पुष्परागमणियोंका प्रादुर्भाव हुआ। जो पाषाण पूर्णपीत एवं जो पाषाण पूर्ण लोहित एवं सामान्य पीतवर्णसे संयुक्त पाण्डुरवर्णकी सुन्दर आभासे समन्वित रहता है, उसका होता है, उसे 'काषायकमणि' कहते हैं। जिस पत्थरका वर्ण

पूर्णरूपसे नीला और शुक्लवर्णसमन्वित तथा स्निग्ध होता मणिकास्त्रवेताओंने वैदूर्वमणिक समान ही पुष्परागमणिका है, वह सोमालक गुणयुक्त मणि है। जो पत्थर अत्यन्त मूल्य स्वीकार किया है। इसको धारण करनेसे वही फल लोहित वर्णका होता है, उसीको 'पदाराग' कहा जाता है। जो पूर्ण नीलवर्णकी सुन्दर आभासे सम्पन्न रहता है, उसे 'इन्द्रनीलमणि' कहते हैं।

प्राप्त होते हैं, जो वैदुर्यमणिके धारणसे होते हैं। नारियोंके द्वारा धारण किये जानेपर यह मणि उन्हें 'पुत्र' प्रदान करती है। (अध्याय ७४)

कर्केतनमणिकी परीक्षा-विधि

सुतजीने कहा-पवनदेवने रत्नबीजरूप उस दैल्यराज बलासुरके नखोंको प्रसन्तापूर्वक लेकर कमल-वनप्रान्तमें बिखेर दिया। वायुद्धारा विकीर्ण उन नखोंसे पुधिवीपर कर्केतन नामक पुञ्चतम मणिका जन्म हुआ। उसका वर्ष रक्त, चन्द्र एवं मधुसदृश, ताम्, पीत, अग्निवत् प्रज्वलित, समुख्यल, नील तथा क्षेत होता है। रब-व्याधि आदि दोपीक कारण वह कठोर एवं विभिन्न वजीमें भी प्राप्त होती है।

जो कर्केतनमणियाँ स्निम्ध, स्वच्छ, समराग, अनुरक्षित, पीत, गुरुत्व धर्मसे संयुक्त एवं विचित्र आधारे व्याप्त तथा संताप, क्रण और व्याधि आदि दोषोंसे रहित होती हैं, उन्हें विश्वद या परम पवित्र माना जाता है।

स्वर्ण-पत्रमें सम्पृटितकर जब उन मणियोंको अग्निमें शोधित किया जाता है तो वे अल्पधिक देदीप्यमान हो उठती है। ऐसी विशुद्ध कर्केतनमणि रोगका नाश करनेवाली, कलिके दोपोंको नष्ट करनेवाली, कुलकी वृद्धि करनेवाली तथा सुख प्रदान करनेवाली होती है।

जो मनुष्य अपने शरीरको अलंकृत करनेके लिये इस प्रकारके बहुत-से गुर्जीवाली कर्केतन नामक मणिको धारण करते हैं, वे पुजित, प्रचुर धनसे परिपूर्ण तथा अनेक बन्धु-बान्धवासे सम्पन्न होते हैं और नित्य उज्ज्वल कीर्तिसे सम्पन्न तथा प्रसम रहते हैं।

अन्य दूषित कर्केतनमणिको धारण करनेवाले विकृत, व्याकुल, नोलो कान्तिवाले, मलिन प्रतिवाले, स्नेहरहित, कलुपित तथा विरूपवान् हो जाते हैं। वे तेज, दौपित, कुल, पृष्टि आदिसे विद्वीन होकर द्वित कर्केतनके सदश गरीरको धारण करते हैं। (अध्याय ७५)

भीष्मकपणिकी परीक्षा-विधि

स्तजीने पुनः कहा-उस देवजनु बलामुरका बीर्य हिमालय पर्वतके उत्तरी प्रान्तमें गिरा था। अत: वह देश उत्तम भीष्मकमणियोंका रताकर वन गया। वहाँसे प्राप्त होनेवाली भीष्यकपणियाँ शङ्क एवं पदाके समान समुख्यल, मध्याहकालीन सूर्यको प्रभाके समान शोभावाली तथा वज़के समान तरुण होती है।

जो मनुष्य अपने कण्ठादिक अङ्गोर्मे स्वर्णसूत्रमें गूँधी हुई विशुद्ध भीष्मकर्माणको धारण करता है, वह सदा मुख-समृद्धि प्रदान करनेवाली सम्पदाओंको प्राप्त करता है। वनोंमें भी ऐसी मणिसे सुशोभित मनुष्यको देखकर समीप आये हुए द्वीपी, भेडिया, शरभ, हाथी, सिंह और व्याग्रादि हिंसक वन्य प्राणी तत्काल भाग जाते हैं। उस मणिको धारण करनेसे किसी भी प्रकारका भय नहीं रह जाता है। लोग भीष्मकर्माणके स्वामीका उपहास नहीं कर पाते हैं।

भीष्मकमणिसे संयुक्त औगुठीको धारण करके जो व्यक्ति अपने पितरोंका तर्पण करता है, उसके पितरोंको बहुत वर्षोतकके लिये संतुप्ति प्राप्त हो जाती है। इस रत्नके प्रभावसे सर्प, आखु (चुहा), बिच्छु आदि अण्डज जीवोंके विष स्वयं शान्त हो जाते हैं। जल, अग्नि, शत्रु और घोरोंके भयंकर भय भी नष्ट हो जाते हैं।

शैवाल एवं मेघको आभासे युक्त, कठोर, पीत प्रभावाली, मलिन द्वति और विकृत वर्णवाली भीष्मकर्माणका विद्वान् व्यक्तिको दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। पण्डितोंको देश-कालके परिज्ञानके अनुसार इन मणियोंके मूल्योंका निर्धारण करना चाहिये; क्योंकि दूर देशमें उत्पन्न हुई मणियोंका मूल्य अधिक तथा निकट देशमें उत्पन्न हुई मणियोंका मुख्य उसकी अपेक्षा कुछ कम होता है। (अध्याय ७६)

पुलकमणिके लक्षण तथा उसकी परीक्षा-विधि

लेकर भूजापर्यन्त गतिमान् रत्नमयी प्रकाशको विधिवत् पूजा करके उसको श्रेष्ठ पर्वतों, नदियों तथा उत्तरदेशके अन्य प्रसिद्ध स्थानोंमें स्थापित किया था। अतएव दात्राणं, वागदर, मेकल, कलिङ्ग आदि देशोंमें उस प्रकाशरूपी बोजसे उत्पन्न पुलकमणियाँ गुजाफल, अञ्चन, श्रौद (मध्) और कमलनालके समान तथा गन्धर्व एवं अग्निदेशमें उत्पन्न हुई मणियाँ केलेके समान कान्तिवाली होती है। इन सभी पुलकमणियोंको प्रशस्त माना गया है।

कुछ पुलकमणियोंकी भंगिमा त्रांख, पच, भ्रमर तथा पाँच सी मुद्रा कहा गया है। (अध्याय ७७)

सुतजीने कहा --वायुदेवने दानवराज बलासुरके नखसे सूर्यके समान विचित्र होती है। ऐसी परम पवित्र मणियोंको स्त्रोंमें गुँधकर धारण करनेसे सब प्रकारका कल्याण होता है: क्योंकि वे पुलकर्माणयाँ माङ्गलिक एवं धन-धान्यादि ऐसर्वको अधिवृद्धि करनेवाली होती है।

कौआ, घोड़ा, गधा, सियार, भेड़िया तथा भयंकर रूप धारण करनेवाले और मांस-रुधिरादिसे संलिप्त मुखवाले गृधोंके समान वर्णवाली जो पुलकमणियाँ होती हैं, वे मृत्युदायक होती है। विद्वान् व्यक्तिको उनका परित्याग कर देना चाहिये। ब्रेष्ट एक पल प्रमाणवाली पुलकमणिका मूल्य

रुधिराक्ष रत्न-परीक्षा

सुतजीने कहा-अग्निदेवने दानवराजके अभीष्टकपको ग्रहणकर कुछ और नर्मदा नदीके प्रानाभागमें तथा कुछ भी यहाँपर नाना प्रकारको मणियाँ प्राप्त होता है, इनका

आकार एक समान होता है।

जो मणि मध्यभागमें चन्द्रके सदश पाण्डुर तथा अंश उस देशके निम्न धु-धारोमें फेंक दिया था। अत: अत्यन्त विजुद्ध वर्णवाली होती है, तुलनामें वह उन स्थानींपर इन्द्रगोप (बीरबहुटी कीट) तथा शुक्र पक्षीके इन्द्रनीलमणिके समान होती है। इसे ऐश्वर्य, धन-धान्य एवं मुखकी भौति वर्णवाली एवं प्रकट पीलु फलके समान भुत्यादिकी अभिवृद्धि करनेवाली माना गया है। इस वर्णवाली रुधिराक्ष मणियाँ प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त मणिका पाक-क्रियासे शोधन होनेपर देववज्रके समान वर्ण होता है। (अध्याय ७८)

स्फटिक-परीक्षा

मेदाभागको लेकर काबेरी, विन्ध्य, यवन, चीन तचा नेगल देकके रजोंमें उस मणिके समान अन्य कोई नहीं है, जो पाप-भूभागोंमें प्रयतपूर्वक विखेश था। अत: उन स्थानोपर आकारके विनाश करनेमें उसके बराबर क्षमता रखती हो। शिल्पकारके समान निर्मल तैल-स्फटिक नामक मणि उत्पन्न हुई। यह मणि द्वारा संस्कारित होनेपर ही स्फटिकके मूल्यका कुछ मुणाल एवं शंखके सद्दश धवल होती है, किंतु कुछ मन्त्रियाँ आकलन किया जा सकता है। (अध्याय ७९)

सुतजीने कहा-हलधारी बलरामने उस दैत्यराजके उक्त वर्णके अतिरिक्त अन्य वर्णोको भी धारण करती है।

विद्रुपमणिकी परीक्षा

सूतजीने पुन: कहा-हे तौनक! शेषनागने उस: धारण करते हैं, उन्हें ब्रेष्ट माना गया है। नील देश, देवक तथा बलासुरके अन्त्र-भागको ग्रहणकर केरल आदि देशोंमें छोड़ा। रोमक नामक स्थान इन मणियोंकी जन्मभूमि है। उनमें उत्पन्न था, अतएव उन स्थानोंपर महागुणसम्पन्न विद्वममणियोंका हुई विद्वममणि अत्यन्त साल वर्णकी होती है। अन्य स्थानोंसे जन्म हुआ। उन विद्रममणियोंमें जो खरगोजके रक्तके समान प्राप्त होनेवाली मणियाँ प्रज्ञस्त नहीं मानी गयी है। शिल्पकलाके लोहित होती है अथवा गुज़ाफल या जपापुष्पकी आधाको विशेष योग-कौशलपर ही इनके मूल्यका निर्धारण होता है। वर्णकी होती है, वह निश्चित ही इस संसारमें मनुष्यको दूर करनेवाली होती है। (अध्याय ८०)

जो विदुममणि सुन्दर, कोमल, स्निग्ध तथा लाल-लाल धन-धान्य-सम्पन्न बनानेवाली तथा उसके विवादिक दु:खोंको

गङ्गा आदि विविध तीर्थोंकी महिमा

वर्णन करूँगा। जितने भी तीर्थ हैं, उनमें गङ्गा उत्तमोत्तम तीर्थ है। यदापि गङ्गा सर्वत्र सुलभ है, किंतु हरिद्वार, प्रयाग एवं गङ्गासागरके संगम-इन तीन स्थानीमें वह दूर्लभ हैं।

प्रयाग परम ब्रेष्ट तीर्थ है, जो मरनेवालेको मुक्ति और भुक्ति दोनों प्रदान करता है। इस महातीर्थमें स्नान करके जो अपने पितरोंके लिये पिण्डदान करते हैं, वे अपने समस्त पापोंका विनाशकर सभी अभीच्योंकी सिद्धि प्राप्त करते हैं।

और केशव सदैव निवास करते हैं। कुरुक्षेत्र भी बहुत बढ़ा गोदावरी, पद्मोच्यो, वरदा, विन्ध्य और नर्मदाभेद नामक तीर्थ है। इस तीर्थमें दानादि करनेसे यह भोग और मोश महातीर्थ समस्त पापोंके विनाशक है। गोकर्ण, माहिप्मती, दोनोंकी प्राप्ति करानेवाला है। प्रभास बेहतम तीर्थ है, कलिंडर एवं बेह जुक्लतीर्थको महातीर्थ माना गया है। जहाँपर भगवान सोमनाथ विराजमान रहते हैं। हारका यहाँपर स्नान करनेसे मोक्षको प्राप्ति होती है। इस तीर्थमें अत्यन्त सुन्दर नगरी है। यह मुक्ति-भुक्ति दोनोंको प्रदान भगवान् हार्डुधारी हरि निवास करते हैं। भक्तोंको सब कुछ करनेवाली है। पूर्व दिशामें अवस्थित सरस्वती पुण्यदायिनी देनेवाले विश्व तथा स्वर्णाक्षतीर्थ भी उत्तम तीर्थ है। तीर्थ है। इसी प्रकार सप्तसारस्वत परमतीर्थ है।

उत्तम तीर्थ है। बदरिकान्रम भगवान नरन्तरायणका महातीर्थ है, जो मुक्तिप्रदायक है।

धेतद्वीप, मायापुरी (हरिद्वार), नैमियारण्य, पुष्कर, अयोध्या, चित्रकृट, गोमती, बैनायक, रामगिर्वात्रम, काझीपुरी, तंगभद्रा. श्रीशैल, सेतुबन्ध-रामेश्वर, कार्तिकेय, भुगृतंग कापतीर्थ, अपरकण्टक, महाकालेश्वरकी निवासभूमि उज्जयिनी, श्रीधर हरिका निवासस्थल कुब्बक, कुब्बाप्रक, कालसाँपे कामद, महाकेशी, कावेरी, चन्द्रभागा, विपाशा, एकाप्र. ब्रह्मेश, देवकोटक, रम्य मथुरापुरी, महानद शोण तथा जम्बूसर नामक स्थानोंको महातीर्थ कहा गया है।

इन तीचौंमें सदा सूर्य, शिव, गणपति, महालक्ष्मी एवं भगवान हरि निवास करते हैं। यहाँ और अन्यान्य पवित्र

सुतजीने कहा —हे शीनक ! अब मैं समस्त तीर्थोका स्थानोंमें किया गया स्नान, दान, जप, तप, पूजा, श्राद्ध तथा पिण्डदानादि अक्षय होता है। इसी प्रकार शालग्राम तथा पाञ्चपततीर्च भी परम पवित्र तीर्थ हैं, जो भक्तोंको सब कुछ प्रवाद करते हैं।

> कोकामुख, वाराह, भाण्डीर और स्थामि नामक तीर्थ महातीर्थके रूपमें विख्यात है। लोहदण्ड नामक तीर्थमें महाविष्णु तथा मन्दारतीर्थमें मधुसूदन निवास करते हैं।

कामरूप महान् तीर्थ है। इस स्थानमें कामाख्यादेवी सदा विद्याजमान रहती हैं। पुण्डुवर्धनतीर्थमें भगवान् कार्तिकेय वाराणसी परमतीर्थ है। इस तीर्थमें भगवान् विश्वनाथ प्रतिष्ठित रहते हैं। विरज, श्रीपुरुपोत्तम, महेन्द्रपर्वत, कावेरी,

निर्देशीर्थ मुक्तिदायक और कोटितीर्थोंका फल प्रदान केदारतीर्थं समस्त पापोंका विनाशक है। सम्भलग्राम करनेवाला है। नासिक, गोवर्धन, कृष्णा, येणी, भीमरथी, गण्डकी, इरावती, बिंदुसर एवं बिष्णुपादोदक महापुण्यप्रदायक परपतीर्थ है।

ब्रह्मध्यान और इन्द्रियनिग्रह महान् तीर्थ हैं, दम तथा भावसदि ब्रेह तीर्थ है। जानरूपी सरोवर और ध्यानरूपी जलमें, राग-देवादि रूप मलका नाश करनेके लिये ऐसे मानस तीर्थमें जो मनुष्य स्नान करता है, वह परमगतिको प्रापा करता है।

यह तीर्ध है, यह तीर्थ नहीं है- जो लोग इस प्रकारके भेद-जानको रखते हैं, उन्हों लोगोंके लिये तीर्थ-गमन और उसके उत्तम फलका विधान किया गया है, किंतु जो 'सर्वत्र ब्रह्ममय है' ऐसा स्वीकार करते हैं, उनके लिये कोई भी स्थान अतीर्थ नहीं है। इन सभीमें स्नान, दान, श्राद्ध,

पिण्डदान आदि कर्म करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है। समस्त पर्वत, समस्त नदिवाँ एवं देवता, ऋषि-मृति तथा संतों आदिसे सेवित स्थान तीर्थ हो है-

नेति ये नत भेदवर्शिनः। तीर्थमिदं तेषां विधीयते तीर्थगमनं तत्फलं च यत्॥ सर्व ब्रह्मेति यो वेत्ति नातीर्थं तस्य किञ्चन। स्तानदानानि आद्धं पिण्डमबाश्चयम् ॥ सर्वा नद्यः सर्वशैलाः तीर्थं देवादिसेषितप्।

श्रीरंगपत्तनम् भगवान् हरिका महान् तीर्थं है। ताप्ती एक क्षेष्ठ महानदी है। सप्तगोदावरी एवं कोणगिरि भी महातीर्ध हैं। कोणगिरितीर्थमें महालक्ष्मी नदीके रूपमें स्वयं विराजमान रहती हैं। सह्मपर्वतपर भगवान देवदेवेश्वर एकवीर तथा महादेवी सुरेश्वरी निवास करती है।

गङ्गाद्वार, कुशाबर्त, बिन्ध्यपर्वत, नोलगिरि और कनखल -इन महातीथोंमें जो व्यक्ति स्नान करता है, यह पुन: संसारमें जन्म नहीं लेता-

> गहाद्वारे कुशावतें विन्यके नीलपर्वते॥ स्नात्वा कनखले तीचें स भवेत्र पुनर्भवे।

सुतजोने (आगे) कहा कि उपर्युक्त वर्णित और अन्य जो अवर्षित तीर्थ है, सभी स्नानादिक क्रियाओंको सम्पन्न (८१।२५-२७) करनेपर सदैव सब कुछ प्रदान करनेवाले हैं।

> इस प्रकार भगवान् ब्रीहरिसे तीर्थीका माहात्म्य सुनकर बहाने दक्षप्रजापति आदिके साथ महामुनि व्यासको उनका इवन कराया और पुन: तीथॉलम एवं अक्षय फल देनेवाले तथा बहालोक प्रदान करनेवाले 'गया' नामक तीर्थका वर्णन किया। (अध्याय ८१)

गया-माहात्म्य तथा गयाक्षेत्रके तीर्थीमें श्राद्धादि करनेका फल

प्राप्त करानेवाले परम सार-स्वरूप उत्तम गया-माहालयको किया और ऋत्विक-रूपमें आये हुए ब्राह्मणोंकी पूजा की। संक्षेपमें कहैगा, आप सुने।

उसने सभी प्राणियोंको संतप्त करनेवालो महान् दारुण आदि और कामधेनुको सृष्टि की। तदननार ब्रह्माने इन सब तपस्या की। उसकी तपस्यासे संतप्त देवगण उसके वधकी साधनींसे सम्पन्न पाँच क्रोशके परिक्षेत्रमें फैले हुए उस गया इच्छासे भगवान ब्रीहरिकी शरणमें गये। बीहरिने उनमे कहा- तीर्थका दान उन ब्राहाणींको कर दिया। आप लोगोंका कल्याण होगा, इसका महादेह गिराया समय शिवजीकी पूजाके लिये श्रीरसमुद्रसे कमल लाकर गय नामका वह बलवान् असूर विष्णुमायासे विभोहित होकर कीकट देशमें श्रयन करने लगा और उसी स्वितिमें वह विष्णुकी गदाके द्वारा मारा गया।

भगवान् विष्णु मुक्ति देनेके लिये 'गदाधर'के रूपमें गयामें स्थित हैं। गयासुरके बिशुद्ध देहमें ब्रह्मा, जनार्दन, शिव तथा प्रपितामह स्थित हैं, विष्णूने वहाँकी मर्यादा स्थापित करते हुए कहा कि इसका देह पुण्यक्षेत्रके रूपमें होगा। यहाँ जो भक्ति, यज्ञ, ब्राद्ध, पिण्डदान अथवा स्नानादि करेगा, वह स्वर्ग तथा ब्रह्मलोकमें जायगा, नरकगामी नहीं

ब्रह्माजीने कहा-हे व्यासजी। मैं भूकि और मुक्ति होगा। पितामह ब्रह्माने गयातीर्थको श्रेष्ट जानकर वहाँ यन

ब्रह्माने वहाँ रसवती अर्धात् जलसे परिपूर्ण एक विशाल पूर्वकालमें गय नामक परम बोर्यनान् एक असूर हुआ। नदो, नापी, जलाशय आदि तथा विविध धध्य, भोज्य, फल

ब्राह्मणोंने उस धर्मयज्ञमें दिये गये धनादिक दानको जायगा। देवताओंने 'बहुत अच्छा' इस प्रकार कहा। एक लोभवश ही स्वीकार किया था। अत: उसी कालसे वहकि बाह्यजोंके लिये यह शाप हो गया कि 'तुम्हारे द्वारा अर्जित विद्या और धन तीन पुरुषपर्यना अर्थात् तीन पीढ़ियोंतक स्थायी नहीं रहेगा। तुम्हारे इस गया परिक्षेत्रमें प्रवाहित होनेवाली रसवती नदी जल एवं पत्थरींके पर्वतमात्रके रूपमें ही अवस्थित रहेगी।

> संतत बाह्मणोंके द्वारा प्रार्थना करनेपर प्रभु ब्रह्माने अनुग्रह किया और कहा- गयामें जिन पुण्यशाली लोगोंका ब्राह्ड होगा, वे ब्रह्मलोकको प्राप्त करेंगे। जो मनुष्य यहाँ आकर आप सभीका पूजन करेंगे, उनके द्वारा में भी अपनेको पुजित स्वीकार करूँगा।

निवास-ये चारों मुक्तिके साधन है-

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तबा। वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा।

हे व्यासजी! सभी समुद्र, नदी, वापी, कृप, तहागादि जितने भी तीर्थ हैं; वे सब इस गयातीर्थमें स्वयमेव स्नान करनेके लिये आते हैं, इसमें संदेह नहीं है।

'गयामें श्राद्ध करनेसे ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णकी चोरी, गुरुपत्नीगमन और उक्त संसर्ग-जनित सभी महापातक नष्ट हो जाते हैं'-

> बहाहत्वा सुरापानं स्तेयं गुर्वगनागयः। पापं तत्संगत्रं सर्वं गयाश्राद्धाद विनश्यति॥

> > (44170)

जिनको संस्काररहित दशामें मृत्यु हो जाती है अधवा जो मनुष्य पशु तथा चौरद्वारा मारे जाते हैं या जिनको मृत्य सर्पके काटनेसे होती है, वे सभी गया-ब्राह्ड-कर्मके पुण्यसे बन्धन-मुक्त होकर स्वर्ग चले जते हैं।

'गयातीर्थमें पितरोंके लिये पिण्डदान करनेसे मनुष्यको जो फल प्राप्त होता है, सौ करोड़ वर्षोंमें भी उसका वर्षन मेरेद्वारा नहीं किया जा सकता'।

गया पुण्यशाली है। राजगृह, बन तथा विषयचारण परम पवित्र है एवं नदियोंमें पुन:पुना नामक नदी बेह है।

गयातीर्थमें पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तरमें 'मुण्डपृष्ठ' नामक तीर्थ है, जिसका मान दाई कोश विस्तृत कहा गया है। 'गयाक्षेत्रका परिमाण पाँच कोश और गयाशिरका परिमाण एक कोश है। वहाँपर पिण्डदान करनेसे पितरोंको शाश्चत तुप्ति हो जाती है'-

पञ्चकोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः। तत्र पिण्डप्रदानेन तृष्टिर्भवति शास्ती॥

(4111)

विष्णुपर्वतसे लेकर उत्तरमानसतकका भाग गयाका सिर माना गया है। उसीको फल्गुतीर्थ भी कहा जाता है यहाँपर पिण्डदान करनेसे पितरोंको परमगति प्राप्त होती है।

'ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गोशालामें मृत्यु तथा कुरुक्षेत्रमें गयागमनमात्रसे हो व्यक्ति पितृऋणसे मुक्त हो जाता है— गद्यागमनमात्रेण पितृणामनुणो

गयाक्षेत्रमें भगवान् विष्णु पितृदेवताके रूपमें विराजमान रहते हैं। पुण्डरीकाश उन भगवान् जनार्दनका दर्शन करनेपर मनुष्य अपने तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। गयातीर्वमें रचमार्ग तथा रुद्रपद आदिमें कालेश्वर भगवान् केदारनाधका दर्शन करनेसे मनुष्य पितृऋणसे विमृक्त हो जाता है।

वहाँ पितामह ब्रह्माका दर्शन करके वह पापमुक्त और प्रपितामहका दर्शनकर अनामयलोककी प्राप्ति करता है। उसी प्रकार गदाधर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुको प्रयत्रपूर्वक प्रणाम करनेसे उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

हे ब्रह्मर्षि ! गवातीर्थमें (भीन धारण करके जो) मौनादित्य और महात्या कनकार्कका दर्शन करता है, वह पितृत्रहणसे विमुक्त हो जाता है और ब्रह्माकी पूजा करके ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है।

जो मनुष्य प्रात:काल उठ करके गायत्रीदेवीका दर्शनकर विधि-विधानमे प्रात:कालीन संध्या सम्पन्न करता है, उसे सभी बेंदोंका फल प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति मध्याहकालमें सावित्रीदेवीका दर्शन करता है, वह यज ब्रह्माजीने पुन: व्यासजीसे कहा-कीकट-देशमें करनेका फल प्राप्त करता है। इसी प्रकार जो सायंकालमें सरस्वतीदेवीका दर्शन करता है, उसे दानका फल प्राप्त होता है।

यहाँ पर्वतपर विराजमान भगवान शिवका दर्शन करके मनुष्य अपने पितृऋणसे विमुक्त हो जाता है। धर्मारण्य और उस पवित्र वनके स्वामी धर्मस्वरूप देवका दर्शन करनेसे समस्त ऋण नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार गुधेश्वर महादेवका दर्शन करके कौन ऐसा व्यक्ति है, जो भय-बन्धनसे विमुक्त नहीं हो सकता।

प्राणी धेनुबन (गो-प्रचारतीर्थ) नामक महातीर्थमें धेनुका दर्शन करके अपने पितरोंको ब्रह्मलोक ले जाता है। प्रभास-तीर्यमें प्रभासेश्वर शिवका दर्शन-लाभ करके मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है। कोटीश्वर और अश्वमेश्वका दर्शन करनेपर ऋणका विनाश हो जाता है। स्वर्गद्वारेश्वरका दर्शन करके मनुष्य भववन्धनसे विमुक्त हो जाता है।

रामेश्वरका दर्शन करके मनुष्य स्वर्गको प्राप्त होता है। भगवान् बहोश्वरके दर्शनसे बहाहत्याके पापसे विमृत्ति हो जाती है।

मुण्डपृष्ठतीर्थमें महायण्डीका दर्शन करके प्राणी अपनी समस्त इच्छाओंको पूर्ण कर लेता है। फल्गुतीर्थके स्वामी फल्ग्, चण्डीदेवी, गौरी, मङ्गला, गोमक, गोपति, अञ्चारेश्वर, सिद्धेश्वर, गयादित्य, गज तथा मार्कण्डेयेश्वर भगवानुके दर्शनसे व्यक्ति पितृऋणसे मुक्त हो जाता है। फल्पुवीर्थमें स्नान करके जो मनुष्य भगवान् गदाधरका दर्शन करता है. वह पितरोंके ऋणसे विमुद्ध हो जाता है।

पुण्यकर्म करनेवाले जनांके लिये क्या इतने कर्मके पर्याप्त संतोष नहीं होता? (और इन तीचींमें अवस्थित देख-दर्शन तथा स्नान करनेसे मनुष्यके कुलको) इक्कोस पुरुषपर्यन्त पीडियाँ ब्रह्मलोकको प्राप्त हो जाती है।

पृथिबीपर जितने भी तीर्थ, समुद्र और सरोवर हैं, वे सभी प्रतिदिन एक बार फल्युतीर्थ जाते हैं। पृथियोपे गया पुण्यशाली तीर्थ है। गयामें गयाशिर क्रेष्ट है और उसमें भी फल्गुतीर्थ उसका मुखभाग है-

> पुधिष्यां यानि तीर्थानि ये समुद्धः सराप्ति च। फल्गुतीर्थं गमिष्यन्ति बारमेकं दिने दिने॥ पृथित्यां च गया पुण्या गयायां च गयाशिए। श्रेष्ट्रं तथा फल्गुतीर्थं तन्मुखं च स्तस्य कि॥

> > (63122-25)

उदीची, कनका नदी और नाभितीर्थ उसका मध्यभाग है। उसी तीर्थंके सज़िकट ब्रह्मसदस्तीर्थ है, जो स्नान करनेसे मनुष्यको ब्रह्मलोक प्रदान करता है। वहाँपर स्थित कृपमें पिण्डदानादि कृत्य करके मनुष्य अपने पितरिक ऋणसे विमुक्त हो जाता है। अक्षयवटमें ब्राइकर्म सण्डा करके मनुष्य अपने पितृगणींको ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है।

हंसतीर्थमें स्नान करके मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। कोटितीर्थ, गयालोल, वैतरणी तथा गोमकतीर्थमें पितरोंके लिये ब्राद्ध करनेपर मनुष्य अपने इक्कोस पुरुषपर्यन्त (इक्कीस पीढी)-को ब्रह्मलोक ले बाता है। ब्रह्मतीर्थ, रामतीर्थ, अग्नितीर्थ, सोमतीर्थ और रामहदतीर्थमें

बाद करनेवाला अपने पितरोंको ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है। उसी धर्मारण्यमें अवस्थित गदालोलतीर्य तथा भगवान् उत्तरमानसतीर्थमें श्राद्ध करनेपर पुनर्जन्म नहीं होता। दक्षिणमानसतीर्थमें बाद्ध करनेसे बाद्ध करनेवाले अपने पितरीको ब्रह्मलोक पहुँचाते हैं। स्वर्गद्वारतीर्थमें श्राद्ध करनेसे भी बाद्धकर्ताओंके पितृजन ब्रह्मलोकको जाते हैं। भीष्म-तपंचका कृत्य जिस स्थानपर हुआ था, उस कृट स्थानपर बाद करनेसे भी मनुष्य पितृगणोंको भवसागरसे पार उतार देता है। गुन्नेधरतीर्थमें ब्राद्ध करनेसे ब्राद्धकर्ता अपने पितृक्रणसे विमुक्त हो जाते हैं।

धेनुकारण्यमें श्राद्धकर तिलसे बनी हुई गौका दान करनेवाला व्यक्ति यदि स्नान करके वहाँपर अवस्थित धेनुमृतिका दशन करता है तो निश्चित ही वह अपने धितुजनोंको ब्रह्मलोक पहुँचाता है।

पेन्द्रतीर्थ, जासवतीर्थ, रामतीर्थ, बैष्णवतीर्थं तथा महानदीके पांचत्र तीर्थपर बाद्ध करनेवाला मनुष्य पितरोंको ब्रह्मलोक ले जला है। गायबोतीर्थ, साविबोतीर्थ, सारस्वततीर्थमें स्नान-संस्था तथा तर्पण करके बाद-क्रिया-सम्पन्न करनेसे बादकर्ता एक सौ एक पुरुषपर्यन्त पितरोंकी पीढ़ीको ब्रह्मलोक ले कार्व है।

संयतमनसं पितरोंके प्रति ध्यान लगाकर मनुष्यको ब्रह्मयोनि नामक तीर्थको विधिवत् पार करना चाहिये। बहाँपर पितृगणों एवं देवोंका तर्पण करके मनुष्य पुन: गर्भ-यन्त्रणाके संकटमें नहीं पडता है।

काकबङ्घातीर्थमें तर्पण करनेसे पितरोंको अक्षयतुप्ति होती है। धर्मारण्य तथा मतङ्गवापीतीर्थमें ब्राद्ध करनेसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है। धर्मकृप तथा कृपतीर्थमें ब्रद्ध करनेपर प्राणी पितुऋणसे मुक्त हो जाता है। यहाँ श्रद्धादि कृत्य करके इस मन्त्रका पाठ करना चाहिये-

प्रमाणं देवताः सन्त् लोकपालाश्च साक्षिणः। मचागत्य मतङ्केऽस्मिन्यनुषां निष्कृतिः कृता॥

(63136)

अर्थात् मेरे द्वारा किये जा रहे श्राद्धादि कृत्योंके साक्षी यहाँके देवता प्रमाण हों और लोकपाल साक्षी हों। इस मतङ्गतीर्थमें आ करके मैंने पितरोंसे ऋण-मुक्तिका कार्य

रामतीर्थमें स्नान करके प्रभासतीर्थ और प्रेतशिलातीर्थमें प्राणीको अक्षय-फलकी प्राप्ति होती है। श्राद्ध करनेसे पितृगण निश्चित ही प्रेतभावसे मुक्त हो जाते हैं। (ऐसा करके) वह श्राद्धकर्ता अपने इक्कीस कुलोंका उद्धार करता है। मुण्डपुष्टादि तांथोंमें भी ब्राद्ध-क्रिया सम्पन्न करके अपने पितरोंको ब्रह्मलोक ले जाता है।

गयाक्षेत्रमें ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँपर तीर्थ नहीं है। पाँच कोशके क्षेत्रफलमें स्थित गयाक्षेत्रमें जहाँ-तहाँ भी पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अक्षय फलको प्राप्तकर अपने पितृगणोंको ब्रह्मलोक प्रदान करता है-

> गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते। पश्चक्रोशे गयाक्षेत्रे यत्र तत्र त् विवहदः । अक्षयं फलमाणीति ब्रह्मलोकं नयेत् यितृन्।

> > (c) | 34-wo)

भगवान जनार्दनके हाथमें अपने लिये पिण्डदान समर्पित करके यह मन्त्र पदना चाहिये-

> एव पिण्डो मया दलस्तव हस्ते जनार्दन। परलोकं गते मोश्रमक्षव्ययुपतिष्ठताम् ॥

> > (58183)

हे जनार्दन! भगवान् विष्णु। मैंने आपके हाधमें यह पिण्ड प्रदान किया है। अत: परलोकमें पहुँचनेपर मुझे मोस प्राप्त हो। ऐसा करनेसे मनुष्य पितृगर्गाके साथ स्वयं भी ब्रह्मलोक प्राप्त करता है।

गयाक्षेत्रमें स्थित धर्मपुष्ठ, ब्रह्मसर, गयाशीर्ष तथा अख्यवट-तीर्थमें पितरोंके लिये जो कुछ किया जाता है, वह असय हो जाता है। धर्मारण्य, धर्मपृष्ट, धेनुकारण्य नामक तोधाँका दर्शन करनेसे व्यक्ति अपनी बीस पीढ़ियोंका उद्घार करता है।

महानदीके पश्चिमी भागको बद्धारण्य कहा जाता है। उसके पूर्वभागमें ब्रह्मसद, नागाद्रि पर्वत तथा भरतासम है। भरताश्रम एवं मतङ्गपर्वतपर मनुष्यको पितराँके लिये श्राद्ध करना चाहिये।

गयाशीर्षतीर्थसे दक्षिण तथा महानदीतीर्थके पश्चिम चम्पक वन स्थित है, जहाँपर पाण्डशिला नामक तीर्थ है। श्रद्धावान व्यक्तिको उस तीर्थमें तृतीया तिथिको ब्राद्ध करना चाहिये। उसी तीर्थके सन्निकट निश्चियमण्डल, महाहद और कौशिकी आश्रम है। इन पवित्र तीथौंमें भी श्राद्ध करनेसे

वैतरणी नदीके उत्तरमें तृतीया नामक एक जलाशय है. वहाँपर क्रौन्छ-पश्चियोंका निवास है। इस तीर्थमें श्राद करनेवाला पितृगर्वोको स्वर्ग से जाता है।

क्रोंडपदतोथंसे उत्तर निश्चिरा नागसे प्रसिद्ध एक जलाशय है, वहाँपर एक बार जाने और एक बार पिण्डदान करनेसे मनुष्यको कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता है, किंतु जो इस तीर्थमें नित्य निवास करते हैं, उनके लिये तो बहना ही क्या है?

महानदोके जलका स्पर्श करके मनुष्यको पितृदेवोंका तर्पण करना चाहिये। ऐसा करनेसे उसे अक्षय-लोकॉकी प्राप्ति होती है और उसके कुलका उद्धार हो जाता है।

सावित्रीतीर्धमें (एक बार) संध्या करनेसे मनुष्यको दादशवर्षीय संध्याका फल प्राप्त हो जाता है।

शक्तपश्च तथा कृष्णपक्षमें जो मनुष्य गयातीर्थ जाकर वहाँपर राश्चिम करते हैं, निश्चित ही उनके सात कुलोंका हद्भार हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। इस गयातीर्थमें मुण्डपुष्ट, अरविन्दपर्वत तथा क्रीज्ञपाद नामक तीधौका दर्शन करके प्राणी समस्त पापोंसे तिमुक्त हो जाता है। मकर-संक्रान्ति, चन्द्रग्रहण एवं सुर्यग्रहणके अवसरपर गयातीर्थमें ज्ञाकर पिण्डदान करना तीनों लोकोंमें दुर्लभ है।

महाहद, कौशिको, मूल-क्षेत्र तथा गुधकृटपर्यंतको गुफामें ब्राद्ध करनेपर महाफलको प्राप्ति होती है। जहाँ धगवान महेश्वर शिवकी जटाओंसे निकली हुई गङ्गाकी माइंश्रो धारा प्रवाहित है, वहाँ श्राद्ध करके मनुष्यको ऋणमुक्त होना चाहिये। उसी क्षेत्रमें तीनों लोकोंमें विश्वत पुण्यतमा विशाला नामक नदीतीर्थ है। वहाँ श्राद्ध करनेसे व्यक्ति अग्निष्टोम नामक यहका फल प्राप्त करता है एवं मृत्युके पक्षात् उसको स्वर्गलोक प्राप्त होता है। श्राद्धकर्ताको उस क्षेत्रमें स्थित मासपद नामसे विख्यात तीर्थके जलमें स्तान करके वाजपेय-यजका फल प्राप्त करना चाहिये।

रविषाद नामक तीर्थमें पिण्डदान करके पतितजनीकी अपना उद्धार करना चाहिये। गयातीर्थमें जाकर जो मनुष्य अन्नदान करते हैं, उन्होंसे पितृगण अपनेको पुत्रवान मानते है। नरकके भयसे डरे हुए पितुजन इसीलिये पुत्र-प्राप्तिकी

जायगा, वह हमारा उद्धार करेगा। इस तीर्थमें पहुँचे हुए अपने पुत्रको देखकर पितृजनोंमें यह उत्सव होता है कि यहाँपर आया हुआ यह मेरा पुत्र अपने पैरोंसे भी इस तीर्थके जलका स्पर्श करके हम सबको निश्चित ही कुछ-न-कुछ प्रदान करेगा-

गयाप्राप्तं सूतं दृष्टा पितृणामृत्सवो भवेत्। पद्भ्यामपि जलं स्पृष्टा अस्यभ्यं किल दास्यति॥

(63)60) अपने पुत्र अथवा पिण्डदान देनेके अधिकारी अन्य किसी यंशजके द्वारा जब कभी इस गयाक्षेत्रमें स्थित

गयाकृप नामक पवित्र तीर्थमें जिसके भी नामसे पिण्डदान दिया जाता है, उसे शाधन ब्रह्मगति प्राप्त करा देता है-

आत्मजो वा तथान्यो वा गयाक्रपे यदा तदा। यप्राप्ता पातवेत् पिण्डं तं नवेद्श्रह्म शास्तव्॥

वहाँपर स्थित कोटितीर्थमें जानेसे मनुष्यको पुण्डरीक विष्णुलोक प्राप्त होता है। उस क्षेत्रमें जिलोकविज्ञत वैदरणी नामक नदी है। यह उस गवाक्षेत्रमें पिठरोंका उद्धार कानेके लिये अवतरित हुई है।

जो ब्रद्धालु व्यक्ति वहाँपर पिण्डदान एवं गोदान करता है, निश्चित ही उसके द्वारा अपने कुलकी इक्कीस पुरुषपर्यन पीदियोंका उद्धार होता है, इसमें संदेह नहीं है।

या सा वैतरणी नाम त्रिषु लोकेषु विश्वता। सावतीर्णा गयाक्षेत्रे पितृष्णं तारणाय हि।

(63:67-63)

यदि मनुष्य किसी समय गयातीर्थकी यात्रा करता है तो वहाँपर उसके द्वारा उन्हों कुलके बाह्मणोंको भोजन करवाना चाहिये, जिनका ब्रह्माने अपने यज्ञमें वरण किया था। उस गयातीर्थमें ब्रह्मपद तथा सोमपान नामक तीर्थ उन्हों ब्राह्मणोंके स्थान हैं, जिनका निर्माण ब्रह्माजीने किया था। इन ब्रह्माके द्वारा प्रकल्पित तीर्थपुरोहितोंको पूजा करनेपर पितृगणोंके देवता भी पुजित हो जाते हैं।

उस गयातीर्थमें हव्य-कव्यादि पक्यात्रके द्वारा वहाँके हो जाता है। (अध्याय ८२-८३)

अधिलाया करते हैं कि गयातीर्थमें जो कोई भी मेरा पत्र ब्राह्मणोंको विधिवत संतृष्ट करना चाहिये। गयामें निवास तथा देह-परित्यागको भी विधि है। उत्तमोत्तम गयाक्षेत्रमें जो वृथोत्सर्ग करता है, उसे एक सौ अग्निष्टोम-यज्ञोंका पुण्य-लाभ होता है, इसमें संदेह नहीं है।

> बृद्धिमान् मनुष्यको इस गयाक्षेत्रमें अपने लिये भी तिलर्राहत पिण्डदान करना चाहिये और अन्य व्यक्तियोंके लिये भी पिण्डदान करना चाहिये।

> हे क्यासजी! जातिके जितने भी पित्, बन्ध्-बान्धव एवं सहद जन हों, उन सभीके लिये गयाभूमिमें विधिपूर्वक पिण्डदान किया जा सकता है।

> रामतीर्थमें स्नान करके मनुष्य एक सी गोदानका फल प्राप्त करता है। मतक्रवापोमें स्नान करके एक सहस्र गायोंके दानका फल प्राप्त होता है। निश्चिरा-संगममें स्नान करके मनुष्य अपने पितृजनींको सदालीक ले जाता है। वसिद्यान्त्रममें स्नान करनेसे वाजपेय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। महाकौशिकोतीर्थमें निवास करनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

> ब्रह्मसरोवरके निकट संसारको पवित्र करनेवाली प्रसिद्ध ऑन्त्रधारा नामक नदी प्रवाहित होती है। उसीको कपिला कहते हैं। इस नदीमें स्नान करके कृतकृत्य हुआ श्रद्धाल व्यक्ति पितरोंके लिये बाद करके अग्निष्टीम-यज्ञका फल प्राप्त करता है।

> कुमारधारामें ब्राद्ध करके मनुष्यको अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करना चाहिये और वहाँपर स्थित कुमारदेवको प्रजाम-निवंदन करके उसे मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिये।

> सोमकुण्डतीर्थमें स्नान करके मनुष्य सोमलोकको बाता है। संवर्तवारी नामक तीर्थमें स्नान करके पिण्डदान करनेवाला प्राणी महासीभाग्यशाली बन जाता है।

> प्रेतकुण्डतीर्थमें पिण्डदान करनेसे मनुष्य सभी पापींसे विमुक्त हो जाता है। देवनदी, लेलिहान, मधन, जानुगर्तक तथा इसी प्रकारके अन्य पवित्र तीथौँमें पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अपने पितृजनोंको तार देता है। गयाक्षेत्रमें वसिष्ठेश्वर आदि देवताओंको प्रणाम करके प्राणी सभी ऋणोंसे विमृक्त

गयाके तीर्थोंका माहात्म्य तथा गयाशीर्थमें पिण्डदानकी महिमामें विशालकी कथा

उद्यत मनुष्यको विधिपूर्वक ब्राद्ध करके संन्यासोके वेषमें अपने गाँवकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। तदन-तर दूसरे गाँवमें वह जाकर श्राद्धसे अवशिष्ट अन्नका भोजन ग्रहण करके प्रतिग्रहसे विवर्जित होकर यात्रा करे।

गयायात्राके लिये मात्र घरसे चलनेवालेके एक-एक कदम पितरोंके स्वर्गारोहणके लिये एक-एक सोडी बनते जाते हैं-

> गृहान्धलितमात्रस्य गयायां गयनं प्रति। स्वर्गीरोहणसोयानं पितृणां तु पदे पदे॥ (4133)

कुरुक्षेत्र, विशाला (बदरीक्षेत्र), विरजा (जगजायक्षेत्र) तथा गयातीर्थको छोडकर शेष सभी तीचौँमें मुण्डन एवं उपवासका विधान है।

गयातीर्थमें दिन तथा रात (प्रत्येक समय)-में कभी भी ब्राद्ध किया जा सकता है। बाराणसी, शोपानद और महानदी प्न:पुनाके तटपर श्राद्ध करके अपने पितृजनीको स्वर्गलोकमें ले जाय। पनुष्य उत्तर मानसतीर्थमें जाकर बेष्ट सिद्धि पाप्त करता है। उस तीर्थमें उसे स्नान तथा बादादि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह दिव्य कापनाओंको तथा मोक्षको प्राप्त करता है।

दक्षिण मानसतीर्थमें जाकर बद्धावान पुरुषको मौन धारण करके पिण्डदानादि करना चाहिये, उस तीर्थमें श्राद्धादि करनेसे मनुष्य देव, ऋषि एवं पितृ—इन तीनीं ऋणोंसे मुक्त हो जाता है।

उस गयाक्षेत्रमें सिद्धजनोंके लिये प्रीतिकारक, पारियोंके लिये भयोत्पादक, अपनी जिह्यको लपलपाते हुए महाभयंकर, नष्ट न होनेवाले महासपीसे परिव्याप्त कनखल नामक त्रिलोकविश्रुत महातीर्थ है। उदीचितीर्थमें देवर्षियोंसे सेवित मुण्डपृष्ट नामसे एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकको जाता है एवं ब्राद्ध करनेपर उसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। उस तीर्थमें सुर्यदेवको नमस्कार करके पिण्डदानादि सिट्हियाओंको अवस्य हो सम्पन्न करना चाहिये।

ब्रह्माजीने कहा-व्यासजी। गयातीर्थकी यात्राके लिये और सोमपा नामक पितृदेवता है। गयाके तीर्थमें श्राद्ध करते समय इन सभी पितृदेवोंको इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये-1

> कव्यवाहस्तथा सोमो यमश्रेवार्यमा तथा। अग्निष्यात्ता वर्हियदः सोमपाः पितृदेवताः॥ आगच्छन् पहाचागा युष्पाची रक्षितास्त्वह। मदीयाः पितरो ये च कुले जाताः सनाभयः॥ तेषां पिण्डप्रदानार्थमागतोऽस्मि गयापिमाम्।

> > (28127-28)

हे कव्यवाह ! सोम, यम, अर्थमा, अग्निष्वात, वर्हिपद, सोमप (दिव्य) चितृदेवता। आप महाभाग! यहाँ पधारें! आप लोगोंद्वारा रक्षित हमाने कुलमें उत्पन्न जो सपिण्ड पिता पितलोकमें चले गये हैं, दन सभी पित्जनीक लिये पिण्डदान करनेके निमित्त मैं इस गयातीर्थमें आया है।

-ऐसी प्रार्थना करके फल्युतीर्थमें पिण्डदान करके मनुष्यको पितामहका दर्शन करना चारिये। उसके बाद धगवान गदाधर विष्णुका दर्शन करे। ऐसा करनेसे वह पितृञ्जलमें मुक्त हो जाता है। फल्गुतीर्थमें रनान करके जो यनुष्य भगवान् गदाधरका दर्शन करता है, वह सद्य: अपना तो उद्धार करता ही है, साथ ही वह अपने कुलके दस पूर्व पुरुष एवं इस पक्षाद्वती पुरुषपर्यना इक्कोस पीढियोंका उद्धार करता है।

गपातीर्थमें पहुँचे हुए ब्रद्धाल व्यक्तिके लिये यह प्रथम दिनकी विधिका वर्णन किया गया है। दूसरे दिन धर्मारण्य एवं महङ्गवापीमें जाकर श्राद्ध करनेवाला मनुष्य पिण्डदान आदि करे, धर्मारण्यमें जानेसे मनुष्यको वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् ब्रह्मतीर्थमें राजसूय-यज्ञ एवं अधमध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। तदनन्तर कृप और युप नामके तीर्थोंके मध्य श्राद्ध एवं पिण्डोदक कृत्य सम्पन्न करना चाहिये। कृपोदकके द्वारा किया गया वह श्राद्वादि कार्य अक्षय होता है। तीसरे दिन ब्रह्मसदतीर्थमें जाकर स्नानकर तर्पण करना चाहिये, तदनन्तर यूप एवं कृपतीर्थके मध्यमें श्राद्ध तथा पिण्डदान करनेका नियम है।

तदनन्तर गोप्रचारतीर्थके समीपमें ब्रह्मांक द्वारा कल्पित [कव्यवाह, सोम, यम, अर्थमा, अग्निष्वात, बर्हियद, ब्राह्मणोंके सेवनमात्रसे पितृजन मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

युपतीर्थको प्रदक्षिणा करके वाजपेय-यज्ञका फल प्राप्त कर लेना वाहिये।

चौथे दिन फल्गुतोर्थमें स्नान करके देवादिकोंका तर्पण करे और उसके बाद गयाशीर्षमें रुद्रपदादि तीर्थोंमें जाकर वह पितरोंके लिये श्राद्ध करे।

तदन-तर व्यास, देहिम्ख, पञ्चाग्नि तथा पदत्रय नामक तीर्धमें पिण्डदान करके सुर्यतीर्थ, सोमतीर्थ एवं कार्तिकेय-तीर्थमें जाकर किये गये बादका फल अक्षय होता है।

गयातीर्थमें नवदैवत्य और द्वादशदैवत्य नामक बाद करना चाहिये। अन्वष्टका तिथियोंमें, वृद्धिब्राद्धमें, गयामें और मृत्यतिथिमें माताके लिये पृथक रूपमे बाद्ध करनेका विधान है। अन्यत्र तीथोंमें पिताके साथ ही माताका बाद करना चाहिये'। दशाश्चमेधतीर्थमें स्नान करके पितामहका दर्शनकर यदि मनुष्य रुद्रपादका स्पर्श करता है तो वह पुन: इस लोकमें नहीं आता है।

वित्तपरिपूर्ण समग्र पृथिवीका तीन बार दान करनेसे बो फल प्राप्त होता है, वह फल गयाशिरतीर्थमें बाद करनेपर प्राप्त हो जाता है। इस गयाशिरतीशंमें शमीपत्र प्रमाणके बराबर पिण्डदान करना चाहिये। इससे पितृगण देवत्वको प्राप्त करते हैं। इस कार्पर्मे विचार करनेकी आवश्यकता नहीं हैं।

भगवान् शिवने मुण्डपृष्ठतीर्थपर अपना चरण रखा का। अतः उस तीर्धमें अल्पमात्र तपस्थासे ही मनुष्य महान् पुच्य प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति गयाशीपंतीधंमें नामोच्चारके साथ जिन पितरोंको पिण्डदान करता है उससे नरकलोकमें निवास करनेवाले पितृजन स्वर्गलोक एवं स्वर्गमें रहनेवाले पितरोंको मोक्ष प्राप्त हो जाता है-

> मुण्डपृष्ठे पर्व न्यस्तं महादेखेन धीमता॥ अत्येन तपसा तत्र महापुण्यमवाज्यात्। गयाशीर्थे तु यः पिण्डान्नाच्ना येथां तु निर्वयेत्॥ नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयः।

पाँचवें दिन गदासोसतोर्थमें स्नान करके अक्षयवटके नीचे पिण्डदान करनेवाला अपने समस्त कुलका उद्घार कर देता है। अक्षयवटके मूलमें शाक अथवा उष्णोदकसे एक ब्राह्मणको भोजन करानेपर करोड ब्राह्मणोंको भोजन करानेका फल प्राप्त हो जाता है । अक्षयवटमें श्राद्ध करनेके पक्षात् प्रणितामहका दर्शन करके मनुष्य अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है एवं अपने सौ कुलोंका उद्धार कर देता है।

यनुष्यको बहुत-से पुत्रोंको कामना करनी चाहिये, क्योंकि उनमेंसे एक भी पुत्र गयातीर्थमें जाय अथवा अध्येध-वज्र करे वा नीलव्योत्सर्ग करें।

एक प्रेतने किसी विधाकसे कहा-हे विधक्! गवालार्वतीर्वमें तुम मेरे नामसे विण्डदान करो, जिससे मैं इस प्रेतचोनिसे मुक्त हो जाऊँगा। यह पिण्डदान दाताके लिये भी स्वर्गप्रदान करनेवाला होगा। ऐसा सुनकर उस वणिकने गयातीर्पतीर्थमें उस प्रेतराजके लिये पिण्डदान किया। तदनन्तर अपने छोटे भाइयोंके साथ उसने अपने पितृजनोंको भी पिण्डदान प्रदान किया। वणिक्के द्वारा वहाँ पिण्डदान करनेसे उस प्रेतराजके साथ उसके सभी पितर मुक्त हो गये और पिण्डदान करनेवाला वह विशाल विजक् पुत्रवान् हो गया। मृत्युके पक्षात् उसने विशालामें राजपुत्रके रूपमें जन्म लिया। उसने ब्राह्मणींसे कहा कि मुझे किस प्रकारके सत्कार्योंको करनेसे पुत्र-प्राप्ति हो सकती है। ब्राह्मणॉर्ने विशाल नामक राजपुत्रसे कहा कि गवातीर्धमें पिण्डदान करनेसे आपकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो सकती हैं।

तदनन्तर विशालने गयाशीर्पतीर्धमें जाकर पिण्डदान किया, जिसके पुण्यसे वह पुत्रवान हो गया। एक दिन उसने आकाशमें बेत, रक्त एवं कृष्णवर्णवाले पुरुपोंको देखा। उन लोगोंको देखकर उसने पृष्ठा कि तुम सब कौन हो? उनमेंसे श्रेतवर्णवाले पुरुषने उस विशालसे कहा कि धेतवर्णवाला मैं तुम्हारा पिता हैं। तुम्हारे द्वारा दिये गये पिण्डदानके पुण्यलाभसे मैंने शुभ इन्द्रलोकको प्राप्त किया

(68176-30) १- बार्ट त नवदेवस्यं कृपीर्टादमदेवतम् । अन्वष्टकाम् वृद्धी च गणावी मृतवासरे ॥

अत्र मात्: पृथक् ब्राह्मस्यत्र पविना सह। (८४। २४-२५)

२-प्रिवितपुणी पृथिवी दत्त्वा यत्फलमाञ्चात् a

स अत्फलमवाप्नोति कत्वा बाद्धं गयातिरे। त्रमीयत्रप्रमानेन पिण्डं दशाद गयातिरे ॥

पितरो यानि देवत्वं नात्र कार्या विचारणा। (८४ (२६-२८)

३-वटमूलं समासाद्य शाकेनीप्पीदकेन वा॥ एकस्मिन् भौजिते विद्यं कोटिर्भवति भौजिताः। (८४।३१-३२)

४-एप्टरमा सहय: पत्रा परीकोऽपि गर्या वजेत्। यजेत वाक्ष्मेधेन नीलं या वृष्णुगरानेत्। (८४।३३-३४)

है। हे पुत्र! ये जो रक्तवर्णवाले पुरुष दिखायी दे रहे हैं, मेरे पिता है। ये ब्रह्महत्या करनेवाले तथा अन्यान्य महापापींसे युक्त थे। ये कृष्णवर्णवाले तेरे पितामह है। इन्होंने अपने जीवनकालमें अनेक ऋषियोंका वध किया। अतः इन लोगोंको अवीचि नामक नरक प्राप्त हुआ था, किंतु तुम्हारे द्वारा प्रदत्त पिण्डदानसे हम सभी पापविमक्त हो गये हैं। अब हम लोग उत्तम स्वर्गलोकर्ने जा रहे हैं।

यह सुनकर कृतकृत्य होकर विशाला नगरीमें राज्य करके वह विशाल स्वर्गलोकमें चला गया।

[गयातीर्थमें पिण्डदान करते हुए निम्न मन्त्रोंका पाउ करना चाहिये-]

> येऽस्मत्कुले तु पितरो लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥ ये चाप्यकृतचुडास्त् ये च गर्भाद्वितस्मृताः। येषां दाहो न क्रिया च येऽन्निदग्धास्तवापरे॥ भूमी दलेन तृष्यन्त तृष्या यान्त पर्ग गतियः। पिता पितामहशैय तथैय प्रपितामहः॥ माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही।

तथा मातामहश्चेष प्रमातामह यातामही परम्। प्रमातामहो तथा वृद्धप्रमातामहीति वै॥ अन्येषां चैव पिण्डोऽयमक्षय्यम्पतिष्ठताम्॥

इसका भाव यह है कि हमारे कुलमें जो पितर पिण्डदान एवं जल-तर्पण क्रियासे बक्रित रहे हैं, जो बुडाकमें-संस्कारविहीन हैं, जो गर्भसे निकले हुए हैं (गर्भपातके कारण मृत्युको प्राप्त हुए हैं), जिनका अग्निदाह अथवा अन्य अन्तिम क्रिया-संस्कार नहीं हुआ है, अग्निमें जलकर जिनको मृत्यु हुई है और जो दूसरे पितृगण हैं, वे भूमिमें मेरे द्वारा किये गये इस पिण्डदानसे तृप्त हों और तुप्त होकर परमगतिको प्राप्त करें। पिता, पितामह, प्रियतमह, माता, पितामही, प्रिपेतामही, मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह, मातामही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही और अन्य पितुजनीको भेरे द्वारा दिया गया यह पिण्ड अक्षय होकर उन्हें प्राप्त हो।

(अध्याय ८४)

गयातीर्धमें पिण्डदानकी महिमा

ब्रह्मात्रीने कहा-पिण्डदान करनेवालेको चाहिये कि वरुणानदीके अमृतमय जलसे पिण्डदान प्रदान करें। बह प्रेतशिलादि तीधीमें स्वान करके 'अस्मत्कुले मृत्य ये हमारे कुलमें जो मरे हैं, जिनकी सद्गति नहीं हुई है। छ०' आदि मन्त्रोंसे अपने श्रेष्ठ पितरोंका आवाहनकर इस दर्भपृष्ठपर तिलोदकके द्वारा उन सभी पितरोंका

१-अस्मरकुले मृत्र ये च गांतर्वेश न विद्यो । अववाहरियमे सन् सर्वान् दर्भपृष्टे विसोदके: ॥ पितृवंत्री युवा ये य मातृवंत्री य में युवा: । तेषामुद्धारणार्थाय इसं पित्रई दहास्पहम् ॥ मालामहक्ते ये च रातिर्वेश्वं व विद्याते । तेषामुद्धरणार्थात इस्ते विग्रहं ददास्यहम्॥ अजातदन्ता ये केचिये च गर्भे प्रशीदिताः। तेषामुद्धाणाचीय इमे पिण्डं ददाम्यहम्॥ धन्यवर्णाक्ष ये केचित्रानगोऽविकारितः। स्वगोत्रे परगोत्रे वा गतियेवा व विद्यते। तेवामद्वरणायांच इयं चिन्हं स्टाम्यहम्॥

उद्गमनपूर्वा ये च विपक्रामहरूक्ष ये। आयोजपातिनी ये च तेथ्य: पिनई ट्याम्यहम्॥ अग्निदाहे मृता ये च सिंडणाणहरूक ये। द्रष्टिभिः श्रीपीधवर्षि तेषां पिण्डं द्दाम्यहम् ॥ अग्निराधास ये केक्सियांग्निराधास्तवायो । विद्युच्हीहता वे च तेथ्यः विग्रह ददास्यहम् ॥ रीरवे चान्धराधिके कालसके व ये गता: । तेचानुद्धरणाबीय इमं पिण्डं ददास्यहम्॥ असियज्ञाने योरे कुरभीयाके च ये गाउ: । तेयानुद्धानार्थाय इसे विग्रह ददास्यहस् ॥ अन्येषां यातनास्थानां प्रेतरोकनिर्वासनाम् । तेषामुद्धरणाबांच इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ पश्योगि गता ये च पश्चिकोटमरीसुमः। अथवा वसवीनिस्वास्तेभ्यः पिण्डं टहास्यरम्॥ असंख्यपातनारंत्र्या ये जोता यनकारानै:। तेपामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥ जात्यनारसहस्रेष् धर्मान स्वेत कर्मना । मानुष्यं दुर्लभं येवां तेभ्यः विगई ददान्यहम् ॥ वे क्रमकाज्यस्य क वेज्यसम्भि क्रमकः। ते सर्वे व्रत्यस्यन् विष्टवनेन सर्वदाः ये केवित प्रेतरूपेण वर्तन्ते जिस्तो मम । ते सर्वे तुष्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा॥

मृत्यु हुई है, उन लोगोंके उद्धारके लिये मैं यह पिण्डदान यह पिण्ड दे रहा है। जो यमराजके जासनादेशसे यमगणोंके दे रहा है। मातामह अर्थात् नानाके कुलमें जो लोग भर गये द्वारा असंख्य यातनाओंके बीच पहेँचाये गये हैं, उन हैं, जिनको कोई सदगति प्राप्त नहीं हुई है, उनके उद्धारक लिये मैं यह पिण्ड दे रहा हैं। हमारे कुलमें जो दाँत निकलनेके पूर्व ही मृत्युको प्राप्त हो गये और वो कोई गर्भकालमें विनष्ट हो गये हैं, उन लोगोंके उद्धारके लिये मैं यह पिण्डदान दे रहा है। बन्धुकलमें उत्कार जो कोई नाम-गोत्रसे रहित हैं, स्वगोत्र एवं परगोत्रमें जिनको कोई गति अन्य जन्मोंमें मेरे बन्ध-बान्धव रहे हैं, वे मेरे द्वारा दिये नहीं रही है, उनके उद्धारके लिये मैं यह पिण्ड दे रहा है। गये इस पिण्डदानसे सदैव तुप्तिको प्राप्त करें। जो कोई उद्बन्धन (फॉसीद्वारा) अथवा विषसे या शस्त्रापातसे जिनको मृत्यु हुई है, जिन्होंने आत्महत्या की है, उन लोगोंके लिये यह पिण्ड दे रहा है।

सिंह और व्याप्रादि हिंसक प्राणियोंके द्वारा हुई है अथवा प्राप्त हुए हैं और जो अन्य बान्धव हैं, जो भेरे कुरलमें पुत्र-विशाल दौतीवाले हाथियों या सींगधारी पशुओंके आचारसे पश्चीसे रहित होनेके कारण लुप्तपिण्ड हैं, क्रियालीपसे जो मरे हैं, उन सभीके उद्धारके लिये मैं पिण्ड दे रहा है। जिनकी दुर्गति हुई है, जो जन्मान्ध या पंगु हैं, जो बिरूप जिनकी मृत्यु अग्निमें जलकर अथवा बिना अग्निमें जले हैं अधवा अल्प-गर्भमें हो मृत्युको प्राप्त हुए हैं, जो जात हो गयी है, जो विद्युत्से या चोरोंके द्वारा मारे गये हैं, अधवा अज्ञात हैं, उनके निमित्त मेरे द्वारा दिया गया यह उनके लिये मैं पिण्ड दे रहा है। जो गैरक, अन्धतामिक पिण्डदान अक्षय होकर उन्हें प्राप्त हो। तथा कालसूत्र नामक नरकोंमें गये हैं, उन सबके उद्धारके ब्रह्मा और ईशान आदि देव । आप सब मेरे इस कार्यमें लिये यह पिण्ड दे रहा हैं। जो असिपत्रवन और घोर- साक्षी हों। मैंने गयातीर्थमें आ करके पितरोंके उद्घारके लिये कुम्भीपाक नामक नरकोंमें पड़े हुए हैं, उनके उद्धारके लिये यह पिण्डदानादिक कार्य सम्पन्न किया है। यह पिण्ड दे रहा हैं। अन्य जो यातना भोग रहे हैं और 🛚 हे देव! भगवान् गदाधर विष्णु! मैं पितृकार्यके लिये प्रेतलोकमें निवास कर रहे हैं, उनके उद्धारके लिये यह इस गयातीर्थमें उपस्थित हुआ है। मेरे द्वारा सम्पन्न किये पिण्ड दे रहा है।

कीट-पतंग, सर्प, सरीसुप (छिपकली, गिरगिट, सर्पादि) 🕻। (अध्याय ८५)

आवाहन करता हैं। पितृर्वश एवं मातृर्वशमें जिन लोगोंकी हो गये हैं या जो वृक्षयोनिमें अवस्थित हैं, उनके लिये में सभीके उद्धारके लिये यह पिण्ड दे रहा है। जो अपने कर्मानुसार हजारों योनियोंमें युमते हुए कष्ट भीग रहे हैं, जिनको मानुषयोनि दर्लभ है, उन सभीके लिये यह पिण्ड दे रहा है।

जो हमारे बान्धव हैं या बान्धव नहीं हैं अथवा जो भी पितृजन प्रेतरूपमें अवस्थित हैं, वे सभी इस पिण्डदानसे तुष्ति प्राप्त करें।

जो हमारे पितृकुल, मातृकुल, गृह, श्वशुर, बान्धव जो लोग अग्निमें जलकर मर गये हैं, जिनको मृत्यु अधवा अन्य सम्बन्धियोंके कुलमें उत्पन्न होकर मृत्युको

गये आजके इस पितृकार्यमें आप साधी हों। आज मैं जो पितृगण पशुयोनिमें चले गये हैं अथवा जो पक्षी. (देव-गुरु एवं पितृ) तीनों ऋणोंसे विमुक्त हो गया

ये में पितकले जाता: कुले मातुस्तवेव व । गुरुधतुरवन्यूनां ये चान्ये बान्यवा मृता:॥ ये में कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारिवर्जिताः। कियालोपहता ये च जात्यन्थाः पङ्गवस्तथा॥ विरूच आमगर्थाश जाताजात: कृते मय। तेथं पिण्डं मया दत्तमक्ष्य्यमुपतिहताम्॥ साशिकः सन्त् में देवा ब्रह्मेशानादयस्तवा। मक गर्या समासाध पितृणां निष्कृतिः कृता॥ आगतोऽहं गयां देव पितुकार्ये गदाधर । तन्मे साधी भक्तवत अनुगोऽहमुणप्रयात्॥ (८५/२-२२)

गयाके तीर्थोंकी महिमा तथा आदिगदाधरका माहात्म्य

ब्रह्माजीने कहा-इस गयाक्षेत्रमें जो विख्यात प्रेतशिला है, वह प्रभास, प्रेतकुण्ड एवं गयासुरशीर्थ नामक तीथींमें तीन प्रकारसे अवस्थित है। सर्वदेवमयी इस डिलाको धर्मदेवताके द्वारा ऐश्वर्यके लिये धारण किया गया है। अपने मित्रादिक बन्ध्-बान्धवोंमें जिन लोगोंको प्रेतयोनि प्राप्त हो गयी है, उनका उद्धार करनेके लिये यह प्रेतज्ञिला गुभ है। अतएव मुनिजन, नृपगण तथा राजपत्यादि इस प्रेतिकलापर आ करके अपने पितृजनींके लिये श्राद्धादिकर ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं।

गयासुरके मुण्डके पृष्ठभागमें जो जिला स्थित है, उसका नाम 'मुण्डपृष्ठगिरि' है, इसी कारण यह पर्यत सर्वदेवमय है। इसके पाददेशमें बहासरोवरादि अनेक तीर्थ हैं। उन तीथोंमें एक अरविन्दवन नामक तीथे है। उस वनसे सुशोभित होनेके कारण उसके पर्वतीय प्रान्त-भागको 'अरविन्दांगरि' कहते हैं। वहाँपर क्रीज पश्चियोंके चरण-चिद्व विद्यमान रहते हैं। इसलिये वह पर्वतीय भाग 'क्रीब्रपाद'के नामसे प्रसिद्ध है। ब्राह्मादि करनेसे वह तीर्थ पितरोंकी ब्रह्मलीक प्रदान करता है।

आदिकालसे ही यहाँपर आदिदेव धगवान गदाधर विष्णु अव्यक्तरूपमें शिलारूपसे स्थित है। इसलिये यह शिला देवमयी कही गयी है। यह जिला गयासूरके सिरको आच्छादित करके वर्तमान समयमें भी अपने गुरूच भावके कारण चारों ओरसे अवस्थित है। कालान्तरमें महारुद्रादि देवोंके साथ आदि-अन्तसे रहित हरि आदि गटाधरके रूपमें व्यक्त होकर यहाँ स्थित हो गये हैं।

जिस प्रकार पूर्वकालमें धर्म-संरक्षण एवं अधर्म-विनाशके निमित्त दैत्यों और राक्षसोंका संहार करनेके लिये मतस्यावतार हुआ। जैसे कुर्म, बराह, नुसिंह, वामन, परशुराम, दाशरथी राम, कृष्ण और बुद्ध हुए। तदनन्तर कल्कि अवतार भी हुआ। उसी प्रकार यहाँपर व्यक्ताव्यक भगवान आदि गदाधर प्रकट हए।

आदिकालमें इसी पवित्र तीर्थपर ब्रह्मादि देवोंने आदिदेव भगवान् गदाधर विष्णुकी पूजा की थी। इसलिये यहाँपर अर्घ्य, पाद्य, पृष्पादिक उपहारोंसे उन भगवान गदाधरको पुजा करनी चाहिये। जो मनुष्य इस तीथंमें जाकर अन्य

देवताओं के साथ इन आदिदेव भगवान गदाधरको अर्घ्य-पात्र, पाद्य, गन्ध, पुष्प, धुप, सुन्दर नैवेद्य, विविध प्रकारके पुष्पोंसे बनी हुई मालाएँ, बस्त्र, मुकुट, घण्टा, चामर, दर्पण, अलंकार, पिण्ड, अन्न तथा अन्यान्य वस्तुओंको प्रदान करता है, वह जबतक इस पृथिबीपर जीवित रहता है, तबतक धन, धान्य, आयु, आरोग्य, सम्पदाओं, पुत्र-पौजदिक संतति, श्रेय, विद्या, अर्थ एवं अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त करता है। भार्याको प्राप्तकर (अन्तमें) स्वर्गका निवासी बन जाता है। तदनन्तर वह पुन: पृथिवीपर जन्म लेकर राज्यसुख प्राप्त करता है। वह श्रेष्ठ कुलीन मनुष्य सत्वसम्पन्न होकर पुद्धभूमिमें शबुओंको पराजित करनेमें समर्थ रहते हुए वध और बन्धनसे विमुक्त होकर मृत्युके पक्षात मोध प्राप्त करता है।

जो इस गयातीर्थमें अपने पितुजनोंके लिये ब्राह्न तथा पिण्डदानादिक क्रियाओंको सम्पन्न करनेवाले हैं, ये उन चितुगणोंके साथ स्वयं भी ब्रह्मलोकगामी होते हैं।

जो व्यक्ति पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जाकर भगवान जगनाध, सुभद्रा एवं बलभद्रकी पूजा करते हैं, वे लोग ज्ञान, लक्ष्मी वचा पुत्रादिकोंको प्राप्तकर अन्त समयमें भगवान् पुरुषोत्तम विष्युके सांनिध्यमें चले जाते हैं। जो मनुष्य वहाँ स्थित धगवान् पुरुषोत्तम जगलाय, सुपंदेव और गणनायक विध्नेश्वरके समक्ष पितरोंके लिये पिण्डदानादिक कार्य करते हैं, उन लोगोंको वह सम्पूर्ण कृत्य ब्रह्मलोक प्रदान करता है।

इस क्षेत्रमें विद्यमान कपदी भगवान शिव और गणेशको नमस्कार करके मनुष्य समस्त विष्नोंसे मुक्त हो जाता है। यहाँपर विराजमान भगवान कार्तिकेयका पूजनकर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। द्वादशादित्य सूर्यदेवकी सम्यक् अर्चनासे पुरुष सर्वरीग-विमुक्त हो जाता है। भगवान् वैश्वानर अग्निदेवको विधिवत् पूजा करके पुरुष उत्तम कान्ति प्राप्त करता है। रेवन्त देवकी पूजा करके मनुष्य उत्तम जातिके अश्वोंको प्राप्त करता है। देवराज इन्द्रकी धलीधीत एका करके महान् ऐश्वर्य एवं गौरीदेवीकी पूजा करके सौभाग्यको प्राप्ति करनी चाहिये। मनुष्य सरस्वतीदेवीकी पूजा करके विद्या, लक्ष्मोको पूजा करके सम्पत्ति तथा गरुडको पूजा करके विष्नीके समुहोंसे विमृत्त हो जाता है।

१-वधवन्धविनिर्मक्तरचानो मोक्षमवाप्नयात्। ब्राह्मपिण्डादिकर्तारः पितृपिर्वहालोकमाः ॥ (८६। १८)

क्षेत्रपालदेवकी पूजा करके व्यक्ति ग्रहोंके समूहसे निर्मुक्त हो जाता है। मुण्डपृष्टकी पूजा करके अपनी सम्पूर्ण अभिलाषाओंकी पूर्ति करनी चाहिये। अष्टनागदेवकी पूजा करके प्राणी सर्पदंशसे मुक्त हो जाता है। ब्रह्माकी पूजा करके ब्रह्मलोकका पुण्य अर्जित करना चाहिये।

भगवान् बलभद्रकी सम्यक् पूजा करके तकि और आरोग्य तथा मुभद्रादेवीकी विधिवत् पूजा करके परम सीभाग्यकी प्राप्ति होती है। भगवान् पुरुषोत्तम जगनायकी पूजा करनेसे सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति होती है। भगवान् नारायणकी पूजा करके वह मनुष्योंका अधिपति होता है।

नृशिंहदेवके चरणींका स्पर्श एवं नमन करके मनुष्य संग्राममें विजयी होता है। वराहदेवकी पूजा करके वह पृथिवीका राज्य प्राप्त करता है तथा मालाधर एवं विद्याधरका स्पर्श करके विद्याधरोंके पदको प्राप्त कर लेता है।

भगवान् आदिगदाभरको सम्यक् पूजा करके प्राणी समस्त अभिलापाओंको पूर्ण कर लेता है। भगवान् सीमनाथकी पूजासे शिवलोकको प्राप्त करता है। रुद्रदेवको नमस्कार करके रुद्रलोकमें प्रतिद्वापित होता है।

रामेश्वर-शिवको प्रणाम करके मनुष्यको राजके समान अतिशय प्रिय बनना चाहिये। भगवान् ब्रह्मेश्वरकी पूजा करके ब्रह्मलोक-प्राप्तिकी योग्यता ग्राप्त करनी चाहिये। कालेश्वरकी भलीभौति पूजा करके कालजयी वनना चाहिये। केदारनाथकी पूजा करके शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनी चाहिये और भगवान् सिद्धेशस्त्री पूजा करके मनुष्यको ब्रह्मलोक प्राप्त करना चाहिये।

आधदेव स्द्र आदिके साथ भगवान् आदिगदाधर विष्णुका दर्शन करके अपने सौ कुलोंका उद्घार कर उन्हें ब्रह्मलोक प्राप्त कराये। आदिगदाधरकी पूजासे धर्मार्थी धर्मको, धनाची धनको, कामाची कामको तथा मोक्षायी मोक्षको प्राप्त करता है। इनकी पूजासे राज्य चाहनेवाला पुरुष राज्य और शान्तिका इच्छुक शान्ति प्राप्त कर लेता है। सब प्रकारकी कामना करनेवाला सब कुछ प्राप्त कर लेता है। इन भगवान् आदिगदाधरको अर्बरासे पुत्रकी कामना करनेवाली स्त्रीको पुत्र, सौभाग्य चाहनेवालीको सौभाग्य तथा वंशाभिवृद्धिकी इच्छुक स्त्रीको वंशाभिवृद्धिका पुण्य प्राप्त करना चाहिये। मनुष्य ब्राह्म, षिण्डदान, असदान और जलदानके द्वारा भगवान् गदाधरदेवकी विधिवत् पूजा करके ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। पृथिवीपर अवस्थित सभी तीर्घोंकी अपेक्षा जिस प्रकार गयापुरी बेष्ट है. उसी प्रकार शिलाके रूपमें विराजमान गदाधर ब्रेष्ट हैं। उनको यूर्तिका दर्शन करनेसे सम्पूर्ण शिलाका दर्शन हो जाता है; क्योंकि सब कुछ तो भगवान् गदाधर विष्णु

आद्धेन पिण्डदानेन अबदानेन वारिदः॥ ब्रह्मानाकमवान्त्रीत सम्पृत्यादिगदाधरम्। पृथ्विकां सर्वतीर्थेभ्यो यथा श्रेष्टा गयापुरी॥ तथा जिलादिरूपश्च श्रेष्ठक्रवेव गदाधरः। तम्मिन् दृष्टे शिला दृष्टा यतः सर्वे गदाधरः॥

> (56 135-80) (अध्याय ८६)

चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन तथा अठारह विद्याओंके नाम

मनु हुए। उनके अग्नीध आदि अनेक पुत्र थे। मरीबि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु तथा वसिष्ठ-ये इस मन्यन्तरके सात ऋषि (सप्तर्षि) कहे गये हैं। इस मन्यन्तरमें जय, अमित, शुक्र एवं याम नामक (देवताओंके) बारह गण थे, जिनमें चार सोमपायी थे। इसोमें विश्वपुक् और धामदेव इन्द्रपदसे प्रसिद्ध हुए। वाष्कलि नामक दैत्व उनका उसे मारा था। शत्रु था, वह भगवान् विष्णुके द्वारा चक्रसे मारा गवा।

तदनन्तर स्वारोचिय मनुका प्रादुर्भाव हुआ। उनके

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! अब मैं चौदह मनु और चैत्रक, विनत, कर्णाना, विद्युत, रवि, वृहद्गुण और नभ उनके पुत्रोंका वर्णन करूँगा। पूर्वकालमें सर्वप्रथम स्वायम्भुव नामसे विख्यात महाबली मण्डलेश्वर एवं पराक्रमशाली पुत्र हुए थे। ऊर्ज, स्तम्ब, प्राण, ऋषभ, निश्चल, दत्तोलि और अवंरीवान्—ये सात ऋषि सप्तर्षिरूपमें प्रसिद्ध हुए। इस मन्बन्तरमें द्वादश तुषित और पारावतदेवगण हुए। विपश्चित् नामक इन्द्र थे। उनका शत्रु पुरुकृत्सर नामक दैत्य था। मधुसूदन भगवान् विष्णुने हाथीका रूप धारण करके

> है रुद्र। स्वारोचिय मनुके पश्चात् औतम मनु हुए। इस मनुके अज, परशु, विनीत, सुकेतु, सुमित्र, सुबल,

शुचि, देव, देवायृथ, महोत्साह और अजित नामक पुत्र थे। अत्रि, वसिष्ठ, जमदग्नि, करुयप, गौतम, भरद्वाज तथा इस मन्वन्तरमें रधौजा, कर्ध्वबाहु, शरण, अनय, मुनि, सुतप और शंकु—ये सप्तर्षि हुए। वशवर्ति, स्वधाम, शिव, सत्य तथा प्रतर्दन नामके पाँच देवगण हुए। इन सभी देवगणोंके प्रत्येक गणमें बारह देवता थे। स्वतानित नामक इन्द्र हुए, जिनका शत्रु प्रलम्बासुर दैत्य था। भगवान् विष्णुने मतस्यावतार धारण करके उस दैत्यका वध किया।

उस मनुके बाद तामस मनु हुए। उनके जानुजहुः, निर्भय, नवख्याति, नय, विग्रभृत्य, विविक्षिप, दृडेवुधि, प्रस्तलाक्ष, कृतबन्धु, कृत, ज्योतिर्धाम, पृथु, काट्य, चैत्र, चेतारिन और हेमक नामक पुत्र थे। इस मन्वन्तरमें सुरागा तथा सुधी आदि सात ऋषि कहे गये हैं। इसमें हरि आदि देवताओंके चार गण थे, प्रत्येकमें पचीस देवता हुए। उसी गणमें शिवि इन्द्र हुए। उनका शत्रु भीमस्य नामक असुर हुआ। भगवान् विष्णुने कूर्मावतार लेकर उसका वध किया।

तदनन्तर रैवत मनुका आविर्धात हुआ। उनके महाप्राण, साधक, वनबन्धु (वलबन्धु), निरमित्र, प्रत्यङ्ग, परहा, शुचि, दुढवत और केतुर्शृंग नामक ऋषि कहे गये हैं। इस मन्यन्तरमें वेदश्री, वेदबाहु, ऊद्ध्वबाहु, हिरण्यरोम, पर्जन्य, सत्यनेत्र और स्वश्राम—ये सात ऋषि हुए। इस मन्वन्तरमें अभूतरजस्, अश्वमेथस्, वैकुण्ठ तथा अमृत नामक चार देवगण हुए, जिनमें चौदह देव हुए। विभु नामक इन्द्र हुए। उनका शत्रु शान्त नामक दैत्य था। भगवान् विष्णुने हंसकम धारण करके उसका विनाश किया।

इसके बाद चाक्षुष मनुका प्रादुर्भाव हुआ। इनके जरु, पूरु, महाबल, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्पबाहु, कृति, अग्निष्णु, अतिरात्र, सुद्युम्न तथा नर नामक पुत्र हुए। हविष्मान्, उत्तम, स्वधामा, विरज, अधिमान, सहिष्णु तथा मधुश्री नामक—ये सात ऋषि हुए। आर्य, प्रभृत, भाव्य, लेख और पृथुक नामवाले पाँच गणोंमें आठ-आठ देवता कहे गये हैं। इस मन्वन्तरके इन्द्र मनोजब थे, उनका शतु महान् भुजाओंवाला महाबली महाकाल कहा गया है। वध किया था।

तत्पश्चात् वैवस्वत मनु हुए। उनके इक्ष्याकु, नाभाग,

विश्वामित्र नामक सात ऋषि (सप्तर्षि) कहे गये हैं। इसमें उनचास मरुद्रण, द्वादश आदित्य, एकादश स्द्र, साध्यगण आठ वसु, अश्विनीकुमारहय, दस विश्वेदेव, दस ऑगिरसदेव तथा नौ देवगण कहे गये हैं। इस मनुके समयमें तेजस्वी नामक इन्द्र हैं। उनका शत्रु हिरण्याश्च माना गया है। भगवान् विष्णुने वराह अवतार धारण करके उस दैत्यका विनाश किया था।

अब मैं भविष्यमें होनेवाले सार्वाण मनुके पुत्रोंका वर्णन कर रहा हूँ। उन मनुके विजय, आवंबीर, निर्मोह, सत्पनाक्, कृति, वरिष्ठ, गरिष्ठ, वाच, संगति नामक पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें अस्वत्थामा, कृपाचार्य, व्यास, गालव, दीष्त्रिमान्, ऋष्यभूंग और परशुराम—ये सात ऋषि कहे गये हैं। सुतया, अमृताभ तथा मुख्य नामक तीन देवगण हैं, जिनके प्रत्येक गणमें नीस-बीस देव माने गये हैं। विरोचन-पुत्र बलि इन्द्र होंगे, जो वामनरूपधारी भगवान् विष्णुके द्वारा याचित तीन परा भृषिदान देनेसे ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्रपटको सोडकर सिद्धि प्राप्त करेंगे।

हे बह्या । नवें वरुणपुत्र दक्षसावर्षि मनुके पुत्रीको सुने । धृतिकेतु, दीप्तिकेतु, पश्चहस्त, निरामय, पृथुश्रवा, बृहद्द्युम्न, ऋषोक तथा बृहद्गुण नामके पुत्र हुए। इस मन्यन्तरमें मेधातिय, द्यति, सबस, वसु, ज्योतिष्यान् हव्य और कव्य तवा विभु—ये सप्तर्वि हुए। पर, मरीचिगर्भ तथा सुधर्मा— ये तीन देवता हुए। इस मन्बन्तरमें कालकाक्ष नामक देवशश्रु हुआ, जिसका वध पद्मनाभ विष्णुने किया था।

दसर्वे मनु (धर्म) के पुत्र धर्मसावर्णिके पुत्रोंको सुनो— मुक्षेत्र, उत्तमीजा, भूरिश्रेण्य, शतानीक, निरमित्र, वृषसेन, जयदय, भूरियुम्न, सुवर्चा, शान्ति एवं इन्द्र नामक महाप्रतापी पुत्र थे। इस मन्यन्तरमें अयोमूर्ति, हविष्मान्, सुकृति, अध्यय, नाभाग, अप्रतिमीजा और सौरभ नामक सप्तर्षि हुए। इसमें देवताओंके प्राण नामके एक सी गण विद्यमान थे। उन गणेंकि इन्द्र महाबलशाली शान्त नामक जगदाधार भगवान् विष्णुने अश्ररूप धारण करके उसका देवपुरुष थे। उनका शत्रु बलि नामक असुर होगा। भगवान् विष्णु अपनी गदासे उसका वध करेंगे।

हे रुद्र! अब मैं आपके पुत्र एकादश मनु (रुद्रसावणि)-धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, पांसु, नभ, नेदिष्ठ, करूष, पृषध्र की संतानोंका वर्णन करता हूँ। इनके सर्वत्रग, सुशर्मा, और सुद्युम्न नामक विष्णुपरायण पुत्र हुए। इस मन्यन्तरमें देवानीक, पुरु, गुरु, क्षेत्रवर्ण, दृतेषु, आर्द्रक तथा पुत्र नामक

पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें हविष्मान्, हविष्य, वरुण, विश्व विस्तर, विष्णु और अग्नितेज नामक सप्तर्षि कहे गये हैं और इसमें विष्टक्रम, कामगम, निर्माण तथा रुचि नामक चार देवगण हुए। एक-एक गणमें तीस-तीस देवता कहे गये हैं। उन समस्त देवराणोंके इन्द्र वृषभ हुए: जिनका शत्रु दशग्रीय नामक राक्षस होगा। लक्ष्मीका रूप धारण करके विष्णु उसका विनाश करेंगे।

इसके पक्षात् दक्षके पुत्र दक्षसावर्णि बारहवें मनु हुए। उनके पुत्रोंका वर्णन सुनें—इन मनुके देववान् उपदेव, देवश्रेष्ठ, विद्रथ, भित्रवान्, मित्रदेव, मित्रविन्दु, वीर्यवान्, मित्रवाह, प्रवाह नामक पुत्र हैं। इस मन्वन्तरमें तपस्वी, सुतपा, तपोमृति, तपोरति, तपोधृति, द्युति तथा तपोधन नामसे विख्यात सप्तवि हुए। स्वधर्मा, सुतपस, हरित और रोहित नामक देव सुरगण हैं। उनके प्रत्येक गणींमें दस-दस देव हुए। हे शिव! इस मन्तन्तरमें ऋतथामा नामके इन्द्र होंगे। उनका शत्रु तारकासुर होगा। विष्णु नपुंसकस्वरूप धारण करके उसका वध करेंगे।

तदननार रीच्य नामक प्रयोदश यनुके पुत्रोंको मुखसे सुने। इन मनुके चित्रसेन, विचित्र, तप, धमात, धृति, सुनेत्र, क्षेत्रवृत्ति तथा सुनय नामक पुत्र कहे गये हैं। इस मन्वन्तरमें धर्म, धृतिमान, अष्यय, निशारूप, निरुत्सक, निर्मीह और तत्त्वदशी नामक सप्तर्षि कहे गये हैं। इस मन्वन्तरमें सुरोम, सुधमं तदा सुकर्म-तीन देवगणींका उद्भव हुआ। इन सभी गर्जोमें तैतीस-तैतीस देवगण कहे गये हैं। इन देवगणीका इन्द्र दिवस्पति और शत्रु त्वष्टिभ नामक दानव था। भगवान् विष्णु मयुका स्वरूप धारण करके उस दैत्यका वध करेंगे।

हं शिव ! अब मेरे पुत्र चौदहवें मनु भौत्यके पुत्रोंका ब्रवण करें-- इन मनुके ऊरु, गभीर, भृष्ट, तरस्वी, ग्राह, अभिमानी, प्रवोर, जिप्मु, संक्रन्दन, तेजस्वी तथा दुर्लभ नामक पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें अग्नीध, अग्निबाहु, मागध, तुचि, अजित, मुक्त और सुक्र-ये सप्तर्षि होंगे। इस मनानारमें चाक्ष्य, कर्मनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिन तथा यचीयृद्ध नामक पाँच देवगणोंके प्रत्येक गणको सात-सात देवगणोंसे सर्मान्वत कहा गया है। इस मन्वन्तरमें शुचि नामसे प्रसिद्ध इन्द्र होंगे तथा महादैत्य उनका शत्रु होगा। स्वयं भगवान् विष्णु हो उस महादानवका वध करेंगे।

उन्हों भगवान् विष्णुनं व्यासकपमें अवतरित होकर एक हो बंदसंडिताको चतुर्था विभाजित किया। तदननार अदारह पुराणींका प्रणयन किया। उन्होंने ही चारों बेद, छ: वेदाङ्क और मीमांसा, न्याय, पुराण, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, अधेवेट, धनुवेंद और गन्धवेंबेट—इन अष्टादश विद्याओंका बिस्तार किया। (अध्याय ८७)

प्रजापित रुचि और उनके पितरोंका संवाद

स्तजीने कहा-भगवान् हरिने बहा और भगवान् शिवको चौदह मन्यन्तरोंका जो वर्णन सुनाया था, मैंने आपको वह सुना दिया। अब मार्कण्डेयजीने ऋौजुकि मुनिको जो पितृस्तोत्र सुनाया था, वह आप सभौको सुना रहा है। आप सब उसे श्रवण करें।

पार्कण्डेयजीने कहा-प्राचीनकालमें रुचि नामक प्रजापति माथामोहको छोड्कर, निर्भय होकर, स्वल्य शयन करते हुए निरहंकारभावसे इस पृथिवीपर विचरण करने लगे। उन्होंने अग्निहोत्रका परित्याग कर दिया। घरमें रहना छोड़ दिया। वे एक बार भोजन करते और गृहस्थादिक अकेले ही विचरण करते थे। उन्हें देखकर उनके कैसे उस स्वर्ग-प्राप्तिको इच्छा कर रहे हो। पित्वनोंने उनसे कहा-

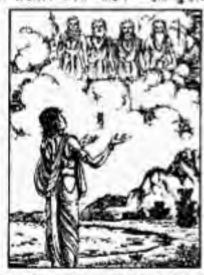
हे बाल ! जुमने किस कारण दार-परिग्रह (विवाह) नहीं किया। यह दार-परिग्रह स्वर्ग एवं मोध-प्राप्तिका हेतु है। गुहस्थात्रमके बिना प्राणीको शाक्षत बन्धन होता है; क्योंकि गृहस्थ समस्त देवताओं, पितरों, ऋषियों और याचकोंको पूजा करके उत्तम लोकोंको प्राप्त करता है। वह देवताओंको स्वाहा एवं पितरोंको स्वधा शब्दके उच्चारणसे तथा अतिथि एवं भृत्यादि जनोंको अन्न-दानसे संतुष्ट करता है। ऐसा न करके तुम देवऋण और हम सभी पितृजनोंके ऋणसे आवढ़ हो। मनुष्य, ऋषि एवं अन्य प्राणिजनोंके लिये भी तुम प्रतिदिन ऋणी ही हो रहे हो। पुत्रोत्पत्ति, देख-आश्रमके नियमोंसे रहित हो संगरहित होकर इधर-उधर पूजा तथा पितृतर्पण तथा संन्यासग्रहण किये बिना ही तुम

हे पुत्र! इस अन्यायसे तुमको मात्र कष्ट ही प्राप्त होगा।

जन्ममें भी क्लेश ही होगा।

रुखिने पितुजनीसे कहा-श्रीवनमें परिग्रह (ग्रहण करना) अत्यन्त दु:ख-भोग, पाप-संग्रह एवं अन्तकालमें अधोगति प्रदान करनेके लिये होता है। ऐसा विचार करके ही मैंने स्त्रीपरिग्रह (बिबाह) नहीं किया है। क्रणमात्र विचार करनेसे ही अपने अन्त:करणमें विद्यमान संज्ञय-संदेहको दर करनेका उपाय किया जा सकता है। परिव्रह उस मुक्तिका कारण नहीं हो सकता है। जो निव्यस्प्रिह-व्यक्ति प्रतिदिन विद्याके सद्-जानोपार्जनरूपी जलहार अपने आत्माको निर्मल करता है, मेरे लिये तो वही श्रेष्ठ है। विद्वानीने अनेक प्रकारके सांसारिक कर्मरूपी पंकिलचिक्कोंका वर्णन किया है। अतएव जितेन्द्रिय पुरुषोंको तत्त्वज्ञानकपी जलसे आत्माका प्रक्षालन करना चाहिये।

पितरोनि कहा-'हे बत्स! जितेन्द्रियजनीके द्वारा आत्माका प्रश्नालन करना चाहिये '-ऐसा तुम्हारा



उचित ही है, किंतु यह कल्याणका मार्ग नहीं है, जिसके ऊपर तुम चल रहे हो। पञ्चयञ्च, तप तथा दानके द्वारा अपने अमङ्गलको दूर करते हुए फलप्राप्तिको कामनासे रहित किये हुए जो शुभ और अशुभ कर्म हैं, वे बन्धनके हेतु नहीं होते और जो पूर्वका कर्म है, वह भोगसे नष्ट होता है।

प्रारव्यका जो पुण्यापुण्य कर्म है, वह सुख-दु:खात्मक भोग भोगनेसे निरन्तर नष्ट होता रहता है। इस प्रकार विद्वजनोंक

इससे तो मरनेके बाद तुम्हें नरककी प्राप्ति होगी और दूसरे द्वारा अपनी आत्माका प्रकालन होता रहता है और कर्मबन्धनसे उसकी रक्षा की जाती है। अपने विवेकसे रक्षित आत्मा पापरूपी पंकसे लिख नहीं होता।

> रुचिने कहा-हे पितामह आदि पितृगण! वेदमें कर्म-मार्गके प्रतिपादनके द्वारा अविद्या-मायाकी परिपृष्टि को गयी है। इसलिये आप सब कैसे मुझे उसी मार्गमें चलनेके लिये प्रवृत्त कर रहे हैं।

> पितरोंने कहा- 'कर्मके द्वारा जो कुछ किया जाता है, वह सब अविद्या है '-ऐसा जो तुम्हारा कहना है, वह असत्य बचन नहीं है; किंतु विद्याकी सम्यक्-प्राप्तिमें भी तो कर्म ही हेतु है। शास्त्र-प्रतिपादित जो विहित कर्म है, सञ्चन पुरुष उनका उल्लंबन नहीं करते। उन्हें उसीसे मोक्षको प्राप्ति हो जाती है। विहित कर्मका अनुष्ठान न करना अधोगति-प्रदायक है। है क्ल्स ! 'मैं अपरिग्रहादिके द्वारा आत्मप्रशालन कर रहा हैं', ऐसा तुम उचित मानते हो, किंतु शास्त्रविहित कमौका अनुष्टान न करनेसे उत्पन्न पापोंके द्वारा भी तुम स्वयं अपनेकी जला रहे हो।

> अविधा भी विषके समान मनुष्योंका उपकार करनेके लिये हो होती है। जिस प्रकार विषका यथोचित उपयोग करनेसे प्राणीका कल्याण होता है, उसी प्रकार समृचित रूपमे अविद्यारूप विहित कर्मका अनुप्रान करनेसे कर्ताका हित ही होगा। वह भवबन्धनके लिये नहीं, अपित मोक्षके लिये है।

> हे पुत्र। इस कारण तुम विधिपूर्वक दार-परिग्रह अर्थात् अपना विवाह करो। लोकिक कर्मोंका सम्यक रीतिसे अनुग्रन न करनेसे तुम आजन्म विफलताको ही प्राप्त करोगे।

कविने कहा-हे पितृगण! अब तो मैं बुद्ध हो गया हैं। कौन मुझे अपनी कन्या प्रदान करेगा? वैसे भी मुझ-जैसे अफिक्टन व्यक्तिके लिये दार-परिग्रह अर्थात् विवाह करना अत्यन्त कष्टमाध्य है।

पितरोंने कहा-हे बल्स! यदि तुम हमारे वचनका अनुपालन नहीं करते हो तो निश्चित ही हम सभी पितरीका पतन होगा और तुन्हारी अधोगति होगी।

हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कहकर उस प्रजापति रुचिके सभी पितृगण देखते हो देखते वायुवेगके झोंकोंसे बुझे हुए दीपकोंके समान सहसा अदृश्य हो गये। (अध्याय ८८)

रुचिद्वारा की गयी पितृस्तुति तथा श्राद्धमें इस पितृस्तुतिके पाठका माहात्स्य

पितृजनोंके द्वारा उस प्रकारके वाक्यको सुनकर वे ब्रहार्षि रुचि मन-ही-मन अत्यधिक व्याकल हो उठे और कत्या प्राप्त करनेकी इच्छासे पृथिवीलोकमें विचरने लगे, किंतु उन्हें कोई कन्या प्राप्त न हो सकी। अतएव पितरोंक उक्त वचनरूपी अग्निसे संतप्त हुए वे अतिशय चिन्ताएस्त होकर ज्यग्र मनसे इस प्रकार सोचने लगे-

'में क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मेरे पितृगर्भोका और मेरा अभ्यूदय करनेवाला वह स्वी-परिप्रह (चिवाह-संस्कार) किस प्रकार हो सकेगा?"

इस प्रकार चिन्तन करते हुए उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं कमलपोनि उन बद्याको ही तपस्याके द्वारा प्रसन्न करता हूँ। तदनन्तर महात्मा सचिने सी दिव्य वर्षोतक कठिन वप किया। वे तपस्यके लिये वनमें एक ही स्थानपर चिरकालतक अवस्थित रहे।

तत्पक्षात् जगत्पितामह ब्रह्मनं दर्शन दिया और कहा



कि मैं तुमसे प्रसन्न हैं, तुम अपनी अभिलाया प्रकट करो । तदननार सम्पूर्ण संसारको गति प्रदान करनेवाले उन आराध्य-देख ब्रह्मको प्रणाम करके रुचिने पितृजनीके कथनानुसार जो-जो उनको अभिलाषा धी, उनसे निवेदन किया।

इसपर ब्रह्माजीने कहा-हे विप्र! तुम प्रजापति होओंगे। तुम्हारे द्वारा प्रजाओंकी सृष्टि होगी। प्रजारूपी पूर्चोंको उत्पत्ति करके ही तुम पितृजनोंके लिये श्राद्ध एवं पिण्डदानादिको सम्पन्न करनेके पश्चात् साधिकार उक्त कामनाको सिद्धि प्राप्त कर सकोगे। अतः तुम्हारे पितरीके द्वारा उचित हो कहा गया है कि 'तुम स्त्री-परिग्रह करो।' इस अभिलायाको भलीभौति ध्यानमें रखते हुए तुम्हें पितरोंकी ही पुजा करनी चाहिने। प्रसन होकर वे ही पितृगण तुम्हारी इस कामनाको पूर्ज करेंगे। सम्यक् पूजासे संतुष्ट हुए पितामहादि पितृगण स्वी-पुत्र आदि क्या नहीं दे सकते।

ब्रह्माजीका इस प्रकारका वचन सुनकर ऋषि रुचिने नदोके एकाना तटपर पहुँच करके अपने पितरोंका तपंण-कर उन्हें संतुत्त किया। तदनन्तर एकाप्रचित्त होकर भक्तिपूर्वक वे इन स्तुतियोंके द्वारा पितरोंकी आराधना करने लगे -

रुखि बोले-जो अधिदेवताके रूपमें विद्यमान रहते हैं और जो ब्राद्धके अवसरपर देवताओंसे, स्वधाद्वारा तुपा कियं जाते हैं, मैं उन पितृगणोंको नमस्कार करता हूँ। स्वर्गमें भी अवस्थित महर्षियण भूक्ति और मुक्तिकी कायनासे मानसिक ब्राद्धके द्वारा जिनको भक्तिपूर्वक तृप्त करते हैं, उन पितरोंको में प्रणाम करता है।

स्वर्गमें सिद्धजन श्राद्धके सुअवसरोंपर सभी दिव्य उत्तम उपहारोंके द्वारा जिन पितरोंको भलीभौति संतुष्ट करते हैं, उन पितरोंको मेरा नमन है। गुहाकजन स्वर्गमें आत्यन्तिको ब्रेष्ट ऋदिको कामनासे भक्तिपूर्वक तन्मय-

नमस्येऽहं चित्रन् भक्त्या ये जसन्यधिदैवतम्। देवैर्राप हि तप्पनि ये आद्वेष् स्वधीतिः ह तपरमेऽहं पितृत् स्वर्गे ने तर्पानी पहर्गिथा। कार्द्वपंतीयपैर्यक्या थुक्तिपुक्तियथीप्युधिः ह द्रिध्ये: सकलेश्यहरिरवृत्तमे: ॥ नमस्येऽहं पितृन् स्थार्गे सिद्धाः संतर्पयनिः यान् । बाद्धेषु नमस्येऽहं पितृन् भक्ता येऽच्यंते गुहकेदिवि । तस्यत्यंत्र वाञ्यदिकाँद्वमान्यन्तिकाँ पराम् व नमस्बेऽहं पितृन् मार्थित्रपर्यन्ते भूवि ये सदा। बच्हेप् बद्धवाधीहलोकपृष्टिप्रदायिनः **श** नमायेऽहं पितृन विद्येरव्येने भृति ये सदा। वाज्यिताभौहलाभाष नमस्येऽहं पितृन् में वं क्रयंनेऽरणस्यासिभिः । बन्धः ब्राह्मैयंत्रहारेस्त्रमेनिर्धृतकल्पमैः ॥ नगरवेऽहं पितृन् विग्रैनेष्ठिकेर्धर्मश्रामिशः । ये संयताव्यधिनित्वं संतर्धन्ते समाधिभिः॥ नमस्येऽहं पितृब्द्यार्द्धं राजनवास्तांयांना वान् । कर्यारतेपीर्विधिकस्तोकद्वयकसप्रदान्

भावसे जिन पितरोंका पूजन करते हैं, उनको मैं नमस्कार लोक प्रदान करते हैं, मैं उन पितृगणोंको प्रणाम करता हूँ। करता हूँ। पृथिवीपर मनुष्योंके द्वारा श्राद्धोंमें सदैव जिनको इस पृथिवीपर ब्राह्मणजन वाज्छित अभीष्ट लाभके लिये पूजा होती है, जो श्रद्धापूर्वक स्वजनोंसे पूजित होकर अभीष्ट प्राजापत्यलोक प्रदान करनेवाले जिन पितरोंकी सदैव पूजा

नमस्येऽहं पितृन् वैश्वेरव्यंने भृति ये सदा । स्वक्यांभिश्वेशित्यं पूर्णभूपालवारिभिः ॥ नमस्येऽहं पितृन्तृत्वद्वे सूर्देशीय च भवितः । संत्यंने वणकृतनं नाना क्याः पुकालिनः ॥ नमस्येऽहं पितृन्त्वाद्वे कताले ये महासुरेः । संत्यंने सुभावाग्यस्त्वदरम्भादेः सदा ॥ नमस्येऽहं पितृन्त्वाद्वेरव्यंने ये स्सावले । भोगेरावेशिविधवनानैः कामानभीरमुभिः ॥ नमस्येऽहं पितृन्त्वाद्वेः सर्वैः संतर्भितान् सदा । तवैव विधिवन्यन्त्रभोगसम्पन्तमनितेः ॥

पितृत्वमध्ये निवसनित साधारी देवलोकेऽथ महोताले क । वामानाध्ये च सुर्तारपुर्वाको वै प्रतीकान्तु सर्वापनीतम्॥ पितृत्वमध्ये परमार्थभूतः वे वै विकले निवसन्त्वमृतः। वर्जान सानावमहोर्वाधियांचीध्यांचीध्यां प्रताकान्त्र वेऽनीधसंहितेषु॥ पितृत्वसस्ये दिवि ये च मृताः स्वध्यभूतः काम्यक्ताधिसान्धै। प्रदानजाकः सकलेपितानां विमृतिदः। येऽनीधसंहितेषु॥ तृष्यन्तु वेऽनिवस्तितः। सम्यक्त इच्छावतः ये प्रदिक्ति काम्यः। सुरत्वितः सकलेपितानां विमृतिदः। येऽनीधसंहितेषु॥ तृष्यन्तु वेऽनिवस्तितः। सम्यक्ति प्रतापति प्रतापति । तृष्यन्तु वेऽनिवस्तितः। पृष्टिमितः च प्रतापति । तृष्यन्तु वेऽनिवस्तितः। पृष्टिमितः च प्रतापति । विभावतः । विभावतः विभावतः प्रतापति । विभावतः प्रतापति । विभावतः स्वर्तितः स्वर्ति । विभावतः स्वर्तितः स्वर्तितः स्वर्तितः प्रतापति । विभावतः स्वर्तितः स्वर्तितः स्वर्तितः स्वर्तितः प्रतापति । विभावतः स्वर्तितः स्वर्ति स्वर्तितः स्वर्तः स्वर्तितः स्वर्तः स्वर्तः स्वर्तितः स्वर्तितः स्वर्तितः स्वर्तः स्वर्तितः स्वर्तितः स्वर्तितः स्वर्तितः स्वर्तः स्वर्तितः स्वर्तः स्वर्तितः स्वर्

अभिष्याकः विहेषदः आन्यपः सोमयत्तवयः । प्रवन्तः हर्तिः वाद्वेऽशिशन्तिवारसर्वितः समाधः अभिष्याकः विहानकः प्रवी कानु मे दिक्षः । तथा बहिषदः चनु याम्यां से पितरः सदा। प्रतीबोध्यनस्थलसदुद्दोचीमधे सोमयः ॥

रक्षोभूतिपताषेभ्यस्तर्वेवासुरदोवतः । सर्वतः पिततो रक्षां कृतंत् सम नित्यतः । विश्वो विश्वभूतारास्त्रो धर्मा चन्यः सुभावतः । भूतिदो भूतिकृद् भूतिः विद्यानं ये गमा नव ॥ कल्प्यतः कल्पदः कर्ता कल्पः कल्प्यताकः । कल्प्यतिद्वारः चित्रमे ते नमाः प्रमुतः ॥ वर्ते चरेष्यो वरदातृष्टिदः पुष्टिदस्त्रमा । विश्वपाता तथा भाता प्रस्तेते च गमाः स्मृतः ॥ महान्यताच्यास्म महितो महिनावान्यवाकः । प्रमाः पञ्च त्येपेते चितृष्यां भावतावत् ॥ पुष्ठदो धनदश्चन्यो धर्मदोऽस्यश्च भूतिदः । विद्यानं कष्यते चैत्र तथा गमावतुष्ट्यम् ॥ एकप्रिवारियतृगमा वैश्वांत्रपत्तिलं सम्त् । त एकात्र चितृमकास्तुष्यन् च मदादितात्॥

एवं दु स्टुब्द्रस्तस्य देवको सहित्रिक्तः । प्रदुर्वभूवः सहस्राः गगनान्याज्यिकारकः ॥ तद्दृद्धाः सुन्द्रतेकः सम्बद्धस्य स्थितं कर्त् । क्षतुभ्यानवनी याचा सीधः स्तोऽसिदं जगीः॥ समित्रकात्रः

अर्थितान्तमपूर्वातं पितृषां दीयक्षेत्रसम् । नमस्यापि सदा तेषां ध्वातिनां दिव्यवशुगाम्॥ इन्द्रादीनां च नेतारं दक्षमार्थाच्यास्तवा । सन्त्याणं वक्षण्येषं व्यवपार्याम् कामदान्॥ मन्त्रादीनां च नेतारः सूर्याचन्द्रस्त्रोक्षणः । वाक्षमस्थान्यकः सर्वान् पितृष्युद्धायपि॥ नक्षण्याणं प्रकाणां प्रवाणां प्रवाणा

एवं स्तुतास्ततस्तेन तेजसी मुनिसत्तमाः । निक्रममुखे नितरो भासपन्ते दिशो दशः। निवेदनं च यत्तेन पुष्परभानुतोपनम् । तद्भितानधः स तान् दद्शे पुरतः स्थितन्॥ प्रक्रियस्य स्विभंकत्या पुनरेव कृताक्रसिः । नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्यातः पृथगादतः॥ (८९।१३--६३) करते हैं. मैं उन सभीको नमन करता है।

तपके द्वारा निर्धृतकल्मण, संयत आहार करनेवाले अरण्यवासी मनियोंके द्वारा वनमें उत्पन्न पदार्थीके माध्यमसे किये गये ब्राइद्वारा जिन पितरोंको तुप्ति प्रदान को जाती है, उन्हें मैं नमस्कार करता हैं। नैष्ठिक धर्मचारी, जितेन्द्रिय एवं समाधिस्थ ब्राह्मणेंकि द्वारा जो विधिवत नित्य संतुष्त किये जाते हैं, उन पितरोंको में प्रणाम करता हैं। श्रत्रियगण इस लोक तथा स्वर्गलोकका फल प्रदान करनेवाले जिन पितृगणोंको ब्राद्धमें प्रदत्त कव्य-पदार्थींसे संतृष्ट करते हैं, उन सभी पितरोंको मेरा नमन है। स्वकर्मनिरत वैश्वगण पृथ्वीपर सदा जल, पृथ्य, भूप तथा अमादिके हारा जिनको अर्चना करते हैं, उन पितरोंको मैं नमस्कार करता है। शुद्रगण इस भूतलपर भक्तिपूर्वक श्राद्धमें जिन समस्त लोकको संतुत करते हैं, मैं ऐसे स्कालिन नामसे विख्यात पितरोंको प्रणाम करता है।

पाताललोकमें रहनेवाले असुरगण अपने दम्भ एवं अहंकारका परित्यागकर ब्राद्धमें जिन अमृतपान करनेवाले पितरोंको तृष्ति प्रदान करते हैं, मैं उन सभी पितृजनींको नमन करता है। रसावलमें अवस्थित नागगण अपनी पनोवाञ्चित कामनाओंको पूर्ण करनेकी अभिकारमओंसे प्रेरित होकर विधिपूर्वक ब्राइमें प्रदत्त भीग-पदार्थीके द्वारा जिन पितृगणोंकी पूजा करते हैं, मैं उन पितरोंको नमस्कार करता है। रसातलमें रिश्रत सर्पगण भी विभिन्नत मन्त्रोच्चारके साथ प्रदान किये गये भोग-पदार्थींसे समन्त्रित बादके हाग जिन पितृगणोंकी अर्चना करते हैं, मैं उन सभीको प्रणाम करता है। जो देवलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथियोलोकमें प्रत्यक्षरूपसे निवास करते हैं, देवताओं तथा दैल्पोंके भी जो पुज्य हैं, ऐसे उन पितृजनोंको में नमन करता हैं। वे मेरे द्वारा निवेदित वस्तुओंको प्राप्त करें।

जो परमार्थ अर्थात् इसरेका हित करनेके लिये पित्रयोनिमें रहकर भी अमृतंरूपसे विमानमें विद्यमान रहते हैं, श्रेष्ठ योगीजन कप्टोंसे मुक्ति प्रदान करनेवाले जिन पितृजनोंकी पूजा अपने निर्मल मनसे करते हैं. मैं उन पितरोंको नमस्कार करता है। जो स्वर्गमें मूर्तिमान होकर निवास करते हैं एवं स्वधाभीजी हैं, जो सभी अभिलियत जनोंको उनको इच्छित कामनाओंका फल प्रदान करनेमें समर्थ हैं और जो निष्काम-जनोंकी मुक्तिके कारण हैं, मैं उन पितरोंको प्रणाम करता है।

जो इच्छकजनोंके अभीष्टको इसी लोकमें सिद्ध कर देते हैं तथा देवत्व, इन्द्रत्व और उससे भी अधिक श्रेष्ठ पद

अववा हाथी, घोडे, रत्न और उत्तम प्रकारके भवन प्रदान करनेमें सक्षम हैं, वे समस्त पितुजन मेरी इस प्रार्थनासे संतुष्ट हों। जो चन्द्ररहिम, सुर्यमण्डल और स्वच्छ विमानमें सदा निवास करते हैं, वे पितृजन इस पूजामें हमारे द्वारा प्रदत्त अत्र, जल, गन्धादिके द्वारा संतृष्ट हों और शक्तिवान वनें।

अग्निमें प्रदान को गयी हविष्यकी आहतिसे जिन्हें संतृष्टि प्राप्त होती है, जो ब्राह्मणके शरीरमें प्रविष्ट होकर ब्राद्ध भोजन करते हैं, जो पिण्डदान देनेसे प्रसन्न होते हैं, वे सभी पितृराण हमारी इस पुजामें प्रदान किये गये अल-बलमे संतुष्ट हों। जो काले-काले सुन्दर तिलोंद्वारा प्रसन्न होते हैं, जो महर्षिजनोंके द्वारा श्राद्धमें उस कालमें प्राप्त ज्ञाक-पातसे आर्नान्दत हो उठते हैं, वे पितृजन प्रसन्न हों।

मेरे उन पुरुष पितरोंके जो अतिशय प्रिय समस्त कव्य पदार्थ हैं, उन्हें उन सभी पदार्थोंकी प्राप्ति, इस पूजामें मेरे द्वारा प्रदान किये गये पुष्प, गन्ध, जल तथा पक्यान-भोज्य पदार्थोंमें ही हो जाय। इस भूलोकमें प्रतिदिन जो पितृगण ब्रद्धावान् जनीके द्वारा सम्पन्न की गयी पुजाको स्वीकार करते हैं. जो प्रत्येक मासको अन्तिम तिथि तथा अष्टकाकालमें बद्धालुऑके पूज्य हैं और जिन पितृजनोंकी पूजा वर्षाना एवं अध्यदयकालमें होती है, वे सभी मेरे पितृगण इस बादमें संतृष्टि प्राप्त करें।

कृद-पुत्र तथा चन्द्रके समान स्वच्छ गौर वर्णकी कर्जनको धारण करनेवाले जो पितुजन ब्राह्मणोंके पूज्य हैं, देदोप्यमान सूर्यके समान वर्णवाले जिन पितरोंका पूजन धत्रियदन करते हैं, स्वर्णके समान कान्तिको धारण किये हुए जो पितृगण वैश्यवर्ण और नीली कान्तिसे सुशोधित जो पितृजन शुद्रवर्णके पुजनीय हैं, वे सभी इस पूजामें मेरे द्वारा निवेदित गन्ध, पुष्प, भूप, जल एवं भोज्यादि-पदार्थ तथा अग्निमें समर्पित आहुतिसे सदाके लिये तृप्ति प्राप्त करें। मैं उन सभी पितरोंको प्रणाम करता है।

ब्राद्धादिमें अपनी क्षुधाको पूर्णरूपसे संतुष्ट करनेके निमित्त जो पितृगण देवताओंके पूर्व ही ब्रद्धालु व्यक्तियोंके द्वारा अर्पित कट्य-पदार्थोंको ग्रहण कर लेते हैं और संतप्त होकर जो अपने स्वजनोंके लिये ऐश्वयोंकी सृष्टि करते हैं, मैं इस ब्राद्धमें उन सभी पितरोंको प्रणाम करता है। जो देवताओंके आदिपुरुष एवं देवराज इन्द्रसे भी पुजित हैं, ये गुक्षस, भूत, बेताल, असुर तथा उग्र योनिवाले (हिंसक बीव-बन्तओं)-का विनाश करके अपनी प्रजा (संतति)-की रक्षा करें। मैं उन पितरोंको प्रणाम करता है।

जो अग्निखात, बर्हियद्, आज्यप तथा सोमप नामक पितृगण हैं, वे सभी इस श्राद्धमें मेरे द्वारा संतृप्त होकर तृप्तिको प्राप्त करें। अग्निष्यात पितर मेरी पूर्व दिशाकी रक्षा करें। बर्हियद् नामक पितृगण सर्वदा मेरी दक्षिण दिशाकी अभिरक्षा करें। आज्यप पितृजन पश्चिम दिशा तथा सोमप पितृगण उत्तर दिशाकी रक्षा करें। ये समस्त पितृजन राक्षस, भूत, पिशाच एवं असुरगणोंके कारण उत्पन्न दोषोंसे नित्य सब प्रकारसे हमारी रक्षा करें।

विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धान्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत् और भूति नामक जो वितरोंके नौ यन हैं तथा कल्याण और कल्यद, कल्यकर्ता, कल्यतराक्षय, कल्यताहेतु एवं अनय नामक जो वितरोंके छः गण कहे गये हैं और वर, बरेण्य, वरद, तुष्टिद, पृष्टिद, विश्वणत एवं धाता नामसे विख्यात—ये सात गण तथा पितृगलोंके पापविनाशक जो महान, महात्मा, महित, महिमावान और महाबल नामसे प्रसिद्ध—ये पाँच गण हैं, उन गणोंके हो साथ सुखद, धनद, धर्मद और भूतिद नामक वितरोंका एक अन्य गण-चतुष्ट्य कहा गया है। इस प्रकार कुल मिलाकर उन वितरोंके एकतीस गण हो जाते हैं, जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् परिख्याप्त है। ये सभी वितृजन इस ब्राह्म मेरे हारा प्रदक्त कल्यादिसे संतुष्ट हों।'

इस प्रकार उस रुचिको स्तुतिसे पितर अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उसी समय सहसा एक दिव्य तेजोशति उत्का हुई,



जो आकाशमण्डलको अपने तेजसे चतुर्दिक् परिव्याप्त कर रही ची। सम्पूर्ण विश्वको अपने तेजसे भलीभौति आच्छादित करनेवाली उस तेजोराशिको देखकर रुचि पृथिवीपर घुटने टेककर पुन: इस स्तुतिका गान करने लगे—

कि बोले—' जो सर्वपृत्य, अमूर्त, देदीप्यमान तेजसे युक्त, ध्यानियोंके हृदयमें विराजमान रहनेवाले एवं दिव्य दृष्टिसे सम्पन्न पितृजन हैं, उन सभीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो इन्ह्रादि देवनण, दक्ष, मरोचि एवं सप्तर्षियों तथा अन्य ब्रेष्ठजनोंके नायक और सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, उन पितरोंको मैं नमन करता हूँ। जो मनु आदि तथा सूर्व, चन्द्र एवं समुद्रके भी अधिनायक हैं, उन समस्त पितृगणोंको मैं प्रणाम करता हूँ। जो नक्षत्र, ग्रह, जापु, अग्नि, आकार, स्वर्ग और पृथिवीके नेता हैं, उन पितरोंको मैं हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ।

में प्रजापति, कश्यप, सोम, बरुण और श्रेष्ठ योगोजनींको सर्वदः हाथ जोड्कर नमन करता हूँ। में सातों लोकमें अवस्थित सप्तगणोंको प्रणाम करता हूँ। स्वयम्भू और योगचश्चम् ब्रह्माको नमन करता हूँ। जो चन्दलोकको भूमियर अवस्थित रहनेवाले एवं योगमूर्ति-स्वरूप हैं, ऐसे पितरोंको नमस्कार करता हूँ तथा इस जगत्के पितृदेव सोमको भी मैं नमन करता हूँ।

अग्नि हो जिनका रूप है—ऐसे पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ। उसी प्रकार जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व अग्नि-सोममय है, ऐसे पितरोंको भी नमस्कार करता हूँ। जो तेजमें विद्यमान रहते हैं, जो चन्द्र-सूर्य और अग्निको प्रतिमूर्ति हैं, जो जगत्स्वरूप एवं ब्रह्मस्वरूप हैं—ऐसे उन योगपरायण समस्त पितरोंको संयतचित्तसे अवस्थित होकर मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। वे सभी स्वधाभुजी पितृजन प्रसन्न हों।

मार्कण्डेयजीने कहा — हे मुनिश्रेष्ठ फ्रीझुकि! रुचिके द्वारा इस प्रकार स्तुति किये गये तेज:स्वरूप वे सभी पितृगण दसों दिशाओंको प्रतिभासित करते हुए प्रत्यक्ष प्रकट हो गये।

रुचिने जिन पुष्प, गन्ध और अनुलेप पदार्थका उन्हें निवंदन किया था, उन्होंसे विभूषित उन पितरोंको उन्होंने अपने समक्ष उपस्थित देखा।

रुचिने पुनः भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम निवेदन किया और 'पृथक्-पृथक्-रूपसे आप सभीको नमन है, नमन है'-ऐसा आदरपूर्वक कहा-

माँगो'-ऐसा कहा। नतमस्तक रुचिने उन पितरोंसे कहा-

रुचिने कहा-हे पितृदेव! ब्रह्मने प्रजाओंको सृष्टि करनेके लिये मुझे आदेश दिया है। अतः मैं आपसे संतानोत्पादनमें समर्थ, श्रेष्ठ एवं दिव्य पत्नीकी कामना करता हैं।



पितरोंने कहा-हे मुनिसत्तम। इसी स्थानपर आपको अभी इसी क्षण मनीरमा पत्नीको प्राप्ति होगी, उस्तोसे आपको पुत्र होगा। हे रुचि! वह बुद्धिमान् मन्त्रनराधिप होकर आपके ही रौच्य इस नामसे तीनों लोकोंमें खपाति प्राप्त करेगा। उसके भी अतिशय बलवान, महापराक्रमजाली, रहता है, वहाँ ब्राइ करनेपर हमारी उपस्थिति विद्यमान महात्मा और पृथिवीका पालन करनेवाले बहुत-से पुत्र गहती है अर्थात् उस ब्राह्ममें हम लोग उपस्थित रहते हैं। होंगे। आप भी प्रजापित होकर चार प्रकारकी प्रजाओंको हे महाभाग। इसलिये श्राद्धमें भोजन करते हुए ब्राह्मणोंके सृष्टि करके अधिकार समाप्त होनेपर धर्मके तत्त्वज्ञानको सामने हम खोगोंको तृष्ति प्रदान करनेवाले इस स्तोत्रको प्राप्तकर सिद्धि प्राप्त करेंगे।

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस स्तुतिसे हम सभीको संतुष्ट प्रसन्न होकर उन पितृजनीने उन मुनिश्रेष्ठ रुचिसे 'वर करेगा, उससे प्रसन्न होकर हम लोग उसे उत्तम भोग, आत्मविषयक उत्तम ध्यान, आयु, आरोग्य तथा पुत्र-पौत्रादि प्रदान करेंगे। अतः कामनाओंकी पूर्ति चाहनेवाले श्रद्धालुओंको निरन्तर इस स्त्रोत्रसे पितरोंकी स्तुति करनी चाहिये। जो मनुष्य श्राद्धमें भीजन कर रहे श्रेष्ट ब्राह्मणोंके समक्ष भक्तिपूर्वक अत्यन प्रिय इस स्तोत्रका पाठ करेगा तो उस स्तवनको सुननेके प्रेमसे हम सबकी भी वहाँ उपस्थिति रहेगी। हम लोगोंकी उपस्थितिसे वह श्राद्ध अक्षय होगा, इसमें संदेह नहीं हैं।

> जिस ब्राह्ममें इस स्तोत्रका पाठ किया जाता है, उस आदमें हमारी तृष्ति बारह वर्षतकके लिये हो जाती है। हमन्त-ऋतुमें इस स्तोत्रका पाठ बारह वर्षपर्यना हमें संतुष्ति प्रदान करता है। शिशिर-ब्रह्ममें इस शुभ स्तोत्रका पाठ करनेसे चौबोस वर्षीतक हमारी तृष्ति रहती है। वसना एवं ग्रोप्य-ऋतुर्मे सम्यन होनेवाले लाड-कर्मके अवसरपर इस स्तोत्रका पाठ हम लोगोंके लिये सोलह वर्षीतक तृष्ति प्रदान करनेका साधन होता है। हे रुचे! वर्षाकालके दिनोंमें इस स्तोत्र-पाठके साथ किया गया श्रद्ध हम सभीके लिये अक्षय तृष्ठि प्रदान करनेवाला होता है। शरत्कालमें सम्पादित ब्राद्धके अवसरपर पठित यह स्तोत्र हम लोगोंको पंत्रहवयीय तुप्ति प्रदान करता है।

जिस घरमें लिखकर यह सम्पूर्ण स्तोत्र सदैव रखा सुनाना चाहियेर। (अध्याय ८९)

१-स्तोत्रेपानेन च नर्रे योऽस्सांस्तोत्राति अस्तितः । तस्य तुष्टा वर्ष भोगानात्पत्रं ध्यानमुक्तमम् ॥ आयुरारोग्यमचं च पुत्रपौद्धदिकं तथा । बाञ्छद्धिः सततं स्तव्याः स्तीवेणानेन वै यतः ॥

श्रद्धेषु य रूपं धक्त्य त्वामध्येतिकरं स्टबप् । पटिष्यति द्वित्राप्याणां भुजतो पुरतः स्थितः॥

स्वोत्रज्ञवणसंत्रीत्वा संविधाने परे कृते । अस्माधिरक्षणं ऋडं तद्धविष्यरपसंशयम्॥(८९।७०-७३)

२-परिमन् गेडे च लिखितमेततिहति नित्पदा । संनिधाने कृते आद्धे तत्रास्माकं भविष्यति॥ तस्मादेतत्वया बाद्धे विग्रामां भुवता पूर: । बावणीयं महाधाग आस्माकं पृष्टिकारकम् ॥ (८९ । ८२-८३)

प्रस्तोचा नामक अप्सराकी दिव्य कन्या मानिनीसे ग्रजापति रुचिका विवाह

समय उस नदीके मध्यसे ही रुचिके समीप प्रस्तोचा मधुर वाणीमें महात्मा रुचिसे कहा-हे तपस्विश्रेष्ठ! मेरी नामको मनको प्रिय लगनेवाली कृताङ्गी, सुन्दर ब्रेष्ठ प्रसन्नतासे वरुणके पुत्र महात्मा पुष्करद्वारा मेरी एक



मार्कण्डेय मुनिने कहा-पितरॉकी कृपासे उसी एक अप्सरा प्रकट हुई। उस श्रेष्ठ अप्सराने प्रिय एवं अतिहाय सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई है। मैं उस सुन्दर स्वरूपवाली मानिनी नामवाली कन्याको भार्याके रूपमें आपको प्रदान करती हैं, आप उसे वरण करें, इस कन्वासे अतिशय बुद्धिमान् मनु नामक आपका पुत्र उत्पन्न होगा।

> इसपर उस रुचिने 'ऐसा ही होगा।'-इस प्रकार कहा। ऐसा कहनेपर उस नदीके मध्य-जलसे मानिनी नामको शरीरधारिणी एक दिव्य कन्या निकली।

> उस नदीके तटपर मुनिश्रेष्ठ रुचिने अनेक महामुनियोंको बुलाकर विधिपूर्वक कन्याके साथ पाणिग्रहण किया । उस कन्यासे अविशय पराक्रमी और महाधुति तथा पिताके नामसे रोक्यके रूपमें विख्यात एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो रौच्य मन्त्रनतस्का अधिपति हुआ। (अध्याय ५०)

भगवान् विष्णुका अमूर्तं ध्यान-स्वरूप

सृतजीने कहा-हे शीनक! स्वायम्भव यनु आदि मनिजन बत. यम, नियम, पूजा, ध्यान, स्तुति तथा जपमें निरत रहकर भगवान् हरिका ध्यान करते हैं। ये हरि देहेन्द्रिय, मन, बृद्धि, प्राण और अहंकारसे रहित है। वे आकाश, तेज, जल, वाय तथा पृथिबी नामक सभी पञ्चभूतोंसे असम्बद्ध है तथा उनके धर्मसे भी रहित है। वे सभी प्राणियोंके स्वामी, सबको आबद्धकर नियमन करनेवाले नियन्ता एवं इस जगत्के प्रभु हैं। वे चैतन्यरूप, सबके स्वामी और निराकार हैं। वे सभी आसक्तियोंसे रहित, सभी देवोंसे पुजित तथा महेश्वर हैं। वे तेज:स्वरूप तथा तीनों गुजोंसे भिन्न हैं। वे सभी रूपोंसे रहित एवं कर्तृत्वादिसे जुन्य हैं।

वे वासनाविहीन, शुद्ध, सर्वदोपरहित, पिपासावर्षित तथा शोक-मोहादिसे दूर रहते हैं। वे हरि जरा-मरणसे रहित कुटस्थ तथा मोहबर्जित हैं। वे सृष्टि एवं प्रलयसे रहित एवं सत्यस्वरूप हैं, निष्कल परमेश्वर हैं। वे जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति आदि अवस्थाओंसे रहित तथा नामरहित हैं। वे जाग्रत् आदि अवस्थाओंके अध्यक्ष, ज्ञान्तस्वरूप देवाधिदेव हैं। वे जाग्रत आदि अवस्थाओं में विद्यमान रहनेवाले हैं तथा नित्य है और कार्य-कारणधावसे रहित है।

वे सभीके द्वारा देखने योग्य, मृतंस्वरूप, सुश्म, सुक्तार एवं सुक्तरम हैं। वे ज्ञानदृष्टिवाले, कर्णेन्द्रियके लियं सुनने योग्य विज्ञान और परमानन्दरबरूप हैं। वे संसारसे रहित तथा तैजससे भी वर्जित हैं। वे प्रकृष्ट ज्ञानसे अप्राप्य, तुरीयावस्थामें विद्यमान रहनेवाले परमाक्षरस्वरूप ब्रह्म है। वे सभीके रक्षक एवं सभीके हत्ता है। वे सभी प्राणियोंके आत्यस्वरूप हैं, बुद्धि और धर्मसे रहित हैं। वे हरि निराधार है। साक्षात् कल्याणस्वरूप शिव है। वे विकारहीन, वेदान्तियोंके द्वारा जानने योग्य, वेदरूप, इन्द्रियातीत, सर्वकल्याणप्रद, परमशुभ, भृतेश्वर, शब्द-रूप-रस-स्पर्श और गन्ध-इन पाँच तन्मात्राओंसे रहित अनादि ब्रह्म है। वे योगियोंके द्वारा सम्पृटित ब्रह्मरन्ध्रमें अवस्थित 'मैं ही बहा हैं' ऐसे परिवानमात्र हैं।

हे महादेव! इस प्रकार ज्ञान प्राप्तकर जितेन्द्रिय मनुष्यको उन हरिका ध्यान करना चाहिये। जो मनुष्य इस प्रकारसे उन हरिका ध्यान करता है, वह निश्चित ही ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। (अध्याय ९१)

भगवान् विष्णुका मूर्ते ध्यान-स्वरूप

विष्णु करोड़ों सूर्यके समान जयशील, अद्वितीय प्रभासम्पन्न, हुए मकग्रकृत कर्णकुण्डलोंसे सुशोधित हैं। वे दु:खविनाशक, कुन्दपुष्प एवं गोदुग्ध-सदृश धवल-वर्ष हैं। मोक्ष चाहनेवाले पृजनीय, मङ्गलमय, दुर्ध्योके संहारक, सर्वात्मा, सर्वस्यरूप, मुनियोंको ऐसे ब्रीहरिका ध्यान करना चाहिये। वे अत्यना सुन्दर एवं विशाल शंख-समन्दित हैं। हजारों सूर्यके समान प्रचण्ड ज्वालाओंकी मालासे आवेष्टित, उग्ररूप, चक्रसे युक्त, शान्तस्वभाव और सुन्दर मुखमण्डलवाले वे विष्णु अपने हाधमें गदा धारण करते हैं।

वे रहोंसे देदीप्यमान बहुमूल्य किरोटसे युक्त सर्वत्रगामी देव कमलको धारण करते हैं। वे वनमालाको धारण करनेवाले तथा शुभ्र हैं, समान स्कन्धींवाले तथा स्वर्णाभूषणको धारण करते हैं, वे शुद्ध वस्त्र धारण करनेवाले, विशुद्ध देहवाले और सुन्दर कान्तिवाले हैं तथा कमलपर विराजमान रहते हैं।

वे स्वर्णमय जारीरवाले विष्णु सुन्दर हार, जुभ अंगद (बाजूबंद), केयुर और वनमालासे अलंकत है। वे बीवला कौरतुभगणि धारण करनेवाले 🖁 एवं लक्ष्मीसे बन्दनीय और नेत्रद्वयसे शोधायमान हैं। वे अणिमादिक गुणोंसे समन्यित विष्णु जगत्के सृष्टिकतां और संहारक है।

वे मुनि, देव तथा दानव सभीके लिये ध्यानगम्य, अत्यन्त सुन्दर हैं। ये ब्रह्मादिसे लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त विष्णु-ध्यान नामक अध्यायका पाठ करता है, उसको भी प्राणिवर्गके हृदयमें विराजमान है। वे सनातन, अध्यय, परमगतिकी प्राप्ति होती है। (अध्याय ९२)

भगवान् हरिका मूर्त ध्यानरूप इस प्रकार है—वे सभीके ऊपर कृपालु, प्रभु-नारायण, देवाधिदेव तथा चमकते सर्वत्रगामी और ग्रहदोधोंके निवारक हैं।

> वे देदीप्यमान नखींसे समन्वित तथा सुन्दर-सुन्दर अँगुलिवाँसे सम्पन्न, जगत्के शरणस्थल, सभीको सुख देनेवाले सीम्यस्वरूप महेश्वर है। वे समस्त अलंकारॉसे अलंकृत, मुन्दर चन्दनसे संलिप्त, सर्वदेवसमन्वित तथा सभी देवताओंका प्रिय करनेवाले हैं।

> ने सम्पूर्ण लोकोंके हितेथी, सर्वेश्वर एवं सभीकी भावनाओंमें विराजमान रहते हैं। ये सूर्यमण्डलसे अधिष्ठित देव, अग्नि और जलमें भी निवास करते हैं। वे वासुदेव जगत्के भाता और मुमुबुओंके भ्यान करने योग्य हैं। हे हर! इस लोकमें प्राणियोंके द्वारा 'मैं ही वासुदेव हूँ', इस प्रकार चिन्तनीय वे हरि आत्मस्वरूप हैं।

> जो भनुष्य इस प्रकारके भगवान् विष्णुका ध्यान करते हैं, वे परमगति प्राप्त करते हैं। प्राचीन कालमें महर्षि याज्ञवरक्यने ऐसे स्वरूपवाले उन देवेश्वरका ध्यान किया था, जिसके फलस्वरूप धर्मोपदेशकके कर्तृत्वको प्राप्त करके उन्होंने परमपद प्राप्त किया था। जो मनुष्य इस

वर्णधर्म-निरूपण

महर्षि याञ्चवल्क्यजीने जिस धर्मका प्रतिपादन किया था, वर्णन करता हूँ, आप सब सुनें। आप मुझको उसे सुनानेकी कृपा करें।

धर्मसम्बन्धित विषयका वर्णन करने लगे।

याज्ञवल्क्यजीने कहा-जिस देशमें कृष्णसार नामक

श्रीशिवजीने कहा—हे हरे! हे केशिहन्ता! हे माधव! मुग विचरण करते हैं, मैं उस देशके धर्मादिक विषयोंका

पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, श्रीहरिने कहा--मिथिलापुरीमें विराजमान महर्षि व्याकरण, छन्द एवं ज्योतिष्के सहित चार वेद-ये धर्म याज्ञवल्क्यजीके पास पहुँचकर ऋष्यिन उनका अभिवादन तथा चौदह विद्याओंके स्थान हैं। मनु, विष्णु, यम, अङ्गिरा, किया और उनसे सभी वर्णोंके धर्मादिक कर्तव्योंको जाननेकी विसष्ट, दक्ष, संवर्त, जातातप, पराजर, आपस्तम्ब, उसना, अपनी इच्छा प्रकट की। तत्पश्चात् वे जितेन्द्रिय महामुनि व्यास, काल्यायन, बृहस्पति, गौतम, शंख-लिखित, हारीत सर्वप्रथम भगवान् विष्णुका ध्यान करके उन सभी ऋषियोंसे और अत्रिके साथ मैं स्वयं—हम सब भगवान् विष्णुका ध्यान करके धर्मीपदेशक हुए।

धर्मका अर्थ है-पुण्य। पुण्यको उत्पत्तिके हेतु है-

हास्त्रविहित देशमें, शास्त्रविहित कालमें, शास्त्रविहित उत्का संदेहका निराकरण कर सकता है। उपायसे श्रद्धापूर्वक योग्य पात्र (विद्या एवं तपसे समुद्ध ब्राह्मण)-को दिया गया दान तथा इसके अतिरिक्त अन्य सभी शास्त्रोक्त कर्म। इन्हें अलग-अलग तथा समृहरूपमें धर्म (पुण्य)-का उत्पादक समझना चाहिये। धर्मक उत्पादक इन हेतुओंका मुख्य फल (परम धर्म) योग (चितवृतिनिरोध)-के द्वारा आत्मदर्शन (आत्माका साक्षात्कार) ही है। इस आत्पदर्शनरूप परम धर्मके लिये देश आदिका कोई नियम नहीं है। चित्तवृत्तिनिरोध (योग) होनेसे यह होता ही है। चित्रवृत्तिनिरोधके लिये विहित उपायोंके अनुष्टानको सम्पन्नतामें देश आदिका नियम आवश्यक है। अभी धर्मके उत्पादक जिन हेतुओंका निर्देश किया गया है, उनके बारेमें संदेह होनेपर निर्णय प्राप्त करनेके लिये परिषद (धर्मसभा)-का सहयोग लेना चाहिये। यह परिषद् बेटी एवं धर्मशास्त्रीक हाता चार ब्राह्मजॉकी अथवा तीन ब्राह्मजॉकी होती है। इस परिषद्का निर्णय धर्मके सम्बन्धमें मान्य होता है। ब्रह्मवेता-नेद एवं धर्मशास्त्रका बिज एक ब्राह्मण भी धर्मके विषयमें

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र चार वर्ण हैं। इनमें प्रारम्भके तीन वर्ण द्विज कहलाते हैं। गर्भाधानसे लेकर श्मतानपर्यन्त ऐसे द्विजॉकी समस्त क्रियाएँ मन्त्रींके द्वारा

गर्भाधान-संस्कार ऋतुकालमें होता है। गर्भस्यन्दन होनेसे पूर्व हो पुंसबन-संस्कार किया जाता है। गर्भाधानके छठे अथवा उड्डवें मासमें सीमनोजयन-संस्कार होता है। संतानोत्पत्तिके बाद जातकर्म और ग्वारहवें दिन नामकरण-संस्कार करनेका विधान है। चतुर्व मासमें निष्क्रमण तथा छठे मासमें अन्नप्राशन-संस्कार करना चाहिये। उसके बाद कुल-परम्पराके अनुसार चुडाकरण नामक संस्कार करनेका विधान है।

इस प्रकार संवानके लिये विहित उक्त संस्कारोंको करनेसे बोज (शुक्र) तथा गर्भ (शोणित)-के कारण उत्पन्न हुए सभी पाप जाना हो जाते हैं। स्वियोंकी ये सभी क्रियाएँ (संस्कार) अमन्त्रक होती हैं और विवाह-संस्कार समन्त्रक होता है। (अध्याय १३)

वर्णधर्म-निरूपण

याज्ञवल्कयजीने कहा-गर्भधारण अथवा जन्म-प्रहणके आठबें वर्षमें ब्राह्मण, ग्यारहवें वर्षमें शक्रिय तथा बारहवें वर्षमें वैश्यका उपनयन-संस्कार गुरु करे अथवा कुल-परम्परके अनुसार करे। गुरु इस उपनीत शिष्यको महाध्याइतियोक सहित वेद पढ़ाये और श्रीचाचारकी शिक्षा प्रदान करे।

द्विजोंको दिन और संध्याकालमें उत्तराभिमुख तथा रात्रिके समय दक्षिणाभिमुख होकर मल-मूत्रका परित्याग करना चाहिये। तदनन्तर मिट्टीसे एवं जलसे^र मल-मुक्ते गन्ध एवं लेपका निवारण जबतक न हो, तबतक इन्द्रियोंका परिमार्जन करे।

तत्पश्चात् शुद्ध स्थानमें जाकर दोनों पौत्रोंको भलीभौति धोकर दोनों जानुओंके मध्य अपने हाथोंको अवस्थित करके उत्तराधिमुख या पूर्वाधिमुख बैठे और दाहिने हाथमें स्थित बाह्यतीर्थ (अर्थात् अंगुष्टका मूल स्थान)-से आचमन करे। कनिष्ठा, तर्जनी एवं अंगुष्ठ अंगुलिके मूल स्थान तथा हायके अग्रधागर्मे क्रमशः प्रजापतितीर्थ, पितृतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ और देवतीर्थका अधिष्ठान होता है।

कृप एवं तड़ागादिके शुद्ध जलसे तीन बार आचमन करके अंगृष्ठमूलसे दो बार ओठोंका मार्जन करना चाहिये। द्विजातियोंको चाहिये कि वे फेन और बुद्बुदोंसे रहित प्रकृतिहारा प्रदत्त शुद्ध-स्वाभाविक जलसे अपनी इन्द्रियोंका स्पर्श यथाविधि करें। हृदय, कण्ठ एवं तालुतक पहुँचनेवाले जलसे ही क्रमरा: ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य आचमन करके रुद्ध होते हैं। स्त्री एवं शुद्रकी तालुतक पहुँचनेवाले शुद्ध

१-स्त्रियोंका वह काल-विशेष ऋतुकाल है, जो गर्भ धारणके योग्य अवस्थाविशेषसे युक्त है। यह विशेष काल रजोदर्शनके दिनसे सोलह अहोराजका होता है। इन सोलह अहोराजोंने प्रथम चार राष्ट्रियों नर्भाधानके लिये वार्वित हैं; अतः इन चार राष्ट्रियोंके बादको बारह राष्ट्रियों ही

२-कृप आदिसे सहर निकाले गर्व जलके द्वारा गृद्धिका विधान है। जलके मध्य शांच आदि किया निषिद्ध है।

जलसे एक बार आयमन करनेसे ही शुद्धि हो जाती है। धिक्षां देहि', 'धिक्षां धवति देहि'और 'धिक्षां देहि धवति'— जिनका यज्ञोपवीत नहीं हुआ है, उनके लिये भी इसी प्रकार इस प्रकार वाक्यप्रयोग यथाक्रम ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य आचमनकी व्यवस्था है।

प्रात:स्त्रान, जलदैवत 'ॐ आपी हि प्राo'आदि मन्त्रोंसे भिक्षा दें। 'भवति' यह माताओंके लिये सम्बोधन है। मार्जन, प्राणायाम, सूर्योपस्थान एवं गायत्रीमन्त्रका जप प्रतिदिन अपने अधिकारके अनुसार यथाविधि करना चाहिये।

'ॐ आपो ज्योती०' आदि मन्त्र हो गायत्रीपन्त्रका शिरोभाग हैं। इस शिरोभागसे युक्त प्रतिमहाव्याइति एक-गायत्रीमन्त्रका मानस-जप करते हुए मुख एवं नासिकामें संचरणशील वायुका नियमन करना ही प्राणायाम है।

बैठकर गायत्रीमन्त्रका जप करे। इसी प्रकार प्रात:कालको संध्या करके पूर्वमुख होकर गायजीमन्त्रका जप करते हुए सुर्यदर्शनके समयतक स्थिर रहे । उन दोनों संध्याओं में अपने गृह्यसूत्रके अनुसार अग्निहोत्र करे।

तदनन्तर 'मैं अमुक हूँ' इस प्रकार कहते हुए वृद्धवनी (गुरु आदि बड़े लोगों)-को प्रणाप करे। इसके बाद संयमी ब्रह्मवारी स्वाध्यायके लिये एकाग्रवित होकर गुरुको सेवामें उनके अधीन सदा रहे। तत्पक्षात् गुरुके द्वारा बुलानेपर उनके पास जाकर अध्ययन करे (गुरुको स्वयं अध्यापनके लिये प्रेरित न करे) और भिक्षामें जो कुछ प्राप्त हो, उसे गुरुके चरणोंमें समर्पित करे। मन, वाणी और शरीरके द्वारा गुरुके हितकारी कार्योंमें सदा संलग्न रहे।

ब्रह्मचारीको दण्ड, मृगचर्म, पत्रोपवीत और मृजमेखलाका धारण यथाशीप्र करना चाहिये तथा अपनी जीविकाके लिये अनिन्दित ब्रेष्ट ब्राह्मणींके यरसे भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। भिक्षा ग्रहण करते समय ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य-वर्णके ब्रह्मचारीको क्रमशः आदिमें, मध्यमें तथा अन्तमें 'भवति' शब्दका प्रयोग करना चाहिये। इसके अनुसार 'भवति ब्रह्मचारीको करना विहित है। इस वाक्यका अर्थ है— आप

अग्रिकार्य (अग्रिहोत्र) करके गुरुकी आज्ञासे विनयपूर्वक आपोऽशान -क्रिया करके सम्मानके सहित उस भिक्षासे प्राप्त भोज्यात्रको बिना निन्दा किये ही मौन होकर ग्रहण करना चाहिये। ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए आपत्तिरहित एक बार प्रणव जोड़कर तीनों महाव्याइतियोंके साथ कालमें, रोग आदिके अभावमें अनेकका अन्न ग्रहण करे (एक घरका अन्न न ग्रहण करे)। अपने व्रतका संयमपूर्वक पालन करता हुआ ब्राह्मण ब्रह्मचारी श्राद्धमें आदरपूर्वक प्राणायाम करनेके पक्षात् तीन बार अल देवताके मन्त्रसे आहृत होनेपर इच्छानुसार भीजन कर सकता है, किंतु उसे प्रोक्षणकर प्रतिदिन सार्यकाल नक्षत्रदर्शनतक पश्चिममुख बाइकाल वा अन्य अवसरोमें मधु, मद्य, मांस अथवा उव्हिष्ट अस भोजनके रूपमें ग्रहण नहीं करना चाहिये।

जो विधि-विहित क्रियाओंको सम्पन्न कराके ब्रह्मचारीको वंदकी तिशा प्रदान करता है, वही 'गुरु' है। जो केवल यजीपवीत-संस्कार कराके ब्रह्मचारीको बेदकी शिक्षा देता है, वह 'अध्यार्थ' कहा गया है। जो बेदके एक देशका अध्ययन कराता है, वह 'उपाध्याय' है। जो वरण लेकर यज्ञमानके यज्ञको सम्पन्न करता है, उसे 'ऋत्यिक्' कहा जाता है। यक्षक्रम ये सभी— गुरु, आचार्य, उपाध्याय और ऋत्विक् ब्रह्मचारोंके लिये मान्य हैं, किंतु इन सभीसे माता बेह है।

प्रत्येक वेटके अध्ययनके लिये बारह-बारह वर्षतक ब्रह्मचर्यवतका पालन करना चाहिये। अशकावस्थामें प्रत्येक बेटके अध्ययनके लिये पाँच-पाँच वर्षतक भी सहाचर्यव्रतका पालन किया जा सकता है। कुछ लोगोंका यह भी मत है कि वेदाध्ययन पूर्ण होनेतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन होना चाहिये। केशान्त -संस्कार गर्भसे सोलहर्वे वर्षमें ब्राह्मणका, गर्भसे बाईसवें वर्षमें क्षत्रियका तथा गर्भसे चौबीसवें वर्षमें वैश्यका होना चाहिये।

१-भोजनके पूर्व तथा अन्तमें एक बार जलसे आचमन करना 'आयोऽशान-क्रिया' है। इसमें 'अमृतोपस्तरणमसि' इस वाक्यकर प्रयोग विहित है।

२-मन्त्र एवं ग्राह्मणकपमें वेदके दो भाग है। इनमेंसे केवल एक भागका अध्यापन अध्या वेदके अङ्गमात्रका अध्यापन वेदके एक देशका

३-केशान्त-संस्कारसे ही शमतु (दावी) धनवानेका आरम्भ होता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यवर्णके लिये क्रमण: सोलह, वाईस और चौबीस वर्षतक उपनयनकाल रहता है। इस कालतक उपनयन न होनेपर ये सभी पतित हो जाते हैं, सर्वधर्मच्युत हो जाते हैं। उनका किसी भी धर्मकार्यमें अधिकार नहीं रहता। वात्यस्तोम नामके ऋतुका अनुष्ठान करके ही ये यज्ञोपबीत-संस्कारके लिये योग्य हाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य सबसे पहले माताके उदरसे उत्पन्न होते हैं, उसके बाद पुन: मौजीबन्धन अर्थात् वज्ञोपवीत-संस्कारसे उनका द्वितीय जन्म होता है। अतः ये द्विजाति कहलाते हैं।

श्रीत-स्मार्त यज्ञ, तपस्या (चान्द्रायण आदि व्रत) और भूभकमी (उपनयन आदि संस्कारों)-का बोधक एकमात्र वेद है। अत: द्विजातियोंके लिये वेद हो परम कल्याणका साधन है। इससे वेदमूलक स्मृतियोंका भी उपयोग स्पष्ट है।

जो द्विज प्रतिदिन ऋग्येदका अध्ययन काता है, वह देवताओंको मधु एवं दुग्धसे तथा पितरोंको मधु एवं पृतसे प्रतिदिन तुस करता है। जो द्विज प्रतिदिन यजुर्वेद, सामबेद

अथवा अधर्ववेदका अध्ययन करता है, वह पुत एवं अमृतसे पिवरों तथा देवताओंको प्रतिदिन तुस करता है। ऐसे ही जो द्विज प्रतिदिन बाकोबाक्य', पुराण, नाराशंसी', गाधिका, इतिहास तथा विद्याका अध्ययन करता है, वह पितरों एवं देवताओंको मांस (फल), दूध और ओदन (भात)-से प्रतिदिन तुस करता है। संतुस ये देवता और पितृजन भी इस स्वाध्यायशील द्विजको समस्त अभीष्ट शुभ फलोंसे संतुष्ट करते हैं। द्विज जिस-जिस यज्ञके प्रतिपादक वेद-भागका अध्ययन करता है, उस-उस यज्ञके फलको प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त भूमिदान, तपस्या और स्वाध्यायके फलका भी भागी होता है।

नैष्टिक ब्रह्मचारीको अपने आचार्यके सानिध्यमें रहना चाहिये। आचार्यके अभावमें आचार्यपुत्र और उसके अभावमें आबार्य-पत्नी तथा उसके भी अभावमें वैद्यानर अधिके आश्रयमें (अपनेद्वारा उपास्य अग्निकी शरणमें) रहना चाहिये। इस प्रकार अपने देहको शीण करता हुआ जितेन्द्रिय द्वित ब्रह्मचारी ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। उसका पुन: जन्म नहीं होता। (अध्याय १४)

गृहस्थधर्म-निरूपण

अब गृहस्थात्रमके धर्मीका वर्णन सुने।

(विद्याध्ययनको समाप्तिक पश्चात्) गुरुको दक्षिणा प्रदान करके उन्होंकी अनुजासे स्नानकर शिष्यको ब्रह्मचर्यक्रतको समाप्ति करनी चाहिये। तदननार वह सुलक्षणा, अत्यन्त सुन्दर मनोरमा, असपिण्डा, अवस्थामें छोटी, अरोगा, धातुमती, भिन्न प्रवर एवं गोत्रवाली कन्यासे विवाह करे।

सभी असपिण्डा कन्याको विवाहयोग्य बताया गया है। इससे यह स्पष्ट हो रहा है कि सपिण्डा कन्यासे विकाह नहीं करना चाहिये। महर्षि प्राज्ञवल्क्यने यहाँ सपिण्डाके बारेमें यह बताया है-मातासे लेकर उनके पिता, पितामह आदिकी गणनामें पाँचवीं परम्परातक तथा पितासे लेकर उनके पिता, पितामह आदिकी गणनामें सातवाँ परम्परातक एक इस क्रमसे वर्णोमें विवाह कर सकते हैं। शुद्र-वर्णको

याञ्चलक्यजीने कहा —हे यतवत मुनियो। आप सभी साँपण्ड्य समझना चाहिये। इसके मध्यमें आनेवाली कत्या स्रपिण्ड्य तथा इसके मध्यमें न आनंवाली कन्या अस्रपिण्डा होगो। इसके अनुसार विवाहके लिये असपिण्डा कन्याका चयन होना चाहिये। ऐसे ही उसी कन्यामे विवाह उचित है, जिसका मातुकुल तथा पितृकुलमें पाँच-पाँच परम्परातक सदाचार, अध्ययन एवं पुत्र-पौत्रादिकी समृद्धिकी दृष्टिसे विख्यात हो। ऐसे ही कन्याके लिये समानवर्णमें उत्पन्न श्रोत्रिय एवं विद्वान् पुरुष श्रेष्ठ होता है। अन्य विद्वानीने जो यह कहा है कि द्विजातियोंके लिये शुद्रकुलमें उत्पन्न हुई कन्या भी ग्रहण करने योग्य होती है, यह मेरा अभिमत नहीं है, क्योंकि उस कन्यामें उससे विवाह करनेवाला उसका पति ही स्वयं उत्पन्न होता है । तीनों वर्ण तीन, दो,

१-वाकोवाक्य-प्रश्नोत्तरस्य वेद-वाक्य। २-नागरीयो-स्ट्रदेवत्य यन्त्र। ३-गाधिका-यत्र-सम्बन्धी इन्द्र आदिका गाधाएँ। ४-इतिहास- महाभारत आदि। ५-विद्या- बारुपी आदि विभिन्न विद्यार्थे। ६-'आरमा वै जायते पुत्र:' के अनुसार पिता ही पुत्रके रूपमें जन्म लेता है।

अपने ही वर्णसे कन्या प्राप्त करनी चाहिये।

अपने घरपर वरको बुलाकर उसे यथात्रक्ति अलंकृत
अपनी कन्या प्रदान करना 'ब्राह्मविवाह' है। इस विधिसे
विवाहित स्त्री-पुरुषसे उत्पन्न होनेवाली संतान दोनों कुलोंके
इक्कीस पीढ़ियोंको पवित्र करती है। यज्ञदीक्षित व्हल्किक्
ब्राह्मणको अपनी कन्या देना 'दैवविवाह' है तथा वरसे एक
ओड़ा गौ' (स्त्री गौ एवं पुरुष गौ) लेकर उसको कन्या प्रदान
करना 'आर्थविवाह' कहा जाता है। इस प्रथम (ब्राह्मविवाह)
विधिसे विवाहित स्त्री-पुरुषसे उत्पन्न पुत्र अपनी प्रथमको
सात तथा बादकी सात—इस तरह चौदह पीढ़ियोंको पवित्र
करता है। आर्थविधिक विवाहसे उत्पन्न पुत्र तीन पूर्व तथा
तीन बादकी—इस तरह छ: पीढ़ियोंको पवित्र करता है।

तोन बादकी— इस तरह छ: पीढ़ियाँको पवित्र करता है।

'तुम इस कन्याके साथ धर्मका आवरण करो'— यह
कहकर विवाहकी इच्छा रखनेवाले वरको पिताके द्वारा जब
कन्या प्रदान को जाती है, तब ऐसे विवाहको 'काय
(प्राजापल्य)-विवाह' कहते हैं। इस विवाह-विधिसे उत्पत्र
पुत्र अपनेसहित पूर्वकी छ: तथा बादको छ: पीढ़ियाँ— इस
तरह कुल तरह पीढ़ियाँको पवित्र करता है। कन्याके पिता
या बन्धु-बान्धव अथवा कन्याको ही ययात्रीक धन देकर
यदि कोई वर उससे विवाह करता है तो इस विवाहको
'असुरविवाह' और वर एवं कन्याके बीच पहले ही
पारस्परिक सहमति हो जानेके बाद जो विवाह होता है,
उसको 'गान्धवंविवाह' कहते हैं। कन्याको इच्छा नहीं है,
तब भी बलात् युद्ध आदिके द्वारा अपहत उस कन्याके साथ
विवाह करना 'राक्षसविवाह' है। स्वाप (लयन) आदि
अवस्थामें अपहरणकर उसके साथ जो विवाह किया जाता
है, उसको 'पैशाचविवाह' कहते हैं।

इन उपर्युक्त आठ विवाहोंमें प्रथम चार प्रकारके विवाह अर्थात् ब्राह्म, देव, आर्थ और प्राजापत्यविवाह ब्राह्मकवर्षके लिये उपयुक्त हैं। गान्धर्वविवाह तथा शक्षमविवाह श्राप्तिय-वर्णके लिये उचित है। असुरविवाह वैश्ववर्ण और अन्तिम गर्हित पैशाच नामक विवाह सूदवर्णके लिये (उचित) माना गया है।

सयान वर्णवाले वर-कन्याके विवाहमें कन्याओं के द्वारा गृह्यसूत्रकी विधिके अनुसार वरका पाणिग्रहण अर्थात् हाथ पकड्ना वाहिये। श्रित्रयकन्या ब्राह्मणवरसे विवाह करते समय ब्राह्मणवरके दाहिने हाथमें विद्यमान शर (ब्राण)-के एकदेशको ग्रहण करे। वैश्यकन्या ब्राह्मण अथवा क्षप्रियवरसे विवाह करते समय वरके हाथमें विद्यमान चाबुकके एकदेशको ग्रहण करे। ऐसे ही शूदकन्या ब्राह्मण, क्षप्रिय अथवा वैश्यवरसे विवाह करते समय वरके उत्तरीय वस्त्र (ऊपन ओड़े हुए चादर)-के किनारेको ग्रहण करे⁸।

पिता, पितामह, भाता, सकुल्य³ (बन्धु-बान्धव) अथवा माता कन्यादान करनेके अधिकारी हैं। पूर्वके अभावमें उत्तरोत्तर कन्यादानके अधिकारी हैं, यदि उत्माद आदि दोषसे ग्रस्त नहीं हैं। यदि कन्यादानका अधिकारी समयपर कन्यादान न करे तो कन्याके ऋतुमती हो जानेपर कन्यादानके अधिकारीको कन्याके प्रति ऋतुकालमें एक-एक भूणहत्याका पाप लगता है। कन्यादानके दाताके अभावमें कन्याको स्वयं उपयुक्त वाका वरण कर लेना चाहिये।

कन्या एक बार दी जाती है, इसलिये कन्या एक बार देकर पुन: उसका अपहरण करनेवाला चौरकर्मके समान रण्डका भागी होता है। निर्दृष्ट अर्थात् सौम्य सुशीला पत्नीका परित्याग करनेपर पति दण्डनीय है, किंतु अत्यन्त दुष्ट (महापाठक आदिसे दुष्ट) पत्नीका उपायान्तरके अभावमें परित्याग किया जा सकता है।

यदि कन्याका किसी वरके साथ विवाह करनेके लिये वाग्दानमात्र किया गया हो, अनन्तर विवाहके पूर्व ही वरका मरण हो गया तो कलियुगसे अन्य युगोंमें ऐसी कन्याको पुत्र प्राप्त करनेका उपाय यह है— ऐसी कन्या पुत्र चाहती है तो उसका देवर अथवा कोई सपिण्ड या कोई सगोत्र बड़ोंकी आजा प्राप्त होनेपर अपने सभी अङ्गोंमें घृतलेप कर

१-कञ्चका पिता वरसे गीका जोड़ा फूलके रूपमें नहीं लेता। आवश्यकतावत धर्मकार्य (याग आदि) सम्पन्न करनेके लिये होता है। इसीलिये मनुस्मृति (३) २९)-के अनुस्वर जितनसे धर्मकार्य हो सकें, उतना हो (एक हो नी या गीका खोड़ा) कन्या-पिताको वरसे लेना चाहिये।

२-दूसरे वर्णसे विवाह करनेकी यह व्यवस्था कलियुगके लिये नहीं है।

३-मकुरुय-आतवीं पीड़ीसे दसवीं पोड़ीतक 'सकुरुप' कहा जाता है।

ऋतुकालमात्रमें उस कन्याके पास तबतक जा सकता है, कन्याको ही उत्पत्र करनेवाली एवं पतिका अहित ही जबतक गर्भ-धारण न हो। गर्भ-धारणके बाद यदि वह ऐसी कन्याके पास जाता है तो पतित हो जाता है। इस विधिसे इस कन्यासे उत्पन्न पुत्र जिस वरको कन्याका बाग्दान किया गया था, उसका क्षेत्रज पुत्र माना जाता है।

जो स्त्री व्यभिचारिणों है, बहुत प्रयत्न करनेपर भी व्यभिचारसे विस्त नहीं हो रही है, उसको अपने गहिन जीवनके प्रति वैराग्य उत्पन्न करनेके लिये अपने घरमें ही रखते हुए समस्त अधिकारोंसे अलग कर देना चाहिये तथा उसे मलिनदशामें ही रखकर उतना ही भोजन देना चाहिये, जितनासे उसकी प्रामरक्षामात्र हो सके। साथ ही उसके निन्दनीय कर्मके लिये उसकी भत्सेना करनी चाहिये और भूमिपर ही उसके शयनको व्यवस्था करनी चाहिये।

रिजयोंको विवाहसे पूर्व चन्द्रने शुचिता, गन्धवीन सुन्दर मध्र वाणी एवं अग्निने सब प्रकारको पवित्रता प्रदान की है। इसीलिये स्थियाँ पवित्र ही होती हैं। अतएव उनके लिये अतप प्राथश्चितको व्यवस्था है। पर इतनेसे यह नहीं समझना चाहिये कि स्त्रियोंमें दोषका संक्रमण नहीं होता है। यदि कोई स्त्री केवल पनसे पर पुरुषको इच्छा करती है तो यह भी एक तरहका व्यभिचार ही है। ऐसे हो अन्य पुरुषसे सम्पर्क करनेका संकल्पमात्र कोई स्त्री कर लेती है तो यह भी किसी रूपमें व्यभिचार ही है। ऐसा व्यभिचार यदि प्रकाशमें नहीं आया है तो इससे उत्पन्न दोषका मार्जन उस स्त्रीके ऋतुकालमें रजोदर्शनसे हो जाता है। यदि पर पुरुष शुद्रके साथ सम्पर्क कर कोई स्त्री गर्भधारण कर लेवी है तो इस पापका प्रायक्षित उस स्त्रीका त्याग हो है। ऐसे ही गर्भवध, पतिका वध, ब्रह्महत्या आदि महापातकसे ग्रस्ट होनेपर तथा शिष्य आदिके साथ गमन करनेवाली स्वोका त्याग ही कर देना चाहिये।

मदिरापान करनेवाली, दीर्घ रोगिणी, देव रखनेवाली, वन्ध्या, अर्थका नाम करनेवाली, अप्रियवादिनी (निष्ट्रभाषिणी), करनेवाली भार्याका परित्याग कर दूसरा विवाह किया जा सकता है। प्रथम विवाहिता (परित्यका) स्त्रीका भी दान, मान, सत्कार आदिके द्वारा भरण करना चाहिये, अन्यथा उस स्त्रीके पतिको महापाप होता है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य है कि जिस बरमें पति-पत्नीके मध्य किसी भी प्रकारका विरोध नहीं होता, उस घरमें धर्म-अर्थ और काम-इस त्रिवर्गको अधिवृद्धि होती है। अत: प्रथम विवाहिता एवं वर्तमान भार्यामें, अस्वीकृत स्त्री भी पूर्वमें भावां रही है। इस दृष्टिसे उससे विरोध नहीं ही करना चाहिये। उसे पूर्ण प्रसप्त रखना चाहिये। जो स्त्री पतिकी मृत्युके पक्षात् अधवा उसके जीवित रहते हुए अन्य पुरुषका आक्रय नहीं लेती, वह इस लोकमें यश प्राप्त करती है और अपने पातिब्रत्य-पुण्यके प्रधावसे परलोकमें जाकर पार्वतीक साहचर्यमें आनन्द प्राप्त करती है।

यदि पति अपनी स्त्रीका परित्याग करता है तो उस स्वीको धरण-पोषणके लिये अपनी सम्पत्तिका तृतीयांश दे देना चाहिये।

स्कियोंको अपने पतिकी आज्ञाका पालन करना चाहिये-यही उनका परम धर्म है। स्त्रियोंमें ऋतु अर्थात् रजोदर्शनके प्रथम दिनसे सोलह रात्रितक उनका ऋतुकाल होता है। अत: पुरुषको उक्त सोलह रात्रियोंकी पुग्म रात्रियोंमें अपनी पत्नोके साथ पुत्र-प्राप्तिके लिये संसर्ग करना चाहिये। पर्वोको तिथियोंमें तथा ऋतुकालको प्रारम्भिक चार तिथियोंभें सहवास नहीं करना बाहिये। अपनी अपेक्षा क्षाम (दुर्बल) स्त्रीका सहवास पुत्र-प्राप्तिमें सहायक होता है। मधा और मूल नक्षत्रमें सहवास वर्जित है।

इन निवधोंका पालन करके ही अपनी स्त्रीसे सुन्दर, सबल, उत्तम लक्षणोंबाले नीरोग पुत्रको उत्पन्न किया जा सकता है। स्त्रियोंको इन्द्रने जो वर दिया है, उसे ध्यानमें रखते हुए पुरुष यथाकामी (पत्नीकी इच्छानुसार ऋतुकालकी

१-इन नियमोंका पालन करनेवालेको 'ब्रह्मचारी' कहा गया है।

२-पर्य-तिथि चार हैं-- अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या और पूर्णिमा (मनु॰ ४। १५६)।

३-एक बार रिवरीने पुरुषकी अपेक्षा आउगुनी अपनी कामभावनामे बाध्य होकर इन्द्रदेवकी ऋरणमें बाकर अपने मनीभावको उनसे स्पष्ट किया। इन्द्रेयने स्थियोके भावको जनकर उन्हें वर दिया—'भवतोनां कामविद्यन्त पातको स्यात्' ('आप लोगोंको कामभावनाका हनन करनेवाला पुरुष पातको होगा") । इसी वरके अनुसार पद्मोकी इच्छाके अनुसार ऋतुकालसे अन्य कालको अनिषिद्ध रात्रियोंमें भी पत्नीगमन अनुज्ञात है।

रात्रियोंसे अतिरिक्त अनिषद्ध रात्रियोंमें भी अपनी पत्नीके साथ सहवास करनेवाला) भी हो सकता है। पुरुषके यधाकामी होनेमें दो कारण हैं-(१) पुरुषको अपनी पत्नौमें ही रित रखनी चाहिये और (२) स्त्रियोंकी रक्षा करना पुरुषका धर्म है। पति, भ्राता, पिता, पितृब्य, सास, श्रनुर, देवर तथा अन्य बन्ध-बान्धवींको स्थिपींका आभूषण-वस्य एवं भोजनादिके द्वारा पर्याप्त आदर करना चाहिये।

स्त्रीको घरकी सामग्री संयमित रूपमें रखनी चाहिये, कार्यकुशल होना चाहिये, प्रसन्न रहना चाहिये, मितव्ययो (अधिक खर्चीली नहीं) होना चाहिये तथा सर्वदा अपने सास-श्वशुरके चरणोंका वन्दन करना चाहिये।

जो स्त्री प्रोफितपतिका है अर्थात् जिसका पति परदेश चला गया है, उसके लिये किसी प्रकारकी क्रीडा (खेल-

तमाशा), शरीरकी सजावट सामाजिक उत्सर्वोका दर्शन, हास-परिहास तथा इसरेके घरमें गमन करना वर्जित है।

वाल्यावस्थामें पिता, यौवनकालमें पति, वृद्धावस्थामें पुत्र, पुत्रके अभावमें अन्य सम्बन्धियोंको नारीकी रक्षा करनी चाहिये। दिन हो अथवा रात्रि हो, कभी भी स्वी अपने पतिके बिना एकान्तमें निवास न करे। पतिको सदैव धर्म-कार्यमें अपनी ज्येष्ठ पत्नीको ही संलग्न करना चाहिये। कनिष्ठा भार्या धमं-कार्यके लिये उपयक्त नहीं मानी गयी है। सदाचारिणी स्त्रीके मृत्यु होनेपर पतिको चाहिये कि वह अग्रिहोत्रमें प्रयुक्त अग्रिमे उसका दाह-संस्कार करे। तदननार अविलम्ब अन्य स्त्रीके साथ पाणिग्रहण करके पुन: अग्रिका संचयन करे। प्रतिहितैषिणी पत्नी इस लोकमें यश अर्जित करके अन्तमें स्वर्गलोकको प्राप्त करती है। (अध्याय ९५)

वर्णसंकर जातियोंका प्रादुर्भाव, गृहस्थधर्म, वर्णधर्म तथा सैंतीस प्रकारके अनध्याय

याज्ञवल्क्यजीने कहा-अब मैं संकर जातियोंको होनेपर रचकारका जन्म होता है। उत्पत्ति एवं गृहस्थादिके श्रेष्ठ धर्मीका वर्णन करता हूँ।

ब्राह्मण पुरुषसे विवाहिता क्षत्रिय कन्यामें मुर्धावसिक, विवाहिता वैश्व कन्यामें अम्बष्ठ और विवाहिता सुदामें पारशव निषाद नामक संकरका जन्म होता है । श्रुतिय पुरुषसे वैश्य कल्यामें माहिष्य तथा शुद्रामें म्लेक्किको उत्पत्ति और अनुलोमन सत् हैं। होती है। वैश्य पुरुषसे शुद्रवर्णा स्त्रीमें करण नामक संकर

जो उन्तवर्णीय पुरुषसे निम्नवर्णा स्त्रीमें संतान उत्पन्न होती है, वह अप्रतिलोमन अथवा अनुलोमन संतान है और जो निध्नवर्गीय पुरुषसे उच्चवर्ण स्त्रीमें संतान जन्म ग्रहण करती है, वह प्रतिलोमन संतान है। प्रतिलोमन असत् हैं

जातिका उत्कर्ष सातवें, पाँचवें अथवा छठे जन्ममें होता जातिकी संतानका जन्म होता है । शत्रिय पुरुषसे ब्राह्मण है। यहाँ जाति शब्दसे अभी वर्णित मुर्थावसिक आदि जातियाँ स्त्रीमें सुत, वैश्य पुरुषसे ब्राह्मणीमें वैदेहक तथा सुद्र पुरुषसे ली गयी हैं। प्रकृतमें संक्षेपसे यह समझना चाहिये— ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें सर्ववर्णनिन्दनीय चाण्डालको उत्पत्ति होती है। शुद्रामें उत्पन्न संतान निपाद कही जाती है। यह संतान यदि क्षत्रिय स्त्रीमें वैश्यसे मागध और शुद्रसे क्षता नामक संकर कन्या है तो इसे निवादी कहा जाता है। इसका यदि ब्राह्मणसे संतानका जन्म होता है। इसी प्रकार वैश्य स्त्री शुद्र पुरुषके विवाह हो और उससे उत्पन्न कन्याका पुन: ब्राह्मणसे विवाह संसर्गसे आयोगव नामक वर्णसंकर पुत्रको जन्म देती है। हो, आगे उससे भी उत्पन्न कन्याका पुन: ब्राह्मणसे ही विवाह क्षत्रिय पुरुषसे वैश्य कन्यामें उत्पन्न हुए माहिष्य संकरके हो-इसी क्रमसे उत्पन्न छठी कन्यासे विवाहित ब्राह्मणके द्वारा करणी (वैश्यसे शुद्राभें उत्पन्न) स्त्रीके साथ संसर्ग द्वारा उत्पादित सातवीं संतान शुद्ध ब्राह्मणवर्णकी होगी। ऐसे

१-ये अनुलोग संकर कहे जाते हैं।

२-व्याजनल्बरस्पति (४। ९२)-के अनुसार क्षत्रियसे शुद्धाने उद्ध नामको संकर जातिको संतान उत्पन्न होती है।

मूर्पावसिक, अध्यक्ष, निवाद, महिष्य, उग्र एवं करण—वे छ: अनुलोगत पुत्र हैं।

४-सूत, वैदेहक, याण्डाल, मागध, सता एवं आयोगव-ये छ: प्रतिलोगव पुत्र हैं।

ही ब्राह्मणसे वैश्य जातीय कन्यामें उत्पन्न अम्बष्ट होगा। क्षत्रियवृत्तिसे जीविका निर्वाहको स्थितिमें पौचवें जातिकी पौचर्वी कन्याकी छठी संतान शुद्ध बाह्मण होगी। जन्ममें श्रतिय ही उत्पन्न होगा। श्रतिय भी शुद्रवृतिसे जोविका मुर्धावसिका कन्याकी भी इसी क्रमसे उत्पन्न चौथी कन्याकी पाँचवीं संतान जुद्ध ब्राह्मण ही होगी। ठीक यही स्थिति उग्रा और माहिष्याकी है। ये दोनों उग्र एवं माहिष्य जातिको कन्याएँ यदि क्षत्रियसे हो विवाहित होती गर्यों तो इनको छठी और पाँचवीं संतित रुद्ध क्षत्रिय ही होगी। ऐसे ही करण जातिकी कन्या और वैश्यवर्णके पृख्यसे विवाहित होकर यथाक्रम पाँचवें संतानको सुद्ध वैश्यरूपमें ही उत्पन्न करेगी।

इसके अतिरिक्त यह भी जानने योग्य है कि कर्मका व्यत्यय होनेसे भी जिस वर्णका कर्म किया जा रहा है, वही वर्ण सातवें, छठे तथा पाँचवें जन्मकी संतानका हो जाता है। स्पष्टरूपमें इस प्रकार समझा जा सकता है- धर्मशास्त्रके अनुसार ब्राह्मणको अपनी मुख्यवृति याजन तथा अध्यापन आदिसे जीविका चलानी चाहिये। आपल्कालमें अपनी मुख्यवृत्तिसे जीविका न चल पानेपा क्षत्रियवृत्ति, वैज्यवृत्ति या शुद्रवृत्ति भी ब्राह्मण स्वीकार कर सकता है। यही क्षत्रिय एवं वैश्यके बारेमें भी व्यवस्था है। जब कोई वर्ण अपनी मुख्यवृत्तिका परित्याग कर अन्य द्वितीय, तृतीय वर्णकी वृत्ति स्वीकार करता है तो यह होनवर्णकी वृत्ति मानी जाती है और यह हीनवर्णको वृत्ति स्वीकार करना ही 'कर्म-व्यत्यय' है। इस प्रकारके कर्म-व्यस्थय होनेपर आपत्तिकालके अभावमें भी यदि कोई हीनवर्णकी वृत्तिका परित्याग नहीं करता है तो उसकी सातवीं, छठो, पौचवीं कुल-परम्परामें उत्पन्न संतति उस हीनवर्णकी ही होगी। जिस हीनवर्णकी वृति स्वीकार कर जीविका निर्वाह किया जा रहा है। दशन्तके रूपमें यह कहा जा सकता है--यदि कोई ब्राह्मण शुद्रवृतिसे जीविका चला रहा है और उसका परित्याग बिना किये पुत्र उत्पन्न कर रहा है तथा यह पुत्र भी शुद्रवृत्तिसे अपना जीवन चलाता हुआ अपना पुत्र उत्पन्न कर रहा है एवं यह तीसरा पुत्र भी शुद-वृत्तिमें रहकर ही अपना पुत्र उत्पन्न कर रहा है तो ऐसी परम्परामें सातवें जन्ममें शुद्र ही उत्पन्न होगा। वैश्ववृत्तिसे जीविका निर्वाहकी दशामें छठे जन्ममें वैश्व ही उत्पन्न

निर्वाह करनेपर छठे वंशमें शुद्रवर्णको एवं वैश्यवृतिसे जीविका निर्वाह करनेपर पाँचवें वंशमें वैश्यवर्णको संतान उत्पन्न करेगा। ऐसे ही वैश्य भी शुद्रवृत्तिसे जीविका निर्वाह करते हुए अपनी पुत्र-परम्पराके पाँचवें जन्ममें शुद्रको ही उत्पन्न करेगा।

इसी प्रसंगसे यह भी जातव्य है-तीन प्रकारकी जातियाँ हैं- १-संकर जाति, २-संकोणं संकर जाति तथा ३-वर्ज संकोणं संकर जाति। संकर जातिक मुर्धावसिक अम्बच्द आदि छ: भेद ऊपर बताये गये हैं। इन्हें अनुलोमज कड़ा जाता है। ऐसे हो सूत, वैदेहक आदि भी छ: संकर जातिके भेद पहले हो कहे जा चुके हैं। ये प्रतिलोधन हैं। संकोण संकर जातिक जो लोग होते हैं, उनका निर्देश पहले रचकारको उत्पत्ति बताकर किया गया है। अब वर्ण संकीण संकर जातिके लोगोंको इस प्रकार समझनी चाहिये-मुर्धावसिका स्त्रीमें श्रात्रिय, केंश्य अथवा शहरों जो उत्पादित हैं, ऐसे हो अम्बह जातिकों स्त्रोमें वैश्य अथवा शृहके द्वारा जो उत्पादित हैं और पारशव निषाद जातिको स्त्रीमें शुद्रके द्वारा जो उत्पादित हैं, वे वर्ण संकीण संकर जातिके होते हैं। इन्हें, अधर प्रतिलोगज कहते हैं। इसी प्रकार मुर्धाविसक, अम्बर एवं पारशय निवाद जातिको स्त्रियोमें ब्राह्मणके द्वारा को उत्पादित है, माहिष्य एवं उग्रजातिकी स्वियोंमें ब्राह्मण अथवा अत्रियसे जो उत्पादित हैं और करणजातिको स्त्रीमें ब्राह्मण, भविष अथवा वैश्यमे जो उत्पादित हैं, उन्हें उत्तर अनुसोमन कहते हैं। उनमें अधर प्रतिसोमन असत् तथा उत्तर प्रतिलोमज सत् माने जाते हैं।

गृहस्थावयोको प्रतिदिन विवाहाग्रिये अथवा सम्पत्ति विभागके समय स्वयं लायी गयी संस्कृत-अग्रिमें स्मातंकर्म वैश्यदेव आदि सम्पन्न करना चाहिये। श्रीतकर्मानुष्ठान अग्रिहोत्र आदि वैतानाग्नि (आहवनीय आदि अग्नियों)-में करना चाहिये। शरीर चिंता (प्रात:-सायं अवश्य करणीय मल-मृत्र विसर्वन)-को शास्त्रीय विधिसे सम्पन्न कर, गन्ध-लेपनिवृत्तिपर्यन्त शुद्धि प्राप्तकर दन्तधावन एवं स्नानकर दिवको प्रात:काल संध्योपासन करना चाहिये तथा अनन्तर

अग्रिमें हवन (अग्रिहोत्र) करके समाहितचित्रसे सूर्यदेवताके ये दोनों मान्य हैं। मन्त्रोंका जप करना चाहिये। उसके बाद गृहस्थात्रमी वेदार्थ (निरुक्त व्याकरण आदि) तथा अन्य विविध प्रकारके हुए पक्यात्रको प्राप्त करनेकी अधिलामा नहीं करनी चाहिये। शास्त्रोंका अध्ययन करे। योगक्षेम आदिकी सिद्धिके लिये उसको ईश्वरकी उपासना करनी चाहिये।

वह स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण तथा पूजन करे। तदनन्तर उसको वेद, पुराण तथा इतिहासका यथाशक्ति अध्ययन एवं अध्यात्मिकी विद्याका जप (चिन्तन) करना चाहिये। तत्पश्चात् भृत, पितर, देव, ब्रह्म और मनुष्य जातिके लिये गृहस्थ बलिकर्म , स्वधा, होम, स्वाध्याय तवा अतिथि-सत्कार करे। देवताओंके लिये अग्रिमें हवन करना चाहिये। भूतबलि, धान (कुत्ता), चाण्डाल एवं काक आदिके लिये पका हुआ अत्र भूमिपर दे। पितृगण एवं मनुष्योंको अन्नके सहित जल भी प्रतिदिन प्रदान करना चाहिये। प्रतिदिन स्वाध्याय करे, केवल अपने लिये अञ्चयक न करे। स्ववासिनी (अपने पितृगृहमें रहनेवाली विवाहिता स्त्री), वृद्ध, गर्भिणी, व्याधिपीड़ित, कन्या, अतिथि तथा भृत्योंको भोजन प्रदानकर गृहस्वामिनी और उसका पति शेष यथे हुए अन्नका भोजन करे। अग्रिमें पञ्चप्रामाहुति देकर अन्नकी निन्दा न करते हुए भीजन करना चाहिये।

भोजनके आदि और अन्तमें आपोऽशान-विधिसे आचमन करे तथा सम्यक् प्रकारसे पका हुआ, हितकारी, स्वरूप भोजन बालकोंके साथ करना चाहिये।

पात्रादिसे आच्छादित अमृततुल्य भोजन द्विजको कराना चाहिंगे। यथाशक्ति अतिथि एवं अन्य वर्णोको क्रमशः भोजन देन चाहिये। सायंकाल भी आये हुए अतिधिको लौटाना नहीं चाहिये। इसमें विचार करनेको आवश्यकता नहीं है। सुवत! (ब्रह्मचारी एवं संन्यासी) भिक्षुकको सत्कारपूर्वक भिक्षा प्रदान करनी चाहिये। द्वारपर पथारे सभीको भोजन कराना चाहिये। प्रतिवर्ष स्नातक, आचार्य एवं राजाकी पूजा करनी चाहिये। ऐसे ही भित्र, जामाता एवं ऋत्विक् प्रतिवर्ष पूजनीय हैं। पथिकको अतिथि तथा बेटपारंगतको श्रोजिय कहा जाता है। ब्रह्मलोककी कामना करनेवाले गृहस्थजनेकि लिये

ससम्मान आमन्त्रणके बिना ब्राह्मणको दूसरेके यहाँ बने गृहस्थको वाणो, हाथ, पैरकी चञ्चलता एवं अतिभोजन करनेसे बचना चाहिये। संतुष्ट श्रोत्रिय तथा अतिथिको विदा करते समय ग्रामकी सोमातक उनका अनुगमन करना चाहिये।

गृहस्य अपने इष्ट-मित्र एवं बन्धुऑके साथ दिनका शेष भाग व्यतीत करे। तदननार सार्यकालीन संध्योपासना करके वह पुन: अग्रिहोत्रकर भोजन ग्रहण करे। इसके बाद उसको अपने मुबुद्ध भृत्योंके साथ बैठकर अपने हितका विचार करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्ममुहूर्तमें निद्राका परिस्थागकर वह धनादिसे बाह्यणको संतुष्ट करे तथा वृद्ध, दु:खी एवं भार डोनेवाले पश्चिकोको भलीभौति मार्ग दिखाकर प्रसप्त करे।

यज्ञानुष्टान, अध्ययन और दान वैश्य तथा क्षत्रियका कर्म माना गया है। इसके अतिरिक्त बाह्मणके लिये याजन, अध्यापन तथा प्रतिग्रह—ये तीन कर्म अधिक बताये गये है।

श्वतियका प्रधान कर्म प्रजापालन है। वैश्यलर्णके लिये कुसाँद (सूद), कृषि, वाणिज्य और पशुपालन मुख्य कर्म कहा गया है। शुद्रवर्णका प्रधान कर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यको सेवा करना है। द्विजॉको यज्ञादि कर्तव्यॉसे प्रमाद नहीं करना चाहिये। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शीच, इन्द्रियसंयम, दम, क्षमा, सरलता और दान सभीके लिये धर्मके साधन 🕏 । अपने वर्णधर्मानुसार जीविकाका आश्रयणकर कृटिल और दृष्टवृत्तिका परित्याग करना चाहिये-

प्रधानं अतियं कर्म प्रजानां परिपालनम्।। कुमीदक्षिवाणिन्यं पशुपाल्यं विशः स्मृतम्। शुक्रस्य द्विज्ञशुक्षा द्विजो यज्ञान् न हापयेत्॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियसंयमः। दमः क्षमाजैवं दानं सर्वेषां धर्मसाधनम्॥ आक्रेत् सदुर्शी वृत्तिमजिह्यामशठां तथा।

(48130-30)

जो मनुष्य तीन वर्षसे अधिक कालतकके लिये अञ्चका भण्डारण करता है, वह सोमरस पान करनेकी

१-'तदु त्यं जातवेदसं०' आदि।

२-बलिकर्म— भूतयञ्जः स्वधा—पितृषञ्जः होय—देवयञ्जः स्वाध्याय—ब्रह्मयञ्जः अतिथि-सत्कार—पनुष्य-यञ्जः।

योग्यता रखना है। जिसके पास मात्र एक वर्षभरके लिये ही अब्र रहता है, उसे मुख्यत: सोमयागकी प्राकृक्रिया करनी चाहिये। द्विजको प्रतिवर्ष सोमयाग, पशुयाग, आग्रायजेहि^र तथा चातुर्मास्ययाग यत्रपूर्वक करना चाहिये। यदि इन यागोंको करना प्रतिवर्ष असम्भव हो तो इन यागोंके कालमें वैश्वानरी इष्टि ही कर लेनी चाहिये।

मुख्य कल्पके सम्पादनमें असमर्थके लिये जो दितीय कल्प विहित है, वह हीन कल्प है। सोमयाग, आग्रायणेष्टि आदि मुख्य करूप हैं। वैश्वानरी इष्टि हीनकरूप है। यदि मुख्यकल्पके सप्पादनयोग्य द्रव्य है तो हीनकल्पका सम्पादन नहीं करना चाहिये। जितने भी फलप्रद (काम्य) अनुहान हैं। फलकी कामना रहनेपर उन्होंका सप्पादन करना होगा। उनको न कर हीनकल्पका सम्पादन करनेपर फल नहीं प्राप्त हो सकता।

ब्राह्मणको अपनी जीविकाके लिये इस अप्रतिषिद्ध अर्थको भी इच्छा नहीं करनी चाहिये जो स्वाध्याय-विरोधी हो। ऐसे जिस-किसी भी व्यक्तिसे अर्थ पानेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये, जिसका आचरण संदिग्ध हो। विरुद्धवृत्ति (अयाज्य याजन आदि)-से भी अर्ध-अर्जन नहीं करना चाहिये। ऐसे ही नृत्य, गीत आदि (प्रसंग)-से भी अर्थ-अर्जन नहीं करना चाहिये। जो द्विज यज्ञके लिये स्ट्रासे धनकी याचना करता है, यह मृत्युके पश्चात् चाण्डाल-योनिये जन्म लेता है। यजके लिये लाये हुए अञ्चको जो सन्पूर्णरूपसे यज्ञमें नहीं लगाता, वह कुक्कुर, गुध्र अथवा काकयोनिमें जन्म ग्रहण करता है।

ब्राह्मणको एक कुसूल (कोष्ठक)-भर, एक मुटका-

भर, तीन दिनतकके लिये या एक दिनतकके लिये अत्र संग्रह करना चाहिये। अथवा यह शिलोर्ज्छवृत्तिसे अपना जीवन-निर्वाह करे। इन वृत्तियोंमें उत्तरोत्तर वृत्ति श्रेष्ठ है।

यदि वह भूखसे पीड़ित है तो उसको राजा, अपने छात्र या यज्ञ करनेवाले यजमानसे ही अन्न-धनकी याचना करनी चाहिये और दाम्भिक, हैतुक, पाँखण्डिक एवं वर्कवृत्तिवालेका सभी लीकिक-शास्त्रीय कर्ममें सर्वधा परित्याग करना चाहिये। वह स्वच्छ धेत वस्त्र धारण करे। सिर, टाडी आदिके केश एवं नखोंको यथा-विधान कटवाये रहे। भावकि साथ भोजन नहीं करना चाहिये। एक वस्त्र धारत कर तथा खड़े होकर भोजन नहीं करना चाहिये।

कभी भी अप्रिय वचन नहीं बोलना चाहिये। यज्ञोपबोतधारी ब्राह्मणको विनीत होना चाहिये। दण्ड और कमण्डल धारण करना चाहिये। देव आदिको अपने दाहिने करके बलना वाहिये। वह नदी, वृक्षच्छाया, भस्म, गोष्ठ, जल तथा मार्गके मध्यमें मुत्रका परित्याग न करे। अग्रि, सूर्य, गी, चन्द्र, संध्या, जल, स्त्री और द्विजोंके सम्मुख भी मुत्रका त्याग करना वर्जित है। वह अग्नि एवं उदय तथा अस्त हो रहे मुर्वका दर्शन न करे। उसके लिये नग्न तथा मैथुनासक स्त्री, मुत्र और विष्ठाका दर्शन भी त्यान्य है। पश्चिम सिर करके नहीं सोना चाहिये। थुक, रक, विष्टा, मुत्र और विषको जलमें छोड़ना अनुषित है। आगपर पैरोंको सँकना तथा उसे लाँपना निषद्ध है।

अञ्चलिद्वारा जल नहीं पीना चाहिये और निद्रा-निमग्र व्यक्तिको जगाना नहीं चाहिये। धूर्त-वञ्चकका साथ नहीं

१-प्राकृक्रिया-सोमयागके पूर्व करणीय आग्रिहोष, दर्शपूर्णपास, आग्रावण, चातुर्यास्य आदि।

२-नया सस्य उत्पन्न होनेपर आग्रायणेष्टिका विधान है।

३-कुस्लघान्य बारह दिनके लिये अत्र, कुम्भीधान्य छ: दिनके लिये अत्र।

४-'शिलोज्कवृति' भरन-पोषणको एक ब्राह्मण-वृति (साधन) है ('शिल्वृत्ति' इसे कहते हैं, जिसमें ब्राह्मण फसल कट जानेके बाद खेतमें गिरं हुए अपनी वल्लरी (बाल)-को एकत करके अपने कुटुम्बका भरत-चेचन करता है। 'उम्बक्षपृत्ति' उसे कहते हैं, विसमें अनकी वल्लरी छोडकर एक-एक कममात्र एकत्र कर उसीसे अपने कुट्रमका भरत-चंचन करत है। 'शिल' और 'उज्ब्र'- यही 'शिलोज्कवति' है।

५-दाम्भिक-केवल किसीको प्रसन्न करनेके लिये ही धर्मान्छान।

६-हैतुक-- निराधार तकाँसे धार्मिक कत्वांने संजयकर्ता।

७-पालिएडक- येदशालांके विरुद्ध अनेक प्रकारके लुधावने वेशका धारक।

८-वकवृति-- वकके समान वर्तन (व्यवहार) करनेवाला।

करना चाहिये। रोगी जनोंके साथ शयन नहीं करना चाहिये। धर्म-विरुद्ध कर्मौका परित्याग कर देना चाहिये। चिताग्रिका थुओं तथा नदीमें तैरना वर्जित है। केजपर, भस्मपर, भूसीपर, प्रञ्चलित अग्निके अंगारेपर और कपालपर स्थित नहीं होना चाहिये। किसीसे बछड़ेको दूध पिलाती हुई गायको बताना नहीं चाहिये और किसीके घरमें द्वारके अतिरिक्त अन्य गवाक्षादि मागाँसे प्रवेश नहीं करना चाहिये। लोभी तथा ज्ञास्त्र-विरुद्ध कर्म करनेवाले राजासे प्रतिग्रह नहीं लेना चाहिये।

वेद तथा धर्म-शास्त्रादिका अध्ययन करनेवालींका उपाकर्म-संस्कार त्रवणनक्षत्रसे युक्त बावणी पूर्णिमाको होना चाहिये। संस्कार-विहित औषधियों—सामग्रियोक उपलब्ध रहनेपर यह कार्य श्रावणमासकी हस्तनक्षत्रसे युक्त पञ्चमी-तिथिमें भी सम्पन्न हो सकता है। पौथमासके रोहिपानश्चत्रमें अथवा अष्टकाके दिन ग्रामसे बाहर जलाक्रयके पास वेदोंका उत्सर्ग-कमं गृह्यसूत्रके अनुसार करना चाहिये।

शिष्य, ऋत्विक्, गुरु तथा बन्धु-बान्धवींकी मृत्यु होनेपर तीन दिनका अनध्याय उपाकर्म तथा उत्सर्ग-कर्म करनेपर होता है। ऐसे ही अपनी शाखाके ब्रोजिय ब्राह्मणकी मृत्यु होनेपर तीन दिनका अनध्याय होता है। संध्याक समय मेघ-गर्जन होनेपर, आकाशमें उत्पातको ध्वनि होनेपर, भूकम्य होनेपर तथा उल्कापात होनेपर अनध्याय रखना चाहिये। वेद और आरण्यकका अध्ययन पूर्ण होनेपर एक दिन एवं एक रावि (अहोरात्र)-का अनध्याय होता है।

अष्टमो, चतुर्दशी, अधावास्या, पूर्णिमा, चन्द्र-सूर्यग्रहण, ऋतुसंधिकी प्रतिपद्में तथा श्राद्ध-भोजन अथवा त्राद्धका प्रतिग्रह लेनेपर एक दिन और एक रात्रि (अहौरात्र)-का अनध्यायकाल मानना चाहिये। पत्नु, मेडक, नेवला, कुता, सर्प, बिडाल और सृअरके बीचमें आनेपर तथा तक्रध्यतके अवरोपणका दिन आनेपर एवं उत्सवका दिन होनेपर भी एक ही दिन-रात्रिका अनध्यायकाल होता है।

कुता, सियार, गर्दभ, उलुक, सामवेद तथा बच्चोंके

कोलाहल और पोड़ितजनोंकी दु:खभरी ध्वनि होनेपर, अपवित्र वस्तु, शब, शुद्र, अन्त्यब, श्मशान और पतित व्यक्तिका सामीप्य होनेपर तत्काल अनध्याय होता है। अपवित्र देशमें, अपवित्रावस्थामें, बार-बार बिजली चमकनेपर, दो प्रहरतक बार-बार मेथ-गर्जन होनेपर, भोजन करनेके बाद हाथ गीला रहनेपर, जलके मध्यमें, अर्धरात्रिमें तथा मध्यके दो प्रहरमें और औंधी-तूफानके बीच भी उतने कालतक अध्ययन नहीं होना चाहिये। दिग्दाह होनेपर, उत्पात-जैसी धृतिको वर्षा होनेपर, संध्याकालीन कोहरा होनेपर अथवा चोर, राजा आदिके कारण होनेवाले उपद्रवोंके समयमें तत्काल अनध्याय होता है। स्वयं दौड़ते हुए, अपवित्र मदिरा आदिका गन्ध आनेपर तथा शिष्ट व्यक्तिके घर आ जानेपर अध्ययन करना वर्जित है। गधा, ऊँट, वाहन (रथ), हाथी, घोड़ा, नीका, वृक्ष और पर्वतारोहणका काल अनध्यायका हों काल होता है। उपर्युक्त सैतीस अनध्यायोंको तात्कालिक अनध्याय माना गया है अर्धात् ये निमित्त जिस समय हो, उस समय अनध्याय समझना चाहिये।

देवताको मृति, ऋत्विक्, स्नातक, आचार्य एवं राजाको छाया, पर-स्त्रीकी छाया, रक्त, विष्ठा, मूत्र, धृक और उबटनको सामग्रीका अतिक्रमण नहीं करना चाहिये। बहुनुत ब्राह्मण, सर्प, क्षत्रिय (नृपति)-की अधमानना कदापि न करे। ऐसे ही अपनी भी अवमानना न करे। उच्छिष्ट (बृदन), बिहा, मूत्र और चरण-प्रक्षालित जल दूरसे ही त्यागने योग्य है। श्रुति और स्मृतिमें कहे गये सदाचारका पालन करना चाहिये। किसीके गोपनीय रहस्यको प्रकातित कर उसे कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये। किसीकी निन्दा या ताड्ना नहीं करनी चाहिये, किंतु पुत्र अथवा शिष्यको दण्ड देना चाहिये। मनुष्यको सर्वदा धर्मका ही आचरण करना चाहिये। धर्मविरुद्ध आचरण उसके लिये त्याज्य है। गृहस्य व्यक्तिको माता-पिता, अतिथि और धनी पुरुषके साथ विवाद नहीं करना चाहिये।

दूसरेके सरोवरमेंसे पाँच पिण्ड मिट्टी बिना निकाले

१-यह व्यवस्था एकोहिष्ट बादको अतिरिक्त बादके लिये हैं। एकोहिष्ट बादका भोजन अथवा प्रतिग्रहमें तीन राष्ट्रिका अनध्याय होता है। (याज्ञबल्क्य मिताक्षरा आचाराध्याय श्लोक १४६)

२-दिन्दाह—दिशाएँ यदि जलती हुई प्रतीत होती हों।

उसमें स्नान नहीं करना चाहिये। नदी, झरना, देव-सरोवर और पोखर—तालाबमें स्नान करना चाहिये।

दूसरेकी शस्यापर शयन नहीं करना चाहिये। अनापतिकालमें परात्र भोजन नहीं करना चाहिये। कृपण, बन्दी, चोर, अग्रिहोत्र न करनेवाले ब्राह्मण, बाँसका काम करनेवाले, न्यायालयमें जिसका दोप सिद्ध हो चुका है, सूदखोर, वेश्या, सामृहिक दीक्षा देनेवाला, चिकित्सक, रोगी, क्रोधी, नपुंसक, रंगमंचसे जीविका चलानेवाला, वग्र. निर्दय, पतित, ब्राल्य, दम्भी, उच्छिष्टभोजी, शस्त्र-विक्रेवा, स्त्रोके वशमें रहनेवाला, ग्राम्य-याजक (ग्रामके देवताओंको सान्तिके लिये अनुष्ठान करनेवाला), निर्दयी राजा, धीबी, कृतग्र, कसाई, चुगलखोर, झूट बेलनेवाला, सोम-विक्रेवा, बन्दी तच्च स्वर्वकार—इनका अन्न कदापि नहीं खाना चाहिये। बाल तचा कृपि (कीड़े) आदिसे युक्त भोजन एवं मांस नहीं खाना चाहिये।

सासी, उच्छिष्ट, शुक्त (पका हुआ वह अन वो अधिक काल बीतनेके कारण विकृत हो गया है), कुत्तेद्वारा स्पृष्ट, पतितद्वारा देखा हुआ, रजस्वलासे स्पृष्ट, संपुष्ट तथा पर्वायांत्र-भोजन त्याच्य है। गायसे सूँचा गया, पश्चियोंके द्वारा उच्छिष्ट और जानकर पैरसे सुआ गया अन्न भी त्यागने योग्य होता है। यद्यपि सूद्रका अन्न नहीं लेना चाहिये, तथापि वो सूद परस्परासे ही अपने यहाँ सेवक है, गोपालन करनेवाला है. कुल-परम्परासे ही जो मित्रके समान व्यवहार करनेवाला है, परम्परासे अपने यहाँ हलवाहेका काम करनेवाला है, कुल-परम्परासे जो निर्धारित नाई है—इनके अतिरिक्त वह खुद्र जिसने मन, वाणी, तरीर एवं कमंसे सर्वथा अपनेको समर्पित कर रखा है—ऐसे शूद्रोंका अन्न स्वीकार किया जा सकता है। थी आदि स्तिन्ध पदार्थीसे युक्त अन्न यदि वासी है वा बहुत कालसे रखा हुआ है तो भी ग्रहण करने योग्य होता है। किंतु घृत या तेल आदिसे समिन्नित न होनेपर भी गेहैं, जी और गोरससे तैयार किये गये पदार्थ यदि बहुत देरतक रखे गये हैं, तब भी ग्रहण किये जा सकते हैं; यदि विकृत न हुए हों।

देव और अतिथिको बिना समर्पित किया हुआ तिल-तण्डुलमिक्रित पदार्य, यवागू, खीर, पुआ तथा पूड़ीका भोजन व्यर्थ हो जाता है।

पत्ताण्डु (प्याज) और लहसुन आदि उग्र पदार्थोंका सेवन करनेपर चान्द्रायणव्यत करना चाहिये। जो पुरुष पशु-हत्या करता है, वह पशुके रोम-परिमित कालतक घोर यातनाओंको सहन करते हुए नरकमें वास करता है। अभोज्य पदार्थोंका परित्याग करके अपनी सद्गितकी भावनासे प्रभुसे क्षमा-पाचना और प्रार्थना करता हुआ व्यक्ति भगवान्को प्राप्त करता है। (अध्याय ९६)

द्रव्यशुद्धि

याज्ञवरच्यजीने कहा—हे श्रेष्ठ मुनिजनी! अब मैं इव्य-शुद्धिका वर्णन कर रहा हैं। आप सब उसका जान प्राप्त करें। सोने, बाँदी, अबज (मुक्ताफल, शंख, शुक्ति आदि), शाक, रस्सी तथा बकरे आदिके चमड़ेसे बनाये गये पात्र, होतू, चमस आदि यदि किसी चिकने पदार्थके लेपसे रिडेंग हैं और उच्छिष्ट हाथ आदिसे ही केवल स्पृष्ट हैं तो इनकी शुद्धि जलसे प्रक्षालनमात्र करनेपर हो जातो है। यद्वमें प्रयुक्त सुक् एवं सुवाकी शुद्धि उच्च जलसे तथा धान्यादिका शुद्धीकरण जलके प्रोक्षणसे होता है।

काष्ठ और सींग आदिसे विनिर्मित पात्रादिकी तृद्धि किलनेसे होती है। मार्जन करनेसे यज्ञका पात्र पवित्र हो जाता है। उच्च जल और उच्च गोमूबसे धोनेपर कनी और रेजमो वस्त्र शुद्ध हो जाते हैं। ब्रह्मचारोके हाथमें विद्यमान भिक्षा-प्राप्त अत्र, बाजारमें विक्रयके लिये रखा अत्र तथा स्त्रोका मुख पवित्र होता है। मिट्टीका पात्र अग्निमें पुन: पकानेपर शुद्ध होता है, यदि चाण्डाल आदिसे स्पृष्ट नहीं है। गौके द्वारा सूँघे जानेपर और केश, मिक्षका एवं कोटादिसे द्वित होनेपर अत्रकी शुद्धि यथायोग्य जल, भरम

१-संपृष्ट—'भोजन बचा हुआ है, जो भोजन करना चाहे वह आकर ले ले'। इस प्रकारकी घोषणा करके जो भोजन दिया जाता है, वह 'संपष्ट' कहा जाता है।

२-पर्यायात-किसी दूसरेके उद्देश्यमे रखा भीवन यदि विना उसकी स्वीकृतिके दूसरेको दिया जाय तो ऐसे अनको 'पर्यायान' कहा जाता है।

तथा मिट्टी डालनेसे हो जाती है। भूमिका पवित्रीकरण मार्जनादि करनेपर होता है। राँगा, सीसा तथा ताम्रपात्रकी शुद्धि शार और अम्लमित्रित जलसे होती है। कांस्य और लौहपात्रोंकी शुद्धि भस्म तथा जलसे मार्जन करनेपर होती है। अज्ञात वस्तुएँ तो सदैव पवित्र ही रहती है।

अमेध्य (ज्ञरीरसे निकलनेवाले मल, वसा, जुक्र और रलेप्पा आदि)-से लिप्त पात्रकी शुद्धि मिट्टी और जलके द्वारा परिमार्जित कर उसमें व्याप्त गन्ध एवं लेपको दूर करनेसे होती है। प्रकृतिद्वारा भूमिमें एकत्र जल, जो गौको संतुत करनेमें पर्यात हो, सदैव शुद्ध होता है।

सूर्य-रहिम, अग्नि, धृलि, वृक्ष-छाया, गौ, अश्व, पृथ्वी, वायु तथा ओसकी बुँदें पवित्र ही होती हैं।

मनुष्यको स्नान करनेके बाद, जल पीनेके बाद, छींक आनेके बाद, शयनीपरान्त, भोजन करनेपर, मार्गमें चलनेपर तथा यस्य बदलनेपर पुनः आचमन करना चाहिये।

जम्हाई लेनेपर, निष्ठीवन (धूकनेपर), श्रयन करनेपर, वस्त्र-धारण करनेपर और अनुपात होनेपर-इन पाँच अवस्थाओं में आचमन नहीं करे, अपित दक्षिण कानका स्पर्त कर ले। ब्राह्मणके दक्षिण कानपर अग्नि आदि देवता सदैव विराजमान रहते हैं। (अध्याय ९७)

दान-धर्मकी महिमा

याज्ञवल्क्यजीने पुनः कहा-हे ऋषियो! अत्र मैं दान-धर्मको महिमाका वर्णन करता है, उसे सुने। अन्य वर्णोंकी अपेक्षा ब्राह्मण बेष्ठ हैं, उनमें भी जो

सिक्यावान् (कर्मनिष्ट) ब्राह्मण है वे बेड हैं। उन कर्मनिडोंमें भी विद्या तथा तपस्यासे युक्त ब्रह्म-तत्त्ववैता श्रेष्ठ तथा सत्पात्र हैं। गृहस्थके द्वारा गी, भूमि, धान्य तथा सुवर्ण आदिका दान सत्पात्रको उसका पूजन करके दिया जाना चाहिये।

विद्या एवं तपस्यामे हीन ब्राह्मणको प्रतिग्रह (दान) स्वीकार नहीं करना चाहिये। इस प्रकार दान लेनेपर वह प्रदाता और स्वयंको अधोगामी बना देता है। प्रतिदिन उपयुक्त पात्रको दान देना चाहिये। निमित्त (सूर्वग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि विशेष अवसर) उपस्थित होनेपर विशेष रूपसे अधिक दान देना चाहिये। किसीके याचना करनेपा भी यथाशक्ति अपनी ब्रद्धाके अनुसार दान देना चाहिये। सुवर्णसे अलंकृत सींगोंवाली, चाँदीसे मदे हुए खुराँचाली, सुन्दर वस्त्राच्छादित, अधिक दूध देनेवाली, सुजील गौका यथाशक्ति दक्षिणाके साथ दान करना चाहिये और दान देते समय साधमें कांस्यपात्र भी देना चाहिये।

सींगमें दस सीवर्णिक (एक सी साठ माशा) सोना तथा ख़ुरमें सात पल चाँदी लगाना चाहिये एवं दोहन-पात्र पचास पल काँसेका होना चाहिये।

गौका बछड़ा भी अलंकृत होना चाहिये। गौ रोगरहित तथा सबस्सा होती चाहिये। यदि बछड़ा न हो तो स्वर्ण या

पिप्पलकारका बाह्य या बाही बनाकर देना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रदाता बराईके शरीरमें स्थित रोम-संख्याके अनुसार उतने ही वर्षपर्यन्त स्वर्गका उपभोग करता है। यदि गौ कपिला (भूरे रंगकी) होती है तो वह दाताके सात कुलॉका उद्धार कर देती है।

जनतक प्रसय कर रही मौकी योनिमें चछड़ेके दोनों पैरोंसहित मुख दिखायी देता है और जबतक यह गर्भका प्रसव नहीं कर देती है, तबतक गौको पृथ्वीके समान ही मानना चाहिये।

सामर्चके अभावमें स्वर्णमय सींग आदिसे युक्त गौका दान चदि न किया जा सके तो भी रोगरहित, हष्ट-पुष्ट, दूध देनेवाली धेनु अथवा दूध न देनेवाली गर्पिणी गौका जो दान करता है, वह स्वर्गलोकमें महिमामण्डित होकर निवास करता है।

चके हुए प्राणीकी आसनादिक दानके द्वारा चकान दूर करना, रोगीकी सेवा करना, देवपूजन करना, ब्राह्मणका पाद-प्रक्षालन करना तथा ब्राह्मणद्वारा उच्छिष्ट किये गये स्थान और पात्रका मार्जन-कृत्य विधियत् दिये गये गोदानके समान फलदायक होता है। ब्राह्मणके लिये जो अभीष्ट हो, उसे वह वस्तु प्रदानकर प्रदाताको स्वर्ग-लाभ लेना चाहिये।

भूमि, दीप, अत्र, वस्त्र और युतके दानसे प्रदाता लक्ष्मी प्राप्त कर सकता है। घर, धान्य, छाता, माला, उपयोगी वृक्ष,

यान (सवारी), घृत, जल, शय्या, कुंकुम, चन्दन आदि जन्द द्विजको अधोगतिमें ले जाते हैं। प्रदान करनेसे स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

प्राप्त करता है। मृल्य लेकर भी वेदोंके अर्थ, वज्रोंकी विभिन्न विधियोंको सम्पादित करनेवाले तथा शास्त्र और धर्म-शास्त्रोंको लिखनेवाले ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। बेद-ज्ञास्त्र ही संसास्त्रे मूल (व्यवस्थापक) हैं। इसी कारण ईस्वरने सबसे पहले इन्होंकी सृष्टि की। अत: सब प्रकारका सत्प्रपत्न करके वेदोंका अर्थ-संग्रह करना चाहिये अर्थात् वेदोंके तात्पर्यको समझनेके लिये भलीभौति प्रयास करना चाहिये। जो अधिकारी इतिहास अयवा पुराण लिखकर दान देता है, वह ब्रह्मदानके अपने माता-पिता आदिके भरण-पोषणके लिये तथा अपने

म्लेच्छ-भाषा-भाषित लचन नहीं सुनने चाहिये, क्योंकि ये प्रतिग्रह लिया जा सकता है। (अध्याय ९८)

दान ग्रहण करनेका सामध्यं रहनेपर भी जो लोग दान सत्पात्रको विद्या प्रदान करनेवाला देवदुर्लभ बहालोकको प्रष्ठण नहीं करते, वे लोग उन्हीं लोकोंको प्राप्त करते हैं, जो दान-दाताको प्राप्त होते हैं।

कुरा, शाक, दूध, गन्ध तथा जल-ये वस्तुएँ बिना माँगे यदि कुलटा, पतित, नपुंसक एवं शत्रुके अतिरिक्त किसो दुष्कृतीके द्वारा भी दी जा रही हैं तो भी इनका प्रत्याख्यान नहीं करना चाहिये। यदि कोई सुकृती इन्हें बिना याचनाके दे रहा है, तब तो इनके प्रत्याख्यानका कोई प्रसंग ही नहीं है। देवता तथा अतिथिकी पूजा करनेके लिये, समान प्राप्त पुण्यका द्विगुणित पुण्य प्राप्त करता है। जीवनको रक्षाके लिये पतित आदि अत्यन्त कुल्सितको द्विजको नास्तिकोंके वचन, कुतर्क तथा प्राकृत और सोइकर अन्य सभीसे जितना अत्यावश्यक है, उतना

श्राद्धके अवसर तथा अधिकारी; श्राद्धकी संक्षिप्त विधि, महिमा और फल

विनाशिनी श्राद्ध-विधिका वर्णन करता है।

काल (अवसर) कहे गये हैं।

जो ब्राह्मण युवा (मध्यम वयस्क) होते हुए सभी वेटोंमें अग्रच (सतत अस्खलित अध्ययनमें सपर्थ), बोत्रिय, ब्रह्मवित्, मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदके तात्पर्यके बेता, ज्येष्ट भोजनीय एवं दान देने योग्य) हैं। साम नामक साम-विशेषके अध्ययनके लिये विहित वतके

याज्ञवस्क्यजीने कहा--ऋषिगणो। अब मैं सर्वपाप- अन्वेदके एकदेशके अध्ययनके लिये विहित वतके आचरणके साय जिमधुके अध्येता तथा ऋक् और यजुके एकदेश अमावास्या, अष्टका, वृद्धि (पुत्रजन्म आदि), कृष्णपक्ष, विसुपर्णके अध्ययनके लिये विहित ग्रतके आचरणके साथ उत्तरायण, दक्षिणायन, द्रव्य (अञादि)-साथ होना, ब्राद्ध- त्रिसुएर्णके अध्येता ब्राह्मण हैं, ये ब्राद्धकी सम्पत्ति माने जाते योग्य ब्राह्मणकी प्राप्ति होना, विषुवत्-संक्रान्ति (सूर्यके हैं, अर्थात् इन्हें भोजन कराने या दान देनेसे अक्षय फलकी तुला और मेक्सातिपर संक्रमण करनेका समय), मकर- प्राप्ति होती है। ऐसे ही भानजा, ब्राद्ध-योग्य ब्राह्मणीके संक्रान्ति, व्यतीपात, गजच्छाया-योग, चन्द्र-सूर्यग्रहण तथा लक्षणोंसे विशिष्ट ऋत्विक्, यजुर्वेदके एकदेश-विशेषके कर्ताकी श्राद्धके प्रति अभिरुचि होना—ये सब श्राद्धके अध्ययनके अङ्ग व्रतके आचरणके साथ उस एकदेशके अध्येता, दीहित्र, शिष्य तथा अन्य सम्बन्धी— बन्धु-बान्धव एवं कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ पेञ्चाग्रि-विद्याके अध्येता, ब्रह्मचारी, मातृ-पितृभक्त एवं जाननिष्ठ बाह्मण श्राद्धकी सम्पत्ति (श्राद्धमें

जो रोगो (महारोगसे युक्त), अङ्गहीन, अधिकाङ्ग, आचरणके साथ ज्येष्ठ सामके अध्येता, त्रिमधु नामके काल, पौनर्भव (विधवाके पुनर्विवाहके अनन्तर उत्पन्न पुत्र),

१-हेमना-ऋतु एवं तिरिश-ऋतुके महीनोंमें आनेवाली कृष्णपक्षकी अष्टमीमें 'अष्टका' होती है।

२-पञ्चाप्रि—सभ्य, आवसध्य, आहवनीय, गार्डणय और दक्षिणानि—ये पाँच अग्नियाँ हैं।

३-पौरर्भन — पुरर्भुसे उत्पन्न। पुरर्भू उस स्त्रीको कहते हैं, जो विवाहके पहले किसी दूसरे पुरुषसे विवाहित हो पुकी है अथवा किसी दूसरे पुरुषके संसर्गसे दूषित हो चुकी है।

योग्य नहीं हैं।

श्राद्धके एक दिन पूर्व ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना चाहिये। निमन्त्रित ब्राह्मणोंको उस दिन संयम रखना चाहिये। श्राद्ध-दिश्वसके पूर्वाह्यकालमें उपस्थित उन ब्राह्मणोंको आचमन कराकर आसनोपर बैठा दे। विश्वेदेव अधवा आध्युदियक श्राद्धके लिये दो ब्राह्मण तथा पितृपात्रके स्थानपर यथाशक्ति ब्राह्मणको बैठाना चाहिये अथवा इनमें दो ब्राह्मणींको विश्वेदेवपात्रके आसनपर पूर्वाधिमुख वया तीन ब्राह्मणोंको पितृपात्रके आसनपर उत्तराधिमुख अधवा दोनों (देव-पितर)-के लिये एक-एक ब्राह्मण आसनपर बैद्धना चाहिये। इसी प्रकार मातामहादिके ब्राद्धमें व्यवस्था करनी चाहिये और मातामह-ब्राह्ममें विस्केटेव-सम्बन्धी कृत्य अलग-अलग या एक साथ किया जा सकता है।

इसके बाद ब्राह्मणींको हस्त-प्रश्नालनके लिये जल (हस्ताप्यं) और आसनके लिये कुश प्रदानकर उन्होंको अनुज्ञासे 'विश्वे देवास०' इस मन्त्रसे विश्वेदेवका आवाहन करके भोजन-पात्रमें यस विकीर्ण करे। तदननार पवित्रकपुक्त अर्घ्यपात्रमें 'शं नो देवी०' इस मन्त्रसे उसमें जल तथा 'यवोऽसि०' मन्त्रद्वारा यत्र डालकर 'या दिव्या०' मन्त्रसे ब्राह्मणके हाथमें अध्योदक प्रदानकर गन्ध, दीपक, नाला, हार आदि आभूयण तथा वस्त्र दान करे।

तत्पश्चात् अपसव्य होकर पितरोंको अप्रदक्षिण (बाम)-क्रमसे स्थान (कुशरूपी आसन) प्रदान करे और (आसनके लिये मोटकरूप) द्विगुणित कुश देकर 'उशन्तस्वा०' मन्त्रसे उन पितराँका आसाहन करे। उसके बाद पितृ-स्थानपर विराजमान ब्राह्मणको आज्ञा लेका 'आयन् मः पितर:o' इस मन्त्रका जप करे।

पितृकार्यमें यसके स्थानपर तिलोंका प्रयोग करना चाहिये और तिलके साथ उन पितृगणोंको पूर्ववत् अध्यादि प्रदान करे। उन अभ्यौं (अर्घ्यपात्रों)-के संखव (ब्राह्मणके हाथमें दिये गये अर्घ्योदकका तीचे गिरा हुआ जल)-को पितृपात्रमें रखकर और दक्षिणाग्र कुशस्तम्बको भूमिपर रखकर उसके कपर 'पितृभ्यः स्थानमसि०' इस मन्त्रके द्वारा

अंबकोणी आदि आचारभ्रष्ट तथा अवैष्णव हैं, वे श्राद्धके उक्त अर्घ्यपात्र (पितरोंके वामभागमें) भूमिपर उलटकर रख दे। उसके बाद घृत-सम्मिश्रित अन्नको अग्निमें प्रदान करनेके लिये आचार्यसे श्राह्यकर्ता अग्नौकरणकी आज्ञ प्राप्त करे। जब आचार्य 'ऐसा ही करो' यह कह दें तो उन्हें पितृयञ्जके समान ही उस अग्निमें युक्त धृताक हव्यका हवन करके आहुति करनेसे शेष बचे हुए अन्नको समाहित मनसे पितरोंके भोजन-पात्रोंमें रख दे। पितरोंके भोजन-पात्रोंके रूपमें यधाराक्ति चौदोके पात्रोंका प्रयोग करना चाहिये।

'पृथिकों ते पात्रं०' मन्त्रसे पात्रको अभिमन्त्रित करे। 'इदं विष्णुः मन्त्रका पाट करे और ब्राह्मणके अंगुष्टको पितरीके लिये परिवेशित अन्तमें प्रवेशित करे। व्याहतियोंके सहित 'गायत्री' एवं 'मधुवाता०' मन्त्रका जप करके सुखपूर्वक भोजन करें इस प्रकार बाह्मणोंसे निवेदन करे और ब्राह्मण मीन होकर भोजन करें। बाद्धकर्ता क्रोधादिसे रहित होकर बड़े हो तड़ा-भावसे उन ब्राह्मणोंको बिना शीग्रता किये उनका अभीष्ट अत्र तथा हविष्यात्र उन्हें प्रदान करे और ब्राह्मणोंको तृतितक 'पुरुषसृक' तथा 'पवमानसृक' आदिका जप करता रहे। उसके बाद पुन: पहलेके समान 'मधुवासा०' मन्त्रका पाठ करे और शेपालको लेकर उन संतुत ग्राह्मणोंके द्वारा 'हम तृप्त हो गये', इस प्रकार कहनेपर उन बाह्मणीकी अनुज्ञासे बाद्धकर्ता दक्षिणाधिमुख होकर तिलसहित उस शेषातको ब्राह्मणोंके उच्छिष्ट पात्रीक समीपर्य ही भूमिपर जलके साथ रख दे और प्रत्येक ब्राह्मणको मुख-प्रश्नालनके लिये अलग-अलग जल प्रदान करे।

उच्छिष्टके समीपमें पितर आदिके लिये पिण्डदान करके उसी प्रकार यातामहादिके लिये भी पिण्डदान करे। उसके बाद ब्राह्मणोंको आचमन कराये। तदनन्तर ब्राह्मणोंके 'स्वस्ति' ऐसा कहनेपर ब्राह्मकर्ता 'अक्षरव्ययस्तु' कहकर ब्राह्मणीक हाथमें जल प्रदानकर यथासामध्ये दक्षिणा दे और 'स्वधां वास्रविष्ये' ऐसा कहे। 'बाष्यताष्' के द्वारा ब्राह्मण ब्राद्धकर्ताको आज्ञा प्रदान करें। उनकी अनुज्ञा प्राप्तकर ब्राद्धकर्ता पितृजनोंके लिये 'स्वधा' इस वाक्यका प्रयोग करे। पुन: उन ब्राह्मणोंके द्वारा 'स्वधा' ऐसा कह देनेके परचात् श्राद्धकर्ता पृथ्वीपर जलसिञ्चन करे।

१-अवकीर्णी— ब्रह्मचर्यात्रममें रहते हुए जिसका चीर्य स्वातित हो गया है।

२-आदिसे कुण्ड, गोलक, कुनखो एवं काले दौतवाले बादान समझे काने वाहिये। पति जीवित रहते हुए दूसरे पुरुषसे उत्पन्न कुण्ड एवं पतिकै निधनके बाद दूसरे पुरुषसे उत्का गोलक होता है।

'विश्वेदेवा: प्रीयन्ताम्' यह कहकर त्राद्धकर्ता विश्वेदेवींको जल अपितकर उन्हें विसर्जित करें। तदनन्तर पितर्येसे इस प्रकारकी प्रार्थना करे-

> दातारो नोऽभिवर्धनां वेदाः संततिरेव च॥ श्रद्धा च नो मा व्यगमद वह देयं च नोऽस्त्वित।

> > (441 24-20)

पितृगण ! हमारे यहाँ दाताओं, बेदों और संतानोंकी वृद्धि हो, हमारी श्रद्धा कभी न घटे, देनेके लिये हमारे पास बहत सम्पत्ति हो। तदनन्तर 'वाजे वाजे०'इस मन्त्रका उच्चारण करते हए श्राद्धकर्ता प्रसन्नताके साथ यथाक्रम पितरोंका विसर्वन करे। जिस अर्घ्यपात्रमें पहले संसव-जल रखा गया वा, उस पितृपात्र (अर्घ्यपात्र)-को सीधा कर दे तथा ब्राह्मकर्ता उन आमन्त्रित ब्राह्मणोंका प्रदक्षिणाके साथ अनुगमन करते हुए उन्हें विदा करे। इसके परचात ब्राद्धसे अवशिष्ट अक्रका भोजन करके उस रात्रिमें सपत्रीक बहाचर्यवतका पालन करे।

विवाहादिक माञ्चलिक अवसरोंपर पितरोंका नान्दोनख ब्राद्ध करना चाहिये। उनके लिये दक्षि, कर्कन्थ (बदरी फल)-मित्रित यबात्रका पिण्डदान करना चाहिये।

एकोहिप्ट! श्राद्ध विक्षेदेवसे रहित एकात्र और एक पवित्रकसे युक्त होता है। इस श्राद्धमें आवाहन और अग्नीकरण नहीं किया जाता। इस श्राद्धका सम्पूर्ण कृत्य अपसब्ध अर्घात दक्षिण कन्धेपर यज्ञोपबीत धारण करके करना चाडिये। बाद्धकर्ता इस ब्राद्धमें नियन्त्रित ब्राह्मजोंको पवित्र भूमिपर रखे हुए आसनपर 'डपतिप्रताम्' कहकर चैठनेके लिये निवेदन करे। उसी प्रकार 'अधिरम्यताम्' कहकर विसर्जन करे। ब्राह्मणोंको भी 'अभिरता: स्म' यह वचन कहना चाहिये।

संपिण्डीकरण श्राद्धमें श्राद्धकर्ता तिल एवं गन्धमित्रित जलसे चार पात्रोंको परिपूर्ण करे। उन पितृपात्रोंमेंसे एक पात्रको अर्घ्य प्रदान करनेके लिये प्रेतपात्रके रूपमें कल्पित करे। तदनन्तर श्राद्धकर्ता प्रेतपात्रमें रखे हुए अर्घ्य-जलके कुछ भागको पिता आदिके तीन पात्रोंमें मिलाकर पूर्ववत् अर्घ्वादि क्रियाका सम्पादन करे। 'ये समाना०' इन दो मन्त्रोंके द्वारा प्रेतिपण्डको तीन भागोंमें विभक्तकर पितरीके पिण्डोमें मिला दे। इसके अनन्तर विहित एकोहिस्ट श्राद्ध स्त्री (माता)-का भी करना चाहिये। जिसका सपिण्डीकरण एक वर्षसे पूर्व होता है, उसके उद्देश्यसे भी एक वर्षपर्यन्त सामोदक कम्भ प्रतिदिन, प्रतिमाह यथाशक्ति ब्राह्मणको देना चाहिये। पितरोंको समर्पित पिण्डोंको गौ, अज, ब्राह्मण, अधि अथवा जलको अर्पित कर दे।

हविष्यात्र (तिल, ब्रीहि, यव आदि)-से श्राद्ध करनेपर पितृगर्जोंको एक मास तथा पायससे श्राद्ध करनेपर उन्हें एक वर्षपर्यन्त संतृष्टि प्राप्त होती है।

मृत व्यक्तियोंके लिये कृष्ण चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करना बाहिये। ऐसा करनेपर बाद्धकतांको मृत्युके पश्चात स्वर्ग तो प्राप्त होता ही है, जीवनकालमें भी उन (ब्राद्धकर्ता)-को उत्साह, रोप, क्षेत्र तथा शक्तिकी प्राप्ति होती है।

जो विधिवत् अपने पितृजनींके लिये श्राद्ध करता है, वह पत्र, सर्वजनत्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रमुखता, माङ्गलिक दक्षता, अभीष्ट कामना-पूर्ति, वाषिज्यमें लाभ, निरोगता, यश, शोकराहित्य, परम गति, धन, विद्या, वाक-सिद्धि, पात्र, गी, अज, आविक (भेंड), अश्व और दोर्घाय प्राप्तकर अन्तकालमें मोछ-लाभ प्राप्त करता है। कृत्तिकादिसे भरणीपर्यन्त प्रत्येक नक्षत्रमें ब्राद्ध करनेवाले व्यक्तिको भी इन सभी सुर्खोंकी प्राप्ति होती है। सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तथा भवन आदि मुख-साधन स्वयं ही ब्राह्मकर्ताको सुलभ होते हैं अर्थात् इस प्रकारका ब्राद्धकर्ता भोजन, बस्त्र तथा भवन आदिसे परिपूर्ण रहता है।

पिता-पितामहादि पितर संतुष्ट होकर ब्राद्धकर्ताको नित्य आयु, संतति, धन, विद्या, राज्य, सभी प्रकारके सुख, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करते हैं। (अध्याय ९९)

विनायकणान्ति-स्नान

याज्ञवल्क्यजीने कहा-हे ऋषियो। अब आप सभी विनायकको अप्रसन्नतासे ग्रस्त (आविष्ट) पुरुषके लक्षणोंका स्नान करता है। उसे स्वप्रमें मरे हुए प्राणियोंके सिरोंका दर्शन श्रवण करें।

विनायकसे ग्रस्त व्यक्ति स्वजावस्थामें बहुत अधिक होता है। वह उद्गिनमन रहता है। उसके सारे प्रयत्न निष्फल

१-एक व्यक्ति (पिता)-के उद्देश्यमें किया जानेवाला बाद एकोहिट है।

२-ये चार पात्र पितरोंके लिये अलग-अलग विहित हैं। इनके अहिरिक विकारेक्के दो पात्र तो होते ही हैं।

३-इस एकोट्रिप्टका तात्पर्य यह है कि पार्वण ब्राद्धमें माताका ब्राद्ध अलगसे करना चाहिये (या॰ मिताश्ररा, ब्रा॰ प्र॰ अ॰ स्लोक २५४)।

रहते हैं। विना कारण उसे पीड़ा होती है। विनायककी अप्रसन्नतासे युक्त होनेपर राजा राज्यसे विहत रहता है, कुमारी पतिसे वश्चित रहती है तथा गर्भिणी स्त्री पुत्र-लाभसे वश्चित रहती है। अतएव विनायककी शानिके लिये किसी पवित्र दिन एवं शुभ मुहुर्तमें उसे विधिपूर्वक स्नान कराना चाहिये। खानको विधि संक्षेपमें इस प्रकार है- भद्रासनपर बिठाकर ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचनपूर्वक स्नान कराना चाहिये। पीली सरसों पीसकर उसे पुत-मिश्रित करके उबटन बनाये और उस व्यक्तिके सम्पूर्ण शरीरमें मले। फिर उसके मस्तकपर सर्वीपधिसहित सब प्रकारके सुगन्धित इञ्चका लेप करे। सबीपधियुक्त चार कलहोंके जलसे ठान कराना चाहिये। सरोवर आदि पाँच स्थानींकी मिट्टी, गोरोचन, गन्ध और गुग्गुल-ये वस्तुएँ भी उन कलशोंके जलमें छोड़े।

प्रथम कलशको लंकर आचार्य निम्नलिखित मन्त्रसे उसे रनान कराये-

> महस्त्राक्षं जनधारमृषिभिः पावनं स्मृतम्॥ तेन त्वामधिविद्वापि पावमान्यः पुनन् ते।

(test 1-4) जो सहस्रों नेत्र (अनेक प्रकारकी शक्तियों)-से युक्त

हैं, जिनकी सैकड़ों भाराएँ (प्रवाह) हैं और जिसे महर्षियोंने पवित्र करनेवाला बताया है, उस पवित्र जलसे मैं (विनायकग्रस्त) तुम्हारा (उपद्रवकी शान्तिके लिये) अभिवेक

करता है। यह पावन जल तुम्हें पवित्र करे।

द्वितीय कलशके जलसे निम्नलिखित मन्त्र पढ्ते हुए अधियेक करे-

> धर्ग ते वरुणी राजा धर्म सूर्यो बृहस्पति: ॥ भगिमन्त्रम्य वायुक्ष भगं समर्वयो ददुः।

> > (20014-6)

राजा वरुण तथा भगवान् सूर्य एवं देवगुर बृहस्पति आपके सीभाग्यकी अभिवृद्धि करें, इसी प्रकार देवराज इन्द्र, वायुदेव तथा सप्तर्षिगण भी आपके सौभाग्यकी अभिवृद्धि करते रहें।

तृतीय कलशके जलसे निम्नलिखित मन्त्र पड़ते हुए अधिषेक करे-

वसे केशेष दौर्धाग्यं सीमने वस्त्र मुद्धि।। ललाटे कर्णयोरभ्जोरायस्तद्धन् ते सदा।

तुम्हारे केलोमें, सीमन्तमें, मस्तकपर, ललाटमें, कानोंमें और नेत्रोंमें भी जो दुर्भाग्य है, उसे जलदेवता सदाके लिये राना करें।

तदननार पहले कहे गये तीनों मन्त्रोंसे चतुर्थ कलशके जलसे स्नान कराये। इसके बाद बॉर्ये हाथमें कुशा लेकर स्नान किये हुए प्राणीके सिरको कुशसे स्पर्श करते हुए ब्राह्मजको संयमित होकर गूलरकी लकड़ीसे निर्मित सुवाके द्वारा सार्वपतैल (सरसोंका तेल)-से अग्निमें आहुति प्रदान करनी चाहिये। आहुति देनेके लिये ये मन्त्र विहित हैं— 'पिताय स्वाहा', 'सम्पिताय स्वाहा', 'शालाय स्वाहा', 'कटब्रुटाय स्वाहा', 'कृष्याण्डाय स्वाहा', 'राजपुत्राय स्वाहा' ('स्वाहा' के पूर्व प्रयुक्त सभी नाम विनायकके हैं। या० मि० ग० प्र० अ० श्लोक २८५)।

इसके अनन्तर लौकिक अग्निमें स्थालीपाक-विधिसे वर पकाकर उससे सभी निर्देश्ट विनायक नामवाले 'स्वाहा' युक्त छ: मन्त्रीसे उसी लीकिक अग्रिमें ही हवनकर अवशिष्ट हविजेषके द्वारा इन्द्र, आन्त्र, यम आदिको बलि देनी चाहिये। तत्परचात् किसी चतुष्पथ (चीराहे)-पर कुताँका आसन बिछाकर उसमें पुष्प, गन्ध, उण्डेरककी माला, कर्ज-पर्कर व्यवल, मृतिमित्रित पुलाब, मृली, पृड़ी, पुआ, दही, पायस, <u>पृत, गुहपिष्ट, लड्ड तथा इक्रु—इन सभी सामग्रियोंको एकत्र</u> करके रख दे। तदननार विनायकजननी भगवती अध्यकाका उपस्थान करे और हाथ जोड़कर अर्घ्य प्रदान करे।

पुत्रजन्मको कामना करनेवाली स्त्रीको दुर्वा और सरसाके पुष्योंसे भगवती दुर्गाकी अर्चना करके स्वस्ति-वाचनके साथ इस प्रकार उनकी प्रार्थना करनी चाहिये-

> कर्प देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे। पुत्रान्देहि क्रियं देहि सर्वा-कार्याप्रव देहि मे॥

हे भगवति! आप मुझे रूप, यश और ऐश्वर्य प्रदान करें। हे देखि! आप मेरे लिये पुत्र दें, लक्ष्मी दें और मेरी सभी कापनाओंको परिपूर्ण करें।

तत्पश्चात् ब्राह्मजाँको भोजन प्रदानकर संतुष्ट करे। अपने गुरुको टो वस्त्र प्रदानकर अन्य ग्रहोंकी पूजा करके मुर्वार्चनमें निरत रहे। इस प्रकार विनायक और ग्रहोंका पूजन करके मनुष्य अपने सभी कार्योमें सफलता प्राप्त करता है। (अध्याय १००)

ग्रहशान्ति-निरूपण

याञ्चवत्वयजीने कहा—हे मुनियो। लक्ष्मी एवं सुख-शान्तिके इच्छुक तथा ग्रहोंकी दृष्टिसे दु:खित जनोंको ग्रहशान्तिके लिये तत्सम्बन्धित यत्र करना चाहिये। विद्वानीके द्वारा सूर्य, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राह् और केंद्र-ये नी ग्रह बताये गये हैं। इनको अचिक लिये इनकी मूर्ति क्रमरा: इन द्रव्योंसे बनानी चाहिये—ताप्र, स्फटिक, रकचन्दन, स्वर्ण, सुवर्ण, रजत, अयम् (लोहा), सीसा तथा कांस्य। अर्थात् सूर्यप्रहके लिये ताम्र धातु, चन्द्रके लिये स्फटिक, मंगलके लिये रकचन्द्रन, बुध एवं बृहस्पतिके लिये स्वर्ण, शुक्रके लिये रजत, शनिके निये लोहा, राहुके लिये सीसा तथा केतुके लिये कांस्य धानु प्रशस्त है।

सूर्यका वर्ण लाल, चन्द्रमाका सफेद, मंगलका लाल, बुध तथा बृहस्पतिका पीला, सुक्रका श्रेत, शनि, राहु और केतुका काला वर्ष होता है। इसी वर्णके इनके द्रव्य भी होते हैं। एक पाटेपर वस्त्र विछाकर ग्रहवर्गीक अनुसार निर्दिष्ट द्रव्योंके द्वारा विधिपूर्वक उनकी स्थापना तथा पूजा-होम करे। उन्हें सुवर्ण, वस्त्र तथा पुष्प समर्पित करे। उनके लिये गन्ध, बलि, भूप, गुग्गुल भी देना चाहिये। तत्पक्षत् मन्त्रोंके द्वारा प्रत्येक ग्रह-देवताके निमित्त चर पदार्व अर्पित करना चाहिये।

मन्त्रके द्वारा सूर्य, 'डठ इमं देवाc' मन्त्रसे चन्द्र, 'डठ फल प्राप्त होते हैं। (अध्याय १०१)

अग्रिपूर्धादिकः ककुत्०'मन्त्रके द्वारा मंगल, 'ॐ उद्बुख्यस्व०' मन्त्रसे बुध, 'ॐ बृहस्पते०'इस मन्त्रके द्वारा बृहस्पति, 'ॐ अचारपरिखुतम्०' मन्त्रसे शुक्त, 'ॐ हां नो देवी०' मन्त्रके द्वारा शनि, 'ॐ कचानश्चि०' मन्त्रसे राहु तथा 'ॐ केतुं कृष्यन्०' मन्त्रके द्वारा केतु ग्रहके लिये आहुति देनी चाहिये।

इन ग्रहोंके लिये इसी ऋमसे यन्दार, पलाश, खैर, अपामार्ग (चिचड़ा), पिप्पल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुराकी समिधाएँ बिहित हैं। इन समिधाओंको पृत, दक्षि तथा मधुसे मित्रितकर हवन करना चाहिये। तदनन्तर क्रमानुसार उपर्युक्त मन्त्रोंके द्वारा पदाधौंकी आहुति प्रदान करे। यथा—सूर्यके लिये गुड़, चन्द्रके लिये भात, मंगलके लिये पायस, बुधके लिये साठी चावलकी छीर, बृहस्पतिके लिये दही-भात, शुक्रके लिये पृत, जनिके लिये अपूप (पुआ), राहुके लिये फलका गूदा और केतुके लिये अनेक वर्णके पकाये हुए धान्यकी आहुति देनी चाहिये।

द्विजको चाहिये कि इसी क्रमसे प्रत्येक ग्रहके लिये अक्ष भी दानरूपमें दे। तदनन्तर प्रत्येक ग्रहके निमित्त यधाक्रम—धेनु, शंख, बैल, सुवर्ण, वस्त्र, अध, कृष्णा गौ, अयस् (जस्त्र आदि) तथा छागकी दक्षिणा देनी चाहिये। उसके बाद यथाक्रम 'ॐ आकृष्णेन रवता०' इस इस प्रकार प्रहोंको सदैव पूजा करनेसे मनुष्यको राज्यादि

वानप्रस्थ-धर्म-निरूपण

धर्मका वर्णन कर रहा हैं, आप सभी इसका ब्रवण करें।

संरक्षणका भार पुत्रोंके ऊपर छोड़कर अथवा पत्नीके सहित अर्थात् दान-ग्रहणसे दूर रखे। वनमें जाना चाहिये।

निर्वाह करते हुए अपनी श्रीत-अग्नि एवं गृह-अग्निके साथ जोवनयापनके लिये सीमित अर्थ-संग्रह करना चाहिये। वनमें जाय। शान्त एवं क्षमावान् रहकर वह अहर्निश

धाइवल्क्यजीने कहा — हे महर्षियो ! अब मैं बान्प्रस्थातमक भृत्योंको तृप्त (संतुष्ट) करे । आत्मजानमें तत्पर रहनेवाला वह वानप्रस्थी दादी, जटा तथा लोमराशिको धारण करे, वानप्रस्थ-आश्रममें प्रविष्ट पुरुवको अपनी पत्नीके इन्द्रियोंका दमन करे, त्रिकाल स्नान करे एवं अपनेको प्रतिग्रह

ऐसे व्यक्तिको स्वाध्यायवान्, भगवद्ध्यानपरायण तथा वानप्रस्थ-धर्मका पालन करनेवाला ब्रह्मचर्य-व्रतका सभी लोगोंके हितसाधनमें लगे रहना चाहिये। उसको

इसके पास जो कुछ शेष सामग्री हो, उसका आश्विन-देवोपासनामें निमान रहे। वह बिना जोती हुई भूमिसे उत्पन्न मासमें परित्यागकर वह व्रतादिके द्वारा ही समय व्यतीत अन्नके द्वारा अग्निदेव, पितरों, देवताओं, अतिथियों तथा करे। यदि शक्ति हो तो एक मास या एक पक्षका व्रतकर मास या पक्षके अनामें ही भोजन करे। ऐसे व्रती अपने चब्तरे)-पर शयन करे तथा हेमन्त-ऋतुमें आईवस्त्रींको दाँतोंको ही उल्खल मानकर उन्होंसे अलको तुषसे भारण करके योगाध्यासके द्वारा अपने दिन व्यतीत करे। विहीनकर अपनी प्राण-रक्षाके लिये उपयोगमें लाते हैं। जो कॉटोंसे उसे पीड़ा पहुँचाये उसके प्रति भी क्रोध

चाहिये और वह अपने सभी धार्मिक कृत्योंका सम्पादन यथासम्भव फलसे करे (अबसे नहीं)। वह ग्रीष्म-ऋतुमें वानप्रस्थियोंमें दु:ख और सख भोगनेकी एक समान ही पञ्चाग्रिके मध्य स्थित रहे, वर्षा-ऋतुमें स्थण्डल (खुले क्षमता होनी आवश्यक है। (अध्याय १०२)

वानप्रस्थीको चान्द्रायणव्रत करना चाहिये, भूमिपर सोना न करे और जो अङ्गोमें चन्द्रनका अनुलेपन करे उसपर भी प्रसन्न न हो, उन दोनोंके प्रति वह समान भाव रखे।

संन्यास-धर्म-निरूपण

भिश्च-धर्म (संन्यास-धर्म)-का वर्णन कर्केगा। आप सब भिकाची होकर ग्रामका आक्रम ग्रहण करे। प्रमादरहित उसका जान प्राप्त करें।

गृहस्थाश्रम एवं वानप्रस्थात्रममें बिहित सभी बीत इष्टियोंको सम्पन्नकर सर्ग वेद सम्बन्धी दक्षिणा जिस इष्टिमें विहित है, उस प्राजापत्य इष्टिको भी सम्पन्न करके अन्तमें चेद-विहित विधानसे समस्त श्रीताग्नियोंको अपनेमें आग्रेपित करके संन्यास ग्रहण किया जा सकता है। संन्यासीको नाहिये कि वह सभी प्राणियोंका हितेची हो, ताना हो, त्रिदण्डी हो, (सन्यासीके लिये बाँसके बने तीन दण्ड धारण करनेका विधान है।) वह कमण्डल धारण करे।

याञ्चयत्क्यजीने पुनः कहा-हे सजनवृन्द। अब मैं सभी प्रकारके सुख-साधनयुक्त भवनींका परित्यागकर होकर भिश्वाटन करे और सायंकाल ग्राममें न दिखलायी पहे। जो ग्राम भिधुकाँसे रहित हो, वहाँपर वह लोभशून्य होकर प्राणधारणमात्रके लिये भिक्षा मौंगे।

> यम-नियमका पालन करते हुए योग-सिद्ध होकर संन्यासोको एकदण्डी अथवा परमहंस बनना चाहिये। इस प्रकार रहता हुआ संन्यासी शरीरका परित्यागकर इसी लोकमें अमरत्व प्राप्त कर लेता है। दान देनेवाला, अतिथिका आदर करनेवाला, ब्रह्मज यथाविधि श्राद्ध करनेवाला गृहस्य भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है। (अध्याय १०३)

कर्मविपाक-निरूपण

भारकीय यातनाओंको भोगनेसे उस पापकर्मका धय होता (कुहरोगी) होकर जन्म ग्रहण करते हैं अथवा ये सभी दोष है। शेष यने हुए पापीका शमन करनेके निमित प्राणी पुन: उक्त प्राणियोंकी संतर्तिमें प्रकट होते हैं। विभिन्न योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। यदा-

भास-फुसादिकी योनिमें जन्म लेता है। इन योनियोंमें पाप- सुबना देनेवाला दुर्गन्थयुक्त मुखवाला होता है। शमन होनेके पश्चात् वे ब्रह्महत्यादिके पापो पुन: यथाक्रम ब्राह्मणके धनका हरण करनेवाला तथा कन्याको

याज्ञबल्क्यजीने कहा-पापकर्मसे उत्पन्न होनेवाली अयरोगी, काले दाँतवाले, कृत्सित नखवाले तथा शिपिविष्टक

अप्रकी चौरी करनेवाला रोगी, वचन देकर उसका ब्रहाहन्ता नरकभोगके पक्षात् क्षान्, गर्दभ और जैट- पालन न करनेवाला गैंगा, धान्यका अपहरणकर्ता अधिक योनिमें उत्पन्न होता है। मदिरापायी व्यक्ति मेडक और कुओं अङ्गोवाला, कुगलखोर दुर्गन्थसे युक्त नाकवाला, तेलका होता है। सुवर्णका चोर कृषि-कीट तथा गुरुतस्पणामी खोर तैसपायी अर्धात् तिसचट्टा कीट, अविद्यमान दोपकी

१-चार दिशाओंमें चार अग्नि और ऊपर सूर्य।

२ व्यवसायकी दक्षिसे अनेक प्रकारके पाखण्डके साथ भिक्षा माँगनेवाले वहाँ 'भिक्षक' शब्दसे अभिप्रेत हैं।

३-थॉंसके बने हुए तीन दण्डोंके विकल्पमें बॉंसके एक दण्डके धारणका भी विभान है। अत: संन्यासी बॉंसके एक दण्डको भी धारण कर सकता है। ऐसे संन्यासीको 'एकदण्डी' कहते हैं।

४-परमहंस उस अवपूतको कहते हैं, जो अपने ज़रीरको ममतासे सर्वधा वितिर्मुक हो। ये यथेष्ठ सवस्त्र-निर्वस्त्र आदि किसी भी रूपमें रह सकते हैं। इसके लिये कोई बन्धन नहीं होता।

खरीदनेवाला व्यक्ति वनमें राक्षम तथा बैल होता है। स्त्रका करते हैं। उस फलको भोगकर वे तिर्यक्रयोनिमें उत्पन्न अपहरणकर्ता हीनजाति और फ्रांक-पातका चोर मयूर- होते हैं। योनिमें जन्म लेता है। पृष्पका चोर छछन्दरी, धान्यापहारी मूषक, फलका चीर वानर, पशुओंका हरण करनेवाला इसरे जन्ममें दरिद्र या पुरुषाधम होते हैं। तत्पश्चात् अपने बकरी तथा दुधहर्ता काकयोनिमें उत्पन्न होता है।

यथाक्रम-गृध, धेतकृष्ठी तथा चीरो की योनि प्राप्त सम्पन्न हो जाते हैं। (अध्याय tox)

इस प्रकार भोग भोगनेके पश्चात् ये लक्षणभ्रष्ट पतितजन सत्कर्मोंसे निष्कल्य होकर वे योगीके महान् कुलमें जन्म मांस, चरत्र और नमककी चोरी करनेवाले मनुष्य लेते हैं और सुलक्षणोंसे युक्त होते हुए वे धन-धान्यसे

प्रायश्चित्त-विधान एवं सान्तपन, कुच्छ, पराक तथा चान्द्रायणादि वताँका विविध स्वरूप

याज्ञवल्क्यजीने पुनः कहा —हे मुनियो ! विहित कर्म न करनेसे, निन्दित (निषिद्ध) कर्मका आचरण करनेसे एवं इन्द्रिय-निग्रह न करनेके कारण मनुष्य अधीगतिको प्राप्त करता है । अतएव आत्मशृद्धिके लिये प्रयतपूर्वक प्रायक्षित करना चाहिये। इस प्रकार प्राथशित-कर्म करनेसे उसकी अन्तरात्मा प्रसन्न हो जाती है और लोक भी उसके साथ प्रसन्नतापूर्वक व्यवहार करता है। प्रायक्षित्रसे पापका विनाश भी हो जाता है। प्रायश्चित न करनेवाले तथा पश्चावापसे रहित पापीजन पापके प्रभावसे महारौरव नरकसे भी महाभयंकर ताबिख, लोहरांक, पृतिगन्ध, हंसाध, लोहितांद, संजीयन, नदीपथ, महानिलय, काकील, अन्धतामिस तथा तापन नामक नरकमें जाते हैं।

ब्रह्महत्ता, महापी, ब्राह्मणके सुवर्णका वीर, गुरुपबीगामी तथा इनका संसर्ग करनेवाले पनुष्य अपने पापके कारण अवीचि तथा कम्भीपाक नामक महाभयानक नरकका भीग

गुरु एवं येदकी निन्दा करना ब्रह्महत्याके समान हैं। निषिद्ध पदार्थका भक्षण, कृटिलतापूर्वक आचरण और रजस्वला स्त्रीका अधरपान मदिरापान नामक महापातकके सदश माना जाता है। अश्व तथा रत्नादिका अपहरण, सुवर्ण-चोरीके महापापकी भौति होता है। मित्रकी पत्नी, अपनी अपेशा उत्तम जातिको कन्या, चाण्डालो और बहन तथा पुत्रवधुके साथ सहवास करना गुरुपती-गमनके समान महापाप स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार माता-पिताकी बहन, मामी, विमाता, आचार्यपुत्री, आचार्यपत्री तथा पुत्रीके साथ रमण करनेवाला व्यक्ति भी गुरुपत्रीगामीके समान ही महापातकी होता है।

ऐसा महापापी मनुष्य लिंग-छेदनके पक्षात् वध करनेके वोग्य होता है। इस प्रकारके पापमें यदि स्त्री सकाम होकर ग्रींक्लच्ट होती है तो उसके लिये भी इसी प्रकारका प्राथक्षित-विधान कहा गया है।

गोहत्या, वात्यता (समयपर यजोपवीत-संस्कार न होना अर्थात् सावित्रीच्युत होना), चोरी (ब्राह्मणका सुवर्ण अथवा मुवर्ण-सद्दर अन्य द्रव्यका हरण करना), ऋण न लौटाना तथा देव, ऋषि एवं पितु-ऋणसे मुक्त होना, अधिकारी होते हुए भी अन्याधान न करना, विक्री न करने योग्य लवण आदिका विक्रय करना, परिवेदन , रुपये लेकर अध्ययन करानेवालेसे अध्ययन करना, रुपये लेकर अध्यापन करना, परस्त्रीके साथ सहवास, पारिवित्य, प्रतिषद्ध सुदसे जीविकायापन, नमकका उत्पादन, स्त्रीवध, शुरूवध, अधीक्षित वैरुप तथा श्रप्रियका वध करना और निन्दित धनसे जीविका चलाना, नास्तिकता, व्रतका लोप, स्त-विक्रय,

t-कैची आकाजवासा कीटविशेष (या० मितासरा, प्रायक्षित प्रकरण स्लोक २१५)

२-विहितस्यानुहानांत्रिन्दितस्य च सेवनात्। अनिष्ठहाच्येन्द्रयाणं नर: पतनमृच्यति॥ (१०५। १)

३-या० मिताधरा प्राव्यक स्लोक २२७

४-सहोदर श्रीष्ठ भाईके अविवाहित रहते हुए छोटा भाई बाँद विवाह एवं ऑग्ब्रिड ग्रहण करता है से वही परिवेदन नामक पाप है।

५-पुरु एवं पुरुके समान वेहजनोंके अतिरिक्त स्वी।

६-स्रोटे भाइंके विवाहकर लेनेपर ज्येहके द्वारा विवाह न करनेपर होनेवाला दीव पारिवित्य कहलाता है।

कन्याको दूरित करना, बड़े भाईकी उपेक्षा करके अग्न्याधान वर्षके अनुसार प्रायक्षित करे। हत्या करनेके लिये उद्यत तथा विवाह करनेवालेको यजन कराना तथा ऐसे व्यक्तिको होनेपर यदि हत्यारेको उस कृत्यमें सफलता नहीं प्राप्त कन्यादान करना, गुरुसे अतिरिक्तके साथ कुटिलता करना, होती है तो भी वह हत्याके पापसे मुक्त नहीं है, उसको व्रतका लोप, केवल अपने लिये भोजन बनानेवाला, उस पापका प्रायक्षित करना चाहिये। मद्यपान करनेवाली स्त्रीका सम्पर्क, स्वाध्याय, अग्नि, पुत्र तथा चन्धुका परित्याग, असत्-शास्त्रका अध्ययन, भार्चा एवं ब्रह्महत्त्याके लिये विहित प्रायश्चितका दुगुना प्रायश्चित-स्रत अपना विक्रय— ये सभी निन्दित कर्म उपपातक कहे गये हैं। करे। मदिरापान करनेवालेका प्रायक्षित, अग्रिके समान प्रतप्त

खोपड़ी)-को हाथमें लेकर तथा दूसरा एक शिर:कपाल और जल समझकर भूलसे मंदिरा पी लेनेपर जटाधारण ध्वजके समान दण्डमें लगाकर चले और भिशामात्रसे करके मलिन वस्त्र धारणकर अग्निके समान तह घृत पीते जीविका-निर्वाह करता हुआ अपने पापकर्मका उद्घोष करते हुए बारह वर्षतक अल्प भोजन कर आत्मशुद्धि करे अथवा जानते हुए इच्छापूर्वक ब्रह्महत्या करनेपर 'लोमभ्यः स्वाहा' इत्यादि मन्त्रके अनुसार लोमसे सरीरके अवयवंकि प्रतिनिधिरूप यथाविहित विभिन्न द्रव्योंकी आहुति देकर अनामें अपने शरीरका भी प्रायक्षित विधानमें निर्दिष्ट विधानके अनुसार अग्निमें प्रक्षेप करे। अपने प्राणीका त्याग करके ब्राह्मणकी रक्षा करनेसे भी ब्रह्महत्याकी शुद्धि हो जाती है।

अन्य किसी प्रकारके भयरूप आतंकसे ग्रस्त ब्राह्मणको अथवा मार्गमें पड़ी हुई ऐसी ही गायको निरोग या निरान्तक सकता है। योग्य पात्रमें समर्पित करके अपनेको शुद्ध किया जाय। वह दस पापसे विमुक्त हो सकता है। सोमयाग प्रयोगमें वर्तमान क्षत्रिय और वैश्यका वध करनेवर करनेवाले पापीने जिस वर्णका गर्भ नष्ट किया हो, उसी करते हुए गौओंका अनुगमन तथा गौका दान करे। वर्णके अनुसार उसको उस पापका प्रायक्षित करना चाहिये। रजस्वला होनेके बाद ऋतुस्नान की हुई स्थीको एक मासतक दुग्ध-पान अथवा पराक नामक व्रत करके

माता-पिता तथा मित्रका परित्याग, तालाब-उद्यानका विक्रय, इत्या करनेवाला जिस वर्णकी स्त्रीकी इत्या की है, उस

सोमयागके लिये दीक्षित ब्राह्मणकी हत्या करनेपर हे मुनियो! आप अब इनके प्रायक्षितका ज्ञान प्राप्त करें— मंदिरा एवं गोमूत्रका अथवा अग्निके समान लाल-लाल ब्रह्महत्या करनेपर पापी व्यक्ति शिर:कपाल (खपंर- खौलता हुआ गोष्तपान एवं गोदुग्थपान करनेसे होता है हुए बहाहत्यांके लिये बिहित इत करे तथा पुन: सवर्णीचित संस्कार करे तब शुद्धि होती है।

> वीर्ष, बिहा, मूत्रका पान करनेवाली ब्राह्मणी एवं सुरा पीनेबाली ब्राह्मणी पातकी हो जाती है। पतिलोकसे परिश्रष्ट होकर वह क्रमश: गुधी, सुकरी तथा कुतियाकी योनिमें जन्म लेती है।

ब्राह्मणके सुवर्णको चोरी करनेवाले द्विजको चाहिये कि वह राजाको मूसल समर्पित करके अपने चौर्य-कर्मका उद्गोष करे। तत्पक्षात् उस मूसलके आधातसे वह मृत्युको अत्यधिक कष्ट देनेवाले दु:सह बहुकालव्यापी रोग या प्राप्त हो या जीवित दोनों दशामें पवित्र हो जाता है। ऐसा द्विज अपनी जीलके बराबर सुवर्ण देकर भी आत्मशुद्धि कर

करके भी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति पायी जा सकती है। जो गुरु-पत्नीके साथ सहवास करता है,उसको दहकती यदि कदाचित् प्रमादवश ऐसे ब्राह्मणको हत्या किसीके द्वारा हुई लौहमयी स्त्री-प्रतिमाके साथ शयन करके अपने होती हैं, जो ब्राह्मणके लिये अपेक्षित गुर्जेंसे युक्त नहीं है। शरीरका परित्याग करना चाहिये अथवा अपना लिंग और तो इस हत्यासे होनेवाले पापसे मुक्तिके लिये यह प्रायक्ति अण्डकोश काटकर नैर्ऋत्य दिशामें फेंक देना चाहिये और है—वनमें रहकर मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेदका तीन बार शरीरपर्यन्त पीछे मुँह करके चलता रहे अथवा वह दुरात्मा पारायणकर अथवा सरस्वती (वेदविद्या)-की सेवामें अपना जीन वर्ष प्राजापत्य तथा कुच्छ्वतका पालन करे या तीन पूर्ण समर्पण करनेके साथ अपना सब कुछ धन (सर्वस्व) मासतक चान्द्रायणव्रत एवं वेद-संहिताका पाठ करके भी

गो वध करनेवाले पापीको पञ्चगव्य पानकर एक मासतक ब्रहाहत्यांके लिये जो प्रायक्षित है, उसे करे। गर्भहत्या संयमित जीवन व्यतीत करना चाहिये। वह गोष्टमें निवास

चान्द्रायणवत करनेसे उपपातकोंकी शुद्धि होती है।

उन उपपातकोंसे शुद्धि प्राप्त की जा सकती है।

श्रिय-वध करनेपर मनुष्यको एक बैल और एक हजार गायोंका दान देना चाहिये अथवा वह तीन वर्षतक ब्रह्महत्यांके लिये विहित व्रतका पालन करे। वैश्यका वध करनेवाले मनुष्यको एक वर्षतक ब्रह्महत्यांका प्रायश्चित-व्रत अथवा एक सौ गायोंका दान करना चाहिये। सूडकी हत्या करनेपर छ: मासतक ब्रह्महत्यांका प्रायश्चित अथवा दस सबत्सा दूध देनेवाली गायोंका दान दे। अदुष्ट अर्थात् सुशीला सच्चरित्र स्त्रीका वध करनेपर मनुष्यको सूड्र-वध-विहित प्रायश्चितव्रतका पालन करना चाहिये।

मार्जार (बिल्ली), गोह, नेक्ला, साधारण पशु तथा मेठककी हत्या करनेपर पापी व्यक्ति तीन राजितक दुग्धपानके साथ ही पाद कृष्णुवतका पालन करे। हाथीका वथ करनेपर मनुष्यको पाँच नील बैलाँका दान देन पाहिये। तुक पक्षीको हत्या करनेपर दो वर्षका बछड़ा तथा क्रींच पक्षीका वथ करनेपर तीन वर्षका बछड़ा दान देना चाहिये। गथा, बका और भेंडकी हत्या करनेपर भी एक बैलका दान दे। वृष्ट, गुल्म, लता तथा झाड़ीको काटनेपर सी बार गायकी-जय करे।

मधु और मांसका भक्षण करनेपर कृष्ण्यत तथा अन्य शेष व्रतोंका पालन करना चाहिये। यदि गुरुके द्वारा प्रेषित शिष्यकी मृत्यु मार्गमें हो जाती है तो गुरु तीन कृष्ण् - व्रतका पालन करे, किंतु गुरुके प्रतिकृत कार्य करनेपर शिष्यके द्वारा उन्हें प्रसन्न करनेसे ही शब्दि हो जाती है।

शतुओंको धान्य आदि तथा प्रीति आदिके द्वारा प्रसन्न करे। यदि किये जा रहे उपकारके बीच ही ब्राह्मणकी मृत्यु हो जाती है तो उपकारी व्यक्तिको पाप नहीं लगता।

जो मनुष्य दूसरेको महापापी तथा उपपातकीका मिष्या दोष लगाता है, ऐसा मनुष्य जितेन्द्रिय रहकर एक मासतक केवल जल पीकर रहे और पापमोचनमन्त्रका जप करे। असत्-प्रतिग्रह लेनेसे जो पाप होता है, उससे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये एक मासपर्यना ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए पर्योक्त करे। गोष्टमें निवासकर गायत्री-मन्त्रके जपमें परायण रहे। ऐसा करनेसे मनुष्य पापविमुक्त हो जाता है।

(यथासमय यज्ञोपवीत-संस्कारादिसे वश्चित) वात्यका यजन करानेवाला तीन कृच्छृवतका आचरण करके अपने उस पापसे मुक्त हो सकता है। ऐसे ही अभिचारक क्रिया करनेवालेके लिये भी यही प्रायक्षित है। वेदेप्लायी वर्षपर्यन्त जीका भक्षण करे। करणमें आये हुएका परित्याग करनेवाला भी वर्षपर्यन्त जीका भक्षण करे।

गर्दभयान तथा उष्ट्रयानसे गमन करनेवाला तीन प्राणायाम करे। इसी प्रकार नग्रस्तान, नग्र-शयन और दिनमें स्त्रीगमन करनेपर भी ठीन प्राणायामसे सुद्धि होती है।

गुरुजनोंको 'तू' कहने तथा 'हूँ' इस प्रकार कहनेसे तथा कद-प्रतिवादमें ब्राह्मणपर विजय प्राप्त करनेसे मनुष्यको जो पाप लगता है, उससे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये पापी मनुष्यको उस गुरु या ब्राह्मणको प्रसप्तकर एक दिनका उपवास करना चाहिये। ब्राह्मणपर प्रहार करनेके लिये उधत होनेपर कृष्णकत तथा प्रहार कर देनेपर अतिकृष्णक्रतका पालन करना चाहिये।

जिस निन्दित आन्तरणके लिये प्रायक्षित-विधान निर्दिष्ट नहीं है, उसके लिये देश, काल, आयु, शक्ति और पापपर सम्यक् विचार करके ही प्रायक्षित्तका निर्णय करना चाहिये। शास्त्रकारोंने पाप-विमुक्तिका यही समुचित नियम कहा है।

गर्भपात तथा प्रतिनिन्दा करना स्त्रियोंक पतनके कारण है। ऐसी स्त्रियों अपने दोषके अनुसार ज्ञास्त्रिविहत प्रायश्चित नहीं करती हैं तो उनका परित्याग ही उचित है अन्यथा उन्हें अपने घरमें जीवनयापनके लिये आवश्यक सामान देकर रखना चाहिये।

जो पाप विख्यात हो चुका है, उसका प्रायक्षित गुरुजनोंके (परिषद्के)^{*} अभिमतक अनुसार हो करना

१-ये सभी प्रायक्षित अज्ञानपूर्वक वशके लिये विहित हैं।

२-पील-वृथ एक विशिष्ट लक्षणवाले बैलको कहते हैं।

³⁻या० स्मृति रलोक २८८ की मिताबरा ज्याद्याके अनुसार प्रकृतमें विष्णय सन्दर्भ तीन अर्थ हैं— १- जो व्यक्ति येदकी रक्षा कर सकता है, यदि वह येदरक्षा नहीं करता तो यह वेदका विष्णय है। २-अन्ध्यायकल्य वेदका अध्ययन विष्णय है। ३-वेदाध्ययनमें समर्थ अध्या वेदाध्ययन करके उत्कर्ष ग्राप्त करनेवाले अधिकारोंको वेदाध्ययनके प्रति अनुस्वाहित करना विष्णय है। इनमेंसे किसी एक दोषसे युक्त व्यक्ति भी वेदष्टाखी कहा जाता है।

४-वेद एवं धर्मके विज्ञाता चार ब्राह्मणें अथवा तीन ब्राह्मणें या ब्रह्मवेता धर्मशास्त्रह एक ब्राह्मणकी भी परिपद् हो सकती है।

⁽या॰ स्मृति; आचाराध्याय श्लोक ९)

चाहिये, किंतु जो पाप विख्यात नहीं है, उसका प्रायक्षित गुप्तरूपसे करना चाहिये।

गुप्तरूपसे किये जानेवाले कुछ प्रायश्चित इस प्रकार समझना चाहिये – ब्रह्महत्या करनेवाला पापी तीन रात्रियोतक उपवास रखकर विशुद्ध जल (नदी आदिके जलमें निमन्न होकर)-के मध्य अधेमर्पण-मन्त्रका जप करे और दूध देनेवाली गायका दान दे तो वह मुद्ध हो जाता है। किंतु यह प्रायश्चित अज्ञानमें होनेवाली ब्रह्महत्याके लिये विहित है। अज्ञानमें होनेवाली ब्रह्महत्याके निमित्त यह प्रायक्षित भी किया जा सकता है कि ब्रह्महत्याकर्ता अहोरात्रपर्यन्त वायुपान करते हुए जलमें रहनेके बाद प्रात:काल जलसे बाहर आकर 'लोमध्य स्वाहा' o' इत्यादि आठ मन्त्रोंसे पाँच-पाँच आहुतियाँ यथाविधान अग्निमें दे।

मदापी एवं सुवर्णकी चोरी करनेवाले पापीको जलके मध्य स्थित होकर रुद्रदेवके मन्त्रका जप करते हुए तीन दिनका उपवास और कुष्पाण्डी ऋवासे पृतकी आहुतियाँ देकर आत्मशुद्धि करनी चाहिये। गुरु-पत्नीके स्वय सम्पर्क करनेवाला पापी 'सहस्वजीर्थाo' मन्त्रका जप करके पापसे विमुक्त हो जाता है।

सी बार प्राणायाम करनेपर मनुष्य सर्वविध पापोसे मुक्त हो जाता है। अज्ञानवश किये गये पापकी शान्ति त्रैकालिक संध्योपासनासे हो जाती है। ब्राह्मणोंके द्वारा एकादश आवृति रुद्रानुवाकाँका जप करवानेसे भी पापका शमन होता है। वेदाभ्यास करनेवाले, शान्तिपरायण और पञ्चयक्रके अनुष्ठाताको पापका स्पर्श तक नहीं होता। वायुमात्रका भक्षण करते हुए पूरे दिन सूर्यदर्शनके साथ एवं पूरी रात्रि जलमें रहकर एक सहस्र गायत्री-मन्त्रका जप करनेसे ब्रह्महत्यासे होनेवाले पापके अतिरिक्त अन्य समस्त पापोंसे मुक्ति हो जाती है।

ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, भगवद्ध्यान, सत्य, निष्कपटता. अहिंसा, अस्तेय (चोरी न करना), माधुर्य और दम-ये दस यम माने गये हैं। स्नान, मीन, उपवास, यज्ञ, स्वाध्याय, इन्द्रियनिग्रह, तपस्या, अक्रोध, गुरुभक्ति और पवित्रदा-ये दस नियम कहे जाते हैं।

कहते हैं। इस पञ्चगव्यका कुशोदकके साथ पान कर व्रती दूसरे दिन उपवास करे। इस तरह दो रात्रिका कृच्छ-सान्तपनवत होता है। यहले दिन गोदुग्ध, दूसरे दिन गोदधि, तीसरे दिन गोपूत, चौथे दिन गोमूत्र, पाँचवें दिन गोमय, छर्ठे दिन कुशोदक मात्र और सातवें दिन कुछ भी न लेकर मुद्ध उपवास कर जो व्रत पूर्ण किया जाता है, वही महासान्तपन नामक व्रत कहा जाता है।

पलाश, गूलर, कमल, बिल्वपत्र इनमेंसे एक-एकको एक-एक दिन जलमें प्रकाकर उसी जलको क्रमशः एक-एक दिन पौकर चार दिन रहे एवं पाँचवें दिन कुशोदकमात्र पोकर जिस क्रतका पालन किया जाता है, उसको पर्णकृष्णुवत कहते हैं। ततकृष्णुवतमें व्रतीको पहले दिन गरम नोंदुन्ध, दूसरे दिन गरम घृत, तीसरे दिन गरम जलका प्राप्तन चौथे दिन उपवास करना चाहिये। यह पवित्र (शुद्ध) करनेवाला महातसकुच्छवत है।

पहले दिन एकभकवत (चीबीस घण्टेमें मध्याहमें केवल एक बार भोजन करना), दूसरे दिन नकवत अर्थात् चौबीस घण्टेमें एक खार (रात्रिमें), तीसरे दिन अयाचित (बिना याचनासे प्राप्त) अन्नका भोजन करना, चौथे दिन पूर्ण उपकास करनेपर पादकुच्छ्रवत होता है। इसी पादकुच्छ्रवतको तीन बार करनेसे प्राजापत्पकृष्कृवत होता है। प्राजापत्यव्रतके अनुसार भोजन और उपवासका नियम किया जाय परंतु भोजनके रूपमें उतना हो अन्न ग्रहण किया जाय, जितना एक हाधमें आता हो। इस तरह चार दिनका उपवास करनेसे अतिकृष्ड्वत हो जाता है। इक्कीस दिनतक जल या दूधमात्र लेकर अतिकृष्णुवतका पालन करनेसे वह कृच्छातिकृच्छुवत होता है। बारह दिन पूर्ण उपवास करनेपर एक पराकवत होता है।

पहले दिन जिनसे तेल निकाल लिया गया है ऐसे तिल, दूसरे दिन मौड़, तीसरे दिन मट्टा, चौथे दिन जल तवा पाँचवें दिन सत्तृका आहारकर छठें दिन उपवास करना सौम्यकृच्छवत कहलाता है। इस सौम्यकृच्छवतमें बताये गये पदार्थोंका एक दिनके स्थानपर तीन-तीन दिनतक क्रमतः पंद्रह दिनतक चलनेवाला तुलापुरुषसंज्ञक कृष्ण्यत गोदुग्ध, गोदिध, गोपृत, गोपृत्र तथा गोमयको 'पञ्चगव्य' होता है अर्थात् इस वतमें (प्रथम) तीन रात्रियोंतक नि:सृत

१-'ऋतं च सत्यं०' आदि मन्त्र अधनर्यण है।

२-या० स्मृतिमें इसोक २४७ में इन मन्त्रोंको दिया गया है।

तेलवाले तिल. (द्वितीय) तीन रात्रियाँतक माँड, (तृतीय) ग्रास मात्र हविष्यात्र ग्रहण किया जाय। इन व्रतोंमें यह तीन रात्रियोंतक मद्रा, (चतुर्थ) तीन रात्रियोंतक उस तथा आवश्यक है कि प्रात:, मध्याह एवं सार्यकालीन स्नान (पञ्चम) तीन रात्रियोंतक सत्तुका भोजन करके एक दिनका करके पवित्र- संज्ञक विशेष मन्त्रोंका जप करे तथा गायत्री-उपवास करना चाहिये।

समान मात्रावाले एक-एक भोजन-ग्रासका अधिक आहार उन पापोंसे भी शुद्धि चान्द्रायणवृत्तसे हो जाती है। किसी करते हुए पूर्णिमा तिथिको यह क्रम समाप्त करके पुन: पापके निवारणके लिये प्रायश्चित्तरूपमें नहीं, अपितु पुण्य कृष्णपक्षमें प्रतिदिन एक-एक अत्र-ग्रासका भक्षण- प्राप्त करनेकी दृष्टिसे जो इस चान्द्रायणपतका अनुष्ठान करता क्रमसे घटाते हुए चतुर्दशी तिथिको एक ग्रास भोजन करे है, उसको चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार पुण्य प्राप्त एवं अमावास्थाको उपवास करे, यह चान्द्रायणवत है। करनेके लिये ही जो कृष्यव्यत करता है, वह महान् ऐश्वर्यका धान्द्रायणका अन्य प्रकार यह है- पूरे मासमें दो सौ चालीस लाभ प्राप्त करता है। (अध्याय १०५)

मन्त्रसे पिण्डग्रासको अभिमन्त्रित कर उसे ग्रहण करे।

शुक्लपक्षमें तिथि-वृद्धि-क्रमसे मयुरके अण्डेके जिन पापीका प्रायश्चित शास्त्रीमें नहीं बताया गया है,

अशौच तथा आपदवृत्ति-निरूपण

पक्षात् होनेवाले मरणाशीचका वर्णन करता है, उसका स्वेच्छाचारिजी स्वीके लिये भी उदकक्रियाका निषेध है। श्रवण करें।

दो वर्षसे कम आयुवाले बालकको मृत्यु होनेपा क्रियाके पात्र नहीं होते। उसे सभी बन्धुगण मिलकर श्मज्ञानभूमिमें ले जाकर क्रिया करके स्वजनोंको पर आवा चाहिये। द्वारपर पहुँचकर लौकिक अग्रिसे 'यमसूक ' का पाठ करते हुए चितामें जला वे सबसे पहले निम्बकी पत्ती चबाकर, तदननार आचमन आहितारिनके समान करे। मरणतिथिके सातवें दिन अथवा चल्चरपर पेर रखकर धीरेसे घरमें प्रवेश करें। प्रेतका दसवें दिनके पहले अपने कुल एवं गोत्रमें आनेवाले संस्पर्त करनेपर भी मनुष्यको घरमें प्रविष्ट होनेके पूर्व परिजन 'अप नः शोशुचदधम्' मन्त्रसे दक्षिण दिशाकी उक्त विहित-कर्म कर लेना चाहिये। सपिण्डमें आनेवाले जाकर जलाञ्चलि दे। इसी प्रकार मातामह तथा आचार्य- अर्थात् उसको दाह-क्रिया आदिमें सम्मिलित होते हैं

श्वशर और ऋत्विकृका यदि मरण हुआ है तो इनके लेना चाहिये।

याज्ञवरुक्यजीने कहा-हे यतियो। अब मैं मृत्युके होनेपा उनकी उदकक्रिया नहीं होती। ब्रह्मवारी, ब्रास्य तथा मद्यपी और आत्महत्या करनेवाले अशीच और उदक-

उसको मिट्टीमें गाइ देना चाहिये। उसके लिये जलाञ्चलि व्यक्तिके निधनपर रोना निषद्ध है, क्योंकि जीवोंकी न दें। दो वर्षसे अधिक आयुके बालककी मृत्यु होनेपर स्थिति अनित्य होती है। यथारुक्ति स्मशानभूमिमें दाहादिक दें। यज्ञोपवीत होनेके अनन्तर मृत्यु होनेपर सभी क्रियाएँ करके अग्नि, जल, गोबर और श्वेत सरसोंका स्पर्श कर ओर अभिमुख होकर यथासम्भव घरसे बाहर जलाक्रयपर जो लोग पुण्यप्राप्त करनेमात्रकी दृष्टिसे प्रेतका अनुगमन पत्नी आदिको भी उदक्किया करनी चाहिये। और वे यदि तत्काल अपनी सुद्धि चाहते हैं तो दाह-मित्र, विवाहित स्त्री (लड़की, बहन आदि), भागिनेय. क्रिया सम्यत्र करानेके अनन्तर उन्हें स्नान एवं प्राणायाम कर

अभ्यदयके लिये इन्हें सर्विधि जलाञ्चलि देनी चाहिये और उस दिन खरीदे हुए पदार्थीका भोजन करके सभी वह जलाञ्जलि इनके नाम, गोत्रका उल्लेख करते हुए एक परिजनोंको अलग-अलग भूमिपर सोना चाहिये। पिण्डयज्ञके ही बार देनी चाहिये। पाखण्डी एवं पतितजनोंकी मृत्यु परचात् मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे विहित पिण्डदानकी प्रक्रियाके

१-ऐसे शतको गन्ध, माल्य, अनुलेपन आदिसे अलंकत करके उमकानमे अन्यत्र हड्डियोंके समुद्रसे रहित, ग्राम या नगरके वाहरकी भूमिमें गड्डा खोदकर रखना चाहिये। (मनुस्मृति ५। ६८-६९)

२-समानगोत्र, समानिपण्ड एवं समानोदकवाले लोग।

³⁻Midt \$18018-6

४-बिना माँगे हुए अलगात्रका भोजन करना चाहिये।

अनुसार अपसव्य आदिके रूपमें तीन दिनतक पिण्डरूप अत्र पृथ्वीपर मौन धारण करते हुए दे। ब्राद्धके लिये अधिकृत व्यक्ति खुले हुए आकाशके नीचे एक शिका आदिके मिट्टीके पात्रमें जल और दूसरे मिट्टीके पात्रमें दूध उस प्रेतात्माको समर्पित करे। ब्राह्मकर्ताको अशुचि होनेपर भी श्रीत अग्नि एवं स्मार्त अग्निमें किये जानेवाले नित्यकर्म (अग्निहोत्र, दर्श पूर्णमास, स्मार्त अग्निमें विहित सार्च-प्रात: होम)-का अनुष्ठान श्रृतिकी आज्ञाके अनुसार करना ही चाहिये।

यदि जन्मके पक्षात् और दाँत निकलनेके पूर्व बालकका मृत्यु हो जाती है तो उनके सम्बन्धियोंकी सद्य: गुद्धि हो जाती है। दौत निकलनेके पश्चात् चुड़ाकरणतक एक अहोरात्रका अशीच होता है और उपनयन-संस्कारके पहले और चुड़ाकरणके बाद बालककी मृत्यु होनेपर तीन राष्ट्रिके बाद अशीच समाप्त होता है। उपनयन-संस्कारके पश्चात् मृत्यु होनेपर दस रात्रियोंका अशीच होता है। समिण्डोंके लिये दस रात्रिका एवं

दो वर्षसे कम आयुवाले पुत्र एवं पुत्रोकी मृत्युपर माता-पिता दोनोंको दस राजिका अशीच होता है। यदि इस मरणाशीचके मध्य परिवारमें किसी वालकका जन्म वा किसीकी मृत्यु होती है तो प्रथम अशौचके शेष दिनोंके पक्षात ही शुद्धि हो जाती है।

सपिण्डकी मृत्यु होनेपर ब्राह्मण, श्वतिय, वैश्य और शुद्रके लिये क्रमश:- दस, बारह, पंद्रह तथा तीस दिनोंका अशीच माना गया है। पाणिग्रहण-संस्कारके पूर्व और वाग्दानके पूर्व तथा खुडाकरणके बाद कन्याकी मृत्यु होनेपर एक अहोराजमें ही शुद्धि हो जाती है। या॰ स्मृति २४वें श्लोककी मिताक्षराके अनुसार दाँत निकलनेके पूर्व गरि बालकका मरण हुआ और उसका अन्ति-संस्कार किया गया तो एक दिनमें शुद्धि हो जाती है। गुरु और अन्तेवासी (शिष्य) वेदाङ्गोंका प्रवक्ता, मामा , त्रोत्रिय एवं अनीरस पुत्र, अपनी वह भार्या जो प्रतिलोम संकरसे अतिरिक्त किसी अन्यके आश्रयमें रह रही है, उसके तथा अपने

देशके राजाकी मृत्युपर एक दिनका अशीच होता है। राजा (अधिसिक धतिय आदि राजा), गौ (पशुमात्र), ब्राह्मण (मनुष्यमात्र)-के द्वारा जो आहत होता है, उसके सम्बन्धियोंकी स्नानमात्रमे तत्काल शुद्धि हो जाती है। ऐसे ही जिसने विष या बन्धन आदिके द्वारा बुद्धिपूर्वक आत्मधात कर लिया है, उसके सम्बन्धियोंको भी तत्काल स्नानमात्रसे शुद्धि हो जातों है और समस्त पृथ्वी या पृथ्वीके एक देशके अभिषिक्त अधिपति क्षत्रिय आदिको मरण या उत्पत्तिनिमित्तिक अजीच नहीं होता। सत्री (लगातार अन्नसत्र चलानेवाले), वर्तो (कुच्छू, चान्द्रायण आदि वर्तमें प्रवृत्त), ब्रह्मचर्यवर्तमें प्रवृत, दाता (वह वानप्रस्थाश्रमों जो केवल दान ही देता है, प्रतिग्रह कभी भी नहीं करता), ब्रह्मविद् (संन्यासी) किसी भी प्रकारके अशीयसे ग्रस्त नहीं होते। दान (किसीको देनेके लिये पूर्वमें संकल्पित इच्य), विवाह (विवाहके निमित्त एकत्रित सामग्री), यज्ञ आदि विशेष कृत्योंके लिये एकवित सामग्री, संग्राम (युद्धकाल)-में, देशमें अतिभयंकर समानोदक लोगोंके लिये बीन रात्रिका अशीच होता है। या राजभयसे उत्पन्न विपनवको दशामें, अतिकष्टकर आपतिमें किसी भी प्रकारके अशीचकी निवृत्ति तत्काल ही हो जाती है अर्थात् अशीच नहीं होता।

जो अकार्यकारी अर्घात निधिद्ध कार्य करनेवाले हैं, उनकी सुद्धि दान देनेसे होती है। ग्रीष्म-त्रस्तु आदिके प्रभावसे जो नदी आराज्य जलवालों हो जाती है और उसके किनारे आदि अपवित्र वस्तुओंसे उपहत हो जाते हैं वह नदी जलके वेगपूर्ण उस प्रवाहसे शुद्ध हो जाती है जो प्रवाह नदीको जलमय बना दे और उसके किनारोंको काट देनेमें समर्थ हो।

आपस्कालमें ब्राह्मणको धत्रिय एवं वैश्यवर्णकी वृत्तिसे जीविकाका निवांह करना चाहिये, किंतु वैश्यवृत्ति करनेवाले बाह्यके लिये फल, सोमलता, श्रीमयस्त्र (सभी वस्त्र), वेत्र आदिको लताएँ औषधि लता, दधि, दुग्ध, पृत, जल, तिल, ओदन, रस, बार, मधु, लाखा, पकाया हुआ हविष्यात्र, वस्त्र, मणि आदि प्रस्तरमात्र, आसव, पुष्प, शाक, मिट्टी, चर्म, पादुका, मृगवर्ष, कीतेय (वस्त्र), लक्ष, मांस, तिलकृट (पिण्याक), मूल और सुगन्धित द्रव्य-पदाधौका विक्रय वर्जित है।

१-पिता ही यदि गुरु होते हैं तो उनकी मृत्युपर पिताको मृत्युपर होनेवाला अजीव होगा।

२-यहाँ मामा मात्रको नहीं लेना है, अधितु मातृ-यक्ष एवं चितृ-यक्षके जितने भी कन्धु हैं हव सकको लेना है।

३-वेदकी एक जाखामात्रका अध्येता।

४-औरसके अतिरिक्त क्षेत्रज, दत्तक आदि पुत्र।

ब्राह्मणके द्वारा अपने श्रीत-स्मार्त-यज्ञकी पूर्णताके लिये अपेक्षित धान्य या अन्य किसी अल्पावश्यक औषधि आदिकी व्यवस्थाके लिये अपेक्षित धान्यके बराबर तिलका विक्रय करके धान्यका संग्रह किया जा सकता है। किंत् आपत्कालमें भी लवणादिका व्यापार ब्राह्मणके लिये अवस्य वर्जित है। (आपतियोंके कारण नमकादिके अतिरिक्त) ब्राह्मण अन्य जो कुछ होन आर्वश्यवृत्ति करता है, उसमें वह उसी प्रकार निष्कलुष रहता है जैसे सूर्य । आपत्कालमें ब्राह्मण कृषि एवं पशुपालनादि कार्य कर सकता है, किंतु उसके द्वारा अश्लोंका विक्रय त्याञ्य है।

यदि किसो कारण ब्राह्मण कृषि आदिसे भी अपने जीवनको रक्षा न कर सके तो तीन दिन बुभूधित हो रहे। तदनन्तर ब्राह्मणके अतिरिक्त और किसीके यहाँसे केवल एक दिनके लिये धान्य प्राप्त करे तथा अख्राह्मणसे प्राप्त इस धान्यका उपभोग करते समय वह प्रकाशित भी करे कि मैंने अख्राहाणसे धान्य लेकर आज जीवन-निर्वाह किया है। ऐसे वृत्तिसंकरसे ग्रस्त ब्राह्मणके वृत्त, कुल, रीति, शास्त्राध्ययन, वेदाध्ययन और तप आदि विशेषताओंको जानकर राजाका यह कर्तव्य होता है कि वह उस ब्राह्मणके लिये धर्मानुकूल जीवन-गापनको व्यवस्था करे। (अध्याय १०६)

महर्षि पराशरप्रोक्त वर्ण तथा आश्रम-धर्म एवं प्रायश्चित्त-धर्मका निरूपण

वर्णाश्रमादिके धर्मका वर्णन किया था। [उनका यही कहना है कि) कल्प-कल्पमें उत्पत्ति और विनातके कारण प्रजाएँ आदि क्षीण होती रहती हैं। कल्पके प्रारम्भमें मन्वादि ऋषि वेदोंका स्मरण करके बाह्यणादि वर्णीक धर्मीका प्नः निरूपण करते हैं।

कलियुगमें दान ही धर्म है। कलियुगमें केवल पाप करनेवालेका परित्याग करना चाहिये । कलिवनमें पाप तथा शाप-ये दोनों एक वर्षमें फलीभूत हो जाते हैं।

मनुष्य आचार (सदाचार तथा शौधाचार)-से ही सब कुछ प्राप्त करे। संध्या, सान, जप, होन, देव और अतिथिपुजन-इन षट्कर्मोंको प्रतिदिन करना चाहिये। आचारवान् ब्राह्मण तथा संन्यासी इस कलिव्यामें दलंभ हैं। क्षत्रियको चाहिये कि वह राष्ट्रसेनाओंको जीतकर पृथिवीका भलीभौति पालन करे। वैश्य कृषि एवं पशुपालन तथा व्यापारादि करे और शुद्र इन तीन द्विजवर्षोंकी सेवामें अनुरक्त रहे।

व्यक्तिका पतन अभक्ष्य-भक्षण (शास्त्र-निषद्ध भोजन). चोरी और अगम्यागमन करनेसे हो जाता है। यदि द्विज

सुतजीने कहा-महर्षि पराशाले वेदव्यासत्रीसे कृषिकार्य करता है तो वह थके हुए वैलसे इल न खींचे तथा उसे भार डोनेके कार्वमें नियोजित न करे। स्नान और योगादि कार्योसे निवृत्त होकर पञ्चयत्र करे। मध्याहकालमें बाह्यणोंको भोजन कराये और कुरकर्मीको निन्दा करे।

> विल तथा पुतका विकाय नहीं करना चाहिये। पर्क्रमुनावनित दांपके निवारणार्थ [बलिवैश्वदेव] होम करे। कृषिकर्ता द्विजद्वारा अपनी उपजका क्रमशः छठा भाग राजा, बीसर्वो भाग देवता और तैतीसर्वो भाग खाहाणोंको देव है, इससे (कृषिजनित) पाप नहीं लगता। कृषिकार्य करनेवाले क्षत्रिय, जैश्य तथा शुद्र यदि खलिहानमें उक्त निर्धारित भाग राजा आदिको प्रदान नहीं करते हैं तो वे चोरके समान पापके भागी होते हैं।

> मृत्युका अज्ञीच होनेपर [सामान्यत:] ब्राहाण तीन दिनके पक्षात शुद्ध हो जाता है । इसी प्रकार शतिय दस दिन, वैश्य बारह दिन और शुद्र एक मासके पश्चात् शुद्ध होता है। ब्राह्मण दस दिन, क्षत्रिय बारह दिन, वैश्य पंद्रह दिन तथा शुद्र एक मासमें शुद्ध होते हैं। जो सपिण्ड-कुल-परम्परासे प्राप्त होनेवाली भू-सम्पत्ति आदिके हिस्सेदार हैं। और पृथक आवास बनाकर रहनेवाले बन्धु-बान्धव हैं, उन्हें

१-त्यक्षेदेशं कृतपुर्ग प्रेतायां वायपुरस्कोत्। द्वायरे कृत्यमेकं वु कर्तारं वु कर्तां यूरो ॥

सरप्यगर्मे जिस देशमें पाप होता हो उस देशका, जेतामें जिस ग्राममें पाप होता हो उस ग्रामका, द्वापरमें जिस कुलमें पाप होता हो उस कुलका और कलियगमें केवल पाप करनेवालेका त्याग कर देना चाहिये।

२-सुनाका अर्थ है—पहुले वधका स्थान। यहाँ सुनाका अर्थ है—हिंसाका स्थान। गृहस्थके घरमें हिंसाके पाँच स्थान होते हैं—चुन्हा, पेंथणी (कूटने-पीसनेका साधन, खल-बट्टा, सिल आदि), मार्जनी (झाड् ऑदि), उन्छल, मुसल और जलका कलक—ये ही पाँचसुना हैं।

यहाँपर ब्राह्मण आदिकी अजीब-निवृत्तिक लिये दो प्रकारके बचन दिये गये हैं। यहलेके अनुसार तीन दिनमें तथा दूसरेके अनुसार दस दिनमें तुद्धि लिखी है। कलियुगमें दूसरा वचन हो पानकर अशीच-निवृत्तिको व्यवस्था समझनी चाहिये।

जन्म तथा मृत्यु आदिकी विपत्तिमें अशीच होता है। चौधी बादके कार्यमें अशीच होगा। पीढीतक दस दिन, पाँचवीं पीढ़ीमें छ: दिन, छठों पीड़ीमें चार दिन, सातर्थी पीढ़ीमें तीन दिन मरणाशीच होता है। देशान्तरमें बालककी मृत्यु होनेपर सद्य: स्नानमात्रसे मुद्धि होती है।

जो बालक जन्म होनेके पश्चात् दाँत निकलनेके पूर्व ही भर जाते हैं या जिनकी मृत्यु गर्थसे बाहर होनेके समय हो जाती है, उन सबका अग्नि-संस्कार, पिण्डदान तथा जल-संतर्पण-कार्य नहीं होता है। यदि स्त्रीका गर्धसाय हो जाता है अथवा गर्भपात हो जाता है तो जितने मासका वह गर्भ होता है, उतने दिनतक सृतक मानना चाहिये। जन्मसे लेकर नामकरणतक बालककी मृत्यु होनेपर सद्यः स्नानमात्रसे शुद्धि होती है। यदि नामकरणके पक्षात् चूडाकरण-संस्कारके मध्य बालकको मृत्यु होती है तो एक दिन और एक रात्रिका अशीच होता है। यदि उपनयन-संस्कारके पूर्व बालककी मृत्यु हो जाती है वो तीन रात्रियोतक और तत्पश्चात् उसकी पृत्यु होनेपर दस रात्रियोंका अशीच होता है।

चार मासतकके गर्भके नष्ट होनेपर गर्भसाव तथा पाँच और छ: भासके गर्भके गिरनेको गर्भपात कहा जाता है। जो ब्रह्मचर्यवतके अग्रिहोतकी दौक्षामें है अथवा अनासक-भावसे जीवन व्यतीत करनेवाले हैं, उनके लिये जन्म एवं मृत्युका अशीच नहीं होता। शिल्पकार, कारुकर्म करनेवाला (चटाई बनानेवाला), वैद्य, दास-दासी-भृत्य-अग्रिहोत्री तथा श्रोत्रिय ब्राह्मण और राजा— वे सद्य:जीचवाले कहे गये हैं।

जन्मका अशीच होनेपर माता दस दिनमें तथा पिता स्नान करनेके बाद शुद्ध हो जाता है। सृतिका-गृहमें प्रसृता स्त्रीके स्पर्शसे पिताको अशीच हो जाता है। आचमनसे पिता इस अशीचसे शुद्ध हो जाता है।

पूर्वसंकल्पित कार्यसे अन्य कार्यके निषेधका विधान है। वर्षीतक स्वर्गमें निवास करती है। अर्थात् पूर्वसंकल्पित कार्यके लिये अशीन नहीं होता।

अनाथ व्यक्तिके शवको वहन करनेपर प्राणायाममात्रसे ही मनुष्यको सुद्धि हो जाती है, किंतु सुद्रका शव उठानेपर तीन रात्रियोंके पक्षात् सुद्धि होती है।

आत्मघात, विषयान, फाँसी तथा कृमिदंशसे मृत्यु होनेपर उसका संस्कार यथाविधान विशेष प्रायश्चित्रके बिना नहीं होता है। गाँके द्वारा आहत होनेसे अथवा कृमिदेशके कारण मरे हुए व्यक्तिका स्पर्श करनेपर कृच्छवतसे शुद्धि होती है, यह मुद्धि अशीध-निमित्तक है।

जो पढ़ी यौवनावस्थामें अपने निर्दृष्ट एवं सक्चरित्रवान् पतिका परित्याग कर देती हैं, वह सात जन्मीतक स्त्रीयोनिको प्राप्त कर बार-वार विभवा होती है। ऋतुकालमें पत्नीके साथ संसर्ग न करनेके कारण पुरुषको बालहत्याका पाप लगता है। जो स्त्रों अप-पानादिको दृष्टिसे भ्रष्ट होती है, वह अगम्या होती है तथा जन्मान्तरमें सुकरयोगि प्राप्त करती है।

औरस और क्षेत्रज पुत्र एक ही पिताके पुत्र होते हैं। अतः ये दोनी पुत्र अपने पिताके लिये पिण्डदान कर सकते हैं।

परिवेक्त एवं परिवित्ति (बढे भाईद्वारा अपने विवाहकी अस्वीकृति देनेवाला)-को अपनी शुद्धिके लिये कृष्णुव्रत करना चाहिये। इसी प्रकार कल्याको भी कृष्णुवत करना चाहिये। ऐसी कन्यांके दान धेनेवालेको अतिकृच्छवत तथा क्रिकड-विधि सम्पन्न करानेवालेको चान्द्रायणवत करना चाहिये।

यदि बड़ा भाई कुबड़ा, बीना, नपुंसक, हकलानेवाला, मुखं, जन्मान्य, बहरा तथा गुँगा हो तो छोटे भाईके द्वारा विवाह कर लेनेमें कोई दोष नहीं होता।

निसे वाग्दानमात्र किया गया है ऐसा भाषी पति यदि परदेश चला जाय, मर जाय, संन्यास-धर्मका अवलम्बन कर ले, नपुंसक हो अथवा पतित हो गया हो तो इन पाँच आपदाओंमें वाग्दता कन्या दूसरे पतिका वरण कर सकती यदि विवाहोत्सव तथा प्रजादिक कार्योक सम्पादन- है। अपने पतिके साथ सतीधमंके अनुसार अग्निमें प्रवेश कालमें ही मृत्यु या जन्मका अशीच हो जाता है तो करनेवाली स्त्री शरीरमें स्थित रोमोंकी संख्याके बराबर

कृता आदिके काटनेपर मनुष्यको गायत्री-मन्त्रके

१-ण्येष्ठ भारतके अविवाहित रहते हुए अपना विवाह कर लेनेवाला छोटा भाई 'परिवेता' कहा जाता है और परिवेत्तका अविवाहित बड़ा भाई 'परिवित्त' कहा जाता है।

२-यहाँ उस कन्याको समझना चाहिये. जिसका परिवेतासे विवाह हुआ है।

जपसे शुद्धि करनी चाहिये। जिसे स्वयं गायत्री-जपका चाहिये। कानके पास प्रोक्षणीपात्र और नेत्रोंके संनिकट अधिकार नहीं है, उसे ब्राह्मणद्वारा गायत्री-जप कराना आञ्चस्थाली रखे। कान, नेत्र, मुख तथा नासिका-भागमें चाहिये। चाण्डाल आदिके द्वारा मारा गया अग्निहोत्री ब्राह्मण स्वर्ण-खण्ड रखनेका विधान है। इस प्रकार अग्निहोत्रके लौकिक अग्रिसे जलाने योग्य होता है। [उस अग्रिसे समस्त उपकरणोंके सहित उस अग्रिहोत्रीका जलदाह जलाये गये] ब्राह्मणकी अस्थियोंको दूधमें प्रश्नातित करके पुन: विधिवत् मन्त्रपूर्वक अपने अग्निहोत्रशालाको अग्निसे प्रदग्ध करना चाहिये। यदि मृत्यु प्रवासकालमें होती है तो परिजनको अपने घरपर उस मृत व्यक्तिका कुशसे शरीर बनाकर पुन: अग्रिदाह करना चाहिये।

कृष्णमृगचर्मपर छ: सौ पलाजपत्रोंको (मृतककी आकृतिके समान) विद्याकर अथवा कुरामप रारीरका निर्माण करके शिश्च-भागपर शयी तथा वृषण-भागपर अरणिके काष्ठको स्थापित करे। उसके दावें हाथके स्थानपर कुण्ड (स्थाली) और बार्वे हाथके स्थानपर उपभृत [यज्ञियपात्र], पार्श्वभागमें उल्ख्यल तथा पीठकी और मुसल रखे। तत्पश्चात् उस शक्के वश्व:स्थलपर [सोमरस तैयार करनेके लिये प्रयोगमें आनेवाले] पत्थरको एवं ब्राह्मणकी इत्या करनेपर तीस चान्द्रायणवत करना रखकर उसके मुखभागमें भृत-तण्डुल और तिल डालना चाहिये। (अध्याय १०७)

करनेसे वह (मृत ऑग्नहोत्री) ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। 'असी स्वर्गाय लोकाय स्वाहा' इस मन्त्रसे युवकी एक आहुति देनी चाहिये।

हंस, सारस, क्रींच, चक्रवाक, कुक्कुट, मयूर और मेषका वध करनेवाला मनुष्य एक दिन तथा एक रात्रिके उपवासके पक्षात् पापसे शुद्ध हो जाता है। अन्य सभी पश्चियोंका वध करनेपर एक अहोरात्रमें शुद्धि होती है।

सभी प्रकारके चतुष्यद पशुओंका कथ करनेपर जो पाप मनुष्यको लगता है, उसका अवमोचन खड़े होकर एक आहोरात्र उपकास कर [गायत्री] मन्त्रका जप करनेसे होता है।

जुद्रका वध करनेपर कृष्कुवत, वैश्यकी हत्या करनेपर अतिकृष्क्रवत, श्रविषका वध करनेपर वाईस चान्द्रायणवत

बृहस्पतिप्रोक्त नीतिसार

सूतजीने कहा—हे ऋषियो। अब मैं 'अर्गशास्त्र' आदिपर आश्रित नीतिसार कह रहा हूँ, जो राजाओं के साथ ही अन्य सभीके लिये भी हितकर तथा पुण्य, आयु और स्वर्गादिको प्रदान करनेवाला है।

जो मनुष्य [धर्म, अर्थ, काम और मोश्च-इस पुरुषार्थ-चतुश्यकी] सिद्धि चाहता है, उसको सदैव सन्तर्गेको हो संगति करनी चाहिये। दुर्जनोंके साथ रहनेसे इस लोक अथवा परलोकमें हित सम्भव नहीं है-

> सद्भिः सङ्गं प्रकृषीत सिद्धिकामः सदा नाः। नासद्भिरिहलोकाय परलोकाय वा हितम्॥

> > (\$1305)

श्रुद्रके साथ वार्तालाप और दुष्ट व्यक्तिका दर्शन नहीं करना चाहिये। शत्रुसे सेवित व्यक्तिके साथ प्रेम न करे और मित्रके साथ विरोध न करे। मुखं शिष्यको उपदेश देनेसे,

सहवीग लेनेसे विद्वान् पुरुष भी अन्तमें दु:खी हो जाता है। मूखं ब्राह्मण, युद्ध-पराङ्मुख क्षत्रिय, विवेकरहित वैश्य और अक्षरसंयुक्त शुरुका परित्याग तो दूरसे ही कर देना चाहिये। कालको प्रबलवासे शत्रुके साथ संधि और मित्रसे विग्रह (सत्रुता) हो जाता है। अत: कार्य-कारण-भावका विकार करके ही पण्डितजन अपना समय व्यतीत करते हैं।

समय प्राणियोंका पालन करता है। समय ही उनका संहार करता है। उन सभीके सोनेपर समय (काल) जागता रहता है। अत: समय बड़ा ही दुरतिक्रम है (अर्थात् समयको जीतना बड़ा हो कष्टसाध्य है)। समयपर ही प्राजीके पराक्रमका करण होता है। समय आनेपर ही प्राणी गर्भमें आता है। समयके आधारपर उसकी सृष्टि होती है और पुन: समय हो उसका संहार भी करता है। काल निश्चित हो नियमसे नित्य सुक्ष्म गतिवाला हो होता है तब भी हमारे अनुभवमें उसकी गति दो प्रकारसे होती है, दुष्ट स्त्रीका भरण-पोषण करनेसे तथा दुष्टोंका किसी कार्यमें जिसका अन्तिम परिणाम जगत्का संग्रह ही होता है। यह

१-यधानकि भरण-पोपणका प्रयास करना चाहिये और बंदि स्त्रीके दृष्ट स्वभाववश भरण-पोपण कदायित अलक्य हो रहा है या पारिवारिक-सामाजिक व्यवस्था उच्छित्र हो रही है, तब इस व्यवस्थाको ध्यानमें रखना घाडिये।

गति स्थूल एवं सूक्ष्म-रूपमें दो प्रकारको होती है।

ऋषियो ! बृहस्पतिने इन्द्रसे इस नीतिसारका वर्णन किया था, जिसके कारण सर्वज्ञ होकर इन्द्रने दैत्योंका विनाश करके देवलोकका आधिपत्य प्राप्त किया था।

ब्राह्मणकल्प राजर्षियोंको नित्य देवता एवं ब्राह्मण आदिका पूजन करना चाहिये तथा महान् पातकोंको नष्ट करनेवाले अश्वमेधयञ्जका अनुष्टान करना चाहिये।

उत्तम प्रकृतिवाले सजनोंकी संगति, विद्वनोंके साथ सत्कथाका श्रवण और लोभरहित मनुष्यके साथ मैत्रीसम्बन्ध स्थापित करनेवाला पुरुष दु:खी नहीं होता ।

(दूसरेकी) निन्दा, दूसरेका धन-प्रहण, परायी स्त्रीके साथ परिहास तथा पराये घरमें निवास कभी नहीं करना चाहिये। हितकारी अन्य व्यक्ति भी अपने बन्धु हैं और यदि बन्ध् अहितकर है तो वह भी अपने लिये अन्य है। ऋरीएसे ही उत्पन्न हुई व्याधि अहितकर होती है, किंतु यनमें उत्पन्न हुई औषधि उस व्याधिका निराकरण करके मनुष्यका हित-साधन करती है। जो मनुष्य सदैव हितमें तत्पर रहता है, वही बन्ध् है। जो भरण-पोषण करता है, वही पिता है। जिस व्यक्तिमें विश्वास रहता है, यही मित्र है और जहाँपर मनुष्यका जीवन-निर्वाह होता है, वही उसका देश हैं।

जो आजापालक है, वही वास्तविक भूत्य (सेवक) है; जो बीज अंकुरित होता है, यही बीज है; जो पतिके साथ प्रिय सम्भाषण करती है, यही वास्तविक भार्या है। पिताके जीवनपर्यन्त पिताके भरण-पोषणमें जो पुत्र लगा रहता है, वहीं वास्तवमें पुत्र है। जो गुणवान् है, उसीका जीवन वास्तवमें सार्थक है। जो धर्ममें प्रवृत्त है, वही जीवित है; जो गुण-धर्मविहीन है, उसका जीवन निकल है।

जो भार्या गृहकार्यमें दक्ष है, जो प्रियवादिनी है, जिसके पति ही प्राण हैं और जो पतिपरायणा है वास्तवमें वही भार्या है । जो नित्य स्नान करके अपने ज़रीरको सुगन्धित द्रव्य-पदार्थोंसे सुवासित करनेवाली है, प्रियवादिनी है, अल्पाहारी है, मितभाषिणी है, सदा सब प्रकारके मङ्गलोंसे युक्त है, जो निरन्तर धर्मपरायण है, निरन्तर पतिको ग्रिय है, सदा

मुन्दर मुखवाली है तथा जो ऋतुकालमें ही पतिके सहगमनको इच्छा रखती है, वही भार्या है।

—इन लक्षणोंसे समन्वित स्त्री समस्त सौभाग्योंको अभिवृद्धिकारिणी होती है। जिस मनुष्यकी ऐसी भार्या है वह मनुष्य नहीं देवराज इन्द्र है।

जिस मनुष्यकी भार्या विरूप नेत्रोंवाली, पापिनी, कलहप्रिय और विवादमें बढ़-चढ़कर बोलनेवाली है, वह पतिके लिये वास्तवमें वृद्धावस्था ही है, वास्तविक वृद्धावस्था वृद्धावस्था नहीं है। जिसकी भार्या परपुरुषका आश्रय ग्रहण करनेवाली है, दूसरेके घरमें रहनेकी आकांक्षा रखती है, कुकर्ममें संलग्न है तथा निर्लज है, यह (पतिके लिये) साक्षात् वृद्धावस्था-स्वरूप है।

जिस पुरुषको भार्या गुणोंका महत्त्व समझनेवाली, परिका अनुगमन करनेवाली और स्वल्पसे भी स्वल्प वस्तुसे संबुष्ट रहनेवाली है; पतिके लिये वही सजी प्रियतमा है, सामान्य प्रिया नहीं है।

दृष्ट पत्नी, दृष्ट मित्र तथा प्रत्युत्तर देनेवाला भृत्य और सर्पयुक्त धरमें निवास साधात् मृत्यु ही है।

मनुष्यको दुर्जनोंको संगतिका परित्याग करके साधुजनोंकी संगति करनी चाहिये और दिन-रात्रि पुण्यका संचय करते हुए नित्य अपनी अनित्यताका स्यरण रखना चाहिये-भज साधुसमागमम्। त्वज दुर्जनसंसर्ग कुरु पुण्यपद्वीरात्रं स्मर निल्पमनित्पताम्॥

(\$06134)

जो स्त्री सर्पके कण्ठमें रहनेवाले विषके समान है, जो सर्पंके फर्जांके सदश भयंकर है, जो रौद्ररसकी साक्षात् मूर्ति है, जो शरीरसे कृष्णवर्णकी है, जो रकके सदृश लाल-लाल नेत्रोंके द्वारा दूसरेके इदयको भयभीत कर देनेवाली है, जो व्याप्रके समान भयानक है, जो क्रोधवदना एवं प्रचण्ड अग्रिको ज्वालाकी भौति धधकनेवाली और काकके समान जिह्नासोलुप है, अपने पतिसे प्रेम न रखनेबाली है, भ्रमितविचवाली तथा दूसरेके पुर (भर-नगर) आदिमें जानेवाली अर्थात् परपुरुषको इच्छा रखनेवाली है, वह स्वी

१-उत्तमै: सह साङ्गलं पण्डितै: सह सत्कथाम् । असुन्धै: सह मिकलं कुर्वाणं नावसीदति । (१०८ । १२)

२-परोऽपि हितवान् बन्धुर्बन्धुरप्यहितः परः। अहितो देहजो व्याधिहितमारम्यमीषधम्॥

स बन्धुर्यो हिते युक्तः स पिटा सस्तु पोषकः । टन्यां या विश्वासः स देशो यत्र जीव्यते ॥ (१०८।१४-१५)

३-सा भागं या गुरे दक्षा सा. भागं या प्रियंवदा। सा. भागं या. पतिप्राचा सा. भागं या. पतिव्रता॥ (१०८।१८)

कदापि सेव्य नहीं है।

दैववश कभी अस्य सामर्थ्यवान् व्यक्ति भी राकिशाली हो सकता है, कृतन्न व्यक्ति भी कभी सुकृत कर होनेपर भी रोग बने ही रहनेपर, बाल्य-युवा आदि अवस्थासे सकता है, अग्रिमें कभी श्रीतलता भी जा सकती है, युक्त यह शरीर कालसे आयृत है। यह समझनेपर भी कीन ऐसा

अनुराग नहीं हो सकता।

घरके अंदर भयंकर सर्प देख लिये जानेपर, चिकित्सा हिममें उप्पता भी आ सकती है; किंतु वेश्यामें [पुरुषविषयक] व्यक्ति है, जो धैर्य धारण कर सकता है? (अध्याय १०८)

नीतिसार-निरूपण

करना चाडिये।

कुलकी रक्षाके लिये एक व्यक्तिका, ग्रामको रक्षाके लिये कुलका, जनपदके हितके लिये ग्रामका और अपने वास्तकिक कल्याणके लिये पृथिवीका भी परित्याग कर देना चाहिये-

> त्यनेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यनेत्। ग्रामं जनपदस्याधे आत्माचे पृथिवी त्यजेत्॥

> > (\$1705)

व्यक्तिके घरमें निवास करना उचित नहीं है। नरकवासके सारस पक्षी सूखे हुए सरीवरको छोड़कर अन्यत्र चले जाते कारण पाप विनष्ट हो जाता है, किंतु दुश्चरित्र व्यक्तिके हैं। वेश्याएँ धनसे रहित होनेपर पुरुषको छोड़ देती हैं। भरमें निवास करनेसे पापकी निवृत्ति नहीं होतो। बुद्धिमान् मन्त्री धष्ट राज्यका त्याग कर देते हैं। भीर बासी पुष्पको पुरुष एक पाँचको स्थिर करके ही दूसरे पाँचको आगे त्यागकर नविषकसित कुसुमपर बले जाते हैं और मुग जले बढाता है। इसीलिये अगले स्थानकी परोक्षके बिना हुए वनका परित्याग कर अन्यत्र आश्रय लेते हैं। इस प्रकार पूर्वस्थानका परित्याग नहीं करना चाहिये

दुष्टजनींसे व्याप्त देश, उपद्रवयस्त निवासभूमि, कृपण करते हैं। वास्तवमें कौन किसका प्रिय है ?

आग्रही व्यक्तिके पास संचित जन, गुण एवं पराक्रमसे रहित और तात्विक चर्चासे विद्वान पुरुषको संतुष्ट किया जा रूप तथा आपत्तिकालमें पराङ्मुख मित्रसे मनुष्यको क्या सकता है। सद्भाव रखनेसे देवगण, सजनवृन्द एवं द्विजाति लाभ हो सकता है? जो पदासीन (अधिकारपुक्त) व्यक्ति संतुष्ट होते हैं। इनके अतिरिक्त साधारण लोग खान-पान

सुतजीने कहा-आपतिकालके लिये धनका संरक्षण है, उसके कभी न देखे गये बहुत-से व्यक्ति भी सहायक करना चाहिये, स्त्रियोंकी रक्षाके लिये धनका उपयोग करना हो जाते हैं और सभी व्यक्ति मित्र हो जाते हैं। परंतु जब चाहिये एवं अपनी रक्षामें स्त्री एवं धन दोनोंका उपयोग वही व्यक्ति पदच्युत और अर्थहीन हो जाता है तो उसके असमयमें स्वजन भी शत्र हो जाते हैं।

> आपत्कालमें मित्र, युद्धमें बोर, एकान्त स्थानमें शुचिता, विभवके श्रीण हो जानेपर पत्नी तथा दुर्पिश्चके समय अतिधिप्रियताकी पहचान होती है-

> > आपल्स् मित्रं जानीयाहणे सूरं रहः सुचित्। भावाँ च विभवे शीचे दुर्भिक्षे च प्रियातिथिम्।।

नरकमें निवास करना अच्छा है, किंतु दुश्चरित्र पक्षीगण फलरहित वृक्षींका परित्याग कर देते हैं। वह स्पष्ट है कि स्वार्थकर हो सभी प्राणी एक-दूसरेसे प्रेम

राजा तथा मायावी मित्रका परित्याग कर देना चाहिये। अर्थप्रदानके द्वारा लोभी मनुष्यको, करनद्ध-प्रणाम कंजूसके हाथमें पहुँचे हुए धन, अत्यन्त दुष्ट और निवेदनसे उदारचेता व्यक्तिको, प्रशंसा करनेसे मूखं व्यक्तिको

१-वर्ष हि नरके जसी न तु दुरुचरिते गृहे । नरकातु श्रीयते पापं कुगृहाम निकति ॥ चलत्येकेन चारेन तिञ्चत्येकेन बुद्धिमान्। न परीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत्॥ (१०९।३-४)

२-अर्थेन कि कृपणहरतगतेन केन डानेन कि बहुशताग्रहसंकृतेन। रूपेण किं गुणपराक्रमवर्जितेन मित्रेण किं व्यसनकारपराद्वमुखेन। अदृष्टपूर्वा बहव: सहाया: सर्वे पदस्थस्य भवन्ति निजः। अवैविहीनस्य पद्य्युतस्य भक्त्यकाली स्वजनोऽपि हर्नुः॥ (१०९।६-७)

३-वर्श श्रीजफलं त्यजीत विहरा: शुर्कं सर: सारमा निर्देश्वं पुरुषं त्यजीत गणिका श्रष्टं रूपं मन्त्रिण:। पूर्व पर्विष्तं त्यजन्ति मधुपा: दुर्ग्य बनान्तं मुगा: सर्वः कार्यवशाजनी हि इसने करवास्ति को कस्सभ:॥ (१०९।९)

तथा पण्डितजन मान-सम्मानसे संतुष्ट हो जाते हैं-ल्ब्यमर्थप्रदानेन श्लाध्यमञ्जलिकर्मणा। मुखं छन्दानुबुन्या च याधातध्येन पण्डितम्॥ सद्भावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पृतवा द्विजाः। इतरे खाद्यपानेन मानदानेन पण्डिताः॥

(totito-tt)

प्रणिपात-निवेदनसे उत्तम प्रकृतिवाले सञ्जन पुरुषको, भेद-नीतिसे धूर्त तथा अपनी अपेक्षा कम पराक्रमवाले व्यक्तिको थोडा-बहुत देकर और अपने समान पराक्रमवालेको अपनी अपेक्षाके अनुकूल धन देकर वतामें किया जा सकता है। जिसका जैसा स्वभाव हो, उसके अनुरूप वैसा ही प्रिय बचन बोलते हुए उसके हृदयमें प्रवेतकर चतुर व्यक्तिको यथाशीध्र उसे अपना बना लेना चाहिये।

नदी, नख तथा शृंग धारण करनेवाले पशु, डावमें शस्त्र धारण किये हुए पुरुष, स्त्री और राजपरिवार विश्वास करनेयोग्य नहीं होते। जो मनुष्य बुद्धिमान है, उसको अपनी धनश्चति, मनस्ताप, घरमें हुए दक्षरिय, बञ्चना तथा अपमानकी चटनाको इसरेके समक्ष प्रकाशित नहीं करना चाहिये-

> नदीनां च नखीनां च शृक्षियां शस्त्रपाणिनाम्। विश्वासी नैय कर्तव्यः स्त्रीय राजकुलेय च॥ अर्थनामं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि छ। वञ्चनं चापमानं स मतिमान् न प्रकाशयेत्॥

> > (totite-ta)

नीच और दुर्जन व्यक्तिका सांनिध्य, अत्यन्त बिरह तथा सम्मान, दूसरेके प्रति स्नेष्ठ एवं दूसरेके चरमें निवास- वे सभी नारीके उत्तम शीलको नष्ट करनेवाले हैं।

है, कौन दु:खी नहीं है और किसकी धन-सम्पत्तियाँ सर्देव दुर्जनके जालमें फैसकर कुशलपूर्वक जीवनयापन कर आएको दान देना चाहियेँ।

सकता है ? (अर्थात् कोई नहीं कर सकता।)

जिस मनुष्यके मित्र, स्वजन, बन्धु-बान्धव नहीं हैं, जिसके पास अपनी बुद्धि नहीं है, वह कैसे अपने जीवनमें सफल हो सकता है और जिस कर्मके सम्पन्न होनेपर भी फलका उदय नहीं दीख रहा है, उस कर्मके अनुष्टानसे क्या लाभ ? ऐसे ही जो सम्पत्ति परिणायमें बहुत बढ़ा दु:ख देनेवाली है, उसका संग्रह कौन बुद्धिमान व्यक्ति करेगा?

जिस देशमें व्यक्तिको सम्मान न मिले, आदर भी न मिले, अपने बन्धु-बान्धव भी सुलभ न हों और विद्या-लाभको भी सम्भावना न बनती हो, उस देशका परित्याग कर देना चाहिये।

जिस धनके लिये राजा और चोरसे भय नहीं है, जो धन मरनेपर भी मनुष्यका साथ नहीं छोड़ता, उस धनका उपार्जन करना चाहिये। प्राणोंको भी संकटमें डाल देनेवाले परिजयसे जिस धनका अर्जन किया जाता है, उस धनको तो उत्तराधिकारी लोग यथोचित विभागके साथ अपने काममें ले लेते हैं; परंतु प्राणोंको संकटमें डालकर धनार्जनके लिये परिश्रम करनेवाला व्यक्ति धनके लोभमें जिन पापींको करता है, वे पाप ही उसकी धरोहर बनकर उसकी नरक-यातनाके अथवा कृत्सित योगिके कारण बनते हैं।

संचित किया हुआ तथा बार-बार विचार करके सुरक्षित रखा हुआ, कदर्य (कुपण)-का धन चुहैके द्वारा एकत्रित किये गये धनके तुल्य है। ऐसा धन दुःख देनेके लिये ही होता है। उपार्जनकर्ताको उससे कोई भी सुख प्राप्त नहीं होता। ऐसा व्यक्ति मात्र धनार्जनका कह ही भोपता है।

ऐसे हो व्यक्ति जन्मान्तरमें दरिद्र होनेके कारण नग्न किसके कुलमें दोष नहीं है, रोगसे कौन पीड़ित नहीं होकर अनेक प्रकारके व्यसनसे त्रस्त हो रूखे स्वभाववाले हो जाते हैं तथा हाथमें खप्पर लेकर घर-घर भीख माँगते विद्यमान रही हैं? इस पृथिवीपर धन प्राप्त कर कौन हैं और यह लोगोंको बताते हैं कि दान न देनेवालेको ऐसा अहंकारसे भरा नहीं है, किसपर विपत्तियाँ आयी नहीं हैं. हो फल मिलता है। ऐसे भिश्रुक कुछ दीजिये, कुछ स्त्रियोंके द्वारा किसका मन क्षुव्ध नहीं किया गया है और दीजिये— ऐसी बार-बार याचना करते हुए संसारको यह राजाओंका कौन प्रिय रहा है ? कौन कालकवितत नहीं हुआ। जिल्ला प्रदान करते हैं कि दान न देनेवाले मनुष्यकी यही है, किस याचकका स्वाभिमान नष्ट नहीं हुआ है, कौन दशा होती है। आपकी भी मेरी-जैसी दुर्दशा न हो, इसलिये

१-कस्य दोष: कुले नास्ति व्याधिना को न पीडित:।केन न व्यसनं प्राप्तं विय: कस्य निरन्तरा:॥ कोऽर्थ प्राप्य न गर्वितो भूवि नर: कस्यापदो नगता: स्त्रीभि: कस्य न खण्डितं भूवि मन: को नाम राज्ञां प्रिय:।

कः कालस्य न गोषरान्तरगतः कोऽधीं गतो गौरवं को वा दुर्जनवागुरानिपतितः क्षेमेण यातः पुमान्॥ (१०९।१७-१८)

२-शिक्षयन्ति च याचने देहीति कृपणा जना:। अवस्थेयमदानस्य मा भूदेवं भवानपि॥ (१०९।२५)

कृपण अपने द्वारा संचित धन यहाँमें नहीं लगा पाता है और अपने द्वारा मौगकर इकट्टा किये धनको गुणवानोंको भी नहीं देता है। इस प्रकारका कृपणके द्वारा सुरक्षित धन चोर और राजाके काममें ही आता है। कृपनका धन देवता, ब्राह्मण, बन्धु तथा आत्महितके लिये नहीं होता, वह तो अग्नि, चोर अथवा राजांके लिये होता है। अत्यन्त कष्टसे अर्जित किया गया धन, धर्मका अतिक्रमण करके अर्जित किया गया धन अथवा राष्ट्रको साष्टाङ्ग प्रणाम करके और उसकी अधीनता स्वीकार करके प्राप्त किया गया धन-इस प्रकारका धन तुझे कभी प्राप्त न हो।

विद्याका अभ्यास न करनेसे वह विनष्ट हो जाती है। शक्ति रहते हुए फटे-पुराने, मैले-कुचैले बस्त्रोंको धारण करनेवाली कित्रयाँ सौभाग्यको रक्षा नहीं कर पाती, सुपाच्य भोजनसे रोग नष्ट हो जाता है और चातुर्यपूर्ण नीतिसे रातुका विनाश हो जाता है।

चोरका वध ही उसका दण्ड है। दुष्ट मित्रके लिये समुचित दण्ड उसके साथ अरूप वार्तालाय करना है। स्त्रियोंका दण्ड उनसे पृथक् राष्यापर शयन करना तथा ब्राह्मणके लिये दण्ड निमन्त्रण न देना है।

दुर्जन, शिल्पकार, दास तथा दुष्ट एवं डोलक आदि वाद्य और स्त्री आदि सम्यक् अनुशासनसे ही मृदु-स्वभावको प्राप्त करते हैं। ये सत्कारमात्रमे मृदु स्वभाववाले नहीं हो पाते।

कार्यमें संलग्न करनेसे भूत्य, दु:ख होनेपर बन्धु-बान्धव, विपत्तिकालमें मित्र तथा ऐश्वर्यके नष्ट होनेपर स्वीके स्वभावकी परीक्षा करनी चाहिये-

> जानीयात्प्रेषणे भृत्यान् बान्धवान् व्यापनागमे। पित्रमापदि काले च भावां च विभवस्ये॥

> > (561201)

पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंका आहार दुगुना, युद्धि चौगुनी, कार्यकी क्षमता छ:गुनी और कामवासना आउगुनो अधिक मानी गयी है। स्वप्रसे निदाको नहीं जीता जा सकता, कामवासनासे स्त्रीपर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती,

प्वास नहीं बुझावी का सकती। मांसयुक्त क्षिग्ध भोजन, नाना प्रकारकी मदिराओंका पान, सुगन्धित द्रव पदार्थीका विलेपन, सुन्दर वस्त्र और सुवासित माल्याभरण-ये स्वियोंकी कामवासनाकी अधिवृद्धि करते हैं। जैसे लकड़ियोंके अधिक-से-अधिक ढेरको प्राप्त करके भी अग्रि संतुष्ट नहीं होती; नदीसमृहके मिलनेपर भी समुद्र तृष्णारहित होकर संतृप्त नहीं होता; यमराज सभी प्राणियोंका संहार करके भी आत्मसंतुष्टि प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं; ऐसे ही नारी असंख्य पुरुषोंके साथ सम्पर्क करके भी संतुप्त नहीं होती।

रिष्ट व्यक्ति (सुशील), अभीष्ट-सिद्धि, प्रियवचन, मुख, पुत्र, जीवन और देवपुरुसे प्राप्त आशीर्वचनसे मनुष्यको इच्छाएँ परिपूर्ण नहीं होती, इनके लिये अभिलाषा बढ़ती ही रहती है। धनके संग्रहसे राजा, नदियोंकी जलगरिसे सपुद्र, सम्भाषणसे विद्वान् एवं राजदर्शनसे प्रजाके नेत्र संतुष्ट नहीं हो पाते।

अपने विहित कर्म तथा धर्मानरणका पालन करते हुए जीविकोपार्जनमें तत्पर, सदैव शास्त्र-चिन्तनमें रत तथा अपनी स्त्रोमें अनुरक, जितेन्द्रिय और अतिधिसेवामें निरत बेह पुरुषोंको तो घरमें भी मोक्ष प्राप्त हो जाता है ।

जिस सरकर्मनिरत पुरुषके पास मनोऽनुकूल, सुन्दर वस्त्राभूषणसे अलंकृत स्त्री है, यदि वह व्यक्ति उसके साथ अपने भवनकी अटारीपर सुखपूर्वक निवास करता है ती उसके लिये यहींपर स्वर्गका सुख है।

जो स्वियाँ स्थभावसे ही धर्म-विरुद्ध आचरण करनेवाली एवं पतिके प्रतिकृत व्यवहार रखनेवाली हैं, वे स्त्रियाँ न धन आदिके दान, न सम्मान, न सरल व्यवहार, न सेवाभाव, न सस्त्र-भय और न सास्त्रोपदेशसे ही अनुकूल को जा सकती हैं, वे तो सदा प्रतिकृत ही रहती हैं।

विद्यार्जन, अर्थ-संग्रह, पर्वतारोहण, अभीष्ट-सिद्धि तथा धर्माचरण-इन पौचोंको धीरे-धीर प्राप्त करना चाहिये।

देवपुजनादिक कर्म, ब्राह्मणको दान, गुणवती विद्याका संग्रहण तथा सन्मित्र-ये सदा सहायक होते हैं। जिन्होंने ईंधनसे अग्निको तृप्त नहीं किया जा सकता तथा मद्यसे बाल्यकालसे विद्यार्जन नहीं किया है, जिनके द्वारा युवावस्थामें

१-स्वकर्मधर्मार्कितजीवितानां शास्त्रेषु दारेषु सदा स्टानाम्। जितेन्द्रियाणामतिधिप्रियाणां गृहेऽपि मोखः पुरुवोत्तनानाम्॥ (१०९।४३)

२-१ रानेन १ मानेन गार्ववेन व सेवया।व इस्केण व शास्त्रेण सर्ववा विषया: विवय:॥(१०९।४५)

धन और स्त्रीकी प्राप्ति नहीं की जा सकी है, वे इस संसारमें शोकके पात्र हैं और मनुष्यरूप धारण करके पशुवत् विचरण करते हुए दु:खसे परिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं।

विद्याके उपासकको अध्ययन-कालमें भोजनकी चिता नहीं करनी चाहिये। विद्यार्थीको विद्यार्जनके लिये गरुडके समान सदूर देशको यथाशीच्र पार कर लेना चाहिये।

जो बाल्यावस्थामें विद्याध्ययन नहीं करते हैं और फिर युवावस्थामें कामातुर होकर यौवन तथा धनको नष्ट कर देते हैं, वे वदावस्थामें चितासे जलते हुए त्रिशिरकालमें कुहरेसे झुलसनेवाले कमलके समान संतप्त जीवन व्यतीत करते हैं।

स्थापना केवल तर्कके द्वारा नहीं हो सकती। बुतियाँ भी

अनेक प्रकारको हैं। ऐसा कोई भी ऋषि नहीं है जो भिन्न-भित्र प्रसंगोंमें विभिन्न सिद्धान्तोंका निर्देश न करे। इसीलिये धर्मका तत्व न तकोंमें निहित है, न श्रुतियोंमें निहित है, अपित् आसोंको प्रज्ञामें निहित है। फलत: शिष्ट लोग जिस मार्गका अनुसरण करते हैं, उसी मार्गको अपना धर्म समझना चाहिये ।

आकार, संकेत, गति, चेष्टा, वाणी, नेत्र और मुखकी भावभंगिमासे प्राणीके अन्त:करणमें छिपा हुआ भाव प्रकट होता रहता है । विद्वान वह है जो दूसरेके द्वारा अकथित विषयको भी जान लेता है। बुद्धि वह है जो दूसरोंके संकेतमात्रसे भी वास्तविकताको समझ ले। कथित सब्दका अर्थ तो पशु भी जान लेते हैं। मनुष्यके दिखाये शुष्क तके स्वयंमें अप्रतिष्ठित है, अत: किसी सिद्धान्तकी गये मार्गका अनुसरण तो हाथी और योडे भी करते हैं। (अध्याय १०९)

नीतिसार

श्रीसृतजीने कहा-जो व्यक्ति सुनिश्चित अर्थका परित्याग कर अनिश्चित पदाधौंका सेवन करता है, उसका सुनिश्चित अर्थ विनष्ट हो जाता है और अनिश्चित पदार्थ तो नष्ट होता ही है-

यो ध्रवाणि परित्यन्य द्वाध्रवाणि निषेवते। ध्वाणि तस्य नष्ट्यन्ति स्प्रध्वं नष्ट्रमेव सः।

वाग्वैभवसे रहित व्यक्तिकी विद्या और कायर पुरुषके हाथमें विद्यापान अस्त्र वैसे ही उन्हें संतुष्टि नहीं प्रदान करते. जैसे अपने अंधे पतिके साथ रहती हुई उसकी स्त्री अपने रूप-लावण्यसे पतिको संतुप्त नहीं कर पातो।

सन्दर भोज्य पदार्थ भी उपलब्ध हो और भोजनकी तक्ति भी हो, रूपवती स्त्री भी हो और सहवास करनेको क्षमता भी हो तथा धन-वैभव भी हो और दान करनेकी सामर्ख्य भी हो- ये अल्प तपके फल नहीं है।

सदाचार है, स्त्रीका फल रित और पुत्रवान होना है तथा स्त्रियों ही उत्पन्न होती हैं। अपने कुलके साथ भगवद्धकका धनका फल है दान और भोग।

विद्वान् व्यक्तिको ब्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न कुरूप कन्याके साथ भी विवाह कर लेना चाहिये, किंतु रूपवती एवंअच्छे लक्षणींवाली उत्तम कुलसे हीन कन्या उसके लिये कभी भी ग्राष्ट्र नहीं है।

मनुष्यको उस अर्थसे क्या लाभ है, जिस अर्थका साथ अनुबंसे होता है? क्योंकि कोई व्यक्ति सर्पके फणपर विद्यमान मणिको प्राप्त करना नहीं चाहता।

अग्निहोत्रके लिये हविष्यात्र दृष्ट कुलसे भी ग्राह्म है। बालकसे भी सुभाषित ग्रहण करना उचित है। अमेध्य अर्थात् अपवित्र स्थानसे स्वर्ण और हीन कुलसे स्त्रीरूपी रत भी मनुष्यके लिये संग्राह्य है। विषसे अमृत ग्राह्य है अपवित्र स्थलसे भी स्वर्ण ग्राह्म है तथा नीच व्यक्तिसे ब्रेष्ट विद्या भी ग्रहण करने योग्य है और दुष्कुलसे भी स्त्री-रस ग्राह्य है।

राजाके साथ मित्रभाव और सर्पका विषहीन होना वेदोंका फल अग्निहोत्र है, विद्याका फल शील और सम्भव नहीं है। वह कुल पवित्र नहीं रहता, जिस कुलमें सम्पर्क कर देना चाहिये, पुत्रको विद्याध्ययनमें लगाना

१-तर्के प्रप्रतिष्ठा इतयो विभिन्नाः नासावृष्टियस्य मतं र भिन्नम्। धर्मस्य तत्वं निहितं गृहायां महाजनो येन गतः स पन्याः॥(१०९।५१)

२-अकारीरिनिर्गरंगा चेष्टवा भाषितेत च। नेजनकाविकाराभ्यां सभ्यतेऽन्तर्गतं मनः॥ (१०९।५२)

चाहिये, शत्रुको व्यसनमें जोड़ देना चाहिये तथा जो अपने इष्टपुरुष हैं, उन्हें धर्ममें नियोजित करना चाहिये।

विद्वान मनुष्यको नौकर और आभवजोंको यथीचित स्थानपर नियुक्त करना चाहिये, क्योंकि चुडामणि कभी चरणमें सुशोधित नहीं होती है। चृहामणि, समुद्र, अग्नि, घण्टा, अखण्ड अम्बर और राजा-ये सिरपर धारण करने योग्य होते हैं अर्थात् आदरणीय हैं। प्रमादक्त भी इन्हें चरणमें स्थान नहीं देना चाहिये। मनस्यी व्यक्तिकी पुष्प-स्तबकके समान दो ही स्थितियाँ होती हैं-या तो वह सबके सिरपर ही रहता है अथवा बनमें ही चला जाता है। मणि स्वर्णाभूषणमें संनिविष्ट करनेके योग्य होती है। यदि वह मणि लाखसे निर्मित आध्यणमें संनिहित की जाती है तो उस कुसंगतिके कारण वह न स्वयं संध्या होकर विलाप करती है और न सुशोधित ही होती है। अब, गज, लीह, आह, पापाण, वस्त्र, नारी, पुरुष तथा जल-इनमें परस्पर बहुत बड़ा अन्तर है।

तिरस्कृत होनेपर भी धैर्यसम्मन सज्जन व्यक्तिके गुन कभी भी आन्दोलित नहीं होते। दुष्टके द्वारा नीचे कर दी गयी अग्निकी भी शिखा कभी नीचे नहीं जाती।

उत्तम जातिका अस्र अपने स्वामीका चायक-प्रहार सिंह हाथीकी गर्जना और वीर पुरुष शत्रपक्षकी भयंकर गर्जना सहन नहीं कर सकता।

यदि सज्जन मनुष्य दुर्भाग्यवश कदाचित् वैभवाहित हो जाता है तो भी यह न तो दुष्ट जनोंकी सेवा करनेकी अभिलाषा रखता है और न नीच जनोंका सहारा लेता है। भूखसे अत्यन्त पीडित होनेपर भी सिंह पास नहीं खाता, अपित् हाथियोंके गर्म रक्तका ही पान करता है।

अभिलाषा रखता है।

शतुकी मृदुभाषी संतानोंकी उपेक्षा करना बुद्धिमान् जाना चाहिये। (अध्याय ११०)

जनोंके लिये उचित नहीं है; अर्थात प्रिय बोलनेवाले तत्रपत्रोंसे भी सावधान रहना चाहिये; क्योंकि समय आनेपर वे ही असहा द:ख-प्रदाता एवं विषयात्रके समान भयंकर विपत्ति उत्पन्न करनेवाले हो जाते हैं।

उपकारके द्वारा वशीभृत हुए शत्रुसे अन्य शत्रुको समूल उखाइ फेंकना चाहिये, क्योंकि पैरमें गड़े हुए कटिको मनुष्य हाथमें लिये हुए कॉरेसे ही निकालता है।

सजन व्यक्तिको अपकारपरायण मन्ध्यके नाशकी चिता कभी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वह नदीके तटपर अवस्थित वृक्षोंकी भौति स्वयं हो नष्ट हो जाता है।

अर्चका रूप धारण करनेवाले अनर्थ और अनर्थका रूप धारण करनेवाले अर्थ- वे दैवाधीन पुरुषके विनाशके लिये होते हैं। कभी-कभी कार्यकालके भेदसे निष्पाप बुद्धि उत्पन्न हो जाती है; क्योंकि देवके अनुकूल रहनेपर पुरुषका सर्वंत्र कल्याण ही होता है। धनार्जन करते समय, किसी भी प्रकारका प्रयोग करते समय, अपने कार्यको सिद्ध करते समय, भोजनके समय और सांसारिक व्यवहारके समय मनुष्यको लजाका परित्याग कर देना चाहिये।

दिस देश, प्रान्त, नगर एवं प्राममें धनवान, श्रीप्रिय, राजा, नदी तथा वैद्य-- ये पाँच नहीं रहते हैं, यहाँ बुद्धिमान व्यक्तिका रहना उचित नहीं है । जहाँ आना-जाना न हो, जहाँ अनुधित आचरणको रोकनेके लिये भयको सम्भावना न हो, लजा न हो तथा दानकी प्रवृत्ति न हो, वहाँ तो एक भी दिन निवास नहीं करना चाहिये। जिस देश-प्रान्तादिमें दैवज, बेदज, राजा, नदी एवं सज्जन व्यक्ति-इन पाँचका निवास नहीं है, वहाँपर निवास नहीं करना चाहिये।

हे शौनक! एक ही व्यक्तिमें सभी जान प्रतिष्ठित रूपमें जिस मित्रमें एक बार भी दृष्ट भाव परिलक्षित हो जाता. नहीं रहते हैं। इसलिये यह सर्वमान्य है कि सभी व्यक्ति है और पुन: उसोसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित करनेको जो सब कुछ नहीं जानते हैं और कहींपर भी सभी सर्वत नहीं इच्छा करता है, वह मानो अधतरी (खच्चरी)-के द्वारा धारण हैं। इस संसारमें न तो कोई सर्वविद है और न कोई किये गये गर्भके सदश मृत्युको ही प्राप्त करनेकी अत्यन्त मुखं ही है। उत्तम, मध्यम तथा निम्नस्तरीय ज्ञानसे जो व्यक्ति जितना जानता है, उसे उतनेमें विद्वान समझा

राजनीति-निरूपण

सूतजीने कहा—राजाको चाहिये कि वह सदैव सबकी भलीभौति परीक्षा करता रहे। सत्यपरायण तथा धर्मपरायण राजा ही नित्य राज्यका पालन करनेमें समर्थ होता है, उसे चाहिये कि वह श्रृप्तसेनाओंको जीतकर धर्मपूर्वक पृथिबोका पालन करे।

राजाको जंगलमें मालीके समान पुष्पवृक्ष्से पुष्प ग्रहण करना चाहिये, किंतु कोयला बनानेवालेके समान वृक्षका मूलोक्छेद नहीं करना चाहिये। अर्थात् राज्यक्रमी वनमें ग्रजाको अपनी प्रजासे कर ग्रहण करते समय मालीके सदृत आचरण करना चाहिये, वृक्ष काटकर कोयला बनानेवाले अंगारकका आचरण उसके लिये सर्वया त्याच्या है।

जिस प्रकार दूथ दुइनेवाले दुग्धका पान करते हैं, किंतु विकृत हो जानेपर उसका उपभोग नहीं करते, उसी प्रकार राजाओंको चाहिये कि वे परराष्ट्रका उपभोग तो करें, किंतु उसको दूषित न करें। जिस प्रकार दुग्ध-प्रान्तिके इन्सुक मनुष्य गाँके स्तनसे दुग्ध तो निकाल लेते हैं, परंतु उसके स्तनको काटते नहीं; इसी प्रकार राजाके द्वारा प्रपुक्त इस नीतिसे अर्थात् कर-रूपमें सम्पूर्ण धन ग्रहण करनेसे पीड़िट राष्ट्र अध्युदयको प्राप्त नहीं करता है। अताएव राजाको सब प्रकारसे पृथियीका पालन करना चाहिये; क्योंकि ऐसे राजाके पास ही भूमि, कीर्ति, आयु, प्रतिष्ठा और पराक्रम विद्यमान रहते हैं।

नित्य भगवान् विष्णुकी पूजा करके जो धार्मिक राजा गौ-ब्राह्मणके हितमें रत रहता है, वही जितेन्द्रिय राजा प्रजाके पालनमें समर्थ हो सकता है।

ऐश्वर्य अस्थायो होता है। अतः प्राप्त हुए अस्थिर ऐश्वर्यमें आसक्त न होकर राजाको धर्माचरणमें अपनी वृद्धिको लगाना चाहिये। धन-सम्पत्ति आदि तो छणभरमें ही नष्ट हो जाता है, क्योंकि धन आदि अपने अधीन नहीं हैं। मनको रमणीय लगनेवाली स्त्रियाँ सत्य हो सकती हैं. विभृतियाँ (धन-सम्पत्ति) भी सत्य हो सकती हैं, किंतु यह जीवन तो स्त्रीके कटाश्चपातकी भाँति चंचल (असत्य) है। शरीरमें स्थित वृद्धावस्था सिंहनोके समान भयभीत करती रहती हैं, रोग शत्रुकी भौति शरीरमें उत्पन्न होते रहते हैं। आयु फूटे हुए घड़ेसे निकलते हुए जलके सदश शीण होती जाती है, फिर भी इस संसारमें कोई भी मनुष्य आत्महित-चिन्तनमें प्रवृत नहीं होता।

हे मनुष्यो। इस क्षणभंगुर जीवनमें आप सब निश्चिन कर्ने हैं? दूसरेका हित करना ही उचित है, जो बादमें कल्पाणकारी है। इस परोपकार-धर्मसे विषरीत कामिनियोंके मन्द-मन्द कटाक्षणतसे कामपीड़ित आप सबके द्वारा जो जानन्द प्रान्त किया जाता है, क्या उसीमें आप सभीका हित सन्तिहत है? ऐसे आचरणमें तो कभी भी हित सम्भव नहीं है। अत: इस प्रकारका पाप न करें। आप सभीको सदेव ब्राह्मण, विष्णु और उस परात्पर ब्रह्मका विधिवत् निरन्तर भजन करना चाहिये; क्योंकि जलमें दूबे हुए पटके समान आयु मृत्युके बहाने एक दिनमें ही समान्त हो सकतो है, अथवा यह धीर-धीर नष्ट होती जाती है।

जो मनुष्य पराधी स्वियों मातृभाव रखता है, जो दूसरेके दब्योंको मिट्टी-पत्थाके ढेलेके समान नगण्य समझता है और सभी प्राणियोंमें अपने ही स्वरूपका दर्शन (आत्मदर्शन) करता है, वही विद्वान् है—

भातृवत्पादारेषु परडव्येषु लोष्ट्यत्। आत्मवत्सर्वभृतेषु यः पश्चति स पण्डितः॥

(200103

हे ब्राह्मणो! सत्य तो यही है कि राजागण अपनी आत्माक लिये ही राज्यप्राध्तिकी कामना करते हैं और इसीलिये सभी कार्योमें अपनी वाणीका उल्लंधन भी सहन नहीं करते हैं तथा धनका संचय भी इसीके लिये करते हैं, किंतु राजाको भी अपनी रक्षा करके शेष ष्रधे हुए धनका उपयोग द्विजातियोंके भरण-पोषणमें करना चाहिये।

हैं। मनको रमणीय लगनेवाली स्त्रियाँ सत्य हो सकती हैं. ब्राह्मणोंका मूल मन्त्र ॐकार है। इस ॐकारकी विभृतियाँ (धन-सम्पत्ति) भी सत्य हो सकती हैं, किंतु यह उपासनामे राष्ट्रको अभिवृद्धि होती है और योगसे राजा जीवन तो स्त्रीके कटाक्षपतको भाँति चंचल (असत्य) है। वृद्धिको प्राप्त करते हैं और किसी भी प्रकारकी व्याधियाँ शरीरमें स्थित वृद्धावस्था सिंहनोंके समान भयभीत करतो उसे बीध नहीं सकतीं।

१-दोग्धारः श्रीरभुज्ञाना विकृतं तन्त भुज्ञते। प्रराष्ट्र महीक्रमीशीकव्यं व च दृष्येत्॥ (१११।४)

२-ऐश्वर्यमधुवं प्राप्य राजा धर्मे मति बरेत्। क्षणेन विभवी रहवेन्यान्ययन धनाटिकम्॥ (११९।८)

३-सल्यं मनोरमाः कामः सन्यं रम्या विभूतयः। किंतु वै विनिधाचङ्गभङ्गितीलं हि जीवितम् ॥ व्याप्रीतः तिष्ठति जरा परितर्जयनी रोगाशः झक्तः इव प्रभवन्ति गारे।

आयु: परिसर्वति धिन्नघटादिवाम्भो त्योको न वात्महितमाचरतीह कक्षित्॥(१११।९-१०)

सब प्रकारसे असमर्थ मुनिजन भी द्रव्योपार्जन करते हैं. फिर पुत्रवत् प्रजाका पालन करते हुए अर्थका संग्रह करनेवाले राजाके विषयमें क्या कहा जा सकता है? धनसंचय करना तो उसके लिये आवश्यक ही है।

जिसके पास धन है, उसीके मित्र एवं बन्ध्-बान्धव है। वही इस संसारमें पुरुष है और वही धन-सम्पन व्यक्ति विद्वान् है। धनरहित होनेपर मनुष्यको मित्र, पुत्र, स्त्री तथा परिजन छोड़ देते हैं। धनवान् होनेपर पुन: वे सभी उसीका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं: क्योंकि इस संसारमें धन ही पुरुषका बन्धु है-

यस्यायस्तिस्य मित्राणि यस्यायस्तिस्य बान्धवाः। यस्यार्थाः स पुर्मोत्लोके पस्पार्थाः स व पण्डितः॥ त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं पुत्राञ्च दाराश्च सुद्वजनाञ्च । ते चार्थवन्ते पुनराक्षयन्ति हार्वो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः ॥

जो राजा शास्त्रीके ज्ञानसे शुन्य है, वह नेत्रीके रहते हुए भी अन्धेके समान है; क्योंकि अन्धा व्यक्ति तो अपने गुप्तचरके द्वारा देख सकता है, किंतु शास्त्र-जानसे रहित राजा देखनेमें असफल ही रहता है-

> अन्धो हि राजा भवति यस्तु शास्त्रविवर्जितः। अन्धः पश्यति चारेण शास्त्रद्वीनो न पश्यति॥

जिस राजाके पुत्र, भूत्य, मन्त्री एवं पुरोहित तथा इन्द्रियाँ प्रमुख रहती हैं अर्थात् अपने-अपने कर्तव्यके पालनमें स्ववधान नहीं रहती हैं, उसका राज्य निश्चित हो चिरस्थायी नहीं होता। जिस [ब्रान-सप्पन्न] व्यक्तिने [बुद्धिमान् तथा आलस्यरहित] पुत्र, भूत्य एवं परिजन-इन तीनीको योग्यरूपमें प्राप्त किया है, वह राजाओंके सहित चारों समुद्रसे संयुक्त पृथिबीपर विजय प्राप्त कर लेता है।

जो राजा शास्त्रसम्मत और युक्तियुक्त सिद्धान्तीका उल्लंघन करता है, वह निश्चित ही इस लोक एवं परलोक-दोनोंमें नष्ट हो जाता है ।

आपत्कालके आनेपर राजाको दु:खी नहीं होना चाहिये, उसे समबुद्धि, प्रसन्नात्मा तथा सुख-दु:खमें समान रहना

चाहिये। धैर्यवान् मनुष्य कष्ट प्राप्त करके भी द:खी नहीं होते हैं, क्योंकि राहुके भूखमें प्रविष्ट होकर चन्द्र क्या पुन: उदित नहीं होता? शरीरके लालन-पालनमें अनुरक्त जनोंक प्रति धिक्कार है। धिकार है।। मनुष्यको धनहीन होनेसे श्रीज हुए ऋरीरके प्रति भी खेद नहीं करना चाहिये। यह तो सुना हो गया है कि [पतिव्रता] पत्नीसहित पाण्डुपुत्र युधिष्टिर आदिने आपत्कालके दु:खसे मुक्त होकर पुन: सुख प्राप्त किया था। अतः अनुकृत समयकी प्रतीक्षा पैर्यके साथ करनी चाहिये।

गन्धर्व-विद्या, वाद्य, गणिकागण, धनुर्वेद और अर्थशास्त्रकी रक्षा राजको करनी चाहिये, क्योंकि ये सभी अपनी-अपनी बगह राष्ट्रके लिये उपयोगी हैं। जो राजा भूल्यपर अकारण क्रोध करता है, वह काले भयंकर नागसे छोडे गये विषसे ग्रस्त उत्सादको प्राप्त करता है।

राजाको कभी भी श्रोत्रियके प्रति, भृत्यके प्रति किंबहुना मानवमात्रके प्रति न कभी चपलदृष्टि रखनी चाहिये और न कभी भी मिथ्या वाक्यका प्रयोग करना चाहिये। जो राजा अपने योग्य भूत्य एवं योग्य स्वजनके बलपर गाँवत होकर शासनकी उपेक्षा करता है और मदान्ध होकर बिलासी जोबन ज्यतीत करता है, वह अति शीध रुष्ट्रऑसे पराजित हो जाता है।

राजाको क्रोधातुर होकर अहंकारमें भुकृटि टेढ़ी नहीं करनी वाहिये। जो राजा दोषरहित भृत्योंपर अधर्मपूर्वक शासन करता है, इस लोकमें उसके सभी विलासपूर्ण सुखोपभोग नष्ट हो जाते हैं। राजाको विलासी वस्तुओंका परित्याग कर देना चाहिये, परंतु धार्मिक राजाके सुखमें प्रवृत्त होनेपर भी उसके शत्रु युद्धमें पराजित हो जाते हैं।

उद्योग, साहस, धैर्य, जुद्धि, शक्ति और पराक्रम- ये छ: प्रकारके जो साइस कहें गये हैं, इनसे समन्वित राजासे देवता भी सहिकत रहते हैं। उद्योग करनेपर यदि व्यक्तिको कार्यमें सफलता प्राप्त नहीं होती है तो उसमें भाग्य ही फारण है. तथापि मनुष्यको सदा पुरुषार्थं करते रहना चाहिये। प्रयत्नसे विरत नहीं होना चाहिये, क्योंकि इस जन्मका ही पौरुप अगले जन्ममें भाग्य बनता है। (अध्याय १११)

१-लंपयेच्यास्त्रपुकानि हेतुपुकानि यानि च। स हि नल्पति वै राजा इह लोके परत्र च॥ (१११।२२)

२-धीरा: कष्टमनुप्राप्य न भवन्ति विपादिन:। प्रविज्य वदनं गहो: कि नोदेति पुन: हाली। (१११।२४)

३-उद्योग: साहसं धैयै बुद्धि: जक्ति: पराक्रम:। यहकिथी यस्य उत्साहस्तस्य देखोऽपि शंकते ॥

उद्योगेन कते कार्ये सिद्धिर्यस्य न विद्यते । देवं तस्य प्रमाणं हि कर्तव्यं पौरथं सदा॥ (१११।३२-३३)

राजाद्वारा सेवकोंके लिये अपनायी जाने योग्य भृत्यनीतिका निरूपण

भृत्यंकि तीन प्रकार जानना चाहिये। अत: उनको योग्यताके योग्य होता है। अनुसार ही उन्हें विभिन्न कार्योंमें लगाना चाहिये।

साथ ही जिस-जिस भूत्यका जो गुण है, उसका भी वर्णन सदैव उनको उस कार्यसे पृथक कर दे। किया जा रहा है।

राजाको प्रत, शील, कुल तथा कर्म-इन चार प्रकारीसे भुत्यको परीक्षा करनी चाहिये।

कुल, शील तथा सद्गुणसे सम्पन्न, सत्व-धर्मपरावण, रूपवान तथा प्रसन्नचित मनुष्यको कोषाध्यक्षके पदपर नियुक्त करना चाहिये। द्रव्योंके मुख्य और रूपकी परीक्षा करनेमें कुशल व्यक्तिको रत्न-परीक्षकके पदपर नियुक्त करना चाहिये। जो सैन्य-शक्तिके बलायलका परिवान प्राप्त करनेमें निपूल हो, उसीको सेनाध्यक्ष बनाना चाहिये।

जो व्यक्ति संकेतमात्रसे स्वामीके अभिप्रायको समझनेमें समर्थ है, बलवान् तथा सुन्दर शरीरवाला है, प्रमादहोन एवं जितेन्द्रिय है, उसको प्रतीहारके पदपर नियुक्त करनेके लिये कहा गया है। जो मेशायो, वाक्यट, विद्वान, सायबादी, जितेन्द्रिय और सभी शास्त्रोंको सम्यक् आलोचना करनेवाला हो, वही सजन व्यक्ति लेखकके पदका अधिकारी है। जो बुद्धिमान्, विवेकशील, दूसरेके चित्तका परिज्ञता, शुर तबा यथोक्तवादी है, उसे दुतके पदपर नियुक्त करना चाहिये। जो मनुष्य समस्त स्मृतियों और शास्त्रोंका पण्डित है. जितेन्द्रिय, शीर्य एवं पराक्रमादि गुणोंसे सम्पन्न है, उसे धर्माध्यक्षके पद्दपर नियक्त करना चाहिये।

जिसके पित-पितामह आदिकी परम्परामें रसोडयेका ही काम होता रहा हो और जो विशेषरूपसे पाकशास्त्रका जाननेवाला, सत्यबादी, पवित्र एवं दक्ष हो, ऐसा पुरुष रसोइयेके लिये उचित होता है।

श्रीसृतजीने कहा —उत्तम, मध्यम और अधम-भेदसे भङ्गलकामनामें अहर्निश दत्तचित्त) विद्वान् राजपुरोहितके

वदि लेखक, पाठक, गणक, प्रतिरोधक (प्रतीहार) सर्वप्रथम भूत्योंकी परीक्षण-विधिको कहा जा रहा है, आदि पदाधिकारी कार्य करनेमें आलस्य करते हों तो राजा

जो दो प्रकारको बात करता है, उद्वेगकर वाणी बोलता घर्पण, छेदन, तापन और ताडन-इन चार विधियोंसे हैं, क्रूरकर्मा है तथा अत्यन्त दारुण है, ऐसे दुष्ट व्यक्ति और जिस प्रकार सुवर्णकी परीक्षा को जाती है, उसी प्रकार सर्पका मुख-ये मात्र दूसरेके अपकारके लिये ही होते हैं। विद्यासे सुशोधित होनेपर भी दुर्जन व्यक्तिका परित्याग कर देना चाहिये. मणिसे अलंकत सर्च क्या भयंकर नहीं होता?

अकारण क्रोध करनेवाले दृष्टसे किस व्यक्तिको भय नहीं रहता? अर्थात् ऐसे दुष्टसे सभी भयभीत रहते हैं; क्योंकि महाभयंकर नागराजका विष तथा दृष्टका कृत्सित बचन दूसरेके लिये असहनीय होता ही है।

राजाको अपने समान धन-वैभवसे सम्पन्न, पौरुष और ज्ञानमें समकक्ष एवं अपने रहस्यको जाननेवाले और उद्योगशील भायको पूर्णरूपसे निष्प्रभावी बना देना चाहिये, अन्यथा राजा निश्चित ही अपने राज्यसे भ्रष्ट हो जाता है: क्वींकि ऐसा भूत्य राज्यका अपहारक ही होता है।

आरम्भर्ये जो भृत्य शुरता दिखाये, मधुर और धीमे वाक्य बोले. जितेन्द्रियके रूपमें स्वयंको प्रदर्शित करे और साथ ही पराक्रमशीलता भी प्रदर्शित करे पर बादमें इसके विपरीत आचरण करे, ऐसे भृत्य हितैषी नहीं होते। आलस्यरहित, अच्छी तरहसे संतुष्ट, अनिदारोगसे रहित, सदा सजग रहनेवाले, सुख-दु:खमें स्थिर-मतिवाले तथा धैर्यसम्बन भूत्य इस जगत्में दुर्लभ हैं। अमासे रहित, सत्वविहान, कुरबुद्धि, निन्दक, अर्हकारी, कपटी, शठ, लोधी, पौरुपहोन और भयभीत होनेवाला भृत्य राजाके लिये त्याच्य है। ऐसे व्यक्तिको किसी भी राज्य-कार्यमें नियक नहीं करना चाहिये।

गजाको दुर्ग (किले)-में संधान किये जाने योग्य जो आयुर्वेदशास्त्रका सम्यक् ज्ञान रखनेवाला सौन्य अस्त्र तथा विविध प्रकारके शस्त्रोंका अच्छी प्रकारसे स्वरूपसे सम्पन्न, सभीके लिये देखनेमें प्रिय लगनेवाला, संग्रह करना चाहिये। ऐसा करनेसे राजा अनुको पराजित अयु, तील और गुणेंसे सम्पन्न हो, वह वैदाके पदका अधिकारी कर सकता है। परिस्थितिके अनुसार संधिकी अनिवार्यता होता है। येद-वेदाङ्गके नत्वोंको जाननेमें समर्थ, जय- होनेपर राजाको शत्रुके साथ छ: मास अथवा एक वर्षपर्यन्त होमपरायण नित्य आशीर्बाद देनेमें तत्पर (अर्थात राजकी ही संधि करनी चाहिये। उसके बाद अपनी संचित

१ दर्जनः पॉहरतंत्र्यो विद्ययाऽसंकतोऽपि सन्। मणिना भृषितः सर्पः किमसौ न भयहुरः॥ (११२।१५)

२ निगलन्याः मसंतुष्टाः सस्यानाः प्रतिबोधकाः। सखदःखसना धीत भूत्वा लोकेषु दुर्लभाः। (११२।१९)

प्राप्त होते हैं।

जो राजा भृत्योंकी सुक्ष्म कार्यप्रणालीके द्वारा जो कुछ ही नियुक्त करना चाहिये। (अध्याय १९२)

सामर्थ्यको देखते हुए शत्रुको पराजित करना चाहिये। जो भी शुभाशुभ कर्म करता है, उसीके अनुसार ही वह भविष्यमें राजा राज्यकार्यमें मूर्ख व्यक्तिको नियोजित करता है, उस अधिवृद्धि या हासको प्राप्त करता है। अत: राजाको धर्म-राजाको अपयश, धन-विनाश तथा नरकभोग-ये तोन अर्थ तथा काम-इस त्रिवर्गको साधना एवं गौ-ब्राह्मणको अधिरक्षाके लिये राज्यकार्यमें सर्वगुणसम्पन्न विद्वान् व्यक्तिको

नीतिसार

नियुक्ति और गुणहोनका परित्याग करना चाहिये। विद्वान् तथा भिक्षा भी भीर-भीरे थोडा-थोडा धर्मपूर्वक संग्रह व्यक्तिमें सभी गुण विद्यमान रहते हैं, किंतु मूर्ख व्यक्तिमें करनेसे बढ़ते रहते हैं। तो केवल दोष ही रहते हैं।

निरन्तर सज्जनोंके साथ रहना चाहिये और सज्जनोंकी ही संगति करनी चाहिये। विवाद एवं मैत्री भी सजनोंक साथ हो करनी चाहिये। दुर्जनीके साथ कुछ भी नहीं करना चाहिये। पण्डित, विनीत, धर्मज एवं सत्ववादी जनींके साथ बन्धनमें भी रहना श्रेयस्कर है, किंतु दुष्टोंके साथ राज्यका भी उपभोग करना उचित नहीं है-

> सिद्धरासीत सततं सिद्धः कुर्वति संगतिन्। सद्भिवादं मेत्री च नासद्भिः किचिदाचरेत्॥ पण्डितेश विनीतेश धर्मत्रे: सत्त्वादिभि:। बन्धनस्थोऽपि तिष्ठेचा न तु राज्ये खलैः सह॥

(11114-3)

सभी कार्योंको पूर्ण कर लेना चाहिये। कोई काम अधूरा नहीं छोड़ना चाहिये। इससे सभी प्रकारके अधाँकी प्राप्ति हो जाती है।

जिस प्रकार भ्रमर पुष्पके परागको ग्रहण कर लेता है. किंतु पुष्पको नष्ट नहीं करता; जैसे दूध दुहनेवाला व्यक्ति विकवाटवीमें निवास करना मनुष्यके लिये अच्छा है,

श्रीसुनजीने कहा—राजाको राज्यकार्यमें गुणवान् पुरुषकी प्रतिदिन योडा-थोडा बढता रहता है, वैसे ही राजाका द्रव्य

समुचित रोतिसे अर्जित किये गये धनका भी क्षय होता ही है और ब्रह्मपूर्वक दीयमान दान कोटिग्णित होकर यबासमय मिलता ही है-इस वास्तविकताको ध्यानमें रखते हुए अपना कोई भी दिन दान, अध्ययन या सत्कर्मसे विहीत नहीं होने देना चाहिये। रागी व्यक्तिसे वनमें भी दोष हो जाते हैं। जतः घरमें मनुष्यके द्वारा किया गया पर्ज्ञन्द्रियोंका निग्रह तप ही है। जो व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर अनिन्दित कर्मोमें प्रवृत्त हो सन्मार्गको ओर बढता जाता है, उस विषयवासनाओंसे दूर निवृत्तमार्गबालेके लिये उसका घर ही तथायन है।

सत्यके पालनसे धर्मकी रक्षा होती है। सदा अध्यास करनेसे विद्याको रक्षा होती है। मार्जनके द्वारा पात्रको रक्षा होती है और शीलसे कुलकी रक्षा होती है-

> सत्येन रहयते धर्मे विद्या योगेन रहयते। पुजया रक्ष्यते यात्रं कुलं शीलेन रक्ष्यते॥

बछडेके हितको ध्यानमें रखते हुए दूधको दुहता है, वैसे बिना भीजन किये हो मर जाना बेयस्कर है, सर्पसे परिव्याप्त ही राजाको प्रजाहितका ध्यान रखते हुए प्रजासे करका भूमिपर सोना तथा कुएँमें गिरकर मृत्युको प्राप्त करना उचित दोहन करना चाहिये। जिस प्रकार मधुमवखी एक-एक है, जलके आवर्तवुक्त भवंकर भैवरमें इब मरना श्रेष्ठ है: किंतू पुष्पसे मधुको ग्रहण कर उसे एकत्र करती है, उसी प्रकार अपने ही पक्षके आत्मीय जनसे 'थीडा धन मुझे दे दें' इस राजाको भी प्रजासे धन-संग्रह करना चाहिये। जैसे वल्योक प्रकार याचना करना अच्छा नहीं है। भाग्यका हास होनेसे (बाँबी), मधुमक्खीका छला तथा जुक्लपक्षका चन्द्रमा मनुष्यको सम्पदाओंका विनाश होता है, न कि उपभीग

१-मधुहेच दुहेत् सारं कुसूमं च न धातयेत्। कलापेक्षी दुहेत् क्षीरं भूमि यां पैव पार्किय: ह यथा क्रमेण पुष्पेभ्यक्षिपुते मधु पट्पदः । तथा वितयुपादाय राजा कुर्वीत संबंधम् ॥ (११३।५-६)

२-अर्जितस्य शयं दृष्टाः सम्प्रदशस्य संचयम् । अवन्ध्यं दिवसं कृदोद्यनाध्ययनकर्मम् ॥ (११३।८)

३-वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति शांगिषां वृहेऽपि पश्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः। अकुरिसते कर्मीण यः प्रवर्तने निवृत्तरागस्य गृहं तपीवनम्।

४-वरं विन्ध्याटव्यां निवसनमभूकस्य मरणं वरं सर्पाकीर्गे स्थननव कृषे निपतनम्। वरं भ्रान्तावर्ते सभवजलमध्ये प्रविज्ञानं न तु स्वीये पक्षे हि धनमण् देहीति कथनम् ॥ (११३।११)

करनेसे। पूर्वजन्ममें यदि पुण्य अर्जित है तो सम्मत्तिका नात. कुबुद्धिमें ही विश्वास है तो उसको दण्ड भोगना ही पड़ेगा। कभी नहीं हो सकता।

ब्राह्मणोंका आभूषण विद्या, पृथिवीका आभूषण राजा, आकारका आभूषण चन्द्र एवं समस्त चराचरका आभूषण शोल है-

> विप्राणां भूषणं विद्या पृथिव्या भूषणं नृपः। नभसो भूषणं चन्द्रः शीलं सर्वस्य भूषणम्॥

इतिहासप्रसिद्ध ये जो भीमसेन, अर्जुन आदि राजपुत्र है-ये सभी चन्द्रके समान कान्तिसम्बन, पराक्रमतील, सत्यप्रतिज्ञ, सूर्यके सदश प्रतापशाली और स्वयं विष्णुके अवतारस्वरूप भगवान् कृष्णसे अभिरक्षित थे, फिर भी इन लोगोंको कृपण धृतराष्ट्रकी परवशताके कारण भिकारन करना पड़ा। इस संसारमें कौन ऐसा है, किसमें ऐसी सामध्ये हैं, जिसको भाग्यके वशीभूत होनेके कारण कमरेखा नहीं घुमाती?

जिस पूर्वसंचित कर्मके अधीन होकर ब्रह्म कुम्भकारके समान ब्रह्माण्डरूपी इस महाभाण्डके उदरमें बराबर प्राणियोंकी सृष्टिमें नियमत: लगे रहते हैं, जिस कर्मसे अधिभृत होकर विष्णु दशावतारके कालमें परिव्याप्त असोपित महासंकटमें अपनेको डाल देते हैं, जिस कमेंक अनुसार ही सदाशिव रुद्र हाथमें कपाल धारणकर भिशाटन करते हैं और जिस कमेंसे सूर्य नित्य आकारामें ही चकर कारते हैं-उस कर्मको मैं नमस्कार करता है।

राजा बलि उत्कृष्ट कोटिके दाता थे और पाचक स्वयं भगवान् विष्णु थे। विशिष्ट ब्राह्मणोंके समक्ष पृथ्वीका टान दिया गया, फिर भी दानका फल बन्धन प्राप्त हुआ। यह सब देवका खेल है, ऐसे इच्छानुसार फल देनेवाले देवको नमस्कार है।

पूर्वजन्ममें प्राणीने जैसा कर्म किया है, उसी कर्मके अनुसार वह दूसरे जन्ममें फल भोगता है। अत: स्वयमेव प्राणी अपने भोग्य फलका निर्माण करता है, अर्थात यह

कर्मफलका स्वयं ही विधाता है।

हम अपने सुख या दु:खके स्वयं ही हेतु हैं। माताके नर्भाशयमें आकर अपने पूर्वदेडमें किये गये कर्मीके फल हो हमें भोगने पड़ते हैं। आकाश, समुद्र, पर्वतीय गुफा तथा माताके सिरपर और माताको गोदमें अवस्थित रहते हुए भी मनुष्य निश्चित हो उन अपने पूर्वसंचित कर्मफलका परित्याग करनेमें समर्थ नहीं होता।

जिसका दर्ग हो त्रिकृट पर्यंत था, जिसकी परिखा समुद्र हो था, राधसगणमे जो अधिरक्षित था, स्वयं जो परम विज्ञुद्ध आचरण करनेवाला था, जिसको नीतिशास्त्रकी जिशा जुळाचार्यसे प्राप्त हुई थी, वह रावण भी काल-यश नष्ट हो गया।

जिस आवस्या, जिस समय, जिस दिन, जिस रात्रि, जिस मुहर्त जयबा जिस क्षण जैसा होना निश्चित है। यह वैसा हो होगा, अन्यथा नहीं हो सकता-

यस्मिन् वयसि यन्काले यहिवा यन्न वा निशि। यन्पृहर्ते क्षणे वापि तत्तवा न तदन्यथा। (\$\$\$188)

सभो अन्तरिक्षमें जा सकते हैं या भूगर्भमें प्रवेश कर सकते हैं अचवा इसों दिशाओंको अपने कपर धारण कर सकते हैं, किंतु अप्रदत्त वस्तुको प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

पूर्वजन्ममें अर्जित की गयी विद्या, दिया गया धन तथा सम्पादित कर्म हो दूसरे जन्ममें आगे-आगे मिलते जाते हैं। अर्थात् प्राणीने पूर्वजन्ममें जैसा कर्म किया है, उसको इस कन्ममें वैसा ही प्राप्त होता है।" इस संसारमें कर्म ही प्रधान यदि प्राणीकी माता स्वयं लक्ष्मों हों, पिता साक्षात् है। सुन्दर नक्षत्र था, ग्रहोंका योग था, स्वयं वसिष्ठ मुनिके भगवान जनार्दन विष्णु हों, उसके बाद भी प्राणीको यदि द्वारा निर्धारित लग्नमें विवाह-संस्कार कराये जानेपर भी

१-एतं ते चन्द्रतृत्याः क्षितिपतिततया भीमभेनार्जुनादाः तृराः सत्यप्रतिज्ञा दिनकरवपुषः केलवेनीपगुदाः।

ते तै दृष्टप्रहरूयाः कृषणवज्ञानाः भैक्षवयां प्रवाताः को वा कस्मिन् समर्थे भवति विधिवज्ञादशासयेत् कर्मरखाः ॥ (११३।१४)

२-ब्रह्म येन कुलालविनयमितो ब्रह्मण्डभागडोदरे विष्युर्वेन दशावतारगडने क्षिणी महासङ्कटे।

रदो येन कपालपाणियुटके थिक्षाटनं कारित: सूर्यो भ्राम्यति निज्यमेव गणने तस्मै नम: कर्मणेव (११३।१५)

३-दाता बोलयांचकको मुरारिदांन भही विप्रमुखस्य मध्ये। दला फलं बन्धनमेन सक्यं नमीऽस्तु ते दैव यथेहकारिये॥ (११३।१६)

४-प्राधीत थ या विद्या पूरा दलक यद्भवन्। पूरा कुलानि कम्बीण द्वावे थावति धावति ॥ (११३।२४)

जानकी—सीताको [पूर्वजन्ममें संचित कर्मके अनुसार] दु:ख भोगना पड़ा। विशास जंघाओंवाले श्रीराम, शब्दकी गतिसे चलनेवाले श्रीलक्ष्मण तथा सचन केशवाली शुभलक्षणा श्रीसीताजी—ये भी तीनों जब अपने कर्मके अनुसार दु:खके भाजन हो गये तो सामान्य जनके विषयमें कुछ कहना ही व्यर्थ है। न पिताके कर्मसे पुत्रको सद्गति मिल सकती है और न पुत्रके कर्मसे फिताको सदगति मिल सकती है। सभी लोग अपने-अपने कर्मसे ही अच्छी गति प्राप्त करते हैं।

पूर्वजन्ममें अर्जित कर्मफलके अनुसार प्राप्त जारीरमें शारीरिक और मानसिक रोग उसी प्रकार आकर अपना दुष्प्रभाव प्रकट करते हैं, जिस प्रकार कुशल बीर धनुधींके द्वारा छोड़े गये बाज लक्ष्यको बेधकर कष्ट पहुँचाते हैं। कृपज व्यक्ति जिन दु:खोंको भोगता है, यदि धर्मार्थी होकर बाल-युवा तथा वृद्ध जो भी सुभासुभ कमें करता है, वह वह उन दु:खोंका चिन्तन करे तो पुन: उसको दु:खका पात्र जना-जन्मानरमें उसी अवस्थाके अनुसार उस फलका भोग | होना हो न पहे। सभी प्रकारकी शुचितामें अलकी शुचिता करता है। उस पूर्वार्जित फलको न देखनेवाला एवं विदेशमें ही प्रधान है। जो मनुष्य अप और अर्थसे पवित्र है (वही रहता हुआ भी मनुष्य अपने कर्मरूपी जहाजके संयमित शुचि हैं]। केवल मिट्टी और जलसे शुचिता नहीं आती। पवन-चेगके द्वारा उस फलतक पहुँचा दिया जाता है।

उस फलभोगको रोकनेमें समर्थ नहीं है। इसोलिये मैं ले सकता—

> प्राप्तब्यमर्थ लभते मनुष्यो देवोऽपि तं वारपितुं न शक्तः। अतो न शोचामि न विस्मयो मे यदस्यदीयं न तु तत्परेपाम्॥

> > (818/42)

जैसे साँप, हाथी और चूहा—ये शीव्रतावश क्रमतः कुओँ,

अपने वासस्थान तथा बिलतक ही भाग सकते हैं, इससे आगे कहाँतक जा सकते हैं ? इसी तरह अपने कर्म अथवा भाग्यसे कौन भाग सकता है? सब तो उसीके अधीन हैं।

सद्विद्या देनेसे उसी प्रकार बढ़ती रहती है कम नहीं होती. जिस प्रकार कुएँसे जल ग्रहण कर लेनेपर भी कुएँका जल बढ़ता ही रहता है [घटता नहीं]। जो धन धर्मानुसार अर्जित किया जाता है वही [बास्तविक] धन है। अधर्मसे प्राप्त हुआ धन तो मनुष्यके ऐश्वर्यका नाशक होता है। इस संसारमें धर्माधी ही महान् होता है। धनकी अपेक्षा करनेवाले मनुष्यको निश्चित ही श्रेष्ठजनोके दृष्टान्तीको स्मरण करके धनोपार्जनमें तत्पर होना चाहिये। अन्नार्थी

सत्यपालनमें शुचिता, मनःशुद्धि, इन्द्रियनिग्रह, सभी मनुष्य अपने प्रारम्भका फल प्राप्त करता है। देवता भी प्राणिपॉमें दया और जलसे प्रशासन—ये पाँच प्रकारके शौच माने गये हैं। जिसमें सत्यपालनकी शुचिता है, उसके कर्मफलके विषयमें चिन्ता नहीं करता हूँ और न मुझे लिये स्वर्गकी प्राप्ति दुर्लभ नहीं है। जो मनुष्य सत्य ही आश्चर्य ही है, क्योंकि जो मेरा है, उसे दूसरा कोई नहीं सम्भाषण करता है, वह अश्वमेधयत्र करनेवाले व्यक्तिसे भी बदकर है-

सत्यं शीवं मनःशीवं शीवमिन्दियनिग्रहः। सर्वभूते दया शीचं जलशीचं च पश्चपम्॥ यस्य सत्यं हि शीधं च तस्य स्वर्गो न दुर्लभः। सत्यं हि वचनं यस्य सोऽश्रमेशाद्विशिष्यते॥

(95-361655)

दुष्ट स्वभावसे अपनी आत्माको दबाकर रखनेवाला

१-कमांण्यत्र प्रधानानि सम्यगुक्षे शुभवते । वसिव्यकृतलग्वार्थः जानको दुःखभाजनम् ॥ स्यूलबंपी यदा राम: शब्दगामी च लक्ष्मण: । घनकेजी यदा सीता जवस्ते दु:खभाजनम् ॥

न पितुः कर्मणा पुत्रः पिता वा पुत्रकर्मणा । स्वयं कृतेन गन्छन्ति स्वयं बद्धाः स्वकर्मणा॥ (११३। २५—२७)

२-बालो युवा च वृद्धश्च यः करोति शुभाशुभय् । तस्यां तस्यायवस्थायां भुट्टे कर्यान कर्यान ॥ अनीक्षमाणीऽपि नरो विदेशस्योऽपि मानवः।स्वकर्पयोक्तकोन नोपते यत्र कल्फलप्॥ (११३।३०-३१)

३-येऽथां धर्मेण ते सत्या येऽधर्मेण गताः तियः। धर्मार्थी च महौहोके उत् स्मृत्वा द्वार्यकरणात्॥ अप्रार्थी याति दु:खानि करोति कृषणो जन: । तान्येय यदि धर्मार्थी न धृय: क्लेक्स्थाजनम्॥ सर्वेषामेव शौचानामञ्ज्ञीचं विशिष्यते । योऽजार्थः शुचिः शौचक मृदा वारिणा शुचिः॥ (११३ । ३५-- ३७)

दराचारी पुरुष हजारों बार मिड़ीके लेप तथा सैकडों बार चल रहा है तो उससे इंध्यों क्यों की जाय? जलके प्रशालनसे पवित्र नहीं हो सकता। जिसके हाय-पैर हे जीनक! सभी प्राणियों या पदार्थोंको उत्पत्तिके पूर्वमें एवं मन सुसंयत हैं, जिसे अध्यात्म-विद्या प्राप्त है, जो धर्मपालनके लिये कष्ट सहन करता है तथा जिसने सत्कीर्ति अर्जित की है, वही तीथोंका यथार्थ फल भी भोगता है-

यस्य हस्ती च पादी च मन्द्रीव सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्चकलमङ्ग्ते॥

जो मनुष्य सम्मानसे प्रसन्न नहीं होता, अपमानसे कुद्ध नहीं होता एवं क्रोधके आनेपर मुँहसे कठीर वाक्य नहीं निकालता, ऐसे ही मनुष्यको साधुपुरुष समझना चाडिये-

न प्रदुष्पति सम्मानैनविधानैः प्रकृष्यति। न कुद्धः परुषं बुधादेलनाधोरन् लक्ष्मप्

विद्वान, मधुरभाषी भी कोई व्यक्ति परि दरित्र है तो उसके समयोचित हितकारी वचनको सुनकर भी कोई प्राप्त करता है तो वह अभिलयित यस्तुके लिये नाना संतुष्ट नहीं होता है। यदि कोई मनुष्य मन्त्र या बलके प्रकारमे प्रयास करके क्या प्राप्त कर लेगा? उसका तो प्रभावसे अथवा सुद्धि और पौरुषके बलपर अलभ्य-अदृष्ट अपनेको अभावग्रस्त समझकर प्रलाप करना व्यर्थ ही है। किसी प्रकारका खेद नहीं करना चाहिये।

स्थित नहीं थी और निधनके अन्तमें भी उनकी स्थिति नहीं रहेगी। सभी पदार्च मध्यमें ही विद्यमान रहते हैं। इसमें दु:ख करनेकी क्या बात है-

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि शौनक। अध्यक्तनिधनान्येय तत्र का परिदेवना॥

समय प्राप्त न होनेसे पहले प्राणी सैकहों बाज लगनेपर भी नहीं मरता और समयके आ जानेपर कुशकी नोंक लग जानेसे भी वह जीवित नहीं रहता।' प्राप्त होने योग्य वस्तु हो प्राप्त होती है, गन्तव्य स्थानपर ही व्यक्ति जाता है। अत: प्राणीको जो दु:ख-मुख प्राप्त होने योग्य है वही उसको (११३ (४२) प्राप्त होता है।

मनुष्य प्राप्त होने योग्य अमुक-अमुक बस्तुको ही

वस्तुको प्राप्त नहीं कर पा रहा है तो उस विषयमें मनुष्यकों जिस प्रकार प्रार्थना आदिके बिना ही यथासमय वृक्षके द्वारा प्राणीको अपने समयपर ही फल-फुलकी प्राप्ति हो अयाचित कोई वस्तु मुझे प्राप्त हो और पुन: वह मेरे जाती है, उसी प्रकार पूर्वजन्मकृत कर्म भी अपने समयके पाससे चली जाय तो कष्ट होता है, किंतु जो जहाँसे आपी अनुसार वधोचित फल देता है। व्यक्तिमें अवस्थित शील, थी वह पुन: वहीं चली गयी तो उसमें कैमा दु:ख? दु:ख कुल, विद्या, जार, गुण तथा कुल-शुद्धि उसको कुछ देनेमें करनेका कोई औचित्य हो नहीं है। राजिमें सदैव एक हो। समर्थ नहीं है। पूर्वजन्मकृत तपसे प्राप्त हुआ उसका भाग्य वृक्षपर नाना प्रकारके पश्चियोंका समृह शरण लेता है, किंतु हो समयके अनुसार वृक्षकी भौति उसे फल देता है।

प्रात:काल होते ही वे सभी भिन्न-भिन्न दिशाओं में चले जाते प्राणीकी मृत्यु वहीं होती है, जहाँ उसका हन्ता हैं। उस आश्रयके विषयमें उन लोगोंको कौन-सा दुःख विद्यमान रहता है। लक्ष्मी वहीं निवास करती है, जहाँ होता है ? इसी दृष्टान्तको ध्यानमें रखकर मनुष्योंको सम्पत्तियाँ रहती हैं। ऐसे ही अपने कर्मसे प्रेरित होकर प्राणी वियोगजन्य दु:खमें खिन्न नहीं होना चाहिये। एक साथ स्वयं ही उन-उन स्थानोंपर पहुँच जाता है। पूर्वजन्ममें किया सामृहिक रूपमें चलनेवालोंमें यदि कोई एक त्वरित गतिसे गया कर्म कर्ताके पीछे-पीछे वैसे ही रहता है, जैसे गोष्टमें

१-गाप्राप्तकारने प्रियते विद्धः हरस्रदेरपि । कुशाधेन तु संस्पृष्टः प्राप्तकारने न जीवति ॥ (११३।४९)

२-आचोधमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च । स्वकालं नातिवर्तन्ते तथा कर्म पुराकृतन् ॥

शीलं कुलं नैव व चैव विद्या सनं गुणा नैव न बीजशुद्धिः।

भाग्यानि पूर्व तपसार्जितानि काले फलनपस्य यथैय वृक्षाः। (\$23 | 42-42)

हजार गायोंके रहनेपर भी बछड़ा अपनी पाताको प्राप्त कर लेता है-

> तत्र मृत्युर्यत्र हन्ता तत्र श्रीर्यत्र सम्पदः। तत्र तत्र स्वयं याति प्रेयमाणः स्वकर्मीधः॥ कमं कर्तारमनुतिष्ठति। यथा धेनुसहस्रेषु बत्सो विन्दति मातरम्॥

हे मूर्ख प्राणी। इस प्रकार जब पूर्वजन्मकृत कर्म कर्तामें ही अवस्थित रहता है तो अपने पुण्यका फल भोगो। तुम क्यों संतत हो रहे हो? जैसा पूर्वजन्यमें शुभ अथवा अशुभ कर्म किया गया है, वैसा ही फल जन्मानारमें कर्ताका अनुसरण करता है, उसके पीछे-पीछे चलता है।

नीच व्यक्ति दूसरेमें सरसोंके बराबर भी स्थित दोप-छिद्रोंको देखता है, किंतु अपनेमें बेल (फल)-के समान अवस्थित दोषोंको देखते हुए भी नहीं देखता (हे द्विज) राग-द्वेषादिक दोषोंसे युक्त प्राणियोंको कहींपर भी सुख नहीं है। मैं भली प्रकारसे विचार करके यह देखता हूँ कि जहाँ संतोष है, वहाँ सुख है। जहाँ स्नेह है, वहाँ भय है। अतः स्नेह हो दु:खका कारण है। प्राणियोंमें स्नेह उत्पन्न करनेके जो मूल हैं, वे ही दु:खके कारण है। अत: उनका परित्याग कर देनेपर अर्थात् उनके प्रति अपनी आसक्तिको समाज कर देनेसे प्राणीको महान् सुखकी प्राप्ति होती है। यह शरीर हो दु:ख और सुखका घर है। उत्पन्न हुए शरीरके साथ हो वह दु:ख-सुख भी उत्पन्न होता है।

पराधीनता ही दु:ख है और स्वाधीनता ही सुख है। संक्षेपमें यही मुख-दु:खका लक्षण समझना चाहिये। प्राणीको मुखभोगके पक्षात् दु:ख और दु:खके बाद मुखका भोग प्राप्त होता है। इस तरह मनुष्योंके सुख-दु:ख चक्रके समान परिवर्तित होते रहते हैं। जो मनुष्य भूतकालिक विषयवस्तुको समाप्त हुआ मान लेता है और भविष्यमें होनेवालंको बहुत दूर समझता है एवं वर्तमानमं अनासक-भावसे रहता है. वह किसी भी प्रकारके शोकसे दु:खी नहीं होता। (अध्याय ११३)

नीतिसार

श्रीसूतजीने पुनः कहा—न कोई किसीका भित्र है और न कोई किसीका राष्ट्र। कारणविशेषसे हो लोग एक-दूसरेके मित्र और शत्रु होते हैं। यह दो अक्षरीवाला खरूपी 'मित्र' शब्द किसने बनाया? यह दु:ख एवं भयसे प्राणियोंका अभिरक्षक है तथा प्राणिमात्रमें प्रेम और विश्वासको उत्पन्न करनेवाला है।

राब्दका उच्चारण कर लिया है, वह अपने कटिप्रदेशमें परिकर शेन-देन) एवं परोक्षरूपमें उसकी स्त्रीका दर्शन—इन तीन (फैंटा) बाँधकर मुक्ति प्राप्त करनेके लिये तैयार रहता है। दोवोंका परित्याग कर देना चाहिये। माता, भगिनी अथवा अर्थात् ऐसा मनुष्य मोक्षका अधिकारी हो जाता है—

सकृद्व्यरितं हरिरित्यक्षरद्वयम् । बद्धः यरिकासीन मोक्षाय प्रति ॥ (64813)

माता, पत्नी, सहोदर बन्धु तथा पुत्रमें पुरुषोंको वैसा विश्वास नहीं होता है, जैसा विश्वास उन्हें स्वाधाविक मित्रमें होता है। यदि मनुष्य किसीके साथ शाक्षत प्रेम करना जिस व्यक्तिने एक बार भी 'हरि' इस दो अक्षरसे युक्त चाहता है तो उसे उसके साथ द्युत, अर्थ-व्यवहार (धनका पुत्रीके साथ एकान्तमें एक साथ नहीं बैठना चाहिये, क्योंकि

१-नीच: सर्पपमात्राणि परिच्छद्राणि पश्यति । आत्यनो बिल्बमाजाणि परपर्जीप न पश्यति ॥ (११३।५७)

२-रागद्वेषादियुकानां न सूखं कुजविद्द्वितः। विचार्यं कल् परवामि तत्पुतां वत्र निवृति:॥ यत्र स्नेहो भर्यं तत्र स्नेहो दु:खस्य भाजनम् । स्नेहमूलानि दु:खानि तीर्म्यस्यके महत्सुखप् ॥ (११३।५८-५९)

३-सर्वं परवर्श दु:खं सर्वमात्मवत्रं सुखम् । एतद्विधात् सम्बसेन लक्षणं सुखदु:खयो:॥ मुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्थानन्तरं मुख्यम्। मुखं दुःखं मनुष्याचां बङ्कवन् परिवतीः। यद्गतं तदतिकानां यदि स्यात् तच्च दूरतः। वर्तमानेन वर्तेत न स शोकेन बाध्यते॥ (११३।६१–६३)

इन्द्रियोंका समूह बलवान् होता है, वह विद्वानको भी [दुराचरणको ओर] खींच लेता है-

> मात्रा स्वस्ता दृष्टित्रा वा न विविक्तासनी वसेत्। बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमि

> > (freis)

हे शौनक। उपयुक्त अवसर न होनेसे, एकान्त स्वान न होनेसे तथा प्रार्थचिता व्यक्तिके सुलभ न होनेसे ही स्त्रियोंमें सतीत्व पाया जाता है।

जो मधुर पदार्थीसे बालकको, विनम्रभावसे सजन पुरुषको, धनसे स्त्रीको, तपस्यासे देवताको और सद्व्यवहारसे समस्त लोकको अपने वशमें कर लेता है, वही पण्डित है। जो लोग कपटसे मित्र बनाना चाहते हैं, पापसे धर्म कमाना चाहते हैं, दूसरेको संतप्त करके धन-संग्रह करना चाहते हैं, बिना परित्रमके ही सुखपूर्वक विद्या-अर्जन करना चाहते हैं और कटोर व्यवहारके द्वारा स्विमीको बशमें रखनेकी अभिलाषा रखते हैं, वे पण्डित (कुशल) नहीं हैं।

फलकी इच्छा रखनेकला मनुष्य यदि फल-समन्त्रित वृक्षका ही मुलोच्छेद कर डालता है तो वह दुर्गुद्धि है। उसे फल कभी नहीं प्राप्त हो सकता। अविश्वसनीय व्यक्तिका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। नित्रका भी [अधिक] विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि कदाचित् कुळ होनेपर भित्र भी समस्त गोपनीयताको प्रकट कर सकता है-

न विश्वसेदविश्वस्ते पित्रस्वापि न विश्वसेत्। कदाचित् कृषितं मित्रं सर्वं गुद्धं प्रकाशयेत्॥

(448155)

सभी प्राणियोंमें विश्वास करना, सभी प्राणियोंके प्रति सात्त्विक भाव रखना एवं अपने सन्-स्वभावकी रक्षा करना-ये सज्जन पुरुषके लक्षण है।

दरिद्रके लिये गोष्टी विषके समान है और वृद्ध व्यक्तिके लिये युवती विषके समान है। भलीभौति आत्मसात् न की गयी विद्या विष है तथा अजीर्ण-दशामें किया गया लिखता है, चरषोंका प्रशासन नहीं करता, दाँत स्वच्छ नहीं

भोजन विषके समान (अनिष्टकारी) है। अकृष्ठित व्यक्तिको गायन, नीच व्यक्तिको उच्च आसनकी प्राप्ति, दरिद्रको दान तथा युवकको तरुणी प्रिय होती है।

अधिक मात्रामें जलका पीना, गरिष्ठ भोजन, धातुकी श्रीणता, मल-मूत्रका वेग रोकना, दिनमें सोना एवं रात्रिमें जागरण करना-इन छ: कारणोंसे मनुष्योंके शरीरमें रोग निवास करने लगते हैं-

अत्यम्ब्यानं कठिनाशनं वेगविधारणं च। दिवाशयो जागरण षद्विधर्नराणां निवसन्ति (ttwitc)

प्रात:कालीन धृष, अतिशय मैंधुन, श्मशान-धृमका सेवन, अग्निये हाथ सेंकना और रजस्थला स्त्रीका मुख-दर्शन—ये दीर्घ आयुका विनाश करनेवाले हैं। शुष्क मांस, बुद्धा स्वी, बालसुर्य, रात्रिमें दहीका प्रयोग, प्रभातकालमें मैचुन एवं [प्रधातकालीन] निदा—ये छ: सच: प्राणविनाशक eld fi

तत्काल प्रकाया गया चृत (ताजा भी), प्राक्षाफल, बाला स्त्री, दुग्ध-सेवन, गरम जल तथा वृक्षोंकी साया—ये शीप्र हो प्राण (शक्ति) प्रदान करनेवाले हैं। कुएँका जल और कटबुक्को छाया जीतकालमें गरम तथा गर्मीमें जीतल होते है। र्रातमदंन और सुन्दर भोजनको प्राप्ति— ये सद्य: शरीरमें शक्तिका संचार करते हैं, फिंतु मार्ग-गमन और मैथून तथा न्तर-ये सद्य: पुरुषका बल हर लेते हैं।

जो मालिन वस्त्र भारण करता है, दाँतोंको स्वच्छ नहीं रखता, अधिक भोजन करनेवाला है, कठोर वचन बोलता है. सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समय भी सोता है; वह यदि साक्षात् चक्रपाणि विष्णु हो तो उसे भी लक्ष्मी छोड़ देती हैं।

जो मनुष्य नखसे तुणका छेदन करता है, पृथिवीपर

१-मित्रीको आमन्त्रितकर उनके साथ भोजन-जलपानदिको व्यवस्था बहुनकर मनीरंजन करना आदि।

२-कचीलनं दन्तमलोपधारिणं बहारित निष्टरवाक्यभाविणम् । मुर्योदये द्वास्तमभेऽपि शायिनं तिमुक्कति श्रीतपि वक्रचलिम्॥(११४।३५)

रखता है, प्रात: एवं सार्यकालकी संध्याओंमें सोता है, नग्न अधिक विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि विश्वास शयन करता है, भोजन और परिहास अधिक करता है, करनेसे जो भय उत्पन्न होता है, वह मनुष्यको समूल नष्ट अपने अङ्ग और आसनपर बाजा बजाता है तो भगवान् कर देता है। जो मनुष्य शत्रुके साथ संधि करके आधारत विष्णुके समान होनेपर भी उसे लक्ष्मी त्याग देती हैं। जो रहता है, वह निश्चित ही वृक्षकी शाखाके अग्रभागपर सोये पुरुष अपने सिरको जलसे धोकर स्वच्छ रखता है, हुए मनुष्यके समान गिरनेके पश्चात् ही जागता है। चरणोंको प्रश्नालित करके मलरहित करता है, वेश्यागमनसे प्राणीको अत्यन्त सरल अथवा अत्यन्त कठोर नहीं दूर रहता है, अल्पभोजन करता है, नग्न शयन नहीं करता होना चाहिये, क्योंकि सरल स्वभावसे सरल और तथा पर्वरहित दिवसोंमें स्त्री-सहवास करता है तो उसके कठोर स्वभावसे कठोर शत्रुको नष्ट किया जा सकता है। ये पट्कर्म चिरकालसे विनष्ट हुई उसको लक्ष्मीको पुनः उसके सांनिध्यमें ले आते हैं।

बालसूर्यके तेज, जलती हुई चिताका धुओं, वृद्ध स्वी, बासी दही और झाड़की धुलिका सेवन दाँधे आयुकी कामना करनेवाले पुरुषको नहीं करना चाहिये।

हाथी, अब, रथ, धान्य तथा गौकी धूलि शुभ होती है। किंतु गधा, कैंट, बकरों एवं भेड़की धृत्तिको अशुध मानना चाहिये। गौकी धूलि, धान्यकी धूलि और पुत्रके अक्रमें लगी हुई जो धूलि है, वह महान् कल्याणकारी एवं महापातकोंका विनाशक है।

सूप फटकनेसे निकली हुई वायु, नखाग्र (नाळून)-का जल, स्नान किये हुए वस्त्रसे निचोड़ा हुआ जल, केशसे गिरता हुआ जल तथा झाड़की धूलि मनुष्यके पूर्वजन्मके अर्जित पुण्यको भी नष्ट कर देती है। ब्राह्मण तथा अग्निके बीचसे, दो ब्राह्मणके बीचसे, पति-पत्नीके बीचसे, स्वापि-स्वामिनीके बीचसे तथा घोड़ा और साँड्के बीचसे नहीं जाना चाहिये।

स्त्री, राजा, अग्नि, सर्प, स्वाध्याय, शत्रुकी सेवा, धोग और आस्वादमें कीन ऐसा बुद्धिमान् होगा जो विश्वास

रखता, मलिन वस्त्र धारण करता है, केश संस्कारविहीन करेगा? अविश्वसनीयपर विश्वास तथा विश्वस्त प्राणीपर

अत्यन्त सरल तथा अत्यन्त कोमल नहीं होना चाहिये। सरल अर्थात् सीधे वृक्ष ही कार्ट जाते हैं, टेढ़े तो वधास्थितिमें खड़े रहते हैं। फलसे परिपूर्ण वृक्ष एवं गुणवान् व्यक्ति विनग्न हो जाते हैं, किंतु सुखे हुए वृक्ष और मुखं मनुष्य टूट सकते हैं पर झुक नहीं सकते; अर्थात् वे विनयायनत नहीं हो सकते।"

जिस प्रकार बिना याचना किये हो दृ:ख जीवनमें आते हैं और स्वत: चले भी जाते हैं [उसी प्रकार मुखकी भी यहाँ स्थिति है], कामना करनेवाला मनुष्य तो मार्जार (बिल्ली)-को तरह दु:खोंको ही प्राप्त करता है। सजन पुरुषके आगे-पीछे सम्पदाएँ सर्वदा धूमती रहती हैं, दुर्जनके लिये इससे विषरीत स्थिति होती है। अत: जैसा अच्छा लगे वैसा करें। सञ्चनता और दुर्जनताका आचरण करना मनुष्यपर निर्भर है।

छ: कानोंतक पहुँची हुई गुप्त मन्त्रणा नष्ट हो जाती है। अत: मन्त्रणाको चार कानोतक ही सीमित रखना चाहिये। दो कानोंतक स्थित मन्त्रणाको तो ब्रह्म भी जाननेमें समर्थ नहीं हैं।"

उस गावसे क्या लाभ है, जो न दूध देनेवाली है और

१-गर्वा रजी धान्यरजः पुत्रस्याङ्गभवं रजः। एत्रदको महातान्तं महायनकनातनम्। (११४।४२)

२-स्थीपु राजारिनसर्पेषु स्वाध्याये ऋषुसेवने । भोगास्वादेषु विश्वासं कः प्रातः कर्तुमहेवि॥ (११४।४६)

३-न विश्वसेदविश्वसर्व विश्वस्तं नातिविश्वसेत् । विश्वसमद्भयम्पनं मूलादपि निकृनति ॥ वैरिणा सह संभाय विश्वस्तो यदि तिष्ठति। स युकाचे प्रसुप्तो हि पतितः प्रतियुक्तते। (११४।४७-४८)

४-नात्पनं मृदुना भाव्यं नात्पनं क्रूरकर्मणा । मृदुनैव मृदुं हानि दारुणेनैव दारुणम्॥ नायनं सरसेर्थाव्यं नात्यनं पृदुना तथा । सरसास्तक विवने कृष्णानिकृति पादपा:॥ नमनि फलिनो वृक्षा नमनि गुणिनो जनाः। गुष्कवृक्षाहः मृखांहः भिष्ठाने न नमनि च। (११४।४९—५१)

५-पट्कर्णो भिद्यते मन्त्रबतुःकर्णस धार्यते । द्विकर्णस्य तु सन्त्रस्य ब्रह्माप्यनं न सुध्यते ॥ (११४।५४)

न गर्भिणी है? उस पुत्रके उत्पन्न होनेसे भी क्या लाभ है, जो न तो विद्वान है और न धार्मिक? विद्यासम्पन्न एवं बुद्धिमान् तथा पुरुषोमें श्रेष्ठ एकमात्र सुपुत्रसे भी मनुष्यका कुल वैसे ही सुशोधित हो जाता है, जैसे एक हो चन्द्रमासे आकाश-मण्डल चमकने लगता है। जिस प्रकार एक ही स्पृष्पित और स्गन्धित वृक्षसे सप्पृर्ण वन सुवासित हो जाता है, उसी प्रकार एक ही सुपुत्रसे सम्पूर्ण कुल पवित्र हो जाता है। मनुष्यके लिये गुणवान् एक ही पुत्र अच्छा है, गुणहीन सौ पुत्रोंसे क्या लाभ? चन्द्रमा अकेले ही अन्धकारको नष्ट कर देता है, किंतु हजारी ज्योतिष्युञ्ज उस अन्धकारको दूर करनेमें असफल रहते हैं।

मनुष्यको पाँच वर्षतक पुत्रका प्यारमे पालन करना चाहिये, दस वर्षतक उसे अनुशासित रखना चाहिये तथा सोलह वर्षकी अवस्था प्राप्त होनेपर उसके साथ मित्रवत् व्यवहार करना चाहिये।

कुछ व्याप्र हरिणके समान मुखबाले होते हैं, कुछ हरिण व्याप्रमुखवाले होते हैं। उनके बास्तविक स्वरूपके परिज्ञानमें पद-पदपर अविश्वास बना हो रहता है। इसलिये बाह्य आकृतिसे प्राणीको अन्तःप्रवृतिको नहाँ जानना चाहिये।

क्षमाज्ञाल व्यक्तियोंमें एक हो दोष है, दूसरा दोष नहीं है। दोप यह है कि जो क्षमाशील होते हैं, मनुष्य उनको अञ्चल (असमयं) मानता है-

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपदाते। यदेनं क्षमया युक्तमशकं मन्यते जनः॥

(ffxiff)

प्राणीको यह शास्त्रमत स्वीकार कर लेना चाहिये कि संसारके समस्त भाग भणभग्र ही हैं, इसोलिये अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले स्निग्ध-सुन्दर मुखोपभोगोंके प्रति विद्वान् प्रुपके विचार स्थिर एवं तटस्थ रहते हैं। उनके मनमें उन

विषय-वासनाओंके लिये आकर्षण नहीं होता।

हे शौनक! बढ़ा भाई पिताके समान है। पिताकी मृत्युके पक्षात् वह सभी छोटे भाइयोंका पिता ही है; क्योंकि वह सभीका पालन-पोषण करता है। वह समस्त छोटोंके प्रति एक-समान भाव रखता है। वह समान उपभोग करनेवाले परिजनोंके विषयमें वैसा हो व्यवहार करता है, जैसा अपने पुत्रोंके प्रति उसका व्यवहार होता है। अत: होटे भाइयोंको बहे भाईके प्रति पिताके समान आदर-भाव रखना चाहिये।"

कम शक्तिशाली वस्तुओंका समुदाय (संगठन) भी अत्यधिक शक्तिसम्पन्न हो जाता है, जैसे तृणको बटकर बनायों गयो रस्सीसे हाथी भी बौध लिया जाता है।

जो दूसरेका धन चुराकर दान देता है, वह नरकमें जाता है। जिसका धन है उसीको उस दानका फल प्राप्त होता है। देव-द्रव्य (देवताओंके पूजन आदिमें समर्पित किये जाने पोग्य द्रव्यों)-के विनाश करनेसे, ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेसे एवं ब्राह्मणका तिरस्कार करनेसे मनुष्योंके जंश नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्महत्ता, महापी, चोर तथा ब्रतभंग करनेवाले पापियोंके पापका शमन' हो सकता है, किंतु सजनीके द्वारा किये गये उपकारके प्रति कृतप्नता करनेवाले कृतप्न व्यक्तिका निस्तार सम्भव नहीं है।

मनुष्यको भूलकर भी दुष्ट एवं छोटे शत्रुकी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि भली प्रकारसे न बुझायी गयी अग्नि भी संसारको भस्य कर सकती है।

जो नवी अवस्थामें अर्थात् युवावस्थामें शान्त रहता है, वही ज्ञान्त-स्वभाव है, ऐसा मेरा विचार है; क्योंकि धातुक्षय आदि सब प्रकारकी शक्तियोंके समाप्त हो जानेपर किसमें ज्ञान्ति नहीं आ जाती? अर्थात् उस अवस्थामें तो सभी शान्त हो बाते हैं-

१-एकेनापि सुपुत्रेण विद्यापुकेन धीमता। कुलं पुरवसिंहेन वन्द्रेण गार्न प्रधाव एकेनापि सुनुक्षेण पुष्पितेन सुनन्धिना। तर्न सुवासितं सर्व सुपुत्रेय कुले यथा॥

एको हि गुणवान् पुत्रो निर्मुणेन अतेन किम्। बदो इति तर्मास्येको र च अवेति: सहस्रकम्॥ (११४।५६—५८) २-लालगेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते तु बोडले वर्षे पुत्रं निजवदायरेत्॥ (१९४।५९)

३-केचिन्गृगमुखः व्यापाः केचिद्व्याप्रमुखा सृगाः । तस्वरूपरीयाने इविश्वासः पदेपदे॥ (११४।६१)

४-३पेष्ठः चितृसमो भाता मृते चितरि जीनक । सर्वेषां स पिता हि स्यान् सर्वेषामनुपालक:॥

सर्वेषु समल्वेनानुवर्तते । समीयभीगजीवेषु यथैवं तनयेषु च॥ (११४।६४-६५)

५-इन पापीके शामको लिये शाम्बोंमें प्रायक्षितका विधान है, परंतु कृतमके लिये कोई प्रायक्षित नहीं है।

नवे वयसि यः शान्तः स शान्त इति मे मतिः। धातुषु शीयमाणेषु शमः कस्य न जावते॥

हे ब्राह्मणब्रेष्ट! सार्वजनिक मार्गके समान सभी सम्पदाएँ सर्वमान्य है। अतएव 'यह सम्पदा मेरी है', ऐसा मानकर (११४/७६) मनुष्यको प्रसप्त नहीं होना चाहिये। (अध्याय ११४)

नीतिसार

स्तजीने कहा-मनुष्यको गुणहीन पत्नी, दुष्ट पित्र, दुराचारी राजा, कुपुत्र, गुणहीन कन्या और कुल्सित देशका अयन करनेसे, पंक्तिमें एक साथ भोजन करनेसे मनुष्यमें परित्याग दूरसे ही कर देना चाहिये।

कलियुगमें धर्म समाजसे निकल जाता है, तपमें स्थिरता नहीं रहती, सत्य प्राणियोंके इदयसे दूर हो जाता है, पृथिवी वन्ध्या होकर फलहीन हो जातो है, मनुष्य कपट-व्यवहार करने लगते हैं, ब्राह्मणोंमें लालच आ जाता है, पुरुषजन स्त्रीके त्रशीभूत हो जाते हैं, स्त्रियाँ चंचल हो उठती हैं और नीच प्रवृत्तिक लोग कैंथे पदोंपर जारूढ़ हो याते हैं। अत: इस कलिकालमें जीवित रहना निश्चित ही बहुत कष्टसाध्य है। जो प्राणी मर गये हैं, वे ही धन्य है। वे लोग धन्य हैं जो राज्यानुशासनसे ट्रट रहे देश, विनष्ट होते हुए कुल, परासक्त पत्नी तथा दुराचरणमें आसक पुत्रको नहीं देखते हैं।

कुपुत्रके होनेपर मनुष्यको सुख-शान्ति नहीं मिलती है। दुराचारिणी पत्नीमें प्रेम कहाँ है? दुर्जन भित्र विश्वासके योग्य नहीं होता है और राज्यके कुशासनमें जीवित रहना सम्भव नहीं है। दूसरेका अत्र, दूसरेका धन, दूसरेकी शय्या, दूसरेको स्त्रीका सेवन और दूसरेके घरमें निवास करना-ये सब कृत्य इन्द्रके भी ऐश्वर्यको समाप्त कर देते हैं।

पापी पुरुषसे वार्तालाप करनेसे, उसके शरीरको स्पर्श करनेसे, संसर्गसे, सहभोजनसे, एक आसनपा बैठनेसे, एक शय्यापर शयन करनेसे एवं एक वानसे गमन करनेपर पापीका पाप दूसरे पुरुषमें संक्रमण कर जाता है। स्त्रियाँ रूपसे नष्ट हो जाती हैं। क्रोधसे तपस्या विनष्ट हो जाती है। दूरतक भ्रमण करनेसे गायें नष्ट हो जाती हैं और शुद्राञ्चसे श्रेष्ठ ब्राह्मण मष्ट हो जाता है।

पापीके साथ एक आसनपर बैठनेसे, एक शब्यापर पापका संक्रमण बैसे ही होता है जैसे एक घडेका जल इसरे पढ़ेमें प्रविष्ट हो जाता है।

दुलारमें बहुत-से दोष हैं और ताहनामें बहुत-से गुण 🖁 । अत: शिष्य एवं पुत्रको अनुशासित रखना चाहिये, उन्हें केवल दुलार देना उचित नहीं है।

अधिक पैदल चलना प्राणियोंके लिये बुढापा है। पर्वतीका जल उसकी बुद्धाबस्था है। सम्भोगकी अप्राप्ति रिवयोंके लिये बुद्धावस्था है और सदैव धूपमें रहना वस्त्रोंकी जोर्णता है।

तीच व्यक्ति दूसरेसे कलहकी इच्छा करते हैं। मध्यमार्गी दूसरेसे संधि चाहते हैं तथा उत्तम प्रकृतिके व्यक्ति दूसरेसे सम्मानको अधिलाया रखते हैं; क्योंकि महापुरुषोंका धन मान ही है। मान ही अर्थका मूल है। यदि सम्यान है तो धनको क्या आवश्यकता है? मान और दर्पके नष्ट हो जानेपर धनसे और जीवनसे मनुष्यको क्या लाभ? मान तवा स्वाभिमानके विनष्ट हो जानेके पश्चात् प्राणीको धन एवं आयुसे क्या लेना-देना रह जाता है?

नीच प्रकृतिवाले पुरुष धन चाहते हैं। मध्यम प्रकृतिवाले धन और मानकी अभिरुचि रखते हैं तथा उत्तम प्रकृतिवाले मात्र सम्मानको इच्छा करते हैं; क्योंकि श्रेष्ठजनोंका मान ही धन है-

> अध्या धनिवछन्ति धनपानी हि मध्यमाः। उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महता धनम्॥

> > (224123)

वनमें भूखे सिंह किसी इसरेके द्वारा प्राप्त किये गये मांसको देखनेके लिये भी नहीं झकते हैं। उत्तम कुलमें

१-परार्ज च परस्यं च परज्ञय्याः परस्थियः। परवेज्यनि कासञ्च ज्ञकादिय हरेन्क्रियम्॥ (११५)५)

२-स्तियो नश्यन्ति रूपेण तपः क्रोधेन नश्यति। गावो दूरप्रधारेण जूदानेन द्विजीतमः ॥ (११५।७)

उत्पन्न व्यक्ति धनहीन होनेपर भी नीच कर्म नहीं करते। वनमें सिंहका अभिषेक नहीं होता है और न तो उसका कोई संस्कार ही होता है, किंतु नित्य सम्यक् पुरुषार्थको करनेसे प्राणीमें स्वयं ही सिंहत्वका भाग आ जाता है-

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने। नित्यमूर्जितसन्त्वस्य स्वयमेव (284184)

प्रमादो वर्णिक्, अभिमानी भृत्य, चिलासी भिक्षु, निर्धन कामी तथा कटुभाषिणी चेश्या अपने कार्यमें असफल रहते हैं। दरिंद्र होकर दाता होना, धनवान् होनेपर कृपण रहना, पुत्रका आज्ञाकारी न होना और दुष्टजनींकी संवार्षे संलग्न होना तथा दूसरेका अहित करते हुए मृत्युको प्राप्त हो जाना—ये पाँच कर्म मानवके दुशरित हैं। पान्ते वियोग, स्वजनोंके द्वारा अपमान, शेष ऋण, दुर्जनसेवा तथा दरिद्रताके कारण मित्रोंकी विमुखता-ये पाँच बातें मनुष्यको विना अग्निके ही जलाती है।

मनुष्यको हजारों चिन्ताएँ होती हैं, किंतु उन चिन्ताओंके मध्य बार जिलाएँ ऐसी है जो तलबारकी धारके समान अत्यन्त तीक्ण हैं, यथा-नीच व्यक्तिसे प्राप्त अपमानकी चिन्ता, भूखसे पीडित पत्नीकी चिन्ता, अनुरागहीन भाषांकी चिन्ता तथा कार्यमें स्वाभाविक रूपसे उत्पन्न अवरोधकी चिन्ता। ये मनुष्यकं मर्पस्थलपर तलकाको धारकं समान कष्ट पहुँचाती हैं।

अनुकूल पुत्र, अर्थकरी विद्या, आरोग्य शरीर, सल्संगति तथा मनोऽनुकृल वशवर्तिनी पत्नी— ये पाँच पुरुषके दु:खको समूल नष्ट करनेमें समर्थ हैं।

मृग, हाथी, कीट, भ्रमर और मत्स्य – ये पाँच क्रमश: शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध, और रस—इन पाँचों प्रमादी विषयों में एक-एकका सेवन करनेपर ही नष्ट हो जाते हैं, परंतु जो मनुष्य पाँचों विषयोंका पाँचों इन्द्रियोंसे सेवन करता है, तो वह क्यों नहीं मारा जायगा-

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभङ्ग-

मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।

एकः प्रमादी स कथं न घात्यो पञ्चिभोव पञ्च॥

(854138)

धैर्परहित, रूक्ष स्वध्यवाले, गतिहीन, मलिन वस्वाच्छादित और अनाह्त (चिना चुलाये सभा-उत्सवादिमें उपस्थित होनेवाले)—ये पाँच प्रकारके ब्राह्मण बृहस्पतिके समान होनेपर भी पूजे नहीं जाते हैं। आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यू-ये पाँच जन्मसे ही सुनिश्चित रहते हैं-

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च। पश्चेतानि विविच्यनो जायमानस्य देहिनः॥

(284178)

मेघकी छाया, दुष्टका प्रेम, परनारीका साथ, यौवन और धन—पे पाँच अस्थिर हैं। संसारमें प्राणीका जीवित रहना अस्थिर है, उसका धन और यीवन अस्थिर है तथा उसके क्जो-पुत्र आदि अस्थिर हैं, किंतु उसका धर्म, कीर्ति और यश चिरस्थायी होता है-

अधन्त्राया खले ग्रीतिः परनारीषु भंगतिः। पश्चेतं द्वारिक्या भावा यौवनात्रि धनानि च॥ अस्थिरं जीवितं त्येके अस्थिरं धनयीवनम्। अस्थिरं पुत्रदाराचे धर्मः कीर्तियेशः स्थिरम्।।

(254134-35)

सौ वर्षका जीवन भी बहुत कम है, क्योंकि परिमित आयुक्त आधा भाग रात्रियोंमें ही व्यतीत हो जाता है। शेष बचे हुए समयका आधा भाग व्यक्ति, दु:ख तथा युद्धावस्थामें निष्क्रियतांके कारण व्यतीत हो जाता है। मनुष्यकी आयु सी वर्ष मानी गयी है। आयुक्त आधा भाग रात्रियोंमें ही समाप्त हो जाता है। उसकी शेष आधी ही आयु सचती हैं, जिसमेंसे आधेसे कुछ अधिक भाग बाल्यावस्थामें बीत जाता है, कुछ भाग परिजनोंके वियोग, उनकी दु:खदायी मृत्युसे प्राप्त कष्ट तथा राजसेवामें चला जाता है। इसके बाद जो आयुका रोप भाग बचता भी है, वह जलतरंगके समान वंचल होतेके कारण बीचमें ही विनष्ट हो जाता है। अत: लोगोंको मानसे क्या लाभ हो सकता है?

१-दाता दरिदः कृपमोऽर्थयुक्तः पुत्रोऽविश्रेयः कुजनस्य सेवा । पराणकारेषु नास्य मृत्युः प्रजायते दुश्चरितानि प्रश कानावियोगः स्वजनापमानं ऋगस्य तेषः कुजनस्य सेवा । दारिहचभावाद्विमुखाश्च मित्रा विनर्गनना पश्च दहन्ति तोकाः॥(११५।१७-१८) २-वश्यक्ष पुत्रोऽवंकरी च विद्या अरोगिता सजनसङ्गतिह । इन्हा च भार्य वजनिते च दु:खस्य मुसोद्धरणनि पष्ट ॥(११५।२०)

मृत्यु दिन-रात वृद्धावस्थाके रूपमें लोकमें विचरण करती रहती है। वह प्राणियोंको वैसे ही अपना ग्रास बनाती है, जैसे सर्प वायुका ग्रास करता है।

चला. हुए, रुकते हुए, जागते हुए और सोते हुए भी व्यक्ति यदि सभी प्राणियोंके हितके लिये चेटा नहीं करता है तो उसकी समस्त चेष्टा पशुवत ही है। हित और अहितके विचारसे शुन्य बुद्धिवाले, बेद-पुरान तथा जास्त्रोंकी चर्चाके समय अत्यधिक तर्क-वितर्क करनेवाले एवं उदरपूर्तिमात्रमें संतुष्ट-बृद्धिवाले पुरुष और पशुके बीच कौन ऐसा वैशिष्ट्य है जिसके अनुसार उन दोनोंमें अन्तर स्पष्ट किया जा सके?

पराक्रम, तप, दान, विद्या तथा अर्थ-लाभमें जिस मनुष्यको कीर्ति संसारमें प्रसिद्ध नहीं हुई, वह माताके द्वारा परित्याग किये गये मलके समान ही है। विज्ञान, पराक्रम, यश और अक्षण्ण सम्मानसे वृक्त होकर क्षणमात्र भी जो मनुष्य जीवन धारण करता है, विज्ञ लोग उसीके जीवनको जीवन मानते हैं। वैसे तो कौआ भी बहुत समयतक बलि-भक्षण करते हुए जोवित रहता ही है। धन-मानसे रहित जीवनसे क्या लाभ? भयसे सशंकित मित्रसे क्या हो सकता है ? (इसलिये) विषादका परिल्यागकर सिंहचत अर्थात् पराक्रमका आचरण करना चाहिये। अन्यवा कौका भी ती बलिका भक्षण करते हुए बहुत समयतक जीवित रहता ही है। जो मन्च्य इस संसारमें अपने प्रति तथा गृह, नौकर-चाकर और दीन-द:खीके प्रति दयाभाव नहीं रखता है और मित्रके कार्यमें सहयोग नहीं करता है, मनुष्यलोकमें उसके जीवित रहनेसे क्या लाभ? अरे, कौआ भी बहुत समयतक जीवित रहता है और मनुष्योंके द्वारा दिये गये चलिपागके अलको ही जीवनभर खाता है?।

धर्म, अर्थ और काम-इस त्रिवर्गकी क्रियासे रहित जिस मनष्यके दिन आते हैं और चले जाते हैं, ऐसा व्यक्ति लुहारकी धौंकनीके समान ही है, जो कि श्रास लेते हुए भी जीवित नहीं है।

स्वाधीन रहकर आचरण करनेवाले मनुष्यका जीवन सफल है। पराधीन रहकर जीवन व्यतीत करनेवालेका जीवन तो व्यथं है। जो परतन्त्र रहकर जीवन-यापन करते हैं, वे तो जीवित रहते हुए भी मरेके समान हैं।

आकारामें घिरे हुए बादलोंकी छाया, तिनकेसे आग, नोचको सेवा. मार्गमें दृष्टिगोचर हुआ जल, वेश्याका प्रेम और दृष्टके अना:करणमें उत्पन्न हुई प्रीति-ये छ: जलमें उठने और तत्काल विलुप्त होनेवाले बुलबुलेके सदश ही क्षणभंगर होते हैं-

अध्वकादा तृणादन्तिनीयसेवा पथी जलप्। वेश्वारागः खले प्रीतिः यहेते बृद्बुदोपमाः॥

केवल वाणीके द्वारा किये गये हित-सम्पादनसे मनुष्यको सुख नहीं प्राप्त होता। जीवनका मूल तो मान है। मानके नष्ट हो जानेपर मनुष्यके लिये सुख कहाँ होता है?

निर्वलका बल राजा है, बालकका बल रोना है, मुखंका बल मौन धारण कर लेना है और चोरका बल असत्य है।" यनुष्य जैसे-वैसे जास्त्र-जान प्राप्त करता जाता है, वैसे-वैसे उसको बुद्धि बढतो रहती है और विज्ञान प्राप्त करनेमें रुचि होती जाती है। मनुष्य जैसे-जैसे जनकल्याणमें अपनी बुद्धिको संयुक्त करता है, वैसे-वैसे हो वह सर्वत्र सभीका प्रिय पात्र बन जाता है-

वका वका हि पुरुषः ज्ञास्त्रं समधिगच्छति। तवा तवास्य मेधा स्वादिवार्थ चास्य रोचने॥ यद्या यद्या हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मतिम्। तवा तवा हि सर्वत्र हिलच्यते लोकस्प्रियः॥

(484183-83)

लोध, प्रमाद और विश्वास- इन तीनके कारण व्यक्तिका विनाज होता है। अतएव प्राणीको लोभ, प्रमाद और विश्वास नहीं करना चाहिये। मनुष्यको भयसे उसी समयतक भयभीत रहना चाहिये, जिस समयतक उसका आगमन नहीं हो जाता। तीव भयके उपस्थित हो जानेपर तो उसे

१-गच्छनस्तिहतो वापि जाएत: स्वपतो न चेत् । सर्वसत्वदितार्धाय पतोरिव विचेहितम् ॥ (११५ । ३०)

२-यो बात्मनीह न गुरी न च भूत्क्वर्गे दीने द्वयाँ न कुठते न च मित्रकार्ये।

किं तस्य जीवितफलेन मन्ष्यलोके काकोऽपि जीवित विर्ा च बीर्न च पृष्टे। (११६।३५)

३-स्वाधीनवृत्ते: साफल्यं न पराधीनवर्तिताः ये पराधीनकर्माणी जीवन्तोऽपि च ते पृताः॥ (११६।३७)

४-अबसस्य वर्स राजा वासस्य रुदितं वरस्य। वर्स मुर्खस्य भीनं हि तस्करस्यान्तं बसम् ॥ (११६।४१)

निर्भीक होकर उसका सामना करना चाहिये। ऋण, अग्नि तथा व्याधिके शेष रहनेपर वे बार-बार वर्तोंमें सत्य ही ब्रेष्टतम बत है। बढ़ते जाते हैं। अत: उनका शेष रखना उचित नहीं है-प्राणार्थेयं चारिनशेषं व्याधिशेषं तथैव च। पुन:पुन: प्रवर्धन्ते तस्माच्छेषं प कारवेत्॥

परोक्ष-रूपमें कार्यको नष्ट करनेवाले तथा मामने मधुर बोलनेवाले मित्रका, मायावी शत्रुकी भौति परित्याग कर देना चाहिये-

> परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्। वर्जयेत् तादुशं पित्रं मायामयमरि तथा।। (281 PS)

दुष्टका साथ करनेसे सज्जन मनुष्य भी विनष्ट हो जाता है, क्योंकि सुन्दर-स्वच्छ पेय जल कीचड़के मिल जानेसे दिपत हो जाता है-

> दुर्जनस्य हि संगेन सुजनोऽपि विनक्रपति। प्रसन्नमपि पानीयं कर्दमैः कल्पीकृतम्॥

जिस व्यक्तिका धन ब्राह्मणके लिये [सर्पार्यत] होता है, वही [धनका] सम्यक उपभीग करता है। इसलिये सभी प्रकारसे प्रयत्नपूर्वक द्विजकी पूजा करनी चाहिये। जो दिजके उपभोगसे बचे हुए पदाचौंका उपभोग करता है, वही उत्तम भीजन है। जो पाप नहीं करता, वही बुद्धिमान है। जो पीठ-पीछे हित-सम्पादन किया जाता है, वही मित्र-भाव है और जो दिखावेके बिना (दम्भरहित) धर्म किया जाता है, वही बास्तविक धर्माचरण है।

होते। वे [युद्ध] युद्ध नहीं माने जाते, जो धर्मका उपदेश नहीं देते। वह [धर्म] धर्म नहीं है, जिसमें सत्यका वास नहीं होता। वह [सत्य] सत्य नहीं है, जो कपटसे अनुप्राणित रहता है-

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः बुद्धा न ते ये न बदन्ति धर्मम्। धर्मः स नो यत्र न सल्यमस्ति नैतत् सत्यं यच्छलेनानुविद्धम्॥

मनुष्योंमें ब्राह्मण, तेजमें आदित्य, शरीरमें सिर और

जहाँ मनको प्रसन्नताकी प्राप्ति हो, वहीं प्राणीका मङ्गल है। इसरेकी सेवामें समर्पित जीवन ही यथार्थ जीवन है। जो उपार्जित धन स्वजनोंके द्वारा उपभोग्य है, वही धन सार्थक है। युद्धभृषिमें शत्रुके सामने की गयी गर्जना ही वास्तविक गर्जना है। स्त्री वही श्रेष्ठ है, जो मदोन्मत नहीं हो। तृष्णारहित व्यक्ति हो सुद्धी होता है। जिसपर विश्वास किया जाय. वहीं पित्र है और जो जितेन्द्रिय होता है, वहीं वास्तविक पुरुष है।

राज्यका ऐक्ष्यें कुद्ध ब्राह्मणके शापसे विनष्ट हो जाता है, बाह्यणका तेज पापाचार करनेसे नष्ट हो जाता है, अशिक्षित गाँवमें निवास करनेसे ब्राह्मणका सदाचार समाप्त हो जाता है और दृष्ट स्त्रियोंके साहचर्यसे कुलका विनाश हो जाता है। सभी संप्रहोंका अन्त खय है और सभी उत्कर्षोंका अन्त पतन है। संघोगका अन्त विधोग है और जीवनका अन्त

यनुष्यको राजासे रहित राज्यमें और बहुत राजाओंबाले गुज्यमें निकास नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार जहाँ स्त्रीका नेतृत्व हो या बालनेतृत्व हो वहाँ भी निवास करना अच्छा नहीं होता ह

कीमार्च-अवस्थामें स्वीकी रक्षा पिता करता है, युवावस्थामें उसकी रखका भार पतिपर होता है, वृद्धावस्थामें उसकी रक्षाका भार पुत्र उत्प्रता है। स्वी स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं है।

अर्थके लिये आतुर मनुष्यका न कोई मित्र है और न कोई चन्धु। कामातुर व्यक्तिके लिये न भय है और न लजा वह सभा सभा नहीं होतो, जिसमें वृद्ध कर नहीं हो। चिन्तासे ग्रस्त प्राणीके लिये न सुख है और न नींद हो तथा भूखमे पोड़ित मनुष्यके शरीरमें न बल ही रहता है और न तेज ही रह जाता है-

> अर्थानुसामां न सुहन्न बन्धः कामात्राणां न भयं न लजा। चिनात्राणां न सुखं न निज्ञा क्ष्यात्राणां न वलं न तेजः॥

(284 (60)

दरिद्र तथा दूसरेके द्वारा प्रेषित दूत, पर-नारीमें आसक (११५।५२) तथा दूसरेके धन-अपहरणमें लगे हुए व्यक्तिको नींद कहाँ

१-तावद्भवस्य भेतव्यं वावद्भवमनागतम्। इत्यत्रे दु भवे तीवे स्थातव्यं वै झभीतवत् ॥ (११५।४५)

२-तद्भन्यते यदद्विजभुक्तनेषं स बुद्धिमान् यो न करोति पापम्। तत्पीहर्द योक्कियते पारेक्षे दर्गीविना यः क्रियते स धर्मः॥ (११५।५१)

३-पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति बौबने । पुत्रस्टु स्माबिरे काले न स्त्री स्वातन्त्रपर्सति॥ (११५/६३)

आती है? जो मनुष्य ऋणरहित और रोगमुक्त होता है, निवास करनेवालेके समान है। जो स्त्रियोंके संसर्गसे दूर रहता है।

जलके परिमाणके अनुसार ही कमलनाल भी ऊपरकी जरीरपर भी दिखायी देते रहते हैं। और उठता जाता है और अपने स्वामीके बलके अनुसार कुब्ज होना, कमिदोषसे पीडित रहना, वायुविकारसे भूत्य भी गर्वोत्रत हो जाता है। अपने स्थान जलाशयमें ग्रस्त होना, देश, राज्य या गृहसे निष्कासित हो जाना रिश्वत रहनेपर वरुणदेव एवं सूर्यनारायण कमलके साथ तथा पर्यतके शिखर-भागमें रहना अच्छा है, किंतु मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते हैं, किंतु उस स्थानसे व्युत याधनाकी वृत्तिको स्थीकार करना उचित नहीं है। जिसके भित्र होते हैं, वे पदसे विमुक्त होनेपर वैसे ही ऐसा है, जो याचक होकर लघुताको प्राप्त नहीं होगा?" शत्र हो जाते हैं जैसे जलमें कमलके विद्यमान रहनेपर वे माता-पिता उस बालकके शत्रु होते हैं, जिन्होंने उसे लगता है।

अपने स्थान या पदपर अवस्थित रहनेपर ही मनुष्यको पूजा होती है। स्थान और पदसे च्युत होनेपर उसकी उसी प्रकार पूजा नहीं होती, जिस प्रकार शरीरसे पृथक होनेपर करा, दाँत और नख शोधित नहीं होते-

> स्थानस्थितानि पुरुपने पुरुपने च पदे स्थिताः। स्थानभ्रष्टा व यूज्यनी केशा दना नखा नतः॥

> > [*** 103]

आचारको देखकर कुलका ज्ञान होता है। भाषाको सुनकर देशका ज्ञान होता है। सम्भ्रमसे स्नेड प्रकट होता है और त्ररीरको देखकर भोजनका ज्ञान (अनुपान) होता है।

समुद्रमें बचां होना व्यर्थ है। तृप्त हुए प्राणीके लिये भोजनका आग्रह व्यर्थ है। समृद्धको दान देना व्यर्थ है तथा नीचके लिये किया गया सुकृत व्यर्थ है। जो प्राणी जिसके हृदयमें अवस्थित है, वह दूरदेशमें रहते हुए भी उसके संनिकट ही विद्यमान रहता है और जो प्राणी इदयसे ही निकल चुका है, वह समीपमें ही रहते हुए भी दूरदेशमें

वहीं सुखपूर्वक निदाका उपभोग करता है। इनके अतिरिक्त मुखको विकृति, स्वरभंग, दैन्यभाव, पसीनेसे लक्ष्यथ वह व्यक्ति भी निदाका सुख प्राप्त करनेमें सफल होता है, जरीर तथा अत्यन्त भयके चिह्न प्राणीमें मृत्युके समय उपस्थित होते हैं, किंतु ये ही चिह्न याचकके जीवित

होनेपर उसी कमलके साथ वे जलासना और शोषणका संसारके स्वामी होनेपर भी भगवान विष्णु बलिके यहाँ याचना व्यवहार करके कष्ट पहुँचाते हैं। पदासीन रहनेपर को काके वायन (बीने) हो गये थे। उनसे बढ़कर और कौन

सूर्यकी प्रीति उसके साथ रहती है, किंतु उस जलमे उसकी विद्याध्ययन नहीं कराया है। संभाके मध्य मूर्ख येसे ही तोडकर स्थलभागमें लानेपर वहीं सूर्य उसका शोषण करने शोभा प्राप्त करनेमें सफल नहीं होता, जैसे हंस-समुदायके मध्य बगुला सुशोधित नहीं होता।

विद्या कुरूप व्यक्तिके लिये भी रूप है। विद्या अल्पधिक गुन्त धन है। विद्या प्राणीको साधुवृत्तिवाला तथा सभी लोगोंका प्रियपात्र बना देती है। वह गुरुऑकी भी गुरु है। विद्या बन्धु-बान्धवींके कप्टोंको दूर करनेवालो है। विद्या परम देवता है। विद्या राजाओंके मध्य पूजनीय है। अतः विद्यासे विहीन मनुष्य पशुके समान है-

विद्या नाम कुरूपरूपमधिक विद्यातिगुप्तं धनं विद्या साधुकरी जनप्रियकरी विद्या गुरूणां गुरु:। विद्या बन्धजनारिनाशनकरी विद्या परं देवते विद्या राजसु युजिता हि मनुजो विद्याविहीनः पशुः॥

घर या उसके मुद्ध स्थानोंघर सुरक्षित रखा हुआ द्रव्य देखा जा सकता है और वह समस्त धन-वैभव चोरोंके द्वारा ब्राया भी जा सकता है। किंतु विद्या एक ऐसा धन है, जो दूसरेके द्वारा किसी भी प्रकार अपहत नहीं किया जा सकता (अध्याय ११५)

१-कतो निद्रा दरिद्रस्य परप्रेष्यवरस्य व।परनारीप्रसन्तस्य

२-आचार: कुलमाख्यति देशमख्यति भाषतम् । सम्भ्रम: लेहमाख्यति वपुगतकाति भोजनम् ॥ (११५।७४)

३-दूरस्थोऽपि समीपस्थो यो यस्य द्वदये स्थित: । इदयादपि निष्कान्त: समीपस्थोऽपि दुरत:॥ (११५।७६)

४-जगरपतिहि याचितवा विष्णुवांमनता यतः। कोऽन्योऽधिकतरात्सव योऽर्था यति न लायवम्॥ (११५।७९) ५-गृहे साध्यत्तरे द्रव्यं लग्ने बैव तु द्रश्यते।अजेर्थं हरणीयं च विद्या न हिप्यते पी:व (११५।८३)

तिथि आदि व्रतोंका वर्णन

करूँगा, जिनको करनेसे प्राणीको भगवान् हरि सब कुछ कार्तिकेय और रवि तथा सप्तमीको भगवान् भास्करकी प्रदान करते हैं। सभी मास, सभी नक्षत्र, सभी तिथि और पूजा करनी चाहिये। ये उपासकको अर्थलाभ कराते हैं। सभी दिनोंमें हरिका पूजन होता है। एकभक्त', नक्त', उपवास अथवा फलाहारवत करनेसे वतीको भगवान् हरि दिखाएँ पुजित होनेपर अर्थ प्रदान करती है। दशमी तिथिमें धन, धान्य, पुत्र, राज्य और विजय आदि प्रदान करते हैं। यमराज और चन्द्र तथा एकादशी तिथिमें ऋषिगणोंकी पूजा

बह्या उसे लक्ष्मी प्रदान करते हैं।

उस व्रतीको अर्थलाभ कराते हैं। तृतीया तिथिमें गौरों, ये सातों बार, अश्विनी आदि सताईस नक्षत्र तथा योगीकी

ब्रह्माजीने कहा-हे व्यास। अब मैं वर्तोंका वर्णन चतुर्थीको चतुर्व्यूह भगवान् विष्णु, पञ्चमीको हरि, पष्टीको

अष्टमो तिथिमें दुर्गा और नवमी तिथिमें मातृका तथा प्रतिपदा तिथिमें वैश्वानर तथा कुथेर पुज्य हैं, वे करनी चाहिये। द्वादशीको हरि और कामदेव तथा प्रयोदशीको साधकको अर्थलाभ कराते हैं। प्रतिपदा विधिमें तथा भगवान् जिब पुरूप हैं। चतुर्दशी और पूर्णिमा तिथियोंमें ब्रह्मा अधिनी नक्षत्रमें उपवास करनेवाले साधकके द्वारा पृजित तथा अमावास्वामें पितृगणोंकी पूजा करनेसे वे धन-सम्पत्ति प्रदान करते हैं।

द्वितीया तिथिमें यमराज एवं भगवान् लक्ष्मीनागयण - र्राव, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि-विध्नविनाशक गणेश तथा शिव—ये तीन देव पूज्य हैं। पूजा करनेसे ये सब कुछ प्रदान करते हैं। (अध्याय ११६)

अनंगत्रयोदशीव्रत

ब्रह्माजीने कहा - हे व्यास ! मार्गतीर्पमासके गुजनपक्षकी जाक, मौड़ और आग्न-वृक्षकी दतुअन निवेदित करे। प्रयोदशी तिथिमें अनंगत्रयोदशीवत होता है। इस तिथिमें मिल्लका-वृक्षको दतुअन निवेदितकर धनुरके पुत्र एवं रात्रिमें उन्हें कर्पूरका प्राप्तन देना चाहिये। दन्तधावनके लिये फलोंसे शिवको पूजा करनी चाहिये। तदननार 'अनङ्काचेतिक' वटवृक्षकी दतुअन तथा नैवेद्यके निमित्त शाकुली (पृद्धी) इस मन्त्रसे भगवान् शिवको मधुका नैवेद्य अर्पित करना प्रदान करे। वैशाखमासमें अशोकवृक्षके पुष्पीसे भगवान् चाहिये। पीयमासमें भगवान् योगेश्वरका बिल्यपत्र, कदम्बके शिवका दमनक (संहारकारक) स्वरूप पूजनीय होता है। दतुअन, चन्दन तथा कुसर आदि नैवेद्यसे पूजन करना चाहिये।

हे मुने। माधमासमें भगवान् नटनागर शिवकी कुन्द-पुष्प तथा मौक्तिक मालासे पूजा करके उन्हें पाकड्युसकी दतुअन और पूरिका (पूड़ी)-का नैवेद्य नियंदित करना चाहिये। फाल्गुनमासमें मरुबक (मंडक) नामक पुष्पींसे भगवान् बोरेश्वरकी पूजा करनी चाहिये तथा उन्हें शर्करा.

चैत्रमासमें भगवान् मुरूपको पूजा करनी चाहिये और इन महास्वरूपधारी देवको नैवंद्यमें गृह और भात, दन्तभावनके लिये गुलर-वृक्षकी दतुक्षन और प्राजनके लियं जातिफल अर्पित करना चाहिये।

ज्येष्टमासर्वे भगवान् प्रद्युप्तका पूजन चम्पक-पूष्पसे करे और बिल्व-वृक्षकी दतुअन एवं लयङ्गांश (लींग फलके टुकड़े)-के नैबेद्य समर्पित करना चाहिये। आपाड़मासमें उमाभद्रकी पूजा करनी चाहिये। इसमें अगुरूकी गन्ध,

१-दिनार्थसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत् । एकभक्तिनि जोकं राजी तत कदावन ॥ दिनका आधा समय बीत जानेपा २४ चंटेमें केवल एक बार दिनमें किया गया भोजन एकपछ होता है।

२-दिवसस्याष्ट्रमे भागे मन्द्रीभृते दिवाकरे । नके तच्च विकारीयात्र नके नितिभोजनम् ॥ मध्यदर्शनामकं गृहस्थेन विधीयते । यतेर्दिनाहमे धार्म राजी तस्य निषेधनम् ॥ दिनके आठवें भागमें सुर्वप्रभाके पन्द होनेपर किया गया २४ घटेमें एक बास्का धोजन नतन्त्रत है। गृहस्थके लिये सुर्यास्तके अननार नक्षत्र दर्शन करके भोजन करना नक्तवत है और यति (संन्यासी)-के लिये मूर्यालके पूर्व दिनके आढवें भागमें भिक्षा ग्रहण करना तसकत है।

अपामार्गकी दतुअन उन्हें प्रदान की जाती है।

श्रावणमासमें भगवान् शृलपाणि शिवको पूजा होती है। वन्हें करबीर-पुष्प, गन्ध, पृतादिसे युक्त भोजन तथा करवीर-वृक्षकी दतुअन निवेदित की जाती है। भाइपदमासमें सद्योजात शिवका पूजन बकुल-पुच्य और अपूप (पूए)-के नैवेद्यसे करना चाहिये। आश्विनमासमें चम्पक-पुष्प, स्वर्णकलशके जल और सुवासित मोदकके नैवेद्यसे तथा दमनकको दतुअनसे सुराधिप जिनके पूजनका विधान है। कार्तिकमासमें खदिर (कत्ये)-को दतुअनसे तथा थेरकी दतुआन, मदन-पुष्प, दूध और शाक प्रदान करते हुए त्वर्षपर्यन्त कमल-पुष्पसे शिवकी पूजा करनी चाहिये।

उपर्युक्त विधिसे पूजन करनेके पश्चात् रतिसहित

अनग-कामदेवको स्वर्णसे निर्मित मण्डलके अन्तर्गत स्वापित करके उनकी रान्धादिसे पुन: पूजा कर तिल और चाक्ल आदिसे संयुक्त हवन-सामग्रीसे उन्हें दस हजार आहुतियाँ प्रदान करनेका विधान है। उस दिन रात्रिमें जागरण करे तथा गीत-वाद्यादिसे आमोद-प्रमोद करते हुए प्रभातकालमें उन देवकी फिरसे पूजा करके बाह्मणको शय्या, पात्र, छत्र, वस्त्र तथा पदत्राणके लिये जूतेका दान देकर भक्तिपूर्वक गौ और ब्राह्मणको भोजन देकर मनुष्यको कृतकृत्य होना चाहिये। व्रतकी समाप्तिपर उद्यापन करना चाहिये। ऐसा करनेसे बती लक्ष्मी, पुत्र, आरोग्य, सीभाग्य तथा स्वर्ग प्राप्त करता है।

अखण्डद्वादशीवत

अखण्डद्वादशीवतका वर्णन करता हूँ। मार्गजीर्थमासके भगवन्! वे आफ्की कृपासे इस जन्ममें पूर्ण हों। हे शुक्लपक्षको द्वादशी तिथिमें गौके दूध-दहो आदिको भोजनरूपमें पुरुषोत्तम। जिस प्रकार आप ही इस सम्पूर्ण अखण्ड स्वीकार करके वत करनेवाले उपासकको जगत्के स्वामी भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। बार मासपर्यन्त अर्चान् गये ये सभी वत भी अखण्ड हो जाये। फाल्नुनमासतक वह व्रती पाँच प्रकारके धान्यसे पूर्ण पात्र ब्राह्मणको दान दे और भगवान् विष्णुको इस प्रकार प्रार्थन् को-

सप्तजन्मनि हे विष्णो यन्मया हि वर्त कृतम्। भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखण्डभिहास्तु मेश यशाखण्डं जगत्सर्व त्वमेव पुरुषोत्तम। तथाखिलान्यखण्डानि वतानि मम सन् वै॥

(44C13-K)

बाह्याजीने कहा—अब मैं मोक्ष तथा राजन्तप्रद है विप्यो! सात जन्मोंमें मैंने जो व्रत किये हैं, हे बह्यण्डके रूपमें अवस्थित हैं, उसी प्रकार मेरे द्वारा किये

चैत्रादि (चार) मासमें सन्से पूर्ण पात्र और बावण आदि चार महीनोंमें घृतपूर्ण पात्र ब्राह्मणको दान देना चाहिये।

इस विधिमे वर्षपर्यना द्वादशीव्रतका संकल्प लेकर जो बती अपने बतको पूर्ण करता है, वह स्त्री-पुत्रादिसे सम्पन्न होकर अन्तमें स्वर्गलोकका सुखोपभोग करता है।

(अध्याय ११८)

(अध्याय ११७)

अगस्त्यार्घ्यव्रत-निरूपण

करनेवाले अगस्त्यार्घ्यव्रतको कहता हूँ। कन्याराशिपर सूर्वकी संक्रान्तिके तीन दिन पहलेसे काज-पुणकी बनी हुई अगस्त्यको मूर्तिका प्रदोषकालमें पूजन करके कुम्भमें अर्घ्य देना चाहिये। (रात्रि) जागरण और उपवास करके दक्षि-अक्षत और फल-पुष्पसे पूजा करके पाँच वर्णसे युक्त सोने-चाँदीसे समन्वित सप्तधान्यसे भरे पात्रको दही और

बह्याजीने पुनः कहा—हे मुने! भुक्ति-पुक्ति प्रदान चन्द्रनसे रंजित कर 'अगस्त्यः खनमानः०' इस मन्त्रसे अगस्यको अर्घ्य प्रदान करे।

इसके कद इस यन्त्रसे उन्हें नमस्कार करना चाहिये— कारापुष्पप्रतीकाश अग्नियारुतसम्भव। मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥

अधात् काश-पुष्पके समान उज्ज्वल, अग्नि और

वायुसे उत्पन्न मित्रावरुणके पुत्र हे कुम्भयोनि अगस्त्यजी! दक्षिणासे युक्त घट प्रदान करे। सात बाह्मणोंको भोजन आपको नमस्कार है।

फल और रस प्रदान करे तथा ब्राह्मणको स्वर्ण और जाता है। (अध्याय ११९)

कराना चाहिये। इस प्रकार वर्षभर अगस्त्यार्घ्य-शुद्र, स्त्री आदि इसी विधिसे अगस्त्यके लिये धान, वत करनेवाला सभी प्रकारके त्रेय-प्राप्तिका अधिकारी हो

रम्भातृतीयावृत

पुत्रादिसे सम्पन्न करनेवाले 'रम्भातृतीयावत'को बहुँगा। यह नैवेध प्रदानकर स्वयं उपासक लींगका भक्षण करे। व्रत मार्गशीर्यमासके शुक्लपक्षकी वृतीया तिबिको किया आधादमासमें माधवीकी पूजा करनी चाहिये। इस मासमें जाता है। इस तिथिको उपवास रखकर वती कुलोदक वती तिलका प्राज्ञन करे और भगवती माधवीकी बिल्यपप्रसे हाथमें लेकर बिल्वपत्रसे महागीरीकी पूजा करे। इस पूजनमें पूजाकर खोर और बटक (भूतपक्व मधुर पिष्टक)-का कदम्ब (वृक्ष) -को दतुअनका प्रयोग करना चाहिये, किंतु नैवेच अर्पित करे। इस पूजनमें देवीके लिये गूलस्की पौषमासमें मरुवकके पुष्पोंसे पार्वतोके पूजनका विधान है। दतुअन प्रदान करनी चाहिये। ब्रावणमासमें श्रीरात्र तथा वती इस मासके वतमें मात्र कर्पूरका सेवनकर उपवास मल्लिकाको दतुआन देकर तगरके फूलसे श्रीदेवीकी पूजा करता हुआ उन गौरोको कृसर (तिल-चावलका सिद्धान)-का नैवंग्र एवं मल्लिकाओंकी दतुअन अर्पित करे।

मायमासमें व्रतके दिन युतपानकर उपवास करते हुए व्रतीको कल्हार-पुष्प (क्षेतकमल)-से सुभद्रादेवीको पुत्रा करके उन्हें गण्डेका नैवेद्य समर्पित करना चाहिये।

फाल्गुनमासमें गोमतीको पूजाका विधान है। कुन्द-पुष्पसे उनको पूजा करके उसोको नालको दनुअनरूपमें उन्हें निवेदित करे और स्वयं जीवा (जीवनी)-का भक्षणकर शष्कुं ली (पूड़ी)-का नैबंद्य लगाये।

चैत्रमासमें भगवती विशालाक्षीको दमनक-पुण्य, तगर काष्ट्रकी दतुअन और कुसराजका नैवेदा ऑर्पन करके स्वयं दहीका प्राज्ञन करे। यैज्ञाखमासमें श्रीमुखोदेवोकी पूजा कर्णिकार (कनैल)-के पुष्प, यटयुक्षकी दतुअनसे करनी चाहिये और व्रतीको अशोककल्जिकाका प्राज्ञन करना चाहिये।

ज्येष्ठमासमें नारायणीदेवीका पूजन शतपर्णी (छितवन)- सब कुछ प्राप्त हो जाता है। (अध्याय १२०)

ब्रह्माजीने कहा — अब मैं सौभाग्य, लक्ष्मी तथा के पुष्प एवं दतुअनसे होता है। इस पूजामें देवीको खाँडका करनी चाहिये।

भाद्रपटमासमें सिंघाहेका आहारकर व्रतीको उत्तमा-देवोके लिये गुड़का नैयेश अर्पित करके पशुप्योंसे पूजा करनी चाहिये।

आधिनमासमें राजपुत्रीका पूजन जपा-पुष्पसे करके उन्हें जोरेसे सुवासित अभका नैवेदा अर्पितकर रात्रिमें प्राशन करना चाहिये। कार्तिकमासमें पद्मजादेवीका जाति नामक पुष्प एवं कृसराजके नैवेदासे पूजन होता है और उपासकको पञ्चगव्यका प्राप्तन करना चाहिये।

इस प्रकार मार्गशीर्थसे कार्तिकमासतक वर्षकी समाप्तिपर सपत्रीक ब्राह्मणोंको पृतीदन (धृतमें पका तण्डुल) देकर उनका पूजन करना चाहिये। उसके बाद पार्वती और शिवको गुड़ आदिसे बने नैवेदा, वस्त्र, छत्र और सुवर्ण आदिसे पूजा करके गीत-वाद्यादिसे रात्रि-जागरण करते हुए प्रात: गौ आदिका दान देना चाहिये। ऐसा करनेसे व्रतीको

१-पण्ड-अत्र, दक्षि आदिका सार।

२-जांबा— शाकविशेष, शकंशके समान मधुर पुण्यवाली लता।

३-विल, तण्डुल, उड्डके चूर्णसे बना क्वाप् भी राष्ट्रतीका अर्थ है।

४-तगर—पुष्पकृक्ष, सितपुष्प, मदनकृक्ष (टगर)।

चातुर्मास्यव्रतका निरूपण

ब्रह्माजीने कहा —अब मैं चातुर्मास्यवतको कहता हैं। इस व्रतका आरम्भ आषाढ्मासको एकादशी या पूर्णिमा तिथिमें सब प्रकारसे भगवान् हरिका पूजन करके करे।

व्रतारम्भके समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये— इदं वर्त मया देव गृहीतं पुरतस्तव। निर्विप्नं सिद्धिमाप्नोतु प्रसन्ने त्ववि केशव॥ गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव यद्यपूर्णे प्रियाम्यहम्। भवत् सम्पूर्णं त्वत्यसादाजनादेन॥

(27517-3)

हे देव! आपके समक्ष मैंने इस वतको ग्रहण किया है। हे केशव! आपके प्रसन्न होनेपर मुझे निर्विष्न सिद्धि प्राप्त हो। हे देव! ग्रहण किये गये इस व्रतको अपूर्णतामें ही यदि में मृत्युको प्राप्त हो जाता हूँ तो भी है जनार्दन! आपकी कृपासे यह मेरा वत पूर्ण हो।

इस प्रकार हरिका पूजन करके वत, पूजन और जपादिका नियम ग्रहण करना चाहिये। जो हरिके व्रतको करनेकी इच्छा करता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते है। साधक स्नान करके भगवान् हरिका पूजन कर इस पूजा तथा जपादिकी बिहित क्रियाओंकी पूर्तिका संकल्प से तथा

आपाड़ आदि चार मासोंतक एकभक्तव्रत करता हुआ विष्णुको पूजा करे। ऐसा करनेवाला विष्णुके परम पवित्र निर्मल लोकमें चला जाता है।

मधु, मांस, सुरा और तेलका परित्याग करनेवाला जो वेदपारंगत, कृच्छ्पादेवती विष्णुभक्त हरिका पूजन करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त हो जाता है। एक राप्तिका उपवास करनेसे वैमानिक (विमानपर चढ़कर भ्रमण करनेवाला) देवता हो जाता है। तीन रात्रिपर्यन्त उपवास कर पष्टांश भोजन करनेसे साधकको श्वेतद्वीपकी प्राप्ति होती है। चान्द्रायणवत करनेसे तो भगवान् हरिका लोक और मुक्ति बिना मौंगे ही मिल जाती है। प्राजापंत्यव्रत करनेसे विष्णुलोक तथा पराकवेत करनेसे हरिकी प्राप्ति होती है।

इस बतमें सन्, यवात्रकी भिक्षा कर, दूध, दही तथा युतका प्राज्ञन कर, गोमूत्रयावकका आहार कर, पश्चगव्यका पान कर अथवा सभी प्रकारके रसीका परित्याग कर शाक-मूल-फलादिका भक्षण करते हुए जो साधक विष्णुकी थिक करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १२१)

मासोपवासवतका निरूपण

ब्रह्माजीने पुनः कहा—अब मैं आपसे मासोपवास नामक उस सर्वोत्तम व्रतका वर्णन करूँगा, जिसका पालन वानप्रस्थ, संन्यासी और नारीको करना चाहिये।

आश्चिनमासके शुक्लपक्षको एकादशी तिथिमें उपवास रखकर तीस दिनपर्यन्त इस व्रतको धारण करनेका विधान है। व्रतारम्भके समय सर्वप्रथम भगवान् विष्णुसे इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये-

अराप्रभुत्यह विष्यो यावदुत्यानकं तव। अर्थये त्यापनप्रनंसन् दिनानि कार्तिकाश्चिनयोविष्यो द्वादश्योः शुक्लयोरहम्। थिये यद्यनराले तु वतभङ्गो न मे भवेत्।।

हे विष्यो ! आजसे लेकर जबतक आपका शयनोत्धान नहीं हो जाता है, तबतक तीस दिनपर्यन्त बिना भोजन किये

१- कृष्णुपादवत—यह तीन दिनका वत है। पहले दिन दिनमें एक बार हविष्यात्र ग्रहण, दूसरे दिन असाचितरूपमें हविष्यात्रका एक बार ग्रहण और तीसरे दिन अहोरात्र उपनास। (याज्ञकस्पृतिक प्रायक रस्तोब्द ३१८)

२- मान्द्रायणवरा-- यह वरा अनेक प्रकारका है। मनु० ११। २१६ के अनुस्तार यह है-- प्रतिदिन तीनों काल स्नान। पृष्टिमासे वरतका आरम्भ। इस दिन पंद्रह ग्रास हविष्यात्रसात्र ग्रहण। पूर्णियाके बाद कृष्णपक्षको प्रतिपदासे एक-एक ग्रास कम करते हुए अर्थात् १४, १३, १२ इस संख्यामें ग्रास ग्रहण करते हुए कृष्णपक्षको चतुर्दहोको एक ग्रास ग्रहण। तदनन्तर अमानास्थाको पूर्ण उपनास। पुन: अमानास्थाके बाद शुक्ल प्रतिपदासे एक-एक ग्रास बढ़ाकर १, २, ३ इस कमने दूसरी पूर्णिनाको पंदह ग्रास ग्रहण। इस प्रकार एक मासमें यह ब्रत पूर्ण

३- प्राजापत्यवत— यह वत बारह दिनका होता है। प्रथम तीन दिन केवल दिनमें हविष्यात्र-ग्रहण। तत्पक्षात् तीन दिन केवल रातमें हविष्यात्र-ग्रहण। तदननार तीन दिन बिना माँगे जो मिल जाय, उतनामात्र एक बार प्रहण। अन्तिम तीन दिन पूर्णरूपमें उपवास। (मनु० ११) २११)

४- पराकब्रत—इस वर्तमें बारह दिनतक केवल जल ग्रहण करके रहा जाता है। (याज्ञक्स्मृति० प्रायक रखीक ३२०, मनु० ११।२१५)

ही मैं आपका पूजन करता रहेंगा। हे विष्णो ! यदि मैं आश्विन और कार्तिकमासके शुक्लपक्षमें द्वादशीसे लंकर दूसरी द्वादशी तिथिके मध्य मर जाता हूँ तो मेरा यह वत भंग न हो।

इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् प्रात: मध्याह तथा संध्याकालमें स्नान करके उपासक गन्धादिसे भगवान् हरिका देवालयमें पूजन करे, किंतु बतीको शरीरमें उबटन तथा सुगन्धित गन्धलेप आदि नहीं करना चाहिये।

द्वादशो तिथिमें भगवान् हरिकी पूजा करके स्नती ब्राह्मणोंको भीजन कराये। एक मासतक हरिका व्रत करनेके पक्षान् वती पारणा करे। यदि वतधारी इस अवधिक मध्य मृच्छित हो जाता है तो उसे दुग्धादिका प्राज्ञन कर लेना चाहिये; क्योंकि दुग्धादिका पान करनेसे वत विनष्ट नहीं होता। इस प्रकार मासवत करनेसे भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त होती हैं। (अध्याय १२२)

भीष्मपञ्चकव्रत

बह्याजीने कहा-अब मैं कार्तिकपासमें होनेवाले वर्तीको कहुँगा। इस मासमें स्नान करके वर्तीको भगवान विष्णुको पूजा करनी चाहिये। वती एक मासतक एकभक-वत कर, नक्तवत कर, अयाचितवत कर, दुग्ध, फल, राज आदिका आहार कर अथवा उपवास कर भगवान् विष्णुकी पूजा करे। ऐसा करनेसे वह ब्रती सभी पापोंसे मुळ डोका समस्त कामनाओंके साथ-साथ भगवान् हरिको प्राप्त कर लेवा है।

भगवान् हरिका बत करना सदैव बेड है, किंतु सूर्वके दक्षिणायनमें चले जानेपर यह वत अधिक प्रशस्त होता है। उसके बाद इस व्रतका काल चातुर्यासमें बेयस्कर है। तदनन्तर इस व्रतका उचित काल कार्तिकमास है। इसके बाद भीष्मपञ्चक इस व्रतके लिये ब्रेष्ट समय है किंतु कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी एकादशी तिथि इस व्रतके शुभारम्भके लिये सर्वश्रेष्ठ काल होता है। अत: इसी तिथिसे इस व्रतका शुभारम्भ करना चाहिये। उपासक इस दिन प्रात: मध्याह एवं सार्यकालीन-इन तीनों सन्ध्याओंमें स्नान कर यवादि पदार्थीसे पितृगण आदिकी नैत्यिक पूज करनेके पश्चात् भगवान् हरिका पूजन करे। वह मौन होकर घुत, मधु, शर्करादि तथा पञ्चगव्य एवं जलसे हरिकी मृतिको स्नान कराये और कर्प्रादि सुगन्धित द्रव्यसे श्रीहरिके शरीरका अनुलेपन करे।

तदनन्तर व्रतीको घृतसमन्वित गुग्गुलसे पूर्णिमापर्यन्त पाँच दिनोतक श्रीहरिको धूप देना चाहिये और सुन्दर-सुन्दर पक्वात्र तथा मिष्टात्रका नैबेद्य अर्पितकर 'ॐ नमो वासुदेखाय' इस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करना चाहिये।

तरपक्षात् स्थाहायुक्त अष्टाक्षर-मन्त्र (ॐ नमो वास्देवाय) से पृतसहित चायल तथा तिलकी आहुति

प्रदान करनी चाहिये।

वती पहले दिन कमलपुष्पसे भगवान् हरिके दोनों बरणोंका पूजन करे। दूसरे दिन बिल्वपन्नसे उनके जानु (जया)-प्रदेशको पूजाकर तीसरे दिन गन्धसे नाभिदेशकी पूजा करे। जीधे दिन बिल्बपत्र तथा जवापुष्पसे उनके स्कन्ध-भागका पूजन करके पाँचवें दिन मालतीके पुष्पोंसे उनके शिरोधायका पूजन करना चाहिये। ब्रती धृमिपर ही ज्ञयन करे और उक्त गाँच दिनांतक क्रमण: पहले दिन गोमय, दूसरे दिन गोमूत्र, तीसरे दिन दही, चौथे दिन दुग्ध और पाँचवें दिन पृत-इन चारों पदाधोंसे निर्मित पञ्चगव्यका प्राप्तन राजिमें करे। ऐसा वत करनेवाला वर्ता भोग और मोध दोनोंका अधिकारी हो जाता है।

कृष्ण एवं जुक्त दोनों पक्षोंकी एकादशीका वत हमेशा करना चाहिये। यह व्रत उस समस्त पापसमृहका विनाश करता है, जो प्राणीको नरक देनेवाला है। यह ब्रतीको सभी अभीष्ट फल प्रदान करता है और अन्त समयमें उसे विष्णुलोक भी दे देता है।

पहले दिन जुद्ध एकादशी, दूसरे दिन जुद्ध द्वादशी तथा ह्यदशोकी निशा (रात्रि)-के अन्तमें अर्थात् तीसरे दिन जयोदशों हो तो ऐसी एकादशी तिधिमें सदा श्रीहरिका मॅनिधान रहता है। यदि दशमी और एकादशी तिथि एक ही दिन होती है तो इसमें असुरोंका निवास रहता है। अत: यह एकादली वतके लिये उपयुक्त नहीं मानी जाती। एकादशोको उपवासकर द्वादशीमें पारणा करनी चाहिये। सुतक (वंशमें किसीकी उत्पत्ति) और मृतक (वंशमें किसोके मरण)-की स्थितिसे होनेवाले अशौचकालमें भी वह वृत करना चाहिये।

हे मुने! यदि चतुर्दशी और प्रतिपदा तिथि पूर्व तिथिसे

तृतीयासे मिश्रित द्वितीया तिथि, चतुर्थीसे संगत तृतीया तिथि, उपवास किया जाना चाहिये। (अध्याय १२३).

विद्ध है तो इन तिथियोंमें भी उपवास करना चाहिये। तृतीयासे वुक्त चतुर्थी तिथिको उपवास करे। पष्टीसे प्रतिपदासे मिश्रित पौर्णमासी और अपावास्या तिथि, असंवृक्त पञ्चमी तिथि और यहासे वृक्त सप्तमी तिथिको

शिवरात्रिवतकथा तथा वत-विधान

ब्रह्माजीने कहा -अब मैं शिवरात्रिवत और उस कथाका वर्णन करूँगा, जो वत करनेवालोंको समस्त अधीष्ट कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ है। जैसे पूर्वकालमें पार्वतीने भगवान महेश्वर शिवसे इस परमबेष्ट वतको मुननेको इच्छा की थी और सुना था, बैसे ही आप भी सुने।

भगवान् महेश्वरने कहा-हे गौरि! माच और फाल्गुन-मासके मध्यमें जो कृष्णा चतुर्दशी होती है, उस चतुर्दशी तिथिमें उपवास तथा जागरण करनेसे और भगवान रुद्रकी पूजा करनेसे पूजित रुद्द भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करते हैं। जिस प्रकार द्वादशी तिथिको विष्णुकी पूजा होती है, उसी प्रकार कामनासं युक्त होकर इस चतुर्दशी तिथिमें महादेव हरकी पूजा करनी चाहिये। उपवाससहित विधि-विधानसे पुजित शिव विष्णुके समान भक्तको नरक-भोगसे बचाते हैं। शिवरात्रिवतको कथा इस प्रकार है-

बहुत पहले अर्बंद देशमें एक सुन्दरसेन नामक पापालम निषाद राजा रहता था। वह एक बार अपने कुत्तोंको साथ लेकर आखेट करनेके लिये बनमें गया, किंतु दैववज्ञात् उस पर्यतीय वनप्रान्तमें उसको कोई भी मृगादि जीव आखेटरूपमें प्राप्त नहीं हो सका। भूख-प्याससे पीडित वह रात्रिमें जलाशय और तडागोंके तटपर अवस्थित वृक्ष-लताओं के सुरपुटीमें भटकता हुआ जागता ही रह गया। वहींपर उसे एक शिवलिंगका दर्शन हुआ। अत: उसने अपने शरीरकी रक्षाके लिये एक वृक्षको शरण लो और निढाल होकर वहीं गिर गया, किंतु उसकी जानकारोके बिना शिवलिंगपर वृक्षके पत्ते गिर पदे। उसने उन पत्तोंको हटाकर जलसे उस शिवलिंगके ऊपर स्थित धृलिको दूर करनेके लिये शिवलिंगको प्रश्नालित किया। प्रमादवरा उसी समय शिवलिंगके पास ही उसके हाथसे एक बाण स्टकर भूमिपर गिर गया। अत: घुटनोंको भूमिपर टेककर एक हाथसे शिवलिंगको स्पर्श करते हुए उसने उस बाणको उटा लिया। इस प्रकार उस व्याधके द्वारा रात्रि-जागरण, शिवलिंगका स्नान, स्पर्श और पूजन भी हो गया।

प्रात:काल होनेपर वह व्याध अपने घर चला गया और पत्नोके द्वारा दिये गये भोजनको ग्रहणकर श्रुधासे नियुत्त हुआ। यथोचित समयपर उसकी मृत्यु हुई तो यमराजके दूत उसको पाशमें बाँधकर जब यमलोक ले जाने लगे, तब मेरे गर्जीने उन यमदतींको युद्धमें जीतकर व्याधको उसके पाससे मुक्त करा दिया। अत: अपने कृतींके साथ निष्पाप होकर वह व्याध मेरा पार्धद बन गया।

इस प्रकार प्राणीके द्वारा अज्ञानवश अथवा जानपूर्वक किये गये पुण्य अध्य ही होते हैं। उपासकको चाहिये कि प्रयोदशी तिथिमें शिवका पूजन करे तथा व्रतका नियम प्रहण करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करे-

प्रावदेव चतुर्दश्यां जागरिष्याम्यहं निशि। पूजां दानं तथा होयं ऋरिष्याम्यात्मशक्तितः॥ चत्र्देश्यां भिराहारो भृत्वा शम्भो परेऽहिन। भोड्येडहं भक्तिमुक्त्यर्थं जरणं मे भवेश्वर॥

हे देव। मैं रात्रिधर जागरण करूँगा। प्रात: चतुर्दशी विधिमें यधासामध्ये आपकी पूजा, दान और हवन भी करूँगा। हे शम्भो। चतुर्दशो तिथिमें निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा। हे महादेव। भुक्ति और मुक्तिकी प्राप्तिके लिये मैं आपको शरणमें हैं।

वतीको प्रज्ञामृतसे महादेवको स्नान कराकर 'ॐ नमो नमः शिवाय' इस मन्त्रसे उनकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर प्रतसमन्तित तिल, तण्डल एवं वीहिसे निर्मित चस्को आहति अग्निमें देकर पूर्णाहति करे। वर्ती गीतवाराके साथ सत्कवाओंका इवण करे। उसके बाद वह अर्थरात्रि, तीसरे प्रहर और चीथे प्रहरमें पुन: उनकी पुजाकर मुलमन्त्रका जप करे। तत्पक्षात् प्रात:काल आ जानेपर उनके सामने इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे-

अविघ्नेन वृतं देव त्वत्प्रसादान्मयार्चितम्। क्षमस्य जगतां नाध त्रैलोक्याधिपते हर॥ यन्यवाद्य कृतं पुण्यं यहुद्रस्य निवेदितम्।

त्वत्प्रसादान्मया देव वृतमद्य समापितम्॥ प्रसन्नो भव मे श्रीमन् गृहं प्रति च गम्यताम्। त्वदालोकनमात्रेण पवित्रोऽस्मि न संशयः॥

हे देव! हे नाथ! हे पैलोक्याधिपति स्वामिन् शिव! आपको कृपासे मैं वतको निर्विध्न सम्पन्न कर सका हूँ और आपकी यह पूजा भी पूर्ण हो सकी है। आप मुझे क्षमा करें। हे देव! मैंने जो कुछ आज पुण्य किया है, भगवान सहको जो कुछ निवेदित किया है, वह सब आपको कृपासे ही हुआ है। आपकी ही कृपासे यह ब्रत भी आज समाप्त किया जा रहा है। श्रीमन्! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों। आप अपने लोकको अब प्रस्थान करें। आपका दर्शनमात्र प्राप्तकर मैं निस्संदेह पवित्र हो गया है।

वती ध्याननिष्ठ बाह्मणको भोजनसे संतप्त कर वस्त-

छत्रादि दे। तदनन्तर वह पुन: इस प्रकार प्रार्थना करे-भूतेश लोकानुग्रहकारक॥ यन्यया अद्भया दत्तं प्रीयतां तेन में प्रभुः।

हे देवादिदेव! समस्त प्राणिजगत्के स्वामिन्, संसारपर कृपा रखनेवाले प्रभो! ब्रह्मपूर्वक मैंने जो कुछ आपको समर्पित किया है, उससे आप प्रसन्न हों।

इस प्रकार क्षमापन-स्तुति करनेके पश्चात् व्रतीको द्वादश-वार्षिक व्रवका संकल्प लेना चाहिये। ऐसा करके वर्ती कीर्ति, लक्ष्मी, पुत्र तथा राज्यादिके सुख-वैभवको प्राप्तकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है। व्रतथारी बारहों माममें भी इस वतके जागरणको पूर्ण करके यदि द्वादश ब्राह्मणोंको भोजन प्रदान करे और दीपदान करे तो उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। (अध्याय १२४)

एकादशीमाहात्म्य

पितामहने कहा-मान्धाता नामके एक राजा थे, जिन्होंने एकादशीवत करके उसके पुण्यसे प्रकारती सम्राहकी उपाधि धारण की थी। अत: कृष्ण एवं शुक्त दोनों पक्षकी एकादशी तिथिमें मनुष्यको भोजन नहीं करना चाहिये।

गान्धारीने दशमीविद्धा एकादशीका वत किया चा, जिसके फलस्वरूप उसके सी पुत्रीका विनाश उसके जीवनकालमें ही हो गया था। इसलिये दशमोसे युक्त एकादशीका व्रत नहीं करना चाहिये। द्वादशीके साथ एकादशी होनेपर उस एकादशोमें भगवान हरिका संनिधान रहता है। जिस मास दशपीवेधसे युक्त एकादती होतो है. उसमें असुरोंका संनिधान होता है। जब विधित्र शास्त्रीमें कहे गये वाक्योंकी बहुलतासे अज्ञतायश संदेह बढ़ जाता तिथिमें पारणा कर लेनी चाहिये। यदि एकादशो एक व्यतकर्ताओंने भी मोक्ष प्राप्त किया है। (अध्याय १२५)

कलामात्र भी कालगणनामें रहती है तो द्वादशी (युक्त एकादशी) विधिको यह वत उपास्य है। यदि एकादशी, इाटशी और विशेष रूपसे ज्योदशी तिथि भी एक ही दिन आ जाती है तो इन तीन तिथियोंसे मित्रित यह तिथि वृत करने योग्य होती है, क्योंकि वह तिथि माङ्गलिक एवं सभी पापीका विनाश करनेमें समर्थ होती है।

हे द्विजराज! एकादशी अथवा द्वादशीका बत करके तीन तिथियोंसे मिब्रित अर्थात् एकादशी, द्वादशी और त्रयोदही तिथिसे सर्भान्वत तिथिपर बत कर लेना उचित हैं, जिंतु दशमीवेधसे युक्त एकादशीका व्रत कभी नहीं करना चाहिये।

रातमें जागरण तथा पुराणका अवण एवं गदाधर विष्णुकी पूजा करते हुए दोनों पक्षोंकी एकादशीका व्रत कर है तो उस परिस्थितिमें द्वादशी तिथिको वत करके त्रयोदशी महाराज रुक्साङ्गदने मोश्र प्राप्त किया था। अन्य एकादशी

विष्णुमण्डल-पूजाविधि

ब्रह्माजीने कहा -जिस पूजाको करनेसे लोग परमगतिको पूजाका विधिवत् वर्णन करूँगा। प्राप्त हो गये हैं, मैं उसी भुक्ति एवं मुक्ति देनेमें समर्थ श्रेष्ठ बतोको सर्वप्रथम एक सामान्य पूजामण्डलका निर्माण

कर द्वारदेशसे उसमें पृजा प्रारम्भ करनी चाहिये। मण्डलके द्वारदेशमें धाता, विधाता और महानदी गङ्गा, यमुनाकी पूजा करनी चाहिये। तदननार द्वारदेशपर ही श्री, दण्ड, प्रचण्ड और वास्तुपुरुषको पूजाकर मध्यभागमें आधारतक्ति, कुर्मदेव एवं अनन्तका पूजन करे। इसके बाद पूजक पृथिवी, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वयंकी पूजा कन्द, नाल, पदा, कर्णिका तथा केसरादि भागोंपर करे। तदनन्तर सत्य, रजस् और तमस् गुणोंको पूजा करके उस व्यतीको यधाविहित स्थानपर सूर्यादि ग्रहमण्डलीको और विमलादि शक्तियोको भी पृजा करनी चाहिये।

इसके बाद मण्डलके कोण-भागमें दुर्गा, गणेश, सरस्वती और क्षेत्रपाल देवोंकी तथा आसन और मूर्तिकी पुजा कर वर्ता भगवान् नासुदेव और बलभद्रका स्मरण करता हुआ महात्या अनिरुद्ध तथा नारायणकी पूजा करे। वह उनके हृदयादि सम्पूर्ण अङ्ग, शंख, चक्र तथा गदादि आयुधकी पूजाकर श्री, पुष्टि, गरुड़, गुरु और परम गुरुको पूजा करे। तदनन्तर उसे इन्हादि आठौँ दिक्पालकी पूजा उनकी ही दिशाओंमें करके अधोभागमें नाग तथा ऊर्ध्वभागमें ब्रह्माकी पूजा करनी चाहिये। आगमशास्त्रमें निर्दिष्ट विधिके अनुसार विष्यक्सेन देवको पूजा ईशानकोणमें करके उस मण्डलकी पुजाको पूर्ण करना चाहिये।

जो मनुष्य इस विधिके अनुसार एक बार भी भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, उस महात्माका पुनर्जन्म इस संसारमें नहीं होता। पुण्डरीकाक्ष गदाधर भगवान विष्णु एवं ब्रह्माकी पूजा करनेसे पुन: जन्म नहीं होता। (अध्याय १२६)

भीमा-एकादशीव्रत एवं माहात्म्य तथा पूजन-विधि

हस्तनक्षत्रसे युक्त एक एकादशीका का भीमने किया था। तथा सभी तीर्थ भी एकादशीके समान नहीं हैं। कोई भी इसलिये इस एकादशीको भीमा-एकादशी कहा जाता है। टान, जप, होम या अन्य पुण्य इसके तुल्य नहीं है। यदि यह आक्षयं है कि मात्र इसी एकादशीका वत करनेसे भीमसेन पितृऋणसे मुक्त हो गये थे।

प्राणियोंके पुण्योंकी अभिवृद्धि करनेवाली भीमा-हादशी तिथि भीमसेनके नामसे ही प्रसिद्ध भी है। यह तिथि तो बिना इस्तनक्षत्रके संयोगसे ही ब्रह्महत्यादि पापींका विनाश कर देती है।

यह द्वादशी तिथि महापापींको तो वैसे ही नष्ट कर देती है, जैसे कुमार्गगामी राजासे राज्य, कुपुत्रसे कुल, दुष्टपजीसे पति, अधर्मसे धर्म, कुमन्त्रीसे राजा, अज्ञानसे ज्ञान, अशीचसे शीच, अश्रद्धासे श्राद, असत्यसे सत्य, उष्णतासे शांतलता, अनाचारसे सम्पत्ति, कहनेपात्रसे दान, विस्मय करनेसे तप् अशिक्षासे पुत्र, दूर चली जानेसे गाँ, कोधसे शान्ति, नहीं बढ़ानेसे धन, ज्ञानसे अविद्या और निष्कामतासे फल विनष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार पाप नाशके लिये द्वादशी तिथि शुभ कही गयी है।

ब्रह्महत्या, मुरापान, मुवर्ण-चोरी तथा गुरुपक्षांगमन— ये महापातक मनुष्यमें यदि एक साथ उत्का हो जायें तो इनको त्रिपुष्कर तीर्थ भी नष्ट नहीं कर सकते हैं (किंतु यह द्वादशी उस समस्त पापसमूहको नष्ट कर देती है)

बह्माजीने कहा—प्राचीनकालमें माधमासके शुक्ररपक्षमें नैमिपक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, प्रभासक्षेत्र, कालिन्दी (यमुना), गङ्गा, एक और पुधियोंके दानका सत्कर्म रखकर दूसरी और भगवान् इरिको इस पवित्र एकादशो तिथिको तुलना को जाय तो भी यही एक महापुष्पशास्त्रिनी एकादशी तिथि सर्वश्रेष्ठ

इस वतमें भगवान् बराहदेवकी स्वर्णप्रतिमा बनाकर नये तासपात्रमें घटके ऊपर स्थापित करना चाहिये। तदननार ब्राह्मणजन समस्त विश्वके बीजभूत विष्णुदेवकी उस प्रतिमाको श्रेत जस्त्रसं आच्छादितकर स्वर्णनिर्मित दीपादिक उपचारीसे प्रपत्नपूर्वक उनकी पूजा करे।

'ॐ काहाय नयः'इस मन्त्रसे उन विष्णुके चरणकमलोंकी पूजाकर 'ॐ क्रोडाकुतये नयः'इस मन्त्रसे उनके कटिप्रदेशका पूजन करे। तदनन्तर 'ॐ गम्भीरघोषाय नमः' इस मन्त्रसे उनको नाभिकी पूजा कर 'ॐ श्रीवत्सधारिणे नम:' इस पन्त्रसे उनके वक्ष:स्थलका पूजन करे। उसके बाद 'ॐ सहस्र्वांत्ररसे नमः' इस मन्त्रसे उन विष्णुभगवान्की भुजाओंकी पूजा करके भक्तको 'ॐ सर्वेश्वराय नमः' इस मन्त्रसे उन देवके ग्रीवाधागकी पूजा करनी चाहिये। तदननार बती 'ॐ सर्वात्यने नयः' इस मन्त्रसे मुखकी और 'ॐ प्रभवाय नयः' इस मन्त्रसं हरिके ललाटभागकी

पूजाकर 'ॐ शतपयुद्धाय नमः' इस मन्त्रसे उन चक्रधारी हरिकी केशराशिकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजाको समाप्तकर व्रती रात्रिमें जागरण करते हुए भगवान् इरिके माहात्म्यको प्रतिपादित करनेवाले पुराणकी कथाका श्रवण करे। तदनन्तर प्रात:काल स्वर्णनिर्मित वराहसहित सपरिवार भगवान्की उस मूर्तिको अपेक्षा रखनेवाले ब्राह्मणको दे करके पारणा करे।

इस विधि-विधानसे व्रत करनेसे मनुष्य पुन: माताक गर्भसे उत्पन्न होकर स्तनका दूध नहीं पान करता है अर्थात् वह पुनर्जन्मसे मुक्त हो जाता है। इस पुण्यशालिनी एकादशीका वत करनेसे प्राणीको पितृ, गुरु एवं देव—इन तांनों ऋणोंसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यह व्रत सभी व्रतोंका आदि स्थान है। इस व्रतको करके मनुष्य अपने समस्त मनोवाञ्चित फलोंको प्राप्त करनेमें सफल रहता है। (अध्याव १२७)

व्रतपरिभाषा तथा व्रतमें पालन करनेयोग्य नियम और अन्य ज्ञातव्य बातें

ब्रह्माजीने कहा-हे व्यास। जिन व्रतीको करनेसे नारायण संतुष्ट होकर सब कुछ प्रदान करते हैं, उन वर्तोंको में कहुँगा। शास्त्रके द्वारा वर्णित नियम-पालन व्रत कहलाता है और वहीं तप है। ब्रतीके कुछ सामान्य नियम इस प्रकार है-

ब्रतीको नित्य तीनों संध्याओंने स्नान करना चाहिये। उसे जितेन्द्रिय होकर भूमिपर शयन करना चाहिये। स्त्रों, सूद और पतितजनोंके साथ बातचीत करना उसके लिये वर्जित है। वह पवित्र बना रहे और प्रतिदिन हवन करे :

सुकृत करनेवालं मनुष्यको चाहिये कि वह नियमीका पालन करे। (व्रताचरणके पूर्व) और न कराना चाडे ती दुगुना बत करना चाहिये।

व्रतीके लिये कांस्यपात्र, उड़द, मसूर, चना, कोदो, दूसरेका अत्र, शाक और मधुका सेवन वर्जिट है। पुष्प, अलंकार, नवीन वस्त्र, धूप-गन्धादि लेप, दन्तधावन और अञ्चलका प्रयोग त्याज्य है। प्रह्मच्य पान कर बतका आचरण करना चाहिये। एकसे अधिक बार जलपान, ताम्बूल-भक्षण, दिनमें शयन तथा मैथून करनेसे वतर्भग हो जाता है।

क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्निमें हबन, संतोष और चोरी न करना—ये दस सभी व्रतोंके सामान्य धर्म है।

क्षमा सत्यं दया दानं शौचयिन्द्रियनिग्रहः॥ देवपुजाग्निहवने संतोषोऽस्तेयमेव सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशक्षा स्पृतः॥

(2-212-2)

(चौबीस घण्टेमें केवल एक बार) नक्षत्रदर्शनके समय किया जानेवाला भोजन नकवत कहा जाता है और जो राजिमें भाजन किया जाता है, यह नक्तवत नहीं है। एक पल गोमूत्र, आधे अँगुठेक बराबर गोमय, सात पल गोदुग्ध, तीन पल गोदधि, एक पल गोपुत और एक पल कुशोदक—यह पञ्चगव्यका परिमाण है। गायत्रोमन्त्रसं गोम्ब, 'गब्धद्वारा०' इस मन्त्रसे गोमय, 'आव्यायस्व०' मन्त्रसे दूध, 'द्रधिक' मन्त्रसे दही, 'तेजोऽसिक' मन्त्रसे पृत और 'देवस्व०' इस मन्त्रसे कुशोदकको अभिमन्त्रितकर पद्याच्यका निर्माण करना वाहिये।

अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत, बेदवत, वृषोत्सर्गं, चूडाकरच, डपनयन, विवाहादिक माङ्गलिक कृत्य और राज्यधिषेक आदि कर्म मलमासमें नहीं करना चाहिये।

अमानास्यासे अमानास्यातक चान्द्रमास होता है। सूर्योदयसे लेकर दूसरे सूर्योदयतक एक दिन, इस प्रकार तीस दिनका सावनमास होता है। एक राशिसे दूसरे राशिपर सूर्यके संक्रमणकालको सीरमास कहते हैं। नक्षत्र सत्ताईस होते हैं। उनके अनुरोधसे जो मास होता है, उसे नाक्षत्र मास कहते हैं । विवाहकार्यमें सौरमास, यजादिमें सावनमास ग्रहण किया वाता है।

द्वितीयाके साथ तृतीया, चतुर्थीके साथ पञ्चमी, पष्टीके साथ सप्तमी, अष्टमोके साथ नवमी, एकादशीके साथ द्वादशी, चतुर्दशीके साथ पूर्णिमा तथा प्रतिपदाके साथ अमावास्याका युग्म हो तो ऐसी युग्म-तिथि महाफलदायक होती है। इसके विपरीत यदि युग्म-तिथियों हों तो वह महाधोर काल है। वह पूर्वजन्मके किये हुए पुण्यको भी नष्ट कर देता है।

यदि व्रत प्रारम्भ करनेके पश्चात् व्रतकालमें ही स्त्रियोंमें रजोदर्शन हो जाता है तो उससे उनका बत नष्ट नहीं होता है। ऐसी स्थितिमें उन्हें चाहिये कि वे दान-पूजा आदि कार्य

किसी अन्यसे सम्पन्न करायें और स्नान, उपवासादि कायिक कार्य स्वयं करें।

यदि क्रोध, प्रमाद अथवा लोभवरा किसीका वृत भंग हो जाता है तो उसको तीन दिनतक उपवास करके

शिरोमुण्डन करा देना चाहिये। शरीरके असमर्थ हो जानेपर बतोको अपने पुत्रादिसे बत कराना चाहिये। यदि बतकालमें वती मुर्च्छित हो जाता है तो उसे जल आदि पिला देना चाहिये। इससे व्रतभंग नहीं होता। (अध्याय १२८)

प्रतिपदा, तृतीया, चतुर्थी तथा पञ्चमीमें किये जानेवाले विविध तिथिव्रत

ब्रह्माजीने कहा-हे व्यास। अब मैं प्रतिपदादि तिथियोंके व्रतोंकी विधियोंका वर्णन कहेंगा। आप उनका श्रवण करें। प्रतिपदा तिथिके एक विशेष व्रतका नाम शिखिवत है। इस वतको करनेसे वती वैधानर-पद प्राप्त करता है। प्रतिपदा तिथिमें एकभक्तवत करके दिनमें एक बार भोजन करना चाहिये। वतको समाप्तिपर कपिला गौका दान करे। चैत्रमासके प्रारम्भमें विधिपूर्वक सन्दर गन्ध पुष्प, माला आदिसे ब्रह्माकी पूजा और हवन करनेसे सभी अभीष्ट फलोंकी प्राप्ति होती है। कार्तिकमासमें शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको वृती पुष्प और उनसे बनी हुई मालाका दान करे। यह क्रम वर्षपर्यन्त चलना चाहिये। ऐसा करनेसे रूपको इच्छा करनेवाले बतीको रूप-सौन्दर्यको प्राप्ति होती है।

ब्रावणपासके कृष्णपश्चकी तृतीया तिथिमें लक्ष्मीके साथ भगवान् त्रीधरविष्णुको सुसन्तित जन्मापर स्थापित कर उनकी पूजा करे और फलकी भेंट चढाये। इसके बाद उस शय्यादिका दान ब्राह्मणको करके वती 'श्रीधराय नमः, क्रिये नमः' यह प्रार्थना करे। इसी तृतीया तिथिको उमा-शिव और अग्निकी पूजा करती चाहिये। वर्ती इन सभीको हविष्यात, नैवेद्य और दमनक (श्वेत कमल)-का निसंदन करे।

फाल्[नादिमें तृतीयाका वृत करनेवाले मनुष्यको नमक नहीं खाना चाहिये। व्रतके समाप्त होनेपर सपनांक ब्राह्मणकी पूजा करके अन्न, शय्या, पात्रादि उपस्करोंसे दुक घरका दान 'भवानी प्रीयताम्' 'भवानी प्रसन्न हों' ऐसा कहकर करना चाहिये। ऐसा करनेसे बतीको अन्त समयमें भवानीका लोक प्राप्त होता है और इस लोकमें ब्रेष्ट सुख तथा सौभाग्यकी प्राप्ति होती है।

मार्गशीर्षमासकी तृतीया तिथिमें गौरी तथा चतुर्थी आदि तिथियों में क्रमश:-काली, उमा, भद्रा, दर्गा, कान्ति, सरस्वती, मंगला, वैष्णवी, लक्ष्मी, शिवा तथा नागयणीदेवीकी पुजा करनी चाहिये। इनकी पुजा करनेसे वती प्रियजनोंसे होनेवाले वियोगादि कप्टोंसे मुक्त हो जाता है।

माधमासके जुक्लपक्षमें चतुर्थी तिथिको निराहार रहकर वत करते हुए वर्ता बाह्मणको तिलका दानकर स्वयं तिल एवं जलका आहार करे। इस प्रकार प्रतिमास वत करते हुए दो वर्ष बोतनेपर इस वतको समाप्त कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे जोवनमें किसी प्रकारका विघन आदि प्राप्त नहीं डोता। चतुर्थी तिथिमें गणींके अधिनायक गणपतिदेवकी यचाविधि पूजा करनी चाहिये-- पूजामें 'ॐ गः स्वाहा' यह प्रणवसे युक्त मूल मन्त्र है। पुत्रामें अङ्गन्यास इस प्रकारसे करना नाहिये-

🕉 म्ली ग्ला हृदयाय नयः (दाहिने हाथकी पौर्धो अँगुलियोंसे इट्यका स्पर्श)। 🕉 र्गा गी गूं शिरसे स्वाहा (सिरका स्पर्त)। ॐ द्वं हीं ही शिखाये वषद (जिल्हाका स्पर्श)। ॐ ग्ं कवचाय वर्मणे हम् (दाहिने हाथको अँगुलियोंसे बार्ये कंधेका और बार्ये हाथको अँगुलियोंसे दाहिने कंधेका साथ ही स्पर्श)। 🕉 गीं नेत्रत्रवाच बीचट (दाहिने हाथको औगुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रों और लालाटके मध्यभागका स्पर्श)। ३० मों अम्बाय फद (यह वाक्य पढकर दाहिने हाथको सिरके ऊपरसे बायों ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले आये और तर्जनी तथा मध्यमा औगुलियोंसे बायें हाथको हथेलीपर ताली बजाये)।

आबाहनादिमें निम्नाङ्कित मन्त्रोंका प्रयोग करना चाहिये।

आगच्छोत्काय गन्धोत्कः पृथ्योत्को धूपकोत्ककः। दीपोल्काय महोल्काय बलिश्चाच विस (मा) जनम्॥

हे गन्धोल्क, हे पृथ्पोल्क, हे धूपकोल्क अर्धात् हे गन्ध, पुष्प तथा धूपमें तेज:स्वरूप विद्यमान रहनेवाले देव! आप इस रचित पूजामण्डलमें स्थित दीपकमें तेज प्रदान करनेके लिये, महातेज देनेके लिये, बलि और विसर्जनतक विद्यमान रहनेके लिये यहाँ उपस्थित हों।

आवाहनके पश्चात् गायत्रीमन्त्रसे अंगृष्ठादिका न्यास

करना चाहिये। वह गायत्रीमन्त्र इस प्रकार है-

ॐ महाकर्णाय विचारे वक्रतुण्डाय धीमहि तत्री दन्तिः प्रचोदयात्।

करन्यासके पश्चात् इसी मन्त्रसे उनका ध्यान करके ब्रतीको तिलादिसे उनकी पूजा करके आहुति देनी चाहिये। गणपतिके साथ रहनेवाले गणोंकी पूजा भी करनी चाहिये। व्रतीको 'ॐ गणाय नय:', 'ॐ गणपतये नय:'तथा 'ॐ कृष्णाणहक्क्य नमः' इस प्रकार कहकर उनकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद स्थाहान्त शब्दका प्रयोग कर इन्हीं मन्त्रीसे आहुति दे। इसी प्रकार अमोघोल्क, एकदन्त, त्रिपुरान्तकरूप, श्यामदन्त, विकरालास्य, आहवेष और पदमदेश गणोंको भी 'नम:' और अन्तमें 'स्वाहा' शब्दसे यथापेक्षित नमन और आहुति प्रदान करनी चाहिये। उसके बाद ब्रती गणदेवके लिये मुद्रा-प्रदर्शन, नृत्य, हस्तताल तथा हास्यभाव प्रदर्शित करे। ऐसा करनेसे उसे सौधाग्यादि फलोंकी प्राप्ति होती है।

मार्गशीर्यमासके जुक्लपक्षको चतुर्थी तिथिमें गणको पूजा करनी चाहिये। वर्षपर्यन्त ऐसा करनेसे विद्या, लक्ष्मी, कीर्ति, आयु और संतानकी प्राप्ति होती है। सोमवार, चतुर्थी तिथिको उपवास रखकर व्रतीको विधि-विधानसे गणपतिदेवकी पूजा कर उनका जप, हबन और स्मरण करना चाहिये। इस व्रतको करनेसे उसे विद्या, स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त होता है।

शुक्लपक्षकी चतुर्थीको खांडके लड्ड और मोदकसे विक्रोश्ररकी पूजा करनेपर व्रतीको समस्त क्रमनाओंको सिद्धि तथा सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। यदि दमनक (क्षेतकमल)-से इनकी पूजा होती है तो साधकको पुत्रादिकका फल प्राप्त होता है, इसीलिये इस चतुर्धीका नाम दमना है।

'ॐ गणपतये नमः' इस मन्त्रसे गणपतिकी पूजा करनी चाहिये। जिस किसी भी मासमें इन गणपतिदेवकी पूजा करने तथा होम, जप और स्मरण करनेसे व्रतीकी सभी इच्छाएँ पुर्ण ही जाती हैं तथा समस्त विघ्नोंका विनाश हो जाता है। पनुष्यको विभिन्न नामोंका उचारण करके भी भगवान् आद्यदेव विनायकको पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे

उसको भी सद्गतिकी प्राप्ति होती है। जबतक वह इस लोकमें रहता है, तबतक समस्त सुखोंका उपभोग करता है और अन्त समयमें उसे स्वर्ग और मोधकी भी प्राप्ति होती है। विनायकके निम्नलिखित ये बारह नाम हैं—

गणपुन्यो बक्रतुण्ड एकदंष्टी त्रियम्बकः। चीलग्रीको लम्बोदरो विकटो विष्मराजकः॥ धुप्रवर्णो भालचन्द्रो दशमस्तु विनायकः। गणपतिर्हस्तिमुखो द्वादशारे यजेदगणम्॥

(484184-86)

गणपुज्य, बक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, त्रियम्बक (त्र्यम्बक), गीलग्रीव, लम्बोदर, विकट, विष्नग्रज, धुम्रवर्ण, भालचन्द्र, विनायक और हस्तिमुख-इन बारह नामोंसे गणदेवकी पूजा करनी चाहिये।

पुथक-पुथक इन नामोंसे जो बुद्धिमान प्राणी इनकी पूजा करता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

शावण, भाइपद, आश्विन और कार्तिकमासके शुक्ल-पश्चकी पञ्चमी तिथिमें वासुकि, तक्षक, कालीय, मणिभद्रक, ऐरायत, भूतराष्ट्र, ककॉटक तथा धनझय—इन आठ नागोंको घुतादिसे स्नान कराकर पूजा करनी चाहिये। ये नाग अपने भक्तको आयु-आरोग्य और स्वर्ग प्रदान करते हैं। अनन, वासुकि, तंख, पच, कम्बल, कर्कोटक, धृतराष्ट्र, तंखक, कालीय, तक्षक और पिंगल-इन नागोंकी पूजा प्रत्येक मासमें करनी चाहिये। भादपदमासके शुक्लपक्षमें आठों नागोंकी पूजा करनेसे साधकको मृत्युके पश्चात् स्वर्ग और मोसको प्राप्ति होती है।

बावणमासके शुक्लपक्षमें पञ्चमीको हारके दोनों ओर इन नागोंका चित्र बनाकर पूजन करना चाहिये। इसी दिन अनना आदि महानागोंकी पूजा करके नैवेधमें दूध तथा घी देना चाहिये, इससे सभी विषदोष दूर हो जाते हैं। नाग अभय बरदान देनेवाले होते हैं और यह पञ्चमी सर्पर्दष्टी प्राणीको मुक्ति देनेवाली होती हैं। इसलिये दंशोद्धार पञ्चमी कहलाती है। (अध्याय १२९)

षष्ट्री तथा सप्तमीके विविध वृत

ब्रह्माजीने कहा-भाद्रपदमासमें भगवान् कार्तिकेवकी पुजा करनी चाहिये । इसमें स्नानादि जो कृत्य किये जाते हैं, वे सभी अक्षय फल प्रदान करनेवाले हो जाते हैं।

वर्ती (पष्टी तिधिको उपवासकर) सप्तमी तिधिको ब्राह्मणभोजन कराकर 'ॐ खखोल्काय नमः' इस मन्त्रसे सुर्यदेवको पूजा करे और अष्टमी तिथिको मरिचका

भोजनकर पारणा करे। इससे वृती अन्तमें स्वर्ग प्राप्त करता है। मरिच-प्राञ्चनके कारण इस वतका नाम मरिचसप्तमी है। इस व्रतको करनेसे प्रियजनोंसे मिलन होता है. उनसे वियोग नहीं होता। सप्तमी तिथिको संवमपूर्वक स्नानादि करके सूर्यको पूजा करे। 'मार्तण्डः प्रीयताम्'-'सूर्यदेव मुझपर प्रसन्न हों' यह कहते हुए ब्राह्मणीके लिये फलोंका दान करे और खबुर, नारियल, बिजीए नीयू आदि फलोंको प्रदान करे। यह प्रार्थना करे कि हे देव! मेरे सभी अभीष्ट चारों ओरसे सफल हों। फलदान एवं प्राज्ञनके कारण इस सप्तमीका नाम 'फलसप्तमोवत' है।

सप्तमीको सूर्यदेवकी पूजा कर यदि बाह्यणीको दक्षिणासहित पायसका भोजन कराया जाय, तदनन्तर वती स्वयं पयका पानकर वत समाप्त करे तो पृण्य-लाभ होता

है। ओदन, भक्ष्य, चोच्य और लेह्य पदार्थ इस व्रतमें ग्राह्य नहीं है। धन-पुत्रको कामना करनेवाला ओदनका परित्याग कर इस ब्रतको करे। इसी वैशिष्ट्यके कारण इसे अनीदक सप्तमी कहा गया है।

विजयको कामना करनेवालेको बायुमात्र पान कर विजयसप्तमीवृत करना चाहिये। जो कामेच्छुक है, वे मात्र अर्कका प्राजनकर इस व्रतको करें। इस प्रकार व्रतकर वे कामपर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

इस सप्तमीव्रतमें गेहें, उहद, यब, साठी धान, तिल, कांस्थपात्र, पाषाणपात्र, पिसी हुई वस्तु, मधु, मैधुन, महा, मांस, तैल-मर्दन और अञ्चन त्याज्य है। जो मनुष्य इनका परित्याग कर वृत करता है, उसकी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती है। इसीलिये इसे विजयसप्तमी कहा गया है। (अध्याय १३०)

द्वष्टिमी तथा श्रीकृष्णाष्ट्रमी-व्रत

ब्रह्माजीने कहा —हे ब्रह्मन् ! भाद्रपदमासमें शुक्रतपक्षकी अष्टमी तिथिको दुर्बाष्ट्रमीवत होता है। इस दिन उपकास रहकर दुर्वासे गौरी-गणेशको और शिवकी फल-पुष्प आदिसे पूजा करनी चाहिये। फल, धान्य आदि सभी प्रयोज्य वस्तुओंसे 'शम्भवे नमः, शिवाय नमः' कहकर शिवका पूजन करे। तदननार 'त्वं वृवेंऽमृतजन्मासि' इस मन्त्रसे दुवांकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे यह अष्टमीव्रत निश्चित ही साधकको सर्वस्य प्रदान कर देल है। इस व्रतमें जो अग्निमें न पकाये गये पदार्थीका भोजन करता है. वह ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है।

इसी भारपदके कृष्णपक्षको अष्टमी तिथिको अर्द्धरात्रिमें रोहिणी नक्षत्रमें भगवान् हरिकी पुजाका विधान है। यह श्रीकृष्णजन्माष्ट्रमीवृत कहलाता है। सप्तमी तिथिसे विद्व अष्टमी तिथि भी वृतके योग्य होतो है। इस प्रकारके अष्टमीका व्रत करनेसे प्राणीके तीन जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं। अत: उपवास रखकर मन्त्रसे भगवान् हरिकी पूजा करके तिथि और नक्षत्रके अन्तमें पारणा करनी चाहिये।

'ॐ योगाय योगपतये योगेश्वराय योगसम्भवाय गोविन्दाव

नमो नम:।'इस मन्त्रसे योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान कर 'ॐ बजाय बजेश्वराय बज्जपतये बज्जसम्भवाय गोबिन्दाय नमो नष:।' इस मत्त्रसे उन्हें स्नान कराना चाहिये।

उसके बाद '30 विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वपतये विश्वसम्भवाय गोविन्दाय नमी नमः' इस मन्त्रसे श्रीहरिकी पुत्रा करनी चाहिये। तत्पक्षात्— 'ॐ सर्वाय सर्वेश्वराय सर्वपत्रचे सर्वसम्भवाय गोविन्दाय नमी नमः।' इस मन्त्रसे उन्हें ज्ञयन कराना चाहिये।

स्थापहल (वेदी)-में चन्द्रमा और रोहिणीके साथ भगवान् कृष्णकी पूजा करे। पुष्प, फल और चन्दनसे युक्त जलको जंखमें लेकर अपने दोनों युटनोंको पृथिवीसे लगाते हुए चन्द्रमाको निम्न मन्त्रद्वारा अर्घ्य प्रदान करे-

श्रीरोटाणंबसम्भूत अत्रिनेत्रसम्द्रव ॥ नुहाणाध्ये ज्ञाशाह्रेश रोहिण्या सहितो भम।

(9-31969)

हे क्षीरसागरसे उत्पन्न देव! हे अत्रिमृनिके नेत्रसे समुद्धत! हे चन्द्रदेव! रोहिणीदेवीके साथ मेरे द्वारा प्रदत्त इस अर्घ्यको आप स्वीकार करें।

तदनन्तर व्रतीको महालक्ष्मी, वसुदेव, नन्द, बलराम

१-त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दिता च सुरासुरै:। सीभाग्वं संतर्ति कृत्वा सर्वकर्मकरी भव । यथा शाखाप्रशाखाधिर्विस्तृतसि महीतले। तथा मर्माप मंतरं देहि त्यस्तरामरे अ

तथा यशोदाको फलयुक्त अर्घ्य प्रदानकर इस प्रकार प्रार्थना सद्गतिके लिये पुन: यह प्रार्थना करनी चाहिये— करनी चाहिये-

अननं वामनं जीति वैकुण्ठं पुरुवोत्तमम्। माधवं मधुसूदनप्। वासुदेवं ह्यीकेशं वराई पुण्डरीकाक्ष नुसिंह दैत्यसूदनम् ॥ केशवं गत्रहस्वजम्। दामोदरं पद्मनाभं गोविन्दमच्युतं देवमनन्त्रमपराजितम्॥ जगद्बीजं अधोक्षज सर्गीस्वत्वनकारणम्। अनादिनिधनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम्॥ चतुर्वाहं राङ्गचळगदाधाम्। वनपासाविभृषितम्॥ पीताम्बरधरं दिख्य श्रीवतराङ्के जनदाय श्रीपति श्रीधर हरिन्। यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्॥ भीमस्य ब्रह्मणो गुप्यै तस्यै ब्रह्मात्वने तमः।

(39-171-16)

वे देव जो अनन्त, वामन, जीरि, वैकृष्टनाथ पुरुषोत्तम, वासुदेव, हथोकेश, माधव, मधुसूदन, वराह, पुण्डरीकाक, नृसिंह, दैत्यसूदन, दामोदर, परानाभ, केजव, गरुडध्यज, गोविन्द, अच्युत, अनत्तदेव, अपग्रजित, अधोक्षज, जगद्बीज, सगीस्थरपनाकारण, अनादिनिधन, विष्णु, क्रिलोकेज, विविक्रम नारायण, चतुर्भज, शङ्कचक्रगदाधर, पीताम्बरधारो, दिख वनमालासे विभूपित, श्रीवत्साङ्क, जगद्धाम, ब्रोपित और श्रीधरादि नामसे प्रसिद्ध हैं, जिनको देवकीसे बसुदेवने उत्पन्न किया है, जो पृथिवीपर निवास करनेवाले ब्राह्मणीकी रक्षाके लिये संसारमें अवतरित होते हैं, उन ब्रह्मरूप भगवान श्रीकृष्णको में नमन करता है।

इस प्रकार भगवानुके नामोंका संकीर्तन करके अपनी में अधिकारी बर्नू। (अध्याय १३१)

बाहि यां देवदेवेश हरे संसारसागरात्। बाहि मां सर्वपापम दुःखशोकार्णवात् प्रभो॥ देवकीनन्दन श्रीश हरे संसारसागरात्। दुर्वृतांस्वायसे विष्णों ये स्मरन्ति सकृत्सकृत्॥ सोऽहं देवातिदुर्वृत्तस्थाहि मां शोकसागरात्। पुष्कराक्ष निमग्नोऽहं महत्यज्ञानमागरे॥ त्राहि मां देवदेवेश त्वामृतेऽन्यो न रक्षिता। स्वजन्यवासुदेवाय गोब्राह्मणहिसाय च॥ जगद्भिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः। शान्तिसन् शिवं चास्तु धनविख्यातिराज्यभाक्॥

(836180-36)

हे देखदेवेश्वर! हे हरे! इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करें। हे सर्वपापहन्ता प्रभी। दु:ख तथा शोकसे परिपूर्ण इस संसारतागरसे मेरी रक्षा करें। हे देवकीनन्दन! है जीपते! हे हरें! इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करें। हे विष्यो । जो एक बार भी आपका स्मरण करते हैं, उन सभीको आप दुरावरणके दु:खसे उबार लेते हैं। हे देव! र्वे भी वैसा ही इस संसारके अत्यन्त दुरावरणमें फैसा हुआ हूँ आप मेरा भी इस शोकरूपी सागरसे उद्घार करें। हे राजीवलीचन। मैं इस गहन अज्ञानरूपी संसारसागरमें हुवा हुआ हूं। आप मेरी रक्षा करें। हे देवदेवेश। आपके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई रक्षक नहीं है। हे स्वजन्मा। वासुदेव ! गोद्विजहितकारी ! जगत्त्राता ! कृष्ण ! गोबिन्द ! आपको बारम्बार नमस्कार है। आपको कृपासे मुझे शान्ति प्राप्त हो, मेरा कल्याण हो और धन, यश तथा राज्यवैभवका

बुधाष्ट्रमीव्रत-कथा

बुधवारसं युक्त हो तो नियमपूर्वक बुधाष्टमीवत करनेवालेकी जाती है। सम्पत्ति कभी भी खण्डित नहीं होती। मुक्तिको इच्छा

ब्रह्माजीने कहा-जो मनुष्य अष्टमी तिथिको दिनभर रखनेवाला जो मनुष्य दो अंगुलियोंको हटाकर शेष तीन वत रखकर नकव्रतकी विधिसे एक बार भोजन करता है अंगुलियोंसे बौधी गयी मुट्टीके द्वारा आठ मुट्टी चावल और इस व्रतक्रमको वर्षपर्यन्त चलाकर ब्रतको समाप्तिपर लेकर ब्रद्धा-भक्तिपूर्वक भात बनाता है और कुशासे बेहित गोदान करता है, उसे इन्द्रपदकी प्राप्ति होती है। इस व्रतको आग्रपत्रके दोनेमें करेम्के साग और इमलीके साथ उस सद्गतिवत कहा गया है। पौषमासकी शुक्लाष्ट्रभी तिथिके भातको इस वतको समाप्तिके बाद ग्रहण करता है और व्रतका नाम महारुद्रवत है। जब दोनों पशकी अष्टमी तिथि बुधाष्टमीकी कथा सुनता है, उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो

बुधाएमीको जलाशयमें पञ्चोपचार-विधिसे बुधदेवकी

पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर यथाशकि दक्षिणासे युक्त गये प्रसादको उन दोनोंने ग्रहण किया। उसके बाद वे ककड़ी और चायलका दान देना चाहिये। इस देवके स्थियाँ वहाँसे चली गयीं। कुछ समयके बाद चोरोंके साथ पूजनका बोजमन्त्र 'ॐ बुं बुधाय नमः' है। इस देवपूजाके वहींपर धनपाल बैल भी दिखायी पड़ गया। चोरोंके द्वारा पक्षात् कमलगट्टे आदिकी आहुति देनेके लिये इसी दिये हुए धनपाल बैलको लेकर प्रदोषकालमें ये दोनों घर बीजमन्त्रके अन्तमें 'स्वाहा' शब्दका प्रयोग करना चाहिये। वापस चले आये। घरमें दु:खित पिता वीरको प्रणामकर जलाशयके मध्य जिस पूजा-मण्डलकी कल्पना करे, उस रात्रिमें कौशिक सृखपूर्वक सो गया। मण्डलके मध्य कल्पित पदादलके ऊपर धनुष-बाजसे इधर युवा हुई पुत्री विजयाको देखकर बीरको यह युक्त स्थामवर्णवाले इन देवकी भावना कर उनके अङ्गोकी चिंता हो गयी कि मैं इस पुत्रीको किसे दूँ। दु:खित पिताने पूजा करे।

वह कथा इस प्रकार है-

थीं तथा धनपाल नामका एक बैल था। ग्रीष्म-ऋतुमें एक वहाँ स्वयं आकर विजयाको पत्रीके रूपमें स्वीकार किया बार कौशिक उस बैलको लेकर गङ्गामें स्नान करते समय और विजयासे कहा—'तुम चलकर मेरे घरमें गृहस्वामिनी जलक्रीडा करने लगा और उसी समय चीर गोचलकोंने बनकर रही।' उसने भी वैसा ही स्वीकार कर लिया और आकर बलात् उस धनपाल नामक बैलका अपहरण कर पतिके घर जाकर रहने लगी। एक दिन यमने उसे सावधान लिया। कौशिक दु:खों होकर वनमें भ्रमण करने लगा। करते हुए कहा—देवि। ये जो बंद कमरे हैं, इन्हें कभी लिये विजया वहींपर आ गयी। कौशिक भूख-प्याससे नहीं खोला और न तो अपने पतिके विरुद्ध कोई आचरण व्याकुल हो कमलनालको पक्षण करनेको इच्छासे एक हो किया। वह एक सद्गृष्टिणीके समान ही उनके साथ जलाशयके पास जा पहुँचा। जहाँपर दिव्यलोककी कुछ रही, किंतु एक दिन विज्ञासावश उसने पतिके न रहनेपर रिज़र्यों पूजा कर रही थीं। उन्हें देखकर उसके आक्षयंका कमरा खोलनेपर वहाँ अपनी माताको पति यमके ही टिकाना न रहा। अत: विस्मयाभिभृत कौजिकने उन सबके कष्टकारी चारामें बैधा हुआ देखा, जिससे वह अत्पन्त पास जाकर कुछ अन्नके लिये याचना करते हुए कहा— दु:खित हो उठी। उसी समय कौशिकके द्वारा बताये गये में अपनी छोटी बहनके साथ भूखा हूँ, किंतु स्त्रियोंने कहा मुख्ति प्रदान करनेवाले बुधाष्ट्रमी-प्रतकी याद उसे हो कि तुमको इस पूजन-सामग्रीमेंसे जत करनेके लिये ही आयी। अतः उसने पुनः उस जतको किया, जिसके तत्पश्चात् कौशिकने वहींपर धनपाल बैलको प्राप्तिके लिये उसने भी उस व्रतका पालन किया और अन्तमें व्रतके और विजयाने पति-प्राप्तिके लिये बुधदेवकी वत-पूजा पुरुषके प्रभावसे स्वर्गलोक प्राप्तकर वहाँ सुखपूर्वक निवास की। व्रत-पूजन करनेके पक्षात् स्त्रियोंके द्वारा दोनेमें दिये करने लगी। (अध्याय १३२)

वमराजको पुत्री देनेका निश्चय किया। दैवयोगसे इसी बीच इस बुधाष्ट्रमीकी कथा बड़ी ही पुण्यदायिनी है। इस वीरकी मृत्यु हो गयी। पिताके स्वर्ग चले जानेके बाद प्रतकी कथा प्रत करनेवाले जनोंको अवस्य सुनर्ग चाहिये। कौतिकने राज्य-प्राधिके लिये पुनः सुधाष्ट्रमीका व्रत किया, यह कथा रम प्रकार है— जिसके फलस्वरूप कौशिकको अयोध्याका विशाल राज्य प्राचीनकालमें पाटलिपुत्र नामक नगरमें बीर नामका प्राप्त हुआ। उसने अपनी उस बहन विजयाका विवाह भी एक श्रेष्ट ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्रोंका नाम रम्भा और फिताके द्वारा कहे गये क्यनके अनुसार यमराजके साथ ही पुत्रका नाम कौशिक था। उसके विजया नामकी एक पुत्री करनेकी बात मनमें डान ली थी। ब्रतके प्रभावसे यमराजने उसी समय संयोगवज्ञ अपनी माताके साथ गङ्गाजल लेनेके खोलना नहीं। विजयाने कभी भी बंद कमरेका कियाइतक कुछ द्रव्य मिल सकता है। तुम भी यहींपर व्रत करो। फलस्वरूप माता उस यमपाशसे मुक्त हो गयी। वदनन्तर

अशोकाष्ट्रमी, महानवमी तथा नवमीके अन्य व्रत और ऋष्येकादशी व्रत-माहात्म्य

शुक्लाष्टमीको 'अज्ञोकाष्टमी'वत होता है, इस दिन जो शोकको नहीं प्राप्त होते। अज्ञोककलिकाओंका पान करते

ब्रह्माजीने कहा—चैत्रमासमें पुनर्वमु नक्षत्रसे युक्त अशोकमञ्जरोकी आठ कलियोंका पान करते हैं, वे

समय यह प्रार्थना करनी चाहिये— मधुमाससमुद्भव । पिवामि शोकसन्तप्तो मामशोक सदा

हे शिवप्रिय! वसंतोद्धव! शोकसंतप्त मैं आपका सेवन कर रहा हूँ। हे अशोक! आप मुझे सदैव शोक-विमुक्त रखें।

ब्रह्माजीने पुनः कहा —आश्विनमासमें उत्तरामाद नक्षत्र तथा शुक्लपक्षकी अष्टमीसे युक्त जो नवमी होती है, उसे महानवमी कहा जाता है। इस तिथिको स्नान-दानादि करनेसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। यदि केवल नवमी हो तो भी दुर्गाकी पूजा करनी चाहिये। भगवान् किय आदिने इस व्रतको किया था। यह महाव्रत अत्यधिक पुण्यलाभ देनेवाला है। रात्रुपर विजय प्राप्त करनेके लिये राजाको यह व्रत करना चाहिये। उसे जप-होमके बाद कुमारियोंको भोजन कराना चाहिये।

इस वतमें देवीके पूजनादिक कृत्योंमें प्रयुक्त होनेवाला 'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा' यह मन्त्र है।

व्यतीको चाहिये कि वह अष्टमी तिथिको लकड़ियाँसे देवीके लिये नी अथवा एक भवन (मण्डप)-का निर्माण देवीकी पूजा शूल, खड्ग, पुस्तक, पट अथवा मण्डलमें करनी चाहिये। अठारह हाथोंवाली दुर्गादेवी अपनी बापी ओरके हाथोंमें कपाल, खेटक, घण्टा, दर्पण, तर्जनी, धनुष, ध्याज, डमरू और पात्र भारण करती हैं। उनके दाहिनी ओरके हाथोंमें शक्ति, मुद्रर, शूल, बन्न, खड्ग, अंकुरु, नहीं रहता।

प्रचण्डाका अरुण, चण्डोग्राका कृष्ण, चण्डनायिकाका चाहिये।(अध्याय १३३—१३५)

नोल, चण्डाका धृष्ठ, चण्डवतीका शुक्ल, चण्डरूपाका पीत, अतिचण्डिकाका वर्ण पाण्डुर और उग्रचण्डाका वर्ण अग्निको ज्वालाके समान है। देवी उग्रचण्डा सिंहपर स्थित रहती हैं। इनके आगे हाथमें खड्ग लिये हुए महिषासुर स्थित रहता है। देवो अपने एक हाथसे उस महिषासुरका (मुण्डयुक) कच (केश) पकड़े हुई स्थित रहती है।

इन भगवतो उग्रचण्डाके दशाक्षरी विद्या-मन्त्र ('ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा')-का जप करके मनुष्य किसी भी बाधासे बाधित नहीं होता। पंदह अंगुलवाले खड्ग तथा विज्ञुलके साथ हो देवीको उग्र शकियों—पूतना,पापराक्षसी, चरको तथा विदारिकाको भी नैऋत्य आदि कोणोंमें यवाविधि पूजा करनी चाहिये।

राजाओंको शत्रु आदिपर विजय प्राप्त करनेके लिये विविध मन्त्रोंसे इस महानवमीको देवीकी विशेष पूजा करनी वाहिये। ब्रह्माची, माहेशी, कौमारो, वैष्णवी, वाराही आदि मातुकाओंको दूधसे स्नपन आदि कराकर देवीकी रचवात्रा निकालनी चाहिये, इससे उन्हें विजय तथा राज्य आदिको प्राप्ति होती है।

आश्चिनमासको शुक्ला नवमीको एकभक्तवत करते हुए करे। उसमें देवीकी मुवर्ण या रजतमूर्ति स्थापित करे। देवी और ब्राह्मणोंकी पूजा करके एक लाख बीजमन्त्रका जप करना चाहिये। इसे वीरनवमीवत कहा गया है। चैत्रशुक्ला नवमीको देवीको पूजा दमनक नामक पुष्पसे करनी चाहिये। ऐसा करनेसं आयु, आरोग्य और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है तथा व्रती शत्रुसे अपराजित रहता है। इसे दमनकमलमीव्रत कहा जाता है। इसी मासकी शुक्ता दशमीको एकभक्तवत शर, बक्र और शलाका नामक आयुध रहते हैं। दुर्गादेवीके करके वर्षके अन्तमें दस गीओंका दान तथा दिक्पालोंको अतिरिक्त अन्य देखियोंकी जो प्रतिमाएँ होती हैं, उनके स्वर्णमेखलाका निवेदन करनेवाला समस्त ब्रह्माण्डका स्वामी सोलह हाथ माने गये हैं। अञ्चन और डमरू उनके हाथोंमें हो जाता है। इसका नाम दिग्दशमीवत है। एकादशी तिथिकी ऋषिपुजा करनेका विधान है। इससे व्रतीका सब प्रकारसे रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, उपकार होता है। वह इस लोकमें धनवान् और पुत्रवान् चण्डवतो, चण्डरूपा तथा अतिचण्डिका—इन आठ देवियोंके होकर रहता है और अन्तमें उसे ऋषिलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त अतिरिक्त नवीं देवी उग्रचण्डा हैं। ये उग्रचण्डादेवी अन्य होती है। चैत्रमासमें दमनक-पुष्प तथा इन्हीं पुष्पोंसे बनी आठ देवियोंके बीच प्रन्वलित अग्निको प्रभाके समान मालाद्वारा मरीचि, अत्रि, अङ्ग्रिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, सुशोभित होती हैं। स्ट्रबण्डाका वर्ण रोचनाके समान, प्रचेता, वसिष्ट, भृगु और नारद-इन ऋषियोंकी पूजा करनी

श्रवणद्वादशीव्रत

ब्रह्माजीने कहा-अब मैं प्राणियोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले श्रवणद्वादशीवतका वर्णन कश्रैगा। श्रवण नक्षत्रसे युक्त एकादशी और हादशी तिथि जब एक ही दिन पड़ती है तो उसे विजया तिथि कहा जाता है। इस दिन हरिकी पूजा आदि करनेसे प्राप्त पृण्यका फल अक्षय होता है। एकभुक्तवत करनेसे अथवा नक्तवत करनेसे या अयाचितव्रत करनेसे अथवा उपवास या भिक्षाचार करनेसे इस द्वादशोवतका पुण्य श्रीण नहीं होता है। ब्रतीको इस द्वादशोके दिन कांस्यपात्र, मांस, जहद, लोभ, असत्यभाषण, व्यायाम, मैधून, दिनमें सीना, अञ्चन, पत्थरपर पिसे हुए द्रव्य तथा मसुरका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

यदि भादपदमासमें शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि अवण नक्षत्रमें युक्त हो तो वह द्वादशी बहुत हो महत्वपूर्ण होती है। उस दिन उपवास करनेसे महान फलोंको प्राप्त होती है। यदि यह तिथि बधवारसे भी पुक्त हो तो इस दिन नदियोंके संगममें स्नान करनेसे महनीय फल प्राप्त होते हैं। इस दिन रत एवं जलसे परिपूर्ण कृष्यमें दो श्रेतवस्वांसे आच्छादित भगवान् वामनको स्वर्णमधी प्रतिमाका छत्र और जुता-समन्त्रित पूजन करना चाहिये।

विद्वानको चाहिये कि 'ॐ नमो वामदेवाय' इस मन्त्रसे भगवान वामनके सिरकी पूजा करके, 'ॐ आधार नमः' मन्त्रसे उनके मुखमण्डलकी, '३% कृष्णाय नमः' मन्त्रसे उनके कण्डकी, 'ॐ श्रीपतये नमः' मन्त्रसे उनके वक्ष:स्थलकी, 'ॐ सर्बोस्वधारियो नवः' मन्त्रसे उनको भूजाओंकी, 'ॐ व्यापकाय नमः! मन्त्रसे उनके कश्चिप्रदेशकी, 'ॐ केशवाय नमः' मन्त्रसे उनके उदरको, 'ॐ प्रैलोक्यपतये नमः मन्त्रमें उनके मेंद्र (गृह्य)- भागकी तथा 'ॐ सर्वभूते नमः' मन्त्रसे उनकी जंधाओंको और 'ॐ सर्वात्मने नमः' मन्त्रसे उनके पैरोंकी पूजा करनी चाहिये। उन्हें धृत और पायसका नैबंच समर्पित करे। कुम्भ और मोदक दे करके रात्रिमें जागरण करना चाहिये। तदनन्तर प्रात:काल होनेपर स्नान और आचमन करे और उनकी पुन: पुजा करके पुष्पाञ्चलिसहित इस प्रकार प्रार्थना करे-

नमो नमस्ते गोबिन्द बुधश्रवणसंज्ञक॥ अधीपसंक्षयं कृत्वा सर्वसीख्यप्रदो भव।

(\$95128-49)

हे गोविन्द! ज्ञानस्वरूप! श्रवण नामवाले देव! आपको बारम्बार नमस्कार है। आप मेरे समस्त पापसमृहींका विनाश करके मेरे लिये सभी मुखोंकी प्रदान करनेवाले होवें।

प्रार्थनाके बाद 'प्रीयतां देखदेखेल'-ऐसा कहते हुए बाह्यजोंको कलकोंका दान दे। इस ब्रत-पुजाको नदीतट अथवा अन्य किसी पवित्र स्थानपर करनेसे सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। (अध्याय १३६)

तिथिव्रत, वारव्रत एवं नक्षत्रादिव्रत-निरूपण और प्रतिपदादि तिथियोंमें पुजनीय देवता

आदिके पुष्पोंसे रति और प्रीतिसे युक्त मणिविभूषित फलोंको प्राप्त करनेका अधिकारी हो जाता है। ये वारव्रत शोकरहित कामदेवकी पूजा करनी चाहिये, इस वतका नाम कहलाते हैं। मदनप्रयोदशी है। जो वर्षपर्यन्त प्रत्येक मासके शुक्त और

ब्रह्माजीने कहा -- कामदेवनयोदशी विधिको श्रेटकमल करके वारोंके नामसे सूर्यादिकी पूजा करके वती सभी

हे ब्रह्मपि! प्रत्येक मासके नामकरणके प्रयोजक जारहीं कृष्णपक्षकी चतुर्दशी एवं अष्टमी तिथिमें उपवास करके नक्षत्रसे युक्त उन-उन महीनोंकी पूर्णिमा तिथि हो तो उन शियपुजन करता है, वह मुक्ति प्राप्त करता है। इसे नक्षत्रोंके नामसे मनुष्यको सम्यक्-रूपसे भगवान अच्युतकी शिवचतुर्दशी तथा शिवाष्ट्रमीवत कहा गया है। तीन रात्रियोंतक पूजा करनी चाहिये। इस वतको कार्तिकमाससे प्रारम्भ उपवास रखकर व्रतीको कार्तिकमासमें एक शुभ भवनका करना चाहिये। कृत्तिका नक्षत्रयुक्त कार्तिकमासमें केशवकी दान देना चाहिये। ऐसा करनेसे सुर्यलोकको प्राप्ति होती पूजा करनी चाहिये। क्रमशः चार महीनी (कार्तिक, है. यह कल्याणकारी धामव्रत है। अमावास्या तिथिमें मार्गशीर्थ, पीष तथा माघ)-में घृतका हवनकर तिल-चावल पितरोंको दिया गया जल आदि अक्षय होता है। नकवत (कुसरात्र)-को खिचड़ीका भोग निवेदित करना चाहिये।

आपाद आदि चार महीनोंमें पायस निवेदन करके ब्राह्मपाँको पायसका ही भोजन निवेदित करना चाहिये। पञ्चगव्य, जलस्नान और नैबेद्यसे पूजन करना चाहिये। इस प्रकार संबत्सरके अन्तमें विशेषरूपसे भगवान्की पूजा करके निम्नलिखित मन्त्रोंसे प्रार्थना करनी चाहिये—

नमो नमस्तेऽच्युत संक्षयोऽस्तु पापस्य वृद्धिं समुपेतु पुण्यम्। ऐश्वयंवित्तादिसदाऽक्षर्य में सन्ततिरह्नपैथ॥ तवास्तु यशाच्युत त्वं परतः परस्मात् स ब्रह्मभूतः परतः परस्यात्। तबाच्युतं में कुरु वाञ्चितं सदा कृतं पापहराप्रमेय॥ अच्युतानन गोविन्द प्रसीद यदभीव्सितम्। तदक्षयमभेयात्मन् कुरुष्य पुरुषोत्तय॥

(44-42) oft obout हे अब्युत। आपको बार-बार प्रणाम है। हे देव! मेरे पापोंका विनास हो और पुण्यकी वृद्धि हो। मेरे ऐश्वर्य और धनादि सदैव अक्षय रहें। मेरी सन्तान-परम्परा अक्षुण्ण हो। हे अच्युत! जिस प्रकार आप परात्पर ब्रह्म हैं, वैसे ही मेरे मनोऽभिलपित फलको अधिनाशी बना दें। हे अप्रमेय! हे अच्युत! हे अनन्त! हे गोविन्द! आप मुझपर प्रसन्न हों। हे अमेबात्पन्। हे पुरुषोत्तम! जो मेरे लिये अभीष्ट है, आप उसको भी अक्षय बना दें।

यह मास-नक्षत्रव्रत सात वर्षतक करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्यको आयु, लक्ष्मी तथा सद्गति प्राप्त होती है। यदि स्वच्छ इदयसे उपवाससहित एक वर्षपर्यन्त यथाक्रम एकादशो, अष्टमी, चतुर्दशी और सप्तमी तिथियोंमें विष्णु, दुर्गा, जिब और सूर्यकी पूजा हो तो प्राणीको उन देवाँक लोक तो प्राप्त होते ही हैं, सभी निर्मल अधिलायाएँ भी पूर्ण हो जाती है। बतकालमें एकभुक्त, नक्त अथवा अयावित एवं उपवास करते हुए शाकादिके द्वारा इन सभी तिथियोंमें सभी देवताओंको पूजा करनेसे भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति हो जाती है। प्रतिपदा तिथिमें कुथेर, अग्नि, नासस्य और दस नामक देव पूज्य हैं। द्वितीया तिथिमें लक्ष्मी तथा यमराज, पश्चमीमें श्रीसमन्तित पार्वती और नागगणींकी पूजा करनी चाहिये। यही तिथिये कार्तिकेय तथा सप्तमीमें अर्थदाता सूर्यदेवको पूजा बिहित है। अष्टमी तिथिमें दुर्गा, नवमीयें मातृकाओं एवं तक्षककी पूजाका विधान है। दशनीमें इन्द्र और कुबेर तथा एकादशोमें सप्तर्षियोंकी पूजा करनी चाहिये। द्वादशी तिथिमें हरि, त्रयोदशीमें कामदेव, चतुर्दशोमें महेश्वर शिव, पृष्टिमामें ब्रह्मा तथा अमावास्थामें सदैव मेरे द्वारा किये जानेवाले पापका विनाश करते रहें। पितरोंकी पूजा करनी चाहिये। (अध्याय १३७)

सूर्यवंशवर्णन

उनके चरितका वर्णन करता हूँ। सर्वप्रथम सूर्यवंशका वर्णन सुने।

भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्म उत्पन्न हुए। ब्रह्मके अङ्गृष्ठभागसे दक्षका जन्म हुआ। दक्षसे उनकी पुत्री अदितिका प्रादुर्भाव हुआ, जो देवमाता कहलाती हैं। उन्हों अदितिसे विवस्वान् (सूर्य), विवस्वान्से वैवस्वत मनु हुए और उन मनुसे इक्ष्वाकु, शर्याति, नृग, धृष्ट, पृत्रध्र, नरिष्यन्त, नभग, दिष्ट तथा शशक (करुष) नामक नौ पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। हे रुद्र! मनुकी इला नामकी कन्या थी और सुद्युम्न नामक पुत्र था। इलाके बुधसे राजा पुरुरवा

श्रीहरिने कहा — हे रुद्र | अब मैं राजाऑक वंज और उत्पन्न हुए। सुद्युप्तसे उत्कल, विनत तथा गय नामक तीन पुत्रोंका जन्म हुआ।

गीवध करनेके कारण मनुका पुत्र पृषध शुद्र हो गया था। करुप (शक्तक)-से क्षत्रिय लोगोंकी उत्पत्ति हुई, जो कारुष नामसे विख्यात हुए। मनुके पुत्र दिष्टसे जो नाभाग नामका पुत्र हुआ वह वैश्य हो गया था। उससे एक भलन्दन नामक पुत्र हुआ। भलन्दनसे वत्सप्रीति नामक पुत्रको उत्पत्ति हुई। वत्सप्रीतिसे पांशु और खनित्र—दो पुत्रोंका जन्म हुआ। खनित्रसे भूप, भूपसे क्षुप, क्षुपसे विंश और विंशसे विविंशकने जन्म लिया।

विविशक्त खनिनेत्र और खनिनेत्रसे विभृति नामक

पुत्रका जन्म हुआ। विभृतिसे करन्यम नामक पुत्र हुआ। मान्धाता एवं उनकी पत्नी बिन्दुमतीसे मुचुकुन्द, अम्बरीय करन्थमसे अविश्वित, अविश्वितसे मरुत् और मरुत्से तथा पुरुकुत्स नामक तीन पुत्रोंका जन्म हुआ। उनकी नरिष्यन्तकी उत्पत्ति मानी जाती है। नरिष्यन्तसे तम, तमसे पचास कन्याएँ भी थीं। जिनका विवाह सौभरि मुनिके साथ राजवर्धन, राजवर्धनसे सुधृति, सुधृतिसे नर, नरसे केवल हुआ या। तथा केवलसे धुन्धमान हुआ।

तृणबिन्दु नामक पुत्र हुआ। तृणबिन्दुने अलम्बुषा नामकी अप्सरासे इलविला नामकी कन्या तथा विज्ञाल नामक पुत्र उत्पन्न किया। विशालके हेमचन्द्र नामक पुत्र हुआ। हेनचन्द्रसं चन्द्रक, चन्द्रकसे धूमाश्व, धूमाश्वसे सृज्जय, सृज्जयसे सहदेवकी उत्पत्ति हुई। सहदेवके कृशाश्च नामक पुत्र हुआ। कृशाश्चमे सोमदत्त और सोमदत्तसे जनमेजय हुआ। जनमेजयसे सुमन्ति नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। इन सभी (राजाओं)-को वैशालक कहा गया है।

वैवस्यत मनुके पुत्र शर्यातिके सुकन्या नामकी पुत्री हुई. जो व्यवन ऋषिकी भार्या बनी। सर्यातिक अनन्त नामक पुत्र भी था। उससे रेवत नामका पुत्र हुआ। रेवतके भी रेवत नामक पुत्र हुआ। उससे रेवती नामकी कन्या हुई।

वैयस्वत मनुके पुत्र धृष्टके धार्ट हुआ, जो बैच्नव हो गया था। उन्हीं मनुके पुत्र नभगके नेदिन्छ नामक एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उससे अम्बरीप हुआ। अम्बरीपके विरूप, विरूपके पृषदश्च और उसके रधीनर हुआ, जो वासुदेवका भक्त था।

मनुपुत्र इक्ष्वाकुके विकुक्षि, निमि और दण्डक तीन पुत्र हुए। विकुक्षि थज्ञीय शशक (खरगोश)-का भरूण करनेके कारण शशाद नामसे विख्यात हुआ। शशादमे पुरञ्जय और ककुरस्थ नामक दो पुत्र हुए। इसी ककुरस्थने अनेनस् (बेण) तथा अनेनस्से पृथु उत्पन्न हुआ। पृथुके विश्वरात नामक पुत्र हुआ। विश्वरातसे आईकी उत्पत्ति हुई। आर्द्रसे युवनाश्च, युवनाश्चके श्रीवत्स, श्रीवत्सके बृहदश्च. बृहदश्चके कुवलाध और कुवलाधके दृढाध हुआ, जिसकी प्रसिद्धि धुन्धुमारके नामसे हुई थी।

अम्बरीयके युवनाश्च तथा युवनाश्चके हरित हुआ। पुरुकुरसके धन्धुमानके बेगवान्, बेगवान्के बुध और बुधके नर्मदा नामक पत्नीसे त्रसदस्य नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उससे अनरण्य, अनरण्यसे हर्यश्च, हर्यश्चसे वसुमना हुआ। इसीका पुत्र त्रिधन्का था। उसके त्रण्यारूण नामक पुत्र हुआ। ज्ञव्यारुनके सत्यसा हुआ, जो त्रिशंकु नामसे प्रसिद्ध है। हरिश्चन्द्र इसीसे उत्पन्न हुए थे। हरिश्चन्द्रके रोहिताश्च और रोहितासके हारीत हुआ। हारीतके चंचु, चंचुके विजय, विजयके रुक्त, रुरुक्ते वृक, वृक्तके राजा बाहु और बाहुके पुत्र राजा सगर माने जाते हैं।

हे शिष! सगरसे सुमति नामक पत्नीके साठ हजार पुत्र हुए। उनकी दूसरी पत्नी केशिनीसे असमंजस नामक एक पुत्र हुआ। उस असमंजससे अंशुमान् तथा अंशुमान्से दिलीप नामक एक विद्वान पुत्रने जन्म लिया। दिलीपसे भगीरथ हुए, जिनके हारा पृथिबीपर गङ्गा लायी गयी हैं।

भगीरचका पुत्र बुत या। श्रुतसे नाभाग हुआ। नाभागसे अम्बरोष, अम्बरोषसे सिन्धुद्वीप, सिन्धुद्वीपसे अयुतायु हुआ। अयुतायुका पुत्र ऋतुपर्ण था, ऋतुपर्णसे सर्वकाम और सर्वकामसे मुदास, सुदाससे सौदास हुआ। जिसका नाम निजसह भी माना जाता है। कल्मापपाद उसीका पुत्र है, जो इमयन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। कल्मापपादके अधक, अधकके मूलक, मूलकके दशरथ हुआ। दशरथके ऐलविल, ऐलविलके विश्वसह, विश्वसहके खट्वाङ्ग, खट्वाङ्गके दोर्धबाहु, दोर्धबाहुके अज तथा अजके दशरथ हुए। इनके महापराक्रमी चार पुत्र हुए, जो राम, भरत, लश्मण और बाबुध्न नामसे प्रसिद्ध है।

रामसे कुश और लब, भरतसे तार्श्व तथा पुष्कर, लक्ष्मणसे चित्राङ्गद एवं चन्द्रकेतु और शत्रुप्नसे सुबाहु तथा क्रुसेन नामक पुत्र हुए। कुशके अतिथि, अतिथिके निषध हवाश्वके चन्द्राश्च, कपिलाश्च और हर्यश्च नामक तीन नामक पुत्र हुआ। निषधके नल तथा नलके नभस नामका पुत्र थे। हर्यश्रके निकुम्भ, निकुम्भके हितास, हितासके पुत्र माना गया है। नभसके पुण्डरीक और पुण्डरीकसे पूजाश और उसके युवनाश्च हुआ। युवनाश्चके मान्धाता हुए। क्षेमधन्ता नामक पुत्रने जन्म लिया। उसका पुत्र देवानीक

उत्पत्ति हुई। हिरण्यनाभ उसीका पुत्र था। उसका पुत्र लिया। उस कुलिसे अनञ्जन नामक पुत्र हुआ। अनञ्जनसे पुष्पक माना गया है।

पुष्पकसे ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धिसे सुदर्शन, सुदर्शनसे अग्निवर्ण, अग्निवर्णसे पद्मवर्ण हुआ। पद्मवर्णसे तीच्र और शीघ्रसे मरु हुए। मरुसे सुनुत और उसमें उदावसु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उदावसुसे नन्दिवर्धन, नन्दिवर्धनसे सुकेतु, सुकेतुसे देवरातकी उत्पत्ति हुई। देवरातका पुत्र बृहदुक्य था। बृहदुक्यके महावीर्य, महावीर्यके सुपृति, सुपृतिके धृष्टकेतु, धृष्टकेतुके हर्मश्र, हर्मश्रके मरु, मरुके प्रतीन्त्रक हुआ। प्रतीन्थकसे कृतिरथ और कृतिरथके देवमीड नामक सुपार्श्वसे मुबुत, मुबुतसे जयकी उत्पत्ति हुई। जयसे विजय, पुत्र हुआ। देवमीढसे वियुध, वियुधसे महाधृति, महाधृतिसे विजयसे ऋत, ऋतसे सुनय, सुनयसे बीतहच्य, बीतहच्यसे

एक पुत्री हुई। सीरध्वजके कुशध्वज नामका एक भाई भी किया था। (अध्याय १३८)

था, उससे अहीनक, अहीनकसे हरु तथा रुहसे पारियात्र था। सोताके अतिरिक्त सीरध्यजके भानुमान् नामका एक नामक पुत्रका जन्म हुआ। पारियात्रसे दलको उत्पत्ति पुत्र भी हुआ। उस भानुमान्से शतद्युम्न, शतद्युम्नसे शुचि हुई और दलसे छल, छलसे उक्य, उक्यसे वजनाभ नामक पुत्रको उत्पत्ति हुई। सुविके कर्ज नामक पुत्र था। और वजनाभसे गण, गणसे उपिताश्च, उपिताश्चसे विश्वसहको । उस कर्जसे सनद्वाज उत्पन्न हुआ। सनद्वाजसे कुलिने जन्म कुलजित्को उत्पत्ति हुई। उसके भी आधिनेमिक नामका पुत्र था। उसका पुत्र श्रुतायु हुआ और उस श्रुतायुसे सुपार्श्व नामक पुत्रने जन्म ग्रहण किया। सुपार्श्वसे सुज्जय, सुज्जयसे क्षेमारि, क्षेमारिसे अनेना और उस अनेनाका पुत्र रामस्य माना गया है।

रामरचका पुत्र सत्यरथ, सत्यरथका पुत्र उपगुरु, उपगुरुका उपगुष्त तथा उपगुष्तका पुत्र स्वागत था। स्वागतसे स्ववरकी उत्पत्ति हुई। सुवचां उसीका पुत्र था। सुवर्चासे सुपार्श और कोर्तिरात तथा कीर्तिरातसे महारोमा नामक पुत्र हुआ। धृतिको उत्पत्ति मानी गयी है। धृतिके बहुलाश्व और महारोमाके स्वर्णरोमा हुए। स्वर्णरोमाके हस्वरोमा नामका बहुलाश्वके कृति नामक पुत्र था। उस कृतिके जनक हुए। पुत्र था। इस्वरोमाके सीरध्वज हुआ। उसके सीता नामकी जनकके दो वंज्ञ कहे गये हैं, जिन्होंने योगमार्गका अनुसरण

चन्द्रवंशवर्णन

अप्रिकी उत्पत्ति हुई। अप्रिसे सोम हुए। उनकी पत्नी तारा विश्वामित्रसे देवरात तथा मधुच्छन्दा आदि अनेक पुत्रींका थी, जो पहले बृहस्पतिकी भी प्रियतमा थी। ताराने चन्द जन्म हुआ। अमावसु थे।

कुशाश्च, कुशनाभ, अमूर्तस्य और वसु नामक चार पुत्र नामसे विख्यात हुआ। हुए। कुशाश्वले गाधिका जन्म हुआ। विश्वामित्र उसीके पुत्र ऋतध्वज उसी सत्रुजित्का पुत्र था। ऋतध्यजसे

श्रीहरिने कहा — हे रुद्र। सूर्यके वंशका वर्णन तो मैंने थे। गाधिकी सरपवती नामको एक कन्या थी। उसको कर दिया। अस मुझसे चन्द्रवंशका वर्णन आप सुनें। उन्होंने ब्राह्मण ऋचीकको सींप दिया। ऋचीकके नारायण (विष्णु)-से ब्रह्मा प्रादुर्भृत हुए। ब्रह्मसे जमदिन नामक पुत्र हुआ। जमदिनिक परशुराम हुए।

(सोम)-से बुधको उत्पन्न किया। उसी बुधका पुत्र पुरुरवा बुधके पुत्र आयुसे नहुषकी उत्पत्ति हुई। नहुषके हुआ। युधपुत्र पुरूरवासे उर्वशिके छ: पुत्र हुए, जिनके अनेना, राजि, रम्भक तथा क्षत्रवृद्ध नामक चार पुत्र हुए। नाम श्रुतात्मक, विश्वावसु, शतायु, आयु, धीमान् और अत्रवृद्धका सुद्दोत्र नामक पुत्र राजा हुआ। सुद्दोत्रके काश्य, काल और गृत्समद नामक तीन पुत्र हुए। गृत्समदसे शौनक अमायसुके भीम, भीमके काञ्चन, काञ्चनसे सुहोत्र तथा कारयसे दीर्थतमा हुआ। दीर्थतमासे वैद्य धन्यन्तरिका और सुहोत्रके जहु हुए। जहुसे सुमन्तु, सुमन्तुसे उपजापक जन्म हुआ। केतुमान् उन्होंका पुत्र था। केतुमान्से भीमरथ, हुआ। उसका पुत्र बलाकाश्व था। बलाकाश्वसे कुक्त, कुक्तसे भीगरथसे दिवोदास, दिवोदाससे प्रतर्दन हुआ, जो सपुजित्

अलर्क, अलर्कसे सत्रति, सत्रतिसे सुनीत, सुनौतसे सत्यकेतु, सत्यकेतुसे विभु नामक पुत्र हुआ। विभुसे सुविभु, सुविभुसे सुकुमार, सुकुमारसे धृष्टकेतुकी उत्पत्ति हुई। उस धृष्टकेतुका पुत्र वीतिहोत्र था। वीतिहोत्रके भर्ग और भर्गक भूमिक नामका पुत्र हुआ। ये सभी विष्णुधर्मपरायण राजा थे।

नहुषपुत्र राजि या रजिके पाँच साँ पुत्र थे, जिनका संहार इन्द्रने किया था। नहुषके पुत्र क्षत्त्रवृद्धसे प्रतिक्षत्त्र हुए। उसका पुत्र संजय था। संजयके भी विजय हुआ। विजयका पुत्र कृत था। कृतके वृषधन, वृषधनसे सहदेव, सहदेवसे अदीन और अदीनके जयत्सेन हुआ। जयत्सेनसे संकृति और संकृतिसे क्षत्त्रधर्माकी उत्पति हुई।

नहुषके क्रमशः यति, ययाति, संयाति, अयाति तथा विकृति नामक अन्य पाँच पुत्र थे। ययातिसे देवयानीने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया। राजा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने ययातिसे दुद्धा, अनु और पूरु नामक तीन पुत्रोंको उत्पन्न किया।

यदुके सहस्रजित्, क्रोहमना और रषु नामक श्रीन पुत्र थे। सहस्रजित्से शतजित्, शतजित्से इय तथा हैहय नामक दो पुत्र हुए। हयसे अनरण्य तथा हैहयसे धर्म हुआ। धर्मका पुत्र धर्मनेत्र हुआ। उस धर्मनेत्रका पुत्र कुन्ति बा। कुन्तिसे सार्हजि हुआ। सार्हजिसे महिच्यान्, महिच्यान्से भद्रबेण्य, भद्रश्रेण्यसे दुर्दमकी उत्पत्ति हुई। दुर्दमसे धनक, कृतवीर्य, जानकि, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा नामक छ: बलवान् पुत्र हुए। कृतवीर्यसे अर्जुन तथा अर्जुनसे शृरसेन नामक पुत्र हुआ। उस पुत्रके अतिरिक्त कृतवीर्यके जयध्यज्ञ, मधु, शूर और वृषण नामक चार पुत्र हुए। शूरसेनसहित ये पौंचों पुत्र बड़े ही सुवती थे। जयध्वजसे तालजंध, तालजंघसे भरत हुआ। कृतवीर्य वृषणका पुत्र मधु या। मधुसे वृष्णि हुआ, जिससे वृष्णिवंशियोंकी उत्पत्ति हुई।

क्रोष्ट्रके विजन्निवान् हुआ। उस विजन्निवान्का पुत्र आहि था। आहिसे उत्तंकु हुआ। उसका पुत्र चित्रस्य था। चित्ररथसे शशबिन्दु हुआ, जिसके एक लाख पत्नियाँ तथा पृथुकीर्ति, पृथुजय, पृथुदान, पृथुज्ञवा आदि श्रेष्ठ दस लाख पुत्र थे। पृथुन्नवासे तम, तमसे उज्ञना हुआ। उसका पुत्र शितगु था। तत्पश्चात् उसके श्रीरूक्यकवच हुआ।

श्रीरुक्मकवचसे रुक्म, पृथुरुक्म, ज्यामघ, पालित और हरि—ये चार पुत्र हुए। ज्यामधसे विदर्भका जन्म हुआ।

विदर्भको शैब्या नामको एक पत्नी थी, उससे विदर्भने क्रथ, कौशिक तथा रोमपाद नामक तीन पुत्रोंको जन्म दिया। रोमपादसे बधु और बधुसे धृति हुआ।

कौशिकके ऋचि नामक पुत्र था। उसीसे चेदि नामका राजा हुआ। इसका पुत्र कुन्ति था। कुन्तिसे वृष्णि नामक पुत्र हुआ। वृष्णिसे निवृत्ति, निवृत्तिसे दशाई, दशाईसे व्योम और ब्योमसे जीमृत नामका पुत्र हुआ। जीमृतसे विकृतिका जन्म हुआ। उस विकृतिका पुत्र भीमरथ था। भीमरथसे मधुरच और मधुरबसे शकुनि उत्पन्न हुआ। शकुनिका पुत्र करम्भि था। इस करम्भिका पुत्र देवमान् माना जाता है। देवमान् या देवनतसे देवक्षत्र तथा देवक्षत्रसे मधु नामक पुत्र हुआ। मधुसे कुरुवंश, कुरुवंशसे अनु, अनुसे पुरुहोत्र, पुरुहोत्रसे अंशु, अंशुसे सत्त्वश्रुत और उससे सात्त्वत नामका एका हुआ।

सात्वतके भजिन्, भजमान्, अन्धक, महाभोज, वृष्णि, दिख्यायन्य तथा देवावृध नामक सात पुत्र हुए। भजमान्से निमि, बृष्णि, अयुताजित्, शतजित्, सहस्राजित्, नभू, देव और बृहस्पति नामके पुत्र हुए। महाभीजसे भीज और उस वृष्णिसे सुमित्र नामक पुत्र हुआ। सुमित्रसे स्वधाजित्, अनमित्र तथा अशिनि हुए। अनमित्रका पुत्र निघ्न और निघ्नका पुत्र सत्राजित् हुआ। अनमित्रसे प्रसेन तथा शिबि नामक दो अन्य पुत्र भी हुए थे। शिविसे सत्यक, सत्यकसे सात्यकि हुआ। सात्यकिके संजय और उस संजयके कुलि हुए। उस कुलिका पुत्र युगन्धर था। इन सभीको शिविवंशी तैबेय कहा गया है।

अनिमनके ही वंशमें वृष्णि, धफल्क तथा चित्रक नामक अन्य तीन पुत्र हुए थे। श्रफल्कने गान्दिनीके गर्भसे अकूरको जन्म दिया, जो परम वैष्णव थे। अकूरसे उपमद्गु हुआ, जिसका पुत्र देवद्योत था। उपमद्गुके अतिरिक्त अक्रूरके देववान् और उपदेव नामक दो पुत्र माने गये हैं।

अनमित्र-पुत्र चित्रकके पृथु तथा विपृथु नामक दो पुत्र थे। सात्वतनदन अन्धकका पुत्र शृचि माना जाता है। भजमानके कुकुर और कम्बलबर्हिष दो पुत्र हुए। कुकुरसे

धृष्टका जन्म हुआ। उसका पुत्र कापोतरोमक था। उस जन्म हुआ। देवकोके गर्भसे पहले छ: पुत्र उत्पन्न हुए। कापोतरोमकका विलोमा और विलोमासे तुम्बुरका जन्म हुआ। तुम्बुरुसे दुन्दुभि तथा दुन्दुभिका पुनर्वसृ माना जाता है। उस पुनर्वसुका पुत्र आहुक था। आहुकके एक पुत्री हुई, जिसका नाम आहुकी था। आहुकके दो पुत्र हुए जिनका नाम देवक और उग्रसेन था। देवकसे देवकीका जन्म हुआ। इसके अतिरिक्त देवकके वृकदेवा, उपदेवा, सहदेवा, सुरक्षिता, श्रीदेवी और ज्ञान्तिदेवी नामको छः कन्याएँ और भी धों। इन सातों कन्याओंका विवाह वसुदेवके साथ हुआ था। सहदेवाके देववान् और उपदेव नामक दो पुत्र थे।

आहुकपुत्र उग्रसेनके कंस, सुनामा तथा वट आदि नामके अनेक पुत्र हुए। अन्धकपुत्र धनमान्सं निद्रम नामका पुत्र हुआ था। विदृर्थसे सूर और सूरके सनी नामका पुत्र हुआ। शमीसे प्रतिशत्र, प्रतिशत्रमे स्वयंभीज, स्वयंभाजसे हदिक तथा हदिकसे कृतवर्गा हुए। शूरसे ही देव, शतधनु और देवामीदुषका भी जन्म हुआ था। मारियाके गर्भसे शुरके वसुदेव आदि अन्य दस पुत्र थे। शूरसे पृथा, बुतदेवी, बुतकीर्ति, बुतकवा और राजाधिदेव (राजाधिदेवी) नामवाली पाँच पुत्रियाँ भी धाँ। शूरने पुत्री पृथाको कुन्तिराजको दे दिया था। कुन्तिराजने शूरमे प्राप्त उस कन्याका विवाह पाण्डुसे कर दिया। पाण्डुकी उस पृथा नामकी पत्नोसे धर्म, वायु और इन्द्रादि देवोंके अंशसे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा पाण्डुकी पत्नो माडीमें अश्विनीकुमारके अंशसे नकुल तथा सहदेव नामक पुत्र हुए। विवाहके पूर्व ही पृथासे कर्णका जन्म हुआ था।

शूरको पुत्री श्रुतदेवोंके गर्भसे दनवका हुआ, जो अत्यन्त बीर योद्धा था। श्रुतकीर्ति कैकयराजको व्याही गर्या थी। कैकयराजसे उसके सन्तदंन आदि पाँच पुत्र हुए। राजाधिदेवीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनका नाम व्याही थी। उससे शिशुपालका जन्म हुआ।

थसुदेवके पौरव, रोहिणी, मदिरा, देवकी, भद्रा आदि जो अन्य स्थियाँ हैं, उनमें रोहिणीके गर्भसे क्लभद्र हुए। बलभद्रकी पत्नी रेवतीके गर्भसे सारण और ज्ञड आदिका

जिनके नाम कीर्तिमान्, सुषेण, उदार्यं, भद्रसेन, ऋजुदास और भद्रदेव हैं। कंसने इन सभी पुत्रोंको मार डाला था। देवकीके सातवें पुत्रके रूपमें बलराम और आठवें कृष्ण थे। कृष्णकी सोलह हजार रानियाँ थीं। रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा, चारहासिनी तथा जाम्बवती आदि आठ प्रधान पत्नियाँ थाँ। इनसे उनके बहुत-से पुत्र हुए।

प्रदुप्त, चारुदेष्ण तथा साम्ब कृष्णके प्रधान पुत्र हैं। प्रदानको पत्नी कर्कुरिनीके गर्भसे महापराक्रमशाली अनिरुद्धका जन्म हुआ ! अनिरुद्धके सुभद्रा नामक पत्नीके गर्भसे वज नामके राजा हुए। उनका पुत्र प्रतिबाहु था। प्रतिबाहुका पुत्र चारु हुउस ।

ययाति-पुत्र तुर्वमुके वंशमें वहि नामक पुत्रका जन्म हुआ। बहिसे भगे हुआ। भर्गसे भानु, भानुसे करन्थम तथा करन्धमसे मस्त्को उत्पत्ति हुई।

हे हद! अब मुझसे दुद्धवंशका वर्णन सुनै—

वर्णातपुत्र दुक्क्का पुत्र सेतु, सेतुका पुत्र आरद्ध था। आरद्धके गान्धार, गान्धारके धर्म, धर्मके युत, घृतके दुर्गम, दुर्गमके प्रचेता हुए।

अब आप अनुबंशको सुने-अनुका पुत्र सभानर हुआ। सभानरका कालज्ञय, कालज्ञयको सृजय, सृजयका पुरवाय, पुरवायका जनमेजय, जनमेजयका पुत्र महाशाल था। इसी महात्मा महाशासका पुत्र उशीनर माना गया है। उज्ञोनरसे राजा शिवि डत्पन्न हुए। शिविके पुत्र वृषदर्भ हुए। वृषदर्भसे महामनीज और महामनीजसे तितिक्षु और तितिक्षुसे रुपद्रथका जन्म हुआ। रुपद्रथसे हेम तथा हंमसे मुतप हुए। युतपसे चलि और बलिसे अंग, बंग, कलिंग, आन्ध्र तथा पौण्ड्र नामके पुत्र हुए। अंगसे अनपान, अनपानसे दिविरथ, दिविरथसे धर्मरथ हुआ। धर्मरथसे रोमणद तथा रोमपादसे चतुरंग, चतुरंगसे पृथुलाक्ष, विन्दु और अनुविन्दु था। चेदिराज दमघोषको जुनन्नवा पृथुलाधसे चम्प, चम्पसे हर्यङ्ग, हर्यङ्गसे भद्ररथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

भद्ररथका पुत्र बृहत्कर्मा था। उसके बृहद्भानु नामक पुत्र हुआ। बृहद्भानुका पुत्र बृहयना और बृहयनाका पुत्र जयदय था। जयदयसे विजय और विजयसे धृति हुआ। वृषसेन नामक पुत्र हुआ।

हरिने पुनः कहा — हे रुद्र! इसके बाद आप पुरुवंतका वर्णन सुनै।

पुरुका पुत्र जनमेजय, जनमेजयका पुत्र नमस्यु था। नमस्युका अभय तथा अभयका सुद्यु हुआ। सुद्युके बहुगति। गर्भसे छजा नौलकौ उत्पत्ति हुई। नौलसे शान्ति नामका पुत्र नामक पुत्रका जन्म हुआ। उसका पुत्र संवाति द्या। संजातिक वत्सजाति और उसके रौद्राश्च हुआ। रौद्राश्चक ऋतेषु, स्थण्डिलेषु, कक्षेषु, कृतेषु, जलेषु और सन्ततेषु नामक क्षेष्ठ पुत्र हुए।

ऋतेयुके रतिनार नामका पुत्र हुआ। उसका पुत्र प्रतिरच धा। प्रतिरथका मेधातिथि, मेधातिथिका ऐनिल नामक पुत्र माना जाता है। ऐनिलका पुत्र दुष्यन्त था। राकुन्तलाके गर्भने दुष्यन्तके भरत नामक पुत्र हुआ। भरतसे वितथ, वितथसे मन्यु, मन्युसे नरका जन्म माना गया है। नरके संकृति और संकृतिके गर्ग हुआ। गर्गसे अमन्यू, अमन्युसे जिनि नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई।

मन्युपुत्र महावीरसे उरखप, उरखपसे त्रस्यारनि, त्रय्यासिको व्यूहक्षत्र, व्यूहक्षत्रसे सुहोत्र, सुहोत्रसे हस्ती, अजमीद तथा द्विमीद नामक तीन पुत्र हुए। हस्तीका पुत्र पुरुमीद और अजमीरका कण्य था। कण्यके मेधाविधि हुए। इन्होंने काण्यायन नामक गोत्र ब्राह्मजोंके हुए और वे काण्यायन कहलाये।

अजमीदसे बृहदिषु नामक एक अन्य पुत्र भी हुआ था। उस पुत्रके बृहद्भनु हुआ। बृहद्भनुके बृहत्कर्मा तथा ब्हत्कर्माके जयद्रथ नामका पुत्र था। जयद्रवसे विश्वजित् और विश्वजित्से सेनजित्, सेनजित्से रुचिराश्च, रुचिराश्चसे पृथुसेन, पृथुसेनसे पार तथा पारसे द्वीप और नृप हुए। नृपका पुत्र सुमर हुआ। पृथुसेनका एक अन्य पुत्र था, विसका नाम सुधन्वा, सुधन्वासे जहकी उत्पत्ति हुई। सुकृति कहा गया है। सुकृतिके विभाज और विभाजके ब्रह्मदत्त नामका पुत्र था। उस पुत्रसे विष्वक्सेनने जन्म

द्विमीडके यवीनर, यवीनरके धृतिमान्, धृतिमान्के सार्वभौम, सार्वभौमके जयसेन तथा उस जयसेनसे

धृतिका पुत्र धृतव्रत था। धृतव्रतसे सत्पधर्मा हुआ। सत्पधृति नामका पुत्र हुआ। उसका पुत्र रहनेमि था। सत्यधर्माका पुत्र अधिरथ था। अधिरथके कर्ण और कर्णके इडनेमिसे सुपार्श्व और सुपार्श्वसे सन्नतिका जन्म हुआ। सन्नतिका पुत्र कृत तथा कृतका पुत्र उग्रायुध था। उग्रायुधसे क्षेम्य नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र सुधीर था। सुधीरसे पुरक्रय, पुरक्षवसे किद्रश्य नामके पुत्रने जन्म लिया।

अजमोदको नीलनी नामको एक पत्नी थी। उसके हुआ। उसका पुत्र सुशान्ति था। सुशान्तिक पुरु हुआ। पुरुका पुत्र अर्क, अर्कका हर्यश्र, हर्यश्रका मुकुल और मुकुलके यबीर, मृहद्धानु, कम्पिल, सुजय एवं शरद्वान् नामक पाँच पुत्र हुए। इनमें रास्ट्रान् परम बैष्णव था। इस शरद्वान्के अहरूचा नामको पत्नीसे दिबोदास नामक पुत्र हुआ। उसके राजनन्द हुए। ज्ञाजन्दके सत्यभृति हुआ। सत्यभृतिके उर्वतीने कृप तथा कृपी नामक दो संतानें हुई। कृपीका विवाह द्रोणाकर्यसे हुआ था। उसी कृपीसे द्रोणाचार्यके अबल्यमा नामक सेष्ट पुत्र उत्पन्न हुए।

दिनोदासके मित्रयु और मित्रयुके न्यवन नामका पुत्र धाः। च्यवनसे सुदास, सुदाससे सौदास नामक पुत्र हुआ। इसका पुत्र सहदेव था। सहदेवसे सोगक, सोगकसे बन्तु (बहु) और पृथत नामक महान् पुत्र उत्पन्न हुआ। पुण्यतमे द्रुपट, द्रुपटसे धृष्टग्रुप्नकी उत्पत्ति हुई। धृष्टग्रुप्नसे पृष्टकेतु हुआ।

अजमीदके एक ऋक्ष नामका पुत्र था। उस ऋक्षसे संबरण, संबरणसे कुरुका जन्म हुआ। कुरुके सुधनु, परीक्षित् और जह नामके तीन पुत्र थे। सुधनुसे सुहोत्र तथा मुहोत्रमे व्यवन, व्यवनसे कृतक तथा उपरिचर वसु हुए। वसुके बृहद्रथ, प्रत्यप्र और सत्य आदि अनेक पुत्र थे। बृहद्रथसे कुराह्य, कुशाग्रसे ऋषभ, ऋषभसे पुष्पवान् तथा उस पुत्र्यवान्से सत्यहित नामका राजा हुआ। सत्यहितसे

बृहद्रथका एक अन्य पुत्र था, जिसका नाम जरासन्ध अश्रह नामक पुत्र हुआ। कृतिके गर्भसे उत्का उस अश्रहके था। उस जरासन्धमें सहदेव, सहदेवसे सोमापि, सोमापिसे बुतवान्, भीमसेन, उग्रसेन, बुतसेन तथा जनमेजय हुए। जहके मुरध नामक पुत्र था। मुरधके विदूरथ, विदूरथके अवधीत हुआ। उस अवधीतसे अयुतायु, अयुतायुसे अऋोधन, अम्बालिकासे पाण्डुको तथा उनको दासीसे विदुरजीको अक्रोधनसे अतिथि, अतिथिसे ऋख, ऋक्षसे भीमसेन, पैदा किया। भीमसेनसे दिलीप, दिलीपसे प्रतीप, प्रतीपसे देवापि, शन्तनु धृतराष्ट्रने गान्धारीसे दुर्योधनादि सौ पुत्रोंको उत्पन्न और बाह्रीक नामके राजा तीन सहोदर भाता हुए।

अम्बालिका नाम था। व्यासजीने अम्बिकासे धृतराष्ट्रको, हुआ। (अध्याय १३९-१४०)

किया। पाण्डुसे युधिष्ठिर आदि पाँच पुत्र हुए। द्रौपदीसे बाह्रीकसे सोमदत्त हुआ। सोमदत्तसे भूरि और क्रमतः प्रतिविन्ध्य, ब्रुतसोम, ब्रुतकीर्ति, शतानीक और भूरिसे भूरिश्रवाकी उत्पत्ति हुई। इस भूरिश्रवाका पुत्र शल बुक्कमां नामक पाँच पुत्रोंका जन्म हुआ। यौधेयी, धा। गङ्गाके गर्भसे जन्तनुके महाप्रतापी धर्मधायन पुत्र हिडिन्दा, कौशी, सुभद्रिका (सुभद्रा), विजया तथा रेणुमती भीष्म हुए। उस शन्तनुकी दूसरी पत्नी सत्ववतीसे चित्राङ्गद नामको पत्नियाँ भी थीं। इनके गर्भसे देवक, घटोत्कच, और विचित्रवीर्य नामक अन्य दो पुत्रोंका जन्म हुआ। अभिमन्यु, सर्वग, सुहोत्र और निरमित्र नामक पुत्र हुए। विचित्रवीर्यंकी दो पत्नियाँ थाँ, जिनका अम्बिका तथा अधिमन्युके परीक्षित् तथा परीक्षित्के जनमेजय नामका पुत्र

भविष्यके राजवंशका वर्णन

पशात् इस चन्द्रवंशमें शतानीक, अश्वमेधदत, अधिसोमक, राजा हुए। कृष्ण, अनिरुद्ध, उष्ण, विश्वरथ, सुचिद्रथ, वृष्णिमान्, सुषेण, सुनीधक, नृषञ्ज, मुखाबाण, मेधाबी, नृपक्रय, विश्वजित् तथा इषुंजय—ये सभी बृहद्रधर्वशमें उत्पन्न होनेसे पारिप्लव, सुनय, मेधावी, नृपज्जय, बृहद्रय, हरि, किम, बार्हद्रय नामसे जाने जाते हैं। इसके बाद जितने भी राजा शतानीक, सुदानक, उदान, अहिनर, दण्डपाणि, निमित्तक, होंगे, वे सभी अधार्मिक और शूद्र होंगे। क्षेमक तथा शूदक नामक राजा हुए। ये सभी यवाक्रम स्वर्गादि समस्त लोकॉके रचयिता साक्षात् अव्यय अपने पूर्ववर्ती राजाके पुत्र थे।

सुमित्र हुए।

अब मगधवंशीय राजाओंको सुनें—

अयुतायु, निरमित्र, सुक्षत्र, बहुकर्मक, बृतङ्कय, सेनजित्, कर सके। (अध्याय १४१)

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र। परोक्षित्के पुत्र जनमेजयके भूरि, शुचि, क्षेम्य, सुवत, धर्म, श्मश्रुल तथा रदसेन आदि

इसी प्रकार आगे सुमति, सुबल, नीत, सत्यजित्,

भगवान् नारायण है। ये ही सृष्टि, स्थिति और प्रलयके हे रुद्र! अब मैं इक्ष्वाकुवंशीय बृहद्वलके उस वंशका कर्जा है। नैमिनिक, प्राकृतिक तथा आत्यन्तिक भेदसे वर्णन करता हैं, जिसे बृहद्वलवंशीय कहा गया है। यथा— प्रलय तीन प्रकारका होता है। प्रलयकाल आनेपर पृथिवी बृहद्वलसे उरुक्षय उसके बाद बल्सब्बृह हुआ। बल्सब्बृहसे जलमें, जल तेजमें, तेज बायुमें, बायु आकाशमें, आकाश सूर्य और उसके पुत्र सहदेव हुए। इसके बाद बृहदश्च, अहंकारमें, अहंकार बुद्धिमें, बुद्धि जीवमें और वह भानुरथ, प्रतीच्य, प्रतीतक, मनुदेय, सुनक्षत्र, किजर और जीवात्मा अध्यक परब्रह्म परमात्मामें विलीन हो जाता है। अन्तरिक्षक हुए। तत्पक्षात् सुवर्ण, कृतजित् और धार्मिक आत्मा ही परमेश्वर है, वही विष्णु है और वही नारायण बृहद्भाज, हुए। तदनन्तर कृतंबय, धनंजय, संजय, शाक्य, है। वहीं देव एकमात्र नित्य है, अविनाशी है, उसके शुद्धोदन, बाहुल, सेनजित्, क्षुद्रक, समित्र, कुडव और अतिरिक्त स्वर्गादि समस्त संसार नाशवान् है। इसी नश्वरताके कारण ये सभी राजा मृत्युको प्राप्त हुए हैं। अत: मनुष्यको पापकर्म छोड़कर अविनाशी धर्माचरणर्मे अनुरक्त रहना मगध उंशमें जगसन्ध, सहदेव, सोमापि, श्रुतश्रवा, चाहिये, जिससे निष्पाप होकर वह भगवान् हरिको प्राप्त

भगवान्के विभिन्न अवतारोंकी कथा तथा पतिव्रता-माहात्म्यमें ब्राह्मणपत्नी, अनसूया एवं भगवती सीताके पातिव्रतका आख्यान

ब्रह्माजीने कहा — बेर आदि धर्मोंको रक्षके लिये और आसुरी धर्मके विनाशके लिये सर्वशक्तिमान् भगवान् हरिने अवतार धारण किया और इन सूर्य-चन्द्रादिके वंशोंका पालन-पोषण किया। ये अजन्मा हरि ही मत्त्य, कुर्म आदि रूपोंमें अवतरित होते हैं।

मत्स्यका अवतार लेकर भगवान् विष्णुने युद्धकण्टक हयग्रीव नामक दैत्यका विनाश किया और वेटॉको पुनः पृथिवीपर लाकर मनु आदिकी रक्षा की। समुद्र-मन्धनके समय देवोंका हितसाधन करनेके लिये कूमें (कच्छप)-का अवतार ग्रहण करके उन्होंने मन्दराचलको धारण किया। श्रीरसागरके मन्धनके समय अमृतसे परिपूर्ण कमण्डलुको लिये हुए धन्वन्तरि वैद्यके रूपमें समुद्रसे वे ही प्रकट हुए। उन्होंकि द्वारा सुन्नुतको अष्टान्न अमुर्वेदकी शिक्षा दी गया थी। उन ब्रीहरिने स्त्री (मोहिनी)-का रूप धारण करके देवोंको अमृतका पान कराया।

वराहका अवतार लेकर उन्होंने हिरण्याक्षको पारा ।
उसके अधिकारसे पृथिवीको छीनकर पुनः स्थापित किया
और देवताओंकी रक्षा की। तदननर नरसिंहरूपमें इन्होंने
हिरण्यकशिषु तथा अन्य दैत्योंका विनासकर वैदिक्क्षपंका
पालन किया। तत्पश्चात् इस सम्पूर्ण संसारके स्वापी उन
विष्णुने जमदिग्नसे परशुरामका अवतार लेकर इन्कोस बार
पृथिवीको क्षत्रियजातिसे रहित किया था। कृतवीयंके पुत
कार्तवीर्थ सहसार्जुनको युद्धमें मार करके इन्ही भगवान्
परशुरामने यज्ञानुष्ठानमें उसके सम्पूर्ण राज्यका आधिपत्य
महर्षि कश्यपको सीप दिया और स्वयं महाबाहु (परशुराम)
महेन्द्रगिरिपर जाकर तपमें स्थित हो गये।

इसके बाद दुष्टोंका मदंन करनेवाले भगवान् विष्णु राम आदि चार स्वरूपोंमें राजा दशरथके पुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए। जिनके नाम राम, भरत, लक्ष्मण और ऋतुष्त हैं। रामकी पत्नी जानकी हुई। पिताके वचनको सत्य करनेके लिये तथा माता (कैकेची) के हितकी रक्षा करते हुए रामने अयोध्याका राजवैभव त्यागकर शृंगवेरपुर चित्रकृट तथा दण्डकारण्यमें निवास किया। तदननार वहींपर सूर्पणकाकी नाक कटबाकर उसके भाई खर तथा दृषण नामक दो राधसोंको मारा। तत्पश्चात् जानकीका अपहरण करनेवाले दैत्याधिपति रावणका वधकर उसके छोटे भाई विभोषणको लङ्कापुरोमें राधसोंके राजाके रूपमें अभिषिक किया। उसके बाद अपने मुख्य सहयोगी सुग्रीय तथा हनुमानादिके साथ पुष्पक विमानपर आरूद होकर रातपरायणा सोता एवं लक्ष्मणके साथ वे अपनी पुरो अयोध्या आ गये। यहाँ उन्होंने राज्यसिंहासन प्राप्तकर देवताओं, ऋषियों, बाह्यणों तथा प्रजाका पालन किया।

उन्होंने धर्मकी भलीभाँति रक्षा की। अश्वमेधादि अनेक घड़ोंका अनुष्ठान किया। भगवती सीताने राजा रामके साथ मुखपूर्वक रमण किया। यद्यपि सीता रावणके घरमें रहीं, किर भी उन्होंने रावणको अंगोकार नहीं किया और सर्वदा मन, वचन तथा कर्मसे राममें ही अनुरक्त रही। वे सीता वो अनस्वाके समान पविद्यता थीं।

ब्रह्माजीने पुनः कहा—अब मैं पतिव्रता स्त्रीका माडात्म्य कह रहा हैं, आप सुने।

पुराने समयमें प्रतिष्ठानपुरमें कौशिक नामका एक कुछरोगी बाह्यण रहता था। उस ब्राह्मणकों पत्नी अपने प्रति-की देखताके समान ही सेबा-शुश्रूषा करती थी। प्रतिके द्वारा तिरस्कार मिलनेपर भी वह पतिवता पतिको देखता-रूप ही सानतो थी। एक बार पतिके द्वारा कहे जानेपर शेश्याको शुल्क देनेके लिये अधिकतम धन साथ लेकर वह उनहें कन्धेपर यैटाकर येश्याके घर पहुँचाने निकल पड़ी।

मार्गमें माण्डव्य ऋषि थे। यद्यपि वे ऋषि परम तपस्थी महात्मा थे, तथापि उन्हें चीर समझकर राजदण्डके रूपमें लोईके लम्बे शह्कुपर बिठा दिया गया था। अत: शरीरके नीचेके छिद्रसे ऊपर सिरके छिद्र ब्रह्मरन्ध्रतक शरीरके भीतर-ही-भीतर लीह शह्कुके प्रवेशके कारण माण्डव्य ऋषिका असहा तीव्र वेदनासे ग्रस्त होना स्वाभाविक था। इसीलिये माण्डव्य ऋषि वेदनाके अनुभवसे स्वयंको बचानेकी हिंदसे समाधिस्थ हो गये थे।

कुष्ठ-व्याधियुक्त ब्राह्मण कौशिककी पतित्रता पत्नी

महाँ अप्रिय जातिसे रहित करनेका करपर्य इतना ही है कि श्रीपरशुग्रमने अप्रियोंके दर्यका मर्दन किया और उनकी कर्तस्यविष्णुखताको नष्ट किया।

रातमें ही अपने पतिकी इच्छाके अनुसार वेश्याके वहाँ जा रही थी, इसलिये अन्धकार रहनेके कारण अपनी पत्नीके कन्धेपर बेठे कौशिकने माण्डव्य ऋषिको नहीं देखा और अपना पाँव स्वभावत: हिलाया-डुलाया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि कौशिकके पाँवोंसे माण्डव्य ऋषि आहत हो गये और उनकी समाधि टूट गयी। समाधि-भंग होनेसे उन्हें असहा बेदना होने लगी। इससे माण्डब्य ऋषिका क्रुट होना स्वाधाविक था। अत: क्रोधवश उन्होंने शाप देते हुए



कहा-विसने मेरे ऊपर यह अपना पैर चलाया है, उसकी सूर्योदय होते ही मृत्यु हो जायगी। यह सुनकर उस ब्राह्मण-पत्नीने कहा कि (यदि ऐसी बात है तो) अब सुर्योदय ही नहीं होगा। इसके बाद सूर्योदय न होनेसे बहुत वर्धीतक किरन्तर रात्रि ही छायी रही। जिससे देवता भी भयभीत हो गर्व।

देवताओंने ब्रह्माको शरण ली। ब्रह्माने उन देवींसे कहा कि पविद्वताके इस वेजसे तो तपस्वियोंके तेजका भी हास हो रहा है। पातिबत-धर्मके माहात्म्यसे सुर्यदेव उदित नहीं हो रहे हैं। उनके उदय न होनेसे मानवों और आप सभीको यह हानि उठानो पढ़ रही है। अत: सूर्योदयकी कामनासे आप सब अतिमृतिको धर्म-पत्नी तपस्यिनो पतिपरायणा अनम्याको प्रसन्न करें। वे ही सूर्योदय कराके पतिव्रता ब्राह्मणोके पतिको भी जीवित कर सकती हैं। ब्रह्मजीके कथकनुसार अनस्याकी शरणमें जाकर देवताओंने उनकी प्रार्थना की। देवताओंकी प्रार्थनासे अनस्या प्रसन्न हो गयों। अपने तप:प्रभावसे सूर्योदय कराके उन्होंने बाह्यणीक पति कौतिकको जीवित कर दिया। इन महातपस्थिनी पतिव्रताको अपेख सीता और अधिक पतिपरायणा धौं। (अध्याय १४२)

रामचरितवर्णन (रामायणकी कथा)

जिसके श्रवणमात्रसे समस्त पापींका विनास हो जाता है। भरतने कुशभ्वजकी पुत्री माण्डवी तथा शतुष्तने कीर्तिमतीका

भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे बहाकी उत्पत्ति हुई। पाणिग्रहण किया, ये महाराज कुशध्वजकी पुत्री थीं। ब्रह्मासे मरीचि, मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्व, सूर्यसे वैवस्वत मनु हुए। वैवस्वत मनुसे इक्ष्वाकु हुए। इन्हों इश्वाकुके वंशमें रघुका जन्म हुआ। रघुके पुत्र अजसे दशरथ नामक महाप्रतापी राजाने जन्म लिया। उनके महान् बल और पराक्रमवाले चार पुत्र हुए। कौसल्यासे राम, कैकेयीसे भरत और समित्रासे लक्ष्मण तथा शत्रुघनका जन्म हुआ।

माता-पिताके भक्त श्रीरामने महामुनि विश्वामित्रसे अस्त्र-शस्त्रको शिक्षा प्राप्तकर ताडका नामक पश्चिणीका विनाश किया। विश्वामित्रके यत्रमें बलशाली रामके द्वारा ही सुबाह नामक राक्षस मारा गया। जनकराजके यजस्थलमें पहेँचकर

ब्रह्माजीने कहा - अब मैं रामायणका वर्णन करता हैं. उन्होंने जानकीका प्राणिप्रहण किया। बीर लक्ष्मणने डॉमेंला.

विवाहके पश्चात् अयोध्यामें जाकर चारों भाई पिताके साच रहने लगे। भरत और शबुष्न अपने मामा युधाजित्के यहाँ चले गये। उन दोनोंके ननिहाल जानेके बाद नृपश्रेष्ठ महाराज दशरथ रामको राज्य देनेके लिये उदात हुए। उसी समय कैकेपीने ग्रमको चौदह वर्ष वनमें रहनेका दत्तरधजीसे वर माँग लिया। अतः लक्ष्मण और सीतासहित मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम पिताके हितकी रक्षाके लिये राज्यको नुजवत् त्यागकर शृंगवेरपुर चले गये। वहाँपर रथका भी परित्यागकर वे सभी प्रयाग गये और वहाँसे चित्रकटमें जाकर रहने लगे।

इधर रामके वियोगसे द:खित महाराज दशरथ शरीरका

परित्याग कर स्वर्ग पथार गये। मामाके घरसे आकर भरतने उसीके कहनेसे वे दक्षिण दिशाकी और चल पडे। उस पिताका अन्तिम संस्कार किया। तदननार वे दल-बलके दिशामें आगे बढनेपर सुग्रीवके साथ रामकी मित्रता हुई। साथ रामके पास पहुँचे। उन्होंने विनम्रतापूर्वक अपने ज्येष्ठ उन्होंने अपने तीश्य बाणसे सात तालवृक्षींका भेदन किया धाता श्रीरामसे कहा-'हे महामते! आप अयोध्या लौट तथा वालीको मारकर किष्किन्धामें रहनेवाले यानरोंके चलें और वहाँका राज्य करें।' रामने राज्यके प्रति अनिच्छा प्रकट कर दी और भरतको अपनी पादका देकर राज्यकी ऋष्यमुक पर्वतपर निवास करने लगे। रक्षाके लिये वापस अयोध्या भेज दिया। भरत वहाँसे लौटकर रामके प्रतिनिधिरूपमें राज्यकार्य देखने लगे। सीताकी खोजमें पूर्वादि दिशाओं में भेजा। वे सभी वानर जो तपस्वी भरतने नन्दिग्राममें ही रहकर राज्यका संचालन पूर्व, पश्चिम और उत्तरको दिशाओंमें गये थे, खाली हाथ किया, वे अयोध्यामें नहीं गये।

आये। तदनन्तर वहाँ उन्होंने सुतीक्ष्म और अगस्त्यमूनिके आश्रममें जाकर उन्हें प्रणाम किया और उसके बाद वे दण्डकारण्य चले गये। वहाँ उन सभीका भक्षण करनेके लिये शुर्पणखा नामकी एक राक्षसी आ धनको। जत: रामचन्द्रने नाक-कान कटवाकर उस राक्षसीको वहाँसे भग दिया। उसने जाकर खर-दूषण तथा त्रिशिय नामके राक्षसोंको यदके लिये प्रेरित किया। चौदह हजार राक्षसोंकी सेना लेकर उन लोगोंने रामपर आक्रमण कर दिया। रामने अपने बाणोंसे उन राक्षसोंको यमपर भेज दिया। राक्षसो शुर्पणखासे प्रेरित रावण सीताका हरण करनेके लिये वहाँ त्रिदण्डी संन्यासीका बेश धारणकर मुगरूपधारी मारीनकी अगुवाईमें आ पहुँचा। मुगका चर्म प्राप्त करनेके लिये सीतासे प्रेरित रामने मारीचको मार डाला। मरते समय उसने 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' ऐसा कहा।

इसके बाद सीताकी सुरक्षामें लगे लक्ष्मण भी सीताके कहनेपर वहाँ जा पहुँचे। लक्ष्मणको देखकर रामने कहा-यह निश्चित ही राक्षसी माया है। सीताका हरण अवस्य अशोक-वक्षकी छायामें ठहरा दिया।

गुजाके रूपमें सुग्रीवको अधिषक किया और स्वयं जाकर

सुप्रीयने पर्वताकार शरीरवाले उत्साहसे भरे हुए वानरोंको वापस लीट आये, किंतु जो लोग दक्षिण दिशामें गये थे राम भी चित्रकृट छोडकर अत्रिमृतिक आश्रममें चले उन्होंने वन, पर्वत, द्वीप तथा नदियाँके तटोंको खोज डाला; पर जानकीका कुछ भी पता न चल सका। अन्तमें हताश होकर उन सबने मरनेका निश्चय कर लिया। सम्यातिक वचनसे सीताको जानकारी प्राप्त करके कपिश्रेष्ठ हनुमान्जीने हतयोजन (चार सी कोस) विस्तृत समुद्रको लॉपकर लङ्कामें अलोकवाटिकाके अन्दर रह रही सीताका दर्शन किया, जिनका तिरस्कार राक्षांसधीं और रावण स्वयं करता था। इन सबके द्वारा बराबर यह कहा जा रहा था कि तम ग्रवणको पत्नी यन जाओ, किंतु वे हृदयमें सदैव रामका डो चिन्तन करती थी।

हनुपानने (ऐसी दयनीय स्थितिमें रह रही) सीताको कौसल्यानन्दन रामके द्वारा दी गयी अंगुठी देकर अपना परिचय देते हुए कहा कि 'हे मैथिलि! मैं श्रीरामका दत हैं। आप अब दृश्य न करें। आप मुझे कोई अपना चिह्नविशेष दें, जिससे भगवान् श्रीराम आपको समझ सकें।' हनुमानका यह वचन सुनकर सीताने अपना चुडामणि उतारकर दे दिया और कहा कि 'है कपिराज! राम जितना ही शीघ्र हो सके उतना ही शीच्र मुझको यहाँसे ले चलें।' ऐसा आप हो गया होगा। इसी बीच बली रावण अवसर पाकर अङ्कर्में उनसे कहियेगा। हनुमानने कहा कि ऐसा ही होगा। तदनन्तर सीताको लेकर, जटायुको क्षत-विश्वतकर लङ्का चला गया। वे उस दिव्य अशोक वनको विश्वंस करने लगे। उसे वहाँ पहुँचकर उसने राक्षसियोंकी निगरानीमें सीताको विनष्टकर उन्होंने रावणके पुत्र अक्ष तथा अन्य राक्षसींको मार डाला और स्वयं मेघनादके पात्रमें बन्दी भी बन गये। रामने आकर पर्णशालाको सुनी देखा। वे अत्यन्त रावणको देखकर इनुमानने कहा कि हे रावण! मैं श्रीरामका द:खित हो उठे। उसके बाद वे सीताकी खोजमें निकल दत हनुमान हैं। आप रामको सीता लौटा दें। यह सुनकर पढे। मार्गमें उन्होंने जटायुका अन्तिम संस्कार किया और सबण क्रुद्ध हो उठा। उसने उनकी पूँछमें आग लगवा दी।

जला डाला। ये पुन: रामके पास लौट आये और बताया भुजाओंके समृहको छित्र-भित्र करके रावणको भी धराशायी कि मैंने सीता माताको देखा, तदनन्तर हनुमान्जीने सीताद्वारा दिया गया चूडामणि उन्हें दे दिया। इसके बाद सुग्रीव, हनुमान्, अंगद तथा लक्ष्मणके साथ राम लङ्कापुरीमें जा पहुँचे। रावणका भाई विभीषण भी रामको जरजर्मे आ गया। श्रीरामने उसे लङ्काके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया। रामने नलके द्वारा सेतुका निर्माण कराकर समुद्रको पर किया था। (समुद्रके तटपर) सुबेल पर्वतपर उपस्थित होकर उन्होंने लङ्कापुरीको देखा।

तदननार नील, अंगद, नलादि मुख्य वानरी तथा धुग्राक्ष, बीरेन्द्र तथा ऋक्षपति जाम्बवान्, मैन्द्र, द्विविद आदि मुख्य बीरॉने लङ्कापुरीको नष्ट कर डाला। विज्ञाल जरीरवाले काले-काले पहाड़के समान राक्षमोंको अपनी वानरी सेनाके साथ राम-लक्ष्मणने मार गिराया। विद्याबिद्ध, धूसाख, देवान्तक, नशन्तक, महोदर, महापार्थ, महाकल, अतिकाय, कुम्भ, निकुम्भ, मत, मकराक्ष, अकम्पन, प्रहरत, उत्मत, पूर्ण करके भगवान् श्रीराम अधोध्यामें रहनेवाली प्रजाके कुम्भकणं तथा मेपनादको अस्त्रादिसे राम-लक्ष्मणने साथ स्वर्गलोकको चले गये। (अध्याय १४३)

महाबली हनुपान्ने उस जलती हुई पूँछसे लंकाको काट डाला। तदनन्तर उन महापराक्रमी श्रीरापने बीस कर दिया।

> उसके बाद अग्निमें प्रविष्ट होकर अपनी शुद्धताको प्रमाणित की हुई सीताके साथ लक्ष्मण एवं वानरोंसे युक्त राम पुष्पक विमानमें बैठकर अपनी श्रेष्ठतम नगरी अयोध्या लीट आये। वहाँपर राज्य-सिंहासन प्राप्तकर उन्होंने प्रजाका पुत्रवत् पालन करते हुए राज्य किया। दस अश्वमेध-यज्ञोंका अनुहान करके रामने गयातीर्थमें पितरोंको विधिवत् पिण्डदान दिया और ब्राह्मणोंको विभिन्न प्रकारका दान देकर कुश और लबको राज्यसिंहासन सौंप दिया।

> रामने ग्यारह हजार वर्षतक राज्य किया। शतुष्तने लक्षण नामक दैत्यका विनाश किया। भरतके द्वारा होलूप नामक गन्धर्व मारे गये। इसके पश्चात् उन सभीने अगस्त्यादि मुनियोंको प्रणाम करके उनसे राक्षमोंकी उत्पत्तिकी कथा सुनी। तदनन्तर अपने अवतारका प्रयोजन

हरिवंशवर्णन (श्रीकृष्णकथा)

भगवान् कृष्णके माहात्म्यसे परिपूर्ण होनेके कारण बेष्ठनम है। इनके द्वारा ही पराजित हुए। ऊँचे मंचपर अवस्थित कंसको पृथिवीपर धर्म आदिकी रक्षा और अधर्मादिके विनाजके वहाँसे नीचे पटककर इन्होंने ही मारा था। लिये वसुदेव तथा देवकीसे कृष्ण और बलरामका प्रादुर्भाव

इनके द्वारा अरिष्टासुर आदि अनेक बलवान् शत्रु मारे सभी भुजाएँ कृष्णके द्वारा काट डाली गर्यो । गये। इन्होंने केशी नामक दैत्यका वध किया तथा गोपोंको

न्यह्माजीने कहा — अब में हरिवंशका वर्णन करूँगा, जो संतुष्ट किया। उसके बाद बाणूर और मुष्टिक नामक माह

बोक्-प्लको रुक्मिणी, सत्यभामा आदि आउ प्रधान हुआ। जन्मके कुछ हो दिन बाद कृष्णने पूतनाके स्वनोंको पत्नियाँ धाँ। इनके अतिरिक्त महात्मा श्रीकृष्णकी सोलह हढ़तापूर्वक पीकर उसे मृत्युके पास पहुँचा दिया था। इज्ञार अन्य स्त्रियाँ थीं। उन स्वियोंसे उत्पन्न हुए पुत्र-पीत्रोंकी तदननार शकट (छकड़े)-को बालक्रीडामें उलटकर सभीको संख्या सैकड़ॉ-हजारोंमें थी। रुक्पिणीके गर्भसे प्रदुप्त उत्पन्न विस्मित करते हुए इन्होंने यमलार्जुन-उद्धार, कालियनाग- हुए, जिन्होंने शम्बरासुरका वध किया था। इनके पुत्र अनिरुद दमन, धेनुकासुर-वध, गोवर्धन-धारण आदि अनेक लोलाएँ हुए, जो बाणासुरकी पुत्री उषाके पति थे। अनिरुद्धके विवाहमें कीं और इन्द्रद्वारा पूजित होकर पृथियीको भारमे विमुख कृष्ण और शङ्करका महाभयंकर युद्ध हुआ और इसी युद्धमें किया तथा अर्जुनको रक्षके लिये प्रतिज्ञा को। 💎 हजार भुजाओंकले याजासुरको दो भुजाओंको छोड़कर शेष

नरकासुरका वध इन्हीं महात्मा श्रीकृष्णने किया था।

उखाड़कर लाये थे। बल नामक दैत्य, शिशुपाल नामक राजा तथा द्विविद नामक बन्दरका वध इन्होंके द्वारा हुआ या। अनिरुद्धसे बन्न नामका पुत्र हुआ। कृष्णके स्वर्गारोहणके

नन्दनवनसे बलात् पारिजात-वृक्ष सत्यभामाके लिये ये ही पश्चात् वही इस वंशका राजा बना था। सान्दीपनि नामक मुनि कृष्णके गुरु थे। कृष्णने ही गुरु सान्दीपनिकी पुत्रप्राण्डिकी अभिलाचको पूर्ण किया था। मधुरामें उग्रसेन और देवताओंकी रक्षा इन्होंने ही की थी। (अध्याय १४४)

महाभारतकी कथा एवं बुद्ध आदि अवतारोंकी कथाका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा — अब पै महाभारतके युद्धकी कथाका वर्णन करूँगा, जो पृथिवीपर बढ़े हुए अल्याचारके भारको उतारनेके लिये हुआ था, जिसकी योजना युधिष्टिरादि पाण्डवोंकी रक्षाके लिये तत्पर कृष्णने स्वयं की बी।

भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माको उत्पत्ति हुई। ब्रह्मासे अत्रि, अत्रिसे सोम, सोमसे बुध हुए। बुधने इस्प नामक अपनी पालीसे पुरूरवाको उत्पन्न किया। पुरूरवासे आयु, आयुसे ययाति और ययातिके वंशमें भरत, कुरु तथा शनानु हुए। राजा शनानुकी पत्नी गङ्गासे भीष्म हुए। भीष्म सर्वगुणसम्पन्न तथा ब्रह्मविद्याके पारङ्गत विद्वान् थे।

शन्तनुकी सत्यवती नामक एक दूसरो पत्नी थी। इस पत्नीके दो पुत्र हुए, जिनका नाम चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य था। चित्रांगद नामवाले गन्धर्वके द्वारा युद्धमें चित्रांगद मार डाला गया। विचित्रवीर्यका विवाह काशिराजकी पुत्री अम्बिका और अम्बालिकाके साथ हुआ। विचित्रवीर्य भी नि:संतान ही मर गये थे। अत: व्याससे उनके दो क्षेत्रव पुत्रों — अम्बिकाके गर्भसे धृतराष्ट्र तथा अम्बातिकाके गर्भसे पाण्डुका जन्म हुआ। उन्हीं व्यासके द्वारा दासीके गर्भसे विदुरका जन्म हुआ। धृतराष्ट्रके गान्धारीसे सौ पराक्रमी पुत्र हुए, जिनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था। पाण्डुपानी कुन्ती और माद्रीसे पाँच पुत्रोंका जन्म हुआ। युधिष्ठिर, भोनसेन, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव—ये पाँचों पुत्र बढ़े ही बलवान् और पराक्रमशाली थे।

ऋरण ली। वहाँ रहते हुए उन सभीने बक नामक राक्षसका संहार किया। तदननार पाञ्चाल नगरमें हो रहे द्रीपदीके स्वयंवरको जानकर वे सभी वहाँ पहुँचे। वहाँ अपने पराक्रमका परिचय देकर उन पाण्डवीने द्रौपदीको पत्नीके रूपमें प्राप्त किया।

इसके बाद द्रोणांबार्य और भीव्नको अनुमतिसं धृतराष्ट्रने पाण्डबोको अपने पास बुला लिया और आधा राज्य उन्हें दे दिया। आधा राज्य प्राप्त करनेके पक्षात् इन्द्रप्रस्थ नामक एक सुन्दर नगरीमें रहकर वे राज्य करने लगे। उन तपस्वी पाण्डबोने बहाँपर एक सभामण्डपका निर्माण करके यजसूय-यज्ञका अनुहान किया।

तत्पक्षात् मुरारि भगवान् वासुदेवकी अनुमतिसे हो द्वारकापुरीमें जाकर अर्जुनने उनको बहन सुभद्राका पाणिग्रहण किया। उन्हें अग्निदेवसे नन्दियोष नामक दिव्य रथ, तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध गाण्डीय नामका ब्रेष्टतम दिव्य **पनु**प, अविनाशो बाण तथा अभेच कवच प्राप्त हुआ। उसी धनुषसे कृष्णके सहचर वीर अर्जुनने अग्निको खाण्डब-वनमें संतुष्ट किया था। दिग्यिजयमें देश-देशान्तरके राजाओंको जीतकर उनसे प्राप्त रत्नग्रशि लाकर उन्होंने अपने नीति-परायल ज्येष्ठ भाता युधिष्ठिरको सींप दी।

भाइयोंके साथ धर्मराज युधिष्ठिर कर्ण, दु:शासन और शकुनिके मतमें स्थित पापी दुर्योधनके द्वारा धूतक्रीडाके मायाजासमें जीत सिये गये। उसके बाद बारह वर्षीतक दैववशात् कौरव और पाण्डवॉमें वैरभाव उत्पन्न हो। उन्हें वनमें महान् कष्ट उठाना पड़ा। तदनन्तर धीम्य ऋषि गया। उद्धत स्वभाववाले दुर्योधनद्वारा पाण्डवजन बहुत ही तथा अन्य मुनियोंके साथ प्रीपदीसहित वे पाँचों पाण्डव सताये गये। लाक्षागृहमें उन्हें विश्वासघातसे जलाया गया, विराट्-नगर गये और गुप्तरूपसे वहीं रहने लगे। एक किंतु वे अपनी बुद्धिमत्तासे बच गये। उसके बाद उन वर्षतक वहाँ रहकर दुर्योधनद्वारा हरण की जाती हुई लोगोंने एकचक्रा नामक पुरीमें जाकर एक ब्राह्मणके घरमे गायोंका प्रत्याहरण करके अर्थात् वापस लौटाकर वे अपने राज्यमें जा पहुँचे। सम्मानपूर्वक दुर्योधनसे उन्होंने अपने चौर भीमसेनने अपनी गदासे उसे गिरा दिया। उसके आधे राज्यके हिस्सेके रूपमें पाँच गाँव माँगे, किंतु बाद द्रोजपुत्र अश्वत्थामाने रात्रिमें सोयी हुई पाण्डवांकी दुर्योधनसे वे भी प्राप्त न हो सके। अतः कुरुक्षेत्रके मैदानमें सेनापर आक्रमण कर दिया। अपने पिताके वधका स्मरण उन वीरोंको युद्ध करना पड़ा। उसमें पाण्डवॉकी और सात करके उसने बड़ी ही बहादुरीसे बहुतोंको मौतके घाट उतार दिव्य अक्षीहिणी सेना थी और दुर्योधनादि ग्यारह अक्षीहिणी सेनासे युक्त थे। यह युद्ध देवासुर-संग्रामके समान महाभवंकर हुआ था।

सबसे पहले दुर्वोधनकी सेनाके सेनापति भौच्य हुए और पाण्डवॉका सेनापति शिखण्डी बना। उन दोनॉके बीचमें शस्त्र-से-शस्त्र तथा वाण-से-बाण भिड़ गये। दम दिनीतक महाभयंकर युद्ध होता रहा। शिखण्डी और अर्जुनके सैकड़ों बाणींसे विधकर भीष्म धरातावी हो गये. किंतु इच्छामृत्युका वरदान होनेसे भीष्मको उस समय मृत्यु नहीं हुई। जब सूर्य उत्तरायणमें आ गये तब धर्म-सम्बन्धित विभिन्न उपदेश देकर उन्होंने अपने पितरीका तर्पण किया और भगवान् गदाधरका ध्यान करते हुए अन्तमें वे उस परमपदको प्राप्त हुए, जहाँपर आनन्द-ही-आनन्द है और जो निर्मल आत्माओंके लिये मुक्तिका स्थान है।

तदनन्तर सेनापतिके पदपर द्रोणाचार्य आसीन हुए। उनका युद्ध पाण्डव-सेनापति धृष्टद्युष्नके साथ हुआ। यह परम दारुण युद्ध पाँच दिनोतक चलता रहा। जितने भी राजा इस युद्धमें सम्मिलित हुए, वे सभी अर्जुनके द्वारा मारे गये। पुत्रशोकका समाचार सुनकर द्रोणाचार्य उस शोकके सागरमें डूबकर मर गये।

इसके बाद वीर अर्जुनसे लड़नेके लिये कर्ण युद्धभूमिमें आया। दो दिनोतक महाभयानक युद्ध करके वह भी उनके द्वारा प्रयुक्त अस्त्रोंसे न बच सका। तत्पशात् शल्य धर्मराजसे युद्ध करनेके लिये गया। अपराहकाल होनेके पूर्व ही धर्मराजके तौक्ष्य सामोंसे वह भी यस बसा।

तदनन्तर कालान्तक यमराजके समान कुढ दुर्योधन गदा लेकर भीमसेनको मारनेके लिये दौड़ा, किंतु प्राप्त करता है। (अध्याय १४५)

दिया। धृष्टद्युम्नका वध करके उसने द्रौपदीके पुत्रोंको भी मार डालां। इस प्रकार पुत्रोंका खध होनेसे दु:खित एवं रोती हुई द्रीपदीको देखकर अर्जुनने अश्वत्यामाको परास्तकर ऐषिक रामक अस्वसे उसकी जिरोमणिको निकाल लिया।

-

उसके बाद अत्यन्त शोकसन्तप्त स्त्रीजनोंको आश्वस्त करके धर्मराज युधिष्ठिरने स्नान करके देवता और पितृजनींका तपंज किया। तत्पक्षात् भीष्मके द्वारा दिये गये सदुपदेशींसे आश्वस्त महात्मा युधिष्ठिर पुनः राज्यकार्यमें लग गये। अश्वमेश-यज्ञका अनुष्ठान करके उन्होंने भगवान् विष्णुका पूजन किया तथा विधिवत् ब्राह्मणाँको दक्षिणादि देकर संदूष्ट किया। साम्बके पेटसे निकले हुए मुसलके द्वारा फ्टुवंशियोंके विनाशका समाचार सुनकर उन्होंने राज्यसिंहासनपर अधिमन्युके पुत्र परोक्षित्को बैठाकर भीमादि अपने सभी भाइयोंसहित विष्णुसहस्रनामका जप करते हुए स्वयं भी स्वर्गके मार्गका अनुगमन किया।

वासुदेव कृष्ण असुरोंको व्यामीहित करनेके लिये बुद्धरूपमें अवतरित हुए। अब वे कल्कि होकर फिर सम्भल प्रायमें अवतार लेंगे और घोड़ेपर सवार होकर वे संसारके सभी विधर्मियोंका विनाश करेंगे।

अधर्मको दूर करनेके लिये, सत्वपुण-प्रधान देवता आदिको रक्षा और दुष्टोंका संहार करनेके निमित्त भगवान् विष्णुका समय-समयपर वैसे ही अवतार होता है, जैसे समुद्रमन्थनके समय धन्वन्तरि होकर उन्होंने देवता आदिकी रक्षके लिये विश्वामित्रके पुत्र महात्मा सुश्रुतको आयुर्वेदका उपदेश किया।

इस तरह महाभारतकी कथा एवं भगवान्के अवतारोंकी कथाका मैंने वर्णन किया, इसे सुनकर मनुष्य स्वर्णको आयुर्वेद-प्रकरण

[गरुडपुराणका आपर्थेट-प्रकरण अत्यन्त महत्त्वका है। इस प्रकरणके प्रथम बीस अध्यायोंमें निदान-स्थानके विषय वर्षित है। किस कारणसे रोग उत्पन्न हुआ है और रोगके लक्षण क्या है जिससे रोगका निर्णय हो सके इत्यादि विषय 'निदान' सब्दसे अधिप्रेत हैं। इसके बाद लगभग चालीस अध्यायोंमें रोगोंकी निकलस-हेतु औषधियोंका निरूपण हुआ है तथा उन औषधियोंके निर्माणकी विधि बहायी गयी है। इस औपधिका यह अनुपान है, किस प्रकार इसका सेवन करना चाहिये आदि बनाया गया है। एक ही रोगके लिये अनेक औपधिक योगीको भी बताया गया है, पर यह सब किसी सुवोत्य वैद्यके परामशीसे ही करना उधित है।

उपलब्ध गरुडपुराणका पाठ कहाँ-कहाँ अस्पष्ट तथा खण्डित भी प्रतीत होता है। आयुर्वेदके आर्पग्रन्थींका आश्रय करके यधासम्भव अर्थ ठीक करनेको चेष्टा की गयी हैं, पाठकोंको इससे लाभ उठाना चाहिये- सम्पादक)

निदानका अर्थ तथा रोगोंका सामान्य निदान-निरूपण

आत्रेय आदि श्रेष्ठ मुनियोंने जिस प्रकार सभी रांगोंका निदान बताया है, बैसे ही मैं तुम्हें सुनाऊँगा। पाप्पा, न्वर, व्याधि, विकार, दु:ख, आमय, यक्ष्मा, आतङ्क, गद और आवाध-ये पर्यायवाची शब्द है।

रोगके ज्ञानके पाँच उपाय हैं-निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्म्राप्ति। निमित्त, हेतू, आयतन, प्रत्यय उत्थान तथा कारण-इन पर्यायोंसे निदान कहा जाता है अर्थात् निमित्त आदि शब्दोंसे जिस बस्तुका निश्चय होता है वही निदान है। दोष-विशेषके जानके बिना हो उत्पन्न होनेवाला रोग जिन लक्षणोंसे जाना जाता है, उसे पूर्वरूप कहते हैं। यह पूर्वक्रप सामान्य और विशिष्ट-भेदसे दो वाता है, उन लक्षणोंको अल्पताके कारण थोड़ा व्यक्त किंतु टीय-प्रकोपका भी कारण अनेक प्रकारके अहितकर होनेसे पूर्वरूप कहा जाता है। यही पूर्वरूप व्यक्त हो जानेपर रूप कहलाता है। संस्थान, ज्यञ्जन, लिङ्क, लक्षण, चिह्न और आकृति-ये रूपके पर्यायवाची शब्द है। हेत्-विपरीत, व्याधि विपरीत, हेतु-व्याधि उभय-विपरीत तथा हेतु-विपरीत अर्थकारी (हेतुके समान प्रतीत होनेपर भी जिपरीत क्रिया करनेवाला), व्याधि-विपरीत अर्थकारी और हेत्-व्याधि-उभय-विपरीत अर्थकारी औषध, अत्र तथा विहारके परिणाममें सुखदायक उपयोगको उपशय कहते हैं, इसोका नाम सात्म्य भी है। उपज्ञयके विपरीत अनुपन्नय होता है। इसका इसरा नाम व्याध्यसातम्य भी है। दोष जिस प्रकार (प्राकृत आदि विविध) निदानोंसे द्वित होकर (कथ्वं आदि भिन्न गतियोंके द्वारा शरीरमें) विसर्पण करते हुए (धातु आदिको द्वित कर) रोगको उत्पन्न करता है, उसे सम्प्राप्ति कहा जाता है। उसके पर्यायबाची शब्द हैं- जाति तथा आगति।

संख्या, विकल्प, प्राधान्य, बल और व्याधि कालको विशेषताओं के आधारपर उस सम्प्राप्तिके भेद किये जाते हैं।

धन्वनारिजीने कहा — हे सुन्नत! प्राचीन कालमें जैसे इसी शास्त्रमें बताया जावगा कि ज्वरके आठ भेद होते है (यह संख्यासम्प्राणि हुई)। रोगोत्पत्तिमें कारणभूत दोषोंकी अंद्रोतकल्पन (न्यूनाधिक्य आदि)-का विवेचन विकल्पसम्प्राणि, स्वतन्त्रता और परतन्त्रताद्वाय दोपीका प्राधान्य या अप्राधान्य-विवेचन प्राधान्यसम्प्राण्ति, हेत्-पूर्वरूप और रूपकी सम्पूर्णता अथवा अल्पताके द्वारा बल या अबलका विवेचन बलसम्प्राप्ति और दोषानुसार गाँत्र, दिन, ऋतु एवं भोजन (-के परिपाक)-अंश (आदि, मध्य और अन्त)-द्वारा रोगकालके ज्ञानको कालसम्प्राप्ति समझना चाहिये।

इस प्रकार निदानके सामान्य अधिधेयों (निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति)-का निरूपण किया गया। सम्प्रति उनका विस्तारसे वर्णन किया जायगा। सभी प्रकारका होता है। यह उत्पद्ममान रोग जिन लक्षणोंसे जाना रोगोंके मूल कारण (शरीरमें स्थित) कृपित दोप ही हैं। पदार्थीका सेवन है। यह अहितसेवन तीन प्रकार (असात्म्येन्द्रियार्थसंयोग, प्रजापराध तथा परिणाम)-का होता है, इर तीनों योगोंको पहले बताया जा चका है।

वात-प्रकोपका निटान

विक, उच्च, कटू, कषाय, अम्ल और रुक्ष खाद्याप्रका असंयमित आहार, दौडना, जोरसे बोलना, रात्रि-जागरण तथा उच्च भाषण, कार्योमें विशेष अनुरक्ति, भय, शोक, चिन्ता, व्यायाम एवं मैधन करनेसे शरीरके अन्तर्गत विद्यमान वायु प्रकृपित हो जाती है। विशेषत: यह वायु-विकार ग्रोष्म-ऋतके दिन तथा रात्रिमें भोजन करनेके परचात् पाकके अन्तमें होता है।

पित्त-प्रकोपका निदान

कर, अस्त, तोक्ष्ण, उष्ण, लवण तथा क्रोधोत्पादक एवं दाहोत्पादक आहार करनेसे पित्त प्रकृपित होता है। पित्तका यह प्रकोप शरद-ऋतुके मध्याह, अर्धरात्रि तथा अन्य दाह उत्पन्न करनेवाले क्षणोंमें विशेषरूपसे होता है।

कफ-प्रकोपका निदान

मधुर, अन्त, लवण, स्मिग्ध, गुरु, अभिष्यन्दी तथा शीतल भोजनींके प्रयोगसे, बैठे रहनेसे, निद्रासे, सुख-भोगसे, अजीर्णसे, दिवा-शयनसे, अत्यन्त बलकारक पदार्थींके प्रयोगसे, वमन आदि न करनेसे, भोजनके परिपाकके प्रारम्भकालमें, दिनके प्रथम भागमें तथा ग्राप्तिके प्रथम भागमें कफ कुपित होता है और दो-दो दोषोंके प्रकोपक आहार-विहारका सेवन करनेसे दो-दो दोष प्रकृपित होते हैं।

त्रिदोष-प्रकोपका निदान एवं सब रोगोंकी सामान्य सम्प्राप्ति

त्रिदोषके (यात-पिर्ने तथा स्लेप्मा— इन सभीके) प्रकृषित तथा मिश्रित स्वभावसे सन्निपातको उत्पत्ति होती है। संकीर्ण भोजन, अजीर्जतमें भोजन, विषम तथा विरुद्ध भोजन, मद्यप्तन,

मूखे ताक, कच्ची मूली, पिण्याक (खली), मृत्युवत्सर पूर्ति (सत्) युष्क, कृता, मांस तथा मत्स्यादिका भथण करनेसे, वात-पित एवं श्लेष्मोत्पादक विभिन्न पदार्थीक उपभोगसे, आहार्य अन्नका परिवर्तन, धातुजन्य-दोप, वात-पित, श्लेष्माका परस्पर मिलकर उपप्रव करनेसे शरीरमें यह विकार (सिनपात) उत्पन्न होता है। दूषित कच्चे अनका प्रयोग करनेसे, श्लेष्माजीनत विकारसे तथा प्रहाँक प्रभावसे, मिथ्या आहार-व्यवहारके योगसे, पूर्वजन्ममें संचित विभिन्न पापिक प्रभावका किये गये दुराचरणसे, स्त्रियोमें प्रसव-कालकी विकास तथा मिथ्योपचारसे शरीरमें सिन्नपातकी विकृति उत्पन्न होती है। इस प्रकार प्रकृपित वात आदि दोप रोगोंक अधिष्ठानोंमें जानेवाली रसवाहिनियोंक द्वारा शरीरमें पहुँचकर अनेक प्रकारके विकारोंको उत्पन्न करते हैं। (अध्याय १४६)

ज्वर-निदान

धन्यन्तरिजीने कहा—हे सुनुत। अन समस्त ज्वरोंकी विशेष जानकारीके लिये मैं ज्वर-निदानको यताऊँगा।

ज्यर रोगपति, पाप्पा, मृत्युराज, ओजोऽहान (ओजको खा जानेपाला), अन्तक (आयुको समान्त कर दैनेपाला). कुद्ध होकर दक्षके यजको विध्यांस करनेपाले क्दके तीसरे नयनसे उत्पन्न संताप, मोहमय, संतापाल्या तथा अपनारज (मिथ्या आहार-विहारमे उत्पन्न)—इन विधिन्न नामीसे नाना प्रकारकी योनियोंमें विद्यमान रहता है।

यह हाथियोंमें पाकल, अश्वामें अधिवाप, कुतोंमें अलर्क, मेथोंमें इन्द्रमद, जलमें नौतिका, औषध्योंमें ज्योति और भूखण्डोंमें क्रपर तामसे रहता है।

कफ-न्वरके लक्षण

कंपरते उत्पन्न होनेवाले ज्यरमें इदयमें मबराइट, वमन, खाँसी, शरीरमें ठंडक तथा अङ्गीमें सूजन हो जाती है। दोपोंके प्रकोप-कालमें ज्वरकी उत्पत्ति होने लगती है। (पर यह पहलेसे को उत्पन्न हो चुके हैं) बढ़ावपर आ जाते हैं (ग्रन्थकारका अभिग्राय यह है कि चिकित्सक इस स्थितिसे लाभ उठावें)। पहले वह कालपर विचार कों कि यह बात, चित्त, कफ—इन दोषोंमें किस दोषको प्रकृपित करनेवाला है। इस आधारपर रोगको समझनेमें मुनिधा हो सकती है। जिस तरह विशिष्ट कालके द्वारा रोगकी उत्पत्ति या वृद्धि देखकर यह रोग—वात आदि किस दोषसे उत्पन्न हुआ है, यह अनुमान कर लिया जाता है, उसो तरह उपशय (लाभ) और अनुपशय (हानि) से भी रोगको पहचाना जा सकता है। औषध, अन्न, विहार, देश, काल आदिसे उत्पन्न लाभको उपशय कहते हैं और इन्हीं औषध आदिका उपयोग यदि किसो रोगमें दु:खद हो तो उसे अनुपशय कहते हैं।

अत: किस प्रकारकी औषधि, अत्र आदिके सेवनसे रोगीको लाभ (उपशय) हो रहा है और किस प्रकारकी औषधि आदिसे हानि (अनुपशय) हो रहा है, इसपर विचार करनेसे चिकित्सकको रोग समझनेमें आसानी होती है।

निदान-प्रकरणमें कहे गये (किस औषधि और विहारके सेक्नसे) अनुपश्य (हानि) होती है और किन पदार्थोंके सेक्नसे उपजय (लाभ) होता है, यह देखकर दोधोंका अनुमान किया जा सकता है। अरुचि, अपरिपाक, स्तम्भ, आलस्य, इदयदाह, विपाक, तन्द्रा, वस्ति, विमदांचनय,

¹⁻ Melle No 21 13-1/

३-अन्दर्शनाज्य माधव ज्वर निरुप्र ७३

२-अ०६०नि०अ० २।१९—२३ (चिकित्सादर्स प्रीत एक १ वैद्य राजेक्ट्रणाम्बोक्त) ४-कफ-न्करके लक्षण, अ०६०अ० २।२२

लारका गिरना, मनका भरा होना, भुखका न लगना, मुखकी चिपचिपाहट, शरीरमें श्वेतता होना, उच्चताका रहना, शरीरका भारी लगना, अधिक पेशायका होना, शरीरकी जीर्जताका विशेष भान होना तथा शरीरको कान्तिमें मलिनताका आना-ये सभी आम ज्वाके लक्षण है।

भूखका न लगना, शरीरका हल्का हो जाना, यह सामान्य ज्वर है। जब ज्वरमें बात-पित तथा कफ-तीनी दोष बराबर बढते रहते हैं तो उसे परिपक्व अछह (निराम) ज्वरका लक्षण माना जाता है। दो दोपोंके लक्षणोंका संसर्ग होनेपर तीन संसर्गज-द्वन्द्वज ज्वर होते हैं।

वात-पित्त-ज्वरके लक्षण

सिरमें बेदना, मुच्छां, बमन, शरीर-प्रदाह, मोह, कण्ठ और मुखकी शुष्कता, अरुचि, शरीरके पर्व-पर्वमें टूटन, अनिद्रा, पनमें विश्वम, रोमाञ्च (सिहरन), बम्हाई एवं वात-प्रकोपसे त्वचामें शीतलवाकी अनुभृतिका होना-चे सभी लक्षण बात और पितको प्रवृत्तिके कारण उत्पन्न हुए ज्वरसे ग्रसित शरीरमें दिखायी देते हैं।

ज्वर-तापकी अल्पता, अरुचि, पर्वनेदना (शरीरके प्रत्येक जोडमें दर्द), सिरपीडा, बार-बार युकनेकी इच्छा, शास-कष्ट और खाँसी, चेहरेका रंग उड जाना, उंडक लगना, आँखोंके सामने दिनमें भी अन्धकारका छापा रहना और अनिदाका होना-ये सभी लक्षण कफ-वातजनित ञ्चरकी पहचान कराते हैं।

शरीरमें अनियत शीतलताका अनुभव, स्तम्भन, पस्रोनेका आना, दाहका होना, प्यासका लगना और खाँसीका आना, श्लेष्म एवं पित्तकी प्रवृत्ति, मृच्छां, तन्द्रावस्थामें तथा मुखमे कड़वापनका होना - ये सभी लक्षण श्लेष्य-पित्तवन्य न्वरके रूपका निर्धारण करते हैं।

वात - पित्त और रलेष्य-प्रवृत्तिजन्य सभी लक्षणोंके एक साथ सर्वज (सन्निपात) ज्वरका आकलन होता है। ऐसी अवस्थामें बार-बार ये सभी लक्षण प्रकट होते रहते है। इस ज्वरकालमें रोगीको छंडक लगती है, दिनमें महानिद्राकी स्थिति बनी रहती है, रात्रिमें नींद नहीं आती या सदैव निद्रा ही रहती है अथवा निद्रा ही नहीं आती। रोगीको अधिक पसीना छुटता है अधवा पसीना हो नहीं

आता। यह ऐसी अवस्थामें गीत गाता है, नाचता है या हास्यादिको क्रियाओंको करता है। उसकी सामान्य प्रकृति पूर्ण बदली हुई होती है। नेत्र मिलन एवं औसओंसे डबडबाये रहते हैं। औंखोंकी पलकोंके किनारोंपर लाली छायो रहती है और औखें खुली रहती हैं अथवा मुंदा रहती हैं। जारीरकी चिण्डली, पार्श्वभाग, सिर, संधि-स्थान तथा हड़ी-हड़ीमें बेदना होती है और बुद्धिमें भ्रम बना रहता है। दोनों कान ध्वनि एवं वेदनासे व्याप्त रहते हैं। ये अत्यधिक ठंडे हो जाते हैं अथवा अत्यधिक गर्म हो जाते हैं। रोगीको जिहा जली हुई-सी प्रतीत होती है अर्थात् कुछ लाल और कृष्ण वर्णके मित्रित भाषींसे युक्त तथा खुरदरी हो जाती है, उसमें स्नित्धता नहीं रह जाती। सम्पूर्ण शरीर एवं उसके संधि-स्थानोंमें भारीपन तथा शिथिलता आ जाती है।

रांगांके मुखसे रक्त-पितमिश्रित थुक निकलता है, सिर लुइक जाता है, अत्यन्त प्यास लगती है। शरीरके समस्त कोष्ट-प्रदेशोंका वर्ण श्याम और रक्त हो जाता है। उनपर यण्डलाकार धर्म्य दिखायी पडने लगते हैं। हदयमें व्यक्षा होने लगती है। आँख, कान, नाक, गुदा आदिसे निकलनेवाले चलको प्रवृति बद्ध जाती है अधवा अत्यन्त कम हो जाती है। मुख्यें फिराधता, बलको श्रीणता, स्वरभंग, ओजसय तचा प्रलापको स्थिति उत्पन्न होने लगती है। दोपपाक अर्थात् वात-पित्त और कफको वृद्धि शरीरके अंदर-ही-अंदर एक जाती है, जिससे शरीरको सामान्य गतिर्मे अवरोध आ जाता है, कण्ड घरघराने लगता है। शरीरमें तन्हाकी अवस्था रहती है और कण्डसे अल्पक शब्द निकलने लगते हैं। ऐसे लक्षणोंसे युक्त रोग शरीरमें अपना स्थान बना लेता है, उसको बलवार्य-विनाशक अभिन्यास-मित्रपात' नामक च्यर कहना चाहिये।

इस संत्रिपातिक न्वरमें वायु-विकारके कारण कण्डमें अवरोध उत्पन्न होनेसे पित आध्यन्तर-धागमें पोडा पहुँचाने सगता है और (विशेष मार्ग) नाक आदिसे सुखपूर्वक बिना प्रयासके ही बाहर निकलने लगता है। उसी पित-प्रभावके कारण नेत्र हल्दीके समान पीले पड़ जाते हैं। बात-पित तबा कफजन्य दोषके बढ़ जानेपर जब शरीरमें विद्यमान अग्नि तस्य बिनष्ट हो जाता है तो उस समय वह अपने

१-निरामन्वरका लक्षण (च०चि०अ० ३)

२-इन्डज व्यवका रूप अवहवअव २१२३-- २६

³⁻विदोपन्याका रूप अवह०अ० २।२०-३३

४-वेपमेन अधिन्याम न्वर-प्रकरण देखें।

सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त रहता है। यह सन्निपात-ज्वर असाध्य है। इसपर बड़ी ही कठिनतासे अधिकार प्राप्त किया जा आगन्तुकरूप आदि रूपजन्य प्रदामें वायुका प्रकोप ही प्रभावी सकता है।

इस समिपातका एक अन्य भी रूप है, जिसमें पित पृथक-भावसे स्थित रहता है। ऐसे ज्वरमें त्वचा और कोष्ठके अंदर दाह होता है अचवा यह स्थिति इस ज्यरोत्पत्तिके पहले भी शरीरमें हो सकतो है। उसी प्रकार जब वात और पितकी प्रवृत्ति शरीरमें बढ़ने लगती है, उस समय भी यह सन्निपात-ज्वर होता है। उस कालमें होत और दाहका प्रकोप शरीरपर होता है। उनसे मुक्ति प्राप्त करना प्राणीके लिये अत्यन्त कदिन है। शीतका प्रभाव शरीरपर पहले होनेसे पितके कारण मुखसे बफ निकलता है और सख भी जाता है। पितके शान्त होनेपर मुर्च्छा, मद और तृष्णा होती है। अन्तमें क्रमत: रोगीको तन्त्रा और आलस्य आ जाता है तथा अम्ल वसन होता है।

आगन्त-स्वरका लक्षण

अधियात, अधियोग, शाय तथा अधिचार-कमंसे आनेवाले चार प्रकारके जारको आगन्त-जार माना गया है। दाह आदिके कारण शरीरमें जब पसीना छटता है तो उसको अभियातज ज्वर कहा जाता है। अधिक परिश्रम करनेसे शरीरमें वाय प्राय: रकको प्रदक्षित करता हुआ पीडा, शोक तथा शरीरके सामान्य वर्णीको परिवर्तित करनेवाले पीडायुक्त ज्यस्को उत्पन्न कर देता है।

प्रयोगसे आये हुए सम्रिपात-ज्वरमें मुच्छा, सिरपीडा, वमन, कम्प तथा क्षय (शरीर-शैधिल्य)-का प्रभाव रोगीपर रहतः मस्तिष्क-भान्तिके लक्षण रोगीमें स्पष्ट होने लगते हैं। बहिराक्षणन्तरमें केवल बाहरी ताप होता है। इसमें तीव्र दाह और क्रोधजन्य संत्रिपातमें शरीर काँपने लगता है, मस्तिष्कमें मल आदिकी विवन्धता नहीं होती, इसलिये बहिराश्रय-ज्वर पीड़ा होती है। भय तथा त्रोकसे उत्पन्न हुए जारमें रोगी सुख-साध्य और अन्तराश्रयज्वर दु:साध्य होता है। प्रलाप करता है। कामजन्य प्वरमें भ्रम, अरुचि, दाह, वर्षा, शरद तथा वसना-ऋतुओंमें वात-पित और लजा. निद्रा, बृद्धि तथा धैर्यका हास हो जाता है। कफके प्रभावसे जो ज्वर उत्पन्न होता है, उसे प्राकृत-ज्वर

सन्तिपातिक ग्रहावेशादिके कारण उत्पन्न हुए ज्वर और रहता है। कोपजन्य ज्वरके कारण रोगीमें पित प्रकृपित हो उठता है। शाप तथा अभिचारकर्मके कारण जो ये दो सजिपात-च्चर प्राणीमें आते हैं, ये दोनों अत्यन्त भयंकर होते हैं। इन दोनों ज्वरोंको सहन करना रोगीके लिये अतिशय कटिन है। अभिचारजन्य ज्वर तान्त्रिकॉक द्वारा प्रयुक्त मन्त्रॉसे तरीरमें आता है। इसमें मन्त्र-प्रधावके कारण उत्पन्न किये गये असद्ध कष्टोंसे प्राणी संतप्त होता रहता है। इसी अभिनार-मन्त्रके द्वारा इसकी पूर्वावस्थाकी जानकारी करनी चाहिये, तत्पक्षात् सरीरपर विचार करना अपेक्षित है। उसके बाद रोगीमें उठे हुए संतापसे विस्फोट तथा दिग्धमित दाह, मुच्छे, बेतना आदिसे ज्वरका परीक्षण करना उचित होता है। अन्यचा उस रोगीमें सर्वप्रथम प्रदाह और मुच्छांका प्रकोप होता है। उसके बाद ज्वर प्रतिदिन बढता रहता है।

इस प्रकार संक्षेपमें आठ प्रकारका ज्वर देखा गया, किंदु वह विभिन्न प्रकारका होता है-यथा-शारीरिक, मार्नासक, सौम्य, तीक्ष्ण, अन्तर्याद्य, प्राकृत, लैकृत, साध्य, असाध्य, सामज्वर और निरामज्वर इसके विविध

ञ्चर होनेपर प्रथम लरीरमें शारीरिक, मनमें मानसिक न्वर आनेपर पहले मनमें अनन्तर शरीरमें ताप होता है। प्रकृतिक वायुके बाह्य-प्रभावसे नाक-कान तथा मुँह आदिके ग्रह-प्रभाव, औषधि-प्रयोग, विध-पान तथा क्रोध, द्वारा जो वायु ग्रहण की जाती है, उसके कारण कफ भय, शोक एवं कामजन्य भी सक्रियात-कर होता है। मिकित होता है, तब करीरमें शीत बढ जाता है। पिस-ग्रष्टावेशसे जो ज्वर उत्पन्न होता है, उसमें रोगी अकरमान मित्रित शरीर होनेपर शरीरमें दाह होता है। कफ तथा पित हँसने और रोने लगता है। औपधि और गन्ध-विशेषके दोनोंकी मिश्रित-अवस्थामें शीत और दाहका मिश्रित प्रभाव पड़ता है। इसलिये बात-कफ-च्यर सौम्य तथा वात-पित्त-च्या तीक्ष्ण होता है। अन्तराष्ट्रयञ्चरमें अनार्विकार अधिक है। विष-पानसे मुर्च्छा, अतिसार, पीलापन, दाह और होते हैं तथा तीव दाह और मल-मुत्रादिका विबन्ध होता है.

कहा जाता है (यथा वर्षांकालमें वातिक, शरत्कालमें पैतिक एवं वसन्तकालमें श्लैध्मिक ज्वरका प्राकृतिक प्रभाव रहता है।), वह साध्य है। इस वैकृत ज्वरका जो विपरीत रूप है, वह दु:साध्य माना गया है। प्राकृतिक ज्वर प्राय: वायुदोपके कारण होता है, यह भी दु:साध्य है। वायु वर्षाकालमें दोषयुक्त हो जाती है, उसके प्रभावके कारण पित एवं कफसे समन्तित ज्वर प्राणियोंमें होता है। शसकालमें पित-दोपजन्य ज्वरकी उत्पत्ति होती है। इस कालमें पित-दोपका अनगमन कफ करता रहता है, इसलिये इस कालके ज्वरमें पित एवं कफ दोनों मिलकर रोगीको कष्ट देते हैं। इस प्राकृतिक ज्वरसे मुख्य प्राप्त करनेक लिये भोजन न करनेसे रोगीको किसी अन्य रोगका भय नहीं रहता है। बसन्तकालमें कपा कृपित होकर न्वर उत्पन्न करता है। उसके पीछे ही बात एवं पितके दीय भी लगे रहते हैं। इस ज्वरमें उपवाससे हानि हो सकती है।

यदि रोगी बलवान हो और जार अल्प दोषसे उत्पन हुआ हो तथा कासादि दोष उपद्रवोंसे रहित हो तो सुख-साध्य होता है। जैसे रोगोंको जैसा ज्वर असाव्य होता है वह पहले बताया गया है। इसका उपद्रव हो जानेपर रोगीमें चिडचिडापन, मन्दारिन, बहुपुत्रता, अरुचि, अजीर्ण तथा भूख न लगनेके लक्षण उभर आते हैं, यही सामन्वर है।

तेज ज्वर होनेपर अधिक प्यास-प्रलाप, श्वास तका चक्कर आता है। नाक-कान, मुँह तथा गृदाभागसे मल निकलनेकी गति तेज होती है। उत्कलेश होता है, जिससे रोगीको कष्ट होता है। यह पच्यमान-क्वरका लक्षण है सामञ्चरसे विपरीत लक्षण होनेपर सात दिनका लंबन करना चाहिये, क्योंकि आठवें दिन ज्वर निराम हो जाता है।

मल', काल तथा बलायलके कारण ज्वर पाँच प्रकारका कहा गया है। यथा-- निरन्तर विद्यमान रहनेवाला, सततवाही ज्वर, दूसरे दिनतक रहनेवाला ज्वर, तीसरे और चौथे-होते हैं। इस ज्वरमें धातु-मृत्र और विद्याको शरीरसे बाहर

निकालनेवाले मार्ग मलव्यापी हो जाते हैं। इस समय ये सभी दक्षित होकर एक समान ही सम्पूर्ण शरीरको संतपा करते हैं तथा द्राय पदार्थों, देश, ऋतु और प्रकृतिद्वारा बढकर और बलवान भारी तथा स्तम्भ होकर स्सादिके आज़ित हो जाते हैं तथा प्रतिद्वन्द्वितासे रहित होकर बातादि दोष द:सह संतत-व्यको उत्पन्न करते हैं। अनल-धर्म-न्त्ररकी गर्मी, कभी मल और कभी धातुओंका शीघ्र हो धय कर देते हैं।

मल' और धातुओंके क्षयके कारणसे रसादि सप्त थाव, मल, मुत्र और तीनों दोष-इन बारह पदार्थीको व्यरको ऊप्ना सर्वाकार निःशोष करके कफको अधिकतासे उत्पन्न हुआ यह संतत-ज्वर सात, दस या बारह दिनमें या तो रोगीको छोड देता है या मार डालता है, यह अग्निबेशका मत है। इस विषयमें हारीतका यह मत है कि रोगीकी नीरोगता तथा मृत्युके लिये चौदह, अठारह तथा बाईस दिनतक त्रिरोचकी मर्यादा होती है।

धातुजन्य^व जुद्धता अथवा अजुद्धताके कारण यह संतत-च्या प्राचीके जरीरमें अधिक समयतक भी अवस्थित रह सकता है। दुवेल तथा ज्याधिमुक्त रोगीके मिख्याहारादि (अपन्य)-सेवनसे शरीरमें प्रविष्ट अल्प दोष भी अन्य दूसरे दोषोंसे शक्ति ग्रहणकर महाबलवान हो जाते हैं। जिस उपचार या पथ्यके कारण ऋर बढ़ता और घटता है, उसे प्रत्यनीक कहते हैं। यह ज्वर विक्षेप, क्षय तथा वृद्धिसे युक्त रहता है। उपर्युक्त मिध्याहारका सेवन करनेवाले मनुष्यके टेहमें बातारि दोषोंमेंसे कोई-सा बलवान दोप अपने प्रकोपकालमें संतत आदि ज्वर उत्पन्न करता है। परंत यह तभी सम्भव है, जब उसे अपने पक्षके किसी रसादि दृष्य पदार्थर्स सहायता मिले, सहायता न मिलनेपर वह बलहीन होकर श्रीण हो जाता है।

श्रीण हो रहे दोषसे युक्त ज्वर सुक्ष्म होता है, जो चार दिनतक रहनेवाला। विशेषत: ये ज्यर सित्रपातसे ही जारीरके अंदर विद्यमान रसादिक' सप्त धातुओंमें ही लीन रहता है। रस आदिमें सुध्यभावसे विद्यमान रहनेके कारण

१-अ०६०नि०अ० २—५, ६—५९, मु०अ०अ० ३९। २-अ०६०नि०अ० २, च०चि०अ० ३, ५३—५३। ३-अ०६०नि०अ० २—६३—६६। च०चि०अ० ३, सु०उ०अ० ३९। ४-रस. रक्त, मांस. मेदा, अस्थि, मजा तथा सुक्र- ये सात थातु शरीरको धारण करते हैं।

वह ज्वर शरीरमें कुशता, विवर्णता और जडतादिको उत्पन्न स्वीकार किया गया है। कर देता है। रसवाही स्रोतोंके मुख खुले होनेके कारण ज्वरको उत्पन्न करनेवाले दोष उन स्रोतोंमें प्रविष्ट होकर अधिक बननेवाले मलके द्वारा ज्वर जब मेदा-मजा-हड़ी सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो जाते हैं। इस कारण संतत-च्चर निरन्तर रहता है और उक्त हेतुके विपरीत होनेपर सम्पूर्ण स्रोत दरवर्ती सूक्य मुखवाले होते हैं। इसलिये स्वरको उत्पन्न करनेवाले दोष विलम्बर्भे प्रविष्ट होते हैं अर्थात सम्पूर्ण देहमें फैलने नहीं पाते, इसलिये विच्छित्र कालमें सततादि ज्वरको उत्पन्न करते हैं। अत: सततादि ज्वर संतत-ज्वरसे विपरीत होता है।

विषम' संज्ञक ज्वरका प्रारम्भ, क्रिया और काल विषम होता है तथा यह ज्वर दीर्घ कालानुबन्धी होता है, प्राय: रकात्रित दोष सतत-ज्यारको उत्पन्न करता है। यह ज्या अहोरात्रमें दो बार होता है अर्थात दिनमें एक बार, रातमें एक बार अथवा कभी दिनमें दो बार, रातमें दो बार। जब दोष मांसवाही नाडीमें आश्रित होकर अन्येद्य नामक विषम न्यरको उत्पन्न करता है, तब यह दिन-एतमें एक बार होता है। उसी ज्वरके प्रभावमें जब मांसवाही एवं पेटावाही नाडियाँ भी प्रकृपित दोषके संसर्गमें आ जाती हैं, वह लक्षण तृतीयक (तिजरिया) ज्यरके अन्तर्गत मान लिया

तृतीयक न्यर तीन प्रकारका होता है- वात-पिसाधिक्य कफ-पिताधिक्य और वात-कफाधिक्य। प्रथम दिन पित और वायुके प्रकृपित होनेसे ज्वर मस्तकका ग्राही हो जाता. है। दूसरे दिन कफ तथा पित्तके प्रकोपसे वह रोडको हड्डीमें प्रविष्ट हो जाता है और तीसरे दिन वाय एवं कफसे द्वित होनेसे वह ज्वर सम्पूर्ण पीठपर अधिकार कर लेता है।

यात-पित और कफजन्य दोषके कारण शरीरके अंदर तथा अन्य स्थितियोंमें पहेंच जाता है, तब उसको चतुर्थक न्वर कहा जाता है। लौकिक भाषामें इसीको लोग 'चौथिया बुखार' कहते हैं। जब यही ज्वर मजाभागमें प्रविष्ट होता है तो यह दूसरे प्रकारका हो जाता है और इसका प्रभाव भी शरीरपर दूसरी रोतिसे पहला है।

वाव्याधिक्यमे सिरमें वेदना होती है। कफाधिक्यसे जेपामें प्रारम्भ होती है। उक्त सिर एवं जंघामें वेदना होकर हो ज्वर चढता है।

तदनन्तर वह अस्थि एवं मजामें जाकर अवस्थित होता है। इसी कारण इसको चतुर्थक ज्वरका विपर्यय^९ (दसरा) रूप माना जाता है। यह जार अपने संतापकालमें एक दिनका अन्तराल करके रोगीपर तीन दिनतक तीन प्रकारसे अक्रमण करता है। यह अस्थि और मजा-हन दो धातुओंमें आश्रित होनेके कारण लगातार तीन दिनतक रहकर बीचमें एक दिन छोड़कर आता है और फिर तीन दिन लगातार रहता है। बलाबलके प्रभावसे वात-पिन तथा कफजन्य टोप अथवा अन्य विकृत चेष्टाओंको जन्म देनेवाले विकारोंको परिपक्व-स्थितिके आ जानेपर रोगीको सात दिनका लंघन करना चाहिये।

इसी तरह जिस जिस समय रजीगुण एवं तमीगुणके कारण मानस दोष और मानस कार्यका बलाबल होता है, उसी-दसी समयमें यह सततादि ज्यर दत्पन्न होकर चढता-उत्तरता रहता है।

उस प्रत्येक कालमें रोगीके कमंका प्रभाव दिखायी देता अर्थात पित और वायके प्रकृपित होनेसे ज्वर-प्रभावके हैं। सत्रिपातके द्वारा सम्भूत कारणसे गुम्भीर धातुओंमें कारण पहले दिन रोगीका मस्त्रक जलने लगता है और समाहित दोवोंकी प्रबलता होनेपर यह चतुर्थक प्र्यर अत्यन्त उसमें पीड़ा होती है। दूसरे दिन कफ तथा पितके प्रकृपित कठिन चिकित्साकी अपेक्षा करने लगता है अर्थात ज्वरका होनेसे रीढकी हड़ीमें दर्द होता है, तीसरे दिन बाय एवं समन, चिकित्सकके लिये दस्साध्य हो जाता है। दरतम कफके दोषजन्य प्रभावके बढ़नेसे रोगीको ताप तो होता हो। देश-काल और अवस्थाके अनुसार सुक्ष्मातिस्क्ष्म रूपसे है, किंतु उसकी समस्त पीठमें पोड़ा होती है। यह ज्यर ज्यरका शरीरमें जो संक्रमण होता है, रक्तांदिक मार्गोमें जो एक-एक दिनका अन्तराल छोडकर शरीरके तीनों भागोंको दोष बहुत समय पहलेसे भीरे-भीरे अल्पमात्रामें प्रभावी प्रभावित करता है. इसीलिये इसको 'एकाहान्तर' नामसे होता है, वह सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त नहीं होता (अतएव वह

एक दिन मरीरपर अपना पूर्ण अधिकार कर लेता है) और ही हैं, उसके अतिरिक्त श्वास, अङ्गविक्षेप, अस्पष्ट-ध्वनि, उसी दोषके कारण वह ज्वर प्राणीमें संतापादिके कट्टोंको उत्पन्न करता है। अत: प्राणीको प्रयतपूर्वक यथोपचारसे उस ज्वरका विनाश कर देना चाहिये. अन्यया वह असाध्य हो जाता है। ज्याका सामान्य लक्षण तो यही है कि वह शरीरमें तापसे युक्त होकर अनुभूत होता है।

वियमगतिसे प्रारम्भ होनेवाला ज्वर वियम कहा जाता है। यह विषम ज्वर मध्यरात्रिकालतक अपने पूर्ण वेगमें रहता है। उसके बाद उसकी गति और शक्ति दोनों मन्द हो जाती है। उसी कालके अनुसार वह शरीरके रसादियर अपने दोषका प्रभाव डालता है और धीर-धीरे निष्प्रभावी होता है। ऐसा प्रकृपित दोष प्राणीको अधिकतम समयतक अस्यस्य रखता है। जैसे भूमिमें जलसे सिंचित बीज अंकुरणके लिये समयकी प्रतीक्षा नहीं करता, वैसे ही (बात-पित्त तथा कफजन्य) दोषका बीजरूप स्वयंको शरीरमें प्रकट करनेके लिये समयको प्रतीक्षा नहीं करता। जिस प्रकार विष येगपूर्वक शरीरके आमाशयमें जाकर बलवान होकर क्रद्ध हो उठता है, उसी प्रकार शरीरमें स्थित दोष भी यथासमय जक्ति-सम्पन्न होकर स्वास्त्वपर क्रोध करता है। इसी प्रकार सततादि ज्वर भी जरोरमें विषय भावको प्राप्त कर लेते हैं।

अधिक' कष्टका होना, शरीरका भारी लगना, दीनता, अङ्ग-भङ्ग (शरीरका ट्रांग), जैंभाई, अरुवि, वसन और श्वासका फुलना आदि ये दोष सभी रसगत ज्वर होते हैं। जब ज्वर रक्तगत र संवित हो जाता है तो उस अवस्थामें रोगीको रक्तका वमन, प्यास, रुखता, ऊष्णता, जरोरपर छोटी-छोटी पीडिकाओं (दानों)-का निकलना, दाह, लालिमा, भ्रम, मद तथा प्रलापका उपद्रव होता है। मांस और मेदामें ज्यरके संबित होनेपर तृष्णा, ग्लानि, कान्तिमन्दता,

बाह्य शीतलता और हिचकीके दोषकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है। जुक्रमें दोषके संजित होनेपर रोगीको दिनमें भी अन्धकार दिखायी देता है, शरीरके मर्नोमें छेदने-जैसी पीडा होती है। जननेन्द्रियके स्तब्ध होनेपर निरन्तर उससे वीर्य बहता रहता है। प्राय: ऐसी अवस्थामें जुक्रगत हो जानेपर रोगीकी मृत्य होती है। वस्तुत: रस, रक्त, मांस, मेद तथा मजागत-ये पाँचों ज्वर उत्तरोत्तर दस्साध्य होते हैं।

मन्द ऋर होनेपर सम्पूर्ण शरीर कफद्वारा भारीपनके दोषमे मॅलिप्त रहता है। रोगी प्रलाप करता है, उसकी शौतलताकी अनुभृति होती है तथा उसके सभी अङ्ग शिधिल हो जाते हैं। जब शरीरमें नित्य ही मन्द ज्वर होता है तो शरीरमें सुखापन रहता है, रोगी शीतलताका अनुभव करता है और शरीरमें दुर्बलता आ जाती है तथा श्लेष्माकी अधिकता हो जाती है।

जिस न्यरमें शरीर इल्टीके वर्णका हो जाता है और पेटाब भी पीला हो जाता है, उसको हरिद्रक प्यार कहा जाता है. यह यमके समान मारनेवाला होता है।

जिसके शरीरमें कफ और वात समान रूपमें रहते हैं तथा पिछकी कमी होती है, उसमें यह ज्वर दिनमें मन्द वेगसे एवं राजिमें तेज हो जाता है तथा इसे राजिम्बर कहते हैं।

व्यापामके कारण दिवाकरके शक्ति संचय न करनेसे जब रोगीका लरीर लुष्क हो जाता है तो वातको अधिकताके कारण रोगीके शरीरमें सदा रातमें ज्वर रहता है, उसे पौर्वरात्रिक ज्वर कहा जाता है।

इस ज्वामें स्लेष्मा पित्तके नीचे आमाशयमें स्थित रहनेपर आत्मस्य होकर रोगोका आधा शरीर शीतल और आधा ऊष्ण रहता है। ज्यरके समय रोगीके शरीरमें जब पित्त परिव्याप्त रहता है तथा श्लेष्या अन्तमें स्थित रहता अन्तर्दाह, भ्रम, अन्धकारदर्शन, दर्गन्ध, गात्रविक्षेपका दोष है। इसलिये उसका शरीर ऊष्ण और हाथ-पैर ठंडे रहते उरपत्र हो जाता है। ज्वरके अस्थिगत होनेपर पसीना, हैं। रस और रक्तमें आश्रित तथा मांस एवं मेदामें स्थित ज्वर अधिक प्यास, वमन, दुर्गन्धिकी प्रतीति, चिडचिडापन, साध्य है। हड़ी और मजामें स्थित ज्वर कष्ट-साध्य है। ज्वर प्रलाप, ग्लानि तथा अरुचि एवं हड्डियोंमें तोडने-जैसी पौडा जिस-जिस अङ्गमें रहता है, उसे कान्तिहीन कर देता है। होती है। ज्वरके मजागत हो जानेपर उन्ह दोष तो होते इस ज्वरमें रोगी संज्ञाहीन, ज्वरके वेगसे आर्त और क्रोधयुक्त रहता है। रोगी सदा दोष-समन्त्रित उच्च मलका वेगपूर्वक परित्याग करता है।

न्वरके' सान्त होनेपर शरीर लघु (हरूका) हो जाता है, थकान, मोह और संताप दूर हो जाता है, मुखर्में छाले पड़

जाते हैं, इन्द्रियोंमें निर्मलता आ जाती है, पौद्धा नहीं रहती, शरीरमें उचित पसीना छूटता है, भूख लगती है, मन स्वस्थ तथा प्रसन्न हो जाता है, अन-ग्रहणकी इच्छा होने लगती है तथा सिरमें खुजलाहट होती है। (अध्याय १४७)

रक्त-पित्त-निदान

धन्यनरिजीने कहा—हे सुशुत! अब इसके बाद में रक्त^र-पित्तके निदानका विधिवत वर्णन करता हैं।

अत्यन्त उष्ण, तिक्त, कटु, अमल, नमक आदि जो पेटमें विशेष प्रकारका दाह उत्पन्न करनेवाले पदार्थ हैं और कोटो, उदालक आदि गरिष्ठ अन्नसे बने भोजन हैं तथा अन्य पित्तवर्धक शाक-पात हैं, उन सभीका अधिक सेवन करनेसे शरीरमें पूर्वसे स्थित पितालमक द्रव कृषित हो उठता है और परस्परमें मिलकर वह रक्तपर दूषित प्रभाव हालता है। जिससे शरीरका एक दूषित हो जाता है, उन्हों भोज्य एवं पेय पदार्थींक प्रभावसे पित्त और एक एक-सा रूप धारण करके सम्पूर्ण शरीरपर अधिकार कर लेते हैं। संसर्ग-दोषक कारण विकृत हुए रक्त-पित्त-गन्ध-वर्ण तथा दोष-प्रवृत्तिमें एक अनुरूपता होनेपर भी उसको रक्तं नामसे ही जाना जाता है। वह दूषित रक्तं प्लोहा तथा सकृत भागवाले कोष्ठसे उत्पन्न होता है। इस कारण उसका नाम एक-पित्त है।

रक पित्तका दोष निम्नलिखित उपह्रवोंसे बाना जा सकता है। मस्तिष्कमें भारीपन, अरुचि, जीतल पदार्थके सेवनकी इच्छा, कण्ठसे धूम निकलनेका आभास तथा अम्लतायुक्त डकारोंका आना, वमन, वमनमें दुर्गन्थ, खाँसी, श्रास, भ्रम, थकान, लोहा, रक्त तथा महलोकी-सी गन्थ, स्वरमें श्रीणता, नयनादि अङ्गोमें लालो, हल्दोकी तरह पीलापन अथवा हरापन होना, नोले, लाल और पोले रंगमें भेदका न मालुम होना और स्वप्नमें भी लाल रंग दिखायो देना—ये लक्षण रक्त-पित्तरोग होनेवालेमें पाये जाते हैं।

रक-पित तीन प्रकारका होता है—कर्ष्यगमी, अथोगामी और उभयगामी। इनमेंसे कर्ष्यगमी रक्त-पित दोनों नाकके छिद्रों तथा आँखों, कानों और मुख—इन सात द्वारोंसे निकलता है, अथोगामी कुपित रक्त मूत्रेन्द्रिय, योनि और गुदासे निकलता है और उभयगामी रक्त-पित समस्त रोमकूपों एवं पूर्वोक्त दसों द्वारोंसे निकलता है। कथ्वंगामी साध्य रक-पित-कफको अधिकतासे निकलता है। इसलिये इसका साधन विरेचन है। पित्तशान्तिको बहुत-सी औषधियों हैं, उनमें सबसे प्रधान विरेचन है तथा रक-पितका अनुबन्धी कफ होता है और कफको औषधि भी विरेचन हो है। फान्ट आदि कषाय, मधुर रसयुक्त होनेपर भी रोग-नाकक होनेके कारण बातादिके दोपसे रहित कफवाले रोगोंके लिये हितकारी होते हैं। ऐसी स्थितिमें कटु, तिक और कषाय द्व्य जो स्वभावसे हो कफका नाम करनेवाले हैं. ये अत्यन्त लाभप्रद होते हैं। अधीगामी रक-पित-वातसे उत्यन होनेके कारण याज्य (साध्य) होता है। इसकी विकित्सा बमन है। पित्तको चिकित्सा अल्प होनेके कारण बमनसे खेल औपधि नहीं है। रक-पित्तका अनुबन्धी वात है। इसोलिये बमन बातका शमन नहीं करता। इसलिये रक-पित्त दोषमें सधुर कषाय हो हितकारी होता है।

सरीरमें कफ तथा वायुके संसूष्ट होनेपर एक-पित्तवनित उभयगामी रक-पित्त असाध्य हो जाता है। प्रतिलोम होने और औषधिसे असाध्य होनेके कारण यह रोग असहा होता है। प्रतिलोम होनेके कारण इस दोषका कोई प्रतिकार नहीं है। रक-पित्त रोगमें शोध प्रतिलोम (रोगका उल्टा) उपाय ही बतलाया गया है। रोगका इसी तरहसे संजोधन और उपशयन सम्भव है।

वात'-पित तथा कफ आदि दोषोंके एक-दूसरे दोषमें संसूष्ट हो जानेपर सब प्रकारसे शमन आविध ही हितकारी होती है। इस रोगसे रक्षा करनेमें शिरावेध परीक्षणविधि ही दिखायों देता है। वस्तुत: ऐसे दोषोंमें होनेवाले उपद्रव विकारको लक्ष्य करके ही शरीरपर प्रभावी होते हैं। अत: रोगीक शरीरमें दृष्टिगत उपद्रवोंसे अन्य विकार न उत्पन्न हों, उसके पूर्व ही उनका शमन तथा परीक्षण करा लेना चाहिये। (अध्याय १४८)

non-Silvery

१-अव्हर्भ निदान २१७९, सुव्यवकार ३९१२ स्वत्निकार २, सुव्यव ४५—५२१३-एवस्विकार ४, अव्हर्कार ३१ ४०स्वयवस्य ४५, सर्वाचिकार २, सुविकार ३४

कास (खाँसी)-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा-कास (खाँसी)-रोग यथाशीध प्राणीपर अपना कुप्रभाव दिखाता है, इसलिये उसी रोगको अब कहा जायगा।

खाँसी वातज, पित्तज, कफज, शतज तथा धावु-श्रयज होनेसे पाँच प्रकारकी मानी गयी है। यदि इन पाँचोंके विनाशको उपेक्षा कर दी जाती है तो ये क्षयको उत्पन्न कर देती हैं, यह उत्तरोत्तर बलवान हो जाती हैं। इसका भावी रूप इस प्रकार होता है-

कासरोग होनेपर कण्ठमें खुजलाहट और अरुचि होते है। कान, मुख तथा कण्डमें शुष्कता आ जाती है। शरीरपें वायु प्राय: अधोगामी होता है। इस रोगमें ऊर्ध्वनामी होकर वक्ष:स्थलमें जा पहुँचता है, वहाँ अभिपात करते हुए वाय कण्तमें रोगकी सृष्टि करता हुआ परितष्क तथा रक्तवाही आदि शरीरके तेरहों स्रोतॉर्मे जाता है। वदननार सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गीमें प्रथिष्ट होकर आक्षेत्र एवं उनकी कष्ट पहेंचाता है।

इसका प्रकोप होते ही नेजीमें उत्खेप करता हुआ और पीठ तथा इदय एवं पार्शीमें पोड़ा उत्पन्न करता हुआ मुखसे निकलता है। बोलनेमें^र भी रोगीको कर होता है. फटे हुए काँसेकी ध्वतिके समान मुखसे याची निकलती हैं, हृदयके पार्श्वभाग तथा शिरोभागमें पीड़ा उठती है, मोड और क्षीभ होता है एवं स्वरभंग हो जाता है।

यह रोगीको अत्यन्त तेज पीडाके साथ सुखौ खाँसी खाँसनेके लिये विवस कर देता है। रोगीको रोमाझ हो जाता है। खाँसनेपर बड़ी ही कठिनतासे अंदरसे सुखा हुआ कफ बाहर निकलता है, जिससे खाँसी कुछ कम हो जाती है।

पित्तजन्य^र कास होनेसे नेत्र पीले पड जाते हैं, मुखमें तीतापन रहता है, ज्वर और ध्रम होता है, रोगी पिस तथा रक्तसंत्रित वमन करता है, उसे प्यास लगती है, कण्डसे निकलनेवाली ध्वनि इटी रहती है, उसको सब ओर धुओं-ही-धुओं दिखायी देता है और धुमायित एवं खड़ो हकार आती है तथा उसमें एक प्रकारका मद छाया रहता है। जब रोगीको खाँसीका वेग आता है तो उसी खाँसीके बोच दिखायी देता है।

कफजन्य कासरोग होनेपर वक्ष:स्थलमें सामान्य वेदना होती है, सिरमें भारीपन तथा हृदयमें जकड़न आ जाती है। कण्डमें किसी द्रव्य पदार्थके लेपका अनुभव होता है। एक प्रकारका मद-जैसा शरीरपर छावा रहता है तथा पीनस. वमन् अरुचि, रोमाञ्च और यने स्निग्ध कफकी प्रवृत्ति होती है।

युद्धादि अत्यन्त साहसिक विभिन्न कमौको करनेवाले लोगोंद्वारा जब शक्तिसे अधिक कर्म किया जाता है तो उससे वधःस्थलमें धत हो जाता है। पित्तसे अनुगमित होकर वाय बलवान् हो जाता है। तदनन्तर उसके कारण रोगीको खाँसी आने लगती है, जिसके द्वारा मुखसे रक्तसंत्रित कफ अधिक निकलता है। प्राय: यह कफ पीला, चिंगल, शुष्क, प्रथित (लोधडेको भाँति) और अत्यन्त द्रित होता है।

इस रोगर्मे रोगी रुग्ण-कण्डसे कफरूपी मलको बाहर निकालता है, वायुदोपके कारण हृदय फटा-सा प्रतीत होता है और करीरमें सहयोंके चुधने-जैसे कप्रकी अनुभृति होती है तथा कष्टकारी शुलके आधातसे पर्मस्थलमें षीडा होती है, रोगीके पर्व-पर्वमें दर्द होता है और फार भी रहता है। उसकी साँस फुलती है। प्यास बद जाती है। उसकी वाणीमें स्वर-भंग होने लगता है तथा शरीरमें अम्पन रहता है।

रोगी? इस रोगमें कब्तरके समान कहरने लगता है। उसके पार्श्वभागमें जुल उठने लगता है। कफादि विकारोंके कारन उसको बमन होता है। उसकी शक्ति श्रीण होने लगती है और शरीरका वर्ण कान्तिहीन हो जाता है।

राजयक्ष्मारोग होनेसे रोगीका शरीर श्रीण होने लगता है। उसके पेशाबमें रक्त आता है। सौस फुलनेसे पीठ और कमरमें पोड़ा होती है। जिनको शास्त्रमें आय कहा गया है. वे आयुरूपी धातुएँ शरीरमें प्रकृषित होकर दीडने लगती हैं। यक्ष्मासे पोडित रोगी घरको खाँसी और खखारसे भर देता है। वह खखार (पीब)-के समान दर्गन्धयुक्त तथा हरे और लाल रंगका होता है। ऐसे रोगोको सोनेमें विशेष कष्ट होता है अर्थात सप्तावस्थामें भी रोगीको कष्ट होता रहता है। यह आखिंके सामने चमकता हुआ छोटा-छोटा प्रकाशपुत्र रोग रोगीके हृदयको गिरते हुएके समान कष्ट देता है। अचानक रोगीमें उच्च और शीतल भोजन एवं पेय-पदार्थ

ग्रहण करनेकी इच्छा होने लगती है। वह बहुत खाता है। रहती है। उसके नेत्र भी शोभा-सम्पन्न रहते हैं, किंतु रोगके बलवान् होनेके बाद सभी विनाशकारी राजयक्ष्माके लक्षण रोगीके शरीरमें जन्म लेते हैं।

क्षयजन्य कासका रूप ऐसा ही है। इस रोगसे श्रीण हुए शरीरवाले रोगियोंकी पृत्यु निश्चित ही हो जाती है अथवा रोगियोंके बलवान् होनेपर यह रोग याप्य-साध्य रहता है। क्षतजन्य कासरोग भी उसी प्रकारका होता है। कास जब रोगीपर अपना प्रथम कुप्रभाव दिखाना प्रारम्भ करे, उसी कालमें इसकी चिकित्सा अपेक्षित है।

रोगीमें उपचारका सामध्यं होनेपर यह रोग साध्य भी उसका बल श्रीण होने लगता है। मुखपर स्निग्धता बनों है। अतः रोगोको यथासामर्थ्य इस रोगका उपशमन अवश्य करना चाहिये, किंतु उपचार प्रारम्भ करनेके पूर्व उसके वात आदि सभी प्रकारोंपर विचार करके ही पृथक्-पृथक् रूपसे प्रयोज्य औषधि तथा पथ्यापथ्य आहार ग्रहण करना हितकर होता है। वृद्ध प्राणीके शरीरमें जो मिश्रित भावसे वातजादि कासरोग होते हैं, वह याप्य है। उनकी उपेक्षा करनेसे खाँसी, श्रास, श्रय, वमन तथा स्वरभंगादिक प्रतिश्यायका प्रकोप होता है। इसकी उपेक्षा करनेसे कासरोग असाध्य हो जाता है। इसलिये शोध ही इसका उपचार कर लेना चाहिये। (अध्याय १४९)

श्रामरोग-निदान

धन्यन्तरिजीने कहा—अब मैं श्वासरोगका निदान कह

कासरोगके परिपक्त हो जानेपर उसीसे शरीरमें धासरोगकी उत्पत्ति होती है अथवा प्रारम्भकालमें बात-पित्त तथा कफजन्य दोवोंके प्रकृपित होनेसे यह रोग उत्पन्न होता है इस रोगका प्रादुर्भाव आनातिसार, वयन, विषयान और पान्डू-रोग एवं ज्वरसे भी हो जाता है। भूति-ग्रहण, भूप तथा शीत वायुके सेवन करनेसे भी इस रोगका जन्म हो सकता है। मर्मस्थलमें आधात पहुँचनेसे और बफॉले जलका प्रयोग करनेसे भी शरीरमें इस रोगका प्रकोप हो जाता है।

यह रोग क्षुद्र, तमक, छित्र, महान् तथा ऊर्ध्या नामसे पाँच प्रकारका माना गया है। कफके द्वारा सामान्य हंगसे शरीरमें अवरोधित गतिवाला सर्वव्यापी वायु प्रानवाही, जलवाही, अनवाही तथा रक्त-पितादिजन्य स्रोतोंको प्रकृतित करता हुआ जब हृदयमें स्थित हो जाता है, तब वह आमाशयमें श्वासरोगको उत्पन्न करता है।

हृदय और पार्श्व (बगल)-भागमें जुल उठता है, प्राणवायु कुछ क्षणके लिये सुखका अनुभव कर सकता है। शरीरमें प्रतिलोम-गतिसे प्रवाहित होने लगती हैं, रोगीके मुखसे पीडाके कारण बराबर आह-आहको ध्वनि श्वासके प्रकीपसे अत्यन्त कष्ट होनेपर रोगी सो जाता है। निकला करती है, फूटे हुए शङ्कको बजानेसे जैसी ध्वनि यदि बैठ जाता है, तब वह अपनेको कुछ स्वस्थ अनुभव

प्रकट होती है, बैसी ही ध्वनि रोगीके शरीरकी पीड़ाके

पाय: सरीरमें इन लक्षणींका उद्भव अधिक भोजन करनेसे होता है। अधिक भोजन करनेके दोषसे प्रेरित वायु स्वयं मलसे पुक शुद्र शासको प्रेरित करता है अर्थात् अधिक भोजन करनेसे रोगोको साँस फुलने लगती है और उसे मल-विसर्जन करनेको इच्छा होती है। ऐसी स्थितिमें कफके अवरोधको पार करके वायु प्रतिलोम-भावसे शिरोधागर्मे प्रयेश करता है, जिससे वह हृदयमें पहुँचता है और वहाँ आमाशयमें जाकर श्रासरोगको बल देता है।

वह वायुर-प्रकोप उस समय सिर, गला और हदयभागको अपने अधिकारमें लेकर पार्श्वभागोंमें पीड़ा उत्पन्न करता हुआ खाँसी, पुरपुराहट, मुच्छां, अरुचि और पीनस तथा तुषाका उपद्रव शरीरमें प्रकट करता है। प्राणींको संतप्त करनेवाली साँस अल्पन्त नेगसे चलने लगती है। यद्यपि खाँसोके द्वारा कण्डमें आये हुए दुषित कफको थूकनेसे इस रोगका पूर्वरूप इस प्रकार होता है—रोगोंके तात्कालिक कुछ शान्ति रोगोंको प्राप्त हो जाती है और यह

शासके प्रकोपसे रोगीको प्राणघातक कष्ट होता है।

१-अवहर्तनिवअव ३, ३६-३७, मुव्यव ५२। २-अवहर्वनिवअव ३, चवन्तिवअव १८, मुव्यव ५२। ३-अवहर्व निवअव ४, नवन्तिवअव १७, मुव्डवअव ५१, अस्युवनिविवदर्श पृष्ठ ४१। ४-चवन्तिवअव २१, अवहवअव४— ३

करता है। इस प्रकृपित रोगके कारण रोगीको कष्टाधिक्यके मानसिक तथा वाचिक महत्त्वसे रहित हो उठता है। वह कारण आँखें अपरकी ओर निकलती हुई प्रतीत होती हैं. मस्तकसे पसीना सूटने लगता है और रोगी अत्यन्त कातर हो उठता है। बार-बार श्वास आनेसे रोगीका मुँह सुख जाता है। वह काँपता है और उच्च आहार या पेय पदार्थके सेवनकी अधिलाया करता है। मेच चिरनेपर, वर्षा होनेपर, शीत गिरनेपर एवं पूर्वी हवा चलनेपर तथा कफकारक आहार-विहार करनेपर श्वासका नेग बढ जाता है।

यदि बलवान मनुष्यके शरीरमें तमक नामक श्रासरोग होता है तो वह याप्य-साध्य होता है। प्रथम दृष्ट्या तो ज्वर और मुच्छांसे युक्त होनेपर रोगीके इस तमक श्रासका उपशमन शीतल द्रव्य पदार्थोंसे ही करना चाहिये। ऐसे रोगके उपभेदमें रोगी खाँसी और श्रासके प्रकोपसे प्रस्त शरीरसे निबंस तथा मर्गस्थलको पौडासे अल्पन द:खी रहता है। उसे अधिक पसीना आवा है, मुच्छां होती है, पीडासे वह कराहता रहता है, उसके मुत्रशयमें जलन एवं पेशाब (मुत्र) रुक-रुककर होता है। विश्वमका प्रकोप होता है। रोगीकी दृष्टि अधीगति रहती है, अधिक कष्ट तथा तापके कारण आँखें अपने स्थानसे निफलती-सी प्रतीत होती हैं, उनमें चिकनापन तथा लालिमा छा जाती है, मुख तेज नष्ट होकर चेतना भी नष्ट हो जाती है तथा वह मृत्युको प्राप्त हो जाता है।

महोश्वासका रोग-प्रभेद होनेपर रोगी अपने शारोरिक, मृत्युकारक बन जाते हैं। (अध्याय १५०)

दीन व्यक्तिके समान प्रतीत होता है, श्वासमें पीडाके कारण आवाज तया गलेमें घड्घड़ाहट होती है। यह मतवाले साँडके समान रात-दिन धृलिधुसरित होकर हुँकारके साथ बास छोडता है तथा जान-विज्ञानसे रहित हो जाता है। उसके नेत्र और मुखपर भ्रान्तिको अवस्था आ जाती है। नेत्रींसे वह किसी वस्तुको सत्यरूपमें जान नहीं पाता। उसकी जिडामें खाये गये द्रव्य पदार्थीके स्वादको बतानेकी त्रांकि नहीं रह जाती। उसके नेत्रोंमें झपकी चढ़ी रहती है। मुत्रके साथ रोगीका तेज भी निकलता है। उसकी वाणी मुखसे टुटी-फुटी निकलती है। रोगीका कण्ड सुख जाता है। उसकी बारम्बार साँस फुलती है। उसके कान, गला और सिरमें अल्बन चीड़ा होती है। जिस रोगीकी लम्बी-लम्बी ऊर्ज गतिवाली साँस निकलती है, वह अपने धासको नीचेकी और ले जानेमें समर्थ नहीं हो पाता।

इस महाश्रासके शेगमें रोगीके मुख और कान कफसे भरे रहते हैं। शरीरका प्रकृषित वाय उसे बहुत ही कष्ट देता है। अब मैं क्रथ्वं शासके भेदको समीधा कर रहा है। इस रोगमें रोगो चारों ओर अपनी दृष्टिको फेंकता हुआ भ्रान्ति प्राप्त करता है। मर्म छेदनेकी-सी बेदना होती है और वाणी सख जाता है। कहके कारण रोगी प्रलाप करता है। ऋरीरका एक जाती है। इन तीनों प्रकारके श्वासीके लक्षण जबतक इकट नहीं होते हैं, तभीतक साध्य होते हैं, परंतु लक्षण प्रकट हो जानेपर असाध्य हो जाते हैं और निश्चित ही

हिक्कारोग-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा-हे सुश्रुत। अब मैं हिक्का (हिचकी)-रोगके निदानको कहुँगा, आप उसे सुने।

श्रासरोगके जो-जो निदान-पूर्वकृष, संख्या, प्रकृति और आश्रयस्थान कहे गये हैं, वे ही हिक्कारोंगके भी होते हैं। यह हिक्का पाँच प्रकारकी होती है- भक्तोद्धवा (अजना). क्षद्रा, यमला, महतो और गम्भीरा। रूख, तीक्ष्म, खर तथा असात्म्य अत्र अथवा पेय पदार्थीके सेवनसे प्रकापत वाय हिक्कारोगको पैदा करती है। इस हिक्कारोगमें रोगी श्वास

लेता हुआ श्रुपानुगामी मन्द-मन्द शब्द करता है। अत्र तथा पेय पदार्थके अयुक्तिपूर्यक संवन करनेसे जो हिक्का (हिचकी) रोगोको आती है, उसे 'अन्नजा हिक्का' कहते है। यह हिचकी सात्म्य अत्रपानसे शान्त हो जाती है। अधिक परिश्रम करनेसे शरीरमें प्रकृषित हुआ पवन 'श्रुद्रा हिक्का को जन्म देता है। वह ग्रीवामुलसे निकलकर मन्द-मन्द गतिसे कण्डके बाहर आता है। यह रोग अधिक परित्रम करनेसे बढ जाता है, किंतु यथोचित मात्रामें भोजन

कर लेनेपर कुछ शान्त हो जाता है।

जो हिचकी^र अधिक समयसे एक या दो बार वेगपूर्वक आती हैं, परिणामत: वह धीरे-धीर बढती जाती है। अपने वेगसे जो रोगीके सिर और ग्रीवाभागको प्रकम्पित कर देती है. उसको 'यमला हिक्का'के नामसे स्वीकार करना चाहिये। इसमें रोगी प्रलाप करता है तथा उसको वमन होता है और उसे अतिसार हो जाता है, कमजोरीसे उसके नेत्र बैठ जाते हैं और जम्भाई आती है। ऐसी अबस्थावाली हिक्काको बेगवती परिचाम देनेवाली 'यमला हिक्का' कहते है।

जिस दिक्छारोगके वेगसे रोगीकी भींड और फनपटिवॉमें कप्र होने लगता है, कान तथा नेत्र बंद हो जाते हैं, कानोंसे सुनायी नहीं देता है और आँखोंसे दिखायी नहीं पहता है। रोगीके शरीर, वाणी और स्मरणकी शक्तिको शिथल करती हुई जो हिक्का अन्तमें उसे संज्ञानून्य कर देवी है, तथा अन्य इन्द्रियोंको द:खित करती हुई वह उसके मर्भस्थलमें पोड़ा पहुँचातो है तथा रोगीको पोठभागसे झका देतो है एवं शरीरको शुष्क कर देती है, उस हिक्डाको 'महती हिक्डा' कहा जाता है। यह महामुला, महाराष्ट्रा, महायेगा और महाबला होती है।

राजयक्ष्मा-निदान

यंक्ष्मारोगके निदानको भलीभाँति कह रहा है।

राजयध्मारोगसे पूर्व प्राणीके जरीरमें अनेक रोग रहते हैं और बादमें अनेक रोग हो जाते हैं। इस रोगको राजयक्ष्मा, क्षय, शोष तथा रोगराज भी कहा जाता है। प्राचीनकालमें नक्षत्र और द्विजेंके राजा चन्द्रमांको यह रोग हुआ था। एक तो यह रोगोंका राजा है और दूसरे इसका नाम यक्ष्मा है। इसलिये इसे 'राजयक्ष्मा' कहा गया है। यह देह और औषधि दोनोंका क्षय कर देता है तथा शरीर और औषधिका विनाश करनेवाले रोगके रूपमें यह उत्पन्न होता है, इसलिये इसका क्षय नाम दिया गया है। यह रसादि धातुओंका शोषण करनेके कारण शोष नामसे भी जान जाता है। राजाके समान रोगोंका राजा है, जिसके कारण रोगराजके नामसे अभिहित किया गया है।

गम्भीरा नामकी हिक्का पक्वाशय, मलाशय अथवा नाभिभागसे अपने पूर्वस्वभावके अनुसार शरीरमें प्रकट होतो है तो उस रोगोको जम्भाई लेनेके लिये विवस कर देती है। उसके हाथ-पैर आदि सभी अङ्ग फैलने लगते हैं। उस हिक्काके कुप्रभावसे रोगोका सम्पूर्ण शरीर शिथिल पड़ जाता है। इसमें गम्भीर शब्द होता है, इसलिये इसका नाम 'गम्भीरा हिक्का' है।

प्रारम्भमें बतायी गयाँ भक्तोद्धवा (अप्रजा) तथा क्षुद्रा नामक जो दो हिक्काके प्रकार बताये गये हैं, वे साध्य होती है। उन दोनोंको छोड़कर शेष अन्य जो यमलादिक तीन हिक्काएँ हैं, वे असाध्य होती हैं। किंतु चिरकाल (पुरानी) हिचकी, बुद्ध मनुष्यकी हिचकी, अतिस्त्री-सेवीकी हिचकी, व्याधिद्वारा श्रीण देहवालेकी हिचकी, अन्नके अभावसे कुश मनुष्यको हिचकी-ये सब असाध्य होती है। सभी रोग ज़रीरमें प्राणियोंका विनाश करनेके लिये ही आते हैं। किंत् वे वैसी शोचना नहीं करते हैं, जैसी शीचना इस हिक्काके यमलादिक भेट करते हैं। हिक्का और श्वास—ये दोनों रोग जैसे हैं, जैसे अन्य कोई रोग नहीं हैं। ये दोनों तो मृत्यकाल स्वरूप प्राणीके जरीरमें ही अपना डेरा डाल लेते है। (अध्याय १५१) met them

धन्वन्तरिजीने कहा-अब में हिकारोगके पक्षाद साहसके कार्य मल-मुत्रादिके बेगका बलात अवरोध, जुक्कीज, जारीरिक रिनम्धताका विजाश तथा संयपित आहार-व्यवहारका परित्याग-यं चार इस यक्ष्मारोगको उत्पत्तिके कारण है। शरीरमें उन्हों कारणोंसे कृषित हुआ बाय पित एवं कफको व्यर्थमें ही कृपित कर देता है। तदननार वह शरीरके संधिस्थानोंमें प्रवेश करके उनकी शिराओंको पोडित करता हुआ एक, अब, रसवाही आदि सभी खोतोंके मुखोंको बंद करता है अथवा उसी प्रकार उन सभीको छोड़कर हृदयभागमें जा पहुँचता है और उसको मध्य जपा नीचे तथा तिरहे रूपमें व्यथित करता है।

> इस रोगके उत्पन्न होनेसे पूर्व रोगीको प्रतिस्थाय प्यर, लार, प्रवाह, मुख्याधुर्य, अग्निमन्द्रता तथा शारीरिक शिथिसताका दोष होता है। अत्र और पेय पदार्थक प्रति अनिच्छा तथा पवित्रतामें अपवित्रताको प्रतीति रोगीको होती है। प्राय:

१-अव्हर्भवस्था १-अव्हर्णनवस्य ५, प्रवृद्धिस्य २१।३-सव्हर्णनेकस्य ११, पर्वाप्यस्य ६, अव्हर्णनेकस्य ६

उसको भोज्य एवं पेय पदार्थीमें मक्खा, तुण और बाल गिरनेका भान होता है। रोगीका हृदय कफादिसे संश्लिष्ट हो जाता है. उसको वयन होता है। आहार-विदारके प्रति उसकी रुचि नहीं रह जाती है। भोजन करनेपर भी वह अपनेको शक्तिहोन समझता है। उसके हाथ-पैर जंघा वक्ष:स्थल, मुख, नेत्र तथा कृक्षिभाग सुख जाते है। रक्तको कमीके कारण उसका रंग क्षेत हो जाता है। उसकी भुजाओंमें विशेष प्रकारको पोडा होतो है। उसको जिह्नमें भी ज्वरादिके कारण उत्पन्न हुए छालोंसे कह रहता है। उसको तरीरके प्रति स्वयं पुणा होती है। उसमें स्त्रोसंसर्ग, मद्य और मांसके प्रति प्रेम तथा घुणा दोनों होने लगते हैं। उसके सिरमें चककर आता है। इस रोगके होनेपर रोगीके नाखन, केश तथा अस्थि अपेक्षाकत पहलेसे अधिक बढते हैं। यह स्वप्नमें अपनी पराजय देखता है।

पतंग, कुकल (गिर्रागट), साही, बंदर, कुला तथा पश्चिमोंसे भयाते होकर अपनेको पराजित या गिरता हुआ देखता है। स्वप्नमें अपने जरीरके बाल तथा अस्थिभागको भस्म होते हुए देखकर यह भयभीत होता है। वह स्वप्नमें हो वक्षपर बदला है। उसे स्वप्नमें निर्जन ग्राम और देशका दर्शन होता है। जलरहित भूभागको देखनेके कारण इसे स्वप्नमें भय लगता है। उसको आकाशमें प्रकाशपुत्र तथा दाबाग्निमे जलते हुए युख दिखायी पडते हैं, जिससे उस रोगीका मन भयसे व्याकल हो उठता है। ये सब लक्षण रोगप्रभावके कारण ही होते हैं। अत: इसे पूर्वरूप कहते हैं।

इस राजयक्ष्मारोगके कोष्ठगत होनेपर रोगीको पानस, धास, कास, स्वरभंग, सिरपीडा, असचि, ऊर्थाति:धास, शारीरिक शुष्कता, बधजन्य कष्ट तथा वमन होता है। उसके पार्श्वभाग तथा संधिस्थानमें पोड़ा होती है। उसका जरीर न्यरमें संतप्त रहता है। इस प्रकार इस राजपक्ष्माके उक ग्यारह लक्षण रांगीके शरीरमें पाये जाते हैं। उनके उपद्रवसे रोगीके कप्ठमें ऐसी पीड़ा होती है जैसी श्रासमार्गमें विकृति एवं हृदयबेदना होनेपर होती है। उसे जम्भई आती है, प्रत्येक अक्रमें दर्द होता है, मुखसे बार-बार थुक निकरनता है, मन्दारिन हो जाती है तथा मुखसे दुर्गन्ध आने लगती है।

इस राजयक्ष्माके रोगमें वायुप्रकोपके कारण रोगीके शिरोभाग तथा दोनों पार्श्वमें शुल उठता है, जिसके कारण

असद्ध पीडा होती है। दर्दसे रोगीका अङ्ग-अङ्ग दृटता रहता है, कण्टावरोध और स्वरभंग हो जाता है। पित्तदोप होनेसे रोगीको स्कन्ध-प्रदेश, हाथ तथा पैरमें दाह, अतिसार, रक्तसंत्रित वमन, मुखदुर्गन्ध, ज्या और एक प्रकारका मद रहता है। कफजन्य दोषके कारण रोगीको अरुचि, वमन, खाँसां, आधे शरीरका भारीपन, लारबाहल्य, पीनस, श्रास, स्वरभेद और अग्निमान्द्रका प्रकोप होता है। इसी अग्निमान्द्रता एवं शरीरमें शोधको उत्पन्न करनेवाले प्रदृषित कफजन्य दोषांसे रोगीके रक्तवाही आदि स्रोतींके मुखीका अवरोध तथा धातुओंके क्षीण हो जानेपर हृदयमें दाह और अन्य उपद्रव होते हैं।

अरोरके अंदर पक्याशय-भागमें उक्त दोषोंके कारण प्राय: अत्र आम्लिक रससे पकता है, जिसके कारण वह सिद्ध नहीं होता और न तो शारीरिक पृष्टतामें सहयोग करनेको अपता हो ऑर्जत कर पाता है। रोगीके शरीरका ऐसा ऑप्लिक रस रक्त और मांसको पृष्ट करनेमें अक्षम होता है। सप्त धातुओंका पोषण न होनेपर रोगो केवल मलके भरोसे जीता है।

रोगीमें इन लक्षणोंके कम होनेपर भी अत्यन्त क्षीणता आ सकती है। इस रोगमें छ: प्रकारका क्षय होता है। अत: उन सभी प्रकारींके श्रय होनेपर रोगीके शरीरमें होनेवाले उपद्यांको बद्योपचार रोककर बधासम्भव इस रोगको समूल दर करनेका प्रयास करना चाहिये अन्यथा इस रोगसे आणोको मृत्यु हो निश्चित होती है।

उक्त रोगके दोष पृथक-पृथक या समृहतत् शरीरपर प्रकट होते ही रोगोंके मेदका क्षय हो जाता है, जिसके कारण उसके स्वरोंमें भेद, श्रीणता, रुक्षता और चञ्चलता आ जाती है। बात-प्रकोप होनेसे रोगीका कण्ट सफेद रंगका हो जाता है। उसके शरीरको स्निग्धता तथा उष्णता समाप्त हो जाती है। पिसदोपके कारण रोगीके ताल और कण्टमें दाह होता है और निरन्तर वह सुखता जाता है। रोगीका मुँह और कण्ट कफसे संलिप्त रहता है। उसके गलेसे घुरघुरातो हुई ध्वनि निकलती है। उस कालमें रोगी स्वयंमें सभी विरुद्ध आचरणोंसे प्रभावित हो उठता है। अत: वह उसको ओर उन्पृष्ठ हो जाता है, जिससे अन्य सभी लक्षणोंको उत्पत्ति हो जाती है। इससे रोगी मृत्युको हो प्राप्त

होता है। येंसी स्थितिमें रोगीको सब ओर धूएँके समान ही लक्षणोंसे युक्त होकर यह प्राणीपर आक्रमण करता है तो दिखायी देता है और सभी कफजन्य लक्षण उसमें प्रकट हो। रोगोंको जीवनरक्षा असम्भव हो जाती है। अतः अल्प उठते हैं।

इस क्षयरोगसे बचना बड़ा ही कप्टसाध्य है। यदि सभी विधिवत चिकित्सा करनी चाहिये। (अध्याय १५२)

लक्षजोंक दिखायी देते ही इस रोगको शरीरसे दूर करनेहेत्

अरोचक, वमन आदि रोगोंका निदान

धन्यनरिजीने कहा—हे सुबृत! अब मैं आपको अरोचकरोगके निदानके विषयमें बताऊँगा। जब वाट-पित तथा कफजन्य दोष जिडा और हृदय या मनका आत्रप लेते हैं, तब प्राणीके शरीरमें अरोचकरोग उत्पन्न होता है।

यह रोग बातजन्य, पितजन्य तथा कफजन्य- इन तीन रूपेकि अतिरिक्त सन्निपातजन्य और मन:संतापजन्य भी होता है। इस रोगके परैच प्रकार हैं। यथा- वाउन, पिछन कफज, सम्निपातज और मन:संतापज। वात आदि दोषोंसे होनेवाली अरुचिमें रोगीका मुख क्रमज: वायमें कसैला पित्रमें तिक, कफर्में मीठा या माध्यंयक, सन्तिपातमें विकृतरस तथा शोक-दु:खादिमें दोषानुसार स्वादवाला हो जाता है। इस रोगमें रोगोको किसी दृष्य-विशेषका आस्वाद नहीं प्राप्त होता है। शोक, क्रोधादिमें मनकी जैसी स्थिति होती है, उसी प्रकार उसकी भोजनादि एडण करनेकी अधिरुपि होती है। जब मन शोकादिके कारण खिल रहता है तो भोजनके प्रति अरुचिके कारण उसे जनादि ग्रहण करनेको अनिच्छा हो जाती है। इस रोगमें अग्निदृष्ट हो प्रधान कारण है।

छर्दि⁹ अधांत वमनरोग पाँच प्रकारका होता है- वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज तथा अनुभिन्नत (इच्छाके विपरीत)। दृष्ट पदार्थोंके ग्रहण करनेसे पाँचवां छर्दि होती है। सम्पूर्ण प्रकारके बमनरोगमें उदान बायु प्रकृषित होकर सभी प्रकारके अधिकृत दोषोंको उद्दोप्त करता है, जिसके फलस्वरूप क्रमश: शीघातिशीघ रोगीको कष्ट होता है, मुख लवणयक्त रहता है तथा उससे पानी चटता है और धीरे-थीरे आहार-रुवयहारके प्रति अरुचि हो जाती है। इस रोगमें रोगीको नाभि तथा पृष्ठ-प्रदेशमें बेदना होने लगती है। रोगीके पार्श्वभागमें भी पीड़ा होती है, जिसके कारण पेटमें अवस्थित अन्न ऊपरकी और पक्वाशयसे निकलने लगत

है। अर्थात् रोगीको वसनकी इच्छा होती है। अन्ततोगत्वा रोगोंके मुँहसे कपाय और फेनवुक्त थोड़ा-घोड़ा करके वमन होता है।

इस वातजन्य वमनरोगमें अत्यन्त कष्टसाध्य पीडाके साथ रोगीको तेज दर्द होनेके कारण चिल्लाना पहता है। उसको खाँसी आती है, उसके मुखर्म शोध होता है और इसको वाणीमें स्वरभंग होने लगता है।

पित्तजन्य समनदीय होनेपर रोगीको क्षारसे युक्त जलके समान थ्य. डॉरत या पीतवर्णवाले पित्तका वमन होता है अचवा रक्तमे युक्त अम्ल, कट्ट, तिक्त पित्त उसके मुँहसे निकलता है। उसके शरीरमें तृष्णा, मुच्छां, संताप तथा अग्निके समान दाहका प्रकोप होता है।

कफजन्द वमनरोगके होनेसे रोगीमें स्निग्ध, धनीधृत पीत तथा मध् (शहद)-के समान मध्र, प्रलेप्या (कफ)-का उदय होता है। यह कफ लबण-रससे भी युक्त हो जाता है। इस कफटोचके कारण उत्पन्न वमनके कष्टसे रोगीको भववत्र रोमाञ्च हो जाता है। इस रोगमें रोगीके मुखमें शोध हो जाता है। उसके मुख्यें यिदास भरी रहती है, उसके नेत्रोंमें अन्द्रा छायो रहती है, उसके हदयमें कष्ट होता है और उसे खाँसी आती है।

समिपतिक वमनरोगमें सभी दोषोंके लक्षण दिखायी देते हैं। ऐसी अवस्थामें उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। ऐसे रोगीको देखना, सुनना आदि कुछ अच्छा नहीं लगता है।

वातादिके प्रकृषित होनेपर ही उदरभागमें कृमिजन्य और अञ्चलन्य वमनरोग भी उत्पन्न होता है। कृषिजन्य छर्दिरोगमें शरीरमें जुल, कम्पन, मिचली तथा इल्लास (हृदयको धहकन)-के उपद्रवकी उत्पत्ति विशेष रूपसे हो होती है। (अध्याय १५३)

१-पर्वापक्षक ८. सुक्डक्लंक्स् ५७

२-अ०इ०नि०अ० ५, च०चि०अ० २६

हृदय-तृषारोगका निदान

हदयरोगका निदान कहँगा।

हर्दयको सामान्यतः सभी रोगोंसे रूपा बनानेवाले प्रतीक दोष वात, पिन, कफ तथा सनिपातके साथ कृमिदोष भी है। जिसके कारण हृदयमें वातज, पितज, कफज, सन्निपातज और कृमिज-ये पाँच प्रकारके रोग माने गये हैं।

वातदोषके कारण वातज हृदयरोगीको अपने हृदयमें तीव जुलका अनुभव होता है, सुइंके चुभने और फटनेकी-सी पीड़ा होती है। दोषके कुप्रभावसे हृदयमें उठी हुई असहा वेदनासे व्यक्ति होकर रोगी रोता रहता है। यह वातज दोष हृदयको विदीर्ण कर देता है। उसके दुष्प्रभावसे शरीरपर शुष्कता छायो रहती है। रोगी दु:ख-सुखको अनुभूतिमें स्तब्ध (अवाक्) बना रहता है। स्वयंमें उसे शुन्यताकी अनुभृति होती है। मनमें भ्रमको स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अकस्मात् उसमें दीनता, शोक, भय, शब्द-श्रवणमें असहिष्णुता, कम्पन, मोह, श्वासरोध तथा आऱ्यनिद्राके लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं।

पिलंदोषसे हदयरोगीको तृष्णा, बकान, दाह, खेद, अप्ल उद्गार, क्लम (धकान), अप्लिपितात्मक वमन, धुम्रदर्शन और ज्वर होता है। ऋफजन्य दोष होनेसे हृदयमें स्तब्धता तथा हृदयके अंदर पत्थरके समान भारीपन हो जाता है। इन दोषोंके अतिरिक्त ऐसे रोगीको खाँसो, अस्य, पीड़ा, धूक, निद्रा, आलस्य, अरुचि और न्यरका भी उपद्रव होता है।

हदयरोगमें जब उपयुंक तीनों दोवोंके लक्षण सरीरमें प्रकट हो उठते हैं तो वह समिपातज हृदयरींग हो जाता है। कृमिजन्य हृदयरोगमें रोगीके नेत्रोंका वर्ण काला हो जाता है। उसके नेत्रोंके सामने अन्धकार छाया रहता है। उसको हल्लास, शोथ, खुजलाहट तथा मुँहसे कफ आता है। इस रोगमें रोगीका हृदय ऐसी असहा पीड़ासे व्यक्ति होता है, जैसे वह आरेसे चीरा जा रहा हो। यह रोग बड़ा भवंकर और शीघ्र प्राणपातक होता है। इसलिये इस रोगको शोघ्र चिकित्सा करनी चाहिये।

वात, पित्त, कफ, सिंशपात, रसक्षय तथा बलकी अल्पता और उपसर्ग—इस प्रकार तृषा (तृष्णा या तृषारांग)

धन्यनरिजीने कहा —हे सुश्रुत! अब मैं आपसे छ: प्रकारका होता है (उनके नाम हैं— वातज, पित्तज, कफार, सन्निपातक, बल (रस)-क्षयज तथा उपसर्गज)। इस प्रकारके सब तृषारोगोंका मुख्य कारण तो वात-पित्तर्सोश्रत दोषमें विद्यमान रहता है। इन दोषोंके द्वारा रोगीक सरीरकी धातु (शकि)-का शोषण होनेसे चक्कर, कम्पन, ताप, इहाह, मोह तथा मुच्छांका उपद्रव होता है। इस रोगमें जिह्नाके मूलभाग, कण्ठ और तालुमें सञ्चार करनेवाली जलवाही शिराओंको शुष्क बनाकर तृष्णा (प्यास) उत्पन्न होती है।

इस तृषारोगमें मुखशोष, जलसे अतृप्ति, अशके प्रति यूजा, स्वरभंग तथा कण्ठ-ओष्ठ, तालुकी कर्कशताके कारण जिह्य निकालनेमें रोगीको कष्ट होता है। वह असद्ध वेदनाके कारण प्रलाप करता है, उसका चित्त स्थिर नहीं रहता तथा मनमें अनेक प्रकारके उदगार उठते हैं। वायु-प्रकोपके कारण उत्पन्न तृषासे शरीरमें कुशता और दीनता आ जाती है, सिरमें संखोद्धेद, असद्ध पीड़ा और भ्रम उत्पन्न होता है। पिनदोषके कारण तृषारोगी गन्ध-ज्ञानकी क्षमतासे रहित, श्रवण-शक्तिसे निर्वल, निदाहीन तथा अन्य शारीरिक क्षमताओंके हासोन्मुख होनेसे बलहीन हो जाता है। उसको शीतलताका अनुभव होता है और मुखसे अम्लयुक्त फेन निकला करता है।

पिनज तृषारोपमें रोगीके मुखमें तिकता बनी रहती है और मुच्छांका भी प्रकोप होता है। रोगोंके नेत्र रक्तवर्णके हो जाते हैं। उसके मुखमें निरन्तर शुष्कता बनी रहती है। शरीरमें दाह रहता है और मुँहसे अत्यन्त धूमायित बायु चुरती है।

कफज तुषारोगमें वायु प्रकृपित हो उठती है। उसके कुप्रभावसे अन्त:स्थ स्रोत कफयुक्त हो जाता है और उसके बाद वह उसमें पंकवत् सूख जाता है। उसका कण्ठभाग काँटोंसे चुभते हुएके समान व्यक्षित होता है। रोगीमें निदा छावी रहतो है और उसका मुख सदैव मधुर (मीठा) बना रहता है। ऐसा रोगी पेट फुलने, सिरपीडा, जडता, सुष्कता, वमन, अरुचि, आसस्य तथा अग्निमान्धके दोषसे युक्त होता है।

जिस तुर्वारोगमें तोनों दोधोंके मिले हुए लक्षण पाये

१-विविध्या २६, मुट्ड ४३, विविध्य ४३

३-घ०चि० २२, स्०उ०तं० अ० ४८, अ०४०जि०अ० ५

जाते हैं, यह त्रिदोषसे उत्पन्न होती है। इस रोगमें आँवकों स्निन्ध अंशको जला देनेवाली होती है। उसको स्नेहपाकजा उत्पत्तिके कारण रक्तवाही स्रोतका अवरोध होता है। जिसके अवदा पित्रजा नामकी तृष्णा कहा गया है। कुप्रभावसे वात-पित्तका दोष शरीरमें उत्पन्न हो जाता है। उससे रोगीके शरीरमें उष्णता बढ़ जाती है, जिसके कारण करनेसे कफोद्भव तृष्णाका जन्म होता है। जब तृष्णा शीतल जल प्राप्त करनेकी अभिलायिणी तृष्ट्यांका प्रादुर्भाव अरीरके रसको विनष्ट करनेवाले उपर्युक्त लक्षणसे समन्वित होता है अर्थात् रोगी इस कालमें प्यासमे बेचैन हो उठता हो जाती है, तब वह श्रयात्मिका तुष्णा कहलाती है। है। उसी उष्णताके कारण शरीरमें प्रविष्ट हुआ जल जब जो शोष-मोह-ज्वर आदि अन्य दीर्घकालतक रहनेवाले अपरी कोष्टमें जाता है, तब उसे पितजा नामक तृष्णाकी रोगोंके कारण शरीरमें तीव तृष्णा उत्पन्न होती है, उसे उत्पत्ति होती है। अत्यधिक जल पोनेसे जो तृष्णा शान्त उपसर्गात्यिका तृष्णाके नामसे स्वीकार किया गया है। नहीं होती, अपित तीवगतिसे बदती ही जाती है, वह रुग्निके

स्निग्ध, कट, अप्त तथा लवणरससंश्लिष्ट भोजन (अध्याय १५४)

मदात्यय-निदान

द्वारा प्रतिपादित मदाधिकाके निदानको कहता है।

मध, तीक्ष्ण, उष्ण, रूख, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवापी, आशुकारों, लघु, विकाशी तथा विश्वद होता है। ओज इसके विपरीत होता है अधांत ओज मन्द, जीत, मध्र, सान्द्र, स्निग्ध, स्थूल, चिरकारी, पुरु और पिकाल होता है। तीश्लादि दस गुण मदामें होता है और यहाँ गुल विषमें भी होते हैं, जो प्राणियोंके चिनमें हलचल मचानेवाले तवा प्राणधातक होते हैं। प्रथम मदमें मद्य अपने तीश्यादि दस गुणोंसे ओजके मन्दादि दस गुणोंको संश्वधित करके चित्रमें विकार उत्पन्न कर देता है। दूसरा मद प्रमादका स्थान है। इसमें दुष्ट विकल्पोंसे उपहत मनुष्य कर्तव्याकर्तव्यसे अज्ञान होकर मद्यके द्वितीय चेगको अधिक सुखकर मानता है। रजोगुणी या तमोगुणी यनुष्य मध्यम और उत्तमको संधि अर्थात् द्वितीय और तृतीय मदकी मध्यावस्थामें पहुँचकर अंकुशरहित मदोन्मत निरंकुश हाथीकी तरह कुछ भी नहीं करता। यह मद्यावस्था निन्दनीय मनुष्यों तथा द:शीलोंकी भूमि अर्थात् एकमात्र मदिश ही अनेक मुखबाली दुर्गतिकी आचार्य है। मदकी तीसरी अवस्थामें पहेँचकर मनुष्य निर्देष्ट होता हुआ भीन होकर सोया रहता है। वह पापाल्य मरनेसे भी अधिक बुरी दशामें पहुँच जाता है। मधमें आसक मनुष्य धर्म-अधर्म, सुख-दु:ख, मान-अपमान, हित-अहित, शोक-मोहकी अनुभृतिसे रहित हो जाता है। वह शोक, मोहादिसे समन्वित रहता है। ऐसा प्राणी उन्माद-भ्रम

धन्यन्तरिजीने कहा —हे सुश्रुत ! अब मैं प्राचीन मुनियोंके और मुन्दर्शमें सदैव विद्यमान होता है और अनतोगत्वा मिगाँके रोगोके समान भूमिमें गिरकर छटपटाता रहता है। जो व्यक्ति बलवान् हैं. समुचित भोजन करते हैं या यचाराकि प्रचुरमात्रामें भोजन करके पचा जाते हैं, उनमें मद नहीं होता है। यह मदाल्ययरोग वात-पित्त तथा कफके प्रकृषित होनेके कारण उत्पन्न हुए अन्य सभी दोपोंसे होता है।

> इस प्रकार वातिक, पेलिक, श्लेष्मिक और सन्निपातिक नामसे यह मदात्यय चार प्रकारका होता है। मोह, हृदयवेदना, प्रीवभेद, निरन्तर तथा, कफ, पितञ्चर, अरुचि, हदयमें वियन्त्रता, अन्धकार, खाँसी, श्रास, निद्रा न आना, पसीना, विष्टम्भता, सुजन, चित्तविश्रम, स्वप्नदर्शनसे घवडाहट, मना करनेपर भी बोलते रहना आदि-ये सब मदात्ययके सामान्य लक्षण है।

> पित्तदोषके कारण मदात्वय होनेपर प्राणी दाहज्बर, स्वेद, मोह, प्यास, अतिसार और विश्वमके कारण उपद्रवसे ग्रस्त होता है। श्लेष्मज मदात्यवरोगमें रोगी बमन, इल्लास (शहकन), निदा तथा अग्निमान्द्रके कारण उदरकी गुरुताके दोषसे संत्रस्त रहता है। सन्निपातिक दोषवाले मदात्ययमें पूर्वकचित सभी लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यह सब जानकर विस प्राणीको अभिरुचि सहसा मद्यपानमें हो जाती है तो उसमें ध्वंसक और शोषक-ये वातज व्याधियाँ हो जाती हैं। ये कष्टसाध्य होती हैं और विशेषकर दुर्बल मनुष्यको होती हैं।

ध्वंसकमें कफकी प्रवृत्ति, कण्डशोष, अतिनिद्रा, शब्दका न सहना होते हैं, विक्षय (शोषक)-रोगमें चित्तविक्षेप, अङ्गमें पीडा, हृदय तथा कण्टमें रोग सम्मोह, खाँसी, तृष्णा, वमन तथा ज्वर होते हैं। अत: जो व्यक्ति जितेन्द्रिय हो, वह इन सभी बातॉपर विधिवत पहले विचार करे। तदननार वह मद्यके दोपसे अपनेको दर कर ले। इसीमें उसका कल्यान है। मद्यसे दूर रहनेवाला खारीरिक तथा उन्माद आदि मानसिक विकारोंसे कभी कष्ट नहीं पाता है।

रजोग्ण, तमोग्णकी प्रधानतावाले मोहजन्य दोष तथा असंयमित आहार करनेवाले प्राणीको मद, मुच्छां और संन्यास नामक तीन प्रकारके रोग होते हैं। यथा- जरोटमें इनका प्रकोप होनेपर ये तीनों रोग रस, रक्त और बेतनाके ही स्रोतोंके निरोध हो जानेसे होते हैं। इनमें मदसे मुख्डां और मुच्छांसे संन्यास उत्तरोत्तर बलवान होते हैं।

मदात्ययरोग मद, वात, पित, कफ तथा सजिपातक दोषोंसे तो होता ही है, किंतु रक्त, नाग्र और विषके कारण भी यह शरीरमें उत्पन्न हो जाता है। शरीरमें शक्तिकी अनन्तता न होनेके कारण जब शक्ति श्रीण हो जाती है तो पाणी अपनी शक्तिका आभासमात्र करता है। उसकी चित्तवृत्तियाँ चञ्चल हो उठती हैं। वह छल-कपटके व्यवहारसे धिरा रहता है।

वर्णका हो जाता है। पित्तज मद्यसे प्राणी क्रोभी हो उठता है। उसके लाल, पोले और नीले नेत्रोंमें व्याकुलता छायी रहती उसके शरीरका वर्ण लाल और पीला हो जाता है। वह है। कफन मुच्छाँमें रोगी आकाशको मेघोंसे आच्छान देखता कलहमें अभिरुचि लेता है। कफोत्पादक मदात्ययमें गेगी जब सोता है तो उसे स्थान दिखायी देते हैं। स्वापमें असम्बद्ध, अनर्गल प्रलाप करता है। उसकी चित्रवृत्तियाँ किसी विशेष ध्यानमें एकाग्र होकर अनुरक्त रहती हैं। सभी दोषोंके कारण उत्पन्न होनेवाले सन्निपातवर्गित सदमें प्राणीका वर्ण रक्त हो जाता है और उसके शरीरमें स्वय्भन होने लगता है, जिसके कारण उसके अड-अड जिबिल हो जाते हैं।

इस मदात्ययरोगमें तो प्राणोके शरीरमें पितदोष सर्वप्रथम ही प्रकट हो जाता है। उसकी समस्त जारीरिक चेंद्राएँ विकत हो जाती हैं। उसे तृष्णा, स्वरभंग तथा अजनकी अवस्था प्राप्त होती है। उसको सद-जान नहीं रह जाता है। विषज मदमें अरीरमें कम्पन होता है। वह गहन निद्रामें सोता है और उसको इस मटात्यवरोगमें अत्वधिक धकानकी अनुभृति होती है।

मनुष्यंको शरीरके अंदर विद्यमान रक्त, मजादिमें उभरे हुए वात-पित्त तथा कफजनित दोयोंके लक्षणोंको देखकर यथापेक्षित वातज, पित्तज, कफज या सन्निपातज मदात्ययका निर्धारण करना चाहिये और उसी रोगके अनुसार चिकित्सा भी करनी चाहिये। यथा-वातज, मदात्यय (मच्छां) होतेपर सामान्यतः रोगी आकाशको लाल-नीला अथवा काला रंग देखता हुआ अपनेको अन्धकारमें पहेँचा हुआ मुक्तित मानता है। शीप्र मुक्ती टुटनेपर वह हदयकी पोडा- कप्पन तथा भ्रमसे संतप्त रहता है।

जो व्यक्ति वातिक मदात्वयदोधसे ग्रस्त होता है उसे खौंसी आती है और कान्ति पीली एवं लाल रंगकी हो जाती है। यह अधिकतर मुख्यमिं ही रहता है। पितात्मक दोपको सामान्यत: परिणतिमें रोगीको आकाश रक्त अथवा पोतवर्णका प्रतीत होता है और अन्तमें उसे अन्धकार-ही-अन्धकार दिखाणी देता है। उस समय उसको विशेष प्रकारका ज्ञान प्राप्त होता है। उसके शरीरसे पसीना निकलता है। वह शरीरमें उत्पन्न हुए दाह, तुच्या तथा तापसे पीडित हो उठता है। कफसे संश्लिष्ट होनेपर रोगीको एक यातज मद्यसं मनुष्यका शरीर रूख-श्याम और अरुण- जिल-भिन्न होती हुई नीली-पीली आभा दिखायी देती है। हुआ मुर्च्छित हो जाता है। उसे गहन निद्रा आती है, इसलिये उसकी नींद बहुत देखे बाद इटती है। होशमें आनेपर उसके इदयमें धड़कन होती है और प्राण सृखते हए प्रतीत होते हैं। उक्त दोषके कारण उत्पन्न हुए भारीपन और आलस्यके वशीभृत हुए अक्रोंसे उसको ऐसी अनुभृति होती है, जैसे तरीर राजधर्मसे अनुप्राणित पुरुषों (सिपाहियों)-के द्वारा प्रताहित किया गया है। इन सभी दोषोंका प्रभाव जब एक साथ जरीरपर पडता है तो संत्रिपातकी अवस्था आ जाती है। उस कालके मदात्यपर्मे प्राणीका सम्पूर्ण शरीर (अपस्थार) मिर्गिकि रोगसे ग्रस्त हुएके समान पृथ्वीपर गिर पडता है। अपस्मारमें रोगीकी चेष्टा बीधत्स हो जाती है और इसमें नहीं होती है।

वातादिक दोषोंके वेग समाप्त होनेके कारण उत्पन्न मदात्ययकी मुच्छां और अन्य उपद्रवोंसे ग्रस्त प्राणियोंके कष्टोंका उपशमन बिना औषधिक उपचारके ही संयमित रहनेसे स्वयमेव हो जाता है। परंतु संन्यासका रोग औषधके बिना ज्ञान्त नहीं होता। इस मदात्ययकालमें वाचिक, जारीरिक तथा मानसिक चेष्ठऑके दबावमें निवंल प्राणी स्वयं प्राजापात हो करते हैं। जिससे वे घरे हुएके समान काष्ट्रवत् हो जाते हैं। यदि उनको चिकित्सा शीघ्र नहीं को जाती है तो चे अविलम्ब हो मर जाते हैं।

ग्राहादिक हिंसक जलचरींसे भरे हुए अधाह जलराशिवाले समुद्रके समान इस संन्यास मदात्यवरीगके सागरमें द्व रहे प्राणीकी शीघ्र हो रक्षा करनी चाहिये। उसमें मद, मान, रोष, संतोष आदि विभिन्न प्रवृत्तियाँ होती हैं। उन्हीं प्रवृत्तियोंके द्वारा वह यहाँ-वहाँसे उत्तित और अनुचितका विचार करके यथापेक्षित कार्यमें सामान्य विधिका प्रयोग करता है, किंतु अयुक्तिपूर्वक मद्यपानसे प्रभावित दशामें ऐसा सम्भव नहीं है। उसे कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान नष्ट हो जाता है। (अध्याय १५५)

अर्श (बवासीर)-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुन्नत! अन मैं अर्ज (नवासीर) नामक रोगके निदानका विषय बताकैंगा।

प्राणियोंके मांसमें जो कोलक सदा उत्पन्न होते हैं, वे कोलक गुदाके द्वारका अवरोध करते हैं, इसलिये उन्हें अर्श कहा जाता है। वात-पित्त तथा कफजन्य दोष शरीरमें स्थित त्वक्, मांस और मेदाको दृषित करके अपानवायुके मार्गमें अनेक आकृतियोंवाले मांसाकृरोंको जन्म देता है, उन अंकुरोंको अर्श माना गया है। जो अर्स सरीरके साथ ही उत्पन्न होता है, उसे 'सहज' और जो जन्म लेनेके बाद उत्पन्न होता है, उसे 'जन्मान्तरोत्धान' कहते हैं। इस दृष्टिसे अर्शके दो भेद हुए। प्रकारान्तरसे इसके दो भेद और है-एक शुष्क (वादी बवासीर) और दूसरा है सावी (खूनी यवासीर)। गुदा नामक स्थानका आजय लेकर अवस्थित रहनेवाली शुष्क अग्रभागसे युक्त परस्पर भिन्न नाडियोंका स्थान है। गुदाभागका परिमाल सादे पाँच अंगुलंका होता है। उसीमें तीचेकी और सादे तीन अंगुलके भागमें ये रोग स्थित रहते हैं। उनमें एक नाड़ी बालोंको जन्म देनेवाली शक्तिका सञ्चार करती है और एक नाडी आँतके मध्यभागसे होकर नीचेकी और आती है। यहीं आमाशयसे निकलनेवालें मलको लाकर गुदामार्गसे बाहर करती है। उसी विसर्जन कार्यके कारण उसे विसर्जनी नाडीके नामसे अभिहित किया गया है। उस विसर्जनी नाड़ीके बाह्यभाग अर्थात् गुड़ाके

मुख- द्वारके बाह्यभागमें एक अंगुलका जो स्थान है, उसीमें इन मांसांकरोंका जन्म होता है। उसके बाद देव अंगुलके परिमानभागमें गुदौष्टके परे रोमवती त्वचा है, जिसपर रोम नहीं उत्पन्न होते हैं। वहाँपर सहोत्य अशेका कारण विद्यमान रहता है, जो बाल्यकालमें उपतप्त अर्थात् सहोत्थ दोचको उत्पन्न करनेकी सामध्यंसे युक्त हो जाता है।

प्राणियोंमें इस अशंरोगका बीज तो माता-पिताके कुपन्यसे उत्पन्न होता है। देवताओंके प्रकृषित होनेपर तो वही दूसरे रूपसे सानिपातिक दोषका भी बीज बन जाता है। प्राणियों इस प्रकारके जो कुल (यंश)-क्रमागत रोग होते हैं, वे सभी असाध्य माने गये हैं। सहजोत्थ अर्श तो विशेषस्थासे देखनेमें दुश्साध्य, अन्तर्मुखो, पाण्डुवर्ण सन्निहित और भयंकर उपद्रव मचानेमें समर्थ होते हैं। शरीरके वात-पित तथा सन्तिपातदोपके अनुसार इनको वातिक, पैतिक, क्लेप्सिक, संसर्गत, विद्रोपन तथा रक्तन रूपमें नियोजित किया जा सकता है। अर्थात् इन सहजोत्य अर्श दोषके यही छ: प्रकार है।

इनमेंसे शुष्क अर्श वात और कफसे होते हैं और आई अर्श एक एवं पित्रसे होते हैं। उसके दोषके प्रकोपका कारण तो पहले ही कहा जा चुका है। इसके अतिरिक्त उदरस्य अग्निमान्ध तथा मलाधिक्यकी एकत्रित अवस्थामें अविजय, अत्यल्प तथा असामयिक जलपान, देश-कालादिके

१-प्रवाहिणी, संवरणी और विसर्जनी।

२-च०चिवअ० १४, स्वनिव्भव २, अवहवनिव्भव छ

विपरीत कठिन और अल्पाहार ग्रहण करनेके कारण भी यह उत्पन्न होता है। यस्ति, नेप, गले और ओधादिके भागोंमें घट्र-रगड (घेटा), अधिक शीतल वलके संस्पर्ध तथा बैठकर लगाम आदिसे साधे जानेवाले वाहन (अश्वादि)-की सवारी करनेसे भी इस रोगकी उत्पत्ति होती है। यह रोग हटात् मल-मुन्नादिके वेगको धारण करने और निकालनेसे भी हो सकता है। ज्वरगुल्म, अतिसार, ग्रहणीरोग, जोय तथा पाण्ड्रोगके प्रभाव एवं दौर्बल्यकारक आहारादिके सेवनसे अन्य उपद्रव और विषम चेष्टाओंसे भी इसका जन्म होता है। स्त्रियों में अपक्व-गर्भपात, गर्भवृद्धि तथा तजन्य पीडाके कारण इस उपप्रवकी उत्पत्ति होती है।

इन्हीं सब कारणोंसे अपानवायु मलस्यानके भागमें कृपित हो जाता है। तदनन्तर वह गुदाभागका शुद्ध कार्य करनेवाली वलियोंमें अपना कुप्रभाव छोडता हुआ अर्छके उन कीलकोंके रूपोंमें जन्म लेता है।

इस रोगका पूर्व लक्षण अग्निमान्य, विष्टम्भ, पैरोमें पीडा, पिण्डलिका कष्ट, धम, शरीरमें शिधिलता, नेत्र, शोध, मलभेद तथा मलग्रह है। इस रोगमें शरीरके अग्रभागसे निश्चेष्ट वायु नाभिभागसे नीचेकी ओर संचरण करता हुआ पीडितकर रक्तसंत्रित होकर बडी कठिनाइंसे बाहर निकलता है। इस रोगमें अतिभागसे अध्यक्त गृहगृढ राज्द होता है। क्षारसहित उद्गार, अतिशय मृत्र, अल्पविद्य (मल), चृणा, धुमायित उकार, सिर-पीठ, वक्ष:स्थलमें पौड़ा, आसस्य तथा धातुशरणका उपद्रव होता है। इसमें इन्द्रिय-सुखकी चञ्चलता एवं दु:ख होनेके कारण रोगीमें क्रोधकी मात्रा बढ जाती है। इस रोगके प्रभावसे रोगीमें विद्या-त्यागको आशङ्का बनी रहती है। उसके पेटमें संग्रहणी, शोध, पाण्डु तथा गुल्म नामक रोगोंका भी उपद्रव होता है।

इतना ही नहीं, अर्थरीयके होनेसे प्राणियोंमें ये रोग होते हैं। थली प्रकारसे बढ़ते हो जाते हैं। उन अर्जाकीलकोंसे गुदामार्ग अन्य समानादिक भेदवाले वायु-प्रभेदोंको खुव्य एवं विचलित आभावाले होते हैं। कर देता है। वह वायु मूत्र, मल, पित तथा कफ, रस-

रकादिको संक्षुव्य करता हुआ जठराग्निको मन्द बना देता है। उससे प्राय: सभी प्रकारके अर्शरोग र उत्पन्न हो जाते हैं।

शरीरमें इन सभी अर्श-भेदोंका प्रकोप होनेपर रोगीके तरीरमें आचना दुर्बलता, उल्लाहहोनता, दैन्य तथा कान्तिहीनता आ जातो है। यह रोगी साररहित वृक्षके समान सारहीन और छाबारहित हो जाता है। मर्मस्थलको पीडित करनेवाले अत्यन्त कष्टसाध्य उक्त रोगोंका उपद्रव हो जानेसे रोगी एक दिन वक्ष्माके रोगसे भी यस्त हो उहता है। उसके शरीरमें काम, पिपासा, मुखबिकृति, श्रास, पीनस, खेद, अङ्ग-भंग, वमन् हिचको, शोध् च्यर् नपंसकता, विधरता, स्तव्यता तथा कर्कन एवं पथरीरोग हो जाते हैं। यह श्रीणकाय स्वरभंग, विन्तानुर, असचि, बारम्बार धुकनेवाला और अनिच्छित स्वधाकका हो जाता है। उसके सभी पर्व तथा अस्थिभागमें पोड़ा होतों है। उसका हृदय, माभि, पायु और वंक्षणभाग जूलसे प्रस्त हो उठता है। उसके गुदामार्गसे चावलके धोवनके समान इव निकलता है, जो वर्णमें बगुलेके उदरभागके समान होता है। यह मल कभी-कभी सुखा हुआ, मोतीके अग्रभागकी कान्तिसे सम्पन्न, पके हुए आमके समान पीत, हरा, लाल, पाण्ड, हल्दिया तथा पिच्छिलवर्णका होता है।

वात-प्रकापके कारण रोगोंके गुदाभागमें जो मांसांकर निकलते हैं, उनके बीच भागींसे अपानवाय अधिक मात्रामें निकलता है, वे सूखे हुए होते हैं, उनमें चिमचिमाहट या चनचनाहर होती है, उनका वर्ण गावै अंगारके समान लाल होता है। वे पोडाके कारण रोगीको स्तब्ध बना देते हैं, उन सभी अंकरोंमें विषमता होती है और उनका स्वभाव बहा ही कटोर होता है। इतना ही नहीं, उनमें विशेष सपानता भी प्राप्त होती है। वे वक्र और तीक्ष्य तथा फटे हुए मुखबाले

वातजन्य अशिक सभी मांसांकरींकी आकृतियाँ बिम्ब, अवरुद्ध होनेके कारण अपानवायु भी क्रुद्ध हो उठता है, छातुर वेर तथा कपासके फलोंकी भौति होती हैं। कुछ जिसके फलस्वरूप वह शरीरको समस्त इन्द्रियोमें स्थित अंकर कदम्ब-पूष्प और कुछ सरसेंकि फूलके समान

इस रोगके होनेपर रोगीके सिर, पार्ध, स्कन्ध, जंपा,

कर और वंक्षणभागमें अधिक पीड़ा होती है। रोगीको ष्टिचकी, उदगार, विष्टम्भ, हृदयमें पीड़ा तथा अनिच्छाका प्रकोप होता है। उसको खाँसी आती है, श्रास फुलती है और अग्निमन्दता बद जाती है। उसके कानोंमें ध्वनि गुअरित होता रहता है। उसको सदैव भ्रम यना रहता है।

इस रोगमें गाँउदार प्रवाहिकांके लक्ष्णोंसे यक झागदार, पिच्छिलताविशिष्ट बहुत-सा विष्ठा योहा-योहा सब्दकर निकलता है। मलत्यागके समय अत्यन बेदना और शब्द होता है। रोगीकी त्वचा काली पड जाती है। इसके मल-मुत्रमें अवरोध बना रहता है। उसके नेत्र और मुखपर भी रोगका प्रभाव छाया रहता है। उसको गुल्म, प्लोहा, उदर अष्टीला-सम्बन्धित विकारोंके सहित हल्लाम (दिलमें धडकन) का भी रोग हो जाता है।

जो पित्त-प्रकोपके बाद अशं-सम्बन्धी अंकर निकलते हैं, ये नीलवर्णके समान मुखवाले तथा लाल-पोली और काली आधासे युक्त होते हैं। इन मांसांकुरोंक अग्रधागसे पतला रक्तसाव होता है। इनका आकार लम्बा कोयल और आई रहता है। इनकी लम्बो आकृतियाँ प्राय: जुकजिद्धा, पक्तखण्ड सथा जींकके मुखकी तरह होती है। इस अशंरोगमें रोगीके शरीरमें दाह, शुष्कता, न्वर, स्वेद, तुष्वा, मुच्छा, अरुचि एवं मोहका प्रकोप रहता है। उसकी उच्च-द्रवयुक्त, नीलवर्ण, पीत वा रक्तवर्णका मल पढ़ता है, जो प्राय: औव और धातुसे संश्लिष्ट रहता है। रोगो यथके समान कदि-भागवाला हो जाता है। उसके शरीरकी त्वचा और नख आदिको कान्ति हरित, पीत तथा हल्दोको-सी वर्णवाली हो जाती है।

कफजनित विकारके कारण उत्पन्न होनेवाले मांसांकर पुष्ट मूलभागसे युक्त, सपन, मन्द वेदनाजन्य और श्रेत-वर्णके होते हैं। इनमें स्निग्धता, स्तव्यता और भारीपन होता है। ये मांसांकर चिकने, नीले तथा कोमल होते हैं और इनमें खुजलाहर होती है। इन्हें छूनेसे सुख मालुम पडता है।

ये मांसांकर बाँसके निकले हुए अंकर, कटहलकी गुउली तथा गाँके स्तनोंकी आकृतिमें पाये जाते हैं। इस अर्शसे ग्रस्त प्राणीके करुभागसे कपर संधिम्थान, मलदार, वस्ति और नाभि-प्रदेशमें ऐसी पीड़ा होती है, जैसे उन स्थानोंको कोई काट-काटकर फेंक रहा हो। रोगी खाँसी धास. हत्त्वास. शृष्कता, अरुचि, पोनस, मेहकुच्छ, सिरपीटा,

जडता, वमन, शीतप्रकोष, बारोत्तेजन, नप्ंसकता, अग्निमान्ध तथा अतिसार आदिके विकारोंसे युक्त हो जाता है।

ऐसे रोगीको वसाके समान प्रतीत होनेवाले कफके साथ रक्तमित्रित मल पड़ता है। किंतु रक्तका स्नाव नहीं होता और न कष्ट ही होता है। रोगीके चर्म आदि श्रेत तथा हिन्छ हो जाते हैं।

जिन लोगोंमें इस रोगका त्रिदोपजन्य प्रकोप होता है. उनमें सभी संसुष्ट लक्षणींका उपद्रव होता है। रकाधिक्य अर्श होनेसे मांसांकरके लक्षण पित्तज अर्शके समान ही होते हैं। इसमें रक्तसे भरे हुए वटकी वरोहक सदश, लाल गुआफल और गैंगके समान रक्त होते हैं। उन लाल अंकुरोंपर जब गाढ़े मलका दबाब पहता है, तब बे अत्यधिक मात्रामें विकृत गाढे रक्तका प्रवाह करते हैं। उस समय रोगोको पोद्या भी अधिक होतो है। अधिक मात्रामें रकके गिर जानेसे रोगो मेदकके समान पीला पड़ जाता है। उस दुर्बलनामें उत्पन्न हुए अनेक कष्टोंसे पीडित रहना है। बह वर्ण, बल, हत्साह और ओज सभीसे रहित हो जाता है। उसकी इन्द्रियाँ कलुचित हो जाती है। मूँग, कोदो, जम्बीर (नोब), ज्वार, करील और चनाका आहार करनेसे उसके गुटाभागमें वायु कृपित हो उठती है और बलपूर्वक वह अधीवती विहादिक सोताको अवरुद्ध कर उनके मल-मुजादिको सम्बाकर कष्टप्रद बना देती है। उसके कुप्रभावसे रोगोंके कोछ, पार्ध, पीट और इदयभागमें भयंकर पोड़ा होती है। पेटमें मलके रहनेसे हृदयमें धहकन होती है, अधिक पीड़ा रहती है, बस्तिभागमें शुल होता है और गुण्डास्थलमें शोध का जाता है।

शरीरमें जब वाप कथ्यंगामी हो जाता है तो उसके कारण रोगीको समन, अरुचि, ज्वर, हृदयरोग, संप्रहणी, मुक्टोप, वहरापन, सिरपीडा, श्वास, चक्कर, खाँसी, पीनस, मनोविकार, नुष्णा, श्वास (कास), पिन, गुरुम तथा उदरादिके रोग होते हैं, वे सभी वातज रोग हैं। इनका स्वभाव अत्यन्त कठोर और कष्टकारी होता है। बातदोपका यह प्रकोप ही इनामा, मृत्यु तथा उदावतं अर्थात् बायगोलाके नामसे स्वीकार किया गया है। इस चातदोषसे पीडित कोष्ठ-भागोंमें यह रोग पूर्वोक्त कारणंकि बिना भी उत्पन्न हो जाता है। सहज अर्थ, जन्म धारणके पीछे ब्रिटोपसे उत्पन्न हुए अर्ज और भीतरबाली बलिमें उत्पन्न अर्श असाध्य होता है। परंतु यदि अग्निबल और आयु शेष हो तथा सम्यक् चिकित्स हो तो असाध्य रोग भी कष्टसाध्य हो जाते हैं।

गदाभागकी दसरी बलिमें जो अशौकरोंका समृह होता है, वह इन्द्रज अशोकरोंका समृह माना जाता है। इसको तत्काल वर्ष-भीतर ही चिकित्सा अपेक्षित होती है अन्यथा यह भी कष्टमाध्य हो जाता है। गुदाभागकी बाहरी बालमें त्रिदोपजन्य जो अशीकर होते हैं. उनको सामान्य औषधिके उपचारसे दूर किया जा सकता है, किंतु अधिक समय बीत जानेपर वे भी कष्टराध्य हो जाते हैं।

मेदादि स्थानोंमें इसी प्रकारके अर्श होते हैं। ऐसा हो नाभिदोषके कारण उत्पन्न हुए अशोकरोंका स्वभाव माना उपलमनका प्रयवपूर्वक प्रयास करना चाहिये। क्योंकि वे गया है। जो अशांकर गण्डस्थल (गृदाके भीतर)-में होते ज्ञान्त नहीं होनेपर शीघातिशीघ्र शरीरके गृह्य-प्रदेश तथा हैं, उनका रूप पिष्किल (फिसलाइटसे युक्त) तथा कीमल उदरभागमें बद्धगुदोदर आदि अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होता है। व्यानवाय कफको आध्यन्तरभागमे निकालकर का देते हैं। (अध्याय १५६)

त्वचाके बाह्य प्रदेशपर अशिक रूपमें परिवर्तित कर देता है। यह कीलके समान स्थिर तथा खर होता है। उसको विदानोंने चर्मकोल (या मस्सा)-के नामसे स्वीकार किया है। बातज दोषके कारण उत्पन्न चर्मकील (मस्सा) अत्यन कठोर सुईको नोकके समान तीक्ष्म वेदनावाला और खुरदुरापनयुक्त होता है। पित्तदोपसे उत्पन्न हुआ कीलक कृष्ण, लाल मुखभागवाला माना गया है और जो कफजनित होता है, उसमें स्निग्धता, प्रथिता तथा त्वचा वर्णता होती है।

बृद्धिमान् व्यक्तिको अर्शरोग होनेपर यथाशीय उसके

अतिसार-ग्रहणी-निदान

तथा संग्रहणारीयके निदानको बात बताता है।

इन रोगोंकी उत्पत्ति होती है। भय तथा शोकके कारण भी ये प्राणियोंके शरीरमें उत्पन्न हो सकते हैं। अत: वातन. पिसज, कफज, सलिपातज, भयज तथा शोकजके रूपमें इनके छ: भेद हो जाते हैं।

अतिसाररोग अधिक जल पीनेसे होता है। इसके (चर्बी) और तिलकुटको अधिक खानेसे भी यह उत्पन्न हो जाता है। मद्यपान, रूक्षाहार, अधिकतम मात्रामें रस और तेलका सेवन तथा उदरजन्य कृमियोंके प्रकोपसे एवं वेगारोधसे शरीरकी वायु प्रकृपित हो उठती है। तदननार वह अपानवायुके रूपमें ज़रीरके अधीधागमें जाकर उस दोषका विस्तार कर जठराग्नि-शक्तिको हासोन्युखो बन देता है। उस अग्निकी मन्द्रताके कारण शरीरमें गया हुआ

धन्यन्तरिजीने कहा-हे सुबुत! अब मैं आपको अतिसार रोगोंके हृदय, गृहाभाग तथा आमाशयादिमें पीड़ा होती है. करोरमें अवसाद होता है एवं पूरीपका निरोध और अपन बात-पित्त-कफ और सन्निपात दोषके कृपित होनेसे हो। होता है। शरीर पस्तोनेसे युक्त हो जाता है और कप्टकी उत्पत्ति होती है। यातदोषके कारण शरीर शिथिल पढ जाता है, पाचनशक्ति सुचाररूपसे कार्य नहीं करती है तथा करीरमें विशेष प्रकारका ज्वर रहता है। उस दीपके कारण उदरमें कुछ गृहगुडाहट भी बनी रहती है। गुद्ध भागसे बार-बार सुखा हुआ फेनसे युक्त स्वच्छ ग्रधित, जलाइन्ध अतिरिक्त सुखे अंकृरित एवं कच्चे अत्र, तेल पदार्थ, वसा और पिच्छिल (कचडाहीन) मल कप्टके साथ होता है। इस रोगमें मलद्वार शुष्क एवं विकृत होकर बाहर निकल जाता है, मल निकलनेमें कष्ट होता है। उस कष्टके कारण रोगी लम्बी-लम्बी धार्से छोडता हुआ काँखता रहता है।

पित -दोषसे रोगोको पीत-कृष्ण-हल्दी तथा नवांकर तुष वर्ण रक्तके सहित अत्यन्त दुर्गन्धपूर्ण दस्त होता है। उसको तृष्णा, मुर्च्छा, स्वेद और दाहका प्रकोप भी होता है। कफजनित अतिसाररोगके होनेपर गृह्यभागमें दाहपाक शुल अत्र-पिण्ड और पहलेसे स्थित पुरीष (मल) भस्म अथवा उठता है और संतापजनित कष्ट होता है। इस रोगमें मल सखनेकी अपेक्षा द्रवतादिके दोषमें बदलकर अतिसाररोगके द्रवयुक्त न होकर कठोर, भारी एवं घनीभृत रूपमें गुदाभागसं लक्षणको प्रकट करता है। उस रोगसे प्रभावित होनेवाले बाहर निकलता है, वह पिच्छिल (कचडाहीन) रहता है।

१-म्बनिव्यव ५६, अवहवनिव्यव ७

२-चवचिवअव १५, स्विनव्अव २, अव्हर्वनव्अव व

³⁻वर्वाचरकार १९ अर्थार्गनरकार ८, स्टाउन, अर ४० ४ स्टब्स् अन्दर्भ ४ अन्दर्भ अन्दर्भ

उसीके अनुसार वह बहुत ही कम या अधिक मात्रामें उदरके अंदर विद्यमान मलस्रोतमें पाया जाता है। मल-निस्सारणके समय कष्टके कारण रोगीको रोमाञ्च हर्ष मिचली और क्लेशकी अनुभृति होती है। शरीरके अंदर भारीपन रहता है और इसीके कारण वस्ति-प्रदेश, गुदाभाग और उदरमें भी भारीपन बना रहता है। ऐसे रोगीको दस्त होनेके उपरान्त भी दस्तकी अनुभृति बनी रहती है। जब वह वात-पित्त तथा कफजन्य सभी दोयपूर्ण लक्षणीसे युक्त हो जाता है अर्थात् रोगीके शरीरमें सन्निपातजन्य अतिसारका प्रकोप जन्म ग्रहण कर लेता है तो रोगी उस समय उक्त समस्त वातादिक विदोवोंके लक्षणसे समन्वित वन जाता है। भयवश चित्रके विश्वव्य होनेपर स्थान-विशेयमें पडे हुए रोगीके उदरभागका मल द्रवीभूत हो उठता है। तदनन्तर उस द्रवपूर्ण मलको यथाशीय वाय गुह्यमार्गसे बाहर निकाल देता है अर्थात भयवशात रोगीमें मलोत्सर्गकी इच्छा बलवती हो उठतो है और अन्ततोगत्वा उसे पानीके समान मन होता है। यात तथा पितदोषसे होनेवाले अतिसाररीएके एक समान ही लक्षण बताये गये हैं, बैसे ही लक्षण जीकज अतिसारमें भी उत्पन्न होते हैं।

संक्षिप्ततः अतिसाररोगके दो प्रकार है। उनमें प्रचम साम है और द्वितीय निराम है। साम अतिसाररोगमें मल आँवके सहित होता है, किंतु निराम अतिसारमें आँव दोपरहित मल निकलता है, उनमें एक सरक होता है और दूसरा बिना रक्तका होता है। साम अतिसारमें मल बदा दुर्गेन्थित होता है और जलमें डालनेसे इब जाता है। रोगीके फेटमें गुडगुडाहर, विष्टम्भ वेदना और मुखप्रसेक होता है। निगमके पोला, नीला और पतला दस्त होता है। वह दर्गन्धित खड़ी लक्षण सामसे विपरीत होते हैं, कफजन्य होनेके कारण पक्व इकार, इदय और कण्टमें दाह, अरुचि और तुपासे पीडित होनेपर भी मल जलमें नहीं इबता है। जो अतिमारमें रहता है।

संग्रहणीरीय बन जाता है। ग्रहणीरोगमें भुक्त अत्रके अजीर्ण होनेपर कभी आमसहित और कभी सात्र मल निकलता है। अलके जीर्ज होनेपर कभी पक्य मल निकलता है, कभी कुछ नहीं निकलता और कभी चार-बार बैंधा या डीला दस्त होता है। यह रोग चिरकारी होता है, इसलिये इसे संग्रहणी कहते हैं। संग्रहणी चिरकारी तथा अतिसार आशुकारी होता है।

इस रोगेंमें एकाएक मलकी प्रवृत्तिका बारम्बार संघात होता है अथवा वह एकाएक रुक-रुककर बाहर निकलता है। ऐसा यह संग्रहणीरोग वात-पित्त तथा कफजन्य दोषसे तो तोन प्रकारका है ही, किंतु सन्निपातिक दोषके कारण भी उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह चार प्रकारका हो जाता है। रोगोके जरीरमें शिथिलता, अग्निमान्य, खड़ी डकार, मुखसे लालाखाव, धुमनिर्णयवत् प्रतीति, तमक, न्वर, मृच्छां, जरुचि, तृष्णा, चकान, भ्रम, अपच, वमन, कानमें भनभनाहट और अन्बक्तजन — ये ग्रहणीके पूर्वरूप है। वातज ग्रहणीरोगमें वालुशोब, विभिरतीय, दोनी कानीमें शब्द, पसली, कह, वंश्रज और ग्रीवामें दर्द, बार-बार विस्थिका, सब कुछ भोजनको उच्छा, खुधा, तुषा, कैंचीसे कतरनेको पीठा, अफरा, कुछ भोजन करनेसे स्वस्थता, फेनसहित मल-ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं। रोगी बातज, हद्रोग, गुल्म, अर्ज, प्लौड़ा और पाण्डरोगको शंका करने लगता है। देरमें कष्टके साथ पतला या गाढा चौडा कच्चा एवं फेनयुक्त बार-बार मल आता है। गुदामें दर्द और श्वास-खाँसो भी उठने लगती है।

पिछव' ग्रहणोरोगमें रोगी पीला पह जाता है। उसे

सावधानी नहीं करता, उसे ग्रहणीरींग हो जाता है। पितज ग्रहणोंके होनेपर रोगीका मल द्रवरूप हो जाता अग्निमान्दताको बदानेवाले अत्यधिक मात्रामें किये है और कफजन्य ग्रहणीरीग होनेपर रोगीको अन्न कठिनतासे गये दोषपूर्ण आहार-विहारके सेवनसे अतिसाररोगका प्रादुर्भाव पचता है। उसको छरछराहटभरा वमन होता है। उसे होता है। जब रोगीके शरीरसे साम या निराम महः भोजनमें अरुचि होने लगती है। उसके मुखमें दाह होता है। अत्यधिक निकलता है तो उसे अतिसार कहते हैं। उसको कफयुक खाँसी आती है। उसके इदयसे उबकाई मलोत्सर्ग अधिक होनेके कारण इसकी अतिसार संज्ञा है। खुटती है और जुकाम हो जाता है। उसका हृदय पीड़ित यह स्वाभाविक आशुकारी है। यही अतिसार बीर्ण होनेपर और उदर भारी-सा प्रतीत होता है। उसपर आलस्य छ।

जाता है। उसे मीठी-मीठी ढकार और शरीरमें शिथिलता उत्तम स्वास्थ्यकी हेतु है। इस रोगमें भी प्राणीको आने सगती है। रोगीको समान या कुछ कम-अधिक प्यास लगतो है, अधिक मल निकलनेके कारण भूख मात्रामें कफसे युक्त मल होता है, जो भारी तथा अग्लताके सताती है, हर क्षण शिथिल होते हुए शरीरके कारण दोषसे संश्लिष्ट रहता है। उस रूपमें प्राय: मैथून अज्ञांक उसके मनमें विकृत चिन्ताएँ भी बढ़ जाती हैं। समस्त एवं रोगीकी शक्तिका अधिक हास होता है। इस रोगमें रोगोंका यही-मल ही कारण है। इसी मलके शरीरमें बलवान व्यक्ति भी दर्बल हो जाता है और उसमें रोगके रहनेपर प्राणीमें बातब्वाधि (बाई), अश्मरी (पथरी), सभी लक्षण दिखायी देने लगते हैं।

शारीरप्रकरणके अङ्ग-विभाग नामक तीसरे अध्यापमें जो विषय, तीक्ष्ण एवं मन्द नामक तीन पिताण्नियाँ इनका निदान अल्पन्त कठिन है और ये कष्टसाध्य है। कही गयी हैं, वे भी ग्रहणी-दोष ही हैं। केवल समान्ति

कुष्ट (कोड़), मेह, जलोदर, धगंदर, बवासीर और पहचोरोग होता है-ये आठों रोग महारोग माने गये हैं, (अध्याय १५७)

मुत्राघात-निदान

मुत्राधातका निदान सुने।

वरित' (पेड़ अर्थात् नाधि-प्रदेशसे नीचे और मृत्र-प्रवाहिकाके कपरका भाग), बस्तिशिर (मृत्र-प्रवाही नली), मेढ़ (जननेन्द्रिय अर्थात् लिंग), कटी (कूलोके भागके गङ्के), वृषण और पायु (गुदा) नामक शरीरके ये छ: अङ्क विशेष हैं, जो परस्पर एक-दूसरेसे सम्बद्ध और एक ही जगह ग्रथित है। इन सभीका आत्रय गुदाभागमें रहनेवाले अस्थि-विशेषके छिद्रसे सम्बद्ध रहता है। पेंड (बस्ति) अधोमुखी है। इसमें चारों ओरसे सूक्ष्म शिराओंके मुख्यागसे होकर रिसाब होता रहता है, इससे बस्ति मुत्रसे भरी रहती है। इन्हीं शिराओंसे वात-पितादि दोष भी वस्तिमें प्रविष्ट हो मृत्र पीला, लाल तथा दाहसे युक्त हो जाता है और उसके समान झलकता रहता है। मुप्राजयमें रुके रहनेपर अत्यन्त पीड़ा होती है। जब यह रोग मुत्र-निर्गमनेंमें ऐसा प्रकोप हो जानेपर रक्त, मांस तथा कफज होता है तो उसके पेड़ और लिंगमें भारोपन तथा धातु-प्रवाहके मार्गमें कष्ट होता है। बातजरोगसे व्यथित

धन्वन्तरिजीने कहा-हे सुबूत। अब इसके बाद आप रोगीपर मर्च-दोषजन्य मुत्राधात होनेसे सभी लक्षण पाये जाते हैं। जब वायु बस्तिके मुखको आच्छादित कर कपः, मुत्र और वीर्यको जुष्क कर देता है, उस समय रोगीक त्ररीरमें अस्मरी (पथरी) नामक रोग उत्पन्न हो जाता है। यह रोग बड़ा भयंकर होता है। जैसे गायका पित मुखकर गोरोचन बन जाता है, बैसे ही यह अश्मरी होती है। प्राय: सभी प्रकारको पथरियाँ कफाश्रित ही होती हैं। इस रोगका पूर्वलक्षण इस प्रकार है-

इस रोगके होनेमें बस्तिभागमें अवरोध होता है अथवा उसके सनिकट अन्य किसी भागमें भी हो सकता है। जिस भागमें होता है उस भागके चारों और अवयवींमें अत्यधिक पीडा होती है। बस्तिभागमें मुत्रका अवरोध तथा उसकी जाते हैं, जिससे मुत्राशयमें बोस प्रकारके रोग उत्पन्न हो। कुच्छता बनी रहती है। रोगीके मुत्रमें अजामुनके समान जाते हैं। मर्मात्रित होनेके कारण ये प्रमेहादि रोग अल्बन्त गन्ध, न्वर और अरुचि होती है। इस रोगका सामान्य कष्ट-साध्य हैं, अर्थात् इन रोगोंके होनेसे रोगीको मर्माहत लक्षण तो यह है कि रोगीके नाभि-लिंगमणि और वस्तिके करनेवाली पीड़ा होती है। रोगोंके पेड़, वंधण और ज़िरोधागमें कष्ट रहता है। अश्मरीद्वारा मार्गावरोधक कारण लिंगभागमें भी कष्ट होता है। उस कष्टसे गुप्ताङ्गोंके द्वारा वहाँ उस समय पर्याप्त भागमें मूत्र फैल जाता है। वह रक होता हुआ मुत्र अल्पमात्रामें बार-बार निकलता है। यातकरोगमें रूककर बाहर निकलता है। मृत्र निकलनेपर रोगीको प्राणीको मुत्र कष्टके साथ होता है। पित्तज मुत्राघात होनेपर सुखानुभृति होती है। उस मुत्रका वर्ण गोमेद या गोमुत्रके

शोध आ जाता है। मुत्र पिच्छल और रुक-रुककर होता है। रोगी अपने दौतोंको किटकिटाता हुआ काँपता है। मुत्रसे

भरे हुए नाभिसे नीचे स्थित वस्तिभागको पकड़कर दवाता हुआ वह कराह उठता है। अपानवायुके सहित मल-पिण्ड उसके गुहाभागसे निकलता है और बूँद-बूँद करके मूत्र टपका करता है। वातज दोषके कारण शरीरमें उत्पन्न हुई अश्मरीरोगका वर्ण श्याम है। उसमें रूक्षता रहती है। देखनेमें वह काँटोंसे बिंधी हुई-सी प्रतीत होती है।

पितज दोषके कारण उत्पन्न इस अज्ञमरीरोगमें वस्तिभाग जलने लगता है। उसमें ऐसा प्रतीत होता है, जैसे अंदर-ही-अंदर कुछ पक रहा हो। इस पित-दोषजन्य अञ्चरीका स्वरूप भल्लातक (भिलावेके बीज)-के समान होता है इसका वर्ण लाल, पीला अथवा काला होता है।

कफजन्य अश्मरी होनेसे बस्तिभागर्मे पीड़ा होती है उस स्थानमें भारीपन तथा शीतलताका अनुभव होता है। इस रोगमें तत्पन्न हुई अश्मरी आकारमें बड़ो, विकनी, मधु (शहद) अथवा क्षेतवर्णा होती है। ये तीनों अरमरी प्राय: वालकॉमें हुआ करती हैं। आश्रय, मृदुता और उपचयकी अल्पताके कारण चालकोंकी अश्मरी ग्रहण करके सुखपूर्वक निकालो जा सकतो है।

शुक्रके वेगको रोकनेसे प्राणीक शरीरमें शुक्राध्यरी नामक भयंकर रोगको उत्पत्ति होती है। जब धादु-प्रवाहिका नाड़ीसे गिरा हुआ अथवा कुपित वीर्य दोनों अण्डकोशोंके बीच रूक जाता है और लिंग-मार्गसे वह बाहर नहीं निकलता, तब वहाँ स्थित विकृत वायु विश्वका होकर उसको सुखा देता है, उसी दोपसे इस शुक्रारमरोका जन्म होता है। इस रोगमें भी बस्तिभागमें पीड़ा होती है। रोगीको मूत्र' निर्गत करनेमें कष्ट होता है। इसका भी वर्ण श्रेत माना गया है। इसके कारण मूत्रावरोध होनेसे तल्सम्बन्धी स्थानोंमें सूजन आ जाटी है। अण्डकोष और उपस्थेन्द्रियके बीचमें हाथसे दबाया जाय तो वह विलीन हो जाती है। इस रोगके हो जानेपर रोगीको पीड़ा होती है, उसके दुप्यभावसे ज्यर हो जाता है, रोगोकों खाँसी आने लगती है। इसी अश्मरीरोगके कारण रोगीके शरीरमें शकरारोगका विकार भी उत्पन्न हो जाता है। यदि इसकी अनुलोम गति होतों है तो यह मूत्रके साथ बाहर निकल जाती है अथवा मूत्रके साथ प्रतिलोम-अवस्थामें अंदर ही रूक जाती है। कुद्ध हुआ बायु वस्तिभागके मुखको रोककर आमाश्रयके जलस्रोतसे

नीचे आनेवाले उस मलिन जलको एकत्र कर देता है। इस मृत्रके संचित होनेसे वस्तिभागमें विकारकी उत्पत्ति होती है, रोगीको कष्ट होता है और उस भागमें खुजलाहट होने लगती है।

रोगीके जरोरमें विश्वका वह वायु वस्तिभागके मुखको विधिवत् दककर मूत्रावरोध उत्पन करता है तथा वस्तिको अपने स्थानसं हटाता हुआ उल्टा या इधर-उधर करके वस्तिमें विकृति उत्पन्नकर गर्भ-जैसा स्थूल (मोटा) बना देता है एवं उस स्थानको पीड़ित करता है। वहाँ उसके कारण जलन होती है। उसमें स्थन्दन होने लगता है और कुल्होंमें भी चीड़ा प्रारम्भ हो जाती है। रोगीका मूप बिन्दुवत् टपकता है, यह अपने सही बेगसे नहीं निकलता। वस्तिभागमें पीड़ा बनती रहती है। दखानेपर मुत्र धारा- रूपमें निकलता है। वायुजन्य इस रोगको वातवस्तिके नामसे स्वीकार किया गया है।

वार्तवस्तिकं दो भेद हैं-पहला बस्तिकं मुखको ग्रेकनेबाला दुस्तर कहलाता है और दूसरा दुस्तरतर। वस्तिके मुखको ऊपर करनेवाला अत्यन्त कृष्ट्रसाध्य है, क्योंकि इसमें वायुका विशेष प्रकोप होता है। मलमार्ग तथा वस्तिभागके बाँच स्थित वायु अष्टीलाकृति अर्धात् गीलककडी या अँदुलोके समान पनोभूत शकिशाली, मज़बूत ग्रन्थि (गाँठ) उत्पन्न करता है, जिसके कारण इसको बाताछीला नामसे ऑपहित किया गया है। इस रोगमें वायु रोगीके अपानवायु तथा मल-मूत्रको अवरुद्ध कर देता है। यस्तिभागमें विद्यमान कुपित वायु कुण्डली मास्कर तीव्र पीड़ाको जन्म देता है। वहाँ मूत्रको रोककर यह उसमें आर्याधक स्तम्भनका दोष उत्पन्न करता है। ऐसी अवस्थामें रोगीको बहुत ही अल्प मात्रामें बार-बार मूत्र होता है तथा ऐसी अवस्थामें रोगी मूत्रको अधिक देरतक रोकनेमें असमर्थ रहता है। ऐसे रोगको वातकुण्डलिका कहते हैं। जब रोगी रुके हुए मूत्रको निकालनेमें पीड़ाका अनुभव करता है तो वह निरुद्ध मृत्र-कृच्छुरोग है अथवा मृत्रको अधिक कालतक रोकनेके पश्चात् यदि उसका वेग नहीं आता है या रुक-रुककर आता है और कुछ कष्ट होता है तो उसको मूत्रातीत कहा जाता है।

मृत्रके वेगको रोकनेसे प्रतिहत हुआ मृत्र अथवा वायुसे

पीछेको घुमाया हुआ मूत्र जब नाभिके नीचे उदरमें भर जाता है, तब वह तीख़ वेदना और आध्यान पैदा करता है और मलका संग्रह करता है। इसे मूत्रजठर कहते हैं। मूत्रके दोयसे अथवा कुपित वायुके द्वारा आधिप्त हुआ थोड़ा-सा मूत्र वस्ति, नाल, उपस्थको मणिमें स्थित होकर थोड़ा-थोड़ा दर्द करता हुआ अथवा बिना दर्दके हो निकलता है, इसे मृत्रोत्सर्ग या मृत्रजठर कहते हैं।

अवार्धगतिसे मूत्रोत्सर्ग होना प्राणीके ब्रेष्ट अण्डकोषीपर निर्भर होता है। एकाएक रूका हुआ मूत्र निकल जानेपर अन्तःकरण और मुख सुष्क हो जाता है। अधिकाधिक या अल्प मात्रामें प्राणीको प्यास लगती है। वस्तिके आध्वन्तर भागमें मूत्रावरोधके कारण अश्मरीके सदृश एक प्रन्थि पड़ जाती है, जिसको मूत्रप्रन्थि कहते हैं। मूत्र-रोग -प्रान्तर रोगीका जब स्त्रीके साथ सहवास होता है तो उस समय वायुके द्वारा हो स्त्रीके गर्भाश्यम शुक्र पहुँच जाता है, किंतु स्थान-विशेषमे निकला हुआ वह शुक्र मूत्र-क्षरण होनेसे पहले अथवा बादमें लिंगसे बाहर आता है। इसका स्वरूप भस्मिमित्रर जलके समान होता है। इसको वैद्यकमें मूत्रशुक्रके नामसे जाना जाता है।

जय रूथता और दुवंलताके कारण वातजन्य दोषसे उदावर्त उपद्रव होता है अर्थात् शरीरके अंदर विद्यमान अपानवायु व्यानवायुसे घिर जाता है अर्थात् मलावरोध हो उठता है तो उस कालमें वह मल-मूत्र खोतकी संसृष्टिसे संयुक्त हो जाता है। इसमें मृत्र बूँद-बूँद ही होता है और इस टपकनेवाले मृत्र-बिन्दुओंमें एक दुर्गन्थ-सी रहती है। ऐसे रोगको मृत्रविधातके नामसे स्थीकार किया जाता है।

पित', व्यायाम, तीक्ष्ण और अम्लाहार तथा आध्मान (पेट फूलने) अथवा अन्य विकृतियोंके द्वारा शरीरके आध्यन्तरिक भागमें बढ़ा हुआ पित-वायु-विकार वस्तिभागमें दाह उत्पन्न कर देता है, जिसके कारण रक्तपुक्त मूत्र विकलता है अथवा उच्च रक्त ही उसकी मूत्र-प्रवाहिकासे बार-बार कष्टपूर्वक गिरता है। इस प्रकारके कष्टको उत्पन्न करनेके कारण लोगोंने उस रोगको उच्चवातको संज्ञा दी है।

स्थोहार तथा परिश्रम करनेसे श्रान्त रोगीका पित्त और बायु कुपित हो उटता है। वह उसके बस्तिभागमें मूत्रावरोध, पोड़ा, क्षय और जलन उत्पन्न कर देता है। उस लक्षणसे युक्त मूत्रापात-कष्टको मूत्रक्षय कहा गया है।

यदि कृपित वायुके द्वारा पित और कफ अथवा इन टोनोंको संख्या कर दिया जाता है तो उस समय प्राणीको जलन, कष्टसाध्य मूत्र-निर्ममन होता है। उसके मृत्रका वर्ण पीला, रक तथा खेत हो जाता है और उसमें गाड़ापन भी आ जाता है। वरितधागर्य दाहभरी जलन होती है। जो मृत्र निकलता है, उसका वर्ण सूखे गोरोचन तथा शंख-पूर्णके समान होता है। इस रोगको कच्छमूत्रसाद कहते हैं। इस प्रकार विस्तारपूर्वक मूत्रमें होनेवाले रोगोंको भी मैंने यता दिया है। (अध्याय १५८)

प्रमेहरोग-निदान

धन्यनारिजीने कहा —हे सुनुत। अब मैं आफ्को प्रमेहे-रोगोंका निदान सुनाकैंगा, उसे सुनें।

प्रमेह बीस प्रकारके होते हैं। उनमें दस प्रमेह कफवन्य, छ: प्रमेह पितजन्य और चार प्रमेह वातजन्य हैं। इन सभीमें मेद, मुत्र और कफको संसृष्टि होती है।

प्रमेहका सबसे पहला प्रकार हास्ट्रिमेह है। इस प्रमेहके होनेपर रोगीको करु, रसमित्रित मूत्र हल्दोंके समान मल-मूत्र होता है। इस प्रमेहका दूसरा प्रकार मंजिशक्त है। मंजिशक्तिके होनेपर मंजिश्च (मजीठ)-वर्णके जलके सदृश होता है। इसका तीसरा प्रकार है रक्तमेह। इस रक्तमेहके होनेपर रक्तवर्णकी आधावाला कच्चे मांसको गन्धसे समन्वित उष्ण तथा लवण-तत्व-मित्रित मूत्र होता है। जसामेहमें चर्नी-मित्ता हुआ मूत्र अथवा केवल चर्बी ही बार-बार निकलती है। वसायुक्त मज्जमेही व्यक्ति वर्ष और गन्धमें समानता रखनेवाले मज्जा-तत्त्वसे संश्लिष्ट मूत्रत्याग करता है।

द्धव प्राणी मतवाले हाथांके समान असंयमित वेगसे अधिक समयतक मूत्र निकालता है, जिसके साथ एक चिपांचपा पदार्थ भी आता है और यह यदा कदा बीच-बोचमें रुक भी द्याता है तो उस रोगोको हस्तिमेही मानना चाहिये। हस्तिमेह प्राय: वृद्धावस्थामें होता है। जब व्यक्तिको मधुके समान मूत्र होता है अर्थात् उस मूत्रमें शरीरके अंदर विद्यमान मधुर रसका तत्य आने लगता है तो उसे मधुमेही

कहा जाता है। यह दो प्रकारका माना गया है। एक तो धातुके श्रीण होनेपर बादुके कृपित होनेसे तथा दूसरा पितादि दोयसे वायुका मार्ग रुक जानेसे।

इस प्रमेहमे थिरा हुआ रोगी प्राय: अन्य सभी दोषजन्य प्रमेहोंके लक्षणोंसे संयुक्त हो जाता है। ऐसे रोगीमें अन्य दोषोंके लक्षणोंका आगमन कोई कारण नहीं खाता। यह रोग तो अपनी प्रबलताके प्रभावसे उन्हें विना निमित्तके ही रोगीके शरीरपर प्रकट कर देता है। यह ऐसा प्रमेड है कि क्षणमात्रमें नष्ट हो सकता है और क्षणमात्रमें हो अपने पूर्व बलके साथ उपर सकता है। अत: रोगीको चाहिये कि वह कष्ट उठाकर भी इस वर्गभेदवाले मधुमेहरोगका निदान कर ले। इसको सामयिक उपेक्षा कर देनेपर प्राणीके सरीरका सब कुछ मधुमेहताको ही प्राप्त कर लेता है अर्थात् ऋरीरके समस्त स्रोतोंमें इसका विकार पहुँच जाता है और एक दिन मध्मेहक अतिरिक्त कुछ शेष ही वहीं रह बाता तथा उसको असामयिक मृत्यु हो जाती है। इसका विस्तार हो जानेपर सभी प्रकारके मेहरोगोंमें रोगी प्राय: मध्के समान ही गादा मूत्र नलीसे निकालता है। शरीरमें जो मधुरता है, वह मधुरता इन सभी प्रमेहोंमें नष्ट होती है, इसलिये इन सभी प्रमेहोंको मधुमेह ही कहा जाता है। इस प्रमेहरोगमें रोगी अपच, अरुचि, वमन, अनिद्रा, खाँसी और पीनसके उपद्रवसे ग्रस्त हो जाता है।

कफजन्य प्रमेहमें वस्ति तथा मुत्राज्ञय-भागमें पोद्धा तप्ट-पुष्ट शरीरका क्षरण और ज्वरके उपद्रव जन्म लेते हैं। पित्तप्रमेंह होनेपर रोगीके शरीरमें दाह, तृष्णा, खड़ी हकार, मुच्छां, अतिसार एवं मलभेदका विकार होता है। बातन प्रमेहमें उदावतं, कम्पन, इदयवंदमा, बेचैनो, जुल, अनिहा, जुष्कता, श्रास तथा खाँसीके विकार पैदा हो जाते हैं।

शराविका, कच्छपिका, ज्वालिनी, विनता, अलजी, मस्रिका, सर्पपिका, पत्रिणी, सविदारिका और विद्विध नामक दस प्रकारकी कृतियाँ प्रमेह-रोगोंकी उपेक्षा कर देनेपर उत्पन्न होती है।

रस मुत्रके मार्गसे निकल जाता है। मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध, भारो, चिकना और शीतल पेय, नया चावल, मदिरा, मिर्च-मसाला, मांस, इक्षुरस, गुड, गोरसके सेवन, एक स्थान और एक आसनपर ज्ञयन इस मधुमेहरोगके उत्पादक है। इस प्रमेहरोगके होनेसे कफ वस्तिभागमें पहुँचकर उसको दूषित कर देता है। तदननार वह स्थेद मेदा, बसा और मांससे युक्त शरीरको दुषित करके शिथिल बना देता है।

जब कफ पहले क्षीण हो जाता है तो वायु मूत्रके सहित चित्त, रक्त और धातुको वस्तिभागमें लाकर उसका वहींपर विनात करता है। साध्य-असाध्य प्रतीत होनेवाले जो मेह हैं, वे सभी इसी वायु-विकारमें ही उत्पन्न होते हैं। जब वायु, पित और कफकी मात्रा निर्दृष्ट होकर समान रहती है, तब मेह भी समान-भावसे रहता है।

उक्त प्रमेह-भेदीका सामान्य लक्षण तो प्रचुर मात्रामें विकृत मूत्रका होना है, किंतु शरीरमें उस विकारके संयुक्त होते ही विशेष परिस्थितिमें भी पड़े हुए मनुष्यके लिये अपेक्षित है कि उस दोषका निवारण कर ले। मुत्रके वर्णादिक लक्षणोंके अनुसार इन प्रमेहरोगोंमें भेदकी कल्पना को जाती है। यह मेहरोग दस प्रकारका है। सामान्यत: मुत्र स्वच्छ, अत्यन्त श्रेत, शीतल, गन्धहीन तथा जलके समान होता है, किंतु जो प्राणी उदक्रमेहसे ग्रसित है, वह कुछ मटमैले और निपचिषे मुत्रका क्षरण करता है। इक्षुमेह-रोगोके ऋरीरसे इक्षुरसके समान अत्यन्त मधुर मुत्र निकलता है। सान्द्रमेहसे प्रभावित रोगी बासी रखे हुए जलके समान मृत्र छोड्ता है। सुरामेही रोगीका मृत्रसाव सुरा (मदिरा)-के सदश होता है, जो ऊपरसे देखनेमें स्वच्छ तथा सान्द्र प्रतीत होता है, किंतु अंदरसे गादा रहता है। पिष्टमेहसे प्रसित रोगोको प्राय: मुत्रसावके समय रोमाञ्च हो उठता है। वह तण्ड्लमित्रित जलके समान अत्यन्त श्रेत मूत्रका परित्याग करता है। जो शुक्रमेही है, उसको शुक्रमिश्रित अथवा जुक्रके समान वर्णवाला मुत्र गिरता है। सिकता प्राय: कफजन्य' दोषसे संश्लिष्ट होनेके कारण खाया अर्थाद् रेतमेहसे पोड़ित व्यक्तिको रेतके समान ही मूत्र तथा हुआ अत्र प्रमेहरोगके रूपमें परिणत हो जाता है। उसका उसके सदश मल अथवा विकार हो जाता है। शीतमेही

रोगीको प्राय: अधिक मात्रामें मधर और अत्यन्त शीतल मृत्र गिरता है। जो रोगी शनैमेंही विकारसे संतप्त होता है. वह धीरे-धीर वार-बार मन्द-मन्द गतिसे मुत्र-धरण किया करता है। लालामेही रोगों लालातन्त अर्थात लारके समान तार बनानेवाले चिपचिपे मुत्रकी धार छोडता है। क्षारमेह^र होनेपर रोगी गन्ध, वर्ण, रस तथा स्पर्शमें समान श्वारपुक्त मुत्र करता है। नीलमेही नीलवर्णके समान और मसी अर्थात स्वाहीके सदश कृष्णवर्णवाले मुत्रका परित्याग करता है।

संधिस्थान', मर्मस्थल, मांसलभाग तथा कोष्ठ-प्रदेशोंमें जो प्रमेहपिडिका होती है, वह अन्तमें उन्नत, मध्यमें निम्न, आईतासे रहित और सहन करनेवाली पोडासे समन्वित होती है।

जो पिडिका (फुंसी) किनारोंपर ऊँची, बॉचमें नीची, श्यामवर्ण, फ्लेंद्र और बेंदनासे वुक्त होती है तथा जिसकी शराव (मिड़ीका कसोरा)-के समान स्थिति और आकृति होती है, उसे शराविका कहते हैं। जो पिडिका कञ्चएके समान होती है और उसमें जलन रहती है, उस पिडिकाकों विद्वान लोग कच्छपिका नामसे स्वीकार करते हैं। बहुत बड़ी नीलवर्णके समान दिखायी देनेबाली पिडिकाको विनताक नामसे माना गया है। शरीरमें जिस पिडिकाके उभर आनेसे त्वचामें जलन होती और रोगी कड़का अनुभव करता है, उस पिडिकाको न्यालिनी कहा जाता है। रक-श्रेत तथा स्फोटका रूप धारण करनेवाली कठोर पिडिकाका नाम असजी है। जो पिडिकाएँ मसुरके समान आकृतिवाली हैं, उन्हें मसुरिकाके नामसे जानना चाहिये। जिद्धमें सरसंकि समान छोटे-छोटे उभरे हुए दानोंको सर्पपिका कहा जाता है, जो रोगीको अत्यधिक कष्ट देते हैं। पुत्रिजी नामक पिडिका बढी अथवा छोटी होती है। यह अत्यन्त सक्ष्म भी हो सकती है। जो पिडिका विदारीकन्दके समान गोल तथा कठोर होती है, उसका नाम विदारिका है। विद्रधिके लक्षणोंसे यक्त अर्थात् पीपसे युक्त पिडिकाको बिद्रधिका कहा जाता है।

पुत्रिणी और विदारी नामक प्रमेहजनित पिडिकाएँ निवारण असम्भव हो है। (अध्याय १५९)

अत्यन्त कष्टकारी होती है। सद्य: पितके प्रकृपित होनेसे मेदको अल्प मात्रामें विकृत करनेवाली अन्य पिडिकाएँ उत्पन्न होती हैं। प्राय: शरीरमें जैसे-जैसे दोपकी अभिवृद्धि होतों है, वैसे-ही-वैसे उन सभी पिडिकाओंका आविर्भाव होता है। मेदको विकृत करनेवाली इन पिडिकाओंका जन्म तो बिना प्रमेहके भी हो सकता है। जबतक पिडिका बर्नरहित होती है, तबतक उसके प्रधान लक्षणको निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता। जो हल्दोंके समान अथवा रक्तवर्ण वा प्रारम्भिक स्वरूपका परित्याग करनेबाले रक्त मृत्रका शरण करता है, उसको प्रमेहरोगके बिना रक्तपितरोग जानना चाहिये। रक्तपित्तरोगके प्रभावसे ही मुत्रका रंग हरिद्रा एवं रक्तवर्णका हो जाता है।

प्रमेहरोनका' पूर्वरूपमें स्वेद, अङ्ग-विशेषमें अप्रिय गुन्ध और अङ्गोर्मे शिथिलता, शब्या, भोजन, निद्रा तथा सन्त्रको आसक्ति, इटय, नेत्र, जिह्ना एवं कानोंमें असाधारण या साधारण भारीपन, जलन, बाल और नाखनोंमें अभिवृद्धि, शोतल पदार्चीके प्रति प्रेम, कण्ठ तथा तालुमें शोध, मुखपर माध्यंभाव और हाथ-पैरमें जलनके लक्षण दिखायी देते हैं। प्राय: इन सभी प्रमेहरोगोंके रोगीके द्वारा किये गये मुत्रपर चीटियाँ दौड़ने सगती है।

प्रमेहरोगमें तृष्णा, मधुरता तथा चिकनाहटका लक्षण तो सामान्य है, किंतु मधुमेह होनेपर अनेक प्रकारके विकारोंका जन्म हो जाता है। शरीरमें इस रोगके परिव्याप्त होनेपर इसको उत्पत्तिका कारण कफजन्य मानना चाहिये अधवा सभी दोपॉक श्रीण हो जानेपर यदि प्रमेहका कोई विकार दिखायों देता है तो वह वायुजन्य होता है। प्रमेहके ये सभी प्रकार तो कफ और पित्तने युक्त होते हैं, यथाक्रम जिनकी उत्पत्ति रवि-प्रसंपको आसक्तिके कारण रोगीके मुत्र-भागमें होती है। जो प्रमेह पिसदोपके कारण उत्पन्न होते हैं, वे याच्य हैं। साध्य वही प्रमेय होता है जो अपने सम्पूर्ण लक्षणांसे समन्वित होकर रोगीके शरीरमें दिखायी नहीं देता। यदि वह सभी लक्षणोंसे पूर्ण हो जाता है तो उसका

विद्रिध एवं गुल्म-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा-हे सुब्रत। अब मैं विद्धि और होता है और उसका पाक शीघ्र नहीं होता। गुल्मका निदान कहता है, उसे आप सुने।

बासी एवं अत्यन्त उष्ण, रूक्ष, शुष्क तथा विदाहकारी भोजन करनेसे, टेढी-मेढी श्रय्यापर टेढा-मेढा शयन करनेसे तथा रक्तको दूषित करनेवाले विरुद्ध आहार-विहारसे रक्त दपित होकर चमड़ा (त्वक्), मांस, मेदा, अरिब, स्नायु एवं मजाको दुषितकर यह उदस्का आश्रयण करता है। दृष्ट रक जब उदरका आश्रयण करता है तो अङ्ग-विशेषमें (बाहरकी ओर मुँहवाला अतिशय शुलके साथ और अतिशय पाँडासे यक्त वृत्ताकार अथवा भीतरकी ओर मुँहवाला आवताकार) जो शोध उत्पन्न हो जाता है, आयुर्वेदवेला वैद्यगण उसे विद्वधिरोग' कहते हैं।

दोषोंके द्वारा (बायू, पित्त आदिके) फिल-फिल रूपमें या मिश्रितरूपमें एक एवं सावके तत्तत अङ्गर्मे प्रन्थिक आकारका विद्रधिरोग अतिक्रय दारण, गम्भीर और गुल्मको बढानेवाला होता है। वह बल्मीक अर्थात दीमकके घरके समान सच्छिद्र होता है और सभी छिद्रोंसे सदा रक्त आदि बहता रहता है, इससे जठरागि मन्द हो जाती है। नाधिवृत्ति, यकृत, एतीहा, क्लोम (वृक्क), कृक्षि, गुद एवं वंश्रज आदि स्थानोंमें विद्वधिरोग उत्पन्न होनेपर रोगीका हृदय सटा कांपता रहता है और बिद्रधि-स्थानमें तीय बेटनाकी अनुभृति होती है।

विद्रधिका शोध श्यामवर्ण अचवा रक्तवर्णका होता है। इसका ऊपरी भाग उन्नत रहता है। कालान्तरमें पाक हो जानेसे यह विषम आकारका हो जाता है। विद्रधिरोगमें संज्ञा-नाश, भ्रम, अनाह, रक्तस्राय और अध्यक शब्द होता है। पित्तज बिद्रिधि रक्त (साल), ताम्र अथवा कृष्णवर्णका शीभ्रपाकी होता है। इसमें तथा, दाह, मोह, ज्वर, बेहोजी तथा जलन आदि उपद्रव होते हैं। कफज विद्रिध तेजीसे उभरता है एवं शीघ्र पक जाता है, पीला हो जाता है और खुजलाहटसे युक्त अरुचि, स्तम्भ रहता है। सक्रिपाठजन्य विद्रधिमें अधिक क्लेश, शीत, स्तम्भ (जकडन), जुम्भण (जम्हाई), अरुचि, शरीरका भारीपन आदि सभी लक्षण व्यक्त

बाह्य और आध्यन्तरिक विद्रधिमें मल पतला होता है। संत्रिपातक विद्विध कृष्णवर्ण, स्फोटावृत और श्यामवर्णका होता है। उसमें रोगोको अधिक दाह, विद्रधि-स्थानमें पीडा और तीव ज्वर हो जाता है।

बाह्य बिद्रिधि प्राय: पितज और रक्तज होती गर्भाशयगत रक्तज अन्तर-विद्रिध केवल नारियोंको ही होती है। जस्त्र आदिके अधिधातसे अधिक रक्तके बहनेपर यह रोग उत्पन्न हो जाता है। किसी स्थानके कटनेपर वायके द्वारा परिचालित रक्त पित्तको प्रेरित करता है, जिससे रक-पित लक्षणवाला बिद्रधिरोग उत्पन्न होता है। यह अत्यन्त उपद्रवकारों होता है। स्थान-भेदसे उपद्रवोंका भेद कहा जाता है। नाभिमें विद्वधिरोग होनेपर उसकी धौकनीको तरह गति (हिचकी) होती है। वस्ति और मुत्राशय आदिमें विद्वयि होनेपर मूत्र-त्यागर्मे दुर्गन्ध बहुत तथा बलेश अधिक होता है। प्लीहा-स्थानमें विद्विध होनेपर श्रास-प्रश्नासका रोध हो जाता है और अत्यन्त प्यास लगती है। क्लोम-स्थानमें विद्धि उत्पन्न होनेपर गलेका रोधतथा होने लगती है। इदयमें विद्विध होनेपर सर्वाद्वमें बेदना होती है। मोह, तमक, श्रास, काससे हदयकी शुन्यताका बीध होता है। कुछि और पार्शक आध्यन्तरमें बिद्रिध उत्पन्न होनेपर कुक्षिमें अनेक प्रकारके दोष उत्पन्न हो जाते हैं तथा ऊठ, संधि, धड, वंश्वय, कटि, पीठ, बगल तथा नितम्ब-इन स्थानोंमें विद्रधिके उत्पन्न होनेपर अपानवाय-अवरोध होकर अत्यन्त वेदना होने लगती है। विद्वधिके कच्चे होनेपर, पक जानेषर अथवा सुजनके आधारपर आगेकी स्थितका निर्देश करना चाहिये। आन्तर विद्रिध यदि नाभिसे ऊपर ऊर्ध्वमुख है तो मबाद एवं रक्तका साव मुखसे होता है और नाधिके नीचे होनेपर गुदामार्गसे साथ होता है तथा नाधिमें होनेपर दोनों ओरसे होता है। उच्च विद्रधिमें दोष क्लंदके समान जानना चाहिये। सित्रपातज विद्रिध अपने स्थानमें अनेक प्रकारके विवर्तको उत्पन्न कर देता है। नाधि और वरितमें स्थित विद्रिध अन्तर्गत या बाह्यगत किसी भी प्रकारका हो, होते हैं। संत्रिपातिक (त्रिदोपजन्य) थिद्रिध चिरकालमें उत्पन्न वह निश्चित हो पककर फटता है। उसका परिपाक विद्रिध

वदनेपर होता है, यह विद्रोध श्लीण होनेपर भी अनेक प्रकारके उपद्रवको जन्म देती है। दृष्ट स्वभाववाली एवं पापिनी स्त्रीकी गर्भगत संतान यदि नष्ट हो जातो है तो गर्भमें अधिक सूजन उत्पन्न होता है। स्त्रियोंके स्तनमें जो विद्रिध होती है, वह अतिशय दु:खप्रद होती है। यह बाह्य विद्रधिका लक्षण है। कन्याओंकी नाड़ियाँ अतिज्ञय सूक्ष्म होनेके कारण उन्हें यह स्तनविद्वधि रोग नहीं होता है। यह अपानंबायको गतिरोध होनेपर कुद्ध बायु खिगमूलमें शोध उत्पन्न करता है तथा मुख्य एवं वंक्षणगत फलकोशतक जानेवाली फल्कोटकी शिराओंको पीडितकर उसमें वृद्धि करता है। इससे मेदामें दोष उत्पन्न होता है। यह बुद्धिरोग है, जो सात प्रकारका होता है-बातज, पितज, कफज, रक्तज, मेदज, मूत्रज और आन्त्रज। वातज वृद्धिरोगर्मे मूत्र वातपूर्ण, कठोर स्पर्शवाला तथा बाह्य और आभ्यन्तरिक एवं रूक्ष वायुके कारण जलन पैदा करनेवाला होता है। पिछज वृद्धिरोग पके हुए गूलरके फलके समान दाह और अन्यासे युक्त होता है और पक जाता है। कफन बृद्धि कफनन्य होती है, वह तीव, गुरु, स्निग्ध और कठोर तथा खूजलीसे युक्त रहती है। इसमें अल्प बेदना होती है। रकज बुद्धि, कृष्णवर्ण, स्फोटसे युक्त, पिण्डके समान होती है और उसके वृद्धिका लक्षण पित्तजके समान होता है। मेदज वृद्धि मृद् और तालफलके समान होती है। इसके लक्ष्य कफजके समान होते हैं। जो मुख्के बेगको धारण करते हैं. उनको मूत्रज वृद्धिरोग उत्पन्न होता है। इसमें मूत्रकृष्ण ही जाता है। मुत्रज वृद्धिमें अण्डकोष मसकके समान हिलता है। यह वेदनायुक्त और मृद् होता है। इसमें मृडकुच्छ हो जाता है और अण्डकोषके नीचेके भागमें कंकण-जैस आकार उत्पन्न हो जाता है। आन्त्रज युद्धिरोग वायुको कृपित करनेवाले आहारसे और शीतल जलमें स्नान करने तथा मल-पृत्रके चेगको रोकनेसे, अङ्गकी चेष्टाओंसे धुन्ध किये जानेपर जब ओजशक्ति शुक्य होकर शरीरको श्रीण कर देती है, तब बायु दुषित होकर रक्तको नोचेकी और ले जाता है। इससे संधि-स्थानमें प्रन्थिके समान शोध हो जाता है।

वृद्धिरोगकी उपेक्षा करनेपर गुल्म-वृद्धि अन्त्र-वृद्धि आध्यान आदि अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रोगी अस्यन्त पीडित हो जाता है। आध्यन्तरमें शब्द होने लगता है और वायु शिर:प्रदेशमें आध्यान हो जाता है। रक्तज गुल्म वृद्धिरोग असाध्य है और इसके लक्षण वातज वृद्धिरोगके समान होते हैं। गुल्म वृद्धिरोग काली-नीली शिराओंके जालसे उसी प्रकार व्याप्त हो जाता है, जैसे कोई झरोखा मकडीके जालसे आवृत हो जाता है। यह गुल्मरोग आठ प्रकारका होता है- बातिक, पैतिक, श्लेप्पिक, वातपैतिक, वातरलेप्निक, पित्तकफ और (त्रिदोषज) सन्निपातिक। चतुसन्बन्धित रक्तके दृषित होनेपर आठवाँ (आर्तवदोराज) गुल्म केवल स्त्रियोंके गर्भाशयमें होता है।

जो मनुष्य च्चर, मुच्छां, अतिसारके द्वारा एवं वमन-विरेचनादि पञ्चकमेके द्वारा दुर्बल हो तथा वातकारक अनका भोजन करे; जो शीतसे अथवा भुखसे पीड़ित हो और भोजनसे पूर्व खालो पेट अधिक जल पीये अथवा जलमें तैरे एवं देहको शुक्य करनेवाला उपवास करे तथा वमनका बेग न होनेपर भी वमन करनेका प्रयास करे. म्नेहन, स्वेदनके बिना वमन, विरेचन आदि करे अथवा ठोक प्रकारसे शुद्धि कर्मके बिना वात-विदाहि अलका सेवन करे या कष्ट देनेवाले सवारीपर वदे तो सम्पूर्ण बातादि दोष अलग-अलग वा एक साथ मिलकर देहस्रोत (आम पक्वाहाय)-में गमन करते हैं और ऊर्ध्व-अधोमार्गको आच्छादित या निरोध करके वायशुल उत्पन्न करते हैं। ऐसी दशामें छुनेसे अनुभवमें आनेवाला, गरम, ऊँचा उठा हुआ तथा गाँउ-वैसा गुल्मरोग उत्पन्न हो जाता है।

धातुके श्रीण हो जानेसे कफ, विद्यादिके द्वारा मार्ग अवरुद्ध हो जानेसे बाय कोष्टमें स्थित हो जाता है और रूअताके कारण कठोर हो जाता है। यह अपने आश्रय (अथवा पक्काशय)-में स्वतन्त्र रूपसे दृष्ट हो जाता है और परात्रय (आमाशय)-में परतन्त्र-भावसे (कफाटिके अधीन) दृष्ट हो जाता है। तदनन्तर यल एवं श्लेष्मासे संयुक्त होनेके कारण पिण्ड-जैसा हो जाता है। इसे वातगुल्म कहते हैं। यह वस्ति, नाभि, हृदय और पसलियोंमें उत्पन्न होता है। वातज गुल्मरोगमें सिरमें पीड़ा, ज्वर, प्लीहा, आन्त्रकूजन, सुईके वेधके समान पीडा-ये सभी उपद्रव होते हैं और बहुत कहसे मुत्र होता है। उक्त रोग वायुचालित होकर शरीर, मुख, पैर, शोध, अग्निमान्द्र आदि उपद्रवको उत्पन्न करता है। विशेषत: शरीरमें चमडा रूक्ष और कृष्णवर्णका

हो जाता है। वायुके चञ्चल होनेके कारण गुल्मरोगका कोई निर्दिष्ट एक स्थान नहीं है। अत: यह अनेक प्रकारको व्यचाएँ उत्पन्न करता है। वातज गुल्मरोगमें चौटीके चढ़ने या काटने-जैसा स्फुरण होता है और चुभनेको तरह व्यथा होती है।

पित्तज गुल्यरोगमें दाह, अस्तोद्गार, मूर्च्छा, मलभेद, पसीना, तृष्णा और न्वर— ये सभी उपद्रव होते हैं। सम्पूर्ण शरीर हल्दीके वर्णका हो जाता है। इस रोगमें शोध भी हो जाता है और श्लेष्मा घटता-बढ़ता रहता है। गुल्मके स्थानमें जलन-सी प्रतीत होती है।

कफज गुल्मरोगमें स्तैमित्य, अरुचि, सिरमें बेदना और अङ्गोमें शिधिलता, शीतज्वर, पीनस, आलस्य, इल्लास, चमड़ेका सफेद या काला होना आदि लक्षण होते हैं। कफज गुल्म गम्भीर, कठिन और गर्भस्य बालकके समान भारी होता है। अपने स्थानमें स्थित रहने तथा यहाँसे न चलनेके कारण यह मृत्युकारक होता है।

त्रिदोधजन्य गुरूपरोगर्में प्राय: एक-दूसरेके लक्षण घुले-मिले रहते हैं। इसमें तीव बेदना और अतित्रम दक्ष होता है। यह अतिशय उजत और सधन होकर शोध हो पक जाता है, तथा असाध्य है।

रक्तगुर्ल्म स्त्रियोंको ही होता है। जिस स्त्रीको स्तुकालमें अतिशय बेदना या किसी प्रकारका योनिरोग रहता है अथवा वायुकारक पदार्थोंको सेवन करनेसे बायु कृपित होकर प्रतिमाह व्यवस्थित ऋतुसावको योनिमें हो रोक देता है तो वह हका हुआ रक्त कुक्षिमें जाकर गर्भक चित्रोंको प्रकट करता है। इस रोगमें इल्लास, गर्भिजी-वैसी इच्छा, स्तनमें दुग्ध-दर्शन, कामाचारिता आदि सक्षण प्रकाशित होने लगते हैं। क्रमशः वायुके संसर्गसे पित योनिमें रक्तका संचय करता है। शोणित जब गर्भाशयका आश्रयण करता है, तब बात-पित्तज गुल्मके विकार उत्पन्न हो जाते हैं। यह दृष्ट रक्तका आश्रय लेकर गर्भाशयमें अत्यन्त शुल उत्पन्न करता है। योनिमें स्नाव, दुर्गन्थ, कभी-कभी स्पन्दन और वेदना होती हैं। कभी-कभी यह गुल्म गर्भ-जैसा हो जाता है।

दुष्ट रक एवं दुष्ट आश्रयके कारण यह विद्रिध गुल्म कभी देरमें पकता है, कभी नहीं पकता है और कभी जल्दी पक जाता है। अत: शीघ्र दाह पैदा करनेवाला होनेके कारण वह विद्रिध गुल्म कहा जाता है। अन्तराश्रय गुल्ममें वस्ति, कुक्षि, हृदय और प्लोहामें बेदना होती है। जतराग्नि और बलका नाम हो जाता है। मल-मुत्रादिका बेग रुद्ध हो जाता है। बहिराश्रय गुल्ममें इसका उलटा होता है अर्थात् वस्ति, कुक्षि आदिमें बेदना अधिक नहीं होती, वेगका प्रवर्तन होता है। गृहच-स्थानमें विवर्णता और बाहरके भागमें अत्यधिक कैंच्यपन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। कपर-नीचे वायुरोधके कारण तीव बेदना और उदरमें आध्मान होता है। इसे अनाहरोग कहते हैं। जो ग्रन्थि ऊपर उठी होती है तथा कटार अहांलाको तरह होती है, उसे अष्टीला विद्रिप कहते हैं। उसको आकृति यदि समस्त चिहाँसे युक्त एवं तिरछी हो वो उसे प्रत्यष्टीला कहते हैं। पक्वाशयमें उत्पन्न होनेवाला वायु तीव वंदनासं युक्त होकर डकारोंकी अधिकता,शीचका विबन्ध, भोजनकी अनिच्छा, औतोंका सूजन, आटोप आध्यान, ऑन्निमान्छ- ये सब उत्पन्न होनेबाले गुल्मके पूर्व सकेत हैं। (अध्याय १६०)

उदररोग-निदान

धन्धन्तरिजीने कहा —हे मुश्रुत! अब मैं उदस्तेगका निदान कहुँगा, सुनो! मन्दाग्ति होनेपर सभी प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं और उदस्रोग विशेषकर मन्दाग्तिसे ही होते हैं।

उदरमें मल संचित होनेपर अजीर्ण आदि फिन-फिन रोग, कथ्र्व और अधीगति वायुके अवरोध होनेसे सभी प्रवाहिणी नाड़ियाँ अकर्मण्य हो जाती हैं। प्राणवायु अपानादि वायुको दूषितकर उनको मांससंधिमें प्रविष्ट कर देती है। इससे कुक्षिस्थान अवरुद्ध होकर उदररोग उत्पन्न होता है। उदररोग आठ प्रकारके हैं— वातज, पित्तज, कफज, सजिपातज, सलिलजन्य, प्लोहाजन्य, बद्धोदर-वृद्धि और श्रुतजन्य। उदररोग होनेपर हाथ-पैर तथा पेटमें सूजन आ जाती है। शारीरिक चेष्टा, बल और आहार कम हो जाता है। शरीर दुर्बल हो जाता है और अफरा हो जाता है। जाता है।

समय दाह आदि होता है। ऐसा रोगी अपध्यका सेवन निद्राधिक्य, अरुचि, श्वास-कास, त्वचा आदिमें श्रेतता, श्रेत धोड़ा कार्य करनेपर श्वास-प्रश्वासकी वृद्धि हो जाती है। करता है। त्रिदोधको कृपित करनेवाले आहार-विहारसे, किसी भी विषयमें उसकी बुद्धि प्रवेश नहीं कर पाती और अधिक भोजन करनेसे, शरीरको धूळा करनेसे, गाडी शोक एवं तोथ आदि हो जाते हैं। उदररोगी चोड़ा खानेपर आदिपर यात्रा करनेसे, दौड़ने, कुदने, मैधुन करने, भार भी वरितसंधिमें निरन्तर पीड़ाका अनुभव करता है। सभी उठाने, चलने तथा ज्वरादिसे दुर्बल व्यक्तियोंके वामपार्धमें प्रकारके उदररोगमें रोगी बुद्धावस्थाके समान जीर्ण हो जाता क्थित फ्तीहा अपने स्थानसे च्युत होकर बुद्धिको प्राप्त होने है और बलहीन हो जाता है। तन्द्रा, आलस्य, मलवेग, लगता है। प्लीहा पहले कठोर तथा पुन: उन्नत या उठा हुआ मन्दारिन, दाह, सुजन और आध्यान-ये सभी जलोदरके होकर उदररोग उत्पन्न करता है और श्वास-कास, मुख-लक्षण है। सब प्रकारका जलोदररोग मृत्युकारक है। विरस्तवा, अफरा, शुल, पाण्डू, वमन, मृच्छां, शरीरवेदना, इसलिये उसके लिये शोक करना व्यर्थ है। उदररोगमें दाह, विभ्रम आदि अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रोगीका उदर गवाक्षको तरह शिरोजालसे व्याप्त हो जाता है। उदरका रंग काला, लाल, विकृत नीला एवं पीला हो जाता और सदा गृहगृह जब्द होने लगता है।

करके नष्ट हो जाता है। वायुजन्य उदररोगमें इदय, विकृत होकर भी उदररोग उत्थन करता है। स्थानोंमें पीडाका अनुभव होता है और बोडोंमें दर्द रहता मल संचय होता रहता है। है। जुष्क कास, शरीरमें पीड़ा, अधीभागमें गुरुता, मलसंग्रह, मुच्छां, दाह, प्यास, मुखमें कटुता, अतिसार, त्वचा, नख जाता है। आदिपर पीलापन, उदरपर हरापन एवं पीली और ताम्रवर्णको स्नेहपान, स्वेदन, वमन, विरेचन करते समय एकाएक

इस रोगसे ग्रस्त व्यक्तिका आकार प्रेतके समान विकृत हो किराएँ अधिकतासे दीखती हैं तथा ऊप्पा और दाह बना रहता है।

उदररोगका पूर्व लक्षण भूख-नाक, अरुचि, पाकके कफजनित उदररोगमें शरीरमें अवसाद, शोध, भारीपन, करता है। उदररोगसे बलक्षय हो जाता है। अत: रोगीके किराओंसे व्याप्त उदर, बडा एवं धीरेसे वृद्धिको प्राप्त है। प्लीडोटरमें भी बात, पित्त और कफका सम्बन्ध रहता उदररोगमें वायु नाभि और औतमें विष्टम्थता उत्पन्न है। प्लीहाके समान ही उदरके दक्षिण भागमें स्थित यकृत

नाभि, कटि, पायु, वंश्वन-इन सभी स्थानीमें पीड़ा करके कृषित अपानवायु यस (पुरीय), पित एवं कफको स्वयं वायु शान्त हो जाता है। शब्दके साथ वायु निकलने अवरुद्ध करके उदरमें बद्ध गुदोदर नामक रोग उत्पन्न लगता है एवं अल्प परिमाणमें ही मूत्र होता है। उसकी करता है और न्वर, काम, श्वास एवं सिर, नांध, पार्श्व और किसी भी विषयमें चञ्चलता नहीं रहती और मुख्य सदा गुदामें पीड़ा उत्पन्न करता है। उदर स्थिर एवं अचल बना उदास रहता है। वातोदरमें हाथ-पैर, मुख और कुश्चिमें रहता है। उसपर नीली एवं लाल शिराओंका जाल दीखता शोध हो जाता है। उदर-पार्ध तथा कटि और पृष्ट आदि है और उदरके ऊपरका हिस्सा गायकी पूँछके समान होकर

भोजनमें हुड़ी और पाषाण आदि उदरमें जानेसे तथा शरीरमें श्यामवर्णता या अरुणवर्णता आ जाती है एवं अत्यधिक खानेसे औतोंके फटनेपर पककर मयाद एवं मुँहमें बार-बार पानी आता है। पेटमें नीली और काली मलके साथ जल निकलकर गुदामार्गसे जब बाहर आता है, शिराएँ उभर जाती हैं और व्यथा होती है तथा यपचपानेपर वह पीला, लाल पुरीय गन्धयुक्त रहता है। अवशिष्ट भाग मशक-जैसा शब्द करता है। उदरमें वेदनाके साथ सज्ञब्द पेटमें रूककर उदर-वृद्धि करके जलोदररोग होकर बादमें बायु चारों तरफ यूमती है। पित्तजनित उदर-रोगमें ज्वर, वातादि दोशोंसे पुन: विकृत हो परिस्नावीछिद्रोदर रोग हो

ठंडा जल अधिक पान करनेसे मन्दाग्नि रहनेपर या दर्वलतामें अधिक आम जल पीनेपर वायु एवं कफ कृषित होकर जलवाही स्रोतोंको अवरुद्ध कर उस दूपित जलको बढ़ा देता है और क्लोम, निलकासे आकर अवरुद्ध हो उदररोग उत्पन्न कर देता है। तदननार प्यास, गुदासे बलस्साव होता हुआ उदरमें बेदना होती रहती है। पुन: कास-धास एवं अरुचि हो जाती है। उदरपर अनेक रंगकी शिराएँ उभर आती हैं। उदर जलपूर्ण-सा हो जाता है तथा उसमें कम्पन आदि अनेक उपद्रव प्रारम्भ हो जाते हैं, इस स्थितिमें उसे दकोटर, उदकोदर या जलोदररोग कहते हैं। उदर-रोगोंकी उपेका करनेसे वातादि दोष अपने स्थानसे विमुख होकर जलको बढ़ाकर उस जलसे शरीरके जोड़ोंके स्रोतंकि मुख्येंको गीला

या आई कर देते हैं। अत: शरीरके' पसीनेके रुकनेपर सभी स्रोत अवरुद्ध हो जाते हैं। इससे उदर परिपूर्ण होकर उदररोग उत्पन्न होता है। किसी-किसी रोगीके उदरमें अधिक जलके सञ्चित हो जानेपर वह वर्तुलाकार हो जाता है, उसको ताइन करनेपर शब्द नहीं होता। इस रोगमें रोगी क्रमश: दुर्वल हो वाता है। यह रोग भयंकर होता है और नाडीको दबानेपर जल आगे बढ़ जाता है। उदस्येगमें जब उदरगत शिराएँ अन्तर्हित हो जाती है, तब उस रोगको सभी लक्षणोंसे आक्रान्त कहा जाता है। वातोटर, पीतोदर, कफोदर, स्लेब्बोदर, प्लीहोदर, सन्निपातोदर और जलोदर- ये क्रमश: कष्टसाध्य होते जाते हैं। एक पक्षके भीतर ही इस रोगमें जल एकत्र होने लगता है। ये सभी उदरशेग जन्मसे ही कष्टसाध्य होते हैं। (अध्याय १६१)

पाण्ड-शोध-निदान

शोधरोगका निदान कहता है, सुनो। पित-प्रधान द्रव्योंसे सम्पूर्ण बातादि दोष कृषित करनेवाले हेतुओंसे पित एवं मल कृपित होकर पाण्डुरोग उत्पन्न करते हैं। इन तीनों कृपित दोषोंमेंसे बलवान् बायु पित इदयस्य दस धपनियाँका आजय लेकर सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाता है। वह पितका आश्रयणकर श्लेच्या, चर्म, रक्त, मांस आदिको द्वित कर देता है। इससे दृषित रक्त चमडे और मांसके बीचमें जाकर चमडेको भिन्न-भिन्न रंगका कर देता है। इस रोगमें चमझ हरिद्रादि अनेक रंगका हो जाता है, परंतु इसमें पीले रंगकी अधिकता रहती है। इसीसे इसे पाण्ड्रोग कहते हैं। इस रोगमें धातुका गुरुत्व और स्पर्शमें शिविलता होती है। अम्लजन्य पाण्डरोगमें शरीरके सभी प्रकारके गुण नष्ट हो जाते हैं। इससे शरीरका रक्त क्रमश: कम हो जाता है, मेदा और अस्थि निस्सार हो जाते हैं। इस रोगमें सभी अड्र निर्वल हो जाते हैं, हृदयमें द्रवता आ जाती है एवं नेत्रोंमें हृदयमें आईता, मलभेद, खड़ी हकार और दाह होता है। सुजन हो जाती है। मुँहमें लालायुक्त लारकी अधिकता हो लगतो, रोमाञ्च और मन्दाग्न हो जाती है एवं शरीरकी है। त्रिदोषज होनेपर इसके लक्षणोंको पहचानना कठिन हो

धन्यन्तरिजीने कहा - हे सुबूत। अब मैं पाण्डु और अकि घट जातो है तथा ज्वर, श्वास, कर्णशूल, पक्कर- ये सभी उपह्रव होने लगते हैं।

पाण्डरोग याँच प्रकारके हैं-बातज, पितज, कफज, संत्रिपातज एवं मृतिका-भक्षणजन्य। इदयमें स्पन्दन, चमडेकी रूशता, अरुचि, मुत्रकी पीतवर्णता, पसीना और मृत्रका कम होना- ये सभी पाण्डरोगके पूर्वरूप है। वायुजन्य पाण्डरोगमें तोव बंदना, शरीरमें चिपचिपाहर आदि लक्षण दिखायी देते हैं।

इस रोगमें शिरा, नख, विष्ठा, मूत्र और नेत्र कृष्णवर्ण तथा अरुणवर्णके हो जाते हैं। इससे शोध, नासिका और मुखमें विरसता, मलशोष, पार्श्वमें वेदना-ये सभी उपद्रव होने लगते हैं। पित्तज पाण्डुरोगमें शिराएँ आदि हरित पित्त-जैसी हो जाती हैं एवं ज्वर, औखोंके आगे अधेरा, प्यास, शोष, मुच्छां, दुर्गन्य, शैल्य-सेवनकी इच्छा, मुखमें कहवाहर-ये सभी लक्षण व्यक्त होने लगते हैं। कफज पाण्डुरोगमें तन्त्रा, मुखर्मे लवण-रसका स्वाद, श्वास, रोमाञ्च, स्वरर्भग, जाती है। रोगीको प्यास कम लगती है, ठंडक अच्छी नहीं कास, बमन, दु:सहता-ये सभी लक्षण व्यक्त होने लगते

१ चार्गाराज्य १३ सुर्गाराज्य ५ अरहर्गाराज्य १३। २ चर्गात् १६ सुराजनीय अर ४३ अरहरम् २।

जाता है और अतिशय असहा हो जाता है। मिट्टी खानेसे भेदसे यह दो प्रकारका होता है— सर्वाङ्गज और एकाङ्गज उत्पन्न पाण्डुरोगमें कसैलो मिट्टी वायु, खारो मिट्टी पित विस्तृत, उन्नत, अग्रभाग गाँठदार होनेसे इसके अवान्तर तीन और मीठी मिट्टी कफको दूषित करके तथा रस आदिको भेट हैं। सुखा करके शिराओंको रक्तसे भर देती है तथा उसे वहीं रोक देती है और पाण्ड्रोंग पैदा हो जाता है। पाण्ड्रोंगके एवं यह जोषणकारी होता है। यह बहुत जल्दी ज्ञान्त बढ़ जानेपर नाभि, पैर, मुख और मुत्रमार्गमें होच हो जाता है। नहीं होता। इस शोधके उत्पन्न होनेसे पूर्व शरीरमें दाह कृमियुक्त तथा रक्तमित्रित और कफसमन्वित मल निकलने उत्पन्न होता है। तुष्णा, दाह, न्वर, पसीना, भ्रम, क्लेट, लगता है।

संबन करता है, उसका पित-रक्त और मांसका दाह करके दुर्गन्धि होती है, स्पर्श नहीं सहा जाता और कोमलता होती कोष्ट शाखामें मिलकर कामलारोग उत्कार करता है। कामला-रोगमें रोगीका मुत्र, नेत्र, त्यक्, मुख और विद्या हरूदीके रंगका हो जाता है। रोगी दाह, अविपाक और तुपासे पाहित होकर मेदकके समान पीला और दुवंल हो जाता है। पाण्ड्रोगीको पित्तज शोध होने लगता है। इसकी उपेक्षा करनेपर जो अतिशय शोध बढ़ जाता है, वह बहुत क्लेशप्रद होता है। इस रोगको कुम्भकामला कहा जाता है। पित यदि हरित और श्यामवर्णका है तो उससे पाण्डरोग होता है, उस स्थितिमें वात-पित्तके प्रभावसे चक्कर आना, तुष्णा, क्लियोंके प्रति अरुचि, धोडा धोडा च्यर, तन्त्रा, अग्निमान्य और अतिशय आलस्य- ये सभी रोगके लक्षण व्यक्त हो जाउं हैं। इस रोगको हलीपक नामसे जाना जाता है।

पाण्डुरोगसे उत्पन्न सभी उपद्रवीमें शोध प्रधान है। इसलिये शोधका वर्णन किया जाता है। याद कृषित होकर रक्त, पित्त और कफको दूषित करनेके कारण वह त्वक, शिरा और मांसका आश्रय लेकर कैंबाई पैटा करता है। सभी शोध त्रिदोपस होते हैं. क्योंकि सूजन वात, पित और कफ-इन तीनोंसे होती है। इसलिये जैसे बातिक, पैतिक, श्लेष्मिक कारण-भेदसे शोध नी प्रकारका होता है-वातपैत्तिक, वातश्लेध्यक, पित्तकफड, सन्निपातिक, अविधातक, विषय और एकाङ्कुछ। निज और आगन्तक- हैं। (अध्याय १६२) ---

पितव शोध पीतवर्ण, कृष्णवर्ण या रक्तवर्णका होता है मद-ये सभी उपद्रव इसमें होने लगते हैं। इस रोगमें जो पाण्डुरोगी पित्त उत्पन्न करनेवालं पदार्थीका रोगीको शीत वस्तुको इच्छा होती है, मलभेद हो जाता है, है। कफज शोधमें खुजली होती है। रोम और चमड़ेमें पीलापन, कठोरता, शीतलता, गुरुता, रिनग्धता, कोमलता, स्थिरता और पीड़ा होती है। इस रोगमें निदा, मन्दागि, वमन-ये सभी उपद्रव हो जाते है।

आधात - अस्त्र-शस्त्रादिकृत छेदन-भेदनसे क्षत होनेपर अधिपातन शोध होता है। शीतल बाय तथा समुद्रीबाय और भल्लातक रसके लग जाने एवं केंबाच इत्यादिके लग जानेसे जो सूजन होती है, वह फैल जाती है। यह अत्यन्त गरम लाल रंगका और पितज शोधके लक्षणोंसे युक्त होती है।

विषधर प्राणीक किसी अङ्गके कपरसे चलनेपर अववा किसी अङ्गर्मे मुद्र करनेपर और विषहीन प्राणीके भी दाढ़, दाँत एवं नखके द्वारा घात करनेपर उस स्थानमें जो सोध उत्पन होता है, वही विषज शोध है। इसके अतिरिक्त विषधर प्राणीके विद्या, मुत्र, शुक्र आदिसे सने हुए वस्तुकं सम्पर्कसे, विषव्धकं वायुकं सेवनसे, विषयुक्त वस्तु शरीरपर मलनेसं विषशोधरोग उत्पन्न होता है। विषज शोध कोमल, गतिशील, अवलम्बी, शीघ्र दाह और जुलको उत्पन्न करनेवाला होता है। नये और उपद्रवरहित जोध साध्य होते हैं और पहले कहे हुए असाध्य होते

विसर्परोगका निदान

मुल कारणोंका वर्णन कर रहा है, उसे आप सुनें। है। इस प्रकारके रोगमें रोगीकी ऐसी अवस्था हो जाती है कि

पित, रक्त एवं कफके दूषित होनेसे शोध-सदश विसर्परीग अनुभृति होती है। भूमि, शब्या तथा आसन आदिपर उठने-होता है। बाह्य, अन्त:, उभय-ये उसके तीन अधिकान है। बैटने और लेटनेसे उसको तनिक भी शान्ति प्राप्त नहीं इनमें अपने-अपने प्रकोपक तथा विदाहकारी कारणोंसे होती। इस रोगसे ग्रस्त रोगी उससे विमुक्त होनेके लिये शरीरमें शीघ्र विसर्पण कर बाहर एवं अंदर विकृत करके विभिन्न प्रकारको चेष्टा करता है, किंतु उस कष्टसे विमुक्त

अत्यन्त मोह तथा कर्ण-नासा आदिमें विधटन होता है। चेतनामें उसको लीटना बढ़ा ही दुस्साध्य होता है। इन प्यासकी अधिकता और मलमूत्रादिमें विषयता होती है। लक्ष्णोंसे युक्त विसर्पको अग्निविसर्प कहा जाता है। कफजन्यं विसर्परोगमें अत्यधिक खुजलाहट होती है। कफसे अवरद्ध वायु उस अवरोधक कफका बहुत उसमें स्निप्धता बनी रहती है और कफजन्य ज्वरके समान प्रकारसे भेदन कर देती है, तब ग्रन्थिमाला तैयार हो जाती

लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इन सभी प्रकारके विसर्प-भेदोंकी लम्बी, छल्लेदार, स्वूल और खरदरी ग्रन्थियोंकी रक्तभरी उपेक्षा कर देनेपर वे यथाक्रम अपने-अपने दोषोंके लक्षणोंसे मालाको सृष्टि करतो है। इसके कारण रोगीको तीव्र समन्वित होकर फुंसियोंके रूपमें उधर आते हैं। ये जब पीडादायक न्वर होता है। यह रोग होनेपर रोगी श्वास, पककर फूट जाते हैं, तब अपने-अपने लक्षणोंमें उक्त खाँसी, अतिसार, मुखशोप, हिचकी, यमन, धम, मोह, वणका रूप धारण कर लेते हैं।

अतिसार, प्यास, भ्रम, हड्डी टूटना, अग्निमान्छ, तमक, श्वास रोगको ग्रन्थियसर्थ कहते हैं। और अरुचिका उपद्रव ग्रस्त कर लेता है। यह रोग कफ और पितके प्रकृपित होनेसे रोगीमें ज्यर, स्तम्भन,

. धन्वन्तरिने कहा-हे सुब्रुत! अब मैं विसर्पादि रोगोंके विकार आ जाता है। ऐसे रोगीको हिचकी भी आने लगती वात, पित्त, कफ एवं अधियात नामक दोषोंसे तथा वह पोडासे ग्रस्त हो उउता है तो उसको अत्यन्त व्याकुलताकी विसर्परोग शरीरके बाहर तथा अंदर उत्पन्न करते हैं। नहीं हो पाता। ऐसा रोगी मन और शरीर दोनोंसे शिथिल आन्तरिक विसर्पसे हृदय आदिमें उपताप होनेके कारण होकर ऐसी गम्भीर मुच्छांको प्राप्त कर लेता है, जिससे पुन:

इस रोगमें भी रोगीको कष्ट भौगना पढ़ता है। है अथवा जिस रोगीका रक्त बढ़ जाता है, उसके त्वचा, संनिपातज विसर्प होनेपर रक्त-बातादि सभी दोषोंके शिय, स्त्रापु तथा मांसगत रक्तको दूषित करके वह वायु वर्तभेद, मूच्छां, अङ्गभेद और अग्निमान्धके दोषसे भी पिर वात-पित्तज विसर्परीगमें रोगीको ज्वर, वसन, मून्छां, जाता है। इस प्रकार कफ और वायुके संक्षोधसे उत्पन्न इस

प्रज्वासित अग्निके अंगारेके समान रोगीके सम्पूर्ण अङ्गको निद्रा, वन्द्रा, शिरोचेदना, विक्षेप, प्रलाप, अरुचि, भ्रम, संतप्त कर देता है। यह विसर्प शरीरके जिन-जिन स्थानींपर मुच्छां, अग्नियान्छ, अस्थिभेद, प्यास, इन्द्रियजनित जहता, फैलता है, वे स्थान बुझे हुए अंगारेके समान काले, नीले औवनिर्गमन तथा रसादिक स्रोतोंका लेफ- ये लक्षण दिखायी तथा रक्तवर्णके हो जाते हैं। अपने स्फुटित क्रवॉकि द्वारा देते हैं। प्राय: यह दोष आमाशयके एक देशमें होता है और यधाशीच्र ही अग्निसे दग्ध हुए स्थानके सदश विस्तृत क्षेत्रमें धीर-धीर अन्य भागोंमें फैलता जाता है, परंतु इसमें दरं यह फैल जाता है। श्रीव्रणामी होनेके कारण विसर्प मर्गस्थलतक नहीं होता। यह अत्यन्त पोला, लोहित और पाण्डु रंगकी पहुँच जाता है। इस रोगमें वायु प्रवल हो जाता है और वह पिडिकाओंसे भर जाता है। इसके स्वरूपकी कान्ति कृष्ण प्रकृपित होकर सम्पूर्ण अङ्गोंको पीड़ित करता है तथा और मलिन बानी गयी है। यह रोग शोधसे युक्त और भारी रोगीको चेतनाशुन्य कर देता है। उसके प्रभावसे रोगीको होता है। यह स्पर्श करनेमें अधिक ऊप्नासे समन्वित निद्रा भी समाप्त हो जाती है। उसको श्वसन-क्रियामें अनुभूत होता है। इसमें पसीने-जैसी चिपचिपाहट होती है।

जब यह पककर फूटता है तो इसमें मांस गल-गलकर नये दाहाधिक्य, श्याम और रक्तवर्णताका लक्षण भी दिखायी रूपमें निकलने लगता है। सरीरकी स्नायु तथा शिराएँ स्पष्ट पड़ता है। पृथक्-पृथक् वात, पित्त तथा कफर्जानत दोषसे रूपसे दिखायी देने लगती हैं। इस प्रकार सभी लक्षणोंसे उत्पन्न उन्छ तीनों प्रकारका विसर्परीय साध्य है। इतना ही युक्त हुआ यह विसर्परोग अन्ततोगत्वा शरीरको त्वचासे नहीं, वात-पित्त आदि इन्द्रजनित दोयसे समन्दित विसर्प सम्पृक्त हो जाता है, जिसके कारण यह बाह्य भागमें यदि उण्ड्रवसे रहित हैं तो वे भी यथापेक्षित चिकित्सासे दूर दिखायी देने लगता है। इस रोग-स्थानसे शबके समान किये जा सकते हैं, किंतु जो विसर्प समस्त दोषोंसे युक्त हो दुर्गन्थ निकलती है। विद्वानोंने इसको कर्दम विसर्परोगके जाते हैं और जिनका आक्रमण रोगीके मर्पस्थलको आहत नामसे अधिहित किया है।

पितको रक्तसमन्वित करता हुआ कुल्चीके दानोंके समान दुर्गन्ध आने लगतो है—वे विसर्परीय असाध्य हो जाते हैं, स्फोटजनित बिसर्पको जन्म देता है। इसमें शोय, न्वर, पीड्र, उनको चिकित्सा सम्भव नहीं है। (अध्याय १६३)

करनेमें सफल हो जाता है, जिसके दुख्रभावसे रोगीके शरीरका बाह्य आधात आदिके कारण क्षत हुए शरीरसे कुळवायु अन्तयु किरा और मांस गल जात है और जिनसे शवके समान

कुष्टरोगका निदान

आहार-विहार करनेसे तथा सज्जनोंकी निन्दा एवं अपमान और वश्र या हत्या करनेसे, दूसरोंकी धन-सप्पत्तिके हरण एवं पाप-कृत्यसे, पूर्वजन्मकृत पापका उदय होनेसे वातादि दोष कृपित होकर शिराओंमें जाकर त्वचा, लसीका, रख एवं मांसको दुषित और अङ्गोंको क्रिया-हानि करके वे दीप बाहर आकर त्वचापर विविध प्रकारके कुच्छैको उत्पन करते हैं।

कोष्ठकोंके सहित शरीरमें व्याप्त होकर बाहर और भीतर रहनेवाली सभी धातुओंको गलाकर अपना अधिकार कर लेता है। इस रोगमें पसीनेके जलबिन्दुओंसे युक्त प्राणीके तीन और ददू, काकण, पुण्डरीक तथा अरिजिहा नामक शरीरपर कुछ आईता होती है। इसमें अल्पन्त कष्टदायक इन सात कुर्डोंको महा कुष्ठ माना गया है। शेष ग्यारह क्षुद्र बहुत ही छोटे-छोटे कीड़े होते हैं। इन सभी सक्षणोंसे युक्त कुछ कहसाते हैं। यह रोग क्रमश: रोगीके रोम, त्वचा, स्नायु तथा धमनियोंपर आक्रमण करता है।

शरीरको भस्मसे आच्छादित हुएके समान रूख बना देता है। कष्ट, पितीका उछलना और अनायास समको अनुभृति, वात, पित, श्लेष्म, वातपित, वातश्लेष्म, पितरलेष्म और रोगीके घावोंमें अत्यधिक पोड़ा, व्रणोंका यधाशीप्र उद्भव,

धन्यन्तरिजीने कहा — हे सुबूत। मिथ्या एवं विरोधी इन सभी प्रकारके कुछ-भेदोंमें वात-पित्त तथा कफज दोपके अन्तर्गत प्राप्त होनेवाली विकृति अधिक रहती है।

वात-दोषसे कापाल, पित-दोषसे उदुम्बर, कफ-दोषसे मण्डल तथा विचर्विका नामक कुष्ट उत्पन्न होता है। कर्तापनन दोषसे ऋथ, वातक्लेष्मजन्य दोषसे चर्म, एककुष्ट, किटिम, सिध्म, अलसक तथा विपादिका नामक कुष्ट होते 🖁 । रलेप्नपितजन्य दोषसे दर्दु, शतारुपी, पुण्डरीक, विस्फोट, पामा और चमंदल नामक कुष्टोंकी उत्पत्ति होती है। इन सामयिक उपेक्षा करनेपर यह रोग आध्यन्तरिक समस्त सभी दोषींको सीनेपात-अवस्था आनेपर १८ प्रकारके कृष्ठ-रोग उत्पन्न होते हैं।

इनमें पूर्वमें कहे—कापाल, उदुम्बर तथा मण्डल—ये

कुष्टरोग होनेके पूर्व रोगीकी त्वचामें अत्यन्त चिकनाहट, रूखता, स्पर्शता, स्वेद, अस्वेद, वर्णभेद, दाह, खुजली, बाह्य भागमें फैला हुआ कुछरोग प्राणीके उस आक्रान्तित स्पर्शानुभूतिको कमी, सुई चुभानेसे होनेवाली पीड़ाके समान संनिपात-दोषज्न्य प्रभावसे यह रोग सात प्रकारका होता है। अधिक समयतक उन व्रणोंका रहना, व्रण-भरावके समय

१-सु०नि०अ० १०; च०चि०अ० २१।

३-सु०मि०अ० ५।

२-च०चि० २१; अ०६०नि०अ० १४।

रूक्षता, सामान्य तथा थोड्रेसे कारणपर रोगीको अत्यधिक क्रोध, रोमाञ्च तथा रक्तका काला होना—ये दोषपूर्ण कुलक्षण दिखायी देते हैं।

कापाल कुष्टका वर्ण काला और लाल होता है अथवा औंबेमें पकाये गये मिट्टीके खप्परके सदश वह देखनेमें लगता है। उसमें रूथता और कठोरता होती है। इस कुछ-रोगको आकृति शरीरके अधिक भागमें फैली रहती है। उन स्थानोंमें रहनेवाले रोमसमूह भी दूचित हो जाते हैं। उन द्यित स्थानोपर स्चिकाभेदनसे होनेबाली पीड़ाके समान अल्यधिक पीड़ा भी होती है। वह कुष्ठ विश्वम अर्चात् दु:साध्य माना गया है।

जो कुष्ठरोग उदुम्बर अर्थात् गूलर-फलके समान दिखायी देता हो, उसको औदुम्बर कुष्टरोग कहना चाहिये। इसको आकृति वर्तुलाकार होती है। इसमें अत्यधिक गोलापन, दाह और पीड़ा होती है। जिस प्रकार बिना सानी गयी मदिराका वर्ण होता हैं, जिसमें छोटे-छोटे कोई भी रहते हैं; वेसे ही सामान्य पके हुए उदुम्बरका फल पीत और लाल होता है, उसी रूपमें इस कुष्टरोगका वर्ण स्वीकार कुछ कहलाता है। करना चाहिये। इसमें रोगजन्य कृमि रहते हैं, जिसके कारण उस व्रणमें खुजली भी होती है।

जो कुष्ट स्थिर, गोल, भारी, चिक्कण, श्रेत या रक-हों, उसमें अत्यधिक खुजलाहट उत्पन्न करनेवाले कृषि हों. उनसे पीच निकलता रहे तथा वह चिकने, पीत वर्णकी आभासे युक्त मण्डलके समान दिखायी देता हो तो उसकी मण्डल कुष्ठरोग कहा गया है।

खुजलाहटसे भरी हुई फुंसियींवाले धूसर वणसे युक्त और साव-समन्वित कुन्नका नाम विचर्षिका कुन्न है। जो कुष्ठ कर्करा होता है, जिसके किनारेपर लाल वर्ण और बीचमें काला वर्ण विद्यमान रहता है, जिसकी आकृति कैंचो और रोछ अर्थात् भालुकी जिह्नाके समान होती है, जिसमें बहुतसे कृपि भी होते हैं; उसको आयुर्वेदमें ऋष्यजिहा या ऋक्षजिहा कुष्ठके नामसे अभिहित किया गया है।

हाथीके चमड़ेके समान रोगीका खरखराहट-भरा चमड़ा

मछलोके शल्क (अधकवत् चर्म)-के सदृश होता है, उसे एककुष्ट कहते हैं। जो कुष्ट रूखा, अग्निके समान वर्णवाला या काला, स्पर्श करनेमें कष्टकारी, खुजलाहटसे युक्त तथा कठीर होता है, वह किटिम कुष्ठ माना गया है। सिध्म कुष्ठ अन्तर्भागसे रूथ और बाह्यरूपमें स्निग्ध होता है। इसके आभ्यन्तरिक भागको रगड्नेसे बालूके कणके समान रज गिरता है। इस रोगके होनेपर शरीरका स्पर्श करनेसे चिकनाहरका अनुभव होता है। इसमें स्वच्छता होती है। इसकी वर्णाकृति काले पुष्पके समान दिखायी देती हैं, यह कुष्ठ प्राय: जरीरके ऊपरी भागमें होता है।

अलंशुका (अलसक) कुष्टमें खुजली और लाल रंगको पिडिका होती है। विपादिका कुष्टमें हाथ और पाँव फट जाते हैं, अत्यन्त वेदना और खुजली होती है तथा लाल वर्णको फुंसियाँ हो जाती हैं। जिस कुष्ठमें दहु या दाद दुवकि समान बहुत जगहमें फैल जाता हो तथा अलसीके कुलके सदश कान्ति दिखायी देती हो और ऊँचे-ऊँचे गोल चकते हों, ऐसा खुजलाहटसे परिष्यापा कुष्ठ दहु या दाद

अपने मूलभागमें म्बूल, दाह और बेदनासे समन्त्रित रक्तसाववाले प्रमुर ब्रजॉसे युक्त कुष्ठरोगका नाम शतास्थी है। इस प्रकारके कुछरोगमें दाह, क्लेद और बंदना होती है। वर्णवाला और मलसमन्वित हो, उसके वर्ण परस्पर मिले वह प्राय: अस्थिक जोड़ोंमें होता है। जिस कुष्टमें कुष्ट-स्थानका मण्डल रक्तसे भग्र हुआ तथा पाण्डु वर्णका होता है, उसमें दाह और खुजलाहट-भरी पीड़ा भी होती है, खिले हुए रक्तवर्ण और जलसे संसिक पुण्डरीक-दल अर्चात् श्रेत कमलकी पंखुड़ियोंके समान शरीरपर उभरा हुआ और द्रणके किनारे पद्मपत्रकी जल-विन्दुओंसे युक्त पांसवाले दिखायी देते हैं, उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं। विस्फोटक कुष्ठ पतले चमड़ेसे ढका होता है तथा सफेद और लाल कुंसियोंसे व्याप्त होता है।

पाम नामक कुष्ठ पककर फुटनेवाली छोटी-छोटी असंख्य फुंसियोंसे भरा होता है। इसमें खुजली, मलस्राय और वेदना होती है। प्राय: इसका वर्ण श्याम और लाल होता है। इसमें रूथता होती है। यह रोगीके कुल्हे, चूतड़ होनेपर गजचर्थकुष्ठ कहा जाता है। जो कुष्ठ पसीनेसे रहित और हाथके रोम-छिद्रोंमें होता है। चर्मदल नामक कुष्ठ

फोड़ा-फुंसीके रूपमें उभरकर फफोले पड़कर फुटता है, कुष्टरोगके कृमियोंके द्वारा रोगीके वीर्यमें विकार उत्पन्न यह किये गये स्पर्शको सहन करनेमें समर्थ नहीं होता। हो जानेपर वह दोष स्त्री और संतानके लिये बाधायुक्त हो इसमें खुजलाहट होती है, रक्तस्राय होता है, जलन भी होतां जाता है। रस-रकादि धातुगत कहींमें अपने-अपने लक्षणोंके है और मांस गलकर गिरता है।

होती है। गुंजाफलके समान यह पहले लाल और काले एक हो है और इनकी चिकित्सा भी एक ही है। इसीको अनेक रंगका होता है। अपने-अपने कारणोंसे सब क्ष्ट्रीके किलास तथा दारुण भी कहते हैं। इनमें अन्तर यही है कि लक्षण इसमें पाये जाते हैं।

विहित हो, उसीके लक्षण और कर्मके अनुसार त्रिदोषज कुछक। सातों धातुओंपर आक्रमण करता है और श्रिप्र रक्त, मांस स्वरूप समझना चाहिये। जो कुछ-भेंद्र अपने ही दोषका तथा मेद--इन तीन धातुओंका आश्रय ग्रहण करता है। अनुगमन करता है अर्थात वह हुन्द्रज दोष या संनिपातज दोषसे सम्पक्त नहीं होता तो उसको चिकित्सा सम्भव है। किंतु जब वह सभी दोवोंसे परिष्याप्त हो जाता है तो उसकी चिकित्स नहीं करनी चाहिये, यह अस्तध्य हो जाता है।

उपर्यक्त जितने भी कष्ठ हैं, उनमेंसे जो कष्ट अस्थि, गजा और शुक्राणुओंमें प्रविष्ट हो गया है, वह कह भी असाध्य है। जो कुष्ट मेदागत है और जो स्नाय, अस्यि एवं मांसमें पहुँच गया है, वह अधिक कष्टसाध्य नहीं है। जिस कृष्टका जन्म कफ और वातके कारण त्वचापर ही होता है. जिसमें विशेष दोष नहीं रहता. वह कष्ट्रसाध्य नहीं होता। सामान्य चिकित्सासे ही उसकी शन्ति हो सकती है।

त्वचाभागपर ऐसे कुछके उभर आनेसे शरीरका वर्ण बदल जाता है, उसमें संभता आ जाती है। तदनन्तर जब वह कह रक्त और मांसमें प्रविष्ट हो जाता है तो रोगीके शरीरमें स्वेद, ताप तथा शोधके लक्षण उधर आते हैं। रोगीके हाथ और पैरोंमें फोड़े हो जाते हैं। प्ररोरके संधि- जाता है। हो जाता है।

अतिरिक्त यथापूर्व धातुगत कुष्टोंके लक्षण भी हो जाते हैं।

काकण नामक कुष्टमें अत्यन्त दाह और तीव बेदना क्षित्र और कुष्ट इन दोनों रोगोंकी उत्पत्तिका कारण कृष्ट संनिपातिक है और श्रिप्त अलग-अलग दोषोंसे उत्पन्न दोष - भेदके अनुस्तर त्रिदोषोंमें जो दोष कुछमें अधिक होता है। कुछ सावी है और श्रित्र अपरिस्नावी। कुछ रसादि

बातज और आध्यन्तरिक रूक्षताके कारण उत्पन्न हुआ धित्र क्ष्ररोग अरुण वर्णका होता है। जब वह पितज टोचके कारण जन्म लेता है तो उसका वर्ण पदापत्रके समान या कासवत् होता है। यह दाहयुक्त और रोमविनाशक होता है। कफन दोषके कारण उभरा हुआ श्वित्र श्रेतवर्ण, सपन, भारो और खुजलीसे यक होता है।

ये श्वित्र क्रमण: रक्त, मांस और मेदामें पहुँचकर आवय ग्रहण करते हैं अर्थात् वातज श्रित्र रक्तमें, पितज बित्र मांसमें तथा कफज बित्र मेदमें होता है। अरुण आदि वर्णके आधारपर ही श्रिजके वातादिक दोष तथा रकादि आवय-दोनों ही जाने जाते हैं। उत्तरीत्तर इनकी चिकित्सा कष्ट-साध्य होती है अर्थात यह श्वित्ररोग जक्तक रक्तांत्रत होता है, तवतक उसकी चिकित्सा सम्भव है। मांसगत होते ही यह कष्टसाध्य हो जाता है और उसके बाद तो जब यह मेदामें पहुँच जाता है, तब अत्यन्त कष्ट्रसाध्य हो

भागों में अधिक पीड़ा होती है। दोपाधिक्य होनेपर वह जो श्रिष्ठ कृष्ण वर्णवाले रोमोंसे भरा हुआ होता है, मेदामें पहुँच जाता है, जिसके कारण उसमें उपदव होने उसके दाग एक-दूसरेसे संश्लिष्ट नहीं होते। वह अधिक लगता है। रोगीको इन्द्रियोंमें संज्ञासुन्यता बढ जाती है समयका न होकर नया ही होता है और उसका जन्म अर्थात वह चलने-फिरनेमें अशक हो जाता है। रोगीके अग्निसे बलनेके कारण नहीं हो तो उसे चिकित्सा-साध्य शरीरकी मजा और अस्थिमें जब वह कुष्ठ पहुँच जाता है समझना चाहिये। इन लक्षणोंके विपरीत होनेपर इसका तो उसके नेत्रोंकी ज्योति तथा वाजीके स्वरोंमें भेद उत्पन्न उपचार करना चिकित्सकके लिये त्याज्य है, क्योंकि यह असाध्य हो जाता है। रोगीके गृह्यभाग, करतल और ओष्ट-

१-स्०स्०अ० १२

प्रदेशमें तो यथाशीच्र भी उत्पन्न हुआ यह रोग असाध्य वन करनेसे, उसके साथ बैठकर भोजन करनेसे, उसके साथ जाता है। यश प्राप्त करनेके इच्छुक वैद्यको तो किलास रहनेसे, एक शय्या और आसनपर उसके साथ सोने और नामक श्रित्र-भेदकी चिकित्साको सर्वथा त्याग देना चाहिये, बैठनेसे तथा उस रोगीके द्वारा प्रयुक्त वस्त्र, माला एवं क्योंकि उसका उपचार सम्भव नहीं है।

प्राय: सभी रोग संक्रामक होते हैं। रोगीका स्पर्श प्रादुर्भीय हो जाता है। (अध्याय १६४)

अनुलेप-पदार्थका प्रयोग करनेसे दूसरे प्राणीमें रोगोंका

कमि-निदान

धन्वन्तरिजीने कहर—हे सुनुत! बाह्य और आध्यन्तर और कुछ अणुकी भौति होते हैं। इनका वर्ण श्रेत तथा भेदके कारण कृमियोंके दो प्रकार हैं। उनमें बाह्यगत जो ताँबे-जैसा होता है। नामत: इन कृमियोंके सात प्रकार कृमि (कीडे) होते हैं, उनका जन्म बाहरी मल, कफ, है-अन्बाद, उदरावेष्ट, हदयाद, महागुद, च्युरव, दर्भकुसुम

इन कुमियोंके उत्पन्न होनेसे प्राणीके इल्लास, मुखसाव जोध तथा पीनस नामक रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

रक्तवाही शिराओं में स्थित रक्तमे उत्पन्न होनेवाले कृमि अणुरूप, पादविहोन, वृत्ताकार और ताग्रवर्णके होते हैं। अपनी सुरुमताके कारण उनमेंसे कुछ कृमि तो दृष्टिगोचर हो नहीं होते। इनके केशाद, रोमविष्यंस, रोमद्वीप, उदुम्बर, सौरस तथा मातर-ये छ: भेद हैं। इन सभी कृषियोंका एकमात्र कार्य कुष्ठरोग उत्पन्न करना है।

पक्वारायमें गुदा-भागसे बाहर निकलनेवाले विष्ठाजन्य कृपियोंका उद्भव होता है। वहींपर बढ़कर जब ये आमाशयको ओर उन्युख होते हैं, तब प्राणियोंके डकार और धासमें (अध्याय १६५)

रक्त और विद्यासे होता है। जन्मगत भेदके कारण उनके और सुगन्ध। चार भेद हो जाते हैं, किंतु नाय-भेदसे कृमियोंके बीस प्रकार माने गये हैं। बाह्य कृषि बाह्य मलसे उत्पन्न (लार), अपच, अरुचि, मृच्छां, वधन, ज्वर, आनाह, कृतता, होते हैं। इनका परिमाण, आकार और वर्ण तिलके समान होता है। इनका निवास प्राणियोंकी केलगणि तथा उनके वस्त्रीमें होता है। अनेक पैरीबाले उन कृमियोंकी आकृति सुक्ष्म होती है। नामत: उन्हें जूँ और लोख कहा जाता है। इन दोनों प्रकारवाले कृमियोंके द्वारा प्राणियोंके बाह्य शरीरपर कोच्छ (चकते), पिडिका (फंसी), कण्डू (खुजली) तथा गण्ड (गाँउ) नामक रोग कहे जाते हैं।

क्षप्ररोगका एक मात्र कारण शरीरके आध्यन्तरिक भागमें उत्पन्न होनेवाला क्लेप्नज कृमि है। यह प्राणीके बाह्य रलेक्समें भी उत्पन्न हो सकता है। मधुर अज, विद्या-सद्दश दुर्गन्ध आतो है। वे कृमि लम्बे, गोल, छोटे गुढ़, दूध, दही, मछली और नये चावलका भात और मोटे होते हैं। ठनका वर्ण श्याम, पीत, श्रेत और खानेसे प्राणीके आध्यन्तरिक भागमें कक उत्पन्न होता कृष्ण होता है। उन कुमियोंके ककेरक, मकेरक, सीसुराद, है, उसी कफसे उत्पन्न होकर कृमिवर्ग आमाजवर्ग जुलाख्य तथा लेलिह—ये पाँच नामभेद हैं। जब ये प्रकृपित पहुँच जाता है। उसीमें इस कृषिवर्गको अधिवृद्धि होती हो उठते हैं तो प्राणीके शरीरमें मलभेद, शुल, विष्टम्भ, है और उसीसे निकलकर शरीरमें यह सब ओर फैल कुशता, कर्फशता, पाण्ड्रता, रोमाञ्च, मन्दाग्नि और पाण्ड्र जाता है। उनमें कुछ चमड़ेकी मोटी ताँतके समान, कुछ तथा गुदामें खुजलाहटका दोष उत्पन्न हो जाता है। केंचुएके सदश, कुछ धान्याङ्करके समान छोटे-बड़े

での気がはないい

वातव्याधि-निदान

वातव्याधिका निदान सुना रहा है, उसे आप सुनें।

शरीरमें विशेष रूपसे सर्वथा अनर्थ और विष्नोंका एकमात्र कारण न दिखायी देनेवाला दष्ट (प्रकृपित) पवन ही है। वह बाय ही विश्वकर्मा, विश्वारमा, विश्वरूप, प्रजापति, स्रष्टा, धाता, विभू, विष्णु, संहर्ता, मृत्यू और अन्तक-रूप है। इसलिये उस वायको सम रखनेके लिये विशेष रूपसे प्रयव करना चाहिये।

उस वातबाधित शरीरसे सम्बद्ध कहे गये दोष-थिजानमें कर्म दो प्रकारका माना गया है। उनमें एक है प्राकृत कर्म और दूसरा है बैकृत कर्म। संक्षेपमें प्रतिपादित दोष-भेदोंका विचार करके प्रत्येक कर्मके पाँच-पाँच दोव सिद्ध किये गये हैं। इनमें वैकृत कर्म-दोध प्राकृतकी अपेक्षा शक्तिशाली और गतिमान् होता है। अब यहाँ यद्याविभाग लक्षणसहित उसके निदानको कहा जा रहा है।

शरीरकी धातुओंको श्रीण करनेवाले द्रव्य-पदाचौंक उपभोग तथा आचार-विचारसे कुद्ध वायु अत्यधिक समरूपमें प्रवहमान नहीं रहता। वह रस आदिके चारों सोतोंसे प्रवाहित होकर पुन: उनमें तज्जनित दोषोंको परिपूर्ण कर देता है। उसके बाद उन दोषपूर्ण क्रोतॉसे निकलकर वह संभूक्य वाय उसके मुखको विधिवत आच्छादित करके रोगीके शरीरमें शूल, आनाह, आन्त्रकुजन, मलावरीध, स्वरभंग, दृष्टिभेद, पीठ तथा कटि-प्रदेशमें पीडादायक उपद्रवींको जन्म देता है। उसीके प्रभावसे रोगीक शरीरमें अन्य ऐसे उपद्रवांका जन्म होता है, जो कष्टमाध्य है।

आमारायमें वात-दोष होनेपर वमन, श्रास, खाँसी वियुचिका, कण्डावरोध तथा नाधिके ऊपरके भागमें अनेक व्याधियोंका जन्म होता है। कृषित वाय नेत्र-कान आदि इन्द्रियोंमें विघ्न तथा त्वचा-भागमें प्रविष्ट होकर पककर कुशता और भ्रमके रोगोंकी उत्पत्ति होती है। मांस और और बार-बार अस्वस्थताका अनुभव करता है। मेदामें प्रकृपित हुआ वाय शरीरमें ग्रन्थि, कर्कशता, भारीपन, लाठी एवं मुष्टि-प्रहारसे होनेवाली पीडाके समान पीडा दक्षिकित्स्य है।

धन्वन्तरिजीने कहा-हे सुबूत! अब मैं आपको उत्पन्नकर रोगीको अत्यधिक कष्ट देता है। अस्थियोंमें प्रविष्ट हुए संबुक्ध वायुसे सक्थि तथा संधि-स्थानीमें रहनेवाली अस्थियोंके अन्तर्गत तीव्र शुल उठनेसे रोगीको कष्ट होता है।

मजागत कपित बाय रोगीकी अस्थियों में भरण एवं अनिदा उत्पन्न करता है, जिससे रोगीको पीडा होती है। जुक्रगत कृपित वाय वीर्य और गर्भका शीघ्र पतन करता है अथवा वह विकृत हो जाता है। शिरागत वायु सिरमें पीड़ा और रिकताका अनुभव कराता है। स्नाय-स्थित क्रद्ध वायु रोगीके करीरमें जोध उत्पन्न कर देता है, जिसके कारण उसको अधिक कष्ट होता है।

शरीरके संधि-स्थानोंमें प्रवहमान प्रकृपित वायुके कारण रोगों जलसे परिपूर्ण दृति (गलगण्ड), स्पर्श तथा शुष्कताके उप्रदेवसे ग्रस्त हो जाता है। शरीरके समस्त अङ्गोंमें कृपित वायुके प्रविष्ट हो जानेपर पीडा, ट्रटन और स्फरणका दोष होता है। स्वप्नावस्थामें विकार होनेसे वायु -स्तम्भन, आक्षेपण, संधिर्भग तथा कम्पनका दोच प्राणीके शरीरमें उत्पन्न कर देता है। जब कुद्ध वायु शरीरकी सम्पूर्ण ध्रमनियोंमें बारम्बार प्रवाहित होने लगता है तो उस समय शरीरके अङ्क विक्रिया हो उठते हैं। इस व्याधिको आक्षेपण नामसे

जब नीचेसे ताहित बायु कृपित होकर ऊपर चढ़ता है और फिर कथ्यंभागको और प्रवाहित होने लगता है, तब वह रोगोके इदयको पीडितकर सिर और मस्तककी अस्थिमें पोड़ा उत्पन्न कर देता है। वह चारों ओरसे शरीरपर प्रहार करता है, जिससे शरीर विक्षिप्त हो उठता है। यह हन् और मुखकी शक्तिको भी क्षीण करके रोगीको व्यथित करनेका प्रयास करता है। रोगी बड़े ही कप्टसे श्रास लेता और उसका परित्याग करता है। उसके दोनों नेत्र बंद होने लगते हैं। कण्डसे कबतरके समान ध्वनि होने लगती है फुटनेवाले फोडे और रूक्षताका कारण बन जाती है। रक्तमें और रोगी ज्ञानजुन्य होने लगता है। चिकित्सा-क्षेत्रमें इसका वायुके प्रविष्ट होनेसे रोगीको अत्यन्त कष्टदायक पोडा होती. नाम उपतन्त्रक रोग है। हृदयमें स्थित दोषपूर्ण वायुके द्वारा है, श्वास तथा गलेमें जलन और स्वरभेदका रोग होता है। प्रेरित वह रोग जब रोगीको बाम नासिकाके छिद्रमें जाकर आँतके मध्य प्रदूषित वायुके पहुँचनेपर विष्टम्भ, अरुचि, आश्रय लेता है, तब उसके कारण रोगी बार-बार स्वस्थता

अभिघातजन्य वातव्याधि (अपतानक रोग) अत्यन्त

जब कृपित वायु ग्रीषा और पार्श्वनें स्थित मन्या नामवाली दोनों शिराओंको जकडकर और सम्पूर्ण धर्मनियोंका आश्रय लेकर सम्पूर्ण जरीरमें फैल जाती है, जिससे गर्दन तथा कक्षको संधियाँ टेढो पड़ जाती हैं और शरीर भीतरको ओर धनुषकी तरह झुक जाता है, रोगीके नेत्र स्तम्भित हो जाते हैं, वह जैभाई लेने लगता है, दौतोंको चबाने लगता है, कफयुक्त वमन करता है, दोनों पसलियोंमें बेदना होती है, वाणी रुक जाती है तथा हुनू, पृष्ठ और मस्तक जकड जाते हैं, तब इसको अन्तरायाम वातरोग कहते हैं।

विहरायाम रोगमें शरीर वाहरको और धनुषके सदक्ष शुक्ष जाता है। वक्ष:स्थल ऊँचा हो जाता है और सिर तथा कंधा पीछेकी ओर झक जाता है। दाँतों तथा मुखका रंग बदल जाता है, पसीना अधिक आता है, जरोर लिथिल हो जाता है। इस वातव्याधिको बाद्यायाम या धनुस्तन्म कहा जाता है।

रोगीके मल, मूत्र और रक्तमें प्रविष्ट हुआ वात-दोष सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होकर शरीरमें अनेक प्रकारके दोच उत्पन्न करता है। इस रोगको ब्रणायाम कहते हैं। जिस ब्रणायाम रोगमें रोगीको अत्यन्त तुषा हो और उसका करीर पीला पड गया हो, यह असाध्य होनेसे वर्कित है। सभी प्रकारके आक्षेपक रोगोंमें वायुका बेग ज्ञान्त हो जानेपर रोगी स्थस्थ हो जाता है।

जिह्नाको अल्पधिक रगडने और उच्च भोजन करनेसे हन् अर्थात् ठोडीमें स्थित वाय् कृपित होकर हन्भागमें स्तम्भन-दोष उत्पन्न करके मुखको खोल देता है अथवा चंद कर देता है। इसीको वातव्याधिमें हनुस्तम्भ-व्याधि कहते हैं। इसके कारण रोगीको खाने-चवाने तथा बोलनेमें अधिक कठिनाई होती है।

कृपित बायु बाग्वाहिनी शिरामें स्थित होकर जिह्नाको स्तम्भित कर देता है। यह जिह्यस्तम्भ नामक वातव्याधिका भेद माना गया है। इसके दश्रभावसे रोगोके मुखमें खाने-पीने तथा बोलने-चालनेकी सामध्यं नहीं रह जाती। सिरके द्वारा भार ढोने, अत्यन्त हैंसने और बोलने, ऊबड-खाबड स्थानपर सोने तथा कठोर पदार्थीके चबानेसे बायु विकारपुक्त होकर शरोरमें बढ़ता है और ऊर्ध्वभागमें पहुँचकर आश्रित हो जाता है। इससे रोगीका मुख टेढ़ा हो जाता है। वह ऊँचे स्वरमें अद्रहास करता है तथा किसी ओर अपने नेत्रोंको एकटक लगाकर ध्यानमन्न होकर देखता है। उसके बाद उसी दोषसे रोगीकी वाकशकि शिथिल पढ़ जाती है, नेबॉमें स्तब्धता छ। जातो हैं, दाँत किटकिटाते हैं, स्वरर्भग हो जाता है, बहरापन तथा अन्धत्वका दोष आ जाता है। इन दोषोंके अतिरिक्त गन्धकी अञ्चानता, स्मृतिध्यंस, भय, श्वास, धृक, पार्श्वभेद, एक नेत्रकी शक्तिका हास, दाइके कथ्वभागमें, शरीरके आधे भागमें या नीचेके भागमें प्रबल चेदना होती है। कुछ लोग इसे अर्दित और कुछ एकाङ्गदोष कहते हैं।

जब प्रकृपित बायु रक्तका आश्रय लेकर मूर्धामें स्थित शिराओंको रूख, शुलयुक्त और कृष्णवर्णका कर देता है, तब उसे तिरोग्रह दोष कहते हैं और यह असाध्य है।

जब प्रकृपित बायु शरीरको अपने अधिकारमें करके उसमें निहित शिराओं तथा स्त्राय्-तन्त्रिकाओंको अपने अधिकारमें कर लेता है और उनमें अवरोध उत्पन्न करके वह रोगोंके शरोरके एक पक्ष अधवा अन्य किसी विशेष भागपर प्रहार करता है, जिससे यह भाग चेतना-शुन्य अबका अकर्मण्य हो जाता है, तब उस दोषको लोग पक्षाचात कहते हैं। कुछ लोगोंने तो उसको एकाङ्ग या अर्थाह रोग और कुछ अन्य लोगोंने कश्रव्याधिक नामसे स्वोकार किया है। परंतु सम्पूर्ण शरीरमें प्रकृपित वायुका आवय होनेपा सर्वाङ्करोध (सर्वाङ्क-पक्षापात) और जकडन नामक रोग होता है।

जो पक्षापातरोग केवल वातके कारण होता है, यह अत्यन्त कष्ट-साध्य है। जब वह वातरोग पितादि अन्य दोषोंके संयोगसे होता है, तब कष्ट-साध्य तथा जो वातरोग धातुओंके धय हो जानेसे होता है, वह असाध्य होनेसे वर्म्य है।

कफसे युक्त वात जब आमाशयमें अवरुद्ध हो जाता है, तब उस समय रोगीके जारीरको वह जकड़ देता है। उसके कारन रोगीका ऋरीर इंडेके समान सीधा हो जाता है। इसीलिये इसको दण्डापतानक कहा जाता है। यह सम्पूर्ण दोषांसे समन्वित होनेपर निश्चित ही असाध्य बन जाता है।

स्कन्ध-प्रदेशके मूलभागसे उठा हुआ प्रकृपित वायु

उसको शिवओंको संकृषित करके बाहुओंकी स्पन्दन- जाती है। उस दोषके प्रभावके कारण रोगीका वह अङ्ग शक्तिको नष्ट कर देता है, उसे अवबाहुक रोग कहते हैं। स्वामवर्णका हो जाता है। उसमें जड़ता आ जाती है। रोगी भुजाओंके पृष्टभागसे होकर प्रत्येक अँगुलोके तलप्रदेशतक जो एक मोटी नाड़ी जाती है, उसका नाम कण्डरा है। उसमें कृपित हुआ वात उसके कर्म-सामध्यंको समाप्त कर देता है, उसको विषुची कहा जाता है। रोगीके कटिप्रदेशमें रहनेकला वायु जब जंघाप्रदेशतक जाता है, तो अपनी उस मोर्ट कण्डरा नाड़ीको आक्षिप्त कर देता है अर्थात् उसे जकड़ लेता है, इससे रोगी खज़ (लैंगड़ा) हो जाता है। जब दोनों जंपाओंकी नसोंको जकडकर दोनों पैरोंको कण्डराएँ आस्प्रित हो उठती हैं, तब उस रोगको पड़ कहा जाता है। जब रोगी चलनेमें काँपने लगता है और ख़ब्बन पक्षोंकी भाँति खेंगड़ाते हुए चलता है, उसके संधि-बन्धन तिथिल पढ़ जाते हैं तो उस दोषको कलायखन्ज नामक रोग मानना चाहिये।

जीर्ण या अजीर्ण-अवस्थामें शीतल, उष्ण, द्रव-पदार्थ, शुष्क, गुरु, स्निग्ध भोज्य-पदार्थका सेवन, अधिक परिश्रम, संशोभ, शैथिल्य तथा अधिक जागरण करनेसे वात-कफयुक्त मेद अत्यधिक मात्रामें संचित होकर पितका पराभव करके शरीरको परिव्याप्त कर लेता है।

अन्त:क्लेप्सके द्वारा जंबाप्रदेशको हड्डियोके दोष-समन्त्रित होनेपर स्तम्भन-रोग उन्हें ग्रसित करता है। उस समय शीत-वात-दोपके प्रभावसे जंधाओंकी हुड़ी शिथिल पह तन्त्रा, मुच्छां, अरुचि और ज्वरके उपद्रवींसे ग्रस्त हो उठता है। इस रोगको करुस्तम्भ कहते हैं। दूसरे लोग इसको बाह्यवात भी कहते हैं।

वायु और रक्त दोनोंके कुपित होनेसे जानुमें (घुटनोंके मध्य) जो शोध उत्पन्न होता है, वह महाभयंकर पीड़ादायक रोग है। इसमें जोध सियारके सिरके समान स्थूल माना गया है, इसलिये इसको क्रोष्ट्रकशीर्थके नामसे कहा जाता है। जब ऊँचे-नोचे पीडादायक विषय स्थानपर पैर रखनेसे अथवा अत्यन्त परिश्रमसे वायु कृपित होकर गुल्फ (रखने)-में आश्वित हो जाता है, तो उसे बातकण्टक रोग

जब पार्षिण-भागके सम्मुख अँगुलीको शिराओंको प्रकृपित वायु पीड़ा उत्पन्न करते हुए पौबोंकी गमनशक्ति नष्ट कर देती है, तब उसे गुधसी रोग कहते हैं। कफ और वायुके प्रकृषित होनेसे जब दोनों पेर झुनझुनाने लगते हैं और सुत्र भी हो जाते हैं, तब उस दोवको पादहर्व कहा गया है। पित तथा रकसे संश्रित बात प्राणीके दोनों पैरोंमें दाह उत्पन्न कर देता है, विशेष रूपसे वैसी अवस्था अधिक बलनेसे ही आती है। वात-दोषमें इस दोषभेदको पाददाह नामसे सम्बोधित किया गया है। (अध्याय १६६)

वातरक्त-निदान

निदान बतलाऊँगा, उसे सुनै।

प्राय: स्वास्थ्य-विरुद्ध भोजन तथा क्रोध कानेवाले, दिनमें सोने और रात्रिमें जागरण करनेवाले तथा सुकुमार एवं मिथ्या आहार-विहार करनेवाले, स्थल शरोरवाले और सुखीजनोंका रक्त बृद्धवातसे प्रकृपित हो जाता है। चोट लगनेसे अथवा वमन एवं विरेचन आदिद्वारा गुद्ध न प्रवहमान वह वायु रक्त-स्रोतोंसे अवरुद्ध होकर पहले पुन: उभर भी जाते हैं।

धन्वनरिजीने कहा —हे सुबूत ! अब मैं आपसे वादरक- रकको ही दूषित करता है। तदनन्तर मांसादिक अन्य धातुओंको भी दूषित करता है। यहले गुदाभागको पीड़ितकर बादमें यह सम्पूर्ण करीरमें फैल जाता है। इस जात-दूषित रक्तको वांतरक कहा जाता है। विशेष रूपसे यह दोष बमनादि उपद्रवों तथा पाँव लटकाकर बैडनेवाली सवारी आदिसे होता है।

कुष्ठरोगके जो पूर्वरूप होते हैं, प्राय: वे ही वातरक-रोगके भी होते हैं। इस रोगके होनेपर घुटना, जेया, ऊर, होनेवाले मनुष्योंका रक्त दूषित हो जाता है। वात-दोष पैदा कटि, स्कन्ध, हाथ, पैर और संधि-स्थानोंमें खुजली, करनेवाले एवं श्रीतल पदार्थोंके सेवनसे वायु-वृद्धि होती है, स्फुरण, सृचिकाभेद, गुरुता और इन्द्रियसुत्रताके दोय होते वह कुद्ध होकर विमार्गगामी हो जाता है। इस प्रकारसे हैं। ये दोष बार-बार उत्पन्न होकर शान्त हो जाते हैं और

१-सु०ति०अ० १; वा० ति० १५; च०चि० २८। २-च०चि० २९; सु० चि० १; अ०स० ति०अ० १६।

कभी दोनों हाथोंके मूलमें स्थित होकर, यह कृषित दोष नामक वातरक-रोग अथक चिकित्सोपचारके द्वारा बातरक्त-दोष प्राणीके सम्पूर्ण हारीरको वैसे हो परिव्याप्त रोका जा सकता है। किंतु जो रोग त्रिदोषजन्य है, उसे ती कर लेता है, जैसे चुहेका विष कृपित होकर धीरे-धीर पूरे छोड़ देना चाहिये। उसकी शान्तिके लिये प्रयास करना शरीरमें व्याप्त हो जाता है। वह वातरक्त सर्वप्रथम रोगोके व्यर्थ हैं, वह असाध्य होता है। इनमें रक्तपित्तजन्य बातरोग चर्म-भागपर उत्पन्न होकर मांस-भागमें आश्रय ग्रहण करता तो वडा हो कटिन माना गया है। है। उसके बाद सभी धातुओंको आश्रय बना लेता है। इसे प्रकृपित बाय रोगीके शरीरस्थ अङ्ग-विशेषके रक्तको गम्भीर नामक बातरक कहते हैं। उत्तान बातरोगमें रोगीके नष्ट करके उसके संधि-स्थानोंमें प्रविष्ट हो जाता है। कटि आदि स्थानींका चर्म, ताम्र या रखमवर्णका हो जाता तदनन्ता परस्पर एक-दूसरेको भली प्रकारसे अवरुद्ध है। बहाँपर शोध तथा ग्रथित पाक उत्पन्न होता है। वह करके तळानित बेदनासे वह रोगीके प्राणींका अपहरण प्रकृपित वायु रोगीकी हड़ियों और मज्जा-भागमें जाकर वहाँ करता है। आश्रय लेकर छेदनेके समान पाँडा करता हुआ चळके प्राण, व्यान, समान, अपान और उदान-इस पश्चारमक समान भूमता हुआ शरीरके अङ्गीको टेडा-मेदा कर देता है। वाय-समृहके बीच प्राणवाय जब रूक्षता, चक्कलता, लंधन, तदनन्तर सब औरसे शरीरमें प्रवहमान यह बाय अन्तमें अतिशय आहार, अधिधात, मलमुत्रादिक वेगावरोध तथा

जुल, फड़कन तथा टूटन-भरी पीड़ाको अनुभृति होती है। तृष्णा, खाँसी और श्रासादिके रोग उत्पन्न होते हैं। उभरे हुए शोधमें रूअता, कृष्ण या स्थामवर्णता आ जाती कृषित उदानवाय जब (टोबी) और मुद्धीमें आह्रय रोगीकी धमनियों और औगुलियोंके संधि स्थानोंमें संकचन, गलगण्डाटिक दोवोंको जन्म देता है। अङ्गग्रह तथा अत्यन्त बेदनाजन्य कष्ट होता है। इसमें अत्यधिक दूरको यात्रा, स्नान, अतिशय क्रीडा, अत्यन्त कम्पन और इन्द्रियश्रन्यताके दोष भी आ जाते हैं।

पदार्थ लगानेसे या उसे रूक्ष रखनेसे शान्ति नहीं मिलतो।

पिताधिक वातरकमें अत्यन्त दाह, सम्मोह, स्वेद, मुर्च्छा, मद, तृष्णा, स्पर्श, असहत्व, अत्यधिक पोडा, शोध, दिखायी देते हैं।

कफाधिक वातरकमें कठोरता, भारोपन, शुन्यता, स्निम्धता, शीतलता, खुजली और मन्द पीडा होती है। इन्द्रज दोषमें दो तथा त्रिदोषजमें तीनों दोषोंके लक्षण उभरते हैं। इनमें

कभी दोनों पैरोंके मूलभागमें आश्रय लेकर अधवा एक दोषजन्य रोग अपेक्षित चिकित्सासे साध्य है। हुन्हुज

रोगीको खन्न अथवा लैंगडा बना देता है। कृत्रिय ग्रेग-संधालनके प्रयासमें कृपित होकर नेत्रादिक शरीरमें बाताधिक्य बातरक्त-रोग होनेपर आप्रधिक इन्द्रियोंने उपचात करता है तो उसके कारण पीनस, दाह,

है। इसमें शोध कभी बढ़ जाता है और कभी घट जाता है। लंकर कप्रशब्दोध, मलधेद, वमन, अरुधि, पीनस तथा

शीतल पदार्थीसे अरुचि एवं उसके सेवनसे वृद्धि, स्तम्भन, विषय-भोगकी खेश, स्वास्थ्य-विरुद्ध व्यवहार, स्थला, भय, हर्ष तथा विपादके कारण प्राणीके शरीरमें स्थित व्यान नामक रक्ताधिक वातरक-रोगमें शोध अत्यन्त पोडासे युक्त वायु द्वित हो उठता है। तदनन्तर वह रोगीके पुंसव (पुरुषत्व), होता है। इसमें सुचिका-भेदजन्य पीड़ा भी होती है। इसका उत्साह और शक्तिका हास कर देता है। उसके चित्तमें वर्ण ताँगेके समान होता है। यह चुनचुनाता भी एहता है। इसमें शोक तथा विभ्रमकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उसे ज्वर ललाई रहती है तथा खुजली और क्लेट होता है। स्निग्ध सम्पूर्ण जग्रेरमें सचिका-भेटके समान बेटना, ग्रेमाञ्च, स्पर्श-जुन्यता, कुछ, विसर्प और सभी अक्रोंमें पीडा होती है।

स्वास्थ्य-विरुद्ध अजीर्णकर, शीतल तथा संकीर्ण दोषसे पूर्ण भोजन, असामयिक शयन और जागरण आदिसे समान पककर फूटनेवाला फोड़ा तथा अत्यन्त ऊष्माके लक्षण नामक वाय द्वित हो जाता है। इसके प्रकृषित होनेसे शुल, गुल्म, प्रहणी आदि सामान्य यकुत्जन्य तथा कामात्रित रोगोंकी उत्पति होती है।

> अत्यन्त रूख तथा भारी अञ्चल सेवन, मल-मुत्रका वेग रोकने, अतिशय भार दोने, वाहनको अधिक सवारी करने,

मदिरापान, अत्यधिक देरतक खडे होने तथा आधिक धूमने-फिरनेसे अपानवायु कृषित हो जाता है। वह प्रकृषित वाय प्राणीके शरीरमें पक्वाशयसे आश्रित समस्त रोगोंको उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त रोगीके शरीरमें मुत्र, वीर्य, अर्श तथा मलावरोध आदिसे सम्बन्धित बहुतसे रोग प्रकट हो जाते हैं।

तन्द्रा, स्तिमिता, गुरुता, स्निग्धता, अरुचि, आलस्य, शैत्य, शोध, अग्निमान्छ, कटु और रूक्ष पदाधींको अधिलाय आदि लक्षणोंसे युक्त वायुको साम अर्थात् आम-सदश कहते हैं। जिसमें तन्त्रा आदिके विपरीत लक्षण होते हैं, वह वाय निराम कहलाता है।

साम-निरामके लक्षण बताकर अस वायुके आवरण और भेदोंका वर्णन किया जाता है। पितदोपसे आवृत कत-विकार होनेपर दाह. तृष्णा, जुल, धम और आँखोंके आगे अन्धकार छ। जाता है। कटू, उच्च, अस्त तथा लखनके प्रयोगसे रोगीमें विदाह और श्रीतकी अभिलाया बढ़ जाती है। कपावृत बात-विकारमें रोगी शीतल, रूक और उष्ण भोजन करनेका इच्छक होता है। उसको जीतलता, भारीपन शुल, लंघन, अग्निदाह, कट् एतपुरुष्य तथा अधिक तृष्णाके दीव घेर लेते हैं। इस कफावृत रोगमें अड़-दर्द, उबकाई और अरुचि भी होती है।

और पीड़ा अधिक होती है। रोगीके शरीरमें लाल वर्णका शोध हो जाता है और मण्डलाकार चक्रते पड जाते हैं। वायुके मांसाश्रित होनेपर शोध बड़ा कटोर लग्ता है। उस रोगीको उबकाई आती है और शरीरमें छोटी-छोटी फंसियाँ निकलने लगती है। ऐसे शोधमें रोमाञ्च भी होता है और शरीर चींटियोंसे व्याप्त हएके समान प्रतीत होता है। मेटसे आवृत वायु-विकारमें यह शोध शरीरमें चलायमान, मुद तथा शीतल होता है और अरुचिकर भी होता है। मेदासे आबृत बात अन्य बातरीगोंकी अपेक्षा अत्यन्त कष्टमाध्य है। इसको आवधवातके समान समझना चाहिये। इस रोगके होनेपर उत्पन्न हुआ शोध स्पर्श तथा आच्छादन करनेसे उच्च तथा आवरण हटा देनेपर शीवल लगने लगता है।

वायुके मजावत शोय होनेपर उक्त लक्षणके विपरीत

लक्षण दिखायी देते हैं। उसमें फैलाव और कसाव होता है, जुलजनित पोडा होती है तथा दोनों हाथोंसे मर्दन करनेपर रोगीको सुख प्राप्त होता है।

शुक्रावृत वात-शोध होनेपर शुक्रमें अधिक वेग नहीं रह जाता। वायके अन्नसं आवत होनेपर भोजन करनेपर रोगोंके कृक्षिभागमें पीड़ा होती है और भोजनके पच जानेपर पीडा शान्त हो जाती है। मुत्रसे वायके आवत हो जानेपर मुत्रका निकलना बंद हो जाता है और वस्ति-स्थानमें वेदना होने लगती है। वायुके द्वारा पुरीपके आवृत होनेपर गृह्यभागमें विशेष प्रकारका विषन्ध हो जाता है। आरेसे काटनेपर होनेवाली पीडाके समान रोगीको पीडा होती है। ऐसे वातरक-दोवके आवरण-रोगमें ज्वरसे पीड़ित रोगी यथातीय धराशायी होकर मुख्लित हो जाता है। विबन्धद्वारा मल पोडित होकर सखा हुआ बडी कठिनतासे और बहुत देशमें निकलता है।

वायद्वारा मधी धातुओंके आवत होनेपर रोगीके कटि-प्रदेश, बंक्षण और पीडमें पीड़ा होती है। विलोम भावको प्राप्त हुआ वायु रीगीके हृदयको पीडित करता है। पित्तज दोषसे प्राणवायुके आवृत होनेपर भ्रम, मुच्छा, पीडा तथा दाहका उपद्रव रोगीके शरीरमें होता है।

पित्तमे व्यानवायके आक्रान्त होनेपर पीडा, तन्त्रा, रकावृत बातरोग होनेपर रोगोके चर्म तथा मांसमें दाह स्वरधंश और सम्पूर्ण शरीरमें दाहकी उत्पत्ति होती है। समानवायुके आवृत होनेपर क्रमशः अङ्गचेष्टा, अङ्गभङ्ग, वेदनासहित संताप, तापविनाश, पसीना, रूक्षता और तुष्णाका उपद्रव होता है। अपानवायुके आवृत होनेसे रोगीके शरीरमें दाह होता है और उसके मलका वर्ण हरूरीके समान पीला हो जाता है। स्त्रियोंमें रजवृद्धि (या रोगबुद्धि), ताप, आनाह तथा प्रमेह नामक रोग भी उसके जरीरमें जन्म प्रहण कर लेते हैं।

क्लंब्सके द्वारा प्राणवायके आवृत होनेपर नादस्रोतमें अवरोधः खखार, स्वेद, श्रास तथा नि:श्रास-इनमें विविधता होती है। उदानवायुके कफसे आवृत होनेपर शरीरमें भारीपन, अरुचि, वाक्रोध, स्वरक्षय, बल और वर्णका नाश होता है। व्यानवायके कफसे आवृत होनेपर पर्व और अस्थियों ने जकड़न, सम्पूर्ण जरीरमें भारीपन, अत्यधिक स्थुलता आ जाती है। समानवायुके कफसे आवृत होनेपर कर्मेन्द्रियोंमें अज्ञानता, शरीरमें पसीनेकी कमी, अप्निमन्द्रता तथा अपानवायुके कफसे आवृत होनेपर पल-पुत्रकी अधिक प्रवृत्ति होती है।

इस प्रकार वातरक-रोग बार्डस प्रकारका माना गवा है। क्रमश: प्राणादि वाय परस्पर आक्रान्त होनेसे बीस प्रकारके आवरण होते हैं। प्राणवायु जब अपानवायुको आवृत कर लेता है, तब उचकाई, श्रासरोध, प्रतिश्याय, शिरोग्रह, हृदयरींग और मुखशीय-ये उपहव होते हैं। उदानवायुके द्वारा प्राणवायुके आवृत होनेपर रोगीको शक्तिका विनाश होता है। वैद्यको यथोचित विचार करके हाँ सभी प्रकारके वात-आवरणोंके भेटोंको जानना चाहिये। सभी वात-दोषोंके स्थानोंकी विवेचना करके उसके दृष्ट कमीकी वृद्धि और हानिपर चिन्तन करके भी आवरणींका विभाग समझना चाहिये।

प्राणादिक पाँचों वाय-समृहोंके (प्रयक्-पृथक) पित-दोपजन्य आवरण होते हैं। यातमिश्चित पिकादिक जिन निवास-स्थानोंकी चर्चा ऊपर की गयी है, वे उन्हों अपने दोचोंसे मित्रित हैं। मित्रित पितादिक दोचोंके कारण वे भी अनेक प्रकारके आवरण रीग माने गये हैं। अत: विद्वान विकित्सक सचेत होकर अपने लक्षण-ज्ञानक अनुसार उन दोपॉका चिन्तन करे। विकित्सकके लिये अपेक्षित है कि धीर-धीरे अपने लक्षणोंके अभ्युदयसे निधित एवं दृढ़ हुए उन रोगोंका बार-बार परीक्षण करके ही उपचार करे।

प्राणवायु प्राणीके जीवनका आधार तथा उदानवायु बलका आधार कहा गया है। शरीरमें उन दोनोंके पोडित होनेसे प्राणीके आयु और बल दोनोंको हानि होती है।

आवृत हुए सभी वाय-दोष अपने-अपने लक्षणोंसे तरीरपर स्पष्ट हो गये हों अथवा स्पष्ट न हुए हों या वे स्थानच्युत होनेके कारण समझसे परे हो रहे हों अथवा उपद्रविद्दीन हो गये हों, वे असाध्य ही होते हैं। चिकित्सकके द्वारा किये जानेवाले प्रयाससे भी वे कष्ट-साध्य ही होते हैं।

उपर्युक्त उन आवृत बाय-दोषोंकी उपेक्षा करनेसे प्राणियोंके शरीरमें विद्रिध, प्लीहा, हद्रोग, गुल्म तथा अग्निमन्ता आदिके उपद्रवोंका आविभीव होता है।

हे सुब्रत! सभी रोगोंके ज्ञान एवं मनुष्यादि समस्त प्राणियोंकी आयुवृद्धिके लिये मैंने आश्रेय मुनिद्वारा कथित उनके निदानको भलो प्रकारसे बतला दिया है। अत: उसी प्रकारसे सभी रोगोंका विचार करके चिकित्सकको तत्सम्बन्धित रोगको चिकित्सा करनी चाहिये।

मध्, युत और गुड़से संयुक्त त्रिफला (हरीतकी, जामलको और बहेडा)-चूर्ण सभी रोगोंका विनाशक है। त्रिफला-पूर्णको यदि केवल जलके साथ नित्य-प्रात: प्रयोगमें लाया जाय, तब भी वह सभी रोगोंका नाश करनेवाला होता है। शतावरी, गृहची, चित्रक और विहंगके साथ भी प्रयुक्त विफला सभी रोगोंको विनष्ट कर देती है। हतावरी, गृहची, अग्निमन्द्र, चित्रा, सीठ, पुसली, बला, पुनर्नवा, बृहती, निर्गृण्डी, निम्बपत्र, भूगराज, आँवला तथा वासक अथवा उसके ही रससे सात बार या एक बार भावित बिफला सभी रोगोंका निवासक है। पूर्वोक्त कही गर्वी औषधियोंकी जैसी प्राप्ति हो, उसी प्रकारसे उनके द्वारा तैयार चूर्ण, मोदक, वटी, घृत, तेल अधवा क्वाध भी सवरोगहर्ता है। उनको आनुपातिक मात्रा एक पल, आधा पल एक कर्ष अथवा आधा कर्ष रोगीके लिये उपादेय मानो गयी है। (अध्याय १६७)

वैद्यकशास्त्रकी परिभाषा

योगसारका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ, उसे आप सुनें। प्राणियोंके शरीरकी वायु कृषित हो जाती है।

वर्षा-ऋतुमें कसैले, कर्, तिक और रूशादि गुणोंवाले ग्रीप्प और वर्षा-ऋतुके मध्याहकालमें उष्ण, अप्ल,

धन्वन्तरिजीने कहा - हे सुश्रुत ! प्राणियोंके जोबनकी भार-बहन तथा सामध्यंसे अधिक शारीरिक शक्तिका रक्षाके कारणस्वरूप, समस्त रोग-विनाज्ञक, सिद्ध, औषधीय प्रयोग करनेसे एवं भोजनके पाचनकालमें और संध्यासमयमें

खाद्य-पदार्थोंके सेवनसे, चिता, मैधून, व्यायाम, भय, शोक, लवण, क्षार, कट, एवं अजीर्ण भोजन, तेज धूप, अग्नि-रात्र-जागरण करने तथा उच्च स्वरमें बोलनेसे. अधिक संताप, मद्यपान तथा क्रोधावेगका अवरोध करनेसे प्राणियोंका पित प्रकृपित होता है। यह दोष ग्रीष्मकालको अर्द्ध भारो तथा अधिक चिकना होता है। रात्रियोंमें भी हो सकता है।

वसन्त-ऋतमें स्वादिष्ट, अप्ल, लबण, स्निग्ध, भारो और शीतल भोजनका अधिक प्रयोग, नवात्र, चिकने पदार्थ तथा दलदलवाले स्थानोंमें विचरण, मांसादि सेथन, सहसा व्यायामसे विरक्ति, दिनमें शयन, ज्ञय्या और आसनादिक सुखोपभोग प्राप्त करनेसे और भोजनके अन्तमें प्रानियोंका कफ संधुव्य हो उठता है।

शारीरिक कर्कशता, संकोच, सुचिकाभेट पीड़ा, विष्टम्भ, अनिद्रा, रोमाञ्च, स्तम्भ, शुष्कता, स्वामत्व, अङ्ग-विश्वेश, बलहानि और परिव्रमजन्य थकान आदिके उपद्रव वात-दोषके लक्षण है। अतः उन सभी उपद्रवासे समन्वित रोगको वातात्मक रोग कहना चाहिये।

दाह, पैरमें जलन, पसीना, क्रोध, परित्रम, कट्ट, अम्ल, शव-समान दुर्गन्ध, स्वेदराहित्य, मृन्छां, अत्यन्त तृष्णा, भ्रम, हल्दीके समान पीला और हरा रंग होना-ऐसे लक्षणींवाला मनुष्य पित्त-दोषसे समन्त्रित माना जाता है।

शरीरमें स्निग्धता, माध्यं, बन्धनके समान पोड़ा होना, निश्चेष्टता, तृप्ति, संघात, शोध, शीतलताकी अनुभृति, भारीपन, मलाधिक्य, खूजली और अधिक निदा-ये सब लक्षण कफसे उत्पन्न होते हैं।

कारण, लक्षण और संसर्गसे रोगको पहचानना चाहिये। जो रोग वात, पितादि दोषोंमेंसे किन्हीं दो दोषोंसे उत्पन्न हो, वह द्विदोषज रोग कहलाता है और जिस रोगमें सभी बात, पित तथा कफजन्य दोषोंके लक्षण व्यक्त हों, उसे जिलिंग या संनिपातिक रोग कहा जाता है।

प्राणियोंका यह शरीर दोष, धातु तथा मलका आधार कहा जाता है। उन सभीका शरीरमें समत्व भावसे रहना आरोग्य या निरोगता है। उनमें कभी और वृद्धि रोगका शुक्र-ये सात धातुएँ हैं। वात, पित तथा कफ-ये तोन

और पश्चिल रोगोंका कारण है। कफ मधुर, लवण, स्निग्ध, चिकित्सा-कार्यमें प्रवृत होना चाहिये।

वायु त्ररोरमें गुदाभाग और कटिप्रदेशका आश्रय लेता है। पित पक्वाशयमें स्थित रहता है और कपन्का आश्रय-स्थान आमाराय, कण्ठ तथा मस्तकका संधि-भाग है।

कट्ट, तिक और कसैले पदार्थीका सेवन करनेसे वाय प्रकृपित होता है। कर्, अम्ल तथा लवण पिनको स्वादिष्ट, उच्च और लवण पदार्थ कफको प्रकृपित करते हैं। अत: इन सभीका विपर्यय शरीरमें उन दोषोंकी शान्तिके लिये ही प्रयुक्त होना चाहिये। यथापेक्षित अपने-अपने स्थानपर प्रवृक्त सुखके कारणभूत पदार्थ रोगियोंके रोगका उपशमन करते हैं।

मधुर भोज्य पदार्थ नेत्रशक्ति, रस और धातुके अभिवर्धक है। अम्लमिश्रित होनेपर वे ही मन और हृदयको संतृप्ति, बठगरिनका उद्दीपन तथा पायनशक्तिको प्रबल बनाते हैं। तिक पदार्थ अग्निके उद्योपक, ज्वर, तृष्णा-विनाशक, शोधन और शोषण करनेवाले हैं। कपाय पदार्थ पितवर्धक, स्वम्भक, कण्डप्रहादि दोष-विनाशक तथा शरीर-शोषक होते हैं।

वो द्रव्य-पदार्थ प्राणियंकि शरीरमें स्थित रस और वोर्चको विशेष रूपसे परिपक्त करनेका आधार होता है, वह उत्तम माना गया है। रस-परिपाकके मध्य स्थायी रूपसे स्थित वह पटार्थ यथालीय ही अन्य सभी द्रव्योंका भी आश्रय बन जाता है। शीतलता, उष्णता और लवणताके गुणोंको धारण करनेवाला पदार्थ वीर्य अथवा शक्ति ही है।

रस-परिपाक दो प्रकारका होता है। एक है मधुर और दूसरा है कद।

वैद्य, औषधि, रोगी तथा परिचारक (रोगीको सेवा करनेवाला)-की सम्पत्ति—ये चार चिकित्साके अङ्ग है। इन चारोंकी उत्तमता होनेपर रोग यथाशीघ्र दूर हो जाता है और कारण है। वसा, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मजा तथा इनके विपरीत हो जानेपर तो रोगकी असिद्धि ही होती है।

देश, काल, रोगोकी आयु, शरीरमें अग्निका बलावल, दोष हैं और बिष्टा तथा मूत्र आदि मल कहे जाते हैं। प्रकृति, त्रिदोवों (कफ-पित्त और वायु)-का साम्य-वैधम्य, वायु शीतल, रूक, लघु, सुक्ष्म, स्वर्रावहीन, स्थिर तथा रोगीका स्वभाव, औषधि, रोगीके शरीरका सत्त्व, सहनशक्ति बली होता है। पित्त अप्ल (खड़ा), कट (तीक्ष्म), उष्ण तथा रोगका भलीभौति विवेचन करके ही बिह्नान चिकित्सकोंको

अधिक जलाशय तथा पर्वतीवाला देश अनुष कहलाता है। यह देश कफ तथा वायुको प्रकृपित करता है। वनाच्छादित अथवा अन्यान्य शिखर तथा शाखाओंवाला देश रक-पित्तज दोषोंका जनक है। इन सभी लक्षणोंसे जो देश समन्वित होता है, वह सामान्य देश कहा गया है। मनुष्य सोलह वर्षपर्यना बालक, सत्तर वर्षतक मध्यम (युवा एवं प्रौढ़) और सत्तर वर्षके पक्षात् वृद्ध कहा जाता है।

प्राय: कफ, पित्त और वाय जैसा क्रम दिया गया है. वैसे ही शरीरमें ये उद्दीपा होते हैं। शरीरके क्रकिहीन होनेपर अथवा विशेष वृद्धावस्थाके आ जानेपर रोगी क्षारक्रिया, अग्निचिकित्सा और शल्यकर्य-रहित होता है। कुशकाय रोगीका भूंहण, स्थल शरीरवाले रोगीका कर्यन और मध्य शरीरवाले रोगीका रक्षण-कार्य करना चाहिये। शरीरके ये ही तीन भेद माने गये हैं। चिकित्सा-कार्यमें इस त्रिविध क्षमताका विवेचन भी अपेक्षित होता है।

स्थिरता, व्यायाम और संतोष-धारण करनेकी प्रवृत्तिसं रोगीके बलको समझना चाहिये। जो मन्ष्य विकार-रहित, उत्साह-सम्पन्न तथा महासाहसिक होता है. वह बलवान माना गया है। जिस प्राणीके खान-पान भी प्रकृतिके विरुद्ध हैं, यदि वे रोगोके शरीरमें आनेवाले कलके सखकी कल्पनाको साकार करते हैं तो उसको प्रकृतिकी साम्यायस्था कहा जाता है।

कफजन्य पदार्थीका भक्षण करनेसे गर्भियों स्त्रीके गर्भसे कफ-रोगसे युक्त संतान ही उत्पन्न होती है। इसी प्रकार वातजनक तथा पितोत्पादक पदार्थींसे भी होता है, किंतु हितैया भोजन करनेसे समान धातुवाली संतानका जन्म होता है।

कुशकाय, रूक, अल्पकेश, चञ्चलचित तथा स्वप्नमें बहुत बोलनेवाला व्यक्ति वात-प्रकृतिवाला होता है। असमयमें ही जिसका बाल सफेद हो गया हो, गौर वर्णवाला, स्वेद एवं क्रोधयक, बृद्धिमान और स्वप्नमें भी तेज देखनेवाला मनुष्य पित्त-प्रकृतिसे समन्वित कहा गया है। स्थिरचित्त सुक्ष्मस्वर, प्रसन्न, स्निग्धकेश तथा स्वप्नमें जल और पत्थर देखनेवाला पुरुष कफ-प्रकृतिसे सम्बन्धित होता है। मित्रित लक्षणोंके होनेपर प्राणीको द्विदोषज तथा त्रिदोषज मानना

चाहिये। प्राणीमें उक्त दोषोंका इतर भाव होनेपर जिस दोषके अधिक लक्षण दिखायी देते हों, उसीके अनुसार उसको प्रकृतिका निर्धारण होता है।

मन्द्र, तीक्ष्ण, विषम और सम-ये बात-पित्त आदिकी चार अवस्वाएँ हैं। कफ, पित तथा वायुको अधिकता और समतासे जठरारिन भी भिन्न प्रकारको हो जाती है। शरीरमें सदैव जडराग्निकी समताकी रक्षा करनी चाहिये। विषम स्थित आनेपर वातनिग्रह करना चाहिये। तीक्ष्णावस्था होनेपर पित्त-दोषका प्रतीकार और मन्दावस्थामें कफका शोधन आवस्यक माना गया है।

सभी रोगोंकी उत्पतिके कारण अजीर्ण और मन्दाग्नि-दोष है। आम, अम्ल, रस तथा विष्टम्भ-ये चार उसके लक्षण हैं। आम-दोष होनेपर विष्विका, इदयरोग और आलस्यादिके उपद्रव होते हैं। ऐसा विकार होनेपर वच् कट्रफल और लवणमित्रित जलपान कराकर रोगीको वमन कराना चाहिये। अम्ल-दोष होनेपर प्राणीमें शुक्रका अभाव, धम, मुख्डां और तृष्णा आदिके दोष जन्म लेते हैं। इस अवस्थामें अग्तिपर बिना पकाया हुआ शीतल जल, वायुका संघन रोगीके लिये अपेक्षित है। रस-दोष होनेपर शरीरभंग, तिरोजाड्य तथा भोजनको अनिच्छा आदिसे सम्बन्धित उपद्रव होते हैं। इस दोषके होनेपर दिनमें निद्रा और उपवासका परित्याग करना चाहिये। विष्टम्भ-दोष होनेपर जुल, गुल्म, अरुचि और मलमुत्रजनित उपद्रव होते हैं। इस दोषको वृद्धि होनेपर स्वेदन-क्रिया तथा लवणमिक्रित जलपान करनेका विधान है।

आम, अपन और विष्टब्यके लक्षणोंका जन्म क्रमश:-कफ, पित तथा वाय-दोषके कारण होता है। विद्वान व्यक्तिको इन दोपॉके होनेपर होंग, त्रिकट् (शुण्ठी, पिप्पली और मरिच) एवं सेंधा नमकका लेप उदरभागपर करके उसका निवारण करना चाहिये। दिनमें सोनेसे सभी प्रकारके अजीर्ण रोगोंका विनाश होता है। अहितकर अत्रोंका प्रयोग करनेसे शरीरमें उनके रोग-समृहोंकी उत्पत्ति होती है: अवएव अहितकर अन्नका सदैव परित्याग करना चाहिये।

केवल उष्ण जल अथवा मध् (माक्षिकभस्म)-के साध

है। बंसांकुर, दहीं और मछलीसे प्राय: दथका किरोध होता होता है। वस्ति-पाक और पाय-पाकमें भी जलकी मात्रा है। बिल्ल, शोणा (श्योनाक), गम्भरी (ब्रोपर्णी), पाटला और विधि समान ही होती है। अभ्यङ्ग अर्थात् शरीरमें (पाढर) और अग्निमान्य-इन पाँच कुक्षेकि मूल संग्रहको मालिल करनेके लिये तैयार किया गया पाक खर तथा आयुर्वेदमें 'पञ्चमुल' कहा गया है। ये पञ्चमुल मन्दाग्निको तीव्र करनेवाले, कफ और वातके दोषका विनाश करनेवाले हैं। शालपर्णी (एकरङ्की नामक औषधि), पुल्निपर्णी (पेठवन), दो प्रकारको बृहती (भटकटैया) तथा गोक्षर (गोखरू)-इन पाँचोंको 'लघुपञ्चमूल' कहा जाता है। यह औषधि वात-पित्त-विनाशक तथा ओजवर्धक है। इन दोनों पञ्चमूलोंका संग्रह होनेपर दशमल औषधिका निर्माण होता है। यह औषधि संनिपातिक ज्वरका विनाश करनेमें समर्थ होती है। खाँसी, भास, तन्त्रा और पार्श्वयुल-रोगमें यह अधिक लाभकारी होती है। इन सभी औषधियोंको तेल और पुतर्मे परिपक्त करके केशरोगका निवारण किया जा सकता है।

क्वाथसे चौगुना पानी पात्रमें भरकर उसको आगपर पकाना चाहिये। जब वह चतुर्धांत पानी रह जाय, तब उस क्याधके समान मात्रामें स्नेहिल द्रव्य-पदार्थका पाक तैयार करे। यह स्नेहपांक दूधसे भी तैयार किया जाता है। अत: उस क्याथमें दूधकी मात्रा समान होनी चाहिये। कल्क बनानेके लिये स्नेहकी माजासे औषधिकी माजा चतुर्थात ही सानिकट ही होती है। (अध्याय १६८)

उष्ण जलका पान करनेसे रोगीकी पाचन-क्रिया शुद्ध रहती होती है। पाक समान मात्रामें औषधियोंको लेकर तैयार नस्पके लिये मुद्द होना अपेक्षित है।

> अन्यान्य दोषोंसे सदैव सुरक्षित रखनेके लिये चिन्तनीय स्यूल कर्मेन्द्रियोंके बोच प्राणीको जो प्रकृति अपनी बलवत्ताके साथ विद्यमान रहती है, उसीको आरोग्य कहते हैं। अत: प्राणीको आयुष्मान् बने रहनेके लिये तत्सम्बन्धित आचरण करना चाहिये। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियोंके द्वारा स्वास्थ्य-विपरीत पदाचौंको ग्रहण करता है, वह मृत्युका पात्र बन जाता है। जो चिकित्सक, मित्र और गुरुके साथ द्वेष करनेताला तथा तबुधनेही होता है, जिसके गुल्फ, जान, ललाट, हन (ठोड़ों) और गण्डस्थल भ्रष्ट तथा स्थानच्युत हो जाते हैं, यह व्यक्ति कहा ही कालमें अपने प्राणीका परित्याग कर देता है।

> जिस रोगी चनुष्यको बाधी औछ बैठ गयी हो, जिह्नका वर्ण श्याम यह गया हो, नासिका-भाग विकारयुक्त हो गया हो, दोनों ओह स्थानच्युत और कृष्णवर्णके हो गये हों तथा मुख भी कृष्णवर्णका हो गया हो तो चिकित्सकको चाहिये कि उसका परित्याग कर दे: क्योंकि उसकी मृत्यु

पदार्थीके गुण-दोष और औषधि-सेवनमें अनुपानका महत्त्व

धन्त्रनारिजीने कहा-(हे सुबूत!) अब मैं जरीरके लिये विनाशक तथा तुष्णा और मेदाको दूर करनेवाला है। हितकारी एवं अहितकारी ज्ञान प्रदान करनेके निमित्त अनुष्यन- महाकालि अत्यन्त शक्तिशाली होता है। कलम अर्थात् विधिका वर्णन करता है, उसे आप ध्यानपूर्वक सुनिये। अधिक पानीमें होनेवाला जहहनी चावल कफ तथा पितके लाल साठी चावल वात-पित एवं कफजन्य त्रिदोधोंका दोषका शमन करता है। सफेद साठी चावल प्राय: शीतल,

तत्र स्नेहीपधिविवेकमात्रं यत्र भेषत्रं पटः । मधीबाह्यस्य विजटमक्लिपि यत्र भेषत्रं स मध्यमः।

वृष्णमवस्त्रभीपद्वितदं चिक्कणं च पत्र भेषतं स खरः ।

स्नेहपाकोऽथ कल्के स्वान्युदरङ्गालिलेपिन । व गुहात्यङ्गाले मध्य: शीर्यमाण: खर: स्पृत:॥

जब स्नेहकार्तमें प्रयुक्त औषधि पकाते-पकाते यह सिद्ध हो जाय कि यह एक गायी है अर्थात औषधि कलाग्रीसे लगने लगे तो उसको मुद्-पाक कहते हैं। जब वह करक मोनके समान कडाडोंने फैल जाय और कलशीने चिपके नहीं, तब वह मध्यम-पाक कहा जाता है। जब करक कठिन और कुछ विकम हो जात है तो उसको छर-पक कहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य लोगोंका विचार है कि जब करक औपुलीपर चिपके और उसमें नरमी हो तो वह मद-पान है। जो करक अँगलीया न चिपके और नरम हो, वह मध्यम हवा जो करक प्रकार कठिन हो जाय यह खर होता है।

१-आपूर्वेदमें स्नेहपाकके तीन प्रकार बताये गये हैं-पूट् मध्यम और खर।

१-चेंद्रमुक्अंट २७, मुद्रमुद्रअंद इर्ड, अंदर्सन मुक्रस्ट छ। १२, चेंद्रमुद्रअंदर्भ

भारी और बात, पित एवं कफ-इन तीनों दोषोंको दूर

श्यामाक अर्वात् सौँवौँ अरीरश्लोषक, रूक्ष, वातदोषोत्पादक, कफ तथा पित्रजनित दोषका नियारक है। उसी प्रकार प्रियंगु, नीवार और कोदो नामक अञ्च भी शरीरके दोषोंको दूर करते हैं। यब (जौ) शीवल, कफ और पित्तज दोषका अपहारक होता है। गेहूँ शक्तिशाली, शीतल, भारी, मधुर और वातनाशक होता है। मूँग कफ, पित तथा रक्तको जीतनेवाला, कषाय, मधुर और लघु होता है। उड़द अत्यन्त शक्तिशाली, ओज-वृद्धि करनेवाला, पित-कफ-विनाशक तथा भारी होता है। राजमाप अर्थात् राजमा शुक्रनाशक, पितश्लेष्मकारक और वायुरोगका अपहारक है।

कुलधी प्राणीके धास, हिचकी, सुकारमरी, इदयस्थ कफ, गुल्म एवं वात-दोषको दूर करनेमें समर्थ होती है। मकुष्ठक अर्थात् मकुनी रक्त, पित तथा ज्वरको दूर करनेवास्त्र, शीतल और प्राह्म है। चना पुरुषत्व, रक्त, कफ और पितका अपहर्ता तथा यात-दोषका वर्धक माना जाता है। मसूर मधुर, शीतल, संग्राही और कफ तथा पिनका निवारक है। मसुर-जैसे हो सभी गुणोंकी अधिकता कलाय (मटर)-में भी होती हैं-यह अधिक वायुवर्धक होता है। अरहर कफ तथा पित्त-विनाशक और मुक्रवर्धक है। अलसी पित-वृद्धिकारक और सरसों कफ तथा वायुके दोषका निवासक है।

तिल है भार, मधुर और स्निग्ध-गुणसे युक्त होता है। यह बलवर्धक, उष्ण तथा पित्तकारक भी है। अन्य विभिन्न प्रकारके अत्रोंकी जो प्रजातियाँ हैं, वे बलनाशक, रूस और शीतल होती हैं।

चित्रक, इंगुदी (हिंगोट), कमलनाल, पिप्पली, मधु, सहिजन, चळ्याचरण (गजपिप्पली), निर्गुण्डी, तकारी (जयनी), काशमर्दक और बिल्व-ये कफ-पित तथा कृमिनाशक, लघु और जठराग्निको उद्दीप्त करते हैं। वर्षाभू (पुनर्नवा) तथा मार्कर (मकरा) बात और कफ-दोषका विनाश करते हैं। एरण्ड तिक और रसयुक्त एवं काकमाची (मकोय) त्रिदोपनाशक होता है। चांगेरी कक और वातविनाशक है। सरसों सभी दोषोंसे युक्त होता है। सरसंकि समान कुसुम्भ (बर्रे) भी होता है। राजिका (काला सरसों) वात और पित्तको बढ़ानेवाला है। नाडीच कफ-पित-विनाशक तथा चुचु (पालकीकी जातिका एक हाक) मधुर और जीतल होता है। कमल-पत्र सभी दोषोंका हत्ता और त्रिपुट (मटरकी एक जाति) अत्यन्त वातकारक है। वास्तुक अर्घात् बचुआ भारयुक्त, अतिशय रुचिकारक और कृमिनाशक होता है। इसमें सभी दोषोंको विनष्ट करनेकी क्षमता होती है।

त्पद्रलीय (चौलाई)-का शाक विपनाशक होता है। पालक तथा अन्य इसी प्रकारके लाकोंमें भी यह गुण रहता है। मूलक (मूली) आम-दोषका उत्पादक तथा वात-कफनालक है। जब यह शाक अग्निपर पक जाता है तो सभी दोषोंको दूर करनेमें समर्थ तथा हदय और कण्ठको प्रिय होता है। कर्कोटक (ककड़ी), बैगन, परवल और कौला कुष्ट, मेह, न्वर, श्वास, कास, पित तथा कफके नाशक है। कुन्हड़ा सर्वदोषविनाशक, वस्तिशोधक और म्बादपुरु होता है। कलिंगा (तरबूज) और अलायुनी (लीको) पित्तविनाहिनो और वातकारियो होती है। त्रपुप (खोर) तथा डर्वारूक (ककड़ो-फूट) बात और कफ बद्दानेवाली तथा पित-दोषको दूर करनेवाली है।

वृक्षाम्ल (अमलवेंत) और जम्बीर (नीव्) कफ तथा वात-दोष-निवारक हैं। दाडिम वात-दोषका नाशक तथा स्वादिष्ट होता है। नारंगोके फलमें भारीपनका दोप रहता है। केजर और मातुर्लुग (बिजौरा नीब्) कफ-वात-विनाशक एवं जठराग्निको प्रदीप्त करते हैं। माप (४ड़द) बात और पितका नातक होता है। इसके सेवनसे त्वचाभागमें स्निग्धता आती है और शरीरके अंदर विद्यमान उष्णता तथा यात-दोष विनष्ट हो जाता है। औवला बलकारी, मधुर, रोचक और अम्लाससे युक्त होता है। हरीतको (हरैं) भोजनको भली प्रकारसे पचानेवालो, पुण्यदायिनी अमृतके समान तथा कफ और बात-दोपको दूर करनेमें समर्थ एवं विरेचक है। वहेड़ा भी उसी प्रकारका होता है। इसमें वात, पित्त और कफ— इन तीनों दोषोंपर विजय प्राप्त करनेकी क्षमता होती है। तिन्तिडी (इमली)-फल वात तथा कफका विनाशक, अम्लाससे युक्त और विरेचक होता है।

लकुष अर्थात् बड्हल दोपोत्पादक तथा स्वादयुक्त,

बकुल कफ-वात-विनाशक, बीजपूरक (बिजीरा नीब्) गुल्म, वात, कफ, श्वास और कासरोगोंका नातक है। कपित्य (कैथ) ग्राह्म तथा सभी दोषोंका हरण करनेवाला होता है। पकनेपर यह भारी एवं वियको दूर करनेवाला होता है। पकनेके पूर्व अपने बाल्यकालमें यह कफ और पित्तको उत्पन्न करता है। उसके बाद ग्रीडावस्थामें यह पित्तवर्थक है।

पका हुआ आम¹ वात-दोषको उत्पन्न करनेवाला तथा मांस, बीयं, वर्ण और शक्तिको बदानेवाला होता है। जामुन वात, पित और कफका विनाशक तथा विष्टम्थ-दोषका उत्पादक होता है। तिन्दुक कफ-वातका नाराक और बेर वात तथा पितदोषको दूर करता है। बिल्व विष्टम्थ-दोषमें वात-दोषको बदानेवाला है। प्रियाल (चिराँजो) वातज दोषका नाराक है। राजादन (खिरनो), मोच (केला), कटहल और नारियल स्वादयुक्त, रिनम्थ तथा भारो होते है। ये सभी बीयं और मांसके अभिवर्धक कहे जाते हैं।

प्राक्षा (अंगूर), मधूक (महुआ), खर्जुर (खजूर) तथा कुंकुम बात और रक-दोषको जीठनेवाले होते हैं। मामधी (पिप्पली) माधुर्य-गुणसे युक्त होती है। यह पकनेचर धास तथा पित्त-दोषको दूर करनेमें लेह हैं। आईक (अदरक) रोचक, पृष्टिकारक, अग्निदीपक तथा करू और वात-विनाशक होता है। सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च करू तथा वात-दोषको जीतनेवाले माने गये हैं। लाल मिर्च शरीरको पौष्टिक तत्व देनेमें असमर्थ होता है, ऐसा वैधक-शास्त्रका पत है। हींग गुरूप, जूल तथा मलावरोधको दूर करनेवाली और वात तथा कफकी विनाशिनो है।

यमानी, धनिया और अजाधृत वात तथा कफज दोक्को तीनों दोबोंका नातक अं दूर करनेमें विशेष रूपसे गुणकारी हैं। सेधा नमक लोतोंका शोधक होता नेत्रज्योतिवर्धक, पृष्टिकारक और वात-पित तथा कफ— (मक्खन) ग्रहणी-क्यार इन तीनों दोबोंका शमन करनेवाला माना गया है। सौवर्चल अपहारक है। दूधके वि अर्थात् काला नमक वायु-अवरोधका विनाशक, उष्ण और विकार भारी तथा कुछ इदयशूलका शामक है। विडंग उष्ण, तीक्ष्ण, जूलनातक तकको ग्रहणी, शोध, व तथा वात-दोषका अपहारक है। रोमक लवण वातवर्धक, गुल्मरोगका विनाशक तथ स्थादिछ, रोचक, गलानेवाला और भारी होता है। इसके उत्तम शामक मानते हैं।

द्वारा इदय-रोग, पाण्डु और गलेका दोष दूर हो जाता है। यवश्वर अग्निदीपक है। सर्विश्वार (रेह) पाचक, अग्निदीपक, तोश्य और विदारक होता है।

वर्षाका जल तीनों दोषोंका नाशक, लघु, स्वादिष्ठ विचापहारक है। नदीका जल वातवर्धक, रूक्ष, सरस, मधुर और लघु होता है। वापीका जल वात-कफ-विनाशक तथा पोखरका जल वातवर्धक माना गया है। झरनेका जल रचिकर, अग्निदीपक, रूख, कफनाशक और लघु होता है। कुएँका जल अग्निदीपक, पित्तवर्धक तथा उद्भिन (पातालतोड़ कुओं)-का जल पित्तविनाशक है। यह जल दिनमें सूर्य-किरण और रात्रिमें चन्द्र-किरणसे सम्पृक्त होकर सभी दोषोंसे विमुक्त हो जाता है। इसकी तुलना तो आकाकसे गिरनेवाले जलसे ही की जा सकती है।

गरम जल ज्वर, धास, मेदा-दोष तथा वात और कफ-विनाशक है। जलको गर्म करके ठंडा करनेके पक्षात् वह प्राणीके वात-पित्त तथा कफ—इन तीनों दोपोंका विनाश करता है, किंतु बासी हो जानेपर वहीं जल दोषयुक्त हो बाता है।

गोदुरथ बात और पित्तका विनाशक, स्निग्ध और गुरुवाको रसायन है। भैंसका दूध गोदुरधकी अपेक्षा अत्यधिक भारी, स्निग्ध तथा मन्दाग्नि-दोषका उत्पादक होता है। बकरीका दूध रक्तातिसार, कास, धास तथा कफका अपडारक है। स्त्रियोंका दूध नेत्रोंकी ज्योतिको तीव करनेवाला, जीवनस्वरूप और रक्त-पित्त-विनाशक है।

दही परम गुणकारी होता है। यह वात-दोषको दूर करनेवाला पौष्टिक तथा पित एवं कफका वर्धक है। मट्टा तीनों दोषोंका नातक और उसकी मही (छाछ) रकादिक स्रोतोंका शोधक होता है। नया निकाला गया नयनीत (मक्छन) ग्रहणी-क्वासीर और अर्दित रोगजन्य पोड़ाका अपहारक है। दूधके किलाट (दुग्धविकार विशेष) आदि विकार भारी तथा कुछरोगके कारण हैं। प्राचीन विद्वान् तकको ग्रहणी, शोध, बवासीर, पाण्डुरोग, अतिसार और गुल्मरोगका विनाशक तथा वात-पित एवं कफजन्य त्रिदोषका उत्तम शामक मानते हैं।

युत पौष्टिक, मधुर और वात-पित तथा कफका अपहारक होता है। गोयुत बुद्धिवर्थक और नेत्रज्योति-प्रदायक है। अग्निपर तप्त करनेके बाद तो यह तीनों दोपोंको दूर करनेमें पूर्ण समर्थ हो जाता है। संस्कृत धृतसे अपस्मार-रोगमें होनेवाले उन्माद तथा मुच्छांजनित दोष दर हो जाते हैं। बकरी और भेंड आदिसे प्राप्त होनेवाला युत भी गोदग्धसे तैयार होनेवाले धृतके समान ही गुणकारी होता है। ये घृत कफ तथा वात-विनातक और मृत्रदोषके अपहर्ता तथा सभी प्रकारके कृषि और विचननित दोपेकि निवारक हैं।

तिलका तेल बलशाली, केशमें लगाने खायक, वात और कफका विनाशक, पाण्डल, उदररोग, कष्ठ, अर्थ, शोध, गुरुष तथा प्रमेह-रोगका नाशक होता है। सरसोंका तेल कृपि और पाण्ड्ररोगको दूर करनेवाला तथा कफ, मेदा और वात-दोषका भी नाशक है। अलसीका तेल नेत्रशक्तिको हानि पहुँचानेवाला तथा वात और पितका विनासक है। बहेडेका तेल कफ-पितको दर करनेवाला, केशवर्धक, त्वक और कर्णदोपका निवारक होता है। इसे फ्रिटोफ्का शमन करनेवाला, मधुर और वातवर्धक कहा जाता है। इसके प्रयोगमें हिचकी, श्रास, कृमि, छर्दि, मेह, तृष्णा और विष-दोष भी दूर हो जाते हैं।

'इक्षरस' रक्त और पित्त-दोषनाशक, बलप्रद, पौष्टिक तथा कफवर्धक होता है। इस रसका दूध-मिश्रित बना हुआ सिखरन पित्तवर्धक, उसकी मदिश तीव (उत्तेवक) तथा शर्करा मछलीके अंडेके समान श्रेत और हल्की होती है। इसको खाँड पौष्टिक, स्निग्ध, स्वादिष्ट तथा रक्त-पित्त और बात-दोषपर विजय प्राप्त करनेमें समर्थ होती है। गुड वात-पित्तहर्ता, रूक्ष तथा कफवर्धक होता है। यह पित-विनासक तो है ही, जो गुड पुराना हो गया है, वह अधिक प्रशस्त और पथ्य है। इसके सेवनसे रक्तकी शुद्धि हो जाती है। गृह और शर्करा दोनों रक्त एवं पित-दोषके अपहर्ता, पौष्टिक प्राप्त होनेवाली सभी प्रकारकी मदिराएँ रक्त-पितकारक

तथा तीक्ष्य गुणवाली होती हैं।

माँड और भूना हुआ चावल पथ्य है, यह अग्निदीपक और पाचक होता है। तकके साथ दाडिम, त्रिकटू, गुड, मध् तथा पिप्पलोके मिश्रणसे तैयार किया गया पेय पदार्थ वात-दोष-विनाशक, लघु और वस्तिभागका शोधक है, किंत् मनध्यको इस सन्दर पेयका परित्याग कर देना चाहिये, जो कास, श्रास और नाडी-रोगको बल प्रदान करनेवाला है।

पायस अर्थात खीर कफोत्पादक तथा बलवर्धक होता है। खिचडी बातनाशक है। सुधीत अर्थात् दालका सुप स्तिन्ध, उच्च, लघु और रुचिकर होता है। कन्द, मूल और फलसे तैयार किया गया सुप भारी और पाचक माना गया है। कुछ उच्च सेवन करनेसे वह सुप हल्का हो जाता है और बचाशीप्र पच जाता है। शाकको उवालकर उसे निचोडना चाहिये। तदननार उसको युत या तेलसे संस्कारित करके प्रयोग करना हितकारों होता है।

दाहिम तथा औवलेसे तैयार किया गया सुप हदयको प्रिय आग्निवर्धक और वात-पित-विनाशक होता है। मुलीसे बनाये गर्ने सुपके द्वारा श्वास, कास, प्रतिश्याय तथा कफज दोष दर हो जाते हैं। यव, कोल और कुलधीका रस सुस्वाद तथा वात-विनाशक होता है। मूँग तथा आवलेसे तैयार हुआ सूप ग्राह्म है। यह कफ और पितका विनाश करनेवासा है।

गृहमित्रित दही वातनाशक होता है। सभी प्रकारके सन् रूख एवं बातवर्धक होते हैं। पूड़ी पौष्टिक और पायनमें भारी होती है। मांसयुक्त भोजन बृंहण और भक्ष्यपष्टक (चायल एवं दाल आदिको पासकर बनाया पोता) भारी माना जाता है। तेलमें तलकर तैयार किये गये पिष्टक दक्षिनाशक है। अत्यन्त उच्च मण्डक पथ्य है। शीतल होनेपर इसे भारी माना जाता है।

उक्त द्रव्य- पदार्थीके गुणावगुणका विवेचन करके ही मनुष्यको अनुपानकी व्यवस्था करनी चाहिये। अनुपानके तथा स्नेहयुक्त होते हैं। इसकी मदिरा सब प्रकारसे पिष्ठ- साथ औषधका सेवन करनेसे ब्रम और तृष्णाका नाश स्वत: दोषको उत्पन्न करनेवाली तथा अपनी अम्लताके कारण ही हो जाता है। यथोचित अन्नपान आदि करनेसे प्राणीमें कफ और वात-दोवको दूर करनेवाली है। सौबोर प्रान्तमें कोई रोग नहीं होता। वह सभी रोगोंसे विमुक्त हो जाता है।

विष उष्णतारहित तथा मोरके कण्ठके समान नीले

वर्णका होता है। वह प्राणीके नैसर्गिक वर्णको परिवर्तितः सुँघनेपर नेत्ररोग उत्पन्न हो जाता है। श्रेष्ठ वैद्योंके द्वारा भी कर देता है। इसका गन्ध, स्पर्श और रस तीव्र होता है। यह इसका शमन अत्यन्त कठिन है। कम्पन तथा जैंभाई आदि खानेवाले व्यक्तिके मनको व्यक्ति कर देता है। इसे इसके लक्षण हैं। (अध्याय १६९)

これが知知のこと

ज्वर, अतिसार आदि रोगोंका उपचार

धन्वन्तरिजीने पुनः कहा-वातज्ञ, पितज्ञ, कफज्ञ, देता है। वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, संनिपातज और आगन्तुज-रूपमें आठ प्रकारका ऋर माना गया है। मुस्त (मोधा), तथा वासक (अड्सा)-का क्वाथ एवं कल्क, द्राक्षा और पर्पटक (पितपापड़ा), उशीर (खस), चन्दन तथा उदीच्यनागर बला (वरियारा)-का क्वाथ और कल्कसे सिद्ध घृत सभी (सोंठ)-के सहित जलको पकाकर नैयार किया गया प्रकारके ज्वरोंका विनाशक है। औंबला, हरीतकी और शीतल क्याध ज्वर-जनित प्यासको शान्तिके लिये देना चाहिये।

नागर, देवदारु, धान्यक, बृहतीद्वय और कण्टकारीका क्वाथ ज्वर-रोगीको सबसे पहले देना चाहिये। आरम्बध (अमलतास), अभया (पिप्पलीधूल), मुस्त (मोधा), अतितिका (कृटको) तथा ग्रन्थिक (हरीतको)-द्वारा जलमें पकाकर तैयार किया गया क्वाच उद्वेग, जुल और ज्वरमें हितकारी है। मधुकसार (मधु), सेंधा नमक, वन, कालो मिर्च और पिप्पली-इन सभीको समान मात्रामें जलके साथ महीन पीसकर कपड्छान कर लेना चाहिये। इसका नस्य देनेसे ज्वरके प्रभावसे मूर्व्छित हुआ रोगी होशमें आ जाता है। त्रियुद्धिशाला (निसोत-इन्द्रायण), जिफला, कटुका और अमलताससे बने हुए क्वाथमें सेंधा नमक डालकर उसको पीनेसे सभी प्रकारका ज्वर विनष्ट होता है। सीठ, मोधा, रक्तचन्द्रन, खस तथा धान्यक (धनिया)-से बने क्याथमें शर्करा और मधु मिलाना चाहिये। इसका पान करनेसे तृतीयक (तिजरिया)-च्चर विनष्ट हो जाता है।

रविवारको अपामार्ग (चिचडे)-को जड लाल सुत्रसे वाँधकर कमरमें सात बार घुमाकर बाँधनेसे निक्रित हो इस तिजरिया-ज्यरका नाश होता है। 'यङ्काचा उत्तरे कूले अपुत्रस्तापसो मृतः - (गङ्गाके उत्तरी तटपर पुत्रविहोन तपस्वी ब्राह्मणकी मृत्यु हो गयी है।) कहकर उसे तिलोदक देना चाहिये। ऐसा करनेसे एक आह्रिक ज्वर रोगीको छोड़

गुढ्वो (गिलोय)-का क्वाथ और कल्क', त्रिफला पिप्पली-चिताका क्वाध सभी प्रकारके ज्वरीको विनष्ट करनेवाला है।

इसके बाद अब मैं ज्वरातिसारनाशक औषधिका वर्णन करता है।

पुश्चिपणी (पिठवन लता), बला, बिल्ब, सोंठ, कमल, धान्यक, पाठा, इन्द्रयव, धृनिम्ब (चिरायता), मुस्त तथा पर्पटकसे बना हुआ क्वाध आमातिसार तथा ज्वरको विनष्ट करता है। नागर, अतिबिषा (अतसी या अलसी), मुस्त, भूनिम्ब (चिरायता) और अमृतवत्सकसे बना क्वाथ सभी ञ्चर तथा सभी अतिसार-रोगोंका नाजक है। मुस्त, पित्तपापड़ा और सोंठ-मित्रित दूध भी अतिसार-रोगका विनाश करता है। शालपर्जी, पृश्चिपर्जी, बृहती, कण्टकारी, बला, गोखरू, बिल्व, पाठा, सोंठ तथा धनियाका क्वाथ सभी प्रकारके अतिसार-रोगोंमें हितकारी होता है। बिल्ब और आपको गुठलोके क्वाधका मित्री तथा मधुके साथ सेवन अतिसारका नाशक है। अविसारमें कुटज-वृक्षका छाल भी हितव्यरी होता है। इन्द्रयव, अलसी, सोंठ और पिप्पलीमूलका क्वाब प्रयोग करनेसे आमशुलसे युक्त खुनी अतिसारमें लाम होता है।

अब मैं ग्रहणी-रोगको चिकित्सा कह रहा हूँ। ग्रहणी जठराग्निको विनष्ट कर देती है। चित्रक अर्थात् चित्ताके द्वारा यने हुए क्वाथ और कल्कके साथ पका हुआ पृत ग्रहणी-रोगका विनाशक है। यह गुरुम, शोध, उदर, प्लीहा,

१-कृटकर लुगदी बनानेको करक कहा जाता है।

शुल तथा अर्शरोगको भी नष्ट कर देता है। इसके सेवनसे पेटकी अग्नि प्रदीप्त हो उठती है। सौवर्च (काला नमक), सैन्थव (सेंधा नमक), विद्धंग (लवण-विशेष), उद्भिद (रेह) और समुद्र-फेन — इन पाँचों लवजोंके समान भागमें मित्रित चूर्णका प्रयोग करनेसे लाभ होता है।

शस्त्र, क्षार तथा अग्नि इस त्रिविध विकित्साके द्वारा अर्श-रोगका विनाश होता है। यदि नया तैयार किया हुआ तक्र हो तो उसको भी अर्श-विनाजक ही मानना चाहिये। घीमें भूनी गुहुची, पिप्पली और हरीतकीका चूर्ण अप्ल तथा लवणके साथ रसोतका चूर्ज खानेसे भी यह रोग दूर हो जाता है। तिल और ईखके रसका प्रयोग करनेसे अर्श तथा कुष्ठ-रोगका विनाश होता है। पञ्चकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चल्प, चीता तचा सींठ)-के साथ काली मिर्च और त्र्यूपण (सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च)-का चूर्ज अग्निवर्धक है। सींठ, गुड़ अथवा सेंधा नमकके साथ हरीतकीका चूर्ण निरन्तर खाना चाहिये; क्योंकि यह ऑग्नवर्धक होती है। त्रिफला, गिलोय, बासक, चिरायता, नीमकी साल और नीमकी गिरीका क्वाथ मधुके साथ पान करनेसे कामला तथा पाण्ड्-रोग समाप्त हो जाता है। त्रिवृत, त्रिफला, श्यामा, पिप्पली, कर्करा और मधुनिश्रित बना मोदक संनिपात- ज्वरका विनाशक तथा रक-पित्तन ज्वरको भी नष्ट करता है।

वासक (अङ्सा)-का रस उदरभागमें पहुँचनेपर जीवनकी आशा बनी रहती है। ऐसी स्थितिमें रक्त और पितका क्षय होता है, तब खाँसीके रोगसे व्यक्ति प्राची किसलिये दुखित होता है (अर्थात् वासकके रहते खाँगोंके रोगीको जीवनसे निराश नहीं होना चाहिये।) ऋकंगर्स युक्त साथ अड्रुसेका रस पान करनेसे रोगी रक्तज दोषपर उन्माद, ग्रहणी और अपस्मार-रोगोंका विनाशक है।

सम्बन्धित रोग दूर हो जाता है। अपने ही रसमें भावित, मूल, फल और पत्रसहित निर्गुण्डीका सिद्ध धृत पान करके श्रय-रोगमे श्रीण हुआ रोगी व्याधिरहित होकर देवताओंके समान कान्तिमान् हो उठता है।

हरीतको, साँठ, पिप्पली, काली मिर्च और गुड मिलाकर बनाये गये मोदकको कासनाशक कहा गया है। इसको खानेसे तुष्णा एवं अरुचिका भी नाश होता है। कण्टकारो तथा गुहुचीसे पृथक्-पृथक् निकाले गये तीस-तीस पल रसमें सिद्ध किया गया एक प्रस्थ मृत कासरोगका नाज्ञ और अग्निका दीपन करता है। कृष्णा (काली पवियोंवाली बुलसी), धात्री (औवला), श्रेत सींटका चूर्ण मधुके साथ मिलाकर खाना हिक्का (हिचको)-रोगका विनाशक बन जाता है। जो प्राणी हिचकी और श्रास-रोगके रोगी हैं, उनको विश्वा अर्घात् सीठके साथ भागी (भारंगी)-का रस गरम जलसे पीना चाहिये।

स्वरभेद होनेपर मुखमें तिलक तेलमें सिद्ध खदिर (कर्त्व) का रस रखना लाभप्रद होता है अथवा सींठके साथ हरोतको और पिष्पलीका वूर्ण इस रोगमें लाभकारी है। मधुके साथ विडंग तथा त्रिफलाका चूर्ण वमन-रोगको ट्र करता है। आम और जामुनकी शालका क्वाथ पधुके साथ पान करनेसे सभी प्रकारके बमन नष्ट हो जाते हैं। यह तृष्णाको भी समाप्त कर देता है अथवा इस रोगमें मधुके साथ विफलाचुर्णका ही सेवन करना चाहिये। यह औपपि तो भ्रम और मुच्छको भी दूर कर देती है। गायके दूध, दहाँ, युत, युत्र और गोमयसे बना पञ्चगव्य हितकारी होता है। इसका अनुपान अपस्थार (मिरगी) और मलग्रहादि रोगींकी नष्ट करता है। कुष्माण्ड (कुम्हडा)-का रस ब्रह्मयष्टी तथा जंगली अड्सा और मुद्रीक^र रसका बना क्वाथ पच्च है। युगके साथ पान करनेसे भी उक्त अपस्मार और मलग्रहादिके इसको मिश्रीके साथ पान करनेसे कास, नि:शास और रोग दूर होते हैं। ब्राह्मी रस, वचकुष्ट और शंखपुष्पीके साध रक्तपित्तज दोष विनष्ट हो जाता है। मिन्नी अथवा मधुके प्रयुक्त पुराना मृत प्राणियोंके लिये संख्य है, क्योंकि यह

सफलता प्राप्त कर लेता है। शल्लाकी (सलई), येर अश्वगन्ध क्वाधका कल्क बनाकर उसमें चींगुना दूध जामुन, प्रियाक, आम, अर्जुन और धव नामक वृक्षको डालकर पकाना चाहिये। तदनन्तर उस योगमें घृतपाक छालका क्वाथ दूध और मधुके साथ पान करनेसे रक- वैयार करके उसका सेवन करे। यह घृत वातनाशक, यल-

१-वासायां विद्यमानत्यामात्रायां जीवितस्य च । रक्तियनो अयो कासी कियर्थमवसीदिति ।

२-मृद्धीक-- मुनक्का

मांस-वर्धक और पुत्रोत्पादक होता है। नीलो र और मुण्डोका चूर्ण मधु एवं घृतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे अववा छित्रा (गिलीय)-का क्वाध पान करनेसे वह अत्यन्त असाध्य बात-रक्तको दूर कर देता है। गुड़के सहित हरीतकी आदि पाँच और्याधयोंका सेवन कुछ, अर्श तथा वातरोगका विनाशक है। गुडुचीका रस, कल्क, चूर्ण अचवा क्याथ वात-रक्तरोगका हन्ता है। गुडूची लताके क्याथसे बने कल्कका उपयोग करनेसे कुष्ट और ब्रणरोगका उपशमन होता है। इस कल्कका प्रयोग गोधृत या गोदुग्धके साथ करना चाहिये।

त्रिफला तथा गुग्गुल वात-रक्त और मृच्छांका नाशक है। गोमूत्रके साथ प्रयुक्त गुग्गुल करुस्तम्भ नामक रोगका शमन करता है। सींठ और गोखरूका क्वाय सामवात तथा जुलरोगका विनासक है। दशपूल , हरोतकी, एरण्ड, सम्ब सोंठ और देवदार नामक औषधियोंसे बना हुआ क्वाय काली मिर्च एवं गुड़के साथ संवन करनेपर महाशोधको दूर करता है। कण्टकारी और गुड्बीके पृथक्-पृथक् तीस-तीस पल रसको निकालकर उसमें एक प्रस्थ सिद्ध किया गया भृत कासरोग-विनाशक तथा जतराग्नि-दोपक होता है। काली तुलसी, आँथला, सफेद सींठ, काली मिर्च और सेंधा नमकसे बना हुआ क्वाय एरण्ड-तेलके साथ पान करनेपर वह आमदोष तथा प्रवल वायु-विकारको दूर करता है।

बला, पुनर्नवा, एरण्ड, बृहतीद्वय, कण्टकारी और गोखरूका क्वाथ होंग और संधा नमक मिलाकर पान मधुके साथ त्रिफलाका क्वाध पॉनेपर शूलसे होनेवाला दु:ख दूर होता है। त्रिफलाचुर्ण गोमूत्र और गुद्ध मण्डूर, मधु तथा घृतके साथ याटनेपर त्रिदोपजन्य जूलको विनष्ट करता है।

त्रिवृत अर्थात् निसोधका चूर्ण घृतके साथ पान करनेके योग्य है, क्योंकि यह उदावर्त-रोगका विनाश करता है। त्रिवृत, हरीतको और काली तुलसीकी पत्तीका मिश्रित चूर्ण स्नुहीक्षीर अर्थात् सेहुँड्कं दूधसे भावित करके उससे बनावी गयी बटीका गोमुत्रके साथ पान करनेसे अनाह-रोग नष्ट हो जाता है। त्र्यूषण (सोंठ, पिप्पली और कालो मिर्च), त्रिफला (हरीतको, ऑबला तथा बहेड़ा), धनिया, बिडंग, क्रम (गर्जापप्पली) तथा चित्रक (चिता) नामक औपधियोंके

चूर्णको कल्कसे सिद्ध मृत वातगुरूम-रोगका विनाशक है। दुरधमें प्रयुक्त सोंडके चूर्णका अनुपान हदयगत पीड़ाका नाश करता है। काला नमक तथा उसका आधा भाग हरोतको-चूर्ण गृतमें मिलाकर पान करनेसे भी यह रोग दूर हो जाता है। कणा (पिप्पली), पाषाणभेदी (पधरचट्टा)-के रसमें जिलाजीतका चूर्ण मिलाकर उसको चायलके जल और गुड़के साथ पान करनेसे मूत्रकृष्ट्ररोगी रोग-विमुक्त हो जता है। गिलीय, सोंठ, औवला, अश्वगन्धा और त्रिकण्टक (गोखरू)-का अनुपान वातरोगी, शूलग्रस्त तथा मृत्रकृच्छ्रके रोगोको करना चाहिये। शर्करा अथवा मिन्नीके साथ समान ध्यगमें प्रयुक्त यवश्वार सभी प्रकारके कृष्क्ररोगोंका विनासक है अववा मधुके साथ निदिग्धिका (इलायची)-का रस पान करनेसे भी सब प्रकारके कृष्कुरींग विनष्ट हो जाते हैं।

विफला-कल्कके साथ प्रयोगमें लाये गये सेंधा नमकको भी मुत्राधातका विनाशक माना गया है। मूत्रमें अवरोध होनेपर कर्पूरका चूर्ण लिंगमें प्रविष्ट करना चाहिये। मधुके करनेसे वातशूल विनष्ट हो जाता है। दाह और शूलरोगकी साथ प्रयुक्त आँवलेका रस सभी प्रकारक मेहरोगोंको विनष्ट शान्तिके लिये त्रिफला, निम्ब, मुलेदी, बटुकी तथा अमलतासमें करनेवाला है। त्रिफला, देवदारु, दास्तरूप्दी और कमलमूलका बने क्वाधको मधु मिलाकर पान करना चाहिये। जेठो क्वाध भी मधुके साथ पान करनेसे वह प्रमेहरोगको दूर

शरीरकी पुष्टि चाहनेवाले व्यक्तिको अनिद्रा, मैथुन, व्यायाम तथा चिंताका परित्याग कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे शरीर धीरे-धीरे पृष्ट होने लगता है। यव और सौबी त्रिवृत, काली तुलसी और हरीतकीके पूर्णको क्रमश: खानेबाला प्राणी स्थूल हो जाता है। मधुके साथ जल पीनेसे दो भाग, सार भाग तथा पाँच भाग गुड़-समन्वित करके भी प्राणीके ज्ञरीरमें स्थूलता आ जाती है। उष्ण अन्न अथवा उसकी समान गोलियाँ बनाकर सेवन करनेसे मलकाठिन्य- मौड्युक्त चावलका भोजन करनेसे शरीर कृश हो जाता है। दोष दूर हो जाता है। हरीतकी, यवधार, पिप्पली और गजपिप्पली, जीरा, त्रिकटु, हींग, काला नमक तथा

१-नीली (जील), २-बिल्ब, प्रयोणाक, गम्भारी, चाटला, गणकारिका, जालपर्ची, पृक्तिपर्ची, बृहतीद्वय, कण्टकारी तथा गोखरू – इन दस वृक्षोंके मूल दशमूल कहलाते हैं।

औवलाचूर्ण-समन्वित सत्तृको मधुके साथ पान करनेसे मेदा-विकारका नाश और अग्निका उद्योपन होता है।

चौगुने जल और दोगुने गोमुत्रमें चित्रक नामक औषधिका कल्क पाक करके उसके द्वारा उदररोगीको एक प्रस्य पृत सिद्ध करना चाहिये। तदनन्तर वह दूधके साथ उस पुतका पान करे। ऐसा करनेसे उसकी जठराग्नि उद्योग्त हो उठती है। अनुपानमें दूधके साथ क्रमशः एक-एक पिप्पलीको अभिवृद्धि करते हुए रोगी दस दिनतक उसका सेवन करे. पुन: उसी क्रमसे एक-एक पिप्पलीको घटाते हुए बीसवें दिन मात्र एक पिप्पलीका सेवन करे तो उससे भी उस रोगीकी जठराग्नि प्रबल हो जाती है। पुनर्नवाके क्वाय एवं कल्कसे सिद्ध किया गया युत शोध-रोगका विनाश करनेमें समर्थ होता है। शोध-रोगीको गोमुत्र या गोदुन्धके साच पिप्पली अथवा गुड़के साथ समान भागमें हरीतकी या सोंडका सेवन करना चाहिये।

मनुष्य बला नामक औषधिक रसमें सिद्ध दुधके साथ एरण्ड-तेलका पान करके आध्मान तथा शुलजनित पौडासे युक्त अन्त्रवृद्धिके रोगपर विजय प्राप्त कर सकता है ऑग्नशोधित अरुचक अर्थात् एरण्ड-तेलसे सिद्ध पट्या (शरीतको)-का कल्क, काला नमक एवं सेंधा नमकसे समन्त्रित होकर, अन्त्रबृद्धिरोगका विनातक बेग्रतम योग है।

निर्गुण्डीकी वहका नस्य लेनेसे गण्डमालाका रोग नष्ट हो जाता है। स्नुही (सेहुँड) तथा गण्डारी (कचनार)-वृक्षको छालका स्वेद अर्ब्द-रोगके सभी भेदोंको बिनह करनेमें समर्थ होता है। हस्तिकणं अर्थात् एरण्ड तथा पलाशपत्रके रसका लेप करनेसे गलगण्ड-रोग नष्ट होता है। धन्र, एरण्ड, निर्गुण्डी, पुनर्नवा, सहिजन तथा सरसोंका मित्रित लेप पुराने एवं अत्यन्त दु:खदायी श्लीपद (पीलपाँव)-रोगको दूर करता है। शोधा (हल्दी), अञ्चनक (साँहजना)-वृक्षकी जाल समुद्रफेन तथा हींगका योग विद्रिध नामक रोगका विनासक है।

मधुके साथ शरपुंखा (शरफोंका) नामक औषधि सभी प्रकारके ब्रणोंमें लेप करनेके योग्य होती है अथवा नीमकी पत्तीका लेप भी शोध तथा वर्णोंको सुखा देता है। त्रिफला, खदिर, दारुहरूदी तथा बटबुक्षकी छाल या फलके योगसे बना लेप ब्रणशोधक है। याँष्ट, मधु (मुलेठी) और घीको गरमकर मधुके साथ व्रणमें लेप करनेसे आगन्तु-व्रण नष्ट डो जाता है।

प्राणीमें पित-रक्त-दोषजन्य गरमी होनेपर वैद्यको शीत-क्रिया करनी चाहिये। शरीरके कोष्टमें रक-सञ्चार वाधित होनेपर बाँसके अंकुरकी छाल, एरण्ड-बीज तथा गोखरूका क्वाब मधु सेंधा नमक तथा हींग मिलाकर पान करनेसे ठीक हो जाता है। ऐसी विकृति होनेपर उससे मुक्त होनेके लिये यव, काली मिर्च तथा कुलधीके रसका पान अथवा सँधा नमकके साथ धुना हुआ अन्न या यवागुका पान करना चाहिये।

करङ्ग अरिष्ट (रीठा) तथा निर्गुण्डोका रस स्रणींके कोटाणुओंको नष्ट कर देता है। त्रिफलाचूर्णसे युक्त गृगुलवटी विबन्ध-रीयको दूर करती है। यह ब्रणशोषक और शोधक 🕏 । दुर्वारस या कम्पिलक (कपीला) अथवा दारहल्दीके कल्कसे सिद्ध तेल बचमें लगानेकी ब्रेष्ठ औषधि है।

(अध्याय १७०)

この知識ないい नाडीव्रण, कुष्ठ आदि रोगोंकी चिकित्सा

धन्वनारिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब आप नाडांबण आदि दोषोंकी चिकित्साका श्रवण करें।

नाडी (नाडी)-को शस्त्रसे भलीभौति काटकर व्रण-चिकित्साके समान उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। गुग्गुस त्रिफला तथा त्रिकटुको समान भागमें लेकर सिद्ध किये गये घृतसे नाड़ोमें हुए विकृत क्रण, जूल और भगन्दर नामक रोगपर विजय प्राप्त की जा सकती है। निर्मण्डोंके रससे

सिद्ध हेल नाड़ो-दोष तथा वणको दूर करता है। पामा नामक रोगके उपभेदोंमें यह औषधि पान, अञ्चन और तस्य-विधिसे प्रयोगमें लानेपर गुणकारी होती है। तीन भाग गुग्गुल, पाँच भाग त्रिफला तथा एक भाग काली तुलसीकी पत्तीसे बनायी गर्बी गुटिकाएँ जोध, गुल्म, अर्ज और भगन्दर-रोगसे ग्रसित रोगियोंके लिये हितकारिणी होती हैं।

उपदंश-रोगमें शिश्नके मध्यमें रक्तकी शुद्धि-हेतु शिरावेध

करे तथा शिश्न नष्ट न होवे, अत: उसे पकनेसे प्रयत्नपूर्वक रक्षा करे। पूरपुल, खदिर, परवल, नीमका फल और सरसों तथा कंजाको गोमूत्रमें पीसकर तैयार किया गया लेप गिलीयका क्वाथ पीनेसे उपदंश-दोष समाप्त हो जाता है। एक कड़ाहेमें त्रिफलाको जलाकर स्याही-जैसी राख बनाकर मधुसे प्रयोग करनेपर लाभ होता है। त्रिफला, चिग्रयता, नीम, कंजा तथा खदिर आदिसे बने कल्क अथवा क्वाथके द्वारा सिद्ध किया गया घृतपाक उपदंशको दूर करता है।

प्राणीको [भानसे] हताश हुआ जानकर सबसे पहले उसे शीतल जलसे सिचित करे। तदननार पाकका लेपन तथा कुशकी रस्सीसे भग्न-भागपर बन्धन लगाये। ऐसे भग्न-रोगीको उड्द, मांस, मटरको दाल. उगा हुआ अत्र, भृत, दूध तथा सूप देना चाहिये।

रसोन (लहसुन), मधु, नासा (अड्सा) तथा यृतका करक बनाकर उसको स्थानसे च्युत अथवा टूटी हड्डियोंके जोड्पर लगानेसे बहुत ही शीघ्र सफलता प्राप्त होती है। त्रिफला, त्रिकटु (सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च)-को समान भागमें पीसकर उनके साथ बराबर मात्रामें मिलाया गया गुग्गुल टूटं हुए हड्डीके संधि-स्थानको भी जोड़ देता है।

सभी प्रकारके कुष्ठरोगोंमें रोगीके लिये बमन, रेबन तथा रक्तमोक्षणकी क्रिया लाभकारी है। वस, अङ्स, परवल, नीम तथा बहेईको छालका क्वाथ मधुके साथ पीनेसे वातरोग नष्ट हो जाता है। इस रोगर्मे निसोत, दन्तीफल (एरण्ड-बीज) तथा त्रिफलाके योगमें विरेचन-क्रिया भी करनी चाहिये।

काली मिर्चके साथ मन:शिल (मैनसिल)-का सिद तेल कुष्टरोगका विनाशक है। सभी प्रकारक कुष्टरोगोंमें इस तेलका लेप किया जा सकता है। इस रोगमें पथ्याहार शिव (हरोतको), पञ्चाप्त, गुड़ और भाव है। कंजा-एस (सुगन्धित

ब्रेहतम औषधि है। मैनसिल, विडंग, वागुजो (वाकुची), सूर्यदेवके समान कुष्ठरोगका विनाशी है।

विडंग, एडगज, वच, कुटको, निशा (दारुहल्दी), समुद्रफेन और सरसोंको गोमूत्र तथा अम्लमें पीसकर तैयार किया गया यह लेप ददु नामक कुष्टरोगको चिनष्ट करता है। प्रफुप्ताड (चकवड़)-का चीज, औवला, सर्जरस (विरोजा या लाख), स्नुहो (सेहुँड़) और सौबीर (बेर)-का पिसा हुआ लेप सभी प्रकारके ददुरोगींको दूर करनेवाला श्रेष्ठ औषध है। कांजीके साथ अमलतासकी पतियोंका तैयार लेप दहु, किट्टिम तथा सिध्म (सेहुवाँ) नामक कुछाँका विनाश करता है। वकुचीका उच्या क्याध सेवन करके दूध पीनेसे भी कुष्ठरोगपर विजय प्राप्त की जा सकती है। तिल, यृत, त्रिफला, औद, व्योप (त्रिकटु), भिलावा तथा क्तकंश-ये सभी सात ओपधियाँ समान भागमें मिलाकर सेवन करनेसे पुरुषत्वमें वृद्धि होती है। ये पवित्र और कुष्ठरोग-नाशक है।

मधुके सहित विद्या, त्रिफला और काली तुलसीके चूर्णका अवलेह कुष्ट, कृमि, मेह, नाडोवण एवं भगन्दर नामक रोगोंका विनाश करता है। जो मनुष्य कुष्ठरोगी हो, उसे हरातकी, नीम, कुटको, औंबला तथा दारुहल्दीका सेवन करना चाहिये। औषधि लेनेके बाद प्राय: एक मासपर्यन्त ऐसा व्यक्ति शीघ्र कुष्टरोगसे विमुक्त हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं। उष्ण मक्खन, कुम्भ (गुग्गुल), मुलक (अदरक), खदिर (कत्था), अक्ष (बहेड़ा), आँबला तथा चम्या नामक योगसे भी कुष्ठका विनाश होता है। यह औषधियोंका एक रसावन है।

आँवला, खदिर और वकुचीके क्याधका पान करके मनुष्य शंख्र एवं चन्द्रमाके समान श्रेत श्रित्ररोगको शीघ्र ही बालुका नामक लता), गर्जापप्पली तथा कुष्ट (कूट)-के नष्ट कर देता है, इसमें संदेह नहीं है। भल्लातक (भिलावें)-रसको गोमूत्रके साथ कुष्ठरोगर्मे प्रलेप करनेसे लाभ होता के सिद्ध तैसको एक मासपर्यन्त पानकर प्राणी इस कुष्ठ-है। तेलमें करवीर (कनेर)-के मूलका पाकसिद्ध उक्टन रोगपर विजय प्राप्त कर लेता है। जो खदिरमिश्रित जलका भी कुष्टनाशक है। हल्दी, चन्दन, रास्ना, गुढ़ूची, एडगज यथाविधि सेवन करता है, उसे कुष्टरोगपर विजय प्राप्त हो (तगर), अमलतास और करञ्जका लेप कुष्टविनाशक जातो है। मलपू अर्थात् कटूमर नामक वृक्षकी छालसे बने

क्वाथके द्वारा ख़ैंके गये सोमराजी (वकुची)-के फलोंका चूर्ण प्रतिदिन एक कर्ष मात्र बहेड़े और अर्जुन नामक वृक्षसे बने क्याथके साथ लेना चाहिये। किंतु नमक खाना इस कालमें निषद्ध है। इस और्याधके उपचारसे श्रिजरोग विनष्ट हो जाता है। रोगीको इस औषधिका पान करते हुए शरीरपर स्थित सफेद चकत्तोंपर अपराजिता (श्रेफालिका)-की लताका लेप लगाना चाहिये। अड्रूसा, गुडूची, त्रिफला, परवल, कंजा, नीम, अशन तथा कृष्णवर्णको वेत्रलताका क्वाच एवं कल्क-रूपमें पकाकर उससे जो चृतपाक सिद्ध होता है, उसको 'वज्रक घृत' कहते हैं। इसके सेवनसे रोगी रोग-विमुक्त होकर सौ वर्षोंकी आयु प्राप्त करता है।

दूर्वाके रसमें उससे चौगुना तेल पकाकर औषधिरूपमें उसको शरीरमें लगाना चाहिये। इसके मालिशसे कच्छ. विचर्षिका और पामा नामक कुष्टरोग विनष्ट हो जाते हैं। हुम (पारिजात)-की छाल, मन्दार, कुष्ठ, लवण, गोमृत्र, गम्भारी (श्रीपणी) तथा चित्रक (एरण्ड) नामक औषधियीका सिद्ध तेल कुष्टरोगके ज्ञण-विकारोंको विनष्ट कर देता है।

ऑबला, निमकौरी, गोमूत्र, अङ्ग्रा, गुड्ची, पितपापङ्ग, चिरायता, नीम, भूंगराज, त्रिफला, कुलयी और मधुका क्वाथ अम्लपित-रोगका विनाशक है। त्रिफला, पटोल और कटुकीका क्याध शर्करा तथा जेटी मधुके साथ पान करनेपर ज्वर, छदि एवं अम्ल-पित्तजनित अन्य विकार नष्ट हो जाते हैं। वासायुत, तिक्तयुत और पिप्पलीयुवका प्रयोग अम्लपित- विकारमें करना चाहिये। गुड़ और कुम्हड़ा खानेसे भी लाभ होता है।

मधुके साथ पिप्पली अम्लपितका विनाश करती है। हरीतको, पिप्पली तथा गुड़का बना हुआ मोदक उलेप्प एवं अग्निमन्दताके दोषको दूर करता है। जीरा और धनियाको समान भागमें पीसकर एक प्रस्थ घृतमें उन दोनोंका विपाक बनाना चाहिये। यह पाक कफ, पित, अरुचि, मन्दाग्नि तथा वमन नामक दोयोंको दूर करता है।

पिप्पली, गुडूची, चिरायता, अड्सा, कटुकी, पिश्रपापड़ा, खैर और लहसुनसे बना क्वाथ विस्फोट (फोड़ा-फुंसी) तथा ज्वररोगका विनाशक है। निसोतके साथ त्रिफलाके रस-मित्रित यृतका अनुपान औतीकी सफाई और विसर्प नामक रोगकी शान्ति कर देता है। खदिर, त्रिफला (हरड़, ऑवला, बहेड़ा), कटुको, परवल, गुडूचो और अड्साके द्वारा बना क्वाथ 'अष्टक क्वाथ'के नामसे प्रसिद्ध है। इसके सेवनसे रोमान्तिक तथा मसूरिका रोग दूर हो जाते हैं।

लहसुनके चूर्णको धिसनेसे कुष्ट, विसर्प, फोड़ा तथा खुजली आदि चर्मरोगोंका विनाश होता है। इसके द्वारा धिसनेसे शरीरका मस्सा भी नष्ट हो जाता है। चर्मकील, पुराने एवं बढ़े हुए मस्से, तिल तथा अनुपयुक्त बालोंको ज्ञस्यसे काटकर निकालनेके पश्चात् क्षार अथवा अग्निके द्वारा उक्त रोगके रारीरस्थ भागको दग्ध कर देनेका भी विधान है।

परवल और नीलका लेप जालगर्दभ-रोगको बिनष्ट करता है। युक्राफल तथा भृंगराजके रससे सिद्ध तेलके द्वारा कण्ठ-विकार, खुजली, अत्यन्त कष्टदायक कुष्ट और वातरोगोंका विनाश होता है। धन्र या आमकी गुउली, त्रिकला, नील तथा भूगराज— इन औषधियोंके योगसे सिद्ध कांडीयुक्त लौहमूर्ण प्राणियोंके पक्रनेवाले क्षेत वालोंको काला करनेमें समर्थ हैं। श्रीरी (ख्रिरनी) और शार्कपर्ण (लोध)-का रस दो प्रस्थ तथा मधुका (मुलेडी) एक पल लेकर उसमें एक कुड़ब अर्थात् बारह पसर सिद्ध किया गया तेलका नस्य भी बालोंको पकने नहीं देता।

मुखमें रोग होनेपर त्रिफला-चूर्णका गण्डूप अर्थात् कुल्ला करना चाहिये। यरका थुआँ, यृत या तिलादिके तेलका दोषक जलानेसं एकत्र धुएँमें यवश्चार, पादा, व्योष (सोंठ, पिप्पली तथा काली मिर्च)-के रसको मिलाकर अञ्चन बनानेका विधान है। इस अञ्चनको नेत्रोंमें लगानेसे नैत्रदोष नहीं होता। यदि तेजोद, त्रिफला, लोध और विताका चूर्ण मधुके साथ मुँहमें रखा जाय तो कण्ठ, दाँत और मुँहका रोग दूर हो जाता है। पटोल, नीम, जामुन, मालती तथा आमके नवीन पल्लखोंका क्वाथ मुख धोनेकी ब्रेष्टतम औषधि है।

लहसुन, अदरक, सहिजन, भूगराज, मूली, रुदन्ती (महामांसी)-का गुनगुना रस कर्ण-रोगको दूर करनेका

उत्तम उपचार है। कानमें अत्यन्त तीव्र पोड़ा, शब्द और दाक्षा, लीहचूर्ण और सेंधा नमकको भृंगराजके रसमें मैल निकलनेपर सँधा नमकके सहित वस्त अर्थात् बकरेका चिसकर बनाया गया घुटिकाञ्चन अन्धता, त्रिदोयजन्य मूत्र गरम करके उसमें डालना चाहिये। जातिपत्र अर्चात् जाविश्रीके रससे सिद्ध तेलपाक पृतिक (दुर्गन्धवुक्त) कानमें डालना चाहिये। सोंठके चूर्णसे सिद्ध गुनगुना सरसीका तेल कानमें उठनेवाले शूलका विनाशक है।

पञ्चमूलसिद्ध दूध, चित्ता और हरीतकी, युत तथा गुह एवं यडङ्ग जूसका योग पीनस-रोगको शान्तिके लिये है। इस रोगमें इन योगोंमेंसे किसी एक योगसिद्ध औषधिका प्रयोग करना चाहिये।

नेत्र-दोष, कुक्षि-विकार, प्रतिश्याय (जुकाम या सर्दी), व्रण तथा ज्वर होनेपर पाँच दिनोंतक लंधन करनेका विधान है। ऐसा करनेसे ये पाँचों रोग शान्त हो जाते हैं। आँवलेका रस नेत्रमें डालनेसे विकार दूर हो जाता है अथवा मधु और सेंधा नमकके महित शोधाञ्चन नामक सहिजन तथा दारुहल्दीका अञ्चन लगानेसे भी लाभ होता है। इल्दो देवदार, सेंधा नमक, हरोतकी तथा गॅरिक पीसफर उसका लेप नेत्रोंके बाह्य भागमें लगाना चाहिये। यह नेत्ररोग-विनाशक है। यूतमें भूनों हरीतकी, त्रिफला दूधके साथ लेप करनेके पश्चात् गुनगुनी एवं पिसी सीठ, नीमकी पत्नी, धोडा-सा सेंधा नमक, दूध और त्रिफलाचुर्णको नेत्रॉपर लगाना चाहिये। ऐसा करनेसे नेत्रोंकी सूजन, खुजलाइट और पीड़ा समाप्त हो जाती है। हरीतकी, बहेहा तथा गृहुची नामक औषधियोंको क्रमश:--मात्रामें एक भाग, दो भाग और चार भाग लेकर मधु एवं घृतके साथ सिद्ध किया गया लेह या क्वाथ सभी प्रकारके नेत्र-रोगोंका विनाशक है।

चन्दन, त्रिफला, सुपारी तथा पलाशकी जड़को जलमें पीसकर बनायी गयी बतीका प्रयोग आँखेंकि समस्त तिमिर-रोगोंको दूर करता है। दहीके साथ अत्यधिक धिसी गयी काली मिर्चका अख़न रतींथी नामक रोगको दर करता है। प्रिफलाके क्वाथ एवं कल्कसे सिद्ध धृतपाकको गुनगुने दुधके साथ सार्यकाल पान करनेसे अन्धदर्शन तथा रतींधीका विकार यथाशीच्र विनष्ट हो जाता है। पिप्पली, त्रिफला, तिमिरता, धुँधलाहट तथा अन्य सभी प्रकारके नेप्र-सम्बन्धित रोगोंका विनाशक है।

त्रिकटु, त्रिफरना, सँधा नमक, मैनसिल, रुचक⁴, शंखनाभि (कबूर), जातीपुष्प (मालती), नीम, रसाञ्चन (रसीत) और भृंगग्रजको भृत, मधु तथा दुग्धमें पीसकर बनायी गयी वटी समस्त नेत्रविकारोंकी विनाशकारिणी औषधि है।

एरण्डकी जड़को जलाकर कांजीके साथ सिरमें लेप करने अथवा मुचुकुन्द-पुष्पके प्रयोगमे शीग्र ही सिर-पीड़ा द्र हो जाती है।

शतमृली , प्रण्डम्ल, चक्रा (कुटकी) तथा व्याप्री (कण्टकारी)-को एक-एक पल एकत्र करके उनसे सिद्ध क्याथ, तेलपाकका नस्य वात और क्लेब्सजन्य तिमिर तथा कर्जरोगका विनास करता है अथवा नमक, गुढ़ और सीठ या पिप्पली एवं सेंधा नमकका योग भुजस्तम्भ आदि सभी करीरके उध्वंधागबाले रोगोंमें लाधकारी होता है। सूर्यावर्त-रोगमें नस्वकर्मका उपधार प्रशस्त माना गया है। ऐसेमें पूत एवं सेंधा जमकसे वुक्त दशमूलके क्वाधका नस्य लेना वाहिये। यह अङ्गभेद, सूर्यांवर्त तथा शिरोव्याधिके दु:खोंको दूर करता है।

कातरक-दोषसे पीड़ित स्त्रीको दही एवं मधुके साथ काला नमक, जीरा, महुआ और नीलकमल पीसकर पान करना वाहिये। पित्त-विकार होनेपर अड्सा अथवा गुडुचीका रस लाभकारी है। मधुके साथ जलमें पकाये गये औंबलेके बीजोंका कल्क, अहसा तथा श्वेत दुर्वाका रस अथवा औवलेके साथ मधु और कपासकी जड़का रस चावलके धोवनमें पीनेसे पाण्डु एवं प्रदर-रोग शान्त हो जाता है।

तण्ड्लीयक मूल अर्थात् चौराई तथा रसौतको पीसकर मधु एवं चावलके धोवनमें पीनेसे सभी प्रकारका रकप्रदर-रोग विनष्ट हो जाता है। चावलके जलके साथ पन किया गया कुशका मूल भी रक्तप्रदर-रोगका विनाशक है। (अध्याय १७१)

ANT THE PRINTERS

स्त्रियोंके रोगोंकी चिकित्सा, ग्रहदोषके उपाय, ऋतुचर्या तथा पथ्यकारक सर्वीषधियाँ

रोगोंको चिकित्साका वर्णन करूँगा। उसे आप सुनै। को अलग-अलग पीसकर नाभि, पेड़ तथा योनिभागमें लेप स्त्रियोंके योनिभागमें होनेवाले रोगोंको दूर करनेके लिये करनेसे स्त्रीको सुखपूर्वक प्रसव होता है। मदार या उन्होंको प्रशस्त माना जाता है।

वच, उपकृष्टिका (काला जीरा), जतीफल (जायफल), कृष्णा (काली तुलसी), वासक (अइसा), सैन्यव (सेंधा नमक), अजमोदा (अजवाइन), यवश्वार, चित्रक तथा शकराको पीसकर सभीको मिश्रित करके भीमें भूनकर जल या दुधके साथ सेवन किया जाय तो स्विवीको योनिके पार्श्वभागमें होनेवाला शुल, हृदयरोंग, गुल्म और अर्श-विकार दूर हो जाता है। बेरकी पश्चिमोंको पोसकर योनिभागमें लेप करनेसे उसकी वेदना सान्त हो जाती है। लोध और तुम्बीफलका प्रलेप योनिको दढ एवं संकृषित बनाता है।

परलव और मधुर्याष्ट तथा मासतीपुष्पका अग्नि वा सूर्यको | सिये उचित होता है। बच्चेको नाधिमें सूजन आ जानेपर गर्भोमें सिद्ध पृतपाक रक्तप्रदर एवं योनि-दुर्गन्थका विनाशक उसको अग्निमें गरम की गयी मिट्टीसे सेंकना चाहिये। है। कांजोमें जपापुष्प (अइहुलके फूल), ज्योतिष्मती-दल, मालकेंगनीकी पत्ती (दुर्वा) और वित्रकको पीसकर शर्कराके विका (सींट)-के चूर्णको मधु आदिके साथ चाटना या साथ पान करनेसे भी योनिरोग दूर हो जाता है।

करनेपर वह स्त्रीके रजोदोषको दूर करता है। ऋतुकालमें लक्ष्मणा (क्षेत कण्टकारी)-की जड़को दुग्धके साथ पान करने या नस्य लेनेसे स्त्रीको पुत्र तत्पन्न होता है। बाई सेर दुग्ध और सवा सेर युतमें सिद्ध अश्वगन्धाका रस सेवन करनेसे भी स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति होती है। युवके साथ व्योष (सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च) तथा केसरके चुर्णका सेयन करके तो वन्थ्या स्त्री भी पुत्रवती बन जाती है।

कुश, काश, एरण्ड और गीखरूकी जड़को पीसकर उनके ही द्वारा सिद्ध गोद्ग्ध एवं शर्कराका पान करनेसे गर्भिणी स्त्रीके उदरभागमें होनेवाला शुल शान्त हो जाता है। पाठा (पादा), लाङ्गलि (कलियारी), सिंहास्य (कचनार),

धन्वन्तरिजीने कहा-हे सुत्रुत! अब मैं स्त्रिवोंके मयूर (चिचहा) और कुटज (गिरिमल्लिका या कुरैया)-बहुत-से कर्म हैं, किंतु जो कर्म वातदोष-नाशक हैं. बकुलकी जड़का लेप प्रसुता स्त्रीके हृदय, मस्तक और वस्ति (पेड्)-भागमें होनेवाली पीड़ाका हरण करता है। ऐसी स्थितिमें स्त्रीको दही अथवा गुनगुने जलमें यवक्षारको मिलाकर पीना चाहिये। दशमूलके क्वाथसे सिद्ध वृतपाक भी प्रसुता स्त्रीकी पीड़ाका विनाशक है। दुग्धके साथ सादी चावलका वूर्ण सेवन करनेसे प्रसूता स्त्रीको दूध होने लगता है। विदारी, कन्द, सतावर तथा कपासके बीजोंका योग भी प्रमुताके दुग्धवृद्धिमें सहायक है। स्तनशोधनके लिये प्रसुता स्त्रियोको मुँगका जुस पीना चाहिये।

कृट, वच, हरोतको, ब्राह्मो, डाक्षाफल, मधु और षुतका योग रंग, आयु तथा सौन्दर्यवर्धक होता है। इन सभी औषधियोंका लेह बालकको चटाना चाहिये। स्तनजन्य पीपल, बट, पाकड, गुलर और आम-इन पीचोंके दशका अभाव होनेपर वकरी अथवा गायका दृग्ध वालकके वयन, खाँसी और ज्वर होनेपर मुस्त (नागरमोधा) तथा क्वाय बनाकर पीना चाहिये। नागरमोथा, सोंठ, गूलर, बिल्ब आँवला, रसौत तथा हरीतकीका चूर्ण जलके साथ पान और कुटज (कुरैया) नामक औपथियोंका रस अतिसाररोगका विनास करता है।

> ब्योष (सोंठ, षिप्पली और काली मिचं), बिजौरा नीब् तथा मधुके योगसे हिचकी और वमनरोग दूर होते हैं। कुष्ट (कुट), इन्द्रयव, सरसों, इल्दी तथा दुर्वारससे कुष्टरोगपर सफलता प्राप्त की जा सकती है।

> महामुण्डिनिका (महाश्रावणिका) तथा उदीच्य (हीवेर या चोपचीनो)-के क्वाथसे स्नान करनेपर ग्रहका दोष दर हो जाता है। प्रहदोष होनेपर शरीरमें सप्तपर्णी, हल्दी और चन्दनका लेप करना चाहिये। राख, कमलगट्टा, रुद्राक्ष, वच तथा लीह आदि धारण करनेसे भी ग्रह-दोष दूर होता है। बालकॉपर ग्रह-दोषका प्रभाव होनेपर निम्न मन्त्रसे

> उसकी शान्तिका प्रयास करना चाहिये- 'ॐ के टे गं गं

तथा बलि प्रदान करनेसे अरिष्ट ग्रह शान्त हो जाता है। बलि प्रदान करते समय निम्न मन्त्रका उच्चारण करे-

'ॐ ह्री बालग्रहाद् बलि गृहीत बाले मुझत स्वाहा।'

चावलके धोवनमें शिरीपं-वृक्षकी जड़ पोसकर पीनेसे विष-दोष दूर हो जाता है। चायलके ही पानीमें मिलाकर पीसे हुए श्वेत फुलवाले वर्षाभू (पुननंवा)-का रस सर्पर्दशके विषको दूर कर देता है।

दही, चृत. चौराई, गृह-धूम, हल्दी, मधु तथा सँधा नमकको पीसकर पीना विचनाशक है। युत-मित्रित सिंहोस्की जड़का क्वाथ पीनेसे भी विष-दोष दूर हो जाता है।

जो औषधि वृद्धावस्थाको दूर करनेका सामर्व्य रखती है, उसको रसायन कहा जाता है। रसायनको अधिलापा करनेवाले लोगोंको वर्षा आदि ऋतुओंमें यथाक्रम सेंधा नमक, शकेरा, सोंठ, पिप्पली, मधु तथा गुड़के साथ हरीतको नामक औषधिका प्रयोग करना चाहिये. अर्थात् वर्षाकालमें सेंधा नमक, शरकालयें शर्करा, हेमनाकालयें सोंठ, शिशिरकालमें पिप्पली, वसन्तकालमें मधु तबा ग्रीध्मकालमें गुड़के साथ हरीतँकीका सेवन प्राणियोंके लिये रसायनका कार्य करता है।

ज्यरकी समाप्तिपर व्यक्ति एक हरीतको, दो वहेडा, चार आँवला, मधु और धृतका सेवन करके सी वर्षतक जीवित रहता है। दूध तथा पृतके साथ अस्वगन्धा नामक औषि तो प्राणियोंके शरीरमें होनेवाले सभी रोगींका विनाश करती है। मण्डकपणी और विदारीकन्दका रस अमृतके समान है। मनुष्य तिल, आँवले और भूंगराजके सेवनसे शतायु बन जाता है। जिकटु, त्रिफला, चित्रक, गृहची, शतावरी, विहंग और लीहचूर्ण पधुके साथ मिलाकर खाना सभी रोगोंका विनाशक बन जाता है। जिफला,

वैनतेयाय नमः', 'ॐ हों हां हः'—इस मन्त्रसे माजन करने पिप्पली, सोंठ, गुड्ची, शतावरी, विडंग तथा भूंगराज आदिका सिद्ध रस भी सभी रोगोंको विनष्ट करनेकी त्तकिसे सम्पन्न होता है। एक भाग ज्ञतावरी तथा दस भाग दुग्धसे कल्क बनाकर शर्करा, पिप्पली और मधुसे युक्त मृतपाक अत्यन्त पीष्टिक होता है।

चिकित्सामें प्रतिमर्ष, अवपीड, नस्य, प्रवपन तथा श्चिरोविरेचन-ये पाँच कर्म कहे जाते हैं। क्रमश: माध आदि प्रत्येक दो मासको एक ऋतु होती है। इस प्रकार एक वर्षमें छ: ऋतुर्ऐ होती है। इन सभी ऋतुओं में अग्निसेवन, मधु, दूध और दहीके विवर्त आदिका सेवन करना चाहिये। मनुष्यको शिशिर-ऋतुमें स्त्रीके साथ रहना चाहिये। बसन्त-ऋतुमें दिनमें सोना उचित नहीं है। वर्षा-ऋतुमें दिवा-निद्रा तथा शरत्कालमें चन्द्रकिरणीका सेवन मनुष्यके लिये त्याच्य है।

साठी चावल, मुँगको दाल, वर्षाका जल, क्वाथ और दूध परम हैं। नीम, अलसी, कुसुम्भ, सहिजन, सरसी, ञ्योतिष्मती तथा मूलीका तेल भी प्राणीक लिये पथ्य माना गया है। ये कृषि, कुछ, प्रमेह, वात, स्लेक्पन दीप और धिरमें होनेवाली पीड़ाका नात करते हैं।

अनार, औवला, भेर, करींदा, चिरींजी, नीबू, नारंगी, आमदा और कपित्य नामक फल भी पथ्य हैं। किंतु ये पिचवर्धक और अग्निविवाहक है तथा इनसे कफजनित दोष होता है। जल, नागरमीधा, इधुरस और कुटक मल-मुत्रके अवरोधको दूर करनेमें समधं होते हैं।

धामार्गव अर्धात् धिया तरोईको सदैव वमनके रोगमें सेवन करना चाहिये। पूर्वाहुकालमें चमन करनेके लिये वचके साथ खैर और इन्द्रयवका सेवन लाभप्रद है। पितदीष होनेसे प्राणियोंका अज़ादिक कोष्ट सबल नहीं रह पाता। उनमें एक प्रकारकी मधुरता रहती है। वात और

t-शिरीयोविषद्वानाम् (चरक संत)।

२-वर्षाभू या पुरर्नवाका तारपर्य धमरवरुवा नामकी प्रसिद्ध औषधिसे हैं। इसका फूल क्षेत्र होता है। इसको पत्तियोंकी आकृति पुनर्नवाके समान होती है। इन दोनोंकी परियोमें अन्तर इतना है कि पुनर्नजाको परियों होटी और धमरवरआको परियों बड़ी होती है। वर्षाकालमें पुतर्वक्षके समान ही यह औषधि भी अधिक चर्चा जाती है। मुलत: से यह पुतर्वकाका एक उपभेद ही है।

३-लाभो पाथो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्। (सुरु में० सुरु अरु १)

६-कुसुम्भ (को)। ४-४० थि० १। ५-तितिर, वसना, ग्रीम, वर्षा, तस् और हेमना।

कफदोषका आश्रय मिलनेसे उसमें दोष अधिक हो आ जाते हैं। वात, पित्त और कफ-इन त्रिदोषोंको समान स्थिति रहनेपर उन कोश्लोंकी क्षमता मध्यम रह जाती है। (उस स्थितिमें न तो उनकी कार्य-क्षमतामें शिधिलता रहती है और न उनमें दोषोंकी क्षमताकी अधिवृद्धि। शरीरके अंदर स्थित कोष्ठका कार्य चलता रहता है।) पिचदोष होनेपर निसोतका सेवन ऋरके विरेचन करना चाहिये। सेंधा नमक, सोंठ, निसोत, हरीतकी तथा विडंगको गोमुत्रसे सिद्धकर शर्करा और मधुके साथ सेवन करनेपर विरेचनमें अधिक लाभ होता है। वातदोषके प्रबल होनेपर उत्पन्न हुए दोबॉर्म रोगीको एक भाग एरण्ड तेल और दो भाग जिफलाका क्याथ पान कराकर वमन कराना चाहिये।

छ: अंगुल, आठ अंगुल या बारह अंगुल लम्बी बाँस आदिको नेत्रि अर्थात् पिचकारी बनाकर और उस पिचकारीमें ककंन्य (बेर)-फलके समान छिद्र करके रोगीको उत्तान सुलाफर बस्ति-क्रिया करनी चाहिये। निरुद्धान या निरुद्धवस्तिके प्रयोगमें भी यही विधि कही गयी है। इन दोनों विधियोंमें औषधियोंकी मात्रा आधा पल, तीन पल उचा छ: पष्ट होनों चाहिये। इसी मात्राको क्रमश: लघु, मध्यम तथा उत्तम कहा जाता है। इस वस्ति-विधिमें ज्ञतावरी, गृङ्ची, भृंगराज तथा सिन्धुवार आदिके रसमें भावित हरोतकी एक भाग, बहेडा दो भाग और औवला चार भाग होना चाहिये। ये औषधियाँ उदररोगकी पीडाको समाप्त कर देती हैं। (अध्याय १७२)

かの対けははいかい

मधर, अम्ल और तिक्त आदि द्रव्योंका वर्ग तथा उनका औषधीय उपयोग

धन्यनरिजीने कहा-हे मुद्दत! अब मैं रोग-विनाशक मधुर आदि गुणींसे युक्त दर्जाका वर्णन करूँगा। लवनकी अधिकतासे यह द्रव्य-वर्ग लावण कहलाता साठी चावल, गेहैं, दूध, घठ, रस, मधु, सिंघाडेकी गृदी, जौ, कशेर, फुटनेवाली ककडी, गोखरू, गम्भारी, कमलगद्दा, द्राधाफल, खजूर, बला, नारियल, इश्, सताबर, विदारीकन्द, चिराँजो, मुलेठो, तालफल और कुम्हडा- यह मधुर द्रव्योंका मुख्य वर्ग है।

इन द्रव्योंका यह वर्ग मुच्छा और प्रदाह नामक रोगोंका विनाशक तथा जिहादि सभी छ: इन्द्रियोंका आहादक है। इस वर्गके एक भी पदार्थका अत्यधिक सेवन करनेसे प्राणीके शरीरमें कृषि तथा कफजनित रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जब श्रास, खाँसी, मुखल्याधि, माधुर्य-दोष, स्वरचात, अर्थुद, गलगण्ड और श्लीपदका रोग हो तो गुडसे बने लेपादिका प्रयोग करना चाहिये।

अनार, आँवला, आम, कपित्थ, करींद, विजीस नीबू, आमडा, बेर, इमली, दही, मद्रा, कांजी, बढ़हल, अम्लबेत, अम्ल, सेंधा नमक, सोंठ तथा जीराका वर्ग जठराग्निका उद्दीपक और पाचक होता है। यह वर्ग स्वेदकारक, वातवर्धक, कामोद्दीपक, विदाहकारक और अनुलोमी है। इल्दी, इन्द्रयव, स्वादुकण्टक (भुईकुम्हड़ा), वेतलता, इस वर्गमें संनिहित रहनेबाले अम्ल-पदार्थका अत्यधिक सेवन करनेसे दाँत सिहरने लगते हैं, शरोरमें शिथिलता आ जाती है तथा कण्ठ, मख और हृदयमें दाह होता है।

सैंधव, सुवर्वल, यवधार तथा छजी आदि लवण हैं। है। यह जरीर-शोधक, पाचक, स्वेदकारक, हाथ-पैरमें येवाई तथा सुन्नली आदिका विकारोत्पादक है। इनमेंसे एक नमकका सेवन भी मल-मुत्रादिक मार्गीमें अवरोध तच्च अस्य-पञ्जादिको शक्तियोंको कोमल कर देता है। लवणजन्य रस शरीरमें खुजलाहर, कोष्टकोंमें शोध तथा विवर्णता- जनक है। उसके दुखभावसे रक्तवातज, पितरक्तव, कामोद्दीपन और इन्द्रियजनित पीड़ाके उपद्रवकी उत्पत्ति भी होती है।

व्योष (सोंट, पिप्पली, काली मिर्च), सहिजन, मूली, देवदारु, कुष्ट (कृट), लहसुन, बकुची, नागरमोथा, गुग्गुल, सांगुली आदि औषधियोंका वर्ग कड्आ, अग्निदीपक, रुरीर-शोधक, कुछ, खुजली, कफ, स्थूलता, आलस्य तथा कृमिदोषका विनाशक एवं शुक्र और मेदका विरोधी है। इस वर्गको एक भी औषधिका अधिक सेवन करनेसे वह भ्रम एवं विदाह उत्पन्न करता है।

कृतमाल (केवडा-सोमालिका), करीर (वंशांकुर), बृहतोद्वय, श्रोखनी (चोरपुष्पी), गुहची, द्रवन्ती (मृसाकर्णि), त्रियत् (निशोत), मण्डकपणीं (मंजीठ), कारवेल्ल (करैला), वार्ताकु (बैगन), करवीर (कनेर), वास (अड्सा), रोहिणी

(कंजा), शंखचूर्ण (शंखपुष्मी), कर्कोट (खेखसी), जयनिका अग्निवृद्धिके अभिलाषी जनोंके लिये घृत लाभप्रद है। (वैजयन्ती), जाती (चमेली), वारुणक (वरुण), निम्ब पैतिक विकार होनेपर मात्र युत और वात-विकार होनेपर (नीम), ज्योतिष्मती (मालकँगनी) और पुनर्नवा नामक ये उसको सेंधादि नमकके साथ सेवन करना चाहिये। कफकी सभी औषधियाँ तिक रसवाली हैं। इनका रस छेदक, रोचक तथा जठराग्निदीपक है। यह जरीरका अन्तर एवं बाह्य-शोधन करती है। इस रसके सेवनसे न्वर, तृष्णा, मुच्छां तथा कण्ठके रोग विनष्ट हो जते हैं। इस औषधिवर्गमेंसे किसी एक औषधिका अधिक सेवन कानेपर प्राचीमें विष्टा, मूत्र, स्वेद तथा शरीर-शुष्कताके विकार जन्म लेते हैं। यथीचित सेवन न करनेसे यह रस हनुस्तम्भ, आश्चेपक, पीड़ा, मस्तिष्क-शूल और त्रण आदिके भी उपद्रवोंका कारण बन जाता है।

त्रिफला, सल्लको (चीड्), जामुन, आमड्, बरगर, तिन्दुक (तेंदू), बकुल (मीलसिरी), जाल, पालङ्की (फलको), मुद्ग (मूँग) और चिल्लक (बयुआ)-का रस कवाय प्राही, रोपी, स्तम्भन, स्वेदन तथा शरीर-शोषक होता है। इनमेंसे किसी एकका अत्यधिक सेवन करनेपर वह इदयमें पीडा, मुखशोप-ज्वर, आध्यान तथा स्तम्भादिक रोगोंका कारण भी हो जाता है।

हल्दी, कष्ट, संधा नमक, मेवभूगि (मेडासिंगी), बला, अतिबला, कच्छ्रप (श्वकशिम्बी), सल्लकी (बीड), पाटा (पाढा), पुनर्नवा, शतावरी, अग्निमन्य (गनियारी), बहुदच्छी, भदंश (गोखरू), एरण्ड, यव (जी), कोल (बेर) और कलस्य (कलधी) आदि विशेष औषधियोंका पुषक-पुषक रस एवं दशमूलका क्वाथ पान करनेवाला मनुष्य अपने शरीरमें उत्पन्न होनेवाले वातज एवं पित्तज विकारीको विनष्ट करनेमें सफल रहता है।

शतावरी, विदारी, बालक (मोधा), उशीर (खस), चन्दन, दुर्वा, वट, पिप्पली, बेर, सल्लकी, केला, नीलकमल, लालकमल, गुलर, पटोल (परवल), इल्दी, गुड तथा कष्ट-इन औषधियोंका वर्ग कफ-विनाशक है।

शतपृष्पी (सोआ), जाती (चमेली), व्योष (सोंत. पिप्पली, काली मिर्च), आरखध (अमलतास), लाङ्गली (कलियारी) और घृत-तेलादिसे सिद्ध होनेवाले अन्य स्नेहपाकोंमें प्रशस्त माना गया है। बुद्धि, स्मृति, मेद तथा

अत्यधिक विकृति होनेपर रोगीको पिप्पली, सोंठ, काली निर्च और वदक्षार मिलाकर दिया गया पुत श्रेयस्कर होता है। यह दृत ग्रन्थिदोष, नाड़ी-विकार, कृमि, श्लेष्म, मेदा तथ वात-रोगसे वक्त रोगियोंको भी देना चाहिये।

वैल-पदार्थीका सेवन शरीरको हल्का और कठोर बनानेके लिये करना चाहिये। यह कठोर कोष्ठकाँवाले प्रानियोंके लिये लाभकारी होता है तथा वायु, धूप, जल, भार, मैधन और व्यायामके कारण श्रीण हुई धातुओंसे युक्त जनोंके लिये उचित है। शरीरकी रूसता, कष्ट, वृद्धावस्था, जटराग्निदीयन तथा बातदीयसे थिरे हुए प्राणियोंको स्नेहयुक्त औषधि एषं क्वाधोंका प्रयोग करना चाहिये।

इसके बाद जब प्राणीके सिएमें रोग हो गया हो तो चिकित्सा-शास्त्रके नियमानुसार सिरकी अपेक्षित शिराओंके समृहको गर्म करके प्राणीको धीर-धीरे सिरका गर्दन करना चाहिये। स्तेह, क्वाथ और वटिका आदिके रूपमें प्रयुक्त औषधियोंको उत्तम, मध्यम तथा अधम-ये तीन मात्राएँ मानी गयी हैं, जिनमें उत्तम मात्रा एक पत अधीत् आठ तोला (९६ ग्राम), मध्यम मात्रा तीन अक्ष अर्थात् छ: तोला (७२ ग्राम) और अधम मात्रा अर्ध पल अर्थात् चार तीला (४८ ग्राम) होती है। युतपाक-सेवनमें गुनगुना तथा तैलपाक-सेवनमें जीवल जलका प्रयोग होना चाहिये। स्नेह (सहरई) पितिषकार तथा तृष्णाबन्य दोषमें मनुष्यको गुनगुना जल पौना चाहिये।

शरीरमें जटरानिक प्रबल होनेपर प्राणीको वातानुलोम, स्त्रिप्यभाव होनेपर जटराग्निका दीपन, रूक्षभाववाली स्थितिके होनेपर स्नेहन तथा अत्यधिक स्निग्धताके होनेपर रूक्षता उत्पन्न करनेका प्रयास करना चाहिये। साँवाँ, कोदो आदि रूख अत्र, तक्र, तिलक्ट तथा सनुके अनपेक्षित प्रयोगसे वात तथा कफ-रोगमें अथवा वात-रोगमें स्वेदन-क्रिया करनी चाहिये। किंतु अत्यना स्थूल, रूक्ष, दुवंल और मुख्यित व्यक्तिमें यह स्वेदन-क्रिया नहीं करनी चाहिये। (अध्याय १७३)

ब्राह्मीघृत आदि स्नेहपाकोंकी निर्माण-विधि तथा विविध रोगोंमें उनका उपचार

धन्वन्तरिजीने कहा — हे सुश्रुत। अब मैं रोगोंको दूर करनेवाले यूत और तैलादि पदार्थोंके विषयमें बताऊँगा, उसे आप सुने।

शंखपुष्पी, वच, लोमा, ब्राह्मी, ब्रह्ममुकर्चला, अभया (हरीतकी), गुडूची (गिलोय), अटक्ष्मक (अडूमा) तथा जागुजी (बकुची) नामक इन औषधियोंके रसको एक-एक अक्ष अर्थात् दो-दो तोला लेकर उनसे एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर घृतका पाक सिद्ध करना चाहिये। उसमें एक प्रस्थ कण्टकारीका रस, एक ही प्रस्थ दूधका मित्रण भी करना चाहिये। इस घृतपाकका नाम ब्राह्मीयृत है। यह स्मरण और मेथा-शांकिका अभिवर्धक होता है।

त्रिफला, चित्रक, बला, निर्गुण्डी (सिन्धुबार), नीम, वासक (अड्सा), पुनर्नवा, गुड्ची, बृहती और शतावरी नामक इन औषधियोंके रससे सिद्ध मृतनाक सभी रोगोंका विनासक है।

बलाके रससे बने हुए क्वायमें आधा आडक अर्धात् दो सेर तिलका तेल पकाना चाहिये। इस क्वाथपाकके साथ मुलेठी, मजीठ, चन्दन, नीलकमल, लालकमल, छोटी इलायची, पिप्पली, कुछ, दारधीनी, बड़ी एला (कपित्थको छाल), अगर, केसर, अश्वगन्धा तथा जीवन्तीका कल्क और एक आडक अर्धात् चार सेर दूध मिलाना चाहिये। इस पाकको अग्निकी धीमी औचमें सिद्ध करके एक रजत-पात्रमें रखना चाहिये। यह तैलपाक समस्त चात तथा धातुरोगोंका नाशक है। इस तैलपाक सेन्दनसे कफकन्य क्षयरोग भी विनष्ट हो जाता है। इसका नाम राजवल्लभ है।

एक प्रस्थ शतावरीका रस, एक प्रस्थ दूध, एक-एक कर्ष शतपुष्पी, देवदारु, जटामांसी, शिलाजीत, बला, बन्दन, तगर, कुष्ठ, मैनसिल और मालकँगनी नामक औष्पंधयोंका रस लेकर एक प्रस्थ पृतको अग्नियर सिद्ध करना चाहिये। इस यृतपाकके प्रयोगसे प्राणियोंका लँगदापन, बौनापन, लुंजता, विधरता, व्यंगदोष और कुष्ठरोग चिनष्ट हो जाता है। वायुदोषके कारण जिनका शरीर दुर्बल हो गया है, जो मैधुनमें अशक्त हैं, वृद्धावस्थाके कारण जो जर्जर शरीरवाले हो गये हैं, आध्मान नामक रोगके कुप्रभावसे जिनके मुख शुष्क हो गये हैं, उनके उन सभी विकासेंका यह पृत- पदार्थ विनाशक है। जिन प्राणियोंके चर्म, शिरा और स्नायु-तिन्त्रकाओंमें विकृत वायु-समृह प्रविष्ट होकर रोगका रूप धारण कर चुका है, वह सब इस सिद्ध तैलके सेवनसे नष्ट हो जाता है। इस तेलका नाम नारायणतेल है। इस रोगविनातक तेलकी सिद्धिका विधान स्वयं भगवान् विष्णुने बताया था, इसीलिये इस सिद्ध तेलका नाम उन्हेंकि नामपर पड़ा है। इन्हों औषधियोंसे पृथक्-पृथक् अथवा मिश्रण-रूपमें युत एवं तैलपाक बनाना चाहिये।

कताबरी, गुडूची, चित्रक, बिजौरा नीबूका रस अथवा कण्टकारीके रसादिसे समन्वित निर्गुण्डीका रस या पुनर्नवा और बनेली अथवा त्रिफलाके साथ अडूसा या ब्राह्मी, प्रश्च्ड, भूंगराज, कुछ, मूसली, दशमूल और खदिरकी चिसकर बनायी गयी कटी, वटिका, मोदक या चूर्ण सभी रोगोंको दूर करनेवाला है। चृत, मधु, जल, सकरा, गुड़, नमक तथा सीठ, काली मिर्च अथवा पिप्पलीके साथ सेवन करनेसे सभी रोगोंमें यथोचित लाभ होता है। इन औषधियोंका योग सर्ब-रोगविनाशक है।

चित्रक, मन्दार और निसीत अथवा अजवाइन तथा कनेर या सुधा (गुडुची), बाला (चमेली), गणिका (गनिवारी), सप्तपणी (छितवन), सुवर्षिका (पितपापड़ा) और ज्योतिष्मती (मालकैंगनी) नामकी औषधियोंको एकप्र करके विद्वान्को उनका तैल पाक सिद्ध करना चाहिये। इस योगसे सिद्ध तेलका प्रयोग धगंदर-रोगमें करना चाहिये। जोधन, रोपण तथा सर्ववर्णकारक चित्रकादिक जो महातेल है, वे सभी प्रकारके रोगोंका निवारण करते हैं।

अजमोदा, सिन्दूर, हरताल, हल्दी, दारुहल्दी, यवधार, छजी, समुद्रफेन, अदरक, सरलद्रब, इन्द्रायण, अपामार्ग, केला तथा तिन्दुकको समान भागमें लेकर सरसोंका तेल बकरीके मूत्र तथा गोदुरधको मिलाकर मन्द-मन्द अग्निकी आँचपर एक करना चाहिये। इस सिद्ध तैल पाकका नाम अजमोदादि-तेल है। यह गण्डमाला नामक रोगको दूर करता है। विद्वान् व्यक्तिको सबसे पहले इस गण्डमाला नामक रोगमें होनेवाली फुंसियोंको पकाना चाहिये। तदनन्तर उनका शोधन करके इसी अजमोदादि तेलसे घावोंको भरते हुए उसमें कोमलता लानेका प्रयास करे। (अध्याय १७४)

ज्वर-चिकित्मा

श्रीहरिने कहा-हे शंकर! सभी ज्वरोंमें सबसे पहला कार्य लंघन है। उसके बाद क्वाथ, उदकपान तथा वातज्ञन्य स्थानका सेवन करना चाहिये।

हे ईश्वर! अग्निसे तथा स्वेदनकी क्रियाओंको करनेसे सभी ज्वर विनष्ट हो जाते हैं। गुड्ची और मोधेका क्वाय वातञ्बर-विनाशक है। दुरालभा^र अर्थात् धमासा नामक औषधिके धृतका पान करनेसे पित्त-च्यर दूर होता है। सोंठ. पित्तपापडा, नागरमोधा, बालक (डीवेर) खस और चन्दनके क्वाधसे सिद्ध, पित्त-न्वरका विनाम करता है। दरालभा तथा सोंठसे सिद्ध यत-मित्रित क्वाच कफ-ण्यरका नाशक है। बालक, सोंठ और पित्रपापडासे सभी ज्वर विनष्ट हो जाते हैं। चिरायता, एरण्ड, गृहची, सोंठ, नागरमोधाके क्याचसे पित-ज्वर दूर होता है। ष्टीवेर, खस, पाठा, कण्टकारी और नागरमोचाका क्वाच ज्यरका विनाश करता है। देवदास्की छालका क्वाच भी लाभदायक है।

हे शंकर! मधुसहित धनिया, नीम, नागरमोश्रा, परवलकी पती, गृहची और विफलाका क्याच सामत ज्यारेका विनाशक है। इसके सेवनसे रोगीकी क्षधा बढने लगती है एवं वायु-विकार दूर हो जाता है।

हरीतकी, पिप्पली, आँवला, चित्रक, धनिया, खस तथा पित्तपापडाका चुर्ण और क्वाथ दोनों ज्वरनाशक है। मध्के साथ आँवला, गृहची तचा चन्द्रनका सेवन सभी ज्वर-रोगोंको दर करनेवाला है।

अब आप सन्निपातज ज्वरके विनाशक औषधियोंको

हल्दी, नीम, जिफला, नागरमोधा, देवदार, अदरक, चन्दन, परवलको पत्तीका क्वाथ पीनेसे त्रिदोषजन्य अर्थात सॅनिपातव ज्वर दर हो जाता है।

कण्टकारी, सींठ, गृहची, कमल तथा नागबला नामक औषधियोंके योगसे बने चुर्णका सेवन करके रोगी श्वास और खाँसी आदिसे विमुक्त हो जाता है। कफ-वातज व्यत्से प्रसित रोगीको प्यास लगनेपर गर्म जल देना काहिये। स्रोंड, पित्तपापड़ा, खस, नागरमोधा तथा चन्दनसे सिद्ध क्वाच शीतल जलके साथ देना चाहिये। यह तच्या. बमन. (पित) ज्वर और दाहसे ग्रस्त रोगीके लिये हितकारों है। बिल्व आदि पश्चमुलका क्वाथ वातंत्र ज्वरमें लाभ करता है। पिप्पलीमुल, गृहची और सींठका योग पाचक है। बात-प्यर होनेपर इसका क्वाध देना चाहिये। यह परम ज्ञान्ति देनेवाला है। मधुके सहित पित्तपापड़ा एवं नीसका क्वाच पित्रज प्यरका विनाश करता है।

समुचित उपचार करनेपर भी यदि रोगीकी चेतना नहीं लौटती तो उस रोगीके दोनों परके तलुओंमें अथवा मस्तक-भागमें लोहेके गर्म शलाकासे दग्ध(गर्म) करना चाहिये। चिरायता, पादा, पित्तपापदा, विशाला (इन्ह्रायण), त्रिफला तथा निसोतका क्वाथ दशके साथ ग्राह्म है। यह मलावरोधका भेदन करनेवाला एवं समस्त ज्वरींका विनाशक है। (अध्याय १७५)

この時間間でいい

पलितकेश तथा कर्णशलके उपचार

श्रीभगवानने कहा-हाथी-दाँतका भस्य एवं बकरीके दुधमें मित्रित रसाञ्चन (रसौत)-का लेप सिरपर करनेसे खल्वाट अर्थात् गंजे प्राणीके सिरमें सात रात्रियोंके बीतते-ही-बीतते सुन्दर बाल उग आते हैं। चार भाग भूंगराजरससे अभिवृद्धिकारक होता है।

इलायची, जटामांसी, मुरा (शल्लकी), शिव (काला धत्र), गुंजा (बुँचची)-को समभागमें लेकर उनसे बनाया गया लेप सिरमें लगानेसे इन्द्रलुप्त नामक रोग दूर हो जाता है। आमकी गुडलियोंके चूर्णका लेप करनेसे केश सक्ष्म सिद्ध गुंजाफलके चूर्णयुक्त विलका तेल केशराशिका अर्थात् पतले हो जाते हैं। करंज, आँवला, इलायची और साहका लेप बालोंको लालिपाका विनाशक है।

आमके गुठलीकी मजा तथा औवलाके वृशंका सिरमें मस्तकका रोग दूर हो जाता है। लेप करनेसे केशराशि जड़से मजबूत, सपन, लम्बी, सँधा नमक, वच, हींग, कुष्ठ, नागकेशर, शतपुष्पा

मैनसिलके चूर्णसे सिद्ध तैलपाक उत्तम माना गया है। सिरमें ऋण मात्र भी कानमें डालकर अत्यन्त प्रबल कर्णशृलको इन तेलोंका लेप करनेसे मूँ और लोख समाप्त हो जाते हैं। चिनष्ट किया जा सकता है। हे शिव! भेंड़का मूत्र और सेंधा

लगानेसे केश चिकने और अत्यन्त काले हो जाते हैं। दुर्गन्धपूर्ण पानो और कृमिस्रावादिका विकार विनष्ट हो भूगराज, लौहजूर्ण, त्रिफला, बिजौरा तीबू, तीली, कतर जाता है। मालती तामक पुष्पकी पश्चियोंका रस या गोमृत्र और गुडको समान भागमें लेकर अग्निपर सिद्ध किया कानोमें डालनेसे उनमेंसे बहनेवाला मवाद नष्ट हो जाता है। गया पाक एक महौषधि है। इसके लेपसे पक रहे कुछ, उहर काली मिर्च, तगर, मधु, पिप्पली, अपामार्ग, बालोंको पुन: काला किया जा सकता है। आमको पुठलिखेंकी अध्यन्धा, बृहतो, श्रेत सरसों, यव, तिल और सेंधा गृदी, त्रिफला, नीली, भूंगराज, शोधित पुराना लौहचूर्ण तथा नमकका उबटन कल्याणकारी होता है। भल्लासक, बृहती

तथा अत्यन्त खट्टे कांजीके साथ पीसकर लेप करनेसे वृद्धि होती है। (अध्याय १७६)

चिकनी तथा टूट-टूटकर न झरनेवाली हो जाती है। (सींफ) तथा देवदारु नामक औषधियाँसे शोधित चार गुने विडंग और गन्धक अथवा चार गुने गोमुत्रसे युक्त गायके गोबरसे निकाले गये रससे युक्त तिलके तेलको एक हे वृषभध्यज्ञ। शंखभस्म और सीसक विसकर सिरमें नमक कानमें डालनेसे पृतिका-दोष अर्थात् बहनेवाला

कांजीका सिद्ध योग भी बालोंको काला करता है। एवं अनारका छिलका तथा कटु तैलके लेपसे या इस चक्रमर्दक (चक्रवड़)-का बीज एवं कुष्ट एरण्डमूल उबटनके प्रयोगसे लिंग, बाहु, स्तन और श्रवणशक्तिकी and the plant of

नेत्र, नाक, मुख, गला, अनिद्रा तथा पादरोग और शस्त्राघातादिजनित रोगोंकी चिकित्सा

वृक्षकी पत्तियोंका रस औंखोंमें डालनेसे निश्चित ही नेत्रका कंजाक फल, संधा नमक और दोनों रजनी, हल्दी, रोग नष्ट हो जाता है। तिल और चमेलोके अस्सी-अस्सी दास्कल्दीको धूंगग्रजके रसमें पीसकर उसका नेत्रीमें अंजन फूल, तीम, आँवला, सीठ, पीपल वधा चौलाईके शाकको देनेसे तिमिरादिक सभी रोग दूर हो जाते हैं। जंगली चावलके जलमें पीसकर उनको वटी बनानी चाहिये। अङ्गाको जड़को कांजीमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रजुल तदनन्तर छायामें सुखाकर मधुके साथ उसका नेजोंमें अंजन नष्ट होता है। तक अर्थात् महेके साथ बेरकी जड़को करना लाभकारी है। ऐसा करनेसे विमितादिक रोग नष्ट हो। पीसकर पीनेसे भी नेत्रोंको पीड़ा दूर होती है। सेंधा नमक, जाते हैं। बहेडेके गुठलीकी गुदी, शंखनाभि, मैनसिल, कड़जा देल, अपामार्गकी जड़, दूध और कांजीको ताम्रपात्रमें नीमकी पत्ती एवं काली मिर्चको बकरीके मुत्रमें शिसकर अंजन बनाना चाहिये। इस प्रकारका सिद्ध अंजन नेवॉमें होनेवाले पृथ्य-दोष अर्थात् फुल्ला, रतीथी, विमिर-विकार तथा पटलरोगको नष्ट कर देता है।

शंखभस्म चार भाग, मैनसिल दो भाग एवं सेंधा नमक एक भाग जलमें पीसकर बनायी और छावामें सुखायी गयी बटीका नेत्रोंमें अंजन करनेसे तिमिर, पटल तथा सूजन नष्ट

श्रीहरिने कहा—हे लंकर! मधुके सहित शोधनक हो जाता है। यह नेत्रऐगोंकी महीबधि है। प्रिकटु, त्रिफला, चिसकर उसका नेत्रोंमें अंजन करनेसे पिंजट अर्थात् कीचड़ निकलना बंद हो जाता है।

बिल्व और नील-वृक्षको जह पीसकर बनाये गये अंजनको नेत्रोंमें लगाने मात्रसे तिमिरादिक रोग निश्चित ही नष्ट हो जाते हैं। पिप्पली, तगर, हल्दी, आँवला, वच और खदिखारा बनायी गयी बतीका अंजन लगानेसे नेत्ररोग नष्ट होता है। जो पनुष्य नित्य प्रात: मुँहमें जल भरकर जलका

ही छींटा देकर नेत्रोंको थोता है, वह नेत्रोंके सभी रोगोंसे जेफालिका (सिन्धुवार) तथा जटामांसीका चूर्ण चयानेसे मक हो जाता है।

क्षेत एरण्डकी जड एवं पत्तियोंके रससे सिद्ध बकरीके द्धके उष्णपाकके सेंकसे आँखोंका वात-विकार दूर हो जाता है। चन्दन, सेंधा नमक, पुराने पलाशका पत्र और हरीतकी पटल, कुसुम, नीलीका अंजन चक्रिका (चकाचींथी) नामक नेत्ररोगोंका विनाशक है।

बकरीके मुत्रमें घिसी गयी गुंजाकी जड़का अंवन तिमिररोगको दर करता है। हे रुद्ध ! चाँदाँ, ताँबे तथा सोनेकी शलाकाको हाथपर पिसकर नेत्रोंमें उसका लगाया गया उबटन कामला नामक रोगका निवारक है। धोषाफल अर्थात् साँफको सुँघने और सेवन करनेसे पीलिया नामक रोगका विनाश होता है।

दवां, अनारपुष्प, लोध और हरीतकीका रस नासाशं तथा वातरक्तके दोषको दूर करता है। हे वृषध्वन । हे गीललोहित! जाङ्गलिक-मूल अर्थात् केर्वांचको जडको भली प्रकारसे पीसकर उसका नस्य लेनेसे नासाई-रोग नष्ट हो जाता है। हे रुद्र! गोयुत, सर्जरस (सल), चलिया, सँचा नमक, धतुर तथा गैरिकसे सिद्ध सिक्य अर्थात् मोम तेलमें मिलाकर ओठोंपर लगानेसे ओठोंके पाव तथा ओठ फटनेका रोग दूर हो जाता है। चवाकर सेवन की जानेवाली चमेलांकी पत्तियोंका रस भी मुखरोग-विनाशक है।

केसरके बीजोंको खानेसे हिलनेवाले दाँत दृढ हो जाते हैं। मृष्टक (मोधा), कुष्ठ, इलायची, मुलेठी, वालक और धनियाको चत्रानेसे मुखकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है। कपाय द्रव्य या त्रिकटु अथवा तेलयुक्त तिक शाकके नित्य भक्षणसे भी मुखकी दुर्गन्थ दूर हो जाती है। इससे सभी प्रकारके दौतोंसे सम्बन्धित प्राय भी नष्ट हो जाते हैं। हे शिव। तेलमें सिद्ध कांजीका कुल्ला करनेसे अथवा उसकी मुखमें रखनेसे ताम्बलके साथ खाये गये चुनेके प्रभावसे हुए घाव या अन्य व्याधियोंका विनाश हो जाता है।

मुक्ति प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार विजीश नीवृक्ते बाँज, करना चाहिये। इलायची, मुलेठी, पिप्पली और चमेलीकी पतियोंका चूर्ण (शहदमें) चाटनेसे भी कफ-विकारसे मुक्ति मिल जाती है। विषमन्वर दूर हो जाता है। काकजंघा (धुँघची)-का रस

गलसुण्डि अर्थात् तालुभागकी शोधका विनाश होता है।

गुंजा अर्थात् धुँचर्चाका जड़को चवानेसे दाँतमें लगे हुए कोड़ोंका विनाश होता है। है शिव! मधुसहित काकजंपा (बुँघची), स्नुही (सेंहुड्) और नीलका क्याथ, दन्ताक्रान्त (दन्ताधात) तथा दाँतके कोट-रोगोंका विनाशक है।

कर्कटपाद (कमलकी जड़)-से सिद्ध धृतपाकका मंजन करनेसे दौतोंकी कटकटाहट दूर हो जाती है। हे शिव। कर्कटपादका दूधके साथ लेप करनेसे भी इस रोगका विनास हो जाता है। ज्योतिष्मती (मालकैंगनी)-के फलोंको जलमें पीसकर उसके द्वारा तीन सप्ताहतक कुल्ला करनेसे भी इस रोगमें लाभ होता है। विदारीकन्द और हरीतकीके चूर्णका मंजन करनेसे दौतोंका कालापन विनष्ट होता है।

लोध, कुंकुम, मजीठ, अगर, लालचन्दन, यब, मानल तथा मुलेठीको जलमें पीसकर तैयार किया गया गुखलेप स्त्रियोंके मुखको शोधा-सम्पन्न बनाता है। दो प्रस्थ वकरोका दृष, एक प्रस्थ तिलका तेल, एक-एक कर्प रकचदन, मंजिष्ठ, लाक्षा-रस, मधुयष्टी और कुंकुमसे सिद्ध लेपपाक एक सप्ताहक अन्तर्गत ही मुखकी शोभाको बढ़ा देता है।

सोंट, पिप्पली-चुर्ण, गृहची और कण्टकारीके क्वाधका कर करनेसे जठगरिन तीब हो जाती है। हे महादेव! कंजा, पित्तपापदा, बृहती (भटकटैया), अदरक, हरीतकी तथा गोखरूके द्वारा सिद्ध क्वाच पीनेसे चकान दूर हो जाती है एवं दाह, पित-न्वर, शारीरिक शुष्कता और मुच्छां-दोष भी बिनष्ट हो जाते हैं।

मधु चृत, पिप्पली-चूर्ण एवं दूधसे युक्त क्वाथका पान हृदयरोग, खाँसी तथा विषमञ्जरका विनाशक होता है।

हे वृषध्वज! सामान्यत: क्वाथ तथा औषधियोंकी अनुपान-मात्रा आधा कर्ष अर्थात् एक तोला है। विशेष सॉठको चवानेसे जिस प्रकार प्राणी कफके रोगसे रूपसे रोगीको आयुके अनुसार उसके परिमाणपर विचार

गौके गोबरसे रस निकालकर दूधके साथ पान करनेसे

भी इस ज्वरका नशक है। सोंठके चूर्णसे युक्त बकरीके अग्निमें जो मनुष्य सेंकता है, उसका पंकिल-मिट्टी खाया दुधका क्वाथ विषम ज्वरको दूर कर देता है।

पीसकर उसका नस्य देनेसे पुरुषको नींद आने लगती है। हे शिव। काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर मधुका नस्य लेनेसे भी प्राणीको नोंद आ जातो है। काकजंबा (कालाहिसा)-की जड़ मस्तकपर लेप करके भी निदाको लाया जा सकता है। कांजी तथा धूना नामक वृक्षके गोंदसे सिद्ध तैलपाकको शीतल जलमें मिलाकर सिरपर लेप करनेसे सिर-संताप दर हो जाता है। यह रक्तदोषन ज्वर और दाहसे उत्पन्न होनेवाले संतापको भी दर करता है।

शिलाजीत, शैवाल, मन्द्रा (मेची), साँठ, पाषाणभेदी (पथरचट्टा), सहिजन, गोखक, वरुण और सौभञ्जनकी जड-इन संसकी एकप्र करके बनाया गया जल या ब्लाच होंग तथा यवशारके सहित पान करनेसे वातरोगका विनन्न होता है।

या क्वाध भली प्रकारसे शुलरोगको दूर करनेका बेहतम अधि देना चाहिये। हे खुषध्वज! इस प्रकारके पाव जब योग है।

रोग शान्त हो जाते हैं।

हों जाता है।

अस्थितहारक हरजोड अर्थात् ग्रन्थिमान् नामक लताकी नष्ट कर देता है। जडको भातके साथ खानेसे अथवा जटामांसीके रसके साथ 💮 लाटी आदिके प्रहारसे उत्पन्न होनेवाली पीडा जल एवं पान करनेसे वातरोग तथा अस्थिभंगके दोष विनष्ट हो जाते. तिलके तेलमें सिद्ध अपामार्गकी जडका लेप लगानेसे तथा हैं। बकरीके द्राप्र और यूत-पित्रित सत्तुका लेप दोनों पैरके आगपर सेंकनेसे शान्त हो जाती है। तलुओंमें करनेसे जलन समाप्त हो जाती है। मधु, पूत, मोम, गृड, गैरिक, गृग्गुल और रालका रस पैरोंमें लेप जलके साथ खानेसे अजीर्ण रोगका विनाश होता है।

हुआ अर्थात् कोचड्में अधिक देरतक रहनेसे दूषित हुआ मलेटी, खस, सेंचा नमक तथा भटकटैयाका फल या उसके समान अन्य किसी कारणसे विकृत हुआ पैर खुजलाहट आदि विकारोंसे रहित हो जाता है।

सर्जरस, मीम, जीरा और हरीतकीसे शोधित युतपाकका

अध्यक्न करनेसे अग्निमें जलनेसे उत्पन्न हुई पीड़ा शान्त हो जाती है। तिलका तेल अग्निमें जलाकर भस्म किये गये यकको प्रचुर मात्रामें बार-बार मिलाकर लेप करनेसे अग्निमें जलनेके कारण उत्पन्न हुए बाव ठीक हो जाते हैं। धैंसके दशका मक्खन, अग्निमें भूने गये तिलका चुणे और धिलावाका रस मिलाकर तैयार किया गया लेप घावको ठीक करता है। इसका नस्य एवं लेप करनेसे हृदय-शल भी ताना हो जाता है।

हे हर। दण्ड-प्रहार आदिके कारण शरीरमें उत्पन्न चान कर्पर और गोधृत परस्पर मिलाकर भरनेसे ठीक हो जाता है। है किव। शस्त्रोंके प्रहारसे होनेवाले वावपर इस हे शिव। पिप्पली, पिप्पलीमूल तथा भिलावेका जल औषधिका प्रयोग करके उसे स्वच्छ सफेद कपहेसे पक रहे हों या उनमें पीड़ा होती हो तो उन्हें हाथका अश्वगुन्धा तथा मुलोके रससे शोधित वामीकी जो ज्यहाँ देना (सहलाना) चाहिये। आग्रकी जहका रस मिट्टी होती है, उसको रगडनेसे दाद और करुस्तम्भ नामक और युत भरनेसे भी शस्त्रायातका याव भर जाता है। हरपुंखा (हरफोंका), लजालुका (लाजवन्ती) और पाठा बृहतीमूल अर्थात् भटकटैयाकौ जडको पानीमैं पीसकर (पादा) नामक औषधियोंकी जडको जलमें पीसकर पीनेसे संघातवात नष्ट होता है। अदरक और तगरकी उसका लेप लगानेसे भी शस्त्राचातजनित व्रण ठीक हो जडको पीसकर मट्टेके साथ पीनेसे झिंझिनी अर्थात झंझबाईका जाता है। काकजंपाको जडको पीसकर शस्त्रापातके रोग वैसे ही नष्ट होता है, जैसे वजके प्रभावसे वृक्ष धराशायी। भावमें भरनेसे वह चाव तीन राजियोंके बीतते ही सुख जाता है। रोहितक नामक या रोहडाको जडका लेप भी व्रणको

हे शंकर! हरीतकी, सोंठ और संधा नगक पीसकर

करनेसे उनका फटना तथा जलना बंद हो जाता है। निम्बमूल अर्थात् नीमकी जड़को कमरमें बौंधनेपर हे वृयध्वज! सरसंकि तेलको पैरोंमें लेपकर निर्धुम नेत्रोंको पोड़ा दूर हो जाती है। शण (पटसन)-की जढ आचारकाण्ड]

और पानका भस्म इन्द्रियजन्य विकारका विनाशक है। रोग दूर हो जाते हैं। यवादिक अप्र, हल्दी, सफेद सरसोंकी जड़ और बिजीरा नीयके बीज समान भागमें पीसकर इनका उचटन बनाना चाहिये। सात दिनोंतक शरीरमें इसका प्रयोग करनेसे रंग गोरा हो जाता है।

धेत अपराजिताको पत्ती तथा नीमको पत्तीका रस निकालकर उसका नस्य देनेसे डाकिनी आदि मालओं और ब्रह्मराक्षसोंको छायासे मुक्ति हो जाती है। हे वृषध्यज! मधुसार अर्थात् मुलेवीको जड़का नस्य देनेसे भी उनकी छाया दूर हो जाती है।

हे रुद्र! पिप्पली, लीहचूर्ण, सोंठ, औवला, सेंधा नमक, मध् तथा शकराका समान योग गुलरके फलके बरावरकी मात्रामें एक सप्ताहपर्यन्त सेवन करनेसे पुरुष बलवान् हो जाता है। यदि वह सदैव इसका सेवन करे तो दो सौ वर्षतक जीवित रहता है।

सिद्ध तैलपाकका अभ्यङ्ग करनेसे शरीरमें क्थित समस्त

चन्दनके जलका नस्य लेनेसे शरीरके गिरे हुए रोम पनः निकल आते हैं।

इस्त नक्षत्रमें लाङ्गलिकाकन्द अर्थात् कलियारी या जलिएपलीको जडको लेकर जो व्यक्ति उसका लेप शरीरमें लगाता है, वह बुढ़ीतीके दर्पको नष्ट कर देता है अर्चात् शरीरमें वृद्धावस्थाका प्रभाव नहीं पहता।

पुष्य नक्षत्रमें सुदर्शना (चक्रांगी या वृषकर्णी) नामक लताको जडको लाकर घरके मध्य डाल देनेसे सर्प घरसे भाग जाते हैं। हे शिष ! रविवारको लायी गयी मन्दारवृक्ष तथा अन्तिज्ञलिता (जलपिप्पली)-की जडको पीसकर बनायाँ गयाँ बतो, सरसोंके तेलसे जलानेपर मार्गमें देश-प्रहार करनेवाले सर्पका विनाश करती है।

विकला (केतको) और अर्जुनके पुग्न, भिलावा, हिरोप, रणकास, राल, विड और गुग्गल-इन सभीके भल्लुकोके दूधसे भावित रोहित मछलीके मांसद्वारा द्वारा बन भूप मक्कियों तथा मच्छरीका नास करता है। (अध्याय १७७)

No. 23 Million

गर्भ-सम्बन्धी रोग, दन्त तथा कर्णशुल एवं रोपशमन आदिका उपचार

धीहरिने कहा-हे शिव! मुलेटो तथा कण्टकारी नामक औषधियोंको समभागमें लेकर गोदम्धमें पाक तैयार करके दूधका चीचा भाग शेष रहनेपर उस पाकको गरम जलके साथ पान करनेपर स्वीको गर्भ रक जाता है। बिजीरा नीवुके बीजोंको दूधके साथ भावित करके उसका पान करनेसे स्त्रीको गर्भ रुकता है। पुत्र प्राप्त करनेको इच्छुक स्त्रियोंको बिजौरा नीवुके बीज तथा एरण्ड-वृक्षको जडको भीके साथ संयोजित करके उसका सेवन करना चाहिये। अश्वगन्धाके क्वायका दूध एवं धीके साथ सेवन पुत्रकारक है। पलाशके बीजोंको मधुके साथ पीसकर पान करनेसे रजस्वला स्थी मासिक धर्म तथा गर्भधारणसे रहित हो जाती है।

हरिताल, यवधार, पत्राङ्ग (तेजपत्ता), लाल चन्द्रन, जातिफल (जायफल), हींग तथा लाक्षरसका पाक तैयार करके उसे दाँतोंमें भलोभाँति लगाना चाहिये। किंतु उससे पहले हरीतकीके क्वाचसे दाँतोंको साफ कर ले। ऐसा करनेसे मनुष्यके लाल पड गये दाँत भी सफेद हो जाते हैं।

यन्द-यन्द आँचपर मूलीके रसको पकाकर उसको कारमें डालनेसे कर्णसाव अर्थात कानका बहना बंद हो जाता है। अर्कके पत्तोंको लेकर मन्द-यन्द औषपर गरम का ले। वदननार उसका रस निचोडकर कानोंमें डाले तो कर्णजुल विनष्ट हो जाता है।

प्रियंग्, मुलेठी, औबला, कमल, मंजीठ, लोध, लाकारस और कपित्य-रससे बने तैलपाकसे स्त्रियोंका योनि-दोष दर हो जाता है। सुखो मुली तथा सोंठका कार और हींग हो इस रोगके लिये महौषधि है। सोया (वनसाँफ), वचा (वच), कृट, हरूदों, सहिजन, रसाञ्चन, काला नमक, यवशार, सर्जंक (तालवृक्षका रस), सेंधा नमक, पिणली, विडंग तथा नोधा-इन सभी औषधियोंको समान भागमें लेकर उनसे चार गुना मधु, बिजौरा नीबू और केलाका रस एकत्र करे। तदनन्तर इन सभी औषधियोंको एकमें मिलाकर उनसे तिलके तेलकी सिद्धि करे। इस प्रकार तैयार किये गये पाकके प्रयोगसे निश्चित ही स्त्रियोंका स्रावादिक रोग दर हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। सरसोंका तेल कानमें डालनेसे उसके अंदर उत्पन्न हुए पिप्पली, काली मिर्च, विडंगभद्र, मोधा और सीठ—इन पिप्पली और त्रिफलाके चूर्णको मधुके साथ चाटनेसे सात औषधियोंको गोमुत्रके साथ पीसकर कटी बना लेना भयंकर पीनस, खाँसी और श्रासके विकार नष्ट हो जाते चाहिये। इसकी एक वटी अजीर्ण और दो वटी विचूचिका हैं। हे वृषध्वजः। मृलसहित चित्रक तथा पिप्पलीके चूर्णको (हैजा) नामक रोगको दूर करती है। मधुके साथ इसको मधुमें मिलाकर चाटना चाहिये। यह श्वास, खाँसी और धिसकर नेत्रोंमें लगानेसे पटोल अर्थात परवलके समान हिचकोको नष्ट कर देता है। आयी हुई सूजन दूर हो जाती है। गोमूबके साथ प्रयुक्त चावलके जलमें समान भागमें पिसा हुआ नीलकमल, होनेपर अर्थुद (केंसर) नामक रोगका नाश करती है। यह अर्करा, मधु तथा रक्तकमलका योग रक्तविकारको ज्ञान्त शंकरी वटी नेत्रोंके सभी रोग दूर करती है। करता है।

और प्रियंगुको समान भागमें लेकर उनका चूर्ण बना क्षेत्रा खानेमात्रसे मनुष्यका स्वर कोयलके समान हो जाता है। चाहिये। इस चूर्णका भूप लेनेसे मनुष्य रूप-सन्दर्पसे समन्तित हो जाता है।

सौबोर और सरसोंके योगसे तैयार भूप सर्प, जुएँ, मक्खों है। सुधा, हरिताल, शंखधरम तथा मैनसिलको सेंधा नमक तथा मच्छरोंको विनष्ट करता है।

तथा नमकको गोंदुग्धके साथ ताप्रपात्रमें विसकर सिद्ध हंख, औवलेकी पतियाँ और धातकीके पुष्पीको किया गया अञ्चन नेत्रपोड़ाको दूर करनेका उत्तम योग है। दूधके साथ पीसकर उसे डेड् सप्ताहतक मुखर्गे रखनेसे खाँसी, धास तथा हिचकीका विकार होनेपर हरीतकी, वच, दाँत चिकने, सफेद तथा स्वच्छ और कान्तिसे युक्त हो कृत, त्रिकटु अर्थात् विश्वा, उपकल्याः, मरिख, होग और अते हैं। (अध्याय १७८—१८१)

कृमि नष्ट हो जाते हैं। हे रुद्र! हल्दी, नीमको पत्तियाँ, मैनसिल-चूर्णको मधु तथा घृतमें मिलाकर चाटना चाहिये।

बच, जटामांसी, बिल्ब, तगर, पचकेसर, नागकेसर सोंट, तकरा और मधु मिलाकर बनायी गयी गुटिका

हरिताल, शंखपूर्ण, केलेक पत्तेका भस्म-इनका उबटन लगानेसे बाल गिर जाते हैं। लवण, हरिताल, लीकी अर्जुन-वृक्षके फूल, भिलावा, विद्धंग, बला, राल, और लाक्षरससे युक्त उबटन भी रोम गिरानेका उत्तम योग एवं बकरेके मुख्में मिलाकर पीसकर और उसी क्षण उससे श्रीहरिने पुनः कहा—हे शिव! ताम्बूल, यूत, मधु उचटन करनेसे रोम गिर जाते हैं। यह उत्तम औषधि है।

भोज्य पदार्थीका विहित सेवनकाल, बल-बुद्धिवर्धक औषधियाँ तथा विषदोषशमनके उपाय

वसन्त-ऋतुमें दहीका उपभोग निन्दनीय है तथा हेमना, रुरीरमें लगानेसे मनुष्य कामदेवके सदृश सीन्दर्यसम्पन्न ही शिशिर एवं वर्षा-ऋतुमें दही प्रशस्त होता है-

शरदग्रीव्यवसनीय प्रायशी दिध गहितम्। हेमले शिशिरे चैव वर्षाम् दक्षि शस्यते॥

(16711)

भोजन करनेके पश्चात् नवनीत (मक्खन)-के साथ लर्कराका पान करना बुद्धिकारक होता है। हे जिल। यदि पुरुष एक पल पुराना गुड़ प्रतिदिन (भोजन करनेके पश्चात्) खाता रहे तो वह बलवान् होकर अनेक स्विपोसे सम्पर्क करनेकी क्षमता प्राप्त कर लेता है।

कृष्ठ (कृट)-को पलीभाँति चूर्ण करके युत और मध्के साथ सोनेके समय खानेसे बलीपलित दर हो जाता

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र। प्रायः शरद्, प्रोष्म और है। अलसी, उड्द, गेहूँ तथा पिप्पलीका चूर्ण घृतके साथ जाता है।

यव, तिल, अश्चगन्धा, मूसली, सरला (काली बुलसी) और गृहको परस्पर मिलाकर बनायी गयी कटी खानेसे मनुष्य तरुण तथा बलवान हो जाता है। हींग, काला नमक और सींठका काहा बनाकर पीनेसे परिणाम नामक शुल और अजीर्ज रोग विनष्ट हो जाता है। धातकी (धवका कुल) तथा सोमराजी (औषधि) गोद्गधके साथ पोसकर पान करनेसे दुर्बल मनुष्य भी मोटा हो जाता है र्जाक चाहनेवाले प्राणीको सर्करा तथा मधुके साथ मक्खन खाना चाहिये। क्षयरोगसे पीडित व्यक्तिको दुग्धपान पुष तथा बृद्धिको अत्यधिक प्रखर बना सकता है। गोदुग्धके करता है।

भिलावा, विडंग, यवशार, सेंधा नमक, मैनसिल तथा शंखचूर्णको तेलमें पकाकर अनपेक्षित रोमसमृहोंको हटानेके लिये उसका प्रयोग करना चाहिये।

मुण्डीत्वक् (गोरखमुण्डी), वच, मोधा, काली मिर्च तथा तगरको एक साथ चबाकर मनुष्य तत्काल ही जिहासे अग्निको चाट सकता है। गोरोचन, भंगराजका चर्च एवं छत समान मात्रामें मिलाकर जलस्तम्भन किया जा सकता है।

हे महेश्वर। यष्टि-मध् (मुलेटी) एक पल, उच्च जलके साथ पान करनेसे विष्टम्भिका तथा हृदयञ्चल नामक जंगली अङ्सेकी जङ्को पीसकर प्रसवकालमें स्वीके नाभि रोग नष्ट हो जाता है।

है रुद्र। 'ॐ हूं ज: 'यह मन्त्र सभी प्रकारके विच्छुओंका विष नष्ट करता है। पिप्पली, मक्खन, शृंग्येर, सेंधा नमक, मिलाकर पान करनेसे रक्तांतिसार नामक रोग शान्त हो कालीमिर्च, दही और कृटका नाय लेने तथा उसका पान जाता है। (अध्याय १८२)

साथ पान किया गया कुलीरका चुर्ण क्षयरोगको विनष्ट करनेपर वह विचदोषको दूर करता है। हे शिव! त्रिफला, अदरक, कूट और चन्दनको घुतमें मिलाकर पान करने और लेप करनेसे बिच्छका विष विनष्ट होता है। हे वृषभध्वज! सेंधा नमक और त्रिकटुके चूर्णको दही, मधु तथा घृतमें मिलाकर लेप करनेसे यह बिच्छके विषको दूर कर देता है।

हे रुद्र! ब्रह्मदण्डी और तिलका क्वाध बनाकर उसके साथ त्रिकट (सोंठ, पिप्पली तथा काली मिर्च) का चुर्ण पान करना चाहिये। वह सभी प्रकारके गुल्म एवं ऋतुकालीन अवरुद्ध रक्त-विकारका विनाशक है। मध् मिलाकर दथका पान करनेसे रक्तसावके विकारको दूर किया जा सकता है। एवं गुह्यभागमें लेप करनेसे स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है।

हे वृपध्यज्ञ! चावलके पानीमें शर्करा और मध्

ग्रहणी, अतिसार, अग्निमान्द्य, छर्दि तथा अर्श आदि रोगोंका उपचार

साथ मिलाकर खाना चाहिये। हे हद! निस्संदेह यह विरेचनकारी होता है। त्रिफला, चित्रक, चित्र, कटुकरोहिणीका योग ऊरुस्तम्भ रोगका अपहारक है और यह विरेचनकी भी उत्तम औषधि है। हरीतको, शुगवेर, देवदार, चन्दन, अपामार्ग (चिचडा)-को जडको बकरीके दूधमें पकाकर पान करके ऊरुस्तम्भका विनाश किया जा सकता है अथवा जयन्ती (विष्णुक्रान्ता)-की जडका क्याय पीनेसे भी यह रोग सात दिनमें दर हो जाता है।

अनन्ता (धमासा) और शृंगवेरका समान भागमें चूर्ण बनाकर बराबर मात्रामें ही गुग्गुल और गुड मिला ले. तदनन्तर उसकी गोलियाँ बनाकर सेवन करनेसे स्नायुगत त्रायुविकार तथा अग्निमान्द्र रोग विनष्ट हो जाता है।

पुष्य नक्षत्रमें इंठल एवं पत्तियों-सहित शंखपृष्पीको но по чо зо во-

शीहरिने कहा-हे चन्द्रचूढ। काली पिर्च, शृंगबेर उखाडकर बकरीके दूधके साथ पीनेसे अपस्मार (मिगी)-और कुटजकी छालका पान करनेसे ग्रहणीरोग नष्ट होता. का रोग दूर होता है। समधागर्मे अश्चगन्धा तथा हरीतकीके है। पिप्पली, पिप्पलीमुल, काली मिर्च, तगर, यच, चूर्णको जलके साथ पोनेसे निश्चित हो रक्त-पित-विकारका देवदारुका रस और पाठाको दूधके साथ पीसकर सेंधन विनाश डोता है। हरीतकी और कुटका चूर्ण बनाकर उसकी करनेसे निश्चित ही अतिसाररोग विनष्ट हो जाता है। मुखमें रखना चाहिये। पश्चात् शीतल जल पीनेसे सभी काली मिर्च तथा तिलके पुष्पींका अञ्चन कामलारोगका प्रकारके छाँदै रोग अर्थात् यमन दूर हो जाते हैं। गुड्ची, विनाशक है। हरीतकी और गुड़को बराबर माजामें मधुके पद्यकारिष्ट और नीम, धनिया तथा रक्तचन्दन नामक औषधियोंका योग पितश्लेष्मक ज्वर, छर्दि, दाह और तृष्णाके विकारका विनाशक एवं अग्निवर्धक है, किंतु इन औषधियोंका प्रयोग 'ॐ हूं नमः' इस मन्त्रसे अधिमन्त्रण कानेके पश्चात करना चाहिये-

🕉 जम्भिनी स्तम्भिनी मोहय सर्वस्थाधीन मे वनेण ठः ठः सर्वव्याधीन् मे बन्नेण फर्॥ (१८३। १२)

उपर्युक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित शंखपुष्पीको कानमें चौधनेसे न्दरको दूर किया जा सकता है। हे रुद्र! इसी मन्त्रसे १०८ बार जप करके अधिमन्त्रित शंखपृष्पीको रोगोके हाधमें रखकर वैद्य उसके नाखनोंका स्पर्श करे तो चौदिया च्या अथवा अन्य सभी प्रकारके च्या विनष्ट हो जाते हैं।

जापुनका फल, हल्दी तथा साँपकी केंचुलका थुप

सभी प्रकारके ज्वरोंका विनाशक है। यह भूप तो चौचिया जाता है। ज्वरका भी विनाश कर देता है।

(काकड़ा सींगी) नामक औषधियोंको समान भागमें लेकर सकता है। चौगुने गोमुत्रके साथ तैलपाक सिद्ध करना चाहिये। इस तेलका अभ्यङ्ग पामा, विचर्षिका तथा कुष्टरोगके वजोंको करनेसे प्लीहा आदि रोग विनष्ट हो जाते हैं। सेंधा नमक, दर कर देता है।

भीजन करने तथा सूरणके सेवनसे प्लीहा रोग विनष्ट हो। लेप करनेसे कुष्टरोगका विनाश होता है। (अध्याय १८३)

गोमुत्रके साथ पिप्पली और हल्दीका चूर्ण मिलाकर करवीर (कनेर), भूंगराज, नमक, कूट और कर्कट उसको गुदाह्वारमें डालनेसे अर्श रोग दूर किया जा

बकरोका दूध और अदरकका चूर्ण मिलाकर पान विह्नंग, सोमलता, सरसों, हल्दी, दारुहल्दी, विष और हे रुद्र ! पिप्पली और मधुका संवन करने एवं मधुर नोमको पत्तोको गोमुत्रके साथ पीस लेना चाहिये। इसका

सिध्म, अर्श, मूत्रकुच्छु, अजीर्ण तथा गण्डमाला आदि रोगोंकी औषधियाँ

श्रीहरिने कहा-[हे चन्द्रचूड] हस्दी और कैसेके धारका लेप सिध्मरोगका विनातक है। एक भाग कृट तथा दो भाग हरीतकीका चूर्ण उष्ण जलके साथ पान करनेसे कमरका शुल रोग दूर हो जाता है। हरोतकी, शर्कस और पिप्पलीका चूर्ण नवनीतके साथ सेवन करनेसे वह अर्श-रोगका विनाश करता है। जंगली अइसेक प्लोंको घोमें मन्द-मन्द आँचपर प्रकाकर उसका लेप करना अर्शरींग दूर करनेकी श्रेष्ठतम औषधि है।

गुग्गुल और त्रिफलाका चूर्ण पानकर भगंदर रोगको विनष्ट किया जा सकता है। जीरा, अदरक, दही तथा चावलके माँडको ऑग्नमें पकाकर नमकके साथ सेवन करना चाहिये। इससे मुत्रकृच्छ नामक रोग दूर होता है। यवश्वार तथा शकेरा भी मूत्रकृष्ण्-रोगको दूर करता है।

तिलके तेलमें यवको जलाकर उसको कळली बनानी चाहिये। उसके बाद तिलके ही तेलमें उसकी पिलाकर अग्निसे जले हुए स्थानपर लेप करनेसे लाभ होता है। घीके सहित लाजवन्ती तथा शर्पुखाकी पतियोंका तैयार किया गया लेप भी अग्निचन्य पोडाको दूर करता है। निम्न मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके इस लेपका प्रयोग करना चाहिये-

ॐ नमो भगवते ठ ठ छिन्धि छिन्धि न्वलनं प्रन्वलितं नाशय नाशय है फद् ॥ (१८४। ८)

उसको हाथमें बाँध लेनेसे अर्श रोग निक्षित ही विनष्ट हो बन जाता है।

प्रयोग करके चोर और व्याचादि हिंसक जीवंकि प्रहारसे प्राणी अपनी रक्षा कर सकता है। ब्रह्मदण्डीकी जब्रु तो सभी कर्मोमें सिद्धि प्रदान करनेवाली है।

पुतके साथ सिद्ध त्रिफलाका चूर्ण कुष्ठविनाशक है। पुनर्नवा, बिरुव और पिप्पलीके चूर्णसे सिद्ध पुतके द्वारा हिचकी, श्राम तथा खाँसीको दर किया जा सकता है। इस युतका पान स्वियोंके लिये गर्भकारक होता है।

द्ध और घीके साथ वानरी बीज (केवाँच)-को पकाकर भी तथा शकरामें मिलाकर सेवन करनेसे वीर्य कभी नष्ट नहीं होता।

मधु धृत तथा दुग्धका पान बलीपलित नामक रोगको

है जिल । मधु, युत, गुड़, करेलेका रस और तींबेको एक साथ अग्निमें प्रकानेपर चाँदी बन जाता है। अब आप सोना बनानेकी विधि सुने।

पीले धतुरका पुष्प और सीसा एक पल तथा लाङ्गलिका (करियारी)-की शाखाको एक साथ मिलाकर अग्निमें पकानेपर सोना बन जाता है।

हे हर! धत्तुरके बीजोंसे निकाले गये तेलद्वारा प्रश्वलित दीपकके प्रकाशमें समाधिस्य व्यक्तिको देवता भी नहीं देख पाते।

हे शिव! मनुष्यको मदमस्त हाथीके दोनों नेत्रोंमें हाथमें निर्गुण्डीकी जड़ बाँधनेसे ज्वर बहुत हो शोघ अपने हाथसे काजल लगाना चाहिये। ऐसा करनेपर वह दूर हो जाता है। श्रेत गुज़ाफलको सात खण्ड बनाकर ज्यक्ति युद्धमें विजय प्राप्त करता है और महाबलवान् भी

जाता है। विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) तथा बकरीके मूत्रका दुण्डुभ नामक सर्पके दाँतको मुखमें रखकर मनुष्य

आचारकाण्ड]

जलके बीच भी पृथ्वीके समान ही किसी अन्य विकल्पका आश्रय लिये बिना रह सकता है।

लौहचर्ण और मद्रा पान करनेसे पाण्ड्ररोगका शमन हो जाता है। तण्डुलीयक (चौलाई) तथा गीखरूकी जड़को दूधमें मिलाकर पान करनेसे कामला एवं मुखरोगका विनास होता है। चमेली और बेरकी जडको महेके साथ पीनेसे अजीर्ण रोग दर होता है।

कुशकी जड, बानरीमूल, बकुची तथा कांजीका मित्रित योग दाँतोंके रोगका विनाशक है। इन्द्रवारुणीकी जहको जलके साथ पीनेसे विषादि-दोष नष्ट होते हैं। हे शिव! चम्पाकी जड़को पान करनेसे भी उक्त दोष दर हो सकते 🖁 । कांजीके साथ गुआ (धुँचची)-का चूर्ज मस्तकपर लेप करनेसे सिरका रोग विनष्ट हो जाता है।

बला, अतिबला, मध्यष्टि, रार्करा तथा मधुका पान करके बंध्या स्त्री गर्ध-धारण करनेमें समर्थ हो जाती है। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

धेत अपराजिताको जड, पिप्पली और सेंठिका पिसा हुआ लेप सिरमें लगानेसे शुल नष्ट हो जाता है। निर्गुण्डीकी फुनगौको पोसकर पान करनेसे गण्डमाला नामक रोग दूर हो जाता है।

केतकीके पत्तोंका क्षार गृहके साथ अथवा मट्टेके साथ त्तरपंखाका सेवन करनेसे प्लीहा रोग विनष्ट हो जाता है।

विजीत नोबका निर्यास (गोंद), गुड और घोके साच मिलाकर पान करनेसे वात-पित्तजनित शुल दूर होता है। सींठ, काला नमक तथा होंगका पान इदयरोगका विनाशक है। (अध्याय १८४)

が変われている

गणपतिमन्त्रका औषधिक योग तथा शोध, अजीर्ण, विषुचिका और पीनस आदि विविध रोगोंके उपचार

श्रीहरिने कहा-है रद। 'ॐ गं गणपतये नयः' भगवान् गणेशका यह मन्त्र धन और विद्या प्रदान करनेवाला है। इस मन्त्रका एक हजार आठ बार जप करनेके बाद अपनी शिखाको बाँधनेवाला व्यक्ति वाद-विवादके व्यवहारमें विजय प्राप्त करता है। एक सौ बार इस मन्त्रका जप करनेवाला प्राणी अन्य लोगोंका प्रिय बन जाता है।

काले तिलोंको धृतमें मिलाकर इस मन्त्रसे एक इनार आठ आहुतियाँ देनेसे मात्र तीन दिनमें राजा बशमें हो जाता है। अष्टमी और चतुर्दशी तिधिको उपवास रखकर मनुष्य यदि विधिवत विघनराज गणेशका पूजन करे और तिल तथा अश्चतको मिलाकर एक हजार आठ बार उन्हें आहुति प्रदान करे तो वह युद्धमें अपराजित होता है और सभी लोग उसकी सेवा करते हैं। उपर्युक्त मन्त्रका एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार जप काके अपनी शिखा बाँधनेवाला प्राणी राजकुल तथा वाद-विवादके व्यवहारमें विजय प्राप्त करता है।

भृंगराज, सहदेवी (सहदेई), वचा (वच) और श्रेत अपराजिता नामक औषधियोंके रसका तिलक करके मनुष्य तीनों लीक वशमें कर सकता है।

काकजंधाका मूल और दूधका मित्रित पान शोध रोगका विनाशक है।

अश्चगन्धा, नागवला, गुड तथा उड्डद मिलाकर खानेवाला पुरुष वैसे ही रूप-सौन्दर्यसे युक्त हो जाता है, जैसे नवपुषकोंका सीन्दर्य होता है।

हे स्द्र! लीहवूर्ण और विफलाचूर्णका मधुके साथ प्रयोग करनेसे परिणाम नामक शुलका विनाश होता है। हे युषध्यज होंग, काला नमक और सोंठ-इन औषधियोंके क्वायका पान सभी प्रकारके जुलाँका अपहारक है। सामुद्रलवणसे युक्त अपामार्गकी जड़का सेवन करनेसे अवीर्ण-शृल नष्ट हो जाता है।

हे हुइ। बरगटकी जटाओंका अंकर चावलके जलमें धिसकर मुद्रेके साथ पीनेसे अतिसार रोग दर होता है। अंकोट (अंकोल)-की जड़को आधा कर्ष लेकर चावलके जलमें पीसकर पान करनेसे सभी प्रकारके अतिसार तथा ग्रहणी नामक रोगोंका विनाश होता है। काली मिर्च एक भाग, सोंट दो भाग तथा कटजकी छालका चूर्ण चार भाग गृहमें मिलाकर काढ़ा बनाकर पीनेसे ग्रहणी नामक रोग दूर होता है। हे शिव। धेत अपराजिताकी जड़, हल्दी, सिक्ध, चावल, अपामार्ग (चिचडा) और त्रिकट् (काली मिर्च, सोंठ एवं पिष्पली) नामक उन औषधियोंको पीसकर वटी बन सेना चाहिये। यह वटी निस्संदेह विष्चिका नामक

रोगका विनास करती है।

है भूतेश! त्रिफला, अगरु, शिलाबीत और हरोतकीको रोग दूर हो बाते हैं। समान भागमें लेकर इनके मित्रित चूर्णको मधुके साथ मिलाकर सेवन करनेसे सभी प्रकारके प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं।

मदारका दथ एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर् तिलका तेल एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर, मैनसिल, काली मिर्च तथा सिन्दर एक-एक पल अर्थात् आठ-आठ तोलेका चूर्ण बनाकर ताँबेके पात्रमें रखकर उसको धूपमें मुखा ले। स्नुही (धृहड-सेहुँड)-का दूध और सेंधा नमक मिलाकर इसका सेवन करे तो शुल रोग दूर हो जाता है।

त्रिकट (काली मिर्च, सींठ तथा पिप्पली), त्रिफला, नक्त (कंबा), तिलका तेल, मैनसिल, नीमको पत्ती, चमेलीका पुष्प, सकरीका दूध, बकरीका मूत्र, जंखनाधि और घन्दनको एकमें ही चिसकर बनायी गयी सत्तीसे नेत्रोंमें अञ्चन लगानेसे पटल, काच, पुष्प तथा तिपिर आदि

प्रमेह, मूत्रनिरोध, शर्करा, गण्डमाला, भगंदर तथा अर्श आदि रोगोंका निदान

श्रीहरिने कहा-हे शिव! मधुके साथ गुढुचीका रस पीनेसे प्रमेह रोग विनष्ट हो जाता है। गोहात्सका (जलपिप्पार्थ)-की जड़को तिल, दही तथा भीके साथ पान करनेसे यह वस्तिभागमें अवस्द्ध मूत्रको बाहर करता है। काले नमकके साथ इस जढ़का पान करनेसे हिचकी रोग भी दूर हो जाता है। गोरक्ष अर्थात् गोरखमुण्डी तथा कर्कटी (ककड़ी)-की जडको शीतल जलके साथ पीसकर तीन दिन पीनेसे ही शर्करा नामक रोग नष्ट हो जाता है। ग्रीष्मकालमें मालतीकी जड़को भलीभौति पीसकर शर्करा और बकरीके दूधमें पीनेसे मुत्रनिरोध, शर्करा-विकार और पाण्डु रोग विनष्ट हो जाता है।

ब्रह्मयष्टी अर्थात् ब्राह्मीकी जड़को चावलके पानीमें धिसकर तैयार किया गया लेप असाध्य गण्डमाला तथा गलगण्डक रोगको दूर करता है। हे रुद्र। करबीर (कनेर)-की जड़का लेप तथा सुपारीका लेप भी पुरुषत्वसे सम्बन्धित विकारको नष्ट करता है। अब मैं अन्य औषधिक जलके साथ मिलाकर पान करनेसे भूख बढ़ती है तथ योगोंको कहता है।

दन्तीमूल, हल्दी और चित्रकके लेपसे भगंदर रोग बढ़ती है। (अध्याय १८६)

मधुसे युक्त बहेडेका चूर्ण श्वास रोगका विनाशक होता है। मधु तथा सेंधा नमकसे मिश्रित पिप्पली और त्रिफलाका चुर्च सभी प्रकारके रोगोंसे उत्पन्न होनेवाले ज्वर, श्रास, सोध तथा पानसके विकारको दूर करता है।

देकदार-बुधको छालके चुर्णको इक्कीस बार वकरीके मुत्रसे भावना देकर सिद्ध करना चाहिये। इसका अञ्जन करनेसे रतींथी, पटलता और रोमपतन नामक रोग दूर हो

हे रुद्र। पिप्पली, केतकी, हल्दी, आँवला तथा यचा (वच)-को दुधके साथ पीसकर अञ्चन बनाना चाहिये। इस अञ्चनके प्रयोगसे नेत्रोंके सभी रोग विनष्ट हो जाते हैं।

है शिव। काकजंघा तथा सहिजनकी जड़को मुखर्म रखने या चवानेसे चौतामें लगे हुए की होंका निश्चित ही विनात होता है। (अध्याय १८५) へん がかがら

> विनष्ट होता है। हे उमापते! हे वृषभध्यज! स्नुही (धृहड़-सेहुँड)-के दूधसे अनेक बार भाषित हल्दीकी यटीका लेप अर्थ रोगको दूर करता है। घोषाफल और सेंधा नमकको पीसकर बनाया गया लेप अर्श रोगको नष्ट करनेका श्रेष्टतम यांग है। हे शिख! पलाश और क्षारसे बने क्वायके द्वार शोधित युवपाकमें विगुना मिला हुआ त्रिकटु (काली मिर्च सोंठ और पिप्पली)-का चूर्ण अर्श रोगको विनष्ट करत है। बेलके फलको भूनकर खानेसे खुनी अर्श विनष्ट होत है। मक्खनके साथ काला तिल खानेसे भी खुनी अर्श रोग नष्ट होता है।

> हे वृषभध्वत्र! प्रात:काल यवसार-मित्रित सीठवे चुणंको समान माजामें गुढ़ मिलाकर खानेसे वह जठराग्निक वृद्धि करता है। सींठके चूर्णको काढ़ा बनाकर पान करनेसे भी जठराग्निकी वृद्धि होती है। हे रुद्र! हरीतकी सेंधा नमक, पिप्पलो-इन औषधियोंके चूर्णको गरा मुकाकन्दका रस युवके साथ पान करनेसे अति शुध

आयुवृद्धिकरी औषधिक सेवनकी विधि

मनुष्य हस्तिकर्ण पलाशके पत्तोंका चूर्ण करके सौ पलकी मात्रामें इस चूर्णको दूधके साथ मिलाकर लगातार सात दिनोंतक प्रयोग करे तो वह वेदविद्याविशास्त् सिंहके समान पराक्रमी, पद्मरागके समान कान्तियुक्त तथा सौ वर्षकी आयुमें भी सोलह वर्षका नवयुवक बन सकता है, किंत सतत दग्धपान करना अत्यावस्थक है।

हे शिव। मध् और युत्तसे युक्त दुधका सेवन आयुवर्धक होता है। उक्त हस्तिकर्ण पलाशके चूर्णको मधुके साथ लेनेसे प्राणी दस हजार वर्षकी आयु प्राप्त कर सकता है। यह योग मनुष्यको वेदवेदाङ्गका जाता और प्रमदा- जनोंका प्रिय बनानेमें समर्थ है। इस चूर्णका सेवन दहीके साथ करनेसे शरीर बज़के समान शक्तिसम्पन हो जाता है। केशरसे युक्त इस वूर्णका प्रयोग करनेसे मनुष्य हजार वर्षकी आयु प्राप्त करता है। यदि मनुष्य इस यूर्णको कांजीके साथ मिलाकर खाता है तो केलोंकी सफेदी और त्वचानी शूरिंपोंसे रहित होकर सौ वर्षतक युद्धावस्थासे रहित दिव्य अरीर प्राप्त करता है।

हे वृषभध्यज्ञ। त्रिफला चूर्णके साथ मधुका सेवन नेत्रज्योतिको बढाता है। यीके साथ इस चूर्णको खानेसे अंधा व्यक्ति भी देख सकता है। भैंसके दूधमें मिलाकर तैयार किया गया इस यूर्णका लेप प्राणीके खेत बालोंको

श्रीहरिने कहा—हे शिव! हे वृषभध्यज! हे स्ट्र! यदि काला बना देता है। खल्वाटके बाल भी इस लेपके प्रयोगसे निकल आते हैं। इस चूर्णको तेलमें मिलाकर शरीरमें लगानेसे बाल पकनेका प्रभाव तथा त्वचाकी झरियोंका प्रकोप समाप्त हो जाता है।

इस चर्णका मात्र उबटन लगानेसे सभी रोग दूर हो जाते है। बकरोके दूधमें मिलाकर इस चुर्णका अञ्चन एक मास-पर्यन नेजॉमें लगानेसे निर्वल दृष्टि सबल हो जाती है।

ब्रावणमासमें छिलकेसे रहित पलाशके बीजोंको लेकर उनका चूर्ण मक्खनके साथ आधे कर्पको मात्रामें खाना चाहिये। भगवान् इरिको नित्य प्रणाम करके इस चुर्णका सेवन करना चाहिये। हे हर! इसके सेवनके पश्चात जल पीते हुए पुराने साठी चावलका भात पथ्य है। इस योगका पासन करनेवाला व्यक्ति वृद्धावस्थासे रहित होकर एक हजार वर्षतक जीवित रह सकता है।

पृथ्यनक्षत्रमें भृंगराजकी अहको लाकर उसका चूर्ण बनाना चाहिये। यदि प्राणी कांजीके साथ उस चुर्णका सेवन करे हो मात्र एक मासमें वह बलीपलित रोगसे रहित हो जाता है। इसका बराबर प्रयोग करनेसे मनुष्य पाँच सी वर्षतक जीवित रह सकता है और वह हाथीके समान शक्तिसम्पन हो जाता है। हे हद! पुष्यनक्षत्रमें ही इस औषधिका प्रयोग करनेपर प्राणी सृतिधर अर्थात बेद-वेदाङ्का जाता यन जाता है। (अध्याय १८७)

-- TOTAL

वण आदि रोगोंकी चिकित्सा

ब्रीहरिने कहा—हे रुद्र! प्रहारसे हुआ यात्र और धावमें भरनेसे भी नाड़ीका क्रण सुख जाता है। मवादयुक्त फोडा घीके प्रयोगसे ठीक हो जाता है। दोनों हाधोंसे अपामार्गको जड़ मलकर उसके रससे चोटके धावको भरनेपर रक्तसाव रुक जाता है। हे शंकर! लाङ्गलिका मूल तथा इक्षुदर्भ नामक औषधिको पीसकर उसके लेपसे शल्य-काँटायुक्त व्रणका मुख संलिपा करनेपर काँटा निकल जाता है तथा बहुत दिनोंका गड़ा हुआ भी काँटा घावसे बाहर हो जाता है।

नाडीके घावमें बालमूल (मोधा)-की जड़को अथवा मेषभुद्धी (मेदासिंगी)-की जढ़ जलमें विसंकर उसका लेप लगानेसे पुराना याव भी सुख जाता है। भैसके दहीमें कोदोका भात मिलाकर खानेसे और होंगकी जडका चर्न

बाह्यीके फलको जलके साथ पीसकर और रगड़कर लेप करनेसे रकदाप सान्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। हे शंकर। सहिजनका बीज, अलसी और सफेद सरसोंको जम्लरहित मट्रेमें पीसकर उसका लेप ग्रन्थिक रोगपर लगानेसे वह रोग निश्चित ही नष्ट हो जाता है। श्वेत अपराजिताकी जड चावलकी धोवनमें पीसकर उसका नस्य लेनेसे भूत भाग जाते हैं।

हे छिव! काली मिर्चक साथ अगस्त्य-पृष्पके रसका नस्य ज्ञुल रोगका विनाशक है। सौंपकी केंचुल, हींग, नीमकी पत्ती, यब तथा सफेद सरसों लेकर इनका लेप करनेसे भूत-क्रेक्की बाधा दर हो जाती है। हे शिव! गोरोचन, मरिच, औंखमें आँजनेसे प्रेतबाधा दर हो जाती है। गुग्गुलकी धृष ज्वर दूर हो जाता है। (अध्याय १८८)

पिप्पली, सेंधा नमक और मधु—इन सभीका अञ्चन बनाकर यह-बाधाका नाशक है। काले वस्त्रको ओदनेसे चौथिया

पटल आदि नेत्ररोग, गुल्म, दन्तकृमि, विविध ज्वर तथा विषदोष-शमनके उपाय

श्रीहरिने कहा-हे नीललोहित! श्रेत अपराजिता-पुष्पके रसको नेत्रोंमें डालनेसे पटल नामक नेत्ररोग नष्ट हो जाता है। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। हे सरासरविमर्दन शिव। गोखरूकी जड चवाकर दौतामें लगे हुए कीटोंकी व्यथाको दूर किया जा सकता है।

यदि ऋतुकालमें उपवासपूर्वक स्त्री गोद्ग्धके साथ मन्दारवृक्षकी जहको पीसकर पान करती है तो उसके शरीरमें होनेवाला गुल्म और शुलविकार विनष्ट हो जाता है।

हे हर। पलाश अथवा अपामार्गको जह हाथमें बाँधनेपर सभी प्रकारके व्यर्गेका चिनाश होता है तथा भूत-प्रेत आदिके द्वारा उत्पन्न होनेवाला कष्ट भी नहीं होता। हे परमेश्वर। वृश्चिकमुल अर्थात् विकिया-वृश्वको जहको बासी जलके साथ पीसकर प्रात:काल सेवन करनेसे दाहरूर दूर किया जा सकता है। इसकी जड़को शिखाने बॉंधनेसे एकाहिक आदि जो ज्वर हैं, वे भी विनष्ट हो जाते हैं। उस जड़को बासी जलके साथ पीसकर पीनेसे सभी प्रकारका विषदोष विनष्ट हो जाता है।

जो मनुष्य पाड़ा (पाठा)-को जड़को पीसकर गोपुतके साथ पान करता है, उसका सभी प्रकारका विपदीय दूर हो जाता है। रक्तवर्णवाले चित्रक युक्षको जडको पीसकर कानोंमें डालवेसे कामला रोग विनष्ट हो जाता है, इसमें शंका नहीं है।

श्रेत कोकिलाश (श्रेत तालमखाना)-की जडको पोसकर बकरीके दूधमें तीन सप्ताहतक पान करनेसे क्षय रोग विनष्ट हो जाता है। मारियल-वृक्षके पुष्पको बकरीके दधमें मिलाकर पान करनेसे तीनों प्रकारका रक्तवात-विकार नष्ट हो जाता है।

सुदर्शन-वृक्षको जडको मालाके मध्य पिरोकर कण्ठमें धारण करनेसे प्र्याहिक (तिजरिया) आदि ज्वर तथा ग्रह एवं भूतादिक व्याधियाँ विनष्ट हो जाती है।

हे हद! श्रेत गुजा-वृक्षके पुष्प तथा मूलको लेकर अपने मुखमें रखनेसे नाना प्रकारके विचोंका विनास हो जाता है। इस औषधिको जहको हाथ और कण्टमें धारण करनेपर ग्रहादिक दोप दूर होता है। है नीललोहित। कृष्णपक्षको चतुरंशो तिधिको लाघी गयी इस औषधिकी जहको कटिप्रदेशमें बीधकर सिंह आदि हिंसक पशुओंके भवको दूर किया जा सकता है।

हे ईस्। विष्णुकान्ता (अपराजिता)-की जहको रेशमी सुतमें बाँधकर कानमें भारण करनेसे मगरमच्छादिक जन्तओंका भय नहीं रहता। (अध्याय १८९)

गण्डमाला, प्लीहा, विद्रधि, कुष्ठ, दहु, सिघ्म, पीनस तथा छर्दि आदि विविध रोगोंका उपचार और सुगन्धित द्रव्योंके निर्माणकी विधि

श्रीहरिने कहा- हे ईश्वर! गोमूत्रके साथ अपराजिताकी जढ़ पीनेसे गण्डपाला रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। इन्द्रवारुगीकी भी जड़ पीनेसे इस रोगका विनात होता है। जिङ्गणी (मंजीठ), एरण्ड तथा जुकतिम्बी (केवींच)-को मिलाकर शीतल जलयुक्त लेप लगानेसे धुजाओं में होनेवाली व्यथा और गर्दनको व्यथा दूर हो जाती है।

भैंसका मक्खन, अश्वगन्धा, पिप्पली, वचा (वच) और दोनों प्रकारका कृट एकमें मिलाकर बनाया गया लेप लिङ्गस्रोत तथा स्तनगत दु:खोंका विनाशक है।

कुट और नागबलाके चुर्णको मक्खनमें मिलाकर सिद्ध

किया गया लेप युवतियोंके वक्ष:स्थलको सुढौल, ओजगुणसे सम्पन्न तथा सुन्दर बनाता है।

इन्द्रवारुणीको जड् उद्याहकर रोगीका नाम लेकर दूरसे ही उसके प्रति फेंक दिया जाय तो रोगीका प्लीहा रोग दूर हो जाता है।

चावलके धोवनमें श्रेत पुनर्नवाकी जड़ पीसकर पीनेसे निश्चित हो विद्रिधि रोग नष्ट हो जाता है। इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। केलेका पत्ता और यवधार जलमें सिद्ध करके तैयार किया गया पेय पीनेसे उदरजनित समस्त विकार दूर हो जाते हैं। केलेकी जढ गुड़ और घीमें मिलाकर, ऑग्नपर पकाकर खाया जाय तो वह उदरजनित गोबरमें मिलाकर मन्द-मन्द औंचपर सिद्ध करना चाहिये, कुमियोंको बिनष्ट कर देता है।

प्रतिदिन प्रात:काल आँवले और नीमकी पतियोंका चूर्ण भक्षण करनेसे कुछ रोग दूर हो जाता है। हरीतको, विडंग, हल्दी, श्रेत सरसों, सोमलताकी जड, कंजेकी जड़ और सेंधा नमकको गोमूत्रमें पोसकर एक सिद्ध-योग बनान्ड चहिये। ये सभी औषधियाँ कुछ रोगको दर करनेवाली है।

एक भाग त्रिफला, दो भाग हरीतको और सोमलताके बीजोंको खाना चाहिये। इस पध्यसे दह रोग नष्ट हो जाता है। गोम्त्र और नमकसे युक्त खड़े महेका क्वाध बनाकर उसको काँसेके पात्रमें धिसकर लेप करनेसे कुछ और दह दोनोंका विनाश होता है। हल्दी, हरिताल, दूर्वा, गोमूत्र तथा सेंधा नमक मिलाकर तैयार किया गया लेप दह, पामा और गर नामक रोगको दूर करता है।

हे रुद्र। सीमलताके बीजोंका वुर्ण और मक्खनका मधुके साथ सेवन करना चाहिये। ये औषधियाँ धेत कृष्ट रोगका विनाश करनेवाली हैं। इनके प्रयोगमें मट्टेके साथ चावल आदिका भोजन पथ्य है। हे हर। श्रेत अपराजिताको जडको उसीके रसके साथ पीसकर किया गया उसका लेप एक मासमें श्रेत कुष्टको विनष्ट कर देता है।

हे व्यथध्वज। पामा और दुर्नामा नामक कृष्ठका विनाश काली मिर्च और सिन्द्रसे युक्त भैसके मक्खनका लेप लगानेसे होता है।

है ईश्वर! श्वेत गम्भारी (शतावरी)-की जड़का गोदुग्धके साथ पाक सिद्ध करके उसको खाना चाहिये। यह पाक शक्लिपत रोगका विनातक है। हे रुद्र। मुलीके बीजोंको अपामार्गकी जडके रसमें मिलाकर लगाये गये लेपसे सिध्य रोग विनष्ट होता है। केलेका क्षार और हस्दीका लेप भी सिध्म रोगका विनाशक है। हे महादेव ! केला और अपामार्गका क्षार एरण्ड तेलमें मिलाकर उस लेपका अभ्यक्न (मालिश) करनेसे तत्काल सिध्य रोग नष्ट हो जाता है।

हे वृषभध्वज! गोमुत्रसे युक्त कृष्माण्ड (कुम्हड़ा)-के नालका क्षार और जलमें पीसी गयी हल्दीको भैसके उसका उबटन लगानेसे शरीरका सौन्दर्य बढ़ जाता है। तिल, सरसों, दारुहल्दी, हल्दी और कुट नामक जो औषधियाँ हैं, उनका उबटन बनाकर जो पुरुष अपने करोरमें लगाता है, वह दुर्गन्थसे रहित होकर सुगन्धित हो उठता है। दुवाँ, काकजंघा, अर्जुनके पुष्प, जामुनकी पत्तियाँ तथा लोध-पुत्र-इन सभीको एकमें मिलाकर पीस लेना चाहिये। इसका प्रतिदिन प्रयोग करनेसे शरीरको दुर्गन्य दूर हो जातो है और वह मनोहर हो जाता है। लोध-पुष्प तथा जलमें पीसकर तैयार किया गया धत्तक चुणेके लेपका उबटन लगानेसे मनुष्यके शरीरमें स्थित ग्रीष्मबाधा दूर हो जाती है। प्रात:काल गरम दूधकी भाषसे शरीर-सेंक करनेपर धर्मदोष (उनेदाधिक्य) नष्ट हो जाता है। काकर्जधाका उबटन करीरके लिये सुन्दर अनुलेपन द्रव्य है।

मुलेटी, शर्करा, अइसका रस और मधुका सेवन करनेसे रक-पित कामला और पाण्ड रोगका विनाश होता है। अइसका रस और मधु पीनेसे रक्त-पित-विकार दूर हो जाता है। प्रात:काल मात्र जल पीकर भयंकर पीनस रोगको दूर

करना चाहिये। हे महेश्वर। बहेडा, पिप्पली और सेंधा नमकका चूर्ण, कोजीके साथ पान करनेसे मनुष्यका स्वरभेद दूर हो जाता है। इस दोषके होनेपर मैनसिल, बलायुल, बेरकी पत्ती, गुग्गुल तथा औवलेका चूर्ण गोदुग्धमें मिलाकर पान करना चाहिये।

हे परमेश्वर! चमेलीकी पत्ती, बेरकी पत्ती और पैनसिल-इनकी **बती बनाकर उसे बेरकी अ**ग्निमें सेंककर ध्यपान करनेसे कास ग्रेग दूर हो जाता है। त्रिफला और पिप्पलीका वर्ण मध्के साथ खाना चाहिये। भीजन करनेके पूर्व मधुके साथ प्रयुक्त यह औषधिक योग प्यास और प्यरके दोषको शान्त करता है। बिल्वकी जह तथा गुड्चीका क्वाय मधुके साथ पान करनेसे तीनों प्रकारके छाँदें रोग विनष्ट हो जाते हैं। चावलके भोवनमें दुवारसको मिलाकर पीनेसे भी छर्दि रोग दूर हो जाता है। (अध्याय १९०)

सर्प, बिच्छू तथा अन्य विषैले जीव-जन्तुओंके विषकी चिकित्सा

श्रीहरिने कहा-हे वृषध्वज! पुष्यनक्षत्रमें पुनर्नवाको तार्स्य (गरुड)-को मूर्ति बनाकर धारण करता है, वह श्रेत जड लाकर जलके साथ पीनेसे पीनेवालेके आस-पास सपाँके लिये जीवनपर्यन्त अदृश्य हो जाता है। हे रुद्र! और घरोंमें सर्प नहीं आ सकते। जो मनुष्य भालुके दाँतमें जो मनुष्य पुष्यनक्षत्रमें सेमरकी जडको जलमें पीसकर पी प्रहार व्यर्थ हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। पुष्पनक्षत्रमें हरिताल, मैनसिल, कंजा और मन्दार-पृक्षकी जड़ पीसकर लाजवन्तीको जड हाथमें बौधनेसे अधवा उसके लेपको लगाकर भी सर्पोंको पकड़ा जा सकता है। इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। पुष्पनक्षत्रमें लायी गयी सफेद मन्दारकी जड़को शीतल जलमें पीसकर पान करनेसे सर्परंश तथा करवीर आदिका विष नष्ट हो जाता है। कांजीके साथ महाकालकी जड़ पीसकर दसका लेप दंश-भागपर लगानेसे बोड़ (गोनस) तचा डुंड्स (पनिहा) सपौका विष दूर होता है।

साथ पान करनेपर सभी प्रकारके विष नष्ट हो जाते हैं। नीली तथा लाजवन्तीको जड पृथक्-पृथक् अचवा संपृक-रूपसे चावलके धोवनमें पीसकर पान करनेपर सभी प्रकारके सपेंकि दंशका विष नष्ट हो जाता है। गुढ़, शकेरा तथा दरधमित्रित कृष्याण्डके रसका पान सर्पदेशके विषको दर कर देता है। कोदोको जढ पीसकर फन करनेसे विषकी मुख्डों दर हो जाती है। मुलेठीके चूर्णसे युक्त शर्करा और दूध तीन रातलक पीकर चुड़ेके विषको दूर किया जा

चीलाईके मुलको चावलके धोवनमें पीसकर चौके

कारण जलनयुक्त मुँहसे बहनेवाली लार बंद हो जाती है। शर्करासे पुक्त धृतका पान करनेसे मद्यका मद नहीं होता। हे महेश्वर! कृप्या (काली तुलसी) और अंकोलको है, इसमें संदेह नहीं है। जडके क्याधको तीन राततक पीनेसे सामान्य अथवा कृतिम

सकता है। तीन चुल्लू शीतल जल पीनेसे ताम्बूल खानेके

विषका प्रभाव नष्ट हो जाता है। सेंधा नमकके साथ गरम लेप करनेसे मोडेके शरीरकी खुजलो दस दिनमें दूर हो गोधतका पान बिच्छके डंक मारनेसे शरीरमें उत्पन्न विषकी जाती है। (अध्याय १९१)

श्रीहरिने कहा-[हे हर!] चित्रक आठ भाग, जुरण

(सूरन) सोलह भाग, सोंठ चार भाग, काली मिर्च दो भाग, पिप्पलीमुल तीन भाग, सिडांग चार भाग, मुझली आठ भाग, और त्रिफला चार भाग लेकर इनके दुगुने गुडके साथ मोदक बनाना चाहिये। इसके सेवनसे अजीर्ण, पाण्ड, कामला, अतिसार, मन्दाग्नि और प्लोहा नामक रोगोंको दूर किया जा सकता है।

बिल्व (बेल), अग्रिमन्थ (गनिवारी), श्योनाक (सोना पाढ़ा), पाटला (पाढ़र), पारिभद्रक (नीम),

लेता है, उसके ऊपर किया गया विषेले सर्पोंक दौतोंका वेदनाको दूर करता है। हे शिव! कुसुम्भ (कुसुम), कुंकुम, पान करनेसे मनुष्योंमें चड़ा हुआ सर्प या बिच्छ्का विष नष्ट हो जाता है। हे हर! दीपकका तेल लगानेसे सामान्य ततैया आदि कीटोंका विष दूर हो जाता है। इससे कनखजूरेका

भी किथ नष्ट हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। बिच्छूके डंक लगे हुए स्थानपर सींठ तथा तगरका लेप लगानेसे विष नष्ट हो जाता है। इसी लेपसे मधुमबखीके उंकका भी विष

टूर किया जा सकता है तथा सोया, सेंधा नमक और घुतका मित्रित लेप लगानेसे भी वह विष दूर हो जाता है। है महादेव! शिरीपके बीजोंको गरम दूधमें विसंकर उसका लेप लगानेसे कुत्तेका विष नष्ट हो जाता है। प्रज्वलित अग्नि

और उच्च जलसे सेंकनेपर मेदकका विष दूर हो जाता है। हे चन्द्रचूड ! धतुरके रससे मिक्षित दूध, थी और गुड़का पान कृतेके विषको नष्ट कर देता है।

बरगद, नीम और शमी वृक्षकी छालके क्वाथसे सेंक करनेपर मुख और दाँतको थिय-वेदना नष्ट हो जाती है। देवदारु और गैरिकके चूर्णका लेप करनेसे भी इस विपको

शान्त किया वा सकता है। हे हर! नागेश्वर, दारुहल्दी, हल्दी तथा मजीठके मिजित लेपसे लुता (मकडी)-के काटनेका विष दूर होता है। कंजेके बीज, बरुण-वृक्षके पत्ते, तिल और सरसोंका पिसा हुआ क्षेप भी विश्वको दूर कर देत

हे हर! नमक और मृतसे युक्त मृतकुमारीके पत्तेका

विविध स्नेह-पाकोंद्वारा रोगोंका उपचार, स्मरण तथा मेधाशक्तिवर्धक ब्राह्मी-घतादिके निर्माणकी विधि

प्रसारिणी (गन्धप्रसारिणी), अश्वगन्धा, बृहती, कण्टकारी, बला, अतिबला, रास्ना (सर्पसुगन्धा), धर्दशा (गोखरू), पुनर्नवा, एरण्ड, ज्ञारिका (अनन्तमूल), पर्णो (शालपर्णी), गृह्वी, कपिकच्छका (केबाँच) नामक इन औषधियोंको दस-दस पलको मात्रामें एकत्र करके शुद्ध जलमें पकान चाहिये। जब उस जलका चौथाई भाग शेष रह जाय ते उससे तेलको सिद्ध करे। यदि बकरीका दुध अथवा गौक

दध हो तो उसको उस तैलपाकमें चौगुना मिलाकर तेलक माजाके समान जातावरी और सेंधा नमक भी मिलाये। इस प्रकार तैलपाकको सिद्ध करनेके पश्चात् उस तेलमें शतपुष्पा जाता है और वंध्या स्त्रो भी पुत्र प्राप्त कर सकती है। (सोया), देवदारु, बला, पर्जी, क्वा (क्व), अगुरु, कुष्ठ (कृट), जटामांसी, सेंधा नमक और पुनर्नवा एक-एक पल जीरा, काला नमक, विडंग, पिप्पलीमूल तथा राजिक (रा पीसकर मिलाना चाहिये। इस तेलका प्रयोग पीने, नस्य लेने तथा शरीरमें मर्दनके काममें करना चाहिये। इसके प्रयोगसे हृदयगत शुल, पार्श्वशूल, गण्डमाला, अपस्मार और वातरक नामक रोग दूर हो जाते हैं तथा शरीर शोधा-सम्पन्न हो जाता है। हे हर! इस तेलके प्रयोगसे खजरों भी गर्भ-धारण कर सकती है, स्त्रीके विषयमें तो कहना ही क्या? घोड़ा, हाची और मनुष्योंमें वात-दोष होनेपर इस तेलका प्रयोग करना चाहिये। इतना ही नहीं सभी वात-विकारसे यस्त प्राणियंकि लिये इसका प्रयोग लाभप्रद है।

हिंगु (हींग), तुम्बुरु (धनिया) और शुष्ठी (स्रोंठ)-के द्वारा सरसीका तेल सिद्ध करना चाहिये। इस तेलको कानमें बालनेसे कर्णशूल शाना हो जाता है। सूखी मूली तथा सोंठका क्षार, हींग और हल्दीका चूर्ण समधागर्मे लेकर उसके चौगुने मद्देके साथ पूर्ववर्णित सरसाँके तेलमें पकाना चाहिये। इस तेलको कानोंमें डालनेसे उनके अंदर उत्पन्न बहरापन, शूल, मवादका साथ और कृमिदोष विनष्ट हो जाता है।

सुखो मुली और सींठका क्षार तथा हींग, हल्दी, सोया, वय, कृट, दारहरूदी, सहिजन, रसाक्रन, काला नमक, यवक्षार, समुद्रफेन, सेंधा नमक, ग्रन्थिक, विशेंग, नागरमोधा, मधु, चार गुना शुक्तिभस्म, विजीश नीवृका रस और कैलेका रस लेकर इन्होंसे सरसोंका तेल सिद्ध करना चाहिये। यह सिद्ध तेल कर्णशूल दूर करनेका अत्युतम उपाय है। है हर। कानमें इसकी डालनेसे बहरापन, कर्णनाद, पीबस्ताव तथा कृषिदीय सद्य: विनष्ट हो जाता है। इसका नाम क्षारतेल है। इस तेलमें मुख तथा दाँतोंकी गंदगी भी दूर हो जाती है।

चन्दन, कुंकुम, जटामांसी, कपूर, चमेलीकी पत्ती, चमेलीका फूल, कंकोल, मुपारी, लींग, अगर, कस्तूरी, कृष्ठ, तगर, गोरोचन, प्रियंगु, बला, मेंहदी, सरल, सप्तपर्णी, लाक्षा, आँवला और एक कमल-इन औवधियोंको एकत्रकर इनसे तेल सिद्ध करना चाहिये। यह पसीनेके कारण शरीरमें उत्पन्न होनेवाले मल, दुर्गन्य तथा खुजली और कुष्ठको दूर करनेवाला ब्रेष्टतम औषध है। हे रुद्र। इस तेलका प्रयोग करनेसे पुरुष अधिक पुरुषत्व-सम्पन्न हो

यदि यवानी (अजवायन), चित्रक, धनिया, त्रिकटु सत्सों) नामक और्षाधवोंद्वारा आठ प्रस्थ जलसे युक्त एक प्रस्य युतका शोधन किया जाय तो यह सिद्ध युत अर्श गुल्म तथा शोध रोगोंका विनाश करता है और जठराग्निको उद्दोप्त करता है।

काली मिर्च, निशोत, कूट, हरिताल, मैनसिल, देवदार,

हल्दी, दारहल्दी, जटामांसी, रक्तचन्दन, विशाला (इन्द्रवारुणी) कतेर, मन्द्रारदुग्ध और गोबरका रस एकत्रकर—इन औषधियोंकी मात्रा एक-एक कर्ष अर्थात् दो-दो तोला हो, किंतु जे औषधियाँ विषेती हैं, उनकी मात्रा आधा पल अपेक्षित है-इन सभी औषधियोंके द्वारा आठ प्रस्थ गोमुत्रके साथ एक प्रस्य सरसोंका तेल मिट्टीके पात्र अचना लौहपात्रमें भरका मन्द-मन्द अर्थेचपर प्रकाये। जब यह सिद्ध हो जाय तो इस केलके अध्यहसे फाय, विचर्चिका, दूद, विस्फोटक आदि रोग नक्ष हो जाते हैं और रूप स्थानॉपर सुद्ध एवं कोमल त्यच आ जाती है। अत्यधिक मात्रामें पहलेसे फैले हुए पुराने श्रेर कुष्ठको भी इस हेलके प्रयोगसे नष्ट किया जा सकता है है शिव। परवलको पत्ती, कट्रको, मंजीठ, अनन्तपूल, हल्दी, चमेलीको पत्ती, शमीको पत्ती, नीमको पत्ती और

गृहुची, जंगली अहसा और वकुची नामक औषधियोंको समानरूपसे एक-एक अब (पल)-की मात्रामें एकत्र करके उनसे एक प्रस्थ भूतको यथाविधि सिद्ध करन चाहिये, साथ हो कण्टकारीका रस एक प्रस्थ तथा गोदुग्ध भी एक प्रस्य मिलाना चाहिये। इस धृतपाकका नाम ब्राड्योपुत है। यह स्मृति और मेधाशक्तिको बढ़ानेवाला है अग्निमन्य (गनियारी), क्या, वासा (अहसा), पिप्पली,

मध् तथा सेंधा नमक सात रात सेवन करनेसे मनुष्य

किसरेकि समान मधुर गीत गानेवाला हो जाता है।

मुलेटीके क्वाचसे सिद्ध मृतका लेप करनेसे व्रण पीड़ारहित

हो जाता है और उसका बहना भी बंद हो जाता है।

शंखपुष्पो, बचा, सोमलता, ब्राड्डी, काला नमक, हरीतकी,

समान भागमें गृहीत अपामार्ग, गुढ्ची, वचा, कृट, रुटावरी, शंखपुष्पी, हरीतकी और विडंगके चूर्णको समान भाग भूतके साथ सेवन करनेसे मात्र तीन दिनमें वह मनुष्यको एक सौ आठ ग्रन्थोंको कण्डस्थ करनेकी बमतावाला बना देता है। जल, दूध या पुतके साथ एक मासपर्यन्त सेवन की गयी वचा तो मनुष्यको श्रुतिधारक गोखरू, सेंधा नमक, त्रिकटु, वचा, काला नमक, देवदारु विद्वान् बना देती है। चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहणके अवसरपर दुधके साथ एक पल सेवन की गयी वचा मनुष्यको उसी समय श्रेष्टतम प्रज्ञावान बना देती है।

चिरायता, नीमकी पत्ती, त्रिफला, पित्तपापडा, परवल, मोथा और अड्सासे बने हुए क्वाथका पान विस्फोटक वर्णों और रक्तस्रावको विनष्ट कर सकता है। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

केतकीका फल, शंखभस्म, सँधा नमक, विकट (काली मिर्च, सोंठ तथा पिप्पली), वचा, समृद्रफेन, रसाञ्चन, मध्, विडंग और मैनसिल नामक और्वाधयोंको एकमें मिलाकर बनायी गयी बत्तीका नेत्रोंमें प्रयोग करनेसे काच, तिमिर तथा पटलदोष नष्ट हो जाते हैं।

दो प्रस्थ अर्थात् आठ सेर उड़द लेकर उससे एक द्रोण अर्थात् सोलह सेर जलमें क्वाथ बनाना चाहिये. चौथाई भाग शेष रहनेपर उस ब्लाधके द्वारा एक प्रस्य अर्थात् चार सेर तेलका पाक करे। तदनन्तर उसमें एक आवक अर्थात आठ सेर कांजी मिलाकर पिसे हुए पुनर्नजा.

मंजोड और कण्टकारी ओषधियोंका चूर्ण मिश्रित करन चाहिये। हे महेश्वर! इस औषधका नस्य लेनेसे और पान करनेसे भयंकर कर्णशुल नष्ट हो जाता है। इसके अभ्यक्तसे अर्थात् मालिश करनेसे कानोंका बहरापन एवं अन्य सर्भ प्रकारके शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं।

दो पल सेंधा नमक, पाँच पल सोंठ और चित्रक, पाँच प्रस्य कांजी तथा एक प्रस्थ तेलको एकमें पकाना चाहिये जब यह पाक सिद्ध हो जाय तो इसके नस्य, पान एव अभ्यङ्गसे असुग्दर (प्रदर), स्वरभंग, प्लीहा और सभी प्रकारके वात रोग विनष्ट हो जाते हैं।

गुलर, बरगद, पाकड, दोनों प्रकारके जामून, दोनों प्रकारके अर्जुन, पिप्पली, कदम्ब, पलाश, लोध, तिन्दुक, महुआ, आम, राल, बेर, कमल, नागकेशर, शिरीप और बीजङ्कतक- इनको एकमें मिलाकर नवाध बनाना चाहिये तदनन्तर उस क्वाचसे तैलपाक सिद्ध मारे। इस सिद्ध तेलका लेप करनेसे अत्यन्त पुराने ग्रण नष्ट हो जाते हैं। (अध्याय १९२)

बुद्धि-शुद्धकर ओषधि, विविध अध्यङ्गों एवं उपयोगी चूर्णोंके निर्माणकी विधि, विरेचक द्रव्य तथा औषध-सेवनमें भगवान् विष्णुके स्मरणकी महिमा

श्रीहरिने कहा-(हे हर !) प्याज, जीरा, कूट, अश्रमञ्चा, प्रयोग करे तो निश्चित ही पामा, कुछ, खुजली ठीक हो अजवायन, बचा, त्रिकटु और सेंधा नमकसे निर्मित ब्रेष्ट चुर्णको ब्राह्मीरससे भावित करके युत तथा मधुके साथ मात्र एक सप्ताह प्रयुक्त करनेपर यह मनुष्यकी बृद्धिको अत्यन्त निर्मल बना देता है।

सरसों, बचा, हींग, करंज, देबदार, मंत्रीठ, विफला, सोंठ, शिरीष, हल्दी, दारहल्दी, प्रियंगु, नीम और त्रिकटुको गोमुत्रमें घिसकर नस्य, आलेपन तथा उबटनके रूपमें प्रयुक्त करना हितकारी होता है। यह अपस्मार, वियोन्साद, शोध तथा ज्वरका विनाशक है। इसके सेवनसे भूट-प्रेतादि-जन्य तथा राजद्वारीय भय विनष्ट हो जाता है।

नीम, कूट, इल्दी, दारुइल्दी, सहिजन, सरसोंका तेल, देवदार, परवल और धनियाको मट्टेमें चिसकर उचटन बना

लेना चाहिये। तदनन्तर शरीरमें तेल लगाकर इस उबटनका

सामुद्र लवण, समुद्रफेन, यवधार राजिका (गौरसर्थप),

नमक, विडंग, कटुकी, लीहचुर्ण, निशोध और सुरन-इन्हें समान भागमें लेकर दही, गोमूत्र तथा दुधके साथ मन्द-मन्द औचपर पका करके जलसे पान करना चाहिये। यह चुणं अग्नि और बलवर्धक है। पुराना अजीर्ण रोग होनेपर इस वुर्णका सेवन जटामांसी आदिसे युक्त घृतके साथ करना चाहिये। यह इस रोगको उत्तम ओषधि है। यह चूर्ण गाभिज्ञल, मुत्रशुल, गुल्म और प्लीहाजन्य जो भी जुल हैं, उन सभी जुलोंको विनष्ट करनेवाला है। यह जठराग्निको उद्दोप्त कर देता है। परिणाम नामक शुलमें तो यह परम डितकारी है।

हरीतको, औवला, द्राक्षा, पिप्पली, कण्टकारी, १-एक सेर चावलको हाँडियामें अच्छी तरह पकाकर ठंडा करे। उसमें चार किलो पानी ढालकर मोटे कपडेसे मुख बंदकर जमीनमें दककर

रखे। सात दिन बाद पानी छानकर निकाल ले, होएको फेंक दे, उसीको 'कांगे' कहते हैं।

रोग विनष्ट हो जाता है।

तथा शर्कराका चुर्ण खानेसे ज्वर रोग दूर हो जाता है। विष्णुका स्मरण करते हुए ओषधिका सेवन करनेसे रोग नष्ट त्रिफला, बेर, द्राक्षा और पिप्पलीका चुर्च विरोधक होता है। हो जाता है। उनका ध्यान, पूजन और स्तवन करते हुए हरीतकी. गरम जल और नमकका सेवन करनेसे भी ओषधिसेवन करना निश्चित ही लाभदायक होता है। इसमें विरेचन होता है।

काकड़ासिंगी, पुनर्नवा और सींठके चूर्णको खानेसे कास श्रीहरि बोले-हे उमापते। मेरे द्वारा कही गयी रे जितनी भी ओपधियाँ हैं. वे समस्त रोगोंको वैसे ही नष्ट कर समान भागमें हरीतकी, आँवला, डाक्षा, पाढ़ा, बहेडा देती हैं, जैसे इन्द्रका वज्र बुक्को नष्ट कर देता है। भगवान विचार करनेको आवश्यकता नहीं है। (अध्याय १९३)

いの知识はないい

व्याधिहर वैष्णव कवच

विनशक, कल्याणकारी उस वैष्यव कवचको बताउँगा. चर्मभागको रक्षा करें। भगवानको वनमाला मेरे कण्डप्रदेशके जिसके द्वारा प्राचीन कालमें दैत्योंको विनष्ट करते हुए नीचे अन्त:करणतक और उनका श्रीवल्स मेरे अधोधागकी भगवान शिवकी रक्षा हुई थी।

जनार्दन, देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुको प्रणाम करके मैं दक्षिण पार्श्वको रक्षा करे। मेरे उदरभागको रक्षा मुसल और रक्षाके निर्मित्त जमीध अप्रतिम वैष्णव कवचको धारण पृष्ठभागकी रक्षा लाङ्गल (हल) करे। मेरे कर्ष्वभागकी रक्षा करता हैं। जो सभी दु:खोंका निवारण करनेवाला और हाई नामक धनुष तथा मेरे दोनों अंधा-प्रदेशींकी रक्षा सर्वस्य है, वह कवच इस प्रकार है -

रक्षा करें। हरि मेरे सिरकी रक्षा करें। जनार्दन इटपकी रक्षा कार्योंके अभीष्ट अधेकी सिद्धिके लिये रक्षा करते रहें। करें। मेरे मनकी रक्षा इपीकेश और जिहाकी रक्षा केशव भगवान बराह जलमें, भगवान वामन विषम परिस्थितिमें,

श्रीहरिने कहा-हे रुद्र! अब मैं समस्त व्याधियोंके कानोंकी रक्षा करें। प्रश्चम्न मेरे नाककी, अनिरुद्ध शरीरके रक्षा करे। टैल्वोंका निवारण करनेवाला चक्र मेरे वामपार्धकी अजन्मा, नित्य, अनामय, इंशान, सर्वेश्वर, सर्वेष्यापी, रक्षा करे। समस्त असुरोंका निवारण करनेवाली गदा मेरे नन्दक नामक तलवार करे। मेरे पार्थिकधागकी रक्षा शंख भगवान् विष्णु मेरी आगेसे रक्षा करें। कृष्ण मेरी पीछेसे और डोनों पैरोंको रक्षा पद्म करे। गरुड सदैव मेरे सभी करें। बासुदेव दोनों नेत्रोंकी तथा संकर्षण (बलराम) दोनों भगवान नरसिंह वनमें और भगवान केशव सब ओरसे मेरी

१-विष्णुर्माभग्रतः पातु कृष्णो २४५७ पृष्ठतः । शरिमें रक्षत् विशे बदर्व य जनार्दरः ॥ मनी मम इपीकेजो जिल्ला रखतु केजन:। यातु नेत्रं व्यस्टेव: क्रोत्रे सङ्गर्वची विश्:॥ प्रदानः पत् में प्राणगनिरद्धान् चर्म च । वनपाता गलामानं बीजाने रक्षतारभः ॥ पार्थ रक्षकु में वर्क कार्य देश्वनिवारणम्। दक्षिणं तु गदा देवी सर्वासुर्गनवारिणी। उदरं मुसलं पातु पृष्ठं में पातु तप्रद्वाराम् । कर्म्या रधतु में शाबु जब्ने रधतु नदक:॥ पार्मी रक्षत् राष्ट्रसः पर्धः में भरनावृत्ती । सर्वकार्यविस्द्राप्त्री पातः मां गरुष्टः सदा ॥ वराही रक्षत् जसे विषयेषु च कामनः । अरुव्यं नर्शमंडक सर्वतः पात् केशवः॥ हिरण्यमधौँ भगवान् हिरण्यं में प्रयच्छत् । सांख्यानार्यस्त् ऋषिली चातुसान्यं करीत् मे ॥ श्रेतद्वीपनिवासी च श्रेतद्वीपं नवत्ववः। सर्वान् सृदयशं वाष्ट्रन् मधुकैरभमर्दनः॥ सदाकर्षत् विष्णुक किल्लिषं मम विद्यात्। इसी मत्त्वस्तवा कुर्म: चतु मां सर्वती दिशम्॥ त्रिविक्रमस्तु में देव: सर्वपापानि कृततु । तथा नरायको देवी बुद्धि चालवर्ता सम ॥ शेषों में निर्मलं जानं करोत्यज्ञाननारानम्। यदवामुखी राज्ञपर्या करूपयं यत्कृतं मद्या। पदभ्यो दरात परमं सूखं मुक्ति मम प्रभः । दताप्रेयः प्रकरतां सप्तप्रकान्धवम् ॥ सर्वानरीन् नाशयत् रामः परश्ना सम। रक्षोप्नस्तु दासर्वयः चतु नित्यं महाभूवः व शक्तृ हलेन में हन्यादायी पादवनन्दनः । प्रलम्बकेशियान्यपुरवनार्वसपादनः । कृष्णस्य यो बालभावः स में कानान् प्रयच्छत् ॥

रक्षा करते रहें।

प्रदान करें। सांख्यदर्शनके आचार्य भगवान कपिल मृनि मेरे शरीरमें स्थित सभी प्रकारके धातुओंमें समानता बनाये रखें। श्रेतद्वीपमें निवास करनेवाले भगवान अजन्मा विष्णु मुझको भी क्षेतद्वीपमें ले चलें। मधुकैटभका मर्दन करनेवाले विष्णु मेरे सभी शत्रओंका विनाश करें। मेरे शरीरमें विद्यमान समस्त पापोंको खोंच-खोंचकर सदैव भगवान विष्णु विनष्ट करते रहें। हंसायतार, मतस्यावतार तथा कुर्मावतार धारण करनेवाले विष्णु सभी दिशाओं में रोरी रक्षा करें। भगवान् त्रिविक्रमदेव मेरे समस्त पापोंको काट डालें। भगवान् नारायणदेव मेरी बुद्धिका विकास करें। शेषनारायण मेरे जानको निर्मल बनायें तथा अज्ञानका विनास करें। मैंने जो कुछ भी पाप किया है, उस समस्त पापको भगवान बडवाम्ख हयग्रीत विनष्ट करें।

भगवान विष्णु मेरे दोनों पैरोंको और सिरको सख प्रदान करें। भगवान दलात्रेय मुझे पुत्र और सन्ध-बान्धव तथा पशुओंसे सम्पन्न रखें। भगवान जामदग्य-परशराम अपने परशुसे मेरे सभी राष्ट्रऑका विनास करें। राक्षसोंक निहन्ता दशरथसत आजानभूत भगवान श्रीराप मेरी नित्य रक्षा करें। यादयनन्दन बलराम अपने इलसे मेरे शक्तुओंका विनाश करें। प्रलम्ब, केशी, चाणूर, पूतना तथा कंसका संहार करनेवाला जो बालभाव भगवान कृष्णका है, वही मेरे समस्त मनोरथींको पूर्ण करे।

हे देव! मैं अन्धकारके समान तमोगणसे सम्पन्न,

हाधमें पाश धारण करनेवाले यमराजके सदश काले-पीले हिरण्यगर्भ भगवान् मुझे हिरण्य अर्थात् स्वर्णकी ग्रांति वर्णवाले भयंकर पुरुषको देख रहा हूँ, उसके भयसे मैं संत्रस्त हो गया है। हे पुण्डरीकाक्ष भगवान् अच्यूत! में आपको शाणमें आया है। आपके इस आश्रयसे मैं धन्य हो उठा हैं। आपकी शरण ग्रहण करनेसे अब मुझे कोई भव नहीं रह गया है, अत: मैं नित्य निर्भव हो गया है।

समस्त सांसारिक उपद्रवोंको विनष्ट करनेवाले भगवान् नारायणदेवका ध्यान करके वैष्णव कवचसे आबद्ध में पृथ्वीतलपर विचारण करता है। इसीके प्रभावसे मैं सभी प्राविधोंके लिये अनेय हो गया हैं। इतना ही नहीं, सर्वदेवनय भी हो गया है। अपरिमित तेजसे सम्पन्न टेकप्रिटेव भगवान विष्णुका स्मरण करनेसे मेरा समस्त मनोरच नित्य सिद्ध होता रहे।

धगयान् वासुदेवके चक्रमें जो और लगे हैं, वे यधाशीप्र मेरे समस्त पापोंका विनाश करें और मेरी हिंसा करनेवाले शतुओंका संहार करें।

राज्ञस एवं पिकाचोंसे ठवा गहन वन, प्रान्त, विवाद, ग्रज्यार्ग, चुठक्रोहा, लहाई, झगड़ा, नदी पार करनेकी स्थिति, आपत्काल, प्राणींका संकट-काल, अग्निभय, बौरभय, ग्रहबाधा, विद्युत्-उत्पीडन, सर्पविषका उद्वेग, रोग, विष्न, संकट आनेपर तथा भयविद्वल होनेपर इसका जप तो करना ही चाहिये, किंतु नित्य इसका जप करना विजेष लाभप्रद है। यह भगवान विष्णुका मन्त्ररूपो कवच परम ब्रेष्ट तथा सभी पापींका विनाशक है। (अध्याय १९४)

सर्वकामप्रदा विद्या

श्रीहरिने कहा-हे शिव। अब मैं 'सर्वकामप्रदा नमस्कार है। हे प्रद्यूमा। हे अतिरुद्ध। हे संकर्षण। आपको विद्या' का वर्णन करता हैं, उसे सुनें । इसकी उपासना मात्र नमस्कार है । हे परमानन्दस्वरूप । आप मात्र अनुभवजन्य हैं, सात रात करनेसे ही सभी कामनाएँ सफल हो जाती हैं। आपको मेरा नमस्कार है। आप आत्माराम एवं शान्तमूर्ति हैं सर्वकामप्रदा विद्या इस प्रकार है-

हे भगवान् वासुदेव। आपका मैं ध्यान करता है, आपको समस्त चराचर जगत् आपका ही रूप है, आपको बारंबार

तवा दैत-दृष्टिसे परे हैं, आपको मेरा नमस्कार है। यह

अन्धकारतमोधीरं पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् । परुषापि अवसंकातः पाशहस्टीमबानकम् ॥ ततोऽहं पुण्डरीकाक्षमञ्जूनं ऋरणं गत:। धन्योऽहं निभेचो नित्यं बस्य में भगवान हरि:॥ ध्यात्वा नारायणं देवं सर्वोपप्रवनास्तम् । वैष्णवं कवर्षं बद्ध्या विचरामि सहीतते । विष्णोर्यमततेजसः॥ (१९४। ४-- २२) अप्रथयोऽस्मि भूतानां सर्वदेवमयो द्वाम् । स्मरणदेवदेवस्य

१ सर्वकामप्रदां विद्यां सप्तरावेण तां भूष् । तमस्तुभ्यं भगवते वास्टेकाय थीमहि ॥ प्रद्रुप्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च । तमो विज्ञानगञ्जन

और प्राण समर्थ हैं तथा आकाशके समान जो देव समस्त प्राप्त किया था। (अध्याय १९५)

प्रणाम है। हे अनन्तमृति भगवान् हषीकेश ! आप महत्स्यरूपको चराचर प्राणियोंके अंदर और बाहर विचरण करते हैं, ऐसे नमस्कार है। प्रलयकालमें यह सारा जगत् जिस मृतिमें व्योमस्वरूप आप (देव)-को मैं नमस्कार करता है। हे प्रविष्ट होकर स्थित रहता है और पुन: प्रलयकालके पक्षात् पञ्चभूतीके स्वामी ऐक्षर्यमूर्ति महापुरुष भगवान् वासुदेव। सृष्टिके प्रारम्भमें सबसे पहले उत्पन्न भी होता है तथा जो आपको नमस्कार है। हे परमेष्टिन्! आपसे सकल सत्त्वोंकी इस मुण्मयी पृथ्वीको धारण करता है, उस बहादेवको मैं उत्पत्ति होती है तथा आपके चरणारविन्दयुगल मानो शील-नमस्कार करता है। जिस देवको स्पर्श करने और समूहरूपों कमलोंको धर्माख्यविद्यारूप रेणूत्पल हैं, आपको पहचाननेमें न मन-बुद्धि समर्थ हैं, न ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय नमस्कार है। चित्रकेतुने इस विद्याके द्वारा विद्याधरत्वको

विष्णधर्माख्यविद्या

श्रीहरिने कहा-हे महेशर! जिस 'विष्णुधर्म' नामक विद्याका जप करके देवराज इन्द्रने समस्त शत्रुऑपर विजय प्राप्तकर इन्द्रास-पद प्राप्त किया था, उस विद्याको कहता है।

इस विद्याके जपसे पूर्व दोनों पैर, दोनों जान, दोनों जंचा-प्रदेश, उदर, इदम, वश:स्थल, मुख और किरोधागर्मे ॐकारादि वर्णीसे यथाक्रम न्यास करना चाहिये। 'नमो नारायणाय' इस मन्त्रद्वारा विपरीत-क्रमसे भी न्यास करे। तदननार हादशाक्षर-मन्त्र (ॐ नमो भगवते बासुदेवाय)-के आदि वर्ण ॐकारसे करन्यास करे। अन्तिम यकारसे अंगृष्ठ आदि अँगुलियोंकी पर्वसंधियोंमें त्यास करके इदयमें ॐकारका न्यास करना चाहिये। सम्पूर्ण मन्त्रसे मस्तक-भागमें न्यास करे। मुधीसे प्रारम्भ करके भूवोंक मध्य-भागमें ॐकार-मन्त्रसे न्यास करके शिखा तथा नेजदियें 'ॐ विष्णवे नमः'इस मन्त्रसे न्यास करना चाहिये। अनन्तर अन्तरात्पामें उन परम शक्तियोंसे सम्पन्न परमात्पा शेषनागुचनका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये-

> मम रक्षां हरिः कुर्यान्यत्यमृतिजैलेऽवत्॥ प्रिविक्रमस्तथाकाशे स्थले रक्षत् वामनः। अटख्यां नरसिंहस्तु रामो रक्षतु पर्वते॥ भूमौ रक्षत् वराहो व्योध्नि नारायणोऽवत्।

कर्मवन्ताच्य कपिलो दत्तो रोगाच्य रक्षत्॥ हववीवो देवताभ्यः कुमारो मकरध्वजात्। नारदोऽन्यार्चनाहेवः कुर्मी व नैर्मते सदा।। धन्तनरिक्षापच्याच्य नागः क्रोधवशात् किल। यहो रोगात समस्ताच्य व्यासोऽज्ञानाच्य रक्षत्॥ बद्धः पाषण्डसंघातात् कल्को रक्षत् कल्मपात्। पायान्यस्यन्तिने विक्याः प्रातनीरायणोऽवत्॥ मध्हा चापराहे च सार्थ रक्षत् माधवः। इवीकेशः प्रदोषेऽच्यात् प्रत्यूषेऽच्याजनार्दनः॥ श्रीधरोऽज्यादर्धरात्रे यचनाभी निशीधके। चककौमोदकीबाणा घनन् शर्मक्ष राक्षसान्॥ जंखः वर्ष च शह्याः शाई वै गरुडस्तथा। बद्धीन्द्रियमनःप्राणान् पान् पार्श्वविभूषणः॥ शेष: सर्पायकपश्च सदा सर्वत्र पात् माम्। विदिक्ष दिक्ष च सदा नरसिंहश्च रक्षत्।। एतद्भारचयाणञ्च यं यं पश्यति चशुषा। स वज्ञी स्वाद्विपाप्मा च रोगमुक्तो दिवं क्रजेत्॥

(29-21395)

धगवान् हरि मेरी रक्षा करें। मतस्यमूर्ति भगवान् जलमें मेरो रक्षा करें। भगवान त्रिविक्रम आकाशमें और भगवान् वामन स्थलमें मेरी रक्षा करें। वन-प्रान्तमें भगवान्

आत्पारामाय शान्ताय निवृष्ट्रैतदृष्ट्ये । त्वदृष्णित च सर्वाणि कस्मान् तुभ्यं नमो नमः । नमस्तेऽननमृतंषे । योगिमिदं यतकात् तिक्रत्योऽपि जायते । मुज्ययी वहसि शोणीं तस्मै ते ब्रह्मजे नमः। यस स्पृतान्ति न विदुः मनोबुद्धोन्दियासवः। अन्तर्बहिस्त्वं वर्रीस व्योमतृत्वं ननाम्बहम् ॥

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाभूतपतये सञ्जलसन्त्रभविद्रोद्धनिकर,कमलोजुत्पलनिभधमोख्यविद्यया घरणारविन्दयुगल परमेष्ठिन् नमस्ते। अवाप विद्याधरतां चित्रकेत्श्च विद्यमा । (१९५।१-६)

नरसिंह, पर्वतभागमें जामदग्न्य—परशुराम मेरी रक्षा करें। मेरी रक्षा करें। भगवान् ब्रोधर अर्धरात्रि तथा भगवान् भूमिपर भगवान् वराह, व्योममें भगवान् नारायण मेरी रक्षा पदनाभ निशोधकालमें मेरी रक्षा करें। हे भगवन्! आपका करें। कर्मोंके बन्धनसे भगवान् कपिल तथा रोगोंके सुदर्शन, कौमोदकी गदा और बाण मेरे शत्रुओं तथा प्रकोपसे भगवान् दत्तात्रेय मेरी रक्षा करें। भगवान् राक्ष्मादिका संहार करे। आपका शंख, पदा, शार्क्न धनुष हयग्रीव देवताओंसे, कुमार कामदेवसे मेरी रक्षा करें। तथा वाहन गरुड भी शत्रुओंसे मेरी रक्षा करें। भगवान् भगवान् तारद अन्य देवींकी उपासनासे और भगवान् वासुदेवके सैनिकट स्थित अलंकारस्वरूप सभी पार्षद मेरे कुमंदेव नैर्ऋतमें सदैव मेरी रक्षा करें। भगवान् धन्वन्तरि बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंकी रक्षा करें। सर्पका रूप अपध्य-सेवनसे, भगवान् श्रेषनाग क्रोधसे, भगवान् धारण करनेवाले भगवान् श्रेषनारायण सदैय सर्वत्र मेरी रक्षा यज्ञदेव समस्त रोग-समुदायसे और भगवान् कास करें। भगवान् नरसिंह सदैव सभी दिशाओं और विदिशाओं में अज्ञानसे मेरी रक्षा करें। भगवान बुद्ध पाखण्ड-समृहसे एवं मेरी रक्षा करें। भगवान कल्किदेव पापसे मेरी रक्षा करें। भगवान इस प्रकार जो व्यक्ति इस विष्णुधर्माख्यविद्याको धारण विष्णु मध्याष्ट्रकालमें मेरी रक्षा करें। भगवान् नारायण करता है, वह अपने नेत्रोंसे जिस-जिसको देखता है वह प्रात:कालमें मेरी रक्षा करें। पगवान् मधुसूदन अपराहकाल उसीके वरामें हो जाता है और सभी पापींसे मुक्त तथा और भगवान माधव सार्यकालमें मेरी रक्षा करें। भगवानु रोगरहित होकर वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। ह्रपीकेश प्रदोषकालमें तथा भगवान जनार्दन प्रत्युषकालमें

(अध्याय १९६)

विषहरी गारुडी विद्या तथा भगवान् गरुडके विराद् स्वरूपका वर्णन

गारुढी विद्याका वर्णन करता है। इस विद्याको सुमित्रने आकारवाले <u>अग्निमण्डल</u>में ज्वालामालाओंसे समन्वित करपपमृतिसे कहा था। यह विद्या सभी प्रकारके विषोंका अग्निका ध्यान करना बाहिये। विभिन्न ओयधियोंको अपहारक है।

हैं। इन पाँचों तत्वोंके पृथक्-पृथक् मण्डल होते हैं तथा <u>आकाशमण्डल</u>का चिन्तन श्रीरसागरमें उतती हुई लहरोंके उन-उन मण्डलोंके अधिष्ठाता ये पुष्यों आदि देवता समान आकारवाले, शुद्ध स्फटिकके सदृश आधावाले तथ हीं माने गये हैं। अन्य देवता भी इन मण्डलोंमें स्थित रहते. सम्पूर्ण संसारको अपनी अमृतमयी रहिमयोंसे आएतावित हैं। इनके पृथक्-पृथक् मन्त्र भी हैं। इन मण्डलाधिपति करनेवालेके रूपमें करें। देवताओंके मन्त्रोंका यथाविधि न्यासपूर्वक जप करनेसे जो अष्ट महानाग कहे गये हैं, उनमेंसे वासुकि और

स्वरूप तथा उनके अधिष्ठातृ देवोंका ध्यान करे। मण्डलोंका (जलमण्डल)-में है। कुलिक और तक्षक नामक नाग स्वरूप इस प्रकार है—पृथ्वीमण्डल चौकोर, फैला हुआ, अग्रिमण्डलमें निवास करते हैं। महापदा तथा पदा नामक चारों और मुख्याला तथा पीले वर्णका कहा गया है तथा नाग वायुमण्डलमें रहते हैं। साधकको इन नागोंका ध्यान यह मण्डल इन्द्रदेवतापरक है। वरुणमण्डल (जलमण्डल) करके पृथ्वी आदि पश्चभूत-तत्त्वोंका न्यास करना चाहिये

धन्वन्तरिने कहा—अब मैं गरुडके द्वारा कही गयी कान्तिवाले, सीम्यस्वरूप, स्वस्तिकसे युक्त, त्रिकोण पीसकर तैयार किये गये सुरमेके समान कान्तिवाले पृथ्वी, जल, तेज, बायु और आकाश—ये पाँच तत्व यृत्ताकार किन्दुयुक्त वायुमण्डलमें वायुका ध्यान करे

अभीष्ट-सिद्धि होती है और विष-बाधा दूर हो जाती है। शंखपाल नामक नाग पृथ्वीमण्डलमें स्थित रहते हैं साधकको चाहिये कि वह पृथक-पृथक पाँचों मण्डलाँके कर्कोटक तथा पद्मनाभ नामक दो नागोंका वास वरुपमण्डल पद्माकार तथा अर्थचन्द्रयुक्त है। इन्द्रनीलमणिके समान अंगुष्टसे लेकर कनिष्ठापर्यन्त अंगुलियोंमें अनुलोम और विलोम-रीतिसे न्यास करना चाहिये। अंगुलियोंकी पर्वसंधियोंमें विषधर नागोंसे धिरे हुए भगवान् शिवका अपने शरीरमें जया तथा विजया नामक दो शक्तिवोंका न्यास करना न्यास करना चाहिये। चाहिये।

तथा व्यापक-न्यास करे। देवताके नामके आदिमें 'प्रणव' रूप धारण करनेवाले, मनपर विजय प्राप्त करनेमें तथा अन्तमें 'नमः' प्रयुक्त करे, यह विधि स्थापन एवं समर्थ सम्पूर्ण संसारको अपने रसमें आप्लावित करनेवाले पुजनादिक-मन्त्रके रूपमें बतलायो गयो है। देवताके एवं सृष्टि तथा संहारके कारण, अपने प्रकाशपुजसे उदीपा नामके आद्य अक्षर भी मन्त्ररूप होते हैं। आदों नागोंके जो और समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त, दस भूजाओं और चार मन्त्र हैं, वे उनके संनिधानको प्राप्त करानेवाले हैं। मुखोंवाले, पिङ्गलवर्णके नेत्रवाले, हाथमें शुल धारण पञ्चतत्त्वोंके साथ आदिमें 'ॐ' और अन्तमें 'स्वाद्या' करनेवाले, भयंकर दाँतवाले, अत्यन्त उग्न, त्रिनेत्र तथा लगानेसे मन्त्र बन जाते हैं। ऐसा करनेसे ये मन्त्र साक्षात् चन्द्रचृडसे विभूषित और गरुडस्वरूप भैरवका चिन्तन गरुद्रके समान साधकके सभी अभीष्ट कर्मीको सिद्ध करनेवाले करना चाहिये। हो जाते हैं।

करना चाहिये।

आठ नागोंका न्यास-ध्यान करना चाहिये।

ग्रह, भृत, पिशाच, ढाकिनी, यह, राक्षसका उपद्रव होनेपर हैं। (अध्याय १९७)

यधाविधि ध्यान-पूजन आदि कृत्योंको करके पुन: अपने शरीरमें शिवषडङ्गन्यास, पञ्चतत्त्वन्यास साधकको सभी कर्मोमें सिद्धि प्राप्त करनेके लिये अभीष्ट

नागोंका विनाश करनेके लिये उन परमतत्त्वने महाभयंकर स्वर-वर्णीसे करन्यास करके पुन: उन्हींसे शारीरके गरुडका रूप धारण किया है। विराट्-रूप भगवान् गरुडके अन्य अङ्गोंमें भी न्यास करना चाहिये। तदननार दोनों पैर पातालखोकमें स्थित हैं और उनके सभी पंख आत्पशुद्धिकारक उद्दीपा प्राणशतिका चिन्तन करना चाहिये। समस्त दिशाओं में फैले हुए हैं। सातों स्वर्ग उनके इसके बाद साधकको अमृतको वर्षा करनेवाले बीजका बश्च:स्थलपर विद्यमान है। ब्रह्माण्ड उनके कण्ठका ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार आप्यायन करके साधकको आह्रय लेकर अवस्थित है, पूर्वसे लेकर ईशानपर्यन्त अपने मस्तिष्कमें आत्पतत्त्वका चिन्तन करना चाहिये। आठों दिशाओंको उनका शिरोभाग समझना चाहिये। तत्पश्चात् स्वर्णके समान कान्तिवाली, समस्त लोकोंमें फैली अपनी तीनों शक्तियोंसे समन्वित सदाशिव इनके शिखामूलमें हुई तथा लोकपालोंसे समन्तित पृथ्वीका दोनों पैरोमें न्यास स्थित है। ये तार्ध्य (गरुड) साक्षात् परात्पर शिव और समस्त भूवनीके नायक हैं। त्रिनेत्रधारी, उग्र स्वरूपवाले, बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि वह भगवती पृथ्वीदेवीका नागोंके विचोंक विनाशक, सबको ग्रास बनानेवाले, अपने सम्पूर्ण देहमें न्यास करे। इसी प्रकार अपने देहके भीषण मुखवाले, गरुडमन्त्रके मुर्तरूप, कालाग्निके सदश अङ्गोमें शेष चार मण्डलों तथा उनमें स्थित देवोंका न्यास देदीप्यमान गरुडदेवका अपने समस्त अभीष्ट कर्मोंकी करें। इस प्रकार पञ्चभत-तत्त्वोंका न्यास करके यबाक्रम सिद्धिके लिये चिन्तन करना चाहिये। जो मनुष्य न्यास-ध्यानको विधि सम्पन्न करके इन देवको पूजा करता है, इसके बाद स्थावर और जंगम प्राणियोंके विष-दोषका उसका सब कुछ सिद्ध हो जाता है तथा वह स्वयं विनाश करनेके लिये पश्चिराज गरुडका ध्यान इस प्रकार गरुडदेवको शक्तिसे सम्पन्न हो जाता है। भूत, प्रेत, यक्ष, करना चाहिये-- गरुडदेव अपने दोनों पैरों, पंखों तथा नाग, गन्धर्व तथा राक्षस आदि तो उसके दर्शनमात्रसे चौंचद्वारा पकड़े हुए कृष्णवर्णवाले नागोंसे विभूषित हैं। हो भाग जाते हैं। चौदिया आदि ज्वर भी विनष्ट हो जाते

त्रिपुराभैरवी तथा ज्वालामुखी आदि देवियोंके पूजनकी विधि

and the same

भैरवने कहा-इसके बाद मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली त्रिपुरादेवीकी पूजा आदिका वर्णन करूँगा। उसे आप सुनें।

देवीका यथाविधि 'ॐ हीं आगच्छ देवि'-इस मन्त्रसे आवाहन करके 'ऐं हीं हीं'-इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए रेखा करके 'ॐ ह्रॉ क्लेंदिनी धे नमः'—इस मन्त्रसे उन्हें प्रणाम करे तथा उनकी शक्तियोंके साथ महाप्रेतासनपर विराजमान रहनेवाली देवी त्रिपुराभैरखीका यूजन करे। 'हें हीं त्रिपुराये नमः - इस मन्त्रसे उन्हें नमस्कार करे। देवीके पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, कथ्वे आदि युखोंको भी नमस्कार करे। 'ॐ हीं पाशाय नमः', 'कीं अङ्कराय नमः' 'ऍ कपालाय नमः' इत्यादि यन्त्रोंसे उनके पात्रा. अंकुश, कपाल आदि आयुर्धीको नमस्कार करे। त्रिपुराभैरवीदेवीकी पुजामें आठ भैरवों तथा उनके साथ मातुकाओंकी भी पूजा करनी चाहिये। असिताङ्गभैरव, रुरुभैरव, चण्डभैरव, क्रोधभैरव, उत्मत्तभैरव, कपालिभैरव, भीषणभैरव तथा संहारभैरव-ये आठ भैरव हैं। ब्रह्माणी, माहे बरी, कीमारी, बैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा तथा अपराजिता (दुर्गा)—ये आठ मातुकाएँ हैं। पुजकको चाहिये कि वह 'ॐ कामरूपाय असिताङ्काय भैरवाय नमी बह्यापर्य :- इस मन्त्रसे पूर्व दिशामें कामरूप असिवाङ्ग पैरव और देवी ब्रह्माणीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। उसके बाद 'ॐ स्कन्दाय नमः, तत्रभैरवाय नमः, माहेश्वर्य नमः' मन्त्रॉद्वारा दक्षिण दिशामें स्कन्ददेव, स्रुभैरव और देवी माहेश्वरीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। 'ॐ चण्डाय नमः, कौमार्यं नमः 'इन मन्त्रोंसे पश्चिम दिशामें चण्डभैरव तथा देवी कौमारीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। तत्पक्षत् 'ॐ उल्काय नमः, ॐ क्रोधाय नमः, ॐ वैष्णाओं नमः'- इन मन्त्रोंसे उत्तर दिशामें उल्कादेव, क्रोधभैरव और देवी वैष्णवीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। 'ॐ अधोराय नमः, 🍪 उन्यत्तभैरवाय नमः, ॐ वाराही नमः'—इन मन्त्रॉसे अग्निकोणमें अधोरदेव, उन्मत्तभैरव और देवी वाराहीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। तदनन्तर 'ॐ साराय कपालिने भैरवाय नयः, ॐ माहेन्द्रपै नमः '— इन मन्त्रॉद्धारा नैर्ऋत्यकोणमें समस्त संसारके सारभूत स्वरूप कपालिभैरव और देवी माहेन्द्रीका अध्वाहनपूर्वक पूजन करे। उसके बाद साधकको 'ॐ जालन्धराय नमः, ॐ भीवणाय भैरवाय नमः, ॐ चाम्ण्डाये नमः - इन मन्त्रीसे वायुकोणमें जालन्धर, भीषणभैरव और देवी चामुण्डाका आवाहनपूर्वक पूजन करना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ बदुकाय नमः, ॐ संहाराय नय:, ॐ चण्डिकाचै नमः'-इन मन्त्रोंसे ईलानकोणमें वटुकदेव, संहारभैरव तथा देवी चण्डिकाका आवाहन करके उनको पूजा करनी चाहिये।

इसके बाद साधकको रतिदेवी, प्रीतिदेवी, कामदेव और उनके पञ्चवाणोंकी पूजा भी करनी चाहिये। इस प्रकार सदैव ध्यान, पूजा, जप तथा होम करनेसे देवी सिद्ध हो जाती हैं। नित्यक्तिम, त्रिपुराभैरवी और ज्वालामुख नामक देवियाँ समस्त व्याधियोंको विनाशिका है। अब मै ज्वालामुखोदेवीके पूजनका क्रम कहुँगा। पर्यके मध्य देवी जालामुखीको पूजा करनी चाहिये तथा पराके बाह दलोंमें क्रमश:- नित्या, अरुणा, मदनातुरा, महामोहा, प्रकृति, महेन्द्राणी, कलनाकर्षिणी, भारती, ब्रह्माणी माहेशी, कीमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा अपराजिता, विजया, अजिता, मोहिनी, त्वरिता, स्तस्भिनी जुम्भिणी तथा देवी कालिकाकी पूजा करनी चाहिये। देवी ज्वालामुखीको यथाविधि पूजा करनेसे विष आदि दीष दूर हो जाते हैं।

भैरवने पुनः कहा —चुढामणि-यन्त्रके द्वारा प्रश्नकर्ताके शुभ एवं अशुभ समयका परिज्ञान हो जाता है।

(अध्याय १९८-१९९)

वायजय-निरूपण

विदेश-यात्राके शुभाशुभ मुहूर्तका संकेत देनेवाले 'बायुजय' तो गुणोंमें वृद्धि होती है। इसके विपरीत होनेपर शरीरमें नामक विद्याका वर्णन करूँगा।

नामसे जाना जाता है। प्राय: प्राणीके तरीरमें वायु अधिकतर गयी हैं। आधे-आधे प्रहरके बाद एक-एक संक्रान्तिका वाम और दक्षिणभागको नाड़ियोंसे प्रवाहित होता है। परिमाण है। इसी गतिसे तरीरमें प्रवहमान वायुका संक्रमण-अग्नि शरीरमें कर्ध्वगामी होता है और जल अधोगानो। काल आता है। जब वायु शरीरके अन्तर्गत आधे प्रहरके महेन्द्र तत्व शरीरके मध्यभागमें स्थित रहता है, किंतु बाद ही संज्ञान्त होने लगता है, अर्थात् आधे-आधे शुक्लपक्षमें वह वामभाग तथा कृष्णपश्चमें दक्षिण- प्रहरमें वायुका भ्रमण होता है, तो स्वास्थ्यकी हानि भागको नाढियोसे होकर शरीरमें प्रवाहित होता है। प्रत्येक अवस्थम्भावी है। भोजन और मैथुनकालमें दाहिने नासापुटसे पक्षका प्रारम्भिक तीन-तीन दिन इसका उदयकाल है। जायु भ्रमण करे तो हितकर होता है। इस स्थितिमें अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर तृतीया तिथितक जो हानमें तलवार लेकर चोद्धा युद्धमें यथेच्छ शत्रुओंको जीत वायु नासिकाके वाम छिद्रसे होकर प्रवहमान रहता है सकता है। समस्त कार्योमें यदि वाम नासापुटसे वायुका और कृष्णपक्षको प्रतिपदा तिथिसे लेकर तृतीया विधिपर्यन्त अमण हो तो प्रश्नकर्ताका प्रश्न शुभकर तथा श्रेष्ठ माना जी वायु नासिकाके दक्षिण फिदसे होकर प्रवहमान रहता गण है। वायुके महेन्द्र तथा वरुण (जल-तत्व)-में प्रवाहित है, वह उदयकालका वायु माना जाता है। यदि इस होनेपर कोई भी दोष नहीं होता। दाहिनेसे प्रवाहित होनेपर नियमके अनुसार वायुका प्रवाह होता है तो अच्छा होता अनावृष्टिका योग तथा बायेंसे प्रवाहित होनेपर वृष्टिका है, किंतु विपरीत होनेपर पतन होता है। यदि प्राणीक योग होता है। (अध्याय २००)

भैरवने कहा-हे देवि! अब मैं जय-पराजय तथा जरोरमें वायु सूर्यमार्गमें उदित होकर चन्द्रमार्गमें अस्त हो विध्न होता है।

वायु, अग्नि, जल और इन्द्रको माङ्गलिक चतुष्टयके हे वरानने। दिन और रातमें सोलह संक्रान्तियाँ मानी

उत्तम तथा अधम अश्वोंके लक्षण, अश्वोंके आगन्तज और त्रिदोषज रोगोंकी चिकित्सा तथा अश्वशान्ति, गजायुर्वेद, गजचिकित्सा और गजशान्ति

शभ-अशभ लक्षणोंका वर्णन करता है।

जीभवाला, वृक्षके समान फैले मुँहवाला, गरम तालुप्रदेशवाला, दोसे अधिक दन्तपङ्खियोंसे युक्त, दाँतरहित, साँगवासा, दाँतोंके मध्य रिक्त स्थानवाला, एक अण्डकोशसे युक्त, अण्डकोशसे रहित, कंचुकी (वश्व:स्थलपर कंचुकके लक्षणसे समन्तित), दो खुरॉसे सम्पन्न, स्तनयुक्त, बिलीटेके समान 'ब्राह्मण-भोजन' आदिके द्वारा अश्वोंकी रक्षा करनी चाहिये। पैरोंबाला, व्याप्रके सदश रूप एवं वर्णसे समन्तित, कुष्ट चीड्-बुक्षका काष्ट, त्रीमको पत्ती, गुग्गुल, सरसों, पृत, तथा विद्रिध रोगके रोगी पुरुषके समान, जुडवाँ तिल, वचा (वच) और होंगको पोटली आदिमें रखकर उत्पन्न होनेवाला, बीना, बिलीटे और बंदरसदुक्त नेत्रोंवाला घोड़ेके गलेमें बीधनेसे घोड़ेका सदैव कल्याण होता है। हो, वह दोषयुक्त होनेसे त्याज्य है।

धन्यन्तरिने कहा-अब मैं अश्वापुर्वेद और अश्रोके उत्तम जातिका घोड़ा तो वह होता है, जो तुरुक प्रदेश (तुर्किस्तान, सिन्धु या अरब देश)-में जन्म लेता है। इसकी जो अश्व कौएके समान नुकीले मुँहवाला, काली कैवाई सत हाय होती है। मध्यम कोटिका घोडा पाँच हाथ और तृतीय कोटिका घोडा तीन हाथ कैंचा माना गया है। स्वस्य घोडे छोटे-छोटे कानवाले, चितकबरे, प्रभावशाली, उत्साहसम्पन्न और दीर्घजीबो होते हैं।

> रेवन्त सर्पदेवके पुत्र हैं। इनकी पूजा, होम तथा घोडेके शरीरमें उत्पन्न होनेवाला मुख्य दोष वण (घाव

होना) है। यह दो प्रकारका होता है-एक है आगन्तुव त्रिकटुसे युक्त कड़वा तैल और पित्तविकारमें त्रिफलाचूर्ण-व्रणदोष और दूसरा है बात-पित्त आदि त्रिदोषोंसे उत्पन्न समन्वित जलसे नस्य देना चाहिये। साठी चावल और दूरध व्रणदोष। वातविकारके कारण उत्पन्न व्रणदोष चिरपाक काने-पोनेवाला घोड़ा अल्यन्त बलशाली होता है। पके हुए (देरसे पकनेवाला) होता है और उलेध्मविकासके कारण जामुनके समान तथा सोनेके सदृश चमकते हुए वर्णवाला उत्पन्न वणदोष क्षिप्रपाक (शीध पकनेवाला) होता है। अस ब्रेष्ट होता है। पितज दोषके कारण उत्पन्न ज्ञणदोष घोडेके कण्ठ-भागमें भारवाही घोडेको आधे-आधे प्रहरपर गुग्गुलका सेवन द्वारा करना चाहिये। व्रणकी यह चिकित्सा करके उसमें एरण्डमूल, हल्दो, दारुहल्दी, चित्रक, सोंठ और लहसून. मट्टे अथवा काँजीमें पीसकर भर देना चाहिये। तिल. सत्त. दही, सेंधानमक और नीमकी पत्ती एक साथ पीसकर उस व्रणपर रखनेसे भी घोडेको लाभ होता है।

परवल, नीमकी पत्तो, बना (बना), चित्रक, पिप्पली और अदरकका चूर्ण बनाकर मोडेको पिलाना चाहिये। इसके सेवनसे घोडेका कृमिदोष, श्लेष्मविकार तथा वायुप्रकोप नष्ट हो जाता है। नीमको पत्ती, परवल, जिफला और खैरका काढ़ा बनाकर यदि घोडेको पिलाया जाय हो उसका रक्तसाय बंद हो जाता है। घोडेमें कुष्टविकार होनेपर तो उसके उपशपनके लिये इसी कार्डको तीन दिन देना चाहिये। त्रणयुक्त कुष्टरोग होनेपर सरसोंका तैल बहुत ही लाभप्रद है। लहसून आदिका काहा देनेसे उसके खाने-पीनेके दौष दूर हो जाते हैं। विजीश नीक्का रस जटामांसीके रसमें मिलाकर नस्य देनेसे तत्काल योडके वातजनित दोषोंका विनास होता है।

घोडेको प्रथम दिन एक पल औषधीय नस्य देना चाहिये। उसके बाद एक-एक पल प्रतिदिन अधिक बडाते हुए अठारह दिनतक उसका उपयोग करना चाहिये। यह मात्रा उत्तम प्रकारके घोडेकी है। मध्यम प्रकारके घोडीकी औषधिकी मात्रा चौदह पल तथा अधम जातिके घोडोंकी आठ पल होती है। शरत और ग्रीष्म ऋतुमें घोडोंको ऐसे विकारोंसे मक्त करनेके लिये किसी भी प्रकारको औषधिका नस्य-प्रयोग करना उचित नहीं है। घोडेके बादाजन्य रोगमें

दाह और रक्तविकारके कारण उत्पन्न वर्णमें मन्द-मन्द कराना चाहिये। जो बोहा बहुत ही जल्दी धक जानेके बेदना होती है। आगन्तून अर्थात् बाहरसे चोट, गिरने या कारण रुक काता हो, उसको खीर या दूध पिलाना चाहिये। आयात आदिसे उत्पन्न वणदोषका शोधन शल्प-चिकित्साके वातजनित विकार होनेपर मोडेको भोजनमें साठी चावलका भात और दूध देना चाहिये। पित्तविकार होनेपर उसको एक कर्ष अर्थात् दो तीला जटामांसीका रस, मधु, मुँगका रस और पुतका मिश्रण देनेसे लाभ होता है। कफ-विकार होनेपर मूँग और कुलची या कड़वा तथा तिक भोज्य-पदार्थ देन चाहिये। बधिरता या ग्रासजन्य रोगसे ग्रस्त होनेपर अथवा त्रिटोचनन्य विकारोंके उत्पन्न हो जानेसे दक्षित भोडेको गुग्गुलको औषधि देनी चाहिये। सभी प्रकारके रोगोंमें घोडेको पहले दिन अन्य प्रकारकी घासोंके साथ एक पल दर्वा पास देना ही अपेक्षित है। उसके बाद इस माजको धीर-धीर बढाना चाहिये। एक दिनमें एक कर्ष अर्थात दो तोला और अधिकतम पाँच पल दिया जा सकता है। सामान्य स्थितिमें घोडेके लिये खाने-पीनेके निमित्त अस्सी पल दुवांकी मात्रा बेहतम मानी गयी है। उसकी मध्यम मात्रा साठ पल और अधम चालीस पल है।

घोडेको जण-कुछ तथा खज्ज-विकार (लैंगडानेका विकार) होनेपर त्रिफलाके क्राथमें भोजन मिलाकर देना चाहिये। यन्द्रान्ति और शोध-रोग होनेपर उसको गोमुत्रके साथ भोजन देना चाहिये। वात-पित्तजन्य वर्णावकार अथवा अन्य व्याधि होनेपर गोदुग्ध और घृत मिलाकर घोड़ेको भोजन देना लाभकारी है। दुर्बल घोडेको मासी नामक औषधिके साथ भोजन देना पृष्टिकारक होता है। शरत और ग्रीप्प ऋतुमें घोडेको पाँच यल गृहचीका रस घीमें मिलाकर अथवा दूधमें मिलाकर प्रात:काल पिलाना चाहिये। यह घोडेके रोगोंका विनाश करनेवाली, उनको शक्तिसम्पन्न बनानेवाली और उनके तेजको बढानेवाली है। गृहची-शर्करा, घृत तथा दुग्धसे युक्त तैल, श्लैष्मिक रोगमें कल्पके साथ शतावरी और अधगन्धा नामक औषधियोंके

रसकी मात्रा क्रमश: उत्तम, मध्यम और अधमरूपमें चार उक्त मात्रा चौगुनी होती है। पूर्ववर्णित औषधियोंके द्वारा भी

उत्पन्न हो जाय और उपचार होनेपर भी घोड़ेकी मृत्यु आदि)-के उपशमनके लिये गजशान्तिकर्म करना चाहिये। हो जाय तो उसे उपसर्ग (कोई दैवीप्रकोप या महामारी) देवताओं और ब्राह्मणोंकी रत्न आदिके द्वारा पूजा करके समझना चाहिये। उसकी शान्तिके लिये हवन, पूजन, उन्हें कपिला गौका दान दे। रक्षा-मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित क्चा ब्राह्मण-भोजन आदि कराना चाहिये। हरीतकी-कल्पके (बच) और सरसोंको मालामें पिरोकर हाथीके दोनी सेवनसे भी उपसर्गकी शान्ति होती है। गोमूत्र, सरसोंके तैल दौतोंमें बाँधना चाहिये। सूर्व आदि नवग्रहोंके तथा शिव, और सेंधानमकसे युक्त हरीतकीकी मात्रा प्रारम्भमें चाँच दुर्चा, लक्ष्मी और विष्णुके पूजन आदिसे हाधीकी रक्षा होती मानी गयी है। तत्पक्षात् प्रतिदिन उसको चाँच-पाँच माजा बढ़ाते हुए सीतक की जा सकतो है। घोड़ेके लिये एक सौ बलि दंकर हाथोंको चार घड़ोंके जलसे स्नान कराना हरीतकीकी मात्रा उत्तम है। अस्सी तथा साठ मात्राओंका भी चाहिये। तदनन्तर मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित भीजन हाथीको परिमाण है जो मध्यम और अधम मात्राएँ मानी गयी हैं। देन चाहिये। हाथीके पूरे छरोरपर भस्म लगाना चाहिये।

(अश्वायुर्वेदकी भौति) गजायुर्वेदका वर्णन करने जा रहा साँठ), दशमूल, विडङ्ग, शतावरी, गुड्ची, नीम, अड्सा हैं, आप उसे सुनें। अश्वचिकित्सामें बताये गये औषधिक और पलाशके चूर्ण अथवा क्राय हाथीके रोगोंको विनष्ट कल्प हाथियोंके लिये भी हितकारी है। हाथीके निमित्त करनेमें समर्थ है। (अध्याय २०१)

पल, तीन पल तथा एक पल निश्चित की गयी है। हाथियोंमें पाये जानेवाले रोगोंको दूर किया जा सकता है। यदि घोडोंमें अकस्मात एक हो प्रकारका रोग हाथियोंकी उपसर्गजनित व्याधियों (दैवीप्रकोप या महामारी है। देवादिको पूजा करनेके पक्षात् प्राणियंकि लिये अत्रादिकी धन्वनारिजीने पुनः कहा-हे सुद्धत! अब मैं त्रिफला, पञ्चकोल (पीपर, पीपरामूल, चव्य, चित्रकमूल,

स्त्रियोंके विविध रोगोंकी चिकित्सा, बालकोंकी रक्षाके उपाय तथा बलवर्धक औषधियाँ

नामक औषधिकी जड़का गुण अद्वितीय है। इसका पिप्पली)-का चूर्ण तिलके काढ़ेमें मिलाकर पीनेसे स्वियोंका यधाविधि प्रयोग करनेसे प्रसव-वेदनाका कष्ट दूर हो जाता रखनुल्य रोग दूर हो जाता है। हे महेश। लाल कमलका है। भुईकुम्हडाको जड़ अथवा साठो चावलको पोसकर कन्द्र, विल तथा शर्कराका और्पाधक योग, स्त्रियोंमें एक सप्ताहपर्यन्त दुधके साथ सेवन करनेसे स्विपोंके गर्धधारणको धमता उत्पन्न कर देता है। शर्कशके साथ द्धकी बुद्धि होती है। हे रुद्र! इन्द्रवारूपी (इन्द्रायण)-की इन औषधियोंको पीनेसे स्त्रियोंका गर्भपात रुक जाता है जड़का लेप करनेसे स्त्रियोंके स्तनोंकी पोड़ा बिनष्ट हो तथा शांतल जलके साथ सेवन करनेसे रक्तसाव भी जाती है। नीली, परवलकी जड़ तथा तिलको जलमें बंद हो जाता है। हे रुद्र! शरपोङ्काको बड़का काथ और पीसकर घीके साथ तैयार किया गया लेप ज्वालागर्दभ काँजी, होंग तथा सेंधानमक मिलाकर पीनेसे स्त्रियोंको नामक रोगका नाश करता है। पाड़ाकी जहको चावलके शीम्र ही प्रसव हो जाता है। विजीस नीवृकी जहको जलके साथ पीनेसे पाप-रोग विनष्ट हो जाता है। ऐसे कटिप्रदेशमें बाँधनेसे भी प्रसव यथाशीप्र हो जाता है। रोगका विनाश कुष्ठ नामक औषधिके पोनेसे भी सम्भव है। अधामार्गको जह सिरपर धारण करनेपर स्त्रीको गर्भजनित हे शिव! बासी जलमें मधु मिलाकर पीनेसे वह पाप- पीड़ा नहीं होती। रोगको दर कर देता है। गोषुत और लाक्षारसको समधागर्में हे हर। जिस बालकके मस्तकपर गोरोचनका तिलक

श्रीहरिने कहा-हे शिव। पुनर्नवा अथवा अधामार्ग हे हर। द्विजयही (ब्रह्मदण्डी), त्रिकटु (सॉट, काली मिर्च,

लेकर दुधके साथ उसे पीनेसे प्रदररोग दूर हो जाता है। रहता है और जो बालक शर्करा तथा कुष्ठ नामक

औषधिका पान करता है वह विष, भूत, ग्रह तथा घृत समान भागमें लेकर एक सप्ताहतक सेवन करनेसे व्याधिजनित विकारोंसे दूर रहता है। हे रुद्र! शंखनाधि वृद्धावस्या दूर हो जातो है। आँवलेका चूर्ण, मधु, तेल (सुगंधित द्रव्यविशेष), वच, कुष्ठ और लोहा (लोहेको (तिलका) तथा गोधृतके साथ एक मासपर्यन्त सेवन ताबीज या कठुला) बच्चेको सदैव धारण कराना चाहिये। करनेसे मनुष्य युवा हो उठता है और विद्वान् बन जाता

रहित हो जाता है। हे रुद्र। पलाशबीज, तिल, मधु और

इससे उपसर्गजन्य विपदाओंसे बच्चोंकी रक्षा होती है। है। हे शिव! औंबलेका चूर्ण मधु अथवा जलके मधुके सहित पलाश, औवला और विडङ्गका चूर्ण साथ प्रातःकाल सेवन करनेपर नासिकाकी शक्ति बढ़ तथा गोधृतका पान करनेसे प्राणी महामति (कुशाग्रमुद्धियाला) जाती है। जो मनुष्य घौ और मधुके साथ कुष्ठचूर्णका बन जाता है। हे महादेव ! एक मासतक इस ऑपधिका सेवन करता है, वह सुन्दर गन्धसे समन्वित देहवाला सेवन करनेसे मनुष्य वृद्धावस्थाजन्य मृत्युके भवसे हो जाता है और एक हजार वर्षतक जीवित रहता है। (अध्याय २०२)

गो एवं अश्व चिकित्सा

करती है, उसे नमकसे युक्त उसीका दूध पिला देना रोग (देवों आपदाजन्य महामारी आदि) नष्ट हो जाता है। चाहिये। ऐसा करनेसे वह अपने बछड़ेसे प्रेम करने लगेगी। सड्डेमें मसूर और साठी चावलको विसकर पिलानेसे भी कुत्तेकी हड्डीको पैंस और गायके गलेमें बाँधनेसे उनके लाभ होता है। शरीरमें पढ़े हुए कोड़े गिर जाते हैं, इसमें संदेड नहीं है। गाय और भैसके दूधमें तुलनात्मक दृष्टिसे गायका दूध पुँचुचीको जड़को खिलानेसे भी गायोंके लरोरमें पहे हुए ही पुरुषके लिये विशेष हितकारी होता है। हे शिय कीं दें विनष्ट हो जाते हैं। है शिव! वरुणकलके रसको सरपोखाके पत्तेको नमकके साथ खिलानेसे घोड़े तथा हाथसे मथकर उसे घावमें भरनेसे उसके अंदर पढ़े हुए चार हाथियोंका बारिस्फोट नामक रोग नष्ट हो जाता है। हे हर पैरवाले तथा दो पैरवाले कोड़े नष्ट हो जाते हैं। हे रुद्र! युतकुमारीके पत्तेका नमकके साथ सेवन करानेसे घोड़े

श्रीहरिने कहा—हे शिव। जो गौ अपने बछडेसे द्वेय हाबीका मुत्र पिलानेसे गाय और पैसीमें फैलनेवाला उपसर्ग

जया नामक औषधिको पायमें भरनेसे वह सूख जाता है। आदिको खुजली दूर हो जाती है। (अध्याय २०३)

औषधियोंके पर्यायवाची नाम

सुतजीने कहा-है ऋषियो। भगवान् धन्वनारिने इस पीवरी, इन्दीवरी तथा वरीके नामसे प्रसिद्ध है। प्रकार महर्षि सुश्रुतको वैद्यकत्रास्त्र सुनाया था। अब मै औषधियोंके पर्यायवाची नाम संक्षिप्त रूपमें आप सभीको सुनाऊँगा।

स्थिरा -- विदारीगन्धा, शालपर्णी तथा अंशुमती एक हो औषधिके नाम हैं। लाङ्गली नामक औषधि ही कलसी, क्रोष्ट्रापुच्छा तथा गुहा नामसे कडी जाती है। पुनर्नवाको वर्षाभू, कठिस्या और करुणा कहा जाता है। उस्कृत, आम तथा वर्द्धमानक— ये एरण्डके नाम हैं। झपा और नागबलाको (दण्डिनी)-को त्यवा, परा और महा नामसे स्वीकार किय एक ही औषधि मानना चाहिये। गोक्षुर अर्थात् गोखरूको गया है। श्चदंष्टा कहा गया है। शतावरी नामक औषधि वय, भीरु,

व्याची, कृष्णा, हंसपादी और मधुस्रवा बृहती नामक औषधिके पर्याय हैं। कण्टकारी या कटेरीको शुद्रा, सिंही तया निर्दिग्धिका कहा जाता है। वृश्विका, प्र्यमुता, कार्ल और विषय्नी सर्पदन्ता नामक औषधिक नाम है। मर्कटी आत्मगुप्ता, आपेयो तथा कपिकच्छुका- ये शब्द एक ह अर्थके वाचक हैं। मुद्रपणी और शुद्रसहा मूँगके तथ माषपणी एवं महासहा उड्दके पर्याय है। दण्डयोन्यह

न्यग्रीध और वट बरगदका तथा अध्यय और कपिल

पीपलका बाचक है। प्लक्षको गर्दभाण्ड, पर्कटो तथा पत्रक और दल नाम तेजपताके हैं। आरकको तस्कर कहा कपीतन कहा जाता है। अर्जुन वृक्षका नाम पार्च, ककुभ जाता है। हेमाभ नामक औषधिका नाम नाग भी है। और धन्यी है। नन्दीवृक्षको प्ररोही तथा पृष्टिकारी कहते हैं। इसलिये इसको लोग नागकेशर कहते हैं। असुकृ तथा वंजुल और वेतस एक हो औषधिके वाचक हैं। भल्लातक काश्मीरबाह्रीक शब्द कुंकुमके वाचक हैं। तथा अरुष्कर भिलाबाको कहा जाता है। लोध सारवक, धृष्ट और तिरीट नामसे अभिष्ठित है तथा बृहत्फला महाजम्ब जाचक हैं। काश्मीरी और कट्फला श्रीपर्णीको कहा जाता और बालफला एक अर्थके वाचक हैं। जलजम्बु नादेखेंका नाम है।

कणा, कृष्णा, उपकंची, शौणडी और मागधिका-ये नाम पिप्पलीके हैं। उसके जाननेवाले लोग उस औषधिको मूलको ग्रन्थिक कहते हैं। उत्पण नामक औषधिको मरिच तथा विश्वा नामक महीपधिको शुण्टो या साँठ वहा जाता है। व्योष, कटुत्रय तथा त्र्यूषण इसी औषधिका नाम है। लांगलीको हलिनी और शेयसीको गर्जापप्पली कहते हैं। त्रायन्तीका त्रायमाणा तथा उत्साका नाम सुवहा है।

चित्रकका नाम शिखी है। इसको वृद्धि तथा अग्नि नामसे भी कहा जाता है। चड्छन्या, उड़ा, श्रेता और हैमवती-ये नाम बचाके हैं। कुटबको शक्र, बत्सक तथा गिरिमझिका कहा जाता है। उसके बीजोंका नाम कलिङ्क, इन्द्रपव और अरिष्ट है। मुस्तक और मेघ नाम मोधाक वासक हैं। कौली नामक औषधि हरेणुका नामसे कही जाना जाता है। दाखाका नाम मुद्रीका तथा गोस्तनिका है। जाती है। एला और बहुला जब्द बढ़ी इलायची तथा हीबेरको अम्बुबालकके नामसे अभिहित किया गया है। सुरसा तथा उपस्था कहा जाता है। लोग इसीको कुठेरक,

308

पुर, कुटनट, महिषाक्ष तथा पलकुषा शब्द गुग्गुलके है। सक्तकी, गजभश्या, पत्री, सुरभी तथा श्रवा नाम गजारी औषधिक हैं। औवलाको धात्री और आमलको तथा अस एवं विभीतक बहेडाको कहा जाता है। पथ्या, अभया, पुतना और हरीतको शब्द हरिके पर्यायवाची हैं। इन तीनों फलोंको एकमें मिलाकर त्रिफला कहा जाता है। करंज या कंजा उदकीय्यं तथा दीर्घवृत्तके नामसे भी प्रसिद्ध हैं। यही, यष्टवाह्नय, मध्क और मधुयष्टी-ये जेठी मधुके वाचक हैं। धातको, ठाप्रपणी, समङ्गा तथा कुंजरा धातीफुलके नाम माने गये हैं। सित, मलयज, शीत और गोशोर्पको श्रेतचन्दन कडा जाता है। जो चन्दन रक्तके सद्दश लाल होता है उसका नाम रक्तवन्दन है। काकोली नामकी औषधिको वीरा, वयस्या और अर्कपुष्पिकाके नामसे भी कहा जाता है। शुंगी नायक औषधि कर्कटशुंगी तथा महाघोषाके नामसे प्रसिद्ध है। बंशलोचनको तुगाक्षीय, शुभा और बांशीके नामसे भी उसीर अर्थात् खस नामक औषधिका नाम मुणाल और

सुक्ष्मैला एवं त्रुटि शब्द छोटी इलावचीके बाचक है। लामजाक है। सारको गोपवाली, गोपी और भद्रा कहा जाता भाङ्गीका नाम पद्मा तथा काँजीका नाम बाह्मजयष्टिका है। है। दन्ती नामक औषधिका नाम कटकूटेरी भी है। हल्दीकी मुखां नामक औषधि मधुरसा और तेजनीका नाम तिकावस्तिका दार, निजा, हरिद्रा, रजनी, पीतिका और रात्रि कहा गया है। महानिम्बको बृहन्निम्ब तथा दीप्यकको यवानिकः है। वृक्षादनी, छिन्नरुहा, नीलवासी तथा अमृतरसा नामवाली (अजवाइन) कहा जाता है। विडङ्गका नाम क्रिमिशत्र है। औषधि हो गुड्ची है। वसुकोट, वाशिर और काम्पिक्ष हिंगु अर्थात् हींगको रामठ भी कहते हैं। अजाजी जोरक नामक औपथि एक ही है। पाषाणभेदक, अरिष्ट, अश्मिभत् अर्थात् जीरेका पर्यायवाची शब्द है। उपकुंचिकाको कारवी तथा कुट्टभेटक—ये सभी नाम पथरचट्टा या परधरचूनाके कहा जाता है। कटुला, तिका तथा कटुरोहिणी—ये तीन वाचक हैं। घण्टाकको सुष्कक और सूचकको वचा (वच) कटकी नामक औषधिके वाचक हैं। तगरका नाम नत और नामसे अभिष्ठित किया गया है। पीतशालको सुरस तथा वक्र है। चीच, त्वच तथा वराब्रुक, दारुचीनी नामक बीक्क नामसे कहा जाता है। वत्रवृक्षको महावृक्ष, स्नुहीको औषधि कहलाती है। उदीच्यको बालक (मोधा) तथा सुक् (धृष्टड) और सुधाको गुडा माना गया है। तुलसीको अर्जुनक, पणीं और सौगन्धिपणीं भी कहते हैं। नील नामक हेमसीरी या स्वर्णश्रीरी नामकी औषधिको पीता, गौरी तथा औषधि सिन्धुवार है और निर्गुण्डीको सुगन्धिका कहा जाता कालदुग्धिका नामसे स्वीकार किया गया है। गाङ्गेरुकी, है। सुगन्धिपणीं नामकी औषधि वासन्ती और कुलजा नागवला, विशाला और इन्द्रबारुणी अर्धात् इन्द्रायण एक ही नामसे जानी जाती है। कालीयक नामक औषधिक पर्यायवाची शब्द हैं- पोतकाष्ट तथा कतक। गायत्री नामकी औषधिका नाम खादिर है। कन्दर अर्थात् कल्पा उसीका भेद माना गया है। नीलकमलके जाचक इन्दोवर, कुवलय, पद्म तथा नीलोत्पल माने गये हैं। सीगन्धिक, जतदल और अब्ज कमलको कहा जाता है। अञ्चल, ऊर्ज, वाजिकण तथा अश्वकर्ण एक ही औषधिके नाम है। श्लेष्मानक, शेलु और बहुबार एक ही अर्थके वाचक है।

सुनन्दक, ककुद्भद्र, छत्राको तथा छत्र रास्त्र नामको औपधिके वाचक हैं। कबरी, कुम्भक, धृष्ट, शृद्धिया और धनकृत एक ही औषधिक नाम है। कृष्णार्थक तथा कराल नामक औषधि कालमान या काममान नामसे प्रसिद्ध हैं। वरियारा नामक औषधिको प्राची, बला और नदीकाना कहा जाता है। काकजंघा नामको औषधिका पर्याचवाची शब्द वायसी है। मुधिकपणी नामक औषधि भ्रमन्ती और आखपर्णीके नामसे जानी जाती है। विषमृष्टि, द्रावण और केशमृष्टि—ये तीनों एक ही औषधिके वाचक है। किलिही या किणिहीको कटकी तथा अन्तकको अम्लबेतम कहा जाता है। अश्वत्था और बहुपत्रा एक ही औपधि है इसीको वायसी। महाकालको बेल तथा तण्डुलीयको भनस्तन कह लोग आमलको भी कहते हैं। अरूपक्रका नाम पत्रकुक है। जाता है। इश्वाकुको विकतुम्बी और विकालापु कहा जात श्रीरीको राजादन नामसे स्वीकार किया गया है। महापत्रका है। धामार्गवको कोषातकी तथा यामिनी कहा जाता है नाम दाडिम है, इसीको करक भी कहा जाता है। मसूरी, कुतभेद नामक इस कोषातकी औषधिका एक अन्य भेद विदली, शष्पा तथा कालिन्दी नाम एक ही अर्थके वाचक है। देवताडक नामक वृक्षके पर्याय हैं जीमूतक तथ हैं। कटेरी वृक्षको कण्टका, महास्थामा और वृक्षपादा कहा खुडूाक। गृधादना, गृधनखी, हिङ्गु और काकादनी सब्द जाता है। विद्या, कुन्ती, त्रिभंगी, त्रिपुटी और त्रियुक्-ये होंगके वाचक माने जाते हैं। करवीर (कनेर)-का पर्यायवाची सभी शब्द एक औषधिके वाचक हैं। सफाला, यवतिका, रूब्द है अश्वारि तथा अश्वमारक। चमां और चर्मकसा—ये सभी नाम समान औषधिके माने गये हैं। अक्षिपीलुको संखिनी, सुकुमारी और विकाशी कहा कहा जाता है। यवक्षार लवणका नाम है क्षार और यवाग्रज जाता है। अपराजिता नामक औषधिके पर्यायवाची शब्द सन्त्री या छन्त्रो मिट्टीका नाम है सर्जिका एवं सर्जिकाक्षार हैं गवाशी, अमृता, श्रेता, गिरिकणों तथा गवादिनी। काशीशके नाम हैं पुष्पकाशीश, नेत्रभेषज, धातुकाशीश और

औषधिके बाचक हैं। रसांजन नामक औषधिके पर्याय हैं कक्ष्यं, जैल, नीलवर्ण तथा अंजन। शाल्मली या सेमरवृक्षके निर्यासको मोचरस'के नामसे अभिहित किया जाता है। प्रत्यकृपुष्मीको खरी और अपामार्गको मयुरक कहा गया है। जंगली अङ्ग्रका नाम है सिंहास्य वृषवासाक तथा आटरूष। जीवशाक नामक औषधिको जीवक और कर्बरको जटी नामसे भी कहा गया है। कट्फलका नाम सोमवृक्ष तथा अग्निगन्धाका नाम सुगन्धिका भी है। सींफको शताङ्ग और शतपुष्पा कहा जाता है। मिसिको मधुरिका माना गया है। पुष्करमूलको पुष्कर तथा पुष्कराह्नय नामसे भी स्वीकार करना चाहिये। यास नामक औषधिके प्यांयवाची सन्द है धन्वपास, दुप्पर्श और दुरासभा वाकुची अर्चात् वकुची, सोमराजी और सोमवली एक ही औषधिक नाम है। भैगरहयाको मार्कव, केशराज तथा भंगराज कहा जाता है।

एडगन नामक औषधिको आयुर्वेद एवं वनस्पतियोंके विद्वान् यक्रमर्दक या चकवड़ कहते हैं। काकतुण्डी नामक औषधिक वाचक हैं सुरंगी, तगर, स्नायु, कलनाशा और

सॅधनमकको सिन्धु, सैन्धव, सिन्धुत्थ तथा मणिमन्ध काम्पिलको रक्ताङ्ग, गुण्डा और रोचनिका कहा जाता है। काशी।यह पुष्प एवं धातुभेदसे दो प्रकारका है। पङ्कपर्पर्ट

१-सेमलके गोंदको मोचरम कहते हैं।

जाता है। स्वर्णमाधिका नामक मिट्टीके पर्याय हैं माधिक, ताप्य, ताप्यत्थ और ताप्यसम्भवा। मन:शिला या मैनसिलका नाम है शिला। नेपाली मन:शिलाको कुलटी कहा जाता है। हरितालके लिये आल अथवा मनस्ताल नाम प्रयुक्त होता है। गन्धक, गन्धपाषाण तथा रस पारद या पारा कहलाता है। ताँबेके वाचक है ताप्र, औदम्बर, शुल्ब और म्लेच्छमुख। लोहेको अदिसार, अयस्, लोहक तथा तीक्ष्ण भी कहा जाता है।

मधु शब्दके पर्यायवाची हैं माक्षिक, मधु, सीद्र और पुष्परसः। इसके दो उपभेद हैं-जोडी मधु तथा उदको मधु। काँजीको सुवीरक नामसे अधिष्ठित किया गया है। शर्कराको सिता, सितोपला और मत्स्याण्डीके नामसे कहा जाता है।

त्रिसगन्धि नामक औषधिका निर्माण दारुवीनी नामक वृक्षकी छाल, इलायची तथा तेजपत्ताको समान मात्रामें मिलानेपर होता है, इसे त्रिजातक कहा जाता है, उसमें नागकेशरका मिश्रण कर देनेपर वह चतुर्जातक कहलाता है। पिप्पली, पिप्पलीमूल, चब्य, चित्रक और नागरके मित्रित स्वरूपको पञ्चकोल और कोल कहा जाता है।

प्रियंगुको कंगुका (काकुन) तथा कोइव या कोदोको कोरदृषके नामसे जानना चाहिये। त्रिपुटका नाम पुट है और कलापका लङ्गक नाम स्वीकार किया गया है। वेणु अर्थात् बाँसको सतीन तथा वर्तुल भी कहा जाता है।

पिनक, पितल, अक्ष और विडालपदक शब्द तौल-परिमाणमें एक कर्ष (सोलह मासा)-के वाचक है। सुवर्ण तथा कवलग्रहका बराबर मान है। प्रलाध अर्थात् आचा पल एक शुकित तथा आठ मापक भारमें समान है। पल,बिल्व और मुद्रीका परिमाण समान होता है। दो पलकी माजको प्रसति अर्थात एक पसर कहा गया है। अंजलि और कडवका मान चार पलके बराबर होता है। आठ पलको अध्यमन कहा जाता है, उसे मान भी कहा गया है। चार कुडवका एक प्रस्थ (एक सेर) और चार प्रस्थका एक उसे आए ध्यानपूर्वक सुने। (अध्याय २०४)

(गुजराती मिट्टी)-को सौराष्ट्री, मृतिकाक्षार तथा काशी कहा । आड्क अर्थात् एक अद्या होता है। इसीको एक काशपात्र कहा गया है। चार आदकका एक द्रोण होता है। एक सी पलका एक तुला और बीस पलका एक भाग माना गया है। विद्वानोंने प्रस्य आदिकी मात्रामें प्राप्त होनेवाले द्रव्योंका मान तो इस प्रकारसे कहा है, किंतु द्रव-पदार्थीको मात्राको उसका दुगुना स्वीकार किया गया है।

> भद्रदार, देवकाष्ट्र तथा दारु देवदारुके वाचक है। कुष्टको आमय और मांसीको नलदंश कहा गया है। शंख नामक औषधिका नाम शुक्तिनख है तथा व्याप्र नामकी औषधि व्याचनखी या व्यापनख शब्दसे कही गयी है। गृग्गुल नामकी औषधिके वाचक पुर, पलङूप तथा महिषाक्ष शब्द हैं। रस गन्ध-रसका पर्यायवाची है, इसीको बोले भी कहा जाता है। सर्व अर्थात् राल सर्वरसका बोधक है। प्रियञ्ज फॉलनी, श्यामा, गीरी और कान्ता-इन नामोंसे अधिहित किया जाता है। करंज या कंजेका नाम नक्तमाल, पृतिक तथा बिर्सबल्वक है। शियु शोभावन तथा रोनमान नामसे प्रसिद्ध है। इसे सहिजन भी कहा जाता है। सिन्धवार नामक औषधिके वाचक हैं-जया, जयनी, शरणो और निर्मण्डी। मोरटा नामक औषधि पीलुपणी (मूर्जा) है तथा तुण्डीका नाम तुण्डिकेरी है।

> मदन-वृक्षको गालव बोधा, धोटा और घोटी कहा जाता है। चतुरङ्गल नामक औषधि सम्पाक तथा व्याधिमातक नामसे भी प्रसिद्ध है। आरग्वधका नाम राजवृक्ष और रैवत है। दनोंको लोग काकेन्द्र, तिका, कण्टकी और विकडूत कहते हैं। निम्बको अरिष्ट कहा गया है तथा पटोलका एक नाम कोलक (परवल) है। वयस्थाका नाम विशस्या, छिना और जिल्लाहा है। गुडुचीके पर्यायवाची है—वशा, दनी तथा अमृता। किरातिकका नाम भूनिम्ब और काण्डतिक है। सुतजीने कहा-है शीनक। ये सभी नाम बनमें उत्पन्न

होनेवाली औषधियोंके हैं। इन्हीं वनस्पतियोंका वर्णन भगवान् औहरिने शिवजोसे किया था। अब मैं कुमार अर्थात् भगवान स्कन्दके द्वारा कहे गये व्याकरणशास्त्रको बतलाकैंगा,

व्याकरण-निरूपण

व्याकरणके विषयमें बतला रहा है। यह व्याकरणसे सिद्ध होती है। वारणार्चक धातुके प्रयोगमें जो ईप्सित अभीष्ट हो शब्दोंके जानके लिये तथा बालकोंकी व्यत्पत्ति-प्रक्रिया उसकी अपादान संज्ञ होती है तथा अनीप्सत (अनीच्छित)-बढानेके लिये है।

प्रत्यय सात विभक्तियों में मेंटे हैं। स् , औ, जस-यह वाचक शब्दका योग होनेपर पञ्चमी विभक्ति होती है। प्रथमा विभक्ति है। प्रथमा विभक्ति प्रातिपदिकार्थमें, सम्बोधन- प्रत्ययान्तके एक योगमें द्वितीया विभक्ति होती है कर्मप्रवचनीय-अर्थमें, लिङ्गादि-बोधक-अर्थमें तथा कर्मके उक्त होनेपर संज्ञक पदोंके योगमें भी द्वितीया विभक्ति होती है। लक्षण-कर्मवाचक-पदसे और कर्ताके उक्त होनेपर कर्तवाचक- अर्धमें, इत्यम्भूत तथा आख्यान-अर्थमें और वीप्सा-अर्थमें पदसे होती है। धातु और प्रत्ययसे फिल अर्थवान् कब्दन्वकानको प्रति, प्रति, अनुकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। हीन-अर्थमें प्रातिपदिक संज्ञा होती है। अप, औद, श्रम - यह द्वितीया अनुक्री अधिक अर्थमें उप उपसर्गकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा विभक्ति है। द्वितीया विभक्ति कर्म-अर्थमें होती है। अन्तरा, होती है। अध्यवाचक-जब्दके कर्ममें और गत्यर्थक धातुके अन्तरेण पदोंके योगमें भी द्वितीया विभक्ति होती है। टा. कर्ममें द्वितीया तथा चेष्टा-अर्थमें चतुर्थी विभक्ति होती है। भ्याम्, भिस्—यह तृतीया विभक्ति है। तृतीया विभक्ति दिवादिगणमें पठित मन् धातुके कर्ममें अनादरके तात्पर्यसे करण और कर्ता-अर्थमें होती है। क्रिया (फल)-की अग्राणिवायक पदमें द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति होती है। सिदिमें अत्यन्त उपकारक कारककी करण संज्ञ डोती है। नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलग् और वपट्का योग क्रियाके प्रधान आवयको कर्ता कहते हैं। के, भ्याम, होनेपर तथा तादर्थके योगमें चतुर्थी विभक्ति होती है। भ्यस-यह चतुर्थी विभक्ति है। चतुर्थी विभक्ति सम्प्रदान भाववाची तदर्थसे विहित तुमन प्रत्यपान्तसे चतुर्थी होती है। कारकके अर्थमें होती है। रुप्यर्थक भावके योगमें तप्त सह शब्दसे यक और विकत-अङ्गवाचक शब्दमें मुख्यरूपसे स्व-स्वामिभाव-सम्बन्धमें होती है। वस्तृत: विभक्ति होती है। सम्बन्ध सामान्य षष्ठीका अर्थ है। [इस सम्बन्धमें 'एकशतं स्मरणार्थक धातुके कर्ममें और प्रतियत्नार्थक क् षष्ठपर्थाः '(यच्ठी विभक्तिके सौ अर्थ होते हैं) यह भाष्य धातुके कर्ममें तथा शेषत्वकी विवक्षामें यही विभक्ति ही अनुसंधेय है।] कि, ओस, सुप्—यह सप्तमी विभक्ति है। होती है। हिंसार्थक जास् नि पूर्वक और प्र पूर्वक हन आदि सप्तमी विभक्ति अधिकरण-अर्थमें हुआ करती है। आधारकी और नाट क्राइ एवं चित्र धातुओंके कर्ममें शेयत्वकी अधिकरण संज्ञा होती है। आधार औपश्लेषिक, वैपयिक विवक्षामें बड़ी होती है तथा कुदन्त पदादिके योगमें और अभिव्यापक-भेदसे तीन प्रकारका होता है। वारणार्थक कर्तकर्मवाचक-पदसे वही होती है। निष्ठाप्रत्ययान्तके योगमें

कुमारने कहा -हे कात्यायन! अब मैं संक्षेपमें धातके योगमें ईप्सित और अनीप्सितकी भी अपादान संज्ञा को कर्म संज्ञा होती है। कर्मप्रवचनीयसंज्ञक परि, अपू, आङ् सुबन्त और तिङन्त-ये दो प्रकारके पद होते हैं। सुख् के योगमें तथा इतर, ऋते (बिना) अन्य-दिक् (दिशा)-

होनेवालेकी, ण्यन्त ध धातके प्रयोगमें उत्तमर्गकी एवं तृतीया विभक्ति होती है। कालार्थक तथा भावार्थक दानके उद्देश्यकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। इति, भ्याम्, तन्दोंमें सप्तमी विभक्तिके प्रयोगका विधान है, किंतु पष्टी भ्यस् – यह पष्टमी विभक्ति है। पञ्चमी विभक्ति अपादान विभक्तिका भी प्रयोग इन अर्थोमें किया जाता है। स्वामी, कारकके अर्थमें होती है। जिससे पृथक हुआ जाता है, ईश्वर, अधिपति, साशी, दायाद, प्रतिभू और प्रसृत-इन जिससे लिया जाता है, जिसके समीपसे लिया जाता है या शब्दोंके योगमें यही एवं सप्तमी विभक्ति होती है। जो भयका हेत् होता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है। निर्धारण-अर्थमें यही तथा सप्तमी दोनों विभक्ति होती है। इस. ओस और आय- यह पत्नी विभक्ति है। यह विभक्ति हेतुवाचक शब्दके प्रयोगमें हेतुवात्य होनेपर मात्र पत्नी

विभक्त हो जाता है। भू आदि धातुओंसे लट् आदि दस है। अनवतन भूतके अर्थमें लङ् लकार होता है। विहित होते हैं।

धातुसे प्रथमपुरुष-संज्ञक प्रत्यय होते हैं। कर्ताके रूपमें प्रयोग केवल वेदमें होता है। होती है। लट लकारका प्रयोग वर्तमान कालके लिये होता. आदि प्रत्यय होते हैं। (अध्याय २०५)

कर्तृकर्मवाचक-पदसे षष्ठी विभक्ति नहीं होती। है तथा 'स्म'का योग हो जानेपर वहीं क्रिया भूतकालिक प्रातिपदिक नाम और नामधातु—इन दो भागोंमें हो जाती है। लिट् भूतकाल (परोक्ष)-के लिये प्रयोज्य लकार होते हैं, जिनके स्थानपर तिङ् प्रत्यय हुआ करते हैं। आजा तथा आसीर्वादकी क्रियाके निमित्त लोट् आदि तिप्, तस्, क्लि प्रथमपुरुष है। सिप्, श्रम्, श्र मध्यमपुरुष- लकारोंका प्रयोग होता है। विधि आदि अर्थमें भी लोट्का संज्ञक प्रत्यय हैं और मिप, बस, मस् उत्तमपुरुष-संज्ञक प्रयोग हो सकता है। विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, प्रत्यय हैं। इन प्रत्ययोंको परस्मैपद संज्ञा होती है। सम्प्रश्न तथा प्रार्थनाके अर्थमें जो लिङ् होता है, आत्मनेपदर्सञ्जक प्रत्यय त, आताम्, इर की प्रथमपुरुष संज्ञा उसे विधिलिङ् तथा आशोबंदके अर्थमें जो लिङ् होता तथा धास् आधाम्, ध्वम् को मध्यमपुरुष संज्ञा और इद्, है उसे आर्तिष्लङ् कहते हैं। भविष्य (सामान्य)-में बहिन्दु महिन्दुको उत्तमपुरुष संज्ञा होती है। ये परस्मैपद एवं लुट् लकार होता है और अन्यतन भविष्यमें लुट् आत्मनेपद प्रत्यय णिच् आदि प्रत्ययोंकी भौति धातुसे लकार होता है। हेतुहेतुमद्भावके विषयमें क्रियाकी अनिष्पत्ति गम्यमान हो तो भविष्य और भूत-अधीमें लुङ् लकार युष्पद् और अस्मद्से अतिरिक्त क्रियाका कर्ता होनेपर होता है। लिङ् के अर्थमें लेट् लकार होता है, किंतु इसका

युष्पद् शब्दका प्रयोग होनेपर मध्यपपुरुष और कर्ताके लकार सकर्मक धातुसे कर्ता या कर्म-अर्धमें तथा रूपमें अस्मद शब्दका प्रयोग होनेपर उत्तमपुरुष होता अकर्मक धातुसे धाव या कर्ता-अर्थमें होते हैं। कृतसंहक है। भू आदिकों धातु संज्ञा होती है। सन्, क्यन्, कान्यन्। प्रत्यम कर्ता अथवा कर्म अथवा धाव-अर्थमें होते हैं। इसी आदि प्रत्यय जिसके अन्तमें हों उनकी भी धातु संज्ञा प्रकार तब्धत् आदि कृत्-संज्ञक प्रत्यय तथा अनीयर, तृच्

व्याकरणसार

युक्त सिद्ध शब्दोंको बतलाने जा रहा हूँ। आप उसे सुनै— भवांत्र्डादयति (अनुस्वार सुद्-झूत्व), भवाज्यनकरः सागता, बीदं, स्तमम्, पित्र्षंभ, ल्वार-इन पटोमें दोर्च (परसवर्ण), भवांस्तरित, (अनुस्वार-सुट्), भवाँक्षिखति सन्धि है। लांगलीया, मनीया—यहाँ पररूप सन्धि है। इसी (परसवर्ष), ताक्को (श्रुत्व), भवाज्लेते (श्रुत्व) भवाण्डीनं प्रकार गंगोदकम् (यहाँ गुण हुआ है।) तवल्कार: (यहाँ त्वन्तरीस त्वङ्करोषि (परसवर्ण) (ये व्यञ्जनसंधिके उदाहरण गुण), ऋणार्जम्, प्रार्जम्में (बुद्धि), शोतार्तः में (दीर्घ), हैं), सदार्चनम् (दीर्घ), कक्षरेत् (क्षत्व) कृष्टकारेण (चुत्व), सैन्द्री-सौकरमें (वृद्धि), बध्यासन, पित्रर्थ, लनुबन्धमें (यज्), करकुर्यात् करफले (विद्वामुलीण विसर्ग) करशेते (श्रुत्प), नायकः, लवणम्, गावःमें (अपादि), एते (गुण्) त ईश्वयःमें ऋषण्डः (घुत्व), कस्कः (सत्व), क इहात्र क एवाहु— (अयु और यलीप) (ये क्रन्द स्वरसन्धिके उदाहरण हैं।) देवा आहु:, भी क्रन (रूल, यत्व, यलीप), स्वयम्भूविष्णुर्वजित देवी गृहमधो अत्र अ अवेहि पटू इमी (इनमें प्रकृति भाव (रुख) गौष्पतिः (यत्व), धूर्पतिः (रुख), कुटीच्छाया है।), अश्वा: घडस्य (जरुवा), तत्र (अनुनासिक), वाक् (तुक्-श्वुत्व), तथाच्छाय (तुक्-विकल्प)—ये विसर्गसन्धिके (चर्त्व), षडदलानि (जश्त्वा), तच्चरेत् (क्षूत्व-चर्त्व), उदाहरण है। तक्षुनाति (परसवर्ण), तज्जलम् (क्षुत्व), तच्चमज्ञानकम् समास छः प्रकारके होते हैं (द्वन्द्व, द्विगु, तत्पुरुष,

सुतजीने कहा-हे निप्री! अब मैं संहिता आदिसे (सत्त्व-श्रुत्व), सुगन्नज्यत्र, प्रवन्नत्र (नुट् आगम),

कर्मधारय, बहुव्रीहि, अञ्चयीभाव)। स द्विजः= सद्विज स्त्रीलिङ्गर्मे सिद्ध रूप है। (कर्मधारय), त्रिवेद (त्रयाणां वेदानां समाहार: द्विगु) तत्कृत: तदर्थः वृक्कभीतिः, यद्भनम् ज्ञानदक्षः (इनमें क्रमतः तेन कृत:, तस्मै अर्थ:, वृकाद् भीति:, यस्य धनम्, ज्ञानेदक्ष: इस व्युत्पत्तिसे तृतीया, चतुर्थी, पश्चमी, चष्टी तथा सप्तमी तत्पुरुष समास है।) तत्त्वज्ञमें बहुव्रीहि तथा अधिमानमें अध्यदीभाव समास है। देवर्षिमानवा: में देवश्च ऋषिश्च मानवश्च इस व्युत्पत्तिसे इन्द्र समास है।

'पाण्डव (पाण्डो: अपत्यमिति पाण्डव: इत्यर्चे अण्)', शैव (शिक्षो देवताऽस्य इत्यर्थे अण्) , ब्राह्यम् (ब्रह्मणः भाव: कर्म इत्यर्थे व्यव्)! तथा ब्रह्मता (ब्रह्मण:भाव: इत्यर्थे तल्) , आदि तद्धित प्रत्ययाना शब्द है।

देव, अग्नि, सिख, पति, अंश, क्रोच्टा (सिपार),

स्वायम्भुव, पितृ, नृ, प्रशस्ता (प्रशंसक), रै (धन), गी और ग्ली (चन्द्रमा)—ये अत्यन्त पुष्टिक्के सिद्ध तब्द हैं। अध्युक् (घोड़ेसे युक्त), श्माभुक् (पृथ्वीका उपभोग करनेवाला राजा), मरुत् (पवन), ऋत्याद, मृगव्यथ (मृगका पीस करनेवाला शिकारी), आत्मन, राजन् (राजा), यव, पन्चा (मार्ग), पूचन् (सूर्य), ब्रह्महन् (ब्राह्मणको मारनेवाला ब्रह्मघाती), हलिन् (हल धारण करनेवाला मनुष्य), बिट् (जार पुरुष), बेधस् (विधाता), उज्ञानस् (उप्तना-मुक्राचार्य), अनड्वान् (गाडी खोंचनेवाला बैल), मधुलिट् (शहद चाटनेवाला भौरा) तथा काष्रतट् (कठफोर पक्षी या बढ़ई)- में हलन्तु पुँक्षिद्धके अन्तर्गत आनेवाले

वन (जंगल), वारि (जल), अस्थि (हड्डी), वस्तु सर्वादिगणमें परिगृहीत किया गया है। (सामग्री), जगत् (संसार), साम्, अहः, कर्म, सर्पिष् (घी), वपुष (शरीर), तेजस् (ऊर्जा)-ये आदिके चार शब्द अजन्त और शेष हल् प्रत्ययाना नर्पसकलिङ्गके सिद्ध रूप है।

स्वसा (बहन), मातु (माता) तथा नौ (नौका)-ये अजन्त रहा है)-ये कतिपय तिडन्तके सिद्ध रूप शब्द हैं।

१. शिवादिभ्योऽण् (पा०सृ० ४।१।११२)

सिद्ध शब्द हैं।

वो स्वीलिक्समें बनते हैं।

वाक् (वाणी), सक् (माला), दिक् (दिशा), मुद (मुदा-प्रसन्नता), कृष् (क्रोध), युवति, ककुभू, द्यौ (आकाश), दिव् (स्वर्ग), प्रावृट् (वर्षा), सुमना

और उष्णिक्—ये हलना स्त्रीलिङ्ग सिद्ध रूप हैं। अब मैं आपको गुण, द्रव्य और क्रियाके योगसे बननेवाले स्वीलिङ्गके सन्दोंको भी बता रहा है।

शुक्ल (श्रेत), कीलालक (अमृतके समान पेय पदार्थ), शुचि (पवित्रता), ग्रामणी (गाँवका अधिकारी), सुधी (विद्वान्), पटु (चतुर), कमलभू (कमलसे उत्पन्न ब्रह्म या पराग), कर्तृं (कर्ता), सुमत (सुन्दर विचारीवाला पुरुष), सुनु (पुत्र), सत्या, अधश्च (त्र खाने योग्य), दीर्थम, सर्वविश्वा, उभव (दो), उभी, एक, अन्या (दूसरी)

और अन्यतरा (दूसरेमें प्रमुख)—ये सब गुणप्रधान शब्द हैं।

इसके बाद इतर (उच्चतर), इतम (उच्चतम), नेम,

तु (तो), सम (समान), अथ (तदननार), सिम (प्रत्येक), इतर (अतिरिक्त), पूर्व (प्राचीन), अध: (नीये), च (और), दक्षिण (दक्षिण दिशा), उत्तर (उत्तर दिशा), अवर (अधम), पर (दूसरे), अन्तर, एतद (यह), यद्यत (जो-जो), कि (क्या), अदम् (यह), इदम् (यह), पुष्पत् (तुन), अस्मत् (मैं-हम), तत् (वह), प्रथम (पहला), चरम (अन्तिम), अल्पतवा (संक्षेप), अर्थ (आधा), तथा (और), कतिपय (कुछ), ही (दी), चेति (और ऐसा), एवं (इस प्रकार)—ये सभी शब्द सर्वनाम हैं। इनको

नृषोति (सुनता है), जुहोति (हवन करता है), जहाति (परित्याग करता है), दधाति (धारण करता है), दीप्यति (तेजस्वी बन रहा है), स्तूबति (स्तुति करता है), पुत्रीयति (पुत्रके समान व्यवहार करता है), धनीयति (धनवान् बन जाया (पत्नी), जरा (बृद्धावस्था), नदी, लक्ष्मी, बी, रहा है), ज्युट्यति, ब्रियते (मर रहा है), चिचीयति (संग्रहकी स्त्री, भूमि, वधु, भू (भींह), पुनर्भू (पुनर्जन्य), धेनु (गी), इच्छा कर रहा है) तथा निनीपति (से जानेकी इच्छा कर

२. गुणवचनप्राद्मणादिभ्यः कर्मीण व (पा०मू० ६।१।१२४)

३. तस्य भावस्त्वतस्त्री (पा०सू० ५।१(११९)

चतुर्थी विभक्तिके एकवचनमें 'सर्वस्मै', पञ्चमी विभक्तिके रूप बनता है। एकवचनमें 'सर्वस्मात्', बष्टी विभक्तिके बहुवचनमें 'सर्वेचम्' रूप बनता है। इसी प्रकार विश्व आदि शब्दोंके रूपोंको भी पदीके सिद्धरूपका वर्णन नाममात्र ही किया गया है। आप जानें। पहले कहे गये 'पूर्व' शब्दके प्रथमा विभक्तिके कुमारसे इस व्याकरणको सुनकर कात्यायनने इसको बहवधनमें 'पूर्वे, पूर्वा:' पश्चमी विभक्तिके एकवचनमें विस्तारपूर्वक कहा या। (अध्याय २०६)

'सर्व' शब्दके प्रथमा विभक्तिके बहुवचनमें 'सर्वे', 'पूर्वस्मात्' और सप्तमी विभक्तिके एकवचनमें 'पूर्वस्मिन्'

सुतजीने कहा-है ऋषियो! सुबन्त और तिङन्त

छन्द-विधान

और सरस्वतीको नमस्कार करके अल्प बृद्धिवालोंके लिये विशिष्ट बुद्धिकी प्राप्ति-हेतु मात्रा और वर्णके भेटके अनुसार छन्द-विधानको कहता है।

सभी गणोंमें आदि, मध्य और अन्त होता है। इसके अतिरिक्त इनमें गुरु तथा लघु होते हैं। (इन्हीं गुरु तथा लच वर्णोंसे आठ गणोंकी रचना हुई है, जो बगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण और सगण हैं।) लघु (इस्त)-वर्णको ल एवं दीर्घ वर्णको ग कहा गया है। तीन गुरुवर्ण (555)-को 'मगज', तीन लयुवर्ण (111)-को 'नगण', प्रथम गुरु और दो लघु (511) होनेपर 'भगण', आदि लघु और इसके बाद दो गुरु (155) होनेपर 'यगण', दो आगे-पीछे लघु और मध्यवर्ण गुरु(। ३।)होनेपर 'जगण', मध्यवर्ण लघु और दोनों ओर दो वर्ण गुरु (515) होनेपर 'रगण', अन्तवर्ण गुरु और उसके पूर्वके दो वर्ण लघु (1) 5) डोनेपर 'सगण' तथा अन्तवर्ण लघु और उसके पूर्व दो वर्ण गुरु (351)होनेपर विषमवृत्त। (अध्याय २०७)

सूतजीने कहा-अब मैं वासुदेव, गुरु, गणपति, कम्भु 'तगण'-इस प्रकार तीन-तीन वर्णका एक एक गण होता है। आर्था छन्द चतुष्कला है, इसके आदि, अन्त तथा मध्य सभी जगह चार-चार गण रहते हैं। व्यक्तनान्त, विसर्गान्त, अनुस्वारपुक, दीर्घ एवं संयुक्त वर्णका पहला वर्ण गुरु होता है। पदके अन्तमें स्थित वर्ण विकल्पसे गुरु होता है। गुरुवर्ग दोर्घ मात्रावाला होता है। श्लोकको अवणकी मधरता आदिके लिये कभी-कभी गुरुवर्ण भी लघुके रूपमें व्यवहरू होता है। छन्दोंको श्लोक तथा आर्यादिके नामोंसे अधिष्ठित किया जाता है। विच्छेद स्थानको यति (विराम) कहा जाता है। इसका नाम विच्छेदन भी है। निर्दिष्ट स्थानमें यति न होनेपर यतिच्छेद या यतिभङ्ग डोता है। स्लोकके चतुर्धाराको पाद कहा जाता है। समान अर्थात् द्वितीय और चतुर्थं पादको युक् कहा जाता है। विषम अर्थात प्रथम और तृतीय पादको अयुक् कहा जाता है, वृत अर्थात् जिसकी अक्षर-संख्या निर्दिष्ट होती है, वे छ-द तीन प्रकारक हैं- समवृत्त, अर्धसमयुत्त और

छन्द-विधान (आर्या आदि वृत्तोंके लक्षण)

है-आयां छन्दमें आठ गण होते हैं। इसका विषम गण अक्षरसे ही पदका आरम्भ होता है। जिस आयोक पूर्वाई अर्थात् प्रथम, तृतीय, पञ्चम तथा सप्तम सर्वदा जगण और उत्तरार्द्धमें तीन-तीन गणोंके बाद पहले पादका विराम (151)-रहित होता है। यदि छठे गणमें जगण (151) होता है, उसको पच्या नामको आर्या कहते हैं। जिस अथवा नगण (111) और एक लघु (1) हो तो उस गणके आयोंके पूर्वाई. उत्तराई या दोनोंमें अथवा तीन गणींपर द्वितीय अक्षरमें लघु होनेके कारण सुबन्त या तिङन्त पाटविराम होता है, उसका नाम बियुला है। इन तीन लक्षणवाली 'पद' संज्ञाकी प्रवृत्ति हो सकती है। यदि सातवे विशेषताओं के कारण इसके तीन भेद हो जाते हैं, जिन्हें-गणमें सभी वर्ण हस्य (111) हों तो उसके प्रथम अहारसे १-आदिविपुला, २-अन्यविपुला और ३-उभयविपुला कहा 'पद' संज्ञाकी प्रवृत्ति होती है। यदि आयंकि उत्तराई भागमें गया है। जिस आयां छन्दके द्वितीय तथा चतुर्थ गण गुरु

स्तजीने कहा-आर्या छन्दका लक्षण इस प्रकार पाँचवें गणमें सभी वर्ण लघु (111) हों तो उसके प्रथम

(151)-से युक्त हों तो उसे मुखपूर्वादिचपला नामको विषम-पार्टीके हो अनुसार हों अर्थात् प्रत्येक पाद चौदह आयां कहते हैं। जिस आयोंके दूसरे उत्तराईमें चपलाका लकारों (माजाओं)-से युक्त हो और उनमें द्वितीय मात्रा ही लक्षण हो तो उसे सजबना आर्या कहा जाता है। नहीं तृतीयसे संलग्न होती हो तो उसे खारुहासिनी वैतालीय छन्द आर्याका 'उत्तरार्द्ध' पूर्वार्द्धके समान हो होता है अर्थात् कहते हैं। पुर्वार्द्धकी भौति ही उसके उत्तरार्द्धमें भी छठा गण मध्य गुरु (13) अथवा सर्व लघु (11) होता है तो उसे जीति (113) और नगण (111)-का प्रयोग नहीं करना चाहिये। को संज्ञासे अभिहित करते हैं। यदि आर्यामें उत्तराईकी भौति पूर्वार्द्ध भी हो तो उसको उपगीति आयां कहा जाता है। आयोंमें जब यही क्रम विपरीत हो जाता है तो वह गीति न होकर उदगीति छन्द बन जाता है। यदि गीति-जातिवाले छन्दका अन्तिम वर्ण गृह हो तो वही आर्ची गीति नामक छन्द हो जाता है।

यदि विषय (प्रथम और तृतीय) पादमें ६-६, सम (द्वितीय तथा चतुर्थ) पादमें ८-८ मात्राएँ हों और उन सभीका प्रत्येक पाद एक रगण, एक लायु तथा एक गुरुसे संयुक्त हो तो यहाँपर चैतालीय छन्द होता है। किंतु इसीके प्रतयेक चरणमें एक-एक गुरु और बढ़ जाय तो उसको औपख्यन्द्रसिक छन्द्र माना गया है।

उपयंक्त वैतालीय छन्दके प्रत्येक चरणके अन्तमें जो रगण, लघु तथा गुरुको व्यवस्था मानी गर्या है, यदि उनके स्थानपर भगण (५।।) एवं दो गुरुओं (५५)-को रख दिया जाय तो उसे आपानलिका छन्दके नामसे जानना चाहिये। यदि इसी छन्दके प्रत्येक पादमें दितीय मात्रा पराजित डो तो यह दक्षिणान्तिका छन्द होता है।

वैतालीय विषयपादमें उदींच्य और समपादमें प्राच्य वृत्तिका प्रयोग होता है। जब समपाद (द्वितीय तथा चतुर्थ बरण)-में पञ्चम मात्राके साथ चतुर्थ मात्रा संयुक्त होती है। इस छन्दमें नवम लकार किसीसे मिला नहीं रहता तो उसे प्राच्यवृत्ति एवं पादसंयोगके कारण जब प्रथम और जिस मात्रासमकके चारों वरणोंमें पौचवीं तथा आठवीं मात्र तृतीय चरणमें दूसरी मात्रा तोसरी मात्राके साथ सम्मिलित (लकार) लघु होती है, उसका नाम विश्लोक है। जिस हो तो उसे उदीच्यवृत्ति नामक वैतालीय छन्द कहते हैं। माजसमकके चरणमें वारहवाँ लकार अपने स्वरूपमें ही जब दोनों छन्दोंके लक्षण एक ही छन्दमें प्रयुक्त हों अर्थात् स्थित रहता है, किसीसे मिलता नहीं, उसका नाम वानवासिक उस छन्दके प्रथम तथा तृतीय चरणमें तृतीय मात्राके साथ है। जिसके चारों चरणोंमें पाँचवीं, आठवीं तथा नवीं मात्र द्वितीय मात्रा संयुक्त हो जाय और द्वितीय तथा चतुर्य चरणमें (लकार) लघु होती है तो उसे चित्रा कहा जाता है। पञ्चम मात्राके साथ चतुर्थ मात्रा संयुक्त हो जाय तो वह

******************************** अक्षरोंके बीचमें होनेके साथ ही जगण अर्वात् मध्य गुरु छन्दमें प्रथम और तृतीय, द्वितीय तथा चतुर्थ चरण

वक्त जातिके छन्दमें पादके प्रथम वर्णके पक्षात् सगण इनके अतिरिक्त उनमें अन्य किसी भी गणका प्रयोग हो सकता है, किंत पादके चतुर्थ अक्षरके बाद भगण (511) का प्रयोग उचित है।

जिस वका जातिके छन्दमें सम (दितीय एवं चतुर्य)-

पादके चौचे अक्षरके बाद जगण (151)-का प्रयोग हो तो

वह पच्चावका छ< है, किंतु कुछ लोग इसके विपरीत प्रथम और तृतीय पादमें चौथे अक्षरके बाद जगण (151)-का प्रयोग करते हैं। जब विषमपादींमें चतुर्थ वर्णके बाद नगण (111) हो और समपादोंमें चतुर्थ वर्णके बाद यगण (155)-का प्रयोग किया जाय तो वह विपुला तामक वक्त सन्द है। जब समपादोंमें सातवाँ अक्षर लघु (1) होता है अर्चात चीचे वर्णके बाद जगण (151) हो तो उसको विपलाबका छन्द कहते हैं। आचार्य सैतवका मत है कि विपुलायकाके सम और विषम सभी पारोंमें लघु (।) होना चाहिये। जब प्रथम और तृतीय पादमें चतुर्थ अक्षरके बाद यगण (। 55)-को बाधित करके विकल्परूपरो भगज (511), रगज (515), नगज (111) एवं तगण (551) आदि हों तो वहीं विपुलावक्त्र छन्द होता है।

जिस छन्दके प्रत्येक पादमें सोलह लकार हों तथ पादके अन्तिम अक्षर गुरु हों, उसे मात्रासमक छन्द कह उपर्युक्त सममात्रिक, विश्लोक, वानवासिका, वित्रा तथ

प्रवृत्तक नामक वैतालीय छन्द हो जाता है। जब वैतालीय उपचित्रा नामके छन्दोंमें जिस किसी भी छन्दके एक-एव

बहाँ नथाँ लकार दसलेंके साथ मिलकर पुरु हो जाता है, वहाँ उपविक्र नामक छन्द होंता है।

चरणको लेकर उससे चार चरणोंवाले अन्य छन्दकी रचना हों तो उसे सीम्बा छन्द कहा जाता है। की जाय, उसे पादाकलक छन्द कहते हैं।

लघु मात्राओंका प्रयोग हो और वे किसीसे मिलकर दीर्घ कहते हैं। यदि छन्दमें यही क्रम विपरीत होता है, अर्थात् न हो गयी हों तो उसे बुलमाबा छन्द कहते हैं। जब इन्हों पूर्वार्द्धमें तीस लघु, एक गुरु और उत्तरार्द्धमें अट्टाईस लघु, छन्दोंके अनुसार पूर्वार्द्ध भागमें लघु-ही-लघु और उत्तरार्द्ध एक गुरुको मात्रा होती है तो उसे खुद्धा कहा जाता है। भागमें गुरु-ही-गुरु वर्ण या मात्राएँ होती हैं तो उसे ज्योति जिस मात्रासमक छन्दके पूर्वार्द्ध एवं उत्तराद्धेमें क्रमश: छन्द कहते हैं। जब इस छन्दके विपरीत पूर्वाई भागमें सब सत्ताईस-सत्ताईस लघु मात्राएँ और एक-एक गुरु मात्रा वर्ण या मात्राएँ गुरु हों और उसके उत्तराई भागमें सब लघु होती है, उसे रुखिश कहते हैं। (अध्याय २०८)

जिस छन्दके पूर्वार्ट्स अट्राईस लघु तथा एक गुरु और यदि इसी सोलह मात्राओंवाले छन्दके प्रत्येक पादमें उत्तरार्द्धमें तीस लघु एवं एक गुरु मात्रा हो, उसे शिखा

छन्द-विधान (समवृत्तलक्षण)

श्रीसुतजीने कहा-हे विप्रो ! एक गुरु (3) तथा दो गुरु (55)-से पृथक-पृथक बने हुए छन्दोंको क्रमश: बी या उक्का स्त्री या अल्युक्ता के नामसे अधिहित किया गया है। एक मात्र मगण (555)-से बने हुए छन्दको 'नारी', एक रगण (5:5)-से बने हुए छन्दको मध्या और एक मगण (555) तथा एक गृह (1)-से बने हुए छन्दको कन्या कहते हैं। ये प्रतिष्ठा छन्दके भेद हैं। भगण (६।।) और दो गुरु (55)-से युक्त छन्दका नाम चिंक् है। यह सुप्रतिष्ठाका भेद है। तगण (३५।) एवं यगण (३५५)-से संयुक्त छन्दका नाम तनुषच्या है। नगण (111) और यगण (155)-से बने हुए छन्दकों बाललालिता कहा जाता है। यें छ: वर्णवाले गायत्री छन्दके भेद है।

मगण (555), सगण (115) और एक गृह (5)-से बने हुए छन्दको मदलेखा कहते हैं। विद्वानीने इसे उष्णिक का भेद स्वीकार किया है। जिस छन्दके चारों पादमें दो भगण (31), 311) और दो गुरु (33) हों, वह चित्रपदा के नामसे प्रसिद्ध है। जिस छन्दके चर्रो चरण दो मगण (555, 555) एवं दी गुरु (55)-से संयुक्त होते हैं, वह विद्यमाला नामक छन्द है। विस छन्दके प्रत्येक पादमें भगण (511), तगण (551), एक लघु (1) और एक गुरु (5) हो, उसे माणवक कहते हैं। जिसके चारों चरजोंमें समान रूपसे मगण (555) ,नगण (111) तथा दो गुरु (55) होते हैं. उसे इंसरुत नामक छन्द माना गया है। जिसके चारों चरण एक रगण (515), एक जगण (131), एक गुरु (3) तथा एक लप (1)-से संयुक्त

होते हैं, वह समानिका नामका छन्द है और जिसके प्रत्येक चरणमें एक जगण (151), एक रगण (515), एक लभ् (1) तथा एक गुरु (3) होता है, उसका नाम प्रमाणिका है। इन दोनोंसे भिन्न जो छन्द होता है, उसको विसान के नामसे जानना चाहिये। ये सब आठ वर्णीके चरणवाले अनुष्ट्रप् छन्दके भेद हैं।

रगज (515), नगज (111) और सगज (115)-से जिस छन्दका प्रत्येक चरण समन्त्रित होता है, उसका नाम हलमञ्जो है। जो छन्द प्रत्येक पादमें दो नगण (11(111) और एक मगण (३५५)-से संयुक्त रहता है, उसे शिशुभुता कहते हैं। ये नौ वर्णोंके चरणवाले बृहती छन्दके भेद हैं। जो अपने चारों बरणोंमें समान रूपसे सगण (145), मगण (355), जगण (151) और एक गृरु (5)-से युक्त है, उस छन्दको विशाजिता कहते हैं। प्रत्येक पादमें मगण (355), नगण (111), यगण (155) और एक गुरु (3)-से पूर्ण छन्दका नाम पणव है। मयुरसारिणी नामक **उन्दके चारों चरणोंमें समान रूपसे एक रगण** (515), एक जगण (151), एक रगण (515) एवं एक गुरु (3) होता है। रुक्सवती छन्दके प्रत्येक पादमें एक भगण (311), एक मगण (353) , एक सगण (115) और एक गुरु (5)-का विधान है। जिस छन्दके सभी चरणोंमें मगण (355), भगण (311), सगण (115) और एक गुरु (5) होता है, उसका नाम मत्ता है। जिसके प्रत्येक चरणमें नगण (111), रगण (515), जगण (151) तथा एक गुरु (5) है, उसे मनोरमा कहा गया है। ये सभी दस वर्णोवाले पङ्कि छन्दके भेद हैं।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें दो तगण (551,551), एक जगण (151), दो गुरु (55) होते हैं, उसे इन्द्रवना कहते हैं और जिस छन्दमें क्रमश: एक जगज (151), एक तगण (551), एक जगण (151) एवं दो गुरु (55) हों, उसका नाम उपेन्द्रवन्ता है। जब एक ही छन्दमें वे दोनों इन्द्रवजा तथा उपेन्द्रवजा छन्द सम्मिलित रहते हैं, तो उसे उपजाति कहा जाता है। इनके अनेक भेद हैं। यदा-

समुखी नामक छन्दके प्रत्येक चरणमें एक नगण (111), दो जगण (15(151), एक लघु (1) और एक गुरु (3) होता है। दोधक में तीन भगन (311, 311, 311) और दो गुरु (55) होते हैं। शास्त्रिनी नामक जो छन्द है उसके सभी चरणोंमें एक मगण (555), दो तगण (55 (551) एवं दो गुरुओं (55) को युवि होती है। इसके प्रत्येक चरणमें चीचे तथा सातवें अक्षरपर विराम होता है। वालोभी छन्दके प्रत्येक चरणमें दो नगण (355, 555), एक तगण (551) होता है और उसके बाद दो मुरु (55) होते हैं। इसमें भी बार, सातपर विराम होता है।

जो छन्द प्रत्येक चरणमें मगण (३८३), धगण (४।), नगण (111), नगण (111), एक लघु (1) और एक गुरु (5)-से युक्त हो, उसे ध्रमाबिलासिका नामक छन्द कहा गया है। रधोद्धता छन्द अपने सभी चरणोंमें एक रगण (515), नगण (111), रगण (515), एक लयु (1) एवं एक गुरु (5)-से संयुक्त होता है। स्वायता के प्रत्येक पादमें एक रगण (515), एक नगण (111), एक भगन (311) और दो गुरु (53) होते हैं। बुत्ता नामक छन्दके प्रत्येक पादमें दो नगण (111,111), एक सगण (115) और दो गुरु (55) सजिहित होते हैं। समहिका छन्दमें दो नगण (111,111), एक रगण (515), एक लघु (1) तथा एक गुरु (5) होता है। जिस छन्दके प्रत्येक चरण रगण तगण (551), यगण (155), तगण (551) तथा यगण (515), जगण (151), एक सम्रु (1) तथा एक गुरु (155) होता है। जिस छन्दके प्रत्येक पादमें तगण

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें एक रगण (515), एक नगज (111), एक भगण (511), एक सगण (115) हो, उसका नाम चन्द्रवर्त्व और जिसमें एक जगण (151), एक तगण (351), एक जगण (151), एक रगण (515) हो,

उसका नाम बंशास्य छन्द है। जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें दो तगल (55), 55), एक जगण (15)) हो, उसे इन्द्रबंशा और जिसमें चार सगण-ही-सगण (115, 115,

(15, 115) होते हैं, उसे तोटक छन्द माना गया है। जिसके प्रत्येक पादमें नगण (111), दो भगण (511, 511) और रगण (515) हो, उसका नाम हुतविलम्बित है।

जो छन्द अपने सभी चार्रे चरणमें दो नगण (।।। ।।।), एक मगण (555), एक यगण (155)-से संयुक्त रहता है, इसका नाम पुट है। इस छन्दमें आठ और चार वर्णों या यति होती है। दो नगण (111,111) और दो रगण (515, 515)-से समन्तित प्रत्येक चरणवाला जो छन्द है, उसका नाम मुदितबदना है। इसमें सात और पाँच वर्णीपर यति होती है। जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें नगण (111), यगव (155), नगण (111), यगण (155) हो,

उस छन्दको कुसुमविधित्रा कहते हैं। जगण (151), सगण (115), जगन (151), सगन (115)-से युक्त प्रत्येक पादवाले छन्दका नाम जलोद्धतगति है। प्रत्येक पादमें चार

रगण (५।६, ५।६, ५।६, ५।५)-से युक्त छन्द स्वन्थिणी माना गया है। चार-चार यगर्जो (155, 155, 155, 155)-से जिसके सभी चरण संयुक्त हैं, उसको भुजङ्गप्रयात

छन्दकी संज्ञ दो गयी है। प्रियंक्दा छन्द नगण (।।।), भगण (511), जगण (151) और रगण (515)-इन चार गणोंसे युक्त होता है।

मणियाला नामक जो छन्द है, उसके प्रत्येक पादमें

(5) से युक्त हों, वह प्रयेनिका नामक छन्द है। जहाँ सभी (551), भगण (511), जगण (151) और रगण (515) चारों चरणोंमें एक जगण (।ऽ।), एक सगण (।।ऽ), हो तो उसका नाम खलिता है। इस छन्दमें छठे वर्णपर यति

एक तगण (351), दो गुरु (35) हों तो वहाँ जिखाण्डत होती है। प्रमिताक्षय वृत सगण (115), जगण (151), छन्द होता है। महात्मा पिङ्गलने इन्हें त्रिष्ट्रप्-छन्दका भेद सगण (115), सगण (115)-से युक्त होता है। उज्ज्वल

होती है।

रगण (515) होते हैं। जो छन्द मगण (555), मगण (115), एक लघु (1) और एक गुरु (5) हो, उसे (555), यगण (155), यगण (155)-से संयुक्त है, अक्ताजिता छन्द कहा गया है। इसमें सात-सात वर्णोपर उसका नाम वैश्वदेवी है। इसमें पाँच और सात वर्णीयर यति यति होती है। यदि प्रत्येक चरणमें नगण (।।।), नगण होती है। जब छन्दके प्रत्येक चरणमें मगण (555), भगण (111), भगण (511), नगण (111), एक लघु (1) तथा (511), सगण (115) और मगण (555) हो तो उसे एक गुरु (5) हो, तो उसे प्रहरणकलिका के नामसे जाना जलधरमाला कहते हैं। चन्द्रवर्त्न छन्द्रसे वहाँतक बरह जाता है। इसमें भी सात-सात वर्णपर ही यति होती है। वर्णवाले जगती छन्दके भेद हैं।

हो, तो उसका नाम क्षमाबुन है। इसमें सात और छ: है। जिस छन्दके प्रत्येक पादमें भगण (511), जगण वर्णीपर यति होती है। प्रहर्षिणी नामक छन्द मगण (३३३), (१५), समण (१) ५), नगण (११) तथा दो गुरु (५५) नगण (111), जगण (151), रगण (515) एवं एक गुरु 🎳 उसका नाम इन्दुबदना होता है। जिसका प्रत्येक चरण (5)-से युक्त होता है। इसके प्रायेक चरणमें तीन और नगण (111), रगण (515), नगण (111), रगण (315), दस वर्णपर यतिका विधान है। जो छन्द कगण (+51), एक लघु (1) और एक गुरु (5)-से संयुक्त होता है, भगण (६।।), सगण (।।६), जगण (।६।) और एक उसीको सुकेशी छन्द कहते हैं। यहाँतक चौदह वर्णीके गुरु (5)-से समिहित होता है, उसको कथिय कहा गया चरणवाले सर्करी छन्दके अवान्तर भेदोंका वर्णन प्रतिपादित है। इसमें यति चार तथा नौ वर्णोपर होती है। यत्तपयुर किया गया। नामक छन्दको मगण (553), तगण (351), यगण (155), सगण (115) और एक गुरु (5)-से युक्त माना गया है। इसके प्रत्येक पादमें चार तथा नी बर्गोपर यति

जगण (151), सगण (115), जगण (151) और एक गुरु (5) होता है। सुनन्दिनी नामक छन्दके प्रत्येक चरणमें सगण (115), जगण (151), सगण (115) होते ही हैं. किंत अन्तिम जगणके स्थानपर इसमें मगण (555) होता है। अन्तमें एक गुरु (5) रहता है और जो छन्द नगण (111), नगण (111), तगण (551), तगण (551) तथा एक गुरु (5)-से युक्त है, उसका नाम चन्द्रिका है। इसमें सात और छ: वर्णीपर यति होती है। ये तेरह वर्णवाले

मगण (555), तगण (551), नगण (111), सगण होता है। चित्रलेखा छन्दके प्रत्येक चरणमें मगण (555), (115) और दो गुरु (5 5)-से युक्त छन्दको असम्बाधा रगण (515), भगण (555), यगण (155) तथा यगण कहते हैं, इसमें पाँच और नौ वर्णोपर यति होती है। जिस (।55) होता है, यति सात और आठ वर्णोपर होती है।

अतिजगती छन्दके अवान्तर भेद हैं।

छन्दमें नगण (111), नगण (111), भगण (511) तथा छन्दमें नगण (111), नगण (111), रगण (515), सगण वसन्ततिलका छन्दमें सभी चरण क्रमश: तगण (551), जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें नगण (111), नगण भगण (511), दो खगण (151, 151), दो गुरु (55)-(111), तगण (551), तगण (551) और एक गुरु (5) से चुक्त होते हैं। इसीको सिहोन्नता और उद्धर्षिणी भी कहते

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें चौदह लघु (चार नगण फिर दो लघु वर्ष) और अन्तमें एक गुरु हो, वह शक्तिकला छन्द है। इसी छन्दमें जब यति छ: और नी बर्जीयर हो तो वह स्वक अर्थात् माला नामक छन्द हो जाता मञ्जूभाषिणी छन्दके प्रत्येक चरणमें सगण (113), है। जब वह यति आठ एवं सात वर्णीपर हो तो वह पणिग्णनिकर नामक छन्द बन जाता है। मालिनी छन्द अपने प्रत्येक चरणमें नगण (111), नगण (111), सगण (555), यगण (155), यगण (155)-से सन्निहित होता है। इसमें आठ और सात वर्णीपर यति होती है। प्रभद्रक नामक छन्दके प्रत्येक चरणमें नगण (111), जगण (151), भगण (511), जगण (151) और रगण (515) होता है। इसमें सात और आठ वर्णीपर यति होती है। एला नामका छन्द सगण (115), यगण (155),

नगण (!!!), नगण (!!!) और यगण (! \$\$)-से संयुक्त

यहाँतक पंद्रह वर्णीके चरणवाले अतिशक्री छन्दके अवान्तर भेदोंका वर्णन बताया गया है।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें भगण (511), रगण (111), यगण (155), यगण (155), यगण (155) (515), नगण (111), नगण (111), नगण (111) तथा होता है और पाँच, छ: तथा सात वर्णीपर यति होती है, एक गुरु (5) होता है और जिसमें सात तथा नौ वर्जोपर उसको कुसुमितलता छन्द कहते हैं। इसे अठारह अक्षरोंके यति हो तो उसे वृषभवजन्निभत छन्द कहते हैं। जिसके चरणवाले धृति छन्दका अवान्तर भेद कहा गया है। सभी चरणोंमें नगण (111), जगण (131), भगण (311). जगण (151), रगण (515) और एक गुरु (5) डो. उसका नाम वाणिनी छन्द है। यति चरचकी समाध्तिपर होती है। पिञ्चलद्वारा इन दोनों चन्दोंको अष्टि श्रेणीके छन्दके अन्तर्गत स्वीकार किया गया है।

यगण (155), मगण (555), नगण (111), सगण (115), भगण (511), एक लयु (1) और एक पृत (5)-से संयुक्त चरणवाले छन्दका नाम किखारेणी है। इसमें यति छ: तथा ग्यारह वर्णीपर होती है। पृथ्वी छन्दके प्रत्येक चरणमें जगण (151), सगण (115), जगण (151), सगप (115), यगप (155), एक लबु (1) तथा एक गुरु (5) होता है। इसकी यति आउ और नौ वर्णीपर होतों है। जिस छन्दके घरण भगण (511), रगण (515), नगण (111), नगण (111), भगण (511), एक लघु (1) तथा एक गुरु (5)-से संयुक्त होते हैं और जिनमें दस एवं सात वर्णीपर यति होती है, उसे बंशपवपतित कहा गया है।

हरिणी छन्द नगण (111), सगण (115), मगण

(355), रगण (315), सगण (115), एक लघु (1) और एक गुरु (5)-से संसृष्ट होता है। इसमें यति क्रमश: छ:, चार तथा सात वर्णीपर होती है। मगण (555), भगण (511), नगण (111), तगण (551), तगण (551), दो गुरु (55)-से युक्त चरणींवाले छन्दको मन्द्राकाना कहते हैं। इसमें चार, छ: और सात वर्णोपर यति होती है। नहंटकः यगण (। 55) हो और प्रत्येक चरणमें सात-सात वर्णोपर छन्द नगण (।।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), जगण यति होती हो, वह स्वग्धरा छन्द है। प्रत्येक चरणमें इक्षीस (15 1), जगम (15 1), एक लघु (1) और एक गुरु वर्षोवाले इस छन्दको प्रकृति वर्गका छन्द माना गया है। (5)-से संयुक्त होता है। इसमें यति सात और दस वर्णीपर जिसके सभी पाद क्रमश: भगण (511), रगण

वर्गमें समझना चाहिये।

जिस छन्दमें मगण (555), तगण (551), नगण

चगण (155), मगण (555), नगण (111), सगण (115), रगण (515), रगण (515) और एक गृह

(5)-से युक्त छन्दका नाम मेचविस्कृतिता है। इसमें छः,

छ: और सात वर्णीपर यति होती है। शार्ट्लिककीडित नामक जो छन्द है, उसके प्रत्येक चरणमें मगण (555),

सगन (115), जगन (151), सगन (115), दो तगल (35 (55 i) तथा एक गुरु (5) होता है। इसमें

बारह और सात वर्णीपर पतिका विधान है। ये दोनों उन्नीस वर्णोंके चरणवाले अतिभृति छन्द-वर्गके भेद कहे गये हैं।

इसके बाद बीस वर्णीक चरणवाले कृति नामवाले **छन्दोंका निरूपण किया जा रहा है-**

जिसके प्रत्येक चरणमें भगण (511), रगण (515), मगण (555), नगण (111), यगण (155), धगण (511), एक लघु (1), एक गुरु (5) होता है और क्रमतः सात, सात तथा छः वर्णीपर यति होती है, उसे सुबदना छन्द कहते हैं। जिसके प्रत्येक पादमें रगण (\$(\$), जगण (1\$)), रगण (\$(\$), जगण (1\$)), रमण (515), जगण (151), एक लघु (1), एक गुरू (5) हो और पादान्तमें यति होती हो, उसे बुल छन्द कहते हैं।

जिस छन्दमें मगण (555), रगण (515), भगण (511), नगण (111), यगण (155), यगण (155),

होती है। यदि यही यति सात, छ: और चार वर्णोपर हो (515), नगण (111), रगण (515), नगण (111),

तो छन्दका नाम कोकिलक हो जाता है। जिखरिजीसे रगज (১।১), नगज (।।।) तथा एक गुरु (১)-से संयुक्त कोकिलकतक इन छन्दोंको सत्रह वर्णोवाले अल्पष्टि छन्द- हों और उनमें दस तथा बारह वर्णोपर यति हो, उसे

सभद्रक छन्द कहते हैं। यह बाईस वर्णोवाले आकृति एक गुरु (5) होता है और पाँच-पाँच, आठ तथा सात छन्दके अन्तर्गत है।

जो नगण (111), जगण (151), भगण (511), जगण (151), भगण (511), जगण (151), भगण (511), एक लघु (1) तथा एक गुरु (5)-से युक्त छन्द हो और उसमें ग्यारह तथा बारह बर्जीपर यति हो. उसका नाम अञ्चललित है। इसे अन्य ग्रन्थोंमें अद्रितनया

भी कहा गया है। जिस छन्दमें मगण (555), मगण (555), तगण (551), नगण (111), नगण (111), नगण (111), नगण (111), एक लघु (1) तथा एक गुरु

(5) होता है और जिसमें आठ, पाँच तथा दस वर्णोपर यति होती है, उसको मत्ताकीड कहा जाता है। ये दोनों छन्द तेईस वर्णीवाले विकृति छन्द-वर्गके अन्तर्गत है।

जिस छन्दका प्रायेक पाद भगण (511), तगण (551),

नगव (111), सगव (113), भगव (511), भगव (511), नगण (111), यगण (155)-से संपुक्त होता है और उसमें पाँच, सात तथा बारह वर्णांपर यति होती है, उसको तन्धी छन्द कहते हैं। यह तन्त्री छन्द चौबीस वर्णीके चरणवाले संकृति छन्द-वर्गका अवान्तर भेद है।

(५।।), मगण (५५५), सगण (६।५), भगण (५।।) एवं वृद्धि हो तो उसीसे व्याल और जीमृत आदि नामवाले नगण (111), नगण (111), नगण (111), नगण (111).

वर्णोपर यति होती है। यह पच्चीस वर्णोवाले अतिकृति छन्दके अन्तर्गत है।

अब छब्बीस वर्णीवाले उत्कृति वर्गके छन्दको कहा जा रहा है, आप उसे सुनें-

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें मगण (555), मगण (555), तगन (551), नगम (111), नगम (111), नगम (111), रगम (515) तथा सगम (115) हों और आठ, स्थारह एवं सात वर्णीपर यति होती है, उसे भुजङ्गविज्ञान्धत कहते हैं। यह हब्बोस वर्णवाले उत्कृति छन्द-वर्गका एक भेद है।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें एक मगण (555), छ: नगम (।।।।।।।।।।।।।।), एक सगण (।।5) और दो गुरु (35) हों, साथ ही नौ, छ:-छ: तथा पाँच वर्णीपर यति हो तो उसको अपहान कहते हैं। यह उत्कृति वर्गका ही दूसरा भेद है। जिसके प्रत्येक चरणमें दो नगण (111,111) और

सार राज (515, 515, 515, 515, 515, 515, 515) ही तो उसका नाम चण्डवृत्तिप्रपात छन्द है। उसे दण्डक' भी कहा जाता है। यदि इस छन्दमें दो नगणको छोड़कर शेष क्रीश्वपदा नामका जो छन्द है, उस छन्दमें धगन रगन क्योंके साथ क्रमशः एक और दो अन्य रगण पदींकी दण्डक छन्द बनते हैं। (अध्याय २०९)

छन्द-विधान (अर्द्धसमवृत्त लक्षण)

श्रीमृतजीने कहा-यदि छन्दके विषमण्डर्थे तीन छन्दके विषमण्डमें एक तगण (551), एक जगण सगण (115), एक लघ (1) और एक गुरु (3) वर्ण- (151), एक रगण (515), एक गुरु (5), हो और इस प्रकार ग्यारह अक्षर हों एवं समपादमें तीन भगन समपादमें एक मगन (555), एक सगन (115), एक (511) और दो गुरु (55) हों तो उसे उपचित्रक कहते जगण (151) तथा दो गुरु (55)हीं, वह भद्रविराद्नामक है। जिस छन्दके विषमपादमें तीन भगण (311), दो गुरु छन्द होता है। (55) हों और उसके समपादमें एक नगज (111), दो यदि विषमपादमें सगण (115), जगज (151), जगण (151) और एक चगण (153) हो, उसे दुलमध्या सगण (115), एक गुरु (5) तथा समपादमें भगण

सगण (1(3), एक गुरु और समपादमें तीन भगण (511) हों तो उस छन्दको केतुमती कहा जाता है। जिस छन्दके एवं दो गुरु (55) होते हैं, उसका नाम बेगबती है। जिस विषमपादमें दो तगण (551, 551), एक जगण (151)

नामक छन्द माना गया है। जिस छन्दके विषम-पादमें तीन (\$11), रगण (\$15), नगण (111) और दो गुरु (\$5)

१. जिन वृतोंके प्रत्येक चरणमें सर्वार्डस या इससे अधिक वर्ण होते हैं, उनका सामान्य नाम दण्डक है। चण्डवृत्तिप्रपात आदि इसीके भेद हैं

संवगवप्वअंव ११-

जब छन्दके वियमपादमें दो नगज (।।।।।), एक वाक्रमती है। (अध्याय २९०)

और दो गुरु (55) तथा समयादमें जगण (151), रगण (515), एक यगण (155) और समयादमें एक तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।) एवं दो गुरु (ऽऽ) होते नगण (।।) दो जगण (।ऽ।,।ऽ।), एक रगण (ऽ।ऽ) हैं, उसको आख्यानिकी कहते हैं। यदि विषमपादमें तथा एक गुरु (3) होता है तो उसे पुष्पिताग्रा कहते जगण (।ऽ।), तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।) और दो हैं। यदि वियमपादमें रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।), गुरु (55) तथा समपादमें दो तगण (55 | 551), एक रगण (515), यगण (155) हो और समपादमें जगज (| 5 |) एवं दो गुरु (55) हों तो उसे किपरीताख्यानक जगज (| 5 |), रगण (5 | 5), जगज (| 5 |), रगण छन्द कहा जाता है। ऐसा पिङ्गल मुनिका अधिमत है। (১।১) तथा एक गुरु (১) हो तो उस छन्दका नाम

छन्द-विधान (विषमवृत्तलक्षण)

सुतजीने कहा-जिस छन्दके प्रथम पादमें आठ (।ऽ।) एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ)-ये ग्यारह अक्षर, द्वितीय पादमें बारह अक्षर, तृतीय पादमें सोलह अक्षर होते हैं और चतुर्थ पादमें सगण (115), जगण अक्षर तथा चतुर्थ पादमें बीस अक्षर होते हैं. यह पद्धतुम्राज्यं नामक छन्द है, यह इस छन्दका सामान्य लक्षण है। तात्पर्य यह है कि इस छन्दमें अनुष्टप् छन्दके प्रथम पादके बाद प्रत्येक पादमें क्रमत: चार-चार असर बदते जाते हैं। इसी छन्दके चारों चरणोंमें जब दो असर गृह (35) हों तो उसे आयोड छन्द कहते हैं। असिम अक्षरोंको छोड़कर शेष अक्षर लघु (1) ही होते हैं। पद्यतुकार्य नामक छन्दके प्रथम पादका द्वितीय आदि पादोंके साथ परिवर्तन होनेपर अनेक छन्द बनते हैं. यब्ध-प्रथम पादमें बारह और द्वितीय पादमें अठारह अक्षा होनेसे जो छन्द बनता है, यह कलिका (मझरी) कहलाता है। इसमें प्रथम पादके स्थानमें द्वितीय पाद और द्वितीय पादके स्थानमें प्रथम पाद हो जाता है। जब प्रथम पाद (आठ अक्षर)-के स्थानमें तृतीय पाद (स्रोलह अक्षर) और तृतीय पादके स्थानमें प्रथम पाद हो तो लवली नामक छन्द होता है। इसी प्रकार जब प्रथम पाद (आठ अक्षर)-के स्थानपर चतुर्थपाद (बीस अक्षर) और चतुर्थपादके स्थानपर प्रथम पाद हो तो उसे अमृतधारा नामक छन्द कहते हैं। यहाँतक पदचतुरूथ्यं छन्दके अवान्तर भेदोंको बतलाया गया है।

जब प्रथम पादमें सगण (115), जगण (151), सगण (115) और एक लघु (1)—इस प्रकार दस अक्षर होते हैं, द्वितीय पादमें नगण (111), सगण (115), जगण (151) और एक गुरु (5)-इस प्रकार दस अक्षर होते हैं, तृतीय पादमें भगण (ऽ।।), नगण (।।।), जगण (151), सगण (115), जगण (151) तथा एक गुरु (5)-इस प्रकार तेरह अधर होते हैं तो वह उद्गता नामक छन्द कहलाता है। इसी उद्गता छन्दके तीसरे बरणमें जब रगण (६।५), नगण (।।।), यगण(।५५) और एक गुरु (3)—इस प्रकार तेरह अक्षर हों और शेष तोन पाद पूर्ववत् अर्थात् उद्गता छन्दके समान ही ही तो सौरभक नामक छन्द होता है। इसी उद्गता छन्दके तीसरे चरनमें जब दो नगण (।।। ।।।), दो सगण (।। ऽ, ।। ऽ) हों तथा शेप तीनों चरण उद्गताक ही समान हों तो लिख नामक छन्द होता है। ये सब उद्गता छन्दके अवान्तर भेद हैं।

जिसके प्रथम पादमें मगण (555), सगण (115), क्गण (151), भगण (511) और दो गुरु (55)—इस प्रकार चौदह अक्षर होते हैं, द्वितीय चरणमें सगण (115), नगण (111), जगण (151), रगण (515) तथा एक गुरु (5)—इस प्रकार तेरह अश्वर होते हैं, तीसरे चरणमें दो नगण (111,111) और एक सगण (115)-इस प्रकार नौ अक्षर होते हैं तथा चीचे चरणमें तीन नगण (111,111,111), एक जगण (151) तथा एक यगण (1 55)-इस प्रकार पन्द्रह अक्षर होते हैं तो ऐसा छन्द उपस्थितप्रच्यित नामवाला छन्द कहलाता है। इसी उपस्थितप्रचुपित छन्दके जब तीन चरण वैसे ही हों, केवल तुतीय करणमें परिवर्तन हो, अर्थात् उसमें दो नगण (11111), एक सगण (115), पुन: दो नगण

(।।।,।।।) तथा एक सगण (।।ऽ)—इस प्रकार प्रकार उपस्थितप्रचुपित नामक छन्दका जब पहला पाद अठारह अक्षर हों तो वह कर्धमान नामक छन्द होता है। वहीं हो और शेष तीन पादोंमें तगण (551), जगण उसी उपस्थितप्रचुपित नामक छन्दके जब तीन पाद (प्रथम, (151), तथा रगण (515)-इस प्रकार नौ अक्षर ही द्वितीय तथा चतुर्थ) समान हों, किंतु तृतीय पादमें तगण तो ऐसा छन्द शुद्धविराद कहलाता है। ये छन्द (551), जगण (151) और रगण (515)—इस प्रकार उपस्थितप्रचुपित नामक छन्दके अवान्तर भेदोंमें आते हैं। नौ अक्षर हों तो वह आर्थभ नामक छन्द होता है। इसी

(अध्याय २११)

छन्द-विधान (प्रस्तार-निरूपण)

विषय संख्या प्राप्त हो तो उसमें एक जोडकर सम बना अर्थस्थानमें रखे और उतनेसे ही गुणा करे। ले और इस प्रकार पुन: आधा करे। ऐसी अवस्थामें एकद्वयादिलगक्रियाकी सिद्धिके लिये मेरप्रस्तारको उल्लेख करता रहे।

सुतजीने कहा-अब प्रस्तारके विषयमें बतला रहा रखता जाय अर्थात् प्रथम अक्षरपर एक, द्वितीयपर दो, हैं। ऊपरके पादमें आदि अक्षर गुरु हो तथा उसके नोचेके वृतीयपर तीन-इस क्रमसे संख्या होगी। बिना प्रस्तारके ही पादमें लघु अक्षर हो, वह एकाक्षर प्रस्तार है। उसके बाद वृत्त-संख्या जाननेक उपायको संख्या कहते हैं। इसकी इसी क्रमसे वर्णोंको स्थापना करे अर्थात् पहले गुरु और प्रक्रिया इस प्रकार है-जितने अक्षरके छन्दकी संख्या उसके नीचे लघु अक्षरकी स्थापना करे. यह द्वावधर-प्रस्तार जाननी हो, उसका आधा भाग निकालनेसे दोकी उपलब्धि है। प्रस्तारके अनन्तर नष्टका निरूपण इस प्रकार है—नष्ट होगी। उसे अलग रख ले। विषय संख्यामें एक घटाकर संख्याको आधी करनेपर जब वह दो भागोंने बराबर बैंट जुन्नकी प्राप्ति होगी, उसे दोके नीचे रखकर शुन्यके जाय तब एक लघु लिखना वाहिये, यदि आधा करनेपर स्थानमें दुगुना करे, इससे प्राप्त हुए अङ्काने ऊपरके

एक गुरु असरकी प्राप्ति होती है, उसे भी अन्यत्र लिख बतलाया जा रहा है। किसी छन्दमें कितने लयु, कितने ले। जितने अश्वरवाले छन्दके भेदको जानना हो, उतने पुरु तथा एकाश्वरादि छन्दोंके कितने वृत्त होते हैं, इसका प्राप अक्षरोंकी पूर्ति होनेतक पूर्वोक्त प्रणालीसे गुरु-लच्का मेरप्रस्तारसे होता है। मेरप्रस्तारमें नीचेसे ऊपरकी और आधा-आधा अंगुल विस्तार कम होता जाता है। छन्दकी अब उद्दिष्टके विषयमें बतलाया जा रहा है-उद्दिष्टकी संख्याको दुनी करके एक-एक घटा दिया जाय तो उतने प्रक्रिया जाननेके लिये छन्दके गुरु-लचु क्रमश: एक पंकिमें ही अंगुलका उसका अध्या (प्रस्तारदेश) होता है। इस लिखकर उनके कपर क्रमश: एकसे लेकर दुने-दुने अङ्क प्रकार छन्द:शास्त्रका सार बतलाया गया। (अध्याय २१२)

सदाचार एवं शौचाचारका निरूपण

सुतजीने कहा-है शीनक! श्रीहरिसे सुनकर ब्रह्मजोने व्याससे सब कुछ देनेवाले ब्राह्मणादि वर्णोके सदाचारको जैसे कहा है, उसी प्रकार में कहता है।

श्रति (बेद) और स्मृति (धर्मशास्त्र)-का भूली प्रकारसे अध्ययन करके श्रुतिप्रतिपादित कर्मका पालन करना चाहिये। (क्योंकि ब्रति ही सब कर्मोंका मूल है।) यदि (उपलब्ध) श्रुतियोंमें कोई कर्म जात नहीं हो रहा है तो उसको स्मृतिशास्त्रके अनुसार जानकर करना चाहिये

(क्योंकि स्मृतिशास्त्र भी त्रुतिमूलक होनेके कारण ही कर्मके बोधमें प्रमाण माने जाते हैं) और स्मार्तधर्मके पालनमें असमर्थ होनेपर विद्वान व्यक्तिको चाहिये कि वह सदाचारका पालन करे। कर्ममार्गका दर्शन करानेके लिये त्रति तथा स्मृति-ये नेत्रस्वरूप है।

ब्रुतिमें कहा गया धर्म परम धर्म है। स्मृति और शास्त्रसे प्रतिपादित धर्म अपर धर्म है। इस प्रकार त्रुति, स्मृति और शिष्टाचारसे प्राप्त धर्म-ये तीन प्रकारके सनातनधर्म हैं।

१- किस छन्दके कितने भेद हो सकते हैं, खामान्यकपमे इसका ज्ञान करानेवाली प्रणालीको "प्रस्तार" कहा जाता है। प्रस्तार, नष्ट, उदिष्ट, एकद्ववदिलगक्रिया, संख्या तथा अध्ययोग — ये छ: प्रचालियों ै ।

इन्द्रियदमन-ये शिष्टाचारके आठ पवित्र लक्षण कहे गये जटा, हाथमें दण्ड धारण करे। वह जटाओंको धारण न हैं। पूर्व कालमें लोगोंके शरीर और इन्द्रिय सत्वगुणप्रधान करके सिरका मुण्डन भी करा सकता है, किंतु उसको एवं तेजीमय होते थे. अत: जिस प्रकार कमलपत्रपर जल नहीं रुकता उसी प्रकारसे उनके शरीर तथा इन्द्रियोंमें पाप नहीं टिक पाते थे।

सत्वगुणके विकासके लिये सनातनधर्म (वर्णाक्रम-धर्म, सदाचार आदि)-के पालनका सर्वाधिक महत्त्व है और इनकी प्रमुखता युगविशेष, स्थानविशेष (भारतवर्ष आदि)-की दृष्टिसे निर्धारित होती है, इसी दृष्टिसे यहाँ इतना निरूपण किया जा रहा है। सत्य, यज, तप तचा दान-ये धर्मके लक्षण है। बिना दिये गये द्रव्यको ग्रहण न करना, दान, अध्ययन, जप, विद्या, धन, तपस्या, पवित्रता, श्रेष्ट कुलमें जन्म, निरोगता और संसारके बन्धनसे मृक्ति आदिके मुलमें धर्मका आचरण ही प्रधान है। धर्मसे सुख तथा तत्वज्ञानकी प्राप्ति होती है और इस तत्वज्ञानसे ही मोक्ष प्राप्त होता है।

शास्त्रोंके अनुसार पालन किये जाने योग्य तथा सनातन कालमें चले आ रहे यज्ञ, अध्ययन और दान-ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैज्यके सामान्य धर्म है। यत्र कराना, अध्यापन तथा सदाचारवान् विशुद्ध अधिकृत व्यक्तिमे प्रतिग्रह (दान) लेना-ये तीन प्रकारकी वृत्ति (जीविका) मुनियाँने श्रेष्ट (बाह्मण) वर्णके लिये कही है। शस्त्रीपजीवी होना तथा प्राणियोंकी रक्षा करना क्षत्रियवर्णका धर्म है। पशुपालन कृषिकर्म तथा व्यापार वैश्यवर्णको वृति कही गयी है। द्विजातिमें भी आनुपूर्वी क्रमसे सेवा करनेका विधान है। शृद्रका तो एकमात्र कर्तव्य है द्विजातिकी सेवा करना।

गुरुके सालिध्यमें रहना, अग्निकी शत्रुपा (अग्निहोत्र) करना तथा स्वाध्याय करना-यह ब्रह्मचारीका धर्म है। वह

सत्य, दान, दया, निर्लोभता, विद्या, यज्ञ, पूजा और वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी कटिप्रदेशमें मुँजकी मेखला, सिरपर गुरुके आश्रयमें तो रहना ही चाहिये।

अग्निहोत्र-धर्मका पालन तथा कहे गये अपने विहित कर्मीके अनुसार जीविकाका पालन, पर्वकी रात्रिको छोडकर अन्य रात्रियोंमें धर्मपत्नीके साथ रति, (यथाशास्त्र) देवता, पितर तथा अतिधिराणोंको विधिवत् पूजामें अहर्निश संलग्न रहना और बुतियों एवं स्मृतियोंमें कहे गये धर्मोंके अनुसार अर्घोपार्जन करना—यह गृहस्थोंका धर्म है।

जटाधारण, अग्निहोत्रका पालन, पृथ्वीपर शयन, मुगचर्मका धारण, वनमें निवास, दूध, मूल, फल तथा नोवारका धरूण, निषिद्ध कर्मका परित्याग, तोनों संध्याओंमें स्कन, ब्रह्मचर्यका पालन और देवता तथा अतिथिकी पुजा-यह बानप्रस्थीका धर्म है।

सभी प्रकारके आरम्भोंका परित्याग, भिक्षासे प्राप्त अप्रका भोजन, वृक्षको छाथामें नियास, अपरिग्रह, अद्रोह, सभी प्राणियोंमें समानभाव, प्रिय तथा अप्रियको प्राप्तिमें एवं सुख और इ:खर्में समान स्थिति, शरीरकी बाह्य और आध्यन्तरिक शुद्धता, वाणीमें संयम, परमातमाका ध्यान, सभी इन्द्रियोंका निग्रह, धारणा तथा ध्यानमें तत्परता और भावतदि- ये सभी परिवाजक अर्थात संन्यासीके धर्म कहे गये हैं।

अहिमा, प्रिय और सत्यवचन, पवित्रता, क्षमा तथा दया सभी आश्रमों और वर्णीका सामान्य धर्म है। जैसा पूर्वमें कहा गया है उसोके अनुसार शास्त्रविहित अपने-अपने धर्मौका पालन करनेवाले सभी लोग परमगति अर्थात् मोक्षको प्राप्त करते हैं।

हे शौनक। अब मैं प्रात:काल जागनेसे लेकर रात्रिमें तीनों संध्याओं में स्नानकर संध्याकालीन वतका पालन करे। सोनेतक पालन करने योग्य गृहस्थके धर्मका वर्णन करता स्नानकर्मसे निवृत्त होकर भिक्षाचरण करे। तदनन्तर गुरुके हैं। गुरुस्थको ब्राह्ममृहुर्तमें निद्राका परित्याग करके धर्म प्रति दत्तचित्त रहकर उनकी ही सेवामें आजीवन लगा रहे। और अधंका भली प्रकार चिन्तन करना चाहिये तथा

१-इसका आशय यह है— धतिय ब्राह्मणको सेवा करे तथा वैरूप ब्राह्मण और धतियको सेवा करे। (वैरूपके द्वारा धतियकी सेवाकी मर्यादा शास्त्रॉमें निर्धारित है।)

२-ऑहंसा सुनुता वाणी सत्यशीचे क्षमा दया। चर्षिनां सिंगिनां चैव सामान्यो धर्म उच्चते ॥ (२१३ (२२)

शारीरिक कष्ट, उसकी उत्पत्तिके कारण और वेटोंमें कहे गये तत्त्वार्थका भी विचार करना चाहिये। ब्राह्ममुहर्तमें उठकर शीचादिक क्रियाओंसे निवृत्त होकर, स्नान करना चाहिये और निरलस भावसे समाहितचित्त होकर संध्योपासन करना चाहिये। दन्तधावन एवं स्नानके अनन्तर ही प्रात:कालिक संध्योपासन करना चाहिये। दिनमें मुत्र और मलका परित्याग उत्तराभिमुख होकर करे। रात्रिमें दक्षिणाभिमुख होकर करे। दोनों संध्याकालमें दिनके समान ही उत्तराधिमुख होकर मल-मुत्रका त्याग करना चाहिये। रात्रि और दिनमें छाया अथवा अन्धकारके कारण यदि दिशाविशेषका ज्ञान नहीं हो पा रहा है, अथवा कोई ऐसा भय उपस्थित है, जिसके कारण मरणकी सम्भावना है तो अपनी सुविधाके अनुसार जिस किसी भी दिशामें मुख करके मल-मृत्रका त्याग किया जा सकता है। गोमय, अग्निके दहकते अंगार, दोमककी बाँबी, जुते हुए खेत, जल, पवित्र स्थान, मार्ग और मार्गमें विद्यमान विधानयोग्य गुक्षकी छायामें न तो मुत्रका परित्याग करना चाहिये और न तो मलविसर्जन हो।

शीचके पक्षात मिट्टीसे हाथ-पर आदि साफ करनेके लिये जलके अन्दरसे, देवगृह, बाँबी, बृहेके बिल, दूसरेके उपयोगमें आयो हुई मिड़ीसे अवितष्ट तथा रमशान भूमिकी मिट्टी ग्रहण न करे। लघुशंका करनेपर लिगमें एक बार, बायें हाथमें दो बार और दोनों हाथोंमें दो बार मिट्टी लगाकर जलसे प्रशालन करनेपर ही शुद्धि होती है। मलका परित्याग करनेपर लिगमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार तथा दोनों हाथोंमें सात बार, पैरोंमें पाँच बार और दायें हाथमें दस बार मिट्टीका लेप करके उन्हें जलसे स्वच्छ करे। प्रथम बार उपयोगमें लायी जानेवाली मिट्टीकी मात्रा आधा पसर होनी चाहिये। दूसरे और तीसरे बार जो मिट्टी उपयोगमें आती है उसकी मात्रा आधे पसरकी आधी हो जाती है। जो मनुष्य अस्वस्थताके कारण विद्या और मुत्रका परित्याग बैठकर नहीं कर सकता है, वह अभी बतायो गयी शास्त्रीय शद्भिका आधा भागमात्र अपना सकता है। दिनमें विहित शुद्धिका आधा या चौथाई भाग रात्रिमें शुद्धिके लिये धर्मसम्मत है।

यह सुद्धिको प्रक्रिया स्थस्थ व्यक्तिको लक्ष्य करके कहाँ गयी है। जो व्यक्ति अस्वस्थताके कारण आतं है, उसको यद्यासामध्यं ही सुद्धिको प्रक्रिया अपनानी चाहिये। वसा, सुक्र, रक्त, मजा, लार, विद्या, मृत्र, कानका मैल, कफ, आँस्, आँखका मैल (कोचड़) और पसीना—ये मनुष्यके शरीरके बारह मल है। जबतक मनमें सुद्धताकी अवध्यरणा न हो जाय, तबतक इनके कारण अनुष्यमें आनेवाली असुद्धिके निराकरणमें लगे रहना चाहिये। यहाँपर सुद्धिको संख्याका जो प्रमाण दिया गया है, वह सुतियों और स्मृतियोंके आदेशानुसार है।

शुद्धि दो प्रकारको है— एक बाह्य और दूसरी आभ्यन्तरिक। पिट्टों तथा जलसे की जानेवाली शुद्धि बाह्य और भावोंको शुद्धि ही आभ्यन्तरिक शुद्धि मानी गयी है। शुद्धिका प्रमुख अङ्ग आचमन है, यह तीन बार करना चाहिये। इसके बाद दो बार जलसे मुखका मार्जन, तदनन्तर अंगुष्ठके मूलसे मुखको धोकर तीन बार मुखका स्पर्श करना चाहिये। इसके बाद अंगुष्ठ और तर्जनीसे नासिकाका स्पर्शकर अंगुष्ठ तथा जनामिकासे नेत्र और कानका स्पर्श करना चाहिये। तत्पबात् कनिष्ठा और अंगुष्ठके द्वारा नाभिका स्पर्शकर हचेलीसे हृदयका स्पर्श करना चाहिये। इसके बाद अपनी सभी अंगुलियोंसे सिर और उनके (अंगुलियोंके) अग्रभागसे दोनों बाहुओंका स्पर्श करना चाहिये। (अब आचमन तथा अंगोंके स्पर्शका फ्ल बताया जाता

(अब आचमन तथा अगाक स्पराका फ्रेंट ब्राया जाता है।) तीन बार जलका आचमन करके ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवंद—इन तीनों वेदोंको प्रसन्न करना चाहिये। पहले दो बार मुखका प्रश्नालन करनेसे अथवां (वेदविद् ब्राह्मण) और आङ्गिरस (बृहस्पति)-का मुखमें सन्निधान होता है। मुखभागका स्पर्श करनेपर आकाश, नासिका-भागका स्पर्श करनेपर बायु, नेजभागका स्पर्श करनेपर सूर्य, कानोंका स्पर्श करनेपर सभी दिशाओंका स्पर्श समझना चाहिये। मुख तथा नासिका आदिका वयाविधि स्पर्श करनेसे इन अङ्गोमें यथाक्रम इतिहास, पुराण एवं वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) प्रतिष्ठित होते हैं। नाभिप्रदेशका स्पर्शकर प्राणग्रन्थिका और हृदयभागका

१-मुख और नासिका आदिमें यथाक्रम आकाश तथा वायु आदिके अधिहाता देवता सन्निहित हैं।

स्पर्शकर ब्रह्माका स्पर्श समझना चाहिये। मूर्धांके स्पर्शसे रुद्र कार्यके लिये निषिद्ध माने गये हैं। दतुअनके न होनेपर तथा और शिखाके स्पर्शसे ऋषियोंको प्रसन्न किया जाता है। निषिद्ध तिधिके आ जानेपर मनुष्यको बारह कुछा जलके दोनों बाहुओंको स्पर्श करके यम, इन्द्र, यरुण, कुबेर, द्वारा मुखको पवित्र कर लेना चाहिये। पृथिषी तथा अग्निदेवके साजिध्यका लाभ प्राप्त होता है। अपने दोनों चरणोंमें जलका अध्यक्षण भगवान विष्णु और इन्द्र तथा दोनों हाथोंका प्रोक्षण करनेसे भगवान् विष्णुदेवका सांनिध्य प्राप्त होता है।

धार्मिक विधिके अनुसार पृथ्वीका जलसे प्रोप्तण करनेसे वासुकि आदि नाग प्रसन्न होते हैं। धार्मिक विधिके मध्यमें जलका शास्त्रीय उपयोग करते समय उसके बिन्दओंके गिरनेसे भूतीके समृह तृति प्राप्तकर प्रसन्न होते हैं। अंगुलियोंके पर्वोपर अग्नि, वायु, सूर्व, चन्द्र और पर्यतसमूह निवास करते हैं। द्विजके हाथोंमें जो रेखाएँ होती हैं, उनमें गङ्गा आदि पश्चित्र नदियाँ स्थित रहती है। हाथके तलभगमें सभी तीर्घोंक साथ सोमका निवास है। इसीलिये हाथको पवित्र माना जाता है।

उपाकाल (सूर्योदयसे पूर्व ग्राजिशेष) होनेपर दचाविधि शौंच-क्रिया करनी चाहिये। तदननार दन्तधावन (दतुअन) करके स्नान करे। मुखके पर्युचित (बासी) रहनेपर मनुष्य निश्चित ही अपवित्र रहता है। अत: मनुष्यको प्रात:काल अवश्य ही दनाधावन करना चाहिये। दनाधावनके लिये कदम्ब, बिल्व, खैर, कनेर, बरगद, अर्जुन, यूपो, वृहती, जाती, करंज, अर्क, अतिमुक्तक, वापून, महुआ, अपाधार्ग (चिचड़ा-सटजीरा) शिरीष, गूलर, भाग तथा दूधवाले और कैटीले अन्य वृक्ष प्रशस्त होते हैं। कड्वे, तीते तथा कसैले काष्ठके जो वक्ष हैं, उनको दत्अन धन-धान्य, आरोग्य और सुखसे सम्पन्न करनेवाली होती है। पवित्र स्थानमें मनुष्य ऐसे वृक्षोंकी दतुअनको लेकर सबसे पहले उसको जलसे धो डाले। उसको दाँतोंसे चबा-चबाकर मुख साफ करे और अवशिष्ट दतुअनको किसी एकाना स्थानमें छोड़ दे। तदनन्तर भली प्रकारसे आचमनकर मुखशोधन दिन दतअन नहीं करनी चाहिये; क्योंकि ये सभी दिन इस से उन मन्देह राक्षसींको जला देते हैं।

दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकारका हित-सम्पादन होनेके

कारण प्रात:कालके स्नानको प्रशंसा की गयी है। जो व्यक्ति

जुद्धात्मा है, जो प्रात:काल स्नान करता है, वह जपादिक सगस्त (ऐहिक और पारलीकिक सुख प्रदान करनेवाली) क्रियाओंको सम्पन्न करनेका अधिकारी है। शरीर अत्यन्त मलिन है। उसमें स्थित नविद्धोंसे सदैव मल निकलता ही रहता है। अत: प्रात:कालका स्नान शरीरकी शुद्धिका हेतु, मनको प्रसन्न रखनेवाला तथा रूप और सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला है। यह शोक और द:खका विनाशक है। अत: भनुष्य प्रात:काल गङ्गास्नानके समान ही स्नानकी क्रिया सम्पन्न करे। ज्येष्टमासके जुक्लपक्षकी हस्त नक्षत्रसे पुक दशमी तिथिमें दस पापोंको हरण करनेको सामध्ये है। इस पुण्यतिधिमें स्नान करनेसे 'दान न देनेका पाप, विरुद्ध आचरण, हिंसा, परदारोपसेवन, कटु और झुठ भाषण, चगुलखोरी, असम्बद्ध प्रलाप, परद्रच्यापहरण और मनसे अनिष्टचिन्तन करनेसे होनेवाला पाप-इन पापोंके विनाशके लिये आज में गङ्गा-स्नान कर रहा हैं '- यह संकल्प लेकर यनुष्य प्रात:काल स्तान करे। वानप्रस्थी तथा गृहस्थको

प्रात:काल संक्षिप्त स्नान करना चाहिये। संन्यासीके लिये

दिनकी तीनों (प्रात: पध्याह, सायं) संध्याओंमें स्नान

करना अपेक्षित है। ब्रह्मचारीको सकृत् स्नान करना

चाहिये। आचमन करके, तीधाँका आवाहन करके, अञ्चय

भगवान विष्णुका स्माण करते हुए स्नान करना चाहिये। शास्त्रोंमें तीन करोड़ मन्देह नामक राक्षस माने गये हैं। वे इरात्मा राक्षस सदेव प्रात:काल उदित हो रहे सुर्यदेवको खा जानेको इच्छा करते हैं। अत: (सुर्योदयसे पूर्व) स्नान करके संध्योपासनकर्म नहीं करना सुर्यदेवका ही घातक है। जो लोग यथाविधि स्नानकर यथाधिकार संध्योपासन करते करे। अमाबास्या, पश्ची, नवमी, प्रतिपदा तिथि तथा रविवारके 🐉 ये मन्त्रसे पवित्र किये गये अनलरूपी अर्घ्य (जल)-

१-सकृत् स्नानका तात्स्य है—इण्डवत् स्वानः अर्थात् वैसे दण्ड जलमें डालकर निकाल लिया जाता है, वैसे हो स्नान करना चाहिये गृहस्थको तरह सुखपूर्वक स्नान नहीं करना चाहिये। सार्थ, प्रात: अवस्य करणोय अग्रिहोत्र आदिके लिये दोनों समय (सार्य-प्रात:) स्नानका विधन ब्रह्मचारीके लिये है। (यन्० २) १७६ कुल्लूक भट्टको टोका)

(४५ मिनट) होता है। यह संध्याकाल सूर्योदयसे पूर्व दो घडीपर्यन्त रहता है। संध्या-कर्मके समाप्त हो जानेपर यधाधिकार स्वयं हवन-कार्य करना चाहिये। स्वयं हवन करनेसे जितना फल प्राप्त होता है, उतना अन्य किसीके द्वारा करानेसे नहीं होता। ऋत्विक, पुत्र, गुरु, भाई, भौजा और दामादके द्वारा यह कार्य हो सकता है। क्योंकि उन लोगोंके द्वारा किया गया हवन, स्वयंका ही माना गया है।

गार्हपत्य-अग्निको बह्या, दक्षिणाग्निको शिव और आहवनीय-अग्निको विष्णु तथा कुमार को सत्पन्तकप कहा जाता है। यथोचित समयपर हवन करके सूर्यमन्त्रका जप करना चाहिये। तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर सावित्री और प्रणय (३%कार)-मन्त्रका जप करना चाहिये। प्रणय, सप्त-व्याद्वति और त्रिपदा सावित्री मन्त्रका निरन्तर प्रधासमय नियतरूपसे जप करनेसे संसारमें किसी भी प्रकारका भय नहीं रहता है। जो उपासक प्रात:काल उठकर नित्य यायत्री-मन्त्रका जप करता है, वह कमलपत्रकी भौति पापमे संलिख नहीं होता। (देवी गायत्रीका स्वरूप इस प्रकार 🖫)

> श्चेतवणां सप्दिश कौशेयवसना अक्षसंत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा ॥ (+8110+)

अर्थात् गायत्रीदेवी श्रेतवर्णवाली हैं, कौशेष (रेशमी)-यस्य तथा अक्ष (माला) एवं सूत्र (यजसूत्र-यजोपवीत)-से विभूषित होकर सुन्दर पद्मासनपर विराजमान रहती है। इसी रूपमें विधिवत् ध्यान करके 'तेजोसि॰' इस यजुर्वेदके मन्त्रसे आवाहनकर गायबीदेवीको उपासना करनी चाहिये। प्राचीनकालमें देववर्ग तथा मन्त्रोंका साक्षातकार करनेको इच्छा रखनेवाले ऋषिगण यजुर्वेदके इसी मन्त्रका प्रयोग करते थे। अत: सूर्यमण्डलके मध्य विराजमान तथा ब्रह्मलोकमें भी निवास करनेवाली देवीका आवाहन करके

दिन और रात्रिका जो संधिकाल हैं, वहीं संध्याकाल गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। तत्पक्षात् नमस्कार करके उनका (गायत्रीदेवीका) विसर्जन करना चाहिये। पुर्वाह्वकालमें देवताओंका पूजन करना चाहिये। भगवान् विष्णुसे बहकर अन्य कोई देव नहीं है। अतएव साधकको सदैव उनको पूजा करनी चाहिये। विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि ब्रह्मा, किच्यु और शिव-इन तीन देवोंके प्रति पृथक्-भाव (भेदबद्धि) न रखे।

इस संसारमें आठ मङ्गल हैं-ब्राह्मण, गौ, अग्नि, हिरण्य (सोना), मृत, सूर्य, जल और राजा। सदैव इनका दर्शन एवं पूजन करना चाहिये और यथासम्भव इन्हें अपने दाहिने करके ही चलना चाहिये। ब्राह्मण पहले नेदका अध्ययन करें, उसके बाद चिन्तन, अध्यास तथा जप करके उसका दान शिष्योंको दे. अर्थात् अपने शिष्योंको वेदाध्ययन कराये। वेदाध्यासका यही पाँच प्रकार है।

वेदार्थ, यज्ञकमंप्रतिपादक शास्त्र और धर्मशास्त्रकी पुस्तकोंका पारिक्रमिक देकर जो लेखनकार्य कराता है और उसे योग्य अधिकारीको प्रदान करता है, यह वैदिक (बेंदमें उक्त) लोकको प्राप्त करता है। जो इतिहास-प्राणके छन्दोंको लिखकर दान देता है, वह ब्रह्म (बेद)-दानसे होनेवाले पुण्यका दुगुना पुण्य प्राप्त करता है। दिनके लीसरे भागमें अपने पौष्य वर्गके प्रयोजनको पूर्ण

करना चाहिये। माता, पिता, गुरु, भाता, प्रजा, दीन, दु:खी, आवितजन, अध्यागत , अतिथि और अगिन-ये पोष्य वर्ग कहे गये हैं। पोध्य वर्गका भरण-पोषण करना स्वर्गका प्रशस्त साधन है। अत: मनुष्यको पोष्य वर्गका पालन-पोषण प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। इस संसारमें उसी व्यक्तिका जीवन ग्रेष्ठ है, जो बहुतींके जीवनका साधक बनता है। अर्थात् बहुतोंका पालन-पोषण करता है। जो मात्र अपने भरण-चोषणमें लगे रहते हैं, वे जीवित रहते हुए भी मरे इएके समान हैं: क्योंकि अपना पेटपालन तो कुत्ता भी

१-यहाँ कुमारका अर्थ इयनकर्ता (ब्रह्मचारी)-को समझन चाहिये।

२-रेजोऽसि तेजो माँय धेहि वीर्यमांस बीर्य मधि धेहि बलमांस बल गाँप घेड्रोजोऽस्योजो माँय धेहि मन्युरीस सन्युं माँय धेहि सहोऽसि सही मयि धेहि॥ (मृत्यज्व १९।९)

३-जो अकरमात् अपने घर आ जाय वह अभ्यापत है।

४-अतिथि इस अनुको कहते हैं जो तिथि, पर्य, उत्सव आदिका विवेक नहीं करता है और सदा बलता हो रहता है। यहाँ यसका बचन द्रष्ट्रस्य है—तिथि पर्वोत्सवाः सर्वे त्यन्ता येन महात्मनः। सोऽतिथिः सर्वभूतना होपनभ्यानकान् विदुः ।

करता है।

व्यवहारमें अर्थका महत्त्व है। जैसे नदियोंके मूल पर्वत हैं, वैसे ही समस्त कार्योंका मूल अर्थ है; इसीलिये अर्थको उत्पन्न करना एवं बढ़ाना आवश्यक होता है। अर्थ उसे ही कहते हैं, जो हमारे सभी कार्योंकी सम्यन्तामें अनिवार्यरूपसे उपयोगी हो। इसी दृष्टिसे सभी रतोंकी निधि पृथ्वी, धान्य, पश्, स्त्रियाँ आदि अर्थ माने जाते हैं। इस तरह अर्थका महत्त्व होनेपर भी इसके अर्जनमें संयम आवश्यक है: अतएव विशेषकर ब्राह्मणको अपनी जीविकाके लिये अर्थार्जन करते समय यह ध्यानमें रखना चाहिये कि यदि आपत्तिकाल नहीं है तो किसी भी प्राणीके साथ द्रोह न करना पढें अथवा कम-से-कम दोह करना पहे।

धन तीन प्रकारका माना गया है- तुक्त, ताबल (मित्रित) और कृष्ण। उस धनके सात विश्वग है। सभी वर्णोंको प्राप्त होनेवाला धन तीन प्रकारका होता है-१-दायभागके अनुसार वंशपरम्परासे यथाधिकार प्राप्त धन, २-प्रेमके कारण किसीके द्वारा दिया गया धन और ३-यशाविधि विवाहित पत्नीके साथ प्राप्त धन। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणके लिये तीन प्रकारके विशेष धन है-याजन (यज करानेसे प्राप्त), अध्यापनसे प्राप्त तथा विश्वद प्रतिग्रह (सत्पात्रसे लिया गया दान)। क्षत्रिय वर्णका विशेष धन भी तीन प्रकारका कहा गया है-कस्से प्राप्त धन उसका पहला धन है, दसरा धन दण्डद्वारा प्राप्त तथा डीसरा धन वह है जो विजयद्वारा प्राप्त हो। वैश्यका भी तीन प्रकारका विशेष धन है- खेतीसे प्राप्त, गोपालनसे प्राप्त तथा व्यापारसे प्राप्त। शहका विशेष धन एक हो प्रकारका है, जो उपयुक्त वर्णोंकी कृपासे उसको प्राप्त होता है। आपत्तिकालमें ब्राह्मण एवं क्षत्रिय स्वयं व्याजसे, खेतीसे तथा व्यापारसे धन अर्जित कर सकते हैं, आपरिकालमें प्रेसा करनेपर पाप नहीं होता है।

ऋषियोंके द्वारा जीवनयापनके लिये बहुत-से उपाय बताये गये हैं, उनमें कसीद (ब्याज) सभी वर्णीके लिये बताये गये विशेष उपायोंकी अपेक्षा अधिक है। अनावृष्टि,

राजभव तथा चुहा आदि जीव-जन्तुओंके उपद्रवासे कृषि आदिमें बाधा आ जाती है, किंतु कुसीद-वृत्तिमें यह बाधा नहीं आती। जुक्लपक्ष हो, कृष्णपक्ष हो, रात्रि हो, दिन हो, गर्मी हो, वर्षा अथवा शीत हो — सभी दशाओं में कुसीदसे होनेवाली धनवृद्धि रुकती नहीं है। अर्थात् सुदपर दिया गया धन बढता हो रहता है। नाना प्रकारके व्यापारिक कार्योंमें संलग्न वर्णिक-जनोंकी जो धनकी अधिवृद्धि दूसरे देशमें जानेसे होतो है, वही अभिवृद्धि कुसीद-वृत्ति करनेसे घरमें बैते-हो-बैठे प्राप्त हो जाती है।

ज्ञान्वसम्मत विधिसे अर्जित धनके लागांशसे सभी लोगोंको पितृगण, देवगण तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। ये संतृष्ट होकर धन-अर्जनमें अज्ञानवश हुए दोषको नि:संदेह शान्त कर देते हैं। जो वणिक ब्याजके द्वारा (धनार्जनके लिये) वस्त्र, गौ तथा स्वर्णादि देता है और जो किसान अल, पेय पदार्थ, सवारी, शय्या तथा आसन आदि (ब्याज-वृत्तिमें) देता है, वह (उपार्वित धनका) बोसर्वो भाग और पशु-स्वर्णादिका १००वाँ भाग राजाको देकर रोप बचे हुए धनके चतुर्धारासे जी (यव) आदि विभिन्न वस्तुओंका सञ्चय करे। दो-चौधाई अर्थात् आथे धनका उपयोग, अपने भरण-पोषण तथा नित्य-नैमित्तिक कार्यके लिये होना चाहिये। जो एक-चौधाई धन शेष बचे, उसका उपयोग मृलधनकी वृद्धिमें करना चाहिये।

विद्या, शिल्प, बेतन, सेवा, गोरखा, व्यापार, कृषि, वति . धिशा और ब्याज-ये दस जीवनयापनके साधन हैं। बाद्यणको सत्यात्र व्यक्तिसे दानरूपमें प्राप्त धनसे अपना निवांह करना चाहिये। क्षत्रिय वर्ण अपने शस्त्रास्त्रोंसे धनाजंन करें। वैश्य वर्ण न्यायोधित इंगसे धनसंग्रह कर अपना कार्य पूर्ण करे और शुद्र सेवा-भावसे धन अर्जितकर अपने सभी कार्योंको सम्पन्न करे। प्रचुर जलराशिसे परिपूर्ण नदी, शाक, मसिका, साँमधा, कुश, पलाश, केला आदिके पत्र, अग्निदेवकी आराधनाके उपकरण और ब्रह्मघोष (स्वाध्याय) — ये ब्राह्मणोंके श्रेष्ठतम धन हैं। यदि अयाचित (स्वत:प्राप्त) धनको ब्राह्मण स्वीकार करे तो दोष नहीं है।

१-मता निता गुरुभाति प्रवा दीनाः समाहिताः ह

अभ्यागतोऽतिषक्षानिः पोष्पवार्तं उटबकः। भरणं पोष्पवर्गस्य प्रकारतं स्वर्गसाधनम् । भागं पोध्यवर्गस्य तस्माद्यानंत कार्यत्। स बीवति वस्क्रैको बहुभिर्धोपजीव्यति। जीवनों मृतकास्त्वन्वे पुरुषा: खोदरम्भत:) स्वाधीपोदरपूर्विश कुक्कुरस्थापि विद्यते॥ (२१३। ७९-८२)

२-वृत्ति— सहायताके रूपमें प्रतिमास दो जानेकली धनगरितः

देवताओंने ऐसे धनको अमृतके समान कहा है। अत: विना याचना किये ही आये धनका परित्याग ब्राह्मणको नहीं करना चाहिये।

गुरुके धनका उद्धार करनेकी इच्छासे देवता और अतिधिकी पूजा करते हुए सभीसे प्रतिग्रह लेना चाहिये, पर उसका उपयोग अपनी तुष्टिके लिये नहीं करना चाहिये। साधसे अथवा असाधसे भी केवल उसके कल्याणके लिये प्रतिग्रह लेना चाहिये। यदि प्रतिग्रहीता ब्राह्मण (आचारहीन) कर्मनिष्ठ है तो अरूप दोष होगा। यदि निर्मुण है तो दोषमें ह्य जायगा। इस प्रकार तस्करवृत्ति (अपने पुण्यको श्लीण करनेवाली वृत्ति)-से अपना भरण करनेके बाद उत्तम द्विजको अपनी शुद्धिके लिये प्रायक्षित्त करना चाहिये। दिनके चौथे भागमें मिड़ी, तिल, पुष्प तथा कुशादि सामग्री लाकर प्रकृतिप्रदत्त जलमें स्नान करना चाहिये।

नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियाङ्ग, मलापकर्षण, मार्जन, आध्यमन और अवगाहन-ये आत प्रकारके स्नान बताये गये हैं। बिना स्नान किया पुरुष जय, अग्नि और हतन आदि करनेका अधिकारी नहीं है। प्रात:स्नान पूजा-पाट आदि धार्मिक कृत्यके लिये करना चाहिये। इसीको नित्य-स्तान कहा गया है। चाण्डाल, राव, विद्या तथा रजस्वला आदिका स्पर्शे करनेके पश्चात् जो स्नान किया जाता है, वह नैमितिक-स्तान कहलाता है। ज्योतिकशास्त्रके अनुसार पुष्प आदि नक्षत्रोंमें जो स्नानादिक कृत्य किया जात है, उसे काम्य-स्नान कहते हैं। निष्काम व्यक्तिको इस प्रकारका स्नान नहीं करना चाहिये। जप-होमादिक कृत्योंको सम्मन्न करनेकी इच्छासे प्रेरित होकर अथवा अन्य अनेक पवित्र कृत्य, देवता तथा अतिथि आदिका पूजन करनेकी इच्छासे जो स्नान किया जाता है, उसको क्रियाङ्ग-स्नानके नामसे अभिहित किया गया है। शारीरिक मलको दूर करनेके लिये सरोवर, देवकुण्ड, तीर्थ और नदियोंमें को स्नान किया जाता है, वह मलापकर्षण-स्नान है। सामान्य जलमे स्नान करनेपर केवल शरीरकी शुद्धि होती है। तीर्थमें स्नान करनेपर विशिष्ट फलकी प्राप्ति होती है। मञ्जन (स्नान)-के लिये विहित मन्त्रोंसे मार्जन करनेसे मनुष्यका पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाता है। नित्य, नैमितिक, क्रियाङ्ग तथा मलापकर्षण नामक जो स्नान बताये गये हैं, उन स्नानीको तीर्थका अभाव होनेपर उष्ण जल अथवा अन्य किसी प्रकारसे प्राप्त कृत्रिम जलसे सम्पन्न कर लेना चाहिये।

भमिसे निकला हुआ जल पवित्र होता है। इस जलकी अपेक्षा पर्यतसे निकलनेवाले झरनेका जल पवित्र होता है। इससे भी बढ़कर पवित्र जल सरोवरका है और उसकी अपेक्षा नदीका जल पथित्र है। नदीके जलकी अपेक्षा भी तीर्चका जल पवित्र है। इन सभी जलोंकी अपेक्षा गङ्गाका जल परम पवित्र है। गङ्गाका श्रेष्टतम जल तो जीवनपर्यन्त किये गये प्राणीके सभी पापोंका विनाश अतिशीघ्र ही कर देता है। यदा तथा कुरुशेत्र नामक तीथोंके जलसे भी बढ़कर पवित्र एवं पुण्यदायक जल गङ्गाजीका है-

भूमिष्ठादुद्धतं पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम्॥ ततोऽपि सारसं पुण्यं तस्यात्रादेयमुख्यते। तीर्वतीर्थं ततः पुण्यं गाङ्कं पुण्यं तु सर्वतः॥ गाई प्रयः प्रशासाश् पापमामरणानिकम्। गयायां च कुरुक्षेत्रे यत्तीयं समुपरिश्वतम्॥ जानीयालीयमूलमम्। तस्याल् गाङ्गमपरे

(2831 684-688)

पुत्रजन्म, कठिपय विशिष्ट योग, मकर आदि राशियोंपर सर्वको संक्रान्ति तथा चन्द्र और सूर्यग्रहण होनेपर ही रात्रिमें स्तान करना प्रसस्त है। अन्यथा ग्रात्रमें स्नान नहीं करना बाहिये। प्रतिदिन उप:कालमें, संध्याकालमें और सूर्यका उदय होते ही जो स्नान किया जाता है, वह स्नान प्राजापत्य यज्ञको भौति महापातकका नाश करनेवाला है। बारह वर्षतक प्राज्ञपत्य यज्ञ करनेपर जो फल प्राप्त होता है, वह फल बद्धापूर्वक एक वर्षतक प्रात:काल स्नान करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति सूर्य और चन्द्र नामक श्रेष्ठ ग्रहोंके समान प्रचुर भोगोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, वह माय तथा फाल्गुन-इन दो मासोंमें नित्य प्रात:काल स्तान करे। वो ब्रद्धालु माधमास आनेपर प्रात:काल स्नान करके हविष्यात ग्रहण करता है, वह एक ही मासमें अपने महाधीर और अतिपापींका विनाश कर देता है। माता, पिता, धाता, मित्र अधवा गुरु आदिको उद्देश्य बनाकर जो प्राव:काल स्नान करता है, उसे शास्त्रनिर्दिष्ट पुण्यका द्वादश गुणित अधिक पुण्य प्राप्त होता है। भगवान विष्णु एकादशी तिथिको आमलक (आँवला)-के समर्पण एवं दानसे विशेषरूपसे तृष्ट होते हैं। लक्ष्मीकी कामना करनेवाले मनुष्यको सर्वदा आमलकसे स्नान करना चाहिये।

सन्ताप, कोर्ति, अल्पायु, धन, मृत्यु, आरोग्य तथा सभी कामनाओंको पूर्ति क्रमश: रविवार आदिको तैलका अध्यञ्ज करनेसे प्राप्त होती है। अर्थात् रविवास्को नारीरमें तैलका अध्यद्भ करनेपर सन्ताप, सोमबारको तैल-अध्यंगसे कोर्ति, मंगलवारको तैल-अध्यङ्गसे अल्पाय, बुधवारको तैल-अध्यक्षसे धन, बृहस्पतिवारको ऐसा करनेसे मृत्यु, शुक्रवारको तैल-अध्यक्षसे आरोग्य और शनिवारको तैल- अध्यक्ष करनेपर मनुष्यका सम्पूर्ण अभीष्ट पूर्ण होता है। उपवास करनेवाले वृतीसे तथा नाईके द्वारा श्रीरकर्म करानेके पश्चात् मनुष्यसे तबतक ही लक्ष्मी प्रसन्न रहती हैं, जबतक वह तैलका स्पर्श नहीं करता है। अत: तैलस्पर्श करनेके पक्षात मनुष्यको तत्काल स्नान कर लेना चाहिये। वतके दिन तो तैलस्पर्श नहीं ही करना चाहिये।

स्नान करनेके बाद मनुष्यको संचाविधान पितृगण, देशगण और मनुष्योंका तर्पण करना चाहिये। नाभिपर्यन्त जलमें स्थित होकर एकाग्र मनसे पितरोंका आयाहन करना चाहिये-

आगच्छन् मे पितर ३पं गृह्वन्वपोऽस्रुलिम्॥ हे मेरे पितृगण। आप सब इस तीर्थस्थानपर आकर विराजमान हों और मेरे द्वारा दी जा रही जलाकुलिको स्वीकार करें।

इस प्रकार आवाहन करके आकार और दक्षिण दिशामें स्थित पितृगणोंको तीन-तीन जलाज़िल प्रदान करे। यदि जलसे बाहर निकलकर तर्पण करना हो तो तर्पणकी विधि जाननेवाले लोगोंको सुखे और स्वन्ह वस्त्र पहनकर समूल कुशाओंपर तर्पण करना चाहिये। पात्र (बर्तन)-में तपंण नहीं करना चाहिये।

तर्पण-कृत्यमें रक्षोगण प्रतिबन्ध न कर सके, इसके लिये तर्पण आरम्भ करते समय बायें हाथमें वल लेकर नैर्ऋत्य कोणमें उसे छोड़ना चाहिये और जल छोड़ते समय निम्नलिखित मन्त्र बोलना चाहिये-

> यदपां क्ररमांसान् यदमेश्यं तु किञ्चन॥ अशानं मलिनं यच्च तत्सर्वमपगच्छन्।

> > (2531535-533)

क्ररमांसके कारण, अपवित्रताके कारण, अधवा तर्पणके जलमें अज्ञानवश विद्यमान अशान्तिजनक किसी तत्त्व या मिलनताके कारण जो कुछ भी प्रतिबन्ध है, वह दूर हो जाय।

अन्तमें तर्पणका संक्षेप (उपसंहार) करते समय तीन जलाङ्गलि निम्नलिखित मन्त्रोंसे देनी चाहिये-

निषिद्धभक्षणाद्यम् प्रतिग्रहात्॥ द्कृतं यद्य में किञ्चिद्वाङ्गनःकायकर्मभिः। पुत्रातु में तदिन्तस्तु वरुणः सबृहस्पतिः॥ सविता च धगश्चैव पुनयः सनकादयः। आग्रह्मसम्बपर्यनं जगत् तुप्यस्विति सुयन्॥

(463 1635-634)

निषद्ध भक्षणसे, जन्मान्तरीय दुष्कर्मोसे, प्रतिग्रह (दान) लेनेसे और इस जन्ममें शरीर, वाणी एवं कर्मसे जो निषिद्ध आचरण हो गये हैं, उनसे उत्पन्न पापींके कारण मुझमें जो अपवित्रता है, उसे दर करके बुहस्पति, इन्द्र तथा वरुण मुझे पवित्र करें। सुर्य, यम (देवताविशेष), सनकादि ऋषि और ब्रह्मसे लेकर स्तम्ब (अति लघु कीट या तुण) समस्त संस्वर-ये सभी मेरे तर्पणसे तुप्त हों।

इस प्रकार पितृतर्पण करके संयमी व्यक्तिको ईर्व्या, द्वेष आदिसे रहित होकर बढ़ाा, विष्णु और महेश आदि अभीष्ट देवोंको पूजा करनी चाहिये। विभिन्न देवतालिङ्गक ब्राह्म, वैष्णव, रोड, सावित्र एवं मैत्रावरुण-मन्त्रीसे सभी देवताओंकी नमस्कारपूर्वक अर्था करनी चाहिये। तदननार पुनः नमस्कारपूर्वक आर्थित देवींको पृथक्-पृथक् पुष्पाक्षलियाँ देनी चाहिये। पुन: सर्वदेवमय भगवान् विष्णु और सुर्यकी पुजा करनेका विधान है। इस पूजामें जो अधिकारी मनुष्य पुरुषसुक्तसे भगवान् विष्णुको पुष्प तथा जल समर्पित करता है, वह सम्पूर्ण चराचर विश्वको पूजाको सम्पन्न कर लेता है। इन देखोंकी पूजा अन्य तान्त्रिक मन्त्रोंसे भी की जा सकती है। पूजामें सबसे पहले आराध्यदेव जनार्दनको अध्यं प्रदान करना चाहिये और सुगन्धित पदार्थसे उनके विग्रहका किलेपन करना चाहिये। तत्पश्चात् उन्हें पुष्पाञ्चलि, धृए, उपहार और फलका नैवेद्य समर्पित करना चाहिये।

जलके मध्य स्नान, जलके द्वारा मार्जन, आचमन, जलमें तीर्थका अधिमन्त्रण तथा अधमर्पण-सुक्तके द्वारा मार्जन नित्य तीन बार करना चाहिये। महात्माओंको स्नानविधिके विषयमें यही अभीष्ट है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैरुपको मन्त्रसहित स्नान करना चाहिये। शुद्रवर्णको मौन होकर नमस्कारपूर्वक स्नान करना चाहिये। अध्यापन ब्रह्मयज्ञ, तर्पण पितृयज्ञ, होम देवयञ्च, बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ तथा अतिथिका पूजन मनुष्ययञ्च है। गौआंके गोष्ठमें दस गुना, अग्निशालामें सौ गुना, सिद्धक्षेत्र-तीर्थ तथा देवालयोंमें क्रमशः एक हजार गुना, एक लाख गुना और एक करोड़ गुना फल इन कर्मोंको करनेसे प्राप्त होता है। जब ये ही कर्म भगवान् विष्णुके साजिभ्यमें किये जाते हैं तो इनसे अनन्त गुना फलोंको प्राप्त होती है।

दिनका यथायोग्य पाँच विभाग करके पितृगण, देवगणकी अर्चा और मानवके कार्य करने चाहिये। जो मनुष्य अनदान करके सर्वप्रथम ब्राह्मणको भोजन कराकर अपने मिन्नजनोंके साथ स्वयं भोजन करता है, वह देहत्यागके बाद स्वर्गलोकके सुखका अधिकारी बन जाता है।

मनुष्यको सर्वप्रथम मधुर, मध्यभागमें नमकीन और अम्लसे युक्त पदार्थ, उसके बाद कडुवा, तीता तथा कसैला भोजन करना चाहिये। भोजनके अनन्तर दुग्धपान करना चाहिये। रातमें शाक तथा कन्दादिक पदार्थोंको अधिक नहीं खाना चाहिये। एक ही प्रकारके रसमें आसक्ति अच्छी नहीं होती है।

ब्राह्मणका अन्न अमृतके समान, क्षत्रियका अन्न दुग्धके समान, वैश्यका अन्न अनके समान और मुद्रका अन्न रखके समान होता है। जो अमायास्याका बत एक वर्षतक करता है, उसके यहाँ ऐक्षर्य और लक्ष्मीका (अविचलक्ष्पसे) निवास होता है। द्विजातिके उदरभागमें गाईपल्याग्नि, पृत्रभगमें दक्षिणाग्नि, मुखमें आहवनीयाग्नि, पूर्वमें सत्याग्नि और मस्तकमें सर्वाग्निका वास रहता है। जो इन प्रक्राग्निको जान लेता है उसको आहितागि कहा जाता है। शरीरको जल, चन्द्र तथा विविध प्रकारके अन्नके द्वारा साध्य माना गच है। इस शरीरका उपभोग करनेवाले प्राण अग्नि और सूर्व हैं। ये तीनों पृथक्-पृथक् तीन रूपोंमें भी अवस्थित रहकर एक ही हैं।

(भोजनके समय यह भावना करनी चाहिये कि)
पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाज्ञ और वायुक्तवसे युक्त इस मेरे
स्यूल करीरकी पृष्टिके लिये प्रयुक्त अत्र शक्ति-सञ्चयके
लिये होता है। शरीरमें पहुँचकर जब यह अत्र भूमि, जल,
अग्नि और वायुक्तवके रूपमें परिणत हो जाता है तो
अप्रतिहट-असीम मुखकी अनुभूति होती है।

इसके (भोजनके) बाद मनुष्यको अपने हाथसे मुख आदि स्वच्छकर ताम्बूल अर्थात् पानका भक्षण करना बाहिये। तदनतार एकाग्रचित्त होकर इतिहासका श्रवण करना चाहिये। इतिहास और पुराणादिको कथाओंके द्वारा मनुष्यको दिनके छटे और सातवें भागका समय व्यतीत करना चाहिये। तद्यक्षात् स्नान करके पश्चिम दिशाकी ओर मुख करके सार्यकालीन संध्योपासन करना चाहिये।

हे ब्राह्मणदेव! मेरे द्वारा कहे गये इस विधानके अनुसार अपने कर्तव्योंका पालन करना चाहिये। जो मनुष्य इस सदाबारके अध्यायका पाठ करता है अथवा अपने पुरोहित आदिके द्वारा इसका श्रवण करता है, वह निश्चित हो अपनी मृत्युके पश्चात् स्वर्गलोकको जाता है। हे द्विज। इन सभी सदाचार एवं धर्मका पालन करनेवाला अधिकारों मनुष्य केशव (साक्षात् विष्णु) हो माना गया है। (अध्याय २१३)

स्नान तथा संक्षेपमें संघ्या-तर्पणकी विधि^र

ब्रह्माजीने कहा — अब मैं स्नानकी विधि कहता हूँ, क्योंकि सभी क्रियाएँ स्नानमूलक हैं अर्थात् स्नानके बिना कोई भी क्रिया सफल नहीं हो सकती। स्नानार्थी व्यक्तिको स्नानके पूर्व मिट्टी, गोमय, तिल, कुश, सुगन्धित पुण्य— ये सभी द्रव्य एकत्र कर लेना चाहिये। गन्ध आदि स्नानोपयोगी पदार्थोंको जलके समीप स्वच्छ स्यान—

भूमिपर रखना चाहिये।

तदनन्तर विद्वान् व्यक्ति एकत्र किये हुए मिट्टी और गांनपको तीन भागोंमें विभक्त करके मिट्टी और जलके द्वारा दोनों पर तथा दोनों हाथका प्रकालन करे। बायें कंधेपर यज्ञोपबात रखकर शिखाबन्यनपूर्वक मीन होकर आयमन करे। 'ॐ उठे हि राजा'०' इत्यादि मन्त्रोंसे दक्षिणभागमें

१-इस अध्यायमें यन्त्रोंके प्रतीकमात्र दिये गये हैं। विज्ञासु विभिन्न मन्त्रसाँहराओंसे मन्त्रोंको बान लें।

२-३% उठं हि राजा वरणक्षकार सूर्याय प्रन्थानमन्तेत कड । प्रतिभागा च वन्तारस्ताहरणविपक्षित्। नमोऽगन्यरुणाया भिष्टुतोवरुणस्य पारा:। वरुणाय नम:॥ (२१४। ६)

मन्त्रोंका पाठ करके उस जलका अभिमन्त्रण करे। 'ॐ तद विष्णो: परमं पदम्॰' इत्यादि कहकर बार-बार स्नान समित्रिया न आप 0' इस मन्त्रसे अञ्चलिमें जल लेकर करे। यह वैष्णवी गायत्री विष्णुके सर्वाङ्ग-स्मरणमें निमित्त पहले मार्जन करे, फिर शेष जलको बाहर फेंके। तदननार है। 'ॐ इदमाय: प्रबहत:०' इत्यादि पवित्र मन्त्रोंसे अपने दोनों चरण, जंधा और कटिप्रदेशमें तीन-तीन बार मिट्टी मलका निवारण करते हुए मार्जन करे और अपनेको निर्मेल लगाये। इसके पश्चात दोनों हाथ धोकर आचमन करके शरीरवाला बना ले। फिर 'ॐ तद्विष्णो: परमं पदम्०' जलको नमस्कार करे। इसके बाद 'ॐ इदं विष्णविषक्कमे॰' इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करे। का पाठ करके 'ॐ भू: स्वाहा, ॐ भूव: स्वाहा, ॐ स्व: सुर्याधिमुख होकर 'ॐ आपी अस्मान्०' इत्पादि मन्त्रसे जलमें इबकी लगाये। तदननार शरीरको मल-मलकर स्वच्छ करे

इसके बाद 'ॐ मा नस्तोके तनचे मा न०' इत्यादि मन्त्रका तीन बार पाठ करके गोमयके द्वारा अङ्गका लेपन करे। फिर 'ॐ इम्रं में वरुणo' इत्यादि वारुणमन्त्रसे यधाक्रम अपने मस्तक आदिका अभिषेक को। पूर्वोक्त मन्त्रीसे विधियत् आत्माभिषेक करके जलमें युक्की लगाकर पन: आचमन करे। 'ॐ आयो हि छ॰', 'ॐ इट् आपो हविष्यती०, 'ॐ देशी गए०', 'ॐ इपटादिव०' तथा '35 प्रं मे देवीo' इत्यादि पावमानी मन्त्रोंसे समाहित होकर मार्जन करे। 'ॐ हिरण्यवर्णां०' 'ॐ प्रवधानसूक्तम्०', 'ॐ तात्सामा:०' तथा 'ॐ श्रद्धकत्य:०' आदि पवित्र करनेवाले मन्त्री एवं वारुणमन्त्रीसे यवाशक्ति जलाभिषेक करे।

और भीरे-भीरे इचकी लगाते हुए स्नान करे।

ऑकार और व्याहतिसमन्त्रित गायत्री-मन्त्रका पाठ करते हुए स्नानके आदि और अन्तमें जलाभिषेक करे। जलके मध्यमें रहकर ही मार्जन करनेका विधान है। जलमें दुवकर अधमर्थण-मन्त्रको तीन बार पदना चाहिये। इसके बाद 'ॐ द्रपदा॰' इत्पादि मन्त्रका तीन बार पाठ करके 'ॐ आयं गी:0' इत्यादि तीन ऋचाओंका पाठ करे। तदनन्तर स्मरण करे। जल ही विष्णुका आयतन है। विष्णु हो जलके

जलको स्थापित करे। फिर 'ॐ ये ते इतं के इत्यादि अधिपति कहे गये हैं। जलमें विष्णुका स्मरण करे। 'ॐ यधाविधि स्नानक्रियाको सम्पन्नकर धोये हुए अखण्डित

स्वाहा' इत्यादि महाव्याइतिमन्त्रसे आचमन और '३६ इदं पवित्र दो वस्त्रोंको पहनकर मिट्टी और जलके द्वारा हाथ विष्ण्o' आदि मन्त्रसे मिट्रीद्वारा अङ्गोंका मार्जन करे। फित तथा पैरका प्रश्नालन करके संध्या एवं तर्पण करना चाहिये। स्तान और भोजनके आरम्भमें आचमनकर पुन: मन्त्रके द्वारा अन्तमें आचमन करना चाहिये। आचमनके बाद तीन बार 'ॐ द्रपदादिवo' इत्यादि मन्त्रका पाठकर जलद्वारा मुर्खाधिषेक तथा अधमर्थण करे। पुन: आसमन और मार्जन तथा तीन बार आचमनकर धीरे-धीर प्राणायाम करे। इसके बाद अञ्चलिमें जल एवं पुष्प धारण करके सुर्याच्ये दे और ऊर्ध्वाह होकर समाहितचित हो सूर्यका निरीक्षण करते हुए 'ॐ उद त्यंव' 'ॐ बित्रं देवानांव' तथा 'ॐ तच्यक्षर्देवहितं "एवं "ॐ हरूसः श्रविषद् "इत्यादि मन्त्रीका पाठ करते हुए सुर्योपस्थापन करे। इस प्रकार सुर्योपस्थापन करके यधारांकि गायत्रोंका जप करना चाहिये। इसके पक्षात् ' ॐ विधाद् o ' अनुवाक, प्रश्यस्क, जिवसंकल्पस्क, मण्डलबाद्यण इत्यादि सुर्यके मन्त्रोंका सभी देवताओंकी प्रसन्नताके लिये यथाशकि जप को अथवा जपकी साङ्गोपाङ्ग पूर्णताके लिये विधिवत् अध्यात्मविद्याका जप करे। तदननार सव्य होकर तीन बार आचमनकर श्री, मेधा, धृति, श्रिति, वाक, वागीश्वरी, पृष्टि, तृष्टि, तमा, अरु-धती, शथी, मातुगण, जया, विजया, सावित्री, शान्ति, स्वाहा, स्वधा, धृति, ब्रेष्ट अदिति, ऋषिपत्नियाँ, ऋषिकन्याओं और अन्य काम्य देक्ताओंका तर्पण करे। इसके बाद समाहितचित स्मृतियोंमें निर्दिष्ट स्नानाङ्ग-मन्त्रोंका समाहितिचलसे पाठ होकर सभीकी मङ्गलकामनासे सर्वमङ्गलादेवीको तृप्त करे करे अथवा महाव्याहति और प्रणवसे युक्त गायत्रीका जप और 'ॐ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् तृष्यत्विति' इस मन्त्रसे करे या प्रणवकी आवृत्ति करे अथवा अञ्यय विष्णुका तीन अञ्चलि जल देते हुए तर्पण-क्रियाकी सम्पन्तताकी कामना करे। (अध्याय २१४)

१-३३ ये ते शतं वरुणये सहस्रं यज्ञिया: पाशा किस्ता महान्त:। तीभनी अध सकितोत विष्णुविश्चे मुखन्तु मस्त: स्वको: स्वाहा ॥ (२१४।७)

२-३५ सुमित्रिया न आप ओषधय: सन्तु । दुर्मित्रियास्टामै सन्तु पोउस्मान्द्रेष्टि यञ्च वर्ष द्विष्म:॥ (२१४।७)

तर्पण^१-विधिका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा-इसके बाद तर्पणविधिका वर्णन करता हूँ। इस विधिके अनुसार तर्पण करनेसे देवगण और स्नृप्यताम्। ॐ वौबुस्नृप्यताम्। ॐ पञ्चशिखस्नृप्यताम्। पितृगण तुष्ट होते हैं। सर्वप्रथम 'ॐ मोदास्तुम्बन्ताम्' इत्यादि मन्त्रोंसे एक-एक अञ्चलि जल प्रदान करे। तर्पणके मन्त्र इस प्रकार है—

मोदास्तृप्यनाम्। प्रमोदास्तृष्यन्ताम्। 30 दुर्मुखास्तुप्यनाम्। सुमुखास्तुप्यन्ताम्। 30 विष्नास्तृप्यनाम्। विजकतीस्तृप्यनाम्। 3% वदास्तुप्पन्ताम्। 30 ओषधयस्तृष्यन्ताम्। सनातनस्तृप्यताम्। इतराचार्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ संवत्सरस्साचयवस्तृप्यताम्। 3ů देवास्तृप्यनाम्। अपरमस्तृप्यनाम्। ॐ देवान्धकासुष्यताम्। ॐ सागरासुष्यनाम्।ॐ नागासुष्यनाम्। पर्वतास्तृप्यनाम्। ॐ सरिन्यनुष्या यक्षास्तृप्यनाम्। पिशाबास्तृप्यन्ताम्। 30 तृष्यन्ताम्। 30 सुपर्णास्त्रप्यनाम्। भूतानि तृष्यनाम्। 30 भूतग्रामाश्चनुविधास्तृष्यन्ताम्। दक्षम्ब्यताम्। मरीजिस्तुप्यताम्। 30 प्रचेतास्तुप्यताम्। 30 30 अत्रिस्तृप्यताम्। अङ्गिरास्तुष्यताम्। 320 पुलस्त्यस्तृप्यताम्। पुलहस्तृप्यताम् । 30 क्रतुस्तृप्यताम्। ॐ नारदस्तृप्यताम्। ॐ भृगुस्तृप्यताम्। 30 विश्वापित्रस्तृप्यताम्। कश्यपस्तृप्यताम्। 300 30 जमदग्निस्तृप्यताम्। वसिष्टसनुभ्यताम्। 39 स्वारोजिबस्तृप्यताम्। ಹ स्वायम्भुवस्तृप्यताम्। 30 30 तामसस्तृप्यताम्। Sin. रेयतस्तृप्यताम्। 30 35 महातेजास्तृप्यताम्। चाक्ष्यस्तृप्यताम्। 30 वेवस्वतस्तृप्यताम्। ध्रवस्तुप्यताम् । 30 धवस्तृष्यताम्। अनिलस्कृप्यताम् ।

इसके बाद निर्वाती होकर अर्थात् यज्ञोपबातको मालाके रूपमें गलेमें धारणकर 'ॐ सनकस्तृष्यताम्' इत्पादि निम्न

ॐ प्रभासस्तृप्यताम्।

मन्त्रोंसे तर्पण करे-

लेनी चाहिये।

सनकस्तृप्यताम्।

ॐ सनातनस्तृष्यताम्। ॐ कपिलस्तृष्यताम्। ॐ आसुरि-ॐ भनुष्याचां कव्यवाहस्तृष्यताम्। ॐ अनलस्तृष्यताम्। ॐ सोमानुष्यताम्। ॐ यमस्नृष्यताम्। ॐ अर्थमा तृष्यताम्। तदनन्तर प्राचीनायीती होकर अर्थात् दाहिने कंभेपर

यज्ञोपवीत धारणकर अधीलिखित मन्त्रोंसे तर्पण करे-ॐ अग्निष्याताः पितरस्तृप्यन्ताम्। ॐ सोमपाः पितरस्तृष्यन्ताम्। ॐ बर्हिषदः पितरस्तृष्यन्ताम्। ॐ यमाय नमः। ॐ धर्मराजाय नमः। ॐ मृत्यवे नमः। ॐ अन्तकाय नमः। ॐ वैवस्वताय नमः। ॐ कालाय नमः। ॐ सर्वभूतक्षयाय नमः। ॐ औदुम्बराय नमः। ॐ दच्नाय नमः। ॐ नीलाय नमः। ॐ परमेष्ठिने नमः। ॐ वृकोदराय नमः। 🕉 चित्राय नमः। ॐ चित्रगुप्ताय नमः। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यनां जगनुष्यतु । ॐ पितुभ्यः स्वधा नमः । ॐ पितामहेभ्यः स्वधा नमः। 🕉 प्रवितामहेश्यः स्वधा नमः। 🕉 मातृश्यः स्वधा नमः । ॐ पितामहीष्यः स्वधा नमः । ॐ प्रपितामहीष्यः स्वधा नमः। ॐ मातामहेभ्यः स्वधा नमः। ॐ प्रमातामहेभ्यः स्वधा नमः। ॐ युद्धप्रयातामहेभ्यः स्वधा नमःः। तृष्यतामिति। अधोलिखित मन्त्रोंका पारायण पितरोंका ध्यान करते

'ॐ उदीरतामवरo','ॐ अग्निरसो न:o', 'ॐ आयन्तु नः०', 'ॐ कर्रं०', 'ॐ पितृष्य०', 'ॐ ये चेह०'तत्पशात् 'ॐ मधुवाताo'इसके बाद 'ॐ नमी व: पितरीo'इत्पादि मन्त्रसे ध्यान करते हुए अधीलिखित मन्त्रसे जल दे— ॐ चितुष्यः स्वधायिष्यः नमः। ॐ पितामहेष्यः स्वधायिष्यः स्वधा नमः। ॐ प्रणितामहेष्यः स्वधायिष्यः स्वधा नमः। ॐ यातामहेभ्यः स्वधा नमः। ॐ प्रमातामहेभ्यः स्वधा नमः। ॐ वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधा नमः। आदिः…। ये चास्याकं कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः। ने तृष्यनु मधा दसं वस्त्रनिष्पीडनोदकम्॥ इस मन्त्रका पाठकर वस्त्रनिष्पीडित जलसे अपने कुलमें उत्पन्न पुत्र-हीनजनोंके लिये तर्पण करे।

(अध्याय २१५)

१-इस अध्यायमें तर्पणको अवस्पकर्तव्यता एवं उसकी दिशाका संकेतमात्र किया गया है। तर्पणक्रम एवं विधिका ब्रान अपनी काखाके ग्रन्थोंसे करना चाहिये। माध्यन्दिन शाखाके लोगोंको 'नित्यकर्य-पूजप्रकाश' (प्रकाशित गौताप्रेस)—से सरलतम प्रामाणिक तर्पणीयिध जान

सनदनस्तृप्यताम्।

बलिवैश्वदेवनिरूपण

ॐ इन्ह्राय स्वाहा। ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ॐ ब्रह्मपो

ब्रह्माजीने कहा-अब मैं वैश्वदेव-बॉलविधिक विधान स्वाहा। ॐ अद्भ्यः स्वाहा। ॐ ओषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा। ॐ यतलाता हैं। यह होमका एक प्रारम्भिक उत्तम स्वरूप है। मुद्धाय स्वाहा। ॐ देवदेवताभ्यः स्वाहा। ॐ इन्हाय स्वाहा। ॐ पहले अग्निको जलाकर अग्निका पर्युक्षण करे, तदनन्तर इन्द्रपुत्रबंध्यः स्वाहा। ॐ यमाथ स्वाहा। ॐ यमपुरुषाय स्वाहा। 'ॐ कव्यादमन्ति०' इत्यादि मन्त्रसे अग्निके लिये कुछ ॐ सर्वेध्यो धृतेध्यो दिवाचारिध्यः स्वाहा। ॐ वसुधापितृध्यः हव्यांशका परित्याग करे। इसके बाद 'ॐ पावक वैश्वानर०' स्वाहा — इन मन्त्रोंसे अग्निमें आहुति दे। तदनन्तर 'ॐ ये प्रत्यको पढ़कर अग्निका आवाहन को और 🕪 प्रजापतये भूता' प्रचरनिक' का पात करते हुए बलि और पुष्टि प्रदान स्वाहा। ॐ सोमाय स्वाहा। ॐ मृहस्थतये स्वाहा। ॐ अन्तियोमाध्यां करनेको प्रार्थना करे। अन्तमें 'ॐ आचाण्डालपतितवायसेश्यो स्वाहा। ॐ इन्ह्रानिभ्यां स्वाहा। ॐ द्वावापृत्रिवीभ्यां स्वाहा। नमः' इस मन्त्रसे भी काक आदिको बलि प्रदान करे'। (अध्याय २१६)

संध्याविधि व

श्रीवद्याजीने कहा—अब द्विजातियोंके लिये संध्या-विधिका वर्णन करता है। सर्वप्रथम इस मन्त्रसे बाह्य तथा आध्यन्तर शुद्धि करे-

३५ अपवित्रः पवित्रो ना सर्वावस्थां गतोऽपि ना। यः स्मोत्पण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः श्रृविः॥ अर्थात् पवित्र हो या अपवित्र किसी भी अवस्थामें क्यों न हो, पुण्डरीकाक्ष भगवान विष्णुका स्थरण करनेसे बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकारकी सुद्धि हो जाती है।

उपनयन-संस्कारके समय जिस गावत्रीमन्त्रका उपदेश प्राप्त होता है, उसीका जप संध्योपासनमें होता है उपनयनकालमें गायत्रीमन्त्रका विनियोग इस प्रकार होता है—'ॐ गायत्री छन्दः, विद्यापित ऋषिश्चिपात्, सपुताः कृष्टिः, चनादित्यी लोचनी, अग्निमृख्यम्, विष्णुहेदयम्, ब्रह्मरुडी शिर:, रुद्र: शिखा उपनयने विनिधीग: '।

संध्योपासनके समय गायत्रीमन्त्रके जपसे पहले 'ॐ भू:' से पैरमें, 'ॐ भूव:'से जानुऑमें, 'ॐ स्व:' से हृदयमें, 'ॐ मह:' से सिरमें, 'ॐ जन:' से शिखामें, 'ॐ तप:' से कण्ठमें और 'ॐ सत्यम्' से ललाटमें न्यास करना चाहिये। आगेके मन्त्रोंसे इदय, सिर् शिखा, कवच, अस्त्र आदिमें न्यास करे— ॐ इट्याय नम:, ॐ भ्:

शिरसे स्वाहा, ॐ भुवः शिखापै बीबद्, ॐ स्वः कषवाप हम् ॐ भूर्धवः स्वः अस्वाय फट्। इसके बाद ॐ भूः, 🕰 भूकः इत्यादि सप्तब्याइतियोंके साथ गायत्रीके तृतीय पाद 'ॐ आयो ज्दोती रसोऽमृतम् भूर्भुवःस्वरोम् का जय करते हुए प्राणायाम करे। प्राणायामके बाद 'ॐ सूर्वक्षः इस मन्त्रसे प्रात:कालको, 'ॐ आप: पुनन्तु०' इस मन्त्रसे मध्याहकालको तथा 'ॐ अग्निश्चo' इस मन्त्रसे सायंकालीन संध्यामें आचमन करे। तत्पक्षात् आवाहनपूर्वक भगवती गायत्रीके प्रात: मध्याह तथा सार्य-स्वरूपोंका ध्यान करे। फिर 'ॐ आपी हि हा मयोध्व:०' और 'ॐ सुमित्रिया न आप:०' एवं 'ॐ हुपदादिव०' इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा जलसे मार्जन को और 'ॐ ऋतं च सत्यं०' इस मन्त्रसे अधमर्थण करे। तदनन्तर गायत्रीजपसे पूर्व गायत्रोमन्त्रका विनियोग इस प्रकार करे- 'ॐ गायत्र्या विश्वामित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः'। 'ॐ उद्ग त्यं जातवेदसंo', 'ॐ चित्रं देवागांo', 'ॐ तच्चह्र:०'-ये सूर्योपस्थानके मन्त्र हैं। गायत्रीका जप करनेके अनन्तर'ॐ विश्वतश्चक्ष्ण' 'ॐ देवागातु०' तथा ' 🚁 बत्तरे शिखोरु 'इन मन्त्रोंसे जपसमर्पणपूर्वक गायत्रीदेवीका विसर्जन करे। (अध्याय २१७)

१-ये भुता: प्रचरित दोनाळ निमिहनो भुवनस्य मध्ये। तेभ्यो बलि पुष्टिकामो ददामि मयि पुष्टि पुष्टिपतिर्दधातु।। (२१६। २)

२-इस अध्यापमें बॉलवेश्वदेवको विधि अन्य शाखाके अनुसार है। माध्यन्तिन शाखाके लोगोंके लिये 'पारस्करगृह्यसूत्र'के अनुसार सॅक्षिपा एवं प्रामाणिक 'बलिवैश्वदेवविधि' गीताप्रेससे प्रकाशित 'नित्यकर्म-प्रवादकाश'में इष्टब्य है।

३-इस अध्यायमें संध्याको विधि अस्पना संक्षित दो गयी 🐉 जत: साविधि विस्तारपूर्वक "संध्योपासनविधि" जाननेक लिये गौताप्रेससे प्रकाशित 'नित्यकर्म-पृजाप्रकाश' पुस्तक देखना चाहिये।

पार्वणश्राद्धविधि

श्रीब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! अब मैं ब्राद्धविधिका बैटाकर निम्नलिखित मन्त्रका तीन बार जप करे— वर्णन करता है। इस विधिके अनुसार पितरोंका ब्राट करनेसे भोग एवं मोक्षकी प्राप्ति होती है। ब्राद्धकर्त ब्राद्धके एक दिन पहले ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। ब्राह्मचारीको निमन्त्रित करनेसे विशेष फल होता है।

सव्य होकर देवताओं (विश्वेदेवों)-को एवं अपसव्य होकर पितरोंको निमन्त्रित (आवाहित) करे। बादकर्ता 'ॐ स्वागतं भवद्धः '(भवद्धिः स्वागतं स्वीक्रियताम्) आपलोग भेरा स्वागत स्वीकार करें-यह निवेदन विश्वेदेवों एवं पितरोंसे करे। तदननार 'ॐ सस्वागतम्' इस प्रकार विश्वेदेवों एवं पितरोंके प्रतिनिधि ब्राह्मण बोलें। बादकर्ता 'ॐ विश्वेष्यो देवेष्य एतत्पादीदकमध्ये स्वाहा' कहकर देव-ब्राह्मणोंके चरणोंगर देवतीर्थसे समूल कुताकि सहित जल प्रदान करे। यह कुश द्विगुणभूगन (फ्तिरॉकि कार्यके लिये विहित मोटक) - रूपमें नहीं होना चाहिये। इसके बाद दक्षिणाभिमुख होकर दाहिने कंधेपर वज्ञोपवीत रखकर (अपसव्य होकर) पिता, पितामहके नाम, गोत्रका उल्लेख करते हुए 'ॐ एतत्पादोदकमध्यं स्वधा' इस मन्त्रसे पितरीके प्रतिनिधि ब्राह्मणोंके चरणोंमें पितृतीर्थसे द्विगुण-भूग कुक्त (मोटक) एवं पुष्पसहित जल प्रदान करे।

इसी प्रकार मातामह आदिके लिये उदिष्ट ब्राह्मणेकि चरणोंमें पादोदक और अर्घ्य समर्पित करे। इसके बाद 'ॐ एतदाचमनीयं स्वाहा' कहकर बाह्मणके हायमें जल एवं ' के एव बोडच्यी: ' मन्त्रसे अर्घ्य तथा पुष्प दे। तत्पक्षात् ' के सिद्धमिद्यासनम्' से (सिद्धमिदमासनं गृह्यताम्)— आसन सम्पन्न है, कृपया ग्रहण करें-ऐसा निवेदन करे। 'ब्रह सिद्धमिद्रमासनम्।' (यहाँ हम लोगोंके लिये आसन सम्पन है) ऐसा कहकर प्रतिनिधि ब्राह्मण प्रतिवचन दें।

इसके बाद 'ॐ भू:', 'ॐ भूव:'इत्यादि समव्याइतियाँका पाठकर देव-ब्राह्मणको पूर्वमुख और पितृब्राह्मणको उत्तरमुख

🕉 देवताभ्यः पितुभ्यञ्च महायोगिभ्य एव च। नमः स्वधार्यं स्वाहार्यं नित्यमेव भवन्त ते॥ (21399)

तदनन्तर मास, पक्ष, तिथि, देश तथा पिता, पितामहका नाम एवं गोत्रका उच्चारण कर 'विश्वेदेवपूर्वक शास्त्र करियो' यह संकल्प करे तथा 'ॐ विश्वेश्यो देवेश्यः स्वाच 'का उच्चारण करे। इसके बाद 'ॐ विश्वेदेवानावाहविषये' में प्रार्थना करके 'ॐ आबाहय' के द्वारा बाह्मणकी आजा प्राप्त होनेपर 'ॐ विश्वेदेवा०', 'ॐ ओवधय:०' एवं---आगच्छन महाभागा विश्वेदेवा ये अत्र विडिताः शाद्धे सावधाना भवन्तु ते॥

(01355)

 इत्यादि मन्त्रोंसे ब्राद्धकर्ता विश्वेदेवीका आवाहन करे तथ्य 'ॐ अधहतासुरा रक्षा रसि खेटिबट: - मन्त्रका तीन बार उजारणकर यव बिखेर। बाद्यकर्ता 'ॐ पात्रमहं करियो इस बाज्यसे अनुजा प्राप्त करे तथा 'ॐ कुरुष्व' इससे बाह्यजोंक द्वारा अनुसात होकर अग्रभागसे युक्त यो कुश ग्रहण करे। एक ग्रादेश' (लम्बे) कुशके दो पत्रोंको लेकर 'ॐ पवित्रे स्वो वैष्णव्यौo' आदि मन्त्रसे दूसरे कुशपत्रके द्वारा उसका छेदन करे। इसके बाद 'ॐ विष्णुमंत्रसा पुतेस्थ से उन दो कुशपत्रोंका अध्यक्षण कर इसरे कुशपत्रके द्वारा त्रिवेष्ट्रनपूर्वक उसे अर्घ्यपात्रमें स्थापित करे। तत्पशात् 'ॐ हां नी देवीर्रास्कृष**ः 'से उस पात्रमें जल तथा 'ॐ यवो**ऽसि० इत्यादि मन्त्रसे जौ एवं 'ॐ गन्धद्वारां द्रसधर्षां०' से उसी पात्रमें चन्दन प्रदान करे। फिर 'ॐ या दिव्या आप पर्यसा०' इस मन्त्रके पाठके साथ 'ॐ एकेऽघी नमः' से बाह्यगाँक हाथमें अर्घ्यपात्रसे जल दे।

तदनन्तर श्राद्धकर्ता अर्घ्यपात्रस्य अवशिष्ट संस्रवजल और पवित्रकको ग्रहणकर (अर्घ्यपात्रमें रखकर) ब्राह्मणके

१-श्राद्ध दो प्रकारका होता है— सपात्रकबाद्ध तथा अन्तत्रकबाद्ध। सपात्रकबाद्धमें विश्वेदेव एवं पितरोंके रूपमें साधात् बाह्मणोंको ही आसनपर बिठाकर समस्त श्रद्धविधि सम्पन्न को जाती है। यहाँ इसी सनाजकश्रद्धको विधिका निर्देश किया गया है। ऐसे श्रद्धके लिये पूर्ण साल्विक, जाति, जिह्या, तप आदिकी दृष्टिसे अति पवित्र एवं उत्कृष्ट ब्यायन हो उत्तरेय है। कलियुगमें ऐसे ब्राह्मण दुर्लभ हैं। इसीलिये अपात्रक श्रद्ध ही वर्तमानमें किया जाता है। अपातकश्रद्धमें साधान बाह्यन जासनपर नहीं किछाये जाते हैं। विश्लेदेव एवं पितरोंके आसनीपर उनके प्रतिनिधिरूपमें कुश (दण्ड-विधान त्रिकुश, परवेल एवं मोटक) हो त्या जाता है।

२-ऑगुटे और तर्जनीको पूरा फैलानेपर बीचकी दूरीको प्रादेश कहते हैं।

दक्षिणपार्श्वमें रखे और अध्येपात्रको ऊर्ध्वमुख कुत्राके ऊपर मातामहादिके लिये भी अनुज्ञापनादि कर्म करे। 'ॐ या स्थापित करके उसमें जल तथा पवित्रक भी (जो ब्राह्मणके दक्षिणपार्श्वमें रखा था) रख दे।

तत्पश्चात् 'ॐ विश्वेष्यो देवेष्य एतानि गन्धपुष्पभूपदीप-वासोयुग्मयज्ञोपवीतानि नमः' से विश्वेदेवोंको गन्वादि प्रदानकर समर्पित गन्ध आदिकी पूर्णताको कामना 'गन्धादि-दानपच्छिद्रमस्त्-कहकर करे। विश्वेदेविक प्रतिनिधि बाह्मण 'ॐ अस्त' से समर्पित चन्द्रनादिकी परिपूर्णता स्वीकार करे। ऋत्विक ब्राह्मण 'ॐ अस्तु'से प्रत्युत्तर दे। खद्धकर्ता 'पितपितामहप्रपितामहानां मातामहप्रमातामहपुन्दप्रमातामहानां सपश्रीकानां आद्धमहं करिथ्ये 'ऐसा कहकर पितरीक श्राद्धको अनुजा माँगे। बाह्मणाँके द्वारा 'करुष्य' इस बाक्यसे अनुजात होनेपर 'ॐ देवताध्य: पितृध्यश्च०' मन्त्रका तीन बार जय करे।

तदनन्तर पित्रादि एवं मातामहादिका नाम, गोडका उल्लेख करते हुए 'इदमासनं स्वधा' पदसे बाह्यणीक वामपाश्रेमें आसन दानकर 'ॐ पितृन् आवाहपित्र्ये' से ब्राह्मणींसे अनुजाकी प्रार्थना करे और 'ॐ आबाहय' इस वाक्यसे बाह्यणोंके द्वारा अनुपात होकर 'ॐ उशनस्त्वा॰' एवं 'ॐ आयान्त नः पितरः॰' इत्यादि मन्त्रीसे पितराँका आवाहन करे। 'ॐ अपहतासूरा रखाःसि बेदिषदः' मन्त्रसे तिलका विकरण करे। पूर्वकी भौति क्रमसे स्थापित अर्ध्यपत्रमें उदक दे तथा 'ॐ तिलोऽसि सोमदेवल्यो० आदि मन्त्रोंसे तिल-दान करे।

इसके बाद दोनों हाथसे गन्ध, पुष्प प्रदानकर पितृपातको उठाकर 'ॐ या दिख्याo' इत्यादि मन्त्रका पाठ करके अन्तमें पित्रादिका गोत्र, नामका उल्लेख कर 'एव तेऽर्घ्यः स्वधा' से पवित्रीके साथ अर्घ्यपात्रको ग्रहण करनेके बाद वामपाश्रमें कुशाके ऊपर 'ॐ पितृष्य: स्वानमसि' मन्त्रसे अधोमख अर्ध्यपात्रको स्थापित करे, फिर 'ॐ शुन्धनां लोकाः पितुसद्नाःo' का पाठकर उस अधोमुख पात्रका स्पर्श करना चाहिये। इसके बाद पितृतीर्थसे पित्रदिके आसनपर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप वस्त्रयुग्म एवं यज्ञोपवीतादि देकर गोजनामीच्यारणपूर्वक सपत्नोक पितु, पितामह एवं प्रपितामहको गन्धपृष्यधूपदीपवासोयग्मसोत्तरीययज्ञोपवीतानि वः स्वधा' इस वाक्यको पडकर पितृतीर्थसे जल छोडे। 'गन्धादिदानम् अक्षय्यम् अस्तु' ऐसा श्राङकर्ताके कहनेपर 'संकल्पसिद्धिरस्त' इस प्रकार ब्राह्मण कहे। इसी प्रकार

दिख्या॰ इस मन्त्रसे भूमिका सम्मार्जन करे। तदननार पुर्वामित्रित अत्र ग्रहणकर सब्य होकर 'ॐ अग्नी करणमहं करिच्ये' द्वारा पितृबाहाणकी सेवामें अनुजाकी प्रार्थना करे। 'ॐ कुरुष्ण' इस वाक्यसे ब्राह्मणके द्वारा अनुजात हो, 'ॐ अग्नचे कव्यवाहनाच स्वाहा' मन्त्रसे पिवरोंके प्रतिनिधि बाह्मणके हाथमें दो आहुति प्रदान करे। अवशिष्ट अन्न पिण्डार्थ स्थापित करके अन्नका आधाभाग पित्रादिके पात्रमें और मातामहादिके पात्रमें सगरित करे।

इसके बाद जलपात्र मुद्रादि दक्षिणास्थापनपूर्वक भोजनपात्रके ऊपर कुशदान कर अधोमुख दोनों हाथाँके द्वारा भोजनपात स्पर्श करे। '३० पृथिबी ते पार्श्र०' इत्यादि मन्त्रपाठपूर्वक इस पात्रको अधिमन्त्रितकर उसपर अल परोसते हुए 'ॐ इदं विच्छार्वि चक्रमे॰' मन्त्रका पाठ करे। 'विष्णो हज्यं रक्षस्व' सं अन्नके मध्यमें अधोमुख अंगुष्ठसे स्पर्त करके 'ॐ अपहतासरा रक्षार्रास बेदिषदः' मन्त्रसे तीन बार जी एवं 'ॐ निहम्मि सर्वo' से पीली सरसोंका विकरण करना चाहिये। तदननार 'ध्रिरलोखनसंत्रकेध्ये देवेच्य एतदनं सपूर्व सपानीयं सब्यञ्जनं स्वाहा' कहकर विश्वेदेवोंको अन्न निवेदन करते हुए उसके ऊपर सजल कुशपत्र रखकर ब्राद्धकर्ता 'ॐ अब्रियदम् अक्षम्यम् अस्त् ऐसा उच्चारण करे एवं निमन्त्रित ब्राह्मण 'ॐ सङ्करपसिद्धिरस्त इस प्रकार कहें।

तत्पक्षात् अपसव्य होकर पित्रादि-पात्रमें व्यक्तनसहित घो मिले हुए अञ्चलो परोसकर उसके ऊपर भूमि-संलग्न कराका स्थापन कर दोनों उत्तान हाथोंसे भोजनपात्र स्पर्श करते हुए 'ॐ पृथिवी ते पात्रंe' मन्त्रका पाठ करे।'ॐ इट विष्णुर्वि सक्रमे॰' एवं 'ॐ विष्णो: कव्यं रक्षस्व'इन मन्त्रोंसे समर्पित अन्नमें अंगृष्ठका स्पर्श करे। 'ॐ अपहतासुर रक्षाःसि बेटिषदः' से अत्रके ऊपर तिल फैलाकर पृथ्वीपर यार्थं घटना टिकाकर 'अमकगोत्रेभ्यः अस्मत् पितृपितामहेभ्यः सफ्तीकेभ्यः एतद्रत्रं सप्तं सपानीयं सव्यञ्जनं प्रतिषिद्धवर्जित स्वधा' इत्यदि वाक्यसे सपत्रोक पिता-पितामहादिको नाम-गोत्र-उच्चारणपूर्वक अज्ञका निवेदन करे। अज्ञका संकल्प करके 'ॐ कर्ज बहुनीरमुतं०' मन्त्रसे दक्षिणमुख होकर जलको धारा प्रदान करे। 'ॐ आद्धमिदमच्छिद्रमस्तु एवं

ॐ सङ्करपरिरद्धिरस्तु'—इन दोनीं मन्त्रोंका पाठकर 'ॐ करे। प्रश्चालित पिण्डजलसे 'ॐ अमुकगोत्र अस्मत्पितः०' भूभंव: स्व:o'- इस व्याहति-मन्त्रसे युक्त गायत्रीका उच्चरण कर विसर्जन करे। तदनन्तर 'ॐ मधुवाता॰' मन्त्रका पाठकर तीन बार 'मध्' शब्दका उच्चारण करना चाहिये।

इसके साथ 'यथासुखं वाग्यता जुक्छ्वम्' का पाठकर ब्राह्मणोंके भोजन करते समय भक्तिपूर्वक 'सप्तव्याधा०' इत्यादि पितृस्तोत्रका पाठ करें। इसके बाद 'तृष्यस्व' इस वाक्यका उच्चारण कर दक्षिणाभिमुख अपसञ्य होकर 'ॐ अग्निदग्धाश्चव"' मन्त्रको पढकर भूमिमें कुशके ऊपा घीके साथ जलयुक्त अनको विकरित करे।

तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको मुखप्रकालनके लिये जल देकर प्रणवपूर्वक व्याहतिके साथ गायत्री तथा 'ॐ मधुवाता०' इत्यादि मन्त्रोंका पाठकर मधु शब्दका तीन बार उच्चारण करे। 'ॐ रुचितं भवद्भिः' यह कहकर देव-ब्राह्मणीसे विनग्रभावपूर्वक भोजनके रुचिपूर्ण (स्वादिष्ट) होनेका प्रस्त करे। देव-ब्राह्मणोंके द्वारा 'सुरुचितम्'यह उत्तर देनेपर 'ॐ शेषमञ्जम्' यह विनम्रतासं प्रश्न करनेपर बाह्यज 'ॐ इष्टैः सह भोजनम्' अर्थात् इष्टजनोंके साथ आप भी भोजन करें-यह प्रत्युत्तर दें। तदनन्तर वामोपवीती (अपसस्य) होकर पित्रादि बाह्मणींसे 'ॐ तृप्ताः स्व' यह जिजासा करे और उनके द्वारा 'ॐ तृष्ताः समः' इस वाक्यसे अनुज्ञान होकर भूमिका अध्यक्षण और चतुष्कोण मण्डल बनाकर उसमें तिल विकरित करे। 'ॐ अमुक्रयोत्र अस्मिरिक: अमुकदेवशर्मन् सपत्नीकः एतने पिण्डासनं स्वधा' ऐसा कहकर पिण्डके लिये आसन दे और रेखाकरण करे। सप्रणव तथा व्याइतिके साथ गायत्रीमन्त्र और 'ॐ पशुवाता०' आदि मन्त्रका पाठकर तीन बार 'मध्' शब्दका उच्चारण अमुकगोत्र अस्मत्यितः । इत्यादि नाक्यसे कुत्रोंके उत्प पिता आदिके लिये पिण्ड प्रदान करे। पुन: रेखामध्यमें प्रीयन्ताम्'इस वाक्यसे (पिण्डाधार कुशमें) हाथका मार्जन

इत्यादि वाक्यसे जलहारा पिण्डसेचन कर पिण्डपात्रको अधोमुख करके कृताञ्जलिपूर्वक 'ॐ पितरो मादयध्यं०' मन्त्रका जप करे। तत्पद्यात् जलस्पर्श करते हुए वामावर्तसे उत्तरमुख होकर प्राणवायुका तीन बार संयम करके 'ॐ बहुभ्य ऋतुभ्यो नमः' इस मन्त्रका पाठ करे।

> इसके बाद बामावर्तसे दक्षिणमुख होकर भोजनपात्रमें पुष्प तथा 'अक्षतं चारिष्टं चास्तु०' से अक्षत दे। 'अमी मदनः पितरो यद्याभागमावृषाविषतं इस मन्त्रका पाठ करते हुए वस्त्रको शिधिलकर अञ्चलि बनाकर 'ॐ नमी व: चित्रसे नमो व:o' इस मन्त्रका पाठ करे। तत्पशात् 'गृहाब्र: पितरो दत्त'इस मन्त्रसे गृहका निरीक्षण करे। 'सदा वः पितरे देषाः' इस मन्त्रसं निरीक्षणकर 'एतद्वः पितरो वास: पह मन्त्र पढ़कर 'अमुक्तगोत्र पित: एतमे वास: म्बचा' वाक्यमे पिण्डपर मुत्रदान करे।

तदननार बायें हाथसे उदक्षपात्र ग्रहणकर 'कर्ज बहुनी०' मन्त्रसे पिण्डके ऊपर जलधारा देकर पूर्वमें स्थापित अर्घ्यपात्रके बचे हुए जलसे प्रत्येक पिण्डका सेवन करे। फिर पिण्डाबाहनपूर्वक पिण्डोंके ऊपर गन्ध और कुशदानकर 'अक्षप्रमीमदन्तः' इत्यादि मन्त्रका तीन बार पाठ करे। मातामहादिके प्रतिनिधि ब्राह्मणोंको आचमन कराये। 'ॐ सुप्रोक्षितमस्तु' इस वाक्यसे श्राद्धभूमिका भलोभीति अभ्युक्षणकर 'अर्था मध्ये स्थिता देवा सर्वमप्त् के उच्चारण करके 'शिवा आप: सन्तु' कहकर ब्राह्मणॉके हायमें जल दे। 'लक्ष्मीर्वसतिo 'आदिका पाउकर 'ॐ सौमनस्यपात्' यह मन्त्र पदकर ब्राह्मणोंके हाथमें पुष्प समर्पित करे। इसके बाद 'अक्षतं चास्तु०' इत्पादि करते हुए घृतयुक्त अन्नसे पिण्डका निर्माण कर 'ॐ मन्त्रका पाठकर 'अक्षतं चारिष्टं चास्तु' यह कहते हुए यव और तण्डुल भी ब्राह्मणीके हाधमें दे। तदन-तर 'अपुकगोत्राणायस्यत्यनुपितामहप्रपितामहानां सपत्रीकाना-पहलेके समान पितामहको पिण्डदान तथा व्याइतिपूर्वक मिदमन्त्रवानादिकमक्षय्यमस्तु' इस वाक्यसे पित्रादि ब्राह्मणके गायत्री और 'मधुबाताo'का तीन बार जप करके पिण्डके हाथमें तिल और जलका दान करे। ब्राह्मण 'अस्तु' कहकर समीपमें शेषालका विकरण करके 'ॐ लेक्भुज: पितर: प्रतिवचन बोलें। इसी क्रममें मातामह आदिको अक्षत आदि दानकर उनसे आशीर्षादकी प्रार्थना करे। तत्पश्चात्

१-सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालक्षरं गिरौ।चक्रवाकाः शरद्वेपे हंसाः सरीम मानसे। तेऽभिज्ञताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा चेदपारगाः।प्रस्थिता दूरमध्यानं यूवं किमक्सीदय॥(२१८)२०-२१)

२-अग्निदम्बाश ये जीवा येऽप्यदम्बाः कुले यम।धूमौ दत्तेन तृष्यन्तु तृष्या यानु पराङ्गतिम्। (२१८।२२)

'ॐ अधोरा: पितर: सन्तु', 'गोत्रं नो बर्द्धतां०', 'दातारो नोऽभिवर्द्धनां०' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे।

श्राद्धकर्ता 'सीमनस्यमस्त' इस वाक्यका उच्चरण करे। ब्राह्मण 'अस्त्'यह कहें। तदनन्तर दिये गये पिण्डोंके स्वानमें अर्घ्यपात्रोमें पवित्रकोंको छोड दे। बादमें कुरानिर्मित पवित्रक लेकर उससे पितरोंके प्रतिनिधि ब्राह्मणोंका स्पर्शकर 'ॐ स्वर्धा वाचिष्ये' इस वाक्यमे स्वधायाचनकी आजा प्राप्त करे। ब्राह्मजोंके द्वारा 'ॐ वाच्यताम्' इस वचनमे अनुजात हो श्राद्धकर्ता 'ॐ पितृपितापहेश्यो यचानामशर्मभ्यः सपत्रीकेभ्यः स्वधा उच्यताम्' ऐसा कहे। तदनन्तर बाह्यन 'अस्त स्वधा' का उच्चारण करें।

श्राद्धकर्ता 'अस्त स्वधा' इस वाक्यमे अनुसार हो 'कर्ज बहनीरमुतंo' इस मन्त्रसे पिण्डके कपर जलवारा दे। फिर ' ३६ विश्वेदेवा अस्मिन् यहे प्रीयनाम्' से देव-ब्राह्मणीके हाचमें यव और जल प्रदान करे। 'ॐ प्रायनाम्'इस वाक्यमे बाह्यन्द्वारः पितरोंको अक्षय स्वर्ग एवं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती हैं'। अनुजात होकर 'ॐ देवलाभ्य:o' मन्त्रका तीन बार जप करे। (अध्याय २१८)

अधीमुख होकर पिण्डपात्रको हिलाकर आचमनपूर्वक दक्षिणोपवीती (सव्य) होकर पूर्वाधिमुख 'ॐ अमुकगोत्राय अमकदेवशमंगे॰' इत्यदि मन्त्रसे देव-ब्राह्मणको दक्षिणा दे। तत्पक्षात् पितु-ब्राह्मणोकी सेवामें 'ॐ पिण्डाः सम्पन्नाः यह निवेदन करनेपर 'ॐ सुसम्पन्नाः' इस प्रकार ब्राह्मणसे अनुज्ञात हो पिण्डके ऊपर श्राद्धकर्ता दुरम्भारा प्रदान करे। फिर पिण्डको हिलाकर पिण्डके समीप रखे अर्घ्यपात्रको सीधा स्थापित कर दे। इसके बाद 'ॐ बाजे वाजे॰' मन्त्रसे पिन्हके अधिष्ठाता पितरोंका विसर्जन करे। 'आमा बाजस्य०' आदि मन्त्रसे देव तचा 'अधिसम्बताम्' से पित्-ब्राह्मणका विसर्जन करके ब्राह्मणसे अनुज्ञा प्राप्तकर गौ आदिको पिण्ड प्रदान करे। इस प्रकार यहाँ श्राद्धविधि बतलायी गयी। इसका पाट करनेमात्रसं भी पापका नाश होता है। किसी भी स्थानमें उक्त विधिके अनुसार बाद्ध करनेपर

नित्यश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध एवं एकोहिप्टश्राद्धका वर्णन

श्रीब्रह्माजीने कहा-अब मैं तित्पवादका वर्णन करता है। पूर्वमें जिस तरह ब्राद्धविधि कही गयी है, उस विधिके अनुसार ही नित्यनाद्ध करे। विशेषता यह है कि नित्यश्राद्धमें 'ॐ अमुकगोत्राणामस्मत्यित्रियतामहानाम् अमुकशर्मणां सपत्रीकानां श्राद्धं सिद्धान्तेन युष्पास्वतं करियो' ऐसा कहकर ब्राद्धका संकल्प करना चाहिये। आसन-दानादि सभी कार्य पूर्ववत करे। इस ब्राइमें विश्वेदेव वर्जित हैं।

अब मैं वृद्धिश्राद्धका विधान मतलाता हूँ। वृद्धिश्राद्धमें भी श्राद्धकी ही भौति प्राय: सभी कार्य करना चाहिये। इसके अतिरिक्त जो विशेष हैं, उसे कहता है। पैदा हुए पुत्रके मुखको देखनेके पहले वृद्धिबाद्ध करना चाहिये। यह श्राद्ध पूर्वाभिमुख और दक्षिणोपबीती (सञ्य) होकर यब,

बेर, कुश, देवतीर्थके द्वारा नमस्कार तथा दक्षिणा आदि उपचारपूर्वक करे।

दक्षिण जानुको ग्रहण कर विश्वेदेवोंका ब्राह्मणोंमें आवाहन करे। आमन्त्रणसे पूर्व ब्राह्मणोंसे अनुजा प्राप्त करनेके लिये इस प्रकार ब्राह्मणींसे निवेदन करे-अपने कुलके अमुकको उत्पत्तिके शुभ अवसरपर अपने पितृपक्ष एवं मातृपक्षके पितरोंका बाद्ध करनेके लिये वसू, सत्य नामके विश्वेदेवोंका आप लोगोंमें आवाहन कर सिद्ध अन्तसे उनका ब्राद्ध करना चाहता है। ब्राह्मणेंकि द्वारा अपनेमें विश्वेदेवींके आवाहनकी आज्ञा मिलनेपर उन ब्राह्मणोंमें वस्, सत्य नामके विश्वेदेवींका आवाहन करना चाहिये। (यहाँ मूल ग्रन्थके अनुसार संस्कृतवाक्योंका ही प्रयोग होना चाहिये।) इसी प्रकार अन्य ब्राह्मणॉर्मे पितरींका

१-इस अध्यायसे पार्वणश्राद्ध करनेको प्रेरणा प्रहण करनी चाहिये। ब्राह्यको विधि, सम्पूर्ण मन्त्र एवं क्रमका ज्ञान श्राद्धको पद्धितयोंसे करना

२-इस श्राद्धको माङ्गलिक, आध्युरियक तथा नान्दीमुखनाद्ध भी कहते हैं।

५-जानु जहाको कहते हैं। बार्षे उद्धेको मोडकर और दाहिने बहुंको क्रमकर बैठनेसे दाहिने बहुंपर दाहिना हाथ होता है। यहाँ इसी आसमसे तात्पर्व है।

आगतः 'इत्यादि मन्त्रसे वसु तथा सत्य नामवाले विश्वेदेवींका चाहिये। इसमें विशेष यह है कि प्रथम ब्राह्मण-निमन्त्रण, आबाहन कर उन्हें आसन तथा गन्धादि दानकर पादप्रश्वालन, आसनदान करके 'अद्य अमुकगोत्रस्य 'अच्छित्रावधारण'' का वाचन करे। इसके बाद प्रपितामही आदिका अनुजापन, आसनदान, गन्धादि-दान और अच्छिद्रावधारण-वाचन करना चाहिये।

इसी प्रकार पितामही, माता और प्रपितामहकी अनुजा ग्रहणकर आसन, आवाहन और गन्धादि-दान तथा (यज्ञोपकोत) कण्डमें धरणकर उत्तराधिमुख होकर अतिथिश्राद्ध अच्छिद्रावधारण करके प्रिपतामह एवं वृद्धप्रमातामह आदिकी करे। पितरोंकी तृष्ति जानकर दक्षिणाधिमुख हो वामोपबीती अनुजा ग्रहण कर आसन, आवाहन एवं गन्धादिका दान (अपसध्य) होकर कर्मसे खेवाष्ट्र अवके समीपमें 'अग्निदन्धाश्च० करे। तदननार 'ॐ वससत्यसंत्रकेभ्य:व' इत्यादि मन्त्र पदकर इसी प्रकार पितामही और मातामह, प्रमातामहके लिये अन्नसंकल्पनादि क्रिया करनी चाहिये।

भी आवाहन करना चाहिये। बादमें 'ॐ विश्वेदेवा स एकोहिष्टश्राद्धमें पूर्वके समान सभी कार्य करना मन्दित्रमुकदेवशर्मणः प्रतिसावस्तरिकमेकोश्विश्राद्धं सिद्धान्नेन बुब्बास्वहं करिच्ये' इस संकल्प-वाक्यसे अनुजाग्रहणपूर्वक आसनदान और गन्धादि तथा पक्वात्र प्रदान करना चाहिये।

इसके बाद रुचिर-स्तवादिका पाठकर तथा यहसूत्र इत्यादि मन्त्रसे अत्र विकरण करे। तदननार 'अमुकगोत्र सम्बद्धाः व से सण्डलरेखांके उत्पर जलधारा दे। अन्य कार्य पूर्वक समान ही समझना चाहिये।(अध्याय २१९)

सपिण्डीकरणश्राद्धकी विधि

श्राद्धका वर्णन करता है। मृत्युके सालभर बाद मृत्यु- देवेचात्राच्छिद्रावधारण करे। यथाविधान कार्योको सम्पन्नकर तिथिपर यह ब्राद्ध करना चाडिये। इस ब्राद्धको यद्यासमय पितायह, प्रपितायह, बृद्धप्रपितायहके पात्रोंका क्रमसे संचालन विधिवत् करनेसे प्रेतको पितृलोकको प्राप्त होती है। और उद्घाटनकर 'ॐ ये समाचाः समनसोठ' इत्यादि सपिएडीकरणबाद्ध अपराक्षमें करना चाहिये, सभी अनुद्धान भन्जोंसे पितृपात्रका जल पितायह और प्रपितायहके पात्रमें प्राय: अन्य श्राद्धोंके समान करे। (इसमें जो विशेष है वहीं छोड़े। बुद्धप्रियामहके पात्रको छोड़कर पितामह, प्रियामहके कहा जा रहा है।) पितामहादिके प्रतिनिधि ब्राह्मजोंको निमन्तित पात्रका जल और पवित्र पितु-पात्रमें निश्चिपा करे। तदनन्तर कर 'ॐ पुरुरवोमाइवसंजकेभ्यो॰' से वामपार्थमें आसन पितृ-ब्राह्मणके हाचमें अर्घ्यपात्रस्थ पवित्रक देकर उसमें रखकर पुरुरवा और माद्रव नामके विश्वेदेवोंका आवाहन स्थित पुत्र्य ब्राह्मणोंके सिर, हाथ और चरणोंमें समर्पित करना चाहिये। 'पितामहप्रपितामहानां॰' इत्यादि वाक्यसे करना चाहिये। इसके बाद बाहाणींके हाथमें जल देकर श्राद्धको पितामह आदिके प्रतिनिधि ब्राह्मणोंसे अनुहा दोनों हाथोंसे अर्घ्यपात्र ठठाकर 'ॐ या दिख्या०' इत्यादि ग्रहणकर तीन पात्र स्थापित करे। उन पात्रीके ऊपर कुश मन्त्रका पाठकर 'अमुक गोत्र मरियतामह०' इस वाक्यसे रखकर दूसरे पात्रसे उन्हें दक दे और आवाहन करे। इसके पितृ-पात्रसे कुछ अर्घ्योदक पितामहके प्रतिनिधि ब्राह्मणके बाद अन्य श्राद्धोंके समान अच्छिद्रावधारणतककी किया हाथमें प्रदान करे तथा पवित्रकके सहित अवशिष्ट कुछ जल करके सपत्नीक पिताको प्रेतपद अन्तमें प्रयुक्तकर उनका नाम पिण्डसंचनके लिये रखकर अन्य पात्रसे आच्छादितकर

श्रीब्रह्माजीने कहा—हे व्यासजी। अब मैं सपिण्डोकरण- उच्चारण करे। ब्राह्मकी अनुजा ले ले। तदननार

१-ऋद्वमें समर्पित वस्तुकी पूर्णताका वचन बादानीसे लेना ही 'अध्विदावधारनवचन' है।

२-इस ब्राह्मका भी यथोचित क्रम एवं विस्तृत विवरण ब्राह्मस्टवियोमें देखना चाहिये।

३-पितरोंके उदेश्यमे की गयी विधिको पूर्णताको प्रार्थना ही 'अच्छिदावधारण' है।

४-अर्ध्यप्रश्ने छिदरहित होनेका निश्चय करना ही 'देवनामान्स्टावधारम' है।

पितृ-ब्राह्मणके वामपार्श्वमें दक्षिणाग्रकुशके ऊपर 'पितृभ्य: से पितृ-ब्राह्मणके हाथमें अक्षय्यदान करके 'उपतिष्ठताम्' स्वानमसि' यह पढ़कर अधोमुख स्थापित करे।

इसके बाद पितामह-प्रपितामह आदिको गन्धादि देकर 'अग्नौकरण' करे तथा अवशिष्ट अत्रको प्रपितामह आदिके पात्रमें डाल दे। इसी प्रकार पितामहादिका पात्राधिमन्त्रणपर्यन्त कर्म सम्पन्नकर ब्राह्मणपात्राभिमन्त्रण, अंगृष्टनिवेशन, तिल-विकरणपूर्वक 'अमुक गोप्र०' इत्यादि वाक्य कहकर युटाक अन्न आदिका निवेदन करे।

तत्पश्चात् देवादिक्रमसे ब्राह्मणके हाथमें जल प्रदान करे. यही 'अपोज्ञन' विधि है। अतिधिक आनेपर अतिधिकाद करते हुए इस समय भी विकरणके लिये अन्न प्रदान करना चाहिये। पितामहादि बाह्मणसे 'ॐ स्वदितं भवद्धिः' से सुतुष्तिकी जिज्ञासा कर संतुष्टिका आधासन प्राप्त करे। 'अमुक गोत्रo' इत्यादि वाक्यमे पिण्डदान और 'पिण्डपात्रमच्छिद्रमस्त्' कहकर सभी कार्पीकी समाध्तिके बाद पिण्डके दो हिस्से कर 'चे समाना: समनस:०' आदि मन्त्रोंका पाठ करे और पितामह, वृद्धप्रपितामह-पिण्डके साथ पिताका पिण्ड मिला दे। पिण्डके ऊपर गन्धादि रखकर पिण्डचालन करना चाहिये। अतिथि और बाह्मणसे स्वदितादि (सुतुष्ति)-का प्रश्न करके ब्राह्मणाँको आध्यमन एवं ताम्बल प्रदान करे।

तदननार यजमान 'सुप्रोक्षितमस्तु', 'शिवा आप: सन्तु'-इन दो मन्त्रोंका उच्चारण करके युद्धप्रियामहादि-क्रमसे ब्राह्मणके हाथमें जल प्रदान करे और 'गोजस्थाक्षण्यमस्त्' आदि वाक्यसे सतिल जल देना चाहिये।

तत्पक्षात् 'अधोराः पितरः सन्तु' इस वाक्यका उच्चारण करनेपर ब्राह्मण 'अस्तु' इस वाक्यसे प्रतिवचन प्रदान करें एवं 'स्वधां वाचिववे' इस पदका उचारण करनेपर ब्राह्मण 'ॐ बाब्धताम्'इस अनुज्ञा-वाक्यसे प्रत्युत्तर दें। 'पितामहादिश्यः स्वधा उच्यताम्' इस प्रकार यजमानके कहनेपर 'अस्त स्वधा' ऐसा ब्राह्मण बोलें। फिर 'पितृश्य: स्वधा उच्यताम्' ऐसा कहकर आजा प्राप्त करे।

तदनन्तर 'ॐ ऊर्ज बहुनी० 'इत्यादि मन्त्रसे दक्षिणाभिमुख होकर जलधारा दे पुन: 'ॐ विश्वेदेवा अस्मिन् यजे प्रीयन्त्रम्' यह मन्त्र पदकर देवब्राह्मणके हाथमें यव और जल देकर 'ॐ देवताभ्य:o' इत्यादि मन्त्रका तीन बार पाठ करे। पिण्डपात्रोंको परिचालितकर आचमनपूर्वक पितामहादि-क्रमसे दक्षिणा दे। पितु-ब्राह्मणसे 'आशियो मे प्रदीयन्ताम्' इस वचनसे अशीर्वादकी प्रार्थना करे। बाह्यन 'प्रतिगृह्यताम्' इस वाक्यसे प्रत्युत्तर प्रदान करें। पुन: 'दातारो नोऽधिवर्धनाम्o' आदि मन्त्रका पाठकर अर्घ्यपात्रको ऊर्ध्वमस्य कर 'बाजे बाजे॰' इत्यादि मन्त्रसे देवबाहाण एवं 'अधिरम्यताम्' इस मन्त्रसे पितृब्राह्मणका विसर्जन करना चाहिये।

हे ख्वास। मैंने आएको सपिण्डीकरणश्राद्धका विधान बताया। ब्राद्ध, श्राद्धकर्ता और ब्राह्मफल-इन तीनोंको विष्णुरूप जानना चाहिये।(अध्याय २२०)

धर्मसारका कथन

विनाश करनेवाले तथा भीग और मोक्ष प्रदान करनेवाले सम्बन्धी एवं बान्धव आदि कर्मके अनुसार ही मिलते हैं।) अतिशय सुक्ष्म धर्मसारको संक्षेपमें कहता हैं, आप सुने। कर्म ही सुख-दु:खका मूल कारण है। (अत: उत्तम कर्म

सर्वतोभावसे शोकका परित्याग करना चाहिये।

कमं ही दारा (स्त्री) है, कमं ही लोक है, कमं ही

श्रीब्रह्माजीने कहा-हे शंकर! अब मैं सभी पापोंका सम्बन्धी है, कर्म ही बान्धव है। (अर्थात् स्त्री, लोक, शोक शास्त्रीय ज्ञान, धर्म, बल, धैर्य, सुख और करनेके लिये सदा सावधान रहना चाहिये।) दान ही उत्साह—इन सबका हरण कर लेख है। अर्थात् शोकके परमधर्म है। दानसे ही पुरुषको सभी अभीष्ट प्राप्त होते हैं। प्रभावसे सभी सात्विक दत्तियाँ विनष्ट हो जाती है। इसोलिये दान ही पुरुषको स्वर्ग और राज्य प्रदान करता है। इसलिये मन्ध्यको दान अवस्य करना चाहिये-टानात्मर्वमखाप्यते । धर्मो

१-आनौकरण- एक विशेष विधि है। इसमें अपसव्य होका जलमें हो आहुति दी जाती है।

२-सपिण्डोकरणबादकी विस्तृत विधि बाद्धपद्धतियोंसे जानना चाहिये। यहाँ संक्षिप्तरूपमें वर्णन है।

दानात्स्वर्गश्च राज्यं च दद्याद्दानं ततो नरः॥

(271 (8)

विधिपूर्वक प्रशस्त दक्षिणांके साथ दान तथा भयभीत प्राणीकी प्राणरक्षा-ये दोनों समान है। यथाविधि तपस्या ब्रह्मचर्य, विविध यह एवं स्नानमें जो पृष्य प्राप्त होता है. वही पुण्य भयभीत प्राणीक प्राणींकी रक्षासे प्राप्त होता है। जो लोग धर्मका नाम करते हैं, वे नरकमें जाते हैं।

जो होम, जप, स्नान, देवतार्चन आदि सत्कार्वमें तत्स रहकर सत्य, क्षमा, दया आदि सदगुणोंसे सम्पन्न रहते हैं. वे स्वर्गगामी होते हैं'। कोई भी किसीको सुख या द:ख नहीं देता है और न किसीका सुख-दु:ख हरण कर सकता है। सभी अपने किये हुए कर्मके अनुसार सुख-दु:खका भोग करते हैं-

न वाता सुखदु:खानां न च हत्तीरित कश्चन। भूकते स्वकृतान्येव दुःखानि च सुखानि च॥

(219914) जो धर्मकी रक्षाके लिये जीवनदान करता है, वह सधी

विषम परिस्थितियाँ (कठिनाइयाँ)-को पर कर जल है। जिनका चित्र सदा संतुष्ट रहता है, वे फल, मूल, शाक आदिके द्वारा जीवनधारण करके भी सुखकी अनुभृति करते हैं— धर्मार्च जीवितं येषां दुर्गाण्यतिकरन्ति ते।

सन्तप्रः को न शक्नोति फलमलैश वर्तितम्॥

(41884) सुखकी लालसामें सभी मनुष्य संबटकी स्थितिमें पहते

हैं। यह लोभका ही परिणाम है, जो अत्यन्त दुष्कर है।

प्रकारके पापोंसे रहित होकर परमलोकको प्राप्त करता है ।

१-ये च होमजपरनारदेवतार्यकात्पराः । सत्यक्षपादपायुकास्ते नग्नः स्वर्गगापितः ॥ (२२१ ।७)

२-लोभाकोभ: प्रभवति लोभाद् होह: प्रवर्ते । लोभान्मोहब माम व यानो मत्सर एव च॥ । यः स शानाः परं लोकं पाति पापविवर्णितः॥ (२२१) ११-१२) रागद्वेषानुतक्रोधलोभमोहमदोष्क्रित:

3-न गोदानात्परे दानं किञ्चिदरशीति में मति: । या गौन्योपानिता दला करूनं तत्पते करूम् a नामदानात्परं दानं किश्चिद्दित वृत्रध्वत । अभेन धावी सर्व बराचरितं ज्ञात् ॥ (२२१) १८-१९)

४-कृपवापीतहागादीनारामांक्षेव कारपेत । प्रिस्टनकसमद्द्याच विष्णुलोके महोचते ॥ (२२१ । २२)

हे महादेव! देवता, मृति, नाग, गन्धर्व, गृहाकगण-ये सभी धार्मिकोंको पूजा करते हैं, धनाद्या और कामी व्यक्तिको अवंता कोई भी नहीं करता है-

देवता मुनयो नागा गन्धवा गृहाका हर। धार्मिकं प्रजयनीह न धनाकां न कामिनम्॥

अनन बल, बीर्य, प्रजा और पौरुषके द्वारा किसी दुर्लभ वस्तुको यदि मनुष्य प्राप्त कर लेता है तो इसके कारण किमीको ईप्यांवश शोकाकल या द:खी नहीं होना चाहिये।

सभी प्राणियोंके प्रति दयाका भाव रखना, सभी इन्द्रियोंका निग्रह करना और सर्वत्र अनित्यबृद्धि रखना यह प्राणियोंके लिये परम श्रेयस्कर है। मृत्यु सामने वर्तमान है, यह समझकर जो व्यक्ति धर्माचरण नहीं करता, उसका जीवन बकरीके गलेमें स्थित स्तनके समान निरर्धक है-

सर्वसन्बद्धपालुलं सर्वेन्द्रियविनिग्रहः। सर्वजनित्ववद्भित्वं क्षेयः परिमर्द स्पृतम्॥

पत्रपत्रिकारतो मृत्य यो धार्ष अज्ञानलस्त्रनस्येव निरर्धकम् ॥ तस्य जन्म

(38-491395)

हे वृषध्कत्र। इस लोकमें गोदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। जो न्यायोपाजित धनसे प्राप्त गीका दान करते हैं. यं अपने सम्पूर्ण कुलको तार देते हैं।

हे वृषध्वत । अत्र दानसे क्षेष्ठ और कुछ भी दान नहीं है; क्योंकि सम्पूर्ण चराचर जगत् अन्नके द्वारा ही प्रतिष्ठित हैं। कन्यादान, वृषोत्सर्ग, जप, तीर्थ, सेवा, वेदाध्ययन, मनुष्यके चित्तमें लोभ उपस्थित होनेसे ही क्रोध उत्त्य हाथी. घोडा. रच आदिका दान, मणिरत और पृथ्वीदान---होता है। लोभके कारण ही मनुष्य हिंसा आदि गर्हित ये सभी दान अनदानके सोलहर्वे अंशकी भी बराबरी नहीं कार्योंमें प्रवृत होता है। मोह, माया, अधिमान, मास्सर्य, राग, कर सकते हैं। अन्नसे ही प्राणियोंके प्राण, बल, तेज, वीर्य, हेष, असत्यभाषण एवं मिध्याचरण—ये सभी लोभसे धृति और स्मृति—ये सभी प्रतिष्ठित रहते हैं। जो कृप, उत्पन्न होते हैं। लोभसे ही मनुष्य मोह और मदसे उत्मन वापी, तहाग और उपवनका निर्माणकर लोगोंकी संतुष्टिके हो जाता है। (इसलिये लोभका परिल्याग करना चाहिये) लिये प्रदान करते हैं, वे अपनी इक्कीस पीदियोंका वो शान्त व्यक्ति लोभका परित्याग करता है, वह सभी उद्धारकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं । साएओंका दर्शन करना अतिशय पण्यदायक है। यह

सभी प्रकारके तीर्थोंसे भी उत्तम है। तीर्थ तो समय आनेपर फल प्रदान करता है, किंतु सञ्चनोंका संग उसी क्षण फल जाम, दया और दान-इनको सनातनधर्म माना गया है-प्रदान कर देता है-

साधुनां दर्शनं पुण्यं तीर्थादपि कालेन तीर्थ फलति सद्यः साध्ययागमः॥

(481189)

सत्य, दम, तपस्या, शीच, संतोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, सत्यं दमस्तपः शीर्षं सन्तोषश्च क्षमार्जवम्। ब्रानं ज्ञामो दया दानमेच धर्मः सनातनः॥

> (38138) (अध्याय २२१)

प्रायश्चित्तनिरूपण, चान्द्रायणादि विभिन्न व्रतोंके लक्षण तथा पञ्चगव्य-विधान

श्रीबद्धाजीने कहा-अब मैं नाकीय पापोंको विनष्ट करनेवाले प्रायश्चित आदि कमौंका वर्णन करूँगा।

मक्खी, जलकण, स्त्री, पृथ्वीपर प्राकृतिकरूपसे एकड जल, अग्नि, बिल्ली और नेवला-ये सदैव पवित्र माने गये हैं। जो द्विज प्रमादवश शुद्रद्वारा उच्छिष्ट (जुँठ) तथा छुआ हुआ भोजन ग्रहण करता है, वह एक दिन-रात्रिका उपवास करके पञ्चगव्यप्राप्तनसे शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण अन्य किसी ब्राह्मणके द्वारा दिन्छष्ट तथा स्पर्श किया हुआ भोजन करता है तो उसे प्रायक्षितके रूपमें हनान, जप तथा पूरे दिन उपवास करके राजिमें भोजन करना चाहिये। मक्खी और केशयुक्त भोजन करनेपर तत्काल 'वयन-किया' करनेसे शुद्धि हो जाती है। जो मनुष्य किसी भोज्य पदार्थको एक इथेलीमें रखकर दूसरे हाचकी एक अंगुली या पूरे हाथसे खाता है और उसके बाद जल नहीं पीठा है तो उसे एक दिन और एक राजिका उपवास करना चाहिये। एक हथेलीमें रखकर दूसरे हाथसे भोजन कर जल भी भी लिया जाय तो और कठिन प्रायक्षित विहित है: क्योंकि ऐसे भोजनमें बिना संकोच पूर्ण संतुष्ट होनेका भाव है। अन्यकके द्वारा उच्छिष्ट भोजन करनेपर द्विज 'चान्द्रायणव्रत' स्पष्ट है। पीनेसे बचे हुए तथा बॉर्ये हाथसे ग्रहण किये गये करनेसे तुद्ध हो जाता है। जब कभी प्रमादवश कोई ब्राह्मण जलका पान करना मदिरापानके समान होता है।

ब्राह्मणको प्राजापत्पव्रत करके प्रायक्षित करना चाहिये। ओ ब्राह्मण घरमें शुद्रके प्रविष्ट होनेपर पक्यानका भीजन करता है, उसे अर्द्धकच्छवत करना चाहिये। अर्धकच्छव्रतके योग्य जो अशुचि है उसके घरमें अन्य कोई ब्राह्मण यदि भोजन करता है तो उसको भी एक चौथाई कृष्णुवतका पालन करना चाहिये।

वो द्विज धोबी, नट एवं बौस और चमडेसे जीवकोपार्जन करनेवालोंके द्वारा अर्जित अन्नका भोजन करता है, उसे चान्द्रायणवत करना चाहिये। चाण्डालके कार्रं अथवा पात्रमें स्थित जलका पान अज्ञानवश भी जो ब्राह्मण कर लेता है, उसे 'सान्तपनप्रत' करना चाहिये। वैश्यके लिये यह प्राथित आधा ही माना गया है। यदि कोई सुद्र उक्त निषिद्ध जलका पान करता है तो उसको तत्सम्बन्धित व्रतका एक चौचाई प्रायक्षित करना चाहिये। अज्ञानवश ब्राह्मणके घर अन्यजके प्रवेश हो जानेपर उस ब्राह्मणको तीन कृष्णुबत करना चाहिये। अन्त्यजके घरमें आ जानेमात्रसे उत्पन्न अपवित्रताका निराकरण पराकव्रतके अनुष्टानसे होता चाण्डालद्वारा दिये गये अनका भीजन कर लेता है तो उसे चमड़ेके पात्रमें रखा गया जल अपवित्र होता है, उसे कान्द्रायण (ऐन्दव)-बत करना चाहिये। ऐसी ही अपवित्रतामें नहीं पीना चाहिये। यदि किसी द्विजके घर अज्ञानवश्च ही श्वत्रियको छ: दिन और वैश्यको दो दिनका सान्तपनव्रत कोई अन्यज निवास कर ले तो उस दिजको मुद्धिके लिये करना चाहिये। यदि प्रमादवश ब्राह्मण और चाण्डाल एक चान्द्रायण अथवा पराकवत करना आवश्यक है। ब्राह्मणके ही वृक्षके नीचे एक साथ फल खा लेते हैं तो वह ब्राह्मण धरमें शुद्रका प्रवेश होनेपर तथा बादमें जानकारी होनेपर एक दिन-रातके उपवाससे शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण

१-इस अध्यायमें जिन वर्तोंकी चर्चा है, संक्षेपमें उनका स्वरूप अध्यापके अन्तमें वर्णित है।

२-उच्छिप्टका अर्थ है— सिद्ध अनमेंसे विकासका हुद्रने पहले भोजन कर लिया है, उसके बादका क्षेत्र अन्न। यहाँ भूणाका भाव नहीं है। पवित्रताकी दृष्टिसे यह एक निष्पक्ष व्यवस्था है।

स्पर्श कर लेता है तो उसे आठ हजार गायत्रो अथवा एक इस जूँडे किये गये कांस्थपात्र दस बार शुद्ध भस्मसे सौ 'हुपदादिवo' मन्त्रका जप करना चाहिये। चाण्डाल मौजनेपर शुद्ध होते हैं। जो ब्राह्मण शुद्रके पात्रमें भोजन कर अथवा श्वपचके द्वारा किये गये विद्या और मूत्रके स्पर्न हो सेता है, वह तीन दिनतक उपवास रखकर पञ्चगव्य-पान जानेपर ब्राह्मणको तीन रातका उपवास करना चाहिये। करनेसे सुद्ध होता है। जो ब्राह्मण उच्छिष्ट पदार्थ या उच्छिष्ट द्विजको अन्यज्ञकी स्त्रीके साथ गमन करनेपर पराकवत प्राजीका स्पर्श करता है अथवा कुत्ते या शुद्रका स्पर्श करना चाहिये। परस्त्रीके साथ बिना कामनाके गमन करनेसे अपवित्र हो गया हो, वह भी तीन दिनके उपवास करनेपर पराकवत करना चाहिये।

करता है, वह कृष्कुपादवत तथा पुन: संस्कारसे शुद्ध होता होती है। बलरहित प्रदेश, चोर और हिंसक व्याग्रादि है। जो ब्राह्मण बन्न (विद्युत्)-पात अथवा अग्नि, वापुके जीवाँसे परिव्याप्त मार्गमें किसी अनुद्ध होनेयोग्य द्रव्यको कारण अकस्मात् उत्पन्न उपद्रवसे ग्रस्त होनेके कारण अपना घर छोड़ने तथा अनपानादिको लेकर किसी अन्यजके धरमें रहनेके लिये विवश होते हैं तो उन्हें तीन कृच्छ और तीन चान्द्रायणवत करना चाहिये। मुनि वसिष्ठने तो उक्त निषिद्ध कर्म करनेपर बाह्यणके लिये पुन: जातकमादि संस्कारोंके द्वारा शुद्ध होनेका विधान बताया है। कोई स्वयं उच्छिष्ट (भोजनके बाद मुख एवं डायका प्रशासन नहीं किया) है, उसके उच्छिष्ट (भीवन करनेके बाद शेप अल)-का भएन करनेपर अथवा कुते या शुद्रसे स्पृष्ट सिद्ध अलका भक्षण करनेपर द्विज एक दिन रात्रिपर्यन्त उपवास तथा पश्चगव्यप्राजनसे शुद्ध होता है। यदि बाहाण किसी वर्णबहिष्कृत व्यक्तिके द्वारा छ लिया जाता है तो उसे पाँच रात्रियोंका उपवास करना चाहिये। अविच्छित्रगतिसे गिरनेवाली जलधारा, वायुके झोंकोंसे उड़ायो गयो धुलिके कण, स्त्री, बालक और युद्ध कभी दूपित नहीं होते। रित्रयोंका मुख, पश्चियोंके द्वारा गिरावा गया फल, प्रसवकालमें बस्रडा तथा हरिणका शिकार करते समय कुता सदैव पवित्र रहता है। जलमें रहनेवाली वस्तु जलमें और स्थलमें पायी जानेवाली वस्तु स्थलमें अपवित्र नहीं होती है। धार्मिक कृत्य करते समय पैरका स्पर्श हो जानेपर द्विज आचमनदारा शद हो जाता है।

जिस कांस्यपात्रमें मदिरा नहीं लगी है, यदि वह अन्य रजस्वला स्त्री चौथे दिन सुद्ध हो जाती है। किसी कारणसे अपवित्र हो गया हो तो पवित्र भस्मके द्वारा मौजे जानेपर शुद्ध हो जाता है। मृत्र या मदिराके द्वारा अशुद्ध पात्रको अग्निमें डालकर शुद्ध किया जा सकता है। गौके

भोजनोपरान्त बिना आचमन इत्यादि किये चाण्डालका द्वारा सूँचे गये, शूदके द्वारा सुए गये तथा कौए और कुत्तेके और पञ्चगव्यके पानसे शुद्ध हो जाता है। रजस्वला स्त्रीका जो द्विज मद्यादिसे अञ्चढ पात्रमें रखे हुए जलका पान स्पर्त करनेपर उपवास करके प्रक्रमध्य-पान करनेसे शुद्धि हाधमें लिये हुए यदि मल, मूत्रका परित्याग किया जाता है तो वह द्रव्य अशुद्ध नहीं होता है। भूमियर उस द्रव्यको रखकर शीच कर्म करना चाहिये।

काँजी, दही, दूध, मद्रा, कुसरात्र शुद्रसे भी ग्राह्म है। मध् अन्यजसे भी ग्रहण किया जा सकता है। जो ब्राह्मणादि गुडको बनी हुई, पीडीकी बनी हुई या महुआको बनी हुई मंदिरा पान करते हैं, उन्हें अग्निके समान संतप्त सुराका पान करके मुद्ध होना चाहिये। जी ब्राह्मण और क्षप्रिय स्तकपुर घरके पात्रमें जल अथवा भीजन ग्रहण कर लेते हैं, उन्हें क्रमह: पाँच सी और एक सी गायत्री-मन्त्रीका जप करना चाहिये। (जब घरमें मुतक पढ़ जाता है तो उस समय) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शृद्र क्रमश:—दस दिन, बारह दिन, पंद्रह दिन तथा एक मासके बाद शुद्ध हो जाते है। युद्धरत राजाओंकी, यज्ञदीक्षितकी तथा परदेशमें गये हुए लोगोंकी सूतक होनेपर तत्काल स्त्रानसे शुद्धि हो जाती है। एक मासके वालककी मृत्यु होनेपर भी स्नानसे सद्य: मुद्धिका विधान है। अविवाहित कन्या, यज्ञोपवीत-संस्काररहित द्विज् दौँठ निकल आये हुए बालक तथा तीन वर्षीया कन्याकी मृत्यु होनेपर तीन रात्रियोंका अशीच होता है। जननाशीचमें गर्भस्तव होनेपर भी तीन ग्रित्रयोंका अशीच माताके लिये माना गया है। प्रस्ता स्त्रियों एक मासतक अशुद्ध रहती हैं।

देशमें दुर्भिक्ष एवं किसी आकस्मिक कारणवश विप्तव होनेको स्थितिमें जन्म अथवा मृत्युका अशीच होनेपर भी टेशहितके लिये टान आदि धर्म यथानियम किये जा सकते

हैं। दीक्षाकालमें, विवाहादिमें, देव-पितृनिमन्त्रजमें, देवताओं लगा हुआ वस्त्र दृषित नहीं होता। (अन्य कार्योमें तो) नील तथा ब्राह्मणोंके निमन्त्रित हो जानेपर या पूर्व संकल्पित कार्योंके बीच भी यदि घरके किसी व्यक्तिकी मृत्यु हो जाती है अथवा कोई बच्चा जन्म लेता है तो उस समय अशीच नहीं होता है। द्विज, प्रस्ता पत्नीका स्पर्श करनेसे अशीचयुक्त हो जाता है। जहाँ अग्नियोंका आवाहन होता है, जहाँ येदोंका पठन-पाठन होता है अथवा जहाँ वैश्वदेव, यज्ञ आदि धार्मिक कृत्योंका सम्पादन होता है, वहाँ सुतक-दोष नहीं होता।

अशुद्ध घरमें भोजन करनेपर ब्राह्मण तीन रात्रि उपवासके पश्चात् शुद्ध होता है। यदि बाह्यण, क्षत्रिय, वैरूप और शुद्रको स्त्री रजस्त्रला हो जाय और परस्पर एक-दूसरेका स्पर्श करे तो बाह्मणी तीन ग्रतमें, क्षत्रियकी स्त्री दो रातमें, वैश्यको स्त्री एक दिनमें उपवास करनेके पश्चात शुद्ध होती है। जुड़की स्त्रों तो सद्ध: स्नान करनेके बाद ही शब हो जाती है।

कुत्ते, सियार और बन्दरको कुएँमें गिरा हुआ देखकर उस कृपका जल पीनेसे बाह्मण तीन दिन, श्रांत्रय दो दिन तथा वैश्य एक दिनके उपवासके पश्चात् शुद्ध होता है। यदि कुएँमें हुई।, चमडा, किसी प्रकारका मल या चुहा आदि गिर जाय तो उसे फुएँसे बाहर निकाल कर कुएँका कुछ जल निकाल देना चाहिये तथा पञ्चगव्य डालकर कुएँको सुद्ध करना चाहिये। यदि तडाग या पुष्करिणी आदिका जल द्षित हो गया हो तो उसमें सुद्ध भस्मादि डाल देना चाहिये और छ: घडा जल उसमेंसे निकालकर पञ्चगव्य डाल देना चाहिये। ऐसा करनेसे वह शुद्ध हो जाता है। यदि रजस्वला स्त्रीका रज:साव कृपजलके मध्य हो जाता है तो उसमेंसे तीस घडा जल निकाल देना चाहिये।

अगम्या स्त्रीका गमन, मद्य तथा गीमांसका भक्षण सान्तपनवत करनेसे और शुद्र पाँच दिन उपवासके बाद लगे हुए बस्बोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये। ऐसे वस्त्रोंको धारण करनेवाले नरकमें जाते हैं।

जो मनुष्य अवरोध उत्पन्न करनेके लिये पशुके दो पैरोंमें बन्धन लगानेका पाप करता है और उस पशुकी मृत्यु जलाशयके समीप, वनमें अथवा घरमें जलनेसे या कण्डमें रस्सी बाँधने, घण्टो, घुँचरू आदि आभूषणोंके पहनानेसे हो जातो है तो उस मनुष्यको कृष्युपादवत करना चाहिये।

गायके शरीरकी हुड्डी तोड्नेपर, सींग तोड्नेपर, चमड़ा भेदन करनेपर तथा पुँछ काटनेपर लगे हुए पापका प्रायक्षित आधे मासतक 'याकक पान' करनेसे होता है। हाथी, घोड़े और शस्त्र आदिसे गौंको ऐसी क्षति होनेपर कुच्छवत करना चाहिये। यदि अनजानमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मल, मृत्र, महिरासे संस्पष्ट पदार्चका भोजन कर लें तो उन्हें पुन: 'द्विजातीय संस्कार' करना चाहिये। पुन: द्विजातीय संस्कारके समय केशमुण्डन, मेखलाधारण, दण्डग्रहण और भिशाचरणादिको आवश्यकता नहीं है।

अन्यजके पात्रमें रखा हुआ कच्चा मांस, पृत, मधु तथा वयासमय उत्पन स्निग्ध पदार्थ तैल आदि उसके पात्रसे निकाले जानेके बाद शुद्ध हो जाते हैं।

कमजः प्रथम दिन एकभक्तवत, दूसरे दिन नक्तवत, तीसो दिन अवाधितवत करते हुए जो उपवास किया जाता है, वह पादकुच्छुवत है। कुच्छार्थका द्विगुण प्राजापत्पव्रत कहा जला है। यह सभी पापोंका विनाशक है। सात उपवास करनेसे कुच्छवत पूर्ण होता है। इसीको महासान्तपनव्रतके जामसे स्वीकार किया गया है। तीन दिन गरम जलमात्र, उसके बाद तीन दिन गरम दूधमात्र और उसके बाद तीन दिन गरम धृतमात्र पान करते हुए जो व्रत करके ब्राह्मण चान्द्रायणवत, क्षत्रिय प्राजापत्यवत, वैरुष किया जाता है, वह तप्तकृष्कृत्रत है। यह समस्त पापींको विनष्ट करनेवाला है। बारह दिनोंतक जलमात्र ग्रहण कर शुद्ध हो जाता है, किंतु प्रायक्षित करनेके बाद ऐसे सभी उपवास करनेसे एक पराकवत सम्पन्न होता है। यह व्रत व्यक्तियोंके लिये अपेक्षित है कि वे गोदान करें और सभी पापोंका विनाशक है। जिस व्रतमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदा ब्राह्मणभोजन भी करायें। क्रीडा तथा शबनादिके समय नील विधिको एक ग्रासमात्र भोजन करके क्रमशः पूर्णिमापर्यन्त

१-एक समय मात्र हविष्यान-प्रहण। २-राजिमें उपवास। ३-दिश यादतके जो प्राप्त हो उसीका ग्रहण।

प्रत्येक तिथिको एक-एक ग्रास भोजनकी वृद्धि की जाती इन चारोंके साथ कुशोदक मिलाकर जो पदार्थ तैयार है और उसके बाद कृष्णपक्षकी प्रतिपदा विधिसे प्रतिदिन किया जाता है, उसको 'पञ्चगव्य कहते हैं। इस मिश्रणमें अमावास्या तिथितक एक-एक ग्रास भोजनकी मात्रा कम गोमूत्रकी मात्रा आठ माशा, गोबरकी मात्रा चार माशा, की जाती है, उसे चान्द्रायणवत कहते हैं।

गायका गोबर, ताप्रवर्णवाली गायका मुत्र, नीलवर्णवाली किया गया पञ्चगव्य सभी मलोंका विनाशक होता है। गायका घुत तथा कृष्णवर्णवाली गायकी दही प्रशस्त है।

दूधको मात्रा बारह माला, दहीको मात्रा दस माला और सोनेके समान वर्णवाली गायका दूध, श्रेतवर्णवाली घृतको मात्रा पाँच माशा कही गयो है। इस विधिसे तैयार (अध्याय २२२)

भगवान् विष्णुकी महिमा, चतुष्पाद-धर्मनिरूपण, पुराणों तथा उपपुराणों और अठारह विद्याओंका परिगणन, चारों युगोंके धर्मोंका कथन एवं कलियुगर्मे नामसंकीर्तनका माहात्स्थ

आचरण किये गये उन धर्मीको मैंने कहा, जिनसे भगवान् विष्णु भीमस्य कहलाते हैं और क्षत्रियोंके द्वारा राक्षसोंका विष्णु प्रसन्न होते हैं। सुयादि देवींकी पूजा, पितृतर्पण, होम तथा संध्यावन्दनसे धर्म, अर्थ, काम और मोश-इस पुरुषार्थचतुष्ट्रयको सिद्धि प्रदान करनेवाले भएलान् विष्णु स्वयं भक्तींको प्राप्त हो जाते हैं। धगवान विष्णु धर्मस्वरूप ही है। पूजा, तर्पण, हजन, संध्या, ध्यान, धारणा आदि जो भी सत्कर्म हैं, वे सब हरि ही है।

सुतजीने कहा-हे शीनक। मैं चारों युगोंके धर्मीका वर्णन करता है, आप सुने।

चार हजार युगोंका एक कल्प होता है, इसको ब्रह्मका एक दिन माना गया है। कृतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलि-ये चार युग होते हैं। कृतयुगमें सत्य, दान, तप तथा दया-इन चार पादोंसे धर्म अवस्थित रहता है। धर्मका संरक्षण करनेवाले हरि ही हैं। इस रहस्यको जानकर जो लोग संतुष्ट रहते हैं, वे ही जानी है। सत्ययुग (कृतयुग)-में मनुष्य चार हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। सत्ययुगके अन्तमें धर्मफलनकी दृष्टिसे क्षत्रिय उत्कर्षकी स्थितिमें रहते हैं। जुड़ोंकी अपेक्षा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य धर्मपालनमें उच्च आदर्श प्रस्तुत करते हैं। सर्वाधिक बलशाली एवं शूर भगवान विष्णु हो ग्रक्षसाँका विनाश करते हैं।

त्रेतायुगमें धर्म सत्य, दान और दया-इन तीन पादोंपर ही अवस्थित रह जाता है। इस कालके मनुष्य यजपरायण होते हैं। सम्पूर्ण संसार धत्रियोंसे सुरक्षित रहता है। रक्तवर्णके भगवान हरि मनुष्योद्वारा इस युगमें पूजित होते

श्रीब्रह्माजीने कहा-हे व्यास। मृनियोद्वारा पश्चिपूर्वक हैं। मनुष्योंको आयु एक हजार वर्षकी होती है। इस युगमें संहार होता है।

द्वापरमें धर्मको मुर्ति दो पादोंपर अवस्थित रहती है। इस युगमें अन्युत भगवान् विष्णु पीतवर्ण धारण करते हैं। लोगोंकी आयु चार सौ वर्षकी होती है। ब्राह्मण और क्षत्रिय-वर्णसे उत्पन्न प्रजासे पृथियी व्याप्त रहती है। इस पुगके लोगोंको अल्प बुद्धिको देखकर चेदव्यासका रूप धारण कर भगवान विष्णुने एक ही रूपमें विद्यमान वेदको चार भागोंमें विभक्त किया और अपने समस्त शिष्योंको उन चारों वेदोंका अध्ययन कराया। भगवान् वेदब्यासने ऋग्वेदकी शिक्षा 'पैल' नामक शिष्यको, सामवेदको शिक्षा 'जैमिनि' नामक शिष्यको, अधर्वयेदको शिक्षा 'सुमन्त्' नामक शिष्यको और यज्ञवैदकी शिक्षा 'महामूनि वैशम्पायन' नामक किष्यको प्रदान को तथा वेदाङ्गी और पुराणोंका अध्ययन सुठबीको कराया। इन पुराणींके एकमात्र वेद्य हरि हों है। ये अतारह पुराणींक रूपमें विभक्त हैं।

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्तन्तर और वंशानुचरित-ये प्राणके पाँच लक्षण हैं। ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, भविष्यत्, नारदोय, स्कन्द, लिङ्ग, वराह, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, कुर्म, मत्स्य, गरुड, वाय तथा ब्रह्माण्ड नामक अठारह पुराण प्रसिद्ध हैं। मुनियोंने अनेक उपपुराणोंकी भी बात बतायी है। उनमें सबसे पहला उपपुराण सनत्कुमारके द्वारा कथित है। भगवान् नरसिंहके द्वारा उपदिष्ट एक दूसरा उपपुराण है, जो नरसिंहपुराणके नामसे प्रसिद्ध है। तीसरा

उपपुराण स्कन्द है, इसको भगवान शिवके पुत्र कुमार जाता है, तब तमोगुणको सर्वाधिक प्रबल मानना चाहिये। कार्तिकेयजीने कहा है। चौधा उपपुराण शिवधर्म (शिवधर्मोत्तर) नामक है, जिसे भगवान तन्दीश्वरने कहा है। महर्षि दुर्वासाद्वारा प्रोक्त आश्चर्य (अद्भव) पुराण तथा देविष नारदजीद्वारा कथित नारद उपपुराण है। इसी प्रकार कपिल, वामन तथा उशनस् उपपुराण महर्षि कपिल, वामन तथा उज्ञनसद्वारा उपदिष्ट हैं। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड, बारुण, कालिका, माहेश्वर, साम्ब, पराशर, मारीच तथा भागीव नामक उपपराण भी हैं। पराण, धर्मशास्त्र, चारों बेट, किशा कल्पादि, छ: बेदाब्र, न्याय, मोमांसा, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, गन्धर्वशास्त्र तथा धनुर्वेदशास्त्र- ये अठारह विद्याएँ है-पुराणं धर्मशास्त्रं च वेदास्त्वंगानि यन्पुने।

(271 (Tt)

हरण करते हैं।

न्यायः शौनक मीमांसा आयुर्वेदार्धशास्त्रकम्।

भगवान अच्यत कृष्णवर्णके होते हैं। उस कालमें लोग सभी लोग बेचैन रहते हैं, संतानें धार्मिक शिक्षाका अभाव दुराचारी और निर्दय होने लगते हैं। मनुष्योंमें सत्त्व, रज तथा तम- ये तीनों गुण दिखायी देते हैं। कालको प्रेरणासे ये सभी गुण मनमें उत्पन्न होते हैं और परिवर्तित होते रहते हैं।

हे शीनक। जब प्रवृद्ध सत्त्वगुणसे मन, बृद्धि और इन्द्रियाँ व्याप्त हो जाती हैं और लोगोंको अनुरक्ति जानार्जन तथा तपशरणमें बद जाती है तब सत्ययुग जानना चाहिये। जब मनुष्योंकी आसक्ति काम्यकर्म और यशमें होती है. उस समय रजोगणको प्रवद्भिसे त्रेतायग जानना चाहिये और प्रयल होते हैं और काम्य कर्मोंमें आसक्ति बढ जाती है आलस्य, नींद और हिंसा आदि साधनोंने ही प्रवृत्ति हो जाती है, शोक, मोह, भय और दौनताका भाव जब बढ़ उन सभीका विश्वास पाखण्डमें बढ़ जायगा। है ब्राह्मणी!

वहीं काल कलियग है।

इसी प्रकार जब लोग कामी हो जाते हैं, सदैव कट्वाणी बोलते हैं, जनपद चोर, डाकुओंसे भर जाते हैं, वेद पाखिन्डयोंसे दूषित हो जाते हैं, राजा प्रजाओंका सर्वस्य हरण करते हैं, लोग मैधून और पेट पालनके कर्मसे स्वतः पराजित होने लगते हैं, ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यव्रतका परित्याग करके असुचि हो जाते हैं, कुटुम्बी अर्थात् गृहस्य भिक्षाटन करने लगते हैं, तपस्वी गाँवोंमें रहना प्रारम्भ कर देते हैं, संन्यासी अर्थलोभमें फैस जाते हैं, लोग लघु शरीर होनेपर भी अत्यधिक भोजन करते हैं और जो चोर हैं, उन्हें साधके रूपमें लोग स्वीकार करने लगते हैं, तब कलिएग ही मानना चाहिये।

इस कलिकालमें भृत्यगण अपने स्वामीका तिरस्कार द्वापरयुगके अन्तमें भगवान बीहरि, पृथ्वीके भारका करते हैं, तपस्वी अपने व्रतींका परित्याग कर देते हैं, सुद्र प्रतिप्रह लेने लगते हैं. वैश्य ब्राह्मणोंको सेवाकी उपेक्षा कर कलिपुगर्मे धर्म एक पादपर अवस्थित रह जाता है। स्वयं व्रत-परायण हो जाते हैं, धार्मिक भाव कम होनेसे होनेसे फिशाचके समान बन जाती हैं, अन्यायसे अर्जित भोजनके द्वारा अग्निदेवको आहुति, देवताओंको नैवेच तथा द्वारपर आये हुए अतिथि देवको पूजा होती है, तब कलियुग समझना चाहिये।

हे जीनक! कलियुगके आ जानेपर लोग अपने पितरोंको जलवक नहीं देंगे। सभी प्राणी स्त्रीके वशमें हो जाएँगे। सबके कर्म शुद्रवत् होंगे। इस कलिकालमें स्त्रियाँ अत्यधिक संतानोत्पत्ति करनेवाली और दर्बल भाग्यवाली तमोगुणको प्रयसताके साथ रजोगुणको वृद्धिके कारण जब होंगो तथा बढोंकी आज्ञका उस्सङ्खन उनका स्वभाव होगा। लोगोंमें लोभ, असंतोष, मान, दम्भ और मत्सरके भाव ऐसा स्वभाव हो जानेपर यदि उनकी निन्दा की जायगी तो वे उसके प्रति गम्भीर न होकर उपेक्षाभाव अपनायेंगी। वे तब द्वापरयुग समझना चाहिये। जब सदा असत्य बोलने, इस उपेक्षाभावको अपना सिर खुजलाकर व्यक्त करेंगी। कलियुगके मनुष्य भगवान् विष्णुकी पूजा नहीं करेंगे।

१-प्रभूतञ्च यदा सस्तं मनो बुद्धीन्द्रयाणि च । तदा कृतपूर्ण विद्यान्त्राने तपीस यदितः स यदा क्रमंस काम्येथ शक्तियंश्रमि देशिनाम । तदा जेवा रजोभीतिति जानीहि सीनक व यदा लोभलक्सलोयो मानो दम्भश मतसर: । कर्मणं कपि काम्यानं द्वारं तदकस्तम: ह यदा सदानुतं तन्द्रा निद्रा हिंसादिसाधनम्।शोकमोडौ धर्ष दैन्यं स कलिस्तमीस स्मृत:॥ (२२३।२४-२७)

युगमें एक महान् गुण भी है। वह गुण है भगवान् श्रीकृष्णका संकीतंन। उनका संकीतंन करनेसे ही मनुष्य संसारके महाबन्धन अर्थात् आवागमनके जालसे मुक्त हो जाता है। हे शीनक! कृतयुगमें प्राणीको जो फल भगवान विष्णुका ध्यान करनेसे प्राप्त होता है, त्रेतायुगमें जो कल उनका जप करनेसे प्राप्त होता है और द्वापरयुगमें वो फल उन विष्णुदेवकी सेवा करनेसे प्राप्त होता है, वहीं फल कलिकालमें भगवान्के गुण, लीला और नाम-संकीर्तनसे

यह कलिकाल दोषोंसे भरा हुआ है, किंतू इस दोषपूर्ण हो प्राप्त हो जाता है। इसलिये नित्य ही भगवान् श्रीहरिका ध्यान, पूजन और संकीतंन करना चाहिये-

कलेटॉबनिधेर्विप्रा अस्ति होको महागुण:॥ कीतंनादेव कृष्णस्य महाबन्धं परित्यजेत्। कृते यद्व्यायतो विष्णुं त्रेतायां जपतः फलम्॥ परिचर्यायां कली तद्धरिकीर्तनात्। तस्माद्ध्येयो हरिर्नित्यं गेयः पुन्यश्च शौनक॥

(642134-30)

(अध्याय २२३)

नैमित्तिक तथा प्राकृतिक प्रलय और भगवान् विष्णुसे पुनः सृष्टिका प्रादुर्भाव

नैमितिक प्रलयकाल आता है। कल्पके अन्तमें सौ वर्षतक जानेपर भगवान् हरि अपने योगबलसे समस्त सृष्टिको अनावृष्टि होती है। आकाशमण्डलमें प्रचण्ड रूपसे संतप्त अपनेमें लीन करके ब्रह्मको धारण कर लेते हैं। इस करनेवाले भयंकर सात सूर्य उदित हो जाते हैं। वे अपनी कालमें जो प्राणी बहालोकमें स्थित रहते हैं, वे भी भगवान् प्रखर रश्मियोंसे सम्पूर्ण जलराजिका पानकर तीनों लोकोंको विष्णुमें लीन हो जाते हैं। सुखा देते हैं।

उन्होंके द्वारा इस जगत्की सृष्टि होती है। दिन आनेपर अव्यक्तादि ऋमसे पुन: व्यक्तिभूत चराचर

हे शीनक! इसके बाद में प्राकृतिक प्रलयका वर्णन जगत्कों सृष्टि करते हैं। (अध्याय २२४)

सुतजीने कहा-चार हजार युगोंके बीतनेपर ब्रह्मका करता है, उसको आप सुनें। ब्रह्मके एक सी वर्ष बीत

हे बाह्मणब्रेष्ठ ! उस कालमें अनावृष्टि करनेवाले सृयाँसे भगवान् विष्णु रुद्रस्वरूप धारण करके भूलोंक, सम्पन्न मेच थे। मेघोंके लगातार सौ वर्षतक बरसते रहनेसे भुवलींक, स्वलींक, महलींक, जनलोक तथा पाताललोककी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जलसे भर उठता है। अंदर प्रविष्ट हुई उस समस्त चराचर सृष्टिको जला देते हैं। भगवान् विष्णु तीनों जलतक्तिसे ब्रह्मण्ड फट जाता है। ब्रह्माकी आयु पूर्ण होते लोकोंको जलानेके बाद संवर्तक नामके मेघोंकी सृष्टि करते. ही सब कुछ जलमें ही लय हो जाता है। संसारमें कुछ हैं। नाना प्रकारके महाभेष सौ वर्षोतक बरसते हैं। भी शेष नहीं रहता। संसारको आधार प्रदान करनेवाली यह विष्णुरूपमें स्थित वायु अत्यन्त तेजगतिसे सौ वधौतक पृथ्वी भी उस जलराशिमें हुव जाती है। उस समय जल चलती है। उस जलवृष्टिसे समुद्रके समान उत्ताल तरंगोंवाले तेजमें, तेज वायुमें, वायु आकाशमें और आकाश भूतादि संसारके इस प्रलयकालमें स्थावर-जंगमके नष्ट होनेपर महतत्त्वमें प्रविष्ट हो जाता है और वह महत्तत्व प्रकृतिमें ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णु अनन्तराध्यापर रायन करते हैं। तथा प्रकृति अञ्चक्त परमपुरुषमें लीन हो जाती है। वे हरि एक हजार वर्षतक सोनेके पक्षात् जब वे जागते हैं तो पुन: (अञ्चल पुरुष) सी वर्षतक सोते हैं। तदन-तर ('ब्रह्मका)

कर्मविपाकका कथन

चक्रगतिको जाननेवाले जो विद्वान् हैं, वे यदि आध्यात्मिक, परमात्मामें लीन नहीं होते।

सूतजीने कहा-जगत्सृष्टि और प्रसय आदिको संसारचक्रका वर्णन करूँगा, जिसको जाने बिना पुरुपार्थी

आधिदैविक तथा आधिभौतिक— इन तीन सांसारिक तापोंको प्राणके उत्क्रमण कालमें इस शरीरका परित्याग करके जानकर ज्ञान और वैराग्यका मार्ग स्वीकार कर लेते हैं तो मनुष्य दूसरे सुक्ष्म जरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। इस आत्यन्तिक लय (मोक्ष)-को प्राप्त करते हैं। अब मैं उस मृत्युलोकसे मृत्युके पक्षात् जीवको यमराजके दृत, बारह हए व्यक्तिके बन्ध-बान्धव जो उसके लिये तिलोदक योनिमें जाता है। और पिण्डदान देते हैं, वहीं सब यमलोकके मार्गमें वह खाता-पीता है। पापकर्म करनेके कारण वह नरकलोकर्मे जाता है और पुण्यकर्म करनेके कारण स्वर्ग। अपने उन पाप- पुण्योंके प्रभावसे नरक तथा स्वर्गमें गया हुआ प्राणी पन: नरक और स्वर्गसे लीटकर स्वियंकि गर्भमें आता है। वहाँ विनष्ट न होकर वह दो बोजींके आकारको धारण कर लेता है। उसके बाद वह कलल फिर ब्रुव्याकार बन जाता है। तत्परवात् उस युद्युदाकार रक्तसे मांसपेशीका निर्माण होता है। मांसपेशीसे मांस अण्डाकार बन जाता है। वह एक पल (परिमाण-विशेष)-के समान होता है। उसी अण्डेसे अंकर बनता है। उस अंकरसे अंगुली, नेत्र, नाक, मुख और कान आदि अञ्च-उपाङ्ग पैदा होते हैं। उसके बाद उस विकसित अंकरमें उत्पादक-शक्तिका सञ्चार होने लगता है। जिससे हाथ-पैरकी अंगुलियोंचे नख आदि निकल आहे हैं। शरीरमें त्वचा और रोम तथा बाल निकलने लगते हैं। इस प्रकार गर्भमें विकासित होता हुआ यह जीव नी मासतक अधोम्ख स्थित रहकर दसवें मासमें जन्म लेता है। तदनतार संसारको अत्यन्त मोहित करनेवाली भगवान् विष्णुकी वैष्यवी माया उसे आवृत कर लेती है। यह जीव बाल्यातस्था, कौमारावस्था, युवायस्था तथा वृद्धावस्थाको प्राप्त करता है। इसके बाद यह पुन: मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यह जीव इस संसारचक्रमें घटीयन्त्रके समान धुमता रहता है।

जीय नरकभोग करनेके परचात् पापयोनिमें जन्म लेता है। पतितसे प्रतिग्रह स्वीकार करनेके कारण विद्वान भी अधोयोनियें जन्म ग्रहण करता है। याचक नरकभोग करनेके बाद कुमियोनिको प्राप्त होता है। गुरुकी पत्नी अथवा गुरुके धनकी मनसे भी कामना करनेवाला व्यक्ति कृत्ता होता है। मित्रका अपमान करनेवाला गधेकी योनिमें जन्म लेता है। माता-पिताको कष्ट पहेँचानेवाले प्राणीको कछएकी योनिमें जाना पहता है। जो मनुष्य अपने स्वामीका विश्वसनीय बन कर उसको छलका जीवनवापन

दिनकी अवधिमें यमलोकको ले जाते हैं। वहाँपर उस मरे करता है; वह मृत्युके बाद व्यामोहमें फैसे हुए वानरकी

धरोहररूपमें अपने पास रखे हुए पराये धनका अपहरण करनेवाला व्यक्ति नरकगामी होता है। नरकसे निकलनेके प्रधात वह कृमियोनिमें जन्म लेता है। नरकसे मुक्त होनेपर उस ईर्घ्यालु मनुष्यको राक्षसयोनिमें जाना पड़ता है। जो मनुष्य विश्वासघाती होता है, वह मत्स्ययोनिमें उत्पन्न होता है। यव और धान्यादि अनाजोंकी चोरी करनेवाले व्यक्ति मरनेके पक्षात् चृहेकी योनिमें जन्म लेते है। दूसरेकी स्त्रीका अपहरण करनेवाला मनुष्य खैंखार भेडियेकी चोनिमें जाता है। जो मनुष्य अपने भाईकी स्त्रीके साथ सहवास करता है, वह कोकिलयोनियें जन्म लेता है। गृह आदिको स्वियोके साथ सहवास करनेपर मनुष्य सुअर-योनिको प्राप्त होता है।

यह दान तथा विवाह आदिमें विघन डालनेवाले यनुष्यको कमियोनि प्राप्त होतो है। देवता, पितर और बाह्यजोंको बिना भोजन आदि दिये जो मनुष्य अन्न ग्रहण कर लेता है, यह नरकको जाता है। वहाँसे मुक्त होकर वह पापी काकपोनिको प्राप्त करता है। बढ़े भाईका अपमान करनेसे मनुष्यको काँछ (पश्चिवशेष)-योनिकी प्राप्ति होती है। यदि शुद्र ब्राह्मण-स्त्रीके साथ रमण करता है तो वह कृपियोनिमें जन्म लेता है। उस बाह्मणीसे यदि यह संतानोत्पत्ति करता है तो वह लकड़ीमें लगनेवाले पुन नामक कृमिको योनिको प्राप्त होता है। कृतघ्न व्यक्ति कृषि, कोट, पतङ्क तथा बिच्छुको योनियोमें भ्रमण करता है। जो मनुष्य शस्त्रहीन पुरुषको मारता है, वह दूसरे जन्ममें गधा होता है। स्त्री और बच्चेका वध करनेवालेको कृमियोनि प्राप्त होती है। भोजनको चोरी करनेवाला पक्खीकी योनिमें जाता है। अनकी चोरी करनेवाला बिल्लीको योनि तथा तिलकी चोरी करनेवाला चूहेकी योनिमें जन्म लेता है। ब्रोकी चोरी करनेवाला मनुष्य नेवला और मदगुर (मत्स्यविशेष)-के मांसकी चौरी करनेवाला काकयोनिमें जाता है। मध्की चौरी करनेपर मनुष्य दंशकयोनि' तथा अपूप (पुआ)-को चोरी करनेपर चींटीकी

योनिमें जन्म लेता है। जलका अपहरण करनेपर पापी चोरी करनेवाले मनुष्योंकी भी है। विद्याकी चोरी करनेवाला व्यक्ति काकयोनिमें उत्पन्न होता है। लकडीको चोरी मनुष्य विभिन्न प्रकारके नरकलोकोंका भीग करनेके पक्षात् करनेपर मनुष्य हारीत (हारिल नामक पक्षी) अचवा गुँगेकी बोनिमें जन्म लेता है। समिधारहित अग्निमें आहुति कबुतरकी योनिमें जन्म लेता है। जो प्राणी स्वर्ण-पात्रकों देनेवाला मन्दाग्नि-रोगसे ग्रस्त होता है। चोरी करता है, उसको कृमियोनिमें जन्म लेना पड़ता है। दूसरेकी निन्दा करना, कृतघनता, दूसरेकी मर्यादाको नष्ट कपाससे बने वस्त्रोंकी चोरी करनेपर क्रीज पक्षों, अग्निकों करना, निष्टुरता, अत्यन्त पृषित व्यवहारमें अभिरुचि, परस्त्रीके श्रीरी करनेपर बगुला, अंगराग आदि रंजकद्रव्य (शरीर- साथ सहवास करना, पराये धनका अपहरण करना, अपवित्र संस्कारकद्रव्य) और शाक-पातकी चोरी करनेपर मनुष्य रहना, देवोंको निन्दा तथा मर्यादाके बन्धनको तोड़कर अशिष्ट मयुर होता है। लाल रंगकी वस्तुकी बोरी करनेसे मनुष्य जीवक (पक्षितिशेष), अच्छी गन्धवाली वस्तुओंकी वोरी करनेसे छुछुन्दर तथा खरगोशको चोरी करनेसे वह खरगोशयोनिको प्राप्त होता है। कलाकी चोरी करनेपर मनुष्य नपुंसक, लकडीकी चोरी करनेपर पास-कृसमें रहनेवाला कीट, फुलकी धोरी करनेपर दरिद्र तथा यावक (जौका सन्, धान, लाख आदि) बुरानेपर पंगु होता है।

शाक-पातकी चोरी करनेपर हारीत और जलकी चोरी करनेपर चातक पक्षी होता है। जो मनुष्य किसीके घरका अपहरण करता है, वह मृत्युके पश्चात् महाभयानक रीरव आदि नरकलोकॉमें जाकर कष्ट भीगता है। तुण, गुल्प, लता, बल्लरो और वृक्षींकी छाल चुरानेवाला व्यक्ति वृक्ष-योनिको प्राप्त होता है। यहाँ स्थिति गौ, सुवर्ण आदिकी

व्यवहार करना, कृपणता करना तथा मनुष्योंका हनन करना-नरकभोग करके जन्म लिये हुए मनुष्योंके ये लक्षण है-ऐसा सभीको जान लेना चाहिये।

प्राणियोक प्रति दया, सद्धावपूर्ण वार्तालाप, परलोकके लिये सात्त्विक अनुद्यान, सत्कायौंका निष्पादन, सत्यधर्मका पालन, दूसरेका हिताचिन्तन, मुक्तिको साधना, नेदोंमें प्राप्तान्यवृद्धि, गुरू, देववि और सिद्धवियोकी सेवा, साधुजनींद्वारा बताये गये नियमोंका पालन, सिक्कियाओंका अनुष्ठान तथा प्राणियोंके साथ मैत्रोभाव-ये स्वर्गसे आये हुए मनुष्येकि लक्षण हैं। जो यनुष्य योगशास्त्रद्वारा बताये यम, नियमादिक अध्यक्तयोगके साधनसे सद-ज्ञानको प्राप्त करता है, वह आत्यन्तिक फल अर्धात् मोधका अधिकारी बन जाता है। (अध्याय २२५)

अष्टाङ्मयोग एवं एकाक्षर ब्रह्मका स्वरूप तथा प्रणवजपका माहात्म्य

महायोगका वर्णन करूँगा। यह महायोग यनुष्योंको भोग जो लोग जानरूपी कुल्हाडीसे अजानरूप महावृक्षको काट और मोक्ष प्रदान करनेका श्रेष्टतम साधन है। भक्तिपूर्वक इस गिराते हैं, वे हो परमब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। उदननार महायोगकी विधिका पाठ करनेमात्रसे मनुष्यके सभी ब्रह्मरसको प्राप्तकर उसका भलीभौति निष्कण्टक पान पापोंका विनाश हो जाता है, इसे अब आप सनें।

महामति भगवान दत्तात्रेयने राजा अलकंसे कहा था करते हैं। अत्यन्त दुर्गम मूल है। इस प्रकार पापमूलक आपातरमणीय निःसार हैं।

सतजीने कहा —हे द्विववेष्ट। अब मैं समस्त अङ्गोसहित सख-शान्तिके लिये यह अज्ञानरूपी महातर पैदा हुआ है। करके प्राप्त पुरुष नित्य-सुख एवं परम तान्तिको प्राप्त

कि है राजन्। ममता ही दु:खका मूल है और ममताका समस्त दुश्य-प्रपञ्च एवं इन्द्रियों भी उसी (परब्रह्म)-परित्याग ही द:खसे निवृत्तिका उपाय है। अहंकार में लीन हो जाती हैं। हे राजन्। वहाँपर न तो 'त्म' अज्ञानरूपी महातरुका अंकुर है। ममता उसका तना है। घर रहते हो और न 'मैं' ही रहता हूँ, न शब्दादि तन्मात्राएँ और क्षेत्र आदि उसकी शाखाएँ हैं। पत्नी उसका पल्लव रहती हैं और न अन्त:करण ही रहता है। हे राजेन्द्र! हम है तथा धन-धान्य महान पत्र हैं और पाप ही उसका दोनोंके बीच कौन-सा तत्व प्रधान है? वास्तवमें हम दोनों

भावका बोध होता है। यह पृथक-भावका बोध ज्ञान (स्वरूपजान)-के तिरोधानमें होता है। यद्यपि जानका तिरोधान योगी (ब्रह्माधिन जीव)-में नहीं होना चाहिये, पर भेदबृद्धि एवं भेदबृद्धिमलक समस्त प्रपन्न सक्के अनुभवमें आ रहा है: अत: इसकी उपपत्तिके लिये यह मानना पढता है कि ज्ञानका तिरोधान अनादिकालसे चला आ रहा है। यह ज्ञानका तिरोधान अज्ञानमूलक है। इसीलिये अज्ञानको ज्ञाननाशको दशा कहा जाता है। यह ज्ञाननाशकी दशा ज्ञानके वियोगकी दशा है और यह ज्ञानका वियोग ही जोबात्मा एवं आत्मा (ब्रह्म)-का पृथक-भाव है तथा इस पृथक-भावके ज्ञानका नाश जीव एवं आत्मा (ब्रह्म)-के ऐक्यजनसे ही होता है। यह ऐक्यजान (ऐक्यका प्रत्यक्षात्मक अनुभव) हो मुक्ति है। अनैक्यका अनुभव तो प्राकृतगुणी (मायिक विस्तार)-के कारण होता है।

प्राणीका जिसमें जियास होता है, वह घर है। जिसके न करनेसे पुण्यका क्षय हो जाता है।

और अन्त:शीच। संतोष, तपस्या, शान्ति, नाग्यणका पुत्रन को प्राप्त कर लेता है। और इन्द्रियदमन-ये योगके साधन है। आसनंकि पद्य आदि भेद हैं।

हे राजन् जिव और आत्मामें ऐक्य होनेपर भी पुधक्- जप तथा ध्यानसे रहित होनेपर) 'अगर्भ' नामक प्राणायाम कहलाता है। प्रथम प्राणायामसे योगी स्वप्नपर जय प्राप्त करता है. द्वितीय प्राणायामसे योगी कम्पपर और ततीय प्राणायामसे विर्यंकपर जय प्राप्त करता है। इस प्रकार इन तीनों दोषोंको योगी प्राणायामसे जीत लेता है।

योगीको आसन लगाकर 'प्रणव' में चित्र एकाग्र करके ध्यान और जप करना चाहिये। इस स्थितिमें वह अपनी दोनों एडियोंसे लिंग और अण्डकोशोंको दबाकर एकाग्र मनसे स्थित रहे। जो योगमार्गसे भलीभौति परिचित है, उसे अपनी रजोप्तिसे दमोवृत्तिको तथा सत्ववृत्तिसे रजोवृत्तिको निरुद्ध करके निरुष्ठल-भावसे प्रणवका जप करते हुए ध्यान करना चाहिये। इन्द्रियों, ब्राण और मन आदिको उनके विषयोंसे निगृहीत करना चाहिये। इस तरह एक साथ ही प्रत्यहार (विषयोंसे इन्द्रियोंको हटाकर अन्तर्मख करना)-का उपक्रम करना चाहिये।

विधिवत अठारह बार किया गया जो प्राणायाम है, उसे द्वारा उसके जीवनकी रक्षा होती है, वह भोज्य पदार्थ है। योगमें 'धारणा' के नामसे स्वीकार किया जाता है। योगके जो मुक्तिका हेत् है, वह जान है और जो बन्धनका हेत् तत्त्वको जाननेवाले योगिजन ऐसी धारणाको दो आवृत्तिको है, यह अञ्चन है। हे राजन्। प्राणियोंके पुण्य और पापका ही योग कहते हैं। योगियोंकी पहली धारणा नाडीमें, दसरी विनाश उसके द्वारा किये जानेवाले (सख-द:खालक) इदवर्षे, तीसरी वध:स्थलमें, चौधी उदरमें, पौचर्वी कण्डमें, भोगोंसे होता है और अवश्यकरणीय जो कर्तव्य हैं, उनको छठी मुखर्में, सातवीं नासाग्रपर, आठवीं नेत्रमें, नवीं दोनों भौहोंके मध्य और दसवीं मुर्थास्थानमें होती है। इस प्रकार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिव्रह-ये योगमें इस धारणाको दस प्रकारका माना गया है। इन दसों पाँच यम हैं। शौच दो प्रकारका बताया गया है—बाह्यतीय धारणाओंमें सपलता प्राप्त करके योगी अधररूपता (ब्रह्मत्व)-

जिस प्रकार अग्निमें छोडी गयी ऑग्न एकाकार ही जाती है, उसी प्रकार परमारमाके ध्यानमें लगायी गयो आरमा शरीरके अन्तर्गत प्रवाहित होनेवाली वायुपर विजय नदाकार हो जातो है। ऐसी स्थितिमें योगीको ब्रह्मस्वरूप प्राप्त करना 'प्राणायाम' है। प्रत्येक प्राणायाम पूरक, कुम्थक महापूण्यदायक 'ॐ' इस महामन्त्रका जप करना चाहिये। और रेचकके भेदसे तीन प्रकारका होता है। यही तीन इस प्रणव-महामन्त्रमें 'अकार, उकार और मकार'-ये तीन प्राणायाम जब दस मात्राओंका होता है तो इसे लब् अक्षर हैं। इन तीन अक्षरोंके अतिरिक्त इस महामन्त्रमें सत्व, प्राणायाम तथा इससे दुगुनी मात्राका मध्यम प्राणायाम और रजस तथा तनस्—इन तीन मात्राओंका योग भी है जो तीन गुनी मात्राओंका उत्तम प्राणायाम कहा गया है। जिस क्रमज्ञ: सान्त्विक तथा राजसिक और तामसिक मनोवृत्तिका प्राणायाममें योगिजन जप और ध्यानसे युक्त होते हैं, उसे परिचायक है। ॐकारमें जो चतुर्थ आदा अर्धमात्रा स्थित 'सगर्भ' प्राणायाम और उसके अतिरिक्त प्राणायाम (अर्थात् है, वह निर्गृण है तथा केवल योगियोंद्वारा ही जानने योग्य

है। गान्धारस्वर (ग)-के आश्रित रहनेवाली इस अर्धमाजाको देनेवाले अध्यक्तयोगका वर्णन कर दिया है। जो लोग गान्धारी नामसे जानना चाहिये। यह अक्षर परम ब्रह्म मायापाशसे आबद्ध हैं, वे सभी नित्य-नैमित्तिक ही कार्य जप और ध्यान करते हुए अपनी मुक्तिके लिये इस प्रकार अपनेमें ब्रह्मभावनाका निश्चय करना चाहिये-

'मैं स्थलदेहसे रहित ज्योतिमंय परमब्रह्म हैं। मैं जरा-मरणसे रहित ज्योतिमंय परमब्रह्म हैं। मैं इस प्रव्यक्ति सभी मलोंसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हैं। मैं वामु और आकाशसे रहित ज्योतिर्मय परमबद्धा है। मैं सुक्ष्यदेहसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रहा है। मैं समस्त स्थान या अस्थानसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हैं। मैं गन्धतन्मात्रासे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हैं। मैं श्रोत्रेन्द्रिय और त्वचा नामक इन्द्रियसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रहा है। मैं जिह्ना तथा प्राणेन्द्रियसे रहित ज्योतिर्भय परमञ्जद्धा है। मैं प्राण तथा अपान वायुसे रहित ज्योतिर्मय परमञ्जद्ध हूँ। मैं व्यान और उदान वायुसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हैं। मैं अज्ञानसे रहित ज्योतिर्मय परमञ्ज्ञा है। मैं शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकारसे रहित तुरीयावस्थामें विद्यमान परमपदस्वरूप ज्योतिर्मय परमञ्जद्ध है। मैं नित्य-शुद्ध-शुद्ध, मुक्त, आनन्द्रमथ, अद्वेत, जानस्वरूप, ज्योतिर्मय परमञ्जा है।"

सतजीने कहा-हे शीनक। इस प्रकार मैंने मुस्टि

ॐकारके नामसे योगमार्गमें स्वीकृत है। अत: इस महामन्त्रका करते हैं और उसीमें अन्ततक लगे रहते हैं। इस कारण उन्हें परमात्माका ऐक्य प्राप्त नहीं होता. वे पुन: इस संसारमें जन्म लेते हैं। जो अज्ञानसे मोहित हैं, वे ज्ञानयोग प्राप्त करके अज्ञानसे मुक्त हो जाते हैं। उसके बाद यह जोबन्मक योगी न कभी मरता है, न दु:खी होता है; न रोगी होता है और न संसारके किसी बन्धनसे आबद्ध होता है। न वह पापोंसे युक्त होता है, न तो उसे नरकयातनाका ही दुःख भोगना पहता है और न वह गर्भवासमें दुःखी ही होता है। यह स्वयं अध्यय नारायणस्वरूप हो जाता है। इस प्रकारको अनन्य भक्तिसे वह योगी भोग और मोस प्रदान करनेवाले भगवान् नारायणको प्राप्त कर लेता है।

ध्यान, पुजा, जप, स्तोत्र, वत, यह और दानके नियमोंका पालन करनेसे मनुष्यके चित्तकी शुद्धि होती है। चित्रशृद्धिसे ज्ञान प्राप्त होता है। प्रणवादि मन्त्रॉका जप करके दिजोंने मुक्ति प्राप्त की है। इन्द्रने भी इन्द्रासन प्राप्त किया। बेह गन्धर्वी और अप्सराओंने उच्च पद प्राप्त किया। देवताओंने देवत्व और मुनियोंने मुनित्व प्राप्त किया। गन्धवीने गन्धवील तथा राजाओंने राजलको प्राप्त किया। (अध्याय २२६)

भगवद्धक्तिनिरूपण तथा भक्तोंकी महिमा

जिससे सब कुछ प्राप्त हो जाता है। भगवान् बिष्णु भक्तिसे औम् बहाते हैं और रोमाहित होकर गद्गद हो उठते हैं, जितना संतुष्ट होते हैं, उतना अन्य किसी माधनसे नहीं। भगवान् हरिका निरन्तर स्मरण करना मनुष्येकि लिये महान् श्रेयका मूल है। यह पुण्योंको उत्पत्तिका साधन है और जीवनका मधुर फल है-

यथा भक्त्या हरिस्तुब्येत् तथा नान्येन केनचित्॥ पहतः श्रेयसो मूलं प्रसवः पुण्यसंततेः। जीवितस्य फलं स्वाद नियतं स्मरणं हरे:॥

इसलिये विद्वानीने विष्णुकी सेवाको धक्तिका बहुत बड़ा साधन कहा है। भगवान् त्रिलोकोनाव विष्णुके नाम

सुतजीने कहा — अब मैं विष्णुभक्तिका वर्णन करूँगा, तथा कर्मादिके कीर्तनमें तत्मय होकर जो लोग प्रसन्नताके वे हो उनके भक्त हैं-

ते भक्ता लोकनाध्यय नामकर्मादिकीतने॥ म्झन्यभूणि संहर्षाचे प्रदूषतन्त्रहाः।

(33012-8)

अतः हम सभीको जगत्स्रष्टा देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुके दिव्य उपदेशोंका अनुसरण करना चाहिये। वे ही वैष्णव हैं, जो वेद-शास्त्रींक अनुसार अवश्यकरणीय नित्य-कमौंका पालन करते हुए श्रीविष्णुके प्रति अति स्निग्ध रहते है तथा भक्तिप्रवनताके कारण अद्वैतभावसे स्वयंको पुषकुकर जिन नामोंका स्मरण स्वयं भगवान् भी करते हैं,

१-परम क्यापक ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है, उसका कोई आवय नहीं है। इसलिये उसके स्थान या स्थानाभावकी करूपना सर्वथा असम्भव है।

(3-31059)

रहते हैं।

उन मङ्गलमय नामोंका श्रवण-कीर्तन करनेके साथ स्वामि- हैं' ऐसा जो प्राणी कहता है, उसको भगवान हरि सम्पूर्ण सेवकभावसे सदा भगवान् श्रीविष्णुको प्रणाम किया करते प्राणियोंसे अभय कर देते हैं, किसीसे भी उसको भय नहीं हैं। वे ही महाभागवत हैं, जो श्रीविष्णुके भक्तजनोंके प्रति होता, यह भगवानुकी प्रतिज्ञा है-वात्सल्यभाव रखते हैं तथा श्रीविष्णुके पूजन एवं उनकी आज्ञाका अनुसरण करते हैं। भगवान् त्रीविष्णुकी मङ्गलमधी कथाओंके श्रवणमें ही अतिशय प्रीतिपूर्वक सदा लीन रहते हैं तथा अपने नेत्र आदि समस्त अङ्गोंकी समस्त चेटाएँ भगवानकी सेवाके लिये ही समर्पित किये रहते हैं। संक्षेपमें यह समझना चाहिये कि जो लोग पूर्ण समर्पणभावसे श्रीविष्णुकी भक्तिमें ही अपने मनको निरन्तर एकाग्र रखते हैं, वे ही परम भागवत हैं। इन परम महाभागवत लोगोंका मुख्य लक्षण यह है कि ये लीग ब्राह्मणोंमें ही बीविष्णुका सदा निवास मानकर उनकी सेवामें सदा लगे रहते हैं। ये लोग अपने समस्त साधनोंको भी बीविष्णुके चरणोंमें ही समर्पित किये रहते हैं। श्रीविष्णुकी सेवाके लिये ही सांसारिक संगाँसे दूर रहते हैं। श्रीविष्णुको ही जपना एकपात्र आश्रय मानकर उन्होंकी अचीमें सदा तत्पर

वैष्णव या महाभागवत जिस सीविष्णुभक्तिको अपना सर्वस्व मानते हैं, वह (अवण, कोर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्थन, यन्द्रन, दास्य तथा सख्य-भेदसे) आउ प्रकारकी होती है। इसमें म्लेच्ड व्यक्ति भी अधिकारी माना गया है। इस संसारमें तो वहीं श्रेष्ठ ब्राह्मण है, वहीं मूनि है, वहीं ऐश्वर्यसे सम्पन्न है और वही मोक्षको प्राप्त करता है, जो भगवान हरिको भक्तिमें तन्मय रहता है। जो भगवद्भक्त है, उसीको दान देना चाहिये, उसीसे दान लेना चाहिये, उसीकी हरिकी भौति पूजा करनी चाहिये। भगवद्गक द्विजोत्तमका स्मरण कर, उनके साथ भाषण कर, उनका पूजन कर हम अपनेकों पवित्र कर लेते हैं। यदि कोई भगवद्धक चाण्डालजातिका है तो वह भी अपनी पवित्र भक्तिकी महिमासे हम सबको पवित्र कर देता है।

'हे नाथ! आप मझपर दया करें, मैं आपकी शरणमें

दयां करु प्रपन्नाय तवास्मीति च यो वदेत्।

अधयं सर्वभूतेभ्यो दद्यादेतत् वतं

मन्त्रका जप करनेवाले हजार जपकर्ताओंकी अपेक्षा सभी वेदान्तदर्शनों, शास्त्रोंमें पारंगत विद्वान श्रेष्ठ है। सर्ववेदान्तनिष्णात करोड़ों विद्वानोंकी अपेक्षा विष्णुभक्त श्रेष्ठ

है। जो लोग भगवान विष्णुमें ऐकान्तिक भक्ति रखते हैं, वे सक्तरीर श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त करनेमें सफल हो जाते हैं। ब्रीविष्णुभक्तिको हो परम पुरुषार्थ माननेवाले

एकानी भक्त हैं। इनका चित्त सर्वात्मना भागवत होता है। ऐसे परम धागवत बीविष्णुके ही समान हो जाते हैं,

किंबहुना, ब्राविच्यु ऐसे परम भागवत भक्तोंके परायण (सर्वचा अधिन्त) रहते हैं। ये परम भागवत भक्त देवदेव बोविष्णुके परम प्रिय लोगोंसे भी अधिक सुप्रिय होते हैं। इनको भक्ति अध्यभिचारिणी (नितान्त सुदृष्क) होती है।

इसीलिये कठिन-से-कठिन आपत्कालमें भी यह भक्ति सम्बंद रहती है। ये परम भागवत भक्त सदा यही प्रार्थना करते रहते हैं- 'प्रभी। विष्यो। विषयोंमें जो अधिकाधिक स्थिर प्रीति होती है, वहीं आपका स्मरण करते हुए मुझमें

सदा अविचल-धावसे बनी रहे।' यह विशेष रूपमें ध्यातव्य है कि प्रभु श्रीविष्णुको ही भक्ति करनी चाहिये। यदि कोई अन्य किसीके प्रति दृढ भक्त है, सर्वेश्वर प्रभुका भक्त नहीं

है तो बेदादि समस्त ज्ञारबोंके अर्थका पारङ्गत होनेपर भी वह वास्तवमें पुरुषाधम ही है। जिसने वेद या अन्य शास्त्रीका अध्ययन नहीं किया है, जो यज्ञादिक पुण्यकमौको

यदि भगवान् विष्णुमें भक्ति रखता है तो (समझना चाहिये कि) उसने सब कुछ कर लिया है। जो लोग याज्ञिक हैं,

अपने जीवनमें सम्पन्न करनेसे विद्यत रह गया है, वह भी

अश्रमेध, राजस्यादिक मुख्य यज्ञोंको करनेवाले हैं और

१- प्रणामपूर्वकं भक्तपा यो वरेद्रैष्णवो हि सः । जद्भक्तजनवासस्यं पूजनं प्रीतिरष्ट्रनेत्राह्मविक्रिया:। येन सर्वात्यना विष्णी भक्तपा भावो निवेशित:॥ विप्रेभ्यक्ष कृतात्मत्वान्महाभागवतो हि सः।विश्रोपकाणं नित्यं तदर्वं सङ्गवर्वनम्। स्वयपध्यर्थनं सैव यो विष्णुं चीपनोवति ह (२२०।६-८)

२-भक्तिरष्टविधा द्वीषा यस्मिन् म्लेक्डोऽपि कति । स विदेन्द्रो मुनिः श्रीमान् स व्यति परमां गठिम्। तस्मै देवं ततो ग्राह्मं स व पूज्यो यथा हरि:।स्मृत: सम्भाषितो वापि पुजितो वा द्विजोत्तम:। प्रति भगवद्भक्षण्डालोऽपि यद्भावा ॥ (२२७। ९-१०)

वेदोंके पारंगत हैं, वे मुनिसत्तम (मुनिश्रेष्ठ) भी उस परम नारायणको आराधना होती है। भक्तिके अतिरिक्त उनकी गतिको प्राप्त नहीं कर पाते, जिस परमगतिको विष्णुभक्त आराधनाके लिये अन्य कोई साधन नहीं है। विभिन्न अपनी भक्तिसे प्राप्त कर लेते हैं। इस संसारमें जो मनुष्य प्रकारके दान देनेसे, भलीभौति पुष्प-समर्पणसे अथवा निर्देगी हैं, दुष्टात्मा हैं तथा दुराचारमें लगे रहते हैं, वे भी अनेक प्रकारके दिव्य अनुलेपनसे भी परमात्मा जनार्दन यदि भगवान् विष्णु नारायणकी भक्तिमें संलग्न हों तो उन्हें विष्णु उतना संतुष्ट नहीं होते जितना भक्तिसे। परम गतिकी प्राप्ति होती है। जब मनुष्यकी पीक भगवान जनार्दनके प्रति अचल और दृढ हो जाती है, तब उसके

लिये स्वर्गका सख कितना महत्त्व रखता है। वह भक्ति ही उसके लिये मुक्ति है। हे शौनक! इस संसारके दुर्गम कर्मधार्गमें भ्रमण करते हुए मनुष्योंके लिये पछि ही

एकमात्र अवलम्ब है, जिसके करनेसे जनार्टन संतुष्ट होते. हैं। जो मनुष्य देवाधिदेव विष्णुके दिख्य गुणोंको नहीं सनता, वह बहुए है और सभी धर्मोंसे बहुच्कृत है। हरिनाम-संकीर्तनसे जिस व्यक्तिका शरीर रोमाज्ञित नहीं हुआ, उसका वह शरीर मृतकके समान है। हे द्विजनेष्ठ!

जिसके अन्त:करणमें विष्णुभक्ति विद्यमान रहती है, उसे यथाशीच ही इस संसारके आवागमन-चक्रसे मुक्ति प्राप्त हो

जाती है। जिन मनुष्योंका मन हरिभक्तिमें रमा हुआ है, उनके सभी पापोंका विनाश सब प्रकारसे निश्चित है।

हायमें पास लेकर खड़े हुए अपने दुतको देखकर यमराज उसके कानमें कहते हैं कि हे दूत। तुम उन लोगोंको छोड देना जो मधुसुदन विष्णुके भक्त है। मैं तो अन्य दराचारी और पापियोंका स्वामी हैं, वैष्णवोंके स्वामी स्वयं हरि हैं। श्रीविष्णुने स्वयं कहा है कि यदि दुरावारी व्यक्ति भी मुझमें अनन्य भक्ति रखता है तो वह साधु ही है: क्योंकि उसने भक्तिका निश्चय कर लिया है कि श्रीविष्णुको भक्तिके समान अन्य कुछ भी नहीं है।

निश्चयपूर्वक भगवानुकी भक्तिमें अनन्य भावसे लगा हुआ व्यक्ति तुरंत धर्मारमा हो जाता है और उसको शस्त्रत शान्ति प्राप्त होती है। हे द्विअब्रेष्ट! आप ऐसा निश्चित ही जान सें कि विष्णभक्तका कभी विनास नहीं होता। समस्त संसारके

मुल कारण भगवान हरिमें जिस मनुष्यकी भक्ति स्थिर रहती है, उसके लिये धर्म, अर्थ और काम-इस त्रिवर्गका कोई महत्त्व नहीं है: क्योंकि परम सुखरूप मुक्ति ही उसके

हाथमें सदा रहती है। यह जो हरिकी त्रिगुणारिमका दैवी माया है, उसको वे लोग पार करते हैं जो हरिकी शरणमें जाते हैं। जिनकी बुद्धिमें भगवान हरि निवास करते हैं, उनके लिये यज्ञाराधन आदिसे क्या लाभ? भक्तिसे ही

इस संसाररूपी विषवृक्षके अमृतके समान दो फल है-पहला फल है-भगवान् केशवकी भक्ति और दूसरा फल है, उनके भक्तोंका सत्संग-

संसारविषद्शस्य ह्ममुतोपमे। कदाचित्केशवे धक्तिस्तद्वकैर्या समागमः ॥ (98149)

सनावन पुरुष बीविष्णु एकपात्र भक्तिसे सुलभ हैं और यह भक्ति अनायास पत्र, पुष्प, फल अथवा जलका बद्धाके साथ ब्रीविष्णुके चरणोंमें समर्पणमात्रसे प्राप्य है। ऐसी स्थितिमें अतिकष्टसाध्य मुक्तिके लिये क्यों प्रयत्न किया जाय?

'हम्हरे कुलमें एक विष्णुभक्तने जन्म लिया है, यह हमारा इस संसार-सागरसे ढद्धार करेगा।' यह सोचकर पितृगण ताल टोक्ते हैं और पितामह ताली बजा-बजाकर नृत्य करते हैं। अज्ञानी और पापाल्मा तिशुपाल तथा सयोधन आदि भी सरब्रेष्ट भगवानुकी निन्दा-अपमानके ज्याजसे, भगवानुका स्मरणमात्र करके निष्माप हो गये और मुक्तिको प्राप्त कर लिये। ऐसी स्थितिमें भगवानुमें परमभक्ति रखनेवालीक मुक्तिलाभमें कौन-सा संशय है? वह ती निस्संदेह प्राप्त होगी ही-सुरवरे संपधिक्षिपनो

शिश्रपालस्योधनाचाः। यत्याचित्रोऽपि स्मरणमात्रविभूतपापाः

कः संशयः परमधक्तिमतां जनानाम्॥

(220134)

ध्यानयोगसे रहित होकर भी जो लोग श्रीविष्णुकी शरणमें आ जाते हैं, वे मृत्युका अतिक्रमण करके परम वैष्णवगविको प्राप्त हो जाते हैं।

हे माधव। इस संसारमें प्राप्त होनेवाले सैकडों कप्टोंसे व्यक्ति और शरीरमें विद्यमान अनेक इन्द्रिय-छिद्ररूप अब्रॉके साथ विषयवासनाओंमें भटकते हुए इस मेरे यनरूपी घोडेको आप रोक लें और अपने चरणरूपी खुँटेमें सदद भक्तिरूपो बन्धनसे बाँध दें, जिससे यह मेरा मन आपके चरणकमलका परित्याम कर अन्यत्र न जा सके-भवो द्ववक्लेशशतहैतस्तथा परिभ्रमन्निन्दियरन्यकेईयैः नियम्यतां माधव मे मनोहय-स्वदङ्गिशङ्कौ द्रक्यक्तिवन्धने॥

विष्णु ही परमब्रह्म हैं, वे ही तीन भिन्न रूपोंमें वेद-शास्त्रादिके प्रतिपाद्य है। इस तथ्यको उनकी मायासे मोडितजन नहीं जानते और जो लोग इस मायासे परे रहते हैं तथा ब्रीविष्णुमें अपनी अचल भक्ति रखते हैं, उन्हें यह भेद नहीं दिखायी देता। उनके लिये तो सब विष्णुमय ही होता है। (अध्याय २२७)

नामसंकीर्तनकी महिमा

अज, नित्य, अध्यय और अक्षय भगवान् विष्णुको जो जहाँ कहाँ भी रह रहा हो—हर स्थितिमें कल्याणकामी मनुष्य नमन करता है, वह समस्त संसारके लिये नमस्कारके योग्य हो जाता है। मैं आनन्दस्वरूप, अद्रैत, विज्ञानमय, सर्वव्यापक एवं सभीके हृदयमें निवास करनेवाले भगवान् विष्णुको भक्तिभावसे भरे हुए एकाग्र-मनसे सदा प्रणाम करता हैं। जो ईश्वर अन्त:करणमें विराजमान रहकर सभीके शुभाशुभ कर्मीको देखते हैं, उन सर्वसाधी परमेश्वर विष्णुको मेरा नमन है।

शरीरमें शक्ति रहते हुए जो मनुष्य भगवान् चक्रपाणि विष्णुको प्रणाम नहीं करता, उससे इस संसारके अति तुच्छ तुण भी उद्विप्न रहते हैं। जलसे परिपूर्ण नृतन-स्थामल मेघों-जैसी सुन्दर कान्तिवाले, लोकनाय, परमपुरुष तथा अप्रमेय भगवान् कृष्णको भाव-विभोर होकर दुढ् भक्तिक साथ मात्र एक बार किया गया प्रणाम श्वपच (चाण्डाल)-को भी तत्काल उत्तम गति देनेमें सक्षम है। जो व्यक्ति पृथ्वीपर दण्डवत् प्रणाम करते हुए भगवान् हरिको पूजा करता है, उसको वह गति प्राप्त होती है, जो सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्टान करनेसे भी सम्भव नहीं है। जंगल एवं समुद्रकी भौति दुर्गम संसारमें दौड़ते हुए पुरुषोंको कृष्णके लिये उनके द्वारा किया गया एक ही प्रणाम उन्हें मुक्ति

सुतजीने कहा-मुक्तिके कारणभूत, अनादि, अनन्त, प्रदान करके तार देगा। बैठा हो, शयन कर रहा हो अधवा पुरुषको 'नमो नारायणाय' मन्त्रका स्मरण करना चाहिये। 'नारायण' यह जब्द मुलभ है और वागिन्द्रिय मनुष्यके क्यामें है. फिर भी मुखं मनुष्य नरकमें गिरता है, इससे बढकर आक्षर्य क्या होगा। यदि कोई चार मुखाँसे युक्त हो जाप अथवा उसके करोड़ों मुख हो जार्य, चाहे कोई विशुद्ध विखवाला मनुष्य हो, फिर भी वह देखबेष्ट भगवान् विष्णुके गुजोंसे सम्बन्धित दस हजारवें भागका भी वर्णन नहीं कर सकतः। मधुसूदन (ब्रोविष्यु)-की स्तुति करनेवाले व्यास आदि मुनि अपनी बुद्धिको श्रीणताके कारण श्रीविष्णुके गुण-वर्णनमे विस्त होते हैं न कि ब्रीविध्युके गुणोंकी इयताके कारण। सिंहसे डरकर मृग जैसे तत्काल भाग जाते है वैसे ही ब्रीविष्णुके नामोंका कीर्तन करनेसे अशक व्यक्तिक भी सभी पातक तत्काल नष्ट हो जाते हैं और निष्यप होनेके कारण वह व्यक्ति अपने पूरे परिवारके साथ मोश्रके लिये संनद्ध हो जाता है।

स्वप्नमें भी भगवान् नारायणका नाम लेनेवाला मनुष्य अपनी अक्षय पापराशिको विनष्ट कर देता है। यदि कोई मनुष्य प्रबोध-दशामें परात्पर विष्णुका नाम लेता है तो फिर उसके विषयमें कहना ही क्या? 'हे कृष्ण! हे अच्युत! हे

१. यह रलोक प्राचीन आप्तपरम्परामें इस प्रकार प्रसिद्ध है—

भवीद्धवक्तेशकशाहताहतः परिभ्रमनैन्द्रियकापणान्तरे । निगृह्यां माध्य में मनोहयस्वदङ्गिशङ्की दृढर्भाक्षवन्धनैः ।

इसका अर्थ है—'हे माधव। मेरा मनरूपी अब संस्टामें उत्पन्न क्लेडकपी सैकड़ों कोड़ोंसे आहत होकर ऐन्द्रिय (इन्द्रियसम्बन्धी) अनेक कापथ (कुरिसत मार्गी)-में भटक रहा है। कृपमा आप अपने भक्तिकप दृढ बन्धनोंसे अपने चरणकर्यी शङ्कमें इसे बाँधकर निगृहीर कर लें।'

[काशोके प्रसिद्ध परम आस्तिक प्रीद विद्वान् जीयसपतवो जियाठो (महारायजी) इसी रूपमें इस श्लोकका प्रतिदिन प्रात: पाठ कररे थे और कहा करते थे कि यह 'गरुडपुरापका स्तोक है। विशेषकर वर्तमान कलिकालमें इस स्तोकका पाट भगवान्की भक्ति प्राप्त करनेवे लिये अत्यन्त उपयोगी है। यह तथ्य महाकायकीके शिष्य स्वः श्री पं॰ बालचन्द्र दीक्षितवीसे जात हुआ है।]

अनन्त! हे वासुदेव! आपको नमस्कार है।' ऐसा कहकर जो भक्तिभावसे श्रीविष्णुको प्रणाम करते हैं, वे यमपुरी नहीं जाते। अग्निक प्रन्वलित होनेपर अथवा सूर्यके उदित हो जानेपर जैसे अन्धकार विनष्ट हो जाता है. वैसे ही हरिका नामसंकीर्तन करनेसे प्राणियोंक पाप-समृहका विनाश हो जाता है। नामसंकीर्तनसे जिस नित्य सर्वोत्तम अक्षय सखका अनुभव होता है, उसके सम्मुख अनित्य क्षयशील स्वर्गसुख सर्वथा नगण्य है। जिनका चित्त ओकृष्णचिन्तनमें ही प्रतिक्षण रम रहा है, उनके लिये श्रीकृष्णधामतक पहुँचनेके लंबे मार्गमें श्रीकृष्णनामसंकीतेन सर्वोत्तम पाथेय (अनुपम अवलम्ब) है। संखररूपी सर्पक दंशसे व्याप्त विषके भयंकर उपद्रवको शान्त करनेके लिये एकमात्र औषध 'श्रीकृष्ण' नाम है। इस वैष्णव मन्त्रका जप करके मनुष्य संसारमञ्जनसे मुक्त हो जाता है-

पार्थयं प्रवृतिकाक्ष नामसंकोर्तनं हो:। संसारसर्पसंद्रश्विषचेष्ट्रैकभेषजम्

(3761 70) कृतयगर्मे भगवान् हरिका ध्यान करते हुए, त्रेतायुगर्मे इन्हीं भगवान् हरिके मन्त्रोंका जप करते हुए द्वापरमें इन्हींकी पूजा करते हुए, जो फल प्राणियोंको प्राप्त होता

है, वहीं फल कलियुगमें मनुष्य उन्हीं भगवान् 'केशव' के

स्मरणमात्रसे प्राप्त कर लेता है-

ध्यापन् कृते जपन् मन्त्रेस्वेतायां द्वापरेऽर्चयन्। यदाण्योति तदाण्योति कलौ संस्मृत्य केशवस्॥

(236186)

जिस व्यक्तिको जिहाके अग्रभागमें 'हरि' ये दो अक्षर विद्यमान होते हैं, वह इस संसारसागरको पार कर विष्णु-पदको प्राप्त करनेमें सफल हो जाता है-

जिज्ञाचे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्। संसारसमरं तीत्वां स गच्छेद्वैष्णवं पदम्॥

(236184)

ज्ञानपूर्वक किये गये हजारों पापोंसे परिशुद्धि प्राप्त कानेकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिके लिये भगवानुका नाम परम कल्याचकारी है। भगवान् नारायणके स्तवन और गुणानुबादसे थरी हुई कथाओंके अवजमें निमान रहनेवाला व्यक्ति स्वप्नमें भी इस संस्ताको नहीं देखता-विज्ञातद्यकृतिसहस्वसमावृतोऽपि

क्षेत्रः यरं तु परिशृद्धिमधीप्रामानः। स्वजानरे न हि पुनक्ष भवं स प्रथ्ये-त्रारायणस्तुतिक**श्चा**परमो

मनुष्यः॥

(226120)

(अध्याय २२८)

विष्णुपूजामें श्रद्धा-भक्तिकी महिमा

स्वामी भगवान हरिकी आराधना ही सार है। पुरुषसुक्तके की बी? द्वारा जो मनुष्य पुष्प और जल आदि उस परात्पा देवको बद्धापूर्वक की गयी पूजासे संतुष्ट भगवान् ह्रपीकेश समर्पित करता है, वह सम्पूर्ण चराचर जगत्को पूजा कर मनुष्यका जो उपकार करते हैं, वह न माता करती है, लेता है। जो विष्णुको पूजा नहीं करते, उन्हें ब्रह्मपाती न पिता करता है और न तो उसका भाई ही करता समझना चाहिये। जिन भगवानुसे समस्त प्राणियोंको उत्पत्ति है। वर्णान्तम-धर्मका आचरण करनेवाले मनुष्यके द्वारा हुई है और यह समस्त चराचर जगत् जिनसे व्याप्त है, उन यदि भगवान् विष्णुको पूजा होती है तो वे (श्रीविष्णु) विष्णुका जो ध्यान नहीं करता, वह विद्याका कृमि होता है। उस पूजासे संतुष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य नरकलोकमें होनेवाले कच्टोंसे संतप्त हो रहे पापी जीवसे कोई मार्ग नहीं है, जो उनको संतुष्ट कर सके। न यमराज स्वयं पूछते हैं कि क्या तुमने कष्टविनाशक भगवान् तो वे प्राणियोंके द्वारा दिये गये विभिन्न प्रकारके विष्णुदेवका पूजन नहीं किया था? द्रव्योंका अभाव होनेपर दानसे उतना संतृप्त होते हैं, न तो पुष्पोपहार और भौति-

सूतजीने पुनः कहा-हे शौनक। समस्त लोकोंके अपने ही लोकको दे देते हैं, क्या तुमने उनकी पूजा नहीं

मात्र जलसे ही पूजा करनेपर जो देव प्रसन्न होकर स्वयं भौतिके सुगन्धित पदार्थीके अनुलेपनसे उतना संतुष्ट होते

१-'सहस्रशीयां पुरुष:' आदि १६ मन्त्र 'पुरुषसूल'-रूपमें प्रसिद्ध हैं। ये मन्त्र सभी बेटोंकी संहितामें उपलब्ध हैं।

पौत्रादिक संतान तथा अन्यान्य कर्मसम्पादनसे भी क्योंकि ब्रीहरिकी आराधना ही ऐक्यभावका मूल है। भगवान् हरि संतुष्ट नहीं होते। विमुक्तजनोंके लिये भी

हैं, जितना भक्तिसे। सम्पति, ऐश्वर्य, माहात्स्य, पुत्र- हरिका ऐक्य श्रोहरिकी आराधनासे ही प्राप्त होता है: (अध्याय २२९)

विष्णुभक्तिका माहात्म्य

सूतजीने कहा-सभी शास्त्रोंका अवलोकन करके तथा पुन:-पुन: विचार करके यह एक ही निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्यको सदैव भगवान नारायणका ध्यान करना चाहिये-

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विद्यार्थं च पुनः पुनः। इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येषी नारायण: (R\$=(t)

जो व्यक्ति एकनिष्ठ होकर नित्य उस नारायणका ध्यान करता है, उसके लिये नाना प्रकारके दान, विभिन्न तीयोंक। परिश्रमण, तपस्या और यत्रोंका सम्पादन करनेसे क्या प्रयोजन? अर्थात् श्रीमन्नारायणका भ्यान सर्वोत्कृष्ट है।

छियासठ हजार तीर्थ भगवान नारायजके प्रणामको सोलहर्वी कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते। समस्त प्राथक्षित और जितने भी तप-कर्म हैं, इन सभीमें भगवान कृष्णका स्मरण ही सर्वब्रेष्ट है, ऐसा समझना चाहिये। जिस पुरुषको अनुरक्ति सदैव पापकर्ममें रहती है, उसके लिये एकमात्र श्रेष्ठतम प्रायक्षित भगवान् हरिका स्मरण है।

जो प्राणी एक मुहर्तधर भी निग्रलस्य होकर नाग्रयणका भ्यान कर लेता है, वह स्वर्ग प्राप्त करता है, फिर नारायणमें अनन्य-परायण भक्तके विषयमें क्या कहा जाय-

ध्यायेत्रारायणमतन्त्रितः। सोऽपि स्वर्गतिमाणोति कि पुनस्तत्परायणः॥

(310 IE) जो मनुष्य योगपरायण है अथवा योगसिद्ध है, उसकी चित्तवृत्ति जागते, स्वप्न देखते तथा सुष्पावस्थामें भगवान् अच्युतके ही आख़ित होती है। उठते, गिरते, रोते, बैठते, खाते. जागते भगवान् गोविन्द माधव विष्णुका स्मरण करना चाहिये।

अपने-अपने कर्ममें संलग्न रहते हुए भगवान जनाईन हरिमें ही चित्तको अनुरक्त रखना चाहिये, ऐसा शास्त्रका कथन है। अन्य बहुत-सी बातोंको कहनेसे क्या लाभ— स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः कुर्याच्यतं जनार्दने।

शास्त्रानुसारोक्तिः किमन्यैर्वहभाषितै:॥

(23018) ध्यान ही परम धर्म है, ध्यान ही परम तप है, ध्यान हो परम शुद्धि है, अत: मनुष्यको (भगवद्) ध्यानपरायण होना चाहिये। विष्णुके ध्यानसे बदकर अन्य कोई ध्यान नहीं है, उपवाससे बदकर अन्य कोई तपस्या नहीं है, अत: भगवान् वासुदेवके चिन्तनको ही अपना प्रधान कर्म मानना चाहिये। इस लोक और परलोकमें प्राणीके लिये को कुछ इलंभ है, जो अपने मनसे भी सोचा नहीं जा सकता, वह सब बिना माँगे ही ध्यानमात्र करनेसे मधुसुदन प्रदान कर देते हैं।

यज्ञ आदि उत्तम कर्म करते समय प्रमादवश स्खलनसे जो न्युनक होती है, वह किप्युके स्मरणमात्रसे सम्पूर्णतामें परिवर्षित हो जाती है, ऐसा श्रुतिवचन है-

प्रमादात् कृतंतां कर्म प्रध्यवेताध्यरेषु यत्। स्थरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्ण स्थादिति अतिः॥ (450143)

पापकर्म करनेवालोंको शुद्धिका ध्यानके समान अन्य कोई साधन नहीं है। यह ध्यान पुनर्जन्म देनेवाले कारणींको धस्म करनेवाली योगाप्ति है। समाधि (ध्यानयोग)-से सम्पन योगी योगाग्निसे तत्काल अपने समस्त कर्मीको नष्ट करके इसी जन्ममें मुक्ति प्राप्त कर लेता है। वायुके सहयोगसे कैंचे उठनेवाली ज्वालासे युक्त अग्नि जैसे अपने आवय कक्ष (कमरे)-को जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही योगी (ध्यानयोगी)-के चित्तमें स्थित श्रीविष्ण् योगीके समस्त पापाँको भस्म कर देते हैं। जैसे अग्निक संयोगसे सोना मलरहित हो जाता है, वैसे हो मनुष्योंका मल भगवान वासुदेवके सीनिध्यसे विनष्ट हो जाता है।

हजारों बार गङ्गास्तान तथा करोड़ों बार पुष्कर नामक तीर्थमें स्नान करनेसे जो पाप नष्ट होता है, वह हरिका मात्र स्मरण करनेसे नष्ट हो जाता है। हजारों प्राणायाम करनेसे जो पाप नष्ट होता है, यही पाप क्षणमात्र भगवान हरिका ध्यान करनेसे निश्चित ही नष्ट हो जाता है। जिस मनुष्यके हृदयमें भगवान् केशव विराजमान हैं, उसके मानसपर उन ध्यान करना चाहिये। दुष्ट उक्तियों तथा पाखण्डका प्रभाव नहीं पड़ता, जो कलिके प्रभावसे प्रवृत्त हैं। जिस समय हरिका स्परण किया जाता भगवान् हरि विराजमान रहते हैं, उन्हींको वास्तविक है, वही तिथि, वही दिन, वही रात्रि, वही सोग, वही लाभ और जय प्राप्त होते हैं। उनका पराभव कैसे हो चन्द्रबल और यही लग्न सर्वश्रेष्ठ है। जिस मुहुर्त या क्षणमें सकता है-वासुदेवका चिन्तन नहीं होता, वह मुहुर्त या श्रण हानिका समय है। वह अत्यन्त व्यर्ध है। वह किसी भी प्रकारके लाभसे रहित होनेके कारण मुर्खाता एवं मूकता (गूँगेपन)-का समय है।

जिसके इदयमें भगवान् गोविन्द विद्यम्बन हैं, उसके लिये कलियुग भी सत्ययुग ही है। इसके विपरीत जिसके हदयमें अच्युत भगवान् गोविन्दका वास नहीं है, उसके लिये तो सत्ययुग भी कलियुग ही है। जिसका चित्त आगे और पीछे, चलते तथा बैठते, सदैव भगवान् गोविन्दमें रमा हुआ है, वह व्यक्ति सदा हो कृतकृत्य है-

कली कृतपुर्ग तस्य कलिस्तस्य कृते युर्ग। हदये यस्य गोविन्दो यस्य चेतसि नाच्युतः॥ यस्यायतस्तथा पृष्ठे गच्छतस्तिष्ठतोऽपि गोविन्दे नियतं चेतः कृतकृत्यः सदैव सः॥ (35-651 set)

हे मैत्रेय! जप, होम एवं पूजा आदिके द्वारा जिसका यन वासुदेव बीकृष्णको आराधनामें अनुरक्त है, उसके लिये इन्द्र आदिका यद विष्नके समान है।

जिन्होंने श्रीकेशबके बरणोंमें अपने मनको अपित कर दिया है, वे गृहस्थाश्रमका परित्याग बिना किये हो, कठिन तपक्षयां चिना किये ही पौरुषी (पुरुषोत्तम परब्रह्मको शक्ति) मायाके जालको काट डालते हैं।

गोबिन्द दामोदरका इदयमें वास रहनेपर मनुष्य क्रोधियोंके प्रति क्षमा, मुखाँके प्रति दया और धर्ममें संलग्न प्राणियोंके प्रति प्रसन्नता प्रकट करते हैं-

क्षमां कुर्वन्ति कृद्धेषु दयां मूर्खेषु मानवाः। मुदं च धर्मशोलेषु गोविन्दे हृदयस्थिते॥

(230170)

स्नान-दान आदि कर्मोमें तथा विशेष रूपसे सभी प्रकारके दुष्कर्मीका प्रायक्षित करते समय भगवान् नारायणका

जिनके इदयमें नीलकमलके समान सुन्दर श्यामवर्ण

लाभस्तेषां जयस्तेषां कृतस्तेषां पराभवः। **पंचामिन्दीवरस्थामी** जनादैन: ॥ हदयस्यो (750174)

इरिमें समर्पित चित्तवाले कीड़े-मकोड़े, पक्षी आदि जीव-जन्तुओंकी भी ऊर्ध्व (उत्तम) गति होती है। फिर ज्ञानसम्बन मनुष्योंकी गतिके विषयमें कहना ही क्या-कोटपश्चिगणानां च हरी संन्यस्तचेनसाम्। कद्व्यां होय गतिशास्ति कि पुनर्शनियां नृणाम्॥ (230130)

भगवान् वासुदेवरूपी वृक्षकी छाया न तो अधिक सोतल होती है और न अधिक तापकारक होती है। नरकके द्वारका शमन करनेवाली (नरकमें जानेसे रीकनेवाली) इस खायाका सेवन क्यों नहीं किया जाय-

वासुदेवतरुकाया नातिशीतातितापदा। नरकद्वारणयनी सा किमधे न सेव्यते॥

हे मित्र! भगवान् मधुसुदनको अपने हृदयमें अहर्निज्ञ प्रविष्ठित रखनेवाले प्राणीका बिनाश करनेमें न तो महाक्रीधी दर्वासाका साथ समर्थ है और न तो देवराज इन्द्रका शासन हो समर्थ है-

न च दुर्वाससः शापो राज्यं चापि शचीपतेः। हन् समर्थ हि सखे इत्कृते मधुसूदने॥

(2\$01\$2)

बोलते हुए, रुकते हुए अथवा इच्छानुसार अन्य कार्य करते हुए भी यदि भगवद्विषयक चिन्तन निरन्तर बना रहे वो धारणा (ध्येयपर चित्तको स्थिरता)-को सिद्ध हुआ मानना चाहिये-

वदत्तरितष्टतोऽन्यद्वा स्वेच्छया कर्म कुर्वतः। नापवाति यदा चिन्ता सिद्धां मन्येत धारणाम्॥ (30133) सुशोभित, केयूर¹, मकराकृतकुण्डल और मुकटसे अलंकत. दिव्य हारसे युक्त, मनोहारिणी सुन्दर स्वर्णिम आभासे युक्त शरीरवाले, शंख-चक्रधारो भगवान् विष्णुका सदैव ध्यान करना चाहिये-

> ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवती सरसिजासनसंनिविष्टः। नारायणः केयुरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरणस्पवपुर्धतशङ्खकः॥

> > (250)34)

इस संसारमें भगवानुके ध्यानके समान जन्म कोई पवित्र कार्य नहीं है। त्रीविष्णुके ध्यानमें हो छदा निरत रहनेवाला मनुष्य चाण्डालका भी अत्र खाते हुए इस संसारके पापसे संलिप्त नहीं होता, क्योंकि ऐसा मनुष्य अपने स्थलको भगवानुमें लीन कर देनेसे भगवन्मय हो जाता है, अतएव उसकी भेददृष्टि पूरो तरह निर्मुल हो जाती है।

प्राणीका चित्त सदा सांसारिक विषयवामनाओंक भौगमें जिस प्रकार अनुरक्त रहता है, यदि उसी प्रकार नारायणमें ही अनुरक्त हो तो इस संसारके बन्धनसे क्यों नहीं विमुक्त हो सकता-

चित्तं समासकं जनोविषयगोचरे। यदि नारायणेऽप्येवं को न मुख्येत बन्धनात्॥

(220135)

स्तजीने फिर कहा-हे शौनक! सर्वदा जिसके चित्तमें भगवान विष्णुकी भक्ति विद्यमान रहती है, वह प्रतिक्षण श्रीविष्णुको ही नमन करता रहता है। इस स्थितिमें वह हरिकृपासे अपनेको पापके समुद्रमे तार लेता है।

यही जान है जिस जानका विषय गोविन्द हों, वही कथा है जिस कथामें केशवकी लीला हो, वही कर्म है जो प्रभुके निमित्त किया जाय: अन्य बहुत-सी बातोंको कहनेसे क्या लाभ? जो जिहा हरिकी स्तुति करती है वही जिहा है, जो चित्त त्रीहरिको समर्पित है वही चित्त है तथा भगवानुको पूजा उनमें प्राणीका विलय हो जाता है तो इसमें आश्चर्यकी क्य

सूर्यमण्डलके मध्य विराजमान रहनेवाले, कमलासनपर करनेमें जो हाथ लगे हुए हैं वे ही वास्तविक हाथ हैं— तस्त्रानं यत्र गोविन्दः सा कचा यत्र केशवः। तत्कर्म यत् तदर्धाय किमन्येर्वहुभाषितै:॥ सा जिह्ना या हरि स्तीति तब्बित्तं यत् तदर्पितम्। तावेव केवली ज्लाच्या यो तत्पुजाकरी करी॥

(230 (36-39)

मस्तकका फल है भगवानुको नतमस्तक होकर प्रणाम करना, हाथका फल है भगवानुको पूजा करना, मनका फल है उनके गुण और कर्मका चिन्तन करना तथा वाणीका फल है गोविन्दके गुणीका कर्तिन करना-

प्रकाममीशस्य शिर:फलं स्तवर्धनं पाणिफलं दिवीकसः। तद्युणकर्षविन्तनं वचस्तु गोविदगुणस्तृतिः फलम्॥

(S\$0180)

मनुष्यके पापकर्मको जो राज्ञि सुमेरु और मन्दराचलके समान विकास हो गयी हो, वह सम्पूर्ण पापराणि भी भगवान केशकका स्मरणमात्र करनेसे ही जिनष्ट हो जाती है-पापस्य कर्मणः। मंरुपन्दरमात्रोऽपि राशि: केशवस्मरणादेव तस्य सर्व विनश्यति ॥

(230188) डीविष्णुपरायण भक्त अनासक-भावसे यदि अपने सभी

कर्मोंको बोविष्णुके चरणोंमें समर्पित करता है तो उसके कर्म साथु हों या असाथु बन्धनकारक नहीं होते। हे प्रभो। सर

असर, मनुष्य, तिर्यक्, स्थावर आदि भेटोंमें विभक्त तुणसे लेकर ब्रह्मपर्यन्त समस्त जगत् आपकी ही मायासे मोहित है

जिनमें यन लगा देनेसे प्राणी नस्कमें नहीं जाता और जिनके चिनान-सुखको तुलनामें स्वर्गकी प्राप्ति विषये समान है तथा ब्रह्मलोकको कामना भी अत्यल्प होनेबे कारण किसी भी प्रकार मनमें प्रवेश नहीं पाती, जो अञ्चय भगवान् जड बुद्धिवाले मनुष्योंके चित्तमें स्थित होकर उन्हे मुक्ति प्रदान कर देते हैं, उन अब्युतका कीर्तन करनेपर यदि

१-बोहके मूलमें पहना जानेवाला आधृषण, इसे अङ्गद, विकायर, कानुबंद आदि भी कहते हैं।

बात है ??

दु:ख-सागरको पार करनेके लिये यज्ञ, जप, स्नान और विष्णुका ध्यान तथा पूजन करना चाहिये।

राष्ट्रका आश्रय राजा, बालकका आवय पिता और समस्त प्राणियोंका आश्रय धर्म है; किंतु सभीके आश्रय श्रीहरि ही हैं—

राष्ट्रस्य शरणं राजा पितरो बालकस्य छ। धर्मश्च सर्वपन्यांनां सर्वस्य शरणं हरि:॥

(SIOLA)

हे मुनिवर! जो लोग जगत्के कारणस्वरूप सनातन भगवान् वासुदेवको नमन करते हैं, उनसे अधिक ब्रेष्ठ पुण्यवान् कोई तीर्थ नहीं है। निरालस्य होकर मोबिन्दका ध्यान करते हुए उन्होंको समर्पित स्वाध्याम आदि कर्म करना चाहिये। भगवद्भक व्यक्ति चाहे सूद्र हो अथवा निषाद हो या चाण्डाल हो, उसे द्विजातियोंके सम्मन ही माननेवाला व्यक्ति नरकमें नहीं जाता। जैसे धनप्राध्विकी अभिलाधारे धनवान् व्यक्तिकी सदैव सम्मानपूर्वक स्तुति को जाती है, वैसे ही जगल्लहा बीविष्णुको स्तुति-पूजा आदि की जाय तो क्यों नहीं इस संसारके बन्धनसे मुक्ति हो सकती है?

जिस प्रकार वनमें लगी हुई अग्नि गीले ईंधनको जलाका राख कर देती है, उसी प्रकार योगियोंके हृदयमें स्थित भगवान् विष्णु उनके समस्त पापोंको विनष्ट कर देते हैं। जैसे चारों ओरसे लगी हुई अग्निकी ज्वालासे चिर हुए पर्वतका आश्रय मृग आदि पशु एवं पक्षी नहीं लेते, जैसे हो सभी चाप योगाभ्यासमें लगे हुए मनुष्यका आश्रम नहीं ग्रहण करते। उन विष्णुके प्रति जिसका विश्वास जितना अधिक दृढ़ होता है, उसको उतनी ही अधिक स्मिद्ध प्राप्त होती है।

भगवान् कृष्णके ऐसे प्रभावका आकलन कर शत्रुभावसे उन गोविन्दका स्मरण करता हुआ दमषोवका पुत्र शिशुपाल भगवान्में लीन हो गवा। यदि कोई मनुष्य भक्तिभावसे विष्णुपरावण है, तो उसके विषयमें क्या कहना? उसकी मुक्ति तो पहलेसे ही सुनिश्चित हो जाती है—

विद्वेषादिय गोविन्दं दमयोषात्मजः स्मरन्। जिल्लुपालो गतस्तत्त्वं कि पुनस्तत्परायणः॥

(5301AX)

(अध्याय २३०)

नृसिंहस्तोत्र तथा उसकी महिमा

सूतजीने कहा—हे तीनक। अब मैं भगवान् तिबदार कही गयी नारसिंहस्तृति (नृसिंहस्तोत)—का वर्णन करूँमा। प्राचीन कालकी बात है, एक बार सभी मातृगणीने भगवान् शंकरसे कहा कि है भगवन्। हम सब आपकी कृपासे देव, असुर और मनुष्य आदि जो इस संसारमें प्राणी है, उन सबको खायेंगे। हम सभीको आप इसके लिये आज्ञा प्रदान करें।

शंकरजीने कहा — हे पातृकाओ ! आप सबके द्वारा संसारकी समस्त प्रजाकी रक्षा होनी चाहिये। इसलिये इस महाभयंकर पापसे आप लोग अपने-अपने मनको लोग्न वापस कर लें।

भगवान् शंकरके द्वारा ऐसा कहे जानेपर भी मातृकाएँ उनके बचनका अनादर करते हुए त्रिभुवनके समस्त चरावा

प्राचयोको खानेके लिये जुट गयी। मातृकाओंक द्वारा त्रैलोक्यका प्राचय करते देखकर भगवान् क्रियने मुसिहरूप उन श्रीविष्णुदेवका इस रूपमें ध्यान किया— को आदि-अन्तसं रहित एवं समस्त चराच्य जगत्के कारण हैं, विद्युत्के समान लपलपाती हुई जिनकी डीवा देदीप्यमान केसरसे सुशोधित हैं, जो रत्नजटित अङ्गद एवं मुकुटसे सुशोधित हैं। जिनका शिरोभाग सोनेके समान दिखायी देनेवाली जटाओंसे युक्त हैं, जिनके कटिप्रदेशमें सोनेकी करधानी हैं, जो नीलकमलके समान श्यामवर्णके हैं, जो रत्नखाचित यायल धारण किये हुए हैं। जिनके तेजसे सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड ज्याप्त है। जिनका शरीर आवर्ताकार रोमसमूहसे युक्त हैं और जो देव श्रेष्टतम पुष्पोंसे गूँधी गयी एक विशाल मालाको धारण किये हुए हैं। इस तरह भगवान् रुद्रने

१-यस्मिन् त्यस्तमतिर्ने यति नरकं स्थागैऽपि चन्तिनते विष्नो यत्र न व विक्रेष् कथमपि ब्राह्मेऽपि लोकोऽत्यकः।

मुक्ति चेतसि संस्थितो जडधियां पुंसां ददात्यव्ययः कि चित्रं चदयं प्रयाति किलयं तत्राच्युते कोर्तिते॥ (२३०।४४)

२-सिंहकी ग्रीवाके ऊपरी भागके केशसमूहको 'बेसर' कहते हैं।

भक्तिपूर्वक जिस रूपमें नारायणका ध्यान किया था, उसी नमस्कार है। रूपमें ध्यान करनेमात्रसे नृसिंहदेव श्रीविष्णुने उन्हें अपना दर्शन दिया। यह रूप देवताओंके द्वारा भी दुनिरोध्य था।

शिवने देवेश नुसिंहको प्रणाम करके उन्हें तुष्ट किया और वे इस प्रकार उनकी स्तृति करने लगे। शंकरजीने कहा-नमसोऽस्त जगन्नाच नासिंहवपूर्धर। दैत्येश्वरेन्द्रसंहारिनखश्किविराजित नखमण्डलसंभित्रहेमपिङ्गलविग्रह नमोऽस्तु पचनाभाव शोधनाय जगदुरो। कल्पान्ताम्भोदनिर्धोध सुर्वकोटिसमप्रभ ॥ सहस्वयमसंवास सहस्रोन्द्रपराक्रम। सहस्रधनदस्फीत सहस्रवरणत्मक ॥ सहस्रचन्द्रप्रतिम सहस्रांशहरिकम्। सहस्रवद्यसंस्तृत ॥ सहस्रक इते जस्क सहस्राक्षविरीक्षण।

सहस्रहद्रसंजन

सहस्रकान्समधन

सहस्ववायुवेगाक्ष

(244 1 t2-t64.)

सहस्रवन्धपोचन ॥

सहस्राजक्षाकर।

हे समस्त संसारके स्वामी। हे नुसिंहरूपशारिन्। हे दैत्पराज हिरण्यकशिपुके वक्ष;स्थलको विदोणं करनेवाले। शक्तियोंके समान चमकीले नाखनोंसे मुझोधित देव। आपको नमस्कार है। हे नखमण्डलकी कान्तिसे मिकित सुवर्णके समान देदीच्यमान जरीरवाले। हे जगदवन्छ। हे शोधासम्पन्न भगवान् पद्मनाभ। प्रलय कालीन मेचके सदश गर्जना करनेवाले, करोड़ों सूर्यक समान प्रधासम्पन्न देव। आपको नमन है। दृष्ट पापियोंको हजारों यमराजके समान भवभीत करनेवाले। हजारों इन्द्रकी शक्ति अपनेमें सनिहित रखनेवाले। हजारों कुबेरके सदश धनसम्पन्न। हजारों चरणसे युक्त है देव। आपको नमस्कार है। हजारों चन्द्रके समान शीतल कान्तियाले! हजारों सूर्यके सदश पराक्रमशाली! हजारों रुद्रकी भौति तेजस्वी। हजारों ब्रह्मासे स्तृत्य हे देव। आपकी मेरा नमन है। हजारों रुद्र देवताओंके द्वारा मन्त्ररूपमें जप करने योग्य महामहिम। इन्द्रके हजारी नेत्रोंसे देखे जानेवाले।

इस प्रकार नृसिंहरूपधारी देवदेवेश्वर भगवान् हरिकी म्तुति करके विनम्रतापूर्वक शिवने पुन: उनसे कहा-

हे देवदेवेशर। अन्धकासुरका विनाश करनेके लिये जिन मातुकाओंकी सृष्टि मैंने की थी, वे तो मेरे ही वचनकी अवहेलना करके संसारको विविध प्रजाओंका भक्षण कर रही हैं। मातुकाओंकी सृष्टि करके तो अब स्वयं मैं इनका संहार करनेमें असमर्थ हूँ। पहले इनकी सृष्टि को, अब कैसे इनका विनाश करूँ? यह मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।

रुद्रके ऐसा कहनेपर नुसिंहरूपधारी भगवान हरिने उसी समय अपनी जिहाके अग्रभागसे हजारी देवियोंको उत्पन्न करके उन्होंके द्वारा देवता, असर और मनुष्य आदिका संहार करनेवाली कुद्ध मातुकाओंका विनाश कर संसारका कल्याण किया। तदनन्तर वे हरि अन्तर्धान हो गये।

जो मनुष्य नियमपूर्वक इस नारसिंहस्तोत्रका जितेन्द्रिय होकर पाठ करता है. निश्चित ही भगवान हरि उसके समस्त मनोरधको वैसे ही पूर्ण करते हैं जैसे उन्होंने शिवके मनोरचको पूर्ण किया था।

मध्याद्रकालीन प्रचण्ड सूर्यके समान तेजस्त्री नेत्रीवाले, धेत वर्णके कमलमें स्थित, प्रज्वलित आग्निके सदश भयंकर, अनादि, मध्य और अन्तसे रहित पुराणपुरुष, परात्पर, जगदाधार भगवान नृसिंहका ध्यान करना चाहिये-

ध्यायेष्ठसिंहं तरुणार्कनेत्रं सिताम्बजातं न्वलितानिवस्त्रम्। अनादिमध्यानस्थ पुराणं परात्परश जगतां निधानम् ॥

(481785)

जो मनुष्य इस स्तोत्रका निरन्तर जप करता है, उसके द:खसमूहको श्रीनुसिंह उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं जिस प्रकार अंजुमाली सूर्य कुहरेकी राशिको अपने सामनेसे हटा देते हैं। जब साधक कल्याणकारी मातवर्गसे युक्त नृसिंहदेवकी मृर्तिका निर्माण करके उनकी पूजा करता है, तब वह सदैव हजारों जन्मके पाप-पुण्योंका मन्दन करनेवाले! संसारके उन परात्परदेवके समीपमें ही रहता है। त्रिपुरारि शिवने भी हजारों जीबोंका बन्धन काटकर उन्हें मुक्त करनेवाले! तो उन्हीं देवदेवेश्वर नुसिंहमूर्ति भगवान् हरिकी पूजा की हजारों वायुदेवोंके समान वेगवान और हजारों मूर्ख थी। उन्हीं देवको प्रसन्न करके ब्रीशियजीने वर प्राप्त किया प्राणियोंपर कृपा करनेवाले हे दयानिधान! आफ्नो मेरा और मातुकाओंसे संसारको रक्षा की। (अध्याय २३१)

कुलामृतस्तोत्र

नामक स्तोत्रका वर्णन करूँगा, जिसका वर्णन देवर्षि करनी चाहिये। नारदके पूछनेपर जिबने किया था। उसे आप सुर्ने। जो विश्वरूप, अनादि, अनन्त, अजन्मा तथा हृदयमें

मनुष्य संसारमें काम-क्रोध और शुभाशुभ इन्होंसे क्या है, वह मुक्त हो जाता है। शरीररहित, विधाता, सर्वज्ञानसम्पन्न, शब्दादि विषयोंसे बैंधकर सदासे पीड़ित हो रहे हैं, उनकी अनके रमणके अनन्य आश्रय, अचल, सर्वत्र व्याप्त भगवान् जन्म-मृत्युरूपी संसार-सागरसे जिस उपायद्वारा धणमात्रमें विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मुक्त हो जाता है। विमुक्ति हो जाय, उसको हम आपसे सुनना चाहते हैं। निर्विकल्प (निर्विशेष), निराभास, निष्प्रपञ्च तथा निर्दोष,

बन्धनको नष्ट करनेवाले और दु:खका विनात करनेवाले मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। सर्वात्मक एवं प्राणिमाश्रके परम गोपनीय रहस्यको मैं कहता हूँ, सुनो- तिनकेसे लेकर जनके एकमात्र प्रतिनिधि, शुभ, एकाध्वर (एक अक्षर 'अ' ब्रह्मातक चार प्रकारको चराचर सृष्टि इस जगत्में जिन. मात्रसे बोध्य) विष्णुका ध्यान करनेसे मुक्ति हो जाती है। प्रभुकी मायासे अज्ञानके वशीभृत होकर सदैव सोती रहती वाक्यातीत (किसी भी वाक्यसे अवर्णनीय), तीनों कालोंको है, उन विष्णुकी कृपासे यदि कोई जग जाता है तो वहीं जाननेवाले, लोकसाक्षी, विश्वेश्वर तथा सभीसे श्रेष्ठ विष्णुका संसारसे पार होता है। यह संसार देवताओंके लिये भी सदा ध्यान करनेसे मुक्ति हो जाती है। ब्रह्मा आदि देव, अत्यन्त दुस्तर है। भोग और ऐश्वर्यके मदमें उन्मत्त तथा गन्धर्य, मृति, सिद्ध, चारण एवं योगियंकि द्वारा सदा सेवित तत्त्वजानसे पराङ्मुख, स्त्री, पुत्र और कुटुम्बियोंके व्यामोहमें बोविष्युका ध्यान करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। संसार-सन्धनसे भ्रमित होकर सभी प्राणी नाना प्रकारके दु:ख झेलते हैं। इस मुक्ति चाहनेवाले सभी लोगोंको वरद श्रीविष्णुकी इसी व्यामोहमें फैसे हुए सभी जीवोंकी वैसी ही गति होती हैं, प्रकार सदा स्तुति करनी चाहिये। यदि कोई भी संसार-जैसी गति समुद्रमें स्नान करनेके लिये आये हुए बुद्ध बन्धनसे युक्ति चाहता है तो उसे समाहितचित होकर अनन्त, जंगली हाथियोंकी होती है। जो मनुष्य हरिकीर्तन करनेके अञ्चय देवाधिदेव, अनन्त ब्रह्माण्डमें सर्वोच्च देवके रूपमें समय अपने मुखको बंद रखता है अर्थात् हरिकोर्तको सुप्रतिष्ठित, समस्त जगतुके नियन्ता, अज श्रीविष्णुका सदा पराङ्मुख रहता है, वह कोशमें स्थित कीडेके समान होता ध्यान करना चाहिये। है। उसकी मुक्ति तो करोड़ों जन्म लेनेपर भी सम्भव नहीं सुतजीने कहा—प्राचीन कालमें देवर्षि नारदके द्वारा

सूतजीने कहा-हे शौनक! अब मैं उस कुलामृत अव्यय भगवान् विष्णुकी प्रसन्नतापूर्वक सम्यक् आराधना

नारदजीने कहा-हे त्रिपुरान्तक भगवन्! जो दुर्मतिपूर्व स्थित, अविचल, सर्वज्ञ भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करता इसपर भगवान् शंकर बोले-हे ऋषित्रेष्ट। भव- वासुदेव, परम गुरु भगवान् विष्णुका ध्यान करनेसे मनुष्य

है। अतः हे नारद! प्रसन-चित्त होकर सदैव देवदेवेश पूछनेपर वृषभध्यज शिवने नारदसे श्रीविष्णुका जैसा वर्णन

निर्विकल्पं निराधासं निष्प्रपञ्चं निरामयम् । वासुदेवं गुरु विष्णुं सदा ध्यापन् विस्ववते । सर्वात्मकं च वै यावदात्मचैतन्यरूपरूप् । सूधमेकाशां विष्णुं सदा ध्यापन् विमुख्यो । वाक्यातीतं त्रिकालातं विश्वेतं लोकसावियाम् । सर्वसमादुत्तमं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥ . ब्रह्मादिदेवगन्धर्वमृतिभिः सिद्धावर्तः । योगिभिः सेवितं विष्णं सदा ध्यावन् विमुख्यते॥ संसारवन्धनान्युक्तिमञ्जेस्सोको द्वारोधनः। स्तुन्तैव वरदं विज्युं सदा ध्यापन् विमुचाते॥ संसारबन्धनात् कोऽपि मुक्तिमिच्छन् समाहितः। अनन्तमध्यपं देवं विषणुं विश्वप्रतिहितम्।

विश्वेश्वरमञ्जे विष्णुं सदा ध्यायन विम्च्यते ॥

(337188-46)

१-यस्तु विश्वमनाधनामनमात्र्यनि संविधानम्। प्रयोग्रमधाते विष्णुं सदा ध्यापेत् स मुख्यते। देवं गभीचितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुख्यते । अवारीरं विध्वतारं सर्वज्ञानमनोर्गतम् । अचलं सर्वगं विष्णुं सदा ध्यावन् विमुच्यते ह

किया था वैसा मैंने आपसे कर दिया है। हे तात! निस्नार उन अक्षय, निष्कल, सनातन, अध्यय, ब्रह्मस्वरूप विष्णुका ध्यान करते हुए आप निश्चित ही उनके शास्त्रत पदको प्राप्त करेंगे। हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यजीका अनुशान करनेसे मनुष्यको जो फल प्राप्त होता है, वह एकाग्रचित्त होकर विष्णुका क्षणमात्र ध्यान करनेसे प्राप्त होनेवाले फलके सोलहवें भागकी भी समानता करनेमें समर्च नहीं है।

भगवान् शिवसे विष्णुके इस माहाल्यको सुनकर सिद्ध देवर्षि नारदने उनकी सम्यक् आराधना करते हुए परम पदको प्राप्त किया। जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक नित्य इस स्तुतिका पाठ करता है, उसके करोड़ों जन्ममें किये गये पाप नष्ट हो जाते हैं। महादेवके द्वारा कही गयी यह स्तुति बड़ी दिव्य है। जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक इस स्तुतिका नित्य पाठ करता है, वह अमृतत्व अर्थात् परम वैष्णव पदको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय २३२)

मृत्व्वष्टकस्तोत्र

सूतजीने कहा—हे शौनक। अब मैं मार्कण्डेयमुनिके द्वारा कहे गये स्तोत्रको बतलाता हूँ जो इस प्रकार है— दामोदरं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥ शह्नचक्रधरे देवं व्यक्तरूपिणमध्ययम्। अधोक्षजं प्रपन्नोऽस्मि कित्रो मृत्युः करिष्यति॥ वराहे वाधनं विष्णुं नारसिंहं जनार्दनम्। माथवं च प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ।। पुरुषं पुष्करक्षेत्रबीनं पुष्यं जनत्पतिप्। लोकनार्थं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥ सहस्रशिरसं देवं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्। महाबोगं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥ भूतात्मानं महात्मानं यज्ञयोनिमयोनिजम्। विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥ इत्युदीरितमाकण्यं स्तोत्रं तस्य महात्मनः। अपयातस्ततो मृत्युविष्णुद्तैः प्रपीडितः॥ इति तेन जितो मृत्युमकिण्डेयेन धाँमता। प्रसने पुण्डरीकाक्षे नृतिहे नास्ति दुर्लभय्॥

(343/5-4)

मैं भगवान् दामोदरकी ऋरणमें हूँ, मृत्यु मेरा क्या कोगों? ैं शंखचक्रधारी, व्यक्त, अव्यय, अधोक्षतको शरणमें हूँ नृत्यु भेरा क्या करेगी? मैं वराह, वामन, विष्णु, नृसिंह,

जनाईन, माधवके ऋरणागत हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैं पुरानपुरुष, पुष्करक्षेत्रके (मूलतत्त्व) बीजभूत, (मूल पुरुष) महापुष्प, जगत्पति, लोकनाथको शरणमें हुँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैं सहस्र सिरवाले, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन, महायोगेश्वरको शरणमें हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैंने प्राणियोंमें 'आत्या' स्वरूपसे विद्यमान रहनेवाले, महात्या, यज्ञयोनि, अयोनिज, विश्वरूप भगवान्की शरण ग्रहण कर ली है. अब मृत्यु भेर क्या करेगी? इस प्रकार उन महात्या मार्कण्डेयमुनिके द्वारा को गयी स्तुतिको सुनकर थिष्णु-दूतींसे संत्रस्त मृत्यु भाग जाती है। इस स्तोत्रका पाठकर बुद्धिमान् श्रीमार्कण्डेयने मृत्युपर विजय प्राप्त कर ली। पुण्डरीकाक्ष बीनुसिंह महाविष्णुके प्रसन्न होनेपर कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

यह मृत्य्वष्टकस्तोत्र महापुण्यशाली है, मृत्युका विनाश करनेवाला और मङ्गलदायक है। मार्कण्डेयमुनिका कल्याण करनेके लिये भगवान् विष्णुने स्वयं इस स्तोत्रको कहा था। जो ननुष्य नित्य तीनों कालोंमें पवित्रतासे भक्तिपूर्वक इस स्तुतिका नियमपूर्वक पाठ करता है, वह विष्णुभक अकलमृत्युसे ग्रस्त नहीं होता। जो योगी अपने हृदयकमलमें पुराणपुरुष, सनातन, अप्रमेव तथा सूर्यसे भी अत्यधिक वैजस्वी नारायणका ध्यान करता है, वह मृत्युपर विजय प्राप्त कर लेता है। (अध्याय २३३)

अच्युतस्तोत्र

सूतजीने कहा—हे शौनक! अब मैं अच्युतस्तोत्रका वर्णन करूँगा जो प्राणियोंको सब कुछ प्रदान करनेवाला है। देवर्षि नारदके पृछनेपर ब्रह्माजीने उस सर्वश्रेष्ठ स्तोत्रका जैसा वर्णन किया था, वैसा ही आप मुझसे सुनें।

नारदजीने पूछा-हे ब्रह्मन्! प्रतिदिन पूजाके समय जिस प्रकार अक्षय, अव्यय, वर प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णुकी स्तुति मुझे करनी चाहिये, वह बतानेको कृपा करें। वे सभी प्राणी धन्य हैं, उन सबका जन्म लेना सफल है, वे ही सब प्रकारका मुख प्राप्त करनेवाले हैं, उन्हों सञ्जनोंका जीवन सार्थक है, जो धगवान् अच्युत विष्णुकी सदैव स्तुति करते हैं।

ब्रह्माजीने कहा-हे मुने! मैं भगवान् वासुदेवका वह स्तोत्र जो प्राणियोंको मोक्ष देनेवाला है और जिस स्तोत्रके द्वारा पुजाकालमें सम्यक् स्तुति किये जानेपर भगवान् नारायण प्रसन्न होते हैं, उसे आपको सुनाता हूँ, सुनें। वह स्तोत्र इस प्रकार है-

🕉 नमो [भगवते] वासुदेवाय नमः सर्वापहारिणे। विशुद्धदेहाय नमो ब्रानस्वक्षपिणे ॥ सर्वसुरेशाय श्रीकलधारिणे ! नम: नम: नमञ्चमसिहस्ताय नम: पङ्क्रजमालिने॥ पीताम्बराय नमो विश्वप्रतिष्ठाय नम: नुसिंह क्रपाय नमा वैकण्डाय नमो नमः पङ्कजनाभाय श्चीरोदशायिने। नम: सहस्त्रज्ञाषिय नमो नागाकुशायिने ॥ परशृहस्ताय नमः नम: क्षत्रानकारियो । ग्रजिताय नमः सत्वप्रतिज्ञाय नमस्त्रैलोक्यनाथाय शिवाय सुक्ष्माय नमः पुराणाय नयो नमो बलिरान्यापहारिणे । वामनरूपाय गोविन्दाय नमो यज्ञवराहाय नमस्ते परपानन्द नमस्ते परमाक्षर। नमस्ते नमस्त ब्रानसद्भाव ज्ञानदायक ॥ नमस्ते परमाद्वेत नमस्ते प्रयोजम्। विश्वकृदेव नमस्ते नमस्ते विश्वभावन॥

स्ताद् विश्वनाध नमस्ते नमस्ते विश्वकारण। मधुदैत्यप्र नयस्ते नयस्ते रावणानक ॥ नमस्ते कंसकेशिए कटभार्दन। नमस्ते नमस्ते शतपत्राक्ष नमस्ते गरु इच्छा है।। कालनेमिध नमस्ते नमस्त गरुडासन्। नमस्त देवकीपुत्र नमस्ते बुष्पिनन्दन ॥ नयस्ते रुक्मिणीकान नमस्तेऽदितिनन्दन। गोकुलावास गोकुलप्रिय।। नमस्ते नमस्ते गोपवपः गोपीजनप्रिय। जब जय गोवर्धनाधार गोकुलवर्धन॥ वाण्रनाशन। रावणवीरम জন वृष्णिकुलोद्यात कालीयमदेन॥ सत्य जगत्साक्षिन् सर्वार्थसाधक। वेदानविदेश सर्वाधयाध्यक्त चित्रनिरञ्जन ॥ मुक्ष्य चिद्रानन्द जय जयस्तेऽस्तु निरालम्ब जय शान्त सनातन। जय नाथ जगतपुष्ट (पुत्र्य) जय विष्णो नमोऽस्तु से।। त्वं गुरुस्वं हरे शिष्यस्वं दीक्षामन्यमण्डलम्। त्वं न्यासमुद्रासमयास्त्रं पुष्पादिसाधनम्॥ कुर्मस्त्वं धराम्बुजम्। त्वमाधारस्त्रं द्वनतस्त्रं धर्मज्ञानादयस्त वेदिमण्डलशक्तयः॥ त्वं प्रभो छलभूहायस्त्वं पुनः स खरानकः। ब्रह्मर्षिश्च देवस्त्वं विष्णुः सत्यपराक्रमः॥ नुसिंहः परानन्दो बराहस्त्वं धराधरः। त्वं सुपर्णत्तवा वकं त्वं गदा शहु एव वा। त्वं औ: प्रभो त्वं पृष्टिस्त्वं त्वं माला देव शास्ती। श्रीवत्सः कीस्तुभस्त्वं हि शाङ्गी त्वं च तथेपुधिः॥ त्वं खड्गचर्मणा साधै त्वं दिक्यालास्त्रधा प्रभो। त्वं वेधास्त्वं विधाता च त्वं यमस्त्वं हुताशनः॥ धनेशस्त्वमीशानस्त्वमिन्द्रस्त्वमपाम्पतिः। त्वं रक्षोऽधिपतिः साध्यस्त्वं वायुस्त्वं निशाकरः॥ आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनी त्वं मरुद्रणाः। त्वं दैत्या दानवा नागास्त्वं यक्षा राक्षसाः खगाः॥

गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः पितरस्त्वं महामराः। भूतानि विषयस्त्वं हि त्वमव्यकेन्द्रियाणि व ॥ मनोबुद्धिरहङ्कारः क्षेत्रज्ञस्त्वं इदीश्वरः। त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः समिन्कुजाः॥ त्वं वेदी त्वं हो दीक्षा त्वं यूपस्त्वं हुताशनः। त्वं पत्नी त्वं पुरोडाशस्त्वं शाला सुक् च त्वं सुवः ध ग्रावाणः सकलं त्वं हि सदस्यस्वं सदक्षिणः। त्वं शूर्पदिस्त्वं च ब्रह्मा मुसलोलूखले धुवस्॥ त्वं होता यजमानस्वं त्वं धान्धं प्रमुखजकः। त्वमध्यर्थस्त्वमुद्राता त्वं यज्ञः पुरुषोत्तमः॥ विक्यातालमहि व्योम ग्रीस्त्वं नक्षत्रकारकः। देवतियंड्मनुष्येषु जनदेतच्यराचरम्॥ यस्किचिद् दृश्यते देव बह्याण्डमखिलं जगत्। तव ऋपनिर्द सर्व सृष्ट्रधर्य सम्प्रकाशितम्।। नाश्यन्ते परं बद्ध देवैरपि दुरासदम्। कस्त्वां जानाति विमलं योगगम्यमतीन्द्रयम्॥ अक्षयं पुरुषं नित्यमञ्चलमजमञ्चयम्। प्रलयोत्पत्तिरहितं सर्वेद्यापिनमीश्वरम् ॥ सर्वजं निर्मुणं शुद्धमानन्दमजरं परम्। बोधरूपं धूवं शानं पूर्णमद्वेतमक्षरम्॥ अवतारेषु या मूर्तिर्विदूरे देव दृश्यते। परं भावभजाननास्तां भजन्ति दिवौकसः॥ कथं त्वामीदृशं सूक्ष्मं शक्रोमि पुरुषोत्तमः। आराधिवतुमीज्ञान मनोऽगम्यमगोन्तरम्॥ इह यनगडले नाथ पृत्यते विधिवत् कर्मः। पुष्पभूपादिभियंत्र तत्र सर्वा विभूतपः ॥ सङ्कर्षणादिभेदेन तव यत्पृजितं पदा। क्षन्तुमहीस तत्सर्व यत्कृतं न कृतं मया।। न शकोमि विभी सप्यक् कर्तु पूजां यबोदिताम्। यत्कृतं जपहोमादि असाध्यं पुरुषोत्तम॥ विनिष्पाद्यिनुं भक्त्या अतस्त्वां क्षमयाम्यहम्। दिवा रात्री च सन्ध्यायां सर्वावस्थासु चेष्टतः ॥ अचला तु हरे भक्तिस्तवाङ्खियुगले मय। शरीरे न (ण) तथा प्रीतिनं च धर्मादिकेषु च॥

वद्या त्वयि जगन्नाच प्रीतिरात्यन्तिकी मम। कि तेन न कृतं कर्म स्वर्गमोक्षादिसाधनम्॥ यस्य विष्णौ दृहा भक्तिः सर्वकामफलप्रदे। पूजां कर्तुं तथा स्तोत्रं कः शक्रोति तवाच्युत॥ स्तुतं च पृजितं मेऽछ तत् क्षमस्य नमोऽस्तु ते। (53x1d-86 8/5)

मैं उन भगवान् वासुदेवको नमस्कार करता हूँ, जो सभी पापोंको हरण करनेवाले हैं। मैं विशुद्ध देहवाले, ज्ञानस्वरूप, सभी देवताओंके स्वामी, श्रीवत्सधारी', ढाल और तलवार धारण करनेवाले, कमलकी माला धारण करनेवाले, जगत्में प्रतिष्ठित, पीताम्बरसे अलंकृत, नृसिहरूप और वैकुण्डमृति बीविष्णुको बारम्बार नमन करता है।

मेरा उन देवको प्रणाम है, जिनकी नाधिमें कमल है, जो क्षीरसागरमें ज्ञयन करनेवाले हैं, जिनके हजारों सिर हैं, जो शेषशय्यापर शयन कर रहे हैं, जिनके हाथमें परशु है, जो शत्रियोंके गर्वका अन्त करनेवाले हैं, जो सत्यप्रतिज्ञ हैं, जो अजित हैं, जो त्रिभुवनके एकमात्र स्वामी और चक्रधारी हैं, उन कल्याणमूर्ति, सृक्ष्मस्वरूप और पुराणपुरुषको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। दैत्यराज बलिके राज्यको दानमें ग्रहण करनेके लिये भगवान् वामन तथा पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये यज्ञवराहका अवतार ग्रहण करनेवाले गोविन्द ब्रोहरिको मेरा बार-बार प्रणाम है।

हे परमानन्दस्वरूप। हे ज्ञान देनेवाले परम अक्षर ज्ञानस्वरूप! देव! परमाद्वैत! पुरुषोत्तम! विश्वकर्ता! विश्वभावन! विश्वनाय ! विश्वके कारणभूत ! मधुदैत्यविनाशक ! रावणहन्ता ! कंस तथा केशोंको मारनेवाले। कैटभ दैत्यको मारनेवाले। आपको नमस्कार है। हे पद्मलोचन! हे गरुडध्वज! कालनेमिके हन्ता! गरुडासन। देवकीपुत्र! वृष्णिनन्दन! रुक्मिणोकाना! अदितिनन्दन! गोकुलवासी! हे गुरुकुलप्रिय आपको मेरा चारम्बार नमस्कार है।

हे गोपवपु श्रीकृष्ण, गोपीजनप्रिय, गोवर्धनधारी! हे गोकुलवर्धन! आपकी जय हो। हे दैत्यराज रावणके संहारक! चाण्रदैत्य-विनाशक, वृष्णिवंशके प्रकाशक! कालीयमदेन! सत्त्वस्वरूप! संसारके साक्षी! सर्वार्थसाधक! हे बेदान्तविदोंके वेद्य। सब कुछ देनेवाले। माधव। सबके यजनान, धान्य, पतु, याजक, अध्वयुं, उद्गाता, यज्ञ और आश्रय! अञ्यक्त, सर्वत्र व्याप्त! लक्ष्मीकान्त (माधव), सुध्य, चिदानन्द! चित्त निरञ्जन, निरालम्य! हे शान्त! हे सनातन | हे नाथ | हे जगत्युज्य भगवान विष्णु | आपको जय हो, जय हो, जय हो! आपको मेरा नमस्कार है।

हे हरे! आप ही गुरु हैं, आप ही शिष्य हैं। आप ही दीक्षामें प्रयुक्त होनेवाले मन्त्र तथा मण्डल है। आप ही न्यास, मुद्रा और दीक्षा है। आप ही पूजामें प्रयुक्त होनेवाले पुष्पादिक साधन हैं। आप ही आधारशक्ति, अनल, कुर्म, पृथियी, पद्म, धर्म, ज्ञान, बेदी और पूजामण्डलकी शक्तियोंके स्वरूप हैं।

हे प्रभो ! आप ही छलका भेदन करनेवाले हैं । आप ही खर-दूषणका संहार करनेवाले राम हैं।आप ही ब्रह्मर्थि, देव, विष्णु, सत्यपराक्रम, नृसिंह, परानन्द, धराको धारण करनेवाले महावराह हैं।

हे प्रभी। आप ही सुपर्ण, शंख, नक, गदा है। हे देव। आप ही लक्ष्मी, पृष्टि, शाश्रती माला, श्रीवल्स, कौस्तुभ, शाङ्गी तथा तृणीर (तरकस)-रूप है। हे प्रभो। दाल और खड़गरी युक्त आप इन्हादिक

दिक्पाल देवता है। आप ही विधाता और आप ही ब्रह्मा हैं। आप ही यम, अपन, कुबेर, ईशान, इन्द्र, वरूल, राक्षसोंके स्वामी, साध्य, वायू, चन्द्र, सूर्य, वसू, रद्रगण, अश्विनीकमार तथा मरुदण हैं। आप ही दैत्य, दानव, नाग, यक्ष. राक्षस, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, पितुजन तथा देवगण हैं। आप ही पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूत, सन्दादि विषयस्वरूप और अञ्चल इन्द्रिय हैं। आप ही मन, बुद्धि एवं अहंकारतत्व हैं। आप ही क्षेत्रज्ञ तथा इदयेश्वर हैं। आपकी जय हो, आपको मैं प्रणाम करता है।

हे हरे। आप ही यज्ञ, वषटकार, ॐकार (प्रणव), समिधा और कुश हैं। आप ही यज्ञवेदी, यजीय दीक्षा, यज्ञयूप, अग्नि, यज्ञमानपत्री, पुरोडाश, यज्ञशाला, सुकू, स्रुव तथा सोमरस निकालनेके लिये प्रयुक्त पाषाणविशेष हैं। आप सब कुछ है। आप ही यज्ञको सम्पन्नताके लिये दक्षिणायुक्त सदस्य और आप ही यतके सम्पादनके लिये उपयोगी शर्पादिक उपकरण, ब्रह्म (विशेष ऋत्विक), मुसल तथा ओखली हैं। आप ही निश्चितरूपमें होता,

आप हो पुरुषोत्तम यज्ञभगवान् हैं। आपको मेरा नमस्कार है।

हे देव! आप ही दिशा, पाताल, पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग एवं नक्षत्रोंके जन्मदाता है। आप ही देव, तिर्यक् तथा मनुष्य आदि हैं। यह चराचर जगत् भी आप ही हैं। यह अखिल ब्रह्माण्ड और जगत् आपका ही स्वरूप है। इन सबको सृष्टिके लिये आपने स्वत: प्रकट किया है। हे परमञ्ज्ञ । यह आपका स्वरूप उन देवताओंके भी ज्ञानसे परे हैं। इस संसारमें कौन ऐसा प्राणी है, जो निष्कलुष, योगगम्य, इन्द्रियातीत, अक्षय, पुराणपुरुष, नित्य, अव्यक्त, अजन्मा, अव्यय, प्रलय और उत्पत्तिसे रहित, सर्वव्यापक, ईश्चर, सर्वंड, निर्मुण, जुद्ध, परमानन्द, अजर, बोधरूप अटल, ज्ञान्त, पूर्ण, अद्वेत तथा अक्षर ब्रह्म आपको जान सकता है। हे देव! अवतारोंमें आपके जिस स्वरूपका दर्शन होता है, उसके परम भावको बिना जाने हुए ही देवता लोग आपका भजन करते हैं। वे भी आपके मुलस्वरूपके दर्शनसे बहित रह जाते हैं। हे पुरुषोत्तम। इस प्रकार

आदिके द्वारा संकर्षण आदि नामभेदोंसे आपको ही मैंने पूजा की है, ये सभी विभृतियाँ आपकी ही हैं। मैंने आपकी इस पूजामें जो कुछ किया है और जो कुछ नहीं किया है, वह सब जाप धमा करें। हे विभो। यथोक्त रूपसे मैं आपकी सम्बक् पूजा नहीं कर सकता। जो मैंने जप-होमादि किया है, भक्तिपूर्वक उस कार्यका निष्पादन करना भेरे लिये असाध्य है। इसलिये मैं आपसे क्षमा-प्रार्थना करता हैं। हे प्रभो। दिन, रात और संध्यामें तथा सभी अवस्वाओंमें मेरी चेष्टा-निष्ठा आपकी सेवाके अनुरूप रहे।

हे हरे! आपके चरणयुगलमें मेरी एकनिष्ठ अचल भक्ति हो।

हे नाथ! मेरी जैसी प्रीति अपने शरीरसे है, वैसी धर्मादि

कार्योमें नहीं। इसलिये हे जगनाथ। आप ऐसी कृपा करें

कि आपमें मेरी आल्यन्तिकी प्रीति हो जाय। सभी फल देनेवाले भगवान विष्णुको जिसने दृढ भक्ति कर ली, उसने

स्वर्ग और मोक्ष आदिके साधन किन कर्मोंको नहीं किया है? हे अब्युत! आपके पुजन और स्तुति करनेमें कौन

आपका मनसे भी अगम्य जो अगोचर सुक्ष्मस्वरूप है,

उसको आराधना करनेमें क्या मैं समर्थ हो सकता है?

हे नाव। यहाँपर इस पुजामण्डलमें यथाविधि पुन्प-धुप

१. 'शार्ल' नामका धनुष धारण करनेवाले।

समर्थ है? आज मैंने यथासामध्यें आपको जो पूजा और शाश्वत, अति विमल, विशुद्ध, निर्पुण, आत्मस्वरूप और रतुति को है, उसकी अपूर्णताके लिये मुझे क्षमा प्रदान करें। समस्त सुखाँके मूल भगवान् नारायणकी भावपुष्पसे पूजा मेरा आपको प्रणाम है।

हे मुने! मैंने भली प्रकारसे आपको यह चक्रधर (अन्युत)-स्तोत्र सुना दिया है। यदि आप परम वैष्णव पदको इच्छा करते हैं तो परात्पर विष्णुकी भक्तिपूर्वक यह स्तुति करें।

पूजाके समय जो मनुष्य इस स्तोत्रके द्वारा जगदुरु भगवान विष्णुकी स्तुति करता है, वह शीप्र ही संसारके बन्धनको काटकर गीक्ष प्राप्त कर लेता है। हे मुने! अन्य जो कोई भी पथित्र होकर भक्तिपूर्वक प्रतिदिन तीनों संध्याओंमें श्रीविष्णुदेवका इस स्तोत्रके अनुसार भवन करता है, वह अपने समस्त अभीष्टीको सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इस स्तोत्रका पाठ करनेसे पुत्र चाहनेवाला व्यक्ति पुत्र प्राप्त करता है, सांसारिक बन्धनसे मुक्त होनेकी इच्छा रखनेवाला उससे मुक्त हो जाता है। इस स्तोत्रके पाठमें रोगी रोगसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है, निर्धन व्यक्ति धनवान् कन जाता है और विद्यार्थी विद्या, भाग्य तथा कोति प्राप्त करता है। जातिस्मरत्व (पूर्वजन्मके वृतान्तको स्मृति) तथा और जो कुछ चित्तमें इच्छा रखता है, भक्त उसे प्राप्त कर लेता है।

वह प्राणी धन्य है, सब कुछ जाननेवाला है, बुद्धिनान् है, साथ है, सभी सत्कर्मोंका कर्ता है, सत्यवादी है, प्रवित्र है और दाता है, जो भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति करता है। इस संसारमें वे प्राणी सम्भाषण करने योग्य नहीं है और समस्त धर्मोंसे बहिष्कृत हैं, जिनका कोई भी सत्कार्य भगवान् हरिके उद्देश्यसे सम्पन्न नहीं होता। वह व्यक्ति दुख्त्या है, उसका मन और क्यन शुद्ध नहीं है, जिसकी सब कुछ प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णुमें अवल भक्ति नहीं है।

मनुष्य सब सुख प्रदान करनेवाले भगवान् इरिकी विधिवत् पूजा कर जो कुछ भी कामना करता है उसे प्राप्त कर लेता है। श्रद्धापूर्वक आराधना करनेपर पुरुषोत्तम भगवान् सब कुछ प्रदान करते हैं। समस्त मुनि जिन देवका चिन्तन करते हैं, वे ही शुद्ध ब्रह्म परमब्रह्म हैं। जो सभीके हृदयमें विराजमान रहते हैं, जो सब कुछ जानते हैं और जो सभी कृत्योंके साक्षी हैं, जो भय-मरण-विहोन हैं, नित्य-आनन्दस्वरूप हैं, ऐसे अज, अमृत, इंज वासुदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं समस्त संसारके स्वामी, सुप्रसंत्र,

करता है। मेरे हृदयकमलमें सर्वसाक्षी सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान विष्णु सदा विराजमान रहें-

सकलमृतिभिराद्यक्षित्रयते यो हि शुद्धो निक्रिलहरि निविष्टो वेति यः सर्वसाक्षी। तम्बम्भतमीशं वासुदेवं नतोऽस्मि भवमाणविहीनं नित्यमानन्दरूपम्॥ निखिलभ्वननार्थ ज्ञाक्षतं सुप्रसर्व त्वतिविमलविश्व निर्गुणं सुख्यदितसमस्तं पुजवाम्यात्मभावं विशत् हृदयपचे सर्वसाक्षी चिदात्मा ()

(384120-28)

इस प्रकार मैंने आदि-अन्तसे रहित, परात्पर ब्रह्मस्वरूप धगचान् विष्णुके महा प्रभावका वर्णन किया। इसलिये मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह भलोभौति परमेश्वरका चिन्तन करे। इस संस्वरमें कौन ऐसा योगी है जो उन बोधगम्य पुराषपुरुष, सूर्वके समान तेजस्वी, विमल, विशुद्धात्मा, बेष्ट, अद्वितीय विष्णुका चिनान करके उनमें तदाकार नहीं हो जाता? जो मनुष्य इस स्तुतिका सदैव पाठ करता है, वह श्रीविष्णुके समान ही प्रशानाचित तथा पापसे रहित हो जाता है। जो व्यक्ति अर्थ, धर्म, काम और मोशरूप पुरुष्यचंको कामना करता है अथवा सम्पूर्ण सौख्य चाहता है, यह सब कुछ छोड़कर सर्वश्रेष्ठ पुराणपुरुष, वरण करने योग्य विष्णुकी करणमें जाता है, इसीलिये उसका प्रभाव सर्वत्र फैल जल है और वह विष्युत्तोकको चला जाता है।

जो प्राणी विभू, सबके स्वामी, विश्वको धारण करनेवाले, विशुद्धारमा, समस्त संसारके विनाशके हेतु, विमल, भगवान् वासुदेवको जरणमें अनासक-भावसे जाता है, वह मोक्षपदको प्राप्त करता है-

> विश्वं प्रश्नं विश्वयां विश्वत-महोषसंसारविनाशहेतुम् 1 वासदेवं विपलं स मोक्षमाजीति विमुक्तसङ्गः॥

> > (338188)

(अध्याय २३४)

ब्रह्मज्ञाननिरूपण तथा षडङ्गयोग

सुतजीने कहा-[हे शीनक!] अब मैं बेदाना और सांख्यसिद्धानाके अनुसार ब्रह्मज्ञानका वर्णन करता है।

'में ही ज्योतिर्मय परब्रहास्वरूप विष्णु हैं '- ऐसा चिनान करते हुए 'सूर्य, हृदयाकाश और वडिमें एक ही ज्योति तीन रूपमें स्थित हैं ' ऐसा निश्चय करना चातिये। जैसे गायोंके जरीरमें मृत रहनेपर भी युत गायको बल प्रदान नहीं करता, परंतु उसी घृतको निकालकर विधिके अनुसार गायोंके निमित्त प्रयोग करनेपर वह युत महाबलप्रद हो जाता है, वैसे ही विष्णु सभी जीवींके तरीरमें विद्यमान रहनेपर भी बिना आराधनाके कल्याणकारी नहीं हो सकते। जो योगरूप यक्षपर चढनेके इच्छक हैं, उनके लिये कर्मज्ञान आवश्यक है, किंतु जो योगरूपी वृक्षपा आरूढ हो चुके हैं, उनके लिये त्याग (वैराग्य) एवं ज्ञान ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है। जो शब्दादि विषयोंको जाननेको इच्छा करता है, उसमें राग-देशांद प्रादुर्भृत हो जाते हैं, इसी कारण मनुष्य लोभ-मोह तथा क्रोधके वर्ताभुत होकर पापाचार करता है।

जिसके हाथ, उपस्थ^र, उदा और वाक्य-ये चार सुसंयत रहते हैं, वही बुद्धिमानोंके द्वारा वित्र कहा जाता है। जो दूसरेके द्रव्यको ग्रहण नहीं करते, हिंसा नहीं करते, जुएमें अनुरक्त नहीं रहते, अस्तवमें उन्हींके दोनों हाथ सुसंयत रहते हैं। जो दूसरेकी स्त्रीके प्रति कानका भाव नहीं रखता, उसीकी उपस्थेन्द्रिय मुसंयत है। जो लोभर्राहर होकर परिमित भोजन करते हैं, उन्होंके उदरको संयत कहा जाता है। जो हित-परिमित और सत्य वाक्य बोलता है, उसीकी वाणी संयत कही जाती है।

जिसके हाथ आदि संयत रहते हैं, उसके लिये तपस्या या यज्ञादिका कोई प्रयोजन नहीं है अर्थात तपस्या, यज्ञ आदि तभी सफल होते हैं, जब हाथ, उपस्थ, उदर एवं वाक्य संयत हों।

मन, बृद्धि और इन्द्रियोंका आत्यन्तिक ऐक्य अर्थात् सदा ध्येयतत्त्वमें लगा रहना, ध्यान कहलाता है। वह ध्यान दो प्रकारका होता है—सबोज^र तथा निर्वोज^{रे}।

रहती है। इसे यदि जीव विषयोंमें लगाये रहता है तो यही जाग्रत्-अवस्था होती है। जब जीवकी इन्द्रियाँ शान्त हों, केवल मन चञ्चल हो और इसी कारण बाहरी एवं भीतरी विषयोंको केवल स्वप्रमें जीव देखता रहे तो यही स्वप्रावस्था है। जब मन हदयमें स्थित हो तथा तमीगुणसे मोहित होनेके कारण कुछ भी स्मरण न कर सके, तब सुप्ति-अवस्था समझनी चाहिये।

जो जितेन्द्रिय होता है उसको जाग्रत्-अवस्थामें तन्द्रा, मोह और भ्रम नहीं उत्पन्न होते। वह शब्दाधींद विषयोंमें आसक नहीं होता।

जानी इन्द्रियों और मनको विषयोंसे खोंचकर युद्धिके द्वारा आहंकारको एवं प्रकृतिके द्वारा बुद्धिको संयत कर और चित्-रुक्तिके द्वारा प्रकृतिको भी संयत कर केवल आत्मरूपमें अवस्थित रहता है। इस स्थितिमें जानी मनसे स्वप्रकार आत्मा (परमात्मा)-को देख सकता है। आत्मा स्वप्रकाश है, डेय है, जाता है और ज्ञानाधिकरण है। विद्युप अमृत राद्ध निष्क्रिय सर्वाचापी शिवप्रद आत्माको जानकर मनुष्य तुरीय -अवस्थामें आ जाता है, इसमें संशय नहीं है। जीवका अनिम लक्ष्य मुक्ति है। यह मुक्ति जीवको

तभी प्राप्त होती है, जब यह पुर्यष्टक एवं त्रिगुजात्मिका प्रकृतिका परित्याग कर देता है। यह पुर्यष्टक एक 'कमल' के रूपमें माना गया है। संसारावस्थामें जीव इसी कमलरूपी पुर्यष्टक की कर्णिकामें स्थित रहता है। तीनों गुणों (सत्त्र, रज एवं तम)-को साम्यावस्थारूप प्रकृति ही पुर्यष्टकरूपी कमलको कर्णिका है। इस पूर्यप्रकरूप कमलके आउ पत्र (दल) हैं। वे हैं- हब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सत्व, रज तथा तम। इस प्रतीकात्मक वर्णनका निष्कर्ष यह है कि जीवको मुक्ति प्राप्त करनेके लिये प्रकृतिसे स्वयंको अलग करना अनिवार्य है इसके हेतु शब्द आदि विषयोंके प्रति अनासक होना होगा।

प्राणायाम्, जप, प्रत्याहार, धारणा, समाधि और ध्यान-ये छ: योगके साधन है।

इन्द्रियसंयमसे पापक्षय और पापक्षयसे देवप्रीति सुलभ चिन्तनकी मूल आधार-शक्ति 'युद्धि' भौहोंके मध्यमें होतो है। देवप्रीति मृति एवं मुक्तिसाधनकी ओर उन्मुख

१-मृत्रेन्द्रियः २-अविद्या आदि क्लेश हो बीज है। इनका अनुभव होते रहनेया सबीज भ्यन कहा जाता है। ३-क्लेश रूप बीजका अनुभव न हो तो तिबीन स्थान कहा जाता है। ४-पाम शान, शिवस्वरूप अदैवादस्था।

होनेके लिये भी प्रथम एवं अनिवार्य साधन है। योगका मुख्यतम साधन है प्राणायाम। यह दो प्रकारका है- गर्भ और अगर्भ। जप एवं ध्यानयुक्त जो प्राणायाम है, वही गर्भ प्राणायाम है और इससे अतिरिक्त होनेपर अगर्भ प्राणायाम कहा जाता है। जो प्राणायाम छत्तीस मात्रासे युक्त रहता है वहीं श्रेष्ठ है, जो चीबीस माजासे युक्त रहता है वह मध्यम है और जो प्राणायाम बारह मात्रासे युक्त रहता है वह निम्न है। सदा ॐकारका जप कर प्राणायाम करे। ॐकार परब्रहाका वाचक है। इस ब्रह्मवाचक ॐकारका परिज्ञान होनेपर बाच्य ब्रह्म प्रसन्न हो जाता है।

'ॐ नमो विष्णवे'—इस यडशर और द्वादशाशर गायत्रीका जप करना चाहिये। सभी इन्द्रियोंको प्रवृत्ति सांसारिक विषयोंकी ओर रहती है। मनके द्वारा इन प्रवृत्तियोंकी निवृत्तिको ही प्रत्याहार कडा गया है। इन्द्रियोंको अपने विषयोंसे समाहरण कर मनको बृद्धिके साथ प्रत्याहारमें स्थित रखते हुए बारह बार प्राण्डवाम करनेमें जितना समय लगता है, उतने समयतक ब्रह्ममें मनको निविष्ट करना ही द्वादशधारणत्मक ध्यान है- ऐसा ब्रह्माने कहा है। नियतरूपसे ब्रह्मकारवृत्तिमें जो संतृष्टिका अनुभव होता है, उसीको समाधि कहा जाता है। ध्यान करते-करते यदि मन चन्नल नहीं होता है, सदा ध्यानमें ही प्रवृत्ति तहती है अर्थात् अभीष्ट प्राप्तितक ध्यानमे निवृति नहीं होती तो इसीका नाम धारणा है। मन यदि ध्येयतत्त्वमें ही आसक रहता है अर्थात् ध्येयतत्त्वका ही चिन्तन सदा होता रहता है. अन्य किसी भी पदार्थका भान नहीं होता तो इसीको भ्यान कहा जाता है।

ध्यानपरायण मुनिगण, ध्येय पदार्थका चिन्तन करते-करते जब मन उसी ध्येयमें निश्चल हो जाता है, तो इसे ही परम ध्यान कहते हैं। ध्यान करते-करते जब सर्वत्र ध्येयपदार्थ हो दिखायी देने लगे. ध्याता भी ध्येयमय प्रतीत हो और किसी प्रकारका दैतज्ञान नहीं रहे तो इस अवस्थाको समाधि कहा जाता है। जिसका मन संकल्पर्राहत होकर इन्द्रियोंके विषयचिन्तनसे विस्त हो जाता है तथा ब्रह्ममें लीन हो जाता है, वही समाधिमें स्थित कहा जाता है। जिस योगीका मन आत्मामें अवस्थित परमात्माका ध्यान करते-करते तन्मय हो जाता है, वह योगी समाधिस्य कहा

वादा है। चित्तको अस्थिरता, भ्रान्ति, दौर्मनस्य और प्रमाद-ये सभी योगियोंके दोष कहे गये हैं, ये योगमें विध्नकारक है।

मनके स्थिर होनेके लिये प्रथम ध्येयके स्थलस्वरूपका चिनान करे, इसके बाद मनके निश्चल होनेपर तेज:स्वरूप परमात्माके अनुरक्त होकर स्थिर हो जाना चाहिये। जगत्में परमात्माके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, वह परमात्मा ही विश्वरूप है—इस प्रकारका निश्चय कर परमात्मासे अतिरिक्त सभी पदाधौंको असत् मानकर उनका परित्याग कर देना चाहिये। इदय-पद्ममें स्थित ॐकाररूपी व्यापक परमब्रहाका ध्यान करना चाहिये। क्षेत्र और क्षेत्रजसे रहित तीन मात्रासे वृक्त ब्रेंब्जारका जप करना चाहिये। प्रथम अपने हृदयमें ॐकारस्वसम् प्रधान पुरुषका भ्यान करे। इसके बाद उसके ऊपर कृष्णवर्ण, रक्तवर्ण तथा स्थेतवर्णवाले तमीगुण, रजोगुण और सरक्युणके तीन मण्डलोंका ध्यान कर उनमें जीवात्मा पुरुषका ध्यान करे। मण्डलके ऊपर ऐश्वर्य आदि आठ गुजींसे यक अष्टदल कमलकी भावना की जाती है।

इस कमलको कर्णिका जान है, केसर विज्ञान है, नाल वैशाय है एवं इसका कन्द वैष्णव धर्म है। मुक्तिसाधक व्यक्ति इस इत्पद्मको कणिकामें स्थित प्रणवरूप ब्रह्मका ध्यान, चेतन निश्चल तथा व्यापक रूपमें करे। इस ॐकारस्वरूप ब्रह्मका ध्यान करते-करते यदि कोई प्राणींका परित्याग कर देता है तो वह ब्रह्मसायुग्य प्राप्त करता है। योगी देहगत पद्मके मध्यमें हरिको बैठाकर भक्तिभावसे उनका ध्यान करे। कुछ लोग ध्यान-रूपी चश्चसे- आत्पासे आत्मा (परमात्मा)-को देखते हैं। सांख्यदर्शन-बेतालीग प्रकृति- प्रस्थके विवेकसे तथा योगवेता योगके प्रभावसे आत्यदर्शन करते हैं। आत्या जानरूप है। वास्तवमें जानका ही माहात्म्य है। जान ही ब्रह्मका प्रकाशक है और जान ही भवबन्धनको काटनेवाला है। इसीलिये ध्यान-साधनमें एकवित्तता ही प्रधान योग है। यही योग योगियोंको मुक्ति प्रदान करता है, इसमें संशय नहीं है। यह एकचित्तताका

जो इन्द्रियादिको जीत कर ज्ञानसे प्रदीपा हो जाता है. परमात्यामें अवस्थित इसी योगीको मक्त कहा जाता है। आसन, स्थान आदिकी विधियाँ योगकी साधक नहीं होतीं,

योग आत्मदर्शनमें ही पर्यवस्ति है।

१-मात्राका विवेक योगसूत्रसे प्राणायासकौ प्रक्रिया समझनेमें स्यह होता (

प्रत्युत ये तो योगसिद्धिमें विलम्ब करनेवाली हैं। ये सब अस्मस्तत् कर परमगतिको प्राप्त करता है। जैसे काष्टसे काष्टमें विधियाँ साधनके विस्तार मात्र हैं। शिशुपालने स्मरणाभ्यासके पर्पण करनेसे अग्निका दर्शन होता है, वैसे ही ध्यानसे प्रभावसे सिद्धि-लाभ किया था। योगाभ्यास करनेवाले योगीजन आत्मासे आत्माको देखते हैं। योगीजन सभी प्राणियोंमें करुणभाव, विषयोंके प्रति विद्वेष एवं जिल्न और उदरकी परायणताका परित्याग करते हुए मुक्ति प्राप्त करते हैं। जब योगी मनुष्य इन्द्रियोंसे इन्द्रियोंके विषयका अनुभव नहीं करता, तब काष्टकी भौति सुख, दु:खके अनुभवसे अतीत होकर ब्रह्ममें लीन हो जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है।

मेथावी साधक सभी प्रकारके वर्णभेद, सभी प्रकारके ऐश्वर्यभेद एवं सभी अशुभ तथा पापोंको ध्यानानिके द्वारा

परमात्मस्वरूप हरिका दर्शन किया जा सकता है। जब ब्रह्म और परमात्मस्वरूप हरिका दर्शन किया जाता है, जब ब्रह्म और आत्माके एकत्वका ज्ञान होता है तभी योगका उत्कर्ष जानना चाहिये। किसी भी बाह्य उपायसे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकतो, मुक्तिको प्राप्ति आभ्यन्तरिक यम-नियम आदि उपायोंके द्वारा ही होती है। सांख्यजान, योगाध्यास और वेदानादिके बवजमें जो आत्माका प्रत्यक्ष होता है, उसे मुक्ति कहा जाता है। मृति होनेपर अनात्मामें आत्माका और असत्-पदार्थमें सत्-तत्त्वका दर्शन होता है। (अध्याय २३५)

आत्मजाननिरूपण

श्रीभगवान् बोले-हे नारद। अब मैं आत्मज्ञानका तास्विक वर्णन करूँगा, सुनिये।

अद्भेत तत्त्व ही सांख्य है और उसमें एकचिचता ही योग है। जो अद्वेत तत्त्व-योगसे सम्पन्न हैं, वे भवबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। अद्रैत तस्त्रका ज्ञान होनेपर अलीत, वर्तमान और भविष्यके सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। जानी व्यक्ति सद्विचाररूपी कुल्हाड़ीके द्वारा संसाररूपी वृथको काटकर ज्ञान-वैराग्यरूपी तीर्धके द्वारा वैष्णव पद प्राप्त करता है। जाग्रत, स्वप्न और सुष्यि-यह तीन प्रकारकी अवस्था ही माया है जो संसारका मूल है। यह माया जबतक रहती है, तबतक संसार ही सत्यमें अवगत होता है। वास्तवमें शाश्रत अद्वेत तत्वमें ही सब कुछ प्रविष्ट है। अद्वैत तत्व ही परब्रह्म है। यह परब्रह्म नाम-रूप तथा क्रियासे रहित है। यह ब्रह्म ही इस जगत्की सृष्टि कर स्वयं उसीमें प्रविष्ट हो जाता है।

'मैं मायातीत चित्युरुयको जानता है और मैं भी आत्मस्वरूप है।' इस प्रकारका ज्ञान ही मुक्तिका मार्ग है। मोक्ष-लाभके लिये इससे अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय नहीं है। श्रवण, मनन और ध्यान-ये सभी जानके साधन हैं। यह, दान, तपस्या, वेदाध्ययन और तोर्थसेवामावसे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती है। मुक्ति किसी मतसे दान-ध्यानसे तथा किसीके मतसे पुजादि कर्मोंसे होती है। 'कर्म

करो' और 'कर्मका त्याग करो'-- ये दोनों वचन बेदमें मिलते हैं। निष्कामभावसे यज्ञादि कर्म मुक्तिके लिये होते हैं, बयाँकि निष्कामभावमें अनुष्ठित यज्ञादि अन्तःकरणकी शुद्धिके साधन हैं। जान प्राप्त होनेपर एक ही जन्ममें मुक्ति प्रात हो जाती है। द्वेत (भेद)-भाव रखनेपर तो मुक्ति सम्भव ही नहीं है। कुयोगी भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। किसी कारण योगभ्रष्ट होनेपर योगियोंके कुलमें उत्पत्ति हो सकती है। ऐसी स्थितिमें मुक्ति सम्भव है।

कमौंसे भववन्धन और ज्ञान होनेसे जीवकी संसारसे मुक्ति हो जाती है, इसलिये आत्मजानका आश्रय करना चाहिये। जो आत्मज्ञानसे भित्र ज्ञान हैं, उनको भी अज्ञान कड़ा जाता है। जब हृदयमें स्थित सभी कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं, तब जीव जीवनकालमें ही अमरत्वकी प्राप्ति कर लेता है, इसमें संशय नहीं है-

> वदा सर्वे विमुच्यने कामा थेऽस्य हृदि स्थिताः। तदाऽमृतत्वमाप्नोति जीवप्रेव न संशयः॥ (336144)

व्यापक होनेसे बहा कैसे जाता है, कौन जाता है और कहाँ जाता है? ऐसे प्रश्नोंके लिये कोई अवसर ही नहीं है। अनन्त होनेके कारण उसका कोई देश नहीं है; अत: किसी भी रूपमें उसकी गति नहीं हो सकती। परब्रह्म अद्भय है, अत: उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। वह

ज्ञानस्वरूप है, अत: उसमें जड़ता कैसे हो सकती है? वस्तुत: ब्रह्म आकाशके समान है, इसलिये उसको गति, अगति और स्थिति आदिका विचार कैसे हो सकता है? जाग्रत, स्थप्न, संपूर्णि आदि अवस्था मायाके द्वारा कल्पित हैं अर्थात मिथ्या है।

वस्तुमात्रका सार ब्रह्म ही है। तेजोरूप ब्रह्मको एक अखण्ड परम पुण्यरूप समज्ञना चाहिये। जैसे अपनी आत्मा सबको प्रिय है, वैसे ही ब्रह्म सबको प्रिय है क्योंकि आत्मा ही ब्रह्म है। हे महामुने! सभी तत्त्वज्ञ ज्ञानको सर्वोच्य मानते हैं, इसलिये चित्तका आलम्बन बोधस्वरूप आत्मा ही है। यह आत्मविज्ञान है। यह पूर्ण है। जाबत है। जागते, सीते तथा सुष्पावस्थामें प्राप्त होनेवाला सुख पूर्ण सुखरूप ब्रह्मका ही एक शुद्र अंश समजना चाहिये। जैसे एक मुण्मय वस्तुका (ज्ञान होनेपर) समस्त मुण्मय पदार्थ जान लिया जाता है.

सर्थत्र व्याप्त शाक्षत तत्त्व जानस्वरूप ब्रह्म वदि सदा सर्वत्र सभीके हृदयमें विद्यमान नहीं है तो विस्मृत अर्थका स्यरण नहीं होना चाहिये पर होता है। ऐसी हिंसतिमें यह स्मरण किसको होता है, निश्चित हो चेतन तत्त्वको ही होता है। इसे ही आत्मा, ब्रह्म, परमात्मा आदिके रूपमें स्वीकार किया गया है। बेतनतत्त्वकी सत्ता-अन्, अलगेरी अचवा परम ज्यापक तत्त्व-किसी भी रूपमें स्वीकार किया जाय, पर खोकार करना हो है; अन्यथा प्राणीको सुख-दु:खका अनुभव नहीं हो सकेगा। चेतनतत्व प्राणिमात्रके इदयमें साक्षीरूपसे सदा विद्यमान है, इसीलिये यह उसकी प्रत्येक है। सत्य ज्ञानसे पृथक् नहीं होता, अननततसे पृथक् आनन्द कारण रस्सी अपने सत्यस्वरूपमें नहीं दिखायी देती, वैसे प्रकार प्रत्यक्ष होनेपर भी द्रव्य दृष्टि-दोषके कारण सही नहीं दिखायी देता है, अधित वह कुरूप प्रतीत होता है। उसी प्रकार आकाशको सरूपताके कारण वह आत्मतस्व असत्य एवं पृथक प्रतीत होता है। जैसे रज्जमें सर्पका और सींपमें रजतका आभास होता है और मृगमरीचिकामें जलका आभास होता है, उसी प्रकार विष्णुमें जगतुकी प्रतीति होती है।

जैसे कोई द्विज ग्रहाविष्ट होनेके कारण 'मैं शुद्र हैं' ऐसा मानता है और ग्रह-बाधा नष्ट होनेके पढ़ात् वही व्यक्ति पुन: ध्यान करता हुआ अपनेको ब्राह्मण मानता है, यैसे ही मायांसे आच्छल जीव यह 'मैं ही हैं' ऐसा स्वीकार करता है। माणरूपी अज्ञानके समाप्त हो जानेपर पुन: वह अपने स्वरूपमें 'मैं ही बहा हैं' ऐसा मान लेता है। जैसे ग्रहके नाम हो जानेपर उसको माननेवाला प्राणी उसे कर प्रहके रूपमें देखता है, बैसे ही अपने स्वरूपका दर्शन होनेपर मायाके अध्वमें उसकी मायिक पदार्थीसे विरक्ति हो जाती है। जैसे संसार-चक्र अनादि है, वैसे हो उसके मूल

भगवानको माया भी अनादि है। इस मायाके सत् और असत् दो रूप हैं। व्यवहार-कालमें वह सत् और परमार्थत: असत् है। यहबाके कारण ही अज परमात्मा भी अपनी भायाके आवेष्टसं जगतुके रूपमें परिणत होता है। मायाकी इन्द्रासे हो पति-पत्नो आदिके रूपमें यह सम्पूर्ण जगत् करियत है। अड्राईस तत्त्वोंका यह त्रिगुणात्मक जगत् और चौरासी लाख योनियोंके नर और नारियोंकी आकृति मायाके द्वारा ही राजित है। जिगुणात्मक अद्वाईस तत्त्वोंके रूपमें मापाके द्वारा ही खण्डश: विश्वकी सृष्टि होती है। घेष्टाको जानता रहता है और इस जानकारीका फल यह है। वस्तुत: नाम, रूप और क्रिया आदि जगतकी सत्ता मध्यमें कि प्राणीके शुभाशुभ कर्मका फल यथासमय मिलता रहता ही है आदि और अन्तमें नहीं। इसलिये व्यवहार-कालमें है। यह ब्रह्मतस्य सस्य, ज्ञान एवं आनन्दरूप है तथा अनन्त सस्य प्रतीत होनेपर भी परमार्थतः यह मिथ्या है। जिस प्रकार स्वानावस्थामें रथ आदिकी सत्ता प्रतीत होती है, किंतु नहीं है। वास्तवमें प्रत्येक जीव सत्य, आनन्द एवं वहाँ उनका अस्तित्व रहता नहीं है। उसी प्रकार जाग्रत ज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही है। स्वयंको ब्रह्मरूपमें ज्ञानकर जीव अवस्थामें भी वे समृद्धियाँ उस प्राणीके पास नहीं रहतीं। अपने वास्तविक स्वरूप सर्वज्ञताको प्राप्त कर लेता है। जैसे परमार्थत: जैसे जापत्-अवस्था और स्वप्न-अवस्थाके एक हेममणि (पारस)-से अनन लॉहराशि हेममय हो। पदार्थीका भावाभाव प्रतीत होता है, वैसे ही मायिक पदार्थ जाती हैं, उसी प्रकार ईश (ब्रह्म)-का ज्ञान होनेपर ज्ञानीके भी व्यवहार और परमार्थमें सत्-असत् हैं। स्वप्न तथा द्वारा सकल विश्व जान लिया जाता है, जैसे अन्धकारदोषके जागृतिकी स्थितिमें ऐसा ही इस परम ब्रह्मका अस्तित्व है, किंतु सुष्यावस्थामें प्राणीका चित्त निश्चल होता है। सभी हो व्यामोहसे ग्रस्त जीवको आत्माका दर्शन नहीं होता। जिस जानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियोंक साथ मन उस आत्माके साथ

एकाकारकी स्थितिमें रहता है। अत: उस समय सत्- सत्यता स्वीकार की जाती है। असतका कछ भी ज्ञान प्राणीको नहीं होता। इसी निश्चेष्टताको है नारद! मैं अनन्त है। मेरा ज्ञान भी अनन्त है। अवल और अद्वैत पद कहते हैं। ऐसा ही उस ब्रह्मका मैं अपनेमें पूर्ण हैं। आत्माके द्वारा अनुभूत अन्तःसुख स्वरूप है।

है। किंतु विचार करनेपर यह अस्तित्वहोन है। यह ब्रह्मके नहीं हुई है। मैं शुद्ध हैं। मैं तो अमृतस्वरूप हैं। मैं समान निरन्तर विद्यमान रहती है, ऐसा नहीं है। यह तो ही बड़ा हैं। मैं प्राणियोंके हृदयमें प्रज्वलित वह ज्योति मात्र कल्पना है। इस प्रकार उस असत् मायाका जल्मसम्बन्धके हैं, जो दीपकके समान उनके अज्ञानरूपी अन्धकारको कारण सत्यत्व सिद्ध होता है। जो सत्य होता है उसीका विनष्ट करती रहती है। यह आत्मजानकी स्थिति है। अस्तित्व माना जाता है और अस्तित्वके कारण हो पदार्थकी

में हो है। सात्विक, राजस और तामस गुणसे सम्बन्धित मायाका अस्तित्व अविचारके कारण हो सिद्ध होता भावोंसे मैं नित्य परे रहता हैं। मेरी उत्पत्ति अशुद्धतासे

(अध्याय २३६)

これがははいいこ गीतासार

श्रीभगवानुने कहा-[हे नारद!] अब मैं गीताका सारतस्य कहुँगा, जिसे मैंने पूर्वमें अर्जुनको सुनाया था।

अच्छाङ्गयोगयुक्त और वेदान्तपारङ्गत मनुष्योंके तिये आत्म-कल्याण सम्भव है। आत्म-कल्याण हो परम कल्याण है, इस आत्मज्ञानसे उत्कृष्ट और कुछ भी लाभ नहीं है। आत्मा देहरहित, रूप आदिसे होन, इन्द्रियोंसे अतीत है। मैं आत्मा हैं. संसारादि सम्बन्धके कारण पड़ी किसो प्रकारका द:ख नहीं है। धुमरहित प्रन्यलित अग्निशिखा जैसे प्रकाश प्राप्त करती है, वैसे ही आत्मा स्वयं प्रदोपा रहता है। जैसे आकाशमें विद्युत-अग्निका प्रकाश डोता है, वैसे ही इदयमें आत्माके द्वारा आत्मा प्रकाशित डोता है। श्रीत आदि इन्द्रियोंको किसी प्रकारका जान नहीं है। वे रवयंको भी नहीं जान सकतो है, पांतु सर्वड, सर्वदर्शी, क्षेत्रड आत्मा ही इन्द्रियोंका दर्जन करता है। जब आत्मा उज्यान प्रदीपके समान हदरपरालपर प्रकाशित होता है, तब प्रवर्षोंका पापकमं नष्ट हो जाता है और ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

जैसे दर्पणमें दृष्टि डालनेपर अपने द्वारा अपनेको देख सकते हैं, वैसे हो आत्मामें दृष्टि करनेपर इन्द्रियोंको, इन्द्रियोंके विषयोंको तथा पञ्चमहाभूतोंका दर्शन किया जा सकता है। यन, बुद्धि, अहंकार और अध्यक्त पुरुष-इन सभीके जानके द्वारा संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाना चाहिये। सभी इन्द्रियोंका मनमें अधिनिवेश कर उस मनको अहंकारमें स्थापित करना चाहिये। उस अहंकारको युद्धिमें, युद्धिको प्रकृतिमें, प्रकृतिको पुरुषमें एवं पुरुषको परब्रह्ममें विलीन करना व्यक्तिये। इस प्रकार करनेसे ही 'में ग्रहा है' इस प्रकारको ज्ञान-ज्योतिका प्रकाश होता है। इससे वह पुरुष मुख हो जाता है। नौ द्वारोंसे मुक्त, तीनों गुणिक आश्रय तथा आकार आदि पञ्चभूतात्मक और आत्मासे अधिष्ठित इस शरीरको जो हानी व्यक्ति जान लेता है, वही श्रेष्ट है और वही क्रान्तदर्शी है। सौ अध्मेष या हजारों वाजपेय यज्ञ इस ज्ञानपत्रके सोलहवें अंशके फलको भी प्रदान नहीं कर सकते। (अध्याय २३७)

というないはいかしている गीतासार

श्रीभगवानने पनः कहा-हे अर्जुत! यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा तथा समाधि-यह अष्टाङ्कयोग मुक्तिके लिये कहा गया है। शरीर, सन और वाणीको सदा सभी प्राणियोंको हिंसासे निवृत्त रखना चाहिये: क्योंकि अहिंसा ही परम धर्म है और उसीसे परम सख मिलता है-

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभृतेषु सर्वदा॥ हिंसाविरासको धर्मो हाहिंसा परमं सुखप्।

सदा सत्य और प्रिय वचन बोलना चाहिये। कभी भी अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये. प्रिय-मिध्या वचन भी नहीं बोलना चाहिये. यही सनातनधर्म है-

सत्यं बुयात् ग्रियं बुयात्र बुयात् सत्यमग्रियम्। प्रियं च नानृतं ख्यादेष धर्मः सनातनः॥

(*136F)

चोरीसे या बलपूर्वक दूसरेके द्रव्यका अपहरण करना स्तेय है। इसके विपरीत आचरण करना अर्थात कभी भी चोरी न करना अस्तेय है। स्तेय-कार्य (चोरी) कभी भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि अस्तेय (चोरी न करना) ही धर्मका साधन है-

> यच्य द्रव्यापहरणं चीर्याद्वाध बलेन का। स्तेर्वं तस्यानाचरणमस्तेयं धर्मसाधनम्॥

> > (23614)

सदा और सभी अवस्थामें कर्म, मन और वाणीके द्वारा मैथुनका परित्याग करना चाहिये। इसीको ब्रह्मचर्य कहा जाता है। आपत्तिकालमें भी इच्छापूर्वक द्रव्यका ग्रहण न करना ही अपरिग्रह है। प्रयत्नपूर्वक परिग्रहका परिल्याग करना चाहिये। शीच दो प्रकारके हैं- बाह्य और आध्यनार। मुत्तिका और जल आदिके द्वारा बाह्य एवं भाव-तुद्धिके द्वारा आध्यन्तर शीच होता है। यदच्यालाभ अर्थात् अनायास-प्राप्तिसे संतुष्ट होना ही संतीय है। यह संतीय ही सभी प्रकारके सुखका साधन है। यन और इन्द्रियोंको जो एकाग्रता है, वही परम तप है। कच्छ और चान्द्रायण

आदि वर्तोंके द्वारा देहका शोषण भी तपल्या है। पुरुषोंकी सत्वशृद्धिके लिये जो वेदाना, शतरुद्रीयका पाठ और 'ॐ'कार आदिका जप है, पण्डितजन उसे स्वाध्याय कहते हैं।

कर्म, मन और वाणीसे हरिकी स्तुति, नाम-स्मरण, पुजादि कार्य और हरिके प्रति अनिश्चला भक्तिको हो ईश्वरका चिनन कहा जाता है। स्वस्तिकासन, पद्मासन और अर्धासन आदि आसन कहे गये हैं। अपने शरीरगत वायका नाम प्राण है। उस वायके निरोधको प्राणायाम कहा जाता है। हे पाण्डव ! इन्द्रियाँ असद्विषयोंमें विचरण करती हैं। उनको विषयोंसे निवारित करना चाहिये। साधुगण इस प्रकारके इन्द्रिय-निरोधको प्रत्याहार कहते हैं। मृतं और अमृतं ब्रह्म-चिन्तनको ध्यान कहा जाता है। योगारम्थके समय मुर्तिमान् और अमृर्तरूपमें हरिका ध्यान करना चाहिये।

तेजोमण्डलके मध्यमें शंख चक्र, गदा तथा पराधारी चतुर्भज-कौस्तुभविद्वसं विभूषित, वनमाली, वायस्वरूप जो ब्रह्म अधिष्ठित हैं 'मैं वहीं हैं'। इस प्रकार मनको लय करके बोहरिको धारण करना ही धारणा है। 'मैं ही ब्रह्म हैं' और 'ब्रह्म ही मैं हैं' इस प्रकार देशालम्बन-रहित अहं और ब्रह्म पदार्थका तादातम्य रूप ही समाधि है।

(अध्याय २३८)

この知識を ब्रह्मगीतासार

वर्णन करूँगा, जिसे जानकर संसारसे मुक्ति हो जाती है। उस अर्थको स्थिति अती है। वैसे हो ब्रह्म पदसे प्राणिण्डात्मक मोक्षको प्राप्त होती है। मैं और ब्रह्म-इन दो पटिक अर्थका प्रतीतिक जो गुण हैं, उनका परित्याग करके ऐसा अर्थ ज्ञान होनेपर वाक्यका ज्ञान होता है। विद्वानीने इन पदोंके किया जाता है। अद्भवानन्द चैतन्य इस अर्थकी प्राप्ति तो अर्थको वाच्य तथा लक्ष्य-रूपमें दो प्रकारका स्वोकार किया लक्ष्यार्थ ब्रह्मपदमें हो हो जाती है। अद्वयानन्द चैतन्यको है। वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थसे मिला-जुला वाक्यार्थ ही मुद्ध लक्ष्यार्थ रूपमें देखकर 'मैं ब्रह्म है'—इन दोनों पदार्थोंकी बाक्यार्थ है। वेदोंके द्वारा अहं शब्दसे एक प्राणिण्डात्मक सिद्धि 'ब्रह्म मैं हैं' और 'मैं ब्रह्म हैं'- इन दो स्थितियोंमें और दूसरा प्रत्यम्-रूप आत्मा गृहीत होता है। अव्ययानन्द होती है। "मैं ब्रह्म है" इस वाक्यसे स्वानुभृतिका फलार्थ चैतन्य परोक्षज्ञानके सहित है और प्राण-पिण्डात्मक चैतन्य प्राणीको प्राप्त होता है। ऐक्यज्ञान तो निश्चित ही वेदान्तसे उसका दूसरा पक्ष है। अहं पदको लक्षणासे आत्माका होता है। उससे यह अर्थ परे है। जानसे अज्ञानको अल्पजल्यादि दीपरहित शुद्ध आत्मा अर्थ होता है। जो निवृत्ति होती है, उस निवृत्तिके बाद प्राणीके चित्तकी

इसमें परोक्ष अर्थात लक्ष्यार्थको देखनेक प्रशान जैसे उस

ब्रह्माजीने कहा-[हे नारद |] अब मैं ब्रह्मगोलासारका अर्थको स्थित आतो है, वैसे हो लक्ष्यार्थको देखनेके पक्षात् 'मैं बहा है' इस वाक्यार्थका ज्ञान होनेसे मनुष्यांको अर्थकी प्रतीति होती है। निष्ठा तथा परोक्षता आदि अर्थ-जो प्राणपिण्डात्मक अर्थ है वह उसका दूसरा भाग है। लक्ष्यसे जो ऐक्यकी स्थिति उत्पन्न होती है, वही मुक्ति है। (अध्याय २३९)

and the thousand

ब्रह्मगीता सार

श्रीभगवान्ने कहा-[हे पाण्डव!] यह सिद्ध है कि जाग्रत् स्वप्न और सुपुष्तिको जो तीन अवस्थाएँ हैं, इन परमात्मा है । उसी परमात्मासे आकार, आकारासे वायु, अवस्थाओंके कारण वह परमात्मा हो तीन प्रकारका मान वायुसे अग्नि, अग्निसे जल तथा जलसे पृथ्वोकी उत्पत्ति लिया जाता है। वह अन्त:करणमें स्थित रहता है और हुई है, जो इस जगत्-प्रपञ्चकी जन्मदात्री है। तदनन्तर सत्रह जाग्रत्, स्वप्न और सुपुष्तिकी स्थितिमें इन्द्रियोंकी तस्त उत्पन्न हुए। वाक्, हाथ, पैर, पायु और उपस्य-ये क्रियातीलताको देखता हुआ वह विकारयुक्त हो जाता है। पाँच कर्मेन्द्रियाँ है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्ना तथा नासिका— हे अर्जुन। अब मैं फलयुक्त क्रिया और कारककी ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। प्राण, अपान, समान, व्यान और जाग्रत्, स्वप्न तथा सुयुप्ति-अवस्थाका वर्णन करता हूँ, उदान नामक पाँच प्रकारको बायु है। मन और बुद्धिरूप उसको सुनें। इन्द्रियोंके द्वारा शब्द-स्पर्श-रूप-रस और अन्त:करण है। मन संदेही होता है और बुद्धि निख्यात्मिका गन्थ-इन तन्मात्राओंका जब मनुष्यको सत्य-रूपमें ज्ञान होती है। इसका स्वरूप सूक्ष्म होता है। आत्माफे रूपमें होता है, तब उसको मनुष्यकी जाग्रत् अवस्था कहते हैं। भगवान् हिरण्यगर्भ अन्तः करणमें विद्यमान रहते हैं, वही उसकी विषयासक प्राणीक अन्तः करणमें जागते हुए जीवात्मा है। इस प्रकार प्रपञ्चसे गरे उस महाप्राण संस्कारोंका विश्वास भी कहा जा सकता है। स्वप्न एवं परमात्माके द्वारा पञ्चमहाभूतोंसे बने रारीरकी उत्पत्ति होती सुष्यिको स्थिति तब होती है, जब विषयापेक्षित कार्यमें है। उन्हों पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतोंसे ब्रह्मण्ड अर्थात् इस लगाये जानेवाले साधनको चिन्तामें बुद्धि एकाग्र हो जाती जगत्की सृष्टि हुई थी।

पैर आदिसे युक्त शरीर स्थूल शरीर है, यह तो संसारमें वक्तमें होगेक कारण वह जीवात्या बनकर स्वरूप शरीर प्रसिद्ध ही है। उसके बाद उनमें प्रष्टपुत तत्त्व और उनके स्थित रहता है। कार्योंकी जो स्थिति है, वह स्थूल शरीरसे पूर्वका करीर है। यम-नियमादि अष्टाहु मार्गको यथाक्रम पार करते हुए किंतु उसके करीरसे जो कुछ उत्पन्न होता है, उसको स्थूल जाउतु, स्वप्न और सुषुप्ति-अवस्थामें विद्यमान वह जीव ही कहा जाता है। विद्वान् इस प्रकार परमात्मासे रियतः साधी-रूपमें सब कुछ देखता है। अतः मनुष्यको समाधि शरीरको तीन प्रकार मानते हैं। स्वतत्त्वके भेदको बतानेवाले आरम्भ करनेके पूर्व ही उस परम लक्ष्यको अवधारणा भेदवाक्य 'अर्ड ब्रह्मास्मि'के अनुसार उन दोनों पूर्वस्थूल अपने वित्तमें बना लेनी चाहिये। और स्थूल शरीरमें वह ब्रह्म ही प्रविष्ट रहता है। जलमें इसके बाद मुमुक्तुके अन्त:करणमें कैवल्य अर्थात् उस सूर्यको छाया और बेरके समान उस समय उसको आकृति परमात्माके साक्षात्कारको अवस्था आ जाती है। अतः होती है, जीवस्वरूप वह ब्रह्म उसमें प्राणादि इन जारोरिक मोक्षार्थोंको उस स्थितिमें पाळभीतिक अरीरके अंदर फैसे हुए तस्योंको भारण करता है। जाग्रतु स्वप्न तथा सुयुष्तिको क्षेत्रज्ञ जीवात्माके विषयमें विचारकर उसको शरीरसे पृथक् अवस्थामें किये जानेवाले कार्योंका जो माश्री है, वही जीव समझना चाहिये, क्योंकि आत्मतत्त्वको शरीरसे अतिरिक्त न माना गया है।

जाग्रत, स्वप्न तथा सुधुप्तिकी अवस्थाओंसे परे वह हैं. अतः उन बाधाओंको दूर करना अपेक्षित है, जो ब्रह्म अपने निर्गुण स्वभावमें हो रहता है। उस क्रियाजील सांसारिक विषय-वासनाओंक क्षेत्रसे उत्पन्न हैं। उस स्थितिमे शरीरके साथ रहने एवं न रहनेकी स्थितिमें भी वह नित्य तो समस्त क्षेत्रको ही शून्य कर देना आवश्यक होता है। यह शुद्ध स्वभाववाला ही है। उसमें कोई विकृति नहीं आती। पाळभीतिक शरीर घट आदिके समान है, जैसे घटके अंदर

है। कारण-अवस्थामें ब्रह्मको स्थिति है। अतः कालके

माननेपर ब्रह्मतत्त्वसे साक्षात्कार करनेमें अनेक बाधाएँ होती

आकाश है, उस समय वह घटाकाश कहा जाता है। किंतु है। ध्यानकी ऐसी अवस्थामें पहुँचनेपर ही प्राणीके इदयमें उस भ्रमको दूर कर दिया जाय तो अपने उस समग्र रूपमें वह शुद्ध भाव आता है, जो जाग्रत् और स्थप्न आदिकी वह दिखायी देता है। वैसी ही स्थिति जीवात्पाकों है। अत: स्थितिमें उद्भुत नहीं होता, जो प्राप्त हुए आत्मज्ञानके पाञ्चभौतिक शरीरसे उस मोक्षकी साधनामें जीवात्माको अनुरूप जीवत्वके प्रभावसे मुक्त होता है। पृथक् समझना चाहिये। जिसमें वह आबद्ध है, उस क्षेत्रको ही भली प्रकारसे शेष करना अनिवार्य है। जिस प्रकार घट है। वह तत्व दो शिष्ट पदेकि बीच स्थित है। उसको मिट्टीसे पृथक् नहीं है, उसमें समवाय सम्बन्ध होता है। उसी 🛮 बहावाचक शब्द 'ॐ'कार कहते हैं। इसमें उकार और प्रकार कुम्भकारके द्वारा प्रयुक्त चक्र, चीवर आदिके कार्योंसे भी वह पृथक् नहीं है, किंतु पञ्जीकृत इन भौतिक तत्त्वींको उत्पत्ति अपञ्चीकृत महाभूत परमात्मासे हुई है। अत: कारण अन्तमें वही परमात्मा हो सिद्ध होगा, जो निर्गुण-निराकार अदय पञ्चोकृत देहतत्त्वसे परे हैं। कार्य तो कारणसे पृथक् होता नहीं है। इसलिये कार्य-कारण-सम्बन्धके द्वारा वह बात सिद्ध हो जायगी, जो मुमुक्षुके लिये अपेक्षित है। विद्वजन इसी क्रिया-व्यतिरेकके द्वारा सृक्ष्म शरीरकी अवधारणाकी बातको पुष्ट करते हैं।

अपश्चीकृत महाभूतींसे सृक्ष्मशरीर पृथक् नहीं है। जैसे आधार पृथ्योंके बिना नहीं होता है, बैसे ही वह पृथ्वी उसके आधारके बिना नहीं रहती है। यह आधार तो तेज अर्थात् अग्नि है, जो वायुके बिना रहता है। वह बायु आकाशके बिना, आकाश उस सत्-मायाच्यित्र ब्रह्मके बिना और यह मायारहित शुद्ध ब्रह्म आकाशके बिना नहीं रहता

ब्रह्मको नित्य शुद्ध, बुद्ध, सत्य तथा अद्वैत कहा जाता अकार दो स्वर एवं मकार एक अनुनासिक व्यञ्जनवर्ण है। इनसे बना हुआ वह पद सामान्य नहीं, अपितु महामन्त्र है, जो अद्वितीय है। 'बहा मैं हूँ' या 'मैं ब्रहा हूँ'-ये दोनों काञ्च धनमें जान और अज्ञान दोनोंको बढ़ानेवाले हैं।

यह आत्मतत्त्व परमञ्योति:स्वरूप है। यह चिदानन्द है। यह साथ ज्ञान और अनन्त है। यही तत्त्वमसि है। ऐसा बेटोंका भी कथन है। 'मैं ब्रह्म हैं।' सांसारिक विषयोंसे जो परे रहता है वहां मैं निर्लिप्त देव हूँ। जो सर्वत्रगामी परमात्मा है वही मैं हैं। जो आदित्यस्वरूप देवदेवेश हैं वहीं में हैं। और, में तो वहीं अनादि देवदेवेधर परब्रहा ही हैं, जिसके आदि और अलका ज्ञान किसीको भी नहीं है। यही गीताका सार है। इसीका वर्णन मैंने अर्जुनसे किया था। इसको सुनकर मनुष्य ब्रह्ममें लीन हो सकता है अर्थात् उसको जीवन्युक्ति प्राप्त हो सकती है। (अध्याय २४०)

つい野田田へい

गरुडपुराणका माहात्स्य

भगवान् हरिने कहा-हे रुद्र! मैंने 'गरुडपुराण'का वह सारभाग आपको सुना दिया, जो भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। यह विद्या, यह, सौन्दर्य, लक्ष्मी, विजय और आरोग्यादिका कारक है। जो मनुष्य इसका पाठ करता है या सुनता है, वह सब कुछ जान जाता है और अन्तमें उसको स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! मैंने मुक्तिप्रदायक ऐसे महापुराणको भगवान् विष्णुसे सुना था।

व्यासजीने कहा—सूतजी। भगवान् विष्णुसे इस महापुण्यदायक गरुडपुराणको सुनकर ब्रह्माजीने दक्षप्रजापति,

नारद तथा हम सभीको सुनाया और स्वयं उस परात्पर ब्रह्मका ध्यान करते हुए वे वैष्णव पदको प्राप्त हुए। मैंने भी तुम्हें और तुमने शौनकादिको इस सर्वश्रेष्ठ पुराणको सुनाया, जिसे सुनकर सर्वज्ञ बना व्यक्ति अपने अभीष्टको प्राप्त करके अन्तमें ब्रह्मपदका लाभ लेता है। भगवान् विष्णुने गरुडको सारतमभाग सुनाया था, इसलिये यह गरुडके लिये कथित सारतत्व 'गरुडमहापुराण'के नामसे प्रसिद्ध हो गया। यह महासारतत्त्व है। यह प्राणीको धर्म, काम, धन और मोक्षादि सभी फलोंको देनेवाला है।

सूतजीने कहा-हे शीनक! आपको मैंने उस श्रेष्टतम

गरुडमहापुराणको सुना दिया है, जिस शुभ पुराणको वेद था, उसे चार भागोंमें विभाजित किया और अष्टादश महापुराणोंकी रचना की। उन पुराणोंकी महाराज जुकदेवजीने मुझे सुनाया। हे शौनक। आपके पूछनेपर इस ब्रेष्ट गरुड-पुराणको मैंने मुनियोंके सहित आपको सुनाया।

करता है, सुनता है अथवा सुनाता है, इसको लिखता है, लिखाता है, ग्रन्थके ही रूपमें इसे अपने पास रखता है तो वह यदि धर्माधी है तो उसे धर्मको प्राप्त होती है, यदि वह अर्थका अभिलाषी है तो अर्थ प्राप्त करता है। यदि वह कामी है तो उसकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और यदि वह मौक्ष प्राप्त करनेका इच्छुक है तो उसे माँख प्राप्त होता है। मनुष्य जिस-जिस वस्तुको कामना करता है, वह सब इस गरुडमहापुराणको सुननेसे प्राप्त हो जाता है।



जो मनुष्य इस महापुराणका पाठ करता है, वह भगवान् व्यासने ब्रह्मासे सुनकर बहुत समय पहले मुझको अपने समस्त अभीष्टको सिद्ध करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त सुनाया था। व्यासरूप भगवान् हरिने प्रारम्भमें जो मात्र एक कर लेता है। इस पुराणके एक श्लोकका एक चरण भी पढ़कर मनुष्य पापरहित हो आता है। जिस व्यक्तिके घरमें यह महापुराण रहता है, उसको इसी जन्ममें सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जिस मनुष्यके हाथमें यह गुरुडमहापुराण विद्यमान है, उसके हाथमें ही जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर इस महापुराणका पाठ नीतियोंका कोश है। जो प्राणी इस पुराणका पाठ करता है या इसको सुनता है वह भीग और मोक्ष दोनोंको प्राप्त कर लेता है।

इस महापुराणको पदने एवं सुनर्नसे मनुष्यके धर्म, अर्थ, काम और मोध—इन चारों पुरुषाचीकी सिद्धि हो जाती है। इस महापुराणका पाठ करके या इसे सुन करके पुत्राधी पुत्र, कामाची काम, विद्यार्थी विद्या, विजिगीपु विजय प्राप्त कर लेता है तथा ब्रह्महत्यादिसे युक्त पापीका पाप नष्ट हो जाता है, वन्ध्या स्वी पुत्र, कन्या सज्जन पति, क्षेमार्थी क्षेम तथा भोग चाहनेवाला भोग प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार मङ्गलको कामनासे प्रेरित व्यक्ति अपना मङ्गल, गुणाँका इच्छक व्यक्ति उत्तम गुण, काव्य करनेका अभिलापी मनुष्य कवित्वशक्ति, सारतत्व चाहनेवाला सार, ज्ञानार्थी ज्ञान प्राप्त करता है।

पक्षित्रेष्ठ गरुडके द्वारा कहा गया यह गरुडमहापुराण धन्य है। यह सबका कल्याण करनेवाला है। जो मनुष्य इस महाप्राणके एक भी श्लोकका पाठ करता है, उसकी अकालमृत्यु नहीं होती। इसके मात्र आधे श्लोकका पाठ करनेसे निक्षित ही दृष्ट शत्रुका क्षय होता है। नैमिपारण्यमें ऋषिपोंके द्वारा आयोजित यज्ञमें सुतजी महाराजसे इस महापुराणको सुन करके स्वयं शौनक मुनिने उन्हीं गरहावन भगवान् विष्णुकी कृपासे मुक्तिका लाभ प्राप्त कियाधा।

(अध्याय २४१)

ついなはないの

[गरुडपुराणान्तर्गत आचारकाण्ड समाप्त]

am the the there



धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प

वैकुण्ठलोकका वर्णन, मरणकालमें और मरणके अनन्तर जीवके कल्याणके लिये विहित विभिन्न कर्तव्योंके बारेमें गरुडजीके द्वारा किये गये प्रश्न, प्रेतकल्पका उपक्रम

वासुदेव हरिको प्रणाम है।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयपुदीरचेत्।।

भगवान् श्रीनारायण, नरोत्तम नर एवं भगवती स्रोसरस्वती देवीको नमस्कार करके पुराणका वाचन करना चाहिये। जिन भगवानुका धर्म ही मूल है, बेद जिनका स्कन्ध है, पुराणकवी शाखासे जो समुद्ध हैं, यह जिनके पुष्प हैं, मोध जिनका फल है - ऐसे भगवान् मधुसुदनरूपी कल्पवृश्वकी जय हो।

देवक्षेत्र नैमियारण्यमें जीनकादिक बेह मृनियोंने मुखपूर्वक विराजमान श्रीसृतजी महाराजसे कहा-

हे श्रीसृतजी। आप श्रीवेदच्यासजीकी कृपासे सब कुछ जानते हैं। अत: आप हम सभीके संदेहका निवारण करें। क्या सत्य है? यह हमें बतानेकी कृपा करें।

श्रीगणेशजीको नमस्कार है। 'ॐ' कारसे युक्त भगवान् किया है। हे विप्रगणो। मैं आप सबके हृदयमें अवस्थित उस संदेहको भगवान् बीकृष्य और गरुडके बीच हुए संवादके द्वारा दूर करूँना । सर्वप्रथम मैं उन भगवानु श्रीकृष्णको नमस्कार करता है, जिनका आक्रप लेकर मनुष्य इस भवसागरको एक **बुद्र नदीकी भौति अनायास ही पार कर जाते हैं।**

हे मुनियो। एक बार विनतापुत्र गरुडके हृदयमें इस ब्रह्मण्डके सभी लोकोंको देखनेकी इच्छा हुई। अतः हरिनामका उच्चारण करते हुए उन्होंने सभी लोकोंका भ्रमण किया। पाताल, पृथ्वीलोक तथा स्वर्गलोकका भ्रमण करते हुए वे पृथ्वीलोकके दु:खसे अत्यन्त दु:खत एवं अञ्चन्तचित्त होकर पुन: वैकुण्ठ लोक वापस आ गये।

वैकुष्ठ लोकमें न रजोगुणकी प्रवृत्ति है, न तमोगुणकी ही प्रवृत्ति है, [मृत्युलोकके समान] रजोगुण तथा तमोगुणसे कुछ लोगोंका कहना है कि जिस प्रकार कोई जोंक मिबित सत्त्वगुणकी भी प्रवृत्ति वहाँ नहीं है। वहाँ केवल तिनकेसे तिनकेका सहारा लेकर आगे बढ़ती है, उसी शुद्ध सत्वगुण ही अवस्थित रहता है। वहाँ माया भी नहीं प्रकार शरीरधारी जीव एक शरीरके बाद दूसरे शरीरका है, वहाँ किसीका विनाश नहीं होता। वहाँ राग-द्वेष आदि आश्रय ग्रहण करता है। दूसरे विद्वानोंका कहना है कि प्राणी वहविकार भी नहीं हैं। वहाँ देव और असुर-वर्गद्वारा पृजित मृत्युके पक्षात् यमराजकी यातनाओंका भोग करता है, ज्यामवर्णकी सुन्दर कान्तिसे सुशोभित राजीवलोचन भगवान् तदनन्तर उसको दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है—इन दोनोंमें विष्णुके पार्षद विराजमान रहते हैं, जिनके शरीर पीतवसन और मनोहारी आभूषणोंसे विभूषित हैं और मणियुक्त सूतजीने कहा—हे महाभाग! आप लोगोंने अच्छा स्वर्णके अलङ्करणोंसे सुशोधित हैं। भगवानके वे सभी प्रश्न किया है। आप लोगोंको संदेह हो यह असम्भव है। पार्षद चार-चार भूजाओंसे युक्त है। उनके कानोंमें कुण्डल आप लोगोंने तो लोकहितसे प्रेरित होकर ही ऐसा प्रश्न और सिरपर मुकुट है। उनका वक्ष:स्थल सुन्दर पुष्पींकी

मालासे सुशोभित है। मनको मोहित करनेवाली अप्सराओंसे अपवर्गरूप फलको प्राप्तिके लिये पुनः भारतभूमिमें युक, महात्माओंके चमकते हुए विमानोंकी पंक्तिको मनुष्यरूपमें जन्म लेते हैं -कान्तिसे वे सभी सदा भारवरित होते रहते हैं। वहाँ नाना गायनि देवा: किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे। श्रीहरिके चरणोंकी पूजा करती रहती हैं।

गरुडजीने वहाँ देखा कि श्रीहरि झुलेपर विराजमान हैं। सिखयोंद्वारा स्तुत्य लक्ष्मीओ झुलेमें स्थित भगवानुकी स्तुति कर रही हैं। अपने लाल-लाल बड़े-बड़े नेजोंसे युक्त प्रसन्नमुख देवोंके अधिपति, श्रीपति, जगत्पति और यहपति भगवान श्रीहरि अपने नन्द, सुनन्द आदि प्रधान पार्षदींको देख रहे थे। उनके सिरपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल और वश:स्थल श्रीसे सुशोधित था। वे पीताम्बरसे विभूषित थे। उनकी चार भूजाएँ थीं। प्रसन्तमुद्रामें हैसता हुआ उनका मुख था। बहुमूल्य आसनपर विराजमान वे हरि उस समय अपनी अन्यान्य शक्तियोंसे आवृत थे। प्रकृति, पुरुष, महत्, अहंकार, पञ्चकमेंन्द्रिय, पञ्चतानेन्द्रिय, मन, पञ्चमहाभूत तथा पंचतन्मात्राओंसे निर्मित शरीरवाले अपने हो स्वरूपमें रमण करते हुए उन भगवान् हरिका दर्शन करनेसे विनतासुत गरुडका अन्त:करण आनन्दविभोर हो उता। उनका शरीर रोमाधित हो गया। उनके नेत्रीसे ग्रेमाकुश्रीकी धारा वहने लगी। आनन्दभग्न होकर उन्होंने प्रभुको प्रणाम किया। प्रणाम करते हुए अपने बाहन गरुडको देखका अगवान् विष्णुने कहा- हे पश्चिन्। आपने इतने दिनोंमें इस जगतुकी किस भूमिका परिश्रमण किया है?

गरुडने कहा-भगवन्। आपको कृपासे मैंने समस्त त्रिलोकीका परिश्रमण किया है। उनमें स्थित जगतुके सभी स्थावर और जन्नम प्राणियोंको भी देखा। हे प्रभी। यमलोकको छोडकर पृथ्वीलोकसे सत्पलोकतक सब कुछ मेरे द्वारा देखा जा चुका है। सभी लोकोंको अपेक्षा भूलोंक प्राणियोंसे अधिक परिपूर्ण है। सभी योनियोंमें मानक्योनि करीर)-को कैसे प्राप्त करता है? अग्नि देनेवाले पुत्र और ही भीग और मोक्षका शुभ आजय है। अत: सुकृतियोंके चीत्र उसे कन्धेपर क्यों ले जाते हैं ? रावमें घृतका लेप क्यों लिये ऐसा लोक न तो अभीतक बना है और न भविष्यमें किया वाता है? उस समय एक आहुति देनेकी परम्परा बनेगा। देवता लोग भी इस लोकको प्रशंसामें गीत गाते हुए। कहाँसे चलो है ? शबको भूमिस्पर्श किसलिये करवाया कहते हैं—'जो लोग पवित्र भारतकी भूमिमें जन्म लेकर जाता है? स्त्रियौं उस मरे हुए व्यक्तिके लिये क्यों विलाप निवास करते हैं, वे धन्य हैं। देवता लोग भी स्वर्ग एवं करती हैं? अवके उत्तर दिशामें 'यमसुक्त'का पाठ क्यों

प्रकारके वैभवोंसे समन्वित लक्ष्मी प्रसन्नतापूर्वक भगवान् स्वर्णापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

हे प्रभो। आप यह बतानेकी कृपा करें कि मृत्युकी प्राप्त हुआ प्रेत किस कारण पृथ्वीपर डाल दिया जाता है?



उसके मुखर्मे प्रज्ञरेल क्यों डाला जाता है ? मरे हुए प्राणीके नांचे लोग करा किसलिये बिछा देते हैं? उसके दोनों पैर इक्षिण दिखाकी ओर क्यों कर दिये जाते हैं ? मरनेके समय मनुष्यके आगे पुत्र-पौजादि क्यों खड़े रहते हैं ? हे केशव। मृत्युके समय विविध वस्तुऑका दान एवं गोदान किसलिये दिया जाता है? बन्धु-बान्धव, मित्र और शत्रु आदि सभी मिलकर क्यों क्षमा-याचना करते हैं 7 किससे प्रेरित होकर लोग मृत्युकालमें तिल, लोहा, स्वर्ण, कपास, नमक, सर्वेत्रधान्य, भूमि और गौका दान देते हैं ? प्राणी कैसे मरता है और मरनेके बाद कहाँ जाता है? उस समय वह आविवाहिक शरीर (निराधार-रूपमें आत्माको वहन करनेवाले

१-सोना, चौदी, मोती, लाजावर्त (लाजवर्द) तथा मुँगा—ये भौध पडारल कडलाने हैं।

२-जी, धान, तिल, कैंगनी, मूँग, बना तथा साँवा—ये सन्तथान्य कहलाते हैं।

ही बस्त्र धारण करके क्यों दिया जाता है? उस समय सूर्य-बिम्ब-निरीक्षण, पत्थरपर स्थापित यव, सरसों, दुवी और नीमकी पत्तियोंका स्पर्श करनेका विधान क्यों है? उस समय स्त्री एवं पुरुष दोनों नीचे-ऊपर एक ही वस्त्र क्यों धारण करते हैं ? शवका दाह-संस्कार करनेके पक्षात् उस व्यक्तिको अपने परिजनेकि साथ बैठकर भोजनादि क्यों नहीं करना चाहिये? मरे हुए व्यक्तिके पुत्र दस दिनके पूर्व किसलिये पिण्डोंका दान देते हैं? चब्तरे (बेदी)-पर पके हए मिट्टीके पात्रमें दुध क्यों रखा जाता है? रस्सीसे बैधे हुए तीन काष्ठ (तिगोदिया)-के कपर राजिमें गाँवके चौराहेपर एकान्तमें वर्षपर्यन्त प्रतिदिन दीपक क्यों दिया जाता है ? शवका दाह-संस्कार तथा अन्य सोगोंके साथ जल-तर्पणकी क्रिया क्यों की जाती है ? हे भगवन्। मृत्युके बाद प्राणी आतिवाहिक शरीरमें चला जाता है, उसके लिये नी पिण्ड देने चाडिये, इसका क्या प्रयोजन है? किस विधानसे पितरोंको पिण्ड प्रदान करना चाहिये और उस पिण्डको स्वोकार करनेके लिये उनका आवाइन कैसे किया जाय?

हे देव। यदि ये सभी कार्य मरनेके तुरंत बाद सम्पन हो जाते हैं तो फिर बादमें पिण्डदान क्यों किया जाता है? पूर्व किये गये पिण्डदानके बाद पुन: पिण्डदान या अन्य क्रियाओंको करनेकी क्या आवश्यकता है 7 दाह-संस्कारके बाद अस्थि-संबयन और घट फोडनेका विधान क्यों है? दसरे दिन और चौथे दिन सानिक द्विजके स्नानका विधान क्यों है ? दसमें दिन सभी परिजनोंके साथ शुद्धिके लिये स्तान क्यों किया जाता है? दसमें दिन तेल एवं उवटनका प्रयोग क्यों किया जाता है। उस तेल और उबटनका प्रयोग भी एक विशाल जलाशयके तटपर होना अपेक्षित है. इसका क्या कारण है? दसवें दिन पिण्डदान क्यों करना चाहिये? एकादशाहके दिन वृथीत्सर्ग आदिके साहित पिण्डदान करनेका क्या प्रयोजन है? पात्र, पादका, छत्र, वस्त्र तथा अंगुठी आदि वस्तुओंका दान क्यों दिया जाता है? तेरहवें दिन पददान क्यों दिया जाता है। वर्षपर्यन्त सोलह ब्राद्ध क्यों किये जाते हैं तथा तीन सौ साठ

किया जाता है? मरे हुए व्यक्तिको पौनेके लिये जल एक सान्तोदक घट क्यों दिये जाते हैं। प्रेततृष्तिके लिये प्रतिदिन अन्तसे भरे हुए एक घटका दान क्यों करना चाहिये। हे प्रभो ! यनुष्य अनित्य है और समय आनेपर ही वह

मरता है, किंतु मैं उस छिदको नहीं देख पाता है, जिससे

जीव निकल जाता है? प्राणीके शरीरमें स्थित किस छिद्रसे पृथ्वी, जल, मन, तेज, वायु और आकाश निकल जाते हैं? हे जनाईन! इसी शरीरमें स्थित जो पाँच कर्मेन्द्रियाँ और चौच जानेन्द्रियाँ तथा पाँच वायु हैं, वे कहाँसे निकल जाते हैं। लोभ, मोह, तृष्णा, काम और अहंकाररूपी जो पाँच बोर शरीरमें छिपे रहते हैं, वे कहाँसे निकल जाते हैं।

हे माधव। प्राणो अपने जीवनकालमें पुण्य अथवा पाप जो कुछ भी कर्म करता है, नाना प्रकारके दान देता है, वे सब शरीरके तह हो जानेपर उसके साथ कैसे चले जाते हैं। वर्षके समाप्त हो जानेपर भी मरे हुए प्राणीके लिये सविण्डोकरण क्यों होता है 7 उस प्रेतकृत्यमें (सविण्डन) प्रेतपिण्डका मिलन किसके साथ किस विधिसे होना चाहिये, इसे आप बतानेकी कृपा करें। हे हरे। मुख्डांसे अथवा पतनसे जिनकी मृत्यु होती है,

उनके लिये क्या होना चाहिये। जो पतित मनुष्य जलाये गये अथवा नहीं जलाये गये तथा इस पृथ्वीपर जो अन्य प्राणी है, उनके मरनेपर अन्तमें क्या होना चाहिये। जो मनुष्य पाणी, दराचारी अथवा हतबुद्धि हैं, मरनेके बाद से किस स्थितिको प्राप्त करते हैं? जो पुरुष आत्मधाती, ब्रह्महत्याग, स्वर्णादिकी चीरी करनेवाला, मित्रादिके साथ विश्वासमात करनेवाला है, उस महापातकोका क्या होता है? हे माधव ! जो शुद्र कपिला गौका दूध पीता है अथवा प्रणव महामन्त्रका जप करता है या ब्रह्मसूत्र अर्थात् यहोपवीतको धारण करता है तो मृत्युके बाद उसकी क्या गति होती है ? हे संसारके स्वामी। जब कोई शुद्र किसी ब्राह्मणीको पत्नी बना लेता है तो उस पापीसे मैं भी डरता है। आप बतायें कि उस पापीकी क्या दशा होती है? साथ ही उस पापकर्मके फलको बतानेकी भी कृपा करें।

हे विश्वात्मन्। आप मेरी दूसरी बातपर भी ध्यान दें। मैं कौत्हलवरा बेगपूर्वक लोकोंको देखता हुआ सम्पूर्ण जगतुमें जा चुका हैं, उसमें रहनेवाले लोगोंको मैंने देगा है कि वे सभी दु:खमें ही द्वब रहे हैं। उनके अत्यन्त है कि यह मृत्यु क्या है? इस भारतवर्षमें यह कैसी विचित्रता कप्टोंको देखकर मेरा अन्त:करण पौडासे भर गया है। है? ऋषियोंसे मैंने पहले ही इस विषयमें सामान्यत: यह सुन स्वर्गमें दैत्योंकी शत्रतासे भय है। पृथ्वोलोकमें मृत्यु और रखा है कि जिसको विधिपूर्वक वार्षिक क्रियाएँ नहीं होती रोगादिसे तथा अभीष्ट वस्तुओंके वियोगसे लोग दु:खित हैं। हैं, उसकी दुर्गति होती है। फिर भी हे प्रभो! इसकी विशेष पाताललोकमें रहनेवाले प्राणियोंको मेरे भयसे द:ख बना जानकारीके लिये मैं आपसे पूछ रहा हैं। रहता है'। हे ईश्वर! आपके इस वैष्णव पद (वैक्रण्ड)- हे उपेन्द्र! मनुष्यको मृत्युके समय उसके कल्याणके के अतिरिक्त अन्यत्र किसी भी लोकमें ऐसी निर्भवता नहीं लिये क्या करना चाहिये? कैसा दान देना चाहिये। मृत्यु दिखायी देती। कालके वशीभृत इस जगत्की स्थिति स्वप्नकी और रमहान-भूमितक पहुँचनेके बीच कौन-सी विधि मायाके समान असत्य है। उसमें भी इस भारतवर्षमें रहनेवाले अपेक्षित है। चितामें शबको जलानेकी क्या विधि है? लोग बहुत-से दृ:खोंको भीग रहे हैं। मैंने वहीं देखा है कि तत्काल अथवा विलम्बसे उस जीवको कैसे दूसरी देह उस देशके मनुष्य राग-द्वेष तथा मोह आदिमें आकण्ड इबे प्रान्त होती है, यमलोक (संयमनी नगरी)-को जानेवालेके हुए हैं। उस देशमें कुछ लोग अन्धे हैं, कुछ टेडी दृष्टिवालें लिये वर्षपर्यन्त कौन-सी क्रियाएँ करनी चाहिये। दुर्बद्धि हैं, कुछ दूर वाणीवाले हैं, कुछ लुले हैं, कुछ लैंगडे हैं, अर्थांत दूराचारी व्यक्तिकी मृत्यु होनेपर उसका प्रायक्षित कुछ काने हैं, कुछ बहरे हैं, कुछ गूँगे हैं, कुछ कोड़ी हैं, क्या है 7 प्रश्चक आदिमें मृत्यु होनेपर प्रश्नकशानिक लिये कुछ लोमश (अधिक रोमवाले) हैं, कुछ नाना रोगसे चिरे क्या करना चाहिये। हे देव। आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों। आप हैं और कुछ आकाश-कुसुमकी तरह निताना मिच्या मेरे इस सम्पूर्ण ध्रमको विनष्ट करनेमें समर्थ हैं। मैंने अभिमानसे चुर हैं। उनके विचित्र दोषोंको देखकर तथा आपसे यह सब लोकमङ्गलकी कामनासे पूछा है, मुझे उनकी मृत्युको देखकर मेरे मनमें जिज्ञासा उत्पन्न डो गयी. बतानेकी कृपा करें। (अध्याय १)

and September

मरणासन व्यक्तिके कल्याणके लिये किये जानेवाले कर्म, मृत्यसे पूर्वकी स्थिति तथा कर्मविपाकका वर्णन

श्रीकृष्णाने कहा-है भद्र। आपने मनुष्योंके डितमें मनुष्यको मोक्ष नहीं मिलता है तो पुत्र नरकसे उसका बहुत ही अच्छी बात पूछी है। सावधान होकर इस समस्त उद्धार कर देता है। पुत्र और पीत्रको मरे हुए प्राणीको औध्यंदैहिक क्रियाको भलीभौति सुर्ने। कन्धा देना चाहिये तथा उसका यथाविधान अग्निदाह करना

वर्णन ब्रुतियों और स्मृतियोंमें हुआ है, जिसको इन्द्रादि शवको आधारभूत भूमि उस ऋतुमती नारीके समान हो देवता, योगीजन और योगमार्गका चिन्तन करनेवाले विद्वान् जाती है, जो प्रसवको योग्यता रखती है। मृतकके मुखर्मे नहीं देख सके हैं, जो गुह्मतिगृह्य है, ऐसे उस प्रधान प्रहरत डालना बोजवपनके समान है, जिससे आगे जीवकी तत्त्वको जिसे मैंने अभीतक किसी अन्यसे नहीं कहा है, शुभगतिका निक्षय होता है। जैसे पुष्प (ऋतुकालमें स्त्रियोंका तम मेरे भक्त हो, इसलिये मैं तुम्हें बता रहा है। रजोदर्शन) न होनेपर गर्भधारण सम्भव नहीं है, वैसे ही

यथायोग्य उपायसे पुत्र उत्पन्न करना ही चाहिये। यदि पञ्चरत्न आदिका यथाविधान विनियोग आवश्यक है।

हे गरुड। जो सम्पक् रूपमे भेदरहित है, जिसका चाहिये। शबके नीचे पृथ्वीपर तिलके सहित कुश बिछानेसे हे वैनतेय। इस संसारमें पुत्रहीन व्यक्तिको गति नहीं शवधूमि भी तिल-कृष्ठ आदिके बिना जीवको शुभ योनिमें है, उसको स्वर्ग प्राप्त नहीं होता है। अत: शास्त्रानुसार कारण नहीं बन पाती। इसोलिये ब्रद्धापूर्वक तिल, कुश,

१-पाताललोकमें नागोंको गरहका भय रहता है।

गोंबरसे भूमिको सबसे पहले लीपना चाहिये, तदनन्तर समान होते हैं। 'वे मेरे शरीरके द्वारा किये गये समस्त उसके ऊपर तिल और कुश बिछाना चाहिये। उसके बाद पापोंको नष्ट करें।' ऐसी भावना करनी चाहिये। एक ही आतुर व्यक्तिको भूमिपर कुशासनके ऊपर सुला देना तिलका दान स्वर्णके बतीस सेर तिलके दानके समान है। चाहिये। ऐसा करनेसे वह प्राणी अपने समस्त पापोंको जला तर्पण, दान एवं होममें दिया गया तिलका दान अक्षय होता कर पापमुक्त हो जाता है। शबके नीचे बिखाये गये कुशसमूह निश्चित हो मृत्युप्रस्त प्राणीको स्वर्ग ले जाते हैं, उत्पत्ति मेरे पसीनेसे हुई है। इसीलिये देवताओंकी तृष्तिके इसमें संशय नहीं है। जहाँ पृथ्वीपर मल-मुजादिका लेप लिये मुख्यरूपसे कुशको और पितरॉकी तृप्तिके लिये (सम्बन्ध) नहीं है वहाँ वह सदा पवित्र है और वहाँ (मल-मुत्रादिका) लेप (सम्बन्ध) है, वहाँ (मल-मुत्रादिका अपसारण करके) गोमयसे लेप करनेपर वह शुद्ध होती है। गोबरसे बिना लिपी हुई भूमिपर मुलाये गये मरकासन व्यक्तिमें यक्ष, पिशाच एवं राक्षस-कोटिके कुरकर्मी दुष्ट लोग प्रविष्ट हो जाते हैं। मरणासन्तकी मुख्तिके लिये उसे जलसे बनाये गये मण्डलवाली भूमिपर ही सुलाना चाहिये, क्योंकि नित्य-होम, श्राद्ध, पादप्रशालन, ब्राह्मणोंकी अर्चा एवं भूमिका मण्डलीकरण मुक्तिके हेतु माने नये हैं। बिना लिपी-पूर्वी मण्डलहीन भूमिपर मरणासन्न व्यक्तिको नहीं सुलाना चाहिये। भूमियर बनाये गये ऐसे मण्डलंमें बहा, विष्ण, रुद्र, लक्ष्मी तथा अग्नि आदि देवता विराजमान हो जाते हैं, अत: मण्डलका निर्माण अवस्य करना चाहिये। मण्डलविहीन भूमिपर प्राण-त्याग करनेपर वह चाहे कलक हो, बाहे बद्ध हो और बाहे जवान हो, उसको अन्य योनि नहीं प्राप्त होती है। हे ताक्यें। उसकी जीवात्मा वायुके साथ भटकती रहती है। उस प्रकारकी वायुभूत जीवात्पाके लिये न तो श्राद्धका विधान है और न तो जलतर्पणकी क्रिया ही बतायी गयी है।

हे गरुड़। तिल मेरे पसीनेसे उत्पन्न हुए हैं। अत: तिल बहुत ही पवित्र हैं। तिलका प्रयोग करनेपर असुर, दानव और दैत्य भाग जाते हैं। तिल श्रेत, कृष्ण और गोमुत्रवर्णके

है। कुश मेरे शरीरके रोमोंसे उत्पन हुए हैं और तिलकी तिलको आवश्यकता होती है। देवताओं और पितरींकी द्यप्ति विश्वके लिये उपजीव्य (रक्षक) होनेके कारण विश्वको तुप्तिमें हेत् है। अत: अपसव्य आदि श्रद्धकी जो विधियाँ बतायी गयी हैं, उन्हों विधियोंके अनुसार मनुष्यको बहुत, देवदेवेश्वर तथा पितुजनोंको संतुप्त करना चाहिये। अपसच्य आदि होकर [तिलका उपयोग करनेसे] ब्रह्मा, पितर और देवेश्वर तुप्त होते हैं। अपसब्य होकर कर्म करनेसे पितरोंकी संतुप्ति होती हैं।

करके मृतभागमें ब्रह्म, यध्यभागमें विष्णु तथा अग्रभागमें रियको जानना चाहिये; ये तीनों देव कुशमें प्रतिष्ठित माने गर्भ हैं। हे पश्चिराज। ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि और तुलसी- ये बार-बार समर्पित होनेपर भी पर्वृषित नहीं माने जाते, कभी निर्माल्य अर्थात् बासी नहीं होते। इनका पूजामे बारम्बार प्रयोग किया जा सकता है। हे खगेन्द्र। तुलसी, बाद्यण, गौ. विष्णु तथा एकादशीवत—ये पाँची संसारसागरमे इचते हुए लोगोंको नौकाके समान पार कराते हैं। है पश्चित्रेष्ठ ! विष्णु, एकादशीवत, गीता, तुलसी, ब्राह्मण और गौ-ये छ: इस असार-संस्तरमें लोगोंको मुक्ति प्रदान करनेके साधन हैं, यह षट्पदी कहलाती है-

दर्भपुले स्थितो ब्रह्मा मध्ये देवी जनार्दनः॥ दर्भाग्रे शंकरं विद्यात् त्रयो देवाः कुशे स्मृताः। विप्रा मनाः कृशा बहिस्तुलसी च खगेश्वर॥

१-यहाँ मण्डलका तालर्थ है—जलमे प्रोधनके बाद जलमे गीलाकार रेखा बना देश और चौक आदि पूरता।

२-मम स्वेदसमुद्धवास्तिलास्तावर्षं पवित्रकाः। असुग दत्त्वा देखा विद्वन्ति तिलैस्तया। तित्वः क्षेतास्तित्व कष्णास्तिता गोपुसर्मेतिभाः । दहन्तु ते मे पाश्रीन सर्गरेण कृतानि ये। एक एव तिलो दत्तो हेमद्रोणितलै: सम: । तर्पने द्यन्होनेषु दत्तो भवति वासय:॥ दर्भा रोमसमुद्धतास्तिलाः स्वेदेषु राज्यम् । देवता दनवान्तृताः ब्राईन विवस्तवम् ॥ प्रयोगविधिना ब्रह्मा विश्वं चाप्युपजीवनात् । अपसध्यादितो ब्रह्म पितरी देवदेवता: । तेन ते पितरस्तृप्ता अपसच्ये कते सति। (२।१६-२१)

नैते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनः पुनः।
तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खगः।
पञ्च प्रवहणान्येव भवाब्यौ मज्जतां नृणाम्।
विष्णुरेकादशी गीता तुलसी विप्रधेनवः॥
असारे दुर्गसंसारे षद्पदी मुक्तिदायिना।

(2138-34)

जैसे तिलकी पवित्रता अतुलनीय होती है, उसी प्रकार कुश और तुलसी भी अत्यन्त पवित्र होते हैं। ये तीनी पदार्थ मरणासन्न व्यक्तिको दुर्गतिसे उबार लेते हैं। दोनों हाथोंसे कुश उखाड़ना चाहिये और उसे पृथ्वीपर रखकर जलसे प्रोक्षित करना चाहिये तथा मृत्युकालमें मरणासन्नके दोनों हाथोंमें रखना चाहिये। जिसके हाथोंमें कुशाएँ हैं और जो कुशसे परिवेष्टित कर दिया जाता है, वह मन्त्रहीन होनेपर (उसकी समन्त्रक क्रियाएँ न हो पायों हों, तब) भी विष्णुलीकको प्राप्त करता है। इस असार संसारसागरमें भूमिको गोबरसे लोपकर उसपर मृत मनुष्कको सुलानेसे और कुशासनपर स्थित करनेसे तथा विज्ञुद्ध अन्तिमें दाह करनेसे उसके समस्त पायोंका नास हो जाता है।

लवण और उसका रस दिव्य (उत्तम लोकका प्रापक)
है, वह प्राणियोंकी समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाला
है। लवणके विना अन्न-रस उत्कट अर्थात् न अभिष्यक
होते हैं और न सुस्वादु होते हैं। इसीलिये लवण-रस
पितरोंको प्रिय होता है और स्वर्गको प्रदान करनेवाला है।
यह लवण-रस भगवान् विष्णुके सरीरसे उत्पन्न हुआ है।
इस बातको जाननेवाले योगीजन, लवणके साथ दान
करनेको कहते हैं। इस पृथ्वीपर यदि बाह्मण, क्षत्रिय, बैश्य,
स्त्री तथा शूद्र वर्णके आतुर व्यक्तिके प्राण न निकलते हों
तो उसके लिये स्वर्गका द्वार खोलनेके लिये लवणका दान
देना चाहिये।

हे पक्षीन्द्र! अब मृत्युके स्वरूपको विस्तारपूर्वक सुनें। मृत्यु ही काल है, उसका समय आ जानेपर जीवात्मासे प्राण और देहका वियोग हो जाता है। मृत्यु अपने समयपर आती है। मृत्युकष्टके प्रभावसे प्राणी अपने किये कर्मोंको एकदम भूल जाता है। हे गरुड! जिस प्रकार वायु मेघमण्डलोंको इथर-उथर खोंबता है, उसी प्रकार प्राणी कालके वशमें रहता है। सात्त्विक, राजस और तामस—ये सभी भाव कालके वशमें है। प्राणियोंमें वे कालके अनुसार अपने-अपने प्रभावका विस्तार करते हैं। हे सर्पहन्ता गरुड! सूर्य, चन्द्र, शिच, वायु, इन्द्र, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, पित्र, औषधि, आठों बसु, नदी, सागर और भाव-अभाव—ये सभी कालके अनुसार यथासमय उद्धृत होते हैं, बढ़ते हैं, घटते हैं और मृत्युके उपस्थित होनेपर कालके प्रभावसे विनष्ट हो खाते हैं।

हे पश्चिन्। जब मृत्यु आ जाती है तो उसके कुछ समय पूर्व दैवयोगमें कोई रोग प्राणीके शरीरमें उत्पन्न हो जाता है। इन्द्रियों विकल हो जाती हैं और बल, ओज तथा वेग तिथिल हो जाता है। हे खग! प्राणियोंको करोड़ों बिच्छुओं के एक साथ काटनेका जो अनुभव होता है, उससे मृत्युजनित पोड़ाका अनुमान करना बाहिये। उसके बाद ही चेतनता समाप्त हो जाती है, जड़ता आ जाती है। तदनन्तर यमदूत उसके समीप आकर खड़े हो जाते हैं और उसके प्राणीको बतात् अपनी और खींबना सुरू कर देते हैं। उस समय प्राण कच्छमें आ जाते हैं। मृत्युके पूर्व मृतकका रूप बीभत्स हो उठता है। यह फेन उगलने लगता है। उसका मुँह लारसे भर जाता है। उसके बाद शरीरके भीतर विद्यमान रहनेवाला वह अङ्गृष्ठ-परिमाणका पुरुष हाहाकार करता हुआ तथा अपने घरको देखता हुआ यमदूर्तीके द्वारा यमलोक ले जाया जाता है।

मृत्युके समय शरीरमें प्रवाहित वायु प्रकृषित होकर तीय गतिको प्राप्त करता है और उसीकी शिक्सि अग्नितत्व भी प्रकृषित हो उठता है। बिना ईंधनके प्रदीप्त ऊष्मा प्राणीके ममंस्थानोंका भेदन करने लगती है, जिसके कारण प्राणीको अत्यन्त कष्टकी अनुभृति होती है। परंतु भक्तवनों एवं भोगमें अनासक बनोंकी अधोगतिका निरोध करनेवाला उदान नामक बायु क्रध्वंगतिवाला हो जाता है।

जो लोग झूठ नहीं बोलते, जो प्रीतिका भेदन नहीं करते, आस्तिक और श्रद्धावान् हैं, उन्हें सुखपूर्वक मृत्यु प्राप्त होती है। जो काम, इंध्यां और द्वेषके कारण स्वधर्मका

१-तिलाः पवित्रमतुलं दर्भाक्यपि तुलस्यथः । निवारयनि चैतानि दुर्गति यानासतुरम् ॥ (२।२५-२६)

परित्याग न करे, सदाचारी और सौम्य हो, वे सब निश्चित पक्षी आदि योनियाँ अत्यन्त दु:खदायिनी हैं। हे खगेश्वर! ही सुखपूर्वक मस्ते हैं।

महान्धकारमें फैस जाते हैं। जो झुठी गवाही देनेवाले, असत्यभाषी, विश्वासवाती और वेदनिन्दक हैं, वे मुच्छांरूपी मृत्युको प्राप्त करते हैं। उनको ले जानेके लिये लाठी एवं मुद्ररसे युक्त दुर्गन्धसे भरपुर एवं भयभीत करनेवाले दरात्मा यमदत आते हैं। ऐसी भयंकर परिस्थिति



देखकर प्राणीके शरीरमें भयवश कम्पन होने लगता है। उस समय वह अपनी रक्षाके लिये अनवरत माता-पिता और पंत्रको यादकर करुण-क्रन्दन करता है। उस धण प्रयास करनेपर भी ऐसे जीवके कण्डसे एक शब्द भी स्पष्ट नहीं निकलता। भयवश प्राणीकी आँखें नाचने लगती हैं। उसकी साँस बढ़ जाती है और मुँह सुखने लगता है। उसके बाद वेदनासे आविष्ट होकर वह अपने शरीरका परित्याग करता है और उसके बाद ही वह सबके लिये अस्पृश्य एवं घुणायोग्य हो जाता है।

योनियाँ भी प्राणीके लिये सुखप्रदायिनी हैं। मनुष्य, पशु- रसका अपहरण करनेपर भोजन आदिमें अरुचि हो जाती

प्राणीको कर्मका कल तारतम्यसे इन योनियोंमें प्राप्त होता जो लोग मोह और अज्ञानका उपदेश देते हैं, वे मृत्युके हैं। अब मैं इसी प्रसंगर्मे आपसे कमेंविपाकका वर्णन भी कहेगा।

> हे गरुड। प्राणी अपने सत्कर्म एवं दुष्कर्मके फलोंकी विविधवाका अनुभव करनेके लिये इस संसारमें जन्म लेता है। जो महापातको ब्रह्महत्यादि महापातकजन्य अत्यन्त कष्टकारी रौरवादि नरकलोकोंका भोग भोगकर कर्मक्षयक बाद पुन: इस पृथ्वीपर जिन लक्षणोंसे पुक्त होकर जन्म लेते हैं, उन लक्षणोंकी आप मुझसे सुने।

हे खगेन्द! बाह्मणको हत्या करनेवाले महापातकीको मृग, अब, सुकर और कैंटकी योनि प्राप्त होती है। स्वर्णको चोरा करनेवाला कमि, कीट और पतंग-पोनिमें जाता है, गुरुपत्नीके साथ सहवास करनेवालेका जन्म कमशः--तूण, लता और गुल्म-योनिमें होता है। ब्रह्मपाती क्ष्मरोगका रोगी, मद्यपी विकृतदन्त, स्वर्णचोर कुनखी और गुरुपब्रांगामी चर्नरोगी होता है। जो मनुष्य जिस प्रकारके महापार्वीकपोंका साथ करता है, उसे भी उसी प्रकारका रोग होता है। प्राणी एक वर्षपर्यन्त पतित व्यक्तिका साथ करनेसे स्वयं पवित हो जाता है। परस्पर वार्तालाप करने तथा स्पर्ग, नि:धाम, सहयान, सहभोज, सहआसन, याजन, अध्यापन तथा योनि-सम्बन्धसे मनुष्योंके शरीरमें पाप संक्रमित हो जाते हैं। इसरेको स्त्रीके साथ सहवास करने और ब्राह्मणका धन चुरानेसे मनुष्यको दूसरे जन्ममें आएय तथा निजन देशमें रहनेवाले ब्रह्मयक्षसकी योनि प्राप्त होती है। रबकी चोरी करनेवाला निकृष्ट योनिमें जन्म लेता है। जो मनुष्य वृक्षके पतोंकी और गन्धकी चोरी करता है, उसे छद्धंदरकी योनिमें जाना पड़ता है। धान्यकी चोरी करनेवाला चुड़ा, यान जुरानेवाला कैट तथा फलकी चोरी करनेवाला हे गरुड! इस प्रकार मैंने यथाप्रसंग मृत्युका स्वरूप अंदरकी योनिमें जाता है। बिना मन्त्रोच्चारके भोजन करनेपर सुना दिया। अब आपके उस दूसरे प्रश्नका उत्तर जो बड़ा कौआ, घरका सामान चुरानेवाला गिद्ध, मधुकी घीरी ही विचित्र है, उसे सुना रहा हूँ। हे पक्षिराज! पूर्वजन्ममें करनेपर मधुमक्खी, फलकी चोरी करनेपर गिद्ध, गायकी किये गये भौति-भौतिके भोगोंको भोगता हुआ प्राणी चोरी करनेपर गोह और अग्निकी चोरी करनेपर बगुलेकी यहाँ भ्रमण करता रहता है। देव, असुर और यक्ष आदि चीनि प्राप्त होती है। स्त्रियोंका वस्त्र चुरानेपर श्वेत कुष्ट और









किये हुए अशुभ कर्मोंका फल

है। काँसेकी चोरी करनेवाला हंस, दूसरेके धनका हरण ब्राह्मणको दानमें बासी भोजन देनेसे कुबड़ेकी योनि करनेवाला अपस्मार रोगसे ग्रस्त होता है तथा गुरुहन्ता प्राप्त होती है। हे पश्चिन्! जो मनुष्य फल चुराता है, कुरकर्मा बौना और धर्मपत्रीका परित्याग करनेवाला शब्दवेधी उसकी संतति मर जाती है। बिना किसीको दिये अकेले होता है। देवता और ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेवाला, भोजन करनेवाला व्यक्ति दूसरे जन्ममें संतानहीन होता दूसरेका मांस खानेवाला पाण्डुरोगी होता है। भक्ष्य और अभक्ष्यका विचार न रखनेवाला अगले जन्ममें गण्डमाला नामक महारोगसे पीडित होता है। जो दूसरेकी धरोहरका अपहरण करता है, वह काना होता है। जो स्वीके बलपर इस संसारमें जीवन-यापन करता है, वह दूसरे जन्ममें लँगड़ा होता है। जो मनुष्य पतिपरायणा अपनी पत्रोका परित्याग करता है, वह दूसरे जन्ममें दुर्भाग्वज्ञाली होता है। अकेला पिष्टान्न खानेवाला वातगुरूनका रोगी डोता है। कोई व्यक्ति यदि किसी ब्राह्मणपत्रोके साथ सहवास करे तो शुगाल, शय्याका हरण करनेवाला दरिद्र करवका हरण करनेवाला पतंग होता है। मात्सर्थ-दोषसे युक्त होनेपर प्राणी जन्मान्य, दीपक चुरानेवाला कपाली होता है। मित्रको हत्या करनेवाला उल्लु होता है। पिता आदि श्रेष्ठ जनोंकी निन्दा करनेसे प्राणी क्षयका रोगी होता है। असत्यवादी हकला कर बोलनेवाला

जाता है। यदि कदाचित् उसे पुन: मनुष्यको योनि प्राप्त भी होती है तो उसका ओठ कटा होता है। जो मनुष्य चतम्प्रधपर मल-मुत्रका परित्याग करता है, वह वृपल (अपशुद्र) होता है। कन्याको दुष्ति करनेवाले प्राणीको मुप्रकृष्ण और नपुंसकताका विकार होता है। जो बेद बेचनेका अधर्म करता है, वह व्याप्र होता है। अयान्यका यत्र करानेवालेको सअरको योनि प्राप्त होतो है। अभस्य-भक्षण करनेवाला व्यक्ति बिलीटा और बनोंको जलानेवाला खद्योत (जुगन्) होता है। बासी एवं निषिद्ध भोजन करनेवालेको कृषि तथा मात्सर्य-दोषसे युक्त प्राणीको भ्रमस्की योनि मिलती है। घर आदिमें आग लगानेवाला कोढ़ी और अदतका आंदान करनेसे मनुष्य मैल सुख-दु:ख एवं नाना योनियोंका भीग करते हैं। तात्पर्य यही होता है। गायोंकी चोरी करनेपर सर्प तथा अनकी चोरी है कि प्राणीको जुप कर्म करनेसे जुप फलको प्राप्ति और करनेपर प्राणीको अजीर्ण रोग होता है। जलको चोरी अशुभ कर्म करनेसे अशुभ फलको प्राप्ति होती है। करनेपर मछली, दुधको चोरी करनेसे बलाकिका और

और प्रती गवाही देनेवाला जलोदर-रोगसे पीडिठ रहता है।

विवाहमें विष्न पैदा करनेवाला पापी मच्छरकी योनिमें

है। संन्यासात्रमका परित्याग करनेवाला (आरूढ्पतित) पित्राच होता है। जलको चोरी करनेसे चातक और पुस्तकको चोरी करनेसे प्राणी जन्मान्ध होता है। ब्राह्मपॉको देनेको प्रतिज्ञा करके जो नहीं देते हैं, उन्हें सियारकी पोनि प्राप्त होती है। इसी निन्दा करनेवाले लोगोंको कछएको योनिमें जाना पहता है। फल बेचनेवाला दूसरे जन्ममें भाग्यहीन होता है। जो ब्राह्मण सुद्रकन्यासे विवाह कर लेता है, वह भेडियेकी योनि प्राप्त करता है। अग्निको पैरसे स्पर्श करनेपर प्राणी विलौटा और जीवोंका मांस खानेपर रोगी होता है। जो मनुष्य जलके स्रोतको थिनप्ट करते हैं, ये मछली होते हैं। जो लोग भगवान हरिकी कथा और साधुजनोंकी प्रसस्ति नहीं सनते, उन मनुष्योंको कर्णमूल रोग होता है। जो व्यक्ति परायेके मुँहमें स्थित अन्तका अपहरण करता है, वह मन्दबद्धि होता है।

जो देवपुजनमें प्रयुक्त होनेवाले पात्रादिक उपकरणींका अपडारक है, उसे गुण्डमाला-रोग होता है। दम्भके बशोभूत होकर जो प्राणी धर्माचरण करता है, उसको गजवर्मका रोग होता है। विश्वासघाती मनुष्यके शरीरमें क्रिरोऽर्ति-रोग होता है। शिक्के धन और निर्माल्यका सेवन करनेवाला व्यक्ति शिश्नपीडासे ग्रसित रहता है। स्त्रियाँ पापको भागिनी होती है और उन्हें इन्हीं जन्तुओंकी भायां होना पढ़ता है। उक्त कर्मोंके कुफलसे प्राप्त नरकका भीग करनेके बाद मनुष्य इन्हीं सब योनियोंमें प्रविष्ट होता है, ऐसा निश्चय समझना चाहिये।

हे खगपते! जिस प्रकार इस संसारमें नाना भौतिके द्रव्य विद्यमान हैं, उसी प्रकार प्राणियोंकी विभिन्न जातियाँ भी है। वे सभी अपने-अपने विभिन्न कर्मोंके प्रतिफल-रूपमें (अध्याय २)

नरकोंका स्वरूप, नरकोंमें प्राप्त होनेवाली विविध यातनाएँ तथा नरकमें गिरानेवाले कर्म एवं जीवकी शुभाशुभ गति

श्रीसूतजीने कहा—पूछे गये अपने प्रश्नीका सम्यक् उत्तर सुनकर पक्षिराज गरुड अतिरूप आहादित हो भगवान् विष्णुसे नरकोंके स्वरूपको जाननेकी इच्छा प्रकट की।

गरुडने कहा—हे उपेन्द्र! आप मुझे उन नरकोंका स्वरूप और भेद बतायें, जिनमें जाकर पापीजन अत्यधिक दु:ख भोगते हैं।

श्रीभगवान्ने कहा—हे अरुणके छोटे भाई गरुड ! नरक तो हजारोंकी संख्यामें हैं। सभीको विस्तृत रूपमें बताना सम्भव नहीं है। अत: मैं मुख्य-मुख्य नरकोंको बता रहा हूँ।

है पक्षिराज! तुम मुझसे यह जान लो कि 'रीरव' नामक नरक अन्य सभीकी अपेक्षा प्रधान है। झूठी गवाही देनेवाला और झूठ बोलनेवाला व्यक्ति रीरव नरकमें जाता है। इसका विस्तार दो हजार योजन है। जॉबभरकी गहराईमें वहाँ दुस्तर गड्डा है। दहकते हुए अंगारोंसे भरा हुआ वह



गङ्गा पृथ्वीके समान बराबर (समतल भूमि-जैसा) दीखता है। तीव्र अग्निसे वहाँकी भूमि भी तप्ताङ्गार-जैसी है। उसमें यमके दूत पापियोंको डाल देते हैं। उस जलती हुई अग्निसे संतप्त होकर पापी उसीमें इधर-उधर भागता है। उसके पैरमें छाले पड़ जाते हैं, जो फूटकर बहने लगते हैं। रात-दिन वह चापी वहाँ पैर उठा-उठाकर चलता है। इस प्रकार यह जब हजार योजन उस नरकका विस्तार पार कर लेता है, तब उसे पापकों शुद्धिके लिये उसी प्रकारके दूसरे नरकमें भेजा जाता है। हे पश्चिन्! इस प्रकार मैंने तुम्हें रीरव नामक प्रथम तरकको बात बता दी। अब तुम 'महारीरव' नामक नरककी बात सुनो। यह नरक पाँच हजार योजनमें फैला हुआ है। वहाँको भूमि ताँबेके समान वर्णवाली है। उसके नीचे अग्नि जलती रहती है। वह भूमि विद्युत्-प्रभाके समान कान्तिमान् है। देखनेमें वह पापीजनोंको महाभयंकर प्रतीत होती है। यमदृत पापी व्यक्तिके हाथ-पैर बाँधकर उसे उसीमें लुढ़का देते हैं और वह लुढ़कता हुआ उसमें चलता है। मार्गमें कीआ,



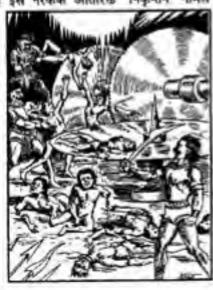
बगुला, भेड़िया, उल्क, मच्छर और विच्छू आदि जीव-जन्तु क्रोधादुर डोकर उसे खानेके लिये तत्पर रहते हैं। वह उस जलती हुई भूमि एवं भयंकर जीव-जन्तुओंके आक्रमणसे इतना संतप्त हो जाता है कि उसकी चुद्धि ही भ्रष्ट हो जाती है। वह भ्रवड़ाकर जिल्लाने लगता है तथा बार-बार उस कष्टसे बेचैन हो उठता है। उसको वहाँ कहाँपर भी जान्ति नहीं प्राप्त होती है। इस प्रकार उस नरकलोकके कष्टको भोगते हुए पापीके जब हजारों वर्ष बात जाते हैं, तब कहाँ जाकर मुक्ति प्राप्त होती है।

इसके बाद जो नरक है उसका नाम 'अतिशीत' है। वह स्वधावत: अत्यन्त शीतल है। महारौरव नरकके समान हो उसका भी विस्तार बहुत लंबा है। वह गहन अन्धकारसे व्याप्त रहता है। असझ कष्ट देनेवाले यमदूर्तोके द्वारा पापीजन लाकर यहाँ बाँध दिये जाते हैं। अत: वे एक दूसरेका आलिंगन करके वहाँकी भयंकर ठंडकसे बचनेका प्रयास करते हैं। उनके दाँतोंमें करकटाहर होने लगती है। हे पक्षिराज! उनका शरीर वहाँकी उस टंडकसे काँपने लगता है। वहाँ भूख-प्यास बहुत अधिक लगती है। इसके अतिरिक्त भी अनेक कष्टोंका सामना उन्हें वहाँ करना पड़ता है। यहाँ हिमलाण्डका वहन करनेवाली वायु चलती है, जो शरीरकी हड्डियोंको तोड़ देती है। वहाँके



प्राणी भूखसे तस्त होकर मजा, रक्त और गल रही हड़ियोंको खाते हैं। परस्पर भेंट होनेपर वे सभी पापी एक-दूसरेका आलिंगन कर भ्रमण करते रहते हैं। इस प्रकार उस तमसावृत्त नरकमें मनुष्यको बहुत-से कष्ट झेलने यहते हैं।

हे पश्चित्रेष्ठ। जो व्यक्ति अन्यान्य असंख्य पाप करता है, यह इस नरकके अतिरिक्त 'निकृतन' नामसे प्रसिद्ध



दुसरे नरकमें जाता है। हे खगेन्द्र! वहाँ अनवरत कुम्भकारके चक्रके समान चक्र चलते रहते हैं, जिनके ऊपर पापीजनोंको खड़ा करके यमके अनुचरोंके द्वारा अँगुलिमें स्थित कालसूत्रसे उनके शरीरको पैरसे लेकर शिरोभागतक छेदा जाता है। फिर भी उनका प्राणान्त नहीं होता। इसमें शरीरके सैकड़ों भाग टूट-टूट कर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और पुन: इकट्ठे हो जाते हैं। इस प्रकार यमदूत पापकर्मियोंको वहाँ हजारों वर्षतक चक्कर लगवाते रहते हैं। जब सभी पापींका विनास हो जाता है, तब कहीं जाकर उन्हें उस नरकसे मिक्त प्राप्त होती है।

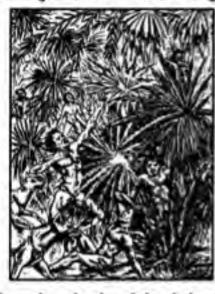
'अप्रतिष्ठ' नामका एक अन्य नरक है। वहाँ जानेवाले प्राची असहा दु:खका भीग भीगते हैं। वहाँ पापकर्मियोंके दु:खके हेतुभूत चक्र और रहट लगे रहते हैं। जबतक हजारों वर्ष पूरे नहीं हो जाते, तबतक वह रुकता नहीं। जो लोग उस चक्रपर बाँधे जाते हैं, वे जलके घटकी भौति



उसपर पूमते रहते हैं। पुन: रक्तका वमन करते हुए उनके औंतें मुखकी ओरसे बाहर आ जाती हैं और नेत्र आँतोंरे युस जाते हैं। प्राणियोंको वहाँ जो दुःख प्राप्त होते हैं, व बड़े ही कप्टकारी हैं।

हे गरुड! अब 'असिपत्रवन' नामक दूसरे नरकवे विषयमें सुनो। यह नतक एक हजार योजनमें फैल हुआ है। इसकी सम्पूर्ण भूमि अग्निसे व्याप्त होनेवे कारण अहर्निश जलती रहती है। इस भयंकर नरका सात-सात सूर्य अपनी सहस्र-सहस्र रश्मियोंके साध सदैव तपते रहते हैं, जिनके संतापसे वहाँके पापी ह क्षण जलते ही रहते हैं। इसी नरकके मध्य एव ************************

चौथाई भागमें 'शीतस्निग्धपत्र' नामका वन है। हे पक्षित्रेष्ठ! जाकर उन्होंमें औधे मुख डाल दिया जाता है। गलती उसमें वृक्षोंसे टूटकर गिरे फल और पत्तेकि देर लगे हुई मज्जारूपी जलसे युक्त उसीमें फूटते हुए अङ्गोवाले रहते हैं। मांसाहारी बलवान् कुत्ते उसमें विचरण करते पापी काढ़ाके समान बना दिये जाते हैं। तदनन्तर रहते हैं। वे बड़े-बड़े मुखवाले, बड़े-बड़े दौतीवाले तथा व्याप्रकी तरह महाबलवान् है। अत्यन्त शीत एवं छायासे व्यापा उस नरकको देखकर भुख-प्याससे पीडित प्राणी दु:खी होकर करुण क्रन्दन करते हुए वहाँ



जाते हैं। तापसे तपती हुई पृथ्वीकी अग्निसे पाणियोंक दोनों पैर जल जाते हैं, अत्यन्त जीतल वायु बहने लगती है, जिसके कारण उन पापियोंके कपर दलवारके समान तीक्ष्ण धारवाले पत्ते गिरते हैं। जलते हुए अग्नि-समूहसे युक्त भूमिमें पापीजन क्रिन्न-भिन्न होकर गिरते हैं। उसी समय वहाँके रहनेवाले कुत्तोंका आक्रमण भी उन पापियोंपर होने लगता है। तीच्र ही वे कुने रोते हुए उन पापियोंके शरीरके मांसको खण्ड-खण्ड करके खा जाते हैं।

हे तात। असिपत्रवन नामक नरकके विषयको मैंने बता दिया। अब तुम महाभयानक 'तप्तकुम्भ' नामवाले नरकका वर्णन मुझसे सुनो-इस नरकमें चारों ओर फैले हुए अत्यन्त गरम-गरम चड़े हैं। उनके चारों और अग्नि प्रज्वलित रहती है, वे उबलते हुए तेल और लौहके चूर्णसे भरे रहते हैं। पापियोंको ले



भवंकर यमदृत नुकीले हथियारोंसे उन पापियोंकी खोपही, औखों तथा हड्डियोंको छेद-छेदकर नष्ट करते हैं। गिद्ध बढ़ी तेजीसे वहाँ आकर उनपर प्रपट्टा मारते हैं। उन उबलते दुए पापियोंको अपनी चोंचसे खींचते हैं और फिर उसीमें छोड़ देते हैं। उसके बाद यमदूत उन पापियोंके सिर, स्नायु, इबोभूत मांस, त्वचा आदिको जल्दी-जल्दी करछूलसे उसी तेलमें घुमाते हुए उन महापापियोंको काढ़ा बना डालते हैं।

हे पश्चित्। यह तप्तकुम्भ-जैसा है, उस बातको विस्तारपूर्वक मैंने तुम्हें बता दिया। सबसे पहले नरकको राँख और इसरे उसके बादवालेको महारीख नरक कहा बाता है। तीसरे नरकका नाम अतिशीत एवं चौधेका नाम निकन्तन है। पाँचवाँ नरक अप्रतिष्ठ, छठा असिपत्रवन एवं सातवाँ तप्तकृष्भ है। इस प्रकार ये सात प्रधान नरक है। अन्य भी बहुत-से नरक सुने जाते हैं, जिनमें पापी अपने कमौंके अनुसार जाते हैं। यथा-रोध, सुकर, ताल, तप्तकुम्भ, महाञ्चाल, शबल, विमोहन, कृमि, कृमिभक्ष, लालाभश्च, विषञ्जन, अधःशिर, पृथवह, रुधिरान्ध, विद्दुभूज, वैदरणी, असिपत्रवन, अग्निज्वाल, महाधोर, संदंश, अभोजन, तमस् कालस्त्र, लौहतापी, अभिद, अप्रतिष्ठ तथा अवीचि आदि।



सन्दंश, तप्तसूर्मि, वैतरणी, अश्वकृष, प्राणरोध और वडकण्टक-शास्पली नरक

जो मनुष्य ब्रह्महत्या एवं गुरुपत्नी तथा बहनके साथ खाते हैं। सहवास करनेकी दुशेष्टा करता है, वह 'तरतकुम्भ' नामक यज्ञकर्ममें दीक्षित होनेपर जो व्रतका पालन नहीं करता, नरकमें जाता है। जो असल्य-सम्भाषण करनेवाले राजपुरुष उसे उस पापसे 'संदंश' नरकमें जाना पहता है। यदि हैं, उनको भी उक्त नरककी ही प्राप्ति होती है। जो प्राणी स्वप्नमें भी संन्यासी या ब्रह्मचारी स्वालित हो जाते हैं तो निषद्ध पदार्थोंका विक्रेता, मदिशका व्यापारी है तथा वे 'अभौजन' नामक नरकमें जाते हैं। जो लोग क्रोध और स्वामिभक्त सेवकका परित्याग करता है, वह 'तप्तलीह' हथेंसे भरकर वर्णाश्रम-धर्मके विरुद्ध कर्म करते हैं, उन नामक नरकको प्राप्त करता है। जो व्यक्ति कन्या या सबको नरकलोकको प्राप्त होती है। पुत्रवधूके साथ सहवास करनेवाला है, जो वंद-विक्रेता सबसे ऊपर भवंकर गर्मीसे संतप्त रीरव नामक नरक और वेदनिन्दक है, वह अन्तमें 'महान्वाल' नामक नरकका है। उसके नीचे अत्यन्त दु:खदायी महारीख है। उस वासी होता है। जो गुरुका अपमान करता है, राज्यबाजसे नरकसे नीचे शीतल और उस नरकके बाद नीचे 'तामस' उनपर प्रहार करता है तथा अगम्या स्त्रीके साथ मैचून करता नरक माना गया है। इसी प्रकार बताये गये क्रमसे अन्य है, वह 'शबल' नामक नरकमें जाता है।

शौर्य-प्रदर्शनमें जो बीर मर्यादाका परित्याग करता है. वह 'विमोहन' नामक नरकमें गिरता है। जो दूसरेका अन्दिष्ट जिनमें पहुँचकर पापी प्रतिदिन पकता है, जलता है, गलता करता है, उसे 'कृमिभक्ष' नामक नरककी प्राप्त होती है। देवता और ब्राह्मणसे द्वेष रखनेवाला प्राणी 'लालाभक्ष' नरकमें जाता है। जो परायी धरोहरका अपहर्ता है तथा जो बाग-बगीचोंमें आग लगाता है, उसे 'विषक्तन' नामक नरककी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य असत्-पात्रसे दान लेता है तथा असत् प्रतिग्रह लेनेवाला, अयाज्ययाजक और जो पतंप स्थावर तथा एक खुरवाले गधेकी योनि प्राप्त होती नक्षत्रसे जीविकोपार्जन करता है, वह मनुष्य 'अधःशिर' नरकमें जाता है। जो मदिरा, मांस आदि पदार्योंका विक्रेता गौकी योनिमें पहुँचता है। हे गरुड। गधा, योड़ा, खच्चर, है, वह 'पूयवह' नामक घोर नरकमें गिरता है। जो कुक्कुट. और मृग, शरभ और चमरो—ये छ: योनियाँ एक खुरवाली बिल्ली, सुअर, पक्षी, मृग, भेंडको बाँधता है, वह भी उसी होती है। इनके अतिरिक्त बहुत-सी पापाचार-योनियाँ भी प्रकारके नरकमें जाता है। जो गृहदाही है, जो विषदाता है, हैं. जिनमें जीवात्माको कष्ट भोगना पड़ता है। उन सभी जो कुण्डाशी है, जो सोमविक्रेता है, जो मद्ययाँ है, जो बोनियोंको पाकर प्राणी मनुष्य-योनिमें आता है और मांसभोजी है तथा जो पशुहन्ता है, वह व्यक्ति 'रुधिरान्ध' कुबड़ा, कुत्सित, वामन, चाण्डाल और पुरुकश आदि नर-

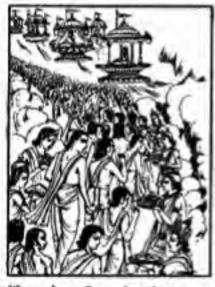
—ये सभी नरक यमके राज्यमें स्थित हैं। पापीवन नामक नरकमें जाता है, ऐसा विद्वानोंका अभिमत है। एक पृथक्-पृथक् रूपसे उनमें जाकर गिरते हैं। रौरव आदि ही पंक्तिमें बैठे हुए किसी प्राणीको धोखा देकर जो लोग सभी नरकोंकी अवस्थिति इस पृथ्वीलोकसे नीचे मानी विष खिला देते हैं, उन सभीको 'विद्भुज' नामक घोर गयी है। जो मनुष्य गौकी इत्या, भूणहत्या और आग नरक प्राप्त होता है। मधु निकालनेवाला मनुष्य 'वैतरणी' लगानेका दुष्कर्म करता है, वह 'रोध' नामक नरकर्में गिरता और क्रोधी 'मूत्रसंहक' नामक नरकर्में जाता है। अपवित्र है। जो ब्रह्मधाती, मधपी तथा सोनेकी चोरी करता है, यह और क्रोधी व्यक्ति 'असिपत्रवन' नामक नरकमें जाता है। 'सुकर' नामके नरकमें गिरता है। अत्रिय और वैश्यको मृगोंका शिकार करनेवाला व्याध 'अग्निव्याल' नामक हत्या करनेवाला 'ताल' नामक नरकमें जाता है। नरकमें जाता है, जहाँ उसके शरीरको नोच-नोचकर कौये

नरक भी नीचे ही है। इन नरकलोकोंके अतिरिक्त भी सैकड़ों नरक हैं,

है, विदीर्ण होता है, चूर्ण किया जाता है, गीला होता है, क्वाच बनाया जाता है, जलाया जाता है और कहीं वायुसे प्रताहित किया जाता है— ऐसे नरकोंमें एक दिन सी वर्षके समान होता है। सभी नरकोंसे भोग भौगनेक बाद पापी तिर्यक्-योनिमें जाता है। तत्पश्चात् उसको कृमि, कीट, है। तदनन्तर मनुष्य जंगली हाथी आदिकी योनियोंमें जाकर

योनियोंमें जाता है। अवशिष्ट पाप-पुण्यसे समन्वित जोव पुण्योतस्वमें पुष्यो, जलतस्वमें जल, तेजतस्वमें तेज, बार-बार गर्भमें जाते हैं और मृत्युको प्राप्त होता है। उन वायुतत्त्वमें वायु, आकाशतत्त्वमें आकाश तथा सर्वव्यापी सभी पापोंके समाप्त हो जानेके बाद प्राणीको जुद, वैश्य भन चन्द्रमें जाकर विलोन हो जाता है। हे गरुड! शरीरमें तथा क्षत्रिय आदिको आरोहिणी-योनि प्राप्त होती है। काम, क्रोध एवं पक्षेन्द्रियाँ हैं। इन सभीको शरीरमें कभी-कभी वह सत्कर्मसे ब्राह्मण, देव और इन्द्राचके रहनेवाले चोरकी संज्ञा दी गयी है। काम, क्रोध और पदपर भी पहुँच जाता है।

हे गरुड! यमद्वारा निर्दिष्ट योनिमें पुण्यगति प्राप्त करनेमें जो प्राणी सफल हो जाते हैं, वे सुन्दर-सुन्दर गीत गाते, वाद्य बजाते और नृत्यादि करते हुए प्रसन्नचित गन्धवाँके साथ, अच्छे-से-अच्छे हार, नुपर आदि नाना प्रकारके आभूषणींसे युक्त, चन्दन आदिको दिव्य सुगन्ध



घरमें जन्म लेकर सदाचारका पालन करते हैं। समस्त पशुओंके समान है। दुःख भोगते हैं।

है। पापियोंका जीव अधोमार्गसे निकलता है। तदनन्तर है। (अध्याय ३)

अहंकार नामक विकार भी उसीमें रहनेवाले चोर हैं। उन सभीका नायक मन है। इस शरीरका संहार करनेवाला काल है, जो पाप और पुण्यसे जुड़ा रहता है। जिस प्रकार चरके जल जानेपर व्यक्ति अन्य चरकी शरण लेता है, उसी प्रकार पश्चेन्द्रियोंसे युक्त जीव इन्द्रियाधिष्ठात देवताओंके स्तथ शरीरका परित्याग कर नये शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। शरीरमें रक-मजादि सात धातुओंसे युक्त यह पाटकौशिक जरीर है। सभी प्राप, अपान आदि पश्च वायु, मल-मूत्र, व्याधियाँ, पित, इलेक्ट, मजा, मांस, मेदा, अस्थि, शुक्र और स्नाव-ये सभी शरीरके साथ ही अग्निमें जलकर भस्म हो जाते हैं।

हे तक्ष्यं। प्राणियोंके विनासको मैंने तुम्हें बता दिया। अब उनके इस शरीरका जन्म पुन: कैसे होता है, उसकी में तुम्हें बता रहा है।

यह शरीर नसोंसे आबद, ब्रोजादिक इन्द्रियोंसे युक्त और नवद्वारोंसे समन्त्रित है। यह सांसारिक विषय-वासनाओंके प्रधावसे ज्याप्त, काम-क्रोधादि विकारसे समन्त्रित, राग-द्वेषसे परिपूर्ण तथा तथ्या नामक भयंकर चोरसे युक्त है। यह लोधरूपी जालमें फैंसा हुआ और मोहरूपी वस्त्रसे और पुष्पेंकि हारसे सुवासित एवं अलंकत चमचमाते हुए दका हुआ है। यह मायासे धलीभौति आबद्ध एवं लोभसे विमानमें स्वर्गलोकको जाते हैं। पुण्य-सनाप्तिके पक्षात् क्य अधिष्ठित पुरके समान है। सभी प्राणियोंका शरीर इनसे वे वहाँसे पुन: पृथ्वीपर आते हैं तो राजा अथवा महात्माओंके ज्याप्त है। जो लोग अपनी आत्माको नहीं जानते हैं, वे

भोगोंको प्राप्त करके पुन: स्वर्गको प्राप्त करते हैं हे गरुड। बौरासी लाख योनियाँ हैं और उद्भिष्ण अन्यथा पहलेके समान आरोहिणी-योनिमें जन्म लेकर (पृथ्वीमें अंकुरित होनेवाली वनस्पतियाँ), स्वेदज (पसीनेसे जन्म लेनेवाले जुएँ और लीख आदि कीट), अण्डज मृत्युलोकमें जन्म लेनेवाले प्राणीका मरना तो निश्चित (पक्षी) तथा जरायुज (मनुष्य)-में यह सम्पूर्ण सृष्टि विभक्त आसनमृत्य-व्यक्तिके निमित्त किये जानेवाले प्रायश्चित्त, दस दान आदि विविध कर्म, मृत्युके बाद किये जानेवाले कर्म, षट्पिण्डदान, दाह-संस्कारसे पूर्व किये जानेवाले कर्म, दाह-संस्कारके वाद अस्थिसंचयनादि कर्म तथा गृहप्रवेशके समयके कर्म, दुर्मृत्युकी गति, नारायण-बलिका विधान, पुत्तलदाहविधि तथा पञ्चक मृत्युके कृत्य

श्रीकृष्णने कहा-हे गरुड! जानमें या अनजानमें मनुष्य जो भी पाप करते हैं, उन पापोंकी शुद्धिके लिये उन्हें प्रायक्षित करना चाहिये। जो विद्वान है वह पहले पवित्र करनेवाले भस्म आदि दस स्नान करे और पापोंके प्रायक्षितके रूपमें शास्त्रोक्त कृष्ट्रादि व्रत अथवा तटातिनिधिभूत गोदानादि क्रिया करे। यदि मनुष्य उनमें अक्षमताके कारण सफल न हो रहा हो तो आधा ही सही, यदि आधा भी न हो तो उसका ही आधा सही और नहीं तो उस आयेका भी आधा उसे कुछ-न-कुछ प्रायक्षित अवस्य करना चाहिये। तत्पश्चात् यथासामध्यं दस प्रकारके दान देनेका विधान है, उसको सुनो।

गो, भूमि, तिल, हिरण्य, युत, वस्त्र, धान्य, गुढ, रजत और लवण-ये दस दान है-

गोभूमितिलहिरण्यान्यवासोधान्यगुडास्तवा रजलं लक्षणं चैव दानानि दश वै बिद्:।।

(XIX) यमद्वारपर पहुँचनेके लिये जो मार्ग बताये गये हैं, वे अत्यन्त दुर्गन्धदायक मवादादि तथा रक्तादिसे परिस्थाप्त है। अत: उस मार्गमें स्थित वैतरणी नदीको पार करनेके लिये वैतरणी गौका दान करना चाहिये। जो गौ सर्वाङ्गमें काली हो, जिसके स्तन भी काले हों, उसे वैतरणों गाँ माना गया है।

तिल, लोहा, स्वर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, भूमि और गौ-ये पापसे शुद्धिके लिये पवित्रतामें एकसे बढकर एक हैं। इन आठ दानोंको महादान कहा जाता है। इनका दान उत्तम प्रकृतिवाले ब्राह्मणको ही देना चाहिये-

तिला लोहं हिरण्यं च कर्पासं लवणं तथा। सप्तधान्यं क्षितिगांव एकैकं पावनं स्मृतम्॥ एतान्यष्टी महादानान्युत्तवाय द्विजातये।

(X10-6)

अब पददानका वर्णन सुनो । छत्र, जूता, वस्त्र, अंगूठी, कमण्डल, आसन, पात्र और भोज्यपदार्थ— ये आठ प्रकारके पद हैं-

क्रजोपानहक्त्रकाणि मुद्रिका च क्रमण्डलुः। आसर्न धाजनं भोज्यं पदं चाष्ट्रविधे स्मृतप्॥

(814)

तिलपात्र, युतपात्र, सच्या, उपस्कर तथा और भी जो कुछ अपनेको इष्ट हो, वह सब देना चाहिये। अध, रच, भैस, भीजन, वस्वका दान ब्राह्मणोंको करना चाहिये। अन्य दान भी अपनी शक्तिके अनुसार देना चाहिये।

हे पश्चिराज। इस पृथ्वीपर जिसने पापका प्रायक्षित कर लिया है, वह दस प्रकारके दान भी दे चुका है, बैतरणी गौ एवं अष्टदान कर चुका है, तिलसे भरा पूर्ण पात्र, चीसे भरा हुआ पात्र, राज्यादान और विधिवत् पददान करता है तो वह नरकरूपी गर्भमें नहीं आता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता-

प्राथक्षितं कृतं येन दश दानान्यपि क्षिती। दानं गोर्वेतरण्याञ्च दानान्यष्टी तथापि वा। तिलपार्त्र सर्पि:पार्त्र शप्यादानं तथैव ज॥ पददानं च विधिवनासौ निरयगर्भगः।

(x165-6x)

पण्डित लोग स्वतन्त्र रूपसे भी लवण दान करनेकी इच्छा रखते हैं, क्योंकि यह लवण-रस विष्णुके शरीरसे उत्पन हुआ है, इस पृथ्वीपर मरणासन प्राणीके प्राण जब न निकल रहे हों तो उस समय लवण-रसका दान उसके हाधसे दिलवाना चाहिये; क्योंकि यह दान उसके लिये देता है, परलोकमें वह सब उसे प्राप्त होता है। यहाँ उसके करता है। यदि कोई व्यक्ति सुपात्र ब्राह्मणको दुग्धवती, आगे रखा हुआ मिलता है। हे पश्चिन्! जिसने यथाविधि नवीन मेधके समान वर्णवाली, सुन्दर जधन-प्रदेशसे युक्त अपने पापोंका प्रायक्षित कर लिया है, वहीं पुरुष है। वहीं और मनमोहक तिलकसे सर्मान्वत भैंसका दान देता है तो अपने पापोंको भस्मसात् करके स्वर्गलोकमें मुखपूर्वक वह पालोकमें जाकर अभ्युदयको प्राप्त करता है, इसमें निवास करता है।

हे खगराज। गौका दूध अमृत है। इसलिये जो मनुष्य दूध देनेवाली गौका दान देता है, वह अमुतत्वको प्राप्त करता है। पहले कहे गये तिलादिक आठ प्रकारके दान देकर प्राणी गन्धर्वलोकमें निवास करता है। यमलोकका मार्ग अत्यधिक भीषण तायसे युक्त है, अतः छत्रदान करना चाहिये। छत्रदान करनेसे मार्गमें सुख प्रदान करनेवाली खाया प्राप्त होती है। जो मनुष्य इस जन्ममें पादुकाओंका दान देता है. वह 'असिपत्रवन'के मार्गको घोडेपर सवार होकर सुखपूर्वक पार करता है। भोजन और आसनका दान देनेसे प्राणीको परलोकगमनके मार्गमें मुखका उपभोग प्राप्त होता है। जलसे परिपूर्ण कमण्डलुका दान देनेवाला पुरुष सखपूर्वक परलोकगमन करता है।

यमराजके दत महाक्रोधी और महाध्यंकर है। काले एवं पीले वर्णवाले उन दूतोंको देखनेमात्रसे भय लगने लगता है। उदारतापूर्वक वस्त्र-आभूषणादिका दान करनेसे थे यमदूत प्राणीको कह नहीं देते हैं। तिलसे भरे हुए पात्रका जो दान ब्राह्मणको दिया जाता है, वह मनुष्यके मन, वाणी और शरीरके द्वारा किये गये त्रिविध पापोंका विनाश कर देता है। मनुष्य धृतपात्रका दान करनेसे रुद्रलोक प्राप्त करता है। ब्राह्मणको सभी साधनोंसे युक्त शब्दाका दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें नाना प्रकारकी अपसराओंसे युक्त विमानमें चढ़कर साठ हजार वर्षतक अमरावतीमें कीडा करके इन्द्रलोकके बाद गिरकर पुन: इस पृथ्वीसोकमें आकर राजाका पद प्राप्त करता है। जो मनुष्य काठी आदि उपकरणोंसे सजे-धजे, दोपरहित जवान घोडेका दान बाह्मणको देता है, उसको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। हे खगेश | दानमें दिये गये इस घोड़ेके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्ष (कालतक) स्वर्गके लोकोंका भोग दानदाताको प्राप्त होता है। प्राणी ब्राह्मणको सभी उपकरणोंसे युक्त चार

स्वर्गलोकके द्वार खोल देता है। मनुष्य स्वयं जो कुछ दान बोड़ोंबाले स्वका दान देकरके राजसूय यज्ञका फल प्राप्त कोई संदेह नहीं है।

> वालपत्रसे बने हुए पंखेका दान करनेसे मनुष्यकी परलोकगमनके मार्गमें वायुका सुख प्राप्त होता है। वस्त्र-दान करनेसे व्यक्ति परलोकमें शोभासम्पन शरीर और उस लोकके वैभवसे सम्पन्त हो जाता है। जो प्राणी बाह्मणको रस, अन्न तथा अन्य सामग्रियोंसे युक्त घरका दान देता है, उसके वंशका कभी विनाश नहीं होता है और वह स्टब्स स्वर्गका सुख प्राप्त करता है। हे खगेन्द्र! इन बताये गये सभी प्रकारके दानोंमें प्राणीकी बद्धा तथा अश्रद्धासे आयी हुई दानको अधिकता और कमीके कारण उसके फलमें बेहता और लच्या आती है। इस लोकमें जिस व्यक्तिने जल एवं रसका दान किय

> है, वह आपद्कालमें आह्यदका अनुभव करता है। जिस मनुष्यने ब्रद्धापूर्वक इस संसारमें अन्त-दान दिया है, यह परलोकमें अन्त-भक्षणके बिना भी बही तुप्ति प्राप्त करत है, जो उत्तमीतम अन्तके भधणसे प्राप्त होतो है। मृत्युके संनिकट आ जानेपर यदि मनुष्य यथाविधि संन्यासाश्रमको प्रहण कर लेता है तो वह पुन: इस संसारमें नहीं आता अपितु उसको मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

> वदि मृत्युके सयोप पहुँचे हुए मनुष्यको लोग किस पवित्र तीर्थमें से जाते हैं और उसकी मृत्यु उसी तीर्थमें हें जाती है तो उसको मुक्ति प्राप्त होती है तथा यदि प्राप्त मार्गके बीच ही मर जाता है तो भी मुक्ति प्राप्त करता है है, साथ हो उसको तीथंतक ले जानेवाले लोग पग-पगप यत करनेके समान फल प्राप्त करते हैं-

मर्त्य होती ध प्रतिनीयते । आसप्रमाणो तीर्बंप्राप्ती भवेन्युक्तिप्रियते यदि मार्गगः। पदे पदे कतुसमं भवेत्तस्य न संशयः॥

(8136

हे द्वित । मृत्युके निकट आ जानेपर जो मनुष

विधिवत् उपवास करता है, वह भी मृत्युके पश्चात् पुनः इस संज्ञक' पिण्ड दिया जाता है। संसारमें नहीं लौटता है। शवयात्राके समय पुत्रादिव

है खगेश! मृत्युके संनिकट होनेपर कौन-सा दान करना चाहिये। इस प्रश्नका उत्तर मैंने बता दिया है। मृत्यु और दाहके बीच मनुष्यके क्या कर्तव्य हैं? इस प्रश्नका उत्तर अब तुम सुनो।

व्यक्तिको मरा हुआ जानकर उसके पुत्रादिक परिजनोंको चाहिये कि वे सभी शबको शुद्ध जलसे स्थान कराकर नवीन वस्त्रसे आच्छादित करें। तदनन्तर उसके शरीरमें चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थीका अनुसेप भी करें। उसके बाद वहाँ मृत्यु हुई है, उसी स्थानपर एकोव्हि बाँढ करना चाहिये। दाहकर्मके पूर्व शवको दाहके पोग्य बनानेके लिये ऊपर बताये गये कर्म अनिवार्य हैं। इस एकोडिप्ट बादमें आसन तथा प्रोक्षण क्रिया होनी चाहिये, किंतु आवाहन, अर्थन, पात्रालम्भन और अवगाइन-ये चार क्रियाएँ नहीं करनी चाहिये। उस समय पिण्डदान अनिवार्य है, अन्नदानका संकल्प भी हो सकता है। रेखाकरण, प्रत्यवनेजन नहीं होता और दिये गये पदार्थके अक्षय्यको कामना करनी चाहिये। अक्षय्योदक दान देना चाहिये। स्वधावाचन, आशोर्वाद और तिलक-ये तीन नहीं होने चाहिये। उडदसे परिपूर्ण घट और लोहेकी दक्षिणा ब्राह्मणकी प्रदान करनेका विधान है। तत्पश्चात् पिण्ड हिलाना चाहिये। किंतु उस समय आच्छादन, विसर्जन तथा स्वस्तिवाचन—ये तीन वर्जित हैं। हे खगेत। मरणस्थान, द्वार, घत्वर, विज्ञामस्थान, कान्र-चयन और अस्थि-संचयन-ये छ: पिण्डदानके स्थान है।

प्राणीकी मृत्यु जिस स्थानपर होती है, वहाँपर दिये जानेवाले पिण्डका नाम 'शव' है, उससे भूमिदेवताकी दुष्टि होती है। द्वारपर जो पिण्ड दिया जाता है उसे 'पान्य' नामक पिण्ड कहते हैं। इस कमंकों करनेसे वास्तुदेवताको प्रसन्तता होती है। चत्वर अर्थात् चौराहेपर 'खेचर' नामक पिण्डका दान करनेपर भूतादिक, गगनचारी देवतागण प्रसन्न होते हैं। शवके विश्राम भूमिमें 'भूत-संज्ञक' पिण्डका दान करनेसे दसों दिशाओंको संतुष्टि प्राप्त होती है। चितामें 'साधक' नामका और अस्थि-संचयनमें 'प्रेत-

मृत्यके पश्चात् पुन: इस संज्ञक' पिण्ड दिया जाता है।

शवयात्राके समय पुत्रादिक परिजन तिल, कुश, पृत और ईंधन लेकर 'यमगाया' अथवा बेदके 'यमसूक 'का पाठ करते हुए श्मशानभूमिकी ओर जाते हैं। प्रतिदिन गाँ, अक्ष, पुरुष और बैल आदि चराचर प्राणियोंको अपनी ओर खोंचते हुए यम संतुष्ट नहीं होते हैं, जिस प्रकार कि मछ पीनेवाला संतुष्ट नहीं होता'।

'ॐ अपेतेति॰' इस यमस्तिका अथवा 'यमगाथा' का पाठ रुवपात्राके मार्गमें करना चाहिये। सभी बन्धु-बान्धवोंको दक्षिण दिशामें स्थित श्मशानकी बनभूमिमें रुवको ले जाना चाहिये। हे पश्चिन्। पूर्वोक्त विधिसे मार्गमें दो बाद्ध करना चाहिये। उसके बाद श्मशानभूमिमें पहुँचकर धीरेसे जबको पृथ्वीपर उतारते हुए दक्षिण दिशाकी ओर सिर स्थापित कर चिताधुमिमें पूर्वोक्त विधिके अनुसार श्राद करना चाहिये। शव-दाहकी क्रियांक लिये पुत्रादिक परिजनोंको स्थयं तुण, काष्ट्र, तिल और पृत आदि ले जाना चाहिये। शुद्रोंके द्वारा रमशानमें पहुँचायी गयी वस्तुओंसे वहाँ किया गया सम्पूर्ण कर्म निष्कल हो जाता है। वहाँपर सभी कर्म अपसब्य और दक्षिणाभिमुख होकर करना चाहिये। हे पश्चिराज। शास्त्रसम्मत विधिके अनुसार एक बेदीका निर्माण करना चाहिये। तदनन्तर प्रेतकस्त्र अर्थात् कफनको दी भागोंमें फ़ाइ कर उसके आधे भागसे उस शबको दक दे और इसरे भागको स्पष्टानमें निवास करनेवाले प्राणीके लिये भूमिपर हो छोड़ दे। उसके बाद पूर्वोक्त विधिके अनुसार मरे हुए व्यक्तिके हाथमें पिण्डदान करे। तदननार संबंक सम्पूर्ण शरीरमें मृतका लेप करना चाहिये। हे खगेरु! प्राणीकी मृत्यु और दाह-संस्कारके बीच

हे खगेश! प्राणीकी मृत्यु और दाह-संस्कारके बीच पिण्डदानको जो विधि है, अब उसे सुनी।

पहले बताये गये मृतस्थान, द्वार, चीराहे, विश्रामस्थान तथा काष्ठसंचयनस्थानमें प्रदत्त भाँच पिण्डोंका दान करनेसे स्वयमें को आहुति (अग्निदाह)-को योग्यता आ जाती है, अथवा किसी प्रकारके प्रतिबन्धके कारण उपयुक्त पिण्ड नहीं दिये गये तो स्वव राक्षसोंके भक्षण योग्य हो जाता है। अत: स्वच्छ भूमिपर बनी हुई वेदीको भलीभौति मार्जन,

१-यहाँ एकोदिष्टका तात्पर्य मरणस्थानपर यथाविधान एक पिण्डके दानसे हैं।

२-अहरहनींयमानो ग्रमकं पुरुषं वृष्टम्। वैवस्त्रतो न तृष्येत सुरया त्यिव दुर्मति:॥ (४।५३) इसीका नाम यमगाया है।

३-यज्०अ० ३५ 'यमसूक्त' कहलाता है।

उपलेपनके द्वारा शुद्ध कर उसके ऊपर यथाविधि अग्निको भावना करते हुए पुन: जलमें मीन धारणपूर्वक प्रवेश करें स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर पुष्प-अक्षत आदिसे कव्याद और यचाधिकार एक वस्त्र होकर अपनी शिखा खोलकर नामवाले अग्निदेवकी विधिवत् पूजा करके दाह करे। तथा अपसव्य होकर स्नान करें। यह स्नान दक्षिणाभिमुख दाहकार्यमें चाण्डालके घरकी अग्नि, चिताकी अग्नि और होकर 'अपनः शोश्चदयम्' इस वेदमन्त्रका उच्चारण करते पापीके घरकी अग्निका प्रयोग नहीं करना चाहिये और हुए करना चाहिये। उस समय स्नान करनेवाले लोगोंको निम्नलिखित मंत्रसे अग्निकी प्रार्थना करनी चाहिये-त्वं भूतकृजगद्योगिस्त्वं लोकपरिपालकः॥

उपसंहर तस्मान्त्रमेनं स्वर्गं नयामृतम्। (XIEA-EF)

'हे देव। आप भूतकृत् हैं। हे देव। आप इस संसारके योतिस्वरूप और सभीके पालनहार है। इसलिये जाप इस शवका अपनेमें डपसंहार करके अमृतस्वरूप स्वर्गमें ले जड़वे'।

इस प्रकार क्रव्याद देवको विधिवत् पूजा कर शवको चिताकी अग्निमें जलानेका उपक्रम करना चाहिये। जब शवके शरीरका आधा भाग उस अग्निमें जल जाय तो उस समय क्रिया करनेवाले व्यक्तिको निम्नलिखित मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये-

> अस्मारवर्गाधजातोऽसि त्वदयं जायतां प्रनः॥ स्वर्गीय लोकाय स्वाहा ।।।

अर्थात् हे देव! आप इसीसे उत्पन हुए हैं। यह शरीरी पुन: आपसे उत्पन्न हो। अमुक नामवाला यह प्राणी स्वर्गलोकको प्राप्त करे - ऐसा कहकर तिलमिडित आञ्चाहति चितामें जल रहे शवके ऊपर छोड़े। उसके बाद भावविहल होकर उस आत्मीयजनके लिये रोना चाहिये। इस कृत्यको करनेसे उस मृतकको अत्यधिक सुख प्राप्त होता है।

दाह-क्रिया करनेके पश्चात् अस्थि-संचयन क्रिया करनी चाहिये। हे खगराज! दाहकी पीड़ाकी शान्तिके लिये प्रेत-पिण्ड भी प्रदान करें। तत्पश्चात् वहाँपर गये हुए सभी लोग चिताकी प्रदक्षिणा कर कनिष्ठादि क्रमसे सक्त जपते हुए स्नानके लिये जलाशय आदिपर जायें। वहाँ पहुँचकर अपने वस्त्रोंका प्रक्षालनकर पुन: उन्हें ही पहनकर मृत व्यक्तिका ध्यान करते हुए उसे जल-दान देनेकी प्रतिज्ञा करें और मृत व्यक्तिने प्रेतरूपमें जल-दान देनेकी आहा दी है-ऐसी

जलका आलोडन नहीं करना चाहिये। तत्पश्चात् किनारे आ करके अपनी शिखाको बाँध ले और सीधे कुशको दक्षिणाग्र करके दोनों हाथोंमें रखकर अञ्जलिसे तिलयुक्त जल लेकर पितृतीर्थसे दक्षिण दिशामें एक बार, तीन बार अथवा दस बार भूमिया या पत्थापर जल-दान करे। इस समय तिलाञ्चलि देनेवाले परिजनोंको कहना चाहिये कि 'हे अमुक गोत्रमें उत्पन्न अमुक नामवाले प्रेत। तुम मेरे द्वारा दिये जा रहे इस विलोदकसे संतुष्त हो। मैं तुम्हें तिलाझलि दे रहा हैं, अत: इसको ग्रहण करनेके लिये तुम यहाँपर उपस्थित होओ'।'

हे कश्यपपुत्र गरुड। तत्पश्चात् जलसे निकलकर यस्त्र पहनकार स्वान-वस्त्रको एक बार निचोडकर पवित्र भूमिपर बैठ जायें। शबदाह तथा तिलाञ्जलि देकर मनुष्यको अभूपात नहीं करना चाहिये. क्योंकि उस समय रोते हुए अपने बन्ध-बन्धवोंके द्वारा औख और मुँहसे गिराये औस एवं कफको मरा हुआ व्यक्ति विवत होकर पान करता है। अत: रोना नहीं चाहिये, अपित यथाशक्ति क्रिया करनी चाहिये। तदनन्तर कोई पुराणज्ञ संसारकी अनित्यताको बताता हुआ मृतकके परिजनोंको इस प्रकारका उपदेश देकर शोकनिवारण करनेका प्रयत्न करे-'मनुष्यका यह शरीर केलेके वृक्षके समान बड़ा ही सारहीन एवं जलके बुद्बुदेके समान क्षणभंगुर है। इसमें जो सारतत्त्वको खोजता है, वह महामूर्ख है। यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायुक्तन-इन पाँच तत्त्वाँसे बना हुआ वह शरीर पुन: अपने किये इए कर्मोंके अनुसार उन्हीं पञ्चतत्त्वीमें जाकर विलीन हो जाता है तो उसके लिये रोना क्या? जब पृथ्वी, समुद्र तथा देवलोक विनष्ट हो जाते हैं तो फेनके समान प्रसिद्ध यह मार्चलीक नष्ट नहीं होगा?' इस उपदेशको सुनकर वे सभी परिवारके सदस्य अपने घरको जायेँ। पहलेसे घरके

२-यत् ३५१६ १-यन्० ३५।२२

३-तिलोदककी अञ्चलि इस प्रकार कहकर देनी चाहिये-'अग्रेहामुक गोत्रामुकप्रेतिचलादाहजनिततापतृपोपसमाय एष तिलकुशतोपाञ्जलिमंद्दस्तवोपतिञ्चताम्।'

द्वारपर रखी हुई नीमको पत्तियोंको चबाकर आचमन करें। मृत्युका संवरण करती है, उस स्त्रीको पतिव्रता मानना तदनन्तर अग्नि, जल, गोबर, क्षेत सरसों, दुर्वा, प्रवाल, वृषभ चाहिये। पातिव्रतधर्मका पालन करनेवाली स्त्री पतिकी मृत्यु तथा अन्य माङ्गलिक वस्तुओंका हायसे स्पर्श करके पैरसे हो जानेपर प्रथक चितामें समारूढ होकर परलोक-गमनके पत्थरका भी स्पर्श करें और धीर-धीर घरमें प्रवेश करें। योग्य नहीं होती। क्षत्रियादि सभी सवर्णा स्त्रियोंको अपने

मृत्यु होनेपर उसका दाह-संस्कार श्रीतको अग्निके द्वारा ही यथाविधि करे। दो वर्षसे कम आयुवाले छोटे बालककी स्त्रोके लिये पतिके साथ चितामें जलकर सती होनेका मृत्यु होनेपर उसको श्मशानभूमिमें गड्डा खोदकर मिडीसे दक देना चाहिये। उसके लिये उदक-क्रियाका विधान नहीं है। जो स्त्री पतिखता है, यदि वह मरे हुए पतिका अनुगमन करना चाहती है तो धर्मविहित नियमोंके अनुसार पतिको प्रणाम करके चितामें प्रचेश करे। जो स्त्री जीवनके व्यामोहसे चितापर चढ़कर पुन: बाहर आ जाती है, उसे 'प्राजापत्यव्रत' करना चाहिये।

मनुष्यके शरीरमें साढ़े तीन करोड़ रोवें होते हैं, जो स्त्री प्रतिका अनुगमन करती है, उतने कालतक यह स्थरीमें वास करती है। जिस प्रकार सर्पको पकडनेवाला सपेरा बिलसे सर्पको बलात् बाहर निकाल लेता है, उसी प्रकार पतिका अनुगमन करनेवाली सती नारी अपने पतिका उद्धार कर उसके साथ स्वर्गमें सुखपूर्वक निवास करती है। अप्सराएँ उसका सम्मान करती हैं तथा यह पतिव्रता नारी तबतक पतिके साथ सखोपभाग करती है, जबतक चौदह इन्होंकी अवधि पूर्ण नहीं हो जाती है। यदि पति ब्रह्महत्यास, कृतच्न या मित्रवाती हो, फिर भी सधवा स्त्री मृत्यु होनेपर पठिके साथ सती होकर उसे पवित्र कर देती है। पतिके मर जानेपर जो स्त्री उसीके साथ अग्निमें अपने शरीरको भेंट कर देती है, वह अरुन्धतीके समान आचरण करती हुई स्वगंलोकमें जाकर सम्मान प्राप्त करती है।

पतिकी मृत्य होनेपर जबतक स्त्री अपनेको चिताको भेंट नहीं चढ़ा देती है, तबतक वह स्वीके शरीरसे किसी प्रकार मुक्त नहीं हो सकती है। जो स्त्री अपने पतिके साथ सती हो जाती है, वह फितुकुल, मातुकुल और पतिकुल-इन तीनों कुलोंको पवित्र कर देती है। जो स्त्री पतिके द:खमें द:खी, सुखमें सुखी, विदेशगमनमें मिलनवसना, कुरुकाय तथा मृत्यु होनेपर चितामें उसीके साथ जलकर

जो व्यक्ति विद्वान् है, वह अपने अग्निहोत्री परिजनकी पतिके साथ ही चितामें आरोहणकर परलोकसुख प्राप करना चाहिये। ब्राह्मणवर्णको स्त्रीसे लेकर चाण्डालवर्णकी विधान एक समान हो है। पतिकी मृत्युके समय जो स्त्रियाँ गर्भसे रहित हैं और जिनके छोटे-छोटे बच्चे नहीं हैं, उन सभीको सर्वोधर्मका पालन करना चाहिये।

> हे पश्चिन्। मनुष्यके दाह-संस्कारकी जो विधि है, उसको सामान्य रूपसे मैंने तुम्हें सुना दिया है। अब और क्या सुनना चाहते हो?

इसपर गरुडने कहा-हे संसारके स्वामिन्। यदि प्रवासकालमें पतिकी मृत्यु हो जाती है और उसकी अस्थियों भी स्त्रीको नहीं प्राप्त होती है तो उसका दाह किस प्रकारसे करना चाहिये, यह बतानेकी कृपा करें। श्रीकृष्णने कहा-हे गरुह। यदि प्रवासी पतिकी

अस्थियाँ नहीं प्राप्त होती हैं तो मैं उसकी भी सदतिका विधान तुम्हें सुनाता है। उस परम गोपनीय तत्वको तुम सुनो। जो प्राणी भुखसे पीहित होनेके कारण मृत्युकी प्राप्त होते हैं, जो व्याप्रादि हिंसक प्राणियोंके द्वारा मारे जाते हैं, जिनकी मृत्यु गलेमें फाँसीका फन्दा लगानेसे हो जाती है, रुरोरको श्रीणताके कारण जिनको मृत्यु होती है, जो हाथींके द्वारा मारे जाते हैं, जो विष, अग्नि, बैल और ब्राह्मण-शापसे मृत्युको प्राप्त होते हैं, जिनको मृत्यु हैजासे होती है, जो आत्मघाती हैं, जो गिरकर या रस्सी आदिके द्वारा किये गये बन्धन अथवा जलमें ड्बनेसे मर जाते हैं, उनको स्थितिको तुम सनो।

वो सर्प, व्याप्त, शृंगधारी पश्, उपसर्ग (चेचक), पत्थर, जल, ब्राह्मण, जंगली हिंसक पशु, वृक्षपात और विद्यत्पातसे और लोहेसे, पर्वतपरसे गिरनेसे अथवा दीवालके गिरनेसे, पहाडके खड़े कगारसे, खाट या मध्य कक्षमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, ऋतुमती, चाण्डाली, शुद्रा तथा धोषिन आदि त्याच्य स्त्रियोंका संसर्ग, शारीरिक स्पर्श या

अधरोंका पान करते हुए जो लोग मृत्युको प्राप्त होते हैं, वीतराग, विमत्सर, जितेन्द्रिय, शुचिष्मान् और धर्मतत्पर जो शस्त्राधातसे मरते हैं, विषेले कृतेके मुखका स्पर्श होकर वहींपर भक्तिपूर्वक एकादश ब्राद्ध करे। उसके करनेसे जिनकी मृत्यु हो जाती है, विधि-विहीन रूपमें जो बाद वह सावधानमनसे विधिवत् जल, अक्षत, यब, गेहें मृत्यु हो जाती है, उसको दुर्मरण समझना चाहिये। उसी और कैंगनीका दान दे। उस समय शुभ हविष्यान्न, सुन्दर पापसे नरकोंको भोगकर वे पुन: प्रेतत्वको प्राप्त होते हैं। बनी हुई सानेकी अंगुठी, छत्र और पगड़ीका दान देना ऐसे व्यक्तिका दाह, उदकक्रिया और मरणनिमित्तक अन्य कत्य तथा औध्वंदैहिक कर्म नहीं करना चाहिये। इस प्रकारसे अपमृत्यु होनेपर पिण्डदानका कर्म भी वर्जित है। यदि प्रमादवश कोई पिण्डदान करता है तो वह उसे प्राप्त नहीं होता और अन्तरिक्षमें विनष्ट हो जाता है। अत: गन्ध, पुष्प और अक्षतसे पूजा करे, तत्पक्षात् बाह्यणोंको लोकगहांसे डरकर उसके शुभेच्छ पुत्र-पौत्र और संगोत्री सम्मानसहित दान दे। शंख, खङ्ग अथवा ताम्रपात्रमें जनोंको मृतकके लिये 'नारायणबलि' करनी चाहिये। ऐसा करनेपर ही उन्हें सुचिता प्राप्त होती है अन्यया नहीं; यह यमराजका खबन है।

नारायणबाल किये जानेपर और्श्वदेडिक कर्मकी योग्यता आ जाती है। अपमृत्यु होनेपर ऐसे प्राणीका शुद्धिकरण इसी कर्म (नारायणबलि)-से सम्भव है अन्यथा नहीं।

नारायणबलि सम्यक रूपसे तीर्धमें करना चाहिये। ब्राह्मणोंके द्वारा भगवान् कृष्णके समक्ष नारायणबलि करानेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है। पुराण, वेदके जाता बाह्मण सबसे पहले तर्पण करें। सभी प्रकारकी औषधियोंको और अशतको जलमें मिलाकर 'पुरुषसुक्त' या 'बैष्णवसुक्त'का उच्चारण करते हुए विष्णुके उद्देश्यसे सम्पन्न करना चाहिये। उसके बाद दक्षिणाभिमुख होकर प्रेत और विष्णुका इस प्रकार स्मरण करे-

> अनादिनिधनो देवः शङ्ख्यक्रगदाधरः॥ अक्षयः प्रडरीकाक्ष प्रेतमोक्षपदो भव।

> > (xitte-ttt)

'हे देव। आप अनादि, अजर और अमर हैं। हे देव। आप शंख, चक्र एवं गदासे सुशोभित विष्णु है। आप कभी प्रेतको मोक्ष प्रदान करनेको कपा करें।"

चाहिये। इन बस्तुऑके अतिरिक्त दूध-मधुसे समन्वित सभी प्रकारके अन्न देना चाहिये। वस्त्र और पादुका समन्वित आठ प्रकारका पददान सुपात्रीको समभावसे दिया जाना चाहिये। पिण्डदान करनेके बाद मन्त्रोच्चारसहित पृचक्-पृथक् तर्पण करना चाहिये। उसके बाद ध्यान-धारणासे संयुक्त होका दोनों घुटनोंके बल पृथ्वीपर अवस्थित होकर मन्त्रोन्तारपूर्वक उद्दिष्ट देवीके लिये प्रवक-पृथक आर्थ प्रदान करे। पश्चरतसे युक्त पृथक-पुषक पाँच कुम्भोंमें ब्रह्म, किन्मू, रुद्र, यम और प्रेत-इन पाँचोंको स्थापित करना चाहिये। इसके अतिरिक्त वस्त्र, यज्ञोपधीत, मुँग और पददान पुचक-पुथक् स्थापित करे। यथाविधि उन देखेंके लिये पाँच श्राद्ध करना वाहिये। तंख या ताम्रपात्र न मिलनेपर मुण्मयपात्रमें सर्वीषधिसे युक्त तिलोदक लेकर प्रत्येक पिण्डपर पृथक्-पुचक् जलचारा देनी चाहिये। विलसे पूर्ण ताम्रपात्र दक्षिणा और स्वर्णसे युक्त तथा पददान मुख्य बाह्मणोंको देना चाहिये। यमके निमित्त दक्षिणासहित तिल और लोहेका दान देना चाहिये। विष्णुदेवके लिये यथाशक्ति विधिपूर्वक बलि प्रदान करनेपर मृत व्यक्तिका नरकलोकसे उद्धार हो जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

जो व्यक्ति सर्पदंशसे मर जाता है, उसके विषयमें विशेष बात मुझसे सुनो-

एक भार सोनेको नागप्रतिमा बनवाकर गौके सहित विधिवत् उसका दान ब्राह्मणको कर देना चाहिये। ऐसा न विनष्ट होनेवाले परमात्मा हैं। हे पुण्डरीकाश! आप इस करके पुत्र अपने पिताके ऋणसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार सर्पबलि देकर मनुष्य सर्पदोषके पापसे दूर हो जाता

१-अकस्मात् किसी ऐसी स्थितिमें भरण हो रहा है जब मरणसन्न व्यक्तिके लिये शास्त्रोक विधियों सम्मन नहीं हो पाती हैं, तब ऐसा मरण विधि-विहीन मरण माना जाता है।

है। हे गरुड! उसके बाद सर्वीषधिसे समन्वित पुतलका शालग्रामिशलायुक्त जलसे उक्त प्रेतको पवित्र करके भगवान् निर्माण करना चाहिये। पुत्तलके निर्माणमें पलाश और विष्णुको उद्देश्य कर सुशीला, दूध देनेवाली गीका दान देना वन्तींका विभाग सुनी -

काले मगका चर्म बिछाकर उसके ऊपर कुलसे निर्मित एक पुरुषकी आकृति बनानी चाहिये। तीन सौ साठ चृन्तींसे मनुष्यको अस्थियोंका निर्माण होता है। उन वृन्तोंका विन्यास इन अङ्गोमें पृथक्-पृथक् रूपसे करना चाहिये। चालीस वृन्त शिरोभाग, दस वृन्त ग्रीवा, बीस वृन्त वक्ष:स्थल, बीस वृत्त उदर, सौ वृत्त दोनों बाह, बीस वृत्त कटि, सौ वृन्त दोनों उरुभाग, तीस वृन्त दोनों जेपा प्रदेश, चार वृन्त शिश्न, छ: वृन्त दोनों अण्डकोश और दस वृन्त पैरकी अंगुली भागमें स्थापित करनेका विधान है। इसके बाद शिरोभागमें नारियल, तालु प्रदेशमें लीको, मुखमें पश्चरत. जिहामें कदलीफल, और्तोके स्थानमें कमलनाल, नासिका भागमें बाल, तसाके स्थानमें मिट्टी, हरिताल और मन:शिल, खीर्यके स्थानपर पारद, पुरीपके स्थानपर पीतल, शरीरमें मन्:शील, संधिधानोंमें तिलका पाक, मांसक स्थानपर पिसा हुआ यव, रक्तके स्थानपर मधु, केहराशिके स्थानपर जटाजूट, त्वचाके स्थानपर मृगचर्म, दोनों कानके स्थानपर तालपत्र, दोनों स्तनोंके स्थानपर गुजाफल, नासिका भागमें शतपत्र, नाभिमण्डलमें कमल, दोनों अण्डकोशींक स्थानपर बैगन, लिक्नभागमें बढ़िया सुन्दर गानर, नाभिमें घी, कौपीनके स्थानपर त्रपु अर्थात् लाह, स्टनोंमें मीती, ललाटपर कंकमका लेप, कर्पूर एवं अगृह धूप, सुगन्धित मालाका अलंकरण, पहननेके लिये इदयमें पट्टसूत्रका विन्यास करना चाहिये। उसकी दोनों भुजाओंमें ऋढि एवं वृद्धि, दोनों नेत्रोमें कौडी, दाँतोंमें अनारके बीज, अँगुलियोंके स्थानमें चम्पाके पृथ्य और नेत्रोंके कोण भागमें सिन्द्र भरकर ताम्बूल आदि शोभादायक अन्य पदार्थ भी भेंट करना चाहिये।

इस प्रकार सर्वीपधियुक्त उस प्रेतको विधिवत् पूजा कर यदि मृत व्यक्ति अग्निहोत्री रहा हो तो उसके अब्रॉमें यथाक्रम यज्ञ-पात्र स्थापित करे। तदनन्तर 'स्वियः पुनन्तु मे हिक्यान्तका आहार और तीन दिनका उपवास क्रमशः शिरः 'तथा 'इमं मे बरुपोन च॰'इन मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित जिस व्रतमें किया जाता है, वह 'कुच्छुवत' कहलाता है'।

चाहिये। तत्पश्चात् तिल, लीह, स्वर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, पृथ्वी तथा गी, जो एक-से-एक बढ़कर पवित्र बताये गये हैं, उनका भी दान करना चाहिये। उसके बाद तिल-पात्र तथा पददान भी करना चाहिये। तदनन्तर प्रेतकी मुक्तिके लिये वैष्यव श्राद्ध करे। उसके बाद श्राद्धकर्ता इट्यमें भगवान विष्णुका ध्यान करके प्रेतमोक्षका कार्य सम्पन करे।

उक्त विधिसे बनाये गये पुतलका विधिपूर्वक दाह करना चाहिये। तत्पक्षात् उसको शुद्धिके लिये पुत्रादि संस्कर्ता प्रायक्षित करें। जिसमें तीन, छ:, बारह तथा पंद्रह कृष्ण्यत वारनेका विधान है। प्रायक्षित कर्ममें असमर्थ होनेपर गाव, सुवर्णादिका दान अथवा तत्प्रतिनिधिभूत द्रव्यका दान करना चाहिये। विद्वानुको इस प्रकार अपनी हादि करनी चाहिये। अहदि दाताके द्वारा अहदिको उद्देश्य करके जो कुछ श्रद्ध तथा दानादिक किया जांता है, वह सब कुछ अन्तरिक्षमें ही विनष्ट ही जाता है। अत: विधिवत् शुद्ध होकर मनुष्यको टाहादिक औध्वंदेहिक कम करना चाहिये।

हे गरुह। जो प्राणी बिना प्रायक्षित किये ही दाहादिक कमें ज्ञानपूर्वक या अज्ञानपूर्वक करता है, वह वहन, ऑग्नदान, जलदान, स्नान, स्पर्श, रज्युंद्रेदन तथा अन्नुपात करके तप्तकृष्णुवतसे सुद्ध होता है। जो सचको ले जाता है अथवा दाह-संस्कार करता है, वह कटोदक-क्रिया करके कृच्छमानापनवृत करे। छोटे दोषको दूर करनेके लिये छोटा और बढ़े दोषको दूर करनेके लिये बड़ा प्रायक्षित करना चाहिये।

गरुडने कहा-हे प्रभी। कुच्छ, तपाकुच्छ तथा सान्तपन-ये जो तीन प्रायश्चित वृत आपने बताये हैं; इन तीनोंक लक्षणोंको भी मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा-हे गरुड! तीन दिन प्रात:काल, तीन दिन सायंकाल, तीन दिन अयाचित

१-जाहं पातस्त्राहं सार्थं ज्यहमदादचाचितम्। उपजासस्त्राहद्वैत एव कृष्णु उदाहतः॥ (४।१६३)

जिस व्रतमें क्रमश: एक दिन गरम दूध, दूसरे दिन गरम यथाविधि जला देना चाहिये। भी तथा तीसरे दिन गरम जल पानकर चौथे दिन एक पञ्चककालमें मृत्यु होनेपर दाह-संस्कारकी विधि क्या रात्रिका उपवास किया जाता है, उसका नाम 'तप्तकृष्ण्' है? उसको मैं कहता हूँ, तुम सुनो— व्रत हैं। जब गोमूत्र, गोमय, गोदधि, गोदुग्ध और हे खगेश! मासके प्रारम्भमें धनिष्ठा नक्षत्रके अर्धभागसे कुशोदक—इन पाँच पदार्थोंको क्रमशः एक-एक दिन पान श्लेकर रेवती नक्षत्रतक पञ्चककाल होता है। इसको सदैव करके पुन: कुच्छुवतका उपवास किया जाता है तो उसको दोषपूर्ण एवं अशुध मानना चाहिये। इस कालमें मरे हुए 'सान्तपनवृत' कहा जाता है⁷।

(पुत्तलके इदयपर रखा) जलता हुआ दीपक जब युद्ध क्योंकि ऐसा करनेसे सर्वदा अशुभ होता है। अत: जाय तो उस समय उसकी मृत्यु समझनी चाहिये। पञ्चककालके समाज होनेपर ही मृतकके सभी कर्म करने तदननार अग्निदाह करे और तीन दिनका सूतक करे। चाहिये अन्यया पुत्र और सगीत्रके लिये कर ही होता है। दशाह और गर्तपिण्ड करना चाहिये। इस विधिका इन नक्षत्रोंमें मृतकका दाह-संस्कार करनेपर घरमें किसी-सम्यक् पालन करनेसे प्रेत मुक्ति प्राप्त करता है। यदि न-किसी प्रकारको हानि होती है। है तो उसकी प्रतिकृति बनाकर उसका दाह-संस्कार कर होना चाहिये। डालना चाहिये।

स्नान कराये। फिर कपडेसे बनायी गयी आकृतिके साथ होता है। (अध्याय ४)

व्यक्तिका दाह-संस्कार करना उचित नहीं है। यह काल हे पक्षिन्। पापी व्यक्तिके मरनेपर कौन-सी क्रिया सभी प्राणियोंमें दु:ख उत्पन्न करनेवाला है। ऐसे दिनोंमें करनी चाहिये, यह मैंने तुम्हें बता दिया है। पुत्तलदाहमें मृत्युको प्राप्त होनेवाले लोगोंको जलतक नहीं देना चाहिये,

किसीके मरणका धम होनेसे उसकी प्रतिकृतिका है गरूड। इन नक्षत्रोंके मध्यमें मनुष्योंका दाह-दाह-संस्कार हो जाय और वह मनुष्य उसके बाद आ संस्कार आहुति प्रदान करके विधिपूर्वक किया जा जाय तो उसे ले जाकर मृतकुण्डमें स्नान कराना सकता है। सुयोग्य ब्राह्मणींको वैदिक मन्त्रोंके द्वारा चाहिये। तदनन्तर जातकमंदि संस्कार पुन: किये जायें। विधिपूर्वक उसका संस्कार करना चाहिये। अत: शयरथानके ऐसे पुरुषको अपनी विवाहिता पत्नोसे विधिवत् पुनर्विवाहः समीपमें कुशसे चार पुसलक बनाकर नक्षत्र मन्त्रोंसे कर लेना चाहिये। हे खग। यदि विदेशमें गये किसी उनको अधिमन्त्रित करके रख दे। तदननार उन्हीं पुसलकीके व्यक्तिको पंद्रह अथवा बारह वर्ष बोत गये हों और साथ मृतकका दाह-संस्कार करे। अशीचके समाप्त हो उसका इस अवधिके बीच कोई समाचार नहीं प्राप्त होता जानेपर मृतकके पुत्रोद्वारा शान्ति एवं पीष्टिक कर्म भी

जो मनुष्य इन पश्चक नक्षत्रोंचे यर जाता है, उसको हे गरुड ! रजस्वला और सृतिका स्त्रीके सरनेपर कौन- सदतिको प्राप्ति नहीं होती। अतप्व मृतकके पुत्रीको सा विशेष कर्म करना धर्मसम्मत है, अब उसको तुम उसके कल्याणहेतु तिल, गौ, सुवर्ण और घीका दान देना सुनो-सृतिका स्त्रीको मृत्यु होनेपर यात्रिकजन कुम्भमें चाहिये। समस्त विज्लोका विनाश करनेके लिये ब्राह्मणोंको जल और पञ्चगच्य लाकर पुण्यजनित मन्तोंसे अभिमन्त्रित भोजन, पाटुका, छत्र, सुवर्णमुद्रा तथा वस्त्र देना चाहिये। करके उससे स्वयंको शुद्ध करे। उसके बाद सौ शूपजलसे यह दान मृतकके समस्त पापाँका विनाशक है और विधिपूर्वक शवको स्नान कराके पुन: उसको पञ्चगव्यसे ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये, इससे समस्त पापींका विनाश

new Times and

१-तप्रश्लीरपृताम्बृताभेकैकं प्रत्यहं पिकेत्। एकराजेपकसञ्च तप्रकृच्य २-गोमुत्रं गोमयं शीरं दक्षि सर्षिः कुशोदकम् । जन्मा परेऽह्युज्यसेन्ह्रक्षुं सान्तमरं चरन्॥ (४।१६५)

आशौचमें विहित कृत्य, आशौचकी अवधि, दशगात्रविधि, प्रथमषोडशी, मध्यमषोडशी तथा उत्तमषोडशीका विधान, नौ श्राद्धोंका स्वरूप, वार्षिक कृत्य, जीवका यममार्गनिदान, मार्गमें पड़नेवाले षोडश नगरोंमें जीवकी यातनाका स्वरूप, यमपुरीमें पापात्माओं और पुण्यात्माओंको घोर तथा सौम्यरूपमें यमराजके दर्शन

पहुँचकर वे सभी मृत व्यक्तिका नाम लेकर रोते हुए नीमकी पत्तियोंका प्राज्ञन कर पत्थरके ऊपर खडे होकर आयमन करें। तदनन्तर सभी पत्र-पीत्र आदि तथा सगोजी परिजन धरमें जाकर जो दस गत्रियोंका अतीच-कर्म है, उसकी प्रा करें। इस कालमें उन सभीको बाहरसे खरीदकर भोजन करना चाहिये। रात्रिमें वे अलग-अलग आसनपर सोयें। श्रार तथा नमकसे रहित भोजन किया जाय। वे सभी तीन दिनतक शोकमें डुबे रहें। ब्रह्मचर्यवतका पालन करके अमांसभोजी होकर पथ्वीपर ही सोयें। उन सभीके बीच परस्पर शरीरका स्पर्ज न हो। वे इस अजीवकालके अन्तरालमें दान एवं अध्ययन-कर्मसे दर रहें। द:खसे मलिन, उत्साहहीन, अधीमुख-कातर एवं भीग-विलाससे दूर होकर वे अङ्गमर्दन और सिर धीना भी छोड़ दें। इस अशीवकी अवधिमें मिट्टीके बने पात्र या पहलोंमें भोजन करना चाहिये। एक या तीन दिनतक उपवास करे।

गरुडने कहा-हे प्रभी। अर्हीवियोंके अशीवके विषयमें आपने कह दिया, पर वह अशीच कितने समयतक रहेगा? उसके लक्षण क्या हैं ? उससे संलिख लोगोंको उस कालमें कैसा जीवन व्यतीत करना चाहिये? इन सभी बातोंको भी आप बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा-हे खगेत। यह अशीच तो विधिसम्मत

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! इस प्रकार मृत पुरुषका रखते हैं, उनके लिये पुत्रादिके जन्म लेनेपर भी इसी प्रकार दाह-संस्कार करके स्नान और तिलोदक कर्म कर स्वियों अतीच होता है। समानोदकोंके जननाशीचमें तीन रात्रिमें आगे-आगे तथा पुरुष उनके पीछे-पीछे घर आयें। द्वारपर लुद्धि होती है। जो मृतकको जल देनेवाले हैं, वे मरणाशीयमें भी तीन दिनोंके पश्चात शुद्ध हो जाते हैं। दाँत निकलनेतक मरणाशीच होनेपर वह सद्य: समाप्त हो जाता है। यदि चुडाकरण-संस्कार हो जानेक बाद बालककी मुल्य हो जाती है तो एक ग्रांत्रिका अशीच होता है। उपनयन (जनेक)-संस्कार होनेके पूर्वतक तीन दिन और उसके बाद दस दिनका अशीच होता है-

> आ दन्तजननात्मद्य आ चौलाव्रैशिकी स्युता। विराजमाञ्चलादेशाहशरायमतः परम् ॥

> > (4143)

हे पश्चिन्। तुम्हें मैंने अशीच बता दिया। अब मैं संक्षेपमें प्रसंख्यान अहीवके विषयमें तुम्हें बताता है। हे काश्यप! सुत्रसे बैंधे हुए तीन काप्टोंको तिगोडियाको रात्रिमें आकाशके नीचे स्वापित करके चौराष्ट्रेपर खडा कर दे और 'अब स्नाहि०' एवं 'पिचात्र०' 'इस मन्त्रोच्चारके साथ उसके ऊपर मिड़ीके पात्रमें जल और दूध रख दे। संस्कर्ता अपने संगोषियोंके साथ पहले, तीसरे, सातवें अथवा नवें दिन अस्य-संचयन करे। जो सगोत्री हैं, वे मृतकके ऊर्ध्वभागकी अस्थियोंका ही स्पर्त कर सकते हैं। समानोदकी भी सभी कियाओंके योग्य है। पेतको पिण्डदान बाहर ही करे। इस क्रियाको करनेके लिये सबसे पहले स्नान करके संयतमना होकर उत्तर दिशामें चरुका निर्माण कर असंस्कृत समय और क्रिया आदिके द्वारा कीच्र हो समाप्त करनेके प्राणीके लिये भूमिपर तथा संस्कार-सम्पन्नके लिये कुशपर योग्य होता है, क्योंकि प्राणी इस कालमें पिण्डदान, नौ दिनोंमें नौ पिण्ड देना चाहिये। उसके बाद दसवें दिन अध्ययन और अन्य प्रकारके दान-पण्यादिक सत्कमौंसे दर दसवाँ पिण्डदान करे। तदनन्तर चाहे सगोत्री हो अथवा हो जाता है। सपिण्डियोंमें मरणाशीच दस दिनका माना असगोत्री, चाहे स्त्री हो या पुरुष वह रात्रि बीतनेके पक्षात् जाता है। जो लोग भलीभौति शुद्धि प्राप्त करनेकी इच्छा पवित्र हो जाता है। पहले दिन जो पिण्डदानकी क्रिया

१-श्मशानानसदम्धोऽसि परित्यकोऽसि बान्धवै:।इटं नीरं इटं धीरं अत्र स्वति इटं पित्र ।

करता है, उसे ही दसवें दिनतक प्रेतकी अन्य समस्त आठिवाहिक शरीर, तीसरे भागसे यमदूत और चौथे भागसे क्रियाएँ करनी चाहिये। चाहे चावल हो, चाहे सन् हो, चाहे वह मृतक स्वयं तृप्त होता है। शाक हो, पहले दिन जिससे पिण्डदान करे, उससे ही दस दिनतक पिण्डदान करना चाहिये।

हे गरुड! जबतक यह प्रेतजन्य अजीच रहता है

तबतक प्रेतको प्रतिदिन एक-एक अञ्चलि बढाते हुए जल-दान देनेका विधान है अथवा जिस दिन यह देना हो उस दिनकी संख्याके अनुसार वर्धमानक्रमसे उतनी अन्नति जल-दान करे। इस प्रकार दसवें दिन पचपन अञ्चलि पूर्ण करे। यदि अशीच दो दिन बढ़ जाता है तो पुन: उसी क्रमके अनुसार सौ अञ्चलि जल और देना चाहिये। यदि वह अशीच तीन दिनका ही है तो दस अञ्चलि ही जल देना चाहिये। हे पश्चिन्। इस जलदानका क्रम यह है कि अशीचके पहले दिन तीन, दूसरे दिन चार और तीसरे दिन तीन अञ्चलि जल देना चाहिये। हे गरुड! जब जवाज़िन जल-दानकी क्रिया सम्पन्न की जाती है तो उस विधानके अनुसार पहले दिन तीस, इसरे दिन चालीस तथा तीसरे दिन तीस अञ्चलि जल दिया जाता है।

इस प्रकार दोनों पक्षोंमें जलाजलियोंको संख्याका निर्धारण करना चाहिये। इन सधी पितृक्रियाओंको सम्यन्न करनेका पुख्य अधिकारी पुत्र ही होता है। इस प्रेतनाद्धमें द्ध या जलसे पिण्डका सेचन तथा पुष्प-धूपादिक पदार्थसे पिण्डका पूजन बिना मन्त्रोच्चार किये ही करना चाहिये। दसर्वे दिन केश, रमञ्जू, नख और वस्त्रका परित्याग करके गाँवके बाहर स्नान करना चाहिये। ब्राह्मण जल, अत्रिय वाहन, वैश्य प्रतोद (चाबुक) अच्छा रहिम तचा सुद छडीका स्पर्श करके पवित्र होता है। मृतसे अल्प वयवाले सपिण्डोंको मण्डन कराना चाहिये।

छ: और दस इस प्रकार मोलह पिण्डदान करके षोडशी कर्म सम्पन्न करनेका विधान है। यह मलिनषोडशो मृत दिनसे दस दिनमें पूर्ण होती है। हे पश्चित्रेष्ठ। पुत्रादि दस दिनोतक जो पिण्डदान करते हैं, वे प्रतिदिन चार

नौ दिन और रात्रिमें वह शरीर अपने अंगोंसे युक्त हो जाता है। प्रधम पिण्डदानसे प्रेतके शिरोभागका निर्माण होता है। दूसरे पिण्डदानसे उसके कान-नेत्र और नाककी सृष्टि होतों है। तीसरे पिण्डदानसे क्रमश:-कण्ठ, स्कन्ध, बाहु एवं वह:स्थल, चौधे पिण्डदानसे नाभि, लिंग और गुदाभाग तथा पाँचवें पिण्डदानसे जानु, जंघा और पैर बनते हैं। इसी प्रकार छठे पिण्डदानसे सभी मर्गस्थल, सातवें पिण्डदानसे नाडोसमूड, आठवें पिण्डदानसे दाँत और लोम तथा नवें षिण्डदानसे बीर्य एवं दसवें पिण्डदानसे उस शरीरमें पूर्णता, तृष्ति और भुख-प्यासका उदय होता है-

अहोरावेस्तु नवधिर्देहो निष्पश्चिमाण्यात्। शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य कियते तथा। द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिकं तु समासतः। गानांसभ्जवश्रष्ट तृतीयेन तवा क्रमात्॥ चतुर्थेप च विण्डेन नाधिलिङ्गगुरं तथा। जानुजंबे तथा पादी पश्चमेन तु सर्वदा॥ सर्वप्रमंणि बहेन सप्तमेन त नाडयः। दललोपान्यप्रमेन वीर्यन्त नवमेन सः॥ दशमेन त पूर्णालं तुप्तता क्षद्विपर्ययः।

(4133-34)

हे जैनतेय! अब मैं मध्यमधोडशी विधिका वर्णन करता हैं। उसकी सुनी।

विष्णुसे आरम्भ करके विष्णुपर्यन्त एकादश श्राद्ध तथा पाँच देवलाड इस प्रकार घोडश श्राद्ध किये जाते हैं। इन्होंका नाम मध्यमधोडाशी है। यदि प्रेतकल्याणके निमित्त 'नागयणबलि' की आय तो उसको एकादशाहके दिन करना चाहिये और उसी दिन वहींपर वृषोत्सर्ग भी करना बाहिये। जिस जीवका ग्यारहर्त्रे दिन वृषीत्सर्ग नहीं होता, सैकड़ों बाद्ध करनेपर भी उस जीवकी प्रेतत्वसे मुक्ति नहीं होती है। वृत्रोत्सर्ग बिना किये ही जो पिण्डदान किया जाता भागों में विभाजित हो जाते हैं। उसमें प्रथम दो भागसे हैं, वह पूर्णतया निष्फल होता है। उससे प्रेतका कोई

१-अन्यकर्मदीएक पृष्ट ४० को टिप्पणीके अनुसार मृत व्यक्तिसे अकस्थामें जो लोग कनित हैं, उन्हें मुण्डन कराना चाहिये—यह कुछ लोगोंका मत है। कुछ लोगोंका यह भी मत है कि जितने लोग मरणके दु:खका अनुभव करनेवाले हैं, उन सभीको मुण्डन कराना चाहिये। इन दोनों पतोंको अपनी-अपनी परम्याके अनुसार स्वीकार किया जा सकता है।

उपकार नहीं होता। इस पृथ्वीपर वृषोत्सर्गके बिना कोई इन पोडश श्राद्धोंको सम्पन्न करके ब्राह्मणोंको दान नहीं अन्य उपाय नहीं है, जो प्रेतका कल्याण करनेमें समर्थ हो। दिया जाता है, उस प्रेतके लिये अन्य सौ ब्राद्ध करनेपर अत: पुत्र, पत्नी, दौष्टित्र (नाती), पिता अथवा पुत्रीको स्वजनकी मृत्युके पश्चात् निश्चित ही वृषोत्सर्ग करना चाहिये। चार बखियोंसे युक्त, विधानपूर्वक अलंकृत वृथ, जिसके निमित्त छोड़ा जाता है उसको प्रेतत्वकी प्राप्ति नहीं होती। यदि एकादशाहके दिन यथाविधान साँड उत्सर्ग करनेके लिये उपलब्ध नहीं है तो विद्वान ब्राह्मण कुफ या चावलके चूर्णसे साँडका निर्माण करके उसका उत्सर्ग कर सकता है। यदि बादमें भी वृषोत्सर्गके समय किसो प्रकार साँड नहीं मिल रहा है तो मिट्टी या कुत्रसे ही साँड्का निर्माण करके उसका उत्सर्ग करना चाहिये। जीवनकालमें प्राणीको जो भी पदार्थ प्रिय रहा हो उसका भी दान इसी एकादशाह श्राद्धके दिन करना विचत है। इसी दिन मरे हुए स्वजनको उद्देश्य बनाकर सध्या, गौ आदिका दान भी करना चाहिये। इतना ही नहीं उस प्रेतकी शुधा-शान्तिके लिये बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन भी कराना चाहिये।

हे चिनतापुत्र गरुद्ध। अब मैं तृतीय घोडशी (उत्तम-पोडशी)-ब्राद्धका वर्णन कर रहा है, उसे सुनो।

प्रत्येक बारह मासके बारह पिण्ड, ऊनमासिक (आदा) त्रिपासिक, क्रनपाण्मासिक एवं कनाव्दिक-इन्हें मतभेदसे ततीय अथवा उत्तमपोडशी भी कहा जाता है।

बारहवें दिन, तीन पक्षमें, छ: महोनेमें अथवा वर्षके अन्तमें सपिण्डीकरण करना चाहिये। जिस मृतकके निमित्त

भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती। हे खगेश! मृतक व्यक्तिके

एकादशाह अथवा द्वादशाह तिथिमें आद्यश्राद्ध करनेका विधान माना गया है। प्रतिमासका श्राद्ध मासके आद्यतिथिमें मृत-तिचिपर होना चाहिये। ऊनश्राद्ध (ऊनमासिक,

उनुषाण्मामिक तथा ऊनाब्दिक)-मास, छठें मास और वर्षमें एक, दो अथवा तीन दिन कम रहनेपर करना

चाहिये'। सपिण्डीकरण वर्ष पूर्ण होनेके बाद अथवा छ: महोने बाद करना चाहिये अथवा आध्युदयिक (विवाहादि सङ्गल-कार्य अनिवार्य रूपसे उपस्थित होनेपर) कार्य आनेपर तीन पक्ष अथवा बारह दिनके बाद करना चाहिये। मनुष्योंके कुलधर्म असंख्य है, उनकी आयु भी श्ररणशील है और ऋरीर अस्थिर है। अत: बारहवें दिन सपिण्डीकरण करना उत्तम है।

हे पश्चित्रज्ञ! सपिण्डोकरण श्राद्धकि सम्पादकीय विधि भी मुझसे सुनो। हे कास्यप! एकोहिट विधानके अनुसार यह कार्य करना

व्हाहिये'। तिल, गन्ध और जलसे परिपूर्ण चार पात्रोंकी व्यवस्था करके एक पात्र प्रेतके निमित्त और शेष तीन पात्र पितुगणोंके लिये निश्चित करना चाहिये। तदनन्तर उन तीन पात्रोंमें प्रेतपात्रके जलका सेचन करे। चार पिण्ड बनाये और प्रेत-पिण्डका उन तीन पिण्डोंमें मेलन कर दे। तबसे वह प्रेत पितरके रूपमें हो जाता है। हे खगेश्वर! उस प्रेतमें

२-(क) एकदिविदिवैसने विश्वानेदेन एव वा। ब्राह्मन्यूकविदकादीन कुर्वादित्या गीतमः।

तन्दायां भागवदिने चतुर्दनयां जियुक्तने। जनवादं न कृषीत गृही पुत्रधनसम्बद् । (मार्गर्ध)

द्विपुष्करे च नन्दायं सिगोवल्यां धुगोर्दिने। चतुर्दरमां च नो तानि कृतिकासु विपुष्कते ।

एक, दो, तीन अथवा दस दिन कम रहनेचर, नन्दा तिथिको, तुक्रकारको, चतुर्दसी विधि, त्रिपुष्कर और द्विपुष्कर योग, अमावास्मा तिथि, कृषिका, रोहिणी तथा मुगशिरा तिथियोंमें कनकाद (अनमासिक, कनकन्मासिक, कनाव्यक्त) नहीं करना चाहिये।

(ख) 'संपिण्डीकरणं चैव' इस वाबबारे दुर्तीय चेडकीके अन्तर्गत संपिण्डीमें किये जानेवाले प्रेतबाद्धको गणना करनेपर 'शताद्धेन तु मेलपेत' इस वाक्यसे विरोध होता है। सपिण्डोकरणर्ने किये जानेवाले प्रेटकाडको तृतीय बोडसीके अन्तर्गत काल्यायन्ते भान है। इसका 'शतार्थेन तु मेलचेतु'से विशेष है।

बाद्धकरपलतामें तथा आचार्य गोभिल, लीगाधि पैतिनसिके मालें सीरण्डन काद्ध ततीय घोडशीके बाहर है।

(ग) 'द्वादशप्रतिमास्यानि' इस पदसे प्रथम व्यक्तिकका बोध हो जानेक कारण आद्य पदके अर्थनें ऊनमासिक उपलक्षण है। इसी प्रकार 'बार्ग्यासिक' पदका जनवारमासिक और क्रवान्टिक अर्थने तत्वानिक प्रयोग है।

3-सपिणडीकरणके अनर्गत किये जानेवाले केवल पेतबादके उदस्पते एकोटिए विधिका उत्तेख है। इस ब्राह्मके अनर्गत किया जानेवाल प्रेतके पिता आदिका बाद्ध सदैव पार्वण-विधिमे किया जाना चाहिये।

१-एकादमाई प्रेतस्य यस्योत्सृत्येत नी युव:। प्रेतल्वं सुनिकां तस्य दर्तः ऋद्धानीर्गयः। अकरना यहपोत्सर्ग कृतं तै विन्ह्रपातनम्। निन्मानं सकतं विद्यान्यमीताम् न तद्भवेत् ॥ (५ (४०-४१)

करना चाहिये।

पितृत्वभावके आ जानेके बाद उस प्रेत तथा अन्य उसके पितृ-पितामह आदि पितरोंका समस्त ब्राद्धकृत्य ब्राद्धकी अभीष्ट है। किसीको नव सन्दका यौगिक अर्थ अभीष्ट है। सामान्य विधिके अनुसार ही करना चाहिये। मृत पतिके साथ एक ही चितामें प्रवेश और एक ही दिन दोनोंकी मृत्यु होनेपर स्त्रीका सपिण्डीकरण नहीं होता है। उसके पविके सपिण्डीकरण श्राद्धसे ही स्त्रीका सपिण्डीकरण श्राद्ध सम्पन्न हो जात: है। हे खगेश। पतिके मानेके बाद खाँकी मृत्य होनेपर स्त्रीका सपिण्डन पतिके साथ होगा और सहमृत्युकी दशामें दोनोंके ब्राइके लिये एक पाक, एक समय तथा एक कर्ता होगा। किंतु बाद्ध पति-पत्नीका पृथक-पृथक ही किया जाना चाहिये। यदि स्त्री पतिके साथ चितामें सती न होकर अन्य किसी दिन सती होती है तो उस स्त्रीकी मृत तिथिके आनेपर उसके लिये पुषक रूपमे पिण्डदान

हे गरुड। सहमृत्युकी दशामें प्रत्येक वर्ष नवश्राद्ध एक साथ करना चाहिये। जिस मृतकका वार्षिक श्रद्धसे पूर्व सपिण्डीकरण हो जाता है, उसके लिये भी वर्षभर मासिक हो जानेपर भी नव ब्राह्म, सपिण्डन ब्राह्म और बोडल ब्राह्म पुरुवके लिये जो पिण्डदान इन दिनोंमें दिया जाय उसकी करनेका अधिकार एक ही व्यक्तिको है।

बताऊँगा। उसको सनो।

चाहिये। उसके बाद दसरा ब्राद्ध मार्गमें उस स्वानपर करना चाहिये जहाँपर शब रखा गया था। तदनन्तर तीसरा बाढ अस्थिसंचयनके स्थानपर होता है। इसके बाद पाँचवें, सातवें, आठवें, नवें, दसवें और ग्यारहवें दिन बाद होता है। इसलिये इन्हें नवश्राद्ध कहा जाता है। ये नव बाद ततीया घोडशी कहे जाते हैं। इनको एकोडिप्ट विधानके अनुसार ही करना चाहिये। पहले. तीसरे, पाँचवं, सातवं, नवें और ग्यारहवें दिन होनेवाले ब्राद्धोंको नवबाद्ध कहा जाता है। दिनकी संख्या छ: ही है पर छ: दिनमें ही नव श्राद्ध हो जाते हैं। इस विषयमें ऋषियोंके बीच मतभेद हैं, इसी कारण मैंने उनको भी तुम्हें बता दिया।

ब्राद्धोंका जो योग रुव्हिगत रूपसे है, वही मुझे भी आध और द्वितीय ब्राह्ममें एक ही पवित्रक देना चाहिये। जब ब्राह्मण भोजन कर चके हों तो उसके बाद प्रेतको पिण्डदान देना उचित होता है। वहाँपर यजमान और ब्राह्मणके बाँच प्रश्नोत्तर भी होना चाहिये। जिसमें यजमान ब्राह्मनसे यह प्रश्न करे कि आप मेरी सेवासे प्रसन्न हैं?

आपके उस मृत स्वजनको अक्षय लोककी प्राप्ति हो। हे पश्चिता अब तुम मुझसे एकोदिष्ट श्राद्धके विषयमें भी सनो। जिसको वर्धपर्यन्त करना चाहिये।

उसका उत्तर बाह्मण दे कि हाँ हम आपपर प्रसन्न है।

सपिण्डोकरणके बादमें किये जानेवाले योडश श्राद्धींका सम्मादन एकोदिष्ट विधानके अनुसार ही होना चाहिये, किंतु पार्वण-बाद्धमें उक्त नियमका प्रयोग नहीं होता है। जिस प्रकारसे प्रत्येक वर्षमें होनेवाला प्रत्यब्द आद्ध' होता है, उसी प्रकार उन घोडत बाढोंको भी करना चाहिये। एकादताह और द्वादशाहमें जो श्राद्ध किया जाता है उन क्षाद्ध और जलकुम्भ दान करना जाहिये'। धनका बैटवारा दिनोंमें स्वयं प्रेत भी भीवन करता है। अत: स्त्री और अमुक प्रेडके निमित्त दिया जा रहा है, ऐसा कहकर हे कश्यपपुत्र। अब मैं तुम्हें नवजाद्ध करनेका काल पिण्डदान देना चाहिये। सपिण्डीकरण ब्राद्ध होनेके पक्षात् प्रेत राज्यका प्रयोग नहीं होता है। एक वर्षतक घरके बाहर हे पश्चित्! मृत्युके दिन मृतस्थानपर पहला बाद्ध करना प्रतिदिन दीपक जलाना चाहिये। अन्त, दीप, जल, बस्त्र और अन्य जो कुछ भी वस्तुएँ दानमें दी जाती हैं, वे सभी सपिण्डीकरणतक प्रेत शब्दके सम्बोधनसे संकर्रियत होनेपर ही प्रेतको तुप्ति प्रदान करती है।

हे वैनतेय। संक्षिप्त रूपमें मैंने वार्षिक कृत्य कह दिया। अब तम विवस्वान पुत्र यमराजके घर जिस प्रकार जीवका गमन होता है, उसका वर्णन सुनो।

हे अरुवानुत । त्रयोदशाह अर्थात् तेरहवें दिन श्राद्धकृत्य एवं गरुडप्राणके ब्रवणके अनन्तर वह जीव, तुम्हारे द्वारा पकड़े गये सर्पके समान यमदूर्तीके द्वारा पकड़ लिया जाता है और पकड़े गये बन्दरके समान अकेला ही उस यमलोकके मार्गमें चलता जाता है। उसके बाद बायके द्वारा

१-यस्य संबत्सरादर्शक् सपिण्डीकरणं पतेत्। पासिकडोटकुन्धक्व देवं तस्यापि वत्सरम् ॥ (६) ६४)

२-यह प्राय: सपाक्षिक श्राद्धको विधि है।

³⁻वार्षिक तिथिपर होनेवाला ब्राद्ध ।

अग्रसारित वह जीव दूसरे शरीरमें प्रविष्ट होता है, दूसरे शरीरमें जानेके पूर्वका जो शरीर है वह पिण्डज (दिये गये पिण्डोंसे निर्मित) है। दूसरी योनियोंका शरीर तो पितृसम्भव (माता-पिताके रज-वीर्यसे उत्पन्न होनेवाला) होता है। इन शरीरोंके प्रमाण, वय, अवस्था एवं संस्थान (अकृतिविशेष) आदि श्राद्ध करनेवालेकी श्रद्धा एवं देह प्राप्त करनेवालेके कर्मानुसार होते हैं। प्रमाणत: यम और मर्त्यलोकके बीच छियासी हजार योजनका अन्तराल है। वह जीव प्रतिदिन अधिक-से-अधिक दो सी सैतालिस योजन और आधा कोसका मार्ग तय करता है। इस प्रकार उस जीवको चात्रा तीन सौ अड्वालीस दिनोंमें पूरी होती है। इस प्रमलोककी यात्रामें जीवको यमदूत खींचते हुए ले जाते हैं। जो प्राणी अपने जीवनभर पापमें अनुरक्त थे, उनको इस सार्गमें जो कष्ट भोगना पड़ता है, उसको विस्तारपूर्वक सुनो—

मृत्युके तेरहवें दिन वह पापी यमदूरोंके कठोर पाशोंमें बाँध लिया जाता है। हाथमें अंकुश लिये हुए कोधावेशमें तनी हुई भौंहोंसे युक्त दण्डप्रहार करते हुए यमदूर उसको खाँचते हुए दक्षिण दिशामें स्थित अपने लोकको ले जाते हैं। यह मार्ग कुश, काँटों, बाँचियों, कीलों और कठोर पाथरोंसे परिव्याप्त रहता है। कहीं-कहीं उस मार्गमें अनिन



जलती रहती है और कहीं-कहीं सैकड़ों दसरोंसे दुर्गम भूमि होती है। प्रचंड सूर्यकी गर्मी और मच्छरोंसे परिव्याप्त उस मार्गमें प्राणी सियारोंके समान वीभत्स चीत्कार करते हुए यमदूतोंके द्वारा खींचे जाते हैं। यमलोकके दारुण मार्गमें

अग्रसारित वह जीव दूसरे शरीरमें प्रविष्ट होता है, दूसरे पापी जाता है और शरीरके जलनेके कारण अत्यन्त शरीरमें जानेके पूर्वका जो शरीर है वह पिण्डज (दिये गये धीजवाको प्राप्त होता है। अपने कर्मानुसार विभिन्न जंतुओंके पिण्डोंसे निर्मित) है। दूसरी योनियोंका शरीर तो पितृसम्भव द्वारा अङ्गोंके खाये जाने, भेदन एवं छेदन किये जानेके (माता-पिताके रज-वीर्यसे उत्यन्न होनेवाला) होता है। इन कारण जीव अत्यधिक दारुण दु:ख प्राप्त करता है।

हे ताक्ष्यं! जीव अपने कर्मानुसार दूसरे शरीरको प्राप्त करके यमलोकमें नाना प्रकारका कष्ट भोगता है। यमलोकके इस मार्गर्मे सीलह पुर पड़ते हैं। उनके विषयमें भी सुनी-याम्य, सौरिपुर, नगेन्द्रभवन, गन्धवंपुर, शैलागम, क्रींच, करपर विचित्रभवन, बहापद, दु:खद, नानाक्रन्दपुर, सुतप्तभवन, रौद्र, पयोवर्षण, शीताक्य और बहुभीति-ये सोलह पुर है, भवंकर होनेसे ये दुर्दर्शन हैं। याम्यपुरके मार्गमें प्रविष्ट होकर जीव 'हे पुत्र! हे पुत्र! मेरी रक्षा करो' ऐसा करणक्रन्दन करता हुआ अपने द्वारा किये गये पापोंका स्मरण करता है और अदारहवें दिन वह यमराजके उस नगरमें पहुँच जाता है। वहाँ पुष्पभदा नामक नदी प्रवाहित होती है। वहाँ देखनेमें आयन्त सुन्दर तटवृक्ष है जहाँपर जीव विकास करना चाहता है, किंतु यमदूत उसकी वहाँ विश्राम नहीं करने देते। उसके पुत्रीके द्वारा स्नेहपूर्वक अचवा अन्य किसीके द्वारा कृपापूर्वक पृथ्वीपर जो मासिक पिण्डदान दिया जाता है, उसीको वह वहाँपर खाता है।

तदनन्तर वहाँसे उसकी यात्रा सीरिपुरके लिये होती है। बलता हुआ वह मार्गमें यमदूर्तीके द्वारा मुद्गरोंसे पौटा जाता है। उस दुःख्यते अत्यधिक पीड़ित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

जलाशयो नैव कृतो मया तदा मनुष्यतृष्यै पशुपक्षितृप्तये। गोतृप्तिहेतोने च गोचरः कृतः शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥

(41200

उस जन्ममें मनुष्य और पशु-पक्षियोंकी संतुष्टिके लिये मैंने जलाहाय नहीं खुदवाया। गौओंकी धुधा-शान्तिके लिये गोषरभूमिका दान भी मैंने नहीं दिया। अतः हे शरीर। जैसा तुमने किया है, उसीके अनुसार अब तुम अपना निस्तार करो।

उस सौरिपुरमें कामरूपधारी इच्छानुसार ियतिशील एवं गतिशील गजा राज्य करता है। उसका दर्शनमात्र करनेसे जीव धयसे खाँप उठता है और अपने अनिष्टको शंकासे ग्रस्त होकर त्रिपक्षमें पुत्रादिक स्वजनोंके द्वारा पृथ्वीपर दिये गये जलयुक्त पिण्डको खाकर आगे बढ़ता है। वहाँसे वह आगे बढ़ता हुआ मार्गर्मे यमदूर्तोके खड्गप्रहारसे अत्यन्त पीड़ित होकर इस प्रकार प्रलाप करता है-

> न नित्यदानं न गवाडिकं कृतं पुस्तं च दत्तं न हि वेदशास्त्रयोः। प्राणदृष्टी न हि सेवितोऽध्वा शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतप्॥

> > (41103)

है शरीर! मैंने जलादिका सदा दान नहीं दिया है, न तो नियमसे प्रतिदिन गायके लिये अपेक्षित गोग्रास आदि कृत्य किया है और न तो वेदशास्त्रकी पुस्तकका ही दान किया है। पुराणमें देखे हुए मार्ग (तीर्थमात्रा आदि)-का मैंने सेवन नहीं किया है, इसलिये जैसा तुमने किया है, उसीमें अपना निस्तार करो।

इसके बाद जीव 'नगेन्द्रनगर'में जाता है। वहाँपर वह अपने बन्धु-बान्धवॉके द्वारा दूसरे महीनेमें दिये गये अन्तको खाकर आगेकी ओर प्रस्थान करता है। चलते हुए उसके ऊपर यमदूतींद्वारा कृपाणकी मुठियोंसे प्रहार किये जानेपर वह इस प्रकार प्रलाप करता है-

> पराधीनमभूत् सर्वं सम मूर्खेशिरोमणे: ॥ महता पुण्ययोगेन पानुष्यं लब्धवानहम्।

> > (41104-106)

बहुत बड़े पुण्योंको करनेके पक्षात मुझे मनुष्य-योनि प्राप्त हुई थी, किंतु मुझ मूर्खाधिराजका सब कुछ पराधीन हो गया अर्थात मनुष्ययोनि प्राप्त करके भी मैं कुछ सन्कर्म न कर सका।

इस प्रकार विलाप करता हुआ जीव तीसरे मासके पूरा होते ही गन्धर्वनगरमें पहुँच जाता है। तदनन्तर समर्पित किये गये तृतीय मासिक पिण्डको वहाँ खाका वह पुन: आगेकी ओर चल देता है। मार्गमें यमदृत उसको कृपानके अग्रभागसे मारते हैं, जिससे आहत होकर वह पुन: इस प्रकार विलाप करता है-

मया न दर्स न हुतं हुताशने तपो न तप्तं हिमशैलगहरे। न सेवितं गाङ्गमहो महाजलं शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥

मैंने कोई दान नहीं दिया, अग्निमें आहुति नहीं डाली और न तो हिमालयकी गुफामें जाकर तप ही किया है। ओर। मैं तो इतना नीच हैं कि गड़ाके परम पवित्र जलका भी संवन नहीं किया, इसलिये हे शरीर! जैसा तुमने कर्म किया है, उसीके अनुसार अपना निस्तार करो।

हे पश्चिन्। चौधे मासमें जीव शैलागमपुर पहुँच जाता है। वहाँ उसके ऊपर निरन्तर पत्थरोंको वर्षा होती है। पुत्रके द्वारा दिये गये चतुर्थ मासिक ब्राह्मको प्राप्तकर यह जीव सरकते हुए चलता है किंतु पत्थरोंके प्रहारसे आचन पीड़ित होकर वह गिर पड़ता है और रोते हुए यह कहता है-

त ज्ञानमार्गी न च घोरामार्गी न कर्ममार्गे न च भक्तिमार्गः। साधुसङ्गात् किमपि धूर्त मवा शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥

(sitte)

मेंने न तो ज्ञानमार्गका सेवन किया न योगमार्गका, न कर्ममार्ग और न हो भक्तिमार्गको अपनाया और न साधु-सन्तोंका साथ करके उनसे कुछ हितैयों बातें ही सुनी हैं। अत: हे शरीर। तब जैसा तुमने किया है, उसीके अनुसार अपना निस्तार करो। मृत्युके पौचर्षे मासमें कुछ कम दिनोंने वह 'क्रॉबपुर' पहुँच जाता है, उस समय पुत्रादिके द्वारा दिये गये कनवाण्मासिक ब्राद्धके पिण्ड और जलका सेवन करके वहाँ एक यही विश्राम करता है।

हें करवपपुत्र! इसके बाद छठे मासमें जीव 'क्रूरपुर'की ओर चल देता है। मार्गमें वह पुच्चीपर दिये गये पश्चम मासिक पिण्डको खाकर जलपान करता है। तत्पक्षात् वह कुरपुरकी ओर फिर बढ़ता है, किंतु यमदूत मार्गमें उसको पदिटशों (अस्वविशेष)-द्वारा मारते हैं, जिससे वह गिर पहला है और इस प्रकार विलाप करता है-

पित्रभात:

सुता हा हा मम स्त्रिय: ॥ युष्पाधिनौपदिहोऽहम-

ईदशीम्।

(41229-228)

हे मेरे माता-पिता और भाई-बन्धु! हे मेरे पुत्र! हे मेरी (५) १०८) स्त्रियो ! आप लोगोंने मुझे कोई ऐसा उपदेश नहीं दिया, जिससे मैं उन दुष्कृत्योंसे बच सकता, जिनके कारण मेरी हो मृतक उस नदीके तटपर पहुँचता है, वैसे ही वहाँपर इस प्रकारकी अवस्था हो गयी।

कहते हैं--- और मूर्ख ! तेरी कहाँ माता है, कहाँ पिता है, कहाँ हो जाओ और सुखपूर्वक इस नदीको पार कर लो। जिसने स्त्री है, कहाँ पुत्र है और कहाँ मित्र है? तु अकेला हो वैतरणी नामक गौका दान दिया है, वहीं सुखपूर्वक इस चलते हुए इस मार्गमें अपने द्वारा किये गये दुष्कृत्योंके नदींको पार कर सकता है। जिस व्यक्तिने वैतरणी गौका फलका उपभोग कर। हे मूर्ख! तु जान ले इस मार्गमें दान नहीं दिवा है, उसको नाविक हाथ पकड़कर घसीटते चलनेवाले लोगोंको दूसरेकी शक्तिका आश्रय करना व्यर्थ हुए ले जाते हैं। तेज और नुकीली चोंचसे कौआ, बगुला है। परलोकमें जानेके लिये पराये आश्रपकी आवश्यकता तथा उल्का नामक पक्षी अपने प्रहारसे उसे अत्यन्त व्यधित नहीं होती है। वहाँ (स्वकर्माजित) पुण्य ही साथ देता है। तम्हारा तो उसी मार्गसे गमन निश्चित है, जिस मार्गमें किसी क्रय-विक्रयके द्वारा भी अपेक्षित सुख-साधनका संग्रह नहीं किया जा सकता।

इसके बाद वह जीव 'विचित्रनगर'के लिये चल देता है। रास्तेमें यमदत उसको शुलके प्रहारसे आहत कर देते हैं, जिसके कारण वह दक्षित होकर इस प्रकारका विलाय करता है-

कुत्र यापि न हि गापि जीवितं हा मृतस्य याणं पुनर्न वै।

(41111)

हाय। मैं कहाँ चल रहा है, मैं तो निश्चित हो अब जीवित नहीं रहना चाहता, फिर भी जीवित हैं। मरे हुए प्राणीकी मृत्यु पुन: नहीं होती।

इस प्रकारका विलाप करता हुआ वह जीव यातना-शरीरको धारण करके 'विचित्रनगर'में जाता है। जडाँपर विचित्र नामका राजा राज्य करता है। वहाँपर वह पाण्मासिक पिण्डसे अपनी श्रुधाको शान्त कर आगे आनेवाले नगरकी ओर चल देता है। मार्गमें यमदत भालेसे प्रहार करते हैं, जिससे संत्रस्त होकर वह इस प्रकार विलाप करता है-माता भाता पिता पुत्रः कोऽपि मे वर्तते न वा।

यो मामुद्धरते पापं पतन्तं दुःखसागरे॥

(4)112)

मेरे माता-पिता, भाई, पुत्र कोई है अथवा नहीं है, जो इस द:खके सागरमें गिरे हुए मुझ पापीका उद्घार कर सके।

ऐसा विलाप करता हुआ वह जीव मार्गमें चलता रहता है। उसी मार्गमें 'वैतरणी' नामकी एक नदी पडतो है, जो सौ योजन चौड़ी है और रक्त तथा पीबसे भरी हुई है। जैसे

नाववाले- मल्लाह आदि उसको देखकर यह कहते हैं कि इस प्रकारका विलाप करते हुए उस जीवसे यमदत बदि तुमने वैतरणी गौका दान दिया है तो इस नावपर सवार करते हैं। हे पश्चिन्। अन्त समय आनेपर मनुष्योंके लिये वैतरणोका दान ही हितकारी है। यदि प्राणी अपने जीवनकालमें वैतरणी नामक गौका दान देता है तो वह गौ समस्त पापाँको विनष्ट कर देती है और उसको यमलोक न से जाकर विष्णुलोकको पहुँचा देती है।

सातवाँ मास आ जानेपर मृतक 'बहापद' नामक पुरमें आ जाता है। वहाँपर सप्तमासिक सोदक पिण्डका सेवन करके आगे बढ़ते हुए परिचके आधातसे पीड़ित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है-

न दर्श न हुतं तस्तं न स्नातं न कुतं हितप्। यादुशं चरितं कर्म मुदात्मन् भूक्ष्य तादुशम्॥

(41898)

हे रुरोर। मैंने दान, आहुति, तप, तीर्थरनान तथा परोपकार आदि सत्कृत्य जीवनपर्यन्त नहीं किया है। हे मुखी अब जैसा तुमने कर्म किया है, वैसा ही भीग करो।

हे लक्ष्ये। इसके बाद वह जीव आठवें मासमें 'द:खदपुर' पहुँचता है। वहाँ स्वजनोंके द्वारा दिये गये अष्टमासिक पिण्ड और जलका सेवन करके 'नानाक्रन्द' नामक पुरकी ओर प्रस्थान कर देता है। मार्गमें चलते हुए मुसलाधातसे पाँडित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है-

क्व जायाचटुलैक्षाटुपटुधिर्वचनैर्मम्॥ भोजनं भल्तभल्लीभिष्सलैश्च क्व मारणम्।

(41282-283)

हाय। कहाँ चंचल नेत्रांवाली पत्नीके वापल्सी भरे वचनोंके द्वारा किये गये मनोविनोदोंके बीच मेरा भोजन होता या और कहाँ भाला-बॉर्डियों तथा मुसलोंके द्वारा मुझे मारा जा रहा है!

१-मनुजानां हितं दानमन्ते जैतरणी खार। दत्ता पापं दतित सर्वं यम सोकं ठ सा नयेत्॥ (५। १२६-१२७)

'नानाक्रन्दपुर' पहुँच जाता है। तदनन्तर नवें मासमें पुत्रद्वारा दिये बढ़ते हुए उस मृतककी जिह्नाको यमदृत छुरीसे काट गये पिण्डका भोजन करके वह नाना प्रकारका विलाप करता डालते हैं, जिससे दु:खित होकर वह इस प्रकार विलाप है। तत्पक्षात् यमद्त दसवें मासमें उसको 'सुतप्तभवन' लें करता है-जाते हैं। मार्गमें वे उसको इलसे मारते-पीटते हैं, जिससे आहत होकर वह इस प्रकार विलाप करता है-

सुनुपेशलकरै: पादसंबाहनं मम॥ दुतवज्रप्रतिमकरैमंत्यदक्षणम्।

(41174-134)

हाय। कहाँ पुत्रोंके कोमल-कोमल हाधोंसे मेरे पर दावे जाते थे और कहाँ आज इन यमदृतोंके बन्नसदृत कठीर हाथींसे पैर पकड़कर मुझे निर्दयतापूर्वक घसीटा जा रहा है ! दसवें मासमें वहींपर पिण्ड और जलका उपभोग करके वह (जीव) पुन: आगेकी ओर सरकने लगता है। ग्यारहवाँ मास पूर्ण होते ही वह 'रौद्रपुर' पहुँच जाता है। मार्गर्मे यमद्रुत जैसे ही उसकी पीठपर प्रहार करते हैं, वह चिल्लाते हुए इस प्रकार चिलाप करता है-

> क्वाई सतुलीशयने परिवर्तन् अर्ण अणे। भटहस्त्रभष्ट्यष्टिकृष्ट्पष्टः कव वा पुनः॥

कहाँ मैं सर्दसे बने हुए अत्यन्त कोमल गहेपर लेटकर प्रतिक्षण करवरें बदलता था और कहाँ आज यमद्तीक हाथोंसे निर्देयतापूर्वक मारी जा रही लाठियोंके प्रहारसे कटी पीठमे करवट बदल रहा है।

हे द्विज! इसके पक्षात् वह जीव पृथ्वीपर दिये गये जलसहित पिण्डको खाकर 'पयोवर्षण' नामक नगरकी ओर प्रस्थान करता है। रास्तेमें यमदृत कुल्हाडीसे उसके सिरपर प्रहार करते हैं। हताहत होकर वह इस प्रकारका विलाप करता है-

भृत्यकोमलकरैर्गन्धतैलावसेचनम्॥ क्व कीनाशान्गै: कोधान्कुठारै: शिरसि व्यचा।

(4) 134-180)

हाय! कहाँ भृत्योंके कोमल-कोमल हाथाँसे मेरे सिरपर सुवासित तेलकी मालिश होती थी और कहाँ आज. विस्तृत है। उसमें श्रवण नामक तेरह प्रतीहार हैं। उन क्रोधसे परिपूर्ण यमदुरोंके हाथोंसे मेरे इस सिरपर कुल्हाहियोंका प्रतीहारोंको अवणकर्म करनेसे प्रसन्नता होती है। अन्यथा प्रहार हो रहा है!

इस प्रकार विलाप करता हुआ वह जीव नवें मासमें बीठते ही वह 'शीताढ्य' नगरकी ओर चल देता है। मार्गमें

प्रियालापै: क्व च रसमभुरत्वस्य वर्णनम्। उक्तमात्रेऽसिपत्रादिजिह्नाच्छेदः वद चैव हि॥

(41883)

और। कहाँ परस्पर प्रिय वार्तालापींके द्वारा इस जिह्नाके रसमाधुर्वकी प्रशंसा की जाती थी, कहाँ आज मुँह खोलनेमात्रपर ही तलवारके समान तीक्ष्ण खूरी आदिके द्वारा मेरी उसी जिहाको काट दिया जा रहा है!

तदनन्तर उसी नगरमें वह मृतक वार्षिक पिण्डोदक तथा ब्राद्धमें दिये गये अन्य पदार्थीका सेवन कर आगेकी ओर बढ़ता है। पिण्डज शरीरमें प्रविष्ट होकर वह बहुभीति" नामक नगरमें जाता है। वह मार्गमें अपने पापका प्रकाशन और स्वयंकी निन्दा करता है। यमपुरीके इस मार्गमें स्त्री भी इसी-इसी प्रकारका विलाप करती है।

इसके बाद वह मृतक अत्यन्त निकट ही स्थित यमपुरीमें जाता है। वह याम्यलोक बौबालीस योजनमें



वे कुद्ध होते हैं। ऐसे लोकमें पहुँचनेके पक्षात प्राणी इस पर्योवर्षण नामक नगरमें वह मृतक कनाव्दिक मृत्युकाल तथा अन्तक आदिके मध्यमें स्थित क्रोधसे श्राद्धका दु:खपूर्वक उपभोग करता है। तदनन्तर वर्ष लाल-लाल नेत्रीवाले काले पहाडके समान भयंकर आकृतिसे युक्त यमराजको देखता है। विशाल दाँतोंसे उनका मुखमण्डल किये हुए शोधासम्पन्न यमराजका दर्शन करते हैं। हाथमें भैरव-पाश रहता है।

शुभाशुभ गतिको प्राप्त करता है। जैसा मैंने तुमसे पहले अन्तमें कष्ट प्राप्त करता है। कहा है, उसी प्रकारकी पापात्मक गति पापी जीवको है गरूट। मृत्युके पश्चात् संसमनीपुरको जानेवाले प्राप्त होती है। जो लोग छत्र, पादुका और घरका दान देते प्रान्तीकी जो गति होतो है और वर्षपर्यन्त जो कृत्य हैं, जो लीग पुण्यकर्म करते हैं, वे वहाँपर पहुँचकर सौम्य किये जाते हैं, उसको मैंने कहा। अब और क्या सुनना स्वरूपवाले, कानीमें कुण्डल और सिरपर मुकुट धारण चाहते हो? (अध्याय ५)

बड़ा ही भयानक लगता है। उनकी भू-भीगमाएँ तनी रहती चूँकि वहाँ जीबको बहुत भूख लगती है, इसलिये हैं, जिससे उनकी आकृति भयानक प्रतीत होती है। अत्यन्त एकादशाह, द्वादशाह, पण्मास तथा वार्षिक तिथिपर बहुत-विकृत मुखाकृतियोंसे युक्त सैकड़ों व्याधियाँ उनको चारों से ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। हे खगश्रेष्ठ। जो व्यक्ति ओरसे घेरे रहती हैं। उनके एक हाथमें दण्ड और दूसरे पुत्र, स्त्री तथा अन्य सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा कहे गये उनके स्वार्यको हो जीवनपर्यन्त सिद्ध करता है और अपने यमलोकमें पहुँचा हुआ जीव यमके द्वारा बतायी गयी परलोकको बनानेके लिये पुण्यकर्म नहीं करता, यही

वृद्योत्सर्गकी महिमामें राजा वीरवाहनकी कथा, देवर्षि नारदके पूर्वजन्मके इतिहासवर्णनमें सत्संगति और भगवद्धक्तिका माहात्म्य, वृषोत्सर्गके प्रभावसे राजा वीरवाहनको पुण्यलोककी प्राप्ति

No. To Bellen

निरनार लगा है तथा अन्य साधनोंसे भी सम्यन्न हैं, उसे कासनको सुनकर मैं इदयमें बहुत ही भयभीत हैं। हे भी वृषोत्सर्गं किये बिना परलोकमें सदित नहीं प्राप्त होती। कृपानिधान। महाभाग। ऋषिवर। मुझे सम, यमदृत और इसलिये मनुष्यको वृषोत्सर्ग अयहप करना चाहिये। ऐसा मैंने आपसे सुन लिया। इस वृषोत्सर्गका फल क्या है? प्राचीन समयमें इस यहको किसने किया? इसमें किस प्रकारका वृष होना चाहिये? विशेष रूपसे इस कार्यको किस समय करना चाहिये और इसको करनेकी कौन-सी विधि बतायी गयी है? यह सब बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा-हे खगेश्वर। मैं उस महापुण्यशाली इतिहासका वर्णन कर रहा है, जिसका वर्णन ब्रह्माके पुत्र महर्षि वसिष्ठने राजा वीरवाहनसे किया था।

प्राचीन समयकी बात है, विराधनगरमें वीरवाहन नामक एक धर्मात्मा, सत्यवादी, दानकोल और विप्रोंको संतुष्ट करनेवाले राजा रहते थे। किसी समय वे शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। कुछ पूछनेकी जिजासासे वे वसिष्ठमृतिके आश्रममें जा पहुँचे। वहाँ आसन ग्रहण कर विनम्रतासे अके हुए राजाने ऋषियोंकी संसदमें मुनिको नमस्कार करके पुछा।

राजाने कहा-हे मने। मैंने यथाशकि प्रयत्नपूर्वक

गरुडने कहा-हे प्रभी। जो तीर्थ-सेवन और दानमें अनेक धार्मिक कृत्य किये हैं, फिर भी यमराजके कठोर देखनेमें आंत्रराय भयंकर लगनेवाले नरकलोकोंको न देखना पढ़े, ऐसा कोई उपाय बतानेकी कृपा करें।

वसिष्ठने कहा-हे राजन्। जास्त्रवेता अनेक प्रकारके धर्मीका वर्णन करते हैं, किंतु कर्ममार्गसे विमोहित जन सुध्मतमा उनको नहीं जानते। दान, तीर्घ, तपस्या, यज्ञ, संन्वास तथा पितृक्रिया आदि सभी धर्म हैं, उन धर्मोंमें भी वर्षात्सर्गका विशेष महत्व है। मनुष्यको बहुत-से पुत्रोंकी अभिलाचा करनी चाहिये। यदि उनमेंसे एक भी पुत्र गया-तीर्थमें जाय, अक्षमेधयत्र करे अथवा नील वृषभ यथाविधि तोडे तो जाने-अनजाने किये गये ब्रह्महत्या आदि पाप भी विनष्ट हो जाते हैं। यह शद्धि नील वर्णके वृषभका उत्सर्ग अथवा समुद्रमें स्नान करनेसे भी हो सकती है। हे राजेन्द्र! जिसके एकादशाहमें बुधोरसर्ग नहीं होता, उसका प्रेतत्व स्थिर ही रहता है। मात्र ब्राद्ध करनेसे क्या लाभ होगा? जिस-किसी भौति नगर अथवा तीर्थमें वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिये।

हे खगेश वय-वडके द्वारा प्रेतत्वसे मुक्ति प्राप्त होती

है, अन्य साधनोंसे नहीं। जो वृषभ शुभ लक्षणोंसे समन्वित वृषभके दाहिने कन्धेपर त्रिशूल और बायें ऊरुभागमें युवा तथा कृष्ण गल-कम्बलवाला हो और सदैव जो गायोंके झुंडमें घूमनेवाला हो, उस वृषभको विधि-विधानसे चार अथवा दो या एक बिख्याके साच पहले उसका विवाह करना चाहिये। तदनन्तर माङ्गलिक इक्यों एवं मन्त्रोंके साथ उन सबका उत्सर्ग किया जाय। 'इंहरतीति०' इन छ: मन्त्रोंसे अग्निदेवको आहुति देनी चाहिये। कार्तिक, माघ और वैशाखकी पूर्णिमा, संक्रान्ति, अन्य पुण्यकाल, व्यक्तिशत तथा तीर्थमें और पिताको क्षयतिथि वृत्रोत्सर्गके लिये विशेष रूपसे प्रशस्त मानी जाती है। 'जो वृषभ लाल वर्णका हो और उसका मुँह-पूँछ पाण्डु (श्वेत-पीतमित्रित) हो, खुर और सींगोंका वर्ण पीत हो, वह नीलवृषभ कहा जाता है -लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुन्छे च पाण्ड्ररः॥ पीतः खुरवियाणीयु स नीलो वृष उच्यते।

(4) 14-30)

जो वृषभ क्षेत वर्णका होता है वह बाह्मण है, जो लोहित वर्णका है वह क्षत्रिय है, जो पीत वर्णका है वह पार कराने दुए एक वनसे दूसरे वनके मध्य ले गये। हे वैश्य है और जो कृष्ण वर्णका है वह शुद्र है। अत: ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्णको अपने वर्णके अनुसार वृषोत्सर्ग करना चाहिये अथवा रक्तवर्णका ही वृषध सबके लिये कल्याणप्रद है।

पिता, पितामह तथा प्रिपतामह पुत्रके उत्पन्न होनेपर यही आशा करते हैं कि यह मेरे लिये वृषोत्सर्ग करेगा। वृषोत्सर्गके समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

वृषक्षपेण जगदानन्ददायकः॥ अष्टमृतैरिधष्ठानमतः शान्ति प्रयच्छ थे। गङ्गावम्नयोः पेयमनवेदि तुर्ण कर॥ धर्मराजस्य पुरतो वाच्यं मे सुकृतं वृषः।

(4(23-74)

हे धर्म! आप इस वृषधरूपमें संसारको आनन्द प्रदान करनेवाले देव हैं। आप ही अष्टमृति शिवके अधिष्ठान हैं। अतः मुझे शान्ति प्रदान करें। आप गङ्गा-यमुनाका जल पेयें। अन्तर्वेदीमें घास चरें और हे वृष! धर्मग्रजके सामने मेरे पुण्यकर्मकी चर्चा करें।

चक्रका चिह्न अंकित करके गन्ध, पुष्प तथा अक्षत आदिसे बडियाके सहित उस वृषभकी पूजा करके विधिवत् बन्धनमुक्त कर दे।

वसिष्ठजीने कहा-हे राजन्। आप भी विधिवत् वृषोत्सर्गं करें, अन्यथा सभी साधनोंसे सम्पन्न होनेपर भी आपको सद्रति नहीं प्राप्त हो सकती है। राजन्! पहले केताबुगमें विदेहनगरमें धर्मबत्स नामका एक बाह्मण था, जो अपने वर्णानुसार कर्ममें अहर्निश निरत, विद्वान, विष्णुभक्त, अत्यन्त तेजस्वो और यथालाभसे संतुष्ट रहता था। एक बार पितृपर्वके आनेपर वह कुश लेनेके लिये बनमें गया। यहाँ इधर-उधर घूमता हुआ वह कुश और प्लाशके पत्तींको एकत्र करने लगा। एकाएक वहाँपर देखनेमें अत्यन्त सुन्दर चार पुरुष आये और उस ब्राह्मणको पकड़कर आकाशमार्गसे लेकर चले गये। वे चारों पुरुष उस दीन, व्यक्ति ब्राह्मणको पकड़कर बहुत-से वृक्षींवाले धनधोर वन, पर्वतींके दुर्गीकी राजन्। वहाँपर उस ब्राह्मणने एक बहुत बड़ा नगर देखा। वह नगर मुख्यद्वारसे समन्वित तथा अनेक प्रासादोंसे मुलोभित हो रहा था। चब्तरा, बाजार, खरीदी-बेची जानेवाली वस्तुओं और नर-नारीसे युक्त उस नगरमें तुरहियोंकी ध्वनि हो रही थी। बीणा और नगाई बज रहे थे। वहाँ कुछ भूखसे पीडित, दीन-हीन, पुरुषाधंसे रहित लोगोंको भी उसने देखा। उसके बाद अत्यन्त मैले-कुचैले, फटे-पुराने बस्त्रोंको पहने हुए लोग दिखायी पहे। आगे इष्ट-पुष्ट स्वर्णाभूषणसे अलंकृत सुन्दर-सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए कुछ ऐसे लोग थे, जो देवताओंके समान तोभासम्पन थे; जिनको देखकर वह विस्मयाभिभृत हो उटा। वह सोचने लगा कि क्या मैं स्वप्न देख रहा है? अचवा यह कोई माया है? या मेरे मनका यह विश्रम है? वह ब्राह्मण इस प्रकारकी शंका कर ही रहा था कि वे चारों पुरुष उसको लेकर राजाके पास गये। स्वर्णजटित उस ग्रजन्नासादके बीच स्थित ग्रजाको वह ब्राह्मण एकटक देखता हो रह गया। वहाँपर एक महादिव्य सिंहासन था, इस प्रकारका निवेदन करते हुए संस्कर्ताको चाहिये कि जहाँ छत्र और चैंबर डुलाये जा रहे थे। उसके ऊपर

१-४३ इह रतिः स्वाहा इदमानये। ३३ इह रमार्ज स्वाहा इदमानये। ३३ इह धृतिः स्वाहा इदमानये। ३३ हह स्वधृतिः स्वाहा इदमानये। 🕰 उपसूजन् धरणं मात्रे धरुजो मातरं धयन् स्थाहा इदमानवे। 🕸 रायसचेषमस्यस् द्वीधरत् स्थाहा इदमानवे। (चतु० ८।५१)

राजा बैठा हुआ था। वन्दोजन उसका गुजगान कर रहे थे।

राजा उस ब्राह्मणको देखकर खडा हो गया और उसने मधुपर्क तथा आसनादि प्रदान कर उनको विधिवत पुजा की। तत्पक्षात् अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर वह राजा उन विप्रदेवसे इस प्रकार कहने लगा—हे प्रभी। आज आप जैसे धर्मपरायण विष्णुभक्तका दर्शन हुआ है, इससे मेरा जन्म सफल हो गया। मेरा यह कुल भी पवित्र हो उठा। तदननार राजाने उस बाह्यणको प्रणाम किया और बहुत प्रकारसे उनको संतृष्ट करके अपने दृतोंसे कहा-हे दृतो। ये ब्राह्मणदेव जहाँसे आमे हुए 🖁, पुन: तुम सब इन्हें वहीं ले जाकर पहुँचा आओ। ऐसा सुनकर उन ब्राह्मणबेष्ठने राजसे पुछा-

हे राजन्। यह कौन-सा देश है ? यहाँपर ये उत्तम, मध्यम और अधम चरित्रवाले लोग कहाँसे आये हुए हैं? आप किस पुण्यके प्रभावसे यहाँ इन सबके बीच प्रधान पदपर विराजमान हैं? मुझको यहाँ किसलिये लाया गया और फिर क्यों वापस भेजा जा रहा है? यह सब स्वपने समान मुझे अनोखा दिखायी दे रहा है?

इसपर राजाने कहा-हे विप्रदेव। अपने धर्मका पालन करते हुए जो मनुष्य सदैव भगवान् हरिकी भक्तिमें अनुरक्त और इन्द्रियोंके विषयमे परे रहता है, वह मेरे लिये निश्चित ही पूज्य है। नित्य जो प्राणी तीर्योकी यात्रा करनेमें ही लगा रहता है, जो वृपोत्सर्गक माहात्म्यको भलीभौति जानता है और जो सत्य एवं दान-धर्मका पालक है, वा व्यक्ति देवताओंके लिये भी प्रणम्य है। हे परंतप! हे पुजाहें। आपका दर्शन हम सभी प्राप्त कर सके, इसलिये आपको यहाँ लाया गया था। हे देव! आप मुझपर प्रसन्न हों और मुझे इस साहसके लिये क्षमा करें। मैं स्वयं अपने सन्पूर्ण चरित्रका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं। इस वृत्तान्तका वर्णन भेरा यह विपक्षित् नामवाला मन्त्री करेगा। राजाका वह मन्त्री सब वेदोंको जाननेवाला विद्वान् व्यक्ति चा। अतः अपने स्वामीकी हार्दिक इच्छाको जानकर वह कहने लगा-

हे विप्र। यह राजा पूर्वजन्ममें द्विज और देवताओंसे सशोभित विराधनगरमें विश्वम्भर नामका एक वैस्य या। ऐसा मैंने सना है। वैश्य-युत्तिसे जीवनपापन करते हुए वह अपने परिवारका पालन करता था। नित्य गायोंकी सेवा तथा धावाभूमीक्षर तीर्थको देखकर पर्वतराज श्रीशैल पहुँचा ब्राह्मणोंकी पूजा भी करता था। सत्पात्रको दान, अतिथिसेवा तदनन्तर महातेजस्थी भगवान् हरि स्वयं जहाँ श्रीरङ्ग नामसे

स्वर्णनिर्मित मुकुट धारण किया हुआ महान् शोधा-सम्पन्न तथा अग्निहोत्र करना उसका नित्य धर्म था। सत्यमेधा नामको पत्नीके साथ उसने विधिवत् गृहस्थाश्रमका संचालन किया। उसने स्मार्त कर्मके अनुष्टानसे सभी लोकों तथा श्रीत कर्मोंसे देवताओंको जीत लिया था।

किसी समय जब वह वैश्य अपने भाइयंकि साथ बहत-से तीर्घोकी यात्रा कर अपने घर लौट रहा था, तब मार्गमें ही उसे लोमन ऋषिका दर्शन हो गया। उसने महर्षिके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया। हाथ जोड़कर विनयाबनत खड़े उस वैश्यसे करुणाके सागर महर्षि लोमजने पुछा-

हे भद्रपुरुष! ब्राह्मणों और अपने भाई-बन्धुअंकि साथ आप कहाँसे आ रहे हैं? धर्मप्राण! आपको देखकर मेरा मन आई हो उठा है।

इसपर विश्वम्भर वैश्यने उत्तर दिया-मुनिवर! यह तरोर नश्चर है। मृत्यु प्राणीके सामने ही खड़ी रहती है— ऐसा जानकर अपनी धर्मपरायणा पत्नीके साथ मैं तीर्थयात्रामें गया था। तोथींका विधिवत दर्शन एवं प्रकृत धन-दान कर मैं अपने घरकी ओर वापस जा रहा था कि सीभाग्यवश आपका दर्शन हो गया।

लोमजाने कहा-इस भारतवर्षकी पायन भूमिमें बहुत-से तीर्थ है। आपने जिन तीर्योंकी यात्रा की है, उनका वर्णन मुझसे करें।

वैश्यने कहा-हे अधिवर! जहाँ गङ्गा, यमुना और सरस्वती नामक पवित्रतम नदियाँ एक साथ मिलकर प्रवाहित होती हैं, जहाँ ब्रह्मा तथा देवराज इन्द्रने दशाश्रमेथ-यह किया था उस तीर्थराज प्रयाग: जहाँ करुणानिधान देवदेवेश्वर शिव प्राणियोंके कानमें 'तारकमन्त्र' का उपदेश देते हैं उस मोधदायिनी काशी; पुलहाश्रम, फल्गुतीर्थ, गण्डको, चक्रतीर्थ, नैमिपारण्य, शिवतीर्थ, अनन्तक, गोप्रतारक, नागेश्वर, विन्दुसरोवर, मोश्रदायक राजीवलोचन भगवान रामसे सुशोधित अयोध्याः अग्नितीर्थं, वायुतीर्थं, कुनेरतीर्थं, कुमारतीर्थ, सुकरक्षेत्र, भगवान् कृष्णसे अलंकृत मथुरा पुष्कर, सल्पतीर्थ, ज्वालातीर्थ, दिनेश्वरतीर्थ, इन्द्रतीर्थ, पश्चिमवाहिनी सरस्वतो तथा कुरुक्षेत्र जाकर मैंने दर्शन किया। उसके बाद मैं ताप्ती, पयोष्णी, निर्विन्थ्या, मलय, कृष्णवेषी, गोदावरी, दण्डकवन, ताम्रचूड, सदोदक और

निवास करते हैं, जहाँ महिषासुरमर्दिनी दुर्गा वेंकटो नामसे प्रकारके भावोंसे व्यामोहित है। ज्ञानसम्पन व्यक्तिके पास पुकारी जाती हैं, उस वेंकटाचलकी यात्रा मेरे द्वारा को गयी। जिस प्रकारसे शान्ति आ जाती है, विवेकवान् श्रेष्ठ मनुष्य तत्पक्षात् चन्द्रतीर्थ, भद्रबट, कावेरी, कृटिलाचल, अवटोदा, जिस प्रकार अन्तर्बाह्य दोनों स्थितियोंमें शुद्धताको प्राप्त कर ताप्रपर्णी, त्रिकृद, कोल्लकिंगरि, वसिष्ठतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, लेता है वह सब मुझे बतानेकी कृपा करें। ज्ञानतीर्थ, महोदधि, ह्रषीकेश, विराज, विशाल और नौलाद्रि ऋषिने कहा—हे वैश्यवर्थ। यह मन अत्यन्त बलवान् (जगन्नाधपुरी), भीमकूट, श्वेतगिरि, रुद्रतीर्थ तथा वहाँ है। यह नित्य ही विकारयुक्त स्वभाववाला है। तथापि जैसे तपस्या करके पार्वतीने भगवान् शिवका पविरूपमें वरण पीलवान मतवाले हाथीको भी बशमें कर लेता है वैसे किया था. उस उमाचन तीर्थकी मैंने पात्रा की। साथ ही ही सत्संगतिसे, आलस्परहित होकर साधन करके, तीव वरुणतीर्थ, सूर्यतीर्थ, हंसतीर्थ तथा महोद्धि तीर्थको यात्रा भक्तियोगसे तथा सद्विचारके द्वारा अपने मनको वशमें कर हुई, जहाँ स्नान करके काकोला (पहाड़ी कौआ) भी लेना चाहिये। इस सम्बन्धमें तुम्हें विश्वास हो जाय, इसलिये राजहंस बन जाता है, जहाँ स्नान मात्र करके एक राश्वसने मैं एक इतिहास बता रहा है, जो नारदके पूर्वजन्मके जीवनवृत्तसे देवत्व पद प्राप्त कर लिया था। उसके बाद विश्वरूप, जुड़ा हुआ है, जिसको स्वयं उन्होंने ही मुझसे कहा था। वन्दितीर्थ रतेश तथा कुडकाचल सीर्थ गया जहाँ नरनारायणका दर्शन करके मनुष्य करोड़ों पापसे मुक्त किसी ब्रेष्ठ ब्राह्मणका दासीपुत्र था। वहाँपर मुझे महान् हो जाता है। सरस्वती, दबद्वती और नर्मदा नामक मनुष्योंके लिये कल्याणकारिणी नदियोंको मैंने यात्रा की। भगवान नीलकण्ड, महाकाल, अमरकण्टक, चन्द्रभागा, वेत्रवती, वीरभद्र, गणेश्वर, गोकर्ण, बिल्वतीर्थ, कर्मकृण्ड और सतारक तीथोंमें जाकर आपकी कपासे मैं अन्य तीथोंमें भी गया जहाँ मात्र स्नान करके मनुष्य कर्मबन्धनसे मक हो जाता है।

हे मुने। साध्यनोंको जो क्रथा है, वह प्राणियोंमें कल्याणकारिणी बृद्धिको जन्म देती है। एक ओर तो सभी तीर्थ हैं और दूसरी ओर करुणापूर्ण साधुजन प्राणियोंके कल्याणका उनपर कृपा करनेका वत धारण कर वे इतस्तत: परिभ्रमण करते रहते हैं-

> उत्पद्यते शुभा बृद्धिः साधुनां यदनुष्ठः। एकतः सर्वतीर्धानि करुणाः साधवीऽन्यतः॥ अनुग्रहाय भूतानां चरनि चरितवताः। ((100-00)

हे प्रभो। आप सभी वर्णोंके गुरु हैं तथा विद्या एवं वयमें श्रेष्ठ हैं। अतः मैं आपसे उस आधिभौतिक स्वरूपके विषयमें पूछ रहा हैं, जो चिरंतन कालसे चला आ रहा है।

नारदजीने मुझसे कहा-हे मुने! मैं प्राचीनकालमें पृण्याल्याओंकी सत्संगति प्राप्त करनेका सुअवसर भी मिला। एक बार वर्षाकालमें भाग्यवश मेरे घर साधुजन ठहरे हुए थे। मेरे द्वारा विनम्रतापूर्वक बराबर की गयी सेवासे अत्यन्त संतुष्ट होकर उन लोगोंने मुझे उपदेश दिया या, जिसके प्रभावसे मेरी जुद्धि निर्मल और हितैषिणी बन गयो, जिससे अब मैं अपनेमें ही सबकी विष्णुमय देखता है।

मुनियोंने नारदजीसे कहा-हे बत्स! तुम सुनो। हम सब तुम्हारे हितमें कह रहे हैं, जिसको स्वीकार कर क्दनुसार जीवनयापन करनेवाला प्राणी इस लोक और पालोक दोनोंमें सुख प्राप्त करता है। इस संसारमें अनेक प्रकारके देवता, पक्षी तथा मनुष्यादिकी योनियाँ हैं, जो कर्मपालमें बँधी हुई हैं। वे सदैव पृथक्-पृथक् रूपसे कर्मफलींका भोग करते हुए सत्त्वगुणसे देवत्व, रजीगुणसे मनुष्यत्व और तमोगुणसे तिर्यक् योनि प्राप्त करते हैं। वासनामें आबद्ध बुद्धिहीन प्राणी माताके गर्भसे बार-बार बन्न लेकर मृत्युका वरण करता है। इस प्रकार उन अमंत्र्य योतियोंमें जाकर वह कभी दैवयोगसे ही मनुष्यकी दुर्लभ योनिको प्राप्त कर, महात्माओंकी कृपासे भगवान में क्या करूँ? किससे पूछें? मेरा मन अत्यन्त चञ्चल हो। हरिको जानकर तथा अपार भवसागरको रोगरूपी ग्राह और उठा है। यह ब्रह्मके विषयमें तो निस्पृह रहता है, पर मोहरूपी पाशसे युक्त समझकर मुक्त हो जाता है। इस विषयों में अति लालायित है। यह रंचमात्र भी उस भवसागरको पार करनेके इच्छक प्राणीके लिये राम-नाम-अज्ञानरूपी अन्धकारका विछोड सहन नहीं कर सकता है। स्थरणके अतिरिक्त अन्य कोई साधन हमें दिखायी नहीं हे विप्रदेव! कमोंका जो श्रेष्टतम क्षेत्र है, वह अनेक देता है। जैसे दहीका मन्धन करनेसे नवनीत और काष्टका मन्थन करनेसे अग्नि प्राप्त होती है, वैसे हो आत्ममन्यन कर उस परमात्माको जो प्राणी जान लेता है, वह सुखी हुआ। उन भगवान्की कृपासे ही मैं आज अनासक रहकर हो जाता है।

यह आत्मा नित्य, अव्यय, सत्य, सर्वगामी, सभी प्राणियोंमें अवस्थित और महान् है। यह अप्रमेय है। यह स्वयंमें ज्योतिस्वरूप एवं मनसे भी अग्राह्य है। यह वह तत्त्व है. जो संचिदानन्दरूप है और सभी प्राणियंकि इदयमें विराजमान रहता है। भावेंकि विनष्ट हो जानेपर भी कभी विनष्ट नहीं होता है। जिस प्रकार आकाश सभी प्राणियोंमें, तेज जलमें तथा वाय सभी पार्थिव पदार्थोंमें स्थित है, उसी प्रकार आत्मा सर्वत्र व्याप्त और निलेंप है। भक्तोंपर कृपादृष्टि रखनेवाले भगवान् हरि साधुओंकी रक्षा करनेके लिये अवतरित होते हैं। यद्यपि वे निर्मुण है, फिर भी अज्ञानियोंको गुणवान् प्रतीत होते हैं। जो व्यक्ति इस प्रकारकी जानवती बुद्धिसे अपने इदयमें उस परमात्माका चिन्तन करता है, उसके भक्तियोगसे संतुष्ट होकर वे अजन्मा पुरुष परमात्मा उसको अपना दर्शन देते हैं। तरपक्षात् वह भक्त कृतार्य हो जाता है और सर्वदा सर्वव निष्कामभावसे बना रहता है। अतः बन्धनयुक्त इस सरीरमें अहंकारका परित्याग करके स्वप्नप्राय संसारमें समता और आसक्तिसे रहित होकर संचरण करे। स्वप्नमें धैर्व कहाँ स्थिर रहता है? इन्द्रजालमें कहाँ सत्पता होती है? शरत्कालके मेधमें कहाँ नित्यता रहती है ? बैसे ही जरीरमें सत्पता कहाँ रहती है ? यह दूश्यमान समस्त चराचर जगत् अविद्या-कर्मजनित है। ऐसा जानकर तुम्हें आचारवान् योगी बनना चाहिये। उससे तुम सिद्धि प्राप्त कर सकते हो।

इस प्रकारका उपदेश देकर वे सभी दीन-हीन प्राणियाँपर वात्सल्य-भाव रखनेवाले साधु वहाँसे चले गये। तदनन्तर में (नारद) उनके द्वारा बताये गये मार्गसे उसी प्रकारका आचरण प्रतिदिन करता रहा। कुछ ही समयके पक्षात् मैंने अपने अन्त:करणमें यह एक आक्षयंजनक दृश्य देखा कि शरकालीन चन्द्रमाके समान निर्मेल, प्रतिश्रन आनन्द प्रदान करनेवाला अन्द्रत प्रकाशपुत्र प्रव्यक्तित हो रहा है। वह महातेज मुझे प्रचुर सुखसे सींचकर (अपने प्रति) अधिक स्पृहायुक्त बनाकर आकालमें विद्युत्को भौति इस तीर्थ-पात्रका समस्त कृत्य भलीभौति पूर्ण हो जाय अन्तर्हित हो गया। भक्तिपूर्वक मैं उस अनोखे ज्योतिपुकका विष्णलोक चला गया।

हे ब्रह्मन्! उन्हीं प्रभुकी इच्छासे पुन: मेरा जन्म ब्रह्मासे तीनों लोकोंमें बार-बार बीणा बजाते और गीत गाते हुए भूमता रहता है।

अपना ऐसा अनुभव बताकर मृनि नारद मेरे पाससे मनोनुकल दिशामें चले गये। उनकी उस बातसे मुझको बहा ही आहर्ष हुआ और बहुत संतोष भी मिला।

अत: सत्संगति तथा भगवद्धकिसे तुम्हारा विशुद्ध, निर्मल और शान्त स्वभावकाला मन सुखी हो जायगा। है धर्मञ् । साध्संगति होनेपर अनेक जन्मोंमें किया गया पाप शौध ही उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जैसे शरत्कालके आनेपर बरसात समाप्त हो जाती है-

अतस्ते साधुसङ्ख्या भक्त्या च परमात्पनः॥ विश्र विमेलं ज्ञानं यनो निर्वतिमेध्यति। अनेक जन्म अधितं पातके साध्सङ्गमे ॥ क्रियं नम्पति धर्मज जलानां शरदो यथा। (41111-111)

वैष्टवने कहा-हे ऋषिराज। आपके इस नाक्यामृत-रसपानमें मेरे अन्त:करणको शान्ति मिल गयी। आज आपके इस दर्शनसे मेरी समस्त तीर्थयात्राका फल प्रकट

यह सुनकर लोमशजीने कहा-हे राजेन्द्र! धर्म, अर्थ और काम-इस विवर्गक फलको इच्छा करनेवाले तुम्हारे हितमें यह मानता हैं कि वृषोत्सर्गके बिना जो बहुत-से सत्कर्म तुमने किये हैं, वे सब ओसकर्जीके रूपमें पृथ्वीपर गिरे हुए जलके समान कुछ भी कल्याण करनेकी सामध्ये नहीं रखते हैं। इस पृथ्वीतलपर वृषीत्सर्गके सदश हितकारी कोई साधन नहीं है। इस बेहकर्मको करनेवाले लोग अनाचास पुण्यात्माओंको सद्गति प्राप्त कर लेते हैं। वृषोत्सर्ग-कर्म जिसने किया है वह व्यक्ति और जो अक्षमेधयज्ञक कर्ता है, मेरी दृष्टिमें दोनों समान हैं। वे दोनों दिव्य शरीर प्राप्त करके इन्द्रदेवका सांनिष्य ग्रहण करते हैं। अतः तुम पुष्करतीर्थमें जाकर वृषोत्सर्ग-कर्मको सम्पन करो। हे साधु! उसके बाद ही तुम अपने घर जाओ, जिससे वि विपश्चित्ने कहा-इसके बाद वह वैश्य यज्ञको पूर्ण

ध्यान करता हुआ समय आनेपर अपना शरीर छोड़कर करनेवाले वराहरूपी भगवान् जहाँ विद्यमान हैं, उस श्रेष्ट पुष्करतीर्थमें गया और उसने कार्तिक पुणिमाके दिन ऋषिश्रेष्ठने

जैसा कहा था, उस वृषोत्सर्ग-कर्मको विधिवत् सम्पन्न वृषोत्सर्गका अनुष्ठान किया। तदनन्तर अपने घर पहुँचकर किया। इसके बाद लोमश ऋषिकी संगतिसे वह बहुत-से उसने अपनेको कृतार्थ माना। समय आनेपर जब उसकी तीथोंमें गया। अधिक पुण्य नील (वृष)-विवाहसे उसको प्राप्त हुआ था। श्रेष्ठ विमानपर चढ़कर दिव्य विश्ववाँको भोगनेके बाद उसका वीरसेनके राजकलमें जन्म हुआ। इस जन्ममें उसको वीरपञ्चानन नामकी ख्याति प्राप्त हुई। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-इस पुरुषार्थ चतुष्टवका एक अद्वितीय साधक था। वृषोत्सर्ग करते समय वहाँ जो नौकर-चाकर उपस्थित थे, वे भी गायकी पुँछके तर्पणके छींटोंका स्पर्श करके दिव्य रूप हो गये। जो दरसे हो इस कार्यको देख रहे थे, वे लोग इष्ट-पृष्ट हो गये और उनका स्वरूप कान्तिसे चमक उठा। इसके अतिरिक्त जो लोग इस सत्कर्मके भू-भागसे बहुत दूर थे, वे मिलन दिखायी दे रहे थे। वृषोत्सर्ग न देखते हुए जो लोग उसकी निन्दा करनेवाले थे, से अभागे, दीन-हीन और व्यवहार आदिमें रूख, कुश और वस्त्रविहीन हो गये। हे द्वित। मैंने भगवान पराहरसे पूर्वजन्मसे सम्बद्ध इस राजाका अद्भुत और धार्मिक जो वृत्तान्त सुना था, उसका वर्णन आपसे कर दिया। इसलिये आप मेरे ऊपर कृपा करके अब अपने घर लौट जायें। मन्त्रीके ऐसे वाक्योंको सुनकर वे ब्राह्मण अत्यधिक आक्ष्मचिकत हो उठे। तदननार एजसेवकॉके द्वारा उन्हें

मरपर पहुँचा दिया गया। वसिष्ठने कहा-हे राजन्। सभी कमीमें वृषोत्सर्ग-कर्म श्रेष्ठतम है। अत: आप यदि पमराजसे भवभीत है तो यथाविधि वृषोत्सर्ग-कर्म हो करें।

हे राजश्रेष्ठ! वृषोत्सर्गके अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा साधन नहीं है जो मनुष्यको स्वर्ग-प्राणिको सिद्धि प्रदान कर सके-

वृषोत्सर्गसर्थं किञ्चित् साधनं न दिवः परम्।

(46917)

आपको मैंने धर्मका रहस्य बता दिया है। यदि पति-पुत्रसे युक्त नारी पतिके आगे मर जाती है तो उसके निमित्त वृषोत्सर्ग नहीं करना चाहिये, अपित दूध देनेवाली गायका दान देना चाहिये'।

वचनोंको सनकर राजा बीरवाहनने मधुरामें जाकर विधिवत् व्यक्ति पापमुक्त हो जाता है। (अध्याय ६)

मृत्यु हुई तब यमराजके दृत उसको लेकर कालपुरीकी और चले, किंतु उस नगरको पार करके मार्गमें जब वह अधिक दर निकल गया तो उसने दतींसे पूछा कि श्राद्धदेवका नगर कहाँ है? तब दूतोंने उसको बताया कि जहाँ पापी लोग पापशुद्धिके लिये यमदुर्तीके द्वारा नरकमें ढकेले जाते हैं, जहाँ धर्मधर्मको विवेचना करनेवाले धर्मराज विराजमान रहते हैं, वहीं वह बाद्धदेवपुर है। आप-जैसे पुण्यात्माओंके द्वारा वह नहीं देखा जाता है। उसी समय देव-गन्धवॉक सहित दिव्य रूपवाले धर्मग्रजने उस राजांके समध अपनेको प्रकट किया। अपने सामने उपस्थित धर्मराजको देखकर राजाने बडे ही आदरके साथ हाथ जोडकर उन्हें प्रणाम किया और प्रसन्तित होकर उसने अनेक प्रकारसे गुण-कीर्तन करते हुए उन्हें संतुष्ट किया। धर्मराजने भी राजाकी प्रशंसा करके यही कहा-हे दुर्श। तुम सब, इन्हें उस देवलोकमें ले जाओ, जहाँ प्रचुर भोगके साधन सुलभ है। राजा वीरवाहनने उस आदेशको सुनकर सामने ही स्थित धर्मराजसे पूछा-हे देव। मैं यह नहीं जानता है कि आप मुझे किस पुण्यके प्रभावसे स्वर्गलोक ले जा रहे हैं।

धर्मराजने कहा-हे राजन्। तुमने दान-यजादि अनेक पुण्यकार्योंको विभिवत सम्पन्न किया है। वसिष्ठकी आज्ञा पान करके तुमने मधुरामें वृषोत्सर्ग भी किया है।

हे नरेहा। यदि यनुष्य थोडे भी धर्मका सम्यक्रूरूपसे पालन करता है तो वह बाह्मण और देवताओंकी कृपासे अधिकाधिक हो जाता है-

धर्यः स्वल्पोऽपि नृपते यदि सम्यगुपासितः। द्विजदेवप्रसादेन स याति बहुबिस्तरम्॥

(41685)

ऐसा कहकर यमुनाके भ्राता उसी क्षण अन्तर्धान हो गये। तत्पक्षात् वीरबाहन स्वर्गमें जाकर देवताओंके साथ सखपुर्वक रहने लगा।

ब्रीकृष्णने कहा-हे पश्चिराज! मैंने वृषोत्सर्ग नामक यज्ञका माहात्म्य विस्तारपूर्वक तुम्हें सूना दिया है। प्राणियोंके श्रीकृष्णने कहा-हे खगेश! महर्षि वसिष्ठके उक्त पापकर्मको समाप्त करनेवाले इस आख्यानको सुननेवाला

संतप्तक ब्राह्मण तथा पाँच प्रेतोंकी कथा, सत्संगति तथा भगवत्कृपासे पाँच प्रेतों तथा ब्राह्मणका उद्धार

गरुडने कहा-हे प्रभी! आपने वृषोत्सर्ग नामक यज्ञसे प्राप्त होनेवाले फलसे सम्बन्धित जो आख्यान कहा, उसको मैंने सुन लिया है। अब आप पुन: किसी अन्य कथाका वर्णन करें, जिसमें आपकी अद्भुत महिमा निहित हो।

श्रीकृष्णने कहा-हे गरुड! अब मैं संतप्तक नामक ब्राह्मण तथा पाँच प्रेतोंकी कथाको बताता है।

हे पश्चित्। पूर्वकालमें संतप्तक नामक एक ब्राह्मण था। जिसने तपस्याके बलपर अपनेको पापरहित कर लिया था। यह संसार असार है, ऐसा जानकर वह वनोंमें वैखानस मुनियोंके द्वारा आचरित वृत्तिका पालन करते हुए अरण्यमें ही विचरण करता था। किसी समय उस ब्राह्मणने तीर्थ-यात्राको लक्ष्य बनाकर अपनी यात्रा प्रारम्भ की। संसारके प्रति इन्द्रियाँ स्वत: आकृष्ट हो जाती है, इस कारणसे उसने अपनी बाह्य चित्तवत्तियोंको भी रोक लिया था, किंतु पूर्व संस्कारोंके प्रभावसे वह मार्ग भूल गया और चलते-चलते मध्याह्रकाल हो गया, स्नानके लिये जलकी अधिलाधाने वह चारों और देखने लगा। उसे उस समय सैकडों गुल्म-लता और बाँसके वृक्षोंसे चिरा हुआ, वृक्षोंकी शास्त्राओंसे च्याप्त, धनयोर एक बन दिखायी पडा। वहाँ ताल, उमाल. प्रियाल, कटहल, श्रीपणीं, शाल, शाखोट (सिहोरका वृक्ष), चन्दन, तिन्दक, राल, अर्जुन, आमहा, लसोडा, बहेडा, नीम, इमली, भैर और कनैल तथा अन्य बहुत-से वृक्षोंकी सघनताके कारण पश्चियोंके लिये भी मार्ग नहीं दीखता था। फिर मनुष्यके लिये उस बनमें कहाँ मार्ग मिल सकता था? वह वन तो सिंह, व्याघ्र, तरक्ष (एक छोटी जातिका बाध), नीलगाय, रीछ, महिष, हाथी, कृष्णपूग, नाग और बंदर तथा अन्यान्य प्रकारके हिंसक जीव-जन्त, ग्रथस एवं पित्राचौंसे परिव्याप्त था।

संतप्तक उस प्रकारके घनघोर भयावह बनको देखका भयाक्रान्त हो उठा। भयभीत वह अब किस दिशामें जाय, इसका निर्णय नहीं कर सका। फिर जो होगा, देखा जायगा—यह सोचकर वह वहाँसे पुन: चल पडा। झींगुराँकी

महाभयंकर प्रेत खा रहे थे। हे खगेश! उन प्रेतोंके शरीरमें मात्र किराओं से युक्त हुड़ी और चमड़ा ही शेष था। उनका पेट पीठमें चैंसा हुआ था। नेत्ररूपी कुओंमें गिरनेके भयसे नासिकाने उनका साथ छोड़ दिया था। वसासे भरे हुए ताजे शवके मस्तिष्क-भागका स्वाद लेकर जो नित्य अपना महोत्सव मनाते थे और हड्डीकी गाँठोंको तोड्नेमें लगे हुए जिनके बड़े-बड़े दाँत किटकिटाते थे, ऐसे प्रेतोंको देखकर पबडाये हुए हृदयवाला वह ब्राह्मण वहीं ठिठक गया। उस निर्जन वनमें आ रहे बाह्यणको उन प्रेतीने देख लिया था। अत: 'मैं उसके पास पहले जातेगा, मैं उसके पास पहले जाऊँगा'— इस प्रकारकी प्रतिस्पर्धामें वे सभी प्रेत दौड पडे। उनमेंसे दो फ्रेतोंने इस ब्राह्मणके दोनों हाथ पकड़ लिये, दो प्रेतीने दोनों पैर पकड़ लिये। एक प्रेत शेष बचा था, उसने इसका सिर पकड लिया। तदनन्तर वे सभी कहने लगे कि 'मैं इसे डकाहैगा, मैं इसे खाऊँगा।' ऐसा कहते हुए वे पाँचों प्रेत बाह्मणको खाँचने लगे। फिर उसे साथ लेकर वे सहसा आकाशमें चले गये। किंतु उस बरगदपर शवका अभी कितना मांस शेष है और कितना नहीं, इस बातको भी वे सोच रहे थे। उसी समय उन लोगोंने देखा कि दतिकि द्वारा नोंचे जानेके कारण वह शव तो अभी फटी हुई औतसे युक्त है। इसलिये वे आकाशसे नीचे उतर आये और शबको अपने पैरोंसे बीधकर पुन: आकाशमें ही वह गये।

आकारामें ले जाये जा रहे उस प्रेतरूपमें स्वयंको ही समझकर वह भयातं बाह्मण पूर्ण मनसे मेरी शरणमें आ गया। देवाधिदेव, चिन्मय, सुदर्शनचक्रधारी मुझ हरिको प्रणाम कर वह इस प्रकार स्तृति करने लगा-

जिन भगवानने अपने चक्रके प्रहारसे ग्राहके मुखको विद्रीर्णकर उसके द:खको नष्ट किया था, जो ग्राहके मुखर्में फैसे हुए गजराजको मुक्त करानेवाले हैं, वे श्रीहरि मेरे कर्मपाशको काटकर मुझे मुक्त करें। मगधनरेश जरासन्धने निर्दोष राजाओंको बंदी बनाकर कारागारमें डाल इंकार तथा उल्लुऑकी धृतकार ध्वनियोंपर कान लगाये दिया था, जिन मुरारि श्रोकृष्णने राजसुययज्ञके लिये वह पाँच ही डग चला था कि सामने बरगदके वक्षमें बैधा शाण्डपुत्र भीमसेनके द्वारा उस दृष्टको मल्लयुद्धमें मरवाकर एक शब लटका हुआ उसे दिखायी दिया, जिसे पाँच राजाओंको मुक्त किया था। वे इस समय मेरे कर्मपाशको

काटकर मेरा दु:ख दूर करें।

हे गरुड! उस समय दत्तचित्त होकर जब वह मेरी स्तुतिमें लग गया तो उसे सुनते ही मैं भी उठ खड़ा हुआ और सहसा वहाँ जा पहुँचा, जहाँ प्रेत उसको लेकर जा रहे थे। उन लोगोंके द्वारा ले जाते हुए उस बाह्यकको देखकर मुझे आक्षर्य हुआ। कुछ कालतक बिना पूछे मैं भी उनके पीछे-पीछे चलने लगा। मेरी संनिधिमात्रसे उस ब्राह्मणको पालकीमें सोये हुए राजाके समान सुख प्राप्त हुआ। इसके बाद मैंने मार्गमें समेरु पर्वतपर जा रहे मणिभद्र नामक यक्षराजको देखा। मैंने नेबोंक संकेतसे उन्हें अपने पास बुलाया और कहा- हे यक्षराज। तुम इस समय इन प्रेतोंको बिनष्ट करनेके लिये प्रतिहन्दी योद्धा वन जाओ। युद्धमें इन्हें मारकर इस जवको अपने अधिकारमें करो।

ऐसा सुनते ही उस मणिभद्रने प्रेतीको दु:ख पहुँचानेवाले प्रेतरूपको धारण कर लिया। दोनी भूजाओंको फैलाकर प्रेतेनि कहा-हम सब प्रेत हैं और पूर्वजन्मके दुष्कर्मीके ओठोंको जीभसे चाटते हुए और अपनी लम्बी-लम्बो प्रभावसे इस योनिको प्राप्त हुए हैं। नि:श्वासीसे उन प्रेतीको दहलाते हुए वह मनिभद्र उनके सम्मुख जाकर डट गया। उसने दोको अपनी दोनों भुजाओंसे, दोको दोनों पैरोंसे और एकको सिरसे पकड़ लिया। उसके बाद अपने शक्तिशाली मुक्केसे उन प्रेतोंपर ऐसा प्रहार किया कि वे सभी विवर्णमुख हो गये। वे उस बाहाण तथा शबको एक हाथ और एक पैरसे पकड़कर प्रश्नोंका उत्तर सुने। हे योगिराज! हम आपके दर्शनसे युद्ध करने लगे। उन लोगोने अपने नख-बप्यड, लात एवं निष्माप हो गये हैं। हमारे नाम क्रमश: पर्येषित, सुचीमुख, दांशींसे उरापर प्रहार किये, पर मणिभद्रने उनके प्रहारको शोधन, रोधक और लेखक हैं। निफल कर उनसे शक्को ले लिया। उस यक्षके द्वारा बाह्मणने कहा—हे प्रेती। पूर्वकर्मसे उत्पन्न प्रेतींका छोड़कर वे सभी प्रेत अत्यन्त उत्साहसे भरे हुए पुन: विचित्र नामोंके विषयमें विस्तारसे मुझे बताओ। प्रेंतरूप मणिभद्रकी ओर दौड़ पड़े। धणमात्रमें ही उन श्रीकृष्णने कहा—ब्राह्मणके द्वारा ऐसा कड़े जानेपर लोगोंने वायुके समान दूतगामी मणिभद्रको घेर लिया, किंतु पृथक-पृथक रूपसे प्रेतोंने कहा— वह अदृश्य हो गया। ऐसी स्थिति देखकर हताश होकर वे पर्युषितने कहा—िकसी समय मैंने श्राद्धके सुअवसरपर आप हमें क्षमा करें। उनके दीन वचनोंको सुनकर ब्राह्मणने भोजन दिया था, उसीसे मेरा नाम पर्युचित हो गया।

पुछा-आप लोग कौन हैं ? यह क्या कोई माया है ? अधवा यह मैं स्वप्न देख रहा हैं या यह मेरे चित्तका विभ्रम है।



बाह्ययाने कहा-हे प्रेतो। तुम्हारे क्या नाम हैं? तुम सब क्या करते हो? तुम्हें कैसे इस दशाकी प्राप्ति हुई? पहले मेरे प्रति तुम लोगोंका व्यवहार कैसे अविनयी था और इस समय कैसे विनयी हो गया है।

प्रेतोंने कहा-हे द्विजराव! आप यथाक्रम अपने

शवको छीन लिये जानेपर पारियात्र पर्यंतपर उस बाह्यणको नाम कैसे निरर्थक हो सकता है? तुम सब अपने इन

प्रेत उस ब्राह्मणके पास जा पहुँचे। उस पर्वतपर पहुँचकर ऋह्मणको निमन्त्रित किया था, वह बृद्ध ब्राह्मण मेरे घर उन लोगोंने ब्राह्मणको ज्यों-ही मारना प्रारम्भ किया, त्यों- विलम्बसे पहुँचा। विना ब्राद्ध किये ही भूखके कारण मैंने ही मेरी उपस्थिति और ब्राह्मणके प्रभावसे तत्काल उनमें उस पाकको खा लिया। कुछ पर्युषित (बासी) अन लाकर पूर्वजन्मकी स्मृति जाग्रत् हो उठी। इसके बाद ब्राह्मणकी मैंने उस ब्राह्मणको दे दिया। मरनेपर मुझे उसी पापके प्रदक्षिणा करके उन प्रेतोंने ब्राह्मणश्रेष्टसे कहा—हे विप्रदेव! कारण इस दुष्टयोनिकी प्राप्ति हुई। मैंने ब्राह्मणको जो बासी पुत्र भी था, जिसके सहारे वह जीवित थी। मैं उस समय क्षत्रिय था। मैं उसके मार्गका अवरोधक बन गया और निर्जन बनमें मैंने राहजनी की। हे विप्र! उस लड़केके सिरपर मुष्टि-प्रहार कर मैंने दोनोंके वस्त्र और राहमें खाने योग्य सामान छीन लिया। वह लडका प्याससे व्याकृत हो उठा था। अत: वह माताके पास स्थित जल लेकर पीने लगा। उस पात्रमें उतना ही जल था। मैंने उसको हाँटकर जल पीनेसे रोक दिया और स्वयं उस पात्रका सारा जल पी गया। भयसंत्रस्त, प्याससे व्याकल उस बालककी वहींपर मृत्यु हो गयी। पुत्रशोकसे व्यक्ति उसकी मॉने भी कुएँमें कृदकर अपना प्राण त्याग दिया। इसी पापसे मुझकी यह प्रेतयोनि प्राप्त हुई है।

पर्वताकार तरीर होनेपर भी इस समय मैं सुईकी नोंकके समान मुखवाला है। यद्यपि खाने गोग्य पदार्थ मैं प्राप्त कर लेता हैं, फिर भी यह मेरा सईके चिद्रके समान मुख उसको खानेमें असमर्थ है। मैंने श्वधारिनसे जलते हुए ब्राह्मणीके बालकका मुँह बंद किया या, उसी पापसे मेरे मुँहका छिद्र भी सुईकी नींकके समान हो गया है। इसी कारण में आज सुचीमुख नामसे प्रसिद्ध हैं।

श्रीपगने कहा-हे विप्रवर। मैं पहले एक धनवान वैश्य था। उस जन्ममें अपने मित्रके साथ व्यापार करनेके लिये में एक दूसरे देशमें जा पहुँचा। मेरे मित्रके पास बहुत धन था। अत: उस धनके प्रति मेरे मनमें लोभ जा गवा। अदृष्टके विपरीत होनेसे वहाँ मेरा मूल धन समाप्त हो चुका था। हम दोनोंने वहाँसे निकलका मार्गमें रिखत नदीकी नावसे पार करना प्रारम्भ किया। उस समय आकाशमें सुर्व लाल हो गया था। राहकी थकानसे व्याकल मेरा वह पित्र मेरी गोदमें अपना सिर रखकर सी गया। उस समय लोभवश मेरी यद्धि अत्यन्त कर हो उठी। अतः सूर्यास्त हो जानेपर गोदमें सोये हुए अपने मित्रको मैंने जल-प्रवाहमें फेंक दिया। मेरे द्वारा नावमें किये गये उस कृत्यको अन्य लोग भी न जान सके। उस व्यक्तिके पास जो कड़ बहमस्य हीरे-जवाहरात. मोती तथा सोनेको वस्तुएँ थी. वह सब लेकर में शोध ही उस देशसे अपने घर लीट आया। घरमें वह सब सामान रखकर मैंने उस मित्रकी पत्नीके पास

सुचीमुखने कहा-किसी समय कोई ब्राह्मणी तीर्थरनानके जाकर कहा कि मार्गमें डाकुऑने मेरे उस मित्रको मारकर लिये भद्रबट तीर्थमें गयी। उसके साथ उसका पाँच वर्षीय सब सामान छोन लिया और मैं भाग आया है। मैंने उससे फिर कहा कि हे पुत्रवती नारी। तुम रोना नहीं। शोकसे व्यक्ति उस स्वीने तत्काल घरके बन्धु-बान्धवोंकी ममताका परित्याग कर अपने प्राणोंकी भेंट अग्निको यथाविधि चढा दिया। उसके बाद निष्कण्टक स्थिति देखकर मैं प्रसन्तित अपने घर चला आया। घर आकर जबतक मेरा जीवन रहा, तयतक उस धनका मैंने उपभोग किया। मित्रको नदीके जल-प्रवाहमें फेंककर मैं शीध हो अपने घर लौट आया था, उसी पापके कारण मुझे प्रेतखोनि मिली और मेरा नाम शीधग हो गया।

> रोधकने कहा-हे मुनीबर! में पूर्व-जन्ममें शह जातिका था। राजभवनसे मुझे जीवन-यापनके लिये उपहारमें बहुत बड़े-बड़े सी गाँवोंका अधिकार प्राप्त था। मेरे परिवारमें बुद्दे माता-पिता थे और एक छोटा सगा भाई था। सोधवर मैंने शीघ्र ही अपने उस भाईको अलग कर दिया जिसके कारण अन्त-वस्त्रसे रहित उस भाईको अत्यधिक दृख भोगना पडा। उसके दृखको देखकर मेरे माता-पिता लक-विपकर कछ-न-कछ उसको दे देते थे। जब मैंने भाईको माता-पिताके द्वारा दी जा रही उस सहायताकी बात विश्वस्त प्रुवासे सनी तो एक सने घरमें माता-पिताको जंजोरसे रुद्ध कर दिया। कुछ दिनोंके बाद दु:खी उन दोनोंने विष पोकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर ली। हे दिज। माता-पितासे रहित होकर मेरा भाई भी इधर-उधर भटकने लगा। ग्राम तथा नगरमें भटकता हुआ एक दिन वह भी भूक्षमे पीडित होकर मर गया। है बाह्यण! मरनेके बाद उसी पापके कारण मुझे यह प्रेतयोनि मिली। माता-पिताको मैंने बंदो बनाया था, इसी कारण मेरा नाम रोधक पड़ा। लेखकने कहा-हे विप्रदेव। मैं पूर्वजन्ममें उजीन

> नगरका ब्राह्मण था। वहाँके राजाने मेरी नियक्ति देवालयमें पजारोके पदपर को थी। उस मन्दिरमें विभिन्न नामवाली बहुत-सी मृतियाँ थीं। स्वर्णनिर्मित उन प्रतिमाओंके अङ्गोमें वहत-सा रत भी लगा हुआ था। उनकी पूजा करते हुए मेरी बृद्धि पापासक हो गयी। अत: मैंने एक तेज धारवाले लोडेसे उन मुर्तियोंके नेत्रादिसे रहाँको निकाल लिया। धत-विश्वत और रज़रहित नेत्रोंको देखकर राजा प्रश्वलित अग्निके समान क्रोधसे तमतमा उठा। उसके बाद राजाने

यह प्रतिज्ञा की कि चोर चाहे श्रेष्ठ ब्राह्मण ही क्यों न हो अध्य और पान है। इसके आगे न पूछें, क्योंकि अपने यदि उसने मूर्तियोंसे रत्न और सोना चुराया होगा तो जात आहारको बताते हुए हमें बहुत लजा आ रही है। हे होनेपर निश्चित ही मेरे द्वारा मारा जायगा। वह सब सुनकर स्वामिन्! हम सब अज्ञानी, तामसी, मन्दबृद्धि और भयसे मैंने रात्रिमें तलवार उठायी और राजाके घरमें जाकर उसका पशको तरह वध कर दिया। तदनन्तर चुरायो गयो मणियों तथा सोनेको लेकर मैं रात्रिमें ही अन्यत्र जाने लगा, किंत् मार्गमें स्थित घनधोर जंगलमें एक व्याचने मुझे मार डाला। मैंने लोहेसे प्रतिमा-छेदन एवं काटनेका जो कार्य किया था. उस पापसे आज मैं लेखक नामका प्रेत हैं। नरकभीग करनेके पक्षात् मुझे यही प्रेत-योनि प्राप्त हुई।

बाह्यणने कहा-हे प्रतगणी! आप लोगॉने अपनी जैसी दशाएँ बतायी हैं, वैसे ही आप सबके नाम भी हैं। वर्तमान समयमें तुम लोगोंका आचरण और आहार क्या है? उसको भी मुझे बताओ।

प्रेतीने कहा-हे द्विजराज। जहाँपर बेटमार्गका अनुसरण होता है, जहाँ लजा,धर्म, दम, खमा, धृति और ज्ञान-मे सब रहते हैं, वहाँ हम सब वास नहीं करते। जिसके घरमें श्राद्ध तथा तर्पणका कार्य नहीं किया जाता, उसके शरीरसे मांस और रक्त बलात अपहत करके हम उसे पीडा पहुँचाते हैं। मांस खाना और रक्त पीना यही हमारा आचरण है। हे निष्पाप। सभी लोगोंके द्वारा निन्दनीय हमारे आहारको सर्ने। कुछ तो आपने देख लिया है और जो आपको मालुम नहीं है, उसको हम बता रहे हैं। हे विप्र। वमन, विज्ञा, कीचड, कफ, मृत्र और औसुओंके साथ निकलनेवाला मल, हमारा लोकको चला गया। (अध्याय ७)

भागनेवाले हैं। हे विप्र! हममें पूर्वजन्मको स्मृति एकाएक आ गयी है। अपने विनय या अविनयके संदर्भमें हम कुछ नहीं जानते हैं।

श्रीकृष्णने कहा-हे गरुड! प्रेतोंके ऐसा कहने एवं बाह्यणके सननेके समय मैंने उन्हें दर्शन दिया। इदयमें निवास करनेवाले अन्तर्यांगी पृष्ठवके स्वरूपको सामने देखकर उस श्रेष्ठ बाह्मणने पृथ्वीपर साष्टाङ्क प्रणाम किया और स्तुतियोंसे मुझे संतुष्ट किया। आश्चर्यसे उत्पुल्ल नेत्रवाले उन प्रेतीने तपस्या की। हे खगराज। प्रेमाधिक्य होनेसे उनको वाणो रूक गयी। उस समय उनके मुखसे कुछ भी नहीं निकल पा रहा था। स्खलित वाणीमें वह बाह्यम कहने लगा-

हे प्रभो। आप कृपा करके रजोगुणके कारण घीर चित्रवाले और तमोगुणसे मुद्र चित्रवाले प्राणियोंका उद्घार करते हैं। आपको नमस्कार है।

ब्राह्मणने जैसे ही यह कहा, उसी समय मेरी इच्छासे अत्यन्त तेजस्वी, ब्रेष्ट आकासचारी गन्धर्व एवं अप्तराओंसे युक्त छ: विमान वहाँ आ पहुँचे। उन विमानोंको प्रधासे वह पर्वत चतुर्दिक आलोकित हो गया। उन पाँचोंके साथ वह ब्राह्मण विमानपर चढकर मेरे

और्घ्वदैहिक क्रियाके अधिकारी तथा जीवित-श्राद्धकी संक्षिप्त विधि

कार्यको सम्पन्न करनेका अधिकारी कौन है? यह क्रिया है तो उसका और्ध्वदैहिक कार्य राजाको कराना चाहिये। कितने प्रकारकी है? यह सब मुझे बतानेकी कृपा करें।

श्रीकष्णने कहा-हे खगेश। [जो मनुष्य मर जाता है, उसका औध्वंदैहिक कार्य] पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भाई, भाईकी संतान अथवा सपिण्ड या जातिके लोग कर सकते है। इन सभीके अभावमें समानोदक संतान इस कार्यको करनेका अधिकारी है। यदि दोनों कुलों (मातुकुल एवं पितृकुल)-के पुरुष समाप्त हो गये हों तो स्वियाँ इस कार्यको कर सकती हैं। यदि मनुष्यने इच्छापूर्वक अपने उत्पन्न हैं, उन सभीको श्रद्धापूर्वक किये जा रहे श्राद्धसे

गरुडने कहा —हे स्वामिन्। इस सम्पूर्ण औध्वेदैहिक सभी सगे-सम्बन्धियोंसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया

यह क्रिया तीन प्रकारकी है, जिनको पूर्व, मध्यम एवं उत्तर क्रियाओंकी संज्ञा दी गयी है। हे पक्षित्! इस क्रियाको प्रतिसंवत्सर एकोदिष्ट-विधानसे करना अपेक्षित है। इस बाद्ध-क्रियांके फलको तुम मुझसे सुनी।

बहा, इन्द्र, रुद्र, अधिनीकुगार, सूर्य, अगिन, वस्, मरुद्रण, विश्वेदेव, फितुगण, पक्षी, मनुष्य, पशु, सरीस्प, मातुगण और इनके अतिरिक्त जो भी प्राणी इस संसारमें

मनुष्य प्रसन्न कर सकता है। ऐसे ब्राद्धसे तो सम्पूर्ण जगत् उद्देश्यसं ब्राह्मणको एक सुशील धेनुका दान दे। तत्पश्चात् प्रसन्न हो उठता है। जो लोग अपने सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा आनेच कोणमें रुद्रदेव तथा दक्षिण दिशामें स्परिवके किये गये श्राद्धसे संतुष्त हो जाते हैं, वे ब्राद्धकरांको पुत्र, निमित्त स्थित ब्राह्मणोंको भी एक-एक गाय देनी चाहिये स्त्री और धन आदिके द्वारा तस करते हैं। हे मरुड! इस तथा विश्वेदेवींके लिये तिलपुर्ण पात्रका निवेदन करे। प्रकार मैंने संक्षेपमें अधिकार और क्रिया-भेदका निरूपण तदनन्तर ब्राह्मणोंको अक्षयोदक दान करना चाहिये एवं किया।

गरुडने कहा-हे देवबेष्ठ! यदि पहले कहे गये आशीर्वाद दें। इसके बाद अष्टाक्षर-मन्त्रसे भगवान विष्णुका अधिकारियोंमेंसे एक भी न हो तो उस समय मनुष्यको क्या करना चाहिये?

न तो किसीके अधिकारका निश्चय ही हो रहा हो तो वैसी

श्रीकष्णने कहा-जब अधिकारी व्यक्ति न हो और

रिथतिमें मनुष्यको स्वयं अपने जीवनकालमें हो जीवित-श्राद्ध कर लेना चाहिये। उपवासपूर्वक स्नान करके भगवान् कृष्णके प्रति आसक्त हृदय होकर मनुष्य एकाग्र मनसे उस कर्ता, भोका, सर्वेश्वर विष्णुकी पूजा करे। उसके बाद वह अपने पितृगणोंके लिये तिल एवं दक्षिणके सहित तीन जैलधेन 'ॐ पितृध्य: स्वधा' कहकर निवेदित करे और धेनुदान करते समय 'ॐ अन्तये कथ्यवाहनाय स्वधा नमः ' तथा ' ३६ सोमाच ला चितुमते स्वधा नमः ' ऐसा स्मरण करता हुआ वह दक्षिणाभिमुख होकर दक्षिणासहित तीसरी जलधेन देते समय विशेषरूपसे 'बमाबाज्ञिरसे स्वधा नमः' यह स्मरण करता रहे। भगवान विष्णुके यजन एवं जलधेनुदानके मध्य ही बाह्यणोंका आवाहन करके उन्हें भोजन कराना चाहिये। वह पहली जलधेन उत्ता दिशामें तथा दसरी जलधेन दक्षिण दिशामें रखे और उन दोनों धेनुऑके मध्यमें तीसरी धेन रखकर आवाहन आदि श्राद्धसम्बन्धी कार्य करे। इस आवाहनादि क्रियाके पूर्वमें सर्वप्रथम आवाहनपूर्वक विश्वेदेवोंके प्रतिनिधिभृत ब्राह्मणोंकी भलीभौति पूजा कर वह यह कहे-

> वसभ्यस्त्वामहं विद्र हद्रेश्यस्त्वामहं ततः। सर्वेभ्यस्तामहं विष्र भोजयामीति तान्वदेत्॥

(4150) तदनत्तर आबाहनादिक जो शेष कार्य हैं, उन्हें पितृ सम्बन्धित हो, 'यह तिलोदक तुम्हारे लिये होये'। ऐसा

ब्राह्मन 'ॐ स्वस्ति'इस प्रतिवचनसे श्राद्धकृत्यको सम्पूर्णताका

रमाण काते हुए उनका विसर्जन करे। इसके पश्चात् स्वस्थिचत होकर कुलदेवी, ईशानी, शिव तथा भगवान नारायणका स्मरण करे। तदनन्तर चतुर्दशी तिथिको सुगमतासे उपलब्ध होनेवाली श्रेष्ठ नदीके तटपर जाय। यहाँ वस्त्र तथा लौहखण्डोंका दान करे एवं 'ॐ जितं ते' इस मन्त्रका जप करता हुआ स्वयं दक्षिणाधिमुख होकर अग्निको प्रव्यक्तित करे। वदनन्तर वह प्रचास कुशोसे ब्राह्मीप्रतिकृति (पुत्तल) बना करके उसका दाह करे। इसके बाद रमज्ञानमें बिहित होम करके अन्तमें पूर्णाहृतिकी क्रिया सम्पन करे। तत्पक्षात् निर्राप्त भूमि, यम तथा रुद्रदेवका स्मरण करे। हवन करनेके बाद प्रधान स्थानपर उक्त देवांका आवाहन करना चाहिये। उसके बाद वह अग्निमें मुँगमिश्रित चरु पकाये। तदननार तिल-तण्डुल-मिबित इसरी चरु पकाये।

'ॐ पृथिको नमस्तुभ्यं०'—इस मन्त्रसे प्रथम चह निवंदित करे। 'ॐ यमाय नम्हा॰' इस मन्त्रसे यमको द्वितीय चरु निवेदित करे। 'ॐ नमक्षाध रुद्राच प्रमशानपतये नमः'-इस मन्त्रसे श्यालनपति रुद्रको निवेदित करे। उसके बाद ब्राद्धकर्ता सात नामवाले यमराजके लिये निम्न मन्त्रींसे सात जलाञ्चलियाँ छोड़े- 'ॐ यमाय स्वधा तस्मी नपः', 'ॐ धर्मग्रजाय स्वधा तस्मै नमः', 'ॐ मृत्यवे स्वधा तस्मै नमः', ' ॐ अन्तकाय स्वधा तस्मै नमः', ' ॐ वैवस्वताय स्वधा तस्यै नमः', 'ॐ कालाय स्वधा तस्यै नमः' और 'ॐ सर्वपाणहराय स्वधा तस्यै नमः।'

इसके बाद बाद्धकर्ता तुम सब अमुक-अमुक गोत्रसे शेष कार्योंको तरह सम्पादित करे। उसके बाद वह वसुके कहते हुए अर्घ्य-पुण्यसे युक्त दस पिण्ड-दान दे। उसके

टानके लिये कविम धेनका विधान है। इसे गोदानप्रसागों काडपुराण आदिमें अलयेन्द्रानविधिके अलगेन देखना चाहिये। нопочово १४-

बाद उन्हें भूप, दीप, बिल, गन्ध तथा अक्षय जल प्रदान चाहे अपने लिये हो या इसरेके लिये यही नियम है। करे। उक्त दस पिण्डोंका दान देनेके पश्चात् भगवान् जाकि, आरोग्य, धन और आयु-ये चारों अस्थिर होते विष्णुके सुन्दर सुभग मुखका ध्यान करना चाहिये।

मासिक श्राद्ध और संपिण्डीकरण करना चाहिये। श्राद्ध दिया है। (अध्याय ८)

हैं, अत: ऐसा जानकर जोवित-श्राद्ध करना चाहिये। इस कृत्यको करनेके बाद आशौचके अन्तमें प्रतिमास मैंने इस जीवत-ब्राद्धके विषयमें तुम्हें सब कुछ बता

राजा बभुवाहनकी कथा, राजाद्वारा प्रेतके निमित्त की गयी और्घ्वदैहिकक्रिया एवं वृषोत्सर्गसे प्रेतका उद्धार

जब मनुष्यको औध्वंदैहिक क्रियाको करनेवाला कोई न हो। हिंसक जीव-जन्तु उसमें भरे हुए थे। अपने सेवक एवं तो उस आद्य क्रियाको राजा सम्पन्न कर सकता है। सैनिकोंके साथ नाना प्रकारके मुगोंको मारते हुए उस औध्वंदेहिक आदि क्रिया सम्पन को धी?

श्रीकष्णने कहा-हे सूपर्ण। तुम सुनी। जिस राजाने इस क्रियाको किया था, मैं उसके विषयमें कहुँगा। कतपुगर्मे लंग देशमें बभूवाहन नामका एक राजा वा। है पक्षीन्द्र! वह समुद्रसे चारों और पिरो हुई अपनी पृथ्वीकी धर्मानुसार भलीभाँति रक्षा करता था। उसने अपने जीवनकालमें इस सम्पर्ण पृथ्वीका विधिवत भीग किया। उसके शासनकालमें कोई भी पापी नहीं था। प्रजाओंको न तो चारका भय था और न तो दश्जनोंके द्वारा किये गये उपद्ववींका आतंक था। उसके राज्यकालमें किसी भी प्रकारके रांगका भी भय नहीं था। सभी अपने-अपने धर्ममें अनुरक्त थे। वह राजा तेजमें सूर्यकी भौति, अधुन्धता (शान्ति)-में पर्वतके समान और सहिष्णुतामें पृथ्वीके सदश था। किसी समय उस राजाने एक सी घुड़सवार सैनिकोंको साथ लेकर मुगयाके लिये एक घने चनकी और प्रस्थान किया। उस समय योद्धाओंके सिंहनाद, शङ्क तथा दृन्द्रभियोंको ध्वनिसे मुखकी अनुभृति करता हुआ वह सो गया। मिलकर निकले किलकिलाइटभरे शब्दोंसे वातावरण गुँज रहा था। वहाँ स्थान-स्थानपर चारों ओर उस राजाकी स्तुति प्रेतवाहन नामक एक प्रेत आ पहुँचा। उसके शरीरमें मात्र हो रही थी। चलते-चलते उस राजाको नन्दनयनके समान अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष थीं। वह खाने-पीनेको एक वन दिखायो पडा। वह वन बिरुव, मंदार, खदिर, कैथ खोजता हुआ धैर्य नहीं धारण कर पा रहा था। आहट पाकर तथा बाँसके वक्षोंसे परिव्याप्त था। ऊँचे, नीचे पर्वतोंसे चारों राजाको नोंद खल गयी। पहले कभी न देखे गये उस और घिरा हुआ था। जलरहित तथा निजंन उस बनका दृश्यको देखकर राजाने शीच्र ही अपने धनुषपर बाण चढा

गरुडने कहा -हे निष्माप देव! आपने यह कहा कि विस्तार कई योजनका था। मृग, सिंह तथा अन्य महाभयंकर प्राचीनकालमें क्या किसी राजाने किसी ऐसे व्यक्तिकी नरहाईलने खेल-ही-खेलमें उस वनकी विश्वव्य कर दिया।

इसके बाद राजाने किसी एक मृगके कुश्चिभागमें बाजका प्रहार किया। आहत होकर भी वह मृग बढ़ी तेओसे दौड पडा। एजाने भी उस मुगका पीछा किया। अकेला अत्यधिक दरों तय करनेके कारण धका हुआ भृष्ठ-प्याससे पीडित वह राजा उस वनको पार कर एक दूसरे भनधोर वनमें का पहुँचा। अत्यना प्याससे क्षूक्य होकर वह उस वनमें इधर-उधर जल खोजने लगा। हंस और सारस पक्षिपोंके राष्ट्रमे सुचित किये गये पुरचक्र नामक सरोवरपर जा कर उसने अश्वक साथ वहाँ स्नान किया। तदनन्तर उस सरोवरके लाल एवं नीलें कमलोंके परागसे सुगन्धित शौठल जलको पोकर वह जलसे बाहर आया। मार्गमें अत्यधिक नलनेके कारण चके हुए राजाने उसी सरोवरके किनारे एक छायादार वटवृक्षको देखकर उसमें अपने पोडेको बाँध दिया। तत्पश्चात् आस्तरणको बिछाकर तथा ढालको तकिया लगाकर क्षणभरमें ही शीतल मन्द वायुके

ग्रजाके सोते ही वहाँ सौ प्रेतोंके साथ घूमता हुआ

सदश खडा रहा। उसको अवस्थित देखकर राजाके मनमें कृट जाते हैं, शरीर काष्ट्रको सौंप दिया जाता है। जीवके कौतारत हो उठा। उन्होंने प्रेतसे पूछा कि तुम कौन हो? यहाँ कहाँसे आये हो ?तुम्हें यह विकृत रारीर कैसे प्रात हुआ है?

प्रेतने कहा-हे महाबाही! आपके इस संयोगसे मैंने अपना प्रेतभाव त्याग दिया है। मुझे अब परमगति फ्राप्त हो गयी है। मेरे समान धन्य अन्य कोई नहीं है।

बप्रवाहनने कहा-यह वन सर्वत्र अत्यन्त भवानक है। इसमें मैं यह क्या देख रहा हूँ? हे पिकाच। यहाँ यह वन भी औधीके ज़ोंकोंसे ग्रस्त है। यहाँ पतंग, मशक, मधुमक्खी, कबन्ध, शिरी, मतस्य, कच्छप, गिरगिट, विच्छु, भ्रमर, सर्प, अधोमुखी हवाएँ चलती हैं, विजलीकी आग जलती है, वायुके झॉकोंसे इथर-उथर विनके हिल-इल रहे हैं। यहाँ नाना प्रकारके जीव-जन्तु, हाथी तथा टिड्रियोंके बहुत प्रकारके शब्द सुनायी पढ रहे हैं, किंतु कहींपर भी कोई दिखायी नहीं दे रहा है। यह सब विकृत स्थिति देखकर मेरा इदय काँप रहा है।

प्रेतने कहा-राजन्। जिन प्राणियोंका अग्नि-संस्कार ब्राद्ध, तर्पण, पट्रिपण्ड, दशगात्र, सपिण्डीकरण नहीं हुआ है, जो विश्वासघाती, मद्यपी और स्वर्णचीर रहे हैं, जो लोग अपमृत्यसे मरे हैं, जो ईच्यां करनेवाले हैं, जो अपने पापाँका प्रायक्षित नहीं करते हैं, जो गुरु आदिको पत्नीके साथ गमन करते हैं, वे सभी प्राणी अपने कर्मीके कारण भटकते हुए शुभ कर्मको भी सम्पन्न कर सकता है और वह सभी प्रेतत्व स्थिर हो गया है। द:खाँसे विमक्त हो जाता है। इस कर्मसे सम्मानित होकर

लिया। अपने सामने राजाको देखकर वह प्रेत भी स्वाणुके भोग करता है। धन घरमें छुट जाता है, भाई-बन्धु रमशानमें साथ पाप-पुण्य ही जाता है-

गुरेष्वर्था निवर्तन्ते प्रमशाने चैव बान्धवाः॥ शरीरं काष्ट्रमादले पापं पुण्यं सह वजेत्। (4135-30)

अतः राजन्। अपने कल्याणकी इच्छासे आप इस नश्चर हरीरसे अविलम्ब प्रेतोंका और्ध्वदैहिक कर्म सम्पन करें। राजाने कहा-हे प्रेतराज! कुशकाय भयंकर नेत्रवाले तुम प्रेतके समान दिखायी देते हो। तुम प्रसन्न होकर अपना जैसा बनान्त हो, वैसा सब कुछ मुझसे कहो। इस प्रकार पुढे जानेपर प्रेतने अपना सारा बुचान्त राजासे कहा।

ग्रेतने कहा-ते नृपश्चेष्ठ। में प्रारम्भसे लेकर आजतकका सम्पूर्ण युत्तान्त आपसे कह रहा है। हे राजन्। सभी सम्पदाओंको सुखपूर्वक वहन करनेवाला, विभिन्न जनपदीमें उत्पन नाना प्रकारके रहाँसे परिष्यास, अनेकानेक पुष्पाँसे सहोभित बनप्रान्तवाला तथा विभिन्न पुण्यजनीसे आवृत विदिशा नामक एक नगर था। सदैव देवाराधनमें अनुरक्त रहता हुआ मैं उसी नगरमें निवास करता था। मैं वैरयजातिमें उत्पन्न हुआ था, उस जन्ममें सुदेव मेरा नाम था। मेरे द्वारा दिये गर्थ 'हल्य'से देवता और 'कल्य'से पितृगण संतुष्ट रहते थे। मैंने नाना प्रकारके दान देकर बाह्मजोंको संतुष्ठ किया था। मेरा आहार-विहार सुनिश्चित प्रेतरूपमें यहाँपर निवास करते हैं। इनको खान-पान बड़ा था। दोन-होन, अनाथ और विशिष्ट सत्पात्रोंको मैंने अनेक दुर्लभ है। ये अत्यधिक पीडित रहते हैं। हे राजन्। कृपया प्रकारसे सहायता पहुँचायो थी; किंतु देवयोगसे यह सब आप इनका औष्ट्रंदैहिक संस्कार करें। जिनके माता-पिता, निष्फल हो गया। मेरे न तो कोई संतान हुई, न कोई संगे पुत्र और भाई-बन्धु नहीं हैं, उनका औध्वंदैहिक संस्कार बन्धु-बान्धव हैं और न वैसा कोई मित्र ही है, जो मेरा राजाको स्वयं करना चाहिये। राजा इससे अपने पारलीकिक औध्वंदैहिक कर्म कर सके। हे श्रेष्ठ राजन्। उसीसे मेरा यह

हे भूपते! एकादशाह, त्रिपाक्षिक, प्राण्मासिक, वार्षिक राजा अपनी दुर्गति दूर कर सकता है। इस संसारमें कौन तथा जो मासिक ब्राद्ध होते हैं, इन सभी ब्राद्धोंकी कुल किसका भाई है, कौन किसका पुत्र है और कौन किसकी संख्या सोलह है। जिस मृतकके लिये इन ब्राद्धोंका अनुप्रान स्त्री है, सभी स्वार्थके वशीभूत हैं। उनमें मनुष्यको विश्वास नहीं किया जाता है, उसका प्रेतत्व अन्य सैकड़ों श्राद नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह अपने कमौंका स्वयं ही करनेपर भी स्थिर हो रहता है। हे महाराज! ऐसा जानकर

राजा सभी वर्णोंका बन्ध कहा गया है। इसलिये आप मेरा निस्तार करें। हे राजेन्द्र। मैं आपको यह मणिरत्न दे रहा है। जिस प्रकार मेरा कल्याण हो, मुझपर कृपा करके आप वैसा ही कार्य करें। मेरे निष्टर संपिण्डों और सगोजियोंने मेरे लिये वयोत्सर्ग नहीं किया है, उसीसे मैं इस प्रेतवोनिको प्राप्त हुआ हैं। भूख-प्याससे आक्रान्त में खाने-पीनेके लिये कुछ नहीं पा रहा है। उसीसे मेरे शरीरमें यह विकृति आ गयी है। शरीर कुश हो गया है। इसमें मांसतक नहीं रह गया है। भूख-प्याससे उत्पन्न इस महान् द:खको मैं बार-बार भीग रहा हैं। क्षोल्सर्ग न करनेके कारण यह कष्टकारी प्रेतत्व मुझे प्राप्त हुआ है। हे राजन्। हे दयासिन्धो ! इसीलिये में प्रेतत्वनिवृत्तिके निमित्त आपसे प्रार्थना कर रहा है। आप मेरा कल्याण करें।

राजाने कहा-हे प्रेत! मेरे कुलका कोई प्रेत हुआ है, यह मनुष्य कैसे जान सकता है। प्राणी इस प्रेतत्वसे कैसे मुक्त हो सकता है? यह सब तुम मुझे बताओ।

प्रेतने कहा-हे राजन्। लिङ्ग (चिडविशेष) और

पीडाके कारण प्रेतपीनिका अनुमान लगाना चाहिये। इस पुथ्वीपर प्रेतद्वारा उत्पन्न की गयी जो पीढाएँ हैं, उनका मैं वर्णन कर रहा हैं। जब रिवयोंका ऋतुकाल निष्कल हो जाता है, वंशवृद्धि नहीं होती है। अल्पायुर्वे हो किसी परिजनकी मृत्यु हो जाती है तो उसे प्रेतोत्पन पीडा माननी बीच अपनी प्रतिष्ठा विनष्ट हो नाती है, एकाएक यर जब अपने घरमें नित्य कलह हो, मिध्यापवाद हो, भी चली जाती है, अपनी स्त्री अनुकृत नहीं रह जाती है चाहते हो? (अध्याय ९)

आप मुझे इस प्रेतत्वसे मुक्ति प्रदान करायें। इस संसारमें तो उस पीढ़ाको भी प्रेतसमुद्धत माननी चाहिये। हे राजन्। इसी प्रकारको अन्य पीडाओंसे आप प्रेतत्वका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

हे राजेन्द्र! जब मनुष्य वृषोत्सर्ग करता है, तब जाकर वह प्रेतत्वमें मुक्त होता है। आपका इस कार्यमें अधिकार है, इसलिये कृपया आप मेरे उद्देश्यसे वृषोत्सर्ग करें। आप इस मणिरत्नको ग्रहण करें। इसोके धनसे मेरे लिये क्योत्सर्ग करें। यह कार्य कार्तिककी पूर्णिमा अधवा आश्विनमासके मध्यकालमें करना चाहिये। हे राजन्। मेरा यह संस्कार रेवती नक्षत्रमें युक्त विधिमें भी हो सकता है। श्रेष्ठ ब्राह्मणींको निमन्त्रित करके विधिवत् अग्निस्थापन तथा बेद-मन्त्रोंके द्वारा यथाविधान होम करें। बहुत-से ब्राह्मणोंको बुलाकर इस रक्से प्राप्त हुए धनके ह्यारा उन्हें भोजन करायें। ऐसा करनेसे मुझे मुक्ति प्राप्त हो सकेगी।

श्रीकृष्णने कहा —हे खगेश! इसके बाद राजाने उस प्रेतसे 'ऐसा ही होगा', यह कहकर मणि ले ली। जो व्यक्ति धन ले लेता है, वह भी उस दाताकी क्रिया करनेका अधिकारी हो जाता है। प्रतिविधयक इस प्रकारकी वार्ता उन दोनोंके मध्य जिस समय चल रही थी, उसी समय देखते-ही-देखते वहाँ पण्टा और भेरियोंकी ध्वति करती हुई राजाकी चतुरंगिणी सेना आ गयी। उस सेनाके आते ही प्रेत अदृश्य हो गया। उसके बाद उस वनसे निकलकर राजा अपने नगर चला आया। तदनन्तर उसने कार्तिक-चाहिये। अकस्मात् जब जीविका छिन जातो है, लोगोंके मासको पूर्णिमा तिथि आनेपर उस प्राप्त हुई मणिके धनसे प्रेतत्वनिवृत्तिके लिये विधिवत् वृषीत्सर्ग किया। हे गरुड! जलकर नष्ट हो जाता है तो उसे प्रेतजन्य पीड़ा ही पानें। उस संस्कारके पूर्ण होते ही वह प्रेत भी तत्काल सुवर्ण देहसे सुशोधित हो उठा और उसने राजाको प्रणाम किया। राजयक्ष्मा आदि रोग उत्पन्न हो जायें तो उसे प्रेतोद्धत चौड़ा उत्पद्धात उस राजाकी प्रशंसा करते हुए प्रेतने कहा-हे समझे। जब अपने प्राचीन अनिन्दित व्यापार-मार्गमें प्रयक्ष देव। यह सब आपको महिमा है। इस प्रकार राजाके द्वारा करनेपर भी मनुष्यको सफलता नहीं मिलती है, उसमें किये गये उपकारके प्रति कृतज्ञता जापित करते हुए वह लाभ नहीं होता है, अपितु हानि ही उठानी पहती है तो स्वर्गलोकको चला गया। जिस प्रकार राजाके द्वारा किये उस पीड़ाको भी प्रेतजन्य ही मानें। जब अच्छी वर्षा होनेपर गये संस्कारसे वह प्रेत अपने प्रेतत्वसे मुक्त हुआ था, वह भी कृषि बिनष्ट हो जाती है, व्यापारमें प्राजीकी जीविक। सब बुत्तान्त मैंने तुम्हें सुना दिया। अब तुम और क्या सुनना

श्राद्धान्नका पितरोंके पास पहुँचना, दृष्टान्तरूपमें देवी सीताद्वारा भोजन करते हुए ब्राह्मणके शरीरमें महाराज दशरथ आदिका दर्शन करना, मृत्युके अनन्तर दूसरे शरीरकी प्राप्ति, सत्कर्मकी महिमा तथा पिण्डदानसे शरीरका निर्माण

गरुडने कहा-हे प्रथी! सपिण्डीकरण और वार्षिक श्राद्ध करनेके पश्चात् मृत व्यक्ति स्वकर्मानुसार देवत्व, मनुष्यत्व अथवा पक्षित्वको प्राप्त करता है। फिर भिन-भिन आहारवाले उन लोगोंके लिये किये गये बाद ब्राह्मण-भोजन और होमसे उन्हें कैसे संतृति होती है? अपने शुभाजुभ कर्मोंके द्वारा प्राप्त हुई प्रेतयोनिमें स्थित वह प्राणी अपने सम्बन्धियोंसे प्राप्त उस भोज्य पदार्थका उपभोग कैसे करता है? श्राद्धको आवश्यकता तो मैंने अमाबास्यादि तिथियोंमें सुनी है। [यह बतलानेकी कृपा करें।]

श्रीभगवान्ने कहा-हे पश्चिराज। ब्राद्ध प्रेतजनाँको जिस प्रकारसे तृप्ति प्रदान करता है, उसे सुनो। मनुष्य अपने कर्मानुसार यदि देवता हो जाता है वो ब्राद्धान अमृत होकर उसे प्राप्त होता है तथा वही अन्न गन्धर्व-योनिमें भोगरूपसे और पशुयोनिमें तुणरूपमें प्राप्त होता है। यही ऋदान नागयोतिमें वायरूपसे, पश्चीकी योतिमें फलरूपसे और राक्षसयोगिमें आमिष बन जाता है। वडी बाद्धान दानव-योनिके लिये मांस, प्रेतके लिये रक, मनुष्यके लिये अन्-पानादि तथा बाल्यावस्थामें भोगरस हो जाता है'।

गरुडने कहा-हे स्वामिन्। इस लोकमें मनुष्योंके द्वारा दिये गये हव्य-कव्य पदार्थ पितृलोकमें कैसे जाते हैं 7 उनको प्राप्त करानेवाला कौन है? यदि ब्राद्ध मरे हुए प्राणियोंके लिये भी तुप्ति प्रदान करनेवाला है तो बुझे हुए दौपकका तेल भी उसकी लौको बढ़ा सकता है। मरे हुए पुरुष अपने कर्मानुसार गति प्राप्त करते हैं तो अपने पुत्रके द्वारा दिये गये पुण्य कमीक फल वे कैसे प्राप्त कर सकेंगे?

श्रीभगवानुने कहा-हे तार्थ। प्रत्यक्षको अपेक्षा श्रुतिका प्रमाण बलवान होता है। श्रुतिसे प्राप्त हुए ज्ञानका स्वरूप अमृतादिके समान होता है। ब्राह्ममें उच्चरित करते हैं। वसु, स्द्र, देवता, पितर तथा श्राह्मदेवता श्राह्मों

पितरोंके नाम तथा गोत्र हव्य-कव्यके प्रापक हैं। भक्तिपूर्वक पढ़े गये मन्त्र श्राद्धके प्रापक होते हैं। हे सुपर्ण! ये अग्रेतन मन्त्र कैसे उस ब्राद्धको प्राप्त करा सकते हैं, इस विषयमें तुम्हें संहाय नहीं रखना चाहिये। अस्त, इसे समझनेके लिये में तुम्हें दूसरा प्रापक बता रहा हूँ। अग्निब्बाल आदि पितृगण उन पितरोंके राजपदपर नियुक्त है। समय आनेपर विधिवत् प्रतिपादित अन्न, अभोष्ट पितृपात्रमें पहुँच जाता है। जहाँ वह जोष रहता है, वहीं ये अग्निप्वात आदि पितुदेव ही अन्त लेकर जाते हैं। जाम-गोत्र और मन्त्र ही उस दान दिये गये अन्तको से जाते हैं। शहश: योनियोंमें जो जीव जिस योनिमें स्थित रहता है उस योनिमें उसे नाम-गोत्रके उच्चारणसे तमि प्राप्त होती है। संस्कार करनेवाले व्यक्तिके द्वारा कुशान्छादित पृथ्वीपर दाहिने कन्थेपर यहोपबीत करके दिये गये तीन पिण्ड उने पितरोंको संतृष्टि प्रदान करते हैं।

पितर जिस योनिमें, जिस आहारवाले होते हैं, उन्हें बादके द्वारा वहाँ उसी प्रकारका आहार प्राप्त होता है गायोंका झंड तितर-बितर हो जानेपर भी बछड़ा अपनी माताको कैसे पहचान लेता है, वैसे ही वह जीव जहाँ जिस योनिमे रहता है, वहाँ पितरोंके निमित्त भ्राद्याणको कराया गय बाद्धान स्वयं उसके पास पहुँच जाता है-

यदाहारा भवन्येते पितरो यत्र योनिष्। नाम् नाम् नदाहारः श्राद्धान्नेनोपतिष्ठति॥ यवा गोषु प्रनष्टासु कत्तो विन्तति मातरम्। तथानं नयते विद्रो जन्तुर्यत्रावतिष्ठते॥

(20124-30)

पितृगण सदैव विश्वेदेवोंके साथ श्राद्धान ग्रहण करते हैं ये ही विक्लेटेव ब्राद्धका अन्त ग्रहण कर पितरोंकी संत्र

r-देवो यदपि जातोऽयं मनुष्यः कर्मधोगतः॥

तस्यामममूर्त भूत्वा देवल्बेऽप्यन्याति यः गान्धार्वे भोगरूपेण पसूर्व च तुर्थ भवेत्॥ बार्ड हि वायुरूपेण नागत्वेऽप्यनुगच्चति। कलं भवति पश्चित्रं ग्रथमेषु तथामिषम्॥ दानवत्वे तथा मांसं प्रेतत्वे संधरं तथा। मनुष्यत्वेऽत्रपानादि बान्चे धोगरसो भवेत्॥(१०।४-७)

संतृत होकर श्राद्ध करनेवालोंके पितरोंको प्रसन्न करते हैं। जैसे गर्पिणी स्त्री दोहद (गर्भावस्थामें विशेष भोजनको अभिलाषा)-के द्वारा स्वयंको और अपने गर्भस्य जोवको भी आहार पहुँचाकर प्रसन्न करती है, बैसे ही देवता श्राद्धके द्वारा स्थयं संतृष्ट होते हैं और पितरोंको भी संतुष्ट करते हैं— आत्मानं गर्विणी गर्भमणि प्रीणाति वै क्या।

आत्मानं गुर्विणी गर्भमणि प्रीणाति वै यदा। दोहदेन तदा देवाः आद्धैः स्वांश्च पितृन् नृणाम्॥

'श्राद्धका समय आ गया है'— ऐसा जानकर पितरोंको प्रसन्ता होती है। वे परस्पर ऐसा विचार करके उस श्राद्धमें मनके समान तीव्रगतिसे आ पहुँचते हैं। अन्तरिक्षगामी वे पितृगण उस श्राद्धमें बाह्यणोंके साथ ही भोजन करते हैं। वे वायुक्षपमें वहाँ आते हैं और भोजन करके परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं। हे पश्चिन्। बाद्धके पूर्व जिन बाह्यणोंको निमन्त्रित किया जाता है, पितृगण उन्होंके हारीरमें प्रविष्ट

> निमन्त्रितास्तु ये विद्राः आद्यपूर्वदिने खग। प्रविश्य पितरस्तेषु भुक्ता यान्ति स्वपालयम्॥

होकर वहाँ भोजन करते हैं और उसके बाद वे पुन: वहाँसे

अपने लोकको चले जाते है-

(te | 25)

(4=135)

यदि ब्राह्मकर्ता ब्राह्ममें एक हो ब्राह्मणको निमन्तित करता है तो उस ब्राह्मणके उदरभागमें पिता, वामपार्थमें पितामह, दक्षिणपार्थमें प्रपितामह और पृष्ठभागमें पिण्डभक्षक पितर रहता है। ब्राह्मकालमें यमराज प्रेत तथा पितरोंको यमलोकसे मृत्युलोकके लिये मुक्त कर देते हैं। हे कालयप। नरक भोगनेवाले भृख-प्याससे पीड़ित पितृजन अपने पूर्वजन्मके किये गये पापका पश्चाताप करते हुए अपने पुत्र-पीत्रोंसे मधुमिश्रित पायसकी अभिलाया करते हैं। अतः विधिपूर्वक पायसके द्वारा उन पितृगणोंको संतृष्ठ करना चाहिये।

गरुडने कहा—हे स्वामिन्! उस लोकसे आकर इस पृथ्वीपर श्राद्धमें भोजन करते हुए पितरोंको किसीने देखा भी है?

श्रीभगवान्ने कहा—हे गरुत्मन्! सुनो—देवी सीताका उदाहरण है। जिस प्रकार सीताने पुष्करतीर्थमें अपने समुर आदि तीन पितरोंको ब्राइमें निमन्त्रित ब्राह्मणके करोरमें प्रविष्ट हुआ देखा था, उसको मैं कह रहा हूँ। हे गरुड! पिताको आजा प्राप्त करके जब श्रीराम वन चले गये तो उसके बाद सीताके साथ श्रीरामने पुष्कर-तीर्थको यात्रा की। तीर्थमें पहुँचकर उन्होंने श्राद्ध करना प्रारम्भ किया। जानकीने एक पके हुए फलको सिद्ध करके रामके सामने उपस्थित किया। श्राद्धकर्ममें दीक्षित प्रियतम रामको आज्ञासे स्वयं दीक्षित होकर सीताने उस धर्मका सम्यक् पालन किया। उस समय सूर्य आकाशमण्डलके मध्य पहुँच गये और कुतुपमुहुत (दिनका आठवाँ मुहुत) आ गया था। बाँरामने जिन ऋषियोंको निमन्त्रित किया था, वे सभी वहाँपर आ गये थे। आये हुए उन ऋषियोंको देखकर विदेहराजको पुत्री जानकी रामको आज्ञासे अल् परोसनेक लिये वहाँ आयीं; किंतु श्राह्मणोंके बीच जाकर वे तुरंग वहाँसे दूर चली गयों और लताओंके मध्य छिपकर बैठ गयाँ। सीता एकान्तमें छिप गयी हैं, इस बातको जानकर



त्रोरामने यह विचार किया कि ब्राह्मणोंको बिना भोजन कराये साध्यो सीता लखाके कारण कहाँ चली गयी होंगी, पहले में इन ब्राह्मणोंको भोजन करा लूँ फिर उनका अन्वेषण करूँगा। ऐसा विचारकर श्रीरामने स्थयं उन ब्राह्मणोंको भोजन कराया। भोजनके बाद उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके चले जानेपर श्रीरामने अपनी प्रियतमा सीतासे कहा कि ब्राह्मणोंको देखकर तुम लताओंकी ओटमें क्यों छिप गयी? हे तन्बङ्गी! तुम इसका समस्त कारण अविलम्ब मुझे बताओ। श्रीरामके ऐसा कहनेपर सीता मुँहको नीचे कर सामने खड़ी हो गयाँ और अपने नेत्रोंसे आँस् बहाती हुई रामसे बोली—

सीताजीने कहा-हे नाथ! मैंने यहाँ जिस प्रकारका आश्चर्य देखा उसे आप सुनें। हे रायव ! इस ब्राद्धमें उपस्थित ब्राह्मणके अग्रभागमें मैंने आपके पिताका दर्शन किया, जो सभी आभूषणोंसे सुशोभित थे। उसी प्रकारके अन्य दो महापुरुष भी उस समय मुझे दिखायी पडे । आपके पिताको देखकर मैं बिना बताये एकान्तमें चलो आयी थी। हे प्रभी! वल्कल और मृगचर्म धारण किये हुए मैं कैसे राजा (दशरघ)-के सम्मुख जा सकती थी। हे सञ्जूपक्षके वीरोंका विनाश करनेवाले प्राणनाव। मैं आपसे यह सत्य ही कह रही हैं, अपने हाथसे राजाको में वह भोजन कैसे दे सकती थी, जिसके दासोंके भी दास कभी भी वैसा भोजन नहीं करते रहे ? तुणपात्रमें उस अलको रखकर में कैसे उन्हें ले जाकर देती? मैं तो वही हैं जो पहले सभी प्रकारके आभूषणोंसे सुशीभित रहती थी और राजा मुझे वैसी स्थितिमें देख चुके थे। आज वही मैं कैसे राजाके सामने जा पाती? हे रघूनन्दन! उसीसे मनमें आर्थी हुई लजाके कारण मैं वापस हो गयी।

श्रीभगवानने कहा-है गरुड! अपनी पत्रीके ऐसे वचनोंको सनकर बीरामका मन विस्मित हो उठा। यह तो आक्षर्य है; ऐसा कहकर वे अपने स्वानपर चले आये। सीताने जिस प्रकार अपने पितरोंका दर्शन किया था, उसी प्रकार तुम्हें मैंने सुना दिया। अब मैं संक्षेपमें आदका माहारम्य बता रहा है, सनी-

पितृगण अमावास्याके दिन वायुरूपमें परके दरवाजेपर उपस्थित रहते हैं और अपने स्वजनोंसे बाद्धको अभिलापा करते हैं। जबतक सुर्यास्त नहीं हो जाता, तबतक वे वहीं भूख-प्याससे व्याकल होकर खड़े रहते हैं। सूर्यास्त हो जानेके पश्चात वे निराश होकर द:स्त्रित मनसे अपने वंशजोंकी निन्दा करते हैं और लम्बी-लम्बी खाँस खाँचते हुए अपने-अपने लोकोंको चले जाते हैं। अत: प्रयतपूर्वक अमावास्याके दिन श्राद्ध अवस्य करना चाहिये। यदि पितुजनोंके पत्र तथा बन्ध-बान्धव उनका ब्राह्म काते हैं और गया-तीर्थमें जाकर इस कार्यमें प्रवृत्त होते हैं तो वे उन्हों पितरोंके साथ ब्रह्मलोकमें निवास करनेका अधिकार प्राप्त करते हैं। उन्हें भूख-प्यास कभी नहीं सगती। इसीलिये विद्वानुको प्रयत्नपूर्वक यथाविधि शाक-पातसे भी अपने पितरोंके लिये श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। समयानुसार

बाद करनेसे कुलमें कोई दु:खी नहीं रहता। पितरोंकी पूज करके मनुष्य आयु, पुत्र, यश, स्वर्ग, कीर्ति, पुष्टि, बल, श्री, पत्र, सुख और धन-धान्य प्राप्त करता है। देवकार्यसे भी पित्कार्यका विशेष महत्त्व है। देवताओं से पहले पितरों को प्रसन करना अधिक कल्याणकारी है-

कवीत समये आदां कले कश्चिन सीदति। आयः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्ति पृष्टि बलं श्रियम्॥ पशुन् सीख्यं धर्न धान्यं प्राप्नुयात् पितृपुजनात्। देवकार्यादिप सदा पितृकार्य विशिष्यते॥ देवताध्यः पितृणां हि पूर्वमाण्यायनं शुधम्।

(80140-49)

जो लोग अपने पितृगण, देवगण, ब्राह्मण तथा अग्निकी पूजा करते हैं, वे सभी प्राणियोंकी अन्तरात्मामें समाविष्ट मेरी हो पूजा करते हैं। शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक श्राद्ध करके मनुष्य ब्रह्मपर्यन्त समस्त चराचर जगतुको प्रसन्न कर लेता है।

हे आकाशचारित् गरुड। मनुष्योंके द्वारा श्राद्धमें पृथ्वीपर जो अन्न बिखेरा जाता है, उससे जो पितर पिशाय-योनिमें उत्पन्न हुए हैं, वे संतुष्त होते हैं। आद्धमें स्नान करनेसे भीगे हुए वस्बोद्धारा जो जल पृथ्वीपर गिरता है, उससे वृक्षयोनिको प्राप्त हुए पितरोंकी संतुष्टि होती है। उस समय जो गन्ध तथा जल भूमिपर गिरता है, उससे देवत्व-योगिको प्राप्त पितरोंको सुख प्राप्त होता है। जो पितर अपने कुलसे बहिष्कत हैं, क्रियांक योग्य नहीं हैं, संस्कारहीन और विपन हैं, वे सभी ब्राद्धमें विकिशन और गार्जनके जलका भक्षण करते हैं। ब्राइमें भोजन करके ब्राह्मणोंके द्वारा आचमन एवं जलपान करनेके लिये जो जल ग्रहण किया जाता है, उस जलसे उन पितरोंको संतुप्ति प्राप्त होती है। जिन्हें पिशाच, कृषि और कोटकी योनि मिली है तथा जिन पितरोंको मनुष्य-योनि प्राप्त हुई है, वे सभी पृथ्वीपर श्राद्धमें दिये गये पिण्डोंमें प्रयुक्त अन्नकी अधिलाया करते हैं. उसोसे उन्हें संतुति प्राप्त होती है। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्योंके द्वारा विधिपूर्वक ब्राद्ध किये जानेपर जो शुद्ध या अगुद्ध अन्न तथा जल फेंका जाता है, उससे जिन्होंने अन्य जातिमें जाकर जन्म लिया है, उनकी तृति होती है। वो मनुष्य अन्यायपूर्वक अर्जित किये गये पदार्थीसे ब्राद्ध करते हैं, उस ब्राइसे नीच योनियोंमें जन्म ग्रहण करनेवाले चाण्डाल पितरोंकी तृप्ति होती है।

हे पश्चिन्। इस संसारमें ब्राह्यके निमित्त जो कुछ भी अन्त, धन आदिका दान अपने बन्ध्-बान्धवेकि द्वारा दिया जाता है. वह सब पितरोंको प्राप्त होता है। अन्न, जल और शाक-पात आदिके द्वारा यथासामर्थ्य जो श्राद्ध किया जाता है, वह सब पितरोंकी तुप्तिका हेतू है। तुमने इस विषयमें जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया। तुम अब जो यह पूछ रहे हो कि मृत्युके बाद प्राणीको तत्काल दूसरे शरीरकी प्राप्ति हो जाती है? अथवा विलम्बसे उसको दूसरे शरीरमें आना पदता है? वह मैं तुम्हें संक्षेपमें बता रहा है।

हे गरुड । प्राणी मृत्युके पक्षात् दूसरे जरीरमें तुरंत भी प्रविष्ट हो सकता है और विलम्बसे भी। मनुष्य जिस कारण दूसरे शरीरको प्राप्त करता है, उस वैशिष्टपको तुम मुझसे सुनो। शरीरके अंदर जो धूमरहित ज्योतिके सदृश प्रधान पुरुष जीवात्मा विद्यमान रहता है, वह मृत्युके बाद तुरंत ही वायवीय शरीर धारण कर लेता है। जिस प्रकार एक तुणका आश्रय लेकर स्थित जॉक दूसरे तुलका आश्रय लेनेक बाद पहलेवाले तुगके आत्रयसे अपने पैरको आगे बढाता है, उसी प्रकार शरीरी पूर्व-शरीरको छोडकर दूसरे शरीरमें जाता है। उस समय भोगके लिये वायबीय शरीर सामने ही उपस्थित रहता है। मरनेवाले सरीरके अंदर विषय प्रहण करनेवाली इन्द्रियाँ उसके निश्चेष्ट (निर्म्यापार) हो जानेपर वायुके साथ चली जाती हैं। वह जिस शरीरको प्राप्त करता है उसको भी छोड़ देता है। जैसे स्वीके शरीरमें स्थित गर्भ उसके अन्तदिक कोशसे शक्ति ग्रहण करता है और समय आनेपर उसे छोडकर वह बाहर आ जाता है. वैसे ही जीव अपना अधिकार लेकर दूसरे करीरमें प्रवेक करता है। उस एक शरीरमें प्रविष्ट होते हुए प्राचीके कालक्रम, भीजन या गुण-संक्रमणकी जो स्थिति है उसे मुखं नहीं, अपितु ज्ञानी व्यक्ति ही देखते हैं। बिद्वान लोग इसको आतिवाहिक वायवीय शरीर कहते

हैं। हे सुपर्ण! भूत-प्रेत और पिशाचोंका शरीर तथा मनुष्योंका पिण्डज शरीर भी ऐसा ही होता है।

हे पश्चीन्द्र। पुत्रादिके द्वारा जो दशगात्रके पिण्डदान दिये जाते हैं, उस पिण्डज शरीरसे वायबीय शरीर एकाकार हो जाता है। यदि पिण्डज देहका साम नहीं होता है तो वायुज शरीर कष्ट भोगता है। प्राणीके इस शरीरमें जैसे कामार्थ यौवन और बुड़ापेकी अवस्थाएँ आती हैं, बैसे ही दूसरे शरीरके प्राप्त होनेपर भी तुम्हें समझना चाहिये। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रोंका परित्याग कर नये वस्त्रोंको धारण कर लेख है, उसी प्रकार ऋरीरी पुराने शरीरका परित्याग कर नये अरोरको धारण करता है। इस शरीरीको न शस्त्र छेद सकता है, न अग्नि जला सकती है, न जल आई कर सकता है और न वायु सुखा सकती है-

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कीमारं यीवनं जरा। पक्षीन्द्रेत्यवधारय॥ देहान्तरप्राप्तिः जोपानि पथा विहास गुह्राति नरोऽपराणि। शरीराणि विद्वाय जीगी-न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ नेनं छिन्द्रिन शस्त्राणि नेनं दहति पावकः।

(to 163-64)

जीव तत्काल वायबीय शरीरमें प्रवेश कर लेता है, यह तो मैंने तुम्हें बता दिया; अब जीवात्माको विलम्बसे जैसे दूसरा शरीर प्राप्त होता है, उसको तुम मुझसे सुनो।

न चैनं क्लेंट्यन्यायों न शोधयति मारुतः॥

हे गरुह। कोई-कोई जीवात्मा पिण्डज शरीर विलम्बसे प्राप्त करता है; क्योंकि मृत्युके बाद यह स्वकर्मानुसार यमलोकको जाता है। चित्रगुप्तकी आज्ञासे वह वहाँ नरक भीगता है। वहाँकी पातनाओंको ग्रेसनेके पश्चात् उसे पशु-पक्षी आदिको योनि प्राप्त होती है। मनुष्य जिस शरीरको यहण करता है, उसी शरीरमें मोहवश उसकी ममता हो जाती है। शुभाशुभ कर्मोंके फल भोगकर मनुष्य इससे मुक्त भी हो जाता है।

गरुडने कहा-हे दयानिये! बहुत-से पापोंको करनेके बाद भी इस संसारको पार करके प्राणी आपको कैसे प्राप्त कर सकता है ? उसे आप मुझे बतायें। हे लक्ष्मीरमण ! जिस प्रकार मनुष्यका संसर्ग पुनः दुःखसे न हो उस उपायको बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा —हे पश्चिराज! प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने कर्ममें रत रहकर संसिद्धि प्राप्त कर लेखा है। अपने कर्ममें अनुरक्त रहकर वह उस सिद्धिको जिस प्रकार प्राप्त करता है, उसको तुम मुझसे सुनो-

म्बे म्बे कर्मण्यभितः संसिद्धिं लभते नरः। स्वकर्पनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति नृच्युणु॥

(20197)

हे कश्यपनन्दन! सत्कर्मसे जिसने अपने कालध्यको नष्ट कर दिया है, वह व्यक्ति वास्टेवके निरन्तर चिन्तनसे विज्ञुद्ध हुई बुद्धिसे युक्त होकर धैर्यसे अपना नियमन करके स्थिर रहता है, जो शब्दादि विषयोंका परित्याग कर राग-देशको छोडकर विरक्त, सेवी और यथाप्राप्त भोजनसे संतृष्ट रहता है, जिसका मन-वाणी-शरीर संयमित है, जो वैराग्य धारणकर जिल्प ध्यान-योगमें तत्पर रहता है, जो अहंकार, बल, दर्ग, काम, क्रीध और परिग्रह-इन यहविकारोंका परित्याग करके निर्भय होकर शाना हो जाता है, वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। इसके बाद मनुष्योंके लिये कुछ करना शेष नहीं रह जाता-

कर्मविश्रष्टकालुष्यो वास्देवानुचिन्तया। बुद्धण विशुद्धण युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च॥ शब्दादीन् विषयास्त्यकता रागद्वेषी व्यदस्य सः। विरक्तमेवी लक्ष्याशी यतवायकायमानसः॥ ध्यानयोगपरो नित्यं वैशस्यं अहंकारं बलं दर्प कार्य कोधं परिग्रहम्।। विमुख्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभुयाय कल्पते। अतः यो नृषां कृत्यं नारित कप्रयपनन्दन॥

(\$0193-95) (अध्याय १०)

जीवकी ऊर्ध्वगति एवं अधोगतिका वर्णन

जाता है ? हे प्रभी ! आप मुझपर प्रसन्न हीं । मेरे इस सम्पूर्ण भमको विनष्ट करें।

स्थानमें रहनेवाले बहाराक्षसकी योनिको प्राप्त करता है। होता है। मृत्युके समय उसकी जो-जो इच्छाएँ होती हैं, उन्होंके बशीभृत हो वह उन-उन मोनियोंमें ज्ञाकर जन्म लेता है। इस जीवात्माका छेदन शस्त्र नहीं कर सकता, अग्नि इसको जलानेमें समर्थ नहीं है, जल इसे आई नहीं है। (अध्याय ११)

गरुवजीने कहा-हे देवलेष्ट। मनुष्ययोनि कैसे प्राप्त कर सकता और वायुके द्वारा इसका शोषण सम्भव नहीं है। होती है ? मनुष्य कैसे मृत्युको प्राप्त होता है ? जारीरका हे पश्चित् ! मुख, नेत्र, नासिका, कान, गुदा और आश्रय लेकर कौन मरता है? उसकी इन्द्रियों कहाँसे मूत्रनली—ये सभी छिद्र अण्डजादिक जीवींके शरीरमें कहाँ चली. जाती हैं ? मनुष्य कैसे अस्पुरुप हो जाता है 7 विद्यमान रहते हैं। नाधिसे मुर्धापर्यना ऋरीरमें आत छिद्र हैं। यहाँ किये हुए कर्मको कहाँ और कैसे भोगता है और कहाँ जो सत्कर्म करनेवाले पुण्यात्मा है, उनके प्राण शरीरके कैसे जाता है? यमलोक और विष्णुलोकको मनुष्य कैसे कथ्ने छिडोंसे निकलकर परलोक जाते हैं। मृत्युके दिनसे लंकर एक वर्षतक जैसी विधि पहले बतायी गयी है, उसोके अनुसार सभी और्थ्यदेशिक श्राद्धादि संस्कार निर्धन श्रीकृष्णने कहा-हे विनतानन्दन। परायी स्त्री और होनेपर भी यथाशकि ब्रद्धापूर्वक करने चाहिये। जीव जिस ब्राह्मणके धनका अपहरण करके प्राणी अरण्य एवं निर्जन सरोरमें वास करता है उसी शरीरमें वह अपने शुभाशुभ कर्मकलका भोग करता है। हे पश्चिराज! मन, वाणी और रबोंकी चौरी करनेवाला मनुष्य नीच जातिके घर उत्पन करीरके द्वारा किये गये दोघोंको वह भोगता है। जो [अनासकभावसे] सत्कर्ममें रत रहता है, वह मृत्युके बाद सुखो रहता है और सांसारिकताके मायाजालमें नहीं फैसता। वो विक्मंमें निरत रहता है वह मनुष्य पाशबद्ध हो जाता

चौरासी लाख योनियोंमें मनुष्यजन्मकी श्रेष्टता, मनुष्यमात्रका एकमात्र कर्तव्य-धर्माचरण

~~類類類~~~

श्रीकृष्णजीने कहा—हे तार्स्य! मनुष्योंके हित एवं उन्हें अण्डज, स्वेदज, उद्धिण्य और अरायुज कहा जाता प्रेतत्वकी विमुक्तिके लिये जीवित प्राणीके कर्म-विधानका है। इक्टीस लाख योनियाँ अण्डज मानी गयी हैं। इसी निर्णय मैंने तुम्हें सुना दिया। इस संसारमें चौरासी लाख प्रकार क्रमतः स्वेदन, उद्धिण्य तथा जरायुन योनियोंके योनियाँ हैं। उनका विभाजन चार प्रकारके जीवोंमें हुआ है। विषयमें भी कहा गया है। मनुष्यादि योनियाँ जरायुज कही जाती हैं। इन सभी प्राणियोंमें मनुष्ययोनि परम दुर्लभ है। द्वारा कैसे नहीं मारा जायगा? मनुष्य बाल्यावस्थामें अपने पाँच इन्द्रियोंसे युक्त यह योनि प्राणीको बडे ही पुण्यसे प्राप्त होती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र-ये चार वर्ण हैं। रजक, चमार, नट, बंसखोर, मधुआरा, मेद तथा भिल्ल-ये सात अन्त्यज जातियाँ मानी गयी हैं। म्लेच्छ और तुम्यू जातिक भेदसे अनेक प्रकारको जातियाँ हो जाती है। जीवोंके हजारों भेद हैं। आहार, मैधून, निदा, भय और क्रोध-ये कम सभी प्राणियोंमें पाये जाते हैं, कितु विवेक सभीमें परम दुर्लभ है। एक पाद, दो पाद आदिके भेटसे शारीरिक संरचनामें भी अनेक भेद प्राप्त होते हैं।

जिस देशमें कृष्णसार नामक मृग रहता है, वह धर्मदेश कहलाता है। सब प्रकारसे ब्रह्म आदि देवता यही निवास करते हैं। पञ्चमहाभूतोंमें प्राणी, प्राणियोंमें बुद्धिजीवी, बुद्धिजीवियोंमें मनुष्य और मनुष्योंमें बाह्मण श्रेष्ठ है। स्वर्ग और मोक्षक साधनभूत मनुष्ययोगिको प्राप्त करके जो प्राणी इन दोनोंमेंसे एक भी लक्ष्य सिद्ध नहीं कर पाल, निश्चित ही उसने अपनेको छग दिया। सीका मालिक एक हजार और एक हजारवाला व्यक्ति लाखको पूर्विमें लगा उनता है। जो लक्षाधिपति है वह राज्यको इच्छा करता है। जो राजा है वह सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने बशमें रखना वाहता है। जो चक्रवर्ती नरेश है वह देवत्वकी इच्छा करता है। देवत्व-पदके प्राप्त होनेपर उसकी अधिलामा देवराज इन्द्रके पदके लिये होतो है और देवराज होनेपर वह ऊर्धगतिको कामना करता है: फिर भी उसकी तृष्णा शान्त नहीं होती। तृष्णासे पराजित व्यक्ति नरकमें जाता है। जो लोग तुष्णासे मुख हैं, उन्हें उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

इस संसारमें जो प्राणी आत्माके अधीन है, वह निश्चित हो सखी है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध- ये पाँच विषय हैं, इनको अधीनतामें रहनेवाला निश्चित हो दु:खी रहता है। मूग, हाथी, पतंग, भ्रमर और मीन-ये पाँचों क्रमश: शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध, रस-ये एक-एक विषयके सेवनसे मारे जाते हैं; फिर जो प्रमादी मनुष्य पाँचों

पिता-माताके अधीन होता है। युवावस्था आनेपर वह स्त्रीका हो जाता है और अन्त समय आनेपर पुत्र-पौत्रके ब्यामोहमें फैंस जाता है। वह मुर्ख कभी किसी अवस्थामें आत्माके अधीन नहीं रहता। लीह और काष्टके बने हुए पारुसे बँधा हुआ व्यक्ति मुक्त हो जाता है, किंतु पुत्र तथा न्त्री आदिक मोहपालमें बैधा हुआ प्राणी कभी मुक्त नहीं हो याता।

पाप एक सनुष्य करता है, किंतु उसके फलका टपभोग बहुत-से लोग करते हैं। भोका तो अलग हो जाते हैं पर कर्ता दोषका भागी होता है। चाहे बालक हो, बाहे बुद्ध हो और घाहे युवा हो, कोई भी मृत्युपर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। कोई अधिक सुर्खी हो अथवा अधिक दु:खो हो, वह बारम्बार आता-जाता है। मृत प्राणी सबके देखते-देखते सब कुछ छोड़कर चला जाता है। इस मत्यंलोकमें प्राणी अकेला ही पैदा होता है, अकेले ही मरता है और अकेले ही पाप-पुण्यका भीग करता है। चन्ध्-बान्धव मरे हुए स्वजनके शरीरको पृथ्वीपर लकडी और मिट्टोके ढेलेको भौति फेंककर पराङ्मुख हो जाते हैं: धर्म ही उसका अनुसरण करता है। प्राणीका धन-वैभव परमें ही सूट जाता है। मित्र एवं बन्धु-बान्धव श्मशानमें कुट जाते हैं। शरीरको अग्नि से लेती है। पाप-पुण्य ही उस जांबात्माके साथ जाते हैं।"

मृतं शरीरमृत्मुन्य काष्ठलोष्ट्रसमं क्षिती॥ बान्धवा विमुखा यानि धर्मस्तमनुगच्छति। गृहेष्वर्धा निवर्तन्ते प्रमहानान्मित्रबान्धवाः॥ शरीरं बहिरादने सुकृतं दुष्कृतं ग्रजेत्। शरीरं बहिता दग्धे पुण्यं पापं सह स्थितम्॥

(82188-25)

'मनुष्यने जो भी शुभ या पाप-कर्म किया है, वह सर्वत्र उसीको भोगता है। हे पश्चिराज! सुर्यास्ततक जिसने याचकोंको अपना धन नहीं दे दिया तो न जाने प्रात: होनेपर इन्द्रियोंसे इन पाँचों विषयोंका सेवन करता है, यह इनके उसका वह धन किसका हो जायगा? पूर्वजन्मके पुण्यसे

१-इच्छति सती सहस्रं सहस्रो लक्षमीहते कर्तुम् । तक्षणिपती राज्यं राजापि सकला धरा सन्धुम्॥ चक्रभरोऽपि मुरस्वं मुरभावे सकलमुरपित्भीवतुम् । सुरपितरूभवंगीतस्वं तथापि न निवर्तते तृष्मा ॥ प्रतिपद्यते। तृष्णामुकास्तु ये केचित् स्वर्गवामं सभीत ते॥ (१२।१३—१५) **भाभिभृतस्त्** तृष्णया

जो थोड़ा या बहुत धन प्राप्त हुआ है, उसे यदि परोपकारके कर्यमें नहीं लगाया या श्रेष्ट दिजोंको दानमें नहीं दिया तो उसका वह धन यह रटता रहता है कि कौन मेरा धर्ता होगा? ऐसा विचार कर धर्मके कार्यमें अपना धन लगाना चाहिये। मनुष्य ब्रद्धापुत शुद्ध मनसे दिवे गर्वे धनके द्वारा धर्मको धारण करता है। बद्धारहित धर्म इस लोक तथा परलोकमें फलीभूत नहीं होता। धर्मसे ही अर्थ और कामकी भी प्राप्ति होती है। धर्म ही मोसका प्रदायक है। अत: मनुष्यको धर्मका सम्यक् आचरण करना चाहिये। धर्मको सिद्धि त्रद्धासे होती है, प्रकृत धनग्रतिसे नहीं। अकिंचन अर्थात् धन-वैभवसे रहित ब्रद्धावान् मुनियोंको स्वर्गकी प्राप्ति हुई है। ब्रद्धारहित होकर किया गवा होम, दान तथा तप असत् कहा जाता है। हे पश्चिन्। उसका फल न तो इस लोकमें मिलता है और न परलोकमें ही मिलता है'-

शुर्भ वा यदि वा पापं भूइके सर्वत्र यानवः।

यदनस्तमिते सूर्ये न दत्तं धनमर्थिनाम्॥ न जाने तस्य तद्वित्तं प्रातः कस्य भविष्यति। रारटीति धर्न तस्य को ये भर्ता भविष्यति॥ न दत्तं द्विजमुख्येभ्यः परोपकृतये तथा। पूर्वजन्मकृतात् पुण्याद्यस्तकां वह वास्पकम्॥ तदीद्रशं परिज्ञाय धर्माचे दीयते धनम्। धनेन धार्यते धर्मः अद्धापृतेन चेतसा॥ बद्धाविरहितो धर्मी नेहामुत्र च तत्फलम्। धर्यांच्य जायते हार्थी धर्मात् कामोऽपि जायते॥ धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्म ब्रद्भवा साध्यते धर्मो बहुधिनांर्थराशिधिः॥ अकिञ्चना हि मुनयः अद्भावनो दिवं गताः। अभद्रया हुतं दसं तपस्तमं कृतं च यत्। असदित्युच्यते पश्चिन् प्रेत्य चेह न तत्कलम्॥

(\$2170-33)

(अध्याय १२)

वृषोत्सर्ग तथा सत्कर्मकी महिमा

कर्मको करनेसे प्राणियोंको प्रेतयोनिकी प्राप्ति नहीं होतो? बाद्धोंको करनेसे अन्तमें क्या फल प्राप्त हो सकता है? उसे आप मुझे बतावें।

आगे की जानेवाली और्थ्वदैहिक क्रियाको कह रहा हूँ, नहीं डाम होता। प्रत्युत वह क्रिया प्रेतके लिये निष्फल हो जिसे मोक्ष चाहनेवाले लोगोंको अपने ही हाथोंसे करना जाती है। जिसके एकादशाहमें वृषोत्सर्ग नहीं होता, सौ श्राद चाहिये। स्त्री और विशेषरूपसे पाँच वर्षसे अधिक करनेपर भी उसका प्रेतत्व सुस्थिर रहता है। लिये वृपोत्सर्ग करना चाहिये। प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये अग्निदाहादि क्रिया नहीं की जाती है। यदि जलमें, सींगवाले वृषोत्सर्गके अतिरिक्त इस पृथ्वीपर अन्य कोई साधन नहीं पणु अथवा शस्त्रादिके प्रहारसे कोई मर जाता है, तो इस है। जो मनुष्य जीवित रहते हुए वृषोत्सर्ग करता है अथवा प्रकार असत् मृत्युको प्राप्त हुए लोगोंकी शुद्धि कैसे हो? मृत्युके पक्षात भी जिसको यह क्रिया सम्पन्न हो जाती है हे देव! आप मेरे इस संशयको दूर करें। उसे दान, यज्ञ एवं व्रत किये बिना भी प्रेतत्वको प्राप्ति नहीं होती।

श्रीगरुडजीने कहा—हे देवेश। इस भूलोकमें किस किया होनी चाहिये? आप इस बातको मुझे बतायें। सीलह **ऑक्ट्रणने कहा-हे पश्चिमज। यदि वृधोलार्ग किये** श्रीकृष्णजीने कहा-अब मैं संक्षेपमें क्ष्याइसे लेकर बिना ही पिण्डदान दिया जाता है तो उसका श्रेय दाताको

आयुवाले बालककी मृत्यु होनेपर उनके प्रेतत्वकी निवृधिके गरुडने कहा-हे प्रभी! सर्पदेशसे मरे हुए लोगींकी

श्रीकृष्णने कहा-हे खगेश। उक्त प्रकारसे अपमृत्युकी प्राप्त हुआ ब्राह्मण छ: मास, क्षत्रिय दाई मास, वैश्य डेढ गरुडने कहा-हे देवश्रेष्ट मधुसूदन! जीवित रहते हुए भास एवं शूद्र एक मासमें शुद्ध हो जाता है। यदि तीर्थमें अथवा मृत्युके पक्षात् भी किस कालमें यह वृषोत्सर्ग- सभी प्रकारका दान देकर कोई ब्रह्मचारी मर जाता है तो

१. एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सुन्यते वृषः। प्रेतत्वं सुनियां तस्य दत्तैः ब्राह्मतरीपि॥ (१३।८)

वह शुद्ध होकर ऐहिक दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता। वृजोत्सर्ग जाते हैं, वे सभी दान जिस-जिस यौनिमें जहाँ-जहाँ आदि करके यति-धर्मका आचरण करना चाहिये। यदि दानकर्ता जाते हैं, वहाँ-वहाँ उपस्थित रहते हैं। संन्यास-धर्मका पालन करते हुए किसी प्राणीकी मृत्यु हो जाती है तो वह शाश्चत ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है। जो सम्यक् पालन करना चाहिये। अस्वस्थ होनेपर दूसरोंकी व्यक्ति शिष्टाचाररहित धर्मविरुद्ध कर्म करता है, वह भी वृषोत्सर्ग आदिकी क्रिया करके यमराजके शासनमें नहीं जाता। पुत्र, सहोदर भाई, पौत्र, बन्धु-बान्धव, सगोत्री अधवा मरनेके बाद अधिकारी पुत्र-पौत्रादिकोंके द्वारा भी अथवा सम्पत्ति लेनेवाला उत्तराधिकारी कोई भी हो, उसको यह कर्म नहीं होता है तो वह वायुरूपमें भूख-प्याससे मरे हुए स्वजनके लिये वृपोलार्ग अवस्य करना चाहिये। पुत्रके अभावमें पत्नी, दौहित्र (नाती) और दुहिता (पुत्री) भी इस कर्मको कर सकती है। पुत्रोंके रहनेपर वृथोत्सर्ग अन्यसे नहीं कराना चाहिये।

गरुडने कहा-हे सुरेश्वर! जाहे स्त्री हो अथवा पुरुष जिसके पुत्र नहीं है, उसका संस्कार किस प्रकारने किया जाय ? हे देव । इस विषयमें उत्पन्न हुई मेरी शंकाको आप भली प्रकारसे दूर करें।

श्रीकृष्णने कहा-पुत्रहोन व्यक्तिको गति नहीं है, उसके लिये स्वर्गका सुख नहीं है। अत: ऐसे मनुष्यको सदुपायसे पुत्र अवस्य उत्पन्न करना चाहिये। पुरुष स्वयं जो कुछ भी दान देते हैं, परलोकमें वे सभी उसके सामने ही उपस्थित रहते हैं। अपने हावोंसे जो नाना प्रकारके स्वादिष्ट एवं विविध व्यञ्जन खानेके लिये दिये जाते हैं. वे सभी मृत्युके पक्षत् अक्षय फल प्रदान करते हैं। जो गी, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, भोजन और पद-दान अपने हाथसे दिये

जबतक प्राणीका शरीर स्वस्थ रहता है, तबतक धर्मका प्रेरणासे भी वह कुछ नहीं कर पाता है। यदि अपने जीवनकालमें व्यक्ति औध्वंदेहिक कमें नहीं कर लेता पोद्दित रात-दिन भटकता रहता है। वह कृमि, कीट अथवा पतिंगा होकर बार-बार जन्म लेता है और मर जाता है। वह कभी असत् मार्गसे गर्भमें प्रविष्ट होता है एवं जन्म लेते हो तत्काल विनष्ट हो जाता है।

जयतक यह शरीर स्वस्थ और नीरोग है, जनतक इससे बुद्धापा दूर है, जबतक इन्द्रियोंको शक्ति किसी भी प्रकारसे श्रीण नहीं हुई है और जबतक आयु नष्ट नहीं हुई है, तबतक अपने कल्याणके लिये महान् प्रयत्न कर लेना वाहिये; क्योंकि चरमें महाभयंकर आगके लग जानेपर कुओं खोदनेक उद्योगसे पनुष्यको क्या लाभ प्रत हो सकता है— यावत्रक्तसमिदं शरीरमध्यं यावजारा दूरतो यावच्येन्द्रयहिकाप्रतिहता यावत्सयो नायुषः। आत्मश्रेयसि ताबदेव विद्वा कार्यः प्रयत्ने महान् संदीप्ते भवने तु कृपखनने प्रत्युचमः कीदृशः॥

(83184)

(अध्याय १३)

दु:खित व्यक्तिके द्वारा जो दान दिया जाता है, उसका क्या दी गयी हजार गाय तथा व्यक्तिके मर जानेपर विधिवत् पुत्र-फल है? स्वस्थ अवस्थामें और विधिहोन जो दान दिया पौत्रादिके द्वारा दानमें दी गयी एक लाख गायोंके बराबर जाता है, उसका क्या फल है?

द्वारा दानमें दी गयी एक गी. रोगी पुरुषके द्वारा दानमें दी गयी लाख गोदानका पुण्य प्रदान करती है।

और्घ्वदैहिक क्रिया, गोदान एवं वृषोत्सर्गका माहात्म्य गरुडने कहा-हे विभी! मृत्युको प्राप्त कर रहे एक सौ गाय, मर रहे प्राणीके द्वारा दानमें धनको छोड़कर होती है। तीर्थ एवं पात्रके समायोगसे यथाविधि एक ही श्रीकृष्णने कहा—हे पश्चित्रेष्ठ! स्वस्थ चितवाले मनुष्यके गोदान कर दिया जाय तो वह अकेली गी दाताको एक

स्वक्रवानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च । स्वक्रकेन प्रदत्तानि देकाने चाराचं फलम् ॥ गोभृहिरण्यकासांसि भोजनानि पदानि च । यत्र यत्र जसेजन्तुस्तत्रकत्रोर्चतव्रति । (१३।२०-२१)



हे खगराज! सत्पात्रको दिया गया दान दिन-दिन बढ़ता है। दाताके दिये हुए दानको यदि जानी ग्रहण करता है तो उसे पाप नहीं लगता। विष और शीतका अपहरण करनेवाले मन्त्र और अग्नि क्या दोषधाजन होते हैं? जत: प्रतिदिन सत्पात्रको विशेष ठदेश्योंको पुरिके लिये दान देना चाहिये। अपने कल्पाणकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिको अपात्रको कुछ भी नहीं देना चाहिये। यदि कदाचित् अपातके लिये गौका दान दिया जाता है तो वह दाताको नरकमें ले जाता है और अपात्र ग्रहीताको इक्कीस पीडियोंक सहित तरकमें डकेल देला है।

हे खगेश! जिस प्रकारसे अपने हाथसे भूमिमें निवेश किया गया धन मनुष्यके आवश्यकतानुसार वह जब चाहे काममें आ सकता है, उसी प्रकार अपने हाथसे किया गया दान भी देहान्तरमें प्राप्त होता है। निर्धन होनेके बाद भी अपुत्र व्यक्तिको मोक्षकी कामनासे अपनी औप्वंदेहिक क्रिया अवश्य कर लेनी चाहिये। बोडे धनसे भी अपने हाथसे की गयी अपनी औध्वंदैहिक क्रिया उसी प्रकारसे अक्षय फल देनेवाली होती है, जिस प्रकार अग्निमें डाली हुई आज्याहति। दान लेनेके योग्य व्यक्तिको हो शब्या. कन्या एवं गौका दान देना चाहिये और यह भी ध्यान रखना

******************************* गोपालनके प्रति आस्थावान् तथा दान लेने योग्य प्रतिग्रहीताको ही गोदान करना चाहिये। इसके अतिरिक्त यह भी विशेषरूपमें ज्ञातस्य है कि दो दान लेने योग्य व्यक्तियोंको भी एक गाँ कदापि न दी जाय; क्योंकि यदि वह किसीके हाथ बेची जाती है अथवा उसका किन्हीं दो या दोसे अधिक लोगंकि बीच विभाजन होता है तो ऐसा करनेवाले मनुष्यको सात पोढ़ियोंके सहित वह दान जला देता है। अत: इस नश्चर जीवनमें समस्त और्ध्वदेहिक कर्म स्वयं सम्यन कर लेना चाहिये। पाथेयके रूपमें दिये गये दानादिको प्राप्त करके प्राणी उस महाप्रयाणके मार्गमें सखपूर्वक जाता है, अन्यथा पाथेयरहित जीवातमा अनेक प्रकारका कष्ट झेलता है। ऐसा जानकर मनुष्य विधिवत् क्योल्सर्ग करे। जो पुत्रहीन बुधोल्सर्ग किये बिना ही मर जाता है, उसे मुक्ति नहीं प्राप्त होती है। अत: पुत्रविहीन मनुष्य इस धर्मका पालन विधिवत् करे। ऐसा करनेसे यमके उस महाप्रधर्में वह सुखपूर्वक गमन करता है। ऑगिहोत्र, विधिन प्रकारके यह और दानादिसे प्राणीको वह सदगति नहीं प्राप्त होती है, जो गति बुधोत्सर्गसे प्राप्त होती है। समस्त यहाँमें वृद्यांत्सर्गं यह श्रेष्टतम है, इसलिये प्रयास करके मनुष्यको भलीभीति वृषोत्सर्ग सम्पन्न करना चाहिये।

यहड़ने कहा-डे गोवन्द! आप मुझे क्षयाह और ऑफ्बंदेहिक क्रियांके विषयमें उपदेश दें कि इस क्रियांकी किस काल, किस तिथि और किस प्रकारको विधिसे सम्यन्त करना चाहिये। इसको करके मनुष्य क्या फल प्राप्त करता है, इसे भी आप मुझे बतायें। हे गोविन्द। आपकी कृपासे वो प्राणी मुक्त हो जाता है।

श्रीकृष्णने कहा-हे पश्चिन्। कार्तिक आदि मासमें सूर्यके दक्षिणायन हो जानेपर शुक्लपक्षकी द्वादशी आदि त्रुभ तिथियोंमें, शुभ लग्न और मुहुर्तमें तथा पवित्र देशमें सन्बहितचित्र होकर विधिज्ञ, शुभलक्षणोंसे युक्त सत्पात्र ब्राह्मणको बुलाकर जप, होम तथा दानसे अपने शरीरका सर्वप्रथम शोधन करे। उसके बाद वह अभिजित् नक्षत्रमें चाहिये कि दो शय्याएँ एकको न दो जायँ, दो कन्याएँ ग्रहों और देवताओंको विधिवत पूजा करके विधिन्न वैदिक एकको न दी जायँ तथा दो गायें भी एकको न दी जायें। मन्त्रींसे वधाशक्ति अग्निमें आहुति प्रदान करें। हे खगेश्वर! इसका आशय यह है कि भलीभौति गोपालनमें समर्थ, तदनन्तर ग्रहस्थापन-कार्य करके मातृका-पूजनका कार्य

करना चाहिये। तत्पक्षात् वह वसुधारा हवन सम्पन्न करे। अग्नि-स्थापन करके पूर्णाहुतिका कार्य करे। इसके बाद शालग्रामको स्थापित कर वैष्णव ब्राद्ध करे। वस्त्राभुषणींसे वृषको सुसज्जित करके उसकी विधिवत पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पहले चार बिछयोंको सुगन्धित पदाचौसे सुवासित करे। वस्त्र और अलंकारसे विभूषित कर उन्हें दस यद्धमें वषके साथ स्थान दे। उसके बाद उनको प्रदक्षिण एवं होन करके अन्तर्गे विसर्जन करे। तत्पश्चात् उत्तराधिमुख होकर इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये-

धर्म त्वं व्यक्तपेण बहाणा निर्मितः पुरा ॥ तवोत्सर्गप्रभावान्माम्द्रस्य भवार्णवात्। (481 56-50)

'हे धर्म! पुराकालमें ब्रह्माने आपको वृषके कपमें निर्मित किया है। आपके उत्सर्गके प्रभावसे मेरा भवसागरसे उद्धार हो।"

इसके बाद पवित्र करनेवाले सुभ मन्त्रोंसे विधिपूर्वक वृषको अभिषिक करके 'तेन क्रीडन्ति॰' इस मन्त्रसे वृषोत्सर्गं करे। पुन: रुद्र नामक कुम्भके जलसे उस गील वृषका अभिषेक करना चाहिये। उसके बाद उस नील वृषके नाभिभागमें घटको स्पर्श कराके वह जल अपने सिरपर भी डालना चाहिये। हे पक्षिराज । तदनन्तर अन्नजाद कर द्विजोत्तमको दान देना चाहिये। इन कार्योंको करके जलाशयपर पहुँचे और वहाँ जलाञ्चलि क्रिया करे। मनुष्यको अपने जीवनमें जो वस्तु प्रिय हो, उसका यथाशक्ति वहाँपर दान करना चाहिये। वृषोत्सर्ग करनेपर न्यनता पूरी हो जाती है। मृत व्यक्ति इससे भलीभीति तुम होकर यमलोकके कठिन मार्गमें सुखपूर्वक गमन करता है, इसमें संदेह नहीं है। सदैव दानादिकी क्रियाओं में अनुरक्त मन्ध्य यमलोकका दर्शनतक नहीं करते हैं। जबतक प्राणीका एकादशाह श्राद्ध नहीं किया जाता है, तबतक अपने द्वारा दिया गया दान अथवा दसरेके हाधसे दिया गया दान न इस लोकमें प्राप्त होता है और न परलोकमें ही।

हे गरुड । ब्रद्धाभावपूर्ण प्राणीको क्रमशः वेरह, सात, पाँच तथा तीन पद-दान करना चाहिये। अत: दाजा पहले यथाक्रम सात एवं पाँच तिलपात्रीका दान करे। वह ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें एक गौका दान भी दे। तत्पक्षात् 'वृथं हि मां तो देवी०' इस वेदमन्त्रसे यथाविधि गति प्राप्त करते हैं। मेरा यह वचन सत्य है।

चार बक्टियोंके साथ युपका विवाह करना चाहिये। तदनन्तर उसके शरीरमें बायों ओर चक्र और दाहिनी ओर त्रिशुलका चिद्व अंकित करके और जिसको वृषदान किया गया है, उसको उसका मुल्य देकर विसर्जन कर दे।

बृद्धिमान व्यक्तिको एकोहिष्ट विधानके अनुसार क्रमश: प्रयत्नपूर्वक एकादशाह तथा द्वादशाह ब्राद्ध करना चाहिये। सरिण्डीकरणके पहले चोडश श्राद्ध सम्मन्न करे। ब्राहालॉको भोजन कराकर उन्हें पट-दान दे। उसके बाद ताप्रपात्रमें कार्पास (सुती) वस्त्रपर भगवान विष्णुकी मूर्तिको स्थापित करे और वस्त्रसे आच्छादित करके शुभ फलसे अर्ध्य समर्पित करे। तत्पद्यात् ईखके पेडोंसे नौकाका निर्माण करके रेजमी मुझ्मे उसको लपेट दिया जाय। वैतरणीके निमित्त कांस्यपात्रमें युव रखकर नौकारोहणकी क्रिया हो और भगवान गरुडध्वजको पूजा करे। सामध्येक अनुसार किया गया दान अनन्त फलोंको देनेवाला है। भगवान् जनादेन इस संसार-स्वागरमें इस रहे शोक-संतापसे दु:खित तथा धर्मरूपी नौकासे रहित जनोंके उद्धारक हैं।

हे ताक्ये। तिल, लीह, सुवर्ण, कार्पास वस्त्र, लवण, संसधान्य, पृथ्वी और गी एक-से-एक बढ़कर पवित्र माने गर्व हैं। ब्राइमें तिलसे परिपूर्ण पात्रोंका दान देकर शब्यादान देना चाहिये। दोन-अनाच एवं विशिष्टजनोंको सामध्यनुसार दक्षिणा भी प्रदान करे। पुत्रहोन अथवा पुत्रवान जो भी इसे करता है, उसको वही सिद्धि प्राप्त होती है, जो एक ब्रह्मचारीको प्राप्त होतो है। मनुष्य इस पृथ्वीपर जबतक जीवित रहता है, तबतक उसे निल्प-नैमितिक कर्म करने चाहिये। जो कोई जीवित-बाद्ध करता है, तीर्थयात्रा, ब्रत एवं सांवरसरिक ब्राद्धादि धर्मकार्य करता है, उसका अक्षय फल उसे प्राप्त होता है। देवता, गुरु और माता-पिताके निमित्त पुरुषको प्रयत्नपूर्वक दान करना चाहिये। वह दान प्रतिदिन अभिवृद्धिको प्राप्त होता है।

इस यहमें जिसके द्वारा प्रचुर धन दानमें दिया जाता है, वह सब अधय होता है, जिस प्रकार इस संसारमें संन्यासी और ब्रह्मचारी अत्यधिक पुज्य हैं, उसी प्रकार वृषोत्सर्गादि कर्मोंको करनेवाले सभी पुण्यात्मा भी इस संसारमें पूजे जाते हैं। उन पृण्यातमाओंको में, चतुर्मख ब्रह्मा और शिव सदैव बरदान देते हैं। वे सभी परम लोककी अथवा सींगसे जिस भूमिको नित्य खोद-खोदकर प्रसन्न वस्ताच्छदित कर प्रदान करना चाहिये। जो लोग भगवान् होता है, उससे पितरोंके लिये अन्न और पेय पदार्थ गोविन्दको नमन करते हैं, उनके लिये भय नहीं रहता है। अत्यधिक मात्रामें उत्पन्न होता है।

पूर्णिमा अथवा अमावास्या तिथिमें तिलसे परिपूर्ण पात्रोंका 🕉 लोकोंको प्राप्त करेंगे। मेरा यह कथन सत्य ही है। दान देना चाहिये। हजार संक्रान्तियों और सैकडों सुर्यग्रहणके हे गरुड! मैंने तुमसे जो सम्पूर्ण औध्वंदैहिक क्रिया पर्वोपर दान देकर जो पुण्य अर्जित होता है. वह मात्र नील कही है. इसे सुनकर मनुष्य अपने समस्त पापोंसे मुक्त हो वृषको छोडकर हो मनुष्य प्राप्त कर सकता है'। ब्राह्मणेको जाता है, इसमें संदेह नहीं है। बिछया, पद-दान तथा शिव-भक्तोंको तिलसे पूर्ण पात्रोंका इस प्रकारका अनुपम माहात्म्य सुनकर गरुड अत्यन्त दान देना चाहिये। उस समय उमा-महेश्वरको भी परिधानसे प्रसन्न हो उठे और उन्होंने मनुष्येंकि हितमें पुन: भगवान् अलंकृत कर दान करना चाहिये। अतसी (तोसी) पुणके केश्वसे पूछा। (अध्याय १४)

छोड़ा गया वृषभ जिस जलाशयमें जलपान करता है सदश कान्तिवाले पीताम्बरधारी भगवान अच्युतकी प्रतिमाको प्रेतत्वसे मोध चाहनेवाले जो प्राणी इस सत्कर्मको करेंगे, वे

मरनेके समय तथा मृत्युके अनन्तर किये जानेवाले कर्म, पापात्माओंको रौद्ररूपमें तथा पुण्यात्माओंको सौम्यरूपमें यम-दर्शन, यमदुतोंद्वारा दी जानेवाली यातनाका स्वरूप, शवके निमित्त प्रदत्त छ: पिण्डोंका प्रयोजन, शवदाहकी विधि, संक्षेपमें दशाहसे त्रयोदशाहतकके कृत्य, यममार्गमें पड़नेवाले सोलह पुर तथा प्रेतका विलाप

मुझे सुनाये।

करता है, तुम उसे सुनो।

अपने द्वारा किये गये कर्मोंके आधारपर निमित्तमात्र बनकर निश्चित है, वह निमित्त किये गये कमींके अनुसार उसे अवश्य प्राप्त हो जाता है।

जीवात्मा कर्मभोगके कारण जब अपने वर्तमान शरीरका रखकर स्वयं ले जाना चाहिये।

गरुद्धने कहा-हे भगवन्! जीवात्यांके प्रयाण-कालसे समीप तुलसीका वृक्ष एवं शालग्रामकी शिलाको भी लाकर लेकर यमलोकके मार्गविस्तारतकका वर्णन एवं माहात्म्य रखें। तत्पक्षात् यथाविधान विधिन्न सूर्कीका पाठ करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्यकी मृत्यु मुक्तिदायक श्रीभगवान्ने कहा —हे तास्यं। मैं यथाक्रम यममार्गका होती है। उसके बाद मरे हुए प्राणीके शरीरगत विभिन्न और जीवात्माके गमनमार्गमें पड़नेकले सोलह पुरोंका वर्जन स्थानोंमें सोनेको जलाकाओंको रखनेका विधान है, जिसके अनुसार क्रमशः एक शलाका मुख, एक-एक शलाका हे गरुड। प्रमाणत: यमलोक और मृत्युलोकके मध्य नाकके दोनों छिद्र, दो-दो शलाकाएँ नेत्र और कान, एक छियासी हजार योजनको दूरी है। हे खगेश। इस संसारमें रालाका लिङ्क तथा एक शलाका उसके ब्रद्धाण्डमें रखनी पुर्वाजित सुकृत और दुष्कृत कर्मीका फल भौग कर अपने जाहिये। उसके दोनों हाथ एवं कण्ठभागमें तुलसी रखें। कर्मके अनुसार ही किसी व्याधिका जन्म होता है और उसके शक्को दो वस्वोंसे आच्छादित करके कुंकुम और अक्षतमे पूजन करना चाहिये। तदनन्तर उसको पुष्पीकी कोई व्याधि उत्पन्न होती है। जिसकी जिस निमित्तसे मृत्यु मालासे विभूषित करके उसे बन्धु-बान्धवों तथा पुत्र, पुरवासियोंके साथ अन्य द्वारसे ले जाय। उस समय अपने बान्धवंकि साथ पुत्रको मरे हुए पिताके शवको कन्धेपर

परित्याग करता है, तब भूमिको गोबरसे लीपकर उसके स्मरान देशमें पहुँचकर पुत्र, पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख कपर तिल और कुशासन बिछाकर उसीपर उसे लिटा दे। यहाँकी उस भूमिपर चिताका निर्माण कराये, जो पहलेसे तदनन्तर उस प्राणीके मुखर्मे सुवर्ण डाले और उसके जलों न हो। उस चितामें चन्दन, तुलसी और पलाश आदिको लकडीका प्रयोग करना चाहिये।

जब मरणासन व्यक्तिकी इन्द्रियोंका समृह व्यक्ति हो उठता है, चेतन शरीर जब जडीभृत हो जाता है, उस समय प्राण शरीरको छोडकर यमराजके दुर्तोके साथ चल देते हैं। उस समय मृतकको दिव्य-दृष्टि प्राप्त होती है, जिसके द्वारा वह समस्त संसारको देखता है। जब मृतकके प्राण कण्डमें आकर अटक जाते हैं, उस कालमें उस आतुर व्यक्तिका रूप बढ़ा बीभरस और कठीर हो जाता है। कोई परता हुआ प्राणी मुखसे फेन उगलता है, किसीका मुख लाला (लार)-से भर जाता है। उस समय जो प्राणी दुरात्मा होते हैं, उन्हें यमदत अपने पाशवन्धनोंसे जकदकर मारते हैं। जो सकती हैं. उनको स्वर्गक पार्षद अपने लोकको सुखपूर्वक ले जाते हैं। यमलोकके दुर्गम मार्गमें पापियोंकी दृ:ख झेलते हुए जाना पडता है।

यमराज अपने लोकमें शहू, चक्र तथा गदा आदिसे छ: पिण्डोंको परिकल्पनाका कारण तुम सुनी। विभूषित चतुर्भुज रूप धारण कर पुण्यकर्म करनेवाले साधु हे ताक्ष्यं। जिस स्थानमें मनुष्य मरता है, उस स्थानपर पुरुपोंके साथ निष्ठवत् आचरण करते हैं। वे सभी मृतकके नामसे 'शव'नामका पिण्ड दिया जाता है। उस पापियोंको संनिकट युलाकर उन्हें अपने दण्डसे तर्जन देते. चिण्डदानको देनेसे गृहके बास्तुदेवता प्रसन्न हो जाते हैं हैं। वह यमराज प्रलयकालीन मेघके समान गर्जना करनेवाला. और उससे भूमि तथा भूमिके अधिष्ठात देवता प्रसन्न होते है। अञ्चनगिरिके सदल उसका कृष्णवर्ण है। वह एक बहुत है। द्वारपर जो दूसरा पिण्डदान दिया जाता है, उसका नाम बढे भैंसेपर सवार रहता है। अत्यन्त साहस करके ही लोग उसकी और अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। वह विद्युत्के तेजके समान विद्यमान है। उसके शरीरका विस्तार तीन योजन है। यह महाक्रोधी एवं आयन्त भयंकर है। भीमकाय दराकृति यमराज अपने हाचमें लोहेका दण्ड और पाश धारण करता है। उसके मुख तथा नेजोंको देखनेसे ही पापियोंके मनमें भय उत्पन्न हो उठता है। इस प्रकारका महाभयानक यमराज जब पापियोंको दिखाची पड़ता है, तब हाहाकार करता हुआ अंगुष्टमात्रका मृत पुरुष अपने यसकी ओर देखता हुआ यमदूर्तीके द्वारा ले जाया जाता है।

प्राणींसे मुक्त शरीर चेष्टाहीन हो जाता है। उसकी देखनेसे मनमें घुणा उत्पन्न होने लगती है। वह तुरंत अस्पृश्य एवं दुर्गन्धयुक्त और सभी प्रकारमे निन्दित हो जाता है। यह शरीर अन्तमें कीट, विश्व या राखमें परिवर्तित हो जाता है। हे ताक्ष्यं। क्षणभरमें विष्यंस होनेवाले इस शरीरपर कौन ऐसा होगा जो गर्व करेगा। इस असत् करोरसे होनेवाले वित्तका दान, आदरपूर्वक वाणी, कोर्ति, धर्म, आयु और परोपकार यही सारभूत है। यमलोक ले जाते हुए यमदृत प्राणीको बार-बार नरकका तीव्र भय दिखाते हुए डॉटकर यह कहते हैं कि हे दुशत्मन्। तू शीघ्र चल। तुझे यमराज्के घर जाना है। शीघ्र ही हम सब तुझे 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें ले चलेंगे। उस समय इस प्रकारकी वाणी और बन्धु-बान्धवोंका रुदन सुनकर ऊँचे स्वरमें हा-हा करके विलाप करता हुआ वह मृतक यमदर्तिक द्वारा यमलोक पहुँचाया जाता है।

हे गरुट! एकादशाहके दिन उचित स्थानपर श्राद करना चाहिये। प्राणोत्क्रमणसे लेकर क्रमश: छ: पिण्डदान करने चाहिए। उन पिण्डॉका दान यथाक्रम मृतस्थान, द्वार, चत्वर (चौराहा), विश्वाम-स्थल, काष्ट्रचयन (चिता) और अस्थिययनके स्थानपर करना चाहिये। हे पक्षिन्। इन

'पान्य' है। उसे देनेसे द्वारस्य गृहदेवता प्रसन्न होते हैं। चौराहेपर 'खेचर' नामक पिण्डदान होता है। इस पिण्डदानको देनेसे भूत आदि देवयोनियाँ माधा नहीं करतीं। विश्राम-स्थलपर होनेवाला पिण्डदान 'भूत' संज्ञक है। इसको देनेसे फिलाब, राक्षस और यक्ष आदि जो अन्य दिग्वासी योनियाँ हैं, वे जलाये जाने योग्य उस मृतक शरीरको अयोग्य नहीं बनाती । हे खगेश्वर ! चिता-स्थलपर पिण्डदान देनेसे प्रेतत्वकी उत्पत्ति होती है। एक मतमें चितापर दिये जानेवाले पिण्डदानका नाम साधक है और प्रेतकल्पके विद्वानीने इस ब्राद्धको प्रेतके नामसे अभिहित किया है। चितामें पिण्डदानके बाद ही 'प्रेत' नामसे पिण्डदान देना चाहिये। इस प्रकार इन पाँचों पिण्डोंसे शव आहतिके योग्य होता है अन्यथा पूर्वोक्त उपधातक होते हैं।

प्राजोत्क्रमणके स्थानपर पहला पिण्डदान देना चाहिये उसके बाद दसरा पिण्डदान आधे मार्गमें और तीसरा चितापर देना चाहिये। पहले पिण्डमें विधाता, दूसरेमें गरुडध्वज तथा तीसरेमें यमदृत-इस प्रकारका प्रयोग कहा गया है। तीसरा पिण्डदान देते ही मृत व्यक्ति शरीरके दोषोंसे मुक्त हो जाता है।

इसके बाद चिता प्रञ्चलित करनेके लिये बेदिका निर्माण करके उसका उल्लेखन, उद्धरण और अभ्यक्षण आदि करके विधिपूर्वक अग्नि-स्थापन करके पृथ्य और अक्षतसे क्रव्याद नामके अग्निदेवकी पूजा करके यह प्रार्थना करनी चाहिये-

त्वं भूतकृजगद्योने त्वं लोकपरिपालकः॥ उपसंहारकस्तस्मादेनं स्वर्ग मतं

(14.48(14)

'हे क्रव्याद अग्निदेव। आप महाभूततत्त्वोंसे बने हुए इस जगतके कारण, पालनहार एवं संहारक है। अत: इस मृत व्यक्तिको आप स्वगं पहुँचायें।'

इस प्रकार ऋल्याद नामक अग्निदेवको विधिवत पूजा करके शवको जलानेका कार्य करे। मृतकका आधा शरी। जल जानेपर मृतकी आहुति देनी चाहिये। 'लोमभ्यः स्वाहा०' इस मन्त्रसे यथाविधि होम करना चाहिये। चितापर उस प्रेतको रखकर आज्याहति देनी चाहिये। यम, अन्तक, मृत्यु, ब्रह्मा, जातवेदस्के नामसे आहुति देकर एक आहुति प्रेतके मुखपर दे। सबसे पहले अग्निको ऊपरकी और प्रज्वलित करे। तदनन्तर चिताके पूर्वभागको उसी अग्निसे जलाये। इस प्रकार चिताको जलाकर निम्नाङ्गित मन्त्रसे अभिमन्त्रित तिलमित्रित आञ्चाहति पुन: प्रदान करे-

अस्मात् त्वमधिजातोऽसि त्वद्यं जायतां पुतः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा जिल्लापकः ॥

(54145)

'हे अग्निदेव! आप इससे उत्पन्न हुए हैं। पुन: आपसे यह उत्पन्न हुआ है। इस मृतककी स्वर्गकामनाके लिये आपके निमित्त यह स्वाहा है।

इस प्रकार तिलमित्रित समन्त्रक आञ्चाहति देकर

विषद्भदान दे।

दाह-संस्कारके पश्चात मृत व्यक्तिके पुत्रोंको वस्त्रके सहित स्नान करना चाहिये। तदनन्तर नामगोत्रोच्चार करते हुए वे तिलाञ्चलि दें। उसके बाद गाँव या जनपदके सभी लोग ताली बजा-बजाकर विष्णु-नाम-संकीर्तन और मृतकके गुणोंको चर्चा करें। सभी लोग उस मृत व्यक्तिके घर आकर द्वारके दक्षिण भागमें गोमय और श्वेत सरसींको रखें। अपने मनमें वहणदेवका ध्यान कर नीमकी पत्तियोंका भक्षण तथा पीका प्राप्तन करके वे सभी अपने-अपने घर जाये।

हे खगेश्वर! कुछ लोग चितास्थानको दृथसे सीचते हैं। मुतकको जलाञ्चलि देते हुए अञ्चयात नहीं करना चाहिये। बन्ध-बान्धवोकि जो उस समय रोते हुए मुँहसे कफ और नेबोंसे औस गिराया जाता है, उसको ही वह प्रेत विवह होकर खाता है। अत: उन संधीको उस समय रोना नहीं चाहिये, अपनी शक्तिके अनुसार क्रिया करनी चाहिये। हे कार्य। सुर्यके अस्त हो जानेके बाद परके बाहर

अथवा कहीं एकान्तमें चीग्रहेपर दाह-क्रियांक दिनसे लेकर तीन दिनतक मिट्टीके पात्रमें दूध और जल देना चाहिये; क्वोंकि महनेके बाद जो मृड-हृदय जीवात्मा है, वह पून: उस सरीरको प्राप्त करनेकी इच्छासे यमदरोंके पीछे-पीछे रमशान, चौराहा तथा घरका दर्शन करता हुआ यमलोकफो जाता है। प्रतिदिन दशाहतक प्रेतके लिये पिण्डदान और जलाज़िल देनी चाहिये। जबतक दशाह-संस्कार न हो जाय, तबतक एक जलाउनि प्रतिदिन अधिक बढाना अनिवार्य है। यह और्ध्वदेशिक संस्कार पुत्रके द्वारा अपेक्षित है। उसके अभावमें पत्नीको करना चाहिये। पत्नीके न होनेपर शिष्य, उसके न होनेपर सहोदर भाई कर सकता है। रमहान अधवा अन्य किसी तीर्थमें मृतकके लिये जल और पिण्डदान देना चाहिये। पहले दिन जाक-मूल और फल, भात या सत् आदिमेंसे जिस-किसोद्वारा पिण्डदान दिया क्य, उसोंके द्वारा बादके दिनोंमें भी पिण्डदान देना चाहिये।

हे खगेल! इस दिनॉनक प्रेतके उद्देश्यसे पुत्रगण पुत्रको दाह करना चाहिये। उस समय उसे तेज रूदन करना पिण्डदान देते हैं। दिये गये पिण्डका प्रतिदिन चार भाग हो चाहिये। ऐसा करनेसे पुतकको सुख प्रात होता है। जाता है, उसके दो भागसे मुतकका शरीर बनता है, तीसरा दाह-संस्कारके पक्षात् वहींपर अस्थि-संचयन करना चाहिये। भाग यमदत से लेते हैं और चौधा भाग मृतकको खानेके उसके बाद प्रेतके दाहजन्य क्लेशकी शान्तिके लिये लिये मिलता है। नी दिन रातमें प्रेत पुन: शरीरयुक्त हो जाता

है। शरीर वन जानेपर दसवें पिण्डसे प्राणीको अत्यधिक है। असिपडवनसे व्याप्त उस मार्गमें इतने दु:ख हैं कि क्षुधा-भुख लगती है।

आशीर्वादका प्रयोग नहीं होता है, केवल नाम तथा है। यमदूर्तोंके पाशसे वैधा, हा-हा करके विलाप करता गोत्रोच्चारपूर्वक पिण्डदान दिया जाता है। हे पश्चिन्! हुआ वह प्रेत अपने घरको छोड़कर दिन और रात चलकर मृतकका दाह-संस्कार हो जानेके पश्चात् पुन: शरीर उत्पन्न यमलोक पहुँचता है। उस महापथमें पहनेवाले प्रसिद्ध होता है। पहले दिन जो पिण्डदान दिया जाता है, उससे पुरोंके शुधाशुध धोग प्राप्त करते हुए वह यमलोकको जाता मुर्था, दूसरे दिनके पिण्डदानसे ग्रोबा और दोनों स्कन्ध, तीसरे दिनके पिण्डदानसे इदय, चौधे दिनके पिण्डदानसे पृष्ठ, पाँचवें दिनके पिण्डदानसे नाभि, छठे दिनके पिण्डदानसे कटिप्रदेश, सातवें दिनके पिण्डदानसे गुद्धभाग, आठवें दिनके पिण्डदानसे ऊरु, नीवें दिनके पिण्डदानसे ताल-पैर और दसवें दिनके पिण्डदानसे खुधाकी उत्पत्ति होती है। जीवात्मा शरीर प्राप्त करनेके पश्चात् भूखसे पीडित हो करके घरके दरवाजेपर रहता है। दसवें दिन जो पिण्डदान होता है, उसको मृतकके प्रिय भोज्य-पदार्थसे बना करके देना चाहिये, क्योंकि शरीर-निर्माण हो जानेपर मृतकको अत्यधिक भूख लग जाती है, प्रिय भोज्य-पदार्थक अतिरिक्त अन्य किसी अन्तादिक पदार्थीसे बने हुए पिण्डका दान देनेसे उसकी भूख दर नहीं होती है।

एकादशाह और द्वादशाहके दिन प्रेत भोजन करता है। मरे हुए स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये प्रेत शब्दका उच्चारण करना चाहिये। उन दिनों दीप, अन्न, जल, वस्य जो कुछ भी दिया जाता है, उसको प्रेत शब्दके द्वारा देना चाहिये, क्योंकि वह भृतकके लिये आनन्ददायक होता है।

त्रयोदशाहको पिण्डज शरीर धारण काके भूछ-प्याससे पीडित वह प्रेत यमदूतोंके द्वारा महाप्रचपर लाया जाता है। जो प्रेत पापी होते हैं, उनका मार्ग शीत, ताप,

प्याससे गोडित उस प्रेतको नित्य यमदत अत्यधिक संत्रास दस दिनके पिण्डमें विधि, मन्त्र, स्वधा, आवाहन और देते हैं। प्रतिदिन वह प्रेत दो सौ सैंतालिस योजन चलता है। इस मार्गमें क्रमश:- याम्बपुर, सीरिपुर, नगेन्द्रभवन, गन्धर्वनगर, शैलागम, क्रीळपुर, कुरपुर, विचित्रभवन, बह्मपद, दु:खद, नानाक्रन्दपुर, सुतप्तभवन, रौद्रनगर, पयोवर्षण, शोताक्य और बहुधर्म-भीतिभवन नामक प्रसिद्ध पुर है।

त्रयोदशाह अर्थात् तेरहवाँके दिन यमदृत प्रेतको उस

मार्गपर उसी प्रकारसे पकडकर ले जाते हैं, जिस प्रकार मनुष्य बंदरको पकडकर ले जाता है। उस प्रकारसे बैंधा हुआ वह प्रेत चलते हुए नित्य 'हा पुत्र, हा पुत्र'का करुण बिलाप करता है। वह कहता है कि मैंने किस प्रकारका कर्म किया है जो ऐसा कह मैं भोग रहा है। वह यह भी कहते हुए चलता है कि यह मनुष्य-योनि कैसे प्राप्त होती है। मैंने इसको व्यर्थमें गैवा दिया है। प्राणी इस मनुष्य-योनिको यहत बढ़े पुण्यसे प्राप्त करता है। उसको पाकर मैंने याचकोंको स्वार्जित धन दानमें नहीं दिया। आज वह भी पराधीन हो गया है। ऐसा कहकर वह गद्गद हो उठता है । जब यमदृत उसको अत्यधिक पीढ़ित करते है तो वह बार-बार अपने पूर्व-शरीरजन्य कर्मीका स्मरण करता हुआ इस प्रकार कहता है-

सख-द:खंका दाता कोई दूसरा नहीं है। जो लोग सुख-द:खका दाता दसरेको समझते हैं, वे कुच्दि ही हैं। जीवात्मा सदैव पहले किये गये कर्मका भोग करता है। है शंकुके आकारका चुभनेवाला, मांस खानेवाले जन्तु तथा देही। तुमने जो कुछ किया है, उसमें निस्तार करो^र। मैंने अग्निसे परिष्याप्त रहता है। जो सुकृती हैं उनका मार्ग सब न दान दिया है, न अग्निमें आहुति डाली है, न हिमालय प्रकारसे सीम्य है, उनको उस मार्गमें कोई कष्ट नहीं होता. पर्वतको गुफामें जाकर तपस्या ही की है और न तो गड़ाके

१-पार्वणादि ब्राद्धोंमें निर्दिष्ट पिण्डवानविधि ।

२-दोपमनं वर्त वस्त्रं यक्तिविद्वस्त् दीयते । प्रेतहब्देन तहेर्प मृतस्यानन्ददायकम्॥ (१५) ७५)

३-मानुष्यं लभ्यते कस्मादिति क्र्ते प्रमर्थति । महतः पुण्यचीनेन मानुष्यं कन्म लभ्यते ॥ न तत् प्राप्य प्रदर्श हि माथकेभ्यः स्वकं धनम् । परार्थीनं तदभवदिति क्र्ते (रीति) सगद्रदः । (१५।८६-८७)

४-सुखस्य द:खस्य न कोऽपि दात परो ददावीत कुषुद्धिरेया। परा कर्त कर्म मदैव भूज्यते देहिन् क्वविज्ञिस्तर वत् लवा कृतम्॥ (१६।८९)

कुछ भी किया है, उसीका फल भोग करो। हे देही। यहले तुमने नित्य न दान दिया है, न गोदान किया है, न आहिक कृत्य किया है, न तो बेदका दान किया, न शास्त्रको देखा और न शास्त्रबोधित मार्गका सेवन किया, इसलिये हे जीव! जैसा तमने किया है, अब उसीमें अपना निस्तार करो। है देही। तुमने जलरहित देशमें मनुष्य और पशु-पक्षिपोंके लिये जलाशयका निर्माण नहीं करनाया है, न गायोंकी क्षधा-शान्तिके लिये गोचर-भूमि ही छोड़ी है। हे देही। जो कुछ किया है, अब उसका फल भीग करी।

हे पश्चित्। पुरुष प्रेतके द्वारा कहे गये उक्त बचनोंको

परम पवित्र जलका ही सेवन किया है। हे जीव! तुमने जो . मैंने सुनाया। अब स्त्रीका त्रारीर लेकर देही पूर्व किये हुए कमोंके सम्बन्धमें जैसा कहता है, उसे सावधान होकर सुनो—'हे देहिन्। मैंने पतिके साथ रहकर उन्हें सुख नहीं दिया है। उनके मरनेपर मैं उनके साथ चितामें भी नहीं प्रविष्ट हुई हूँ और न तो उनके मर जानेपर उस वैधल्य-बतका हो पालन किया है, अतएव जो कुछ नहीं किया है उसका फलभोग मैं कर रही हैं। मैंने मासोपवास अथवा चान्द्रायणवतके नियमोंसे इस शरीरका शोधन भी नहीं किया है। हे जीव! स्त्रीका शरीर बहुत-से दु:खोंका पात्र है, पहले किये गये बुरे कमोंके अनुसार मैंने इसे प्राप्त किया और इसे भी व्यर्थ ही गेंवा दिया। (अध्याय १५)

यममार्गके सोलह पुरोंका वर्णन

श्रीभगवानुने कहा-हे खगेश! इस प्रकार करुण-क्रन्दन और विलाप करते हुए अत्यधिक दु:खित प्रेतको सप्रह दिनतक अकेले वायुमार्गमें हो यमदुर्तीके द्वारा निर्दयतापूर्वक खींचा जाता है। अद्वारहर्वे दिन-रात पूर्ण होनेपर पहले वह 'याव्यपुर' पहुँचता है। उस रमणीक नगरमें प्रेतोंके महान् गण रहते हैं। वहाँ पुष्पभद्रा नदी तथा देखनेमें सुन्दर लगनेवाला एक कटवृक्ष है। यमदृत वहाँ पहुँचकर उस प्रेतको विश्राम करनेका समय देते हैं। यहाँ प्रेत द:खित होकर अपनी स्त्री और पुत्रादि सगे-सम्बन्धियाँसे प्राप्त होनेवाले सुखका स्मरण करता है। मार्गमें पहनेवाले परित्रमसे थका एवं भूख-प्याससे व्याकुल वह प्रेत वहाँ करुण विलाप करता है। उस समय वह धन, स्त्री, पुत्र, घर, सुख, नौकर और मित्रके विषयमें तथा अन्य सभीके विषयमें सोचता है। उस नगरमें भूख-व्याससे पीड़ित इस प्रेतको देखकर यमदत कहते हैं।

यमदतीने कहा-'हे प्रेत। कहाँ धन है, कहाँ पुत्र है, कहाँ स्त्री है, कहाँ घर है और कहाँ तू इस प्रकारका दुःख झेल रहा है! चिरकालतक अब तू अपने कमीसे ऑर्जित पापोंका भीग कर और इस महापथपर चल। हे परलोकके पथिक! तुम जानते हो कि राहगीरोंका यल पायेयके वज्ञमें

है। विश्वित हो तुझे उस मार्गसे चलना होगा, जहाँ कुछ क्रय-विक्रय करना भी सम्भव नहीं है।'

हे पश्चित्रज। यमदृतांके द्वारा इस प्रकार कहे जानेके बाद वह पमदुर्तोके द्वारा मुद्ररोसे मारा जाता है। तत्पक्षात् स्नेहवश अथवा कृपा करके भूलोकमें पुत्रीके हाधींसे दिये गये मासिक पिण्डको यह खाता है। उसके बाद वहाँसे वह 'सौरिपुर'के लिये चल देता है। उस नगरमें कालरूपधारी जंगम नामका राजा है। उसको देखकर प्रेत भयभीत हो उठता है और विश्वाम करना चाहता है। त्रैपाक्षिक श्राद्धनें दिये गये अन्न और जलका वह उसी नगरमें उपभोग करके दिन और यत चलकर सुन्दर बसे हुए 'नगेन्द्रभवन' नामक नगरको और जाता है। उस महापथपर चलते हुए महाभयंकर वन देखकर वह करुण विलाप करता है। वहाँके कष्टोंसे दु:खित होकर वह बार-बार रोता है। दो मास क्लिनेके पहात वह उस नगरमें पहुँचता है। यहाँ वह अपने बन्धु-बान्धवाँके द्वारा दिये गये अन्न और जलको खाता-पीता है। उसके बाद यमदृत पाशमें बाँधकर उसे दु:ख देते हुए पुन: आगेकी ओर ले जाते हैं। तीसरे मासमें वह 'गुन्धर्वन्तर' पहुँच जाता है। तीसरे मासमें दिये गये ब्राद्ध-पिण्डका यहाँ भक्षण करके चौथे मासमें वह 'शैलागम

१-मया न दर्त न हुतं हुतारुने तथो न तथं डिमरीलगडरे । न सेवित गांगमहो महाजलं देहिन् क्वांचिन्तिरतः यत् त्यया कृतम्। न निरुदानं न गवाहिकं कृतं न वेददानं न च साम्बदुम्तकम् । पुरा न दृष्टं न च सोवितोऽध्या देहिन् क्वचिनिस्तर यत् त्यया कृतम्। जलाशयो नैव कृत्ये हि निजेते मनुष्यहेतो: पशुप्रधिवेतवे । गोतृत्तिहेद्वेतं कृतं हि गोवरं देहित् क्वांचिनिस्तर यत् त्यया कृतम्। (84180-97)

है, न तोर्थमें जाकर स्नान ही किया है और न भगवानुकी उनके उस वचनको सुनकर वह प्रेत 'हाय देव!' ऐसा कहत

होती है। वहाँ वह चौथे मासमें दिये गये आद-पिण्डको वैसा ही भोग कर।' ऐसा कहनेके बाद यमदूतोंसे हृदयमें खाकर संतुष्ट होता है। इसके बाद प्रेत पाँचवें मासमें मारा बाता हुआ वह प्रेत उसी समय किंकर्तव्यविमृद हो 'क्रीअपुर' जाता है। उस पुरमें पुत्रोंके द्वारा दिये गये पाँचवें जाता है और वैतरणीके दूसरे तटपर दिये गये पाण्मासिक मासके श्राद्धके पिण्डको खाता है। तदनन्तर छठे मासमें प्रेत 'क्ररपुर' नामक नगरकी यात्रा करता है। उस पुरमें छठे मासमें पुत्रोंद्वारा दिये गये श्राद्ध-पिण्डको खाकर उसकी संतुष्ति होती है; किंतु आधे मुहर्तभर विश्वाम करनेके बाद उसका इदय पुन: दु:खसे कॉंपने लगता है। यमदुर्तीसे तर्जित होकर वह प्रेत उस पुरको लाँचकर 'विचित्रभवन'को और प्रस्थान करता है जहाँका राजा विचित्र है। यमराजका

छोटा भाई सौरि ही यहाँके राज्यपर शासन करता है।

हे पक्षिराज । पाँच मास और पेंद्रह दिनपर कनवाण्यासिक

ब्राज्य होता है। अत: यमद्वेंकि द्वारा संत्रस्त वह प्रेत उसी

'विचित्रभवन'में कनपाण्मासिक ब्राट-पिण्डका उपभोग करता है। मार्गर्मे बार-बार उसको भूख पीड़ा पहुँचाती है। अत: यमदुतोंके द्वारा रोके जानेपर भी वह उस मार्गमें विलाप करता है कि क्या कोई पुत्र या बान्धव है? जो मेरे भरनेपर शोक-सागरमें गिरते हुए मुझे सुखी नहीं कर रहा है ? इसी समय वहाँपर उसके सामने हजारों चल्लाह आते हैं और कहते हैं कि 'सौ योजन विस्तृत मबाद और रकसे पूर्ण नाना प्रकारकी मर्छालचोंसे व्याप्त, नाना पश्चिगणोंसे आवृत महावैतरणी नदीको पार करनेकी इच्छा करनेवाले तुम्हें हम लोग सुखपूर्वक तारेंगे। किंतु हे पधिक! यदि उस मर्त्यलोकमें तुम्हारे द्वारा गोदान दिया गया है तो उस नावसे तुम पार जाओ।' मनुष्योंका अन्त समय आनेपर वैतरणी-गोदान ही हितकारी होता है। अतः सरीर स्वस्थ रहनेपर वैतरणी-व्रत करना चाहिये और वैतरणी नदीको पार करनेकी इच्छासे विद्वान् ब्राह्मणको गोदान करना चाहिये। वह पापीके समस्त पापोंको विनष्ट करके उसे विष्णुलोक ले जाता है। जिसने बैतरणी-दान नहीं किया है, वह प्रेत पड़ती है। वहाँकी ठंडीसे व्यक्ति, भूखसे व्यक्ति वह प्रेत उसी नदीमें जाकर हुवने लगता है। डुवते हुए स्वयं अपनी इस आशाभरी दृष्टिसे दसों दिशाओंको देखने लगता है कि निन्दा करता हुआ कहता है कि 'मैंने पायेय-हेतु ब्राह्मणको 'क्या मेरा कोई बन्धु-बान्धव है जो मेरे इस दु:खको दूर कुछ भी दान नहीं दिया है। न मैंने दान किया है, न तो मैंने अग्निमें आहुति दी है, न भगवन्नामका उप ही किया 'तेरा पुण्य वैसा कही है, जो इस कप्टमें सहायता कर सके।

नामक नगर पहुँचता है। यहाँ प्रेतके ऊपर पत्थरोंको वयां स्तुति हो की है। हे मूखं! जैसा कर्म तुमने किया है, अब ब्राद्धके घटाटिक दान एवं पिण्डका भोजन करके आगेकी ओर बढ़ता है। अत: हे ताध्यें! घाण्मासिक श्राद्धपर सत्पात्र

ब्राह्मणको विशेषरूपसे भोजन कराना चाहिये। हे गरुड। इसके बाद वह प्रेत एक दिन-रातमें दो सी सैतालीस चोजनको गतिसे चलता है। सातवाँ मास आनेपर वह 'बहापद' नामक पुरमें पहुँचता है। सप्तम मासिक ब्राइमें जो कुछ दान दिया गया है, उसको खाकर आठवें मासको समाविक उसको यात्रा 'दु:खदपुर' तथा 'नानाकन्दनप्र'की और होती है। अत्यन्त दारुण क्रन्दन करते हुए नानाक्रन्दगणोंको देखकर वह प्रेत स्थयं शृत्यहदय एवं दु:खित डोकर बहुत जोर-जोरसे रोने लगता है। वहाँ आदवें गासके ब्राइको खाकर वह सुखी होता है। नगरको सोडकर यह 'ततपुर' चाता जाता है। 'सुतप्तभवन'में पहुँचकर प्रेत नवें मासके ब्राइमें पुत्रके द्वारा किये गये पिण्डदान एवं कराये गये ब्राह्मण-भोजनको खाता है। दसवें मासमें वह 'रीहनगर' जाता है। वहाँ वह दसवें मासके ब्राद्धका भीजन करके आगे स्थित 'पयोवर्षण' नामक पुरके लिये चल देता है। वहाँ पहुँचकर वह स्वतहवें मासके ब्राह्मका भोजन करता है। वहाँ मेघोंको ऐसी जलवर्षा होती है, जिससे प्रेतको बहुत ही कष्ट होता है। तदनन्तर आगेकी ओर बढ़ता हुआ वह प्रेत अत्यन्त कड़कती हुई धूप और प्याससे व्यक्ति हो उठता है। बारहवें मासमें पुत्रने श्राद्धमें जो कुछ दान दिया है, उसका ही वह दु:खित प्रेत वहाँपर भीग करता है। इसके बाद वर्ष-समाप्तिके कुछ दिन शेष रहनेपर अथवा ग्यारह मास पंद्रह दिन बोत जानेपर वह 'शीताढ्यपुर' जाता है, जहाँ प्राणियोंको अत्यन्त कष्ट देनेवाली उंडक कर दे?' उस समय यमदूत उस प्रेतसे यह कहते हैं कि

है। निश्चित ही पूर्वजन्ममें किया गया पुण्य देश है। उसको बातोंको ये ही ब्रह्माजीके पुत्र श्रवणदेश चित्रगुप्त तथा 'मैंने संचित नहीं किया है', ऐसा मन-ही-मन अनेक प्रकारसे यमग्रवसे ब्लाते हैं। वे दूरसे ही सब कुछ सुनने और देखनेमें विचार करके वह प्रेत पन: धैर्यका सहाग्र लेता है।

इसके बाद वहाँसे चौवालीस योजन परिक्षेत्रमें फैला हुआ गन्धर्व और अप्सराओंसे परिकाल अत्यन्त मनोरम 'बहुधर्मभीतिपुर' पड़ता है, जहाँ चौरासी लाख मूर्व एवं उग्र पहियाँ हैं। उनकी भी शक्ति वैसी ही है, जैसी अमूर्त प्राणी निवास करते हैं। इस पुरमें तेरह प्रतीहार हैं। उनके पतियोंकी है। वे मर्त्यलोकके अधिकारीके रूपमें जो ब्रह्माजीके पुत्र हैं और अवण कहलाते हैं। वे प्राणियोंके हैं। वत, दान, स्तुतिसे जो उनकी पूजा करता है, उसके शभाशभकर्मका बार-बार विचार करके उसका वर्णन करते हैं। मनुष्य जो कहते और करते हैं, उन सभी

समयं हैं। इस प्रकारकी चेष्टावाले एवं स्वर्गलोक और भूलोक तचा पातालमें संबरण करनेवाले वे अवण आठ हैं। उन्होंके समान उनकी पृथक-पृथक श्रवणी नामक लिये वे सौंप्य और सखद मृत्य देनेवाले हो जाते हैं। (अध्याय १६)

समस्त शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी ब्रह्माके पुत्र श्रवणदेवोंका स्वरूप

श्रीगरुडने कहा-है देव! यह एक संदेह मेरे इदयको बाधित कर रहा है कि बावण किसके पुत्र हैं, यमलोकमें वे किस प्रकारमें रहते हैं? हे प्रभी! किस शिक्तके प्रधावसे वे मानव-कर्मको जान शेते हैं? वे कैसे किसी बातको सन लेते हैं? उनको यह ज्ञान किससे प्राप्त हुआ है? हे देवेंग्रर! उन्हें भोजन कहाँसे प्राप्त होता है ? आप प्रसन्न होकर मेरे इस समस्त संदेहको नष्ट करें। पक्षिराज गरुडके इस कथनको सुनकर भगवान् श्रोकृष्ण बोले-

श्रीकृष्णने कहा-हे तास्ये। सभी प्राणियोंको सुख देनेवाले मेरे इस वचनको तुम सुनो। ब्रवणसे सम्बन्धित उन समस्त बातोंको तुम्हें मैं बताकैगा। प्राचीनकालमें जब समस्त स्थावर- जंगमात्मक सृष्टि एकाकार हो गयी थी और में समस्त सृष्टिको आत्मलीन करके श्रीरसागरमें सी रहा था। उस समय भेरे नाभिकमलपर स्थित ब्रह्माने बहुत वर्षीतक तपस्या की। उन्होंने एकाकार उस सृष्टिको चार प्रकारके प्राणियोंमें विभक्त किया। तदननार ब्रह्मासे ही बनी सृष्टिके पालनका भार विष्णुने स्वीकार किया। तत्पक्षात् ब्रह्माके द्वारा संहारमूर्ति रुद्रका निर्माण हुआ। उसके चाद समस्त चराचर जगतमें प्रवाहित होनेवाले वाय, अत्यन्त तेजस्वी सूर्य तथा चित्रगुतके साथ धर्मराजकी सृष्टि हुई।

इन सभीकी रचना करके ब्रह्मा पुन: तपस्यामें निमन्न हो गये। विष्णुके नाभिपङ्कुजर्मे तपस्या करते हुए उनको बहुत वर्ष बीत गये। वहींपर लोकसृष्टिमें लगे हुए ब्रह्माने कहा कि जिन लोगोंकी उत्पत्ति पहले हुई है, उन सभीको विमानसे परलोकको जाते हैं। इनके अतिरिक्त प्राणी जो

अपनी चोन्यताके अनुसार कर्ममें लग जाना चाहिये। अत: हद, विच्नु तथा धर्म पृथ्वोके शासन-कार्यमें लग गये, किंतु उन लोगोंने कहा कि हम सभी लोगोंको लोक-व्यवहारका कुछ भी डान नहीं है। इस सम्बन्धमें आप ही कुछ बतायें। इस विषयमें चिन्तित होकर सभी देवताओंने उस समय परस्पर विचार-विमर्श किया। तत्पश्चात् देवताओंने हाथमें पत्र-पुष्प लेकर ब्रह्म-मन्त्रका ध्यान किया। उसके बाद देवताओंकी प्ररणासे ब्रह्माने अत्यन्त तेवस्वी एवं बडे-बडे नेजीकले तथा आयना तेजस्वी जारह पुत्रीको जन्म दिया। इस संसारमें जो कोई जैसा भी शुभ या अशुभ बोलता है, उसे वे अल्पन शोध ब्रह्माके कानोंतक पहुँचाते हैं। हे पश्चित्। दरसे ही सुनने एवं दूरसे ही देख लेनेका विशेष जान उन्हें प्राप्त है। चुकि वे सब कुछ सुन लेते हैं, उसीके कारण उन्हें 'ऋवण' कहा गया है। वे आकाशमें रहकर प्राणियोंकी जो भी चेष्टा होती है, उसको जानकर धर्मराजके सामने मृत्युकालके अवसरपर कहते हैं। उनके द्वारा प्राणियोंके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-इन चारोंकी विवेचना उस समय धर्मराजसे की जाती है। हे बैनतेय। संसारमें धर्म, अर्थ, काम और मोध-ये चार मार्ग हैं। जो उत्तम प्रकृतिवाले प्राणी हैं, वे धर्ममार्गसे चलते हैं। जो अर्थ अर्थात धन-धान्यका दान करनेवाले प्राणी हैं, वे विमानसे परलोक जाते हैं। जो प्राणी अभिलिषत याचककी इच्छाको संतृष्ट करनेवाले हैं, वे अश्वींपर सवार होकर प्रस्थान करते हैं। जो प्राणी मोक्षको आकाइका रखते हैं, वे हंसयुक्त धर्मादि पुरुषार्थचतुष्टयसे हीन है, वह पैदल ही काँटों तथा मनुष्य सभी देवताओंसे पुजित होकर सुख प्राप्त करता है।

वर्धनी और जलपात्रके द्वारा मेरे सहित इन श्रवण देवोंकी प्राप्त करते हैं। पूजा करता है, उसको मैं वह प्रदान करता हूँ, जिसको प्रांति देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। भक्तिपूर्वक जुभ एवं पवित्र उत्पत्ति और जुभ चेष्टाओंको सुनता है, वह पापसे संलिप्त ग्यारह ब्राह्मण तथा बारहवें सपत्रीक ब्राह्मणको भोजन नहीं होता है। वह इस लोकमें सुख भोगकर स्वर्गमें कराकर मेरी प्रसन्नताके लिये पूजा करनी चाहिये। ऐसा महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता है। (अध्याय १७)

पत्थरोंके बीचसे कष्ट झेलता हुआ 'असिपत्रवन'में जाता है। उनको पुजासे मैं और चित्रगृष्ठके सहित धर्मराज प्रसन्न होते हे पक्षिराज! इस मनुष्यलोकमें जो कोई भी पक्वान्त. हैं। उन्होंको संतुष्टिसे धर्मपरायण लोग मेरे थिष्णुलोकको

हें खगेंधर! जो प्राणी इन श्रवण देवोंके माहात्म्य,

विविध दानादि कर्मोंका फल प्रेतको प्राप्त होना, पददानका माहात्म्य, जीवको अवान्तर-देहकी प्राप्तिका क्रम

वचनोंको सुनकर चित्रगुप्त पुन: क्षणभर स्वयं ध्यान करके प्राणियोंके लिये सुखकारी होता है। मनुष्य जो कुछ भी दिन-रात पाप-पुण्य करते हैं, उन्हें अब मैं संक्षेपमें तुम्हें प्राणियोंके यम-मार्गके निस्तारका धर्मराजसे निवेदन करते हैं।

भी शुभाशुभ कमें करता है, उन सबका वह भोग करता है, एकादशाहमें पिण्डदानसे देहशुद्धि होती है। जलसे है। इस प्रकार मैंने तुम्हें प्रेतमार्गका निर्णय सुना दिया। परिपूर्ण चढ़ेका दान करनेसे यमदूत संतुष्ट होते हैं। उस दिन मृत्युके पक्षात् प्रेत कहाँ रुकते हैं, उन सभी स्थानोंका भी शाय्यादान करनेसे मनुष्य विमानपर चढ़कर स्वर्गलोकको वर्णन तुमसे कर दिया। जो मनुष्य यह सब समझकर जाता है। विशेषत: द्वादशाहके दिन सभी प्रकारका दान देना अन्नदान तथा दीपदान करता है, वह उस महामार्गमें चाहिये और तेरह पददानके लिये विहित श्रेष्ठ वस्तुओंको सखपूर्वक गमन करता है।

पार्गमें पूर्ण प्रकाशके साथ गमन करते हैं। कार्तिकमासमें गमन करता है।



श्रीकृष्णने कहा-हे पश्चिन्। इन अवण देवाँके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको रात्रिमें किया गया दीपदान

उपाय बताकैंगा।

है तार्स्य! मनुष्य वाणी, शरीर और मनसे जो है गरुड! बुबोत्सर्गके पुण्यसे मनुष्य पितृलोकको जाता. द्वादशहके दिन अथवा जो जीवित रहते हुए अपने कल्याणके जो दीपदान करते हैं, ने कुताँसे परिव्यात लक्ष्यहोंन निमित्त दान देता है, वह उसीके सहारे महामार्गमें सुखपूर्वक

हे खगराज। उस यममार्गमें सर्वत्र एक-जैसा ही व्यवहार होता है। उत्तम, मध्यम और अधमरूपमें किसी भी प्रकारका वर्गीकरण वहाँ वर्जित है। जिसका भाग्य जैसा होता है, उसको उस मार्गर्मे वैसा ही भोग प्राप्त होता है। प्राणी स्वयं अपने लिये स्वस्थितिसे ब्रद्धापूर्वक जो कुछ दान देता है, उसको वहाँपर प्राप्त करता है। मरनेपर जो बन्ध-बान्धवाँके द्वारा उसके लिये दिया जाता है, उसका आवय ले करके वह सुखी होता है।

गरुडने कहा-हे देवेश। तेरह पददान किसलिये करना चाहिये? यह दान किसे देना चाहिये? यह सब वयोचित रूपसे मुझे बताये।

श्रीभगवान्ने कहा-हे पक्षिराज! छत्र, पादुका, वस्त्र,

मुद्रिका, कमण्डल, आसन और भोजनपात्र-चे सात लोहतोट, सविच, सम्प्रतापन, महानरक, कालोल, सजीवन, प्रकारके पद माने गये हैं। पूर्ववर्णित महापद्यमें जो महापद, अवोचि, अन्धतामिस, कुम्भीपाक, असिएत्रवन महाभयंकर 'रौद्र' नामक आतप (भूप) है, उसके द्वारा और पतन नामवाले हैं। घोर यातना भोगते हुए जिनके बहुत-मनुष्य जलता है। छत्रका दान देनेसे प्रेतको तुष्टि देनेवाली से वर्ष बीत जाते हैं और यदि संतति नहीं है तो वे यमके शीतल छाया प्राप्त होती है। पादुका दान देनेसे मृतप्राणी दृत बन जाते हैं। यमके द्वारा भेजे गये वे दृत मरे हुए मनुष्यके अश्वारुद्ध होकर घोर असिपत्रवनको निश्चित ही पार कर लिये प्रतिदिन बन्ध-बान्धवाँसे दानस्वरूप प्राप्त अन्त और जाते हैं। मृतप्राणीके उद्देश्यसे ब्राह्मणको आसन और भोजन जलका सेवन करते हैं। मार्गके मध्यमें जब ये भूख-प्यासरे देकर स्थागत करनेपर प्रेत महापथमें धीर-धीर चलता हुआ व्याकुल हो जाते हैं तो परे हुए ग्राणीका हिस्सा ही लूटकर उस दान दिये गये अन्तको सखपूर्वक ग्रहण करता है। खा-पी जाते हैं। मासके अन्तमें जो भोजन और पिण्डदान कमण्डलुका दान देनेसे प्राणी उस यमलोकके महापवमें देते हैं, जब उसकी प्राप्त उन्हें हो जाती है तो वे सभी फैले हुए बहुत धूपवाले, वायुरहित और जलहीन मार्गमें उसको खाकर संतुष्ट हो जाते हैं। इसीसे उन्हें प्रतिदिन निश्चित ही यथेण्ड जल एवं वायु प्राप्तकर सुखपूर्वक गमन वर्षभर तृप्ति मिलती है। करता है। मृतकके उद्देश्यसे जो व्यक्ति जलपूर्ण कमण्डलुका दान करता है, उसको निश्चित ही हजार पौसलोंके दानका फल प्राप्त होता है।

उदारतापूर्वक वस्त्रका दान देनेसे प्रतात्माको महाक्रोधी काले और पीले वर्णवाले अत्यन्त भयंका यमदत कट नहीं देते हैं। मुद्रिका दान देनेसे उस महापयमें अस्त-ऋस्वसे युक्त दौड़ते हुए यमदृत दिखायी नहीं देते हैं। पात्र, आसन, कच्चा अन्न, भोजन, युत तथा यज्ञोपवीतके दानसे पददानकी पूर्णता होती है। यममार्गमें जाता हुआ भूख-प्याससे व्याकृत एवं थका हुआ प्रेत भैंसके दूधका दान करनेसे निश्चित ही सलका अनुभव करता है।

गरुडने कहा-हे विभो। पृत व्यक्तिके उद्देश्यमे जो कुछ भी दान अपने घरमें किया जाता है, वह प्रेततक किसके द्वारा पहुँचाया जाता है?

श्रीभगवानने कहा-हे पश्चित्! सर्वप्रथम बरुज दानको ग्रहण करते हैं. उसके बाद वे उस दानको मेरे हाबमें दे देते हैं। मैं सुर्यदेवके हाथोंमें सीप देता हैं और सुर्यदेवसे वह प्रेत उस दानको लेकर मुखका अनुभव करता है।

बरे कर्मके प्रभावसे वंशका विनाश हो जाता है और उस कुलके सभी प्राणियोंको नरकमें तबतक रहना पहता है, जबतक पापका क्षय नहीं हो जाता है।

इन नरकोंकी संख्या बहुत है। पर इनमेंसे इक्कीस नरक मुख्यरूपसे उल्लेख्य हैं-- तामिस, लौहरांक, महार्शरव, शाल्यली, रीरव, कुड्वल, कालसूत्र, पुतिमृत्तिका, संघात,

इस प्रकार किये गये पुण्यके प्रभावसे प्रेत 'सीरिपुर'की

पात्रा करता है। तदनन्तर एक वर्ष बीतनेपर वह प्रेत,

यमग्रजके भवनके सनिकट स्थित 'बहुभौतिकर' नामक

नगरमें पहुँचकर दशागात्रके पिण्डसे निर्मित हस्तमात्र परिमाणके

शरीरको छोड देता है। जिस प्रकार रामको देखकर परहुरमका तेज उनके जरीरसे निकलकर राममें प्रविष्ट हो गया था, उसी प्रकार कर्मज शरीरका आश्रप लेकर वह पूर्व करोरका परित्यान कर देता है, अङ्ग्रहमात्र परिमाणवाला वायुरूप वह तरीर क्रमीपत्रपर चढ़कर आश्रय लेता है। 'जिस प्रकार यनुष्य चलते हुए एक पर भूमिपर रखकर दूसरे पैरको आगे बडानेके लिये उठाता है, जैसे तृणजलीका (तृण जीक) एक पाँक्पर स्थिर होकर दूसरे पाँक्को आगे बढ़ाती है, वैसे ही जीव भी कर्मानुसार एक देहसे दूसरे देहको धारण करता है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रका परित्याग कर नवीन वस्त्र धारण कर लेता है, उसी प्रकार जीव अपने पुराने शरीरका त्याग करके नये शरीरको धारण करता है -वर्जिन्छन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति। कर्मानुगोऽवशः॥ तृणजलीकेव देही वासांसि जीर्णानि यथा विहास गुह्याति नरोऽपराणि । विद्वाय जीणां-न्यन्यानि संदाति नवानि देही॥

(\$8-\$8125)

(अध्याय १८)

जीवका यमपुरीमें प्रवेश, वहाँ शुभाशुभ कर्मोंका फलभोग, कर्मानुसार अन्य देहकी प्राप्ति, मनुष्य-जन्म पाकर धर्माचरण ही मुख्य कर्तव्य

कर्मजन्य शरीरका आश्रय लेकर जीव यसके साथ चित्रगुतपुरको जायगा। दानसे धर्म सुलभ हो जाता है और यममार्ग ओर जाता है। चित्रगुप्तपुर बीस योजन विस्तृत है। वहाँ मुखावह हो जाता है। इस यमलोकका मार्ग अत्यन्त विशाल रहनेवाले कार्यस्थ सभी प्राणियोंके पाप-पृथ्यका भली है, इसकी दुर्गमताके कारण इसका अनुगमन कोई नहीं प्रकारसे सर्वेक्षण करते हैं। यहादान करनेपर वहाँ गया हुआ करना चाहता। हे वत्स! बिना दान-पुण्य किये प्राणीका व्यक्ति सुखका भीग करता है। चीबीस योजन विस्तृत धर्मराजके भवनमें पहुँचना सम्भव नहीं है। उस रीट्र मार्गमें वैवस्वतपुर है। लौह, लवण, कपास और तिलसे पूर्ण पात्रका दान करनेपर इस दानके फलस्वकप यसपुरमें निवास करनेवाले दाताके पितर लोग संतुप्त डोते हैं। वहाँपर धर्मध्वज नामका प्रतीहार सदैव द्वारपर अवस्थित रहता है। सप्तधान्यका दान देनेसे धर्मध्वज प्रसन्न हो जाता है। वहाँ जाकर प्रतीहार प्रेतके शुभाशुभका वर्णन करता है। धर्मराजका जो प्रशस्त एवं सुन्दर स्वरूप है, उस स्वरूपका दर्शन



सजन और सुकृतियोंको प्राप्त होता है। जो दुएचारी जन हैं, वे अत्यन्त भयंकर यमके स्वरूपको देखकर भयभीत होकर हाहाकार करते हैं।

श्रीभगवान्ने कहा-वायुरूप होकर भूखसे पीड़ित, सुकृती मेरे इस मण्डलका भेदन करके ब्रह्मलोकको महाभयंकर यमके सेवक रहते हैं। एक-एक पुरके आगे एक-एक हजार सेवकोंकी उपस्थित रहती है। यातना देनेवाले यमदत पापीको प्राप्त करके पकाते हैं। वहाँपर पमद्रत उसको एक मासतक रखते हैं। उस मासके बीतते हो वह एक चौबाई शेष रह जाता है।

हं कश्यपपुत्र। जिन लोगोंने औध्वंदैहिक क्रियामें विहित दानोंको नहीं किया है, वे लोग बहुत कर झेलते हुए उस मार्गमें चलते हैं। अत: प्राणीको यथाशकि दान देना चाहिये। दान न देनेपर प्राची पशुके समान यमदूतीके द्वारा पालमें बीधकर ले जाया जाता है। मनुष्य जैसा-जैसा कर्म करता है, उसी प्रकारकी योनियें उसकी जाना पहता है। वैसा हो उन योनियोंमें भोग भोगता हुआ वह सभी प्रकारके लोकोंमें विचरण करता है। जब मनुष्य-योनि प्राप्त होती है, तब भी लीकिक सुखोंको अनित्य जानकर प्राणीको धर्माचरण करना चाहिये।

कृषि, भरम अथवा विद्वा ही शरीरकी परिणति है। जो मनुष्य-शरीर प्राप्त करके भी धर्माचरण नहीं करता, वह हाथमें दीपक रखता हुआ भी महाभयंकर अन्धकृपमें गिरता है। मनुष्य-जन्म प्राणीको बहुत बड़े पुण्यसे प्राप्त होता है। जो जीव इस योनिको पाकर धर्मका आचरण करता है, उसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। धर्मको व्यर्ध माननेवाला प्राणी दु:खपूर्वक जन्म-मरण प्राप्त जिन मनुष्योंने दान किया है, उनके लिये वहाँपर कहीं करता है। हे पश्चिन्। सैकड़ों बार विभिन्न योनियोंमें भी भय नहीं है। आये हुए सुकृती जनको देखकर यमराज जन्म लेनेके बाद प्राणीको मनुष्य-योनि प्राप्त होती अपने आसनका इसलिये परित्याग कर देते हैं कि यह है, उसमें भी द्विज होना अत्यन्त दुर्लभ है। जो व्यक्ति

१-कायस्य नामको एक देवयोनि विशेष है।

२-प्राप्तं सुकृतिनं दृद्वा स्थानान्यलति सूर्यवः। एष में मण्डलं भिल्वा बह्यलोकं प्रवास्थति॥ (१९।९)

द्विज होकर धर्मका पालन करता है और विभिन्न धर्मको हो कृपासे अमरत्व हस्तगत कर लेता है। व्रतोंका आदर एवं श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करता है, वह उस

への発力がつい

प्रेतबाधाका स्वरूप तथा मृक्तिके उपाय

श्रीगरुडने कहा-हे प्रभो! प्रेतयोनिमें जो कोई भी दुष्कर्मी प्रेत नाना दोपोंमें प्रवृत्त होते हैं।

श्रीकृष्णने कहा-हे पश्चिराज। जहाँ प्रेतगण निवास से लोग प्रेतयोनिको ही प्राप्त होते हैं। करते हैं, उसको तुम सुनो। छलसे परापे धन और परायी श्रीविष्णुने कहा-हे गरुड। प्रेत होकर प्राणी अपने

प्राणी जाते हैं, वे कहाँ वास करते हैं? प्रेतलोकसे गरुडने कहा—हे प्रभी। वे प्रेत किस रूपसे किसका निकलकर वे कैसे और किस स्थानमें चले जाते हैं? क्या करते हैं? किस विधिसे उनकी जानकारी प्राप्त की जा चौरासी लाख योनियोंसे परिव्यात, यम तथा हजारों भूतोंसे सकती है? क्योंकि वे न कुछ कहते हैं, न बोलते हैं? हे रक्षित होनेपर भी प्राणी नरकसे निकलकर कैसे इस हचोकेश! यदि आप मेरा कल्याण चाहते हों तो मेरे मनके संसारमें विचरण करते हैं ? इसे आप बतानेकों कृपा करें। इस व्यामोहको दूर कर दें। इस कॉलकालमें प्राय: यहत-

स्त्रीका अपहरण तथा होहसे मनुष्य निताचर योनिको प्रात ही कुलको पौद्दित करता है, वह दूसरे कुलके व्यक्तिको होते हैं। जो लोग अपने पुत्रके हितचिन्तनमें हो अनुरक्त तो कोई आपराधिक छिद्र प्राप्त होनेपर ही पोड़ा देता है। रहते हैं तथा सभी प्रकारका पाप करते हैं। वे अरोस्सहित जीते हुए तो वह प्रेमीकी तस्ह दिखायी देता है, किंतु मृत्यू होकर भूख-प्यासको अथाह पोड़ाको सहन करते हुए यत्र- होनेपर वही दुष्ट बन जाता है। जो भगवान बीहद्रके मन्त्रका तत्र भटकते रहते हैं। वे प्रेत चोरके समान इस महापद्यके जप करता है, धर्ममें अनुरक्त रहता है, देवता और लिये पितुभागमें दिये गये जलका अपहरण करते हैं। अतिधिकी पूजा करता है, सत्य तथा प्रिय बोलनेवाला है, तदननार पुन: अपने घरमें आकर वे मित्रके रूपमें प्रविष्ट उसको प्रेत पीड़ा नहीं दे पाते हैं। जो व्यक्ति सभी प्रकारकी हो जाते हैं और वहींपर रहते हुए स्वयं रोग-शोक आदिकी धार्मिक क्रियाओंसे परिश्वष्ट हो गया है, नास्तिक है, धर्मकी पीडासे ग्रसित होकर सब कुछ देखते रहते हैं। वे एक निन्दा करनेवाला है और सदैव असल्य बोलता है, उसीको दिनका अन्तराल देकर आनेवाले ज्वरका रूप धारण करके ग्रेत कष्ट पहुँचाते हैं । हे तार्क्य किलकालमें अपवित्र अपने सम्बन्धियोंको पीड़ा पहुँचाते हैं अचवा तिजरिया ज्वर क्रियाओंको करनेवाला प्राणी प्रेतयोनिको प्राप्त होता है। हे बनकर और शीत-वातादिसे उन्हें कष्ट देते हैं। उच्छिष्ट काल्यप! इस संसारमें उत्पन्न एक ही माता-पितासे पैदा अर्थात् जूठे अपवित्र स्थानोंमें निवास करते हुए उन प्रेतंकि हुए बहुतसी संतानोंमें एक सुखका उपभोग करता है, एक द्वारा सदैव अभिलक्षित प्राणियोंको कर देनेके लिये पाप कर्ममें अनुरक्त रहता है, एक संतानवान होता है, एक शिरोबेदना, विष्युचिका तथा नाना प्रकारके अन्य बहुत-से प्रेतमे पीडित रहता है और एक पुत्र धनधान्यसे सम्पन्न रोगोंका रूप धारण कर लिया जाता है। इस प्रकार ने रहता है, एकका पुत्र मर जाता है, एकके मात्र पुत्रियों ही

जातीशतेन लभते किल मानुषत्वं तत्रापि इसंधतरं खग थी द्विजनायः यस्तत्र पालपति लालपति वर्जान तस्त्रामुनं भवति इस्तगतं प्रसादात्॥ (१९।१६—२१) २-रद्भापी धर्मरतो देवतातिधिपुनकः । सत्यवाक प्रियवादो च न प्रेतैः स हि पोडधने ॥

सर्विकयापरिभ्रष्टो नास्तिको धर्मनिदकः। असत्यवादनितते नाः प्रेतैः स पौड्यते॥ (२०।१६-१७)

१-यया यथा कृतं कर्म तां तां योति क्रवेन्तरः। तत्तर्पेतः व भूकानी विचारेत् सर्वलीकगः॥ अक्तक्तं परिज्ञाय सर्वलोकोत्तरं सुखम् । यदा भवति मानुष्यं तदा धर्मं समाकोत्। कृमयो भाग विशा का देशनो प्रकृति: सदा। अन्यकृषे महारीदें दोपहरत: पतेन वै॥ महापुण्यप्रभावेण मानुष्यं जन्म लध्यते। यस्तव प्राप्त चौद्धर्मं स गसीत परमां गतिय।। अपि नावन् वृथा धर्म द:खमाचाति यति च

होती हैं। प्रेतदोषके कारण बन्ध-बान्धवोंके साथ विरोध प्रेतजन्य बाधा ही समझनी चाहिये। जो मनुष्य शुद्ध भावसे होता है। प्रेतयोनिक प्रभावसे मनुष्यको संतान नहीं होती सांबरसचिदक ब्राद्ध नहीं करता है, वह भी प्रेतबाधा है। है। यदि संतान उत्पन्न भी होती है तो वह मर जाती है। तीर्थमें जाकर दूसरेमें आसक हुआ प्राणी जब अपने प्रेतवाधाके कारण तो व्यक्ति पशुहीन और धनहींन हो जाता. सत्कर्मका परित्याग कर दे तथा धर्मकार्यमें स्वार्जित धनका है। उसके कुप्रभावसे उसकी प्रकृतिमें परिवर्तन जा जाता उपयोग न करे तो उसको भी प्रेतजन्य पीड़ा ही समझना है, वह अपने बन्धु-बान्धवाँसे शत्रुठा रखने लगता है। चाहिये। भोजन करनेके समय कोपयुक्त पति-पत्नीके बीच अचानक प्राणीको जो दु:ख प्राप्त होता है, वह प्रेतकाशके कलह, दूसरोंसे अनुता रखनेवाली बुद्धि—यह सब प्रेत-कारण होता है। नास्तिकता, जीवन-वृत्तिकी समाहि, सम्भूत पोड़ा है। वहाँ पुष्प और फल नहीं दिखायी देते अत्यन्त लोभ तथा प्रतिदिन होनेवाले कलह—यह प्रेतसे तबा पत्रीका बिरह होता है। वहाँ भी प्रेतोत्पन पीड़ा है। पैदा होनेवाली पीड़ा है। जो पुरुष माता-पिताकी हत्या करता है, जो देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, उसे हत्याका दोष लगता है। यह पीड़ा प्रेतमे पैदा होती है। नित्य-कर्मसे दूर, जप-होमसे रहित और पराये धनका अपहरण करनेवाला मनुष्य दु:खो रहता है, इन दु:खोंका कारण भी प्रेतकाथा ही है। अच्छी वर्षा होनेपर भी कृषिका नाश होता है, व्यवहार नष्ट हो जाता है, सम्पनमें कलह उत्पन होता है, ये सभी कष्ट प्रेवबाधामें ही होते हैं। है पश्चिराज! मार्गमें चलते हुए पश्चिकको जो बनंडरसे पाँडा होती है, उसको भी तुम्हें प्रेतबाधा समझना चाहिये। यह **जात में सत्य ही कह रहा है।**

प्राणी जो नीच जातिसे सम्बन्ध रखता है, हीन कर्म करता है और अधर्ममें नित्य अनुरक्त रहता है, वह प्रेतसे उत्पन्न पीड़ा है। व्यसनोंसे द्रव्यका नाता हो जाता है, प्राप्तव्यका विनाश हो जाता है। चोर, अग्नि और राजासे जो हानि होती है, यह प्रेतसम्भूत पीड़ा है। शरीरमें महाभयंकर रोगकी उत्पत्ति, बालकोंकी पीड़ा तथा प्रजीका पीडित होना- ये सब प्रेतबाधाजनित हैं। वेद, स्मृति-पूराण एवं

[संक्षिप्त गरुडप्राणाङ्क

जिन लोगोंमें सदैव उच्चाटनके अत्यधिक चिह्न दिखायी देते हैं, अपने क्षेत्रमें उसका तेज निष्फल हो जाता है तो उसे प्रेतजनित बाधा ही माननी चाहिये। जो व्यक्ति सगोबीका विनासक है, जो अपने ही पुत्रको शबुके समान मार डालता है, जिसके अन्त:करणमें प्रेम और सुखकी अनुभृतियोंका अधाव रहता है, वह दोष उस प्राणीमें प्रेतबाधांके कारण होता है। पिताके आदेशकी अवहेलना, अपनी पत्नीके साथ रहकर भी सुखोपभोग न कर पाना, व्ययता और कुर बुद्धि भी प्रेतजन्य बाधाके कारण होती है।

हे ताहर्य ! निषद्ध कर्म, दुष्ट-संसर्ग तथा नृपोत्सर्गके न होने और अविधिपूर्वक की गयी और्ध्वदैहिक क्रियासे प्रेत होता है। अकालमृत्यु या दाह-संस्कारसे बहित होनेपर प्रतयोगि प्राप्त होती है, जिससे प्राणीको दुःख झेलना पहता है। हे पश्चिराज। ऐसा जानकर मनुष्य प्रेत-मुक्तिका सम्पक् आचरण करे। जो व्यक्ति प्रेत योनियोंको नहीं मानता है, वह स्वयं प्रेतचोनिको प्राप्त होता है। जिसके वंशमें प्रेत-दांच रहता है, उसके तिये इस संसारमें सुख नहीं है प्रेतवाधा होनेपर मनुष्यको मति, प्रीति, रति, लक्ष्मी और धर्मशास्त्रके नियमोंका पालन करनेवाले परिवारमें जन्म बुद्धि-इन पाँचोंका विनास होता है। तीसरी या पाँचवी होनेपर भी धर्मके प्रति प्राणीके अन्तःकरणमें प्रेमका न पीड़ीमें प्रेतबाधाग्रस्त कुलका विनाश हो जाता है। ऐसे होना प्रेतजनित बाधा हो है। जो मनुष्य प्रत्यक्ष अथवा परीक्ष वंशका प्राणी जन्म-जन्मान्तर दरिद्र, निर्धन और पापकर्ममें रूपसे देवता, तीर्थ और ब्राह्मणकी निन्दा करता है, यह भी अनुरक रहता है। विकृत मुख तथा नेत्रवाले, कुढ प्रेतोत्पन पीड़ा है। अपनी जीविकाका अपहरण, प्रतिष्ठा स्वधाववाले, अपने गोत्र, पुत्र-पुत्री, पिता, भाई,भीजा तथा वंशका विनाश भी प्रेतवाधाके अतिरिक्त अन्य प्रकारमे अच्चा बहुको नहीं माननेवाले लोग भी विधिवश प्रेत-सम्भव नहीं है। स्त्रियोंका गर्भ विनष्ट हो जाता है, जिनमें ऋरीर धारण कर सद्गतिसे रहित हो 'बड़ा कष्ट है', यह रजोदर्शन नहीं होता और बालकोंको मृत्यु हो बातो है, वहाँ विल्लाते हुए अपने पापको स्मरण करते हैं। (अध्याय २०)

प्रेतबाधाजन्य दीखनेवाले स्वप्न, उनके निराकरणके उपाय तथा नारायणबलिका विधान

होते हैं ? जिनकी मुक्ति होनेपर मनुष्योंको प्रेतजन्य पीड़ा हैं। यदि विजातीय दुष्ट प्रेत उसके वंशको पीड़ित करते हैं पुन: नहीं होती। हे देव। जिन लक्षणोंसे युक्त माधाको तो संतृत हुए सगोत्रो प्रेत अनुग्रहपूर्वक उन्हें रोक देते हैं। आपने प्रेतजन्य कहा है, उनको मुक्ति कब सम्भव है और उसके बाद समय आनेपर अपने पुत्रसे प्राप्त हुए पिण्डादिक क्या किया जाय कि प्राणीको प्रेतत्वको प्राप्ति न हो सके? चनके फलसे ये मुक्त हो जाते हैं। हे पक्षिराज। यथोचित प्रेतत्व कितने वर्षोंका होता है? चिरकालसे प्रेतयोनिको दानादिके फलसे संतृष्ठ प्रेत बन्धु-बान्धवोंको धन्य-धान्यसे भोग रहा प्राणी उससे किस प्रकार मुक्त हो सकता है? यह समृद्धि प्रदान करते हैं। सय आप बतलानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा-हे गरुड। प्रेत जिस प्रकार प्रेतपोनिसे मक्त होते हैं. उसे मैं बतला रहा हैं। जब मनुष्य यह जान ले कि प्रेत मुझको कह दे रहा है तो ज्योतिर्विदोसे इस विषयमें निवेदन करे। प्रेतग्रस्त प्राणीको बढ़े हो अद्भत स्वप्न दिखायों देते हैं। जब तीर्थ-स्नानको बुद्धि होती है, वित्त धर्मपरायण हो जाता है और धार्मिक कृत्योंको करनेकी मनुष्यकी प्रवृत्ति होती है तब प्रेतवाधा उपस्थित होती है एवं उन पुण्य कार्योंको नष्ट करनेके लिये चिस-भंग कर देती है। कल्याणकारी कार्योमें पग-पगपर बहुत-से विप्न होते हैं। प्रेत बार-बार अकल्याणकारी मार्गमें प्रवृत्त होनेके लिये प्रेरणा देते हैं। शुभकर्मीमें प्रवृत्तिका उच्चाटन और क्रूरता—यह सब प्रेतके द्वारा किया जाता है। जब न होती हो तो उस समय मनुष्यको क्या करना चाहिये? व्यक्ति समस्त विष्नोंको विधिवत् दूर करके मुक्ति प्राप्त उस उपायको मुझे बतायें। करनेके लिये सम्यक उपाय करता है तो उसका वह कर्म हितकारी होता है और उसके प्रभावसे शास्त्र प्रेतनिवृत्ति बाह्मण जो कुछ भी कहते हैं, उस वचनको हृदयसे सत्य हो जाती है।

प्रेत मुक्त हो जाता है। जिसके उद्देश्यसे दान दिया जाता करना चाहिये। उससे समस्त विध्न नष्ट हो जाते हैं। यदि है, उसको तथा स्वयंको वह दान तृप्त करता है। हे तार्ख्य । वह प्राणी भूत, प्रेत, पिशाच अथवा अन्य किसीसे पीड़ित यह सत्य है कि जो दान देता है वही उसका उपभोग करता होता है तो उसको अपने पितरींके लिये नारायण-बलि है। दानदाता दानसे अपना कल्पाण करता है और ऐसा करनी चाहिये। ऐसा कर वह सभी प्रकारकी पीड़ाओंसे करनेसे प्रेतको भी चिरकालिक संतुष्ति प्राप्त होती है। संतुष्त मुक्त हो जाता है। यह मेरा सत्य वचन है। अत: सभी

श्रीगरुडने कहा—हे भगवन्। प्रेत किस प्रकारसे मुक्त हुए वे प्रेत सदैव अपने बन्धु-बान्धवींका कल्याण चाहते

जो व्यक्ति स्वप्तमें प्रेत-दर्शन, भाषण, चेष्टा और पीड़ा आदिको देखकर भी ब्राह्मदिद्वारा उनकी मुक्तिका उपाय नहीं करता, वह प्रेतोंके द्वारा दिये गये शापसे संलित होता है। ऐसा व्यक्ति जन्म-जन्मान्तरतक निःसन्तान, पशुहीन, दरिद्र, ग्रेगी, जीविकाके साधनसे रहित और निम्नकुलमें उत्पन होता है। ऐसा ने प्रेत कहते हैं और पुन: यमलोक जाकर पापकर्मोंका भौगद्वारा नाश हो जानेके अनन्तर अपने समयसे प्रेतत्वकी मुक्ति हो जाती है।

गरुक्रने कहा-हे देवेश्वर। यदि किसी प्रेतका नाम और गोत्र न ब्रात हो सके, उसके विषयमें विश्वास न ही रहा हो, कुछ न्योतियो पोडाको प्रेतजन्य कहते हों, कभी भी मनुष्यको प्रेत स्वानमें न दिखायी दे, उसकी कोई चेष्टा

श्रीभगवान्ने कहा-हे खगरान। पृथ्वीके देवता समझकर भक्ति-भावपूर्वक पितृभक्तिनिष्ठ हो पुरश्चरणपूर्वक हे पश्चिन्! दान देना अत्यन्त श्रेयस्कर है, दान देनेसे नारायण-बलि करके जप, होम तथा दानसे देह-शोधन

१-स भवेत् तेन मुकस्तु दर्श जेपस्करं परम् । स्वयं तुष्यति थीः पश्चिम् सस्योदेश्येन दीयते ॥ शुण सत्यपिदं तास्यं यहदाति भूनतिः सः । आत्यनं बेयस्य युग्न्यात् प्रेतस्तृति चिरं वजेत् ॥

ते तृप्ताः शुप्रमिच्छन्ति निजवन्तुषु सर्वदा । अज्ञतपातु ये दुष्टाः पीठपनि स्ववंशजन् ॥

निवारयन्ति तृप्तास्ते जायमानानुकम्पकाः। पक्षत् ते मुक्तिमापानि काले प्राप्ते स्वयुक्तः॥(२१।१२-१५)

प्रयत्नीसे पितृभक्तिपरायण होना चाहिये।

हजार गायत्री-मन्त्रोंका जप करके दशांश होम काना चाहिये। नारायण-बलि करके वृषोत्सर्गादि क्रियाएँ करनी चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य सभी प्रकारके उपद्रवाँसे रहित हो जाता है, समस्त सुखोंका उपभोग करता है तथा उत्तम लोकको प्राप्त करता है और उसे जाति-प्राधान्य प्राप्त होता है। इस संसारमें माता-पिताके समान ब्रेष्ठ अन्य कोई देवत नहीं है। अत: सदैव सम्यक् प्रकारसे अपने माता-पिताकी पूजा करनी चाहिये। हितकर बातोंका उपदेश होनेसे पिता प्रत्यक्ष देवता है। संसारमें जो अन्य देवता हैं वे शरीरधारी नहीं हैं-

> पितृपात्समं लोके नाम्त्यन्यहैकां परम्। तस्मात् सर्वप्रयानेन पुजर्पत् पिनरी सदा॥ हितानामुपदेश हि प्रत्यक्षं देवतं पिता। अन्या या देवता लोके न देहप्रभवी हि ता:॥

प्राणियोंका शरीर ही स्वर्ग एवं मोक्षका एकमात्र साधन नवें या दसवें वर्ष अपने पितरोंके निमित्त प्राणीको दस है। ऐसा शरीर जिसके द्वारा प्राप्त हुआ है, उससे बढ़कर पुन्य कौन है?

हे पश्चित्! ऐसा विचार करके मनुष्य जो-जो दान देता है उसका उपभोग वह स्वयं करता है, ऐसा वेदविद विद्वानोंका कचन है। पुनामका जो नरक है उससे पिताकी रक्षा पुत्र करता है। उसी कारणसे इस लोक और परलोकमें उसे पुत्र कहा जाता है-

पुनामनरकाद्यस्मात् पितरं प्रायते तस्यात् पुत्र इति प्रोक्त इह वापि परत्र च॥

हे खगराज! किसीके माता-पिताकी अकालमृत्यु हो जाय तो उसे वत, तीर्थ, वैवाहिक माज्ञलिक कार्य संवलस्पर्यन्त नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य प्रेत-लक्षण बतानेवाले इस स्वप्नाध्यायका अध्ययन अधवा अवण करता है, वह प्रेतका (२१ (२८-२१) एक चिंह नहीं देखता है। (अध्याय २१)

प्रेतयोनि दिलानेवाले निन्दित कर्म, पञ्चप्रेतोपाख्यान तथा प्रेतत्वप्राप्ति न करानेवाले श्रेष्ट कर्म

होती है ? वे कैसे चलते हैं ? उनका कैसा रूप और कैसा पापियोंकी मृत्यु चण्डाल, जल, सपंदेश, ब्राह्मण-शाप, भोजन होता है? वे किस प्रकार प्रसन्न होते हैं और उनका चिद्युत्-निपात, अग्नि, दन्त-प्रहार तथा पशुके आक्रमणसे कहाँ निवास होता है ? हे प्रसन्नचित्त देवेश। कृपा कर मेरे होती है। जो लोग फाँसी लगानेसे, विषद्वारा और शस्त्रसे इन प्रश्नीका समाधान करें।

श्रीगरुडने कहा—है प्रभो। प्रेतोंकी उत्पत्ति कैसे उपवन और गुफाभागको जीत लेते हैं, वे प्रेत होते हैं। मरते हैं, जो आत्मघाती हैं, जिनकी विष्चिका (हैजा) श्रीभगवान्ने कहा-हे पश्चिराज! सूनो। वो आदि रोगोंसे मृत्यु होती है, जो क्षयादिक महारोग, पापजन्य पूर्वजन्मसंचित कर्मके अधीन रहकर पापकर्ममें अनुरक्त रोग और चोर-डकैतोंके द्वारा मारे जाते हैं, जिनका मरनेपर रहते हैं, वे मृत्युके पक्षात् प्रेतयोनिमें जन्म लेते हैं। वो संस्कार नहीं हुआ है, विहित आचारसे रहित, वृषोत्सर्गादिसे मनुष्य बावली, कृप, जलाशय, उद्यान, देवालय, प्याक, रहित और मासिक पिण्डदान जिनका लुप्त हो गया है, घर, आम्रादिक फलदार वृक्ष, रसोईघर, पितृ-पितामहके जिस मरे हुए प्राणीके लिये तुण, काष्ट्र, हविष्य तथा अग्नि धर्मको बेच देता है, वह पापका भागी होता है। ऐसा व्यक्ति शुद्र लाता है, पर्वतों अथवा दीवालके दहनेसे जिनकी मृत्य मरनेके बाद प्रलयकालतक प्रेतयोनिमें रहता है। जो लोग हो जाती है, निन्दित दोषोंसे जिनकी मृत्यु होती है, जिनकी लोभवश गोचारणकी भूमि, ग्रामको सीमा, जलाशय, मृत्यु भूमिमें नहीं होती, जिनको मृत्यु अन्तरिक्षमें होती है,

१-पापकर्मरता ये तै पूर्वकर्मवज्ञानुषाः। जायने ते मृतः प्रेतास्वान्युमुख्य वदान्यसम्। वापीक्षतहागांश आरामं सुरमन्दिरम् । प्रयो सन्द सुवृद्धांश तथा भोजनशासिकाः ॥ पितृपैतामहं धर्मे विक्रोणाति स पापभाक् । मृत: प्रेजनमानीति यावदाभूतसम्पत्तवम् ॥ गोचरं प्रामसीमां च तहापारामगद्भरम् । कर्षचीन च वे लोभात् प्रेतास्ते वै भवनित हि ॥ (२२ । ३--६)

जो भगवान् विष्णुका स्मरण न करते हुए मर जाते हैं, ख्यातिलब्ध संतत्तक नामक सुव्रत तपस्थी ब्राह्मण वनमें जिनको मृत्यु सूतक और श्वानादि निकृष्ट योनियोंके संसर्गमें रहता था। दयावान्, योगयुक्त, स्वाध्यायरत, अग्निहोत्री उस होती है, वे प्रेतयोनिमें जाते हैं। इसी प्रकारके अन्य कारणोंसे जो प्राणी दुर्मृत्युको प्राप्त होते हैं उनको प्रेतयोनिर्मे मरुस्थल प्रदेशमें भटकना पड़ता है।

हे तार्स्य नो व्यक्ति निदीय माता, बहन, पत्नी, पुत्रवध् तथा कन्याका परित्याग करता है, वह निश्चित ही प्रेत होता है। जो भावृद्रोही, ब्रह्मधाती, गोहन्ता, मद्यपी, गुरुपत्नीके साथ सहवास करनेवाला, स्वर्ण और रेशमका चोर है, वह प्रेतत्वको प्राप्त होता है। धरमें रखी हुई धरोहरका अपहारक, मित्रदोही, परस्त्रीरत, विश्वासचाती एवं कूर व्यक्ति अवस्य प्रेतयोगिमें जन्म लेता है। जो वंशपरम्परागत धर्मपवका परित्याग करके दूसरे धर्मको स्वीकार करनेवाला है, विद्या और सदाचारसे जो विहीन हैं, वह भी निस्सन्देह प्रेत ही होता है।

हे सुबत। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है, जी पितामह भीष्म और युधिष्टिरके संवादमें कहा गया या। मैं उसीको कहता है, उसे मुन करके मनुष्य मुख प्राप्त करता है।

युधिष्ठिरने कहा —हे पितामह। प्राणी किस कर्मफलसे प्रेत होता है? उसकी कैसे और किस उपायसे मुक्ति होती है ? इस बातको आप मुझे बतानेको कृपा करें, जिसको सुन करके मैं पुन: भ्रमित न हो सकू।

भीष्मने कहा-हे बत्स । मनुष्यको जैसे प्रेतवोनि प्राप्त होती है, वह जैसे उस योनिसे मुक्त होता है, जैसे वह दुस्तर थोर नरकमें जाता है, नरकमें जाकर दु:ख झेल रहे प्राणियोंको जिसका नाम, गुण, कीर्तन और अवण करनेसे मृक्ति प्राप्त होती है, वह सब मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

द्विजन्नेष्ठका समय सदैव यज्ञादिक धार्मिक कृत्योंमें बीतता था। परलोकका भय उसे बहुत था, अत: ब्रह्मचर्य, सत्य, शौचका पालन करते हुए और निर्मलचित होकर वह तपस्यामें संलग्न रहता था। श्रद्धापूर्वक गुरुके उपदेश, अतिथि-पूजन तथा आत्मतत्त्वके चिन्तनमें अनुरक्त वह तपस्थी सांसारिक इन्होंसे रहित था। इस संसारको जीतनेकी इच्छासे योगाध्यासमें सर्देव अपनेको वह समर्पित रखता या। इस प्रकारका आवरण करते हुए उस जितेन्द्रिय मुमुश्रु बाह्यसको बरमें ही बहुत-से वर्ष बीत गये। एक दिन तपस्वी संतप्तकके मनमें तीर्थाटनकी इच्छा उत्पन्त हुई। उसने मनमें यह संकल्प किया कि अब मैं तीथोंके पवित्र जलसे इस करीरको पवित्र बनाकैगा, अनन्तर वह स्नान तवा जप-नमस्कारादि कृत्योंको सम्पन्न कर सूर्योदय होनेपर वह वीर्ध-पाजपर निकल पड़ा।

चलते-जलते वह महातपस्थी ब्राह्मण मार्ग भूल गया। भाना मार्गमें बलते हुए उसे अत्यन्त भयानक पाँच प्रेत दिखायी पहें। उस निजंन बनमें विकृत शरीरवाले भयंकर इतोंको देखकर ब्राह्मणका इदय कुछ भयभीत हो उठा। अत: वहींपर खड़े होकर वह विस्फारित नेत्रींसे उसी और देखता रहा। तत्पक्षात् बाह्मणने अपने भयको दूरकर धैर्यका सहारा लिया और मधुर धाषामें पूछा—'हे विकृत मुखवालों। तुम सब कौन हो? कैमा पापकर्म तुम लोगोंने किया है, जिसके फलस्वरूप तुम्हें यह विकृति प्राप्त हुई है ? तुम सब कहाँ जानेका निश्चय कर रहे हो?'

प्रेतराजने कहा-हे द्विजश्रेष्ठ। हम सभीने अपने-अपने कर्मके कारण प्रेतयोनिको प्राप्त किया है। परहोहमें हे पुत्र! ऐसा सुना जाता है कि प्राचीनकालमें एक रत होनेके कारण हम पाप और मृत्युके वशमें हुए। नित्य

१+असंस्कृतप्रमीता ये विहित्तकारवर्जितः ॥

वृषोत्सर्गादिलुजाक्ष लुजायासिकपिण्डकाः । यस्यानपति मुदोऽनिनं गुजरुफ्डवाँवि सः॥ पतनात् पर्वतानां च भितिपातेन ये मृताः । रबस्तरतदिदोवेश न च भूमी मृताश ये॥

अन्तरिक्षे मृता ये च विष्णुस्मरणवर्षिताः। सूनकैः श्रादिसम्पर्कः प्रेतथावा इत क्षिती ॥ (२२।६—१२)

२-मातां भगिनों भाषां स्नुषां दुवितरं तथा । अदृष्टदीयां त्यन्ति स प्रेती जायने धुवम् ॥ भाद्धुग्बहाह। योष्ट्र: मुरापो गुरतत्यम:। हेमश्रीमहरम्ताश्यं स वै प्रेतत्वचानुयात्॥

पित्रपुक् परदारतास्त्या । विश्वासमानी कुरस्तु स प्रेती नापते धूवम् । न्यासापहर्ता

संत्यात्व परधर्मरतान्ववा । विद्यानृतविद्योतश्च स देती जान्तो धुकम्॥(२२।१४-१७) कुलमागांध

हम लोगोंको वाणी उसी पापसे विनष्ट हुई है. शरीर कान्तिहीन हो गया है, हम संज्ञाहीन और विकृत चित्तवाले हो गये हैं। हे तात! हमें दिशाओं तथा विदिशाओंका कोई ज्ञान नहीं है। पाप-कर्मसे पिशाच बने हुए हम मृद्ध प्राणी कहाँ जा रहे हैं, इसका भी जान हमें नहीं है। हम लोगोंके न माता हैं और न पिता हैं। अपने कर्मीके फलस्वरूप, अत्यन्त द:खदायी यह प्रेतयोनि हम सभीको प्राप्त हुई है। हे ब्रह्मन्। आपके दर्शनसे हम लोग अत्यधिक प्रसन्न है। आप महर्तभर रुकें। आपसे हम अपना सम्पूर्ण बृत्तान्त प्रारम्भसे कहेंगे। उनमेंसे एक प्रेतने कहा-

हे विप्रदेव! मेरा नाम पर्यापत है, यह दूसरा सूचीमुख है, तीसरा शीवरा, चौथा रोधक और पाँचवाँ लेखक है।

बाह्यणने कहा-हे प्रेत! प्राणीको कर्मफलानुसार प्रेतवोनि मिलती है यह तो डीक बात है, पर अपने जो नाम तुम बताते हो, उसके प्राप्त होनेका क्या कारण है?

प्रेतराजने कहा-हे द्विजनेष्ठ! मैंने सदैव सुखाद

भोजन किया और ब्राह्मणको बासी अन्न दिया है, इस कारण मेरा नाम पर्यपित (बासी) है। भूखे ब्राह्मणकी याचनाको सुनकर यह शोध हो यहाँसे हट जाता था. इसलिये यह शोधग नामका प्रेत हुआ। अन्नादिकी आकांबासे इसने बहुत-से ब्राह्मणोंको पीडित किया था, इस कारण यह सुचीमुख नामक प्रेत हो गया। इसने पोव्यवर्ग एवं ब्राह्मणोंको दिये बिना अकेले हो मिद्यान खाया था. इसलिये इसको रोधक कहा गया है। यह कुछ मौगनेपर मीन धारण करके पृथ्वी क्रेंदने लगता था, अत: उस कर्मफलके अनुसार यह लेखक कहलाया।

नामकी प्राप्ति हुई है। यह लेखक मेथमुख, रोधक पर्वताकार मुखवाला, शीव्रग पशुकी तरह मुखवाला और सुचक सुईके समान मुखबाला है, इसके बेडंगे रूपको देखें। हे नाव! हम अत्यन्त द:खित है। मायावी रूप बनाकर हम लोग पृथ्वीपर आपसे प्रेतत्वका कारण बता दिया है। आपके दर्शनसे हम कन्याओंका यथात्रकि विवाह कराता है, विद्यादान और

हे बाह्यण! कर्मभावसे हो प्रेतत्व और इस प्रकारके

भूख-प्याससे पीड़ित रहकर यह प्रेत-जीवन बिता रहे हैं। सभीमें ज्ञान उत्पन्न हो गया है, आपको जिस बातको सुननेको अभिरुचि हो, वह आप पूछें, उसे मैं आपको यतानेके लिये तैयार हैं।

बाह्यणने कहा-हे प्रेतराज! पृथ्वीपर जो भी जीव जीते हैं, वे सब आहारसे ही जीवित रहते हैं। यथार्थरूपमें तम लोगोंके भी आहारको सुननेकी मेरी इच्छा है।

प्रेतेनि कहा—हे द्विजराज! यदि आपको ब्रद्धा हमारे आडारको जाननेको है तो सावधान हो करके आप सने। हम संभीका आहार समस्त प्राणियोंके लिये निन्दनीय है. जिसको सुनकर आप बार-बार निन्दा करेंगे। प्राणियोंके जरीरसे निकले हुए कफ, मुत्र और पुरीवादि मल एवं अन्य प्रकारसे ठाँच्छष्ट भोजन प्रेतोंका आहार है। जी घर अपवित्र रहते हैं, जिनकी घरेलू सामग्रियों इधर-उधर बिखरी रहती हैं, जिन घरोंमें प्रसुतादिके कारण मलिनता बनी रहती है, वडींपर प्रेंत भोजन करते हैं। जिस घरमें सत्य, शीच और

घरमें प्रेत भीजन करते हैं। जो घर भुतादिक बलि, देवमन्त्रोच्चार, अस्तिहोत्र, स्वाध्याय तथा व्रतपालनसे हीन है. प्रेत उसमें ही भोजन करते हैं। जो घर लजा एवं मर्पादासे रहित हैं, जिसका स्वामी स्त्रीसे जीत लिया गया है. जहाँ माता-पिता और गुरुजनोंकी पूजा नहीं होती है,

संयम नहीं डोता. पतित एवं दस्युअनोंका साथ है, उसी

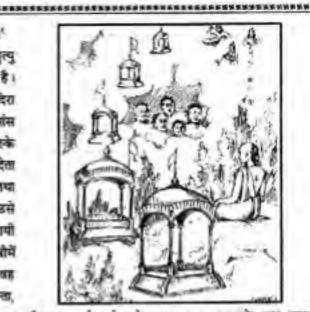
वेत वहाँ हो भोजन करते हैं। जिस घरमें नित्य लोभ, फ्रोध, निद्या, शोक, भय, मद, आलस्य तथा कलह—ये सब दुर्गुण विद्यमान रहते हैं, वहाँ प्रेत भीजन करते हैं। हे दृद्यत

तपोनिधि विप्रदेव। हम सब इस प्रेतभावसे दृ:खित है, जिससे प्रेतचीन प्राप्त न हो वह हमें बतायें। प्राणीकी नित्व मृत्यु हो वह अच्छा है पर उसे कभी भी प्रेतयोनि न प्राप्त हो।

ब्राह्मणने कहा-नित्य उपवास रखकर कुच्छ एवं चान्द्रायणवतमें लगा हुआ तथा अनेक प्रकारसे अन्य व्रतींसे पवित्र मनुष्य प्रेत नहीं होता है। जो व्यक्ति जागरणसहित एकादशोवत करता है और अन्य सत्कर्मीसे अपनेको पवित्र विचरण करते हैं। हम सभी अपने ही कमंसे विकृत रखता है, वह प्रेत नहीं होता है। वो प्राणी अश्वमेधादिक आकारवाले, लम्बे ओठवाले, विकृत मुखबाले और बृहद् यहाँको सम्पन्न करके नाना प्रकारके दान देता है तथा शरीरवाले तथा भयावह हो गये हैं। हे बिप्र! यह सब मैंने कीडा, उद्यान, वापी एवं जलाशयका निर्माता है, ब्राह्मणकी अशरणको शरण देनेवाला है, वह प्रेत नहीं होता है।

खाये हुए शुद्रान्नके जठरस्थित रहते हुए जिसकी मृत्यु हो जाती है या जो दुर्मृत्युसे मरता है, वह प्रेत होता है। जो अयाज्यका याजक तथा मद्यपीका साथ करके मदिरा पीनेवाली स्त्रीका संसर्ग करता है और अज्ञानवश्व भी मांस खाता है, वह प्रेत होता है। जो देवता, ब्राह्मण और गुरुके धनका अपहारक है, जो धन लेकर अपनी कन्या देता है, वह प्रेत होता है। जो माता, भगिनी, स्त्री, पुत्रवधु तथा पुत्रीका बिना कोई दोष देखे परित्याग कर देता है, उसे भी प्रेत होना पहला है। जो विश्वासपर रखों हुई परापी धरोहरका अपहर्ता है, मित्रद्रोही है, सदैव परायी स्त्रीमें अनुरक्त रहता है, विश्वासचाती और कपटी है, वह प्रेतयोनिमें जाता है, जो प्राणी भावुडोही, ब्रह्महन्ता, गीहन्ता, मद्यपी, गुरुपत्नीगामी, इनका संसर्गी और बंशपरम्पराका परित्याग करके सदा झुठ बोलता रहता है, स्वर्णकी चोरी ज्ञान एवं उसके साथ सम्भाषण एवं पुण्य-संकीर्तनके तथा भूमिका अपहरण करता है, वह प्रेत होता है।"

भीष्यने कहा-हे युधिष्ठर! इस प्रकार बाह्यण संतप्तक ऐसा कह ही रहा था कि आकाशमें दुन्द्रिय बजने लगी। देवॉने उस ब्राह्मणके ऊपर फुलॉकी वर्षा की। प्रेतेंकि लिये वहाँ पाँच देवविमान आ गये। विधिवत् उस ब्राह्मणको आजा लेकर वे सभी प्रेत दिव्य विमानोमें



बैठकर स्वर्ग चले गये। इस प्रकार ब्राह्मणके द्वारा प्राप्त प्रभावसे उन सभी प्रेतींका पाप विनष्ट हो गया और उन्हें परम पदकी प्राप्ति हुई।

सतजीने कहा-इस आख्यानको सुनकर गरुडजी पोपल-पत्रके समान काँप उठे। उन्होंने पुन: सनुष्यांके कल्यागके लिये श्रीभगवान् विष्णुसे पूछा।

(अध्याव २२)

の数の日から

प्रेतबाधाजन्य विविध स्वप्न तथा उसका प्रायश्चित्तविधान

प्रेत क्या-क्या करते हैं? वे क्या कहते हैं? उसे आप है, वह सब मैं तुम्हें सुनाता है। भूख-प्याससे दु:खित वे कहिये।

श्रीभगवान्ने कहा-हे पक्षिराज ! उनका जैसा स्वरूप होका अपने वंशजोंको अपना चिक्क दिखाते हैं। प्रेत अपने

श्रीगरुडने कहा—हे देवेश। पिशाचयोनिमें रहनेवाले हैं, जो उनकी परुचान है और जिस प्रकार वे स्वप्न दिखाते अपने परमें प्रवेश करते हैं। उसी वायुरूपी देहमें प्रविष्ट

१-उपवासपरी नित्यं कृष्णुचान्द्रायणे रतः। इतेष्ठ विविधेः पूरो न प्रेते जायते नरः॥ एकादश्यां वर्त कृतंत्रागरेण समन्तितम्। अपी: सुकृतै: पूनो न प्रेतो कापते नर:॥ इहा वै वाश्यमेधादीन् दचाद् दानानि को नर:। आरामोद्यानधान्यादे: प्रकणार्शन कारक:॥ कमारी बाह्यणानां तु विवाहयति शक्तितः। विचादोऽभवदशैव न प्रेतो जायते नरः॥ (२२।६४-६०)

२-देशहरूमं स ब्राह्मस्तं गुरदान्यं तथैन स । कन्यां दर्शात मुल्केन स प्रेती जायते नरः॥ मातरं भगिनी भाषां स्नुषां दुष्टितरं तथा। अरङ्दोचासवानी स प्रेतो जायते नरः॥ न्यासापहर्ता मित्रधुकुपरदाररतः सदा विश्वसम्पर्ता कृटत स प्रेती काफो नरः॥ भातुभुग्बद्धहा गोप्तः सुरापो गुरुक्तपणः। कुलमार्गं चरित्यन्य हनुकोकौ सदा रतः। हर्ता हेम्बस भूमेस स प्रेले काप्ते नाः व

(55105-08)

करके वह स्वप्नमें दिखायी देता है। जो व्यक्ति सोकर स्त्री, अपने जीवित भाई, पुत्र या पुत्रीको मरा हुआ देखे अवस्थिति प्रेतयोनिके कारण हुई है, ऐसा मानना चाहिये। यदि स्वप्नमें अपने-आपको जंजीरमें बँधा हुआ देखे और मरा हुआ पूर्वज निन्दनीय वेषमें दिखायी दे, खाते हुए व्यक्तिका अन लेकर भाग जाय और प्याससे पीड़ित वह अपना या परायेका जलपान कर ले तो उसे पिशाचयोनिमें गया हुआ माने।

यदि स्वप्नमें वह बैलकी सवारी करता है, बैलेंकि साथ कहीं जाता है, डरकर आकाश या भूखसे व्याकृत शोकर तीर्थमें चला जाता है, अपनी वाणीसे गी, बैल, पक्षी और घोड़ेकी भाषामें बोलता है, उसे हाथी, देव, भूत, प्रेत करे। जो मनुष्य ब्रद्धापूर्वक प्रेतिषद्ध बतानेवाले इस तथा निशाचरके चित्र दिखायी देते हैं तो उसे पिहास पोनि प्राप्त हुआ ही मानें।

पुत्र, अपनी स्त्री तथा अपने बन्धु-बान्धवोंके पास जाता है हे पक्षीन्द्र! प्राणीको स्वप्नमें प्रेतयोनिसे सम्बन्धित और अश्व, हाथी, बैल अथवा मनुष्यका विकृत रूप धारण बहुत-से चिह्न दिखायी देते हैं। जो स्वप्नमें अपनी जीवित उठनेपर अपनेको शय्यापर विपरीत स्थितिमें देखता है, वह तो उसे प्रेतदोष समझना चाहिये। प्रेतदोषसे ही व्यक्ति स्वप्नमें भृख-प्याससे व्यथित होकर इसरेसे याचना करता है तथा तीर्धमें जाकर पिण्डदान करता है। यदि स्वप्नमें चरसे निकलते हुए पुत्र, पिता, भाता, पति तथा पशु दिखायी दे तो ऐसा डेतदोषसे दिखायी देता है।

हे द्विजराज। स्वप्नमें ऐसे चिह्न दिखायी देनेपर प्रायक्षित करनेका विधान बहाया गया है। घर या तीर्थमें स्नान करके मनुष्य बेलके वृक्षमें जल-तर्पण करे तथा वेदपारंगत ब्राह्मणको सम्यक् पूजा करके उन्हें काले धान्यका दान दे, तदननर यक्त्रतिक इतन करके गरुडमहाप्राणका पाठ अध्यायका पाठ करता है अथवा सुनता है, उसका प्रेतदोष स्वतः ही नष्ट हो जाता है। (अध्याय २३)

no Pipping

अल्पपृत्युके कारण तथा बालकोंकी अन्त्येष्टिक्रियाका निरूपण

अकालमें किसीकी मृत्यु नहीं होती है तो फिर राजा या उसे लेकर यहाँसे चली जाती है। प्राचीनकालसे ही बेदका श्रोत्रिय ब्राह्मण किस कारणसे अकाल मृत्युको प्राप्त होते. यह कचन है कि मनुष्य सौ वर्षतक जीवित रहता है, किंतु हैं। ब्रह्माने जैसा पहले कहा था, वह असल्य दिखायों देता जो व्यक्ति निन्दित कर्म करता है वह शीघ्र ही विनष्ट हो है। हे भगवन्। बेदोंमें यह कहा गया है कि मनुष्य सी जाता है, जो बेदोंका ज्ञान न होनेके कारण वंशपरम्पराके वर्षतक जीवित रहता है। इस भारतवर्षमें ब्राह्मण, क्षत्रिय सदाचारका पालन नहीं करता है, जो आलस्यवश कर्मका एवं वैश्यवर्णवाली द्विजातियाँ, शुद्र और स्लेक्ड रहते हैं. परिल्वाग कर देता है, जो सदैव त्याज्य कर्मको सम्मान देता किस कारणसे कलिकालमें ये शताय नहीं देखें जाते। हैं, जो जिस-किसीके घरमें भोजन कर लेता है और जो बालक, धनवान, निर्धन, सकुमार, मुर्ख, बाह्मण, अन्य वर्णवाले, तपस्थी, योगी, महाजानी, सर्वजानात, लक्ष्मीचान्, धर्मात्मा, अद्वितीय पराक्रमी— जो कोई भी हों इस वसुधातलपर अवश्य मृत्युको प्राप्त करते हैं। इनके गर्भमें आनेके साथ ही इनके पीछे मृत्य लगी रहती है। इसका क्या कारण है?

श्रीभगवानने कहा -हे पहाज्ञानी गरुड। तुम्हें साधवाद है। तुम मेरे प्रिय भक्त हो। अत: प्राणीकी मृत्युसे सम्बन्धित गोपनीय वातको सनो।

श्रीगरुडने कहा —हे प्रभी। वेदका यह कचन है कि निश्चित की गयों मृत्यु प्राणीक पास आती है और शीघ्र ही परस्त्रीमें अनुरक्त रहता है, इसी प्रकारके अन्य महादोषोंसे मन्ध्यको आय क्षीण हो जाती है। श्रद्धाहीन, अपवित्र, नास्तिक, मङ्गलका परित्याग करनेवाले, परद्रोही, असल्पवादी ब्राह्मणको मृत्यु अकालमें ही यमलोक ले जाती है। प्रजाकी रक्षा न करनेवाला, धर्माचरणसे हीन, कुर, व्यसनी, मूर्ख, वंदानुशासनसे पृथक और प्रजापीडक क्षत्रियको यमका ज्ञासन प्राप्त होता है। ऐसे दोषी बाह्मण एवं शत्रिय मृत्युके वर्ताभुत हो जाते हैं और यम-यातनाको प्राप्त करते हैं। जो हे पश्चिराज कश्यपपुत्र महातेजस्वी गरुड! विधाताद्वारा अपने कमीका परित्याग तथा जितने मुख्य आचरण हैं.

उनका परित्याग करता है और दूसरेके कर्ममें निरत रहता वाणी और शरीरके द्वारा पापकर्म किया है। मनुष्य-जन्म है वह निश्चित ही यमलोक जाता है।' जो शुद्र द्विज-सेवाके मिलनेपर प्राणीको पूर्व सभी जन्मोंके पापींका स्मरण करके बिना अन्य कर्म करता है, वह यमलोक जाता है। तदनन्तर उपके द्वारा उन्हें विनष्ट करनेका प्रयास करना चाहिये। वह उत्तम-मध्यम या अधम कोटिवाले यमलोकमें पहुँचकर कर्मके अनुसार प्राप्त होनेवाले गर्भवासके महान् कष्टको दु:ख भोगता है।

जिस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और देवपूजन नहीं होता है, मनुष्योंका वह दिन व्यर्थ ही जाता है-स्नानं दानं जपो होनी स्वाध्यावी देवताचंत्रम्॥ यस्मिन् दिने न सेव्यन्ते स त्रवा दिवसो नृणाम्।

(28-05185)

रसोद्धत यह करीर अनित्य, अध्रुव तथा आधारहीन है। शरीरके गुणीका वर्णन करता है।

प्रात:काल संस्कृत (सुपाचित) अन्न निश्चित हो सायंकाल नष्ट हो जाता है, अत: उस अनके रससे पुष्ट शरीरमें नित्यता कैसे आ सकती है ? हे गरुइ। अपने प्राकृत कर्मोंके अनुसार शरीर तो मिल चुका है, इस तरह यथायोग्य गरीर-निर्माणरूप आधा कार्य तो हो चुका है, पर आगे दुष्कर्मोंसे बचनेके लिये एवं अपनी सरकाके लिये परम औषधका सेवन करना चाहिये। क्या यह जारीर अन्नदाता पिता या जन्म देनेवाली माताका है अथवा उन दोनोंका है ? यह राजाका है या बलवानुका है, अग्नि अचवा कुत्तेका है? कीटाणु, विश्वा अथवा भरमके कपमें परिचत होनेवाले इस शरीरके लिये बेहतम यह कौन हो सकता है ? पाप-विनाशके निमित्त प्राणीको उत्कृष्ट यत्न करना देखकर भी जो मनुष्य पुन: गर्भवासमें आता है अर्थात् मानवयोनिमें ही उससे मुक्तिका प्रयास नहीं करता, वह पातकी अण्डजादि योनियोमें जहाँ-जहाँ जाता है, वहीं आधियाँ-च्याधियाँ, क्लेश और वृद्धावस्थाजनित रूप परिवर्तन होते रहते हैं।

हे द्विजीतम (पश्चित्रेष्ट) ! गर्भवाससे निकला हुआ प्राणी अज्ञानसभी अन्धकारसे आच्छान हो जाता है। बाल्यावस्थामें हें पक्षीन्द्र। अब मैं अन्न और जलसे बने हुए इस रहनेके कारण वह सदसहका कुछ भी ज्ञान नहीं रखता है। वीवनान्धकारसे वह अन्धा हो जाता है। इस बातको जो देखता है वह मुक्तिका भागी होता है। प्राणी चाहे बालक हो चाहे युवा हो अथवा वृद्ध हो, वह जन्म लेनेके बाद मृत्युको अवस्य प्राप्त होता है। धनी-निर्धन, सुकुमार, कुरूप, मुर्ख, विद्वान, ब्राह्मण या अन्य वर्णवाले जनींकी भी वहीं स्थिति होती है। मनुष्य चाहे तपस्त्री, योगी, परमञ्जानी, दानी, लक्ष्मीवान्, धर्मात्मा, अतुलनीय पराक्रमी कोई भी हो मृत्युसे नहीं बच सकता है। बिना मनुष्यदेहको प्राप्त किये सुख-दु:खका अनुभव नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति प्रकृत कर्मके पाशमें बैधकर मृत्युको प्राप्त करता है। गर्भसे लेकर पाँच वर्षतक मनुष्यके ऊपर पापका अल्प प्रभाव पडता है, किंतु उसके बाद वह यधायोग्य पापके न्यूनाधिक प्रभावका भागी होता है। इस प्रकार प्राणीको बार-बार इस चाहिये। जीवने अनेक बार इस संसारमें कन्म ग्रहणकर मन, संसारमें आना-जाना पहला है। इस पृथ्वीपर मरा हुआ

१-विधातृविहितो मृत्युः शीष्रमादाय गन्कति । ततो नश्यामि पक्षीन्द काल्यांच महत्त्वते ॥ मानुष: शतनीवीति पुरा बेटेन भाषितम् । विकर्मण: प्रभावेण रोप्रं कापि किन्त्रपति ॥ वेदानभ्यसनेनैव कुलाचारं न सेवने । आलम्यात्कर्मणं त्यानो निविद्धेऽप्यादर: सदा ॥ यत्र तत्र गृहेऽरचति परक्षेत्ररतस्तवा । एतैर-पैमंहादोपैजीको काय्यः अष्ठर्थानमसूचि नास्तिकं त्यतःमङ्गलम् । परदोशनुककां ब्राह्मणं यतः (म) मन्दिरम् ॥ अरक्षिकरं राजानं नित्यं धर्मविवर्जितम् । कृरं स्थानिनं मूखं बेटवादबहिष्णुतम् ॥ (२४) ९-- १४) २-यत्प्रातः संस्कृतं सार्थं नुवमनं विवश्यति ॥ तदीयससमन्द्रकाये का कत नित्यता॥ (२४।१९-२०)

३-कर्तव्य: परमो यत्र: पातकस्य विनातने । अनेकभवसम्पूर्त पातके तु विधा कृतम् ॥ यदा प्राप्नोति मानुष्यं तदा सर्वं तपत्वपि । सर्वजन्मानि संस्मृत्य विवादी कृतचेतन:॥ अवेश्य गर्भवासांश कर्मजा गतयस्तथा । मानुषोदरवासी चेतदा भवति पातको ह अण्डजादिष् भृतेषु यत्र यत्र प्रसारीतः आध्यो व्याधयः क्लेश जगरूपविषयंयः॥ (२४।२३--२६)

मनुष्य दानादि सत्कर्मीके प्रभावसे पुन: जन्म लेकर अधिक हो इसके लिये व्यक्तिको जीवनकालमें जो कुछ अच्छा दिनोंतक जीवित रहता है।

सूतजीने कहा-भगवान् कृष्णके ऐसे वचनको सुनकर गरुडजीने यह कहा-

गरुडने कहा-हे प्रभी! बालककी मृत्यु हो जानेपर पिण्डदानादि क्रियाओंको कैसे करना चाहिये? यदि विपन्नावस्थामें फैसे हुए भूणकी मृत्यु गर्भमें ही हो जाती है अथवा चूडाकरणके बीच शिशु मर जाता है तो कैसे. किसके द्वारा दान दिया जाना चाहिये? मृत्युके बाद कौन-सी विधि है?

गरुडके ऐसे वाक्यको सुनकर भगवान् विकाने कहा-हे गरुड! यदि स्त्रीका गर्भपात हो जाय अथवा गर्भकाव हों जाय तो जितने मासका गर्भ होता है, उतने दिनका अशीच मानना चाहिये। आत्मकल्याणको इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको उसके लिये कुछ भी नहीं करना चाहिये। यदि जन्मसे लेकर चुडाकरण-संस्कारके बीच बालककी मृत्यु हो जाती है तो उसके निमित्त ययात्रीक बालकोंको दृशका भोजन देना चाहिये। यदि बृहाकरण संस्कार होनेके बाद पाँच वर्षतक बालककी मृत्यु होती है तो शरीरदाइका विधान है,

हुए प्राणीका जन्म निश्चित है। अतः पुनः शरीरका जन्म न दरिद्र एवं पापी बनता जाता है। (अध्याय २४)

लगता या, उसीका दान करना चाहिये। ऐसा न करनेपर उस प्राणीका जन्म निर्धनकुलमें होता है। यह स्वल्पायु और निर्धन होकर प्रेम तथा भक्तिसे दूर रहता है। उसे पुनर्जन्म प्राप्त होता है, अत: मृत शिशुके लिये यथेप्सित दान आवस्यक है। ऐसा होनेपर ब्राह्मण-बालकॉको मिष्टान-भोजन अवस्य देना चाहिये। पुराणमें इससे सम्बन्धित जिस गाधाका गान हुआ है सब प्रकारसे वह मुझे सत्य प्रतीत होती है। गांचा इस प्रकार है-

भागनशक्तिश रतिशक्तिर्वरस्थिय: ॥ विभवे दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः दानाद्वोगानवाप्नीति सीख्यं तीर्धस्य संवनात्। सुधायणाञ्जो वस्तु स विद्वानामवित्तमः॥ भववरिहो दरिद्रभावाच्य करोति पापप्रभावानरक प्रयाति पुनर्दरिह: पुनरेव पापी ॥ (SKIRR-RE)

भोज्य वस्तु एवं भोजनशक्ति, रतिशक्ति रहनेपर श्रेष्ठ उसके लिये दूध देना चाहिये और बालकांको भोडन स्वीको प्राप्ति तथा धन-वैभव एवं दानशक्ति—ये तीनीं कराना चाहिये। पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले बालकको अल्प वपस्याका फल नहीं है ऐसा साच-साथ होता मृत्यु होनेपर अपनी जातिके लिये विडित समस्त और्ध्वदेहिक बड़ा हो दुर्लभ है। दान देनेसे प्राणीको भोगोंकी प्राप्ति क्रियाओंको सम्पन्न करना अपेक्षित है। ऐसे पृष्ठ चालकके होती है। तीर्वसेवनसे सुख मिलता है और सुभाषण कल्याणार्थ जलपूर्ण कुम्भ तथा खाँरका दान करना चाहिये; करता हुआ जो मरता है, वह विद्वान् धर्मयेताओंमें श्रेष्ठ है। क्योंकि उसका ऋणानुबन्ध हो जाता है। दान न देनेपर प्राणी दरिद्र होता है, दरिद्र होनेपर पाप करता हे पक्षीन्द्र! जन्म लेनेवालेकी मृत्यु और मृत्युको प्राप्त है, पापके प्रभावसे नरकमें जाता है, तदनन्तर बार-बार वह

and the second

१-गर्भवासादिनिर्मुकस्त्वज्ञानतिमिराषुतः । व जानति खगर्वेष्ठ बालभावं समाबितः। यौयने तिभिरान्धक्ष यः परपति स मुक्तिभक् । अधानान्युनुनानोति बालो का स्थविरो युका ६ सधनो निर्धनक्षेत्र सुकुमार: कुरुपवान् । अविद्यंक्षेत्र विद्यंक ब्राह्मणस्थितरो वन:॥ त्रपोरतो योगजीलो महाज्ञांनी च यो नरः। महादानरतः श्रीपाप् धर्मात्रपानुलविक्रमः। विना मानुषदेहं तु सुखं दु:खं न विन्दति॥

प्राकृतै: कर्मपात्रीस्तु मृत्युमाप्नोति भानतः । आधानात्त्रञ्च वर्षाण स्वस्त्यपापैतिपन्यते ॥ पञ्चनगांधिको भूत्वा महागापैकिंपव्यते । योनि पुरस्ते सस्यानुदोऽप्याचारि वाति सः॥ मुतो दानप्रभावेम जीवन्मत्यीक्षां भूवि। (२४।२५–३३)

बालकोंकी अन्त्येष्टिक्रियाका स्वरूप, सत्पुत्रकी महिमा तथा औरस और क्षेत्रज आदि पुत्रोंद्वारा अन्त्येष्टि करनेका फल

पुरुष-स्त्रीका निर्णय कहुँगा। बालक जीवित हो अथवा पूर्वकथित विधानके अनुसार दशपिण्ड-कृत्यकी कामना मृत्युको प्राप्त हो गया हो, पाँच वर्षसे अधिक अवस्था हो करता है। स्वल्प कर्म, स्वल्प प्रसंग, स्वल्प विषयबन्धन, जानेपर उसमें पुरुषत्व प्रतिष्ठित हो जाता है। वह अपनी स्वल्प जारीर तथा स्वल्प वस्त्रके कारण प्राणी स्वल्प समस्त इन्द्रियोंको जान लेता है और रूप तथा कुरूपके क्रियाकी इच्छा करता है।' जीव जबतक वृद्धिकी ओर बढ़ विपर्ययको जाननेको क्षमता भी उसमें आ जाती है। रहा हो, जकतक वह सांसारिक विषय-वासनाओंसे थिरा पूर्वजन्माजित कर्मफलसे प्राणियोंका वध और बन्धन होता. हो, तबतक उसे अपने उस मृत परिजनको से सभी भोज्य है। पाप हो सभी लोगोंको नष्ट करता है।

हे पश्चिराज। गर्भके नष्ट होनेपर कोई औध्वदिहिक क्रिया नहीं है। शिशुकी मृत्यु होनेपर दुश्थका दान देना चाहिये, शैशवके बादकी अवस्थामें बालककी मृत्यु होनेपर पायस तथा खोरका दान देना चाहिये। कुमारकी अवस्थामें मृत्यु होनेपर एकादशाह, द्वादशाह, वृथोल्मर्ग तथा महादानको छोड़कर अन्य सभी औध्वेंदेंडिक कृत्य करनेका आदेश किया गया है। मरे हुए कुमार और बालकॉके निमित्त भोजन-वस्त्र तथा बेष्टन देना चाहिये। बाल वढ अधवा तरुपके मरनेपर घट-बन्धन करना चाहिये।

हे खगश्रेष्ठ। दो माह कम दो वर्षतकके बालककी मृत्यू होनेपर उसकी पृथ्वीमें गड्डा खोदकर गाड़ देना चाहिये. इससे अधिक आयुवाले पत बालकके लिये दाह-संस्कारका ही विधान उत्तम है। सभी शास्त्रोंमें जन्मसे लेकर दाँत निकलनेतकको अवस्थावाले बच्चेको हिन् चुडाकरण-संस्कारतककी अवस्थावालेको बालक और उपनयन-संस्कारतककी आयुवालेको कुमार कहा गया है।

है गरुष्ठ! उपनयन-संस्कारका विधान न होनेके कारण मासतकके बच्चेको शिशु, सताईस मासतकके अवस्थाप्रात कुमारको मृत्यु होनेपर करना चाहिये। बचेंको बालक, पाँच वर्षको आयुवालेको कुमार, नौ वर्ष-

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुह। इसके बाद अब मैं चाहे उसका व्रतबन्ध हुआ हो अथवा न हुआ हो, वह पदार्थ और आवश्यक वस्तुएँ देनी चाहिये, जो उसके लिये उपजीव्य' और इव्हित थीं।

हे खरोश! चाहे बालक हों या वृद्ध हों अथवा युवा हों सभी प्राणी घटकी उच्छा करते हैं। सर्वत्रगामी देही जीवात्मा सदैव सुख-दु:खका अनुभव करता है। जिस प्रकार साँप अपनी पुरानी केंचुलका परित्याग कर देता है. उसी प्रकार जीव अपने पुराने शरीरका परित्याग कर अंगृष्टमात्र परिमाणवाला होकर तथा वायभूत हो भूखसे पीड़ित हो जाता है। अत: बालककी भी मृत्यु होनेपर निश्चित ही दान देना चाहिये। जन्मसे लेकर पाँच वर्ष-तककी अवधिमें मरा हुआ प्राणी दानमें दिये गये असंस्कृत' भोजनका उपभोग करता है। यदि पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले बालकको मृत्य हो जाती है तो वचोत्सर्ग और सपिण्डोकरणको छोडकर हादशाहके आनेपर घोडश श्राद करने चाहिये। उस दिन यधाक्रम पायस (खीर)-से बने पिण्डका दान देना चाहिये। यह पिण्डदान गृहसे भी किया जा सकता है। उसी दिन सान्नोदक कुम्भ और पददान देना चाहिये। ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये और यथाशक्ति शुद्रादिका अन्तिम संस्कार कैसे होना चाहिये? यह संजय महादानादि भी करने चाहिये। पश्चित्रेष्ट। दीप-दानादि जो है। गर्भाधानसे नौ मासतकके कालको छोडकर सोलह कुछ श्रेष कमें हैं उन्हें पाँच वर्धसे अधिक आयुवाले

हे पश्चिराज! व्रतबन्ध (यज्ञोपबीत) होनेसे पहले वालेको पौगण्ड, सोलह वर्षवालेको किशोर और उसके जिसका नरण हुआ है उसकी संतृप्तिके लिये पूर्वीक्त कर्म बादका यौवन-काल है। पाँच वर्षकी अल्पायुमें मृत कुमार करना चाहिये। यदि मनुष्यके द्वारा सारी क्रिया नहीं की

१-जिस व्यक्तिका परण हुआ है वह अपनी अवस्थाके अनुसार एवं अरने कमोंके अनुसार जिस मात्रामें, जिस रूपमें अन्त, वस्त आदिसे तुर होता रहा है उसी माजमें उसी रूपमें उसकी औष्परैहिक क्रियामें अन, वस्त्र आदि देश चाहिये।

२-पृष्टि एवं तृष्टिके लिये उपयोगी।

३-मन्त्र आदिके बिना दिया हुआ अन्त।

जाती है तो वह जीव पिशाच हो जाता है। व्रतबन्धके पूर्व मृत बालकके लिये पूर्वोक्त सब कमं करना चाहिये। उसके बाद 'स्वाहा' शब्दमे समन्वित मन्त्रके द्वारा चोडश एकोर्डिश श्राद्ध करे। ऋजु' कुशसे क्षेत तिलके द्वारा अपसव्य होकर समस्त क्रिया करनेसे पितृगण परम गतिको प्राप्त करते हैं और दीर्घायु होकर पुन: अपने ही कुलमें जन्म लेते हैं। सभी प्रकारके सुखोंको प्रदान करनेवाला पुत्र माता-

पिताके प्रेमका अधिवर्धक होता है। जैसे एक आकाश, एक चन्द्र और एक आदित्य आश्रय-धेदसे पृथक्-पृथक् घटादिमें दिखायों देते हैं, वैसे हो पिताका आत्मा सभी पुत्रोंमें सदैव विचरण करता रहता है। जिसकों जो प्रकृति सुक्र-शोणित-संगमके पूर्व होती है, वही पुत्रोंमें आकर संगिहित हो जाती है। वैसे हो वे अपने जोवनमें कर्म करते हैं। किसीका पुत्र पिताका रूप लेकर उत्पन्न होता है, पिताकी अपेक्षा कोई अत्यधिक रूपवान, गुणवान, तथा

दानपरायण होता है। इस संसारमें कोई भी प्राणी एक-समान न हुआ है और न होगा। अन्येसे अन्या, गूँगेसे गूँगा, बहिरेसे बहिरा तथा विद्वान्से विद्वान् जन्म नहीं लेता है। इस सृष्टिमें कहीं भी अनुरूपता दिखायों नहीं देतो।

गरुडने कहा —औरस और क्षेत्रज आदि दस प्रकारके पुत्र माने गये हैं। जो संगृहीत (कहोंसे प्राप्त) तथा दासीसे उत्पन्न हुआ है, उससे मनुष्यको क्या लाभ प्राप्त हो सकता है? मृत्युके क्यामें गये हुए प्राणीको उस पुत्रसे कौन-सो गति प्राप्त होती है? जिस व्यक्तिके न पुत्री है और न पुत्र है, न दीहित्र (साइकीका पुत्र-नाती) है, उसका ब्राद्ध किसके द्वारा किस विधिसे होना चाहिये?

श्रीभगवान्ने कहा—हे गरुड! पुत्रके मुखको देख करके मनुष्य पितृऋणसे मुक्त होता है। पीत्रको देखनेसे मनुष्यको तीनों ऋणसे मुक्ति मिल जाती है। पुत्र-पीत्र तथा प्रपौत्रोंके होनेसे व्यक्तिको आनन्त्य लोक और स्थगंकी प्राप्ति होती है। जो क्षेत्रज पुत्र हैं, वे पिताको मात्र लौकिक मुख प्रदान करनेमें समर्थ होते हैं। औरस पुत्रको विधिचत् पार्वण बाद्ध करना चाहिये। अन्य पुत्र एकोदिष्ट श्राद्ध करते है, पार्थण नहीं। बाद्ध-विवाहके नियमोंसे विवाहिता स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र पिताको स्वर्ग ले जाता है। संगृहीत पुत्र प्राप्णोको अधोगतिमें ले जाता है। यदि वह सांवल्सरिक श्राद्ध करता है तो उससे पिताको नरककी प्राप्ति होती है। अन्नदानके अतिरिक्त वह सब प्रकारका दान अपने पालक पिताके लिये कर सकता है। संगृहीत पुत्रको एकोदिष्ट बाद्ध हो करना चाहिये पार्वण नहीं। माता-पिताके लिये वार्षिक श्राद्ध करके वह पापसे लिस नहीं होता। यदि वह एकोदिष्ट श्राद्धका परिल्याम करके पार्वण श्राद्ध करता है तो अपनेको और पितरोंको यमलोक पहुँचाता है। बो संगृहीत पुत्र और दासीसे उत्पन्न हुए पुत्रादि है, उन्हें तोधीं व्यक्त पिनृशाद्ध करना चाहिये तथा ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये।

यदि संगृहोत पुत्र पाक-बाद्ध' करता है तो उसके

ब्राद्धको वैसे हो वृधा समझना चाहिये, जैसे शुद्रान्तसे दिजल नष्ट हो जाता है। वह श्राद्ध परलोकमें गये हुए पिता-पितामहादि पितरोंको प्रसन्न नहीं कर पाता। हे पश्चित्रेष्ठ। ऐसा जानकर व्यक्तिको हीन जातिमें उत्पन्न हुए पुत्रोंका परित्याग' कर देना चाहिये। [बदि अपरिणीता] ब्राह्मणीके गर्भसे ब्राह्मणके द्वारा पुत्र उत्पन्न किया जाता है तो वह बाण्डालसे भी नीच होता है। जो पुत्र संन्यासीसे जन्म लेता है या शुद्रमें ब्राह्मणीके गर्भमें उत्पन्न होता है तो ऐसे पुत्रोंको तम चाण्डाल ही समझी। जो सगीत्रा कन्यासे जन्म ग्रहण करता है, वह भी चाण्डाल ही होता है। हे खगेश्वर। यथाविधान विवाहिता स्त्रीसे पुत्र पैदा करके व्यक्ति स्वर्ग जाता है। ऐसे सदाचारी पुत्रोंके आचरणसे यनुष्यको सुखको प्राप्ति निश्चित है। जो दराचारी पुत्र है वह अपने कृत्सित आचरणसे पिताको नरकमें ले जाता है। हीन जातिसे उत्पन हुआ सदाचारी पुत्र अपने माता-पिताको मुख प्रदान करता है है जो मनुष्य कलिकालके पापसे निर्मुक है, सिद्ध जनींसे पुजित है, देवलोककी अपराधओंक

१-पवित्रक या मोटक आदिके बिना बनाये हो कुलका उपयोग ऋतु कुछ है।

२-मुखं दृष्ट्वा तु पुत्रस्य मुख्यते पैतृकादुणात्॥

पीतस्य दर्शनामनुपुंच्यते च ऋगत्रयात्। लोकाननयं दिव: प्राप्ति: पुत्रनीवप्रपीतकै: ॥ (२५।३३-३४)

३-अल प्रकाकर उसके द्वारा किया गया बाद पाक-बाद है।

४-ऐसे पुत्रोंसे यथासम्भव अपना धार्मिक कृत्य नहीं करवाना नाहिये।

५-इसका तात्पर्य सदाचारको महिपासे हैं।

द्वारा सम्मानमें डुलाये जा रहे चैंबर और पहनायी गयी मालासे बन्धु-बान्धवों, पुत्र-पौत्रों और प्रपौत्रोंका उद्धार कर देता है। सुशोभित है, वह अकेले ही सौ पितरों तथा नरकमें गये हुए (अध्याय २५)

-

सपिण्डीकरण श्राद्धका महत्त्व, प्रतिवर्ष विहित मासिक श्राद्ध आदिकी अनिवार्यता, पति-पत्नीके सह-मरण आदिकी विशेष परिस्थितिमें पाक एवं पिण्डदान आदिकी विभिन्न व्यवस्थाका निरूपण तथा बभुवाहनकी कथा

गरुडने कहा—हे देवलेष्ट! हे प्रभी! अप मेरे उपर कृपा करके यह बतायें कि मरे हुए प्राणियोंका सपिण्डीकर्म किस समय करना चाहिये? सपिण्डीकर्म होनेपर प्रेत कैसी गति प्राप्त करता है और जिस प्रेतका सपिण्डोंकर्म नहीं होता, उसकी कैसी गति होती है? स्वी और पुरुषका किसके साथ सपिण्डीकर्म होना चाहिये। हे सुरेक्ट। स्त्री और पुरुष एक साथ सपिण्डोंकर्मके भागोदार बनकर कैसे उत्तम गति प्राप्त कर सकते हैं? पतिके जीवित रहते हुए स्त्रियोंका सपिण्डीकरण कैसे हो सकता है? वे किस प्रकार पतिलोंक या स्वर्गको जाती हैं? अग्न्यसीहण ही जानेपर स्त्रियोंका आद्ध कैसे होता हैं? उनका वृषोत्सर्ग किस प्रकारसे किया जाय? है स्वामिन्। सपिण्डीकरण हो जानेपर मृतकके लिये घट-दान कैसे हो? है हरे। आप संसारके कल्याणार्थ इसे बतानेकी कृपा करें।

श्रीभगवान्ने कहा—हे पश्चिन्। जिस प्रकार सिपण्डीकरण होता है, जैसा हो मैं तुम्हें सुनाकैया। हें खगराज! जब मनुष्य मरनेके बाद एक वर्षकी महापय-यात्रा करता है तो पुत्र-पीत्रादिके द्वारा सिपण्डीकरण हो जानेपर वह पितृलोकमें चला जाता है। इसिलये पुत्रको पिताका सिपण्डीकरण करना चाहिये। वर्षके पूर्ण हो जानेपर पिण्डप्रवेशन अर्थात् सिपण्डीकरण करना चाहिये। हे पिश्योंके सिंह। वर्षके अन्तमें निश्चित रूपसे प्रेत-पिण्डका मेलन होता है। पितृपिण्डोंके साथ प्रेत-पिण्डका सिम्मलन हो जानेपर वह प्रेत परम गतिको प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह प्रेत नामका परित्याग करके पितृगण हो जाता है। अपने गोत्र या सापिण्डयमें जितने लोगोंको अर्जीच शास्त्रानुसार होता है उनके यहाँ यदि विवाह या कोई तुभ कार्य होना है तो तीसरे पश्च या छ: मासमें भी सपिण्डीकरण किया जा सकता है।

हे खगेश्वर! गृहस्थके घरमें यदि किसीका मरण हुआ हो तो विवाह आदि शुभ कार्य नहीं करने चाहिये। जबतक सांपण्डोकरण नहीं हो जाता है तबतक भिशुक उस घरकी भिशाको स्वीकार नहीं करता है। अपने गोत्रमें अशीय तबतक रहता है, जबतक पिण्डका मेलन नहीं हो जाता है। पिण्डमेलन होनेपर 'ग्रेत' शब्द निवृत्त हो जाता है। कुल-धर्म अनन्त हैं, पुरुषको आयु क्षयशील है और शरीर नाशवान् हैं, इस कारण बारहवाँ दिन हो सांपण्डीकरण-कर्मके लिये प्रशस्त समय होता है। मृत व्यक्ति अग्निनहोत्री रहा हो अथवा न रहा हो, उसका सांपण्डीकरण द्वादशाहको हो कर देना चाहिये। उल्लद्धश क्रियोंने बारहवें दिन, तीसरे पक्ष्में, छठ मासमें अथवा वर्ष पूर्ण होनेपर संपण्डीकरणका विधान किया है।

पुत्रवान्का सांपण्डोकरणके बाद कथी थी एकोएट नहीं करना चाहिये। सांपण्डोकरणके पक्षात् जहाँ-जहाँ बाढ़ किया जाय, पुत्रवान्का एकोएट कभी न किया जाय। वहाँ-वहाँ तीन-तीन बाढ़ (पार्वण बाढ़) करने आवश्यक हैं, अन्यथा कर्ता चितृपातक कहलाता है। अशक होनेपर थी पार्वण बाढ़ करना चाहिये। ऐसा मुनियोंने कहा है। यदि दिन और सास न जात हो तो उनका पार्वण बाढ़ ही करना उचित है। पितरोंके साथ वह पिता इस लोकमें पुत्रके द्वारा दिये गये दानका फल तबतक नहीं प्राप्त करता, जयतक उसके शरीरकी उत्पत्ति पुन: [दशगात्रके पिण्डसे] नहीं हो जाता। ऐसी स्थितिमें पुत्रद्वारा किये गये इन्हीं सोलह बाढ़ोंसे प्रेत यमपातके बन्धनसे मुक्त होता है। पुत्ररहित

१-(क) यहाँपर उनमासिक आदि तथा सांकलारिक [मृत्यु-लिंग आदि] बाद एकोरिष्ट बादके स्थानपर पार्वण बादको विधि कल्यायनके मतसे लिखी गयी है। वो कुछ प्रदेशोंमें भी प्रचलित है। परंदु सम्बन्धक कनमासिक, सांकसरिकादि बादोंमें शीनकके मतानुसार एकोरिष्ट-विधिसे ही बाद किया जाता है।

⁽ख) सर्पण्डीकरणं कृत्वा गयां गत्का च धर्मीवत्। एकोदिष्टं न कुर्वात साग्निकं नाग्निकं। (दिवीदासप्रकाश)

है, उसकी पिण्डोदक-क्रियाएँ पतिके गोजसे करनी चाहिये। नहीं है। चदि कोई पृथक पिण्डदान करता है तो वह पुन: आसुरादि-विधिसे जिसका विवाह हुआ है, उसकी पिण्डोदक- सर्विण्डोकरण करे। जो मनुष्य सर्विण्डीकरण करके क्रिया पिताके गोत्रसे करनी चाहिये। पिताका सपिण्डोकरण एकोटिष्ट ब्राट करता है, वह स्वयंको तथा प्रेतको सदैव पुत्र करे। यदि पुत्र नहीं है तो स्वयं उसकी पानी यमराजके अधीन कर देता है। उस क्रियाका निर्वाह करे। उसके भी न रहनेपर सहोदर भाई, भाईका पुत्र अथवा शिष्य सरिपदोकरण कर सकता. जाव उसके नाम और गोत्रके सहित विद्वान व्यक्ति करे। है। सपिण्डीकरण करके वह नान्दीमुख ब्राद्ध करे। हे खग! सपिण्डीकरण कर देनेपर भोजन और घटादिका दान, पुत्र न रहनेपर ज्येष्ठ भाईका सपिण्डोकरण कनिष्ठ भाई पददान तथा अन्य जो दान हैं उन्हें एकको (मृत व्यक्तिको) करे। उसके अभावमें भतीजा या पत्नी उस कर्मको सम्पन करे। मनुने कहा है कि-यदि सहोदर भाइयोंमेंसे एक भी भाई पुत्रवान् हो जाय तो उसी पुत्रसे अन्य सभी भाई पुत्रवान् हो जाते हैं।' यदि सभी भाई पुत्रहीन हैं तो उनका सपिण्डीकरण उनकी पत्नीको करना चाहिये अथवा वह पत्नी स्वयं न करके ऋत्विज्ञसे या पुराहितसे कराये।

चुडाकरण एवं उपनयन-संस्कारसे संस्कृत पुत्र पिताके श्राद्धको को । जिस पुत्रका उपनयन-संस्कार नहीं हुआ है केवल चुडाकरण-संस्कार हुआ है वह ब्राद्धमें स्वधाका उच्चारण तो कर सकता है पर वेदपन्त्रका उच्चारण नहीं कर सकता। स्त्रीका सपिण्डीकरण उसके पति, ससूर तथा परश्चशुरके साथ करना चाहिये। स्त्री-जातिका यह कर्म

पुरुषका सपिण्डीकरण नहीं करना चाहिये। पितके जीवित हो जानेके पश्चात् पुथक् क्रिया करना निन्द्रनीय माना गया रहनेपर स्त्रीका भी सर्पिण्डन नहीं होना चाहिये। है। जो व्यक्ति अपने पिताको पृथक् पिण्डदान देता है, वह जिस कन्याका विवाह ब्राह्मादि-विवाह-विधिसे हुआ पितृहत्ता होता है। सपिण्डीकरणके बाद पृथक् श्राद्ध उचित

> हे पश्चिन्! वर्षपर्यन्त प्रेतसे सम्बन्धित जो भी क्रिया की ही उद्देश्य करके देना चाहिये। वर्षभरके लिये अन्न और जलपूर्ण घटादिकी संख्याका निर्धारण करके ब्राह्मणको प्रदान करे। पिण्डदान देनेके पश्चात् यथाशक्ति वर्षभरके लिये उपयोगी समस्त सामग्री दानमें दे। ऐसा होनेपर मृत व्यक्ति दिश्य देह धारण करके विमानद्वारा सुखपूर्वक यमलोक चला जाता है।

पितकं जीवित रहनेके कारण मृत पुत्रका पिताके साथ सपिण्डीकरण नहीं हो सकता अर्थात् उसका सपिण्डीकरण पितायह आदिके साथ होगा ऐसे ही पतिके जीवित होनेपर रिजयोंका सपिणडीकरण उसकी बंबु आदिके साथ होगा।" पतिकी मृत्य हो जानेके बाद चौथे दिन जो पतिखता स्त्री अपने शरीरको अग्निमें समर्पित कर देती है, उसका भतीजा तथा सहोदर छोटा भाई भी कर सकता है। वृषोत्सर्गादि कमें पतिको क्रियाके ही दिन करना चाहिये। संवत्सरपूर्ण होनेके पहले अथवा वर्षके पूर्ण होनेचा दूसरे पुत्रिका पुत्रोत्पश्चिक पूर्व पतिके गोत्रवाली होती है। वर्षके संधिकालमें जिन प्रेतोंका सपिण्डोकरण होता है, पुत्रोत्पत्तिक बाद वह पुन: पिताके गोत्रमें आ जाती है। ठनकी क्रिया पृथक् नहीं की जाती। हे बत्स! सर्पिण्डोकरण पुत्रिका उस कन्याको कहते हैं, जिस कत्याका पिता १-उपर्युक श्लोकॉर्मे 'अपुत्रस्य' यह कास्य 'पुजेत्यादन' की विधिकी प्रतंसामें पर्यवस्तित हैं । इसका वात्पर्य अपुत्रवान् पुरुषके सर्थण्डन-निषेधमें

नहीं है। अन्यधा-पुत्राभावे स्वयं कुर्युः स्वभर्तुणाममन्त्रकम् । स्रविगदीकरणे तव ततः पार्गणमन्त्रहम् । (ब्राह्यकरपलता पृष्ट २४३)

^{&#}x27;पुत्राभावे तु पत्नी स्वात् पतन्वभावे सहोदर:।' (२६ १२३)

^{&#}x27;सर्वेषां पुत्रहीनानां पत्नी कुर्यात् सपिण्डनम्।' (२६ । २७)

[—]इन वाक्योंका विरोध हो जायना । अत: यथाविधि गोन्य पुत उत्पन कार्नका प्रवह अवस्य कार्ना चाहिये।

२-भातुणामेकजातानामेकक्षेत् पुत्रवान् भवेत्। सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो सनुरक्षकीत्॥ (२६।२६)

३-अनं पानीयसहितं संख्यां कृत्वाब्दिकस्य च । दालव्यं बाह्यने पश्चितालपूर्णबद्धादिकम् a

पिण्डान्ते तस्य सकला वर्षतृतिः स्वर्णाततः । दिव्यदेशे विधानस्यः सुखं चारि समालयम् ॥ (२६।३५-३६)

४-पिताके जीवित रहनेपर पुत्रके मर जानेसे पुत्रका सांपणडीकरच पिताके साथ न करके पिटामहके खाद्य करनेका विधान है। इसी प्रकार पतिके जीवित रहनेपर मृत पत्नीका पविके साथ सपिनडीकरण न करके उसके छन्। परश्च और बुद्ध परश्च (सास, परसास, बृद्धपरसास)-के

उसके पतिके साथ समस्त औध्वंदैहिक क्रिया करनी चाहिये, किंतु क्षय-तिथिमें पुत्रको उसका बाद्ध पृथक्कपमें करना चाहिये। यदि पति-पत्नी पुत्ररहित हैं और वे दोनों एक ही दिन मर जाते हैं तथा उनका दाह-संस्कार एक ही चितापर होता है तो उन दोनोंके बाद्धोंको पृथक-पृथक करना चाहिये, किंतु पत्नीका सपिएडीकरण पतिके साथ ही होगा। यदि पतिके साथ पत्नोका पिण्डदान पृथक्-पृथक् होता है तो उस पिण्डदानसे वह दम्पति पापलित नहीं होता. यह मेरा सत्य वचन है। यदि पति-पत्नी दोनोंका एक ही चितापर दाह संस्कार होता है तो उन दोनोंके लिये पाक एक ही साथ बनाया जाय, किंतु पिण्डदान पृथक-पृथक होना चाहिये। एकादशाहको वृषोत्सर्ग, पोउन प्रेतलाड. घटादि-दान, पददान और जो महादान हैं उन्हें पठि-फ्लोका वर्षपर्यन्त पृथक्-पृथक् ही करना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रेतको चिरकालीन संतुति प्राप्त होती है।

एक गोत्रसे सम्बन्धित एक साथ मरे हुए स्त्री अथवा पुरुषसे सम्बद्ध-कृत्यमें आहुतिकी वेदी एक ही होनी चाहिये। किंतु होम पृथक्-पृथक् होना चाहिये। पति एवं पत्नीका एक साथ मरण होनेपर उनका एकादशाहका बाद एवं उनके निमित्त पिण्डदान, भोजन आदि पृथक-पृथक होगा, पर पाककी व्यवस्था एक ही होगी-यह विधान केवल पति-पत्नीके एक साथ मरणमें ही है अन्य किसीके मरणमें ऐसा विधान गर्हित है। पुत्र माता-पिताके लिये एक ही पाकसे यथाविधान बाद्ध करता है। विकिशनदान एक और पिण्डदान पृथक-पृथक करने चाहिये। इसी विधिका पालन तीर्थ, पितृपक्ष अथवा चन्द्र और सुर्य-ग्रहणके अवसरमें भी होना चाहिये।

विवाहके समय जामातासे यह तय कर लेता है कि इस अग्नि उसके शरीरको अवश्य जला देती है, किंतु कन्यासे जो पुत्र पैदा होगा वह मेरा पुत्र होगा। यदि स्त्री आत्माको कष्ट नहीं दे पाती है, जिस प्रकार अग्निमें अपने पतिके साथ अग्निमें आरोहण करती है तो उसकी प्रञ्वलित धातुओंका मात्र मल ही जलता है, उसी प्रकार अमृतके समान अग्निमें प्रविष्ट हुई नारीका शरीर दग्ध होता है। पुरुष सुद्ध होकर दिव्य देहधारी हो जाता है, जिसके कारण वह खोलते हुए तेल, दहकते हुए लीह तथा अग्निसे कदापि नहीं जलता, इसी प्रकार पतिके साथ चितामें जली हुई स्त्रीको कभी जला हुआ नहीं मानना चाहिये; क्योंकि उसको अन्तरात्या गरे हुए पतिकी अन्तरात्मासे मिलकर एक हो जाती है।

> यदि स्वा पतिका साथ छोड़ करके अन्यत्र अपने प्राणीका परिल्याग करती है तो वह प्रतिलोकमें तबतक नहीं पहुँच पातो, जबतक प्रलय नहीं हो जाता। धन-दौलतसे यक्त माता-पिताको छोडकर जो स्त्री अपने मरे हुए पतिका अनुगमन करती है, वह विस्कालतक सुखीपभीग करती है। वह पतिसंयुक्ता नारी उस स्वर्गमें साढ़े तीन करोड़ दिव्य वर्षीतक नश्चत्रीके साथ स्वर्गमें रहकर अन्तमें महतो प्रोति प्राप्त करके ऐश्वयंसम्पन कुलमें उत्पन होती है।

धर्मपूर्वक क्विताहता जो स्त्री यदि पति-संगति नहीं करती हैं, तो जन्म-जन्मान्तरतक दुखी, दु:शीला और अप्रियवादिनी होती है। जो स्त्री अपने पतिको छोडकर परपुरुपको अनुगरिपनी हो जाती है, वह अन्य जन्मोंमें चमगादडी, छिपकली, गोहनी अथवा द्विमुखी सर्पिणी होती है। अत: स्वांको मन-वाणी और कर्म-इन संधीके द्वारा प्रयत्नपूर्वक अपने मृत या जीवित पतिकी सेवा करनी चाहिये। पतिके जीवित रहते हुए अथवा उसके मरनेपर ओ स्त्री व्यभिचार करती है, वह अनेक जन्मीतक वैधव्य जीवन प्राप्त करती है और दुर्भाग्य उसका साथ नहीं स्रोडता। देवता और पितरींको श्रद्धापूर्वक जो कुछ दिया जब स्त्री अपने मृत पतिके साथ अग्निमें जलता है तो जाता है, उसका समग्र फल उसे पतिकी पूजा करनेसे ही

साथ संपिगडीकरण करना चाहिये। इसके समर्थनमें वे जरूर इष्टब्स हैं-अपुत्रायां मृतायां तु यतिः कृषांत् सरिष्डतम् । श्रव्यदिपिः सर्वेषात्याः सरिष्धीकरणं भवेत्॥ (पैटीनीस) अपुत्रायां मृतायां तु पति: कुयांत् सांपण्डनम्। धनुमाजदिधि: सार्थमेव धर्मेण युन्यते॥ (व्यास)

प्राप्त हो जाता है, इसलिये स्त्रीको पविकी ही पूजा करनी चाहिये।

हे पश्चित्रेष्ठ ! पातिव्रत्यधर्मरूप सत्कर्मका पालन करनेपर स्त्री चिरकालतक पतिलोकमें निवास करती है। जबतक सूर्य और चन्द्र विद्यमान हैं, तबतक वह स्वर्गमें देवतूल्य बनी रहती है। उसके बाद दीर्थाय प्राप्त करके इस लोकमें वैभवशाली कलमें जन्म लेती है तथा कभी भी पति-वियोगका दु:ख नहीं झेलती।

हे खगराज। मैंने यह सब तुम्हें बता दिया। अब मृत प्राणीको सुख प्रदान करनेवाले विशेष कर्मको बळाउँगा। मृत्युके बाद द्वादशाहके दिन यथाविधि सपिण्डनादि समस्त कार्य करके वर्षपर्यन्त प्रतिदिन जलपूर्ण घट और अनका दानं एवं मासिक बाद्ध करना चाहिये। हे पश्चिन्। प्रेलकार्यको छोड़कर अन्य किये हुए कार्यको आवृत्ति नहीं होनी चाडिये'। यदि कोई मनुष्य अन्य कर्म करता है तो पूर्वका किया गया कार्य विनष्ट हो जाता है। मृतकके द्वादशाहके दिन चिहित कृत्य वर्षपर्यन्त पुन: करने चाहिये, इससे प्रेत अधयसुख प्राप्त करता है। प्रतिमास जलसे परिपूर्ण सान्नोदक घटका दान करना चाहिये। हे ताक्ष्यी वृद्धिबादके करण जो पुत्र अपने पिताका सपिण्डीकरण ब्हाद्ध कर देता है तो भी उसे प्रत्येक मासमें एक पिण्ड, अन्त और जलसे पूर्ण कृष्णका दान करना चाहिये।

तार्थने कहा-हे विभी! आपने जिन प्रेतींका वर्णन किया है, वे इस धरतीयर कैसे निवास करते हैं; उनके रूप किस प्रकारके होते हैं, वे कौन-कौत-से कर्म-फर्लोंक द्वारा महाप्रेत और पिशास बन जाते हैं और किस शुभ दानसे प्राणीकी प्रेतयोनि छट जाती है ? हे मधुसुदन! समस्त

श्रीकृष्णने कहा -हे ताध्यं! तुमने मानव-कल्याणके लिये बहुत अच्छी बात पूछी। प्रेतका लक्षण मैं कह रहा हैं, उसे सावधान होकर सुनो। यह अत्यन्त गृप्त है। जिस-किसीके सामने इसको नहीं कहना चाहिये। तुम मेरे भक्त हो, इसलिये में तुम्हारे सामने इसे कह रहा है।

हे पुत्र गरूड। पुराने समयमें बधुबाहन नामका एक राजा था, जो महोदय (कान्यकृब्द) नामक सुन्दर नगरमें रहता था। वह धर्मनिष्ठ, महापराक्रमी, यञ्जपरायण, दानशील, लक्ष्मीवान्, ब्राह्मणहितकारी, साधुसम्मत, सुशील, सदाचारी तका दक्त-दाक्षिण्यादि सद्गुणोंसे संयुत था। यह महाबली राजा सदेव अफ्ती प्रजाका पालन पुत्रवत् करता तथा व्याच्य-भर्मका सम्यक पालन करते हुए सदैव अपराधियोंको दण्डल किया। कभी विशाल भुजाओंबाले उस राजाने अपनी सेनाके सहित शिकार करनेके लिये नाना प्रकारके वृक्षोंसे भरे हुए सैकड़ों सिंहोंसे परिव्यास, विभिन्न प्रकारके पश्चियोंके कलस्वसे निनादित एक यनघोर वनमें प्रवेश किया। बनके बीचमें जाकर राजाने दूरसे ही एक मुगको देखा और उसके ऊपर अपने बाणको छोड़ दिया। उसके द्वारा खोडे गये उस कठिन बाणसे वह मृग अत्यन्त आहत हो उटा और जरीरमें बिंधे हुए उस बाणके सहित वह मृग वहाँसे भागकर वनमें लुप्त हो गया, किंतु उसकी काँखसे वह रहे रक्तके चिहाँसे राजाने उसका पीछा किया। इस प्रकार उसके पीछे-पीछे वह राजा दूसरे वनमें जा पहुँचा। भूख और प्याससे उसका कण्ठ सूख रहा था तथा

परिश्रम करनेके कारण अत्यन्त थकानका अनुभव करता हुआ वह मुस्कित-सा हो गया था: उसको वहाँ एक जलागय दिखायी दिया। जलाशय देखकर घोडेके सहित जगतुके कल्याणार्थ मुझको यह सब बतानेकी कृपा करें। उसने वहीं स्नान किया और कमलपरागसे सुवासित शीतल

१-उत्तम पोतशी आदि जो प्रेतोद्देश्यक कार्य हैं मणिण्डानके कद भी इनकी पुनग्रवृत्ति कनमासिक आदि ब्राह्मके द्वारा वर्षपर्यन्त करना चाहिये। परंतु पितरोंके उदेश्यमे किये गये कर्मकी प्रनाशित नहीं होनी चाहिए-द्वादशाहे कृतं सर्वं वर्षं व्यवत्सरिण्डनम् । पुनः कुर्यात्यदा नित्वं घटानं प्रतिमासिकम् ॥ कृतस्य करणं नास्ति प्रेतकार्याहते खागः यः करोति नाः क्रीक्ष्कुरुपूर्व विनरस्यति ॥

मृतस्यैव पुन:कुर्यारोतोऽक्षस्यमगाजुगात्। प्रतिमार्ग गटा देवा मोदन जलपूरिता: s

अवस्थि वृद्धेः करणाच्य तार्श्य सपिण्डनं यः कुरुते हि पुत्रः। तथापि मानं प्रतिपिण्डमेकमनं य कुम्भं सवलं च दद्यात्॥ (२६।६४—६७)

जलका पान किया। तत्पश्चात् उस जलसे निकलकर राजा बश्चवाहन विशाल वटवृश्चकी मनमोहक शौतल छायाके नीचे बैठ गया, जो पश्चियोंके कलरवसे निनादित तथा उस समूचे वनकी पताकांके रूपमें अवस्थित था। इसके बाद उस राजाने वहाँपर भूख-प्याससे व्याकुल इन्द्रियोंवाले एक प्रेतको देखा, जिसके सिरकी केशराशि ऊपरकी और खड़ी थी। उसका शरीर मिलन, कुष्णा (रूस), मोसरिहत और देखनेमें महाभयंकर लगता था। मात्र शरीरमें शेष स्नायु-तित्रकाओंसे जुड़ी हुई हिंदुयोंवाला वह अपने पैरोंसे इधर-उधर दीड़ रहा था और अन्य बहुत-से प्रेत उसको चारों ओरसे भेरे हुए थे।

हे ताक्ष्ये। उस विकृत प्रेतको देखकर बभुवाहन विस्मित हो गया और उस प्रेतको भी महाभयंकर वनमें आये हुए राजाको देखकर कम आश्चर्य नहीं हुआ। प्रसन्नचित होकर प्रेतने उस राजाके पास जाकर कहा-

प्रेतने कहा—है महाबाहो। आज आपके दर्शनका यह संयोग प्राप्त कर मैंने प्रेतभावको त्याग कर परम गति प्राप्त कर ली है। मुझसे बढ़कर धन्य कोई नहीं है।

राजाने कहा—हे प्रेत। तुम मुझे कृष्णवर्णवाले भयंकर प्रेतके समान दिखायों दे रहे हो। तुम्हें इस प्रकारका स्वरूप जैसे प्राप्त हुआ है वैसा मुझे बताओ।

राजाके ऐसा कहनेपर उस प्रेतने अपने सम्पूर्ण जीवनवृक्को इस प्रकार कहा—

प्रेसने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! मैं अपने सम्पूर्ण जीवन-वृत्तका विवरण आपको आदिसे सुना रहा हूँ, मेरे इस प्रेतत्वका कारण सुन करके आप दया अवश्य करेंगे। है राजन्! नाना रहोंसे युक्त तथा अनेक जनपदीमें व्याव समस्त सम्पदाओंसे भरा हुआ, विभिन्न पुण्योंसे प्रक्रमात अनेकानेक वृक्षोंसे आच्छादित विदिशा नामका एक नगर है। मैं वहाँपर निरन्तर देवपूजामें अनुरक्त रहकर निवास करता था। उस जन्ममें मेरी जाति वैश्यकी थी और नाम मेरा सुदेव था। मैं उस जन्ममें हज्यसे देवताओंको, कब्बसे पितरोंको तथा नाना प्रकारके दानसे ब्राह्मणोंको सदैव संतृत किया करता था। मेरे द्वारा दीन-हीन, अनाथ और विजिष्ट जनोंको अनेक प्रकारसे सहायता को गयी थी, किंतु दुर्भाग्यवश वह सब कुछ मेरा निष्फल हो गया। मेरे वे पुण्य जिस प्रकारसे विफल हुए, मैं आपको वह सुनाता हूँ। हे तात! पूर्वजन्ममें न मेरे कोई संतान हुई, न कोई ऐसा बन्धु-बान्धव या मित्र ही रहा जो मेरी औध्वंदैहिक क्रिया सम्पन्न करता। हे नृपोत्तम! उसीके कारण मुझे यह प्रेतचोनि प्राप्त हुई हैं। हे राजन्! एकादशाह, त्रिपक्ष, पाण्मासिक, सांवल्सिक, प्रतिमासिक और इसी प्रकारके अन्य जो घोडल ब्राद्ध हैं, वे जिस प्रेतके लिये गम्पन्न नहीं क्रिये जाते हैं, उस प्रेतको प्रेतचोनि बादमें स्थिरताको प्राप्त कर लेता है, भले ही बादमें क्यों न उसके लिये सैकड़ों ब्राद्ध किये जावें। हे महाराज! ऐसा जानकर आप मेरा इस प्रेतचोनिसे उद्धार करें। राजाको सभी वर्णोका बन्धु कहा जाता है। मैं आपको एक मणिरत दे रहा हैं। हे राजेन्द्र! इस नरकसे मुझे उबार लें। हे नृपश्रेष्ठ! हे महाबाहो! यदि अपको मेरे ऊपर कृपा है तो जिस प्रकारसे मुझे शुभ गति ग्राप्त हो मेरे लिये वहीं उपाय करें और आप अपना भी समस्त प्रकारसे औध्वंदैहिक कार्य करें।

राजाने कहा—हे प्रेत! औध्वंदैहिक कर्म करनेपर भी प्राची कैसे प्रेत हो जाते हैं? किन कर्मोंको करनेसे उन्हें पिताच होना पड़ता है? तुम उसे भी बताओ।

प्रेतने कहा—है नुपक्षेष्ठ! जो लोग देयद्रस्य, खाह्मण-द्रव्य और स्त्री एवं बालकोंके संवित धनका अपहरण करते हैं, वे प्रेतचोनि प्राप्त करते हैं। जिनके द्वारा तपस्थिनी, सगीत्रा एवं अगम्या स्त्रीका भोग किया जाता है, जो कमलपुष्पांको चोरो करते हैं, वे महाप्रेत होते हैं। हे राजन्। वो होरा-मूँगा-सोना और वस्त्रके अपहर्ता है, जो युद्धमें पाँठ दिखाते हैं, वो कृतष्त, नारितक, क्रूर तथा दु:साहसी हैं, जो प्रज्ञयत्र नहीं करते, किंतु बहुत बड़े-बड़े दान देनेमें अनुरक्त रहते हैं, जो अपने स्वामीसे वैर करते हैं, जो मित्र और ब्राह्मणद्रोहों हैं, जो तीर्थमें जाकर पापकर्म करते हैं, वे प्रेतचोनिमें जन्म लेते हैं। हे महाराज! इस प्रकार इन सभी प्राणियोंका जन्म प्रेतचोनिमें होता है।

राजाने कहा—है प्रेतराज! इस प्रेतत्वसे तुम्हें और तुम्हारे साधियोंको कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है? मैं किस प्रकारसे अपना औध्वंदैहिक कर्म कर सकता हूँ? वह कार्य किस विधानसे सम्भव है? यह सब कुछ मुझे बताओ।

प्रेतने कहा—हे राजेन्द्र! संक्षेपमें नारायणबलिकी विधि सुनें। मैंने सुना है कि सद्ग्रन्थोंका श्रवण, विष्णुका पूजन तथा सञ्जनोंका साथ प्रेतयोनिको विनष्ट करनेमें समर्थ

होता है। अत: मैं आपको प्रेतत्वभावको नष्ट करनेवाली किया है। जिस दानसे प्रेतत्व प्राप्त नहीं होता, उसे मैं कहता विष्णुपुजाका विधान बताऊँगा।

हे राजन्। दो सुवर्ण' ले करके उससे भगवान नारायणको सभी आभूषणोंसे विभूषित प्रतिमाका निर्माण करवाना चाहिये। मृतिको दो पीले वस्त्रोंसे आच्छादित करके चन्दन तथा अगुरुसे सुवासित करे। तदनन्तर नाना तीथोंसे लाये गये पवित्र जलके द्वारा सर्विध स्नान कराकर तथा अधिवासितकर पूर्वमें भगवान त्रीधर, दक्षिणमें भगवान मधुसूदन, पश्चिममें भगवान् वामन, उत्तरमें भगवान् गदाधर, मध्यभागमें पितामह ब्रह्मा और भगवान महेश्वरकी विधियत पूजा गन्ध-पुष्पादिसे पृथक-पृथक् रूपमें को जाय। तत्पशात उस देवमण्डलकी प्रदक्षिणा करके अग्निमें देवताओंकी संतुष्टिके लिये आहुति दे। घृत, दही और दूधसे विश्वेदेशीको संतुष्ठ करे। उसके बाद यजमान फिरसे स्नान करके विनम्रतापूर्वक एकाग्रचित्तसे भगवान् नारायणके सामने विधिवत् अपनी औष्वंदैहिक क्रिया सम्पन्न करे। विनोतभावसे क्रोध एवं लोभरहित होकर कार्य आरम्भ करना चाहिये। इस अवसरपर सभी बाद्ध और बुषोत्सर्ग करने चाहिये। तेरह ब्राह्मणोंको वस्त्र, छत्र, जुता, मुकामणिजटित अँगुठी, पात्र, आसन और भोजन देकर संतुष्ट करे। उसके बाद प्रेतकल्याणके लिये अन्न और जलपूर्ण कुम्भका दान देना चाहिये। शब्यादान करके घटदान भी प्रेतके उद्देश्यक्षे करे। गया। हे पश्चिन्। नगरमें पहुँचकर राजाने उस प्रेतके हारा तदननार 'नारायण' नाम ही सत्य है- ऐसा कहकर सम्पुटमें कही गयी सम्पूर्ण औध्वेदैहिक क्रियाको विधि-विधानसे स्थित भगवान् नारायणको पूजा करे। ऐसा विधिवत् करनेपर सम्मन्न किया। उसके पुण्यसे वह प्रेत बन्धन-विमुक्त निश्चित ही प्राणीको शुभ फल प्राप्त होता है।

राजाने कहा-हे प्रेत! प्रेतपट कैसा होना चाहिये. उसको प्रदान करनेका क्या विधान है? सभी प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये तुम प्रेतके लिये मुक्तिदायक घटके विषयमें मुझे बताओ।

प्रेतने कहा-हे महाराज! आपने यहा अच्छा प्रशन

हैं. सुने।

प्रेतघट नामका दान समस्त असङ्गलॉका विनाशक है। दुर्गतिको श्रय करनेवाला यह प्रेतपटका दान सभी लोकोंमें दर्शभ है। संतम स्वर्णमय घट बनवाकर उसे घृत और दूधसे परिपूर्ण करके लोकपालॉसहित ब्रह्मा, शिव और केरावको भक्तिपूर्वक प्रणाम कर बाह्मणको दानमें दे। अन्य सैकडों दान देनेसे क्या लाभ? इसके मध्यभागमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा पूर्वादिक सभी दिशाओं में और कण्ठभागमें यधाक्रम लोकपालोंको विधिवत् पुष्प, धूप एवं चन्दनादिसे पूजा करके उसे दूध और घीसे पूर्ण स्वर्णमय घट दानमें देना चाहिये। यह सभी दानोंसे बढकर दान है। इस दानसे सभी महापातकोंका विनाश हो जाता है। प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये ब्रह्मपूर्वक यह दान अवस्य करना चाहिये।

श्रीभगवान्ने कहा-हे वैनतेय। उस प्रेतके साथ इस प्रकारका वार्तालाप राजाका चल ही रहा था कि उसी समय उनके पदिवहोंका अनुगमन करती हुई हाथी, घोड़े तथा रचसे परिव्यास उनको सेना वहाँ आ पहुँची। सेनाके वहाँ आ जानेपर प्रेतने राजाको एक महामणि देकर प्रणाम किया और अपने प्रेतला-विमृक्तिको प्रार्थना करके अदृश्य हो गया। उस वनसे निकलकर राजा भी अपने नगरको चला होकर स्वर्ग चला गया।

हे गरुड ! पुत्रके द्वारा दिये गये श्राद्धसे पिताको सदगति प्राप्त होती है, इसमें आक्षर्य क्या है ? जो मनुष्य इस पुण्यदायक इतिहासको सुनता है और जो सुनाता है, वह पापाचारसे युक्त होनेपर भी प्रेतत्व-योनिको प्राप्त नहीं होता है।

(अध्याय २६-२७)

प्रेतत्वमुक्तिके उपाय

गरुडजीने कहा -हे मधुसूदन! जिस दान या सत्कर्मसे प्राणीकी प्रेतयोनि चूट जाती है, उसे बतानेकी कृपा करें इसके ज्ञानसे लोगोंका बडा कल्याण होगा।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! सुनो! मैं तुम्हें समस्त अमङ्गलोंको विनष्ट करनेवाले दानको बता रहा है। शुद्ध स्वर्णका घट बनाकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा लोकपालोंसहित जाती है।

हे गरुड! पुत्रहीन व्यक्तिको सद्गति नहीं होती, अत: यधाविधान पुत्र उत्पन्न करना चाहिये। मृत व्यक्तिको गोबरसे लीपी गयी मण्डलाकार धुमिमें स्थापित करना चाहिये। भूमि गोबरसे लोपनेपर पवित्र हो जाती है तथा मण्डलका निर्माण करनेसे उस स्थानपर देवताओंका वास हो जाता है। ऐसे ही मृत व्यक्तिके नीचे तिल और कुश बिछानेसे जीवको उत्तम गतिको प्राप्ति होती है, साथ ही मृत व्यक्तिके मुँहमें पञ्चरत डालनेसे जीवको सुभ गति मिलती है।

सदा पश्चित्र 🐔 'मम स्वेदसमृद्भुतास्तिलास्ताक्ष्यं आतुर व्यक्तिको दुर्गतिको रोककर उसे सदगति दिलाते पवित्रकाः ।' (२९।१५)। इसी प्रकार कृशकी उत्पत्ति मेरे हैं। आतुर-कालमें दानको भी विशेष महिमा है। भगवान् रोमसे हां है 'दर्भा मल्लोमसम्भृताः (२९ (१७)) कुशयुक्त विष्णुकी देहसे लवणका प्रादुर्भाव हुआ है अत: आतुर-भूमि अपने क्रपर विद्यमान मृत जीवको नि:संदेह स्वगं कालमें लवण-दान करनेसे भी जीवकी दुर्गति नहीं पहुँचा देती है। कुशमें बहा, विष्णु तका शिव- ये तीनों देख होती। (अध्याय २८-२९)

उसकी पुजाकर दुग्ध और घुतसे परिपूर्ण उस घटको प्रतिष्ठित रहते हैं— 'त्रयो देवा: कुशे स्थिता: ।' हे पक्षिराज! सुपात्र ब्राह्मणको दानमें देनेसे प्रेतत्वसे मुक्ति मिल ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि तथा तुलसी--ये बार-बार प्रयोगमें लाये जानेपर भी पर्युचित (बासी) नहीं होते-

विद्रा मनाः कृशा बहिस्तुलसी च खगेश्वरः नेते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनः पुनः॥

(\$51.25)

इस्ते तरह विष्णु, एकादशीवत, भगवदगीता, तुलसी, ब्राह्मण तथा गी-ये छ: इस संसारसागरसे मुक्ति दिलानेवाले हैं:--

विष्णुरेकादशीगीतातुलसीविष्रधेनवः अपारे दुर्गसंसार षटपदी (44154)

हे तार्थ्य! तिल मेरे प्रसोनेसे उत्पन्न हैं, इसलिये वे इसीलिये हे गरुड! तिल, कुश और तुलसी-ये

दानधर्मकी महिमा, आतुरकालके दानका वैशिष्ट्य, वैतरणी गोदानकी महिमा

गोपनीय दानीमें उत्तम और सभी दानोंमें केंद्र दानको सुनो- महापापीको नाश करनेकी शक्ति होती है। ये दोनों दान है। उसका दान मनुष्यको अवस्य करना चाहिये, उसके रूपमें संकल्पित तिल, गी तथा पृथ्वी आदि द्रव्य, अपने दानसे भू:, भूव:, स्व: अर्थात् पृथ्वां, अन्तरिश्च और पोष्य-वर्गं एवं ब्राह्मणेतर वर्णको न दे। पोष्यवर्गं और स्त्री-स्वर्ग—ये तीनों लोक प्रसन्न हो उठते हैं। इस कार्यसे ब्रह्मा जातिको असंकल्पित वस्तु दानमें देनी चाहिये। रुग्णावस्थामें आदि सभी देवोंको प्रसन्नता होती है। प्रेतका उद्धार अधवा सूर्य एवं चन्द्रग्रहणके अवसरपर दिये गये दान करनेके लिये इस महादानको करना चाहिये। ऐसे महादानका विशेष महत्त्व रखते हैं। रोगीके लिये जो दान दिया जाता दाता चिरकालतक रुद्रलोकमें रहता है, तदननार इस है, यह उसके लिये तत्काल यथोचित फल देनेयाला होता लोकमें जन्म लेकर रूपसम्पन्न, सौधाग्यशालो, वाक्चत्र, है। यदि रोगी दान देनेके बाद रोगमुक्त होकर पुन: जीवन लक्ष्मीबान् और अप्रतिहत-पराक्रमी राजा होता है। अपने प्राप्त कर लेता है तो उसके निमित्त दिया गया दान निश्चित सुकृतोंसे यमलोकको जीतकर वह स्वर्गलोकमें जाता है। हो उसे प्राप्त होता है। विकलेन्द्रियको विकलाङ्गताको जो प्राणी ब्राह्मणको गौ, तिल, भूमि तथा स्वर्णका दान देता नष्ट करनेके लिये जो दान दिया जाता है वह दान भी

श्रीकृष्णने कहा —हे तार्क्य। देवताओंके लिये परम जाते हैं। तिल और गौका दान महादान है, इसमें हे गरुड। रहंका दान सभी दानोंमें उत्तम तथा महानु केवल विप्रको देने चाहिये, अन्य वर्णोंको नहीं। दानके है, उसके जन्म-जन्मार्जित सभी पाप उसी क्षण विनष्ट हो। अवस्य ही यथायोग्य फलदायक होता है। जिस दानका पुत्र

१-२८वें तथा २९वें अध्यायका विषय प्रथम तथा द्वितीय अध्यायमें पूर्णरूपसे आ गण है, इसलिये इसे यहाँ सीक्षपारूपमें दिया गया है। पूर्ण विवरण प्रथम तथा दितीय अध्यायमें देखना चाहिये।

अनुमोदन करता है, उस दानका फल अनन्त होता है। अत: उसके सगे-सम्बन्धी अथवा पुत्रको तबतक दान देना चाहिये, जबतक उसका आतुर सम्बन्धी या पिता जीवित हो; क्योंकि अतिबाहिक प्रेत उसका भोग करता है।

अस्वस्थ-अवस्थामें-- आतुरकालमें देहपात हो जानेपा पृथ्वीपर पडे रहनेकी स्थितिमें दिया गया दान अतिवाहिक शरीरके लिये प्रीतिकारक होता है। लैंगडे, अंधे, काने और अर्धनिमीलित नेत्रवाले रोगीके लिये तिलके ऊपर क्या बिछाकर उसके ऊपर आतुरको लिटाकर दिया गया दान उत्तम और अक्षय होता है।

तिल, लीह, स्वर्ण, हई, तमक, सतथान्य, भूमि तथा गौ- ये एकसे बढ़कर एक पवित्र माने नये हैं। लौह-दानसे यमराज और तिल-दानसे धर्मराज संतुष्ट होते हैं। नमकका दान करनेपर प्राणीको समराजसे भय नहीं रह जाता। हर्दका दान देनेपर भूतयोनिसं भय नहीं रहता। दानमें दी गयी गायें मनुष्यको त्रिविध पापोसे निर्मुक करती है। स्वर्ण-दानसे दाताको स्वर्गका सुख प्राप्त होता है। भूमि-दानसे दाता राजा होता है। स्वर्ण और भूमि-इन दोनोंका दान देनेसे प्राणीको नरकमें किसी प्रकारकी पोंदा नहीं होती। यमलोकमें जितने भी यमराजके दत हैं, वे सभी उसी यमके समान ही महाभयंकर हैं। सप्तधान्यका दान देनेसे वे प्रसन्न होकर दानदासाओंके लिये वरदाता बन अर्त है।

हे गरुड! भगवान विष्णुका स्मरणमात्र करनेसे प्राणीको परम गति प्राप्त होती है। मनुष्य जो गति प्राप्त करता है, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया। पिताकी आज्ञासे जो पुत्र दान देता है, उसकी सभी प्रशंसा करते हैं। भूमिपर सुलाये गये मरणासन्न पिताके उद्देश्यसे जो एव सभी प्रकारका दान देता है, वह पुत्र कुलनन्दन है। उसके द्वारा दिया गया दान गया-तीर्थमें किये गये ब्राइसे भी बहकर है। वह पुत्र अपने कलको आनन्दित करनेवाला होता है। जिस समय अपने लोकको छोडकर बेचैन पिताकी परलोक-पात्राका काल समीप हो, उस समय पुत्रोंको प्रयत्नपूर्वक दान देना चाहिये; क्योंकि वे ही दान पिताको पार करते हैं। पुत्रको पिताकी प्राप्त करता है। स्वर्ग अथवा नरकमें गये हुए प्राणीकी तुप्ति अन्येष्टि-क्रिया अवश्य सम्पन करनी चाहिये। इतना ब्राह्मके द्वारा होती है, इसलिये विद्वान व्यक्तिको तीनी करनेमात्रसे अन्य सभी बहुविध दानोंका फल प्राप्त हो। प्रकारका ब्राह्म करना चाहिये। मतस्य, कुर्म, वराह, नारसिंह, जाता है: क्योंकि अधमेध-जैसा महायज्ञ भी इस पुण्यके जानन, परशुराम, श्रीराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि-ये दस सोलहर्वे अंशकी क्षमता नहीं रखता। पृथ्वीपर पढ़े हुए नाम सदैव मनोपियोंके लिये स्मरण करने योग्य हैं। इनका आत्र पितासे जो धर्मातमा पुत्र दान दिलाता है, उसकी पूजा स्मरण करनेसे स्वर्गमें गये हुए प्राणी सुखका भोग करते

देवता भी करते हैं।

लीहका दान करनेवाला दाता महाभयानक आकृतिवाले यमराजके निकट न तो जाता है और न तो नारकीय लोकको ही प्राप्त करता है। पापियोंको भयभीत करनेके लिये यमाजके हाथोंमें कुटार, मुसल, दण्ड, खड्ग और छरिका रहती है: इसलिये प्राणीको चाहिये कि वह ब्राह्मणको लौह-दान दे। यह दान यमराजके आयुधींकी संतृष्टिके लिये कहा गया है। गर्थस्य प्राणी, शिशु, युवा और बृद्ध-ये जो भी हैं, इन दानोंसे अपने समस्त पापोंको जला देते हैं। स्थाम एवं शबल वर्णके पण्ड तथा मर्क और गुलरके सदल मांसल, हाथमें छुरी धारण करनेवाले, काले-चितकबरे यमके दत लौह-दानसे प्रसन्न होते हैं। यदि पुत्र-पौत्र, बन्धु-बान्धव, सगोत्री और मित्र अपने रोगोंके लिये दान नहीं देते तो वे ब्रह्महन्ताके समान

हे पक्षीन्द्र। भूमिपर रिन्धत प्राणीकी मृत्यु हो जानेपर उसकी क्या गति होती है, इसे सुनो! अतिवाहिक शरीरवाला प्रेत वर्ष समाव होनेके पश्चात पुन: पुण्यका लाभ प्राप्त करता है। इस संसारमें तीन अग्नि, तीन लोक, तीन बंद, तीन देवता, तीन काल, तीन संधियों, तीन वर्ण तथा तीन जिल्ला मानी गयी हैं। भनुष्यके शरीरमें पैरसे ऊपर कटिप्रान्तक ब्रह्म निवास करते हैं। नाभिसे लेकर ग्रीवा-भागतक हरिका बास रहता है और उसके ऊपर मुखसे लेकर मस्तकतक व्यक्त तथा अध्यक्त-स्वरूपवाले महादेव शिवका निवास है। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश-इनका शरीएमें तीन भागोंमें अवस्थान है।

मैं हो जरायज, अण्डज, स्वेदन तथा उद्भिण्जके शरीरोंमें प्राणकपसे स्थित रहता है। धर्म-अधर्म, सुख-दु:ख तवा कृत-अकृतमें बुद्धिकों मैं ही प्रेरित करता हैं। मैं ही स्वयं प्राणीको बद्धिमें बैठकर पूर्व-कर्मके अनुसार उसको फल प्रदान करता है। प्राणियोंको मैं हो कर्ममें प्रेरित करता हैं। उसीके अनुसार प्राणी निश्चित ही स्वर्ग, नरक और मोक्ष हैं और स्वर्गसे पन: इस लोकमें आनेपर सुख और धन-धान्यसे पूर्ण होकर दया-दाक्षिण्य आदि सदगुणोंसे भरे रहते हैं, ये पुत्र-पीत्रसे युक्त और धनाइय होकर सी वर्षतक जीते हैं। रोगग्रस्त होनेपर मनुष्यके लिये दान देना चाहिये और भगवान् विष्णुकी पूजा करनी या करानी चाहिये। उस समय उसे अष्टाक्षर अथवा द्वादशाक्षर-महामन्त्रका जप करना चाहिये।

श्रेत पुष्पसे, भीमें पकाये गये नैवेद्यसे, गन्ध-धुपसे भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये तथा ब्रुटियों और स्मृतियोंमें अधिवर्णित स्तृतियोंसे भगवान विष्णुकी स्तृति इस प्रकार करनी चाहिये-'विष्णु ही माता है, विष्णु हो पिता हैं, विष्णु ही अपने स्वजन और बान्धव हैं। जहाँपर में विष्णुको नहीं देखता है, वहाँ निकास करनेसे मुझे क्या लाभ ? विच्यु जलमें हैं, विच्यु स्थलमें हैं, विच्यु पर्वतकी बोटीपर हैं और विष्णु बारों ओरसे मालकपमें पिरी हुई ज्वालामालासे व्याप्त स्थानमें अवस्थित हैं। यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुमय है'-

विष्णुमांता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनबान्धवाः। यत्र विष्णुं न पश्यामि तत्र वासेन कि मम॥ जले क्रिका: स्थले विष्णविष्ण: पर्वतपस्तके। ञ्चालामालाकुले विष्णुः सर्वे विष्णुमर्थ जगत्॥

ब्राह्मण, जल, पृथ्वी आदि जितने भी पदार्थ हैं, उन्हें अपना ही स्वरूप समझना चाहिये। इसलिये हे खगेश। किसी भी स्थानपर मनुष्य पूर्वजन्माजित पाप-पुण्यके

अनुसार जिस कर्मको करता है, उसका फलदाता मैं ही हैं। मैं हो प्राणीको बुद्धिको धर्ममें नियुक्त करता हैं और मुक्ति में हो देता है।

हे कक्ष्यं! अन्त-समय आनेपर मनुष्योंका हित करनेवाली वैतरणी नदी मानी गयी है। उसीके जलसे अपने पाप-समृहको धोकर प्राणी विष्णुलोकको जाता है। बाल्यावस्थाका जो पाप है, कमारावस्थामें जो पाप हुआ है, यौवनावस्थाका जो पाप है और जन्म-जन्मान्तरमें समस्त अवस्थाओंके बीच भी जो पाप किया गया है, रात्रि-प्रात:, मध्याह-अपराह्न तथा दोनों संध्याओंके मध्य मन, वाणी और कर्मसे जो पाप हुआ है, उन सभी पापोंके समृहसे प्राणी अपना उद्घार अन्तिम क्षणमें सर्वकामनाओंको सिद्ध करनेवाली एक भी ब्रेष्टतमा कपिला गौका दान दे करके कर सकता है। [गांदान करते समय परमात्मासे ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये-- परमात्मन्!] 'मार्चे हो भी आने रहें, यार्चे हो मेर पीछे और पार्श्वभागमें रहें, गायें ही मेरे इटयमें निवास करें, मैं गायोंक बीचमें ही रहैं। जो सभी प्राणियोंको लक्ष्मीस्वरूपा हैं, जो देखताओंमें प्रतिष्ठित हैं, वे गीरुपिणी देखों मेरे सभी पापीको विनष्ट करें-

गावो यमाग्रतः सन् पृष्ठतः पार्चतस्तथा। गाची में इदये सन्तु गर्वा मध्ये वसाम्यहम्॥ या सक्षीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता। धेन्सपेण सा देवी मम पापं व्यपोहत्।।

(80142-48)

(अध्याय ३०)

और्ध्वदैहिक क्रियामें विहित पद आदि विविध दानोंका फल तथा जीवको प्राप्त देहके स्वरूपका वर्णन

श्रीविष्णुने कहा-है गरुड! जो मनुष्य पापाचारमें मनुष्य जो अल-दान देता है, उससे वह संतुप्त हो जाता लगे हुए हैं, वे यमलोकको जाते हैं। यदि मुझको साक्षी है। यमलोकके महापथमें एक ऐसा भी स्थान है, जहाँ यनाकर मनुष्यके द्वारा दान दिया जाता है, तो वह अनन्त अनगोर अन्धकार है, वहाँ कुछ भी दिखायी नहीं देता, किंतु फलदायी होता है। भूमिदान देनेवाला प्राणी दानमें दी गयी दीपदान देनेसे मनुष्य उस मार्गमें प्रकाशसे युक्त प्राणीके भूमिके रजकर्णोंकी जितनी संख्या होती है, उतने वर्षोतक समान जाते हैं। आश्विन, कार्तिक तथा माधमास, मृत-तिधि स्वर्गमें निवास करता है। जो जुतेका दान देते हैं, चौर और चतुर्दशी तिधिमें दिया गया दान सुखकारक होता है। यममार्गमें वे घोडेपर सवार होकर चलते हैं। छत्रदान करनेसे जबतक वर्ष न पूरा हो जाय, तयतक प्रतिदिन प्रेतको प्रेत यमलोकमें कहींपर भी धुपसे नहीं जलते, वे सुखपूर्वक उचड-खाबड मार्गमें सुखपूर्वक गमन करानेकी इच्छासे अपने पथमें चलते चले जाते हैं। जिसके उद्देश्यमें लोगोंको दोपदान करना चाहिये। वो मनुष्य दीपदान करता

है, वह स्वयं प्रकाशमय होकर संसारका पुरूप हो जाता है। प्रसन्नतापूर्वक निवास करता है। वह शुद्धात्मा अपने कुलमें घोतित होता है और प्रकाशस्वरूपको प्राप्त करता है।

हे खगेश! देवालयमें पूर्वाभिमुख, बाह्मजर्क लिये उत्तराभिमुख तथा प्रेतके निमित्त दक्षिणाभिमुख होकर सुस्थिर दीपकका दान जलसे संकल्पपूर्वक करना चाहिये। इस संसारमें जो सभी प्रकारके उपहारोंसे युक्त तेरह पददान मृत व्यक्तिके लिये तथा जीवित दशामें अपने लिये करता है, वह महान कष्टोंसे मुक्त होकर महापथको यात्रा करता है। आसन, पात्र और भोजन जो ब्राह्मणको देता है, वह उसीके पुण्यसे सुखपूर्वक खाता-पीता हुआ महापवको पार करता है। कमण्डलुका दान देनेसे प्यासा प्रेत जल प्राप्त करता है। प्रेतका उद्धार करनेके लिये एकादशहको पात्र, वस्त्र, पुण तथा अँगुठीका दान देना चाहिये। इसी प्रकार प्रेतका शुभेच्छ बनकर जो पुत्र यथाशकि तेरह पदीका दान करता है, उससे प्रेतको प्रसन्नता प्राप्त होती है। भोजन, तिल, जलपूर्ण तेरह घट, औगुडो तथा उत्तरीय एवं अधीवस्त्रका जो दान देता है, उस दानके पुण्यसे प्रेत परम गतिको प्राप्त करता है।

जो अश्र, मौका अथवा हाचीका दान ब्राह्मणको देता है वह उसी देय वस्तुकी महिमाके अनुसार उन-उन सखाँको प्राप्त करता है। जो मनुष्य भैसका दान देता है, वह नाना प्रकारके लोकोंमें विचरण करता है। यमदुर्तीके हर्पवर्धनके लिये ताम्बूल और पुष्पका दान देना चाहिये. इसमें संतुष्ट होकर वे दूत उस प्रेतको कष्ट नहीं देते।

प्राणीको यथाशक्ति गी, भूमि, तिल तथा स्वणंका दान अवश्य करना चाहिये, ऐसा मनीषियोंने कहा है। जो व्यक्ति मृत प्राणीके लिये जलसे परिपूर्ण मिट्टीका पात्र दान करता है, उसे हजार जलपूर्ण पात्रके दानका फल प्राप्त होता है। यमराजके दूत महाक्रोधी, महाभयंकर आकृतिवाले, काले तथा पीले वर्णके हैं: वे वस्त्र-दान किये जानेपर मृत प्राणीको यसलोकमें कष्ट नहीं देते। तथा और क्रमसे पोडित होकर महापथमें आगे बढ़ता हुआ प्रेत अत्र और जलसे पूर्ण घटका दान देनेसे निश्चित ही सुखी हो जाता है। दक्षिणा, अस्त्र, शस्त्र, वस्त्र तथा विष्णुकी स्वर्ण-प्रतिमासे युक्त पश्चेन्द्रियोंसे युक्त नौ द्वारवाले एक शरीरको छोड़कर दूसरे शय्याका दान भी ब्राह्मणको देना चाहिये। ऐसा करनेसे अरीरमें आश्रय ग्रहण करता है। शरीरमें ब्रिह्ममान धातुएँ प्रेतयोनिका परित्यागकर प्राणी स्वर्गमें देवताओंके साथ माता-पितासे ही प्राप्त हैं, इन्होंसे निर्मित यह शरीर

हे ताक्या। यह अन्त्येष्टि-कर्ममें होनेवाला दान मैंने तुमसे कहा। मृत प्राणी अन्य शरीरमें कैसे प्रवेश करता है, अब मैं उसको कहुँगा।

'हे परंतप! मृत्युलोकमें जन्म लेनेवाले प्राणीकी मृत्यु निश्चित है, इसलिये अपने-अपने धर्मके अनुसार मृत व्यक्तिका श्राद्धादिक कृत्य करना चाहिये। हे खगेश्वर! मरे हुए प्राणिवोंके मुखमण्डलसे पहले जीवात्मा वायुका सुक्ष्म इस्य धारण करके निकल जाता है। लोगोंके नेत्र आदि नी द्वार, रोम तथा तालुरन्धसे भी जीवात्मा बाहर हो जाता है; किंतु जो पापी है उनका जीवातमा अपान-मार्गसे शरीर खोहता है'-

जातस्य पायुलाके वै प्राणिनो मरणे धुवम्। पृति: कृषीत् स्वधर्मेण यास्यतद्य परंतप॥ पूर्वकाले मृतानां च प्राणिनां च खरेश्वर। सुक्ष्मी भूत्वा न्वसी वायुर्निर्गच्छन्यास्ययण्डलात्॥ जनानां ताल्रस्थके। नवदार रोमभिक्ष पापिष्ठानायपानेन जीवो निष्कामति

(49-49136)

प्राणवायुके निकल जानेपर शरीर पृथ्वीपर वैसे ही गिर पडता है, जैसे वायुके बपेड़ोंसे आहत होकर निराधार वृक्ष भूमिपर गिर पढ़ता है। मृत्युके बाद शरीरमें स्थित पृथ्वीतत्व पृथ्वीमें, जलतत्त्व जलमें, तेजस्तत्व तेजमें, वायुतत्व वायुर्भे, आकाशतत्त्व आकाशमें तथा सर्वव्यापी आत्मतस्य शिवमें लीन हो जाता है।

हे तार्थ! काय-क्रोध तथा पश्चेन्द्रयोंका समूह तरीरमें चौरके समान स्थित कहा गया है। देहमें काम-क्रोध तथा अहंकारसहित मन भी रहता है, वहीं सबका नायक है। पुण्य-पापसे संयुक्त होकर काल उसका संहारक बन जाता है। संसारमें भोगके लिये योग्य शरीरका निर्माण अपने कर्मके अनुसार होता है। मनुष्य अपने सत्कर्म और दुष्कर्मसे दूसरे शरीरमें प्रविष्ट होता है। जिस प्रकार पुराने घरके जल जानेपर गृही नये घरमें जाकर शरण लेता है, उसी प्रकार यह जीव भी विषयोंके साथ शरीरके साथ ही जल जाते हैं।

है, इसे मैंने कह दिया। प्राणियोंका शरीर कैसा होता है, नहीं पहचानते, वे पशुके समान माने गये हैं। उसको अब मैं फिरसे कह रहा है।

स्तम्भ धारण किये हैं। पञ्चेन्द्रयोसहित उसमें नौ द्वार है। जरायुज—इन चार मुख्य भागोंमें विभक्त हैं। (अध्याय ३१)

षाटकीशिक' कहलाता है। हे गरुड! शरीरमें सभी प्रकारके सांसारिक विषयोंसे युक्त एवं काम-क्रोधसे वेचैन वायु रहते हैं, मूत्र-पुरीय तथा उन्होंके योगसे उत्पन्न जीव इसी शरीरमें रहता है। राग-द्वेषसे व्यास यह शरीर तृष्णाका अन्यान्य व्याधियाँ रहतो हैं। अस्थि, जुक्र तथा स्नायु दुस्तर दुर्ग है। नाना प्रकारके लोभोंसे भरे हुए जीवका यह करोर पुर है। यहाँ स्थिति सभी शरीरोंकी है। इसी शरीरमें हे पश्चिन्! सभी प्राणियोंके शरीरका विनासकम यही सभी देवता और नौदहों लोक स्थित हैं। जो लोग अपनेको

हं पश्चिराज। इस प्रकार ऊपर बतायी गयी प्रक्रियासे हे गरुड! पुरुषका शरीर छोटी-बढी नसीसे बँधा निर्मित शरीरका वर्णन मैंने किया। सष्टिमें चौरासी लाख हुआ एक स्तम्भ है, जिसको नीचेसे पैररूपो दो अन्य योनियाँ बतायो गयो है, जो उद्भिन्न, स्वेदज, अण्डज और

शक्र-शोणितके संयोगसे जीवका प्रादुर्भाव, गर्भमें जीवका स्वरूप तथा उसकी वृद्धिका क्रम, शरीरके निर्माणमें पञ्चतत्त्वादिका अवदान, घाट्कौशिक शरीर, गर्भसे जीवके बाहर निकलनेपर विष्णुमायाद्वारा मोहित होना, आतुर व्यक्तिके लिये क्रियमाण कर्म तथा उनका फल, पिण्ड और ब्रह्माण्डकी समान स्थिति

ताक्ष्यंने कहा-है प्रभो। उद्भिन्त, स्वेदन, अण्डन, तथा अरायुज-ये चार प्रकारके प्राणी किस प्रकार उत्पन होते हैं 7 त्वाचा, रक्त, मांस, मेदा, मजा और अस्विमें जीव कैसे आता है? दो पैर, दो हाथ, गुहाभाग, जिहा, केश, नख, सिर, संधिमार्ग तथा माना प्रकारको बहुत-सी रखाओंकी उत्पत्ति कैसे होती है ? काम, क्रोध, भय, लजा, हर्ष, सुख और दु:खका भाव मनमें कैसे आता है? इस शरीरका चित्रण, छिद्रण और विभिन्न प्रकारकी नहींसे बेहन कैसे हुआ है? हे इपीकेश! इस असार धवसागरमें शारीरिक रचनाको मैं इन्द्रजाल ही मानता हूँ। हे स्थामिन्! नाना दु:खाँसे भरे हुए इस असार सागररूप संसारका कर्ता कौन है?

श्रीविष्णाने कहा-हे गरुड! कोशके निर्माणकी परम गोपनीय प्रक्रियाको मैं कहता हैं, इसके जाननेमात्रमें व्यक्ति सर्वज हो जाता है। हे बैनतेय! संसारके प्रति दया करते हुए तमने जीवके कारण-तत्त्वपर अच्छा प्रश्न किया है। एकाग्रचित्त होकर तुम उसे सुनो।

स्त्रियाँ ऋतुकालमें चार दिन त्याञ्य होती हैं, क्योंकि प्राचीन कालमें ब्रह्माने वृत्रासुरके मारे जानेपर लगी हुई

ब्रह्महत्याको इन्द्रके अरोरसे निकालकर एक चौथाई भाग रिजयोंको दे दिया था. उसीके कारण सिजयाँ अनुकालके आरम्भमें चार दिन अपवित्र मानी जाती है और उस समयतक इनका मुख नहीं देखना चाहिये, जबतक वह पाप उनके शरीरमें विद्यमान रहता है। स्त्रीको ऋतुकालके पहले दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मपतिनी, तीसरे दिन रजकी पानना चाहिये। चीधे दिन वह शुद्ध होती है। एक ससाहमें वह देवता और पितरोंके पुजनयोग्य हो जाती है। प्रथम सहाहके बोच जो गर्भ स्त्रीमें रूक जाता है, उसकी उत्पत्ति मीतम्तुव्से माननी चाहिये। वीर्यस्थापनके समय माता-पिताके चित्तमें जैसी कल्पना होगी, वैसे ही गर्भका जन्म होगा, इसमें संदेह नहीं है।

युग्म तिथिवाली रात्रियोंमें सहवास करनेसे पुत्र और अयुग्म रात्रियोंमें सहवास करनेसे कन्याका जन्म होता है। अत: ऋतुकालके पहले सम्राहको छोड़कर दूसरे सम्राहकी वन्य तिथियोंने सहवासमें प्रवृत्त होना चाहिये। सामान्यत: स्वियोंका ऋतुकाल सोलह रात्रियोंका होता है। यदि चौदहवीं रात्रिमें गर्भाधानको क्रिया होती है तो उस गर्भसे गुणवान, भाग्यतान्, धनवान् तथा धर्मनिष्ठ पुत्रका जन्म होता है। हे

१-त्वचा, रक्त. मांस, मेदा, मजा, तथा अस्थि—इन यद चातुओंसे निर्मित तरीर 'खदुकोतिक' बहलाता है।

पक्षिराज! वह रात्रि सामान्य लोगोंको प्राप्त होना सम्भव नहीं है। प्राय: स्त्रीमें गर्भोत्पत्ति आठवीं रात्रियोंक मध्यमें ही हो जाती है। ऋतुकालके पाँचवें दिन स्त्रियोंको कटु, क्षार, तीक्ष्ण और उच्च भोजनका परित्याग करके मधुर भोजन करना चाहिये; क्योंकि उनकी कोख औषधिपात्र हैं और पुरुषका बीज अमृततुल्य है। उसमें (स्त्रोरूप औषधिपात्रमें) बीज वपन करके मनुष्य सम्बक् फल प्राप्त कर सकता है, इसलिये उसको क्रोधादिकी ज्वालासे बचाकर मधुर भोजन तथा मृदु स्वभावकी जीतलतासे अभिसिंचित करना चाहिये। पुरुषको चाहिये कि वह पहले ताम्बूल और पुष्पींकी माला तथा चन्द्रनसे सुवासित होकर स्वच्छ एवं सुन्दर वस्त्र धारण करे। तदनन्तर शुद्ध मनसे स्त्रीकी श्रस्यापर शयन करनेके लिये जाय। वोर्य-वपनके समय उसके चित्तमें जैसी कल्पना होगी, उसी स्वधावकाली संतान जन्म लेगी। प्रारम्भमें शुद्ध और रक्तके संयोगसे जीव पिण्डरूपमें अस्तित्वको प्राप्त करता है और गर्भमें वह उसी प्रकार बढ़ता है, जिस प्रकार आकाशमें चन्द्रमाकी अभिवृद्धि होती है।

शुक्रमें चैतन्य बीजरूपसे स्थित रहता है। जब काम चित्त तथा शुक्र ऐक्यभावको प्राप्त हों, उस समय स्त्रीक गर्भाशयमें जीव एक निश्चित रूप धारण करनेकी पूर्वावस्थामें आता है। रक्ताधिक्य होनेपर कन्या और शुक्राधिक्य होनेपर पुत्र होता है। जब रक्त तथा शुक्र समान होते हैं तो गर्भमें रिश्वत संतानें नपुंसक होतों हैं। जुक्र तथा जोणित पहले दिन और रातमें कलल, पाँचवें दिन युद्युद तथा चाँदहवें दिन मांस-रूपमें हो जाता है। उसके बाद वह धनीभृत मांस गर्भमें रहता हुआ क्रमश: बीसवें दिनतक पिण्डरूपमें बढ़ता है। तदननार पचीसवें दिन उसमें शक्ति और पुष्टताका संचार होने लगता है। एक मास पूरा होते ही वह पञ्चतत्त्वोंसे युक्त हो जाता है। तत्पक्षात् उस गर्भस्य जीवके शरीरपर दूसरे मासमें त्वचा और मेदा, तीसरे मासमें मजा तथा अस्थि, चौथे मासमें केश एवं अँगुलो, पाँचवें मासमें कान, नाक तथा वध:स्थलका निर्माण होता है। उसके बाद छठे मासमें कण्ड, रन्ध्र और उदर, साववें मासमें गुहादि भाग तथा आठवें मासमें वह सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे पूर्ण हो जाता है। आठवें मासमें ही वह जीव माताके गर्भमें बार-

बार चलने लगता है और नवें मासमें उस गर्भस्थ शिशुका ओजगुण परिपक्व हो जाता है। उसके बाद गर्भवासका काल बोतनेपर वह गर्थस्थ शिशु गर्भसे निकलना चाहता है। वह बाहे कन्या हो, चाहे पुत्र, चाहे नपुंसक हो, फिर उसका जन्म होता है।

इस प्रकार जन्म, पुष्टि तथा संहार—इन तीनोंकी शक्तिसे बुक्त बद्कोशोंके भीतर विद्यमान पाँच इन्द्रिय, दस नाड़ी, दस प्राण और दस गुणसे समन्वित शरीरको जो जान लेता है, वही योगी है। जीवका पाञ्चभीतिक शरीर मण्जा, अस्यि, शुक्र, मांस, रोम तथा रक-इन छ: कोशोंसे निर्मित पिण्ड एक है। नर्ने या दसवें मासमें इसका पाश्चभौतिक स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। प्रसवकालीन वायुसे आकृष्ट, तात्कालिक पीडासे वंबैन, माताकी सुषुम्मा नाडीके द्वारा दो जा रही शक्तिसे पुष्ट वह जीव गर्भसे निकलनेका यथातीप्र प्रधास करता है। पृथ्वी, जल, हवि, भोका, वायु तथा आकास—इन छ: भूतोंसे पीड़ित होता हुआ जीव स्नायु-तन्त्रिकाओंसे आषद रहता है। इन्होंको विद्वानीने मुलभूत तत्व कहा है, ये शर्तरमें फैली हुई सात नाहियोंके बोचमें रहते हैं। त्वचा, अस्थि, नाडी, रोम और मांस-ये पाँच पृथ्वीतस्वकं कारण-शरीरमें आते हैं।

हे काश्यप! इसी प्रकार लार, मृत्र, शुक्र, मञ्जा तथा रन्ड- ये पाँच जलतत्त्वकं कारण-शरीरमें पाये जाते हैं। हे ताइयं! धुधा, तुवा, निहा, आलस्य एवं कान्ति—ये पाँच तेजस्तत्त्वके कारण-शरीरमें पाये जाते हैं। ऐसे ही राग, द्वेष, सजा, भए और मोह-ये पाँच वायुतत्वकं कारण-ज्ञरोरमें पाये जाते हैं। आकुज्ञन, धावन, लंघन, प्रसारण तथा निरोध-ये भी पाँचों वायुतत्वके कारण-शरीरमें ही पाये वाते हैं। हे गरुष्ट! शब्द, चिन्ता, गाम्भीयं, श्रवण और सत्वसंक्रम (सत्य और असत्यका विवेक)—ये पाँच आकारातत्त्वके कारण-शरीरमें आते हैं, ऐसा तुम्हें जानना चाहिये ।

श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्ना तथा नाक—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, डबकि हाथ, पैर, गुदा, वाणी और गुद्ध-ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। इडा, पिंगला, सुषुम्णा, गान्धारी, गर्जाजहा, पूषा, यशा, अलम्बुषा, कुहु तथा शंखिनी—ये दस नाड़ियाँ मानी गयी हैं। वहीं प्रधान दस नाड़ियाँ पिण्ड (शरीर)-फे मध्य स्थित कुकर, देवदत तथा धनज़य नामके दस वायु प्राणियोंके शरीरमें विद्यमान रहते हैं। केवल खाया गया अन ही देहधारियोंके शरीरको पृष्ट करता है और इस खावे गये अन्नको प्राणवाय ही शरीरमें तथा उसकी सभी संधियोंमें पहेंचाता है। भीजनके रूपमें ग्रहण किया गया जाहार वायके द्वारा दो रूपोंमें विभक्त किया जाता है। इसके अनन्तर यह प्राणवाय ही गुदाभागमें प्रविष्ट होकर अन और जलको पृथक-पृथक कर देता है तथा यही प्राणवायु अग्निके ऊपर जलको एवं जलके ऊपर अनको पहुँचाकर स्वयं अग्निके नीचे रहते हुए अग्निको धीरे-धीर उद्दोप्त करता है। तत्पश्चात् वायुसे उद्दोप्त किया हुआ अन्ति अनके रसभागको अलग और शुष्कभागको अलग कर देता है। यही शुष्कभाग बारह प्रकारक मलोंके रूपमें शरीरसे बाहर आता है। शरीरमें विद्यमान कान, नेत्र, नाक, जिल्ला, ठाँव, नाभि, गुदा तथा नख-ये सब मलके आत्रय हैं। ऐसे ही विक्र. मुद शक एवं शोषित-रूपसे ये यल अनन्त प्रकारके हैं।

हे विनतास्ता। मनुष्यके शरीरमें सामान्यत: सादे तीन करोड़ रोम और बतीस दाँत होते हैं। सिरमें बालोंकी संख्या सात लाख तथा नख बीस है। हे तावर्ष ! पुराने लोगोंने सामान्य रूपसे शरीरमें एक हजार पल मांस, सी पल रक्त, दस पल मेदा, दस पल त्वचा, बारह पल मजा, तीन पल महारक, दो कड़व (अनकी एक माप जो बारह मुद्रीके बराबर होती है) शुक्र तथा एक कृडव संतानोत्पत्तिके अतिरिक्त शरीरमें कुछ नहीं है।

कर्मानसार ही मनुष्यको मुख-दु:ख, भय तथा कल्याण प्राप्त होता है। कर्मका अनुष्ठान शरीरके द्वारा ही सम्भव होनेसे शरीरका महत्त्व है। इस शरीरके द्वारा ही जीव उत्तम-से-उत्तम अथवा अधम-से-अधम गति प्राप्त करता रही है-वाय जीवको गर्भसे बाहर करता है। उस समय

रहती है। प्राप, अपान, समान, उदान, ज्यान, नाग, कुर्म, उसके दोनों पैर ऊपर और मुख नीचेको ओर रहता है। ऐसा जीव पहले तो यधाक्रम मौंके गर्भमें रहकर ही धीर-धीरे बडता है। माताके द्वारा ग्रहण किये गये अन्न, फल, दूध, युव और जलके आहारसे उस जीवके शरीरकी हड़ियाँ पृष्ट होती है तथा वह जीवित रहता है। उस जीवके नाभिपान्तसे शक्तिवर्धिनी नाडी जडी रहती है, जिसकी आप्यायनी कहा जाता है। उसका सम्बन्ध रित्रपोंके आँत-जिंदसे होता है। उनके द्वारा खाया-पिया गया पदार्थ गर्भमें स्थित प्राणीके पेटमें आप्यायनी नाहीके द्वारा पहुँचता है। माँके द्वारा भुक पदार्थोंसे पृष्ट देहवाला होकर वह जीव प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होता है। इसी वृद्धिक्रममें संसारकी पूर्वानुभूत जनेक तिषयोंकी स्मृतियाँ उसे होती हैं और इन्हीं स्मृतियोंके कारण द:खित वह प्राणी खिन्न हो जाता है तथा अनेक प्रकारकी पीडाका अनुभव कर इधर-उधर गतिमान् होता है एवं 'गर्भसे निकल करके मैं पुन: ऐसा कुछ नहीं करूँगा विससे मुझे पुन: गर्भको प्राप्ति हो '- यह सोचकर जीव अपने उन सैकड़ों पूर्वजन्मोंका स्मरण करता है. जिनमें उसको मांसारिक, देवयोनियों और मृत्युलोककी चना योनियोंके मुख-दु:खका अनुभव प्राप्त हुआ था। उसके बाद समयानुसार वह प्राणी अधोमुख होफर नवें या दसवें मासमें गर्भसे बाहर आता है।

प्राजायत्य वायुके प्रभावसे गर्भ छोड़कर बाहर निकलता हुआ वह जीव दु:खी होता है। उस समय दु:खसे पीढ़ित वह प्राची विलाप करता हुआ बाहर निकलता है। उदरसे लिये उपयोगी स्त्रीके विद्यमान शोणित (रज)-को माना है। बाहर होते हुए उस जीवको असहा कष्ट देनेवाली मुच्छाँ इसी प्रकार मानव-शरीरमें छ: प्रकारके कफ, छ: प्रकारकी आ जाती है, किंतु कुछ ही खणमें वह जीव पुन: चेतनामें विद्या, छ: प्रकारके मुत्र और तीन सी साठसे अधिक आ जाता है। वायुके स्पर्शसे उसको सुखानुभृति होती है। अस्थियाँ होती हैं। इस प्रकार पिण्ड (करीर)-के विषयमें तत्पक्षात संसारको मीहित करनेवाली विष्णुकी माया उसके बताया गया। इसे ही शरीरका वैभव कहते हैं। इन सबके कपर अपना प्रभाव जमा लेती है। उस मायाशकिसे वियोहित जीवात्माका पूर्व ज्ञान नष्ट हो जाता है। ज्ञान नष्ट होनेके बाद वह जीव बालभावको प्राप्त करता है। तदनन्तर उसे काँपार्य, यौवन और बुद्धावस्था भी प्राप्त होती है। उसके बाद मनुष्य पुन: उसी प्रकार गरता है और जन्म लेता है। इस संसार-चक्रमें वह घडा बनानेवाले चक्रयन्त्रके है। इसलिये शरीरकी उत्पत्तिकी प्रक्रिया यहाँ बतायी जा. समान घुमता रहता है। प्राणी कभी स्वर्ग प्राप्त करता है और कभी नरकमें जाता है।

स्वर्ग तथा नरक मनुष्यको अपने कर्मानुसार हो प्राप्त उत्तर सुनो! मैं संक्षेपमें उसे कह रहा हूँ। होते हैं। हे पक्षिश्रेष्ठ! स्वर्ग और नरकमें कर्मफलका भीग करके प्राणी कभी थोड़ेसे शेष पाप-पुण्यका भीग करनेके गोम्ब, गोमय, तीर्बोदक और कुशोदकसे स्नान कराये। लिये पृथ्वीपर आ जाता है। जो स्वर्गमें निवास करते हैं, तदनन्तर स्वच्छ एवं पवित्र वस्त्र पहना दे और गोमयसे उन लोगोंको यह दिखायो देता है कि नरकलोकोंमें लिपो हुई भूमिपर दक्षिणाग्र कुशोंका एवं तिलका आस्तरण प्राणियोंको बहुत दु:ख है। यहाँपर यमराजके दृतीसे करके सुला दे। सुलाते समय उस मरणासन्न प्राणीके प्रतादित वे नरकवासी कभी प्रसान नहीं होते हैं, उन्हें तो सिसकों पूर्व अथवा उत्तरकों और करके उसके मुखमें दु:ख-ही-दु:ख झेलना पड़ता है। जबसे मनुष्य विमानमें सोनेका टुकड़ा डाले। हे खगेश! उसीके संनिकट भगवान् चढ़कर ऊपरकी ओर प्रस्थान करता है तभीसे उसके मनमें ज्ञालग्रामको मृति और तुलसीका बृक्ष लाकर रख दे। यह भाव स्थान बना लेता है कि पुण्यके समाप्त होनेपर में तत्पहात वहींपर घोका एक दीपक जलाये और 'ॐ नमी स्वर्गसे नीचे आ जाऊँगा। इसलिये स्वर्गमें भी बहुत दु:ख है। तरकवासियोंको देख करके जांचको महान् दु:ख होता तथा नाम-स्मरण आदिमें मन्त्रसे 'ॐ'का योग करे। पुष्प-है; क्योंकि मेरी भी इसी प्रकारकी गति होंगी—इस चिन्तासे यह रात-दिन मुक्त ही नहीं होता है। गर्भवासमें प्राणीको तदनन्तर विनय्नभावसे स्तुति-पाठ करते हुए उनका ध्यान योगिजन्य बहुत कष्ट होते हैं। योगिसे पैदा होते समय उसे करे। उसके बाद ब्राह्मणों, दीनों और अनार्थीको दान देकर, महान् दु:ख होता है। उत्पन्त हॉनेके बाद बालपनमें भी उसे भगवान् विष्णुके चरणींको हृदयमें स्थान देते हुए पुत्र, मित्र, दु:ख है और वृद्धावस्थामें भी दु:ख है। काम, क्रोध तथा स्त्रों, खेती-बारी तथा धन-धान्यादिके प्रति अपनी ममताका ईर्ध्यांका सम्बन्ध होनेसे युवावस्थामें भी उसके लिये परिल्वान कर दे। उस समय जीवको बहुत ही कष्ट होता असहनीय दु:ख है। दु:स्वप्न, वृद्धावस्थामें तथा मरणके है। उसके निवारणके लिये पुत्रादि सभी परिजनींको समय भी उत्कर दुःख तसे होता है। यमदूर्तीके द्वारा भरणासन्न प्राणीके कल्याण-हेतु केचे स्वरमें 'पुरुषसूक'का खींचकर नरकमें भी ले जाये जा रहे जीवको अधोगति प्राप्त होती है। उसके बाद फिर जीवका गर्धमें जन्म होता है और मृत्यु होती है। ऐसे संसार-चक्रमें प्राणी कुम्भकारके चक्रके समान भूमते रहते हैं। पूर्वजन्ममें किये गये पुण्य-पापसे बीधे जीव बार-बार इसी संसारके आवागमनका दु:ख भोगते हैं।

हे पश्चिन्। सैकड़ों प्रकारके दु:खरों व्याप्त इस संसारक्षेत्रमें रञ्जमात्र भी सुख नहीं है। हे विनतासुत। इसलिये यनुष्योंकी मुक्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। जीवको जैसी स्थिति गर्भमें होती है, वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया है। अब मैं पूर्वक्रमसे पूछे गये प्रश्नका ही उत्तर दूँ या इसी अन्तरालमें कुछ अन्य प्रश्न करनेको तुम्हारी इच्छा है?

गरुडने कहा-हे देवेश! पूछे गये प्रश्नोंमेंसे दो तीसरे प्रश्नका उत्तर प्रदान करनेकी कृपा करें।

मृत्युको संनिकट जानकर मनुष्यको सबसे पहले भगवते वासुदेवाय'— इस मन्त्रका जप करे? पूजा-दान धुपादिसे भली प्रकार हथीकेश विष्णुदेवकी पूजा करे। पाठ करना चाहिये।

हे गरुड! मृत्युके आ जानेपर जो कर्म करना चाहिये, वह सब मैंने तुम्हें मुना दिया। अब इस समस्त कर्मका फल बया है? उसको मैं संक्षेपमें कहता हूँ, तुम सुनो।

हें पश्चिराज । स्नान करनेसे प्राणीको स्वच्छता प्राप्त होती है। उससे रुरोरको अपवित्रता दूर होती है। उसके बाद भगवान् विष्णुका स्मरण होता है और उनका स्मरण सभी प्रकारके उत्तम फल प्रदान करता है। कुश और कपास आतुर प्राणीको स्वर्ग ले जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। तिल तचा कुश जलमें डालकर मरणासन व्यक्तिको कराया गया स्तान यद्वमें किये गये अवभूध-स्तानके समान होता है। ऐसे हो गोमयसे लिपी हुई भूमिपर मण्डल बनाकर उसपर महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंके उत्तर तो मुझे प्राप्त हो गये हैं, अब मुझे तिल, कुन्न आदि डालकर यदि मरणासन्न व्यक्तिको सुलाया जाय तो विष्णु आदि देव प्रसन्न होते हैं; क्योंकि श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षोन्द्र! मरणासन प्राणीके ब्रह्म, विष्णु, रुद्र, लक्ष्मो और अग्निदेव मण्डलमें रहते हैं। लियें क्या करना चाहिये ? यह तुमने प्रश्न किया है ? उसका इसीलिये मरणासन व्यक्तिको जिस भूमिपर शयन कराना

है, वहाँपर मण्डलका निर्माण करना चाहिये। हे खगेत्र! युर्व भवन विद्यमान हैं। अथवा उत्तरको ओर यदि मरणासन्न व्यक्तिका सिर कर संसार-सागरमें इबते हुए मनुष्यंकि लिये नौकाके समान हैं। विष्णु, एकादशी, गीता, तुलसी, ब्राह्मण एवं गी-यह पटपदी इस असार और जटिल संसारमें प्राणीको भाँक प्रदान कराती है। '32 नमी भगवते वासदेवाय'-इस प्रकार भगवान विष्णुके मन्त्रका जप करता हुआ मनुष्य निस्संदेह उन्होंका सायुज्य प्राप्त करता है। पूजा करनेसे भी मेरे (भगवान विष्ण्) लोककी प्राप्ति होती है, मेरी पृक्त करनेवाला साक्षात् स्वर्गलोकको जाता है। हे कास्पप्। 'पुरुषसुक्त'के पाससे अपने परिजनीके व्यामोहमें फैसा हुआ प्राणी बन्धनसे मुक्त हो जाता है। यस्तीक-प्रातिक जितने साधन बताये गये हैं. उनमें जिन साधनोंकी अधिकता होगी, उन्होंका फल मनुष्यको अधिकाधिक प्राट होगा। यथाशक्ति ब्राह्मणें, दीनों और अनाधोंको दान देना चाहिये ऐसा करनेसे वह सर्देव प्रसन्न रहता है।

हे साधी। स्नानादि करनेपर मनुष्यको प्राप्त होनेवाले समस्त फलांका विवरण यही है, इसको मैंने कह दिया। अब इस ब्रह्माण्डमें जो गुण विद्यमान हैं, उन्हें तुम सुनी! वे सब तुम्हारे शरीरमें भी हैं। पाताल, पर्यंत, लोक, द्वीप, सागर, सुर्यादि सभी ग्रह तुन्हारे शरीरमें ही स्थित है। यथा- पैरके नीचे तललोक, पैरके ऊपर वितललोक, दोनों जानुओंमें सतललोक और मक्थि-प्रदेतमें महातल नामक लोक समझने चाहिये। वैसे ही ऊरु-भागमें तलातललोक तथा गृह्य-स्थानमें रसातललोक स्थित है। ऐसे ही प्राणीके कटिप्रदेशमें पाताललोककी स्थिति समझे। नाभिके मध्यमें सत्यलोक है। इस प्रकार मनुष्यके इसी शरीरमें चौदह समय ही निश्चित हो जाते हैं -

शरीरके त्रिकोणमें मेरु, अध:कोणमें मन्दर, दक्षिणमें दिया जाय, यदि उसके पाप कम हों तो इतनेमात्रसे उसे कैलास, वामभागमें हिमालय, ऊर्घ्यभागमें निषध, दक्षिणमें उत्तम लोक प्राप्त हो सकते हैं। आतुर व्यक्तिके मुखमें गन्धमादन और वामरेखामें मलय-इन सात कुल पर्वतींकी पञ्चरत डालनेपर उसमें जानका उदय होता है। हे पश्चित् ! स्थिति है। इस देहके अस्थिधागमें जम्बद्धीप, मजामें शाक-तुलसी, ब्राह्मण, गौ, विष्णु और एकादशीवत-ये पाँच द्वीप, मांसमें कुशद्वीप, शिराओंमें क्रीश्रद्वीप, त्वचामें ज्ञाल्यलिद्वीप, रोम-समृहमें प्लक्षद्वीप और तखोंमें पुष्कर नामका द्वीप है। उसके बाद शरीरमें सागरोंका स्थान है। बैसे मुत्रमें धारोइसागा, शरीरके धारतत्वमें धीरसागर, क्लेब्बामें सुरोदधिसागर, मजामें घुतसागर, रसमें रसोदधिसागर, रक्तमें दक्षिमाण, काकुमें लटकते हुए मांसलभागमें स्वादुदक-सागर तथा सुक्रमें गर्भोदकसागर है। नादचक्रमें सूर्य, बिन्दुचक्रमें चन्द्रमा, नेत्रमें मंगल, इदयमें बुध, विष्णुस्थानमें गृष्ठ, शुक्रमें शुक्र, नाधिस्थानमें शनि, मुखमें राष्ट्र और पायुमें केतको माना गया है। इस प्रकार शरीरमें ग्रहमण्डलकी स्थिति है।

मनुष्यका आपादमस्तक-सम्पूर्ण शरीर इसी सृष्टिके रूपमें विश्वक है। जो लोग इस संसारमें उत्पन्न होते हैं, वे मृत्युको निश्चित ही प्राप्त होते हैं। भूख, प्यास, क्रोध, दाह, मुच्हां, विकाके हंक तथा सर्पके दंशसे उत्पन कष्ट सब इसी करीरमें हैं। समयके पूरा हो जानेपर सभी प्राणियोंका विनाश निक्षित है। यमलोकमें गये हुए जीवके आगे-आगे वहीं लोग दौड़ते हैं, जो पापी हैं, अधम हैं और दया-धर्मसे दूर हैं। यमदृत उनके बाल पकड़कर पसीरते हुए अत्यन्त संतव महस्थल तथा दहकते हुए अंगारीके बोचमें से जाते हैं। अत्यन्त दु:खसे कातर इन पापियोंको यमलोककी एक झोपडीमें तबतक रहना पडता है, जबतक पुनर्जन्म नहीं होता है।

हे तार्थ्यं! इस प्रकार जीव कर्मानुसार जन्म लेता है और मृत्युको प्राप्त होता है। इस संसारमें जो उत्पन्न हुए भुलींक, उसके ऊपर भुवलींक, इदयमें स्वर्गलोक, कण्डदेशमें हैं, वे अवश्य हो मरेंगे—इसमें संदेह नहीं है। आयु, कर्म, महलोंक, मखमें जनलोक, मस्तकमें तपोलोक एवं महारन्ध्रमें धन, विद्या और मृत्यू-ये पाँचों गर्भमें प्राणीक रहनेके

१-पञ्चरते मुखे मुक्ते जीवे जानं प्ररोहति । तुलसी ब्राह्मणा गानो विष्णुरेकादशी खगाव पञ्चप्रवहणान्येव भवाव्यौ मञ्जरां नृपान् । विष्णुरेकादशी गाँता तुलसी विप्रधेतव: व असारे दर्गसंसारे षटपदी भीतदायिनी । तमो भगवते बासुदेवायेति जपेनार:॥ (39199-109)

आयः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च॥ पश्चैतानि हि सञ्चन्ते गर्भस्वस्यैव देहिनः। योनिमें जीवको जन्म प्राप्त होता है।

सख-द:ख, भय एवं कल्याण कर्मसे ही प्राप्त होते हैं। नीचेकी और मुख तथा ऊपरकी ओर पैर किये हुए प्राणीको गर्भसे वायु ही खोंचकर बाहर लाता है। जन्म लेते ही उस देहधारीको सद्य: विष्णुकी माया सम्मोहित कर जाता है। (अध्याय ३२)

लेती है। अपने द्वारा किये गये पाप-पण्यसे सम्बन्धित

(३२।१२५-१२६) हे खगेश्वर! उत्तम प्रकृतिवाला व्यक्ति अपने स्कृतसे जीव कमंसे ही जन्म लेता है और विनष्ट होता है। अब्बे भोग भोगता है, उसका जन्म भी सत्कुलमें होता है। किंद जैसे-जैसे उसके द्वारा दृष्कृत होता है, वैसे-ही-वैसे उसका जन्म भी तीच कुलमें होने लगता है। वह उसी दुष्कर्मसे दरिह, रोगी, मुर्ख और अन्यान्य दु:खोंका पात्र बन

यमलोक, यममार्ग, यमराजके भवन तथा चित्रगुप्तके भवनका वर्णन, यमदूतोंद्वारा पापियोंको पीड़ित करना

जीवको उत्पत्तिका सम्पूर्ण लक्षण बता दिया, किंदु सचराचर-इन तीनों लोकोंके बीच समलोकका कितना परिमाण है? उसका विस्तार मुझे बतावें। उसके मार्गको कितनी दरी है? हे देव! किन पापींके करनेसे अधवा किस सुध कर्मके प्रभावसे मानवजाति वहाँ जाती है ? विशेष रूपसे बतानेकों कृषा करें।

श्रीभगवानने कहा-हे पश्चितः । प्रमाणतः यमलोकका विस्तार छियासी हजार योजन है। सनुष्यलोकके बोचसे ही उस लोकका मार्ग है, जो धौकनीसे दहकाये गये ताँबेके समान प्रज्वलित और दुर्गम महापध है। पापी तथा मुखं व्यक्ति वहाँ वाते हैं। अत्यन्त तेज, देखनेमें महाभयंकर लगनेवाले अनेक प्रकारके काँटे उस महाप्रधमें हैं। उन्हों कौटोंसे परिष्याप्त, कैची-नीची, अग्निके समान दहकती हुई उस महापथकी भूमि है। यहाँ वृक्षीकी कोई छाया भी नहीं है, वहाँपर ऐसा मनुष्य रक करके विज्ञाम कर सके। उस मार्गमें अज़दिकी भी व्यवस्था नहीं है, जिसके द्वारा प्राची अपने प्राणोंकी रक्षा कर सके। वहाँ जल भी नहीं दिखायी देता है, जिससे उसकी प्यास बुझ जाती हो। भूख-प्याससे पीडित वह पापी उसी महापथमें चलता है। अत्यन्त दुर्गम उस यममार्गमें वह ठंडकसे कॉपने लगता है। जिसका जितना और जिस प्रकारका पाप है, उसका उतना वैसा ही मार्ग है। अत्यन्त दोन-होन-कृपण और मुर्ख तथा द:खसे व्याप्त प्राणी उसी मार्गको पार करते हैं। आत्यकृत दोषोंसे

गरुद्धने कहा-हे तात! आपने अपने इस पुत्रको बारम्बार संतर कुछ लोग वहाँक असहा कष्टसे व्यथित होकर करूप चीत्कार करते हैं, कुछ लोग बहाँकी कृष्ययस्थाके प्रति विद्रोह कर देते हैं।

हें खर्गेश। उस कठार मार्गको ऐसा ही जानना चाहिये। जो लोग इस संसारके प्रति किसी प्रकारकी तृष्णा नहीं रखते हैं, वे इस मार्गपर सुखपूर्वक जाते हैं। पृथ्वीपर मनुष्य जिन-जिन वस्तुओंका दान देता है, वे सभी वस्तुएँ यमलोक तथा उस महापथमें उसके सामने उपस्थित रहती हैं। जिस पापीको बाद्ध और जलाजिल नहीं प्राप्त होती है, वे पाप-कर्म करनेवाले श्रुद्ध प्राणी वायु बनकर भटका करते हैं। हे सुवत। मैंने इस प्रकारके उस रौद्र पथको तुम्हें बता

दिया है। अब मैं पुन: चममार्गकी स्थिति बताउँगा। दक्षिण और नैर्मत दिलाके मध्यमें विवस्वत्पुत्र यमराजकी पुरो है। वह सम्पूर्ण नगर वजमय तथा दिव्य है। देवता और असर भी उसका भेदन नहीं कर सकते हैं। वह चौकोर है, उसमें चार द्वार तथा सात चहारदीवारी एवं तोरण हैं। यमग्रज स्वयं अपने दुर्तीक साथ उसीमें निवास करते हैं। प्रमाणतः उसका विस्तार एक हजार योजन है। सभी प्रकारके रबॉसे परिच्याम, चमकती हुई बिजली तथा सूर्यके तेजस्वी स्वरूपके समान वह पूरी दिव्य है। उस पूरीमें धर्मराजका जो भवन है, वह स्वर्णके समान कान्तिमान है। उसका विस्तार पाँच सौ योजन ऊँचा है। हजार खंभोंवाले इस भवनको वैदर्व मणियोंसे ससजित किया गया है। उसके जालमार्ग अर्थात् गवाक्ष मुकामणियोंसे बने हैं। सैकड़ों पताकाएँ उसकी शोभा बढ़ाती है। यण्टोंकी सैकडों ध्वनियाँ उस भवनमें होती रहती हैं। उसमें सैकडों, तोरजद्वार बनाये गये हैं। इसी प्रकारसे वह भवन अन्यान्य आभूषणोंसे विभूषित रहता है।

वहाँ दस योजनमें विस्तृत नीले मेचके समान शोधा-सम्पन्न, सम एवं शुभ आसनपर भगवान् धर्मराज स्थित रहते है। ये धर्मज्ञ, धर्मशील, धर्मयुक्त और कल्याणकारी है। वे ही पापियोंको भय देनेवाले तथा धार्मिकोंको सुख देनेवाले हैं। यहाँपर शीतल मन्द वायु बहती रहती है, अनेक प्रकारके उत्सव और व्याख्यान होते रहते हैं, सदैव शंख बीच धर्मराजका सम्पूर्ण समय बीतता है।

है, जिसके ऊपर बैठकर चित्रगृप्त मनुष्यों अथवा अन्य पर वयदृह उनकी एक नहीं सुनते हैं। प्राणियोंकी आयु-गणना करते हैं। किसीके पुण्य और हे कहवें। इस प्रकार पापियोंके लिये कर्मानुसार बहुत-से पापके प्रति कभी वनमें मोह नहीं होता है। जिसने जबतक नरक कहे गये हैं। (अध्याय ३३)

जो कुछ अर्जित किया है, वे उसको जानते हैं; वे अठारह दोषोंसे रहित जीबद्वारा किये गये कर्मको लिखते हैं।

चित्रगुसके भवनसे पूर्व ज्वरका बहुत यहा भवन है। उनके भवनसे दक्षिण शल और लताविस्फोटकके भवन हैं। पश्चिममें कालपाश, अजीर्ण तथा अरुचिके भवन हैं। मध्य पीठके उत्तरमें विश्वविका, ईशानकोणमें शिरोऽर्ति, आग्नेयकोणमें मुकता, नैर्ऋत्यकोणमें अतिसार, वायव्यकोणमें दाहसंज्ञक रोगका घर है। विजयुत्त इन सभीसे नित्य परिवृत रहते हैं।

हे ताध्य ! कोई भी प्राणी जो कुछ कर्म करता है, वह सब कुछ बित्रगुप्त लिखते हैं। धर्मराजके भवनके द्वारपर आदि माङ्गलिक वाद्योंको ध्वनियाँ सुनायी देती हैं। उन्होंक रात-दिन दूतगण उपस्थित रहते हैं। यमदृतेकि महापाशसे बँधे पापी और नीच व्यक्ति मुद्दरींसे मार खाते हैं। वहाँ नाना उस पुरके मध्यभागमें प्रवेश करनेपर चित्रगुसका भवन प्रकारके पूर्वकृत पापकर्मीसे युक्त मनुष्योंको विभिन्न धारदार पड़ता है, जिसका विस्तार पंचीस योजन है। उसकी ऊँचाई अस्त्र-कस्त्रों तथा अनेक यन्त्रोंसे मारा जाता है। पापियोंकी दस योजन है। वह लोहेंकी परिखाके द्वारा चारों ओरसे दहकते हुए अंगारोंके द्वारा घेर दिया जाता है। पूर्वकर्मीके थिरा हुआ एक महादिव्य भवन है। इसमें आने-जानेके अनुसार लौह-पिण्डके समान वे उसीमें दग्ध किये जाते हैं। लिये सैकड़ों गलियाँ हैं और सैकड़ों पठाकाओंसे यह अन्य बहुत-से पापियोंको पृथ्वीपर पटक करके कुल्हाड़ेसे सुशोधित रहता है। सैकड़ों दीपक इस भवनमें प्रज्वलित उन्हें काटा जाता है। पूर्वकर्मके फलानुसार वे चिल्लाते हुए रहते हैं। बंदीजनोंके द्वारा गाये-बजाये गीत और वाच- दिखायी देते हैं। कुछ पापियोंको गुड़पाक और कुछको यत्त्रोंकी ध्वनियोंसे यह भवन गुजायमान रहता है। चित्रगुष्टके तैलपाकमें डालकर प्रकास जाता है। इस प्रकार उन यमदृतोंसे इस भवनको सुन्दरतम चित्रोंसे सजाया गया है। इस भवनमें पापियोंको अत्यधिक कष्ट भोगना पहता है। अन्य पापी उन मुकामणियोंसे निर्मित, परम विस्मयकारी एक दिव्य आसन अत्यन्त निर्देशी दृतीसे बार-बार क्षमादानकी प्रार्थना करते हैं;

इष्टापूर्तकर्मकी महिमा तथा और्घ्वदैहिक कृत्य, दस पिण्डदानसे आतिवाहिक शरीरके निर्माणकी प्रक्रिया, एकादशाहादि श्राद्धका विधान, शय्यादानकी महिमा एवं सपिण्डीकरण-श्राद्धका स्वरूप

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! शास्त्रके अनुसार धर्म और जान, द्वापरमें यज्ञ और दान तथा कलियुगमें एकमात्र दानकी अधर्मका जो लक्षण किया गया है, उसको तुम सुनो। प्रशंसा की है। मनीषियोंने उत्तम प्रकृतिवाले गृहस्थजनींके प्राणियोंके आगे-आगे उनका सत्कर्म और दुष्कर्म लिये इस धर्मको स्वांकार किया है कि वे यधाशकि रीड़ता है। विद्वानोंने कृत (सत्य)-युगमें तप, त्रेतायुगमें इष्टापूर्वकर्म करें, उसके करनेसे उन्हें पातक नहीं

१-तालाब, कुओं आदि सुद्वाना तवा देवलप, औषधालय आदि बनवाना 'इष्टापुर्वकर्म' है।

होता। जो मनुष्य वृक्षारोपण करता है, गुफा, कुआँ और उसके बाद जलाञ्चलि प्रदान करे, किंतु इन जलाञ्चलियोंको जलाशय खुदवाता है, उसको यममार्गमें चलते समय पूर्वाह, मध्याह, अपराह्न तथा उनकी संधिकालोंमें न दे, अत्यधिक सुखकी प्राप्ति होती है। जो लोग टंडकसे पीड़ित बल्कि दिनके प्रथम प्रहरके बीत जानेपर दे। नदीमें पुत्रके ब्राह्मणको तापनेके लिये आग्न प्रदान करते हैं, वे सभी द्वारा जलाजलि दिये जानेके पश्चात् सभी सगोत्री, हितैषी कामनाओंको पूर्ण करके अतिशीतल यमलोकके मार्गमें और बन्धु-बान्धव-स्वजातियों तथा परजातियोंके साथ आंग्न तापते हुए सुखपूर्वक जाते हैं। जिस मनुष्यने पृथ्वीका जलदान करें। किसी भी कारण शोष्रतायश मुख्य अधिकारी दान दिया है, उसने मानो स्वर्ण, मणि-मुक्तादि बहुमूल्य रह. पुत्रके जलाञ्जलि देनेके पूर्व ही जलाञ्जलि नहीं देनी वस्त्र और आभूषणादिका सम्पूर्ण दान दे दिया। इस चाहिये। जब स्त्रियाँ श्मशानभूमिसे वापस हो आयाँ तभी पृथ्वीपर मानव जो कुछ दानमें देते हैं, वे सब दिये गये लोकाचार किया जाय। पदार्थ यमलोकके महापक्षमें उनके समीप उपस्थित रहते शुद्रको मृत्यु हो जानेपर जो ब्राह्मण उसकी चिताके हैं। पुत्र विधिपूर्वक अपने मृत पिताके लिये नाना प्रकारके लिये लकड़ों लेकर जाता है अथना उसके पीछे-पीछे जिन सुन्दर भोज्य-पदार्थीका दान देता है, वे सभी पिताको चलवा है, वह तीन रात्रियोंतक असुद्ध रहता है। तीन रात्रियोंकि प्राप्त होते हैं।

पुत्र यमलोकमें पिताका रक्षक है। धीर नरकसे पिताका उद्धार वही करता है, इसलिये उसको पुत्र कहा जाता है। अत: पुत्रको पिताके लिये आजीवन ब्राद्ध करना चाहिये, तभी वह अतिवाहात्मक प्रेतरूप पिता, पुत्रद्वारा दानमें दिये गये पदार्थीके भौगोंसे सुख प्राप्त करता है। दग्ध हुए प्रेतके निमित्त परिजनेकि द्वारा जो जलाञ्चलि दी जाती है, उससे प्रसप्त होकर वह प्रेत यमलोकमें जाता है। प्रेतकी संतुष्तिके लिये तीन दिनतक राजिमें एक वौराहेपर रस्सी बौधकर तीन लकडियोंके द्वारा बनायी गयी तिगोदियाके ऊपर कच्ची मिट्टीके पात्रमें दुध भरकर रखना चाहिये। है पक्षित्। वायुभूत वह प्रेत मृत्युके दिनमें लेकर तीन दिनतक आकाशमें स्थित उस दूधका पान करता है।

पक्षात् समुद्रमें मिलनेवाली गङ्गा आदि पवित्र नदीके तटपर आतमा (शरीर) ही पुत्रके रूपमें प्रकट होता है। वह पहुँचकर वह स्नान करे। तदनन्तर सौ प्राणायाम करके गोफ्तका प्राप्तन करे, तब उसको शुद्धि होती है। शुद्र सभी वर्णीक सर्वोका अनुगयन कर उन्हें जलाञ्चलि दे सकता है, वैश्य तीन वर्षों (ब्राह्मण, श्रतिय और वैश्य)-के शबोंका अनुगमन कर उन्हें जलाञ्चलि दे सकता है, क्षत्रिय दो वर्णों (ब्राह्मण और धत्रिय)-के शवीका अनुगमन कर उन्हें जलाञ्चलि दे सकता है और ब्राह्मण केवल अपने ही वर्णके शवका अनुगमन कर उसे जलाञ्जलि दे सकता है।' हे काश्यप! बलाङ्गलि देनेके पक्षात् दन्तथावन करना चाहिये। सभी सगोप्री नौ दिनोतक दन्तधावनका परित्याग कर देते हैं तथा यधायिधान नौ दिनतक जलाञ्जलि देनेके लिये जलाशयपर जते हैं। विद्वानोंका कहना है कि जो भी मनुष्य जिस स्थान, मार्ग अधवा धरमें मृत्युको प्राप्त करता है, उसको वहाँसे दाहसे चौथे दिन अस्थि-संचयका कार्य करना चाहिये'। स्मरातभूमिके अतिरिक्त कहीं अन्यत्र नहीं ले जाना

१-अस्थि-संचयनके विषयमें संवर्त-वचनके अनुसार-

⁽क) प्रथमेऽदि तृतीये वा सबने नवमे तथा। अस्थिसक्रवर्ग कार्य दिने तर्गाजनैः सह ।

⁽ख) अपरेद्यस्तृतीये वा राहानन्तरमेव का।

प्रथम दिन, तृतीय, सतम अथवा नवम दिन वा दाहके पक्षान् ही विकासी जलसे शान्त करके अपने गोजवालीके साथ अस्थि-संचयन करना चाहिये।

२-इसका तारपर्य यह है कि इस व्यवस्थाके अनुसार प्रवका अनुगमन करनेमें किसी विशेष प्रकारको अशुचिता एवं उसकी शुद्धिके लिये किसी विशेष प्रायक्षितको आवश्यकता नहीं होती । किसी तरहके अध्यक्षातमें अवव लोकसंग्रहको दृष्टिसे या अन्य किसी सहायकके अनुपतन्त्र होतेपर जिस किसी भी जातिके राजकी अन्येष्टिके लिये प्रयोधित सहयोग सकतो हो करना चाहिये और ऐसा करनेपर शास्त्रीय व्यवस्थाके अनुसार अज्ञाधिताके निराकरणके लिये यथाविधान प्रयक्षित भी कर लेख चाहिये।

चाहिये। दाह-संस्कारके पश्चात् स्त्रियोंको आगे-आगे चलना चाहिये। उनके पीछे-पीछे अन्य व्यक्तियोंके समृहको चलना चाहिये। वहाँसे आनेके बाद उन सभौको एक पत्थरके ऊपर बैठकर आचमन करना चाहिये। तत्पश्चात् वे पूर्णपात्रमें रखी गयी यव, सरसों और दुर्वाका दर्शन करें, नीमकी पश्चियोंका प्राशन करें तथा तेल लगाकर स्नान करें। सगोत्रियोंमें जिनके यहाँ मृत्यु हुई है, उनका भीजन नहीं करना चाहिये। अपने घरका अन्न नहीं खाना चाहिये और न ही खिलाना चाहिये। भोजन करनेमें मृत्यात्रका प्रयोग करना चाहिये एवं उस उच्छिष्ट पात्रकों ऊपर मुख करके ही एकान्त स्थानमें रख देना चाहिये। मृतकके गुणीका कीर्तन करे, 'यमगाधा' का पाठ करे और पूर्व जन्ममें संचित शुभाशभका चिन्तन करे।

वह मृत प्राणी वायरूप धारण करके इधर-उधर भटकता है और वायुरूप होनेसे ऊपरकी ओर जाता है। वह प्राप्त हुए शरीरके द्वारा ही अपने पुष्प और पापके फलांका भाग करता है। दशाह-कर्म करनेसे मृत मनुष्यके लिये शरीरका निर्माण होता है। नवक एवं चोटरा बाद करनेसे जीव उस शरीरमें प्रवेश करता है। भूमियर तिल और कुशका निक्षेप करनेपर वह कुटी धातुमयी ही जाती है। मरणासन प्राणीके मुखर्मे पञ्चरत डाल देनेसे जीव कपरकी ओर चल देता है। यदि ऐसा नहीं होता है तो जीवको शरीर नहीं मिल पाता अर्थात वह इधर-उधर भटकता रहता है। इसलिये आदरपूर्वक भूमिपर तिल और दर्भको बिछाना चाहिये।

जीव जहाँ-कहीं भी पशु या स्थावस्योनियें जन्म लेता है, जहाँ वह रहता है, वहींपर उसके उद्देश्यसे दी गयी श्राद्धीय वस्तु पहुँच जाती है। जिस प्रकार धनुधारीके डारा लक्ष्यवेधके लिये छोड़ा गया जाग उसी लक्ष्यको प्राप्त करता है, जो उसको अभीष्ट है: उसी प्रकार जिसके निमित्त श्राद्ध किया जाता है, वह उसीके पास पहुँच जाता है। जब-तक मृतकके सूक्ष्म शरीरका निर्माण नहीं होता है, तबतक किये गये श्राद्धोंसे उसकी संतुष्ति नहीं होती है। भूख-प्याससे व्यथित होकर वायुमण्डलमें इधर-उधर चक्कर

काटता हुआ वह जीवात्मा, दशाहके ब्राइसे संतुप्त होता है। जिस मृतकका पिण्डदान नहीं हुआ है, वह आकाशमें भरकता ही रहता है। वह क्रमश:--तीन दिन जल, तीन दिन अग्नि, तीन दिन आकाश और एक दिन (अपने प्रिय जनोंके ममतावश) अपने घरमें निवास करता है। अग्निमें हारीरके भस्य हो जानेपर प्रेतात्माको जलसे ही तुस करना चाहिये। इसके बाद जलसे ही उसकी तेल-स्नानकी क्रिया पूर्ण करे तथा घरमें पूआ और कुशर अन्नसे बाद्ध करे। मृत्युके पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें अथवा ग्यारहवें दिन जो बाद्ध होता है, उसको नवक बाद्ध कहा जाता है। गृहद्वार, रूमकान, तीर्थ या देवालय अथवा जहाँ-कहीं भी प्रथम रिण्ड्यन दिया जाता है, वहींपर अन्य सभी पिण्डदान करने चाहिये। एकादशाहके दिन जिस श्राद्धको करनेका विधान है, उसकी सामान्य ब्राद्ध कहा गया है। बाह्यजादि चारों वर्णीकी शरीर-शुद्धिके लिये स्नान ही एकमात्र साधन है। एकादशाह-संस्कारके पूर्ण हो जानेके पक्षात् पुन: स्नान करके शुद्ध होना चाहिये। अनन्तर शय्यादान करना चाहिये, क्योंकि शय्यादानसे प्रेतको मुक्ति मिलतों है। यदि प्रेतका कोई सगोत्री न हो तो उसके अन्त्येष्टि कार्पको किसी औरको करना चाहिये अथवा उसको भावां करे या किसी ऐसे पुरुषको करना चाहिये. जो मृत व्यक्तिसे तुष्ट अर्थात् उसके सद्व्यवहारसे उपकृत हो। पहले दिन विधिपूर्वक ब्राद्धयोग्य जिस अलादिसे पिण्डदान दिया जाता है, उसी अन्नादिसे सभी श्राद्ध करने चाहिये। दशह-श्रद्धका कर्म मन्त्रींका प्रयोग बिना किये ही नाम-गीत्रीच्यारसे हो जाता है। जिन वस्त्रींकी धारण करके संस्कर्त ब्राह्मकर्म करता है, अशीचका दिन बीतनेके बाद उन्हें त्याग करके हो घरमें प्रविष्ट होना चाहिये। पहले दिन जो औध्वंदैष्टिक कर्म आरम्भ करे, उसीको दस दिनतक समस्त ब्राह्यकृत्य सम्पन्न करना चाहिये। वह क्रिया करनेवाला चाहे संगोत्री हो या दूसरे गोत्रसे सम्बन्धित हो, स्त्री हो अथवा पुरुष हो।

जिस प्रकार गर्भमें स्थित प्राणीके शरीरका पूर्ण विकास दस मासमें होता है, उसी प्रकार दस दिनतक दिये गये

१-प्रथमेऽहानि य: पिण्डो दीयते विधिपुर्वकम्। अलाग्रेन च तेनैय सर्वक्रद्धानि कारपेत्॥ (३४। ४१)

पिण्डदानसे जीवके उस शरीरकी संरचना होती है। जिस मस्ता है, उसके लिये अगली चतुर्थी तिथिको ऊनमासिक घरमें इसका अशीच होता है, तबतक पिण्डोदक-क्रिया है, उसके लिये ऊनमासिक ब्राद्ध नवमीको होना चाहिये करनी चाहिये। यह विधि ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लिये और जो मनुष्य नवमी तिथिको मरता है, उसके लिये मानी गयी है। पुत्रके अभावमें जिनके लिये अजीच तीन चतुरंजी जनमासिक ब्राह्मकी तिथि है। अत: अन्त्येष्ट्र-रातोंका ही माना जाता है, वे पहले दिन तीन, दूसरे दिन चार कर्मकुराल विद्वानको यह आन लेना चाहिये कि ये और तीसरे दिन तीन पिण्डदान करें। प्रेतके लिये पृथक- सभी तिथियों यथाविहित मृत्य-तिथिके अनुसार रिका पुथक मिट्रोके पात्रमें दूध तथा जल और चौथे दिन उसे ही होंगी। एकोटिष्ट-श्राद्ध करना चाहिये।

उससे जीवको मुद्धांका निर्माण होता है। दूसरे दिनके करके श्राद्धकर्ता पन: स्नान करे। एकादशाहसे वर्षपर्यन्त पिण्डदानसे औछ, कान और नाककी रचना होती है। तीसरे दिनके पिण्डदानद्वारा दोनों गण्डस्थल, मुख तथा चाहिये। मानव-शरीरमें जो अस्थियोंका एक समृह विद्यमान ग्रीवाभाग बनकर तैयार होता है। उसी प्रकार चौचे दिन उसके हृदय, कृक्षिप्रदेश एवं उदरभाग, पाँचवें दिन घटका दान देनेसे उन अस्वियोंको पृष्टि मिलती है। कटिप्रदेश, पीठ और गुदाका आविर्भाव होता है। तत्पक्षात् इसलिये जो घट-दान दिया जाता है, उससे प्रेतको प्रसन्नता छते दिन उसके दोनों कर, सातवें दिन गुल्फ, आउवें दिन जंघा, नीवें दिन पैर तथा दसवें दिन पिण्डदान देनेसे प्रबल श्रुधाको उत्पत्ति होतो है। एकादलाहमें जो और उसीके अनुसार दशाहादि कियाएँ करनी चाहिये, पिण्डदान होता है, उसको पायस आदि मध्र अञ्चलकित दाह-संस्कार जब कभी भी हो। प्रदान करें। निमन्त्रित ब्राह्मणके दोनों पैर धोकर तथा उन्हें विस्तपात्र, अज्ञादिक भोज्यपदार्थ, गन्ध, धूपादि एवं अर्घ्य, धूप, दीपादिसे पुत्रकर और सिद्धाल, कुशर, अपूप पूजन-सामग्रीका जो दान है, उसको एकादशाहमें देना एवं दश आदिसे परिपूर्व भीजन कराकर संतुत किया चाहिये। उससे ब्राह्मणकी शुद्धि होती है। मृत्यु और जाय। द्वादश मासिक ब्राद्ध तथा उनमासिक, त्रिपाधिक, जन्ममें घरमें होनेवाले मृतकसे क्रमश:-क्षत्रिय बारहवें कनपाण्मासिक तथा कनाब्दिक- ये पोडल बाद कड़े बाते दिन, बैश्य पंद्रहवें दिन तथा शुद्र एक मासमें बुद्ध होता हैं। (ग्यारहवें दिन इन ब्राद्धोंको करनेको विधि है।) है। मृत्युके तीन मास होनेपर त्रिरात्र, छ: मास होनेपर प्राणीकी जो मृत्यु-तिथि हो, उसी तिथियर प्रतिमास बाद्धः पक्षिणी, संबत्सर पूर्ण होनेसे पूर्व अहोरात्र तथा संबत्सर करना चाहिये। प्रथम मासिक ब्राद्ध मुताहके दिन न करके पूर्ण होनेपर जलदानको क्रिया करनेसे शुद्धि होती है। एकादशाहके दिन करना चाहिये। जिस तिथिको मनुष्य इसीके अनुसार सभी वर्णीकी शुद्धि होती है। कलियुगर्म भरता है, वही तिथि (अन्य) मासिक ब्राद्धके लिये प्रशस्त सतककी समाप्ति दशाहमें ही है। एकादशाहसे लेकर होती है। ऊनमासिक, ऊनपाण्मासिक और ऊनाब्दिक तथा सांवलारिक आदि सभी आद्वोंके अवसरपर विश्वेदेवोंकी त्रिपाक्षिक-- इन ब्राद्धोंके लिये मृत्यु-विधिका विचार नहीं पूजा करके अन्य पिण्डदान करना चाहिये। जैसे सूर्यकी करना चाहिये। उदाहरणार्थ-पूर्णिया तिथिमें जो व्यक्ति किरणें अपने तेजसे सभी तारागणोंको ढक देती हैं, उसी

शरीरसे उसे यमलोक आदिकी यात्रा करनी है। जबतक ब्राद्ध करना चाहिये। जिसकी मृत्य चतुर्थी तिथिको होती

एकादशाहको जो बाद्ध किया जाता है, उसका नाम हे अण्डज। पहले दिन जो पिण्डदान दिया जाता है, नवक है। इस दिन चौराहेपर प्रेतके निमित्त भोजन रख बेष्ठ ब्राह्मणको प्रतिदिन सामोदक घटका दान करना है, जिसमें उनकी कुल संख्या तीन सी साठ है। जलपूर्ण प्राप्त होती है। जंगल या किसी विषय परिस्थितिमें जीवकी मान्य जिस दिन होती है, उस दिनसे घरमें सुतक होता है

१-एकादशाह-ब्राद्धके अनन्तर वर्षपर्यन्त किया जानेवाता एकोरिष्ट-ब्राद्ध तथा प्रति सांवासरिक एकोरिष्ट-ब्राद्ध विश्वेदेवपुत्रनपूर्वक करनेकी परम्पण नहीं है।

प्रकार प्रेतत्वपर इन क्रियाओंका आच्छादन हीनेसे भविष्यमें पुन: प्रेतत्व नहीं मिलता है। अत: सपिण्डनके अनन्तर कहीं 'प्रेत' शब्द प्रयोग नहीं होता।

श्रेष्ठ ब्राह्मण सर्वदा शब्यादानको प्रशेसा करते हैं। यह जीवन अनित्य है, उसे मृत्युके बाद कौन प्रदान करेगा? जबतक यह जीवन है, तबतक अपने कन्ध्-बान्धव हैं और अपने पिता है। मृत्यु हो जानेपर यह मर गया है, ऐसा जान करके क्षणभरमें ही वे अपने हृदयसे स्नेहको दूर कर देते हैं। इसलिये आत्मा ही अपना बन्धु है, ऐसा बारम्बार विचार करके जीते हुए ही अपने हितके कार्य कर लेना चाहिये। इस संसारमें मरे हुए प्राणीका कौन पुत्र है, जो बिस्तरके सहित राप्याका दान ब्राह्मणको दे सकता है? ऐसा सब कुछ जानते हुए मनुष्यको अपने जोवनकालमें ही अपने हाथोंसे गय्यादानादि सभी दान कर देना चाहिये। अत: अच्छी एवं मजबूत लकडीको सुन्दर शय्या बनवा करके उसे हाधीके दाँत तथा मोनेकी पद्रियाँसे अलंकत करके उस शब्याके ऊपर लक्ष्मीके सहित विष्णुको स्वर्णमधी प्रतिमाको स्थापित करे। उसके बाद उसी शब्दाके संनिकट भीसे परिपूर्ण कलना रखे। हे गरुड। वह कलश अपने सुखके लिये ही होता है। विद्वानोंने तो उसकी निदाकलश कहा है। ताम्बूल, केशर, कुंकुम, कपूर, अगुरु, चन्दन, दीपक, पादका, छत्र, चामर, आसन, पात्र तथा यथाशक्ति सप्तधान्य उसी शय्याके बगलमें स्थापित करे। इन वस्तुओंके अतिरिक्त शयन करनेवालेके लिये जो अन्य उपयोगी वस्तु हो, उसको भी वहाँ रखे। सोने-चाँदी या अन्य धातुमे बनी झारी, करक (करवा), दर्चन और पञ्चरंगी चाँदनीसे उस शय्याको संयुक्त करके उसे बाह्यणको दान दे दे।

कल्याणके लिये यजमान स्वर्गमें मुख प्रदान करनेवाली शय्याकी विधिवत् रचना करके सपत्नीक द्विन-द्रप्यक्तिको पूजा करके उसका दान करे। कर्जफुल, कण्डहार, अंगृठो, भुजबंद तथा चित्रकादि आभूषण एवं गौसे युक्त घरेलू उपकरणोंसे परिपूर्ण घर उसको दानमें दे। तदनन्तर पहरब, फल और अक्षतसे समन्वित अर्घ्य उस ब्राह्मणको देकर यह प्रार्थना करनी चाहिये— यद्या न कृष्णाशयनं शून्यं सागरकन्यया। शष्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि ॥ (३४।८१)

जिस प्रकार समुद्रको पुत्री लक्ष्मीसे भगवान् विष्णुकी ज्ञय्या ज्ञन्य नहीं होती है, उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तरमें मेरी ज्ञय्या भी जून्य न हो।

इस प्रकार ब्राह्मणको उस निर्मल शय्याका दान देकर धमापन करके उसे विदा करे। यही प्रेतशय्याकी विधि एकादशाह-संस्कारमें बतायी गयी है।

है गरुष्ट! अपने बात्धवको मृत्यु होनेपर उनके निमित्त बन्धुडन धर्मार्थ जो दान देते हैं, उसके विषयमें विशेष बात मैं कह रहा है, उसको तुम सुनो।

हे पश्चिराज। अपने घरमें पहलेसे जो कुछ उपयुक्त वस्तु हो, उस मृतकके शरीरसे सम्बन्धित जो वस्त्र, पात्र और वाहन हो, जो कुछ उसकी अभीष्ट रहा हो, वह सब एकत्र करे। शब्यांके ऊपर भगवान् विष्णुको स्वर्णसयी प्रतिमाको स्थापित करके विद्वान् व्यक्ति उनको पूजा करे और जैसा पहले कहा गया है, उसीके अनुसार ब्राह्मणको उस मृतशस्त्रांका दान कर दे।

तथ्यादानके प्रभावसे प्राणीको प्राप्त होनेवाला सम्पूर्ण सुख, इन्द्र और यमराजके घरमें विद्यमान रहता है। इसके प्रभावसे महाभयंकर मुख्याले यमदृत उसको पीड़ित नहीं करते हैं। वह मनुष्य यमलोकमें कहीं धूप और ठेडकसे कह नहीं पाता है। राज्यादानके प्रभावसे प्रेत बन्धनमुक्त हो जाता है। इस दानसे पापी व्यक्ति भी स्वर्गलोक चला जाता है। जो प्राणी पापसे रहित है, वह अपसराओंसे सेवित विमानपर चढ़कर प्रलवपर्यन्त स्वर्गमें रहता है। जो नारी अपने पतिके लिये नवक, घोड़का और सांवत्सरिक ब्राब्ध तथा राज्यादान करती है, उसको अनना फल प्राप्त होता है। मृत पतिका उपकार करनेके लिये वो स्त्री जीवित रहती है, उसके साथ मरती नहीं तो वह सती जीवित रहते हुए भी अपने पतिका उद्धार कर सकती है। स्त्रीको अपने मृत

पठिके लिये दक्षि, अत्र, शयन, अञ्चन, कुंकुम, वस्त्राभूषण

तवा शस्यादि सभी प्रकारके दान देना चाहिये। स्त्रियोंके

लिये इस लोकमें जो कुछ वस्तुएँ उपकारक हों, जो कुछ

शरीरपर प्रयोग किये जाने योग्य वस्त्राभूषण और भोग्य पुण्यका फल भोगता है। स्वर्गमें रहने योग्य पुण्यके क्षय वस्तुएँ हों, उन सभीको मिला करके प्रेतकी प्रतिमा बनाकर होनेके बाद वह सुन्दर स्वरूप धारण करके पृथ्वीपर पुन: उन्हें यथास्थानपर नियोजित करके लोकपाल, इन्द्रादि जन्म लेता है। वह महाधनी, धर्मन्न तथा सर्वशास्त्रींका देवगण, सुर्वादिक ग्रह, गौरी तथा गणेशको पुत्रा करे। उसके बाद श्रेत वस्त्र धारण करके पृष्पाञ्चलि सहित ब्राह्मणके समक्ष इस मन्त्रका उच्चारण करे-

प्रेतस्य प्रतिमा होषा सर्वोपकरणैर्युता। सर्वरत्रसमायुक्ता तव विद्य निवेदिता ।। आत्या शम्भः शिवा गौरी शकः सरगणैः सह। तस्याच्छय्याप्रदानेन सेष आत्या प्रसीदत्॥ (5×146-40)

हे विप्रदेव! प्रेतकी यह प्रतिमा सभी उपकरणों और समस्त रहींसे युक्त है। मैं आपको इसे प्रदान करता है। आत्या ही ज़िल है। यही ज़िला और गीरी है। यही सभी देवराओं के साथ इन्द्र है। अत: इस शब्यादानमें यह आत्मा प्रसन्न हो।

प्रदान करे। ब्राह्मण उसको ग्रहण करनेके बाद 'कोऽहातक' माहमें एवं बारहवें दिन सपिण्डोकरण ब्राद्ध कर देना चाहिये। इत्यादि मन्त्रका पाठ करे । तत्पश्चात् उस ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा । तुद्रका ब्राद्ध स्वेन्छापूर्वक हो सकता है । ऑग्निहोत्री ब्राह्मणकी करके प्रणाम करे और उन्हें वहाँसे विदा करे।

ब्राह्मणको दान देना चाहिये। एक गी, एक गृह, एक शप्या अग्निहोत्री ब्राह्मण प्रेतयोनिमें ही रहता है। अत: अग्निहोत्र और एक स्त्रीका दान बहुतोंके लिये नहीं होता है। विभाजित करके दिये गये ये दान दाताको पाएको कोटिमें गिरा देते हैं।

हे तार्थ्य । इस प्रकार बतायी गयी विधिके अनुसार जो प्राणी शय्यादिका दान करे तो उसे जो कल प्राप्त होता है. उसको तम सनो। इस दानसे दावा सौ दिव्य वर्षोतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। व्यतीपात बोग, कार्तिक पूर्णिया, मकर तथा ककंकी संक्रान्तिमें, सूर्य-चन्द्रग्रहणमें, द्वारका, प्रयाग, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, अर्बुट (आब्) पर्वत, गङ्गा, यमना तथा सिन्ध नदी और सागरके संगम-तटपर जो दान दिया जाता है, यह उससे भी बड़ा दान है। इस

निज्ञात पण्डित होता है और मृत्यु होनेके बाद वह नरश्रेष्ठ पुन: वैकृष्ठलोक चला जाता है। अद्भृत है। अप्सराओंसे चारों ओर घिरा हुआ वह प्राणी दिव्य विमानपर चढ़कर व्वर्णमें अपने पितरीके साथ हव्य-कव्य ग्रहण करते हुए प्रसन्न रहता है।

हे ताक्यें! यदि पितर प्रेतत्वको प्राप्त हैं तो सपिण्डीकरणके बिना अष्टका, अमावास्या, मधा नक्षत्र तथा पितृपर्वमें किये गये जो-जो बाद हैं, ये पितरोंको नहीं प्राप्त होते हैं। सपिण्डोकरणका कार्य वर्ष पुरा हो जानेपर करना चाहिये। इसमें संशय नहीं है। शवकी शुद्धिके लिये आध श्राद्ध करके बोडशोका सम्पादन करे। तदन-तर पितृपंक्तिकी (पितरोंकी विक्रमें प्रवेशके लिये) शुद्धिके लिये प्रवासमें प्रेतपिण्डका अन्य पिण्डोंके साथ मेलन करे। चृद्धि ब्राद्धको सम्भावना इसके बाद उस शस्याको परिवारवाले आचार्य झाळणको | होनेपर एक वर्षके पहले हो (छ: अथवा तीन माह या डेढ मृत्यु होनेपर द्वादलाहको सपिण्डन-कर्म होना चाहिये। है पक्षित्! इस विधिसे एक शब्दाका एक ही जबतक वह कर्म नहीं किया जाता है, तबतक वह मृत करनेवाले बाह्यणको द्वादशाहमें ही सपिण्डीकरणकी क्रिया कर देनी चाहिये। गङ्गा आदि महानदियोंमें अस्थि-क्षेपण, गयातीर्थ-बाद्ध, चितुपक्षमें होनेवाले बाद्ध सचिण्डीकरणके बिना वर्षके मध्यमें नहीं करना चाहिये। यदि बहुत-सी सपितवाँ हों और उनमेंसे एक भी स्त्री पुत्रवती हो जाय तो उसी एक पुत्रसे ही वे सभी पुत्रवती होती हैं।

असपिण्ड अग्निहोत्री पुत्रको पितृयत्र नहीं करना चाहिये। यदि यह ऐसा आचरण करता है तो पापी होगा और उसे पितृहत्याका भी पाप लगेगा। पतिकी मृत्यु होनेपर जो स्त्री अपने प्राणोंका परिल्याग कर देती है तो पतिके साथ ही उसका भी सपिण्डीकरण कर देना चाहिये। पिताकी शय्यादानके सोलहवें अंशको भी वे सभी दान प्राप्त नहीं अनुचित रूपसे लाग्री गयी विवाहिता वैश्यवर्णा अधवा कर पाते हैं। वह प्राणी जहाँ जन्म लंता है, वहीं उस क्षत्रिया वो भी पत्रियों हों, उनका सपिण्डन कोई भी पुत्र

कर सकता है। जब प्रमादवश ब्राह्मण किसी शुद्रा कन्यासे मुनियोंने भी इस बातको कहा है कि पिताकी अन्त्येष्टि एक ही विवाह कर लेता है तो मरनेके बाद उसके लिये हो पुत्र करता है। यदि पुत्रोंमें परस्पर बैंटवारा हो गया है एकोरिष्ट-ब्राद्ध बताया गया है और संपिण्डोकरण-ब्राद्ध उसीके साथ करना चाहिये। अन्य चारों वर्णोंसे ब्राह्मणके चाहे दसों पत्र हों, किंतु उन्हें अपनी-अपनी मौंक सपिण्डीकरणकी क्रियामें नियक्त होना चाहिये। अन्वष्टका पौष, माघ और फाल्नुनमासके कृष्णपक्षकी नवमी विधि (जो साग्नियोंका मातुक श्राद्ध होता है)-को होनेवाला तचा विदिहेत्क ब्राद्ध एवं सपिण्डन-ब्राद्धमें पितासे पुचक माताका पिण्ड प्रदान करना चाहिये। हे तार्स्य ! पितामहीके साथ माता और पितामहके साथ पिताका सपिण्डन अपेक्षित है, ऐसा मेरा अभियत है। यदि स्त्री पत्रहीन ही यर जाती है तो उसका संपिण्डन पति करे। धर्मत: पतिको अपनी पाता, पितामही एवं प्रपितामही-इन तीनोंके साथ अपनी पत्नीका संपिण्डन करना चाहिये।

हे गरुड । यदि स्थियोंके पुत्र तथा पति दोनों नहीं हैं तो वृद्धिकालके आनेपर स्त्रीका भाई अथवा द्वायभागका गृहोता या देवर उसका सपिण्डन करें। यदि पति एवं पत्ररहित स्त्रियोंके न तो कोई सगोत्री हो और न देवर ही हो तो उस समय अन्य व्यक्ति उसके भाइपाँके साथ उसका एकोहिष्ट विधानसे ब्राद्ध कर सकता है। यदि भूलवह अथवा विफाके कारण संपिण्डन-क्रिया किसोकी नहीं हो सकी है तो उसके पुत्र या बन्ध-बान्धवको चाहिये कि वे नवक बाद, योदश बाद तथा आव्टिक बाद करे।

जिसका दाह नहीं हुआ है, उसके लिये बाद नहीं करना चाहिये। दर्भका पुत्रल बनाकर अग्रिमे उसे जलाकर ही ब्राद्ध करना चाहिये। पत्रके द्वारा पिताका सपिण्डीकरण किया जा सकता है, किंतु पुत्रमें पिताका पिण्डमेलन नहीं किया जा सकता। प्रेमाधिक्यके कारण भी पिताको पुत्रमें सपिण्डीकरण नहीं करना चाहिये। जब बहत-से पत्र हों. तब भी ज्येष्ट पुत्र ही उस क्रियाको सप्पन्न करे। नवक, सपिण्डन तथा बोंडशादि अन्य सभी ब्राइकों करनेका अधिकारी वहीं एक है। धनका बँटवारा न होनेपर भी एक ही पुत्रको पिताके समस्त औध्वेदेहिक कृत्य करना चाहिये।

तो उन सभी पुत्रोंको पुधक-पुधक सांवत्सरादिक क्रिया करनी चाहिये। स्वयं प्रत्येक पुत्रको अपने पिताका श्राद करना चाहिये। जिनके निमित्त ये योडश प्रेतश्राद्ध सम्पन्न नहीं किये जाते हैं, उनका अन्य सैकडों ब्राद्ध करनेपर भी पिराचल्य स्थिर रहता है। हे खगेश्वर! पुत्रहोनका सपिण्डीकरण उसके भाई,

भतीने, सपिपट अचवा शिष्यको करना चाहिये। सभी पुत्रहोन पुरुषोंका सपिण्डन पत्नी करे अधवा ऋत्विज् या पुरोहितसे उस कार्यको सम्पन्न कराये। पिताकी मृत्यु हो जानेपर वर्षके मध्य जब सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण हो तो पुत्रोंको पार्वणब्राद्ध, नान्दीब्राद्ध नहीं करना चाहिये। माता-पिता और आचार्यको मृत्य होनेपर वर्षक मध्यमें तीर्थकाड, पदाकाड तथा अन्य पैतृक ब्राह नहीं करना चाहिये। पितृपञ्च, गजन्छाया योग, मन्त्रादि और युगादि विधियोंने संपिण्डीकरणके बिना पिताको पिण्डदान नहीं देना चाहिये। कुछ लोगोंका विचार है कि वर्षके मध्यमें भी यज्ञपुरुष तथा देवतादिके लिये जो देय हैं, उसका दान देन चाहिये। पितरोंको भी अर्घ्य और पिण्डसे रहित जो कुछ देय है, वह सब दिया जा सकता है। यही विधि कही गयाँ है।

देवांके लिये पितर देवता है, पितरोंके पितर ऋषि है, ऋषियोंके पितर देखता हैं, इस कारण पिता सर्वश्रेष्ठ है। पितर, देवतागण और मनुष्योंके यजनाथ भगवान विभ है। यजनायको जो कह दिया जाता है, वह समस्त शरोरधारियोंको दिया हुआ माना जाता है। पिताके मरनेपर वर्षके मध्य जो पुत्र अन्य ब्राद्ध करता है, निस्संदेह सात जन्मोंमें किये गये अपने धर्मसे होन हो जाता है। पिण्डोदक क्रियादिसे रहित प्राणी प्रेत हो जाते हैं, वे इसी रूपमें भूख-प्याससे अत्यन्त पीडित होकर वायुके साथ चक्कर काटते हैं। यदि पिता ब्रेतत्वयोनिमें पहुँच जाता है तो पुत्रके द्वारा की गयी समस्त पैतृको किया नष्ट हो जाती है। यदि माताकी मृत्य हो जाती है तो पितृकार्य नष्ट नहीं होता है।

१-अन्तरकास् वन्त्राद्धं वन्त्राद्धं वृद्धिरेतकम्। पितः पृथक् प्रदावन्तं स्विषः विग्र्डं सरिग्डने । (३४) १२०)

यदि माताको मृत्यु हो जाय, पिता और पितामही हुए मनुष्योंका पिण्डमेलन अर्थात् सपिण्डीकरण नहीं होता अर्थात् दादी जीवित रहती है तो माताका सपिण्डन है, उनके लिये पुत्रोंके द्वारा अनेक प्रकारसे दिया गया प्रिपतामहीके साथ ही करना चाहिये। हे गरुड! मेरे इस इन्तकार, उपहार, ब्राद्ध तथा जलाञ्चलि उन्हें प्राप्त नहीं होती वचनको सुनो। यह सर्वथा सत्य है। इस पृथ्वीपर जिन मरे है। (अध्याय ३४)

and the same

सपिण्डीकरण-श्राद्धमें प्रेतपिण्डके मेलनका विधान, पितरोंकी प्रसन्तताका फल, पञ्चक-मरण तथा शान्तिविधान, पुत्तलिकादाह, प्रेतश्राद्धमें त्याज्य अठारह पदार्थ, मिलनघोडशी, मध्यमधोडशी तथा उत्तमषोडशी श्राद्ध, शवयात्रा-विधान

ताक्ष्यंने कहा-हे जनादंन! अब मुझे दूसरा संदेह पिलाकर पितरोंकी संख्या इक्कीस होती है। मातामह, प्रमातामह एवं वृद्धप्रमातामह भी जीवित हों तो है खगेता! पिता प्रसन्न होकर पुत्रोंको संतान प्रदान प्रभी। इसकी बतानेकी कृपा करें।

सपिण्डोकरणविधानको मैं पुन: कह रहा है। यदि मालके उपर्युक्त सभी सम्बन्धी जीवित हैं तो माताके पिण्डका सम्पेलन उमा, लक्ष्मो तथा सावित्रीके साथ कर देना चाहिये। इस संसारमें तीन पुरुष पिण्डका धोग करनेवाले हैं, तीन पुरुष उसी प्रकार नरकलोकमें वास करता है, जिस प्रकार त्याजक हैं, तीन पुरुष पिण्डानुलेप और दसवों पुरुष कोचड़में फैंसा हुआ हाथी होता है। (नरक-भीग प्राप्त पंकिसंनिध होता है। पिता तथा माताके कुलमें इन्हीं पुरुषोंकी करनेके बाद) वह प्राणी वृक्ष अथवा सरीसूप-योनियें जन्म प्रसिद्धि होती है। यजमान अपनेसे पूर्व दस पुरुषों एवं लेता है। वह उस नरकसे बिना संतानके निश्चित ही मुक्त अपनेसे बादके दस पुरुषोंका उद्धार कर सकता है। पहले नहीं होता है। अतः संतानविहीन मरे हुए प्राणीके शिये जो तीन पुरुष बताये गये हैं अर्थात् पिता, पितामह तब आचार्य, किप्य अथवा दूरके सगीत्री (अबान्धव)-को उसके प्रपितामह—ये सपिण्डीकरण करनेपर सपिण्ड माने गये हैं। उद्देश्यसे धक्तिपूर्वक 'नारायणबलि' कर देनी चाहिये। उस जो प्रिपतामहके पूर्व वृद्धप्रिपतामह और उनसे दो पूर्व पुरुष कुरुवसे पापविमुक्त होकर वह विशुद्धात्मा निश्चित हो नरकसे हैं, उन्हें त्याजक रूपमें स्वीकार करना चाहिये। इस अन्तिम खुटकारा पा जाता है और स्वर्गमें जाकर वास करता है। त्याजक पुरुषके बाद जो पुरुष होता है, यह प्रथम लेपक इसमें कुछ विचार करनेको आवश्यकता नहीं है। होता है, उसके पूर्वमें जो अन्य दो पुरुष होते हैं, उन्हें भी धनिष्ठासे लेकर रेवतीपर्यन जो पाँच नक्षत्र हैं, ये सभी उसी लेफककी कोटिमें समझना चाहिये। इस कोटिके सदैव अञ्चभ होते हैं। उन नक्षत्रोंमें ब्राह्मण आदि समस्त तीसरे पुरुषके पूर्व जो पुरुष होता है, वह पॉक्डसॅनिथ है। जातियोंका दाह-संस्कार या बलिकर्म नहीं करना चाहिये। इस प्रकार दस पूर्व पुरुषोंके बाद स्वयं यजमान एक पुरुष इन नक्षत्रोंमें मृत प्राणीके लिये जल भी प्रदान करना उचित

उत्पन्न हो गया है। यदि किसी भी पुरुषको माताका इस संसारमें विधिपूर्वक जो मनुष्य उक्त श्रेष्ठतम श्राद देहायसान हो गया है, किंतु उसकी पितामही, प्रपितामही, करता है, उसमें कर्ताकी ओरसे कोई संदेहकी स्थिति नहीं रह वृद्धप्रपितामही जीवित है और यदि पिता भी जीवित हो, जाती है तो उसका जो फल होता है, उसे भी तुम सुनी।

उस माताका समिण्डन किसके साथ किया जायगा? हे करता है, जिससे उनको वंश-परम्परा अविच्छित्र होती है। ब्राह्मकर्ताका प्रपितामह प्रसन्न हो करके स्वर्णदाता हो जाता श्रीकृष्णाने कहा—हे पश्चिन्। पूर्वमें कहे गये है। युद्धप्रपितासह प्रसन होकर ब्राद्धकर्ताको विपुल अन्नादि प्रदान करते हैं। ब्राद्धके जो ये फल हैं, ये ही पितरोंके तर्पनसे भी प्राप्त होते हैं। हे पश्चिन्। इस मर्त्यलोकमें जिस पुरुषकी संवान-परम्परा नष्ट हो जाती है, वह मृत्युके बाद

है। भविष्यमें जो यथाक्रम दस पुरुष होते हैं, उन सभीको नहीं है, ऐसा करनेसे वह अशुभ हो जाता है। दु:खार्व

१ - 'विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोवां लोगो कच्यः'—इस वार्तिकसे 'ड' कब्दका लोग हो कतेसे मूलमें पितामहो पदको 'प्रपितामही' समझना चाहिये।

(मृत) स्वजन हों तो भी इस कालमें लोक (शव)-यात्रा नहीं करनी चाहिये। स्वजनको पञ्चकको शान्तिके बाद हो मृतका सब संस्कार करना चाहिये, अन्यथा पुत्र और सगीत्रियोंको उस अशुभ पञ्चकके कुत्रभावसे दु:ख हो झेलना पड़ता है। जो मनुष्य इन नक्षत्रोंमें मृत्यु प्रात करता है, उसके घरमें हानि होती है।

इस पञ्चकको अवधिमें जो प्राणी मर जाता है, उसका दाह-संस्कार तत्सम्बन्धित नक्षत्रके मन्त्रसे आहुति प्रदान करके नक्षत्रके मध्यकालमें भी किया जा सकता है। सद्य: की गयी आहुति पुण्यदायिनी होती है: तीधीमें किया गया दाह उत्तम होता है। बाह्यणोंको नियमपूर्वक यह कार्य मन्त्रसहित विधिपूर्वक करना चाहिये। वे यथाविधि अभिमन्त्रित कुशकी चार पुरालिकाओंको बना करके शतको समीपमें रख दें। उसके बाद उन पुत्तालकोओंके सहित उस शवका दाह-संस्कार करें। तदनन्तर मृतकके समात होनेपर पुत्रको श्रान्तिकमं भी करना चाहिये।

जो मनुष्य इत धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रोमें मस्ता है, उसकी उत्तम गति नहीं प्राप्त होती है। अतएव उसके उद्देश्यक्षे तिल, गी, सुवर्ण और चृतका दान विद्रोंको देना चाहिये। ऐसा करनेसे सभी प्रकारके उपद्रवांका विनाता हो जाता है। अशौचके समास होनेपर मृत प्राणी अपने सस्पुजोसे सदित प्राप्त करता है। जो पात, पादुका, छव, स्वर्ण मुद्रा, वस्त तथा दक्षिणा ब्राह्मणको दी जाती है, वह सभी पापाँको दूर करनेवाली है। पश्चकमें मरे हुए वाल, युवा और वृद्ध प्राणियोंका औध्वदिहिक संस्कार प्राथशितपूर्वक जो मनुष्य नहीं करता है, उसके लिये नाना प्रकारका विष्न जन्म लेता है।

प्रेतश्राद्धमें अठारह बस्तुएँ त्याच्य होती हैं। यथा— आशीर्वाद, द्विगुण कुश (मोटक), प्रणवका उच्चारण, एकसे अधिक पिण्डदान, अग्नीकरण, उच्छिष्ट श्राद्ध, वैश्वदेवार्चन, विकिरदान, स्वधाका उच्चारण और पितृशब्दोच्चार नहीं करना चाहियें। इस ब्राद्धमें 'अनु' शब्दका प्रयोग, आवाहन तथा उल्युख चर्जित है। आसीमान्तंगमन, विसर्जन, प्रदक्षिणा, तिल-होम और पूर्णाहृति तथा चलिवैश्वदेव भी नहीं करना चाहियें। यदि कर्ता ऐसा करता है तो उसे अधोगति प्राप्त होती हैं।

प्रथम चोडशोको मिलन-ब्राह्मके नामसे अभिहित किया जब है। यथा— मृत्युस्थान, द्वार, अर्थमार्ग, चितामें (श्मशानवासी प्राणियों एवं पड़ोसियोंके उद्देश्यसे) शतके हाथमें तथा छटा ब्राह्म अस्थि-संचय-कालमें होता है। उसके बाद दस पिण्ड-ब्राह्म जो प्रतिदिन एक-एक करके दस दिन किये बाते हैं, वे भी मिलन-ब्राह्मको कोटिमें आते हैं। इस प्रकार इनों प्रथम चोडश ब्राह्म कहा गया है। हे ताक्ष्यें। अन्य मध्यम चा द्वितीय चोडशीको भी तुम मुझसे सुनो।

इन पोक्स श्राद्धीकी क्रियामें सबसे पहले विधिवत् एकादश बाद करना चाहिये। उसके बाद ब्रह्मा, विष्णु, लिख, यम और तत्पुरुषके नामसे पाँच श्राद्ध हों, ऐसा तत्विक्तकानि कहा है। हे खगेश। इन पोडश श्राद्धांके बाद प्रतिमास एक श्राद्धके अनुसार बारह श्राद्ध, त्यारहवें मासमें कर्ताब्दक श्राद्ध, त्रिपाधिक श्राद्ध, कनमाधिक और कर्त्याण्यासिक श्राद्ध करनेका विधान है। श्राव-शोधनके लिये आग्र श्राद्ध करके तथा अन्य त्रिपोक्षण श्राद्ध करके पितृपांकको विशुद्धिके लिये प्रचासवें श्राद्ध से मिलाना चाहिये। जिसका प्रचासवां श्राद्ध नहीं किया गया है, वह पितृपांकिमें मिलने योग्य नहीं है। उक्त त्रिपोदश अर्थात् अड्वालीस श्राद्धोंसे मृत प्राणीके प्रेतत्वका विनाश होता है। उनचास श्राद्ध हो बानेपर पंक्तिसंनिध (पितृगणोंका सामीप्य) प्राणीको मिल जाता है। प्रचासवें श्राद्धसे पितृके साथ संधि-मेलन करना चाहिये।

अब शक-विधि बतायो जाती है। शव-यात्रा प्रारम्भ । ये व त्वामनुषक्कित तेष्यक्ष०'— ऐसा उच्चरण करके पिण्डशेषात्र

१-किन्हीं आचार्योके मतमें मृत व्यक्तिके अनन्तर उनके अनुवाधियोको 'ये च त्यामनूषच्छन्ति तेश्वह०'- ऐसा उच्चारण करके पिण्डशेषात्र पिण्डके समीपमें दिया जाता है, वह प्रेत-आदमें नहीं करना चाहिये।

पण्डक समापम दिया जाता है, वह प्रत-आद्धन नहां करना चाह्य। २-ब्राह्ममें ब्राह्मण-मोजन करानेके अनन्ता बाह्मणके पीछे-पीछे गाँवको मोमाजक जाकर उनको प्रदक्षिण करके उनका विसर्जन किया जाता है। यह अस्मीमान्त्रगमन प्रेत-ब्राह्ममें नहीं करना पाहिये।

३-अष्टादरीय वस्तुनि प्रेतवाद्धे विकर्णयेत् । आशिषो द्विगुणम् दर्भन् प्रणयन् नैकपिण्डतम् ॥ अग्नीकरणमृत्यिष्टं ब्राद्धं वै वेश्वदेविकस् । विकितं च स्वध्यकारं पितृष्टस्यं न कोन्योत् ॥ अनुशब्दं न कुर्योत नावादनप्रयोज्यकम् । आसीपान्तं न कुर्योत प्रदक्षिणविमानंत्रम् ॥ न कुर्यात् विस्तहोसं च द्वितः पूर्णादुति तथा । न कुर्यादेश्वदेशं कीन्यतं गन्यत्वधीगनिम् ॥ (३५) २९— ३२)

करनेके पूर्व बनायी गयी पालकीमें शबके हाथ-पैर बाँध गाँवके बीच शबके रहनेपर ताम्बूल-सेवन, दनाधावन, देना चाहिये। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो वह भोजन, स्त्री-सहवास तथा पिण्डदान त्याज्य है। स्नान, दान, पिशाच-योनियोंके हाथ पहुँच जाता है। जवको अकेला जप, होम, तर्पण और देवपूजनका कार्य करना भी व्यर्थ नहीं छोड़ना चाहिये। यदि उसको अकेला छोड़ दिया ही हो जाता है। जाता है तो दृष्ट योनियोंके स्पर्शसे उसकी दुर्गीत होती है। गाँवके मध्य तव विद्यमान है—ऐसा सुननेके बाद लिये मृतकालमें ऐसा हो उपर्युक्त व्यवहार अपेक्षित है। इच्छानुसार यदि भोजन कर लिया जाता है तो उस अब और जलको क्रमश: मांस तथा रक्त समझना चाहिये।

हे पश्चिता बन्ध्-बान्धव और सगे-सम्बन्धियोंके इस धर्मके त्यागनेसे प्रेत पाप-संलिप्त हो जाता है।

(अध्याय ३५)

तीर्थमरण एवं अनशनवतका माहात्म्य, आतुरावस्थाके दानका फल, धनकी एकमात्र गति दान तथा दानकी महिमा

कारणसे मनुष्यको अक्षय गति प्रदान करनेमें समर्थ हैं? होता है। जो मनुष्य रुग्णावस्थामें संन्यास ग्रहण कर लेता यदि प्राणी अपने परको छोडकर तोशंमें जाकर मस्ता है अथवा तीर्थमें न पहुँचकर मार्गमें या घरमें ही मर जाता है अथवा कटीचर अर्थात् संन्यास-आन्नमके धर्मको स्वोकार करके प्राण छोड़ देता है तो उसे कौन सी गति प्राप्त हो सकती है? जो व्यक्ति तीर्थ अथवा परमें भी रहकर संन्यासीका जीवन व्यतीत करता है, उसकी मृत्यू हुई हो या न हुई हो तो पत्रको क्या करना चाहिये? हे देव। सदि प्राणीका तत्सम्बन्धी नियम-पालनमें उसके वित्तकी एकाग्रता भंग हो जाती है तो ऐसी परिस्थितिमें उसकी सिद्धि कैसे सम्भव है ? यदि उस नियमको पूरा किया जान अनना नहीं भी किया जाय तो ऐसी दलामें उस व्यक्तिको सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है?

श्रीकष्णने कहा-है गरुड। यदि जो कोई भी प्राणी अनशनवात करके मृत्युका व्याण करता है तो वह मानय-शरीर छोड़कर मेरे समान हो जाता है। निराहारवत करते हुए वह जितने दिन जीवित रहेगा, उतने दिन उसके लिये समग्र श्रेष्ठ दक्षिणासहित सम्पन्न किये गये वर्जीके समान हैं। यदि मनुष्य संन्यास धर्मको स्वीकार करके तीर्च अथवा घरमें अपने प्राणींका परिल्याग करता है तो उस अवधिमें

ताक्ष्येने कहा-है प्रभो। अनंतनवतका पुण्य किस रोगको उत्पत्ति नहीं होती है। वह देवतुल्य सुशोधित है, वह इस दु:खमय अपार संसार-सागरकी भूमिपर पुन: जन्म नहीं लेता है। प्रतिदिन मधाशक्ति ब्राह्मणोंकी भोजन, तिल-पात्र और दीपकका दान एवं देवपुजनका कर्म करना चाहिये। इस प्रकारका आचरण जो व्यक्ति करता है, उसके छोटे-बड़े सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं। वह मृत्युके बाद सभी महर्षियोंके द्वारा प्राप्त को जानेवाली मुक्तिका संवरण करता है। अत: यह अनशनवृत मनुष्योंको वैकुण्डपद प्रदान करनेवाला है। इसलिये प्राणी स्वस्थ हो या न हो, उसे इस मोश्रदायक व्रतका पालन अवस्य करना चाहिये।

जो मनुष्य पुत्र और धन-दौलतका परित्याग करके तीर्धयात्रापा चल देता है, उसके लिये ब्रह्मादि देवगण तुष्टि-पुष्टिदायक बन जाते हैं। जो व्यक्ति शीर्यके सामने उपस्थित होकर अनमनवत करता है, वह यदि उसी मध्यावधिमें मृत्युको भी प्राप्त कर हो तो उसका वास सप्तर्षिमण्डलके बीच निश्चित है। यदि अनशनवृत करके प्राणी अपने घरमे भी मर जाता है तो वह अपने कुलोंको छोड़कर अकेले स्वर्गलोकमें जाकर विचरण करता है। यदि मनुष्य अन और जलका त्याग करके विष्णुके चरणोदकका पान करत वह प्रतिदिन पूर्वोक पुण्यका दुगुना फल प्राप्त करता है। है तो वह इस पृथ्वीपर पुनर्जन्म नहीं लेता है। अपने प्रयत्नरे शरीरमें महाभयंकर रोगके हो जानेपर अनशनवत करके जो तीर्धमें गये हुए उस प्राणीकी रक्षा वनदेवता करते हैं। विशेष मृत्युको प्राप्त करता है, पुनर्जन्म होनेपर उसके शरीरमें बात यह है कि यमदूत और यमलोकको यातनाएँ उसके

१ -मृत्युका विश्वय होनेपर तीन या भार दिन अन्न-कलका सर्वाया परित्याग अनमन है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि यह अनशन आत्महत्या न होकर व्रत है।

संनिकटतक नहीं आ पाती हैं। जो व्यक्ति पापोंसे दूर रहता देगा? मृत पिताके पारलीकिक सुखके उद्देश्यसे जो पुत्र हुआ तीर्थवास करता है, यदि वह वहाँपर मृत्युको प्राप्त करे ब्राह्मणको दान देता है, उससे वह पुत्र-पात्र और प्रपौत्रोंके और उसका शबदाह हो तो वह उस तीर्थक फलका साथ धनवान हो जाता है। पिताके निमित्त दिया गया दान सौ भागीदार होता है। सदैव तीर्थसेवन करनेपर भी प्राची यदि गुज, माताके लिये हजार गुना, बहनके लिये दस हजार गुना, किसी दूसरे स्थानपर मरता है तो वह ब्रेष्ठ कुल और उत्तम सहोदर भाईके लिये किया गया दान असंख्य गुना पुण्य प्रदान देशमें जन्म लेकर एक विद्वान् वेदत बाहाण होता है। हे करनेवाला होता है। यदि लोभ, प्रमाद अथवा व्यामोहसे ताक्ष्यं। यदि निराहारव्रत करके भी मनुष्य पुन: जीवित प्रसित होकर लोग अपने मृतकाँके लिये दान नहीं देते हैं रहता है तो ब्राह्मणोंको बुलाकर जो कुछ उसके पास हो। तो सभी मरे हुए प्राणी यह सोचते हैं कि मेरे परिवारके सगे वह सर्वस्व उन्हें दानमें दे दे। ब्राह्मणोंकी आजा लेकर वह सम्बन्धी कंजूस और पापी हैं। अत्यन कष्टसे अर्जित और वान्द्रायणवृतका पालन करे, सदा सत्य बोले और धर्मका ही आचरण करे।

मृत्युके उद्देश्यसे तीर्थमें जाकर कोई भी मनुष्य पुन:

अपने घर वापस आ जाता है तो वह बाह्यणोंकी आज़ा प्राप्त करके प्राथक्षित करे। स्वर्ण, गी, भूमि, हाथी और घोडेका दान करके जो मनुष्य मृत्युकालमें तोथेंमें पहुँच जाय. वह भाग्यवान है। मरण-कालके संनिकट होनेपर घरसे तीर्थके लिये प्रस्थान करनेवाले व्यक्तिको पग-पगपर गोदानका फल प्राप्त होता है, यदि उससे हिंसा न हो। घरमें जो पाप किया गया है, वह तीर्थ-स्नानसे सुद्ध हो जाता है। फरेतू यदि प्राणी तीर्धमें पाप करता है तो वह वज्रलेपके समान हो जाता है'। जबतक सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्र आकाशमें विद्यमान रहते हैं, तबतक वह निस्संदेंड कह झेलता है। उसके सामने टिकनेमें समर्थ नहीं होता है। वहाँपर दिये गये दानोंका फल प्राप्त नहीं होता है। आतुरायस्थामें निर्धन प्राणियोंको बिहोप रूपसे गी, तिल, इब करके प्राणीत्सर्ग करनेसे सात हजार वर्ष, अग्निमें

स्वर्ण तथा सप्तधान्यका दान करना चाहिये।

स्वभावत: चञ्चल धनको गति मात्र एक ही है और वह है दान। उसको इसरी गति तो बिपति ही है। यह मेरा पुत्र है, ऐसा समझकर पुत्रसे प्रेम करनेवाले

अपने पतिको देख करके जिस प्रकार दुराचारियों स्त्रो उसका उपहास करती है, उसी प्रकार मृत्यु शरीरके रक्षक और पृथ्वी धनके रक्षकका उपहास करती है। हे तार्थ! जो मनुष्य उदार, धर्मनिष्ठ तथा सौम्य स्वभावसे युक्त है. वह अपर धन प्राप्त करके भी अपनेको तथा धनको तिलकं समान वृच्छ मानता है। ऐसे उदास चरित्रवाले श्रेष्ठ पुरुपको अधीपद्रव नहीं होता है, उसको किसी प्रकारका योहजाल अपने चक्करमें नहीं जकड पाता है। मृत्युकालमें यमदर्शीके द्वारा उत्पन्न किया गया किसी प्रकारका भव

हे काइयप। धर्मको रक्षा या किसीके उद्देश्यसे जलमें कदकर आत्मदाह करनेपर ग्यारह हजार वर्ष, वायुके चेगमें दान देनेवाले पुरुषको देखकर सभी स्वर्गवासी देवता. जीवनलीला समाप्त करनेपर सोलह हजार वर्ष, युद्धभूमिमें ऋषि तथा चित्रगुप्तके साथ धर्मराज प्रसन्न होते हैं। जबतक बोरगति प्राप्त करनेपर साठ हजार वर्ष तथा गोरक्षार्थ मरण अपने द्वारा अर्जित धन है, तबतक बाह्मणको उसका दान होनेपर अस्सी हजार वर्षतक स्वर्गको प्राप्ति होती है, किंतु देना चाहिये; क्योंकि मरनेपर वह सब पराधीन ही ही निराहारक्रतका पालन करते हुए प्राणीका परित्याग करनेपर जायगा'। यैसी स्थितिमें दयातान् बन करके भला कौन दान व्यक्तिको अधवगतिका लाभ होता है'। (अध्याय ३६)

१-गृहात् प्रचरिततस्तीर्थं मरमे समुप्रस्थिते । परं परं तु नीवार्न साँद हिंसा न जापरे ॥ गृहे त यत कर्त वार्य तीर्थस्तानेन शुध्यति । करते तत्र यार्य चेद्रवलेपसम् ति तत् । (३६ । २४-२५)

२-आत्मायमं धनं वायत् तायद् विद्रे समर्पयेत्। पराधीनं मृते सर्व कृत्या कः प्रदास्यति॥ (३६।२९)

३-पितः जतगर्गं दतं सहस्रं मातुरुच्यते । धीमन्या जतसाहस्रं सोदर्वे दत्तमध्यप् । पदि लोभान यच्छनि प्रमदानोहतोऽपि वा । मृताः शोचनि ते सर्वे बदवाः पापनस्तिति ॥

अतिक्रोतेन लकास्य प्रकरण चञ्चलस्य व । गाँतिकिय विकस्य दानान्या विपत्तपः ॥ (३६ : ३१ - ३३) ४-समाः सहस्राणि च सार वे जले दरीकमन्त्री पवने च चोडम। महाहवे चहिरशीतिगोडहे अनाशके काश्यप वासया गतिः॥ (३६।३७)

और्ध्वदैहिककर्ममें उदकुम्भदानका माहात्स्य

कुम्भका दान करना चाहिये, उसका वर्णन करें। यह कार्य उससे प्रसन्न होकर प्रेत यमदूर्तोंके साथ चला जाता है। किस विधिसे करना चाहिये? इसके लक्षण कैसे हैं? इसकी पूर्वि कैसे होती है? इसकी किसे देख चाहिये? प्रेतोंको संतुष्टि प्रदान करनेमें समर्थ इन कुम्भोंका दान किस कालमें उचित है? यह बतानेकी कृषा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! जलपूर्ण कुम्भदानके विषयमें पुन: मैं तुम्हें भली प्रकारसे बता रहा हैं। हे महापक्षिन्! अन और जलसे परिपूर्ण कुम्भोंका दान प्रेतके उद्देश्यसे देना वाहिये। यह दान विशेषरूपसे प्रेतके लिये मुख्यियक है।



बारहवें दिन, छठे मास, त्रिपक्ष और वार्षिक बाद्धके दिन विशेषरूपसे जीवको यमपार्गमें सुख प्रदान करनेके लिये उदकम्भ देना चाहिये। गोबरसे भलीभौति लीपकर स्वच्छ बनायी गयी भूमिपर प्रतिदिन तिल या पक्कासे युक्त जलपूर्ण कुम्भका दान देना चाहिये। उसी स्थानपर प्रेतके समर्थ है। (अध्याय ३७) [शेष पु० ४७४ से]

तार्क्ष्यंने कहा-हे जनार्दन! जिस प्रकारसे जलपूर्ण निमित्त स्वेच्छासे उस पात्रका दान भी दे देना चाहिये।

प्रेतके द्वादशाह-संस्कारके अवसरपर जलपूरित कुम्भीका दान विशेष सहस्य रखता है। यजमान उस दिन बारह जल-भरे घटोंका संकल्प करके दान करे। उसी दिन वह पक्तात्र और फलसे परिपूर्ण एक वर्द्धनी (विशेष प्रकारका जलपात्र) भगवान विष्णुके लिये संकल्प करके सुयोग्य एवं सच्चरित्र ब्राह्मणको प्रदान करे। तदनन्तर वह एक बर्द्धनी, पक्ताप्त तवा फल धर्मराजको समर्पित करे। उससे संतुष्ट होकर धर्मराज उस प्रेतको मोश्र प्रदान करते हैं। उसी समय एक कर्दनी चित्रगुषके लिये दानमें देना चाहिये। उसके पुण्यसे प्रेत वहाँ पहुँचकर सुखी रहता है।

अपने मृत पिताके कल्याणार्थ उड्डद और जलसे पूर्ण सोलह पटोंका दान दे। उसका विधान यह है कि उत्क्रानि बादसे लेकर पोडल बादतकके लिये सोलह बाहाणींको एक-एक घट दानमें दिया जाय। एकादशाहसे लेकर वर्षपर्यन्त प्रतिदिन नियमपूर्वक पक्ताल एवं जलसे पूर्ण एक घटका दान देव है। हे खगेश्वर! यह बात तो उचित है कि जलपूर्ण पात्र और पक्वाजपूरित बढ़े घटोंका दान नित्य दिया जाय, किंतु वहींपर एक वर्दनी (कलश) ऐसी होनी चाहिये जिसके ऊपर बाँस-निर्मित पात्रमें मिष्टान रखकर पितृका आहान करके कुंकुम, अगुरु आदि सुगन्धित पदाबाँसे उनका पुजन करे। तत्पश्चात् वस्त्राच्छादन करके विधिवत् संकल्पपूर्वक वैदिक धर्मानरणसे परिपूर्ण कुलीन ब्राह्मणको नित्य ऐसे एक-एक घट दान दे। यह दान विद्या और सदाचारसे युक्त ब्राह्मणको ही देना चाहिये। कभी मुखंको यह दान न दे, क्योंकि वेदसम्मत आचार-विचारवाला ब्राह्मण यजमान और स्वयंका भी उद्धार करनेमें मूर्णमदः पूर्णीमदं पूर्वात् पूर्वमुद्द्वाते । पूर्वस्य पूर्वमादाय पूर्वमेवावशिष्यते ॥



निखिलभुवननार्थं शास्त्रतं सुप्रसत्रं त्वतिविमलविशुद्धं निर्गुणं भावपुर्धः। सुखमुदितसमस्तं पूजयाप्यात्पभावं विशतु हृदपपर्धे सर्वसाक्षी चिदात्पा॥



गोरखपुर, सीर फाल्गुन, वि० सं० २०५६, ओकृष्ण-सं० ५२२५, फरवरी २०००ई०



पूर्ण संख्या ८७१

धर्मराजको बारम्बार नमस्कार है

धर्मग्रज नयस्तेऽस्तु ययस्त्र नयोऽस्तु ते। दक्षिणालाय ते तुभ्यं नयो महिषवाहन॥ चित्रगुप्त नयस्तुभ्यं विचित्राय नयो नयः। नरकार्तिप्रशान्यर्थं कामान् यच्छ ममेप्सितान्॥

हे धर्मराज! आपको नमस्कार है। यमराज। आपको नमस्कार है। हे दक्षिण दिशाके स्वामी! आपको नमस्कार है। हे महिषवाहन देवता! आपको नमस्कार है। हे चित्रगुप्त! आपको नमस्कार है। नरकको पीड़ा शाना करनेके लिये 'विचित्र' नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। आप मेरी मनोवाज्ञित कामनाएँ पूर्ण करें।

- BAR

धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प

[विशेषाङ्क पृ० ४७२ से आगे]

तीर्थमरणकी महिमा, अन्त समयमें भगवन्नामकी महिमा, शालग्रामशिला तथा तुलसीकी सन्निधिमें मरणका फल, मुक्तिदायक तथा स्वर्गदायक प्रशस्त कर्म, इष्टापूर्तकर्म तथा अनाथ प्रेतके संस्कारका माहात्म्य

ताक्ष्यने कहा — है प्रभो ! दान एवं तीर्थ करनेवालेको स्वर्ण तथा मोक्षकी प्रति होती है। अब अप इसका जल मुझे कतायें। हे स्वामिन्! किस दान और तीर्थ-मेवनसे मनुष्य मोछ प्राप्त करता है? किस दान एवं तीर्थक पुण्यसे प्राप्तो विस्कालक स्वर्णमें रह सकता है? क्या करनेसे वह स्वर्णलोक एवं सल्पलोकसे तेजोलोकमें जाता है। किस पापसे मनुष्य नाना प्रकारके नरकोंमें दूबता रहता है। हे भक्तोंको मोछ प्रदान करनेवाले भगवान् जनार्दन। आप मुझको यह भी बतानेको कृपा करें कि कहाँपर मृत्यु होनेसे प्राणीको स्वर्ग और मोछ भी प्राप्त होता है, जिससे कि पुनर्जन्म नहीं होता।

श्रीविष्णुने कहा—हे गरद! भारतवर्षमें मानवर्षानि तेरह जातियोंमें विभक्त है। यदि उसको प्राप्त करके मनुष्य अपने अन्तिम जीवनका उत्सर्ग तीर्थमें करता है तो उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। अयोध्या, मथुरा, माया, कालो, कालो, अवन्तिका और द्वारका— ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली है। प्राणींके कण्डगत हो जानेपर 'मैं संन्यासी हो गया'— ऐसा जो कह दे तो मरनेपर विष्णुलोक प्राप्त करता है। पुनः पृथ्वीपर उसका जन्म नहीं होता।

जो मनुष्य मृत्युके समय एक बार 'हारे' इस दो अक्षरका उच्चारण कर लेता है, वह मानो मोख प्राष्ट करनेके लिये कटिबद्ध हो गया है। जो मनुष्य प्रतिदिन 'कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण'—यह कहकर मेरा स्मरण करता है, उसको मैं नरकसे उसी प्रकार निकाल देता हूँ जिस प्रकार जलका भेदन कर कमल ऊपर निकल जाता है। जहाँपर शालग्राम शिलाखण्डोंका संगम है, वहाँ प्राणीको मुक्ति निस्संदेह ही प्राप्त होती है। समस्त पाप एवं दोचोंका विनाश करनेवाली शालग्राम शिला जहाँ विद्यमान है, वहाँ उसके सानिष्यमें मृत्यु होनेसे जीवको निस्संदेह मोक्ष मिलता है—

मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर्जायते क्षितौ। सकृदुच्चरितं येन इरिरित्यक्षरद्वयम्॥ बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति। कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः॥ जलं भिन्ता यद्या पर्च नरकादुद्धराम्यहम्। शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारवती शिला॥ उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः। शालग्रामशिला यत्र पापदोपक्षयावहा॥ वस्तिन्धानमरणान्युक्तिर्जनोः सुनिश्चता।

(35 -0136)

हे खय! तुलसीका कुछ लगाने, पालन करने, सींचने, ध्यान-स्पर्त और गुणगान करनेसे मनुष्योंक पूर्व जन्माजित पाप जलकर विनष्ट हो जाते हैं—

> रोपणात् पालनात् सेकाद्ध्यानस्परानकीर्तनात्। नुलसी दहते पापं नृष्यां जन्मार्जितं खगः॥

> > (3212E)

राग-द्वेषस्यो मलको दूर करनेमें समर्थ, जानरूपी जलामयके सत्परूपी जलसे युक्त मानसतीर्थमें जिस मनुष्यने स्नान कर लिया है, वह कभी पापीसे संलिप्त नहीं होता। देवता कभी काष्ट्र और पत्थरकी शिलामें नहीं रहते, वे तो प्राणीके भावमें विराजमान रहते हैं। इसलिये सद्भावसे युक्त भक्तिका सम्यक् आचाण करना चाहिये—

ज्ञानहृदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे। यः स्नातो यानसे तीर्थे न स लिप्येत पातकैः॥ न काष्ठे विद्यते देवो न शिलायो कदाचन। भावे हि विद्यते देवस्तसमाद्भावं समाचरेत॥

(65-55135)

मञ्जारे प्रतिदिन प्रात:काल जाकर नर्मदा नदी (पुण्य तीर्थ)-का दर्शन करते हैं; किंतु वे शिवलोक नहीं पहुँच पाते हैं; क्योंकि उनकी चित्तवृति बलबान् होती है। मनुष्योंके चित्तमें जैसा विश्वास होता है, वैसा हो उन्हें अपने कमौंका फल प्राप्त होता है। वैसी हो उनकी परलोक-गति होती है। बाह्मण, गी, स्त्री और बालककी हत्या रोकनेके लिये

१. अयोध्या मधुरा माया कको काञ्ची अवन्तिका ७ पूरी द्वारवती देखा सन्तैत मोधदाविका:। (३८१५-६)

जो व्यक्ति अपने प्राणींका बलिदान करनेमें तत्पर रहता है. उसे मोक्ष प्राप्त होता है-

> बाह्यणार्थे गवार्थे च स्त्रीणां बालवधेष च। प्राणत्यागपरो यस्तु स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥

> > (36148)

जो निराहार व्रतके द्वारा मृत्यु प्राप्त करता है, उसे भी मुक्ति प्राप्त होती है। वह सभी बन्धनोंसे निर्मुक्त हो जाता है। ब्राह्मणोंको दान देनेसे मनुष्य मोशको प्राप्त कर सकता है।

हे गरुड ! सभी प्राणियोंके लिये जैसे मोक्षमार्ग हैं, वैसे ही स्वर्गके मार्ग भी हैं। यथा-- गोशालामें, देश-विध्वंस होनेपर, युद्धभूमि एवं तीर्थस्थलमें मृत्यु श्रेयस्कर है। प्राणी वहाँ अपने शरीरका परित्याग करके चिरकालतक स्वर्गजासका लाभ ले सकता है। पण्डितको जीवन और मरन इन दो तस्वींपर ही ध्यान देना चाहिये। अतः ये दान तथा भौगसे जीवन धारण करें और युद्धभूमि एवं तीर्थमें मृत्युको प्रात

करें। जो पनुष्य हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, भूगुक्षेत्र, प्रधास, बीजैल, अर्बेद (आब् पर्वत), त्रिपुष्कर तथा शिवक्षेत्रमें मरता है, वह जबतक ब्रह्मका एक दिन पूरा नहीं हो जाता, तबतक स्वर्गमें रहता है। उसके बाद वह पुन: पृथ्वीपर आ जाता है। जो व्यक्ति सच्चरित्र ब्राह्मणको एक वर्षतक जीवन-

निर्वाहके लिये अन-बस्तादिका दान देता है, वह सम्पूर्ण कुलका उद्धार करके स्वर्गलोकमें निवास करता है।

जो अपनी कन्याका विवाह वेदपारंगत बाह्यसके साथ करता है, वह अपने कुल-परिवारके सहित इन्द्रलोकमें निवास करता है। महादानोंको देकर भी घनुष्य ऐसा ही

फल प्राप्त करता है। वापी, कुप, जलाशय, उद्यान एवं देवालयोंका जीणोंद्वार करनेवाला पूर्व कर्ताकी भारत फल प्राप्त करता है अथवा जीर्णोद्धारसे कर्ताका पुण्य दुगना हो जाता है। जो मनुष्य विद्वान ब्राह्मणके परिवारको श्रीत, वायु

और धूपसे रक्षा करनेके लिये यास, फुस और पत्तोंसे बनी झोपड़ीका दान देता है, वह साढ़े तीन करोड़ वर्षतक

स्वर्गमें निवास करता है। जो सवर्णा सती स्त्री अपने मृत पठिका अनुगमन करे. वह मृत्युके बाद शरीरमें रोमोंको जितनो संख्या है, उतने

वर्षोतक स्वर्गका भोग करती है। पुत्र-पौत्रादिका परित्याग

करके जो अपने पतिका अनुगमन करती है, वे दोनों पति-

पत्नी दिव्य स्त्रियोंसे अलंकत होकर स्वर्गका सुख-वैभव प्राप्त करते हैं। सदैव पितसे द्रोह रखनेवाली स्त्री अनेक प्रकारके पापोंको करके भी जब मरे हुए उस पतिका अनुगमन चितापर चड्कर करती है तो उन सभी पापोंको थो डालती है। यदि किसी सन्वरित्र नारीका पति महापापींका आचरण करता हुआ दुष्कर्मी बन जाता है तो वह स्ठी अपने सदाचरणसे उसके सभी पापोंको विनष्ट कर

जो व्यक्ति नियमपूर्वक प्रतिदिन मात्र एक ग्रास भोजनका दान करता है, वह चार चामरसे युक्त दिव्य विमानपर चढ्कर स्वर्गलोक जाता है। जिस मनुष्यके द्वारा अग्रजीवन पाप-कर्म किया गया है, वह ब्राह्मणको एक

वर्षके लिये जीवन-निर्वाहकी युत्ति देकर उस पापको विनष्ट कर देता है। विप्र-कन्याका विवाह करानेवाला व्यक्ति भूत, भविष्य और वर्तमानके तीनों जन्मके अर्जित पापीको नष्ट कर देता है।

दस कपके समान एक बावली होती है। दस बावलीके समान सरोवर होता है और दस सरोवरके समान पुण्य-स्मालनो वह प्रय (चैसरा) होती है। जो वापी जलरहित वन एवं देहमें बनवायों जातो है और जो दान निर्धन ब्राह्मणको दिया कता है तथा प्राणियोपर जो दया की जाती है, उसके पुण्यसे कर्ता स्वर्गलोकका नायक बन जाता है।

इसी प्रकार अन्य बहुत-से सुकृत हैं, जिनको करके मनुष्य स्वर्गलोकका भागी होता है। वह उन सभी पुण्योंके फलको ग्रहण करके परम प्रतिष्ठाको प्राप्त करता है। व्यर्थके कार्योंको छोड्कर निरन्तर धर्माचरण करना

चाहिये। इस पृथ्वीपर दान, दम और दबा—ये ही तीन सार हैं। दरिद्र, सज्जन ब्राह्मणको दान, निर्जन प्रदेशमें स्थित शिवशिक्का पूजन और अनाय प्रेतका संस्कार—करोडॉ

यज्ञका फल प्रदान करता है-फल्यु कार्य परित्यन्य सततं धर्मवान् भवेत्। दानं दमो दया चेति सारमेतत् त्रयं भूवि॥ दानं साधोदीरेडस्य शुन्धिलंगस्य पुजनम्। अनाच्येतसंस्कारः कोटियज्ञफलप्रदः॥

(36139-Ke)

(अध्याय ३८)

१-दशकुपसमा वापी दशवापीसमं सर:।सरोपिर्दशपिस्टुत्य च प्रच निजेले वने अ या वापी निजेले देने यदार्थ निचनि द्विते। प्राणिनां मी दायां धने स भवेगाकनायक: व (३८ (३६-३७)

आशोचको व्यवस्था

ताक्ष्यंने कहा-हे प्रभो! चित्रमें शुचित्व और अशुचित्वके विवेकके लिये और जनहितार्थ आप मुझपर दया करके सुतक-विधिका वर्णन करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षीन्द्र! मृत्यु तथा जन्म होनेपर चार प्रकारका सूतक होता है, सामान्यत: जो चारों वर्णीक द्वारा यथाविधि दर करनेके योग्य है। जननाजीच और मरणाशीच होनेपर दस दिनोतक उस कुलका अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये। इस कालमें दान, प्रतिग्रह, होम और स्थाध्याय बंद हो जाता है। देश, काल, आत्मशक्ति, द्रव्य, द्रव्यप्रयोजन, औचित्व तथा वयको जान करके हो अतीच-कर्मके विहित नियमीका पालन करना चाहिये।

गुफा और अग्निमें प्रवेश तथा देशन्तरमें जरूर मरे हुए परिजनोंका अशीच तत्काल वस्वसहित स्नान करनेसे समाप्त हो जाता है। जो प्राणी गर्थसाय या गर्थसे निकलते ही मर जाते हैं, उनका अग्निदाह, अशीच एवं तिलोदक संस्कार नहीं होता है। शिल्पी, विश्वकर्मा, वैद्य, दामी, दास, राजा और स्रोत्रिय बाह्मणोंकी सद्य: शुद्धि बतायो गयो है यातिक (व्रतपरायण), मन्त्रपूत, अग्निहोत्री तथा राजा सदैव शुद्ध होते हैं। इन्हें अशीच नहीं होता है। राजाराण जिसकी इच्छा करते हैं, वह भी पवित्र ही रहता है।

हे द्विज ! ब्रांबेका जन्म होनेपर सपिण्डों और सगोत्रियोंको एक-जैसा अशीच नहीं होता। इस दिनके बाद माता शुद्ध हो जाती है और पिता तत्काल स्नान करके हो स्पर्शादिके लिये पवित्र हो जाता है। मनुने कहा है कि विवाहोत्सव तथा यज्ञके आयोजनमें यदि जन्म या मृत्युका सृतक हो जाता है तो पूर्व मानस संकल्पित धन और पूर्वनिर्मित खाद्यसामग्रीका उपयोग करनेमें दोष नहीं है। सभी वर्जीक लिये अशौच समानरूपसे माननीय है। माता-पिताको जो सुतक होता है, उसमें माताके लिये तो सुतक होता है और पिता स्नान करके तुरंत शुद्ध हो जाता है। दस दिनके लिये प्रवृत्त जननाशीच और मरणाशीचके अन्तर्गत यदि पुन: जन्म-मरण हो जाता है, तो पूर्वप्रवृत्त अशीचको तीन भागोंमें विभक्त करके यदि पुनर्जन्य-परण दो भागके अन्तर्गत हुआ है तो पूर्व अशौचकी निवृत्तिके दिनसे उत्तराशीचको भी निवृत्ति हो जायगी। किंतु यदि पूर्वप्रवृत्त अशीचके तीसरे भागमें पुनराशीच प्रवृत्त हुआ है तो उत्तराशीचमें प्रवृत्तिके समाप्तिपर ही ददि सुतक दशाहके बीच पुन: किसी सगोत्रोका मरण या जन्म होता है तो इस अशीचकी जबतक त्राद्ध नहीं होतो तबतक अशीच रहता है।

ऋषियोंने कहा है कि मनमें दान देनेकी भावना उत्पन्न हो जानेपर समय जैसा भी हो दीन-दु:खी ब्राह्मणको विनम्रतापूर्वक दान देना चाहिये, उसमें दोष नहीं होता है।

अशोद होनेपर मनुष्य पहले मिट्टीके पात्रसे तिलमिश्रित जलका स्वानकर शरीरपर मिहीका लेप करे, तत्पक्षात् स्वच्छ जलसे पुन: स्वान करके शुद्ध हो।

अशीवके बाद दान संशासदको देना चाहिये। सुवर्ण, गौ और वृषका दान बाह्मणको देना चाहिये। बाह्मणको अपेक्षा शक्रिय दुगुना, वैश्य तिगुना तथा सुद्र चौगुना धन ब्राह्मणको दान दे। गृह्मसूत्रोक्त संस्कारसे रहित होनेपर सातवें अथवा आठवें वर्षमें मृत्यु हो जाय तो जितने वर्षका यह पुतक व्यक्ति था उतने दिनका अशीय मानना चाहिये। बाह्यण और स्त्रीकी रक्षाके लिये जो अपने प्राणींका परिचाम करते हैं तथा जो लोग गोशाला तथा रणभूमिमें प्राणोंका परित्याप करते हैं, उनका अशीच एक रात्रिका होता है। जो नरब्रेष्ठ अनाथ प्रेतका संस्कार करते हैं, उन ब्राह्मणोंका किसी शुभ कर्ममें कुछ भी असुभ नहीं होता है। ब्राह्मणके सहयोगसे अन्य वर्णवाले जो इस कर्मको सम्पन्न करते हैं, उनका भी कुछ अशुभ नहीं होता है। स्नान करनेसे उनकी सद्य: शुद्धि हो जाती है।

अशीवसे विधिवद शुद्ध होकर जब शुद्र अलके मध्य स्नान कर रहे हों तभी ब्राह्मणको उन्हें देखना चाहिये।

(अध्याय ३९)

दुर्मृत्यु होनेपर सद्गतिलाभके लिये नारायण-बलिका विधान

ताक्ष्यंने कहा—भगवन्! किन्हीं ब्राह्मणोंको अपमृत्यु होती है, उनका पारलीकिक मार्ग कैसा है? उन्हें वहाँ कैसा स्थान प्राप्त होता है? उनकी कौन-सो गति होती है? उनके लिये क्या उचित है और क्या विधान है? हे मधुसूदन! मैं उन सभी बातोंको सुनना चाहता हूँ। कृपया आप उनका वर्णन करें।

श्रीकृष्णने कहा—है गरुड! जो बाह्मण विकृत मृत्युके कारण प्रेत हो गये हैं, उनके मार्ग, पारलीकिक गति, स्थान और प्रेतकर्म-विधानको में कह रहा हूँ। यह परम गोपनीय है, इसे तुम सुनो। जो बाह्मण खाई, नदी, नाला लॉधते हुए और सर्प आदिके काटनेसे मर जाते हैं, जिनकी मृत्यु गला दबाने तथा जलमें डूबानेसे डोतो है, जो दुर्बल बाह्मण हाथीकी सुँडके प्रहारसे, विषयानसे, श्रीण होकर, अग्निदाह, साँड्-प्रहार तथा विष्मुचिका (हैज) रोगसे मरते हैं, जिनके द्वारा आत्महत्या कर ली जाती है, जो गिरकर, फाँसी लगाकर और जलमें डूबकर मर जाते हैं, उनकी स्थितिको तुम सुना।

जो साहाण म्लेख्डादि जातियोंद्वारा मारे जाते हैं, वे धोर नरक प्राप्त करते हैं। जो कृता, सिमारादिके स्पर्न, दाह-संस्काररहित, कीटाणुओंसे परिव्यात, वर्णाब्रम-धर्मसे दूर और महारोगोंसे पीड़ित होकर मरते हैं, दोषसिद्ध, व्यक्तघपूर्ण बात, पापियोंके द्वारा प्रदत्त अञ्चका संवन करते हैं, खाण्डाल, जल, सर्प, ब्राह्मण, विद्युत्-निपत, ऑन्न, दन्तधारी पशु तथा कुशादि पतनके कारण जिनकी अपमृत्यु होती है, जो राजस्वला, प्रसवा, शृद्धा और धोयिनके सहवाससे दोषयुक्त हो गये हैं, वे सभी उस पापसे नरक-धोग करके प्रेतपोनि प्राप्त करते हैं। परिजनोंको उनका दाह-संस्कार, अशीच-निवृत्ति एवं जलक्रियाका कर्म नहीं करना चाहिये। हे ताक्ष्य। ऐसे पापियोंका नारायणबलिके बिना मृत्युका आग्र कर्म, औध्वेदिहिक कर्म भी नहीं करना चाहिये।

है पक्षिराज! सभी प्राणियोंका कल्पाण करनेके लिये पाप और भयको दूर करनेवाली उस नारायणवलिके विधानको सुनो। छ: मासकी अवधिमें ब्राह्मण, तीन मासमें क्षत्रिय, डेड् मासमें वैश्य तथा शूद्रकी तत्काल दाह (पुनलिका-दाह)-क्रिया करनी चाहिये। गङ्गा, यमुना, नैमिय, पुष्कर, जलपूर्ण तालाब, स्वच्छ जलयुक्त गम्भीर जलाजय, बावली, कृप, गोशाला, घर या मन्दिरमें भगवान् विष्णुके सामने ब्राह्मण इस नारायणवालिको सम्पन्न करायें। पौराणिक और वैदिक मन्त्रोंसे प्रेतका तर्पण किया जाय। इसके बाद यजमान सभी औषधियोंसे युक्त जल तथा अक्षत लेकर विष्णुका भी तर्पण पुरुषसूच अथवा अन्य वैष्णवमन्त्रोंसे करके दक्षिणभिमुख होकर प्रेतका विष्णुरूपमें इस मन्त्रसे ध्यान करे— अनादिनिधनों तथा

अनादिनिधनो देयः शङ्ख्यकगदाधाः। अन्वयः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भवेत्।

[80 | 10 SC

अनादि, अनन्त, राहु, चक्र और गदा धारण करनेवाले अव्ययदेव पुण्डरीकाश भगवान् प्रेतको मोक्ष प्रदान करें। वर्षण समात हो जानेक पक्षात् रागमुक्त, ईप्यां-द्वेप-रहित, जितेन्द्रिय, पवित्र, धर्मपरायण, दानधर्ममें संलग्न, रान्तिचत, एकाप्रचित्त होकर भगवान् विष्णुको प्रणाम करके तथा वाणीपर संयम रखते हुए अपने बन्धु-वान्धवर्षिक साथ यजमान शुद्ध हो। उसके बाद धर्किप्यंक वहाँ एकादश बाद्ध करें। समाहित होकर जल, धान, यथ, साठी धान, गेर्हु, कंगनी (टीगुन), शुभ हिथ्याल, मुद्रा, छत्र, पगड़ी, वस्त्र, सभी प्रकारके धान्य, दूध तथा मधुका दान ब्राह्मणको दे। वस्त्र और मादुकासे पुक्त आठ प्रकारक पददान किना पंकिचेद कियं (समानक्ष्यसे) सभी ब्राह्मणोंको इस अवसरपर देना चाहिये।

पृथ्वीपर पिण्डदान हो जानेक पक्षात् सङ्घ्यात् तथा तामपानमें पृथक्-पृथक् गन्थ-अक्षत-पृथ्ययुक्त तर्पण करे। ध्यान-धारणासे एकाग्र मन हो, घुटनोंके बल पृथ्वीपर टिक करके, वेद-जास्त्रोंके अनुसार सभी बाह्यणोंको दान देना चाहिये। एकोदिष्ट ब्राइमें ऋचाओंसे पृथक्-पृथक् अध्ये देना चाहिये। उस समय 'आधोदेवीर्यधुमती०' इत्यादि मन्त्रसे पहले पिण्डपर अध्ये प्रदान करना चाहिये। उसके बाद 'उपयाम गृहीतोऽसि०' इस मन्त्रसे दूसरे, 'येनापावक चक्षुषा०' मन्त्रसे तीसरे, 'खे देवास:०' मन्त्रसे चीथे, 'समुद्रं गच्छ०' मन्त्रसे पाँचयें, 'अग्निन्चीति०' मन्त्रसे छठे, 'हिरण्डमार्थ०' मन्त्रसे सातवें, 'यमाय०' मन्त्रसे आठयें, 'यजाप्र०' मन्त्रसे नयें, 'या फलिनी०' मन्त्रसे दसवें तथा 'भई कर्णीभि:०' मन्त्रसे स्थारहवें पिण्डपर अध्ये प्रदान करके उनका विसर्वन करे।

एकादशदैवल्य ब्राद्ध करके दूसरे दिन ब्राद्ध आरम्भ करे। उस दिन चारों बेदके ज्ञाता, विद्याशील और

सद्गुण-सम्पन्न, वर्णाश्रम-धर्मपालक, शीलवान, बेह, अविकल अङ्गोवाले प्रशस्त और कभी त्याच्य न होनेबोग्य उत्तप पाँच ब्राह्मणोंका आवाहन करे। तदनन्तर मुवर्णसे विष्णु ताम्रसे रुद्र, चाँदीसे ब्रह्मा, लोहेसे यम, सोसा अथवा कुशसे प्रेतको प्रतिमा बनवा करके 'सन्नोदेवी०' इस मन्त्रसे विष्णुदेवको पश्चिम दिशामें, 'अम्न आचाहि०' मन्त्रसे रुद्रको उत्तर दिशामें, 'अग्निमीळे' मन्त्रसे ब्रह्माको पूर्व दिशामें, 'इपेत्बोर्जेत्वा०' मन्त्रसे यमको दक्षिण दिशामें तथा मध्यमें मण्डल बनाकर कुशमय नर स्थापित करना चाहिये।

ब्रह्मा, विष्णु, स्द्र, यम और प्रेत-इन पाँचाँक लिये पञ्चरलयक कम्भ अलग-अलग रखे। इन सभी देवताओंक लिये पृथक पृथक रूपसे वस्त्र, यहोपयोत तथा मुद्रा प्रदान करे एवं पृथक-पृथक तत्तन्मन्त्रोंसे उनका जप करे। उसके बाद यथाविधि देवींके निमित्त पाँच बाद्ध करने चाहिये। तत्पक्षात् शङ्ख अथवा ताप्रयात्र या इनके अभावमें मिडीके पात्रमें सर्वोषधिसमन्वित तिलोदक लेकर पृथक-पृथक पाँउपर प्रदान करे। हे खगेश्वर! जासन, पाइका, छत्र, अँगुटी, कमण्डल, पात्र, भोजन-पदार्थ और वस्त्र- ये अवट पद याने गये हैं, इनके साथ ही स्वर्ण तथा दक्षिण्डसे युक्त एक तिलपुणे ताग्रपात्र विधिपुणंक मुख्य ब्राह्मणको दान देना चाहिये। ऋग्वेद-पारंगत बाह्यजको हरी-भरी फसलसे वृक्त भूमि, यजुर्वेद-निष्णात ब्राह्मणको दूध देनेवाली गाय, जियके उदेश्यसे सामवेदका गान करनेवाले ब्राह्मको स्वर्ण, यमके उद्देश्यमे तिल, लीह और दक्षिणा देनी चाहिये।

सर्वोपधिसे समन्वित कुशहारा निर्मित पुरुषाकृति पुतलकका निर्माण करके कृष्णाजिनको बिद्धाकर उसे स्थापित करे और पलाशका विभाग करके तीन सौ साठ चनोंसे पुनलककी हड्डियोंका निर्माण करे। यथा-शिरोधानमें चालीस वन्त ग्रीवामें दस, वश्व:स्थलमें श्रीस, उदरमें श्रीस, दोनों भूजाओंमें सी, कटिप्रदेशमें बीस, दोनों ऊरुऑमें सी, दोनों जंधाओंमें तीस. शिश्न-स्थानमें चार, दोनों अण्डकोक्रोंमें छ: और पैरको अंगुलियोंमें दस वृन्तोंसे उस कल्पित प्रेतपुरुषकी अस्थियोंका निर्माण करना चाहिये। तत्पश्चात् उसके शिरोभागपर नारियल, तालुप्रदेशमें लीकी, मुखमें पञ्चरत्न, जिह्वाधागमें स्थानपर भेदक नामक अर्क, मृत्रके स्थानपर गोमूत्र, धातुओंके स्थानमें गन्धक, हरिताल एवं मन:शिला तथा वीयंस्थानमें

पारद, पुरीष (मल)-के स्थानमें पीतल, सम्पूर्ण शरीरमें मन:जिल, संधिभागोंमें तिलकी पीठी, मांसभागमें यवका आटा. मधु और मोम, केशराशिके स्थानमें बरगदकी बरोह, त्ववाभागमें मृगवर्म, दोनों कर्णप्रदेशमें तालपत्र, दोनों स्तर्नोके स्थानमें गुंजाफल, नासिकाभागमें कमलपत्र, चभित्रदेशमें कमलपुष्य, दोनों अण्डकोशोंके स्थानमें बैगन, लिंगभागमें सुन्दर गाजर एवं नाभिमें घी भरे। कौपीनके स्थानपर त्रप्, दोनों स्तनोंमें मुखाफल, सिरमें कुंकुमका लेए, कर्पुर, अगुरु, धूप तथा सुगन्धित पुष्प-मालाओंका अलंकरण, परिधानके स्थानपर पटटसत्र और इदयभागमें रजत-पत्र रखे। उसकी दोनों भुजाओंमें ऋदि तथा वृद्धि इन दोनों सिद्धियोंको संकल्पित करके यजमान दोनों नेत्रोंमें एक-एक कोडी भरे। तदनन्तर नेत्रीके कोणभागमें सिन्दर भरकर उसको ताम्बुलादि विभिन्न उपहारोंसे सुशोभित करे। इस प्रकार नाना वस्तुओंसे निर्मित और अलंकृत उस

प्रेतको सर्वोद्योध प्रदान करके जैसा कहा गया है, उसीके अनुसार डसको पूजा करनी चाहिये। जो प्रेत अग्निहोत्र करनेवाला हो, उसको यथाविधि यद्वपात्र भी देना आवश्यक है। उसके बाद 'क्रिरोमे औo' तथा 'पुनन्त करणo'— इन मनोंसे अधिपन्त्रित जलके द्वारा शालग्राम शिलाको धोकर वजमान उसीसे प्रेतका पवित्रोकरण करे। तत्पक्षात भगवान विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये एक दूध देनेवाली सुलोल गौका दान किया जाय। तिल, लीह, स्वर्ण, रूई, नमक, सप्तधान्य, पृथ्वी और गौ एक-से-एक बढ़कर पुण्यदायक होते हैं। अतः गोदान करनेके बाद यजमान तिसपात्र-दान और पद-दान एवं महादान दे। उसके बाद सभी अलंकारोंसे विभूषित वैतरणी धेनुका दान करे।

प्रेतकी गुक्तिके लिये इस अवसरपर आत्मवानुको भगवान् विष्युके निमित्त बाद्ध करना चाहिये। तत्पक्षात् हदवमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके प्रेतमोक्षका कार्य करे। अत्तएव 'ॐ विष्णुरितिo'—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित उस प्रकल्पित प्रेत-पुतलेकी मृत्यु मानकर उसका दाह-संस्कार करे। तदनन्तर तीन दिन सुतक माने। दशाह कर्म करनेवाला यजमान इस बीच प्रेतमृक्तिके लिये पिण्डदान केला, औतोंके स्थानपर कमलनाल, प्राणभागमें बालू, वसाके और सभी वार्षिक क्रियाओंको सम्पन्न करता है तो प्रेत अपनी मुक्तिका अधिकार प्राप्त कर लेता है।

वृषोत्सर्गकी संक्षिप्त विधि

पूर्णमासी तिथिको पडनेवाले सूभ दिनपर विधिपूर्वक होम, प्रजापति होम, संसव (अवशिष्ट जल) प्राशन करे। वृषोत्सर्ग करना चाहिये। नान्दीमुख ब्राद्ध करके वत्सवरीके इसके बाद प्रणीतका परिमोक्षण करे। पवित्र-प्रतिपत्ति साथ वृषका विवाह और वृषके खरके पास ब्राह्म करनेके (परित्याग) करके ब्राह्मणको दक्षिणा दे। यहकू रुद्रसूक्तका पश्चात उन दोनोंका उत्सर्ग करे।

वापी और कृपके निर्माणोत्सर्गके समय गोजालामें विधिवत संस्कारके अनन्तर अग्निको स्थापना करनी चाहिये। विवाह-विधिके समान ब्रह्मा-वरण करना चाहिये। यजीव पात्रोंकी क्रमिक स्थापना, पायस-खोरका पाक, उपयमन कुशादिका क्रमश: स्थापन करे। यजीव पात्रींका सिंबन करनेके बाद होम करना चाहिये। प्रथम दो आहति आधार और उसके बाद दो आज्य-भाग संब्रक आहृतियाँ हैं। अतः 'प्रथमेऽहरिति०' मन्त्रसे यजमानको छ: आइतियाँ देनी चाहिये।

आधार और आज्य-धाग संज्ञक चार आहुतियोंक अनन्तर अङ्गदेवता, अग्नि, रह, शर्व, पसुपति, उग्न, तिब, भव, महादेव, ईशान और यमको आहुति दे। तत्पक्षातु 'पूचाचा०' इस मन्त्रसे एक पिष्टक होम, चरु तथा पायस दोनोंसे

श्रीविष्ण्ने कहा-हे खगेश्वर! कार्तिक आदि महीनोंकी स्विष्टकृत् होम करे। तदनन्तर प्रथम व्याहति होम, प्रायक्षित पाठ करनेसे प्रेतको मोक्षको प्राप्ति होती है।

एक रंगके वृष और एक वत्सतरीको स्नान कराकर सभी अलंकारोंसे विभूषित करके उन दोनोंको प्रतिष्ठापित करनेसे प्रेतको मोख प्राप्त होता है। इस कर्मके बाद वृपभकी पुँछसे गिरे हुए जलके द्वारा यन्त्रपूर्वक तर्पण-कार्य करना चाहिये। उसके बाद ब्राह्मणींको भोजनसे संतुष्ठ करके दक्षिणासे संतृष्ट करे।

तदनन्तर यथाविधि एकोटिष्ट बाद्ध करनेका विधान है। उसे करके प्रेतके उद्धार-हेत् ब्राह्मणको जल और अनका दान दिया जाता है। उसके बाद ह्यदताह ब्राद्ध और मासिक ब्राद्ध पृथक-पृथक करने चाहिये। इस विधिका सम्यक् पालन करनेवाला प्रेतको उस

योनिसे मुक्त कर देता है। (अध्याय ४१)

भूमि तथा गोचर्म भूमि आदि दानोंका माहात्म्य और ब्रह्मस्वहरणका दोष

श्रीविष्णुने कहा-हे गरूड! जिस प्रकार एक बल्स असत्यके समान पातक नहीं है-हजार गायोंके बीच स्थित अपनी माताको प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार पूर्वजन्ममें किया गया कर्म अपने कर्ताका अनुगमन करता है-

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सी विन्दति यातरम्। पूर्वकृतं कर्म कर्तारमन्गच्छति॥

वरुण, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु और भगवान् त्रिमुलधारी शिव गया है। जप-पूजन तथा होम करके दिये गये ये तीनों दान करते हैं। इस संसारमें भूमिके समान दान नहीं है। भूमिके नरकसे उद्घार करते हैं। बहुत-से पाप तथा कर कर्म करके

नारित भूमिसयं दानं नारित भूमिसमो निधि:। नामित सत्यसमो धर्मी नानुतात्पातकं परम्।।

(8513)

अग्निका प्रथम पुत्र सुवर्ण है, पृथ्वी वैष्णवी कहलाती है तथा गाय सुर्वकी पुत्री है। अत: जो व्यक्ति स्वर्ण, गौ (४२ (१) एवं पृथ्वीका दान देता है, उसने मानो त्रैलोक्यका दान कर भूमिदान करनेवाले प्राणीका अभिनन्दन सूर्य-चन्द्र, दिया। गी, पृथ्वी और विद्या इन तीनोंकी अतिदान कहा समान दूसरी निधि नहीं है। सत्यके समान धर्म नहीं है और भी मनुष्य गोचर्म' भूमिका दान करनेसे शुद्ध हो जाता है।

१-काम्य और नैमितिक दो प्रकारका क्षेत्रमां होता है। काम्यमें गणेशपुतन, नान्दीबाद आदि करके हो क्षेत्रमां किया जाता है। मरणाशीचके ग्यारहवें दिन किया जानेवाला वचीत्मर्ग नैमिकिक वचीत्मर्ग है। इसमें रान्दीख़द्ध नहीं किया जाता।

२-त्रीण्याहरतिदानानि गाव: पृथ्वी सरस्वती। नरकादुद्धरन्येते जरणुवनहोपत:॥ (४२।५)

३-गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्वयन्तितम्। तत्क्षेत्रं दशगुणितं गोष्यपेपरिकीर्वितम्॥ (पराशसमुति १२) ४३)

अर्थात् जितने स्थानपर एक हजार गीएँ और इस बैल स्वतन्त्ररूपसे पुथ-फिर सकते हैं, उतना भूमिभाग गोचमें कहलाता है।

इस दानमें दी हुई वस्तुको लोभवश हरण करनेवालेको भूमिका अपहरण करता है, वह साठ हजार वर्षतक विष्ठामें हरण करनेसे रोकना चाहिये। जो उसका परिरक्षण नहीं कृष्टि होकर जन्म लेता है। प्रेमसे जो ब्राह्मणका धन खाता करता है, वह घोर नस्कमें जाता है।

प्राण भले हो कण्डमें आ जावें तो भी निषद कर्म नहीं करना चाहिये, क्तंव्य कर्म ही करना चाहिये ऐसा धर्माचार्योने कहा है। किसीकी आजीविकाको नष्ट करनेपर हजार गौओंके वधके समान पाप लगता है तथा किसी जीविकारहितको आजीविका प्रदान करनेपर लक्ष धेनुके दानका फल प्राप्त होता है। गी-हत्यारे आदिसे एक गायको छहा लेना बेष्ट है, उसकी तलनामें सी गो-दान करना श्रेष्ठ नहीं है। सी गो-दान करना गी-हत्यारेसे एक गायको बचा लेनेकी समता नहीं कर सकता।' जो व्यक्ति स्वयं दान देकर स्वयं हो उसमें बाधक बन जाता है, वह प्रलयकालतक नरकका भीग करता है।

जीविकारहित निर्धन ब्राह्मणको रक्षा करनेपर जैसा पुण्य मनुष्यको प्राप्त होता है, वैसा पुण्य विधियत् दक्षिणासहित अश्वमेथ-यज करनेपर भी सम्भव नहीं है। दुर्वल, जस्त बाहाणकी रक्षा करनेमें जो पुण्य है, वह वेदाध्ययन और प्रबुर दक्षिणासे युक्त यज्ञ करनेपर नहीं है। बलात् अपहरण किये गये बाह्यणोंके धनसे फले-पोसे तथा समृद्ध बनाये गये वाहन और सैन्य शक्तियाँ युद्धकालमें वैसे ही नष्ट हो जाती हैं जैसे बालुके द्वारा बनाये गये पूल विनष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति स्वयं अथवा दूसरेके हारा दी हुई

है, वह अपने कुलको सात पीडोंको भस्म कर देता है। उसी ब्रह्मस्वका उपयोग यदि चोरी करके किया जाय तो जयतक चन्द्रमा और तारागणोंको स्थिति रहती है, तबतक उसकी कल-परम्परा भरम हो जाती है। पुरुष कदाचित लोहे और पत्थरके चूर्णको खाकर पचा सके, किंतु तीनों लोकमें कौन ऐसा व्यक्ति है जो ब्राह्मणके धनको पचानेमें समर्थ हो सकेगा?

देव-द्रव्यका विनाश करनेसे, ब्राह्मणके धनका हरण करनेसे और उसकी मर्यादाका उल्लंघन करनेसे प्राणियोंके कुल निर्मुल हो जाते हैं। यदि बाह्यण विद्यासे विवर्जित है तो आचार्यत्वादिके लिये वरण करनेके सन्दर्भमें उसका परित्याग करना ब्राह्मणातिक्रमण नहीं है। जलती हुई आगको छोडकर राखमें हवन नहीं किया जाता है।

संक्रान्तिकालमें जो दान और हव्य-कव्य दिये जाते हैं. वह सब सात कल्पॉतक बार-बार सूर्य दानदाताको प्रदान करता है। प्रतिग्रह, अध्यापन और यज्ञ करवानेके कार्योंमें बिद्धान् प्रतिग्रहको हो अपना अभीष्टतम कहते हैं। प्रतिग्रहसे जप-होम और कर्म शुद्ध होते हैं, याजन-कर्मको बेद पवित्र नहीं करते। निरन्तर जप एवं होम करनेवाला तथा इसके द्वार बनावे गये भोजनको न करनेवाला ब्राह्मण रहाँसे परिव्यात पृथ्वीका प्रतिग्रह करके भी प्रतिग्रहके दोषसे निर्तिष्ठ रहता है। (अध्याय ४२)

マークの対けはなってい

शृद्धि-विधान

श्रीविष्णुने कहा-जो जल, अग्नि तथा अन्य किसी है और न कोई प्रायक्षितका विधान ही है। बन्धनके भयसे धर्मपथसे विचलित हो गये हैं और जो यदि रजीदर्शन होनेपर स्वी रोगग्रस्त हो जाय तो यह संन्यास-धर्मका परित्याग करके पठित हो चुके हैं, वे गीं चौथे दिन वस्त्रादिका परित्याग करके स्नानसे शुद्ध हो और वृषभका दान देकर दो चान्द्रायणवतसे मुद्धि प्राप्त करते. सकती है। आतुरकालमें जननाशीचप्रयुक्त स्नान होनेपर हैं। बारह वर्षसे कम और चार वर्षसे अधिक आयुके कोई जो रुग्ण न हो ऐसा व्यक्ति दस बार बालकके पापका प्रायक्षित माता-पिता अथवा अन्य बान्धवको स्नान करके प्रत्येक स्नानके बाद यदि उस आतुर करना चाहिये। चार वर्षसे कम आयुवाले बालकका न कोई व्यक्तिका स्पर्श करता जाय तो वह आतुर शुद्ध हो जाता अपराध है और न कोई पाप। उसके लिये न तो राजदण्ड है। (अध्याय ४३)

१-वरमेकाप्यपहता न तु दर्श गर्या शतम्। एकां हत्वा तर्त दत्वा न तैन समता भवेतृत (४२।१०)

२-सदा जापी सदा होभी परपाकविवर्जित:। रत्नपूर्णानीर महीं प्रतिगृह्यक्र तिप्यते॥ (४२। २२)

दुर्मृत्यु तथा अकालमृत्युपर किये जानेवाले श्राद्धादि कर्म और सर्पदंशसे मृत्युपर विहित क्रिया-विधान

नहीं करना चाहिये। बाद मीलह बताये गये हैं, उनको भी ब्राह्मण ऐसा पाणकर्म करता है तो घरवाले मरनेपर उसकी जो जीविकायुरि है, उसको जलमें फेंक दें और उसके परको अग्निको चौराहेपर ले जाका बाल दें तथा उसके पात्रीको अग्निमें जला दें।

हे काश्यप! पूर्वोक परियोंको मृत्युका एक वर्ष पूर्व हो जाय तो दयावान् परिकरीको मुक्तपक्षको एकादशी तिथिको गन्ध-अक्षत-पृष्यदिसे विष्णु और यमकी पुत्रा करके कुत्रोंके कपर मधुपुक्त और पुत्रमितित दस पिण्ड देना चाहिये।

करते हुए दक्षिणाभिमुख होकर पूर्वोच्ड दस पिण्ड प्रदान करे। उन पिण्डॉको उठाकर और एकमें मिलाकर तीर्थक जलमें डालते हुए मृतकके नाम और गोत्रका उच्छारण करना चाहिये।

इसके बाद पुष्प, चन्दन, भूप, डोप, नैवेद्ध तथा भक्ष्य-भीज्य पदार्थीसे विष्णु और यमको पुनः पूजा करे। उस दिन चले जार्येंगे। इसके बाद वे सर्पण्डीकरण आदिको उपवास रहकर कुरत, विद्या, तथ और शीलमें सम्पन्न क्रियाओंको करतेपर उसे प्राप्त करते हैं। यथासामध्यें नी अथवा पाँच साथु ब्राह्मजीको निमन्त्रित हरे ! उसके दूसरे दिन मध्याह कालमें पूर्वीदनके समान पुन: अधमृत्यु हो जाती है तो उसके पुत्र या संगे-सम्बन्धीको विष्णु एवं यमकी पूजा करके उत्तराधिमुख उन ब्राह्मणोंकी यथाविधि सभी औध्वंदैहिक कर्म करने आवश्यक हैं।

श्रीविष्णुने कहा—हे तक्ष्ये! विनको मृत्यु स्वेष्याने आसनगर बैटाये। उसके बाद यहोपयोती कर्ता आवाहन, आत्मधातके द्वारा होती है, जो सौंग और टॉलवाले पर्यु अर्ध्य तथा दानादिमें विष्णु और यससे समन्वित प्रेतके सरकनेवाले जीव, वाण्डालादि निम्न जातीय पुरुष, आल्पचल- नामका कोतंन करे तथा प्रेत, यम और विष्णुका स्मरण विषादि अहितकर पेय पदार्थ, आबात-प्रतिकात, जल- करते हुए ब्राइ सम्पन्न करे। उस अवसरपर पिण्डदानके अग्निपात और बापु तथा निराहारादिके द्वारा जिनको मृत्यु लिये अन्य देशोंका भी आज्ञाहन करना चाहिये। उसके बाद होती है. उन्हें पापकमं करनेवाला कहा गया है। जो उन्हें क्रमहा: दस अधक पाँच पृथक्-पृथक् पिण्ड दे। पाखण्डी, वर्णाश्रमधर्मसे रहित, महापातको तथा व्यध्नियारियो यथा—पहला पिण्ड विष्युदेव, दूसरा पिण्ड ब्रह्मा, तीसरा निवर्षों और आरूदपतित (संन्यासान्नममें जाकर पतित पिण्ड जिल, चौथा पिण्ड भूत्यसहित शिव और पौचर्यो होनेकाले) हैं, उनका दाहसंस्कार, नव बाद्ध एवं सपिण्डन पिण्ड प्रेतके लिये देव है। प्रेतके नाम एवं गोत्रका स्मरण तथा विष्णु तब्दका उच्चारण करना चाहिये। पिण्डदान ऐसे पापियोंके लिये न करे। यदि अग्निहोत्र करनेवाला होनेके बाद सिंह झुकाकर नयस्कार करते हुए पौचर्षे पिण्डको कुशोपर स्थापित करे। तदननार यथासिक गी-भूमि और पिण्डदानादिके द्वारा उस प्रेतका स्मरण करते हुए कुल तथा विलंशे युक्त उन बाह्यपीके कुलपुक हाथींमें विल-दान दे।

> इसके बाद ब्राह्मणींको अञ्च, ताम्बूल और दक्षिणा देकर वेहतम ब्राह्मणकी स्वर्णदानमें पूढा करे। यह दान नाम-गोंडका स्परण करते हुए 'किया प्रसन हो', ऐसा कहकर

तदननार ब्राह्मणीका अनुगमन करके यजमान मीन होकर तिलके सहित विष्णु और यमका ध्यान दक्षिणाधिमुख होकर प्रेतके नाम-नोडका कीर्तन करते हुए 'प्रीतोऽस्तु' ऐसा करूकर भूमिपर जल गिरा दे। तत्पक्षात् मित्र एवं बन्धु-बान्धवंकि साथ ब्राद्धके अवस्थि भीजनको संयत वाक् होकर ग्रहण करे।

> तदनना प्रतिवर्ष सांबत्सर बाद एकोट्टि विधानसे करना चाहिये। इस प्रकारको क्रिया करनेसे पापीजन स्वर्ग

र्वाद प्रमादवश किमी मनुष्यको जल आदिमें हुवकर

१-स्वेष्क्रयः तस्यं मरणं भृद्विदेष्ट्रिमरीम्पैः। बान्यानावालयानेशः विश्ववैभावनेसम्बन्धः असरिक्यतकोश निरामरादिक्तिका। वैकारेत भवेन्त्युः प्रोकाले चारवर्षिणः॥(४८।१-२)

कदापि नहीं जाना चाहिये। (ऐसी स्थितिमें सर्प-दंशसे मृत्यु सुवर्णकी बनी हुई नाग-प्रतिमाका दान दे। तदनन्तर उसे होनेपर) प्रतिमास दोनों पक्षोंकी पञ्चमी तिथिको नागदेवताकी - गौका दान देकर पन: 'नागराज प्रीयताम्'-हे नागराज! आप पूजा करे। भूमिपर शालिचूर्णसे नागदेवकी आकृति बनावे। अब मेरै ऊपर प्रसन्न हों— ऐसा कहे। इसके बाद सामर्थ्यानुसार श्रेत पृष्प, सगंध, धूप, दीप और सफेद अश्रवसे उसकी पूर्ववत उन कर्मीको भी निर्देशानुसार करे। पुजा करके कच्चा पीसा हुआ अन्न तथा दूध अर्पित करे। उसके बाद उठकर द्रव्य और वस्त्र छोडते हुए 'नागराज प्रसन्न हों '- ऐसा कहे।

उस दिन ब्राद्ध सम्यत्र करनेके पश्चात् मधुर अलका

प्रमादवश अथवा इच्छापूर्वक भी प्राणीको सर्पके सामने भोजन करे। यथाशक्ति वह उस दिन श्रेष्ठ ब्राह्मणको

जो मनुष्य अपनी वैदिक शाखाकी विधिके द्वारा ऐसे कर्मको चथावत् करता है, वह उन अपमृत्यु-प्राप्त प्राणियोंको प्रेतत्वसे विमुक्त करके स्वर्गलोकको ले जाता है।

(अध्याय ४४)

पार्वण आदि श्राद्धोंके अधिकारी; एकसे अधिककी मृत्युपर पिण्डदान आदिकी व्यवस्था; मृत्युतिथि-मासके अज्ञात होनेपर तथा प्रवासकालमें मृत्यु होनेपर श्राद्ध आदिकी व्यवस्था; नित्य एवं दैव तथा वृद्धि आदि श्राद्धोंकी कर्तव्यताका प्रतिपादन

होनेवाले पार्वण ब्राद्धका वर्णन तुमसे कर रहा है। मृत व्यक्तिके औरस और क्षेत्रज पुत्रको प्रतिवर्ष पार्वण बाद करना चाहिये। औरस एवं क्षेत्रज पुत्रोंके अतिरिक्त अन्यको एकोरिष्ट-विधिसे ब्राद्ध करना चाहिये, पार्वण ब्राद्ध नहीं।

अग्निहोत्र न करनेवाले मृत ब्राह्मणके क्षेत्रन तथा औरस दोनों पुत्र यदि अग्निहोत्री नहीं हैं तो उन्हें एकोहिष्ट ब्राद्ध नहीं करना चाहिये। प्रतिवर्ष पार्वण ब्राद्ध करना चाहिये। यदि पुत्र अथवा पितामेंसे कोई एक सान्तिक हो तो प्रतिवर्ष क्षेत्रज और औरसको पार्वण ब्राद्ध करना चाहिये। किंतु कुछ लोगोंका कहना है कि पुत्र अग्निहोशी हों या न हों, पितृगण भी अग्निहोत्री रहे हों या न रहे हों, फिर भी एकोटिए ब्राद्ध पुत्रोंको अपने पिताको मृत्यु-तिविपर करना चाहिये। जिसकी मृत्यु दर्शकाल अथवा प्रेतपक्षमें होती है, उसके सभी पुत्र प्रतिवर्ष पार्वण क्राद्ध करें।

एकोरिष्ट बाद्ध पुत्रहीन पुरुष और स्त्रीका भी ही सकता है। एकोरिष्ट यजकर्ममें समूल कुशका प्रयोग करना चाहिये। बाहरसे कटे हुए अथवा एक बार काटे गये कुछ ही ब्राइमें विद्वायक होते हैं। यदि किये जानेवाले पार्वण ब्राह्मके

श्रीविष्णाने कहा-हे खांचर। अब मैं प्रतिवर्ष विधिपर वही एकोहिष्ट बाद्ध किया जा सकता है। सुद्र तथा उसकी पत्नी और उसके पुत्रका बाद मीन अर्थात् मन्त्रोच्चार-रहित होना चाहिये। इसी प्रकार ब्राह्मण, श्रिय तन्त्र वैश्य-इन तीनों द्विजातियोंकी कन्या और यज्ञोपवीत-संस्कारसे हीन ब्राह्मणका भी बाद्ध तुष्णी (मौन) होकर ही करना धर्म-विहित है। एक ही समयमें एक ही घरके बहुत-से लोगोंकी अधवा दो व्यक्तियोंकी मृत्य हो गयी हो तो उनके ब्राह्मका पाक एक साथ और ब्राह्म पृथक-पृथक करना नाहिये। साथमें मरनेपर विधि इस प्रकार है-पहले पूर्वमृतको, तदनन्तर द्वितीय और तृतीयको क्रमश: पिण्डदान करना चाहिये।

जो आलस्यरहित होकर इस विधानके अनुसार अपने माता-चिताका प्रत्येक वर्ष ब्राद्ध करता है, वह उनका उद्धार करके स्वयं भी परम गतिको प्राप्त करता है। यदि किसी प्राणीको मृत्यु और प्रस्थान-कालका दिन स्मरण नहीं है. किंत वह मास जात है तो उसी मासकी अमावास्या- तिथिमें उस मतकको मृत्य-तिथि माननी चाहिये। यदि किसीकी मृत्युका मास जात नहीं है, किंतु दिनकी जानकारी है तो मार्गजीर्ष (अगहन) अथवा माषमासमें उसी दिन उसका बीच अशीच हो जाता है तो यजमान उस अशीचके समाप्त आद किया जा सकता है। जब अपने सम्बन्धीकी मृत्युका होनेके बाद ब्राद्ध करे। एकोटिष्ट ब्राद्धका काल आ जानेपर दिन एवं मास दोनों अज्ञात हों तो ब्राद्ध-कर्मके लिये यदि किसी प्रकारका विघन आ जाता है तो दूसरे मास उसी वाजाके दिन और मास ग्रहण करने चाहिये। जब मृतकके प्रस्थानका भी दिन और मास न जात हो तो जिस दिन एवं मासमें मृत्युकी बात सुनी गयी हो, उसे ही ब्राद्धके लिये उपयुक्त मान ले। बिना प्रवासके भी मृत्यु होनेपर दिन ववा मास दोनों बिस्मृत हो गया हो तो पूर्ववत् मृत-तिथिका निर्णय करना चाहिये।

यदि कोई गृहस्थ प्रवासमें है और उसके प्रवासके ही दिनोंमें उसके घरमें किसीकी मृत्यु हुई हो तथा मृत्युके बाद अशीचके दिन बीत चुके हों और अशीचके अन्तर जो एकादशाह-द्वादशाह आदि ब्राद्ध विहित हैं वे चल रहे हों, इसी बीच प्रवासमें रहनेवाला वह गृहस्य घर आ जाता हो और आनेके बाद ही मृत्युकी जानकारी उसे मिलती हो तो केवल वह गृहस्य ही अशौचमे ग्रस्त होना और तत्काल यथाशास्त्र अपनी अशौचकी निवृत्तिके लिये अपेक्षित विधि अपनायेगा। उसके द्रव्यादिपर अजीच नहीं होगा। उसके घर आनेमात्रसे उसकी अशुचिताका प्रभाव बाद्धके उपयोगमें आनेवाली वस्तुऑपर नहीं पढेगा। इसके अतिरिक्त यह भी जातच्य है कि यदि बादका मुख्य अधिकारी सुद्र देशमें है और उसके घर आकर यथाधिकार बाद करनेकी सम्भावना नहीं बनती है, ऐसी स्थितिमें अन्य अधिकारी पुत्रादिद्वारा यदि श्राद्धकर्म प्रारम्भ कर दिया गया है तो उसे भी ब्राह्मप्रक्रिया पूर्ण करनी चाहिये। दाता और भीका दोनोंको जननाशीच अथवा मरणाशीच जात न हो तो उन दोनोंमें किसीको भी दोष नहीं लगता। जननाशीय और परणाशीयका जान भोकाको हो जाय और दाताको न हो तो उस समय भोकाको हो पाप लगता है, उसमें वह दाता दोषी नहीं होगा।

जिस मृत व्यक्तिकी तिथि जात नहीं है, उसकी मृत-तिधिका निर्धारण पूर्वीक प्रकारमे करके जो ब्राह्मदि काता है, वह मत व्यक्तिको तार देता है।

man State State on the

सत्कर्मकी महिमा तथा कर्मविपाकका फल

प्रकारके भोग तथा सुख एवं रूप, बल-बुद्धि एवं पराक्रम हो विजय होती है, कोधकी नहीं। विष्णु हो विजय प्राप्त पुण्यके प्रभावसे प्राप्त होते हैं। पूर्वोक्त प्रकारके लौकिक एवं पारलीकिक भीग पुण्यवान् व्यक्तियोंको उनके पुण्यसे ही प्राप्त होते हैं, अन्यथा नहीं—ये वेदवाक्य सर्वधा सत्य हैं।

जिस प्रकार धर्मकी ही विजय होती है, अधर्मकी

नित्य-ब्राह्ममें निमन्त्रित ब्राह्मणोंको सभी पितरोंके साथ भक्तिपूर्वक अर्घ्य, पाद्य तथा गन्धादिके द्वारा पूजा करके पितरोंके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको यथाविधि भोजन कराना चाहिये। आबाहन, स्वधाकार, पिण्डदान, आनौकरण, ब्रह्मचयाँदि नियम और विश्वेदेवकृत्य-ये कर्म नित्य-श्राद्धमें त्याज्य हैं। इस बादमें ब्राह्मपोंको भोजन करानेके बाद उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देकर प्रणाम निवेदन करते हुए बिदा करे।

विश्वेदेव आदिके उद्देश्यसे ब्राह्मजॉको नित्य-श्राद्धको भौति जो भोजन कराया जाता है, यह 'देवश्राद्ध' कहा जाता है। यदि अग्रिम दिन कोई शुभ कार्य-विवाह अथवा यडोपयोत आदि करने हैं तो उसके पूर्व-दिन मातुश्राद्ध और पित्रबाद एवं मातामहबाद (बाद्धत्रम्) करने चाहिये। इन तीनों ब्राद्रोंके लिये अपेक्षित विश्वेदेव-कार्य एक ही बार

करना चाहिये। अर्थात् तीनां ब्राद्धोंक लिये तीन बार विधेदेव कार्य नहीं करने चाहिये। पहले मातुपितामही तथा प्रियत्तमहोके लिये, तदननार पितृपितामह और प्रिपतामहके लिये, तत्पद्याव मातामहादिक लिये क्रमशः आसनादिके दानको क्रिया सम्बन्न करनी चाहिये। यदि मातुबाद्धमें ब्रह्मजॉका अध्यव हो हो ब्रेप्ट परिवारमें उत्पन्न हुई पति-पुत्रसे सम्पन्न सीधान्यकती जाउ साध्वी स्त्रियोंको ही निमन्त्रित किया जा सकता है।

इष्ट और आपूर्व-कृत्योंमें आध्युदयिक श्राद्ध करना चाहिये। उत्पात आदिकी शानिके लिये नित्य-श्रादके समान नैमितिक श्राद्ध करनेका विधान है।

हे ताध्यं। जैसा मैंने कहा है, उसी प्रकारसे नित्यश्राद्ध, दैवजाड.. वृद्धिबाद, काम्यबाद, तथा नैमितिक बाद्ध-इन चौंचों जादोंको करता हुआ मनुष्य अपने समस्त अभीष्टोंको प्राप्त करता है। इस तरह मैंने सब बता दिया, अब तुम मुझसे और क्या पुछ रहे हो? (अध्याय ४५)

ताक्ष्येने कहा—हे सुरश्रेष्ठ । मनुष्योंको स्वर्ग और नाना नहीं । सत्यको हो विजय होती है, असत्यकी नहीं । क्षमाकी करते हैं असूर नहीं-

धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्। क्षमा जयति न कोधो विष्णुजंबति नास्रः॥

(8513)

सुकृतसे ही कल्याण होता है। जिसका पुण्य जितना उत्क्रष्टतम है, वह पनुष्य भी उतना ही श्रेष्ठतम है। जिस प्रकार पापी जन्म लेते हैं, जिस कर्मफलके अनुसार जीव जिस भोगका भागी होता है, वह जिन-जिन बोनियोंको जिस रूपमें प्राप्त करता है, जैसा उसका रूप होता है वह सब मैं सुनना चाहता हैं। हे देख! संक्षेपमें आप मेरी इस इच्छित बातको बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा-हे कश्चपपुत्र गरुड! जुभाजुभ फलोंके भोगके अनन्तर जिन लक्षणींसे युक्त होकर मनुष्य इस लोकमें उत्पन्न होते हैं, उनको तुम मुझसे सुनी।

हे पश्चित्रप्ता इस लोकमें आत्पज्ञानियोंका शासक गुरु है। दुरात्माओंका शासक राजा है और पुरुक्तपसे पाप करनेवाले प्राणियोंका शासक सूर्य-पुत्र यम है-

> गुरुरात्मवर्ता शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनान्। इह प्रचडनपापानां ज्ञास्ता वैवस्वतो वयः॥

> > (8110)

अपने पापोंका प्रावश्चित न किये जानेपर उन्हें अनेक प्रकारके नरक प्राप्त होते हैं। वहाँकी यातनाओंसे विमुख होकर प्राणी मर्त्यलोकमें जन्म लेते हैं। मानवयोगिमें जन्म लेकर वे अपने पूर्व-पापंकि जिन सिडोंसे युक्त रहते हैं. मैं उन लक्षणोंको तुम्हें बताऊँगा।

सभी पापी यमराजके घर पहुँचकर नाना प्रकारके कष्ट सहन करते हैं। जब उन पातनाओं से उन्हें नृक्ति प्राप्त होती है तो उनके पापोंका भाषी हरोरपर चिहाङून होता है। उन्हीं चिड़ोंसे संयुक्त होकर थे पुन: इस पृथ्वीलोकमें जन्म ग्रहण करते हैं। यथा-असत्यवादी हकलाकर बोलनेवाला, गायके विषयमें झुठ बोलनेवाला गुँगा, ब्रह्महन्ता कोडो, मद्यपी काले रंगके दतिविवाला, स्वर्णचोर कृतिसल एवं विकृत नखोंवाला और गुरुपबोगामी चर्मरोगी होता है तथा पापियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला निप्नयोनिमें जन्म लेता है और दान न देनेवाला दरिंद्र, अयाज्यका यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण ग्रामसुकर, बहुतोंका यज्ञ करानेवाला गथा और अमन्त्रक भोजन करनेवाला कौआ होता है।

बिना परीक्षण किये हुए भोजनको ग्रहण करनेवाले निर्जन बनमें व्याघ्र होते हैं। अन्य प्राणियोंको बहुत तर्जना देनेवाले पापी बिलार, कश्वको जलानेवाला जगन, पात्रको

 उसी प्रकार मैंने सत्य-रूपसे यह जाना है कि विद्या न देनेवाला बैल, ब्राह्मणको बासी अत्र देनेवाला कृता, दूसरेसे ईंघ्यां और पुस्तककी चोरी करनेवाला जात्यन्थ और जन्मान्थ होता है।

> फलोंको चौरी करनेसे मनुष्यके संवानको मृत्यु हो जाती है, इसमें संदेह नहीं है। वह मरनेके बाद बंदरकी योनिमें जाता है। तदनन्तर उसीके समान मुख प्राप्त कर पुन: मानवयोनिमें उत्पन्न होता है और गण्डमालाके रोगसे ग्रस्त रहता है। जो बिना दिये स्वयं खा लेता है, वह संतानहीन होता है। वस्त्रकी चोरी करनेवाला गोह, विष देनेवाला वावुभक्षी सर्प, संन्यास-मार्गका परित्याग करके पुन: अपने पूर्व आडममें प्रविष्ट हो जानेवाला मरुस्थलका पिशाच होता है। जलायहर्ता पापीको चातक, धान्यके अपहरणकर्ताको मुषक और युवायस्थाको न प्राप्त हुई कन्याका संसर्ग कानेवालेको सर्पकी योनि प्राप्त होतो है।

गुरुपतीगामी निश्चित ही गिरगिट होता है। जो व्यक्ति जलप्रपातके स्थानको तोडकर नष्ट करता है, वह मलय होता है। न बेचने योग्य वस्तुको जो खरीदता है, वह यगुला तवा गिद्ध होता है। अयोगिन व्यक्ति भेड़िया और खरीदी जा रही वस्तुमें इस करनेवाल। उलुककी योनि प्राप्त करता है। जो मृतकके एकादशाहमें भीजन करनेवाला होता है तथा प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणोंको थन नहीं देता, यह सियार होता है। रानीके साथ सम्भोग करके मनुष्य देष्टी होता है। चोरों करनेवाला ग्रामसकर, फलविकेता श्यामलता होता है। व्यक्तीके साथ गमन करनेवाला व्य होता है। जो पुरुष पैरोंसे अग्निका स्पर्श करता है वह बिलौटा, दूसरेका मांस भक्षण करनेवाला रोगी, रजस्वला स्त्रीसे गमन करनेवाला नपुंसक, सुगन्धित वस्तुओंको चोरी करनेवाला दुर्गन्धदायक ज़ाजी होता है। दूसरेका धोड़ा या बहुत जिस-किसी भी प्रकारमें जो कुछ भी मनुष्य अपहरण करता है, वह उस पापसे निश्चित ही तियंक् योनिमें जाता है।

हे खगेन्द्र! ऐसे तो पहलेवाले चिह्न हैं ही, किंतु इनके अतिरिक्त भी अन्य बहुत-से बिह्न हैं, जो अपने-अपने कमानुसार प्राणियोंके शरीरमें व्याप्त रहते हैं। ऐसा पापी क्रमण: नाना प्रकारके नरकोंका भोग करके अवशिष्ट कर्मफलके अनुसार इन पूर्वकथित योनियोंमें जन्म लेता है। हे काश्यप! उसके बाद मृत्यु होनेपर जबतक शुभ और अश्रभ कर्म समाप्त नहीं हो जाते हैं. तबतक सभी योनियोंमें

हे तार्थ्य। मैंने जैसा तुमसे पहले कहा है, बैसा ही वहींसे जीवका उद्धार नहीं होता है। (अध्याय ४६)

सैकडों बार उसका जन्म होता है; इसमें मंदेह नहीं है। जब जीवका लक्षण है। बार प्रकारके प्राणिसमुहमें इसी प्रकारके स्त्री तथा परुषके संयोगसे गर्भमें शुक्र और शोणित परिवर्तनका चक्र पुमता रहता है। उसीमें शरीरधारियोंका जाता है तो उसीमें पञ्चभूतोंसे समन्वित होकर यह पाञ्च- उद्भव और विनात होता है। यथाविष्ठित अपने धर्मका पालन भौतिक शरीर जन्म लेता है। तदननार उसमें इन्द्रियाँ, मन, करनेसे प्राणियोंको ऊर्ध्वगति तथा अधर्मकी ओर बढनेसे प्राप, ज्ञान, आयु, सुख, पैर्य, धारणा, प्रेरणा, दु:ख, मिथ्याहंकार, अधोगति प्राप्त होती है। अत: सभी वर्णीको सद्रति अपने यत, आकृति, वर्ण, राग-देश और उत्पत्ति-विनाल-ये सब धर्मपर चलनेसे ही होती है। है वैनतेय? देव और मानवयोनिमें उस अनादि आत्माको सादि मानकर पाञ्चभौतिक शरीरकं जो दान तथा भोगादिको क्रियाएँ दिखायो देती हैं, वे सब साथ उत्पन्न होते हैं। उसी समयसे वह पाछभौतिक तरीर कर्मबन्य फल हैं। घोर अकर्मसे और काम-क्रोधके द्वारा पूर्वकर्मीसे आबद्ध होकर गर्भमें बढ़ने लगता है। ऑबत जो अशुभ पापाचार हैं, उनसे नरक प्राप्त होता है तथा

month the there

यममार्गमें स्थित वैतरणी नदीका वर्णन, पापकर्मींसे घोर वैतरणीमें निवास, वैतरणीसे पार होनेके लिये वैतरणी धेनुदान, भगवान् विष्णु, गङ्गा तथा ब्राह्मणकी महिमा

गरुडने कहा-हे देवदेवेश। महाप्रभी। अब आप है, वे उसीमें हुबते रहते हैं। परम कृपा करके दान, दानके माहात्म्य और वैतरणीकं जो मृत मेरी, आवार्य, गुरु, माता-पिता एवं अन्य प्रमाणका वर्णन करें।

परिव्याप्त एवं तटपर आये हुए पाधियोंको देखकर उन्हें नाना प्रकारसे भयाकाना करनेवाले स्वरूपको धारण कर लेवी है। पात्रके मध्यमें घोको भौति वैतरणीका जल तुरंत खाँलने लगता है। उसका जल कीटाफओं एवं बड़के समान सुँडवाले जीवॉसे व्याप्त है। सूँस, चड्रियाल, कडदन्त तथा अन्यान्य हिंसक एवं मांसभक्षक जलवराँसे वह महानदी भरी हुई है। प्रलयके अनामें जैसे बारहों सूर्य उदित होकर विनाजलीला करते हैं. वैसे ही वे वहाँपर भी सदेव उपते रहते हैं. जिससे उस महातापमें वे पापी चिल्लाते हुए करूज विलाप करते हैं। उनके मुखसे बार-बार हा धात, हा तात. यही जब्द निकलता है। वे जीव उस महाभयंकर भूपमें इधर-उधर भागते हैं, उस दर्गन्थपूर्ण जलमें दुवकी लगाते हैं और अपनी आत्मग्लानिसे व्यथित होते हैं। वह महानदी चारों प्रकारके प्राणियोंसे भरी हुई दिखायी देती है। पृथ्वीपर जिन लोगोंने गोदान किया है, उस दानके प्रभावसे वे उसे

वद्धवनीको अवस्थानक करते हैं, मरनेके बाद उनका वास श्रीकष्णने कहा—हे सार्व्यं। यमलोकके मार्गमें जो उसी महानदीमें होता है। जो मृद अपनी विवाहिता वैतरणी नामकी महानदी है, वह अगाथ, दुस्तर और पाँठवता, सुशांखा और धर्मपरायण पत्नीका परित्याग करते देखनेमात्रसे पापियोंको महाभयभीत करनेवाली है। वह है, उनका सर्देवके लिये उसी महाधिनीनी नदीके जलमें पीब और रक्तरूपी जलसे परिपूर्ण है। मांसके जीवडसे जास होता है। विश्वासमें आये हुए स्वामी, मित्र, तपस्त्री, स्त्रों, बालक एवं वृद्धका वध करके जो पापी उस महानदीमें गिरते हैं, वे उसके बीचमें जाकर करुण विलाप करते हुए अत्यन्त कष्ट भोगते हैं। शान्त तथा भूखे ब्राह्मणको विष्न पहुँचानेके लिये जो उसके पास जाता है, वहाँ प्रलयपर्यन्त कृषि उसका भक्षण करते हैं। जो ब्राह्मणको प्रतिज्ञा करके प्रतिज्ञात वस्तु नहीं देता है अथवा बलाकर जो 'नहीं है'-ऐसा कहता है, उसका यहाँ वैकाणोमें जास होता है। आग लगानेवाला, विष देनेवाला, झठी गवाही देनेवाला. मद्य पीनेवाला, यज्ञका विध्वंस करनेवाला, राजपतीके साथ गमन करनेवाला, चुगलखोरी करनेवाला. कथामें विधन करनेवाला, स्वयं दी हुई वस्तुका अपहरण करनेवाला, खेत (मेड) और सेतुको तोड़नेवाला, इसरेको पत्रोको प्रधर्षित करनेवाला, रस-विक्रेता तथा वक्तीपित ब्राह्मण, प्यासी गायोंकी बावलीको तोडनेवाला, कन्यके माथ व्यभिचार करनेवाला, दान देकर पक्षाताप पार कर जाते हैं अन्यथा जिनके द्वारा यह दान नहीं हुआ करनेवाला, कपिलाका दूध पीनेवाला शुद्र तथा मांसभोजी

ब्राह्मण— ये निरन्तर उस वैतरणी नदीमें बास करते हैं।
कृपण, नास्तिक और क्षुद्र प्राणी उसमें निवास करते हैं।
निरन्तर असहनशील तथा क्रोध करनेवाला, अपनी बातको
ही प्रमाण माननेवाला, दूसरेकी बातको खण्डित करनेवाला
नित्य वैतरणीमें निवास करता है। अहंकारी, पापी तथा
अपनी झूठी प्रशंसा करनेवाला, कृतप्न, गर्भपात करनेवाला
वैतरणीमें निवास करता है। कदाचित् भाग्ययोगसे यदि उस
नदीको पार करनेकी इच्छा उत्पन्न हो जाय तो तारनेका
उपाय सनो।

मकर और कर्ककों संक्रान्तिका पुण्यकाल, व्यतीपात योग, दिनोदय, सूर्य, चन्द्रग्रहण, संक्रान्ति, अमाजास्या अथवा अन्य पुण्यकालके आनेपर ब्रेष्ट्रतम दान दिवा जाता है। मनमें दान देनेकी बद्धा अब कभी उत्पन्न हो जाय, वहीं दानका काल हैं: क्योंकि सम्पत्ति अस्यिर है।

सरीर अनित्य है और धन भी सदा रहनेजाला नहीं है। मृत्यु सदा समीप है, इसलिये धर्म-संग्रह करना चाहिये— अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्चतः॥ नित्यं संनिहितों मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः।

(X312X-54)

काली अथवा लाल रंगकी तृभ लक्षणींवाली वैतरणी गायको सोनेकी सींग, चाँदीके खुर, कोल्यपात्रकी दोहनीसे युक्त दो काले रंगके वस्त्रीसे आच्छादित करके सक्षणन्य-समन्वित करके ब्राह्मणको निवेदित करे। कपाससे बने हुए होणाचलके शिखरपर ताम्रपात्रमें लीहदण्ड लेकर मैठी हुई स्वर्णनिर्मित यमको प्रतिमा स्थापित करे। सुदृढ़ बन्धनोंसे वाँधकर इश्रुदण्डोंको एक नौका तैयार करे। उसीसे सुपंसे उत्पन्न गौको सम्बद्ध कर दे। इसके बाद छत्र, पादुका, अंगूठी और वस्त्रादिसे पूज्य बेह ब्राह्मणको संतुष्ट करके जल तथा कुराके सहित इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए वह चैतरणी गी उसे दानमें समर्पित करे—

यमद्वारे महाघोरे श्रुत्वा वैतरणीं नदीम्।
तर्नुकामो ददाम्येनां तुभ्यं वैतरणीं नमः॥
गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पाईतः।
गावो मे हृदये सन्तु गर्वा मध्ये वसाम्यहम्॥
विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ मामुद्धर महीसुर।
सदक्षिणा मया दत्ता तुभ्यं वैतरणी नमः॥
(४७)३०—३२)

'हे डिजन्नेष्ठ! महाभयंकर वैतरणी नदीको सुनकर मैं उसको पार करनेकी अभिलाषासे आपको यह वैतरणी दान दे रहा हूँ। हे विप्रदेव! गौएँ मेरे आगे रहें, गौएँ मेरे बगलमें रहें, गौएँ मेरे हदयमें रहें और मैं उन गायोंके बीचमें रहूँ। हे विष्णुक्तप! डिजवरेण्य! भूदेव! मेरा उद्धार करो। मैं दिक्षणासहित यह कैतरणी गौ आपको दे रहा हूँ। आप मेरा प्रणाम खोकार करें।

इसके बाद सबके स्वामी धर्मराजकी प्रतिमा और वैतरणी नामवाली उस गौकी प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणको दान दे। उस समय वह ब्राह्मणको आगे कर उस वैतरणी गौको पूँछ हाथमें लेकर यह कहे—

धेनुके त्वं प्रतीक्षस्य यमद्वारे महाभये॥ उत्तारणाय देवेशि वैतरण्ये नमोउस्तु ते।

(80128-34)

'हे गौ। उस महानदीसे मुझे पार उतारनेके लिये आप महाभयकारी यमयजके द्वारपर मेरी प्रतीक्षा करें। हे वैतरणी। देवेबॉर। आफ्को मेरा नमस्कार है।'

ऐसा कहकर उस गौको ब्राह्मणके हाथमें देकर उनके पोसे-पोछे उनके घरतक पहुँचाने जाय। हे वैनतेय! ऐसा करनेपर वह नदी दाताके लिये सरलतासे पार करनेके पोम्य बन जाती है। जो व्यक्ति इस पृथ्वीपर गौका दान देता है, वह अपने समस्त अभीष्टको सिद्ध कर लंता है।

सुकर्मक प्रभावसे प्राणीको ऐहिक और पारलीकिक सुक्की प्राणि होती है। स्वस्य जीवनमें गीदान देनेसे हजार गुना एवं रोगवस्त जीवनमें सी गुना लाभ निश्चित है। मरे हुए प्राणीक कल्याणार्थ जितना दान दिया जाता है, उतना ही उसका पुण्य है। अतः मनुष्यको अपने हाथसे ही दान देना कहिये। मृत्यु होनेके बाद कौन किसके लिये दान देगा? दान-धमंसे रहित कृपणतापूर्वक जीवन जीनेसे क्या लाभ? इस नक्षर शरीरसे स्थिर कर्म करना चाहिये। प्राण अतिथिको तरह अवस्य छोड़कर चले जायेंगे।

हे पश्चिराज! इस प्रकार प्राणिवर्गके समस्त दु:खका वर्णन मैंने तुमसे कर दिया है। इसके साथ यह भी बता दिया है कि प्रेतके मोक्ष एवं लोकमङ्गलके लिये उसके औध्वदिहिक कर्मको करना चाहिये।

सूतजीने कहा—हे विप्रगण! परम तेजस्वी भगवान् विष्णुके द्वारा दिये गये ऐसे प्रेत-चरितसे सम्बन्धित उपदेशको सुनकर गरुडको अत्यन्त संतुष्टि प्राप्त हुई। हे ऋषियो! जीव-जन्तुओंके जन्मादिका यहाँ सब विधान है। यही जन्म, मरण, प्रेतत्व तथा औध्वंदैहिक कृत्यका नियम है। मैंने सब प्रकारसे उनके मोस आदि कारणका वर्णन कर दिया है।

'जिनके हृदयमें नीलकमलके समान श्वामवर्णवाले भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, उन्होंको लाभ और विजय प्राप्त होती है। ऐसे प्राणियोंकी पराजय कैसे हो सकती है? धर्मकी जीत होती हैं, अधर्मकी नहीं। सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं। क्षमाकी विजय होती है, क्रोधकी नहीं। विष्णु ही जीतते हैं, असुर नहीं। विष्णु ही माता हैं, विष्णु ही पिता हैं और विष्णु ही अपने स्वजन बान्धव हैं; जिनकी बुद्धि इस प्रकार स्थिर हो जाती है, उनकी दुर्गति नहीं होती है। भगवान विष्णु मङ्गलस्वरूप हैं, गरुडध्वन मङ्गल हैं, भगवान् पुण्डरीकाक्ष मञ्जल हैं एवं हरि मङ्गलके हो आयतन हैं। हरि ही गङ्गा और बाह्मण हैं। बाह्मण तथा गङ्गा उन विष्णुके मुर्तरूप हैं। अतः गङ्गा, हारे एवं बाह्मण ही इस त्रिलोकके सार है '-

मया प्रोक्तं वे ते मुक्ते निदानं वैव सर्वशः। लाभस्तेषां जयस्तेषां कृतस्तेषां पराजयः। येशामिन्दीवरम्यायो हृदयस्यो जनार्दनः॥ थर्मो जयति नाधर्मः सत्ये जयति नानृतम्। क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुराः॥ विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनबन्धवाः। चेवामेव स्थित बुद्धिनं तेवा दुर्गतिभवेत्॥ महलं भगवान् विष्णुमेङ्गलं गरुडध्वजः। मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनं हरि:॥ हरिभागीरधी विद्रा विद्रा भागीरधी हरि:। सारमेतञ्जगत्त्रये॥ हरिविधाः

(801 Rt-86)

इस प्रकार सुतजी महाराजके मुखसे निकली हुई सभी ऋम्बोंके मूल तत्त्वोंसे सुशोधित भगवान् विष्युकी वाणी-रूपी अमृतका पान करके समस्त ऋषियोंको बहुत संतुष्टि प्राप्त हुई। वे सभी परस्पर उन सर्वार्थद्रष्टा सुतजीकी प्रशंसा करने लगे। शौनक आदि मुनि भी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। 'प्राणी चाहे अपवित्र हो या पवित्र हो, सभी अवस्थाओं में रहते हुए भी जो पुण्डरोकाश भगवान विष्णुका स्मरण करता है, वह बाहर और भीतरसे पवित्र हो जाता है'-अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्त्रां गतोऽपि वा।

> यः स्वोत्युण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥ (80147)

(अध्याय ४७)

दु:खी गर्भस्थ जीवका विविध प्रकारका चिन्तन करना, यमयातनाग्रस्त जीवका सदा सुकृत करनेका उपदेश देना

ताक्ष्यंने कहा-हे प्रभी। इस मत्यंतीकमें अपने पुण्यकी संख्याके अनुसार सभी जातियोंमें जो मनुष्य निवास करते हैं, वे अपना काल आ जानेपर मृत्युको प्राप्त करते हैं-ऐसा लोकमें कहते हैं, इसके विषयमें आप मुझे बतायें। विधाताके द्वारा बनाये गये उस मार्गमें स्थित वे प्राणी अत्यन्त कठिन मार्गसे होका गुजाते हैं। किस पुण्यसे वे प्रसन्नतापर्थक जाते हैं और किससे वे वहाँ रहते हैं और कुल, यल तथा आयुका लाभ प्राप्त करते हैं।

सुतजीने कहा-हे ऋषियो! यह सुनकर, जिनके द्वारा इस पृथ्वीका निर्माण हुआ है, जिन्होंने समस्त वराचर जगत्की सृष्टि की है और समर्थ यमको अपने विहित कार्यमें नियोजित किया है, उन महाप्रभूने मनुष्यके अरीर, कर्म, भय और रूपका स्मरण करके गुरुडसे इस प्रकार

धगवानुने कहा-हे गुरुड ! यम-मार्गमें गुमन करनेवाले जीवारमाओंका ऐहिक शरीर नहीं, अपितु धर्म, अर्थ, काम तथा चिरकालीन मोक्ष प्राप्त करनेकी अभिलापा रखनेवाल अंगृष्टमात्र परिमाणमें स्थित दूसरा शरीर होता है। वह उसी रूपमें अपने पाप-पुण्यके अनुसार लोक एवं निवासगृह प्राप्त करता है। है द्विज! उस यातना-शरीरमें स्थित होकर वम-पाशसे बँधा हुआ वह जीव पुन:-पुन: रोदन करत है— अत्यन्त पवित्र देशमें द्विजका शरीर प्राप्त करके भी मैंने न भगवान विष्णुकी पूजा की, न पितरों एवं देवताओं के तुन्त किया, न मैंने याग, दान आदि किया और न योग्य पुत्रादि संतित हो। मुझ यम-मार्गगामीका कोई बन्धु नहीं है मुझे पुन: द्विजका शरीर प्राप्त हो इस इच्छासे कोई पुण्य

कार्य भी नहीं किया है। अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त करके वेद और पुराणको सहिताओंका भी अध्ययन मैंने नहीं किया है। इस प्रकार रुदन करते हुए देहोसे यमदृत कहते हैं कि हे देहिन्! हाथमें आये हुए ब्राह्मणशरीर, पवित्र देश आदि रूपी अनमोल रह भी तुमने खो दिये। हे देहिन्! तम उसीके अनुसार अपना निर्वाह करो, जैसा कि तमने किया है।'

मनुष्य क्षत्रियर्वशका हो अचवा वैश्यवंशका हो, वह शुद्र हो या नीचवर्णका हो, किंतु यदि वह देवता, ब्राह्मण, बालक, स्त्री, वृद्ध, दीन और तपस्त्विबोंका हन्ता है अववा इन्हें उपद्रवयस्त देखकर (इनके संरक्षणसे) पराइम्ख हो जाता है तो उसके सभी इष्टरेव उससे विमुख हो जाते हैं। पितृगण उसके द्वारा दिये गये तिलोदकका पान नहीं करते हैं और अग्निदेव उसके द्वारा दिये गये हच्यको भी नहीं स्वीकार करते हैं। है पक्षीन्द्र! संग्रामके उपस्थित होनेपर शस्त्र लेकर जो क्षत्रिय शत्र-सेनाके समक्ष द्वेष और भयकश नहीं जाता है तथा बादमें मारा जाता है ते उसका शाहबल मानो त्यर्थ ही हो गया।

जो युद्धमें वीरगति प्राप्त करता है। उसने मानी चन्द्र एवं सुर्यग्रहणके अवसरपर श्रेष्ठ ब्राह्मणको दान दे दिया, श्रेष्ठ तीधाँभें जाकर सदा स्नान कर लिया, गयातीचेंमें पहुँचकर सदा पितरोंको पिण्डदान दे दिया। जो अत्रिय अपने कर्तव्योंका पालन बिना किये हुए शरीरकी छोड़ता है, यह सदा चिंता करता रहता है कि समरभूमिमें मारे गये स्वामीके लिये, बलात् अपद्वत गौके लिये, स्वी-बालककी हत्या रोकनेके लिये तथा मार्गमें लूटे जानेवाले साथियोंके लिये अपने प्राणींका परित्याग मैंने नहीं किया। यमपारामें आबद्ध वैश्य अपने किये हुए कर्मोंके विषयमें सोचता है कि मैंने किसी प्रकारका पुण्य-संचय नहीं किया, कुटुम्बके लिये मोहान्ध होकर क्रय-विक्रयमें मैंने सत्यका भी प्रयोग नहीं किया। ऐसे ही शहका शरीर प्राप्त करनेवाला भी अपने कर्तव्यसे विमुख रहते हुए यदि शरीर त्याग करता है तो यह भी यह चिंता करता है कि मैंने ब्राह्मणोंको न तो यज्ञस्कर दान दिया है और न उनको पूजा को है। मेरे द्वारा इस पृथ्वीपर जलाशयका निर्माण नहीं करवाया गया है। मैंने किसी संस्कारहीन ब्राह्मणश्रेष्ठका संस्कार करानेमें योगदान भी नहीं किया है। शास्त्रविहित अपने कर्मोंका परित्याग करके मदान्ध होकर मैं जीवित रहा। श्रेष्ठ तीर्थमें जाकर अपने झरीरका परित्याग भी नहीं किया। मैंने धर्माजन भी नहीं किया है। कभी सद्वित प्राप्त करनेके लिये मैंने देवताओंको पूजा भी नहीं की है।

समस्त लोकोंमें पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल-ये तीन लोक सारभृत है। सभी द्वीपोमें जम्बुद्वीप, समस्त देशोमें देवदेश अर्थात् भारतवर्ष और सभी जीवोंमें मनुष्य ही सार है। इस जगतके सभी वर्णोमें ब्राह्मणादि चार वर्ण तथा उन वर्णोमें भी धर्मनिष्ठ व्यक्ति श्रेष्ठ हैं। इस लोकयात्राके मार्गमें हिंबत जोवात्या धर्मसे सभी प्रकारका सुख और ज्ञान प्राप्त करता है। हे पश्चित्। गर्भस्य जीवको अपने पूर्वजन्मोंका ज्ञान रहता है, यह यहाँ स्मरण करता है कि आयुके समाप्त होनेपर शरीरका परिल्याग करके अब मैं मलादिमें रहनेवाले छोटे-छोटे क्रमि या कीटाणुऑकी एक विशेष योनिमें स्थित हूँ, में सरककर चलनेवाले सर्पादिकी योनिमें पहुँचा, मच्छर हो गया था, चार पैराँवाला अश्व या मुक्तभ नामक पश् बन गया या अथवा जंगली सुकरकी योनिमें प्रविष्ट था। इस प्रकार गर्भमें रहते हुए उस जीवात्माको पूर्ण ज्ञान रहता है, किंतु उत्पन्न होते ही वह तत्काल उसे भूल जाता है। गर्भमें पहुँचकर जो जीवात्मा चिन्तन करता है, शरीरधारी वैसा ही जन्म लेकर बालक, युवा और वृद्ध होता है। यदि गर्भमें सोची गर्बी बात सांसारिक व्यामोहके कारण विस्मृत हो जाती है तो पन: मृत्युकालमें उसको याद आ जाती है। यदि ज्ञरीरके नष्ट होनेपर वह हृदयमें ही रह गयी है ती पन: गर्भमें जानेपर उसका स्मरण होना निश्चित है। उसे याद आता है कि मैं दूसरेको छलनेका विचार करता रहा। मैंने जरोरको रक्षाके लिये धर्मका परित्याग करके द्वत, छल-कपट और चोरवृत्तिका आन्नय लिया।

अत्यन्त कष्टसे मैंने स्वयं लक्ष्मीको एकत्र किया था, कित् अधिलचित धनका उपभोग मैं नहीं कर सका। ऑन्नदेव, अतिथि और बन्धु-बान्धवोंको स्वादिष्ट अत्र, फल, गौरस तथा ताम्बल दे करके मैं उन्हें संतृष्ट करनेमें असफल रहा। चन्द्रग्रहण हो या मेच-मकर राशियोंपर सुर्वके प्रवेशका पृथ्वकाल हो, ऐसे अवसरपर भी श्रेष्ट तीबाँका सेवन मैंने नहीं किया। इसलिये हे देहिन्! तुम मल-मूत्रसे भी हुए अपने इस कोशको परिपृष्ट करनेमें लगे रहे। अत: वृम्हारा उद्धार कहाँ हो सकता है? इस पृथ्वीपर किया, उन्हें प्रणाम नहीं किया और न तो उनको पूजा की तुम्हास सुभाषित है और जो कुछ तुमने धर्मसंचय किया है। प्रभासक्षेत्रमें विराजमान भगवान् सोमनायकी भक्तिपूर्वक है, वह तुम्हारे साथ है। इस पृथ्वीपर जन्म लेनेवाला राजा पूजा एवं वन्दना भी मेरे द्वारा नहीं हुई है। जब ऐसी चिंता हो अथवा संन्यासी या कोई ब्रेष्टतम ब्राह्मण हो, वह मरनेके मृत प्राणी करता है, तब यमदूत उससे कहते हैं कि है बाद पुन: आया हुआ नहीं दिखायी देता है। जो भी इस देहधारिन्! जैसा तुमने किया है, उसके अनुसार अपना धरातलचर उत्पन्न हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है। हे निस्तार करो । हे देहिन् । पृथ्वीके ब्रेप्टतम तीचौंकी सीनिधिमें पक्षीन्द ! दूर्तीके सहित धर्मराजके पापंद जब प्रेतसे इस गुरुजनोंके हाथमें कुछ नहीं दिया गया, अतः जैसा तुमने आक्षर्यपूर्ण बातको सुनकर मनुष्यको वाणोमें कहने लगता है— किया है, वैसा भोगो। हे जीव! तुमने चन्दन और नैवेदादि पञ्चोपचारसे और चन्द्रनादियुक्त बलि प्रदान करके मातृकापूजा उस समय धर्म उसका पिता है, दया उसकी माता है, मधुर नहीं की, न तो तुम्हारे द्वारा विष्णु, ज्ञिव, गणेश, चण्डों एवं अर्चनाम्भीवेंयुक्त वाणी उसकी पत्नी है और सुन्दर तीर्थमें अथवा सूर्यदेव ही पूजे गये हैं। अतः तुमने जो कर्म किया किया गया स्चान उसका हितैयों बन्धु है। जब मनुष्य अपने तुमने किया है, अब दसीमें निस्तार करो।

हे पक्षित्। धर्म, अर्थ तथा यशको प्रदान करनेवाले, ऐसे पूर्वोक्त परलोकपथके पविक जीवीके पशासाप-वाक्यका विचार करके इस मनुष्यलोकमें जो धर्माचरण करते हुए पुण्य देशमें निवास करते हैं, वे इसी मनुष्यलोकमें जीवन्युक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

ऊपर किये हुए वर्णनके अनुसार विलाप करते हुए प्रेतको यमदूर अपने कालस्वरूप मुद्दरोंसे बहुत मारते हैं। वह 'हा देव! हा देव!' यह स्मरण करता हुआ अपनेको कोसते हुए कहता है कि तुमने अपनी कमाचीसे जो धन अर्जित किया था, उसमेंसे किसीको दान नहीं दिया। पृथ्वीपर रहते हुए तुमने भूमिदान, गोदान, जलदान, वस्त्रदान, फलदान, ताम्बूलदान अथवा गन्धदान भी नहीं किया तो अब भला क्या सोच रहे हो? तुम्हारे पिता और पितामह मर गये, जिसने तुमको अपने गर्धमें धारण किया वह तुम्हारी माता भी मर गयी, तुम्हारे सभी बन्धु भी नहीं रहे, ऐसा तुमने देखा है। तुम्हारा पाञ्चभौतिक शरीर अग्निमें जलकर भस्म हो गया। तुम्हारे द्वारा एकत्र किया गया

स्थित त्रिविक्रम भगवान् विष्णुकी प्रतिमाका दर्शन मैंने नहीं सम्पूर्ण धन-धान्य पुत्रोंने हस्तगत कर लिया। जो कुछ जाकर उनमें स्नानकर तुम्हारे द्वारा विद्वानीं, जाह्यची एवं प्रकारसे कहते हैं तो दु:खी वह प्रेत उन गणींकी महान् जब दानके प्रभावसे व्यक्ति विमानपर आरूद होता है.

है, उसीमें अपना निवाह करो। हे देहिन्। तुम्हें तो देवाच हायसे सुकृत करके उसको भगवान्के चरणोंमें अपित कर प्राप्त करने योग्य मानवयोनिको प्राप्ति हुई यो, किंतु देता है, तब उसके लिये स्वर्ग किंकरकी भौति हो जाता है। (लीफिक आसक्तिमें) मोहवश यह सब सम्बन्ध हो एका। जो प्राणी धर्मीन्छ है वह अत्यन्त सुख-सुविधाओंको प्राप्त विमृद्बुद्धि तुमने अपनी गतिको नहीं देखा, इसलिये जो करता है और को पापी है वह नाना दु:खोंका भीग करता है। जो धर्मशील, मान-सम्मान तथा क्रोधको जीतनेवाला, विद्या-विनयसे युक्त, दूसरेको कष्ट न देनेवाला, अपनी पत्रीमें संतुष्ट और पराची स्वीसे दूर रहनेवाला है, वह पृथ्वीपर हमारे लिये करनीय है। जो मिष्टानदाता, अग्निहोत्री, बेदानी, हजारी चान्द्रायणवत करनेवाला, मासपर्यन्त उपवास रखनेमें समर्थ पुरुष तथा पतिवता नारी है—ये छ: इस जीवलीकमें मेरे लिये कन्दनीय हैं। इस प्रकारका सम्यक् आवरण करते हुए जो पनुष्य वापी, कृप और जलसे पूर्ण तालाब बनवाता है, औ प्याक, कलकुण्ड, धर्मशाला तथा देवमन्दिरका निर्माण कराता है, वह उत्तम धर्म करनेवाला है। बेदर ब्राह्मणको दिया गया वर्षातन, कन्याका विवाह, ऋणी ब्रह्मणको ऋणमुक्ति, सुगमतासे बोयी-जोती जानेवाली भूमिका दान तथा प्याससे दु:खी प्राणियोंके लिये उसीके अनुकूल कूप, तहागादिका निर्माण ये ही सब सुकृत हैं। तुद्ध भावसे जो प्राणी इस सुकृतसाररूप अध्यायको सुनता और पढ़ता भी है वह कुलीन है। वह धर्मनिष्ठ व्यक्ति मृत्युके बाद निश्चित ही उस अनन्त ब्रह्माण्डके एकमात्र

आह्रय नारायणको प्राप्त करता है। (अध्याय ४८)

भगवान् विष्णुद्वारा गरुडको दिये गये महत्त्वपूर्ण उपदेश, मनुष्ययोनिप्राप्तिकी दुर्लभताका वर्णन, मनुष्य-शरीर प्राप्तकर आत्मकल्याणके लिये सचेष्ट रहना, संसारकी दु:खरूपता तथा अनित्यता और ईश्वरकी नित्यताका वर्णन, कालके द्वारा सभीके विनाशका प्रतिपादन, सत्संग और विवेकज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति, तत्त्वज्ञानरूपी मोक्षप्राप्तिके उपाय, गरुडपुराणकी वक्त-श्रोतुपरम्परा तथा गरुडपुराणका माहात्स्य

जीवको उत्पत्ति इस संसारमें होती है, इस बातको मैंने सुन लाभ नहीं मिल सकता है। इस मृत्युलोकमें हजार ही नहीं, लिया। अब मैं मोक्षके सनातन उपायको सुनना चाहता हैं। करोड़ों बार जन्म लेनेपर भी जीवको कदाचित् ही संचित हे देवदेवेश ! शरणागतवत्सल ! प्रभो ! सभी प्रकारके दुःखाँसे मिलन बनाये गये इस दुस्तर असार संसारमें नाना प्रकारके शरीरोंमें प्रविष्ठ जीवोंकी अनन्त राशियों है। वे इसी संसारमें जन्म लेती हैं और इसीमें मर जाती हैं, किंतु उनका अन नहीं होता है। वे सदैव दु:खसे व्याकुल ही रहती है। यहाँ कहीं कोई भी सुखी नहीं है। हे मोश्रदाता स्वामिन्। वे किस उपायसे मुक हो सकते हैं? उसको आप मुझे बतानेकी कृपा करें।

श्रीभगवानने कहा —हे तार्थ्य। जो तुम मुझसे पूछ रहे हो, जिसको सुनने मात्रसे ही पनुष्य इस संसारके आव्यागमनके चक्रसे मुक्त ही जाता है, उसे मैं कह रहा हैं; तुम सूची।

हे खगेश! इस जगत्से परे परब्रह्मस्तरूप, निरवपव, सर्वंड, सर्वंकर्ता, सर्वेश, निर्मल, अद्वय-तत्त्व, स्वयंत्रकाश, आदि-अन्तसे रहित, विकारशुऱ्य, परात्पर, निर्मुण और सिचदानन्द शिव हैं, उसीके अंत ये जीव हैं। जो अनादि आविद्यासे वैसे ही आच्छादित हैं, जैसे अग्निमें इसके अंश विस्फुल्लिङ्ग स्थित है। अनादि कर्मोंके प्रधावसे प्राप्त शरीरादि नाना उपाधियोंमें होनेके कारण परस्पर भित्र-भित्र हो गये हैं, सुख-दु:ख प्रदान करनेवाले पुण्य और पापोंका उनके ऊपर नियन्त्रण है। उसी कर्मके अनुसार उन्हें जाति, देह, आयु तथा भोगकी प्राप्ति होती है। सुक्ष्म या लिङ्क शरीरके बने रहनेतक पुन:-पुन: जन्म-मरणकी परम्परा चलतो रहती है।

स्थावर, कृमि, पक्षी, पशु, मनुष्य, धार्मिक, देवता और मुमुक्षु यथाक्रम चार प्रकारके शरीरोंको धारण करके हजाएँ बार उनका परित्याग करते हैं। यदि पुष्य कर्मके प्रभावसे उनमेंसे किसीको मानवयोनि मिल जाय तो उसे जानी बनकर मोक्ष प्राप्त करना चाहिये। चौरासी लाख योनियोंमें

गरुडने कहा—हे दयाके सागर। अजनके कारण ही स्थित जीवात्माओंको बिना मानवयोनि मिले तत्त्वज्ञानका पुष्पकं प्रभावसे मानव-बोनि मिलतो है। यह मानवयोनि मोखको सोढोक समान है। इस दुर्लभ योनिको प्राप्त कर जो प्राणी स्वयं अपना उद्धार नहीं करता है, उससे बढ़कर पापी इस जगत्में दूसरा कीन हो सकता है-सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।

वस्तारवति नात्मानं तस्यात् पापतरोऽत्र कः॥

अन्य योवियाँसे भिन्न सुन्दर-सुन्दर इन्द्रियाँवाले इस जन्मका लाभ लेकर जो मनुष्य आत्महितका ज्ञन नहीं रखता हैं, वह ब्रह्मधाती है। किसीका भी पुरुषार्थ शरीरके बिना सम्भव नहीं है। अतः करीरक्ष्यी धनकी रक्षा करते हुए पुण्य कर्म करना चाहिये। आत्मा सभीका पात्र है, इसलिये उसकी रकामें मनुष्य सर्वदा संलग्न रहे। जो व्यक्ति आजीवन उस आत्माकी रक्षामें प्रयवशील रहता है, वह जीवित रहते हुए ही अपना करन्याण देखता है। मनुष्यको ग्राम, क्षेत्र, धन, घर, शुभाराभ कर्म और शरीर बार-बार नहीं प्राप्त होता है। विद्वान् लोग सदैव शरीरकी रक्षाके उपायमें लगे रहते हैं। कहादि महापर्यका रोगोंसे ग्रस्त होनेपर भी मनुष्य उस शरीरको छोडना नहीं चाहता है। शरीरको रखा धर्मके लिये, धर्मको रक्षा ज्ञानके लिये और ज्ञानको रक्षा ध्यानयोगके सिये तथा ध्यानयोगकी रक्षा तत्काल मुक्तिप्राप्तिके लिये होती है। यदि आत्मा ही अहितकारी कार्योंसे अपनेको दूर करनेमें समर्थ नहीं हो सकता है तो अन्य दूसरा कौन ऐसा हिठकारी होंगा जो आत्माको सुख प्रदान करेगा।

यहाँ इसी लोकमें नरकरूपी व्याधिकी चिकित्सा नहीं को गयो तो औषधिवहीन देश (परलोक-) में जाकर रोगी उससे मुक्तिका क्या उपाय करेगा? बुढ़ापा तो बाधिनके समान है। जिस प्रकारसे फूटे हुए घड़ेका जल धीरे-धीरे (05-05198)

बह जाता है, उसी प्रकार अप्यु भी शीण होती रहतो है। शरीरमें विद्यमान रोग शपुके सदश कष्ट देते हैं, इसलिये कल्याण इसीमें है कि इन सभीसे मुक्ति प्राप्त करनेका सत्प्रयास किया जाय। जबतक शरीरमें किसी प्रकारका दु:ख नहीं होता है, जबतक विपत्तियाँ सामने नहीं आती हैं और जबतक शरीरकी इन्द्रियाँ शिथल नहीं घड़तों हैं, तबतक ही आत्मकल्याणका प्रयास हो सकता है। जबतक यह शरीर स्वस्थ है, तबतक ही तत्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये सम्यक् प्रयत्न किया जा सकता है। कोशायारमें अग लग जानेपर मूर्ख कुआँ खोदता है, ऐसे प्रयत्नसे क्या लाभ—

इहैय नरकव्याधेशिकित्सी न करोति यः।
गत्वा निरोषधे देशं व्याधिस्यः कि करिव्यति॥
व्याधीयास्ते जरा चायुर्यति भिन्नघटाम्युवत्।
निश्तित रिपुवडोगास्तरसाध्येषः समध्यसेत्॥
यावनाश्रयते दुःखं सावनापानि चापदः।
यावनेन्द्रियवैकल्पं तावव्यूयः समध्यसेत्॥
यावत् तिष्ठति देहोऽयं तावत् तत्त्व समध्यसेत्॥
संदीप्तकोशभवने कृपं खनति दुर्पतिः॥
(१९)१३—२६)

मनुष्य नाना प्रकारके सांसारिक कार्यांमें व्यस्त रहनेसे (बांतते हुए) समयका नहीं जान पाता है। वह दुःख-सुख तथा आत्महितको भी नहीं जानता है। पैदा होनेवालांको, रोगियांको, मरनेवालेको, आपत्तिग्रस्तको और दुःखं लोगोंको देखकर भी मनुष्य मोहरूपी मदिएको पोकर (जन्ममरणादि दुःखसे युक्त संसारसे) नहीं हरता। सम्मदाएँ स्वणके समान हैं, यीवन पुष्पके सदृश है, आपु चज्यल विजलीके तुल्य नष्टप्राय है, ऐसा जानकर भी किसको धैयं हो सकता है? सौ वर्षका जीवन आपल्य है। वह भी निद्रा तथा आलस्यमें आधा चला जाता है। वदनन्तर बाल्यावस्था, रोग, वृद्धावस्था एवं अन्यान्य दुःखों में व्यतीत हो गया और जो थोड़ा बचा यह भी निष्फल हो जाता है—

कालो न ज्ञायते नानाकार्यः संसारसम्भवः। सुखं दुःखं जनो हन्त न वेत्ति हितपारपनः॥ जातानार्तान् मृतानापद्भन्दान् दृष्टा च दुःख्तितन्। लोको मोहसुरां पीत्वा न बिभेति कदावन॥ सम्पदः स्वप्नसंकाशा चौवनं कुसुमोपमम्। तडिच्वपलमायुष्यं कस्य स्याज्जानतो धृतिः॥ शतं जीवितमत्यत्यं निदालस्यस्तदधंकम्। बाल्यरोगजरादुःखरत्यं तदपि निष्फलम्॥

जिस कार्यको तुरंत आरम्भ कर देना चाहिये, उसके
संदर्भमें जो उद्योगहोंन होकर बैठा है, जहाँ जागते रहना
चाहिये, वहाँ जो सोता रहे तथा भयके स्थानपर जो आश्वस्त
होकर रहता है—ऐसा वह कौन मनुष्य है, जो मारा नहीं
खाता? जलके फेनके समान इस शरीरको आक्रमण करके
जीव स्थित है, यहाँ जिन प्रिय वस्तुओंके साथ संनिवास
है, वे अनित्य हैं। अत: जीव कैसे निर्भय होकर नितानत
अनित्य, शरीर, भोग और पुत्र-कलत्रादिके साथ रहता है।
जो अहित्यमें हित, अनिश्चितमें निश्चित और अनर्थमें अर्थको
विशेष रूपसे जाननेवाला है, वह व्यक्ति अपने मुख्य
प्रयोजनको नहीं जानता। जो देखते हुए भी गिर जाता है,
जो सुनते हुए भी सद्-बानको नहीं प्राप्त कर पाता है, जो
सद्यन्योंको पहते हुए भी उसे नहीं समझ पाता है, वह
देवसायासे विमोहित है—

प्रास्थ्ये निरुद्योगी जागतंत्र्ये प्रसुपाकः। विश्वस्तक्ष भयस्थाने हा नाः को न हत्यते॥ तोषकेनसमे देहे जीवेनाक्रम्य संस्थिते। अनित्यप्रियसंवासे कथं तिष्ठति निर्भयः॥ अहिते हितसेतः स्यादधुवे धुवसंत्रकः। अन्तर्ये बार्धविज्ञानः स्वमर्थं यो न वेति सः॥ यज्ञ्यत्रिप प्रस्काति भृष्यन्ति। न वृष्यति। यज्निप न जानाति देवयायाविमोहितः॥

(x4)34-3x)

कालके इस गहरे महासागरमें यह सम्पूर्ण जगत दूबता-उतराता रहता है। मृत्यु, रोग और बुढ़ापारूपी ग्राहोंसे तकड़े जानेपर भी किसी व्यक्तिको ज्ञान नहीं हो पाता है मनुष्यके लिये प्रतिक्षण भय है, समय बीत रहा है, किंतु वह उसी प्रकार दिखायी नहीं देता है, जैसे जलमें पड़ा हुआ कबा घड़ा गलता हुआ दिखायो नहीं देता। कदाचित वायुको कौंधकर रखा जा सकता है, आकाशका खण्डन हो सकता है, तरंगोंको किसी सूत्रादिमें पिरोया जा सकता है। किंतु आयुमें विश्वास नहीं किया जा सकता है। जिसके (प्रलयाग्निके) प्रभावसे पृथ्वी दहकती है, सुमेर पर्वत विजीण हो जाता है तथा सागरका जल सूख जाता है। फिर इस शरीरके सम्बन्धमें तो बात ही क्या ? पुत्र मेरा है, स्त्री मेरी है, धन मेरा है, बन्धु-बान्धव मेरे हैं। इस प्रकार 'में, में' चिल्लाते हुए बकरेकी भौति कालरूपा भेडिया बलात् मनुष्यको मार डालता है-

> तन्मिण्यज्ञगदिदं गम्भीरे कालसागरे। मृत्युरोगजराग्राहैर्न कश्चिदपि मुख्यते॥ प्रतिक्षणभयं कालः श्रीयमाणो न लक्ष्यते। आमकुम्भ इवाम्भ:स्थो विशीणी न विभाव्यते॥ युज्यते बेष्ट्रनं वायोराकाशस्य च खण्डनम्। ग्रधनञ्च तरंगाणामास्था नायुषि युन्यते॥ पृथिकी दहाने येन मेरुशाचि विशिवति। शुच्यते सागरजलं शरीरस्य च का कथा।। अपत्यं में कलत्रं में धनं में बान्धवाश में। जल्पनामिति मत्यांजं हन्ति कालवृको बलात्॥

> > (46134-34)

यह मैंने किया है, यह मुझे करना है, यह किया गया है या नहीं किया गया है—इस प्रकारकी भावनासे बुक मनुष्यको मृत्यु अपने वशमें कर लेती है। कल किये जानेवाले कार्यको आज ही कर लेना चाहिये। जो दोपहरके बाद करना है, उसको दोपहरसे पहले ही कर लेना चाहिये, क्योंकि कार्य हो गया है अथवा नहीं हुआ है, इसकी मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती। बुद्धावस्था पथ-प्रदर्शक है, अल्पन्त भयंकर रोग सैनिक है, मृत्यु शत्रु है, ऐसी विषम परिस्थितिमें फैसा हुआ मनुष्य अपने रक्षक भगवान् विष्णुको क्यों नहीं देखता है। तुष्णारूपो सुईसे छिडित, विषयसपो पुतर्मे दुवे, राग-द्वेषरूपी अग्तिको आँचमें पकाये गये मानवको मृत्यु खा लेती है। बालक, युवा, वृद्ध और गर्भमें स्थित सभी प्राणियोंको मृत्यु अपनेमें समाहित कर लेती हैं, ऐसा है यह जगत्। यह जीव अपने ऋरीरकी भी छीड़कर यमलोक चला जाता है तो भला स्त्री, माता-पिता और पुत्रदिका जो सम्बन्ध है, वह किस कारणसे प्रेरित होकर बनाया गया है। संसार द:खका मूल है, वह किसका होकर रहा है अर्थात् इसकी ओर विसका मन अधिक रम गया है, वही दु:खित है। जिसने इस सांसारिक व्यामोहका परित्याग कर दिया है, वह सुखी है। उसके अतिरिक्त कहींपर भी अन्य कोई दूसरा सुखी नहीं है-

इदं कृतमिदं कार्यीमदमन्यत्कृताकृतम्। एवमीहासमायुक्तं कृतानः कुरुते वल्लम्॥

धः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्वे चापराहिकम्। न हि मृत्युः प्रतीक्षेत कृतं वाप्यश्च वाऽकृतम्॥ जरादर्शितपन्धानं प्रचण्डब्याधिसैनिकम्। अधिष्ठितो मृत्युशर्त्र जातारं कि न पश्यति॥ तृष्णासूचीविनिर्भिनं सिक्तं विषयसर्पिषा। रागद्वेषानले पक्वं मृत्युरश्नाति मानवम्॥ बालांड योवनस्थांड वृद्धान् गर्भगतानिप। सर्वानाविशते पृत्युरेवम्भूतिवरं जगत्॥ स्वदेहपपि जीवोऽयं मुक्तवा याति यमालयम्। स्बीमानुपिनुपुत्रादिसम्बन्धः केन हेत्ना ॥ दु:खमूलं हि संसार: स यस्यास्ति स दु:खित:। तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नापरः क्वचित्।।

(X4-0X13X)

यह जगत् सभी दु:खॉका जनक, समस्त आपदाओंका घर तथा सब प्रकारके पापींका आश्रय है। अत: क्षणभरमें डी मनुष्यको इसका त्याग कर देना चाहिये। लीह और वरहके जालमें फैसा हुआ पुरुष मुक्त हो सकता है; किंतु पुत्र एवं स्त्रीके मोहजालमें फैसा हुआ वह कभी मुक्त नहीं हो सकता। मनुष्य मनको प्रिय लगनेवाले जितने पदाधीसे अपना सम्बन्ध स्थापित करता जाता है, उतनी शोककी कोलें उसके हदयमें चुभती जाती है। विषयका आहार करनेवाले देहस्थित तथा सभी प्रकारके अशेष सामर्थ्यसे विक्रत कर देनेवाले जिन इन्द्रियरूपी चोरोंके द्वारा लोक विनष्ट हो रहे हैं। हाय, यह बढ़े कष्टकों बात है। जैसे मांसके लोभमें फैसी हुई मछली बंसीके काँटेको नहीं देखती हैं, वैमे ही सुखके लालचमें फैसा हुआ ऋरीरी यमको बाधाको नहीं देखता है-

प्रभवं सर्वदुःखानामालयं सकलापदाम्। आक्रयं सर्वेपापानां संसारं वर्जयेत् क्षणात्॥ लोहदारुमयैः पार्शः पुमान् बद्धो विमुच्यते। पुत्रदारमयै: पार्शमृष्यते न कदाचन॥ यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान् मनसः प्रियान्। तावनोऽस्य निखन्यने इदये शोकशङ्ख्यः॥ बश्चिताशेषवित्तस्तैर्नित्यं लोको विनाशितः। विषयाहारदेहस्थेन्द्रियतस्करै:॥ मांसलुब्धो यथा मतस्यो लोहशंकुं न पश्यति। मुखलुब्धस्तवा देही यमबाधां न पश्यति॥

(89-081 78)

सजान पुरुष ही हैं-

नारकीय प्राणी हैं। निद्रा, भय, मैसुन तथा आहारकी मृद लोग शरीरको सुखा देनेवाले एकभक्त तथा उपवासादि अभिलाया सभी प्राणियोंमें समान रूपसे रहती है; उनमें नियमोंसे अपने पुण्यरूप अदृष्टकी कामना करते हैं। ज्ञानीको मनुष्य और अज्ञानीको पशु माना गया है। मूर्ख व्यक्ति प्रात:कालमें मल-मूत्र, दोपहरमें भूख-प्यास तथा सकते हैं? क्या वामीको पीटनेसे महाविषधारी सर्प मर रातमें मैथुन और निदासे पीड़ित रहते हैं। बड़े दु:खको बात सकता है? यह कदापि सम्भव नहीं है। जटाओंके भार है कि अज्ञानसे मोहित होकर सभी प्राणी अपने करीर, धन और मृगचमंसे युक्त वेष धारण करनेवालें दास्भिक एवं स्त्री आदिमें अनुरक्त होकर जन्म लेते हैं और मर ज्ञानियोंको भौति इस संसारमें भ्रमण करते हैं और लोगोंको

हिताहितं न जानन्तो नित्ययुन्मार्गमायिनः। कृक्षिपुरणनिष्ठा ये ते नरा नारकाः खगः। निद्राभीमैचनाहाराः सर्वेषां प्राणिनां सन्तः। सानवान् मानवः प्रोक्तो ज्ञानहीनः पशुः स्मृतः॥ प्रभाते मलमूत्राध्यां शुनुब्ध्यां मध्यमे रखी। रात्री मदननित्राध्यां बाध्यने मृहमानकाः॥ सर्वजनायः। स्वदेहधनदारादिनिरताः जायनो च प्रियनो च हा हन्ताहानमोहिता: व तस्मात् सङ्घः सदा त्यान्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते । महद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः सङ्कस्य भेषजम्॥

सत्संग और विवेक-ये दो प्राणीके मलरहित, स्वस्य दो नेत्र है। जिसके पास ये दोनों नहीं हैं, वह मनुष्य अन्धा है। यह कुमार्गपर कैसे नहीं जायगा ? अर्थात् वह अवस्य ही कमार्गगामी होगा-

सत्सङ्क विवेकश्च निर्मल नयनद्वयप्। यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कर्यं न स्यादमार्गनः ॥

(49,140) अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मको माननेवाले सभी मानव

दूसरेके धर्मको नहीं जानते हैं, किंतु वे दम्भके वशीभृत हो जायेँ तो अपना ही नाश करते हैं। इतचर्यादिमें लगे हुए प्रयासरत कुछ लोगोंसे क्या बनेगा? क्योंकि अजनसे स्वयं अपने आत्मतत्त्वको ढके हुए लोग प्रचारक बनकर देश-देशान्तरमें विचरण करते हैं। नाममात्रसे स्वयं संबुष्ट इस चिन्तासे दु:खित मूर्ख व्यक्ति अत्यधिक व्याकुल हो

हे खगेश ! अपने हित-अहितको न जानते हुए जो नित्य कर्मकाण्डमें लगे हुए मनुष्य तथा मन्त्रोच्चार एवं होमादिसे कुपथगामी हैं, जिनका लक्ष्य मात्र पेट भरना है, वे मनुष्य युक्त याज्ञिक वज्ञविस्तारके द्वारा भ्रमित हैं। मेरी मायासे विमोहित सरीरकी ताड्ना मात्रसे अज्ञानीजन क्या मुक्ति प्राप्त कर

जाते हैं। अतः व्यक्तिको उनकी और बढ़ी हुई अपनी भूमित करते हैं। लीकिक मुखमें आसक्त 'मैं ब्रह्मको आसक्तिका परित्याग करना चाहिये। यदि आसक्ति छोड़ी जानता हूँ' ऐसा कहनेवाले, कर्म तथा बढ़ा—इन दोनोंसे न जा रही हो तो महापुरुषोंके साथ उस आमिकको जोड़ ४९ दम्भी एवं डॉगी व्यक्तिका अन्यजके समान परित्याग देना चाहिये, क्योंकि आसक्ति-रूपी व्याधिको औषधि कर देना चाहिये। घरको वनके समान मानकर निर्वस्त्र और लजारहित जो साथु गर्थ अन्य पशुओंकी भौति इस जगत्में घुमते रहते हैं, क्या वे विरक्त होते हैं ? कदापि नहीं। यदि मिट्टी, भस्म तथा भूलका लेप करनेसे मनुष्य मुक्त हो सकता है तो क्या मिट्टी और शस्ममें हो नित्य रहनेवाला कुटा मुक नहीं हो जायगा? बनवासी तापसजन पास, फुस, पता तथा जलका ही सेवन करते हैं, क्या इन्होंके समान बनमें रहनेवाले सियार, चृहे और मुगादि जीवजन्तु तपस्वी हो सकते हैं? जन्मसे लेकर मृत्यूपर्यना गङ्गा आदि पाँवत्रतम नदियोंमें रहनेवाले मेवक या मछली आदि प्रमुख जलचर प्राणी योगी हो सकते हैं? कब्तर, शिलाहार और यातक पक्षी कभी भी पृथ्वीका जल नहीं पीते हैं, क्या उनका बती होना सम्भव है। अतः ये निल्पादिक कर्म, (xt142-45) लोकरम्बनके कारक है। है खगेश्वर! मोशका कारण तो सामात् तत्त्वज्ञान है।

> हे खगेबर! बद्दर्शनरूपी महाकृपमें पशुके समान गिरे इप मनुष्य पाससे नियन्त्रित पशुको भौति परमार्थको नहीं जानते। वेद-शास्त्रादिके महासमुद्रमें इधर-उधरसे अनुमान लगानेवाले इस घड्दर्शनरूपी तरंगसे ग्रस्त होकर कुतकी बन जाते हैं। जो बंद-आगम और पुराणका जाता परमार्थको नहीं जानता है, उस कपटीका सब कथन कौवेका काँव-काँव ही है। यह ज्ञान है, यह जाननेके योग्य है, ऐसी

> चिन्तासे भलीभौति बेचैन तथा परमार्थतत्त्वसे दूर प्राणी दिन-रात शास्त्रका अध्ययन करता है। वाक्य ही छन्द है और उस छन्दसे गुम्फित काव्योंमें अलंकार सुशोधित होता है

जाता है। उस परमतत्त्वका अन्य ही अर्थ है; किंतु लोग हो सुलभ है, किसी अन्य साधनसे नहीं। आश्रम उस उसका दूसरा अर्थ लगाकर दृ:खित होते हैं। शास्त्रींका सद्भाव कुछ और हो है; किंतु वे उसकी व्याख्या उससे भित्र ही करते हैं। उपदेशादिसे रहित कछ अहंकारी व्यक्ति उन्मनीभाषकी बात कहते हैं, किंतु स्वयं उसका अनुभव नहीं करते हैं। वे वेद-शास्त्रोंको पडते हैं और परस्पर उसको जाननेका प्रयास करते हैं: किंतु जैसे कलडी पाकका रसास्वाद नहीं कर पाती है, वैसे ही वे परमतत्त्वको नहीं जान पाते हैं। सिर पृथ्मीको ढोता है, परंतु उसकी सुगन्धका अनुभव नासिका ही करती है। बहत-से लोग बेद-शास्त्र पदते हैं; किंतु उनके भावको समझनेवाला दुर्लभ है। अपने ही भोतर विद्यमान उस परमठत्वको न पहचान कर मूर्ख प्राणी शास्त्रोंमें वैसे ही व्याकुल रहता है. जैसे कलारमें आये हुए बकरी या भेडके बच्चेको एक गोप कुएँमें खोजता है। सांसारिक मोहको विनष्ट करनेमें शब्दतान समर्थ नहीं है; क्योंकि दीएककी वार्तासे कभी अन्धकारको दूर नहीं किया जा सकता है। बृद्धिरहित व्यक्तिका पदना वैसे ही है. जैसे अन्धेक हाथमें दर्पण हो। अतः प्रज्ञायान् पृरुषेकि द्वारा अधीत शास्त्र तलाजनका लक्षण है। यह ज्ञान है, यह जाननेके योग्य है, ऐसे विचारोंसे फैंसा हुआ मनुष्य सब कुछ जाननेकी इच्छा करता है, फिंतू हजार दिव्य वर्षीतक पढनेपर भी वह जारसीका अना नहीं समझ पाता है। शास्त्र तो अनेक हैं, किंतु आयु यहत हो कम है और उसमें भी करोड़ों क्लिन-बाधाएँ हैं। इसलिये जलमें मिले हुए श्रीरको जैसे इंस ग्रहण कर लेता. है जैसे ही उनके सार-तत्त्वको ग्रहण करना चाहिये-

अनेकानि च शास्त्राणि स्वस्थायविभकोटयः। तस्मात् सारं विजानीयात् श्रीरं इंस इवाम्बीसः॥ (WLICK)

हे ताक्यें। येद-शास्त्रोंका अध्यास करके जो बुद्धिमान् व्यक्ति उस परमतत्वका ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उसको उन सभीका परित्याग उसी प्रकार करना चाहिये, जिस प्रकार एक धान्याधी पुरुष धान ग्रहण कर लेता है और पुआलको फेंक देता है। जैसे अमृतके पानसे संतुष प्राणीका भोजनसे कोई सरोकार नहीं रह जाता है, वैसे हो तत्त्वको जाननेवाले विद्वानका शास्त्रसे कोई प्रयोजन नहीं रह जाता है। हे

विनतात्मज ! वेदाध्ययनसे मुक्ति सम्भव नहीं है और न तो

शास्त्रोंको पढनेसे वह प्राप्त हो सकती है, वह कैवरूप ज्ञानसे

मोक्षका कारण नहीं हो सकता है। दर्शन भी उसकी प्राप्तिके कारण नहीं हैं। वैसे ही सभी कमौंको उसका कारण नहीं मानना चाहिये। उसका कारण ज्ञान है। मुक्ति देनेवाली गुरुको एक वाणो है। अन्य सभी विद्याएँ विडम्बन करनेवाली हैं। हजार शास्त्रोंका भार सिरपर होनेपर भी प्राणीको तो संजीवन देनेवाला वह परमतत्त्व अकेला ही है। सभी प्रकारको क्रियाओंसे रहित वह अद्वैत शिवतत्त्व कहा गया है। उसको गुरुके मुखसे प्राप्त करना चाहिये। वह करोड़ो ज्ञान-शास्त्रीका अध्ययन करनेसे मिलनेवाला नहीं है।

जान दो प्रकारका कहा जाता है। एक है शास्त्रकथित जान और दूसरा है विवेकसे प्राप्त हुआ जान। इसमें शब्द हो बहा है, ऐसा आगम-शास्त्र कहते हैं। वह परमतत्त्व ही ब्रह्म है, ऐसा विवेकों जन कहते हैं। कुछ लोग अद्वैतको प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं और कुछ लीग द्वेतकी चाहते हैं: किंतु वे सभी यह नहीं जानते हैं कि वह परमतत्त्व समभाववाला है। वह दैताईतसे रहित है।

बन्धन और मोधके लिये इस संसारमें दो ही पद हैं। एक पद है 'यह मेरा है' और दूसरा पद है 'यह मेरा नहीं है'। 'यह मेरा है' इस जानसे वह बँध जाता है और 'यह मेरा नहीं है' इस जानसे वह मुक्त हो जाता है-

दे घरे बन्धपोद्याय न प्रमेति गर्गति च। पर्यति कथते जन्त्र पर्यति प्रमुख्यते॥

(89198)

जो कर्म इस जीवात्माको चन्धनमें नहीं ले जाता है, वहाँ सत्कर्म है। जो प्राणीको मुक्ति प्रदान करनेमें समर्थवती है, वही विद्या है। इसके अतिरिक्त दूसरा कर्म तो परित्रम करनेके लिये होता है और दूसरी विद्या कलानैपुण्यको प्रदर्शित करनेके लिये होती है। जबतक प्राणियोंको कर्म अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, जबतक उनमें सांसारिक वासना विद्यमान है और जबतक उनकी इन्द्रियोंमें चञ्चलता रहती है, तबतक उन्हें परमतत्त्वका ज्ञान कहाँ हो सकता है-

तन्कर्म यन बन्धाय सा विद्या या विमुक्तिदा। आयासायापरं कर्म विद्याऱ्या शिल्पनैपुणम्॥ यावत् कर्माणि दीप्यन्ते यावत् संसारबासना। यावदिन्द्रियचापत्यं तावत् तत्त्वकथा कृतः॥

(84148-44)

ममता है, जबतक उस प्राणीमें प्रयत्नकी क्षमता रहती है. उसका नियन्त्रण करे। अन्य कर्मोंसे मनको रोककर जबतक उसमें संकल्प तथा कल्पना करनेको जांक है. बुद्धिक द्वारा शुभकर्ममें मनको लगाये। जबतक उसके मनमें स्थिरता नहीं है, जबतक वह शास्त्र-चिन्तन नहीं करता है एवं जबतक उसपर गुरुको दया नहीं होती है, तबतक उसको परमतत्त्व-कथा कहाँसे प्राप्त हो सकती है?

'तभीतक ही तप, चत, तीर्थ, जप तथा होमादिक कृत्य एवं चेद-शास्त्र तथा आगमको कथा है, जबतक व्यक्ति उस परमार्थ-तत्त्वको नहीं जान जाता है। हे ताक्ष्यं! यदि व्यक्ति अपना मोक्ष चाहता हो तो वह सभी अवस्वाओंमें प्रयत्नपूर्वक सदैव तत्त्वनिष्ठ होकर रहे। देहिक, देविक और भौतिक-इन तीनों वाणेंसे संतक प्राणीको धर्म और ज्ञान जिसका पूष्प है, स्वर्ग तथा मोश जिसका फल है, ऐसे मोक्षरूपी वृक्षको छायाका आवय करना चाहिये। अत: श्रीगुरुदेवके मुखसे प्राप्त हानके द्वारा आत्मतत्त्वको जानना चाहिये। ऐसा करनेसे जीव इस दुर्धर्ष संसारके बन्धनसे सखपर्वक मुक्त हो जाता है'-

> तावत् तयो वतं तीर्थं जपहोमार्चनादिकम्। वेदशास्त्रागमकथा याचत् तस्यं न विन्दति॥ तस्मात् सर्वप्रयक्षेत्र सर्वावस्थास् सर्वदा। तत्त्वनिष्ठी भवेत् ताक्ष्यं यदीन्क्रेन्मोक्षपात्मनः ॥ धर्मज्ञानप्रमुनस्य म्बर्गमोश्चफलस्य तापत्रयादिसंतप्तप्रद्वायां मोक्षतरोः तस्मान्त्रानेनात्पतत्त्वं विद्रेषं श्रीग्रोर्म्खात्। मुख्यते जन्तुर्धीरसंसारखन्धनात्॥ सुखेन

> > (1117-2117)

हे गरुद्र! उस तत्त्वज्ञका अन्तिम कृत्य सुनो, जिसके द्वारा ब्रह्मपद या निर्वाण नामवाला मोश्र प्राप्त होता है, अब में उसे कहेंगा।

अन्त समय आ जानेपर पुरुष भयरहित होकर असंगरूपी शस्त्रसे देहादिकी आसक्तिको काट दे। घरसे संन्यासी बनकर निकला धीरवान् पुरुष पवित्र तीर्थमें जाकर उसके जलमें स्नान करे। तदनन्तर वहींपर एकान्त देशमें किसी स्वच्छ एवं शुद्ध भूमिमें विधिवत् आसन लगाकर बैठ जाय तथा एकाग्रचित होकर गायओं आदि मन्त्रोंके द्वारा उस परम शद ब्रह्माक्षरका ध्यान करे। ब्रह्मके बीजमन्त्रको चिना भुलाये वह अपनी श्रासको रोककर मनको वशमें करे।

जबतक व्यक्तिमें शरीरका अभिमान है, जबतक उसमें मनरूपी चोडेको बुद्धिरूपी सारधीद्वारा सांसारिक विषयोंसे

में बहा है। मैं परम धाम हैं। मैं ही ब्रह्म हैं। परमपद में हैं। इस प्रकारको समोक्षा करके आत्माको निष्कल आत्मामें प्रविष्ट करना चाहिये। 'जो मनुष्य 'ॐ' इस एकाश्चर ब्रह्मका जप करता है, वह अपने शरीरका परित्याग कर परमपद प्राप्त करता है '-

ओपिल्वेकाक्षरे ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्। यः प्रवाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

(3081906)

जहाँ ज्ञान वैराम्यमे रहित अहंकारी प्राणी नहीं जाते हैं वहाँ सुधोजन जाते हैं। उनके विषयमें अब तुम्हें बताता हैं-मान-मोहसे रहित, आसक्ति-दोषसे परे, नित्य अध्यात्म-

चिन्तनमें दर्शाचत, सांसारिक समस्त कामनाओंसे रहित और सख-द:ख नामक इन्द्रसे मुक्त जो जानी पुरुष हैं, से ही इस अञ्चयपदको प्राप्त करते हैं-

निर्मानमोहा जिलमेयदोषा अध्यात्मनित्वा विनिवृत्तकामाः। इन्देविमुकाः मुखद् खसंत्रेगंच्छन्यमुद्धाः पदमव्यये तत्।

(481284)

'जो व्यक्ति ज्ञानरूपी हदमें राग-द्वेष नामवाले मलको दूर करनेवाले सत्यक्षपो जलसे भरे हुए मानसतीर्थमें स्नान करता है, उसीको योध प्राप्त होता है'-

सत्यजले रागद्वेषमलापहे। यः स्वाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्यात्॥

(99919K)

'ग्रीड वैराग्यमें स्थित होकर अनन्यभावसे जो मनुष्य मेरा भजन करता है, वह पूर्ण दृष्टिवाला प्रसन्नात्मा व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है'-

प्रौद्ववराग्यमास्वाय भजते मामनन्यभाक्। पूर्णदृष्टिः प्रसन्तात्मा स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥

(851553)

'पर छोडकर मरनेकी अधिलाषासे जो तीर्थमें निवास करता है और मुक्ति-क्षेत्रमें मरता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है। अयोध्या, मधुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका तथा द्वारका-ये सात पुरियाँ मोक्षप्रदा हैं -

त्यक्ता गृहं च यस्तीर्थे निवसेन्यरणोत्सुकः। मुकिक्षेत्रेषु ब्रियते स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका। पुरी द्वारवती जेयाः सपौता मोक्षदायिकाः॥

(X41553-55X)

हे तार्क्य! ज्ञान-वैराग्यसे युक्त यह सनातन मोश्च-धर्म ऐसा ही है। इसको तुम्हें सूना भी दिया है। दूसरा प्राणी भी जान-वैराग्यपूर्वक इसको सुनकर मोक्ष प्राप्त करता है। 'तत्त्वज्ञ मोक्ष प्राप्त करते हैं, धर्मनिष्ठ स्वर्ग जाते हैं। पापी नरकमें जाते हैं। पक्षी आदि इसी संसारमें अन्य

> योक्षं गच्छन्ति तत्त्वज्ञा धार्मिकाः स्वर्गति नगः। पाषिनो दुर्गति यान्ति संसरन्ति खगादयः॥

योनियोंमें प्रविष्ट होकर धूमते रहते हैं -

(stitte)

सूतजीने कहा-हे महर्षियो। अपने प्रश्नके उत्तरके रूपमें भगवानके मुखसे इस प्रकार सिद्धान्तको सुनकर प्रसन्न शरीरवाले गरुडने जगदीश्वरको प्रणाम किया और कहा-प्रभो। आपके इन आह्यादकारी वचनोंसे मेरा बहुत बहा संदेह दूर हो गया। ऐसा कहकर उन्होंने भगवान विष्णुसे जानेकी आज्ञा ली और वे कल्पपत्रीके आवसमें चले गये।

हे बाहाणी। जिस प्रकार प्राणी मृत्युके बाद तत्काल दूसरो योनिमें चला जाता है अथवा जैसे वह विलम्बसे देहान्तरको प्राप्त करता है, इन दोनों बातोंमें परस्पर कोई बिरोध नहीं है। हे तात। जैसा मैंने भगवानुसे सुना है, वैसा ही मैंने आपको स्ना दिया है। लक्ष्मीपति भगवान् नाग्यणके इन वाक्योंको सुनकर मरीचपुत्र कश्यप भी बहुत प्रसन्न हुए। बहुएसे इस महापुराणको सुनकर मैंने आप लोगोंको भी वही सुनाया है। इससे आप सभीका संदेह भी दूर हो गया। गरूडके द्वार कहा गया यह महापुराण बड़ा ही विधित्र है।

इस महापुराणको गरुडने हरिसे प्राप्त किया था। उसके बाद गरुडसे भुगुको प्राप्त हुआ। तदननार भुगुसे बसिष्ठ, वसिष्ठसे बामदेव, बामदेवसे पराशरमृनि, पराशरमृनिसे व्यास और व्याससे मैंने इसे सुना है। हे ऋषियो ! मेरे द्वारा अब आप सबको परम गोपनीय यह वैष्णव पुरान सुनाया गया है। जो मनुष्य इस महापुराजको सुने वा जो इसको पढ़े, वह इस लोक और परलोक सभीमें सुख प्राप्त करता है। संयमनी प्रीमें जाते हुए प्रेतको जो दु:ख प्राप्त होता है, उसका जैसा निरूपण इस महापुराणमें किया गया है। इसे सुननेसे जो पुण्य होता है, उसके कारण वह प्रेत मुक्त हो जाता है। इस महापुराणमें कहे गये कर्म-विपाकादिको सुननेसे मनुष्यको यहींपर वैराग्य प्राप्त हो जाता है। अत: जिस प्रकारसे हो सके प्राणीको इसे अवश्य सुनना चाहिये।

हे जितेन्द्रिय ऋषियो । आप लोग मृनीश भगवान बोकृष्णका भवन करें, जिनके मुखसे निकली हुई सुधासारकी धाराके मात्र एक वर्णरूपी सीकरको श्रुतिपुरकरूपी चिल्लुसे पीकर परमात्माके साथ ऐक्य प्राप्त ही जाता है। व्यासजीने कहा-इस प्रकार स्तके मुखसे निकली

हुई समस्त ज्ञास्त्रोंके अर्थसे सुशोधित भगवान् विष्णुकी वाणीका अमृत पान करके ऋषिगण परम संतुष्ट हुए। परस्पर उन लोगोंक बोच सर्वार्थदर्शी सृतजी महाराजकी प्रशंसा होने लगी। शौनक आदि ऋषियोंको भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई। स्तजीके द्वारा कही गयी पक्षिराज गरुडके संदेहोंको विनष्ट करनेवाली भगवान विष्णुकी वाणीको सुनकर जितेन्द्रिय मुनिराज शीनकने मन-ही-मन अपनेको धन्य माता। उस समय अपनी उदार वाणीसे उन मुनियंनि सुतजीको बार-बार धन्य हैं, आप धन्य हैं-कहकर धन्यबाद दिया। तदननार यज्ञ समाप्त होनेपर उन्हें विदाई दी। 'यह पारतमहापुराण बाह्य ही पवित्र और पुण्यदायक है।

वह सभी प्रपांका विनाशक एवं सुननेवालींकी समस्त कामनाओंका पुरक है। इसका सदैव व्रवण करना चाहिये'-प्राणं गारुडं पूर्णं पवित्रं पापनाशनम्। शृण्यतां कामनाप्रं भोतव्यं सर्वदेव हि॥

(Wt | th?)

इस महापुराणको सुननेक बाद वाचकको शय्यादि सधी प्रकारके विधिगत् दान देनेका विधान है अन्यया कथा सुननेका लाच उन्हें नहीं प्राप्त होता। श्रोताको सर्वप्रथम इस महापुराजकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद बस्त्र, अलंकार, गौ तथा दक्षिणा आदिसे वाचकको ससम्मान पूजा करनी चाहिये। अधिक पुण्य-लाभके लिये अधिकाधिक अन्नदान, स्वर्णदान और भूमिदानसे वाचककी पूजा करनी चाहिये। 'जो मनुष्य इस महापुराणको सुने या जैसे भी हो, वैसे ही उसका पाठ करे तो वह प्राणी यमराजकी भयंकर यतनाओंको टोडकर निष्पाप होकर स्वर्गको प्राप्त करता है'-

यक्षेद्रं भृण्यान्मत्याँ यञ्चापि परिकीर्तयेत्। विद्वाय यातनां धीरां धृतपापो दिवं खजेत्॥

(25178)

ब्रह्मकाण्ड^१

भगवान् श्रीहरिकी महिमा तथा उनके सर्वेश्वरत्वका प्रतिपादन, श्रीहरिको श्रीमद्भागवत, विष्णु तथा गरुड—ये तीन प्राण विशेष प्रिय हैं. इनका निरूपण तथा गरुडपुराणका माहात्म्य

परमब्रह्म श्रीहरिका स्तवन करते हुए सभी शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ ऐसा कहनेपर वे सभी उस पुण्य सिद्धाश्रममें गये शौनक आदि ब्रह्मवादी ऋषिगण नैमिष नामक महापूर्य-क्षेत्रमें उत्तम तपस्यामें संलग्न थे। वे सभी जितेन्द्रिय, भूख-प्यासको जीत लेनेवाले, सत्यपरायण तथा संत थे। वे विशिष्ट भक्तिके साथ समस्त संसारको ज्ञान प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णुकी निरन्तर पूजा करते थे। वहाँ कोई यहाँके द्वारा यज्ञपतिकी, कोई ज्ञानके द्वारा ज्ञानात्मक परमञ्रद्धाकी और कुछ ऋषिगण परम भक्तिके द्वारा नारायणकी पुतामें लगे रहते थे।

एक बारकी बात है धर्म, अर्थ, काम तथा मोध-इन चार पुरुषाधीकी प्राप्तिका उपाय जाननेकी इच्छासे वे महास्मागण एक स्थानपर एकत्र हुए। ऊथ्वरिता वे मुनिगण संख्यामें छल्बीस हजार थे एवं उनके शिष्य-प्रशिष्योंकी संख्या तो बहुत अधिक थी। संसारपर अनुग्रह करनेवाले, वीतराग एवं माल्सर्थरहित वे महातेजस्वी मृति आचसमें विचार करने लगे कि इस संसारमें द:व्हित प्राणियोंकी भगवान् हरिके प्रति अचल भक्ति कैसे हो सकेगी? और कैसे आधिदेशिक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक सम्पूर्ण कमोंको सिद्धि हो सकेगो? उन ऋषियोंको इस निज्ञासाको जानकर महामुनि श्रीनकने हाथ जोडते हुए बडे ही विनयपूर्वक उनसे कहा-

वे आपकी जिज्ञासाविषयक सभी बातोंको जानते हैं। वे हरि सर्वप्रथम नमस्कार करने योग्य हैं।

प्राचीन समयकी बात है जगतुके नेत्रस्वरूप उन इसलिये उन्होंके पास चलकर हमलोग पूछें। शौनक मुनिके नैमियारण्यवासी उन ऋषियोंने सुखपूर्वक आसनपर बैठे हुए स्वजीसे पृक्षा-

> ऋषियोंने कहा-हे सुवत! किस उपायके द्वारा भगवान विष्णुको प्रसन्न किया जा सकता है? और कैसे इनकी पूजा करनी चाहिये? इसे आप बतायें साथ हो यह भी बतलानेकी कुपा करें कि मुक्तिका साधनभूत तत्व क्या है ?

> इसपर मृतजी महाराजने कहा-हे ऋषिगणो। भगवान् विषयु, देवी लक्ष्यों, वायु, सरस्वती, शेषनाग, गृहश्रेष्ठ कुष्णद्वैपायन व्यासजीको नमस्कार कर मैं अपनी बृद्धिके अनुसार वर्णन करता है, आप लोग उन श्रेष्ठ तत्वस्वरूप भगवान् हरिके विषयमें सुने।

> ऋषियो । नारायणके समान न कोई है, न हुआ है और न भविष्यमें ही कोई होगा।' इस सत्यवाक्यके द्वारा आप सभीके प्रयोजनको सिद्ध कर रहा है।

> श्रीनकजीने पूछा—हे मुनिश्रेष्ठ। सर्वप्रथम भगवान् विष्णुको क्यों नमस्कार करना चाहिये ? हे विद्वन् ! हे सुवत ! यह आप बतानेकी कृपा करें।

सुतजी बोले-हे शीनक! सभी वेदोंके हारा एकमात्र बेद्य-जानने योग्य वे हरि ही हैं, बेदादि शास्त्रों तथा इतिहास एवं पुराजोंमें उन्होंको महिमा गायी गयी है, शीनकजीने कहा —हे ऋषियो। पौराणिकोंमें उत्तम इससिये वे विष्णु सर्वप्रथम बन्दनीय हैं, वे विष्णु ही सबमें सूतजी महाराज इस समय पवित्र सिद्धावममें विराजमान है। ज्ञानरूपसे प्रकाशित हैं। इसलिये हरि प्रणायके योग्य हैं। ये भगवान् वेदव्यासजीके शिष्य हैं और यतियोंके ईक्षर है। ये सभीमें प्रधान हैं और सबसे बढ़कर हैं, इसलिये भी

१-गरुडपुराणके कई संस्करणोंमें 'पूर्व' और 'उत्तर' केवल दो ही खण्ड दिये गये हैं।'ब्रह्मकाण्ड' बेंक्टेस्वर प्रेसद्वारा प्रकासित संस्करणमें ही उपलब्ध है। इसका संक्षित्र सारांश यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

२-नास्ति नारायणसर्थं न भूतं न भविष्यति। (१ ११८)

वायुके समान कोई गुरु। विष्णुपदीके समान कोई तीर्ध नहीं अन्तिम यह ब्रह्मकाण्ड ब्रेष्ठ है। है और विष्णुभक्तके समान कोई भक्त नहीं है।

कलियुगमें सभी पुराणोंमें तीन पुराण भगवान हरिको प्रिय और मुख्य हैं। उनमें भी कलिकालमें मनुष्योंका कल्याण करनेवाला श्रीमद्भागवत महापुराण मुख्य पुराण है। इसमें जिनसे सर्वप्रथम सृष्टि हुई है उन बोहरिका प्रतिपादन हुआ है, इस्रोलिये यह भागवत पुराण क्रेष्ट माना गया है। इस पुराणमें भगवान् विष्णुसे हो ब्रह्मा और महेश आदिको सृष्टि बतायी गयो है, हे निप्र। इसी प्रकार इसमें अनेक प्रकारके अधौंका तथा तत्वज्ञानका निरूपण हुआ है, इन्हीं सब विशेषकओंके कारण यह भागवत बेहतम पुराण माना गया है। इसी प्रकार विष्णुपुराण तथा गरुडपुराणको श्रेष्ठ कहा गया है। कलियुगर्मे ये तीन पुराण मनुष्यके लिये प्रधान बताये गये हैं। उनमें भी गरुडपुराणकी विशेषता कुछ अधिक ही है।

यह गरुडपुराण तीन अंशोंमें विश्वक है। इसके प्रथम अंशको कर्मकाण्ड, द्वितीय अंशको धर्मकाण्ड और तृतीय

भगवान् विष्णुके समान न कोई देवता है और न अंशको ब्रह्मकाण्ड कहा जाता है। उन तीनों काण्डोंमें भी

हे विप्रो ! इस तृतीयांश अर्थात् ब्रह्मकाण्डके श्रवणसे जो पुण्य होता है उसे भागवत-श्रवणके समान पुण्य फलवाला कहा गया है। इतना ही नहीं इस ब्रह्मखण्डके पारायणसं वेदपाठके समान फल प्राप्त होता है। इसमें संदेह नहीं है। हे विप्रगणी! इसके पाठ करनेका जो फल कहा गया है वह केवल अवण करनेसे भी मिल जाता है। भगवान हरिने ही व्यासरूपमें अवतरित होकर भागवत, विष्णु, रारुद्ध आदि पुराणोंकी रचना की है। विष्णु-धर्मका प्रतिपादन करनेमें गरुडपुराणके समान कोई भी पुराण नहीं है।' जैसे देखोंमें जनार्दन श्रेष्ट हैं, आयुधोंमें सुदर्शन श्रेष्ट हैं, यतोंमें अध्योध ब्रेड है, नदियोंमें गङ्गा श्रेष्ठ हैं, जलजोंमें कमल बेह है, बैसे ही पुराणीमें यह गरुडपुराण हरिके तत्वनिरूपणमें मुख्य कहा गया है। गरुडपुराणमें हरि ही प्रतिपाद्य हैं, इसलिये हरि ही नमस्कार करने योग्य हैं और हरि ही शरण्य हैं तथा वे हरि ही सब प्रकारसे सेवा करने योग्य हैं।' (अध्याय १)

गरुडजीको कृष्णद्वारा भगवान् विष्णुकी महिमा बताना तथा प्रलयकालके अन्तमें योगनिदामें शयन कर रहे उन भगवान् विष्णुको सृष्टि-हेतु अनेक प्रकारकी स्तृति करते हुए जगाना

स्तजीने पुन: कहा-हे शीनकओं ! एक बार गरूडजीने भगवान् विष्णु (कृष्ण)-से किस प्रकार उन्होंने सृष्टिकी रचना की इस विषयमें प्रश्न किया था, तब उन्होंने कहा था कि हे सकत। इस सृष्टिके मूल कारण अन्यय बिष्णु हैं और में व्यापक तत्व हैं, ये सर्थंत व्याप्त रहते हैं। पूर्ण होनेके कारण ये ही अवतार ग्रहण करते हैं, अनेक रूपोवाले इस दुश्य जगतको वे एक रूप बनाकर प्रलयकालमें अपनेमें लोन करके शयन करते हैं। उनके गुण, रूप, अक्यब तथा वैभवादि ऐश्वयोंमें भेदरूप दिखायी पडनेपर भी अभेदरूपमें उनका दर्शन करना चाहिये; क्योंकि भेदरूपमें दर्शन करनेपर शीघ्र ही अन्धकारके गर्तमें पतन हो जाता है।

ब्रह्म तथा इन्द्र, मरुत् आदि देवोंको, मुक्तीको तथा मुक्तिके लिये सचेष्ट जनोंको भी वे अपनेमें अवस्थित करके कल्पपर्यन्त स्थित होते हैं, उस समय सर्ववेदात्मिका लक्ष्मी भक्तिसे समन्त्रित हो भगवानुकी स्तृति करती हैं। उस समय विष्यु और लक्ष्मीको छोडकर कुछ भी नहीं रहता। पर्यक्रकपर्में वे हो देवी हो जाती हैं एवं वासरूपसे लक्ष्मीके रूपमें भी विराज्ञमान रहती हैं; वे देवी उस समय बहुत रूपोंमें सुशोधित होती हैं।

सभी जीवोंको अपने उदरमें प्रविष्ट कराकर शयन करते हैं.

हे शौनक ! गरुडको पुन: उन परम देवकी महिमाको बताते हुए ब्रीकृष्यने कहा—हे विष्णी! आप सभीमें उत्कृष्ट जिस समय प्रलयकालीन समुद्रमें व्यापक भगवान हैं, सभी देवोंमें उत्तम होनेके कारण आप उत्कृष्ट हैं,

१-गारुदेव समं नाहित विष्णुधर्मप्रदर्शने ॥ (१) ७१)

२-चरुडास्थ्रपुराणे तु प्रतिपायो हरि: स्मृत:। असे हरिनेमस्काचै राम्बे घोण्ये हरि: स्मृत:॥ (१। ७४)

है। आप हो एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म हैं। आपमें ही ब्रह्म उठें। हे आनन्दस्वरूप! आप सृष्टि और प्रलय करनेमें शब्दका मुख्य प्रयोग है। अन्य ब्रह्मा, रुद्रादिमें अमुख्य है। समर्थ है। अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण होनेके कारण आप हरिको ही ब्रह्म कहा जाता है। गुण आदिको पूर्णताके अभावसे अन्यको लिये प्रेरित करें और स्ट्रको सृष्टिके संहारके लिये प्रेरित ब्रह्म नहीं कहा जा सकता। गुण और कालमे देशका आनन्त्य होता है, किंतु देश-कालमें गुण या कार्यसे आनन्य नहीं होता। हे विष्णी! आपमें गुजोंको अनन्तता है। आपको न मैं जानता हूँ न ब्रह्मा तथा रुद्रादि देव ही जानते हैं। इन्द्र, अग्नि, यम आदि देव आपके गुणोंको जाननेमें असमर्थ हैं। देवर्षि नारद आदि ऋषि, गन्धवं आदि कोई भी आपको पूर्णरूपसे नहीं जानते; फिर सामान्य लोगोंकी तो बात ही क्या है ? आपसे ही देवोंकी सृष्टि हुई है। आपको ही शक्तिसे ब्रह्मा आदि सृष्टि करनेमें समर्थ होते हैं। बाह्यशाँके द्वारा वेदादिके जितने अधरोंका पाठ होता है, वे सभी आप हरिके नाम हो हैं, आपको वे अति प्रिय हैं। मेरे स्वामी भी आप हरि ही हैं, सभीके एकमात्र स्वामी आप ही हैं। वेंदोंमें आपकी स्तृतिका गान किया गया है, ऐसा जानकर जो वेदोंका पाठ करता है वह द्विजोंमें उत्तम है। उसे वेदपाठी कहा गया है, इससे विपरीत भाव

श्रीकृष्णजीने गरुडजीको विष्णुतस्य बतलाते हुए पनः कहा-हे महात्मन्। संसारमें अज्ञानी जीवद्वारा सैंकडों-करोडों महान्-से-महान् अपराध बनते रहते हैं, पर वे हरि बड़े ही दयालु हैं, कृपालु हैं, उनका तीन बार नाममात्र लेनेसे ही वे उन्हें समा कर देते हैं-

रखनेवाला वेदवादी कहलाता है।

महापराधाः सन्ति लोके महात्मन कोटिशश शतशः हरिश्च तान् क्षयते सर्वदेव नामश्रयस्मरणाहै कपालः॥

(4160)

कल्पानामें शयन कर रहे उन विष्णुको इस प्रकार स्तुति करते हुए जगाया गया-

वेदोंके द्वारा जानने योग्य यजस्वरूप है गोविन्द! आप शीघ्र ही प्रसन्त हो जायें और जगत्की रक्षा करें। परित्याग कर शोघ्र ही जाग गये। (अध्याय २)

आपके समान अथवा आपसे अधिक बडा और कोई नहीं हे केशव। अब आप अपनी योगनिद्राका परित्याग कर

हे प्रभी! ब्रह्माको प्रादुर्भुत कर आप उन्हें सृष्टि करनेके



करें। हे हरे। हे मुरारे। फल्पादिका अन्त करनेके लिये आप उठै। हे महास्मन्। जो दु:खस्वरूप अन्धकार व्याप्त है उसे इर करें। हे देव। भक्तोंको दु:खो देखकर आप भी दु:खी हो जाते हैं।

हे नारायण। हे वास्ट्रेव। हे कृष्ण। हे अच्युत। तथा हे माधव! अब आप उठें, हे वैकुण्ठ! हे दयामूर्ते। हे लक्मोपते! आपको बार-बार नमस्कार है।

हे सरस्वतीके ईश ! हे रुद्रेश ! हे अम्बिकेश ! हे चन्द्रेश ! हे शबीपते! आप ब्राह्मणी तथा गौओंके स्वामी हैं, आपका नाम ज्ञास्त्रप्रिय है। हे ऋग्वेद और यजुर्वेदके प्रिय! हे निवानमूर्ते! हे साम तथा अधर्वप्रिय! हे मुरारे! आप पुराणमूर्ति हैं और स्तृतियाँ आपको प्रिय हैं, इसलिये आप स्तृतिप्रिय कहलाते हैं। हे विचित्रमृतें। आप कमला (लक्ष्मी)-के पति हैं. आप शोध ही उठें, इस योगनिद्राका परित्याग कर

संसारमें ज्याप्त अन्धकारको दरकर जगत्की रक्षा करें। —इस प्रकार स्तुति करनेपर अजन्मा विष्णु योगनिद्राका

नारायणसे सृष्टिका प्रादर्भाव तथा तत्त्वाभिमानी देवोंका प्राकट्य

जागनेपर भगवान् विष्णुकी सृष्टि करनेकी इच्छा हुई। यद्यपि गया है। तीनीं रूपोमें अन्तर नहीं जानना चाहिये। हे इच्छाशक्ति उनमें सदा ही विद्यमान रहती है फिर भी उस खनेश्वर! गुणोंके सम्बन्धसे ही दुर्गा आदि तीन रूप हैं। समय उन्होंने उसी इच्छाशक्तिसे लौकिक स्वरूप धारण इनमें अन्तर नहीं है। इनमें जो अन्तर मानते हैं, ये परम किया और अपने उस रूपके द्वारा प्रलयकालीन अन्यकारको नष्ट किया।

महाविष्णुके सभी अवतार पूर्ण कहे गये हैं। उनका परस्वरूप भी पूर्ण है और पूर्णसे ही पूर्ण उत्पन्न हुआ। विष्णुका परत्व और अपरत्व व्यक्तिमात्रसे हैं। देश और कालके सामर्थ्यसे परत्व और अपरत्व नहीं है। उनका पूर्च रूप है, उस पूर्णसे पूर्णका ही विस्तार होता है और अन्तमें उस रूपको ग्रहण करके पुन: पूर्ण ही बच जाता है। पुथ्वीके भारका रक्षण आदि जो कार्य है वह उनका लौकिक व्यवहार है। अपनी गुणमधी मावामें भगवान अपनी शक्तिका आधान करते हैं। वे वीर्यस्वरूपी भगवान् वासदेव सभी देश तथा सभी कालमें सर्वत्र विद्यमान रहते है। इसी कारण ये पुरुष ईश्वर कहलाते हैं।

हे विनतापुत्र। अपनी माबामें प्रभू हरि स्वयं वीर्यका आधान करते हैं। बीर्यस्वरूप ही भगवान वासदेव हैं और सभी कालोंमें सभी अधींसे युक्त है।

इनके अचित्यवीयं और चित्यवीयंके भेदमे दो रूप हैं, एक स्वीरूप है और दूसरा प्रथकप। हे खगेन्द्र ! दोनों स्वरूप वीर्यवान हैं: इनमें अभेदका चिन्तन करना चाहिये।

देवी लक्ष्मी परपाल्यासे कभी वियुक्त नहीं हैं, वे नित्य उनको सेवामें अनुरक्त रहती हैं। नारायण नामसे प्रसिद्ध हरि यद्यपि पूर्ण स्वतन्त्र हैं किंतु लक्ष्मीके बिना वे अकेले कैसे रह सकते हैं। मुकृन्द हरिके चरणारविन्दमें परम आदरसे सुश्रुपा करती हुई वे लक्ष्मी सदा विराजमान रहती हैं। हरिके बिना देवी श्री भी किसी देश और कालमें पथक नहीं हैं। मायामें वे वीर्यवान परमात्मा अपनी शक्तिका आधान करते हैं। पुरुष नामक विभू उन हरिने तोनी गुणोंकी सृष्टि की है।

श्रीकृष्णने पुन: कहा-जिस प्रकार भगवान हरिने प्रकृतिके तीन गुणोंकी सृष्टि की, उसी प्रकारसे लक्ष्मीने भी तीन रूप धारण किये, जिनका नाम है- ब्री, भू और दर्गा। इनमेंसे सत्त्वाभिमानी रूपको ब्रीदेवी, रजोगुणाभिमानी

श्रीकृष्णने कहा-हे विनतासूत गरूड! योगनिदासे रूपको भूदेवी और तमोऽभिमानी रूपको दुर्गादेवी कहा अन्धतमस् नरकमें जाते हैं। साक्षात् परमात्मा पुरुष हरिने भी तीन रूप धारण किये. जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहे

लोकोंकी वृद्धि (पालन) करनेके लिये स्वयं साक्षात हरि सन्वपृष्णसे विष्ण् नामवाले कहलाये। सृष्टि करनेके लिये साक्षात् हरिने रजीगुणके आधिक्यसे ब्रह्मार्ने प्रवेश किया और संहार करनेके लिये वे हरि तमोगुणसे सम्यन्त होकर रुद्रमें प्रविष्ट हुए। वे अध्यय हरि त्रिगुणमें प्रविष्ट होकर जब सृष्टि-कार्योन्मुख होते हैं तो उनमें क्षोभ उत्पन होता है, फलस्वरूप तीनों गुणोंसे महत्तत्वका प्रादुर्भाव होता है। पुन: उस महानुसे ब्रह्म और वायुका प्राकट्य हुआ। यह महत्त्वल रज:प्रधान है। इस सृष्टिको गुणवैषम्य नामक सृष्टि जानना चाहिये।

इस प्रकारके विशिष्ट महत्तत्वमें लक्ष्मीके साथ स्वयं हरि प्रविष्ट हुए। हे महाभाग। उसके बाद उन्होंने उस महतत्त्वको शुन्ध किया। शोभके फलस्वरूप उससे ज्ञान-इन्य-क्रियात्मक जहम् तत्व उत्पन हुआ।

इस अहंतत्वसे तत्वाभिमानी देव शेष उत्पन्न हुए तथा गरुद्ध और हर उत्पन्न हुए। है खग। इस अहंतत्त्वमें साक्षात् हरि प्रविष्ट हुए। लक्ष्मीके साच भगवान हरिने स्वयं उस अहंतत्त्वको संक्ष्म्य किया। वैकारिक, तामस और तैजस-भेदसे अहम तीन प्रकारका है, उस अहम्के नियामक रुद्र भी तीन प्रकारके हुए। वैकारिक अहम्में स्थित रुद्र वैकारिक कहे गये हैं। तामसमें स्थित रुद्र तामस कहे गये और तैजसमें स्थित रुद्र लोकमें तैजस कहे गये। तैजस अहंतत्त्वमें लक्ष्मीके साथ स्वयं हरिने प्रविष्ट होकर उसे संधुक्ध किया। इससे वह दस प्रकारका हुआ जो श्रोत्र, चब् स्पर्श, रसना और घ्राण तथा वाक, पाणि, पाद, पाय और उपस्य- इन कमेंद्रियों तथा ज्ञानेद्रियोंके रूपमें दस प्रकारका कहा जाता है। वैकारिक अहंतत्त्वमें प्रविष्ट होकर हरिने उसे संध्य किया। महत्त्वसे एकादश इन्द्रियोंके एकादश अधिमानी देवता प्रकट हए। प्रथम मनके अधिमानी

इन्द्र और कामदेव उत्पन्न हुए। अनन्तर अन्य इन्द्रियोंके अभिमानी देवोंका प्रादुर्भाव हुआ। इसी प्रकार अष्ट वस् आदिका भी प्राकट्य हुआ। द्रोण, प्राण, भ्रूच आदि ये आठ वस देवता है।

रुद्रोंकी संख्या दस जाननी चाहिये। मूल रुद्र भव कहे जाते हैं। हे पक्षित्रेष्ठ! रैवन्तेय, भीम, बामदेव, वृशकपि, अज, समपाद, अहिर्बुधन्य, बहुरूप तथा महान्- ये दस स्ट कहे गये हैं। हे पक्षीन्द्र! अब आदित्योंकी सुनें- उरुक्रम, शक, विवस्तान, वरुण, पजंन्य, अतिवाह, सविता, अर्थमा, धाता, पृषा, त्वच्टा तथा भग-ये खरह आदित्य हैं। प्रभव और अतिवह आदि उनचास मस्दगण कहे गये हैं। हे खगेश्वर। विश्वेदेव दस हैं, उनके नाम इस प्रकार है-

पुरुदवा, आईव, धरि, लोचन, ऋतु, दक्ष, सत्य, वसु, काम तथा काल।

इन्द्रियोंके अभिमानी देवांके समान ही स्पर्श, रूप, रस आदि तत्त्वोंके अभिमानी अपान, व्यान, उदान आदि वायुदेवोंको उत्पत्ति हुई। ऐसे ही च्यवनको महर्षि भुगु और उत्यको बृहस्पतिका पुत्र कहा गया है। रैवत, चाक्षुष, स्वारोचिष, उत्तम, ब्रह्मसावर्षि, रुद्रसावर्षि, देवसावर्षि, दक्षसावर्णि तथा धर्मसावर्णि इत्यादि मन् कहे गये हैं। ऐसे ही पितरोंके सात गण भी प्रादर्भत हुए और इनसे वरुण आदिको पत्नीरूपमें गङ्गादिका आविर्भाव हुआ। इस प्रकार प्रस्थात्मा ओहरिसे सभी देवीका प्रादुर्भाव हुआ और वे नारायण लक्ष्मोंके साथ उनमें प्रविष्ट हुए। (अध्याय ३-५)

देवताओंद्वारा नारायणकी स्तृति

श्रीकृष्णने कहा-हे खगेश्रर। अपने-अपने तत्वमें हो गर्म। रिश्रत उन-उन तत्त्वोंके अभिमानी देवताओंने नारायण हरिको अनेक प्रकारसे पृथक-पृथक स्तृति को।

सर्वप्रथम श्री (देवी लक्ष्मी)-ने स्तृति प्रारम्भ की, उस समय उन्होंने मनमें सीचा कि प्रभुके तो एक-एक करके अनना गुण हैं। उन गुणोंकी स्तुति करनेमें मेरी कहाँ तक है। ऐसा विचार कर वे देवी लन्जासे अवनत होकर इस प्रकार कहने लगीं-

श्रीने कहा-हे नाय! में आपके चरणारविन्दांपर नतमस्तक हैं। आएके चरणोंके अलावा अन्य मैं कुछ भी नहीं जानती। हे देवदेव। हे ईबर। आपमें अनन्त गुल विद्यमान है। हे दामोदर। हे योगेन्द्र। आप अपने शरीरमें स्थान देकर मेरी रक्षा करें। स्तुति करनेके लिये मेरे लिये आपसे अधिक और कोई प्रिय नहीं है।

ब्रह्माजीने कहा-हे लक्ष्मीपते! हे जगदाधारस्वरूप विश्वमूर्ते। कहाँ आप जानके महासागर और कहाँ मैं अज्ञानी! आपर्मे असीम शक्ति है। मैं अल्पन्न हूँ और मेरी शक्ति भी अल्प है। हे प्रभो! हे मुखरे! आप सदैव मुझको अहंकार और ममताके भावसे दूर ही रखें। हे रमेश! मेरी इन्द्रियाँ सदा असन्मार्गपर प्रवृत्त होती हैं। वे सदा आपके चरणकमलमें अनुरक्त रहें, ऐसी कृपा करें। आपकी स्तुति

देवदेव ब्रह्मात्रीके बाद वायुदेव भगवान् नारायणके प्रेममे विद्वल हो हाच जोड़ते हुए पर्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगे-

वायुने कहा-हे प्रभी। सभी देवगण आपके सेवक हैं और आपके चरणारविन्दोंका सीनिध्य परम दुर्लभ है। हे रमेल। हे नाथ। लोकमें जो आपकी भक्तिसे विमुख है. जो पापकर्म करनेवाले हैं तथा जो अत्यन्त दु:छी हैं ऐसे प्राणियोपर अनुग्रह करनेके लिये ही आपका अवतरण होता है। हे वासुदेव! आप अपने अवतारोंके द्वारा गौ, ब्राह्मण और देवताओं आदिके क्षेत्र तथा कल्याणके लिये नाना प्रकारकी लीलाएँ किया करते हैं, आपके अवतारका अन्य दूसरा प्रयोजन नहीं है। हे पुण्यक्षेष्ठ! आपके जो चरितामृत हैं उनका गुणानुबाद करनेसे मेरा मन तृप्त नहीं होता, इसलिये हे मुकुन्द। एक अविचल भक्तिवाले भक्तके समान मुझे भक्ति प्रदान करें ताकि मेरा मन आफ्के पादारविन्दमें लगा रहे।

हे प्रभी। मेरी निद्रा आपकी वन्दनारूप बन जाय, मेरा सम्पूर्ण आचरण आपकी प्रदक्षिणा हो जाय और मेरा व्यवहार आपको स्तुति बन जाय, ऐसा समझकर मैं आपके चरणोंमें स्वयंको समर्पित करता है। हे देव! जितने पदार्थ करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है। इसलिये आप प्रसन्त हों। हैं उन्हें देखकर 'यह हरिकी ही प्रतिमा है' ऐसा मानकर स्तुतिके अनन्तर विधाता ब्रह्मा हाथ जोडे उनके सामने खडे हे देवदेव! मैं उसमें स्थित हरि-रूप समझकर आपका भजन करूँ ऐसी आप कृपा करें। आप हरिके प्रसन्न होनेपर लोकमें कौन-सी वस्तु दुलंभ रह बातों है अर्थात् उसे सब प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार स्तुति कर महात्मा वायदेव हरिके आगे हाथ बोडकर स्थित हो गये।

सरस्वतीने कहा—हे मुरारे! हे हरे! हे भगवन्! कीन ऐसा रसज़ है जो अपनी स्तुति अववा कीर्तनसे संतुष्ट हो पायेगा अर्थात् कोई नहीं. किसीमें ऐसी बुद्धि नहीं है जो आपकी स्तुति—प्रशंसा कर सके। हे देवदेव! आपके गुणानुवादका कीर्तन ज्यों ही कानमें पहुँचता है वैसे ही वह सांसारिक देहानुरिकिको नष्ट कर देता है, इतना हो नहीं वरन् जो घर, भार्या, पुत्र, पशु, धन-सम्पत्तिका व्यामोह, आसक्ति रहती है वह भी दूर हो जाती है।

हे अनन्तरेष! बेदोंसे प्रतिपादित जो आपका स्वरूप है उसे लक्ष्मी भी नहीं जानतीं, चतुर्मुख ब्रह्म भी नहीं जानते हैं, वायुदेव भी नहीं जानते हैं, फिर मुझमें यह तक कहीं है कि मैं आपकी स्तुति कर सार्के। इसलिये हे हरे। आप मेरी रक्षा करें।

हे खगेश्वर। इस प्रकार स्तृति कर देवी सरस्वती चुप हो गर्यो। तदननार भारतीने हरिकी स्तृति करना प्रारम्भ किया।

भारतीने कहा—है बहा। हे लक्ष्मीश। हे हरे। हे
पुरारे। जो आपके पुणोंमें नित्य ब्रद्धा रखता है, वह उन
पुणोंका गान करते हुए सांसारिक असत् विषयोंमें प्रवृत्त
अपनी बुद्धिमें संसारके प्रति विसाग उत्पन्न कर लेता है
और उसकी आपमें दृढ़ भक्ति हो जातों है और इस
भक्तिके बलपर है देवदेव। आपकी प्रसन्तता प्राप्त हो
जाती है। हरिके प्रसन्न हो जानेसे भगवान्का भक्तके लिये
प्रत्यक्ष दर्शन हो जाता है, इसलिये हे प्रभो। आपके गुणोंके
कीर्तनमें मेरी रित बनी रहे, जब ऐसी अनुरिक्त पुरुषमें हो
जाती है तो वह प्रीति समस्त सांसारिक दु:खोंको काट
डालती है और परमानन्दस्वकृप फलकी प्राप्त करा देती
है। हरिके गुणोंकी जो स्तुति नहीं करते उन्हें पाप लगता
है और उनका पण्य भी श्रीण हो जाता है।

हे खगेश्वर! इस प्रकार स्तुति कर भारती मौन हो गयाँ। उसके बाद शेषने हाथ ओड़कर स्तुति करते हुए केशवसे इस प्रकार कहा—

शेषने कहा—हे वासुदेव! मैं आपके चरणोंक प्रभावको नहीं जानता। इसे न रुद्र जानते हैं और न गरुड ही जानते हैं, मैं तो बहुत ही न्यून हूँ। अत: शरण देकर मेरी रक्षा करें। हे खगेश्वर! इस प्रकार स्तुति करके शेष मौन हो गये। उसके बाद पश्चिरात्र गरुडने स्तुति करना आरम्भ किया।

गरुडने कहा—हे प्रभी! आपके चरणोंकी स्तुति में क्या कर सकता हैं। मेरा मन तो आपके चरणकमलमें ही समर्पित है। मैं तो पक्षियोनिमें उत्पन्न हैं। इस मुखसे आपकी स्तुति कैसे सम्भव है? आपके अनन्त गुणोंकी प्रशंसा करनेकी शक्ति भला मझमें कहाँ है?

इस प्रकार विनयपूर्वक स्तुति कर गरुड भीन हो गये। इसके बाद रुद्र स्तुति करने लगे।

रुद्धने कहा—हे भूमन्! हे भगवन्! आपकी जैसी स्तुति होनी चाहिये वह मैं नहीं जानता। आपके कल्याणकारी नरजोंक मूलमें मेरी भांक बनी रहे। ईश! अपनेमें स्थान देकर मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तुति कर रुद्रदेव शान्त हो गये। है पश्चित्रेष्ट। तदनन्तर खारुणी, सीपर्णी तथा पार्वती आदि देखियोंने भी उन हरिको बड़े ही भावभक्तिसे स्तुति कर उनको शरण ग्रहण की।

श्रीकृष्णने पुन: कहा—हे खगेश्वर! अननार इन्द्रने उनकी स्तुति करते हुए कहा— हे देवदेव। आपके स्वरूपको हृदयमें जानते हुए भी

जो मूड स्तवनके लिये उत्सुक होता है, हे चक्रपाणि। बिना जाने भी तुम्हारी स्तुति करना यह आपका अनादर ही है; क्योंकि आपके यथार्थ स्वरूपको, गुणोंको वाणोंके द्वारा व्यक्त करना सम्भव नहीं है, फिर भी आपको स्तुति करनेमें आपके नामका उच्चारण होगा; अत: यह पुण्य फल तो देनेवाला हो होगा। ऐसा समझकर आपकी स्तुति की ही जाती है। हे प्रभो! जब स्ट्रादि देव भी आपकी स्तुति करनेकी जाति नहीं रखते तो मुझमें ऐसी सामध्ये कहाँ? इस प्रकार देवाधिदेव हरिकी स्तुति कर नतमस्तक हो अंतित बाँधकर इन्द्र भीन हो गये।

देखी शबीने स्तुति करते हुए कहा—हे देख! वज, अंकुश, ध्वज तथा कमलसे चिहित आपके चरणकमलोंका मैं सदा चिन्तन करती हूँ। हे इंश! आपके चरणरजका मैं सदा स्परच करती हूँ। हे कृपालु! हे भक्तवत्सल! आप मेरी रक्षा करें। इस प्रकार शबी देवी स्तुतिकर चुप हो गर्यों। इसके बाद रतिने स्तुति करना आरम्भ किया।

रतिने कहा—हे नर-रूप धारण करनेवाले हरे। आपने अपने सेवकॉपर अनुकम्पा करनेके लिये यह अवतार करती हैं। हे देव। जो कुश्चित केशराशिसे सुशोधित है तथा ब्रह्मा, रुद्र, लक्ष्मी आदिद्वारा स्तुत्य है, मैं आपके उस श्रीनिकेतन मुखकमलका ध्यान करती हैं, आप मेरी रक्षा करें। इस प्रकार अतिज्ञय आदरके साथ रति स्तुति कर भगवानुके समीप ही स्थित हो गयाँ। रतिके बाद दक्षने स्तुति आरम्भ की।

दक्षने कहा-भगवानुका चरणोदकरूप जो तीर्थ है. उसका मैं सदा चिन्तन करता है। वह चरणजल ब्रायके द्वारा भलीभौति सेवित है। ब्रह्म आदि सभी देवोंके द्वारा वन्दनीय है। वहीं पवित्रतम चरणोदक गङ्गारूपो नदियोंमें श्रेष्ट तीर्थ हुआ, जिस पवित्र पदरजमितित गढ़ाको अपने जटाकलापमें धारण करनेसे अशिव भी शिव हो गये। हे कहचेश। हे विष्णो ! ऐसे कृपावतार आपकी स्तृति करनेको शक्ति मुझमें महीं है। हे निदानमूर्ते। आप सभी प्रकारसे मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तृति कर दक्ष चुप हो गये। इसके बाद बृहस्पतिने स्तुति करना आरम्भ किया।

यहस्पतिने कहा-हे ईश! मैं आपके मुखकमलका सतत चिन्तन करता है, आप मुझे सांसारिक विषयोंसे विरक्त करें। स्त्री, पुत्र, मित्र तथा पशु आदि पे सभी नाशवान् हैं, इनके प्रति मेरी जो आसक्ति है उसे आप नष्ट कर दें। हे देख। इस संसारचक्रमें भ्रमण करते हुए मैंने यह अनुभव किया है कि 'यह संसार दुःखसे परिच्यान्त है।' इसीसे मुक्ति पानेके लिये मैं आपकी करणमें आया है। है देवाधिदेव। मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तृति कर बृहस्पति मौन हो गर्य। तदनन्तर अनिरुद्धने स्तुति करना आरम्भ किया।

अनिरुद्धने कहा-हे हरे। आपकी रसमयी कथाके आस्वादका परित्याग करके जो स्त्रियोंके विश्व आदिसे परिपूर्ण शरीर-रसके आनन्दमें निमान रहता है, यह मन्दबृद्धि सुकरके समान है। हे मुरारे! मञ्जा, अस्थि, पित् कफ, रक्त तथा मलसे परिव्याप्त और चर्म आदिसे आवेष्टित स्त्री-मखर्मे आसक्ट व्यक्तिका पतन ही होता है। है विभी! मूल-ऐसे पापमतिके लिये आपको मायाका ही बल है। इस अत्यन्त मात्र दु:खरूप तथा लेशमात्र मुखसे भी रहित संसार-चक्रमें भ्रमण करता हुआ मैं मल-नि:सारण करनेवाले बाद अग्निने पुरुषोत्तमकी स्तुति की। नौ छिद्रोंसे युक्त इस शरीरमें आसक्त होता हुआ अत्यन्त मृद्रवृद्धि हूँ। हे देव! आपके सत्कथामृतको छोड्कर मैं आज्यसिक हथ्यका वहन करता हूँ। जिसके तेवसे मैं उदरमें

धारण किया है, मैं आपके उस मुखारविन्दका सदा चिन्तन घरमें रहते हुए परिवारके पालनमें अनुरक्त तथा दान आदि जुध कमोंसे विरत हो गया हैं। हे देव! आपको नमस्कार है। आप मेरे इस संसार-मलको दूर करें और दिव्य कचामृतके पानको शक्ति दें। मैं आपके सद्गुणोंका स्तवन करनेमें समर्थ नहीं है।

हे खगेश्वर! अनिरुद्ध इस प्रकार स्तुति करके चुप हो ग्ये। इसके बाद स्वायम्भव मनुने स्तुतिका उपक्रम किया-

स्वायम्भव मन्ने कहा-हे देव! आपको स्तुति करनेके लिये प्रयत्नशीलमात्र होनेसे गर्भका दु:ख नहीं होता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। हे प्रभो! आपकी इसी कुपासे मैंने परम पुरुषपदको प्राप्त किया है। तदननार स्तुति कारते हुए चरुणने कहा-हे प्रभी!

आपको इच्छासे रचित देहरूपी घरमें, पुत्रमें, स्त्रीमें, धनमें, इत्यमें 'यह पेश है' और 'मैं इसका है' इस अल्पबुद्धिके कारण मुखंबन संसारकची दु:खमें निमान हो जाते हैं, इसलिये मेरी ऐसी कुबुद्धिका विनास कर आप अपने वरणोंकी दासता मुझे प्रदान करें। इस प्रकार स्तुति कर वरण हाय जोड़कर यहीं स्थित हो गये। इसके बाद देवपि नारदने हरिकी स्तुति की।

चारदने कहा-हे जिल्लो। मेरे लिये आपके नामके बचन तथा कोतंनके अतिरिक्त अन्य कोई स्वादुयुक्त तस्व नहीं है इसलिये आप मुझे पवित्र करें। मेरी जिहाके अग्रभागमें आपका नाम सदा विद्यमान रहे । जिसकी जिह्नामें हरिनाम नहीं है वह मनुष्यरूपमें गदहा ही है। हे देव! में आपके स्वरूपको नहीं जानता, मुझपर आप कृपा करें। इस प्रकार नारद स्तुति कर देवाधिदेवके सामने स्थित हो गये। अननार महात्मा भूगु स्तुति करने लगे।

भूपने कहा-गरुड-जैसे आसनपर आसीन होनेवाले हे देव। आपके लिये कौन-सा आसन शेष रह जाता है। कौंस्तुभ-जैसा आभूषण धारण करनेवाले आपके लिये और कौन-सा भूषण रह जाता है। लक्ष्मी जिनकी पत्नी हों डनको और क्या प्राप्तव्य रह जाता है। हे वागीश! आप वाणीके ईस हैं फिर आपके विषयमें क्या कहना? इस प्रकार भगवान् हरिको स्तुति कर भुगु मौन हो गये। इसके

अग्निने कहा-जिसके तेजसे में तेजस्वी और

प्रविष्ट होकर पूर्णशक्तिसम्पन हो अनका परिपाक करता है इसलिये में आपके सदगुणोंको कैसे जान सकता है?

प्रसतिने कहा-जिसके नामके अर्थका विचार करनेमें भी मुनिगण मोहमग्न हो जाते हैं और सदा जिससे देवगण भी भयभीत रहते हैं, मान्धाता, भ्रव, नारद, भृगु, वैवस्वत आदि जिसकी प्रेपसे स्तृति करते हैं ऐसे हितचिन्तक आप विष्णुको मैं प्रणाम करता है।

हे खगेश्वर! प्रसृतिने इस प्रकार स्तृति कर मौन धारण कर लिया। तदनन्तर ब्रह्मनन्दन वसिष्ठने विनयसे अवनत होकर स्तृति करना प्रारम्भ किया।

वसिष्ठने कहा-विधाता प्रथको नमस्कार है, असत्-स्वरूपको नष्ट करनेवाले देवको पुन:-पुन: नमस्कार है। है नाथ! में आपके चरणकमलोंमें सदा नतमस्तक हैं। हे भगवन्। हे वासुदेव। मेरी सदा रक्षा करें। इस प्रकार स्तुति करके वरित्रष्ठ भीत हो गये। इसके बाद ब्रह्मके पुत्र महर्षि मरीचि तथा अतिने अतिशय भक्तिके साथ स्तृति करते हुए नारायणको प्रसन्न किया।

तदनन्तर स्तवन करते हुए महर्षि अंगिराने कहा-हे नाथ! मैं आपके अनन्त-बाहु, अनना-बक्षु और अनन्त मस्तकसम्यन्न विराद् स्वरूपको देखनेमें असमर्थ है। आपका यह स्वरूप हजारीं-हजार मुक्टीसे अलंकुत है। अतिशय पुल्यवान अनेक अलंकारोंसे सुनोधित ऐसे अनन्तपार-स्वरूपकी स्तुति करनेमें भी मैं असमर्थ हैं।

हे खगेश्वर! इस प्रकार ऑगिराने स्तृति कर मौन धारण किया। इसके बाद पुलस्त्य स्तृति करनेके लिये उद्यत हुए।

प्लस्त्यने कहा-हे भगवन्। आप अपने उपासकोंक लिये जैसा मङ्गलकारी स्वरूप धारण करते हैं, उसी भुवनमङ्गल स्वरूपका दर्शन मुझे भी करावें। ऐसे रूपवाले आपको नमस्कार है। आप नरकसे रक्षा करनेवाले हैं। हे देव! मैं आपके गुणोंका वर्णन करनेमें समर्व नहीं हैं। हे भगवन ! मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तुति कर पुलस्त्वजी मीन हो गये। इसके अनन्तर पुलह स्तृति करने लगे।

पुलहने कहा-हे भगवन् । महापुरुषोंका कथन है कि व्यर्थ ही है तो फिर ऐसे निष्काम आपको ये सब अर्पित मैं प्रचाम करता है। आप भगवान वासुदेव ही अपने

न करके मैं निष्काम बुद्धिसे आपको प्रणाम समर्पित करता हैं। हे वैकुण्टनाथ! आपके स्तवनकी शक्ति मुझमें नहीं है। इस प्रकार स्तुति कर पुलह मौन हो गये। उसके बाद

कत् स्तुति करने लगे। कत्ने कहा-हे भगवन्! प्राणोंके निकलते समय आपके नाम ही संसारजन्य दु:खके विनाशक हैं। जो अनेक

जन्मोंके पापको सहसा विनष्ट कर निर्मल मुक्ति प्रदान करते हैं. मैं उन नामशक्तिको शरणमें हैं।

हे विष्यो ! जो आपको भक्ति करनेमें असमर्थ हैं और केवल आपका नाममात्र लेते हैं, वे भी मुक्तिको प्राप्त करते हैं फिर जो भक्तिपूर्वक आपका स्मरण करते हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या!

ये भक्ता विकास विकास नाममात्रक अल्पकाः। तेऽपि मुक्ति प्रवानवाश किमृत ब्याचिनः सदा।। (WIEW)

इस प्रकार स्तुति करके क्रतु भी मौन हो गये तब वैवस्वत मनुने स्तृतिसे नारापणको प्रसन्न किया।

विश्वापित्रने स्तृति करते हुए कहा-हे भगवन्! मैंने आपके चरणकमलोंका न तो ध्यान किया और न नित्य संध्योपासना हो की। जानरूपी द्वारके किवाड़को खोलनेमें दश धर्मका उपार्जन भी मैंने नहीं किया। अन्त:करणमें व्याप्त मलके विनाश करनेमें अत्यन्त कुशल आपकी कथा भी मैंने कानोंसे नहीं सुनी इसलिये हे देव! मुझ अनासकी आप सदा रक्षा करें-

न प्र्याते चरणाम्बजे भगवतो संध्यापि नान्धिता ज्ञानद्वारकपाटपाटनपद्रश्रेमीऽपि नोपार्जितः।

अन्तर्ध्यांमपलाभिषातकरणे पद्वी भूता ते कथा

नो देव अवजेन पाहि भगवन मामत्रितृत्यं सदा। (9010)

— इस प्रकार स्तुति कर महामृति विश्वामित्र हाथ जोडकर खडें हो गये।

हे खगेश्वर। क्रतुके बाद मित्रने जगत्के कारण नारायणकी स्तृति करना आरम्भ किया।

मित्रने कहा-संसारके बन्धनको विनष्ट करनेवाले हे निष्काम तथा रूपरहित भगवानुको समर्पित स्तान, उत्तम देव! आप प्राणियोंको संसारसे मुक्ति दिलानेवाले हैं तथा वस्त्र, दूध, फल, पुष्प, भोज्य पदार्थ तथा आग्रधन आदि सब कल्यानके निधान हैं, मैं अज्ञानी हूं, आपके चरणारविन्दोंको विषयमें जानते हैं। आपके यथार्थ स्वरूपको न मैं जानता निग्रह करनेसे विष्णुके परमपदको प्राप्त करते हैं, इसलिये हैं न अग्नि तथा न ब्रह्मा-विष्णु-महेश-ये तीनों देवता, हे प्रभो! द्यापूर्वक उनके समान मेरी भी रक्षा करें। न मुनीन्द्र ही जानते हैं; परम भागवत भी आपके स्वरूपको वदनन्तर भगवानुके पार्षद वायुपुत्र महाभाग विध्वक्सेनने नहीं जान सकते तो अन्यकी बात ही क्या है? हे परात्यर, हरिकी स्तृति करना प्रारम्भ किया। स्वामी! आप मेरी नित्य रक्षा करें।

गये, उसके बाद ताराने स्तृति करना प्रारम्भ किया।

प्रति हड भक्ति करते हैं. आपके लिये जो सभी कर्मोंको यदि मेरो प्रीति है और इनका सदा मुझे स्थरण है तो निश्चित त्याग देते हैं और अपने स्वजनों तथा बान्धवोंका परित्याग हो मुझे आपका आशोबांद प्राप्त होगा, इसमें संदेह नहीं है। कर देते हैं, आपको कथाको सनकर जो दसरेको सुनाते हैं और कहते हैं, इस प्रकारके ये साधुगन संशोक प्रति है पश्चिमन। इस प्रकार बह्या आदि देवों तथा लक्ष्मी असक्तिसे रहित हो जाते हैं। हे प्रभो ! जैसे आप उन साधुगर्वो— आदि देवियोंने भगवान् हरिकी पृथक्-पृथक् स्तृति की भक्तोंकी रक्षा करते हैं वैसे ही मेरी भी सदा रक्षा करें।

निर्मतिने कहा-योगपूर्वक आपके प्रति समर्पित जन थकिसे परम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। यक बद्धाभावसे की गयी सेवासे, सांसारिक विषयोंकी अनासीक और चितका आश्रय प्रदान किया। (अध्याय ६--९)

विध्वक्सेनने कहा-पूर्णान-दस्वरूप भगवान कृष्ण यदि हे खग! इस प्रकार हरिको स्तृति कर मित्र मौन हो . सदा मोख प्रदान करनेवाले हैं, यदि मेरी अपरोक्ष साधनरूपा पाम भक्ति है और गुरुसे लेकर ब्रह्मण्डके साधुओंके प्रति ताराने कहा -हे विष्यो ! अनन्य-भावसे जो आपके यदि मेरी निष्कपट पछि है साथ ही तुलसी आदिके प्रति इस प्रकार स्तृति कर महाभाग विष्यवसेन चुप हो गये। और वे अंजिल बाँधकर मीन हो उनके सामने स्थित हो गये।

भगवानुने उन सभीमें प्रविष्ट होकर उन्हें अपने शरीरमें

नारायणसे प्राकृत तथा वैकृत सृष्टिका विस्तार

गरुडजीने कहा-हे प्रथी! देनताओंके द्वारा इस प्रकार स्तृति किये गये भगवान् विष्णु उन्हें आवय देकर स्वयं उन्होंमें किस प्रकार प्रक्रिष्ट हुए और किस प्रकार सुद्धि हुई ? हे कपाली। आप इसे भलीभाँति बतायें।

श्रीकष्णने कहा-वे भगवान महाप्रभ उन सम्बन्धरहित तत्त्वोंमें प्रविष्ट हुए, इससे उनमें क्षोभ उत्पन्न हुआ। सबसे पहले भगवानूने हिरण्मयात्मक ब्रह्माण्डकी सृष्टि को, जो पचास कोटियोजनमें चारों और विस्तृत वा। उसके ऊपर अवस्थित अत्यन्त सक्ष्म भाग उतने ही विस्तारमें फैला बा जितनेमें उस हिरण्यय अण्डका जिस्तार था। उसके भी कबन्ध है। दूसरा आवरण ऑग्नदेवका है, तोसरा आवरण ब्रह्मण्ड आदिका सर्वन कर अव्ययात्मा भगवान् हरि उन-महात्मा हरका है, बौथा आवरण आकाशका है, पाँचवाँ उन तत्वाभिमानी देवताओंके साथ उस ब्रह्माण्डके ऊपर-अञ्चाकृत आकाश है; इसके विस्तारको कोई सोमा नहीं भी तत्त्व इस अण्डरूप जगत्में बाह्यरूपसे उत्पन हुए हैं.

आठवाँ आवरण आकाशका है। उसके मध्यमें विरजा नदी है। इसकी परिधि पाँच योजन विस्तीर्ण है। यह अतिशय पुण्यवती नदी है। विरवा नदीमें भलीभीति स्नान करके लिंग-देहका भी परित्याग कर हरिके मोधपदकी प्राप्ति होती है। प्रास्थ कर्मोंका क्षय हो जानेपर ही विरजा नदीमें स्नान करना सम्भव होता है।

हे खगेशर। प्रलयमें भी इस विरजा नदीका लय नहीं होता, उसे लक्ष्मीस्थरूपा समझें; क्योंकि वह प्राणियोंके लिंगतरीरका नाश करनेवाली है। विरजा नदीके बाद व्याकत आकाश है जो नि:सीम है, उसकी अधिमानिनी ऊपर पचास कोटि भतल था। वह सात आवरणोंसे चारों देवता लक्ष्मी हैं। सृष्टिक समय उस ब्रह्माण्डक अभिमानी ओर परिधिद्वारा थिरा हुआ था। पहले आवरणका नाम देवता बढ़ा। थे, जो विराट नामसे कहे गये। इस प्रकार आवरण अहंकारका है, छठा आवरण महत्तत्वात्मक है नीचे-सर्वत्र व्याप्त होकर नित्य स्थित रहते हैं। हे पश्चिराज! और सातवों आवरण त्रिगुणात्मक है। इसके अननार यह प्राकृत सृष्टि है, अव्यक्त आदिसे लेकर पृथ्वीतकके जो है। इसी मण्डलके मध्यमें अव्यय हरि विराजमान रहते हैं। वे सभी प्राकृत सुष्ट कहे जाते हैं और ब्रह्माण्ड तथा

ब्रह्माण्डानार्वर्ती सृष्टि वैकृत सृष्टि कही जाती है।

हे अण्डज । जिन्हें पुरुष कहा गया है वे हरि तो साक्षात्

भगवान पुरुषोत्तम ही हैं। उन विष्णुने उस हिरण्यय अण्डके मध्य विद्यमान जलराशिमें एक हजार वर्षतक शयन किया था। उस समय लक्ष्मी ही जलरूपमें थीं, शय्यारूपमें विद्या थीं, तरंगरूपमें वायु थे और तम ही निदारूपमें था। इसके अतिरिक्त वहाँ और कोई नहीं था। उसी उदकके मध्यमें नारायण योगनिद्रामें स्थित थै। है पक्षित्रेष्ठ। उस समय लक्ष्मीने उस जलगर्भमें शयन कर रहे हरिकी स्तृति को। हरिको प्रकृति उस समय लक्ष्मो तथा धरा (भदेवी)-इन दो रूपोंको धारण कर लेती है और शेष चेदका रूप धारण करके जलके मध्य सोये हरिकी स्तृति करते हैं। स्तुतिसे प्रसन्त हुए नित्य प्रबुद्ध वे महाविष्णु निदाका परित्याग कर प्रबुद्ध हो उठे। उस समय उनकी नाभिसे सम्पूर्ण जगतुका आश्रयभूत हिरण्यय यद प्रादुर्भृत हुआ। इसे प्राकृत सृष्टिके रूपमें समझना चाहिये। उस सृष्टिकी अभिमानिनी देवता भूदेवी भी। वह पद्म असंख्य सुर्योके समान प्रकाशवाला कहा गया है। चिदानन्दमय विष्णु उससे भिन्न हैं, उस पद्मको भगवानुके किरीट आदि

हरिके किरीट आदि भी दो प्रकारके हैं- एक स्वरूपभूत तथा दूसरे स्वरूपभिन्त । उस पद्मसे सभी लोकॉक विधायक ब्रह्माण्डकी सृष्टि हुई। उस हिरण्यय पचसे बतुर्मुख ब्रह्मा प्रादर्भत हुए। किसने मेरी सृष्टि की है, वह प्रभु कीन है? ऐसी जिज्ञासावण ब्रह्मा उस पदाके नालमें प्रविष्ट हो नये। किंतु अज्ञानवश जब वे नारायणके विषयमें कुछ जान न सके तब उस समय उन्हें 'तप', 'तप' इस प्रकार वे दो शब्द सनायी दिये। उन सब्देंकि अभिप्रायको डीक-टीक समझते हुए विष्णुमें एकमात्र निष्ठा रखनेवाले ब्रह्माने हरिकी प्रीति प्राप्त करनेकी इच्छासे दिव्य हजार वर्षतक तपस्या की।

आभूषणोंके समान समझना चाहिये।

दिव्य वर प्रदान करनेके लिये प्रकट हो गये। भगवान चतुर्भुजधारी थे, कमलके समान उनके नेत्र थे, वक्ष:स्थल बॉबल्ससे सुशोधित वा तथा गला कौस्तुभमणिकी मालासे अलंकृत था, वे अत्यन्त प्रसन्न मुद्रामें थे, उनके नेत्र करुणासे आई थे। ऐसे उन नारायणका ब्रह्माको दर्शन हुआ।

धकाँके वशमें रहनेवाले, अत्यन्त दयाल परब्रह्मस्वरूप नारायणको अपने समक्ष देखकर ब्रह्माने बड़ी ही ब्रद्धा-भक्तिसे उनको पुजा की और उनके पादतीर्थको मस्तकपर धारण किया। तदनन्तर धक्तिमानोंमें श्रेष्ठ तथा महाभागवतोंमें प्रधान ब्रह्माने उन हरिकी अनेक प्रकारसे स्तृति की और उनके सामने ये हाथ जोड़कर खडे हो गये। श्रीकृष्णने पुन: कहा-ब्रह्माजीके द्वारा स्तुति किये

जानेपर दयाके सागर भगवान मधुसदन मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले- हे ब्रह्मन्। मेरे प्रसादसे इन देवताओंकी येसी ही मृष्टि आप करें, जिस प्रकार पूर्वकालमें आपके द्वारा हुई थी। यदापि इस सृष्टि-कार्यसे आपका कोई प्रयोजन नहीं है, फिर भी मेरी प्रसन्ततके लिये आप ऐसा करें। हरिके ऐसा कहनेपर ब्रह्माने उन हरिकी स्तुति करके उनकी प्रसन्नताके लिये मनमें सृष्टि करनेका निर्णय लिया। तब महत्तरवात्मक ब्रह्माने सर्वप्रथम जीवके अभिमानी देवता वायदेवकी सृष्टि की। हे गरुड। वे ही प्रथम सृष्टिके पुरुपाल्या है। तदनन्तर ब्रह्माने अपने दाहिने हाथसे ब्रह्माणी तथा भारती नामक दो देवियोंकी सृष्टि की। बार्वे हाथसे सायके पुत्र महत्तरसात्मक अनलको उत्पन्न किया। ब्रह्माके दाहिने हाथसे ही अहंकारात्मक हरकी सृष्टि हुई। इसी प्रकार गरुड, रोष, वाय, गायजी, बारुणी, सीपणी, चन्द्र, इन्द्र, कामदेव, इन्द्रियोंक अभिमानी देवताओं, मनु-शतरूपा, दक्ष, नारदादि ऋषियों, कस्यप. अदितिदेवी, यसिष्ट आदि ब्रह्मज्ञानी ऋषियों, कुबेर, विष्क्रक्सेन तथा पर्जन्य आदि देवसृष्टिका उनसे प्रादुर्भाव हुआ। हे खगेश्वर। मेरी कृपासे ही ब्रह्मा इस हे खगेन्द्र! तपस्यासे प्रसन्न होकर इरि भक्त-बेट ब्रह्मको सृष्टि-कार्यमें समर्थ हो सके। (अध्याय १०—१३)

नारायणकी पूर्णताका वर्णन तथा पदार्थीके सारासारका निर्णय

श्रीकृष्णने कहा—हे पश्चिराज! जो मूलस्वरूप पूर्ण रोममें उतना ही चल है जितना उनका समग्र बल है। इस गुणसम्पन्न सर्वथा स्वतन्त्र, पुरातन पूर्ण शारीस्वाले आनन्दस्वरूप प्रकार वे सब प्रकारसे पूर्ण हैं। अत: वे ही सबके कर्ता भगवान् अनल हैं उनके समान कोई भी नहीं है। उनके हैं, वे ही सबके हती हैं और वे ही इस सृष्टिके सार अंशके चरण आदि सभी अङ्ग अपनेमें पूर्ण हैं। उनके एक-एक भोका भी है।

हे पक्षीन्द्र! वे हरि सारहीन अथवा असार-अंशका भोग नहीं करते. समस्त द्रव्य पदार्थीके सारभागको ही ग्रहण करते हैं। वे नित्य भक्तोंके प्रति दवाल और भक्तोंके हितचिन्तक हैं। भक्तोंद्वारा निवेदित भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थों तथा उपचारोंके सारभागको वे बडे ही आदरके साथ ग्रहण करते हैं। समयद्वारा दुषित एवं भावदृष्ट पदार्थीको नारायण ग्रहण नहीं करते; द्राक्षा आदि जो फल उन्हें समर्पित किये जाते हैं, वे भी काल आदिके प्रभावसे दोषयुक्त हो जाते हैं इसलिये हे पश्चित्रेष्ठ! अब अगप द्रव्योंक सारासारके विषयमें सनें-

जामन आदिके फल अतिज्ञय पक्रनेके बाद चार दिनमें सारहीन हो जाते हैं। एक मासके बाद कटहल असार हो जाता है। छ: मासके बाद खज़र तिन्ह पदार्थके सनान हो जाता है। पवित्र नारिकेल फोडनेके बाद एक दिन-रातके अनन्तर असार हो जाता है। सुखे नारिकेल और खजुरमें यह दोष नहीं आता।

हे पश्चिराज! एक वर्षके बाद सुपादी, एक पादी (२४ मिनट)-के बाद ताम्बूल, तीन पॅटेके बाद पके हुए अन और सूप आदि असार हो जाते हैं। तीन पक्षके कद तेलमें पकाया पदार्थ और बारह घंटेके बाद घोमें पकाया हुआ पदार्थ असार हो जाता है। नौ घंटेके बाद शाक नि:सार हो जाता है। जम्बीरी नीव, शृंगवेर, औवला, कपूर तथा आम एक वर्षके बाद निःसार हो जाते हैं। परंतु हे दिन। तुलसी

सदा सारवृत ही रहती है, एकादशीके दिन गीली हो या मुखी हो अथवा जलके साथ हो वह सदा सारवान ही बनी रहती है-

तुलसी सर्वदा सारा एकादश्यामपि आर्डा वाध्यचवा शुष्का सार्डा सारवती (88188)

सारवृता तुलसीको ग्रहण करना चाहिये। एकादशीके दिन अन्न निःसार हो जाता है। हे खगेश्वर! एकादशीके दिन मनुष्योंके लिये हरिका तीर्थ (चरणामृत) सार होता है। है गरुड! आषाड मासमें शाक, भाइपद मासमें दही, आश्विन मासमें दूध नि:स्सार हो जाता है, इसी प्रकार हरिके नामांच्यारसे विहीन मुख और हरिको नैबेशके रूपमें अर्पित किये बिना बना हुआ समस्त भोजन नि:सार हो जाता है-त मुखं निःसारमुख्यते। विद्वीनं हरिवेद्यहीनस्तु पाको निःसार

तीन दिनमें अलग्रीका पुष्प, एक प्रहरमें परिलका, आधे पहरके बाद घमेली सारहीन ही जाती है। तीन वर्षतक केसर, इस वर्षतक कस्तुरी तथा एक वर्षतक कपुर सारवान् कहा गया है, परंतु चन्दनको सदा सारबान ही कहा गया है-समार्गमितिसम्प्रोकं चन्द्रनं सर्वदा स्मृतम्॥ (SKIRS)

(अध्याय १४)

परमात्मा हरि तथा देवी महालक्ष्मीके विभिन्न अवतारोंका वर्णन

किसी भी देश अथवा कालमें कोई नहीं है। उन्हों हरिने नामसे अवतार लिया। वे हो हरि कपिल मुनिके रूपमें विष्णुने स्थूल देहसे ब्रह्मादि देवोंकी सृष्टि को। उन्हों नामक ठकेविद्याका उपदेश दिया। वे ही सिन्वदानन्द हरि विष्णुने सनत्कुमार आदिके रूपमें शरीर धारण किया और सूर्यंके वंशमें आकृतिके गर्भसे प्रादुर्भृत हुए और उन्होंने ही

हे पश्चित्रेष्ठ। हरि पूर्णानन्दस्वरूप है। उनके समान स्वरूप धारण किया। बदरिकाश्रममें उन्होंने ही नारायण लोककल्याणके लिये सम्पूर्ण सद्गुणोंके सागरके रूपमें अवतरित हुए और उन्होंने ही कालकवलित चौबीस अवतार ग्रहण किया। वे ही विष्णु समस्त अवतारीके वत्त्रोंवाले सांख्यशस्त्रका आसुरिके लिये उपदेश किया। वे बीजभूत हैं, वे ही वासुदेव कहलाते हैं, वे वासुदेव ही ही नारायण अजियली देवी अनस्यासे दतात्रेयके रूपमें संकर्षण, प्रद्युप्त तथा अनिरुद्धके रूपमें प्रकट हुए। उन्हों प्रकट हुए और उन्होंने हो राजा अलर्कको आन्वीक्षिकी तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा इन्द्रियनिग्रहको शिक्षा दी। उन्होंने हो स्वायम्भुव मन्यन्तरमें देवोंके साथ प्रजाका पालन किया। वे पृथ्वीके तथा दैत्यराज हिरण्याक्षके उद्धार हेतु एवं भूमिकी हो विष्णु अग्नीधपुत्री मेरुदेवीके गर्भसे नाभिके पुत्र-रूपमें स्थापना और सञ्जनोंकी रक्षाके लिये बराहका अवतार उस्क्रम नामसे अवतरित हुए। उन हरिने ही देवता तथा धारण किया। पञ्चरात्रकी शिक्षा देनेके लिये भी उन्होंने असुरोद्वारा समुद्रके मन्धनके समय मन्दराचल पर्वतको

अपनी पीठपर धारण करनेके लिये कुर्मरूप धारण किया। अवतीर्ण होंगे। पनः वे ही हरि हरितमणिके समान चृतिवाले महात्मा इस प्रकार संकर्षण आदि ये सभी अवतार हरिके धन्वन्तरिके रूपमें हाथमें अमृतकलश धारण किये हुए हुए। हरिके असंख्य अवतार हैं, उन्हें स्वयं नारायण ही अपध्यजनित दोषोंको दूर करनेके लिये अवतरित हुए। जानते हैं। इन सभी अवतारोंमें बलकी दृष्टिसे, रूपकी विष्णुने ही दितिपुत्र असूरोंको मोहित करनेके लिये मोहिनीका रूप धारण किया तथा पुन: नृसिंहरूपसे अवतरित होकर उन्होंने ही हिरण्यकशिपुको अपने ऊरुऑपर रखकर नखोंसे विदीर्ण कर डाला। अनन्तर अदिति और करवपसे वामनरूपमें अवतरित हुए। बलिसे अधिगृहीत सम्पर्ण प्रैलोक्यके राज्यको एन: इन्द्रको प्रदान करनेकी इच्छासे तथा बलिको दानशीलताका विस्तार करनेके लिये उन्होंने यह रूप धारण किया। पुन: वे जमदिनके पुत्र परश्रामके रूपमें विख्यात हुए और उन्होंने ब्रह्मदेशी क्षत्रियोंसे इस पृथ्वीको विहोन कर दिया। तदननार उन हरिने ही सर्यवंशमें रचकलमें देवा कौसल्यासे बीरामके रूपमें अवतार धारण किया। समुद्रबन्धन तथा राजण आदिके वध आदि कार्य उन्होंने ही किये। तदनन्तर द्वापरमें उन विष्णुने ही व्यासरूपमें अवतरित होकर वेदसंहिताको चार भागोंमें विभक्त कर अपने पैल, सुमना आदि शिष्योंको क्रगादि वेदोंको पहाया। वे पराशरके द्वारा सत्यवतीमें प्रादर्भत हुए थे। तदनन्तर वे ही हरि वसदेवक पुत्र-कपर्मे देवकीसे कृष्णरूपमें अवतरित हुए। उन्होंने ही कंस आदिका वर्ध किया और पाण्डवीकी रक्षा की। तदननार कलियगकी प्रवृत्ति होनेपर वे ही असरोंको मोहित करनेके लिये कीकट देशमें बुद्ध नामसे प्रादुर्भत हुए। इसके बाद कलियगकी मध्यसंधिमें वे हरि विष्णुगुप्त (विष्णुयस) के

दृष्टिसे और गुणकी दृष्टिसे किसी भी प्रकारका भेद नहीं किया जा सकता। अनन्त नाम-रूपवाले विष्णु अनन्त गुणोंसे सम्यन हैं।

श्रीकृष्याने कहा-हे खगेश्वर! जिस प्रकार हरिके अनन्त नाम-रूपात्मक अवतार हैं, उसी प्रकार हरिप्रिया भी विभिन अवतारोंके रूपमें प्रकट हुई हैं। वे लक्ष्मी ज्ञानस्वरूपा है। वे एकमात्र हरिके चरणींका आश्रय ग्रहण कर नित्य उनके साथ रहती हैं। ये ही पुरुषकी पत्नी और प्रकृतिको अधिमानिनी देवी हैं। जब ब्रह्माण्डके सुजनकी इच्छा हरिने की थी. उस समय गुणोंकी सृष्टि करनेके लिये ये प्रकृति नामसे प्रादर्भत हुई थीं। वासुदेवकी पत्नी माण, संकर्षणको पत्नी जया, अनिरुद्धको पत्नी गान्ता तथा प्रयुव्तकी पत्नी कृतिके रूपमें इन्होंका अवतार हुआ। विष्णुको पत्नी सस्वाधिमानिनी श्रीदेवी, तमोगुणकी अभिमानिनी देवो दुर्ग और रत्नोगुणकी अभिमानिनी काहपत्नी देवी भूदेवी तथा भगवान् वेदकी अभिमानिनी देवी अन्यणां आदि सब इन्हों देवीके अवतार है। साथ हो यजपानी दक्षिणा, विदेहराजपुत्री सीता तथा रुक्मिणी, सत्यभामा आदि रूपोंमें भगवती लक्ष्मीका ही प्राफट्य हुआ है। इस प्रकार पृथक्-पृथक् देवी लक्ष्मीके अनन्त अवतार हुए हैं। ऐसे ही पाण्डवोंकी पत्नी द्रौपदी भी हाची आदि देखियोंके रूपमें उत्पन्न हुई थी। (अध्याय १५-१७)

भगवान् शेष तथा भगवान् रुद्रके विविध अवतार

हैं। इनका आविर्भाव भगवान् हरि तथा रमादेवीके शबनके प्रादुर्भाव हुआ। लिये हुआ है। योगनिद्रामें लक्ष्मीके साथ भगवान् नारायण शेष भगवान् नारायणके भक्त हैं। उनमें विष्णु, वाय शेषशस्यापर ही शयन करते हैं। 'मैं सर्वदा हरिका दास बना तथा अनना-इन तीन देवोंका अंश सदा विद्यमान रहत रहें और सदा उनकी पूजा करता रहें। मैं प्रत्येक जन्मोंमें हैं। हे खग! दशरथके पुत्रके रूपमें देवी सुमित्राके अंशसे हरिको नमस्कार करता रहें' इस इच्छासे गरुढने हरिके जिन लक्ष्मणने जन्म लिया, वे शेषके ही अंश हैं, इसलिये शयनस्थानके समीपमें आश्रय प्राप्त किया। विनवाके शेषावतार कहे जाते हैं। भगवान श्रीराम तथा देवी सीताकी

घर दस्यप्राय राजाओंका वध करनेके लिये कल्कि नामसे

श्रीकृष्याने कहा—भगवान् शेष अनना शक्तिसम्पन पुत्र काल नामक गरुडका भगवान्के वाहनके रूपमें

सेवा करनेके लिये उनका पृथ्वीपर अवतार हुआ। वे ही अनेक रूप धारण किये हैं, वामदेय, ईशान, अधोर तथा शेष वस्देवके पुत्रके रूपमें देवी रोहिणीसे बलभद्र नामसे सद्योजात आदि इनके कई अवतार हैं। इसी प्रकार अवतरित हुए। गरुडजीका पृथ्वीपर कोई अवतार नहीं आवेशावतार दुर्वासा तथा द्रोणपुत्र अश्वत्थामा आदि भी हुआ, इसमें भगवान्की आज्ञा ही है। भगवान् रुद्रने भी रुद्रके ही अंशावतार हैं। (अध्याय १८)

श्रीकृष्णपत्नी देवी नीला (नाग्नजिती)-की कथा

पूर्वजन्ममें पितरोंमें श्रेष्ठ कव्यवाहकी पूत्री धी। वह कन्या लोगोंके लिये बदरीवनमें भगवान विष्णुका दर्शन पाना भी पविरूपमें भगवान् कृष्णका अनन्यचिन्तन किया करती थी। जब वह विवाहके योग्य हुई तो पिताने उसके विवाहके लिये बहुत प्रयत्न किया, किंतु उस कन्याने कृष्णके अतिरिक्त किसी अन्यको वरण न करनेका अपना निश्चय बताया, तब पिताने उससे कहा—किसी दूसरेको पतिरूपमें क्यों नहीं ग्रहण कर लेती हो ? तब उसने अपने पितासे कहा—'हे तात! सर्वगुणसम्पन्न हरिके अतिरिक्त मेरा और कोई पति नहीं हो सकता (हे तात । मुझे ऐसा लगता है कि इस जन्ममें मुझे सौभाग्यकी प्राप्ति है ही नहीं; क्योंकि मेरे तो एकमात्र भर्ता वे भगवान हरि ही हैं और कोई नहीं। यद्यपि इस संसारमें सभी स्त्रियों सदा सीभाग्यवती मानी जाती हैं किंतु उन्हें विधवा हो समझना चाहिये; क्योंकि अनादि, नित्य, सम्पूर्ण संसारके एकमात्र सारस्वरूप, परम सन्दर, मोक्षदाता तथा सभी इच्छाओंकी पूर्वि करनेवाले भगवानको जो पतिरूपमें नहीं मानती हैं, वे सदैव विभवके समान ही हैं। जिन रिजयोंके पति विष्णुभक्त हैं, उन रिजयोंका जन्म सफल है। अनेक जन्मोंमें संचित किये गये पुण्योंसे ही विष्णुभक्त पति प्राप्त होता है। कल्खि्यम विष्णुभक्त दुर्लभ हैं, हरिभक्ति तो सदा ही दुर्लभ रही है। कलियुगमें हरिकी कथा दुर्लभ है। हरिके भक्तोंकी सत्संगति और भी दुर्लभ है। कलियुगमें शेषाचलपर विराजमान रहनेवाले भगवान विष्णुका दर्शन दुर्लभ है। विष्णुपदी कालिन्दी नदीके तटपर विराजमान रहनेवाले भगवान् रंगनाथका दर्शन करना बढ़ा हो दुर्लभ है। काञ्चीक्षेत्रमें जाकर भगवान करदराजको सेवा करना और

श्रीकृष्णने कहा—हे पश्चिरात्र। कृष्णपत्नो नार्नाजतो विष्णुपादका दर्शन हो सुलभ है। मृत्युलोकमें रहनेवाले मुलभ नहीं है। ब्रोलक्ष्मीनाग्रवणको निवासभूमि शेषाचलपर रहतेवाले तपस्वी भी दुर्लभ हैं। प्रयाग नामक तीर्थमें नित्य निवास करनेवाले भगवान् माधवका दर्शन करना मनुष्योंके लिये सरल नहीं है। इसीलिये हे तात! कृष्णसे अतिरिक्त किसी दूसरेको पठिकपर्भे वरण करनेकी मेरी इच्छा नहीं है।' अपने पिटासे ऐसा कहकर वह कुमारी शेषाचल पर्वतकी और चली गयी।

कपिल नामक महातीर्धमें पहुँचकर उसने वहाँ विराजमान भगवान ब्रीनिवासका दर्शन कर उन्हें प्रणाम किया। तीन दिनतक सम्यक् रूपसे उनकी सेवा करके वह पापविनाशन नामक तीर्थमें चली गयी। विवाहकी इच्छासे उस तीर्थमें ब्लान करके उस तीर्थक उत्तर दिशामें दो कोसके विस्तारमें फैले हुए गुफारूपी एकान्त स्वानमें जाकर भगवान नारायणके ध्यानयें-तपञ्चयांमें स्थित हो गयी और उसने अनेक प्रकारसे उनकी स्तृति की।

उस कुमारीने स्तुति करते हुए कहा-'हे देव! आप ही भेरे माता, पिता, पति, सखा, पुत्र, गुरु, श्रेष्ठ स्वजन, मित्र और प्राणवल्लभ हैं। हे प्रभो। ये सभी सांसारिक पिता आदि स्वजन तो निमित्तमात्रमें अपने बने हैं, पर आप तो बिना निर्मित्त ही सदासे मेरे सब कुछ हैं। इसीलिये हे मुरारे! मैं आपको हो भावां होना चाहती हैं इसी कारण मैंने यह कौमार्यक्त धारण किया है। हे श्रीनिवास! आपको मेरा नमस्कार है। आप मुझपर प्रसन्त हों।

उसको पराभक्तिसे प्रसन्त हो करुणासागर भगवान वीनिवासने प्रकट होकर कहा-'हे कुमारिके। हे सुभगे! दर्शन प्राप्त करना भी सुलभ नहीं है। रामसेतुका दर्शन कृष्णावतारमें मैं तुम्हारा पति होकैंगा।' ऐसा वर देकर सरल नहीं है। श्रेष्ठ जनोंने कहा है कि भीमा नदीके तटपर भगवान वहींपर अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर कट्यवाहकी रहनेवाले विष्णुका दर्शन प्राप्त करना सुलभ नहीं है और पुत्रों वह कुमारी भी यौगिक रीतिसे वहीं अपना शरीर न तो रेवा नदीके तटपर स्थित विष्णुका एवं गयाक्षेत्रमें छोड़कर कुम्भकके घरमें नीला नामसे उत्पन्न हुई। हे पक्षिराज! दितिसे उत्पन्न दैत्योंको मार करके मैंने नीला विख्यात हुई थी। उसके स्वयंवरमें मैंने देवताओं और नामको लक्ष्मीको प्राप्त किया। तत्पक्षात् नग्रजित् नामक राजाके धरमें उस कमारोने जन्म लिया। नग्नजित् ही पूर्वमें कव्यवाह थे और उनकी पत्रों कमारों भी नीला नामसे

मनुष्योंके द्वरा न जीते जाने योग्य सात दुर्दान्त बैलोंके साथ अनेक राजाओंको जीतकर बंदी बनायी गयी नीलाको भायांरूपमें प्राप्त किया। (अध्याय १९)

भद्रा तथा मित्रविन्दाद्वारा श्रीकृष्णकी भार्या बननेकी कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा-हे पश्चितन। पूर्वजन्ममें विष्णुपत्नोंने ही नलको पुत्रोंके रूपमें भद्रा नामसे शरीर धारण किया था। जो परम विष्णुभक्त थी, वह सभी प्रकारके भद्र गुणोंसे सम्पन्न थी, इसी कारण उसका भद्रा यह नाम पड़ा था। वह कन्या भगवान् कृष्णको प्रतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये नित्य उन्हें प्रणाम निवेदन और उनकी प्रदक्षिणा किया करती थी। कन्याभावमें स्थित अपनी भद्रा नामक पुत्रीको वैसी कठिन तपस्या देखकर पिता नलने कहा कि 'हे नन्दिनी। पूत्री। भद्रे। किसलिये तुम अपने शरीरको कष्ट दे रही हो ऐसा करनेसे तुम्हें कीन-सा फल मिल जायगा, उसे मुझे बताओ।"

भग्न बोली-हे तत। आप मेरे पिता है, भला में आपको क्या बता सकती है। भगवानुको नमस्कार आदि क्रियाओंके फलको बतानेमें कौन समर्थ हो सकता है? फिर भी आप सुनें-'हे तात। करणानिधान भगवान विष्णु ही सदा मेरे स्वामी रहे हैं। मैं हरिके दासोंको भी दासी है।' हे विष्णो। मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करती है। मेरी रक्षा करें, ऐसा कहती हुई भद्राने दण्डवत्-रूपमें भूमिपर गिरकर अपने स्वामी नारायणको प्रणाम किया। पुन: भदा कहने लगी। हे तात! भगवान् विष्युको नित्य-निरन्तर प्रणाम करना चाहिये। जिस प्रकार वन्द्रना करनेसे वे देव प्रसन्न होते हैं, उस प्रकार वे पूजन करनेसे प्रसन्न नहीं होते। हे तात। नामस्मरण अथवा प्रणाम-निवेदन तथा बन्दन करनेसे जिस प्रकारसे पापसे मुक्ति हो जाती है, उस प्रकारसे अन्य साधनोंसे नहीं होती।

हे तात! भगवान विष्णुको प्रणाम निवेदन किये बिना जो लोग शरीरका पोषण करते हैं, उनका वह शरीर-पोषण व्यर्थ ही है। ऐसे लोगोंको नरकमें महान् द:ख भोगना

पडता है। जो देवश्रेष्ट भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा नहीं करता उसे यमराज अत्यन्त जास देते हैं। जिनकी जिद्धा 'हरि', 'कृष्ण' इस प्रकारसे भगवानुके मङ्गलमय नागोंका नित्य कीर्तन नहीं करती है, जानीजनोंद्वारा उस जिह्नाकी व्यर्थ ही कहा गया है।

हे तात। काशीमें निवास करने अधवा प्रयागमें मरनेसे क्या लाभ। अथवा युद्धमें वीरगति प्राप्त करनेसे अथवा यज्ञदिका अनुष्ठान करनेसे क्या लाभ है। समस्त तीथींमें ध्रमण करनेसे अथवा शास्त्रके अध्ययनसे किस प्रयोजनकी सिद्धि हो सकती है? जिनकी जिह्नाके अग्रभागपर हरिनाम नहीं है, जिनके शरीरसे भगवान विष्णुको नमन नहीं किया गया है, जिनके पैरोंने भगवान विष्णुको प्रदक्षिणा नहीं की है, ऐसे लोगोंका सब कुछ करना व्यर्थ ही है 7 ऐसा महान् लोगोंका कहना है।' अत: हे तात! भगवान विष्णुको नमन करना और उन्हें निरन्तर स्मरण रखना ही प्राणीका वास्तविक कार्य है। विश्वित हो यह मनुष्य-जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, किंतु दुर्लभ होनेपर भी वैसे ही नश्चर है, जैसे जलमें स्थित बुलबुला होता है। है तात! इस नश्चर शरीरका कोई भऐसा नहीं है, अत: जो समय प्राप्त है उसमें भगवानुको नमस्कार, वन्दन आदि करते रहना चाहिये। हे पिताओ। आप भी ऐसा ही करें।

हे पश्चिम् । पुत्रीके ऐसे निर्मल वचनोंको सुनकर ब्रद्धासमन्वित हो पिता उलने भगवान विष्णुको नमस्कार किया और यद्याशक्ति उनको प्रदक्षिणा की। तदनन्तर पुन: वह भट्टा भगवानको प्राप्त करनेकी इच्छासे उन्हींके ध्यानमें नियन हो गयो, इसीमें उसका नश्वर शरीर भी कब शान्त हो यवा, इसका उसे भान ही नहीं रहा।

श्रीकृष्णने कहा -हे पश्चित्रेष्ट्र! पन: मेरे पिता वसुदेवकी

कार्रोनिधामैन च कि प्रयोजनं कि का प्रकारी परणेन तात ।

किं वा रणाये मरणेन मीख्यं किं वा मखादे: समनुष्टितेन। सपमाठीचेष्यटनेन कि किमधीतशस्त्रेण सुतीक्ष्यबुद्ध्या॥ येथां जिल्लारे हरिनामैव नास्ति येथां गाउँनीमनं नापि विष्णो: । येथां प्रदुष्यां नास्ति हरे: प्रदक्षिणं तेथां सर्व व्यर्थमाहमीहाना: ॥

बहिनके उदरसे कैकेयी इस नामसे उस भद्रा नामवाली कथाका त्रवण नहीं होता है, उस दिन उस प्राणीकी आयु कन्याने जन्म लिया। भद्र गुणोंसे युक्त होनेके कारण वह व्यर्थ हो जाती है-उस जन्ममें भी भद्रा नामसे ही प्रसिद्ध हुई और उसे मैंने वस्मिन् ग्रामे भागवर्त न शास्त्र न वर्तते भागवता रसज्ञाः। प्राप्त किया।

श्रीकृष्णने गरुडसे पुनः कहा-हे गरुड! जिस प्रकार मित्रविन्दाका विवाह हुआ, अब मैं उसे बताता हैं। यस्मिन्दिने दिव्यकवा च विच्याने चास्ति जनोस्तस्य चायुर्वधेव।। मित्रविन्दा हरिको सदैव प्रिय रही है। पूर्वजन्ममें हरिको मित्ररूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली वह देवी सदा रसपारखी विद्वान स्वर्णादिसे निर्मित आधूषणोंसे विधूषित. उनके विषयमें चिन्तन करती रहती थी कि किस उचायसे कानोंकी सुन्दर नहीं कहते, भगवान विष्णुकी मङ्गलमयी भगवान विष्णुको प्राप्त किया जा सकता है। यद्यपि उन्हें कथाओंसे पृश्ति कानोंको ही सुन्दर बताते हैं। इस कारणसे प्राप्त करनेके बहुत-से उपाय हैं, पर श्रेष्टतम उपाय कौन जो लोग सर्वदा भागवतके अर्थतत्त्वका क्ष्वण करते हैं और हो सकता है वह ऐसा विचार करने लगी। उसने निश्चय निरन्तर उसका वाचन करते हैं, उन्हींका जन्म सफल है, किया कि सभी साधनोंमें श्रेष्ठ साधन है 'साल्विक ऐसा श्रेष्ठ उनोंका कहना है। संसारमें हरि सर्वत्र व्यापा हैं. पुराणोंमें वर्णित भगवानुको कथाओंका श्रवण करना'। जो वे ही नित्य हैं, अन्तर्यामी है ऐसा समझते हुए जिनके द्वारा व्यक्ति भगवान् विष्णुको कथाका बयण नहीं करता सदा भलीभौति प्रभुका चिन्तन किया जाता है, उनके उसका जन्म लेना व्यर्थ है जिसने भगवान् विष्णुके योगधेमका वहन ने विष्णु स्वयं ही करते हैं ऐसे भक्तींका गुणानुवादका कीर्तन करनेवाले भागवत पुराणको नहीं [कभी] अशुभ नहीं होता है। सुना, उसका जीवन व्यर्थ हैं, इसलिये सदा हरिकसका भगवान होरे शुभ-अशुभ फल कर्मानुसार ही देते हैं, श्रवण करना चाहिये।

महानदी प्रवाहित नहीं होती तथा जहाँ नारायणके चरणाम्बुजोंका इसी कारण है तात। मैं भी सदैव भगवानुकी आश्रय नहीं है और जहाँ मुखसे भगवान किष्णुका सत्कथाओंका क्रवण किया करती है। पूर्वकालमें मैंने भगवान्की नामस्मरण नहीं होता, वहाँ किसी प्रकारसे सणमात्र भी नहीं कचाका ब्रवण किया वा और फिर शरीरका परित्यागकर रहना चाहिये। 'जिस गाँवमें भागवतशास्त्रको चर्चा नहीं आपको पुत्रोके रूपमें पुब्लीपर मैंने जन्म लिया है। मनुष्यके जीवनमें जिस दिन भगवान विष्णुकी दिव्य साथ लेकर अपनी पूरी आ गया। (अध्याय २०)

परिमन् गृहे नारित गीतार्थसारो परिमन् ग्रामे नामसहस्रकं वा॥ तयो रसजा यत्र न सन्ति तत्र न संवसेत् क्षणमात्रं कर्धचित्।

(20124-30)

इसलिये धनप्राण्विक लिये कोई यल नहीं करना चाहिये। हे तात। वहाँ भगवान् विष्णुसे सम्बन्धित कथारूपी प्रयत्न तो हरितत्वकी प्राप्तिके लिये ही करना उचित है।

होती और न जहाँ भागवतके रसको जाननेवाले हो होते. श्रीकृष्ण बोले—हे पश्चिन्। उस मित्रविन्दाने पृथ्वीपर हैं, साथ ही जिस परमें भगवान विष्णुके द्वारा कही गयी रहनेके लिये वस्ट्रेवकी बहिनके उदरमें सुमित्रा नामसे गीताके अधींका निष्कर्ष जाननेवाले नहीं हैं अथवा जिस जन्म लिया। धागवतकथाके ब्रबणसे ही वह भगवान विष्णुकी ग्राममें भगवानुकी सहस्रनामावली (विष्णुसहस्रनाम)-को मित्रके रूपमें प्राप्त कर सकी है। इसी कारण उसका चर्चा नहीं होती अथवा जहाँ उन दोनों (गोता और मिजविन्दा यह नाम पहा है। हे खगराज! स्वयंवरमें अनेक विष्णुसहस्रनाम)-के रस्रोंका ज्ञान रखनेवाले नहीं हैं वहाँ छजाओंके मध्य भामिनी उस भित्रविन्दाने मेरे गलेमें जयमाला क्षणमात्र भी किसी प्रकारमे नहीं रहना चाहिये अथवा डाल दो और मैं समस्त राजाओंको परस्त कर मित्रविन्दाको

सूर्यपुत्री कालिन्दीकी कथा

उत्पत्तिके विषयमें बता रहा हैं, आप सुकें—विवस्तान् नामसे भी कहा गया है। भगवान् कृष्णको पत्नी बननेकी नामके सूर्यकी कालिन्दी नामवाली एक पूत्री उत्पन्न हुई। इच्छासे उसने विशिष्ट तप किया था। पूर्वजन्ममें ऑर्जत

श्रीकृष्णने कहा-हे खगेश्वर। अब मैं कालिन्दीको हे पश्चिसव। उस कालिन्दीको यमुना तथा यमानुजाके

पापोंका अनुताप अर्थात् उनका जमन करना तप है। हे पश्चिराज। अब आप अनुतापके विधवमें सुने-पूर्वजन्ममें जिसने भगवान मुक्तन्दके दिव्य मन्त्रोंका जप नहीं किया, हरिनामामृतका स्मरण नहीं किया, भगवानुके पादार्शवन्दोंकी बन्दना नहीं की, हरिके नैवेद्यको ग्रहण नहीं किया, सुन्दर गन्धसे युक्त पृथ्पोंको मुरारिको अर्पित नहीं किया, भगवान्की भक्ति नहीं की, ऐसा सोच-सोचकर मनमें जो पश्चाचाप होता है, दु:ख होता है वह कहने लगता है-हे मुकुन्द। में इस पुत्र-मित्र-कलत्रादिसे युक्त संसारमें अत्यन्त संवप्त हो रहा है, हे भगवन्! कब में आपके मुखारविन्दका दर्शन करूँगा, मुझसे आपकी सेवा-पूजा नहीं हुई है, मेरा उद्धार कैसे होगा? हैं हरे। मैं महान् पापी हूँ कब मुझे आपके दर्शन होंगे। हे प्रभो! मैंने अनन जन्मोंमें सांसारिक सम्बन्धोंके द्वारा अणुमात्र भी सुख नहीं प्राप्त किया और न तो मैं आपकी सेवा ही कर सका हैं और न आपके भक्तजनोंको संगति ही कर सका है, हे मुरारे! मेरा तरीर कष्टमें जल रहा है। ऐसा अगतिक मैं अब आप मुकुन्दकी शरण छोड़कर और किसकी शरणमें आऊँ? हे भगवन्। मुज़पर दया कर मेरी रक्षा करें।'

श्रीकृष्णने पुनः कहा-हे पश्चिराज। इस प्रकारका पश्चाताप करना ही अनुताप है। इसका नाम तप भी है। हे पश्चिराज! सूर्यपुत्री उस कालिन्दोने भी इसी प्रकारका अनुताप करते हुए यमुनाके तटपर तपस्या की और श्रीहरिके ध्यानमें वह निमान हो गयी।

लक्ष्मणाद्वारा भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त करनेकी कथा

श्रीकष्णने कहा-हे पश्चिराज! जो ये लक्ष्मणा है, पूर्व-सृष्टिमें वेदेंकि पारंगत अग्निदेवकी पूत्री थीं। सभी प्रकारके तुभ लक्षणींसे सम्यन्न होनेके कारण सुलक्ष्मणा इस नामसे इनकी प्रसिद्धि हुई। जिस प्रकार लक्ष्मी सभी लक्षणोंसे पूर्ण हैं, जैसे भगवान विष्णु सभी लक्ष्णोंसे परिपूर्ण हैं, उसी प्रकार लक्ष्मणा भी सभी गुणींसे पूर्ण है। वह सलक्ष्मणा श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये नित्य विविध उपचारोंसे उनकी पूजा किया करती थी, एक बार उसने अपने पिताजीसे कहा- हे तात! वे हरि सर्वत्र व्याप्त हैं. सबमें स्थित हैं और सर्वान्तर्यामी है। दान आदि जो भी शुभ कर्म किया जाता है उन्होंको उद्देश्य करके

तत्पक्षात् हे पश्चिराज! एक दिन मैं अर्जुनके साथ यम्नाके तटपर गया। तप करती हुई उसको वहाँ देखकर



मैंने अपने मित्र अर्जुनसे कहा कि हे पार्थ ! आप शीघ्र ही उस कन्याके समीपमें जाकर पूछे कि 'वह किस कारणसे तप कर रही हैं' मेरे ऐसा कहनेपर अर्जुनने वैसा ही किया और कासिन्दोंका सब युवाना भी बता दिया। तत्पक्षात् भेने शुभ मुहर्त आनेपर सम्यक् रीतिसे वहाँ जाकर उस कालिन्दीका पाणिप्रहण किया। हे पश्चित्रेष्ठ। मुझ पूर्णान-दको किस सुखको अभिलाषा है ? फिर भी उसपर अनुग्रह करनेकी दृष्टिसे ही पैंने उस कालिन्दीका पाणिग्रहण किया है। (अध्याप २१)

करना चाहिये। उनकी संतुष्टिके लिये उन्हें भक्तिपूर्वक विविध उपचारोंको समर्पित करना चाहिये। भक्तिपूर्वक सर्पार्थत किये गये अन्त-पानादि पदार्थीको वे मुकृन्द निश्चित ही ग्रहण करते हैं।

गृहस्थको चाहिये कि वह सर्वप्रथम भोग्य पदार्थीका समर्पण भगवान् हरिके लिये अवस्य करे। जो गृहस्थ ऐसा करता है वह गृहस्थ धन्य है। अन्यथा उसका जीवन व्यर्थ है। माधव नामसे अभिहित वे भगवान् हरि इस प्रकारसे हमारे द्वारा समर्पित अन्तादिको ग्रहण करते हैं। ऐसा समझकर उन्हें पदार्थ अर्पित करना चाहिये। इस प्रकारसे टिये गये अन्तादिक नैवेद्यसे भगवान विष्ण अत्यन्त संतुष्ट

होते हैं। इसके विपरीत भावसे दिये गये पदार्थको वे प्रहण नहीं करते, उनके लिये वह सब व्यर्थ ही है। हे सुपर्ण! वासदेव हरि हमारे घरमें नित्य निवास करते हुए प्रसन रहते हैं। ऐसा समझकर अपने घरको देवालय मानकर सर्वदा अलंकत रखना चाहिये। हे तात। अनन्तरूपी ऐसे वे हरि अनना रूपोंसे सबमें स्थित रहते हैं।

श्रीकृष्णने कहा-हे पश्चिराज! अपने पितासे इस प्रकार कहकर वह उन भगवानको पतिरूपमें वरण करनेके

लिये अनन्य-मनसे उनको सपर्यामें लग गयी और की जा रही मेरी इस सेवासे भगवान हरि ही मेरे पति हों ऐसा विनान करती हुई उस लक्ष्मणाने अपने ऋरीरका परित्याग कर दिया और पुन: महदेशके राजाको पुत्रीके रूपमें जन्म लिया। है पश्चित्रेष्ट । तदननर उस लक्ष्मणाके स्वयंवरमें लक्ष्यका भेदन काके मैंने हो वहाँ उपस्थित राजाओंका मान-मर्दन कर उसका पाणिग्रहण किया और अपनी पुरीमें आकर उस देवीके साथ मैं निवास करने लगा। (अध्याय २२)

सोमपुत्री जाम्बवतीकी कथा

सृष्टिसे पूर्व-सृष्टिकी बात है। जाम्बयती श्रीसोमकी पुत्री थी। हो गया। वे लोग बहुत प्रेमसे इस पवित्र पर्वतपर चढ़ने लगे। श्रीसोम श्रीविष्णुकी सेवामें लगे रहते थे। उनकी पुत्री आम्बवती भी पिताका अनुसरण करती थी। वह नित्य पराण सुनती, प्रतिक्षण भगवानुका स्मरण करती, उनके चरणोंकी वन्दना करती और उनकी सेवामें लगो रहती। धीर-धीर जाम्बलतीके अन्त:करणमें संसारकी नश्चरता घर करती चली गयी। वह समझ गयी कि सख-द:ख मायाके खेल हैं। इनसे ऊपर उठकर वह भगवन्त्रेममें आनन्द-विभीर रहने लगी। उसकी वाणीसे भगवानके नाम और गुणका कथन होता रहता। औद्ये प्रभुकी प्रतीकामें रत रहती, कान उनकी मोठी बातें सुननेके लिये उत्सुक रहते, हाथ अर्थनाके सक्त्वरमें लगे रहते और पेर उनकी प्रदक्षिणामें व्यस्त रहते। इदयमें एक ही कामना रह गयी थी कि मैं भगवानके चरणोंकी दासी कैसे यन जाऊँ। वह सारा कार्य भगवानके लिये करती थी और सम्पन्न होनेपर उन्हें भगवानुको हो समर्पित कर देती थी। बाह्यणों और संतीकी पुजामें उसे रस मिलता था।

एक दिन बीसोमने तीर्थयात्राका विचार किया। इस समाचारसे जाम्बवती फुली न समायी। वह पहलेसे ही उन स्थलोंकी देखना चाहती थी, जहाँ भगवानने अपनी लीलाएँ की हैं और अहाँ वे अदृश्य-रूपमें आज भी विराजते हैं। भगवान श्रीनिवासमें जाम्बवतीका मध्य भाव या। सेचाचलपर अय प्रियतमके दर्शन हो जाएँगे, इस आशासे उसका रोय-रोम ख़िल उठा। पिताका भी भगवानमें पूरा लगाव था। दोनोंको उत्सुकता अनिर्वचनीय थी। सात्रा प्रारम्भ हो गयो। पिता पुत्रीके पग बिना बढाये बढ़ रहे थे। धाँर-धाँरै कपिल नामक तीर्थ आ गया। सदगुरु जैगीपण्यको आज्ञासे पिताने मुण्डन कराया, स्नान किया और तीर्थ ब्राद्ध किया। फिर विविध प्रकारके दान दिये। इसके बाद सदगुरने केंक्टादिका

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे पश्चित्रेष्ठ गरूट! इस महत्त्व सुनावा। इससे उन यात्रियोंके मनमें बद्धाका अतिरेक सदगुरु जैगीयव्य नारद, प्रहाद, पराशर, पुण्डरीक आदि महाभागवरोंको कथा स्वाते रहे। नामके रसका आस्वादन करते हुए लोग वल रहे थे। सब पूछा जाय तो वे चल नहीं रहे थे. अपन आनन्द-खापीमें दुब-उतरा रहे थे और वरंगें स्वयं उन्हें आगे पहुँचाती जातो थीं। जाम्बवतो तो मानो आनन्द-वारिधिमें उतराती चली जा रही थी।

चढते-चढते एक भनोरम तीर्थ आया। जाम्बवतीने पुछ- 'गुरदेव। यह कौन-सा तीर्थ है ? वह कौन भाग्यशाली है. जिसपर भगवानने वहाँ अनुग्रह किया है।' इस प्रश्नसे जैगीयव्य बहुत प्रसन्त हुए। उन्होंने कहा-'बेटी। इस ठीर्थका नाम नाएसिंह तीर्थ है। भक्तराज प्रहाद प्रेमकश भगवान ब्रीनिवासके दर्शनोंके लिये यहाँ पधारे थे। उनके माय दैत्योंके कमार भी थे। वे यहाँ भगवानके दर्शनोंके लिये उल्कण्ठित हो गये थे। उन्होंने प्रहादसे कहा था-'पित्र। जब नुसिंह-रूप भगवान् श्रीनिवास कण कणमें ञ्चाप्त हैं, तब इस जलमें क्यों नहीं दिखायी देते? कपाकर उनके दर्शन करा दीजिये!"

भक्ताज प्रहादने जपने भगवत्प्रेमी मित्रोंको बहुत आदर दिया। इसके बाद उन्होंने भगवानुसे प्रार्थना की कि 'वे सकको दर्शन दे दें।' भगवान्ने संतराजको प्रार्थना स्वीकार की। दैत्यकुमार दर्शन पाकर कृतकृत्य हो गये और भगवान 'इस जलमें स्नान करनेसे ज्ञानको प्राप्ति होंगी'-ऐसा बरदान देकर प्रहाद तथा दैत्यकुमारोंके साथ सटाके लिये इस तीर्थमें बस गये। उनका यह वास आज भी वैसे ही है और आगे भी वैसा ही रहेगा। मध्याहके बाद आज भी चारों और जय-जयके शब्द सनायी पडते हैं। इस इतिहासको सुनकर सबको रोमाञ्च हो आया। सभीको भगवान् श्रीनिवासने दर्शन दिया। जाम्बवतीके मधुर मुझे भावके अनुरूप भगवान्ने हजारी कामदेवके समान अपना कमनीय रूप दिखाया। देखते ही जाम्बवतीका प्रत्येक अङ्ग शिधिल हो गया, रोमाञ्च हो आया और आँखोंसे प्रेमके अब् दलने लगे। किसी प्रकार टूटे-फूटे शब्दोंमें जाम्बवतीने कहा- 'नाथ! त्रीचरणोंमें रख लो।'

अबतक भगवानुने अपने सौन्दर्य-सुधाका ही पान कराया था, अब उन्होंने अपने वचन-सुधाका पान कराते हुए कहा—' जाम्बवति! मैं तुम्हें वेंकटेश-मन्त्र बताता हूँ। तुम यहीं रहकर इसका जप करो।' जाम्बवतीको लगा कि उसके कानोंमें अमृत उड़ेल दिया गया हो। वह आनन्दसे बेसुध होने लगी। उसे न अपना पता था, न परायेका। जन्मकी साधिन लाज कहाँ चली गयो, इसका भी उसे पता न था। जानन्दावेशमें वह नावने लगी। जाम्बवतीक उस नृत्यसे सारा ब्रह्माण्ड रस-विभोर हो उठा। स्वर्गसे अप्सराएँ उतर आयों और जाम्बवतीके अगल-बगलमें नाचने लगीं। देवताओंने दंदभी बजायी और आकाशसे पुष्पकी वृष्टि की।

इसी प्रकार भगवानुके प्रेममें आद्वादित होते हुए जाम्बलतीको तीर्थयात्रा जलती रही। गुरु जैगोषव्यने भगवान् वेंकटेशका माहात्म्य उसे सुनाया। स्वामिपुष्करिणी तीर्थ, जहाँ श्रीनिवास सदा विराजमान रहते हैं - का इतिहास बतलाया। जिसे सुनकर वह आनन्दसे भर गयो, बीनिवासके प्रति उसका अनुराग बढ़ता ही गया। गुरुद्वारा बताये गये वेंकटाद्रिके सभी तीथाँका जाम्बवतीने बड़े ही भावसे सेवन किया। अन्तमें वह ऋषितीर्थ पहुँची। सप्तर्षियोंसे सेवित उस पुण्य-पवित्र ऋषितीर्थमें उसका भन रम गया, वह वहाँ रूक गयी। दीर्घ समयतक उसने वहाँ तपका अनुहान किया।

हे पक्षिराज। वह कन्या-जाम्बवती मेरे कुण्यावतार-धारण करनेतक वहाँ तपस्यामें अनुरक्त रही। उसका ऋगैर अत्यन्त पवित्र हो चुका था। अन्तमें उसने मुझे पतिरूपमें प्राप्त करनेकी अभिलाषासे योगधारणह्वारा अपने उस शरीरका परित्याग कर दिया और वह भक्तराज जाम्बवानुके घरमें पुन: उत्पन्न हुई। वहीं उसका नाम भी जाम्बवती ही पद्म। भक्तिपरूपण जाम्बकती पिताके घरमें धीर-धीरे बढ़ने लगी, पूर्व-जन्मके सम्पन हो इस जन्ममें भी वह एकमात्र हरिनिष्ट थी। उसके पिता जाम्बवान भी महान् भक्त थे। उन्होंने अपनी पुत्री जाम्बवतीको पत्नीरूपमें



वाम्बवतीने भगवान् श्रीकृष्णको सदाके लिये अपना पति बना लिया। उसकी भक्ति सफल हो गयो। विश्वक नाचने विधिके साथ ज्यान्ववतीसे विवाह किया। सब और आनन्द-हो-आनन्द छा गया।

जाम्बक्तीके विवाहको पवित्र कथा बताकर श्रीकृष्णने पश्चिम्ज गुरुक्रको उन कृपालु भगवान् श्रीनिवासकी भक्तिका विस्तारमे माद्याल्य बवलाया और कहा कि हे गरुडजी। भगवानुको कभी भूलना नहीं चाहिये, निरन्तर उनके हरि आदि मङ्गलमय नामीका उच्चारण करते रहना चाहिये-

हरि हरि प्रबदेत् सर्वदेव। (\$414X)

कल्याजकामी मनुष्यको चाहिये कि वह अपने शास्त्रविहित कर्मीको करते हुए प्रत्येक समय वासुदेव हरिका स्मरण करता रहे-

प्रतियंदा कियते कर्मणा सम्यक स्मरेद्वासुदेवं हरि स्न॥

(38186)

ऐसा करनेसे नारायण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, इसलिये हे गरुद्वजी। भगवान हरिको प्रिय लगनेवाले कार्योमें ही सदा व्यक्तिको अनुराग रखना चाहिये-

हरिप्रीतिकरे धर्मे प्रीतियुक्तो भवेत् सदा॥

(25100)

(अध्याय २३-२९)

॥ गरुडपुराणान्तर्गत ब्रह्मकाण्ड सम्पूर्ण ॥

॥ गरुङ्गपुराण सम्पूर्ण ॥

गरुडप्राण—सिंहावलोकन

[विशेषाक्र पृष्ठ-संख्या १६ से आगे]

मृत्युका स्वरूप

मृत्यु आनेके कुछ समय-पूर्व प्राय: प्राणीके शरीरमें कोई उसका विस्तृत वर्णन किया है। रोग उत्पन्न हो जाता है, इन्द्रियाँ विकल हो जाती है, प्राणीको एक साथ करोड़ों विच्छुओंके काटनेका अनुभव उसके बाद ही चेतनता समाप्त हो जाती है, जड़ता आ जाती है। तदनन्तर समीप आकर खड़े यमदत उसके प्रान्तिको बलात् अपनी और खींचना शुरू कर देते हैं। उस समय प्राण कण्डमें आ जाते हैं। उसके बाद शरीरके भीतर विद्यमान रहनेवाला वह अङ्गष्ठ-परिमाणका पुरुष अपने घरको देखता हुआ यमदुलेंक द्वारा परलोक ले जाया जाता है।

निरोध करनेवाला वायु ऊर्ध्वगतिवाला हो जाता है। जो लीग ह्युठ नहीं बोलते हैं, जो प्रीतिका भेदन नहीं करते, आस्तिक और श्रद्धावान् हैं, जो काम, ईंघ्यां और द्वेषके कारण स्वधर्मका परित्याग नहीं करते, सदाचारो और सौम्य डोते हैं, वे सब निश्चित ही सुखपूर्वक गरते हैं।

यथाप्रसंग मृत्युका स्वरूप सुना दिया।

पक्षी आदि योनियाँ अत्यन्त दु:खदायिनी हैं। इन योनियोंमें हे पक्षीन्द्र। अब मृत्युके स्वरूपको सुनो। मृत्यु ही कर्मफलके तारतम्बसे प्राणीका जन्म होता है। इसी प्रसंगर्मे काल है। मृत्युका समय आ जानेपर जीवात्मासे प्राण और भगवानुने कर्मविपाकका वर्णन करते हुए प्राणीके विभिन्न देहका वियोग हो जाता है। मृत्यु अपने समयपर आती है। पापोंके परिणामस्वरूप जिन-जिन योनियोंमें जन्म होता है,

नरकोंका वर्णन

गरुडके जिज्ञासा करनेपर भगवानने मुख्य-मुख्य नरकोंका हो तो उससे मृत्युजनित पीढ़ाका अनुमान करना चाहिये। वर्णन किया, जिसमें 'रीरव' नामक नरकको प्रधान बताया। हुडो गवाही देनेवाला और हुउ बोलनेवाला व्यक्ति रौरव नरकमें जाता है। इसके साथ ही महारीरव, अतिशीत, निकृत्तन, अप्रतिष्ठ, असिपत्रवन, तप्तकुम्भ आदि प्रधान नरकोंका भी वर्णन किया। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-से नाकोंका वर्णन किया।

ये सभी नाक यमके राज्यमें स्थित हैं। जो मनुष्य गौको इत्या, भूणहत्या और आग लगानेका दुष्कर्म करता परंतु भक्तजनों एवं भोगमें अनासक जनोंको अधोगक्तिका है, यह 'रोध' नामक नरकमें गिरता है। जो ब्रह्मधाती, मद्यपी तथा सोनेकी चोरी करनेवाला है, वह 'सकर' नामके नरकमें गिरता है। क्षत्रिय और वैश्यको हत्या करनेवाला 'ताल' नामक नरकमें जाता है।

इन नरकके लोकोंक अतिरिक्त भी सैकडों नरक हैं। जिनमें पहुँचकर पापी प्रतिदिन पकता है, जलता है, गलता जो पूठी गवाही करनेवाले, असल्यभाषो, विश्वासधाती है, विदीर्ज होता है, चूर्ण किया जाता है, गीला होता है, और वेदनिन्दक हैं, वे मुच्छांरूपी मृत्युको प्राप्त करते हैं। क्वाथ बनाया जाता है, जलाया जाता है और कहीं वायुसे उनको ले जानेके लिये लाठी एवं मुद्ररसे युक्त, दुर्गन्थसे प्रताहित किया जाता है। ऐसे नरकीमें एक दिन सी वर्षके भरपुर एवं भयभीत करनेवाले दुरातमा यमद्दत आते हैं। समान होता है। इन सभी नरकोंमें भीग भोगनेक बाद पापी उसके बाद यह प्राणी चेदनासे संत्रस्त होकर अपने करीरका विर्यक-योनिमें जाता है। तत्पक्षात उसे कृमि, कीट, पतंग, परित्याग करता है और उसके बाद ही वह सबके लिये स्वावर तथा एक खुरवाले गधेकी योनि प्राप्त होती है। अस्पृश्य एवं युणायोग्य हो जाता है। हे गरुड! मैंने तदनन्तर मनुष्य जंगली हाथी आदिको योनियोंमें जाकर गौको योनिमें पहुँचता है। गधा, घोडा, खच्चर, गौर-मृग, भगवान् गरुडसे कहते हैं कि पूर्वजन्ममें किये गये शरुभ और चमरी-ये छ: योनियाँ एक खुरवाली होती हैं। विचित्र प्रकारके भोगोंको भोगता हुआ प्राणी इस जगतुमें इनके अतिरिक्त बहुत-सी पापाचार-योनियाँ भी हैं, जिनमें विभिन्न योनियोंमें भ्रमण करता है। देव, असर और यह जीवात्माको कष्ट भोगना पडता है। उन सभी योनियोंको आदि योनियाँ प्राणीके लिये सुखप्रदायिनी हैं। मनुष्य, पशु- पारकर प्राणी मनुष्य-योनिमें आता है और कुबड़ा, कृत्सित, वामन, चाण्डाल तथा पुल्कस आदि नर-योनियोंमें और गौ- ये पापसे शुद्धिके लिये पवित्रतामें एक-से-एक जाता है। अवशिष्ट पाप-पुण्यसे समन्वित होकर बीव बार- बहकर हैं। इन आट दानोंको महादान कहा जाता है। इनका बार गर्भमें जाते हैं और मृत्युको प्राप्त करते हैं। उन सभी दान उत्तम प्रकृतिवाले ब्राह्मणको ही देना चाहिये-पापोंके समाप्त हो जानेके बाद प्राणीको शुद्र, वैश्य तथा क्षत्रिय आदिको आरोहिणी-योनि प्राप्त होती है। कभी-कभी वह सत्कर्मसे ब्राह्मण, देव और इन्द्रत्वके पदपर भी पहुँच जाता है।

हे गरुड! यमद्वारा निर्दिष्ट योनिमें पुण्य गति प्राप्त करनेमें जो प्राणी सफल हो जाते हैं, वे दिव्य देह धारण करके विमानमें आरोहण कर स्वर्गलोकको जाते हैं। पुण्यकी समाप्तिके पश्चात् जब वे वहाँसे पुन: पृथ्वीपर आते हैं तो वे राजा अथवा महात्याओंके चरमें जन्म लेकर सदाचारका पालन करते हैं तथा समस्त भोगोंको प्राप्त करके पुन: स्वर्गको प्राप्त करते हैं, अन्यथा पहलेके समान आरोहिणी-योनिमें जन्म लेकर दु:ख भोगते हैं।

चौरासी लाख योनियाँ हैं। उद्धिका (पृथ्वीमें अंकृरित होनेवाली जनस्पतियाँ), स्वेदन (पसीनेसे जन्म लेनेवाले जुएँ और लीख आदि कीट), अण्डल (पक्षी) तथा जरायुज (मनुष्य)-में यह सम्पूर्ण मृष्टि विभक्त है।

मृत्युके पूर्व तथा बादमें किये जानेवाले कर्म

श्रीकृष्ण कहते हैं- हे गरुद्ध। जानमें या अनजानमें मनुष्य जो भी पाप करते हैं, उन पापोंसे शुद्धिके लिये उन्हें प्रायक्षित करना चाहिये। शास्त्रोंमें दशक्षिध स्नान तथा कृच्छ आदि चान्द्रायण वत अथवा गोदान आदिकी प्रक्रिया प्रायक्षितरूपमें बतायो गयी है। यदि मनुष्य उनमें अक्षमताके कारण सफल न हो रहा हो तो आधा या चौधाई कुछ-न-कुछ प्रायक्षित अवश्य करना चाहिये। तत्पक्षात् दस महादान-गी, भूमि, तिल, हिरण्य (स्वर्ण), मृत, वस्त्र धान्य, गुड़, रजत और लवण-इनका दान करना चाहिये।

अत्यन्त दुर्गीन्धयुक्त मवाद आदि तथा रक्त आदिसे उत्यन्न हुआ है। इस पृथ्वीपर मरणासन्न प्राणीके प्राण जब पार करनेके लिये बैतरणी-गौका दान करना चाहिये। जो गौ हाचसे दिलवाना चाहिये; क्योंकि यह दान उसके लिये वैतरणी-गौ माना गया है।

तिला लीहं हिरण्यं च कर्पासं लवणं तथा। सप्तधान्यं क्षितिगांव एकैकं पावनं स्मृतम्॥ एतान्यष्टी यहादानान्यूत्रमाय द्विजातये।

(5-01815)

अब पददानका वर्णन सुनो। छत्र, जूता, वस्त्र, अंगूठी, कमण्डल, आसन, पात्र और भोज्यपदार्थ- ये आउ प्रकारके पद है-

> छत्रोपानहबस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः। आसर्न भाजनं भोज्यं पदं चाष्ट्रविधं स्मृतम्॥

> > (\$1 × 14)

तिलपात्र, मृतपात्र, शस्या, उपस्कर तथा और भी जो कुछ अपनेको इष्ट हो, वह सब देना चाहिये। अब, रथ, पैस, भोजन, वस्त्रका दान बाह्यणॉको करना चाहिये। अन्य दान भी अपनी शक्तिके अनुसार देने चाहिये।

हे पश्चिरात्र! इस पृथ्वीपर जिसने पापका प्रायक्षित कर लिया है, वह दस प्रकारके दान भी दे चुका है, वैतरणी-गौ एवं अष्टदान कर चुका है, जो तिलसे पूर्ण पात्र, भीसे भरा हुआ पात्र, शय्यादान और विधिवत् पददान करता है वह नरकरूपी गर्भमें नहीं आता है। अर्चात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता-

प्राथशितं कृतं येन दश दानान्यपि श्विती॥ दानं गोर्वेतरण्याध्य दानान्यष्टी तथापि वा। तिलपानं सर्पि:पानं शब्दादानं तथैव च॥ पददानं च विधिवनासी निरयगर्भगः।

(518165-68)

पण्डित लोग स्वतन्त्र रूपसे भी लवण-दान करनेकी यमद्वारपर पहुँचनेके लिये जो मार्ग बताये गये हैं, वे इच्छा रखते हैं; क्योंकि यह लवण-रस विष्णुके शरीरसे परिष्याप्त हैं। अत: उस मार्गमें स्थित वैतरणी नदीको न निकल रहे हों तो उस समय लवण-रसका दान उसके सर्वाङ्गमें काली हो, जिसके स्तन भी काले हों उसे स्वर्गलोकके द्वार खोल देता है। मनुष्य स्वयं जो कुछ दान देता है परलोकमें वह सब उसे प्राप्त होता है, वहाँ उसके तिल, लोहा, स्वर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, भूमि आगे रखा हुआ मिलता है। हे पक्षिन्! जिसने यथाविधि अपने पापोंका प्रायधित कर लिया है, वही पुरुष है। वहीं भैंसका दान देता है तो वह परलोकमें जाकर अभ्युदयको अपने पापोंको भस्मसात् करके स्वर्गलोकमें सुखपूर्वक प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। निवास करता है।

दूध देनेवाली गौका दान देता है, वह अमृतत्वको प्राप्त दान करनेसे व्यक्ति परलोकमें शोधासम्पन्न-शरीर और उस करता है। उपर्युक्त तिलादिक आठ प्रकारके दान देकर लोकके वैभवसे सम्मन्न हो जाता है। जो प्राणी ब्राह्मणको प्राणी गन्धर्वलोकमें निवास करता है। यमलोकका मार्ग रस, अन्न तथा अन्य सामग्रियोंसे युक्त घरका दान देता है, अत्यधिक भीषण तापसे युक्त है, अत: धजदान करना उसके बंशका कभी विनाश नहीं होता, वह स्वयं स्वर्गका चाहिये। छत्रदान करनेसे मार्गमें सुख प्रदान करनेवाली खाया सुख प्राप्त करता है। हे खगेन्द्र! इन बताये गये सभी प्राप्त होती है। जो मनुष्य इस जन्ममें पादुकाओंका दान देता. प्रकारके दानोंमें प्राणीकी श्रद्धा तथा अश्रद्धासे आयी हुई है, वह 'असिपत्रथन'के मार्गको घोड़ेपर सवार होकर दानको अधिकता और कमीके कारण उसके फलमें श्रेष्ठता सुखपूर्वक पार करता है। भोजन और आसनका दान देनेसे प्राणीको परलोकगमनके मार्गमें सुखका उपभोग प्राप्त होता है। जलसे परिपूर्ण कमण्डलुका दान देनेवाला पुरुष सुखपूर्वक परलोकगमन करता है।

यमराजके दूत महाक्रोधी और महाधर्मकर है। काले एवं पीले वर्णवाले उन दुर्तीको देखनेमात्रमे भय लगने लगता है। उदारतापूर्वक वस्त्र-आभूषण आदिका दान करनेसे वे यमदूत प्राणीको कष्ट नहीं देते। तिलसे भरे हुए पात्रका जो दान ब्राह्मणको दिया जाता है, वह मनुष्यके मन, वाणी और शरीरके द्वारा किये गये त्रिविध पापाँका विनाश कर देता है। मनुष्य पुतपात्रका दान करनेसे स्ट्रलोकको प्राप्त करता है। ब्राह्मणको सभी साधनोंसे युक्त जन्मका दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें नाना प्रकारकी अप्सराओंसे युक्त विमानमें चढ़कर साठ हजार वर्षतक अभरावतीमें क्रीडा करके इन्द्रलोकके भोग भोगनेके बाद पुन: वहाँसे गिरकर इस पृथ्वीलोकमें आका ग्रजाका पद प्राप्त करता है। जो मनुष्य काठी आदि उपकरणोंसे सजे-धजे, दोषरतित जबान घोडेका दान ब्राह्मणको देता है, उसको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। हे खगेश। दानमें दिये गये इस घोड़ेके शरीरमें जितने रोवें होते हैं, उतने वर्ष (कालतक) स्वर्गक लोकॉका भोग दानदाताको प्राप्त होता है। प्राणी बाह्यणको सभी उपकरणोंसे युक्त चार घोड़ोंवाले रधका दान दे करके राजस्य यज्ञका फल प्राप्त करता है। यदि कोई व्यक्ति अनुलेप भी करें। सुपात्र ब्राह्मणको दुग्धवती, नवीन मेघके समान वर्णवाली, सुन्दर जधन-प्रदेशसे युक्त और मनमोहक तिलकसे समन्वित पहला पिण्ड मृत्यु-स्थानपर, दूसरा द्वारपर, तीसरा चौराहेपर,

वालपत्रसे बने हुए पंखेका दान करनेसे मनुष्यको हे खगराज! गौका दूध अमृत है। इसलिये जो भनुष्य परलोकगमनके मार्गमें बायुका सुख प्राप्त होता है। वस्त्र-और लचुता आती है।

यदि मृत्युके समीप पहुँचे हुए मनुष्यको लोग किसी पवित्र तीर्थमें ले जाते हैं और उसकी मृत्यु उसी तीर्थमें हो जाती है तो उसको मुक्ति प्राप्त होती है और यदि प्राणी मार्गके बोच ही मर जाता है तो भी मुक्ति प्राप्त करता ही है, साथ ही उसको ठीर्चतक ले जानेवाले लोग पग-पगपर यञ्च करनेके समान पाल प्राप्त करते हैं-

> आसप्रमरणो मन्देशेत् तीर्थं प्रतिनीयते। तीर्धप्राप्ती भवेन्युक्तिप्रियते यदि मार्गमः। पदं पदं कतुसर्व भवेत् तस्य न संशयः॥

> > (318136)

हे द्वित्र। मृत्युके निकट आ जानेपर जो मनुष्य विधियत् उपवास करता है, वह भी मृत्युके पक्षात् पुनः इस संसारमें नहीं लीटता।

हे खगेश! मृत्युके संनिकट होनेपर कौन-सा दान करना चाहिये। इस प्रश्नका उत्तर मैंने बता दिया है। मृत्यु और दाहके बीच मनुष्यके क्या कर्तव्य हैं? इस प्रश्नका उत्तर अब तुम सुनो।

व्यक्तिको मरा हुआ जान करके उसके पुत्रादि परिजनोंको चाहिये कि वे सभी स्नान करके शवको सुद्ध जलसं स्वान कराकर नवीन यस्त्रसे आच्छादित करें। तदनन्तर उसके शरीरमें चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थीका

दाह-संस्कारके अन्तर्गत छ: पिण्ड देनेकी विधि है।

चौथा विश्रामस्थान, पाँचवाँ काष्टचयन (चिता) और छटा रखना चाहिये तथा किसीको स्पर्श नहीं करना चाहिये। इस अस्थि-संचयनके समय-ये छ: पिण्डदानके स्थान है। सभी बन्धु-बान्धवाँको रमशानभूमिमें शवको ले जाना चाहिये तथा वहाँ शवको दक्षिण दिशाकी ओर सिर करके स्थापित करना चाहिये। दाहको क्रियाके लिये पुत्रादि परिजनोंको स्वयं तुण, काष्ट्र, तिल और युत आदि ले जाना चाहिये। शुद्रोंके द्वारा रमशानमें पहुँचायी गयी वस्तुओंसे वहाँ किया गया सम्पूर्ण कर्म निष्कल हो जाता है। वहाँपर सभी कर्म अपसब्य और दक्षिणाभिमुख होकर करना चाहिये। शबदाहके पूर्व पाँच पिण्डदान करनेसे शबमें आहति (अग्निदाह)-की योग्यत आ जातो है। किसी कारणवश उपर्युक्त पिण्ड नहीं दिये जानेपर सब राक्षसोंके पक्षण-योग्य हो जाता है। दाहकार्यमें चाण्डालके घरकी अग्नि, धिताको अग्नि और पापीके घरको अग्निका प्रमोग नहीं करना चाहिये। स्वच्छा भूमिपर अग्नि स्थापित कर क्रव्याददेवकी विधियत् पूजा करके शवको चितामें जलानेका उपक्रम करना चाहिये। जब शबके शरीरका आधा धाग चितामें जल जाय तो उस समय कर्ता तिलमिक्षित चुतकी आहुति चितामें जल रहे जबके ऊपर छोड़े। उसके बाद भावविद्वल होकर उस आत्मीय जनके लिये रोना चाहिये। इस कृत्यको करनेसे उस मृतकको अत्यधिक सुख प्राप्त होता है।

दाहक्रिया करनेके पश्चात् अस्यि-संचयन क्रिया करनी चाहिये। तदनन्तर किसी जलाशयपर जाकर सभी परिजनोंको सचैल (वस्त्रसहित) स्नान करना चाहिये तथा दक्षिणाभिमुख होकर मृत प्राचीके लिये तिलयुक्त जलाइति देनी चाहिये।

शवदाह तथा तिलाञ्चलिके बाद मनुष्यको अनुपात नहीं बान्धवींके द्वारा औंख और मुँहसे गिराये हुए औंसु और समझना चाहिये। इस स्थितिमें नारायणबलि किये जानेपर कफका मृतकको पान करना पढ़ता है। इसके बाद हो औध्वंदैहिक कर्मको योग्यता आती है। अपमृत्यु होनेपर जीवनकी क्षणभंगुरताकी चर्चा करते हुए घरकी ओर ऐसे प्राणीका जुद्धीकरण इसी नारायणबलिसे सम्भव है, प्रस्थान करे। जिसमें स्त्रियाँ आगे-आगे तथा पुरुष उनके अन्यथा नहीं। नारायणबलि एकादशाहके दिन करना पीछे-पीछे चलें। घरके द्वारपर पहुँचनेपर नीमकी पत्तियोंको चाहिये। नारायणबलिको विधिका यहाँ संक्षेपमें वर्णन किया दाँतसे काटकर आचमन करे, बादमें घरमें प्रवेश करे।

पुत्र-पौत्रादि तथा सगोत्री परिवन दस यत्रियोंका नारायणबलिसे मृत व्यक्तिका नरकलोकसे उद्घार हो जाता अशीच मनावें। इस अशीच-कालमें ब्रह्मचर्य-ब्रह्मा पालन है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। करना चाहिये। पृथ्वीपर ही सोये। अपना आसन अलग

कालमें दान, अध्ययन एवं भोग-विलास आदि कर्मोंसे दूर रहना चाहिये। अङ्गमर्दन और सिर धोना भी छोद देवे। अजीवको अवधिमें मिट्टीके बने पात्र या पत्तलमें भोजन करना चाहिये। इसके बाद दशगापके अन्तर्गत दस पिण्डदान आदिकी प्रक्रिया बतायी गयी है। दाह-संस्कारके समयके छ: पिण्ड तथा दशगात्रके दस पिण्डको मलिनबोडशी कहा गया है, जो मृत-दिनसे दस दिनमें पूर्ण होती है। दशगात्रकी प्रक्रियामें यह बताया गया है कि नौ दिनमें मृत व्यक्तिका शरीर अपने अङ्गोंसे युक्त हो जाता है। दसमें पिण्डदानसे उस शरीरमें पूर्णता, तुप्ति और मुख-प्यासका उदय होता है।

इसके बाद पतिके मरनेपर स्त्रीके कर्तव्यकी बात बतावी गयी है, जिसमें बितापर पतिका अनुगमन करनेपर सतीधर्मको सबसे अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। पतिको मृत्युके समय जो स्वियाँ गर्भरहित है और जिनके होटे बच्चे नहीं हैं, उनको सतीधर्मका पालन करना चाहिये। अपमृत्युका निवारण

यदि कोई प्राणी भूखसे पीड़ित होकर मर जाता है, हिंसक फ्राणियोंके द्वारा मारा जाता है, गलेमें फरैसीका फंदा लगानेसे जिसकी मृत्यु हो जाती है, जो विष तथा अग्नि आदिसे मृत्युको प्राप्त होता है, जो आत्मघाती है, जो गिरकर या रस्सी आदिके द्वारा किये गये बन्धन अथवा जलमें डबनेसे मर जाते हैं, जो सर्प तथा जंगली हिंसक पशु, वृक्षपात, विद्युत्पात, लोहेसे, पर्वतपरसे गिरनेसे, दीकारके गिरनेसे, खाट या मध्य कक्षमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, जो शस्त्रापातसे, विपैले कुत्तेके मुखको स्पर्श करनेसे करना चाहिये; क्योंकि उस समय रोते हुए अपने बन्धु- तथा शास्त्रविधिसे रहित जो मृत्यु हो जाती है, उसे दुर्मरण

गया है। नारायणबलिका वर्णन करते हुए कहा गया है कि

प्रवासमें मृत्यु होनेपर या सर्पदंश आदिसे मृत्यु होनेपर

पुत्तल-दाहको विधिका निरूपण किया गया है। इसके विद्वान् ब्राह्मणको कुत्र या चावलके चूर्णसे ही सांडका अनन्तर रजस्वला और सुविका स्त्रीके मरनेपर कॉन-सा निर्माण करके उसका उत्सर्ग करना चाहिये। जीवनकालमें विशेष कर्म करना धर्मसम्मत है, यह भी बताया गया है। प्राणीकों जो भी पदार्थ प्रिय रहा हो उसका भी दान इसी पञ्चकमें मृत्य-प्राप्तके कृत्य

द्वारा गरुडजीको बतायी गयी है।

रेवती नक्षत्रतकका समय पश्चककाल कहलाता है। इसको सदैव दोषपूर्ण और अजुभ माना गया है। इसमें मरे हुए व्यक्तिका दाह-संस्कार करना उचित नहीं है। यह काल सभी प्राणियोंमें दु:ख उत्पन करनेवाला है। पञ्चककालके समाप्त होनेपर ही मृतकके सभी कर्म करने चाहिये, अन्यथा पत्र एवं पारिवारिक जनकि लिये यह कष्टप्रद होता है। इन नक्षत्रोमें मृतकका दाह-संस्कार करनेपर धरमें किसी-न-किसी प्रकारकी हानि होती है। पञ्चकमें दाह-संस्कार करना हो तो कुराके मानवाकार चार पुतले बनकर नक्षत्रमन्त्रोंसे उनको अभिमन्त्रित करके शवपर रख दे। तदनन्तर उन्हों पुतलोंके साथ मृतकका दाह-संस्कार करना चाहिये। अशीचके समाप्त हो जानेपर मृतकके पुजेंद्रारा पश्चक-शान्ति भी करानी चाहिये। मृतकके पुत्रीकी प्राणीके कल्याण-हेत् तिल. गाँ, स्वर्ण और घीका दान देना चाहिये। समस्त विष्नोंका विनाश करनेके लिये बाह्मजीको भोजन, पादका, छत्र, स्वर्णमुद्रा और वस्त्र देना चाहिये। यह दान मृतकके समस्त पापाँका विनाशक है।

मिलनपोडशीके बाद मध्यमपोडशीकी विधिका वर्णन किया गया है। विष्णुसे आरम्भ करके विष्णुपर्वन एकादश ब्राद्ध तथा पाँच देवब्राद्ध-इस प्रकार घोडरा ब्राट्ड किये जाते हैं। इन्होंका नाम मध्यमपोडशो है। यह कृत्य एकादशाहको किया जाता है। इसी दिन वहींपर वृषोत्सर्ग भी करना चाहिये। जिस जीवका म्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग नहीं होता है, सैकड़ों ब्राट्ड करनेपर भी उस जीवकी प्रेतत्वसे मुक्ति नहीं होती। अत: स्वजनको मृत्युके पश्चात निश्चित ही वृषोत्सर्ग करना चाहिये। चार बछियोंसे युक्त विधानपूर्वक अलंकत वृष जिसके निमित्त छोडा जाता है. उसको प्रेतत्वको प्राप्ति नहीं होती। यदि एकादशाहके दिन यथाविधान सांड उत्सर्ग करनेके लिये उपलब्ध नहीं है तो

एकादशाह बाद्धके दिन करना उचित है। इसी दिन मरे हुए पञ्चकमें मृत्यु होनेपर दाह-संस्कारकी विधि भगवानुके स्वजनको उद्देश्य बनाकर शय्या, गाँ आदिका दान भी करना चाहिये। इतना हो नहीं, उस प्रेतकी क्षुधा-शान्तिके मासके प्रारम्भमें धनिष्ठा नक्षत्रके अर्ध-भागसे लेकर लिये बहुत-से ब्राह्मणोंको धोजन भी कराना चाहिये।

इसके बाद धगवान तृतीयपोडशी (उत्तमपोडशी) श्राद्धका वर्णन करते हैं। प्रत्येक चारह मासके बारह पिण्ड, उलमासिक (अव), तिपाधिक, उतपाण्यासिक एवं उत्पाब्दिक-इन्हें मनभेटसे नतीय अथवा उत्तममोडशी कहा जाता है।

गरुडके पूछनेपर भगवान्ने कहा-हे खगराज! जब मनुष्य मानेके बाद एक वर्षकी महापद्यकी यात्रा करता है तो वह एत्र-पौत्रादिके द्वारा सपिण्डोकरण हो जानेपर पितृलोकमें चला जाता है। इसलिये पुत्रको पिताका सचिण्डोकरण अवस्य करना चाहिये। वर्षके अन्तमें पित्-चिण्डॉक साथ प्रेत-पिण्डका सम्मिलन हो जानेक बाद वह प्रेत परम गतिको प्राप्त करता है।

गृहस्य पिताको मृत्यु होनेपर यदि सपिण्डोकरण श्राद नहीं हुआ है तो किसीका विवाह-संस्कार नहीं हो सकता। जबतक संपिण्डीकरण नहीं हो जाता तबतक भिक्षक उस घरको भिक्ता स्वीकार नहीं करता। अपने गोत्रमें अशीच तबतक रहता है जबतक पिण्डका मेलन नहीं हो जाता। पिण्डमेलन होनेपर 'प्रेत' शब्द निवृत्त हो जाता है। कुलधर्म अनन्त हैं, पुरुषकी आयु नष्टप्राय है और शरीर नाशवान् है। इस कारण द्वादशाह ही इस कर्मके लिये प्रशस्त समय माना गया है। अत: क्रिया करनेवाले पुत्रको द्वादशाहको ही सपिण्डोकरण कर देन चाहिये। तत्त्वद्रष्टा ऋषियोंने सर्पिण्डोकरणके स्तिये द्वादशाह, त्रिपक्ष, छठा मास अथवा वार्षिक विधिको कहा है। सपिण्डीकरणके पूर्व उत्तमपोडशी होनी आवश्यक है; क्योंकि बारहवें दिन ही प्राय: सचित्रहोकरण करना लोकमें प्रसिद्ध है, इसलिये उत्तमघोडशी बाद एकादमाह या द्वादशाहकों कर देना चाहिये। सपिण्डीकरण करनेके बाद भी बारह महीनेतक पोडश श्राद्ध एकोहिए-विधिसं नियमानुसार करना चाहिये।

हे खगराज। मृतकका दाह-संस्कार हो जानेके पश्चात्

दशगात्रके पिण्डदानसे पुन: शरीर उत्पन्न होता है। दसवें अनित्य है। जबतक यह जीवन है तभीतक अपने बन्ध-पिण्डसे शरीर बन जानेपर प्राणीको अत्यधिक भूख लगती बान्धव हैं। मृत्यु हो जानेपर 'यह मर गया है' ऐसा जानकर है। एकादशाह तथा द्वादशाह—इन दो दिनोंमें प्रेत भोजन करता है। इन दोनों दिन जो कुछ भी प्राणीके निमित्त दिया जाता है, उसे 'प्रेत' शब्दके द्वारा दिया जाना चाहिये; क्योंकि वह मृतकके लिये आनन्ददायक होता है। सपिण्डीकरण कर देनेके बाद जो भी दान किया जाय वह नाम-गोड़का उच्चारण करके पित्-निमित्त करना चाहिये। भोजन तथा घटादिका दान, पददान, शब्यादान एवं अन्य जो भी दान हैं, उन्हें मृत प्राणीके निमित्त एकको ही उद्देश्य करके देना चाहिये। पिण्डदानके पक्षात् यद्याशक्ति उपयोगी समस्त सामग्री दानमें दे। ऐसा होनेपर वह दिव्य देह धारण करके विमानद्वारा सुखपुर्वक यमलोकको चला जाता है।

प्रेतके द्वादशात-संस्कारके अवसरपर जलपूरित कुम्भोंका दान विशेष महत्त्व रखता है। यजमान उस दिन जलसे भरे बारह घटोंका संकल्प करके दान करे। उसी दिन बाह प्रकान और फलसे परिपूर्ण एक वर्धनी (विशेष प्रकारका जलपात्र) भगवान् विष्णुके लिये संकल्प करके सुयोग्य एवं सन्वरित्र बाह्मणको प्रदान करे। तदनन्तर वह एक वर्धनी, पकान तथा फल धर्मराजको समर्पित करे। उससे संतष्ट होकर धर्मराज उस प्रेतको मोश्च प्रदान करते हैं। उसी समय एक वर्धनी चित्रगुसके लिये दानमें देना चाहिये। उसके पुण्यसे प्रेत वहाँ पहुँचकर सुखी रहता है।

दानमें एक शब्या एक ही ब्राह्मणको देना चाहिये। एक गी, एक गृह, एक प्राप्या और एक स्त्रीका दान बहुतीके लिये नहीं होता। विभाजित करके दिये गये ये दान दाताको पापकी कोटिमें गिरा देते हैं। आत्मा ही पुत्रका नाम है। वहीं पुत्र यमलोकमें पिताका रक्षक है। घोर नरकसे वही पिताका उद्धार करता है। इसलिये उसे पुत्र कहा जाता है। अत: पुत्रको पिताके लिये आजीवन ब्राद्ध करना चाहिये. तभी भोगोंका सख प्राप्त करता है।

क्षणभरमें ही अपने हृदयसे स्नेहको दूर कर देते हैं। 'आत्मा ही अपना बन्ध है।' ऐसा बारम्बार विचारकर अपने जीते ही हितका कार्य कर लेना चाहिये।

इसके अनुनार गरुडने प्रेतींके सम्बन्धमें इस प्रकार जिज्ञासा की-'भगवन्! प्रेतके अनेक रूप किस प्रकार होते हैं 7 वे कौन-कौनसे कर्मके द्वारा महाप्रेत और पिशाच बन जाते हैं? और किस शुभ दानसे प्राणीकी प्रेतयोनि छूट जातो है?' इन सबका उत्तर देते हुए भगवानूने कहा-जो पूर्वजन्मसंचित कर्मके अधीन रहकर पापकर्ममें अनुरक्त रहते हैं, वे मृत्युके पक्षात् प्रेतयोनिमें जन्म लेते हैं तथा जो वंतपरम्परागत धर्मपथका परित्याग करके दूसरे धर्मको स्वीकार करता है, विद्या और सदाचारसे जो विहीन है वह भी नि:संदेह प्रेत ही होता है। इसके साथ और भी कई कारण विस्तारसे बताये गये हैं। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास' जो पितायह भीष्य और युधिष्ठिरके संवादमें कहा गया था। प्रेतके लक्षण बताते हुए बभुवाहन नामके एक राजाकी कथा सुनायों। इस राजाको किसी प्रेतका साक्षात्कार हुआ तथा उससे वार्तालाप भी हुआ। राजासे प्रेतने बताया कि मृत्यूपरान्त उसके औध्वंदेष्टिक संस्कार तथा ब्राह्म आदि कर्म न होनेके कारण उसे प्रेतयोनि प्राप्त हुई। उसने इस योनिसे मुक्त करानेके लिये राजासे प्रार्थना की। राजाके पूछनेपर उस प्रेतने प्रेतयोनि मिलनेके कारण तथा इस योनिसे मुक्तिका उपाय भी बताया। नगरमें पहुँचकर राजाने उस प्रेतके द्वारा कही गयी सम्पूर्ण औध्वेदेहिक क्रियाको विधि-विधानसे सम्यन्न किया। उसके पुण्यसे वह प्रेत बन्धनविष्क होकर स्वर्गको चला गया।

जीव अपने कर्मानसार दूसरे शरीरको प्राप्त करके यमलोकमें नाना प्रकारके कष्ट भोगता है। यमलोकके वह आतिवाहिक प्रेतरूप पिता पुत्रद्वारा दिये गये उन मार्गमें सोलह पर पडते हैं, जिसका विस्तृत वर्णन भगवान बोहरिने किया है। संसारमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-शय्यादानको प्रशंसा करते हुए कहते हैं- यह जीवन ये चार मार्ग हैं। जो उत्तम प्रकृतिवाले प्राणी हैं, वे धर्ममार्गसे

१-पष्ट-संस्था ४३७ पर देखिये।

२-स्थानाभावके कारण यह कथा पूरी नहीं टी गयी। विस्तृत कथा पृष्ट-संख्या ४१० में टेखनी चाहिये।

३-यह कथा पृष्ठ-संख्या ४२७ पर देखनी चाहिये।

चलते हैं। जो अर्थ अर्थात् धन-धान्यका दान करनेवाले हों तो स्त्रियाँ इस कार्यको कर सकती हैं। जो लोग अपने प्राणी हैं, वे विमानसे परलोक जाते हैं। जो प्राणी सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा दिये गये ब्राइसे संतुष्ट हो जाते हैं, अभिलियत याचककी इच्छाको संतुष्ट करनेवाले हैं, वे कन्थोंपर सवार होकर प्रस्थान करते हैं। जो प्राणी मोश्रकी आकांक्षा रखते हैं, वे इंसयुक्त विमानसे परलोकको जाते हैं। इसके अतिरिक्त जो प्राणी धर्मादि पुरुषार्थंचतुष्टयसे हीन है, वह पैदल ही काँटों तथा पत्थरोंके बीचसे कह झेलता हुआ असिपत्रवनमें जाता है।

इसके पक्षात् श्रीकृष्णने एक पुण्यज्ञाली इतिहासका वर्णन किया, जो महर्षि वसिष्ठने राजा बोरवाहनसे कहा वा। इसके अन्तर्गत महर्षि वसिष्ठने धर्मवत्स नामक एक ब्राह्मणकी कथा सुनायी तथा उसके पूर्वजन्मका एक शिक्षाप्रद कथानक भी प्रस्तुत किया।' जिसमें लोमल ऋषि और वैश्यका संवाद है। ऋषिने कहा-हे बैश्यवर! यह मन अत्यन्त बलवान है और नित्य ही विकारयुक्त स्वभाववाला है, तथापि जिस प्रकार पीलवान मतनाले हाथांको भी वहसें कर लेते हैं वैसे ही सत्संगतिसे, जालस्यरहित होकर साधन करनेसे, तीव्र भक्तियोगसे तथा सद्विचारके द्वारा अपने मनको बशमें कर लेना चाहिये। इस सम्बन्धमें नारदेक पूर्वजन्मके जीवनवृत्तमे जुड़ी हुई कथा भी ऋषिने सुनायी।" जिसका आशय यह या कि सत्संगति तथा भगवद्धकिसे विजय निर्मल और शान्त स्वधाववाला मन सुखी हो जाता है। साधसंगति होनेपर अनेक जन्मोंमें किया हुआ पाप गोध ही उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जिस प्रकार शरत्कालके आनेपर वर्षा समाप्त हो जाती है।

तदनन्तर श्रीकृष्णने संतप्तक रामक ब्राह्मण तथा पाँच प्रेतोंकी कथा सुनायी, जिसमें सत्संगति तथा भगवत्कृपासे पाँच प्रेतों तथा ब्राह्मणका उद्धार हो गया।

श्राद्ध करनेके अधिकारी

गरुडके पछनेपर औध्वदिहिक क्रियाके अधिकारीका वर्णन भगवान्ने प्रस्तुत किया। मृत प्राणीका औध्वेदेहिक कार्य पुत्र, भौत्र, प्रभौत्र, भाई, भाईकी संतान अथवा सपिण्ड या जातिके लोग कर सकते हैं। इन सधीके अभावमें समानोदक संतान इस कार्यको करनेका अधिकारी है। यदि दोनों कुलों (मातृकुल-पितृकुल)-के पुरुष समाप्त हो गये उत्काल दूसरे शरीरकी प्राप्ति हो जाती है अथवा विलम्बसे

वे श्राद्धकर्ताको पुत्र, स्त्री और धन आदिके द्वारा तृप्त करते हैं।

जीवित-श्राद्धका विधान

गरुडके यह पूछनेपर कि हे देव! यदि उपर्युक्त अधिकारियोंमेंसे एक भी न हो तो उस समय मनुष्यको क्या करना चाहिये?

भगवानने कहा-यदि कोई अधिकारी व्यक्ति न हो तो ऐसी स्वितिमें मनुष्यको स्वयं अपने जीवनकालमें ही बोवित-हाद करना चाहिये। बोवित-ब्राह्मकी विधि पृष्ट ४०८ में प्रस्तुत को गयी है। गुरुडके जिल्लामा करनेपर भगवानुने कहा - ब्राद्धके द्वारा प्रेतको जिस प्रकार तृप्ति होती है उसे सुनी-

मनुष्य अपने कर्मानुसार यदि देवता हो जाता है तो बाद्धान अमृत होकर उसे प्राप्त हो जाता है। वहीं अन गन्धवंद्योनिमें भोगरूपसे, पशुयोनिमें तुणके रूपमें प्राप्त होता है। वहीं आद्धान नागयोगिमें वायुरूपसे, होनेपर फलरूपसे और ग्रक्षसयोनिमें आमिषरूपसे बन जाता है। वहीं ब्राह्मन दानक्की योनिक लिये मांस, प्रेतके लिये रक, मनुष्यके लिये अन्त-पानदि, बाल-योनिके लिये भोगरस हो जाता है। पितर जिन योनियोंमें जिस आहारवाले होते हैं. ब्राइके हमा उन्हें वहाँ उसी प्रकारका आहार प्राप्त होता है।

यदि बादकर्ता बादमें एक ही ब्राह्मण आमन्त्रित करता है तो उस ब्राह्मणके उदरभागमें पिता, वामपार्श्वमें पितामह, दक्षिणपाश्रमें प्रिपतामह और पृष्ठभागमें पिण्डभक्षक पितर रहते हैं। ब्राद्धकालमें यमराज प्रेत तथा पितरोंको यमलोकसे मृत्युलोकके लिये मुक्त कर देते हैं। नरक भोगनेवाल भूख-प्याससे पीड़ित पितृजन अपने पूर्वजन्ममें किये गये पापका पक्षाताप करते हुए अपने पुत्र-पीत्रोंसे मधुमित्रित पायसको अभिलापा करते हैं; अतः विधिपुर्वक पायसके द्वारा उन पितृगणोंको तृप्त करना चाहिये।

गरुडके इस प्रश्नके उत्तरमें कि 'मृत्युके बाद प्राणीकी

१-यह कथा पृष्ठ-संख्या ३९९ पर देखनी चाडिये।

२-यह कथा पृष्ठ-संख्या ४०२ पर देखनी बाहिये।

उसको दूसरे शरीरमें जाना पडता है?"

भगवान्ने कहा-हे गरुड! मृत्युके पश्चात् तुरंत और विलम्ब दोनों प्रकारसे दूसरे शरीरमें प्राणी प्रविष्ट होता है। मनुष्ययोनि परम दुर्लभ है। पाँच (ज्ञान) इन्द्रियोंसे युक्त यह

रहता है, वह मृत्युके बाद तुरंत ही वायबीय शरीर धारण कर लेता है। धृत-प्रेत और पिशाचोंका शरीर ऐसा ही कहा गया है। पुत्रादिके द्वारा दशगात्रके जो पिण्डदान दिये जाते हैं उससे पिण्डज शरीर बनता है। इस पिण्डज सरीरसे वायवीय शरीर एकाकार हो जाता है। यदि पिण्डव सरीरका साथ नहीं होता है तो वायुज ऋरीर कष्ट भोगता है।

कोई-कोई जोवात्मा पिण्डज शरीर विलम्बसे ग्राप्त करता है: क्योंकि मृत्युके बाद स्वकर्मानुसार वह यपलोकको जाता है। चित्रगुप्तकी आज्ञासे वह वहाँके नरक भोगता है। वहाँकी यतनाओंको झेलनेके पश्चात् उसे पशु-पन्नी, तिर्वक् कोट-पतंग आदिको योगि प्राप्त होती है। प्राणी जिस अरोरको ग्रहण करता है उसी शरीरमें मोहवश समता हो जाती है। राभाराभ कमोंके फल भोगकर वह मुक्त हो जाता है।

गरुडके यह पूछनेपर कि बहुत-से पापींको करनेपर भी इस संसारको पारकर प्राणी आपको कैसे प्राप्त कर सकता है?

भगवान्ने कहा-हे पश्चिराज! मनुष्य अपने अपने कर्ममें रत रहकर संसिद्धि प्राप्त कर शेता है। सत्कर्मसे जिसने अपने कालुध्यको नष्ट कर दिया है वह व्यक्ति वास्तेवके निरनार चिनानमें विश्वद हुई बुद्धिमें युक्त होकर धैर्यसे अपना नियमन करके स्थित रहता है। जो जब्दादि विषयोंका परित्याग कर तथा राग-देवको छोडकर विरक्तसेसी और यथाप्राप्त भीजनसे संतृष्ट रहता है, जिसका मन, वाली, शरीर संयमित है, जो वैराग्य धारण करके नित्य ध्यान-योगमें तत्पर रहता है, जो अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह-इन महिकारोंका परित्याग करके निर्भव होकर शान्त ही जाता है, यह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। इसके बाद मनुष्योंके लिये कुछ करना शेष नहीं रह जाता।

नाभिसे मुर्धापर्यन्त शरीरमें आठ छिद्र हैं। जो सत्कर्म करनेवाले पण्यात्मा हैं उनके प्राण शरीरमें कर्ध्व हिट्टांसे निकलकर परलोक जाते हैं। जो अनासक भावसे सत्कर्ममें रत रहता है वह मृत्युके बाद सुखी रहता है और सांसारिकताके मायाजालमें नहीं फैसता है। जो विकर्ममें

निस्त रहता है, वह मनुष्य पाशबद्ध हो जाता है।

इस संसारमें चौरासी लाख योनियाँ हैं। इन सभीमें शरीरके अंदर जो ज्योति:स्वरूप जीवात्मा विद्यमान योनि प्राणीको बडे ही पुण्यसे प्राप्त होती है। स्वर्ग और मोक्षके साधनभूत मनुष्ययोनिको प्राप्त करके जो प्राणी उन दोनोंमेंसे एक भी लक्ष्य सिद्ध नहीं कर पाता है निश्चित ही उसने अपनेको उग लिया। सौका मालिक एक हजारकी कामना करता है, एक हजारवाला लाखको, लक्षाधिपति राज्यकी इच्छा करता है, जो राजा है वह सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने वरामें रखना चाहता है, चक्रवर्ती नरेश देवत्वकी इच्छा करता है, देवत्व-पदके प्राप्त होनेपर उसकी अधिलाषा देवराज इन्द्रके पदको होती है, देवराज होनेपर वह उध्वंगतिकी कायना करता है, फिर भी उसकी तथ्या ज्ञान्त नहीं होती। तुष्णासे पराजित व्यक्ति उरकमें जाता है। जो लोग तृष्णासे मुक्त हैं, उन्हें उत्तम लोकको प्राप्ति होती है।

इस संसारमें जो प्राणी आत्माधीन है वह निश्चित ही सुखों है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गुन्ध-ये जो पाँच विषय हैं, इनको अधीनतामें रहनेवाला निश्चित हो द:खी रहता है। लीह और काष्ट्रसे बने पाशसे बँधा व्यक्ति मुक्त हो जाता है किंतु स्त्री, पुत्र-धन आदिके मोहपाशमें बँधा प्राणी कभी पक नहीं हो पाता।

पाप एक मनुष्य करता है किंतु उसके फलका उपभोग बहुत-से लीग करते हैं। भीका तो अलग हो जाता है, पर कर्ता दोषका भागी होता है। सबके देखते-देखते मृत प्राणी सबको होडकर चला जाता है। इस मर्त्यलोकमें प्राणी अकेला ही जन्मता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही पाप-पुण्यका भीग करता है। बन्ध-बान्धव मरे हुए स्वजनके तरोरको पृथ्वीपर लकडी और मिट्टीके ढेलेकी भौति लोडकर पराइम्छ हो जाते हैं। धर्म ही उसका अनुसरण करता है। प्राणीका धन-वैभव घरमें ही छूट जाता है. मित्र एवं बन्ध-बान्धव श्मशानमें छुट जाते हैं, शरीरकी अग्नि ले लेता है, पाप-पुण्य ही उस जीवात्माके साथ जाते हैं। मनुष्यने जो भी शुभ या अशुभकर्म किया है, वह सर्वत्र उसीको भोगता है।

मनुष्य स्वयं जो कुछ भी सत्कर्म करते हैं अथवा दान देते हैं, परलोकमें वे सभी उसके सामने उपस्थित रहते हैं। दानमें जो गौ, भूमि, स्वर्ण, वस्व, भोजन और पददान अपने

है, वहाँ वे दान भी उपस्थित रहते हैं। जबतक प्राणीका हारीर चाहिये; क्योंकि चरमें महाभयंकर आगके लग जानेपर स्वस्थ रहे, तबतक धर्मका सम्यक् पालन करना चाहिये। कुओं खोदनेके उद्देश्यसे मनुष्यको क्या लाभ प्राप्त हो अस्वस्थ होनेपर दूसरॉकी प्रेरणासे भी वह कुछ नहीं कर सकता है ?-पाता। यदि अपने जीवनकालमें व्यक्ति औध्वंदैहिक कर्म नहीं कर लेता है, अथवा मरनेके बाद अधिकारी पुत्र-पौत्रादिके द्वारा भी वह किया नहीं होती है तो वह वायुरूपमें भूख-प्याससे पीड़ित हो रात-दिन भटकता रहता है। वह कृमि, कीट अथवा पतिंगा होकर बार-बार जन्म लेता है और गर जाता है। वह कभी असत्-मार्गसे गर्भमें प्रविष्ट होता है एवं जन्म लेते ही तल्काल विनष्ट हो जाता है।

वैतरणी नदीका वर्णन करते हुए भगवान कहते हैं कि यमलोकके मार्गमें वैतरणी नामकी महानदी है, यह अनाध दुस्तर और देखनेमात्रसे पापियोंको महाभयभीत करनेकली है। पृथ्वीपर जिन लोगोंने गोदान किया है, उस दानके प्रभावसे वे उसे पार कर जाते हैं, अन्यया जिनके द्वारा यह नदीको पार करनेकी इच्छा उत्पन्न हो जाय तो उससे तरनेका उपाय सुनो-

मकर और कर्कको संक्रान्तिका पुण्यकाल, व्यतीपात योग, दिनोदय, सूर्य-चन्द्रग्रहण, संक्रान्ति, अमनास्या अधना अन्य पुण्यकालके आनेपर इससे तरनेके लिये श्रेष्ठतम दान दिया जाता है, यों तो मनमें दान देनेकी बद्धा जब कभी उत्पन्न हो जाय, बही दानका काल है: क्योंकि सम्मति अस्थिर है।

शरीर अनित्य है और धन भी सदा रहनेवाला नहीं है। मृत्यु सदा समीप है, इसलिये धर्म-संग्रह करना चाहिये। अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शास्तः॥

नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः।

(5180158-54)

जबतक यह शरीर स्वस्थ और निरोग है. जबतक इस प्रकारसे क्षीण नहीं हुई हैं और जबतक आयु नष्ट नहीं हुई

हाथसे दिये जाते हैं, वे सभी जिस-जिस योनिमें व्यक्ति जाता है, तबतक अपने कल्याणके लिये महानू प्रयत्न कर लेना

पाचतसम्ब शरीरं हि तावद्धर्म सपाचरेत्। प्रेरितशान्यैनं किंचित् आस्वस्य:

भारतवर्षमें मानवयोनि प्राप्त करके मनुष्य अपने जीवनका उत्सर्ग तीर्थमें करता है तो उसका पुनर्जन्म नहीं होता। अयोध्या, मधुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्ती और द्वारका-ये सात पुरियाँ मोध देनेवाली है।

जो मनुष्य मृत्युके समय दो अक्षर 'हरि'का एक बार उच्चारण कर लेता है, यह मरनेपर मानो मोध प्राप्त करनेके लिये कटिबद्ध हो गया है।

राग-द्वेषरूपी मलको दूर करनेमें समर्थ, ज्ञानरूपी जलाक्षयके सत्यक्षयो जलसे युक्त मानसतीचेमें जिस दान नहीं हुआ है, वे उसीमें ड्वते रहते हैं। अहंकारवान, मनुष्यने स्नान कर लिया है, वह कभी पापींसे लिया पापी, अपनी झूठी प्रशंसा करनेवाला, कृतष्न, गर्भपात नहीं होता। देवता कभी काष्ट और पल्परकी शिलामें करनेवाला तथा अन्य बहुत से पापाँके कारण जीव नहीं रहता वह तो प्राणीके भावमें विराजमान रहता वैतरणीमें निवास करता है। कदाचित् भाग्ययोगसे उस है। इसलिये सद्भावसे युक्त भक्तिका सम्यक आचरण

न काहे विद्यते देवो न शिलायां कदाचन। भावे हि विद्याते देवस्तस्थाद्भावं समाचरेत्॥

(4913615)

पण्डितको जोवन और मरण-इन दोकी ही शिक्षा लेनी चाहिये। अतः दान और भीगसे जीवन धारण करे और युद्धभूमि एवं तीर्थमें मृत्युको प्राप्त करे। इस पृथ्वीपर दान, दम और दया- यही तीन सत्-तत्त्व है। दरिद्र तथा सञ्जन ब्राह्मणको दान, निर्जन प्रदेशमें स्थित शिवलिंगका पूजन और अनाथ प्राणीका संस्कार करोडों यज्ञका फल प्रदान करता है-

दानं साधोदीरद्रस्य शून्यतिङ्गस्य पूजनम्। कोटियज्ञफलग्रदः॥ अनाधप्रेतसंस्कार:

वबाविहित अपने धर्मका पालन करनेसे प्राणियोंको शरीरसे बुढ़ापा दूर है, जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति किसी भी कर्ष्वगति तथा अधर्मको ओर बढ़नेसे अधोगति प्राप्त होती है। अत: सभी वर्णोंकी सदति अपने धर्मपर चलनेसे ही होती है। देव और मानवयोनिमें जो दान तथा भोगादिकी लेता, उससे बढ़कर मृद् इस जगत्में दूसरा कौन हो सकता क्रियाएँ दिखायी देती हैं, वे सब कर्मजन्य फल हैं। मोर है? कोई भी कर्म शरीरके बिना सम्भव नहीं है, अत: अकर्मसे और काम-क्रोधके द्वारा आर्जित जो अजुभ जरीररूपी धनकी रक्षा करते हुए पुण्यकर्म करना चाहिये। पापाचार हैं उनसे नरक प्राप्त होता है तथा वहाँसे जीवका शरीरको रक्षा धर्मके लिये, धर्मकी रक्षा ज्ञानके लिये और उद्धार नहीं होता। सुकर्मके प्रभावसे प्राणीको ऐहिक और जानको रक्षा ध्यानबीगके लिये तथा ध्यानबीगकी रक्षा पारलीकिक सुखकी प्राप्ति होती है।

जिनके हृदयमें नीलकमलके समान श्याम वर्णवाले भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, उन्होंको लाभ और विजय प्राप्त होती है। ऐसे प्राणियोंकी पराजय कैसे हो सकती है? धर्मको जीत होती है, अधर्मकी नहीं। सत्य ही जोतता है, असल्य नहीं। क्षमाकी विजय होती है, क्रोधकी नहीं। विष्णु ही जीतते हैं असर नहीं। विष्णु ही माता हैं, विष्णु हो पिता हैं और विष्णु ही अपने स्वजन-बान्धव हैं। जिनको बृद्धि इस प्रकार स्थिर हो जाती है उनकी दुर्गति नहीं होती। भगवान् पुण्डरीकाश मङ्गल करते हैं। मोक्षप्रामिका उपाय

वात पूछते हुए कहते हैं— हे दयाखगर। अज्ञानके कारण हो। कुपश्रमामी है, जिनकर लक्ष्य मात्र पेट भरना है से मनुष्य जीवकी उत्पत्ति इस संसारमें होती है, इस बातको मैंने सुन नारकीय प्राणी है। अज्ञानसे मीहित होकर प्राणी अपने लिया। अस मैं मोक्षके सनातन उपायको सुनना चाहता हैं। करोर, धन एवं स्त्री आदिमें अनुस्ता होकर जन्म लेते हैं इस दुस्तर असार-संसारमें नाना प्रकारके शरीरोंमें प्रविष्ट और मर जाते हैं। अत: व्यक्तिको उनकी बढी हुई अपनी जीवोंकी अनन्त बेणियाँ हैं, वे इसी संसारमें जन्म शेती हैं और इसीमें मर जाती हैं, किंतु उनका अन्त नहीं होता। वे रादेव द:खमें व्याकृत रहती है। यहाँ कहीं कोई भी मुखी नहीं है। वे किस उपायसे सुखी हों, इसे आप बजनेको कपा करें। श्रीभगवान् इसका उत्तर देते हुए कहते हैं-अनेक जन्मोंमें कमोंके अनुसार प्राणीको जातीय देह, जाप तथा भृति प्राप्त होती है और सुख-दु:ख प्रदान करनेवाले पुण्य और पापोंका उनके ऊपर नियन्त्रण रहता है तथा पुन:-पुन: जन्म-मरणकी प्रया चलती रहती है।

इस मृत्युलोकमें हजार ही नहीं करोड़ों बार जन्म लेनेपर भी जीवको कदाचित् ही संचित पुण्यके प्रभावसे मानव-योनि मिलती है। यह मानव-योनि मोखको सीदों है। चौरासी लाख योनियोंमें स्थित जीवात्माओंको बिना मानव-योनि मिले तत्वका जान नहीं हो सकता। अत: इस दुर्लभ योनिको प्राप्त करके जो प्राणी स्वयं अपना उद्धार नहीं कर

क्लाल मुक्ति-प्राप्तिक लिये होती है। यदि स्वयं ही अहितकारी कार्योंसे अपनेको दूर नहीं कर सकते हैं तो अन्य कोई दूसरा कौन हितकारी होगा जो आत्पाको सुख प्रदान करेगा? जैसे फुटे हुए घडेका जल धीर-धीर बह जाता है, उसी प्रकार आयु भी धीण होती है। जबतक यह शरीर स्वस्य है तयतक ही तत्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये सम्यक प्रयत्न किया जा सकता है। सौ वर्षका जीवन अत्यल्प है। इसमें भी आधा निद्रा तथा आलस्यमें चला जाता है। इसके साथ हो कितना ही समय बाल्यावस्था, रुग्णावस्या, बुद्धावस्था एवं अन्यान्य द:खोंमें व्यतीत हो जाता है, इसके बाद जो थोड़ा बच जाता वह भी निफाल अन्तमें गरुडजी भगवान्से एक अल्पन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। अपने हित-अहितको न जानते हुए जो नितप आसक्तिका परित्याग करना चाहिये। यदि आसक्ति न छोडी जा रही हो तो महापुरुषोंके साथ उस आसक्तिको जोड देना चाहिये. क्योंकि आसक्तिरूपी व्याधिकी औषधि सजन पुरुष हो है।

> सत्संग और विवेक- ये दो प्राणीके मलरहित स्वस्थ दो नेत्र है। जिसके पास ये दोनों नहीं हैं, वह मनुष्य अन्धा है। वह कुमार्गपर कैसे नहीं जायगा अर्थात वह अवश्य ही कमार्गगामी होगा। जो व्यक्ति दम्भके वशीभत हो जाता है. वह अपना ही नाश करता है। जदाओंका भार और मुगचर्मसे युक्त साधका वेश धारण करनेवाले दास्थिक जानियोंकी भौति इस संसारमें भ्रमण करते हैं और लोगोंको भ्रमित करते हैं। लौकिक सखमें आसक्त 'मैं ब्रह्मको जानता हैं' ऐसा कहनेवाले, कर्म तथा ब्रह्म दोनोंसे प्रष्ट दम्भी और होंगी व्यक्तिका अनयजके समान परित्याग कर देना चाहिये।

बन्धन और मोधके लिये इस संसारमें दो ही पद हैं-

मेरा है। 'यह मेरा है' इस ज्ञानसे वह बँध जाता है, और 'यह भेरा नहीं है' इस ज्ञानसे वह मुक्त हो जाता है-

हे पक्षे बन्धमोक्षाय न यमेति ममेति छ। ममेति बच्यते जन्तुर्न ममेति प्रमुख्यते॥

(41 V\$ 1 43)

जो कर्म जीवात्पाको बन्धनमें नहीं ले जाता वही सत्कर्म है। जो विद्या प्राणीको मुक्ति प्रदान करनेमें समर्थ है, वही विद्या है। जबतक प्राणियोंको कर्म अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, जबतक उनमें सांसारिक वासना विद्यमान है और जबतक उनकी इन्द्रियोंमें बञ्चलता रहती है, तबतक उन्हें परम तत्त्वका ज्ञान कहाँ हो सकता है? जबतक व्यक्तिमें शरीरका अधिमान है, जबतक उसमें ममता है, जबतक उस प्राणीमें प्रयत्नको क्षमता रहतो है, जबतक उसमें संकल्प तथा कल्पना करनेकी शक्ति है. जयतक उसके मनमें स्थिरता नहीं है, जबतक वह शास्त्रचिन्तन नहीं करता है तथा उसपर मुरुकी दया नहीं होती है तबतक उसको परमतत्व कहाँसे प्राप्त हो सकता है?

श्रीभगवान् कहते हैं-हे नहड । उस तत्वद्रका अन्तिम कृत्य सुनो, जिसके द्वारा ब्रह्मपद या निर्वाण नामवाला मोक्ष प्राप्त होता है। अन्त समय आ जानेपर पुरुष भयरहित होकर संयमकर्पा शस्त्रमे देहादिको आसक्तिको काट दे। अनासक भावसे धीरवान पुरुष पवित्र तीर्थमें जाकर उसके जलमें सान करे, तदनना वहींपर एकाना देशमें किसी स्वच्छ एवं शुद्ध भूमिमें विधिवत् आसन लगाकर बैठ जाय तथा एकायचित्त होकर गायत्री आदि मन्त्रोंके द्वारा उस शुद्ध परम बहाधरका ध्यान करें। बहाके बीजमन्त्रको बिना भूलाये वह अपने स्वासको रोककर मनको वसमें करे तथा अन्य कमौसे मनको रोककर बुद्धिके द्वारा शुभकर्ममें लगाये।

'मैं बहा हैं' 'मैं परम धाम हैं' 'मैं ही बहा हैं' 'परम पद में हूँ इस प्रकारकी समीक्षा करके निष्कल आत्मामें मनको प्रविष्ट करना चाहिये। जो मनुष्य 'ॐ' इस एकाश्वर मन्त्रका जप करता है, वह अपने शरीरका परित्याग कर परम पदको प्राप्त करता है।

मान-मोहसे रहित, आसक्तिदोषसे परे, नित्प अध्यात्म-

एक पद है 'यह मेरा नहीं है।' और दूसरा पद है 'यह चिन्तनमें दत्तचित, सांसारिक समस्त कामनाओंसे रहित और सुख-दु:ख नामके द्वन्द्रसे मुक्त जानी पुरुष ही उस अध्यय पदको प्राप्त करते हैं।

प्रौड वैराग्यमें स्थित हो करके अनन्य भावसे जो व्यक्ति मेरा भवन करता है, वह पूर्णदृष्टिवाला प्रसन्नात्मा व्यक्ति मोश्र प्राप्त करता है।

घर छोडकर मरनेकी अभिलाषासे जो तीर्थमें निवास करता है और मुक्तिक्षेत्रमें मरता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है। हे ताक्यें! ज्ञान तथा वैराग्यसे युक्त यह सनातन

मोधधर्म ऐसा ही है, उसको तुम्हें सूना भी दिया है।

तत्वत मोध प्राप्त करते हैं। धर्मनिष्ठ स्वर्ग जाते हैं, पापी नरकमें बाते हैं। पक्षी आदि इस संसारमें अन्य योनियोमें प्रविष्ट होकर सुमते रहते हैं-

मोक्षं गच्छनि तत्त्वज्ञा धार्मिकाःस्वर्गति नराः। पापिनो दुर्गीतं पान्ति संसरनि खगादयः॥ (\$188184)

अपने प्रश्नोंके उत्तरके रूपमें भगवानके मुखसे इस प्रकार सिद्धानको सुनकर प्रसन्न शरीरवाले गरुडने जगदीश्वरको प्रणाम किया और कहा—'प्रभी। आपके इन आहादकारी वचनींसे मेरा बहुत बढ़ा संदेह दूर हो गया।' ऐसा कहकर उन्होंने भगवान् विष्णुसे आज्ञा ली और वे कश्यपनीके आज्ञमम् चले गये।

यह गरुडमहापुराण बढ़ा ही पवित्र और पुण्यदायक है। यह सभी पापीका विनाशक एवं सुननेवालीकी समस्त कामनाओंका पूरक है। इसका सदैव श्रवण करना चाहिये-

पराणं गारु इं पूर्ण पवित्रं पापनाशनम्। भूणवर्ता कामनाप्रं भ्रोतव्यं सर्वदेव हि॥

(21881435)

को मनुष्य इस महापुराणको सुने या जैसे भी हो ही इसका पाठ करे तो वह प्राणी यमराजकी भवंकर यातनाओंको तोडकर निष्पाप होकर स्वर्गको प्राप्त

वक्षेदं भृणुवान्यत्वाँ वश्चापि परिकीर्तवेत्। विद्याय यातनां धोरां धृतपापो दिखं क्रजेत्॥

(31881836)

राधेश्याम खेमक

नम्र निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

रूपमें 'संक्षिप्त गरुडपराणाङ्क'पाटकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। पिछले कई वर्षोंसे कुछ महानुभावोंका यह विशेष आग्रह था कि 'कल्याण' के विशेषाङ्गके रूपमें 'गरुडमहापुराण'का प्रकाशन किया जाय। हम चाहते हुए भी अवतक यह कार्य नहीं कर सके थे। इस वर्ष यह सम्भव हो सका।

अठारह महाप्राणींके अन्तर्गत गरुडमहापुराचका अपना एक विशेष महत्व है। इसके द्वारा असार-संसारकी क्षणभन्नरता तथा अनित्यताका दिग्दर्शन तो होता ही है: इसके साथ ही इसमें परलोकका वर्णन तथा संसारके आवागमनसे मुक्त होनेकी विधि भी वर्षित है। चतुर्कगीचन्त्रामणि, वोरमित्रोदय, हेमाद्रि, विधानपारिजात आदि सभी प्राचीन निवन्ध-यन्वॉमें अनुष्ठान, वत, दान एवं बाद आदिके प्रकरणमें मूल श्लोकींका संदर्भ भी प्राय: गरुडप्राणका ही मिलता है। इन सब कारणोंसे इस ग्रन्थको बेहता एवं महत्त्व विशेषरूपसे परिलक्षित होनेपर भी सामान्य जन इसके विषय-वस्तुसे अनिभन्न-जैसे ही हैं। अत: स्वाधाविक रूपसे यह प्रेरणा हुई कि गरुडमहापुराणकी कथा-वस्तुको जनता-जनार्दनकी दृष्टिमें लानेके लिये इस बार इसी महापूराचका अनुवाद 'विजेपाङ'के रूपमें प्रस्तुत किया जाय। इस प्रेरणाके अनुसार ही यह निर्णय कार्यरूपमें परिणत हुआ।

वास्तवमें गरुडमहापुराण एक पवित्र वैच्याव ग्रन्थ है। इसके अधिप्तातदेव भगवान विष्णु है। वह महापुराण अधिकतम तीन खण्डोमें विभक्त है- पूर्वखण्ड (आचारकाण्ड), उत्तरखण्ड (धर्मकाण्ड – प्रेतकल्प) और ब्रह्मकाण्ड । अधिकांत संस्करणोंमें केवल दो ही खण्ड (पूर्व और उत्तर) दिये गर्य हैं। जबकि खेमराज श्रीकृष्णदासद्वारा प्रकाशित पुस्तकमें इन दोनों काण्डोंके अतिरिक्त ब्रह्मकाण्ड भी दिया गया है। पूर्वखण्ड (आचारकाण्ड)-में भक्ति, ज्ञान, वैरान्य, सदाचार एवं निष्काम कर्मको महिमा तथा यह, दान, तप, वीर्यसेवन, देवपुजन, ब्राद्ध, तपंज आदि शास्त्रविहित शुभ कर्मोंमें जनसाधारणको प्रवृत करनेके लिये अनेक लौकिक एवं पारलाँकिक पुण्यप्रद फलादिका वर्णन किया गया है। इनके हो पुण्य-लाभ तथा अन्त:करणकी परिशुद्धि और भगवानुमें

भगवत्कपासे इस वर्ष 'कल्यान'के विशेषाङ्के अतिरिक्त इसमें व्याकरण, छन्द, स्वर, ज्योतिष, आयुर्वेद, रबसार, नीतिसार आदि अन्यान्य उपयोगी विविध विषयोंका वयाक्रम समावेश हुआ है।

गरुडमहाप्राणमें मुख्य रूपसे उत्तरखण्डमें प्रेतकल्पका विवेचन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसमें मृत्युका स्वरूप, मरणासप्र व्यक्तिको अवस्था और उसके कल्याणके लिये अन्तिम समयमें किये जानेवाले कत्यों तथा विविध प्रकारके दानोंका निरूपण हुआ है। मृत्युके बाद औध्येदैहिक संस्कार, पिण्डदान, बाद, सांपण्डीकरण, कमेविपाक, पाप्रोंके प्राथश्चित्रका विधान आदि वर्णित है। इसमें नरकोंका तवा स्वर्ग एवं वैकृष्ठ आदि लोकोंके वर्णनके साथ ही पुरुवार्थचतुरुव धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्राप्त करनेके विविध साधनीका निरूपण भी हुआ है। इसके अतिरिक्त जन्म-मरणके बन्धनमें भूक होनेके लिये आत्मज्ञानका प्रतिपादन भी किया गया है।

वास्तवमें गरुडमहापुराणको समस्त कथाओं और उपदेशोंका सार यह है कि हमें आसक्तिका त्यागकर वैराग्यको और प्रवृत्त होना चाहिये तथा सांसारिक मन्धनीसे मुक्त होनेके लियं एकमात्र परमात्माकी शरणमें जाना चाहिये। यह लक्ष्यप्रांति कर्मयोग और ज्ञान अथवा भक्तिद्वारा किस प्रकार हो सकतो है, इसकी विशद व्याख्या इस महापुराजमें हुई है। यह पुराज भगवत्प्राप्तिके लक्ष्यको सामने रखते हुए साधकोंके लिये उनके ग्रहण करने योग्य विभिन्न अनुभूत सत्य मार्गीक विद्वांका तथा विद्रोंसे छूटनेके उपाचोंका बड़ा हो सुन्दर निरूपण करता है। मनुष्य इस लोकमे जानेके बाद अपने पारलीकिक जीवनको किस प्रकार मुख-समृद्ध एवं शान्तिप्रद बना सकता है तथा उसकी मृत्यके बाद उस प्राणीके उद्धारके लिये पुत्र-पौज्ञदिक-- पारिवारिक जनोंके कर्तव्यका विशद वर्णन भी यहाँ प्राप्त होता है। वह महत्त्वपूर्ण प्रकरण अन्य किसी पराण या ग्रन्थमें हमें उपलब्ध नहीं होता।

इस गरुडमहाप्राणके ब्रवण और पठनसे स्वाभाविक

रति एवं विषयोंसे विरति तो होती ही है, साथ ही मनुष्योंको ऐहिक और पारलैंकिक हानि-लाभका यथार्थ ज्ञान भी हो जाता है। तदनुसार जीवनमें कर्तव्य निश्चय करनेको अनुभूत शिक्षा भी मिलती है। साथ ही, जो जिज्ञास शास्त्र-मर्वादाके अनुसार अपना जीवनयापन करना चाहते हैं, उन्हें इस पुराणसे कल्याणकारी ज्ञान, साधन तथा सुन्दर एवं पवित्र जीवनयापनकी शिक्षा भी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त पुत्र-पौत्रादि- पारिवारिक जनोंकी पारमार्थिक आवश्यकता और उनके कर्तव्यबोधका परिज्ञान भी इसमें कराया गया है। इस प्रकार यह महापुराण जिजास जरोंके लिये आत्यधिक उपादेय, ज्ञानवर्धक, सरस तथा उनके यथार्थ अभ्युदय और कल्याणमें पूर्णतया सहस्यक है।

चौंक इस पुराणमें विविध विषयोंका सम्बवेश हुआ है। अतः पाउनोंकी सुविधाके लिये गरुडमहापुराणके भावांका सार-संश्रेष इस 'विशेषाङ्क'के प्रारम्भमें 'सिहाकलोकन'-के रूपमें प्रस्तुत किया गया है। इसके अवलोकनसे गरुडमहाप्राणके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय पाठकाँके ध्यानमें आ सकेंगे: यदापि जिज्ञास जनोंको यह 'विशेषकु' आद्योधन पूरा पढ़ना चाहिये। यदि पूरा न यद सकें तो कम-से-कम उत्तरखण्ड (धर्मकाण्ड-प्रेतकल्प) तो अवस्य पदना चाहिये. जिससे उन्हें परलोक-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हो सके।

सामान्यत: संसारके लोगोंमें यह जिज्ञासा होनी स्वाधाविक है कि मृत्युके बाद प्राणी कहाँ जाता है और उसकी क्या जायें, परंतु एक वर्षमें प्रकाशन सम्भव न होनेके कारण गति होती है ? संसारमें सुख-दु:खका वैचम्य भी दिखायी सर्वसाधारणके उपयोगकी दृष्टिसे केवल भाषानुवादमें इसे पड़ता है। परलोकमें स्वर्ग और नरकको बाद भी हम लोग प्रकाशित किया गया है। भगवदिच्छा हुई तो आगे सुनते हैं। इन सब प्रश्नोंका उत्तर इस गरुडमहापुराणमें पुस्तकरूपमें मूलके साथ पुन: इसके प्रकाशनका प्रवास सविस्तार प्रतिपादित हुआ है।

यद्यपि 'विशेषाङ्क'के प्रकातनमें कभी-कभी कुछ

भावमिन्छन्ति देवताः'-पितृगण शुद्ध वाक्य और शुद्ध प्रक्रियाकी अपेक्षा रखते हैं और देवगण शुद्ध वाक्य और प्रक्रियामें उटि होनेपर भी मनुष्यके आन्तरिक शुद्ध भावोंसे भी संतृष्ट हो जाते हैं। गरुडपराणका मुख्य प्रतिपाद्य विषय बाद आदि प्रक्रिया-प्रधान होनेके कारण इसके अनुवाद करनेमें किरोष सावधानी बरतनी पड़ी। प्राय: यह प्रयास किया गया कि ग्रन्थके मूल भावोंको सरक्षित रखते हुए यधासाध्य ब्राद्धको प्रचलित और व्यावहारिक प्रक्रियाओंका सामञ्जस्य बना रहे, जिससे सर्वसाधारणको व्यावहारिक प्रक्रियामें असुविधाका अनुभव न हो, फिर भी कदाचित् द्विवधाको स्थितिमें मूल रलोकोंके भावोंको ही प्राथमिकता दो गयो है। भावोंके स्पष्टीकरणकी दृष्टिसे कुछ आवश्यक टिप्पणियों भी दी गयी हैं। इसके साथ ही कुछ महत्त्वपूर्ण मूल क्लोकोंका भी समायोजन किया गया है।

प्राय: यह प्रयास किया गया है कि इस 'विशेषाक् 'में गरुडपुराणके सभी श्लोकोंका अनुवाद समायोजित कर दिया जाय, परंतु अपने पुराणमें कुछ ऐसे भी स्थल हैं, जो सर्वस्त्रधारणके समझको धमताके बाहर है, जिनके अवलोकनसे सामान्य जनोंके मस्तिष्कमें संज्ञय-विषयंयकी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। ऐसे कुछ स्थलींक अनुवादको संक्षित करना ही हितकर समझा गया। प्रारम्भमें यह विचार था कि गरुडपुराणके मूल रलोक भी अनुवादके साथ प्रस्तुत किये किया जा सकता है।

आजकल विशेषरूपसे प्रचलित 'गरुडपुराण सारोद्धार' असुविधाएँ भी आती हैं, परंतु इस बार गरुडपुराणके नामका एक ग्रन्य उपलब्ध होता है, जो सीलह अध्यायोंमें प्रकाशनमें विशेष कठिनाइयोंकी अनुभृति हुई। संयोगकत है तथा इसीको प्राय: ब्राह्म आदि पितृ-कार्योमें सुनाया जाता इस महापुराणका कोई अनुवाद अथवा टीका उपलब्ध न है और इसे ही सामान्य लोग गरुडपुराणके रूपमें जानते हैं. होनेके कारण मूलरूपसे सम्पूर्ण ग्रन्थका अनुवाद करना परंतु वास्तवमें यह ग्रन्थ मूल गरुडपुराणसे भिन्न है। कुछ पड़ा। उपलब्ध मूल ग्रन्थोंमें भी पाठभेद और अशुद्धियोंक समय-पूर्व राजस्वानके विद्वान् पं॰ नवनिधि शर्माके द्वारा बाहुरूयसे बीच-बीचमें कुछ भ्रमको स्थिति बन जाती थी। किया गया यह संकलन है। इसमें शंकराचार्यके विवेकचुडामणि, अपने शास्त्रोंमें स्पष्ट निर्देश है-'पितरो वाक्यमिच्छन्ति भगवदोता, नीतिशतक, वैराग्यशतक एवं अन्य पुराणींके साथ गरुडपुराचके श्लोकोंका संग्रह है। कुछ लोगोंमें वह संशोधन, चित्रनिमांण तथा मुद्रण आदि कार्योमें जिन-जिन धान्त धारणा बनी है कि गरुडपुराणको घरमें नहीं रखना लोगोंसे हमें सहदयता मिली वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें चाहिये। केवल ब्राह्म आदि प्रेत-कार्योमें ही इसकी कथा धन्यकद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते। सुनते हैं। यह धारणा अत्यन्त भ्रामक और अन्धविश्वाससे अनुवादको अवृति, यूफ-संशोधन तथा सम्पादनके कार्योंमें युक्त है; कारण, इस महापुराणमें ही यह बात लिखी है कि सम्मादकीय विभागके मेरे सहयोगी विद्वानीने तथा अन्य 'ओ मनुष्य इस महापुराणको सुने या जैसे भी हो वैसे ही सभी लोगोंने मनोदोगपूर्वक सहयोग प्रदान किया है। फिर इसका पाठ करे तो वह प्राणी यमरावकी भवंकर भी अनुवाद संशोधन, छपाई आदिमें कोई भूल हो तो यातनाओंको तोड़कर निष्पाप होकर स्वर्गको प्राप्त करता इसके लिये हमारा अपना अज्ञान तथा प्रमाद ही कारण है। है।' यह गरुडमहापुराण बड़ा ही पवित्र और पुरुषदायक अतः हम इसके लिये अपने पाठक-पाठिकाओंसे क्षमा-है। यह सभी पापोंका विनाशक एवं सुननेवालोंकी समस्त प्रार्टी हैं।

प्राणं गारुडं पुण्यं पवित्रं पापनाजनम्। शृण्यतां कामनापुरं धोतव्यं सर्वदेव हि॥ (FC# 1 FW (S)

कामनाओंका परक है। इसका सदैव ब्रवण करना चाहिये-

अतः आस्तिक जनोंको इस प्रकारकी भागक शंका कदापि नहीं रखनी चाहिये।

इस पुराणके अनुवादका संशोधन, परिवर्धन आदि कार्योको प्रयागराजके बीहरीराम संस्कृत महाविद्यालयके पूर्व प्राचार्य आदरणीय पं० डीरामकृष्णजी शास्त्रीने पूर्ण मनोयोगसे सम्पन्न किया। यह कार्य भगवद्यीत्यर्थ निष्काम भावसे इनके द्वारा सम्पन्न हुआ। इसके साथ ही अफ़िहोत्री पं०शीजोखनरामणी शास्त्री, संस्कृत विश्वविद्यालयके प्राच्यापक पं० वीम्धाकरजी दौक्षित, आदरणीय पं० ब्रोविश्वनधजी शास्त्री दातार तथा पं॰ बीलालियहारीजी शास्त्री आदि महानुभावाने भी इस कार्यमें कृपापूर्वक पूर्व सहयोग प्रदान किया। में इन महानुभावोंके चरणोंमें प्रणति निवेदन करता है। गरुडमहापुराणके प्रकाशनके लिये 'सर्थ भारतीय काशिएन न्यास'-के अध्यक्ष महाराज कालिएज डॉ॰ ब्रोकिमृति-नारायण सिंहजीने हमें प्रेरणा प्रदान की तथा अपने न्यासद्वारा संशोधित आचारकाण्डका मूल पाट भी उपलब्ध कराया। हम उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। 'कल्पाण'-सम्पादकीय विभागके पं॰ श्रीजानकीनाथजी समीके सहयोगके प्रति भी हम आभारी हैं। इस 'विशेषाङ्क' के सम्पादन, प्रूफ-

आहितक जन इस गरुडपुराणको पढ्कर लाभ उठावें और लॉक-परलोकमें मुख-शान्ति तथा मानव-जीवनके परम लक्ष्य परमात्पप्रभुको प्राप्त करें, यही प्रार्थना है। मानव-जीवनका लक्ष्य है आत्मोद्धार करना। इस लक्ष्यकी सिद्धि इस प्राणमें वर्णित आचारके ब्रद्धापूर्वक सेवनसे प्राप्त हो सकती है। गरुडपुराणके समस्त कथानक एवं उपदेशोंका सार यही है कि हमें आसक्तिका त्यागकर कर्तव्यकमीको करते हुए वैराग्यको और प्रवृत्त होना चाहिये तथा सांसारिक बन्धनीसे मुख होनेके लिये एकमात्र विश्वलक्ष परमारमाकी शरण ग्रहण करना चाहिये। इस लक्ष्यकी प्राप्ति कर्म, ज्ञान और परिद्वारा किस प्रकार हो सकती है, इसकी विशद ञ्चाखना भी इस पुराजमें वर्णित हुई है। इसके साथ ही अपने पितृजनोंको परलोकमें सद्गति प्राप्त करानेके लिये पुत्र-पौजदिकं कराव्यका भी निरूपण हुआ है। यदि इस विज्ञेषाङ्क के अध्ययनसे हमारे देशवासियोंको मनुष्य-बीवनके वास्तिक ध्येयको हृदयङ्गम करने तथा उसकी और बदनेमें कुछ भी सहायता मिली तो यह भगवानुकी बड़ी कृपा होगी, त्रम सार्थक होगा और हम इसे अपना सीभाग्य मानेंगे।

> सर्वे भवन्त् सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन् मा कञ्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

—राधेश्याम खेमका

सम्पादक